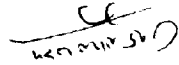
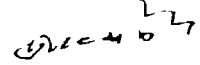


प्रस्ताव रखा। कार्यकारिणी सदस्य श्री चक्रेश जैन ने कहा विभिन्न सामाजिक आयोजनों को ध्यान में रखते हुए कहा यह प्रक्रिया के लिए चर्चा आगामी कार्यकारिणी मिति में की जानी चाहिए। जिसका सर्वसम्मति से अनुमोदन किया गया।

12. काशीपुर मन्त्रालय का निर्देश - श्री राजेश जैन द्वारा श्री (3.3.17) के निर्देश 7/33 के दिशा में श्री (4.4.2.2) के निर्देश का निर्देश 2/11 के निर्देश के साथ सभा समाप्त की गई।



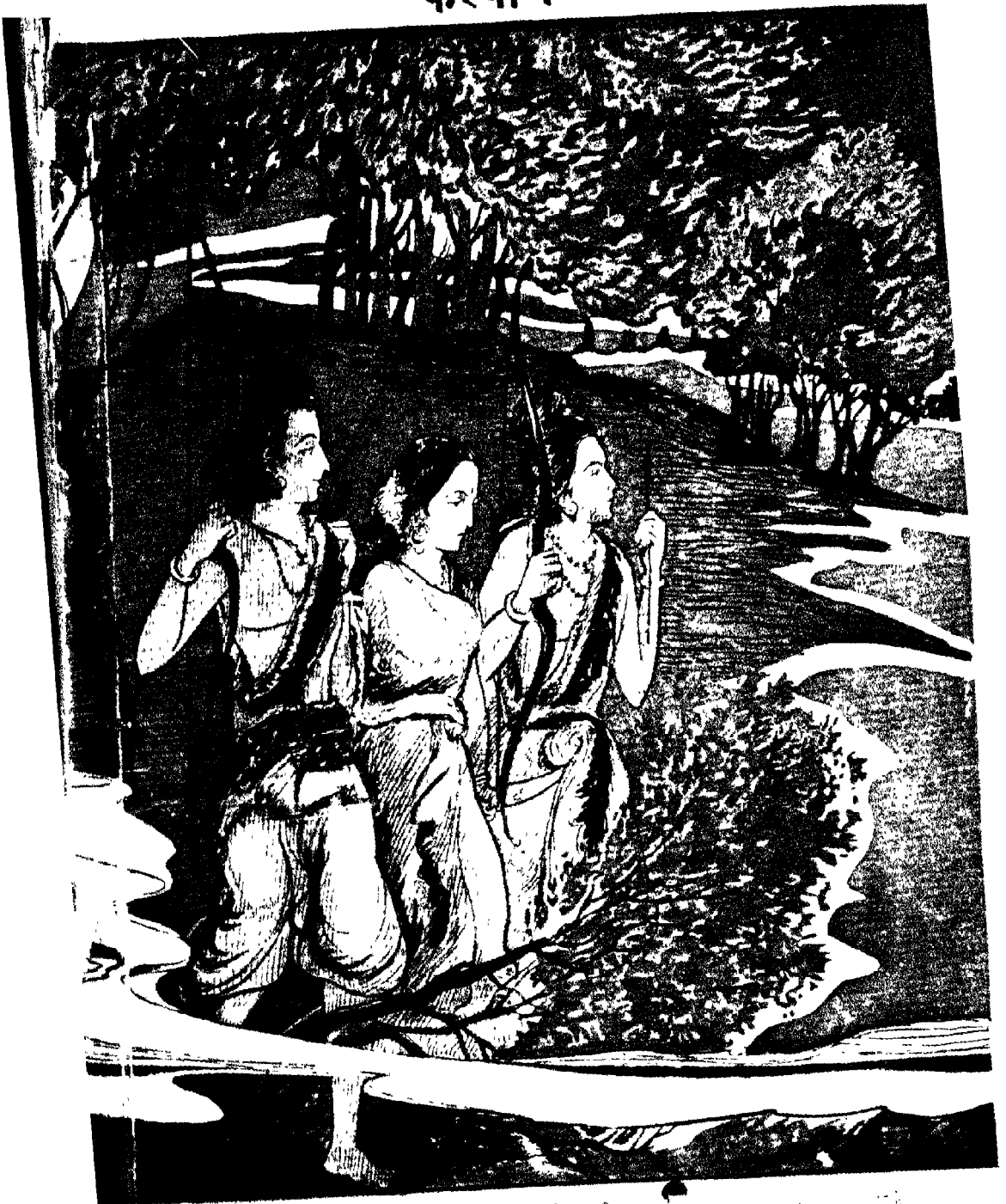
(मदनलाल जैन)
अध्यक्ष



(मुभाष जैन)
महामंत्री

५:

कल्याण



= रामायण =

प्रथम खण्ड

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली



३३ ११ ११

११ ११ ११

११

॥ सीता रुक्मिणी जय जय ॥
शिव माम्ब मदाशिव जय शंकर ।
।कर अथ-तमहर हर हर शंकर ॥
॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
॥ जय गणेश जय शुभ आगार ॥
॥ गौरीशंकर मीताराम ॥
॥ ब्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम ॥
॥ पतिवपावन मीताराम ॥
करण ३०

tors of Public Instruction,
United Provinces, Bihar, Orissa, Assam,
Bombay Presidency and Central Provinces.

कोई सज्जन विज्ञापन भेजनेका कष्ट न उठावें ।

कल्याणमें बाह्यके विज्ञापन नहीं छपते ।

समालोचनार्थ पुस्तकें कृपया न भेजें ।

कल्याणमें समालोचनाका सम्भ नहीं है ।

Foreign subscription: Annual 10 Shillings.

Manasanka 9 Sh. Bound 10 Sh.

Ordinary Issues 7 As. or 8 d.

| | | |
|---------------|---|--------------------|
| वार्षिक मूल्य | त्रय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सन चिन आनंद भूमा जय जय ॥ | मानस-त्रिकका मूल्य |
| भारतमें ४३) | जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अग्निलात्मन जय जय ॥ | नीति खण्डिका ४) |
| विदेशमें ६॥५) | जय विराट नय जगन्पते । गौरीपति जय रमापते ॥ | विदेशमें ५) |
| (१० शिल्लिंग) | | साधारण प्रति १) |
| | | विदेशमें १५) |

Edited by Hanumanprasad Poddar.

Printed and Published by Ghanashyamdas Edin at the Gita Press, Gorakhpur, U. P. (India)



कल्याण-प्रेमियोंसे तथा ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

(१) 'मानसांक' इस बार ठीक समयपर निकल रहा है। 'कल्याण' के अबतकके विशेषांकोंमें 'मानसांक' सबसे बड़ा हुआ है। प्रथम खण्ड (अगस्तका अंक), द्वितीय खण्ड (सितम्बरका अंक) और तृतीय खण्ड (अक्टूबरका अंक) सब मिलाकर ११२२ पृष्ठ हो गये हैं, जो गतवर्षके पूरे संत-अंकसे २४८ पृष्ठ ज्यादा है अर्थात् मानसांक सवायेसे भी अधिक बड़ा हो गया है। चित्र भी इस बार बहुमूल्य, बहुत ही भावपूर्ण और कलापूर्ण हैं।

कागज, छपाई, चित्र, बँधाई, डाकखर्च आदि सभीमें बहुत अधिक खर्च हो जानेके कारण 'मानसांक' इस बार बहुत भारी घाटा देकर प्रकाशित हो रहा है, इसलिये दुबारा छपनेकी सम्भावना प्रायः नहीं है। अतएव जिनको ग्राहक बनना हो वे बहुत शीघ्र रुपये भेजकर ग्राहक बन जायँ, पीछे 'मानसांक' मिलना असम्भव-सा हो सकता है।

इतना बड़ा और बहुमूल्य 'मानसांक' होनेपर भी कल्याणका मूल्य बढ़ाया नहीं गया है। वही ४३) में वर्षभर 'कल्याण' मिलेगा।

(२) 'मानसांक' का मूल्य (तीनों खण्डोंका) ४) है। शेष तीन ही आनेमें वर्षभरके नौ अंक और मिल जायँगे। इसलिये 'मानसांक' अलग न लेकर ग्राहक बननेमें ही सुभीता है।

(३) यह अंक बहुत बड़ा होनेसे छपाईका काम बहुत बढ़ गया है। ज्यों-ज्यों अंक छपते जाते हैं त्यों-ही-त्यों ग्राहकोंको भेजे जा रहे हैं। ग्राहकोंकी शिकायत होती है कि हमें अंक देरसे मिलते हैं। शिकायत ठीक है। परन्तु हम इसके लिये लाचार हैं। न तो इतने बड़े अंककी चालीस हजार प्रतियाँ एक साथ तैयार हो सकती हैं और न डाकखानेवाले ही इतने रजिस्टर्ड पैकेट एक साथ ले सकते हैं। अभी ४००-५०० अंक प्रतिदिन जा रहे हैं, आगे चलकर एक हजार जा सकते हैं। बहुत जल्दी करनेपर भी सब अंकोंकी पूरी रवानगीमें कम-से-कम १॥ महीना तो लग ही जायगा। ग्राहकगण हमारी इस विवशतापर क्षमा करें।

(४) जिन महानुभावोंने अभीतक अगले सालका मूल्य ४३) नहीं भेजा है उनकी सेवामें जल्दी ही मानसांक वी० पी० से भेजनेकी व्यवस्था की जायगी । परन्तु उसमें एक महीनेकी देर होना सम्भव है, इसलिये इस सूचनाको पढ़ते ही जो ४३) मनीआर्डरसे तुरंत भेज देंगे, उनको 'मानसांक' जल्दी मिल सकेगा ।

(५) जिन सज्जनोंके नाम वी० पी० जायगी, हो सकता है उनमेंसे कुछ सज्जन इधरसे वी० पी० जानेके समय ही उधरसे रुपये मनीआर्डरसे भेज दें । ऐसी हालतमें उन सज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे वी० पी० लौटावें नहीं, वहीं रोक रखें और हमें तुरंत कार्ड लिखकर सूचना दें । रुपये आ गये होंगे तो हम उन्हें प्री-डिलेवरी देनेके लिये वहाँके पोस्टमास्टरको लिख देंगे । यदि 'मानसांक' रजिस्ट्रीसे मिल गया हो और वी० पी० से भी अंक पहुँचे तो भी कृपया वी० पी० लौटावें नहीं । चेष्टा करके दूसरा नया ग्राहक बनाकर वी० पी० छुड़ानेकी कृपा करें और नये ग्राहकका नाम-पता साफ-साफ लिख भेजनेकी कृपा करें । कई महानुभाव ऐसा ही करते हैं । हम हृदयसे उनके कृतज्ञ हैं ।

(६) सजिल्द अंक भेजनेमें देर होगी, ग्राहक महोदय क्षमा करें ।

(७) जिनको ग्राहक न रहना हो वे सज्जन कृपा करके तुरंत तीन पैसेका कार्ड लिखकर डाल दें, जिसमें कल्याण-कार्यालयको वी० पी० भेजकर व्यर्थ डाकखर्चका नुकसान न उठाना पड़े ।

व्यवस्थापक—'कल्याण', गोरखपुर

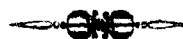
गीता और रामायणकी परीक्षा

'कल्याण'के पाठकोको श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस (रामायण) का महत्त्व समझाना नहीं होगा । हर्षका बात है, इनका प्रचारके लिये कई वर्षोंमें दो परीक्षासमितियाँ अपना कार्य कर रही हैं । प्रतिवर्ष हजारों परीक्षार्थी परीक्षामें बैठते हैं । अतएव सब सज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे अपने-अपने स्थानोंकी हिन्दी-संस्कृत-पाठशालाओंमें तथा स्कूल-कॉलेजोंमें गीता और रामायणकी पढ़ाईकी व्यवस्था करावें और यथासाध्य अधिक-से-अधिक विद्यार्थियोंको परीक्षामें बैठनेके लिये उत्साहित करें । आशा है कि सभी बुद्धिमान् सज्जन इस कार्यमें हमारी सहायता करेंगे । नियमावलीके लिये नीचे लिखे पतेपर पत्र लिखनेकी कृपा करें ।

संयोजक—

श्रीगीतापरीक्षासमिति, श्रीरामायणप्रसारसमिति

पो० बरहज (गोरखपुर)



श्रीहरि:

कल्याण श्रीमानसांक खण्ड १, २, ३ की विषय-सूची

| पृष्ठ-संख्या | पृष्ठ-संख्या |
|--|--------------|
| १-सम्पादकका निवेदन (हनुमानप्रसाद पोद्दार) | ३ |
| २-पाठके सम्बन्धमें निवेदन (पं० बिम्मनलालजी गोस्वामी एम० ए०, नन्ददुलारेजी बाजपेयी एम० ए०) | ५ |
| ३-पारायण-विधि | १० |
| ४-अनुष्ठानके प्रयोग | १७ |
| ५-श्रीरामशलाका प्रभावली | २० |
| ६-भक्तशिरोमणि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी | २२ |
| ७-मानसके प्रासंगिक चरित्र | ३३ |
| ८-'मानस' जीवनका प्रकाश है (पूज्यपाद पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज) | ५१ |
| ९-'मानस' से भवबन्धन-मुक्ति (पूज्यपाद स्वामीजी श्रीअवधविहारीदासजी परमहंस 'नारायादा') | ५१ |
| १०-मानसके द्वारा अनुपम सुख और शान्ति (पूज्यपाद महामना पं० श्रीमदनमोहनजी मालवीय) | ५२ |
| ११-रामचरितमानससे श्रद्धाकी प्राप्ति (पूज्यपाद महाराम गान्धीजी) | ५२ |
| १२-रामायणसे दिव्य प्रेरणा (श्रीयुत श्यामाप्रसाद मुकुर्जी, एम० ए०, एल-एल० बी०, वार-एट-ला, वाइस चैंसलर, कलकत्ता विश्व-विद्यालय) | ५३ |
| १३-भारतीय साहित्यका अद्वितीय ग्रन्थ (श्रीयुत हीरेन्द्रनाथदत्त, एम० ए०, बी० एल०, वेदान्तरत्न, वाइस प्रेसिडेंट, अ० भा० थियोसोफिकल सोसायटी) | ५३ |
| १४-श्रीरामचरितमानससे जीवोंका कल्याण (पू० श्रीरामवल्लभादासजी महाराज 'रामायणी') | ५३ |
| १५-रामायणसे धर्म और अध्यात्मविद्याका विस्तार (देशरत्न बाबू श्रीराजेन्द्रप्रसादजी) | ५४ |
| १६-मानसमें वीरत्व और विनयपूर्ण भावोंका प्रवाह (रे० एडविन यीक्स) | ५५ |
| १७-मानसकी उपादेयता सर्वोपरि है (डाक्टर श्रीसच्चिदानन्द सिंह, एम० ए०, वार-एट-ला, वाइस चैंसलर, पटना यूनिवर्सिटी) | ५५ |
| १८-श्रीरामचरितमानस | |
| बालकाण्ड | |
| १-मंगलान्वरण | ५७-५८ |
| २-गुरु-वन्दना | ५९ |
| ३-ब्राह्मण-संत-वन्दना | ६०-६१ |
| ४-खल-वन्दना | ६२ |
| ५-संत-असंत-वन्दना | ६३-६५ |
| ६-रामरूपसे जीवमात्रकी वन्दना | ६५-६६ |
| ७-तुलसीदासजीकी दीनता और रामभक्ति मयी कविताकी महिमा | ६६-७१ |
| ८-कवि-वन्दना | ७२-७३ |
| ९-वाल्मीकि, वेद, ब्रह्मा, देवता, शिव, पार्वती आदिकी वन्दना | ७३-७४ |
| १०-श्रीसीताराम-धाम-परिकर-वन्दना | ७४-७६ |
| ११-श्रीनाम-वन्दना और नाम-महिमा | ७७-८३ |
| १२-श्रीरामगुण और श्रीरामचरितकी महिमा | ८३-८९ |
| १३-मानसनिर्माणकी तिथि | ८९ |
| १४-मानसका रूपक और माहात्म्य | ९०-९७ |
| १५-याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाट तथा प्रयाग-माहात्म्य | ९७-९९ |
| १६-सतीका श्रम, श्रीरामजीका ऐश्वर्य और सतीका ग्लेह | १००-१०५ |
| १७-शिवजीद्वारा सतीका त्याग, शिवजीकी समाधि | १०६-१०८ |
| १८-सतीका दक्ष यज्ञमें जाना | १०९-११० |

| | पृष्ठ-संख्या |
|--|--------------|
| १९-पतिके अपमानसे दुखी होकर सतीका योगाग्निसे जल जाना, दक्ष-यज्ञ-विध्वंस | ... ११०-११२ |
| २०-पार्वतीजीका जन्म और तपस्या | ... ११२-११८ |
| २१-श्रीरामजीका शिवजीसे विवाहके लिये अनुरोध | ... ११९-१२० |
| २२-सप्तर्षियोंकी परीक्षामें पार्वतीजीका महत्त्व | १२०-१२२ |
| २३-कामदेवका देवकार्यके लिये जाना और भस्म होना | ... १२३-१२७ |
| २४-रतिको वरदान | ... १२७ |
| २५-देवताओंका शिवजीसे न्याहके लिये प्रार्थना करना, सप्तर्षियोंका पार्वतीके पास जाना | ... १२८-१२९ |
| २६-शिवजीकी विचित्र बारात | ... १३०-१३१ |
| २७-शिवजीका विवाह | ... १३२-१४० |
| २८-शिव-पार्वती-संवाद | ... १४१-१५२ |
| २९-अवतारके हेतु | ... १५२-१५४ |
| ३०-नारदका अभिमान और मायाका प्रभाव | १५५-१५८ |
| ३१-विश्वमोहिनीका स्वयंवर, शिवगणोंको तथा भगवान्को शाप और नारदका मोह-भंग | १५८-१६४ |
| ३२-मनु-शतरूपा-तप एवं वरदान | ... १६५-१७३ |
| ३३-भानुप्रतापकी कथा | ... १७३-१८८ |
| ३४-रावणादिका जन्म, तपस्या और उनका ऐश्वर्य और अत्याचार | ... १८८-१९४ |
| ३५-पृथ्वी और देवतादिका करुण पुकार | ... १९४-१९६ |
| ३६-भगवान्का वरदान | ... १९७ |
| ३७-राजा दशरथका पुत्रेष्टि यज्ञ, रानियोंका गर्भवती होना | ... १९८-१९९ |
| ३८-श्रीभगवान्का प्राकट्य और बाललीला-का आनन्द | ... २००-२१० |
| ३९-विश्वामित्रका राजा दशरथसे राम-लक्ष्मण-को माँगना | ... २१०-२१२ |
| ४०-विश्वामित्र-यज्ञकी रक्षा | ... २१३ |
| ४१-अहल्या-उद्धार | ... २१४-२१५ |
| ४२-श्रीराम-लक्ष्मण-सहित विश्वामित्रका जनकपुरमें प्रवेश | ... २१५-२१६ |
| ४३-श्रीराम-लक्ष्मणको देखकर जनकजीकी प्रेम-मुग्धता | ... २१७-२१८ |

| | पृष्ठ-संख्या |
|--|--------------|
| ४४-श्रीराम-लक्ष्मणका जनकपुर-निरीक्षण | ... २१९-२२४ |
| ४५-पुष्पवाटिकानिरीक्षण, सीताजीका प्रथम दर्शन, श्रीसीतारामजीका परस्पर दर्शन | ... २२५-२३० |
| ४६-श्रीसीताजीका पार्वती-पूजन एवं वरदान-प्राप्ति तथा राम-लक्ष्मण-संवाद | ... २३१-२३४ |
| ४७-श्रीराम-लक्ष्मण-सहित विश्वामित्रका यज्ञ-शालामें प्रवेश | ... २३५-२३९ |
| ४८-श्रीसीताजीका यज्ञशालामें प्रवेश | ... २४०-२४२ |
| ४९-बन्दीजनोंद्वारा जनक-प्रतिष्ठाकी घोषणा | २४२ |
| ५०-राजाओंसे धनुष न उठाना, जनककी निराशाजनक वाणी | ... २४३-२४४ |
| ५१-श्रीलक्ष्मणजीका क्रोध | ... २४४-२४५ |
| ५२-धनुषभंग | ... २४६-२५० |
| ५३-जयमाल पहनाना | ... २५१-२५३ |
| ५४-श्रीराम-लक्ष्मण और परशुराम-संवाद | २५४-२६६ |
| ५५-दशरथजीके पास जनकजीका दूत भेजना, अयोध्यासे बारातका प्रस्थान | ... २६६-२७८ |
| ५६-बारातका जनकपुरमें आना और स्वागतादि | ... २७८-२९० |
| ५७-श्रीसीता-राम-विवाह और विदाई | ... २९०-३०७ |
| ५८-बारातका अयोध्या लौटना और अयोध्यामें आनन्द | ... ३०७-३२२ |
| ५९-श्रीरामचरित्र सुनने-गानेकी महिमा | ... ३२२ |
| अयोध्याकाण्ड | |
| ६०-मंगलाचरण | ... ३२३ |
| ६१-रामराज्याभिषेककी तैयारी, देवताओंकी व्याकुलता तथा सरस्वतीजीसे उनकी प्रार्थना | ... ३२४-३३१ |
| ६२-सरस्वतीका मंथराकी बुद्धि पेरना, कैकेयी-मंथरा-संवाद | ... ३३१-३३८ |
| ६३-कैकेयीका कोप-भवनमें जाना | ... ३३८ |
| ६४-दशरथ-कैकेयी-संवाद और दशरथ-शोक, सुमंत्रका महलमें जाना और वहाँसे लौटकर श्रीरामजीको महलमें भेजना | ३३९-३४९ |
| ६५-श्रीराम-कैकेयी-संवाद | ... ३५०-३५२ |
| ६६-श्रीराम-दशरथ-संवाद, अवधवासियोंका विषाद, कैकेयीको समझाना | ... ३५२-३५७ |
| ६७-श्रीराम-कौसल्या-संवाद | ... ३५८-३६१ |

| | पृष्ठ-संख्या | | पृष्ठ-संख्या |
|---|--------------|---|--------------|
| ६८-श्रीसीता-राम-संवाद | ... ३६२-३६८ | ९२-भरद्वाजद्वारा भरतका सत्कार | ... ४६७-४६९ |
| ६९-श्रीराम-कौसल्या-सीता-संवाद | ... ३६९ | ९३-इन्द्र-बृहस्पति-संवाद | ... ४७०-४७२ |
| ७०-श्रीराम-लक्ष्मण-संवाद | ... ३७०-३७२ | ९४-भरतजी चित्रकूटके मार्गमें | ... ४७२-४७६ |
| ७१-श्रीलक्ष्मण-सुमित्रा-संवाद | ... ३७२-३७३ | ९५-श्रीसीताजीका स्वम, श्रीरामजीको कोल-किरातोंद्वारा भरतजीके आगमनकी सूचना, रामजीका शोक, लक्ष्मणजीका क्रोध | ... ४७६-४८० |
| ७२-श्रीरामजी, लक्ष्मणजी, सीताजीका महाराजा दशरथके पास विदा माँगने जाना, दशरथजीका सीताजीको समझाना | ३७४-३७६ | ९६-श्रीरामजीका लक्ष्मणजीको समझाना एवं भरतजीकी महिमा कहना | ... ४८० |
| ७३-श्रीराम-सीता-लक्ष्मणका वन-गमन और नगर-निवासियोंको सोये छोड़कर आगे बढ़ना | ... ३७६-३८० | ९७-भरतजीका मन्दाकिनीखान, चित्रकूटमें पहुँचना, भरतादि सबका परस्पर मिलाप, पिताका शोक और श्राद्ध | ... ४८१-४९२ |
| ७४-श्रीरामका शृंगवेरपुर पहुँचना, निषादके द्वारा सेवा | ... ३८१-३८३ | ९८-वनवासियोंद्वारा भरतजीकी मण्डलीका सत्कार, कैकेयीका पश्चात्ताप | ... ४९३-४९५ |
| ७५-लक्ष्मण-निषाद-संवाद, श्रीराम-सीतासे सुमंतका संवाद, सुमंतका लौटना | ... ३८३-३९० | ९९-श्रीवशिष्ठजीका भाषण | ... ४९६-४९९ |
| ७६-केवटका प्रेम और गंगा पार जाना | ... ३९०-३९३ | १००-श्रीराम-भरतादिका संवाद | ... ४९९-५०६ |
| ७७-प्रयाग पहुँचना, भरद्वाज-संवाद, यमुना-तीरनिवासियोंका प्रेम | ... ३९४-३९७ | १०१-जनकजीका पहुँचना, कोल-किरातादिकी भेंट, सबका परस्पर मिलाप | ... ५०६-५१४ |
| ७८-तापस-प्रकरण | ... ३९७-३९८ | १०२-कौसल्या-सुनयना-संवाद, श्रीसीताजीका शील | ... ५१४-५१८ |
| ७९-यमुनाको प्रणाम, वनवासियोंका प्रेम | ... ३९८-४०७ | १०३-जनक-सुनयना-संवाद, भरतजीकी महिमा | ... ५१९-५२० |
| ८०-श्रीराम-वाल्मीकि-संवाद | ... ४०७-४१३ | १०४-जनक-वशिष्ठादि-संवाद, इन्द्रकी चिन्ता, सरस्वतीका इन्द्रको समझाना | ... ५२०-५२४ |
| ८१-चित्रकूटमें निवास, कोल-भीलोंके द्वारा सेवा | ... ४१३-४१९ | १०५-श्रीराम-भरत-संवाद | ... ५२५-५३३ |
| ८२-सुमंतका अयोध्याको लौटना और सर्वत्र शोक देखना | ... ४१९-४२३ | १०६-भरतजीका तीर्थ-जल-स्थापन तथा चित्रकूट-भ्रमण | ... ५३४-५३६ |
| ८३-दशरथ-सुमंत-संवाद, दशरथ-मरण | ... ४२४-४२८ | १०७-श्रीराम-भरत-संवाद, पादुकाप्रदान, भरतजीकी विदाई | ... ५३७-५४१ |
| ८४-सुनि वशिष्ठका भरतजीको बुलानेके लिये दूत भेजना | ... ४२९ | १०८-भरतजीका अयोध्या लौटना, भरतजी-द्वारा पादुकाकी स्थापना, नन्दियाममें निवास और श्रीभरतजीके चरित्र-भ्रमणकी महिमा | ... ५४१-५४५ |
| ८५-श्रीभरत-शत्रुघ्नका आगमन, और शोक | ४३०-४३३ | | |
| ८६-भरत-कौसल्या-संवाद और दशरथजीकी अन्त्येष्टि-क्रिया | ... ४३४-४३८ | | |
| ८७-वशिष्ठ-भरत-संवाद, श्रीरामजीको लानेके लिये चित्रकूट जानेकी तैयारी | ... ४३९-४४८ | | |
| ८८-अयोध्यावासियोंसहित श्रीभरत-शत्रुघ्न आदिका वन-गमन | ... ४४९-४५० | | |
| ८९-निषादकी शंका और सावधानी | ... ४५०-४५२ | | |
| ९०-भरत-निषाद-मिलन और संवाद, और भरतजीका तथा नगरवासियोंका प्रेम | ... ४५३-४५९ | | |
| ९१-भरतजीका प्रयाग जाना और भरत-भरद्वाज-संवाद | ... ४६०-४६७ | | |

अरण्यकाण्ड

| | |
|---------------------------------------|-------------|
| १०९-संगलाचरण | ... ५४६ |
| ११०-जयंतकी कुटिलता और फलप्राप्ति | ... ५४७-५४८ |
| १११-अत्रि-मिलन एवं स्तुति | ... ५४८-५४९ |
| ११२-श्रीसीता-अनसूया-मिलन और श्रीसीता- | |

| | पृष्ठ-संख्या |
|--|--------------|
| जीर्को अनसूयाजीका पातिव्रतधर्म कहना ... | ५५०-५५२ |
| ११३-श्रीरामजीका आगे प्रस्थान, विराघ-वध, और शरभंग-प्रसंग ... | ५५३-५५४ |
| ११४-राक्षस-वधकी प्रतिज्ञा करना ... | ५५५ |
| ११५-सुतीक्ष्णजीका प्रेम, अगस्त्य-मिलन, अगस्त्य-संवाद, रामका दण्डक-वन-प्रवेश और जटायु-मिलाप ... | ५५५-५६१ |
| ११६-पञ्चवटी-निवास और श्रीराम-लक्ष्मण-संवाद ... | ५६१-५६४ |
| ११७-शूर्पणखाकी कथा, शूर्पणखाका खरदूषणके पास जाना और खरदूषणा-दिका वध ... | ५६४-५६९ |
| ११८-शूर्पणखाका रावणके निकट जाना, श्रीसीताजीका अग्नि-प्रवेश और माया-सीता ... | ५७०-५७३ |
| ११९-मारीचप्रसंग और स्वर्णमृगरूपमें मारीचका मारा जाना ... | ५७३-५७५ |
| १२०-श्रीसीताहरण और श्रीसीताविलाप ... | ५७६-५७७ |
| १२१-जटायु-रावण-युद्ध ... | ५७८ |
| १२२-श्रीरामजीका विलाप, जटायुका प्रसंग ... | ५७८-५८२ |
| १२३-कबन्ध-उद्धार ... | ५८२-५८३ |
| १२४-शबरीपर कृपा, नवधा-भक्ति-उपदेश, और पंपासरकी ओर प्रस्थान ... | ५८३-५८६ |
| १२५-वसंत-ऋतु-वर्णन, नारद-राम-मिलाप ... | ५८६-५८९ |
| १२६-नारद-राम-संवाद ... | ५८९-५९३ |
| १२७-श्रीरामगुणगानश्रवणकी महिमा और सत्संग-भजनके लिये प्रेरणा ... | ५९४ |

किष्किन्धाकाण्ड

| | |
|--|---------|
| १२८-मंगलाचरण ... | ५९५ |
| १२९-श्रीरामजीसे हनुमान्जीका मिलना और श्रीराम-सुग्रीवकी मित्रता ... | ५९६-५९८ |
| १३०-सुग्रीवका दुःख सुनाना, बालिवधकी प्रतिज्ञा, श्रीरामजीका मित्र-लक्षण-वर्णन ... | ५९९-६०१ |
| १३१-सुग्रीवका वैराग्य ... | ६०१ |
| १३२-बालि-सुग्रीव-युद्ध, बालि-उद्धार ... | ६०२-६०४ |
| १३३-ताराका विलाप, ताराको श्रीरामजीद्वारा उपदेश और सुग्रीवका राज्याभिषेक, | |

| | |
|---|---------|
| तथा अङ्गदको युवराजपद ... | ६०५ |
| १३४-वर्षा-ऋतु-वर्णन ... | ६०६-६०९ |
| १३५-श्रीरामकी सुग्रीवपर नाराजी, लक्ष्मणजी-का कोप ... | ६१०-६१२ |
| १३६-सुग्रीव-राम-संवाद और सीताजीकी खोज-के लिये बंदरोंका प्रस्थान ... | ६१२-६१४ |
| १३७-गुफामें तपस्विनीके दर्शन ... | ६१५ |
| १३८-वानरोंका समुद्रतटपर आना, संपातीसे भेंट और बातचीत ... | ६१५-६१८ |
| १३९-समुद्र लंघनेका परामर्श, जाम्बवन्तका हनुमान्जीको बल याद दिलाकर उत्साहित करना ... | ६१८-६१९ |
| १४०-श्रीरामगुणका माहात्म्य ... | ६२० |

सुन्दरकाण्ड

| | |
|--|---------|
| १४१-मंगलाचरण ... | ६२१ |
| १४२-हनुमान्जीका लंकाको प्रस्थान, सुरसासे भेंट, छाया पकड़नेवाली राक्षसीका वध ... | ६२२-६२३ |
| १४३-लंकावर्णन, लंकिनी-वध, लंकामें प्रवेश ... | ६२४-६२५ |
| १४४-लंका-शोभा-वर्णन ... | ६२६ |
| १४५-हनुमान्-बिभीषण-संवाद ... | ६२६-६२७ |
| १४६-हनुमान्जीका अशोक-वाटिकामें सीता-को देखकर दुखी होना और गवणका सीताजीको भय दिखलाना ... | ६२८-६२९ |
| १४७-श्रीसीता-त्रिजटा संवाद ... | ६२९-६३० |
| १४८-श्रीसीता-हनुमान्-संवाद ... | ६३१-६३४ |
| १४९-हनुमान्जीद्वारा अशोकवाटिका-विध्वंस, अक्षयकुमार-वध और मेघनाद-का हनुमान्जीको नागपाशमें बाँधकर सभामें ले जाना ... | ६३५-६३६ |
| १५०-हनुमान्-रावण-संवाद ... | ६३७-६३९ |
| १५१-लंका-दहन ... | ६४०-६४१ |
| १५२-लंका जलनेके बाद हनुमान्जीका सीताजीसे विदा माँगना और चूड़ामणि पाना ... | ६४१ |
| १५३-समुद्रके इस पार आकर सबका लौटना, मधुवन-प्रवेश, सुग्रीव-मिलन, श्रीराम-हनुमान्-संवाद ... | ६४१-६४५ |

| | | |
|--|-----|---------|
| १५४-श्रीरामजीका वानरोंकी सेनाके साथ चल- कर समुद्र-तटपर पहुँचना | ... | ६४६-६४७ |
| १५५-मंदोदरी-रावण-संवाद | ... | ६४७-६४८ |
| १५६-रावणको विभीषणका समझाना और विभीषणका अपमान | ... | ६४९-६५१ |
| १५७-विभीषणका भगवान् श्रीरामजीकी शरणके लिये प्रस्थान और शरण- प्राप्ति | ... | ६५२-६५७ |
| १५८-समुद्र पार करनेके लिये विचार, रावण- दूत शुकका आना और लक्ष्मणजीके पत्रको लेकर लौटना | ... | ६५८-६५९ |
| १५९-दूतका रावणको समझाना और लक्ष्मण- जीका पत्र देना | ... | ६५९-६६२ |
| १६०-समुद्रपर श्रीरामजीका क्रोध और समुद्रकी विनती | ... | ६६३-६६४ |
| १६१-श्रीरामगुणगानकी महिमा | ... | ६६५ |

लंकाकाण्ड

| | | |
|--|-----|---------|
| १६२-मंगलाचरण | ... | ६६६ |
| १६३-नल-नीलद्वारा पुल बाँधना, श्रीरामजी- द्वारा श्रीरामेश्वरकी स्थापना | ... | ६६७-६६९ |
| १६४-श्रीरामजीका मेनासहित समुद्र पार उतरना, सुबेल पर्वतपर निवास, रावणकी व्याकुलता | ... | ६७०-६७१ |
| १६५-रावणको मंदोदरीका समझाना, रावण- प्रहस्त-संवाद | ... | ६७१-६७४ |
| १६६-सुबेलपर श्रीरामजीकी झाँकी और चन्द्रोदयवर्णन | ... | ६७४-६७६ |
| १६७-श्रीरामजीके बाणसे रावणके मुकुट- छत्रादिका गिरना | ... | ६७६ |
| १६८-मंदोदरीका फिर रावणको समझाना और श्रीरामकी महिमा कहना | ... | ६७७-६७८ |
| १६९-अंगदजीका लंका जाना और रावणकी सभामें अंगद-रावण-संवाद | ... | ६७९-६९४ |
| १७०-रावणको पुनः मंदोदरीका समझाना | ... | ६९४-६९६ |
| १७१-अंगद-राम-संवाद, युद्धारम्भ | ... | ६९६-७०३ |
| १७२-माल्यवान्का रावणको समझाना | ... | ७०३-७०४ |
| १७३-युद्धारम्भ, लक्ष्मण-मेघनाद-युद्ध, लक्ष्मणजीको शक्ति लगना | ... | ७०४-७०८ |

| | |
|--|---------|
| १७४-हनुमान्जीका सुषेण वैद्यको लाना एवं संजीवनीके लिये जाना, कालनेमि-रावण- संवाद, मकरी-उद्धार, कालनेमि-उद्धार | ७०९-७१० |
| १७५-भरतजीके बाणसे हनुमान्का मूर्छित होना, भरत-हनुमान्-संवाद | ७११-७१२ |
| १७६-श्रीरामजीकी प्रलापलीला, हनुमान्जी- का लौटना, लक्ष्मणजीका उठ बैठना | ७१२-७१४ |
| १७७-रावणका कुम्भकर्णको जगाना, कुम्भकर्ण- का रावणको उपदेश और विभीषण- कुम्भकर्ण-संवाद | ७१४-७१५ |
| १७८-कुम्भकर्ण-युद्ध और उसकी परमगति | ७१५-७२१ |
| १७९-मेघनादका युद्ध, रामजीका लीलासे नागपाशमें बँधाना | ७२२-७२३ |
| १८०-मेघनाद-यज्ञ-विध्वंस, युद्ध और मेघनाद- उद्धार | ७२३-७२६ |
| १८१-रावणका युद्धके लिये प्रस्थान और श्रीरामजीका विजय-रथ तथा वानर- राक्षसोंका युद्ध | ७२७-७३१ |
| १८२-लक्ष्मण-रावण-युद्ध | ७३२-७३३ |
| १८३-रावण-मूर्छा, रावण-यज्ञ-विध्वंस, राम- रावण-युद्ध | ७३३-७३७ |
| १८४-इन्द्रका श्रीरामजीके लिये रथ भेजना, राम-रावण-युद्ध | ७३७-७४२ |
| १८५-रावणका विभीषणपर शक्ति छोड़ना, रामजीका शक्तिको अपने ऊपर लेना, विभीषण-रावण-युद्ध | ७४२-७४३ |
| १८६-रावण-हनुमान्-युद्ध, रावणका माया रचना, रामजीद्वारा माया-नाश | ७४३-७४५ |
| १८७-घोर युद्ध, रावणकी मूर्छा | ७४५-७४७ |
| १८८-त्रिजटा-सीता-संवाद | ७४७-७४८ |
| १८९-राम-रावण-युद्ध, रावण-वध, सर्वत्र जयध्वनि | ७४९-७५३ |
| १९०-मंदोदरी-विलाप, रावणकी अन्त्येष्टि-क्रिया | ७५३-७५५ |
| १९१-विभीषणका राज्याभिषेक | ७५५ |
| १९२-हनुमान्जीका सीताजीको कुशल सुनाना, सीताजीका आगमन और अग्नि-परीक्षा | ७५६-७५८ |
| १९३-देवताओंकी स्तुति, इन्द्रकी अमृत-वर्षा | ७५९-७६५ |
| १९४-विभीषणकी प्रार्थना, श्रीरामजीके द्वारा | |

| | |
|--|---------|
| भरतजीकी प्रेमदशाका वर्णन, शीघ्र अयोध्या पहुँचानेका अनुरोध ... | ७६५-७६६ |
| १९५-विभीषणका वस्त्राभूषण बरसाना और वानर-मालुओंका उन्हें पहनना ... | ७६७ |
| १९६-पुष्पकविमानपर चढ़कर श्रीसीताराम- जीका अवधके लिये प्रस्थान ... | ७६८-७७० |
| १९७-श्रीरामचरित्रकी महिमा ... | ७७१ |

उत्तरकाण्ड

| | |
|--|---------|
| १९८-मंगलाचरण ... | ७७२ |
| १९९-भरत-विरह तथा भरत-हनुमान्-मिलन, अयोध्यामें आनन्द ... | ७७३-७७६ |
| २००-श्रीरामजीका स्वागत, भरतमिलाप, सबका मिलनानन्द ... | ७७७-७८३ |
| २०१-रामराज्याभिषेक, वेदस्तुति, शिवस्तुति | ७८४-७८८ |
| २०२-वानरोंकी और निपादकी विदाई ... | ७८९-७९२ |
| २०३-रामराज्यका वर्णन ... | ७९२-७९५ |
| २०४-पुत्रोत्पत्ति, अयोध्याजीकी रमणीयता, सनकादिका आगमन और संवाद ... | ७९६-८०४ |
| २०५-हनुमान्जीके द्वारा भरतजीका प्रश्न और श्रीरामजीका उपदेश ... | ८०४-८०८ |
| २०६-श्रीरामजीका प्रजाको उपदेश (श्रीराम- गीता), पुरवासियोंकी कृतज्ञता ... | ८०९-८१२ |
| २०७-श्रीराम-वशिष्ठ-संवाद, श्रीरामजीका माह्योसहित अमराईमें जाना ... | ८१२-८१४ |
| २०८-नारदजीका आना और स्तुति करके ब्रह्मलोकको लौट जाना ... | ८१४-८१५ |
| २०९-शिव-पार्वती-संवाद, गरुड़-मोह, गरुड़- जीका काकभुशुण्डिसे राम-कथा और राम-महिमा सुनना ... | ८१५-८३२ |
| २१०-काकभुशुण्डिका अपनी पूर्वजन्मकथा और कलि-महिमा कहना ... | ८३२-८५५ |
| २११-गरुड़की अपमान एवं शिवजीके शाप- की बात सुनाना ... | ८५६-८५७ |
| २१२-रुद्राष्टक ... | ८५८-८५९ |
| २१३-गरुड़की शिवजीसे अपराध-क्षमापन, शापानुग्रह और काकभुशुण्डिकी आगे- की कथा ... | ८५९-८६१ |

| | |
|--|---------|
| २१४-काकभुशुण्डिजीका लोमशजीके पास जाना और शाप तथा अनुग्रह पाना ... | ८६२-८६८ |
| २१५-ज्ञान-भक्ति-निरूपण, ज्ञानदीपक और भक्तिकी महान् महिमा ... | ८६९-८७५ |
| २१६-गरुड़जीके सात प्रश्न तथा काकभुशुण्डिके उत्तर ... | ८७५-८७८ |
| २१७-भजन-महिमा ... | ८७९ |
| २१८-रामायण-माहात्म्य, तुलसी-विनय और फलस्तुति ... | ८८०-८८७ |
| २१९-रामायणजीकी आरती ... | ८८८ |

श्रीरामचरितमानस समाप्त

| | |
|--|-----|
| १९-रामायण सर्वप्रिय पुस्तक है (श्रीयुत प्रो० श्यामाचरण दे, एम० ए०, प्रिंसिपल, काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय) ... | ८८९ |
| २०-तुलसीदासजीका अमर काव्य (श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि सम्पादक 'लीडर') ... | ८८९ |
| २१-रामायण मानवमात्रकी वाइबिल है (श्रीयुत वी० एन० मेहता, आई० सी० एस०) ... | ८८९ |
| २२-रामायण बहुत प्रिय है (महाराजाधिराज सर बिजयचन्द महताव बहादुर, बर्दवान) | ८८९ |
| २३-तुलसीदासजी के अमर वचन (श्रीकाका कालेटकरजी) ... | ८९० |
| २४-रामायणसे आध्यात्मिक उत्थान (श्रीयुत डा० बी० पट्टाभि सीतागमय्या) ... | ८९० |
| २५-मानस हिन्दी साहित्यका खजाना है (श्री- किशोरलाल घ० मगरूवाला) ... | ८९१ |
| २६-'वीणामधुर' (श्रीगंगाधर बालकृष्ण देशपाण्डे) ... | ८९१ |
| २७-मानससे जीवन-रसका सञ्चार (डा० श्री- मंगलदेवजी शास्त्री, एम० ए०, डी०फिल०, प्रिंसिपल, गवर्नमेन्ट संस्कृत कॉलेज, बनारस) | ८९२ |
| २८-मधुर संगीत-लहरी (श्रीनरसिंह चिन्तामणि केळकर) ... | ८९२ |
| २९-रामायण हमारा मजीवन अमृत है (श्रीयुत एस० सत्यमूर्ति, एम० एल० ए०) ... | ८९२ |
| ३०-मानस— राष्ट्रकी महानिधि (परमहंस बाबा श्रीरायदासजी) ... | ८९३ |
| ३१-रामायणसे शान्ति (श्रीयुत जयरामदास दौलतराम) ... | ८९३ |

| | |
|---|-----|
| ३२-मानसके प्रचारकी आवश्यकता (श्रीयुत सतीशचन्द्र दास गुप्त, खादी प्रतिष्ठान) ... | ८९३ |
| ३३-रामायणसे आर्यसंस्कृतिकी रक्षा (श्रीयुत सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला) ... | ८९३ |
| ३४-मानस भक्तिभावका समुद्र ही है (श्रीयुत बाबू शिवप्रसादजी गुप्त) ... | ८९४ |
| ३५-मानसमें पुरुषोत्तम राम (स्वामी श्रीपुरुषोत्तमानन्दजी अवधूत) ... | ८९५ |
| ३६-श्रीरामार्चविधि और माहात्म्य ... | ८९८ |
| ३७-मानसके प्राचीन टीकाकार (महात्मा श्रीअंजनीनन्दनशरणजी) ... | ९०८ |

मानसांक खण्ड २

| | |
|---|-----|
| ३८-श्रीरामचरितमानसका दार्शनिक सिद्धान्त (श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामीजी श्रीएकरसानन्दजी सरस्वती) ... | ९३१ |
| ३९-श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामनामकी महिमा (स्वामी श्रीशिवानन्दजी सरस्वती) ... | ९३३ |
| ४०-मानसमें पवित्र चरित्र (महामहोपाध्याय डा० श्रीगंगानाथजी झा, एम० ए०, एल-एल० डी०, डी-लिट०) ... | ९३६ |
| ४१-गोस्वामी तुलसीदासजीका सिद्धान्त (स्वामीजी श्रीरामदेवजी महाराज) ... | ९३७ |
| ४२-श्रीरामचरितमानसमें विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त (श्रीस्वामिरामवल्लभाशरण (जी) महाराजस्याश्रित वेदान्ती श्रीरामपदार्थदासजी) ... | ९४२ |
| ४३-श्रीमानसमें नाम-गुण-महिमा (बाबा श्रीरामदासजी महाराज) ... | ९५१ |
| ४४-श्रीमानसगत रामगीता (पं० श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी) ... | ९५२ |
| ४५-'मानस'की धर्म-भूमि (आचार्य पं० श्रीरामचन्द्रजी शुक्ल) ... | ९६० |
| ४६-पूज्यपाद गोस्वामीजीका अभिमत सिद्धान्त (सेठ श्रीकन्हैयालालजी पोद्दार) ... | ९६३ |
| ४७-गोस्वामीजीका काव्यसौन्दर्य (आचार्य श्रीश्यामसुन्दरदासजी बी० ए०) ... | ९६८ |
| ४८-श्रीरामचरितमानसका दार्शनिक सिद्धान्त (साहित्यरत्न पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी) ... | ९७४ |

मा० अ०—(ख)

| | |
|--|------|
| ४९-रामचरितमानसके सिद्धान्त, साधन और साध्य (पं० श्रीकेशवप्रसादजी मिश्र) ... | ९७७ |
| ५०-मानस (महात्मा श्रीबालकरामजी विनायक) ... | ९७९ |
| ५१-मानसके समस्त पात्रोंमें राम-भक्तिकी व्याप्ति (पं० श्रीरामबहोरीजी शुक्ल, एम० ए०) ... | ९८१ |
| ५२-भाव-साम्य-मीमांसा (श्रीविन्दु ब्रह्मचारीजी) ... | ९८७ |
| ५३-उपदेशामृत (पं० श्रीजीवनशंकरजी याज्ञिक एम० ए०, एल-एल० बी०) ... | ९९३ |
| ५४-गोस्वामीजीके अलंकारविधानमें धर्मनीति (डा० श्रीपीताम्बरदत्तजी बड़वाल, एम० ए०, एल-एल० बी०, डी-लिट०) ... | ९९५ |
| ५५-गोस्वामीजीकी सावधानता (पं० श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदी) ... | ९९७ |
| ५६-गोस्वामीजीके चरित्र-चित्रणकी विशेषता (श्रीभगवानदासजी हालना) ... | १००० |
| ५७-'मानस'में बालिवध (पं० श्रीचन्द्रबालीजी पाण्डेय, एम० ए०) ... | १००५ |
| ५८-बालमीकी तुलसी भये (डा० भगवानदासजी एम० ए०, डी-लिट०) ... | १००८ |
| ५९-'मानस'के संवाद (पं० श्रीविश्वनाथप्रसादजी मिश्र, एम० ए०) ... | १०११ |
| ६०-'मानस'की महत्ता (पं० श्रीवलदेवजी उपाध्याय, एम० ए०, साहित्याचार्य) ... | १०१५ |
| ६१-विश्वसाहित्यमें रामचरितमानसका स्थान (श्रीराजबहादुरजी लमगोड़ा, एम० ए०, एल-एल० बी०) ... | १०१९ |
| ६२-श्रीमानसमें शरणागतवत्सलता (पं० श्रीहरिवंशजी जोशी, काव्य-सांख्य-स्मृति-तीर्थ, सम्पादक 'जीवनविज्ञान') ... | १०२७ |
| ६३-'मानस'के लक्ष्मण (प्रो० श्रीलौट्टसिंहजी गौतम, एम० ए०, एल० टी०, काव्यतीर्थ, एम० आर० ए० एस०) ... | १०३० |

तीसरा खण्ड

| | |
|--|------|
| ६४-श्रीरामचरितमानसमें नारीजाति (श्री'शान्त') ... | १०३५ |
| ६५-तुलसीदासजीका महान् उपकार (पं० श्रीरामनरेशजी त्रिपाठी) ... | १०४१ |

| | |
|---|------|
| ६६-श्रीरामचरितमानस—भारतीय साहित्यका एकमात्र महाकाव्य (श्री ए० बी० पुरानी, श्रीअरविन्दाश्रम) ... | १०४४ |
| ६७-रामचरितमानसकी कुछ विशेषताएँ (माननीय डा० सर सीतारामजी एम० ए०, एल०-एल० बी०) ... | १०४७ |
| ६८-रामायणके रीछ-वानर और रावण (न्यायवागीश लाला श्रीडोरीलालजी) ... | १०५० |
| ६९-रामचरितमानसमें धर्म और अधर्म (पं० श्रीदामोदरजी उपाध्याय वैद्य) ... | १०५५ |
| ७०-रामायण और उसका हिन्दू-संस्कृतिपर प्रभाव (डा० सुहृद्द हाफिज़ सय्यद, एम० ए०, पी०-एच० डी०, डी०-लिट०) ... | १०५६ |
| ७१-राम-कृष्ण (रायसाहब श्रीकृष्णलालजी बाफणा) ... | १०५७ |
| ७२-रामचरितमानस और राष्ट्र-निर्माण (श्रीयुक्त भगवानदामजी केला) ... | १०५८ |
| ७३-मानसका आदर्श दाम्पत्यप्रेम (पं० श्रीधर्मदेवजी शास्त्री, दर्शनकेसरी, दर्शनभूषण, सांख्य-योग-वेदान्त-न्याय-तीर्थ) ... | १०५९ |
| ७४-तुलसी (कविवर श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त) ... | १०६० |
| ७५-श्रीरामचरितमानस सच्चा इतिहास है ... | १०६१ |
| ७६-श्रीदशरथजीके चरित्रसे शिक्षा (श्रीप्रियालालजी गुप्त) ... | १०६२ |
| ७७-तुलसी-मानस सच्चा विश्वविद्यालय है (श्रीजानकीप्रसादजी गुप्त) ... | १०६६ |
| ७८-मानस परिपूर्ण मानवताका चित्र है (श्रीरामनाथजी 'सुमन') ... | १०६८ |

| | |
|---|------|
| ७९-भिखारीकी भेट (लाला श्रीखुदाहालचन्दजी खुरशन्द सत्बाधिकारी 'मिलाप') ... | १०७० |
| ८०-'मानस'-प्रणयनका प्रारम्भ किस दिन हुआ ? (श्रीमाताप्रसादजी गुप्त, एम० ए०, एल०-एल० बी०) ... | १०७२ |
| ८१-श्रीरामका स्वरूप और उनकी प्रसन्नताका साधन (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ... | १०७४ |
| ८२-श्रीगोस्वामीजीका मिद्धान्तसार (रायबहादुर साहित्याचार्य श्रीजगन्नाथप्रसादजी 'भानु') ... | १०८५ |
| ८३-श्रीरामचरितमानस (श्रीताराचन्द्रजी पांड्या बी० ए०) ... | १०८७ |
| ८४-मानसकी एक दिव्य झोंकी (पं० श्रीराम-निवासजी शर्मा 'सौरभ') ... | १०८८ |
| ८५-रामचरितमानस (पं० श्रीनरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ) ... | १०९१ |
| ८६-सचित्र रामचरितमानस (राय श्रीकृष्णदासजी) ... | १०९२ |
| ८७-मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके गुण और चरित्र (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ... | १०९५ |
| ८८-मानस मन्त्रमय है ... | ११०६ |
| ८९-शंका-समाधान ... | ११०७ |
| ९०-मानस-पारायण (श्रीप्रेमनारायणजी त्रिपाठी 'प्रेम') ... | १११४ |
| ९१-श्रीरामचरितमानसानुसार सत्य क्या है ? (श्रीप्रेमप्रकाशजी महाराज) ... | १११५ |
| ९२-एक मनोहर झोंकी (एक भक्त) ... | १११६ |
| ९३-महापुरुष, महाकवि (रे० एड्विन् ग्रीन्ज़) ... | १११८ |
| ९४-तुलसीका सुन्दरकाण्ड ... | ११२० |
| ९५-क्षमा-प्रार्थना (सम्पादक) ... | ११२१ |

पद्य-सूची (तीनों खंडोंकी)

| | |
|--|-----|
| १-तुलसी-वंदना (संग्रहीत) ... | १ |
| २-तुलसी और तुलसीकी राम-कथा (संग्रहीत) ... | २ |
| ३-'जो पै तुलसी न गावतो' (संग्रहीत) ... | ५६ |
| ४-रामसे विनती (श्रीमती 'सुदर्शनदासीजी') ... | ८९ |
| ५-मानस-महिमा (पं० श्रीभगवतीप्रसादजी त्रिपाठी एम० ए०, एल०-एल० बी० 'काव्यतीर्थ') ... | ९२८ |
| ६-चारो भैया (तुलसीदासजी) ... | ९२९ |
| ७-तुलसीदास (कविवर श्रीमैथिलीशरणजी | |

| | |
|---|-----|
| गुप्त) ... | ९३० |
| ८-पुष्पाञ्जलि (पं० श्रीअयोध्यामिहजी उपाध्याय 'हरिऔध') ... | ९३१ |
| ९-तुलसीकी कविता (, ,) ... | ९३६ |
| १०-स्वरूपकी पहचान (तुलसीदासजी) ... | ९४१ |
| ११-मानस (श्रीजगदीशजी झा 'विमल') ... | ९५० |
| १२-मानस-महिमा (श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम') ... | ९५० |

| | | |
|---|-----|------|
| १३-शक्ति-शरण (पु० श्रीप्रतापनारायणजी 'कविरत्न') | ... | ९८६ |
| १४-मेरे राम (राय साहेब लाला लालचन्द्रजी) | ... | १००७ |
| १५-महाराज (तुलसीदासजी) | ... | १०३३ |

| | | |
|--|-----|------|
| १६-'रामचरितमानस कवि तुलसी' ('श्रीविन्दु' ब्रह्मचारीजी) | ... | १०३४ |
| १७-हमारी रति (कविवर श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त) | ... | १०८५ |
| १८-'श्रीतुलसी-गुण-गान' (पं० श्रीगोकुलानन्दजी तैलंग) | ... | ११०६ |

चित्र-सूची

सुनहरे

| | |
|--|-----|
| १-भगवान् श्रीरामचन्द्रजी (श्रीरामप्रसादजी) | १ |
| २-दशरथके भाग्य (") | १७ |
| ३-शिशुलीला-१ (") | ३३ |
| ४-श्रीराम-दरबार (") | ५७ |
| ५-शिशुलीला-३ (") | २०५ |
| ६-श्रीभरतजी (") | ३२३ |
| ७-श्रीहनुमान्जी (श्रीराममहाय, अलवर) | ६२१ |
| ८-परात्परब्रह्म राम (") | ६६६ |
| ९-शुगल सरकार (प्राचीन) | ९०० |

बहुरंगे

| | | |
|--|-----|----------------|
| १०-तुलसीदासजी श्रीराम-सीता-लक्ष्मणके ध्यानमें (श्रीकृ. देसाई) | ... | ऊपरका मुखपृष्ठ |
| ११-सिंहासनासीन श्रीसीतारामजी (श्रीजगन्नाथ) | ... | मुखपृष्ठ |
| १२-गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज (श्री-विनयकुमार मित्र) | ... | २४ |
| १३-शिवजीकी बरात (मास्टर रामप्रसाद मरयूप्रसाद जयपुर) | ... | १३१ |
| १४-शिशु-लीला-२ (श्रीब्रजेन्द्र) | ... | १४५ |
| १५-शिव-पार्वती (श्रीविनयकुमार मित्र) | ... | १४६ |
| १६-मनु-शतरूपा पर कृपा (श्रीविनयकुमार मित्र) | ... | १६० |
| १७-अग्निका चरुदान (श्रीजगन्नाथ) | ... | १९८ |
| १८-जन्मोत्सव (प्राचीन) (पं० हनुमान शर्माजीकी कृपासे प्राप्त) | ... | २०३ |
| १९-ताड़का-उद्धार (श्रीविनयकुमार मित्र) | ... | २१३ |
| २०-जनकपुरमें राम-लक्ष्मण (श्रीजगन्नाथ) | ... | २२१ |
| २१-देवीपूजन (श्रीभवानीप्रसाद मित्तल) | ... | २२६ |

| | | |
|---|-----|-----|
| २२-प्रथम दर्शन (श्रीजगन्नाथ) | ... | २२९ |
| २३-जनकजीके द्वारपर (प्राचीन) (पं० हनुमान शर्माजीकी कृपासे प्राप्त) | ... | २८७ |
| २४-दूल्हा राम (श्रीविनयकुमार मित्र) | ... | २९८ |
| २५-अयोध्यामें आनन्द (प्राचीन) (पं० हनुमान शर्माजीकी कृपासे प्राप्त) | ... | ३१२ |
| २६-कुबर्गीकी कुशिक्षा (श्रीजगन्नाथ) | ... | ३३८ |
| २७-वनवासियोंका प्रेम (") | ... | ४०० |
| २८-दशरथ-मरण (") | ... | ४२८ |
| २९-भरद्वाज-भरत (श्रीविनयकुमार मित्र) | ... | ४६५ |
| ३०-चित्रकूटमें (") | ... | ५३० |
| ३१-पादुका-दान (श्रीब्रजेन्द्र) | ... | ५३८ |
| ३२-पर्णकूटीके पहरेदार (श्रीरामगोपाल विजयवर्गीय) | ... | ५४१ |
| ३३-जटायुकी स्तुति (श्रीविनयकुमार मित्र) | ... | ५४६ |
| ३४-सीता-हरण (श्रीविनयकुमार मित्र) | ... | ५७७ |
| ३५-जटायुपर प्रेम (श्रीभवानीप्रसाद मित्तल) | ... | ५८० |
| ३६-हनुमान्जीकी प्रार्थना (श्रीविनयकुमार मित्र) | ... | ५९५ |
| ३७-बालि-सुग्रीव-युद्ध (") | ... | ६०३ |
| ३८-लक्ष्मणका उपदेश (") | ... | ६०६ |
| ३९-लक्ष्मणका सुग्रीवपर कोप (") | ... | ६११ |
| ४०-जाम्बवान् और हनुमान्जी (श्रीजगन्नाथ) | ... | ६१९ |
| ४१-सुरसाके मुखमें हनुमान्जी (श्रीविनयकुमार मित्र) | ... | ६२३ |
| ४२-श्रीसीताजी और विजया (श्रीजगन्नाथ) | ... | ६३० |
| ४३-अशोकवाटिका-ध्वंस (श्रीविनयकुमार मित्र) | ... | ६३५ |
| ४४-चूडामणि सौपना (") | ... | ६४३ |
| ४५-रावणकी सभामें अंगद (श्रीजगन्नाथ) | ... | ६९३ |
| ४६-रावण मंदोदरी (श्रीविनयकुमार मित्र) | ... | ६९५ |

| पृष्ठ-संख्या | पृष्ठ-संख्या |
|--|---------------------------------------|
| ४७-मकरी-उद्धार (,,) ... ७१० | ८०-माताका आश्चर्य ... २०७ |
| ४८-मेघनादका यज्ञविध्वंस (श्रीजगन्नाथ) ... ७२५ | ८१-धनुषयज्ञशाला ... २४९ |
| ४९-मन्दोदरीका विलाप (श्रीउपेन्द्रकुमार मित्र) ७५४ | ८२-राजाओंका दर्प चूर्ण ... २४९ |
| ५०-अग्नि-परीक्षा (बहिन शकुन्तला) ... ७५८ | ८३-धनुषकी ओर दृष्टिपात ... २४९ |
| ५१-विभीषणद्वारा वस्त्राभूषणोंकी वर्षा (श्रीव्रजेन्द्र) ७६६ | ८४-धनुषभंग ... २४९ |
| ५२-पुष्पकविमानपर (श्रीजगन्नाथ) ... ७७२ | ८५-रावण-बाणासुर ... २५२ |
| ५३-श्रीरामराज्याभिषेक (श्रीजगन्नाथ) ... ७८४ | ८६-जयमाला ... २५२ |
| ५४-काकभुशुण्डिकी कथा (श्रीविनयकुमार मित्र) ... ८१९ | ८७-परशुरामजीका क्रोध ... २५२ |
| ५५-चारों भैया(श्रीविनयकुमार मित्र)(द्वितीय खण्ड) ९२९ | ८८-परशुरामजीका मोहभंग ... २५२ |
| ५६-बालरूप श्रीरामजी (,,)(तृतीय खण्ड) १०३३ | ८९-माताकी सीख ... ३०६ |
| दुर्गे (सिलहोटा) | |
| ५७-दशरथ और विश्वामित्र (श्रीकनु देसाई) २११ | ९०-तोता-भैनाकी व्याकुलता ... ३०६ |
| ५८-मन्थराकी माया (,,) ... ३३२ | ९१-पिताका स्नेह ... ३०६ |
| ५९-स्वर्णमृग (,,) ... ५७५ | ९२-पिताकी सीख ... ३०६ |
| ६०-लंकादहन (,,) ... ६४० | ९३-श्रीरामजीकी प्रसन्नता ... ३६१ |
| दुर्गे (सुनहरी) | |
| ६१-हनुमान् संजीवनी लाने चले (श्रीजगन्नाथ) ... ७०९ | ९४-कौसल्याकी महानता ... ३६१ |
| ६२-भरतने बाण मारा (,,) ... ७०९ | ९५-वन्कल-वन्त्रादि-दान ... ३६१ |
| ६३-भरत-हनुमान्-मिलन (,,) ... ७११ | ९६-गुरुको प्रणाम ... ३६१ |
| ६४-हनुमान्का लौटना (,,) ... ७११ | ९७-निषादकी भेट ... ३८७ |
| इकरंगे | |
| ६५-रामजीका सतीसे प्रश्न ... १०४ | ९८-पहरेदार लक्ष्मण ... ३८७ |
| ६६-सतीका आश्चर्य ... १०४ | ९९-सुमंत्रको सन्देश ... ३८७ |
| ६७-सतीकी अकुलाहट ... १०४ | १००-धोड़ोंका विग्रह ... ३८७ |
| ६८-शंकरकी समाधि ... १०४ | १०१-केवटके भाग्य ... ३९२ |
| ६९-सतीका क्रोध ... ११२ | १०२-गंगा-पार ... ३९२ |
| ७०-दक्ष-यज्ञ-विध्वंस ... ११२ | १०३-पार्थिव-पूजन ... ३९२ |
| ७१-नारदजीका भविष्य कथन ... ११२ | १०४-गंगाजीसे प्रार्थना ... ३९२ |
| ७२-पार्वती-परीक्षा ... ११२ | १०५-वनवासिनी स्त्रियोंका अचरज ... ४०२ |
| ७३-मायानगरमें नारदजी ... १६१ | १०६-पथिकोंका प्रेम ... ४०२ |
| ७४-नारदजीका मोह ... १६१ | १०७-परिचय-प्रदान ... ४०२ |
| ७५-हरगणोंको शाप ... १६१ | १०८-यात्रामें मर्यादा ... ४०२ |
| ७६-मायामुक्त नारदजी ... १६१ | १०९-ग्रामीणोंका प्रेम ... ४०९ |
| ७७-रामजी पालनेमें ... २०७ | ११०-बाल्मीकिजीके अतिथि ... ४०९ |
| ७८-हृष्टदेवकी पूजा ... २०७ | १११-बाल्मीकिजीसे बातचीत ... ४०९ |
| ७९-नैवेद्य-स्वीकार ... २०७ | ११२-रामजीकी पर्णकुटी ... ४०९ |
| | ११३-पूजका स्वागत ... ४३३ |
| | ११४-भरतका विषाद ... ४३३ |
| | ११५-भरतका असहकार ... ४३३ |
| | ११६-कुबरीको दण्ड ... ४३३ |
| | ११७-भरत-यमुप्रका वन-गमन ... ४४९ |

| | पृष्ठ-संख्या | पृष्ठ-संख्या |
|--|--------------|------------------------------|
| ११८-भरत-निषाद-मिलन | ४४० | १५६-लंकादहन |
| ११९-भरद्वाज-मिलन | ४४० | १५७-बिभीषणपर चरणप्रहार |
| १२०-राम-भरत-मिलन | ४४१ | १५८-बिभीषणका लंका-त्याग |
| १२१-निषादका उत्साह | ४५७ | १५९-शिविरद्वारपर बिभीषण |
| १२२-भरत-निषाद-मिलन | ४५७ | १६०-शरणागत बिभीषण |
| १२३-भरतका प्रेम | ४५७ | १६१-वानर और राक्षसोंका युद्ध |
| १२४-नगरनिवासियोंका प्रेम | ४५७ | १६२-वानरोंकी चढ़ाई |
| १२५-जयन्तकी नीचता | ५४७ | १६३-माल्यवानपर गवणका कौप |
| १२६-जयन्तपर कोप | ५४७ | १६४-मेघनादपर पर्वतप्रहार |
| १२७-भयभीत जयन्त | ५४७ | १६५-नागपाश-बन्धन-लीला |
| १२८-जयन्तपर कृपा | ५४७ | १६६-मेघनादपर त्रिशूलप्रहार |
| १२९-चित्रकूटसे विदा | ५४९ | १६७-रावणपर मुष्टि-प्रहार |
| १३०-अत्रिके आश्रममें | ५४९ | १६८-रणभूमि |
| १३१-अत्रिके अतिथि | ५४९ | १६९-रामके लिपे देव-रथ |
| १३२-अननूयाका प्रेम | ५४९ | १७०-रावणकी माया |
| १३३-सुतीक्ष्णकी प्रेमवात्रा | ५५६ | १७१-आकाशमें मुण्ड और बाहु |
| १३४-सुतीक्ष्णजी रामके ध्यानमें | ५५६ | १७२-शरणागतवत्सलता |
| १३५-सुतीक्ष्णजीके हृदयमें चतुर्भुज रूप | ५५६ | १७३-रावणका पाखण्ड |
| १३६-सुतीक्ष्णजीकी चतुरता | ५५६ | १७४-पाखण्डनाश |
| १३७-शूर्पणखाको दण्ड | ५६५ | १७५-जोगिनियोंका आनन्द |
| १३८-खरके पास पुकार | ५६५ | १७६-रावणवध |
| १३९-गिरिकन्दरामें सीताजी | ५६५ | १७७-अयोध्यामें उत्साह |
| १४०-खरका उद्धार | ५६५ | १७८-आनन्दकी बाढ़ |
| १४१-मारीचके पास रावण | ५७३ | १७९-गुरु-वन्दन |
| १४२-स्वर्णमृगके पीछे | ५७३ | १८०-प्रभुका ऐश्वर्य |
| १४३-सीताविलाप | ५७३ | १८१-माताओंकी वन्दना |
| १४४-श्रीरामका प्रेम | ५७३ | १८२-मंगल-कामना |
| १४५-वानर गुफामें | ६१५ | १८३-राम-सखाओंका गुरु-वन्दन |
| १४६-समुद्रतटपर | ६१७ | १८४-राममखाओंका मातृ-वन्दन |
| १४७-संपातीका विचार | ६१७ | १८५-पार्वतीप्रभ |
| १४८-हनुमान्जीका प्रयाण | ६१७ | १८६-सूकर-आखेट |
| १४९-मैनाका सम्मान | ६२५ | १८७-वशिष्ठ-आश्रम |
| १५०-सुरसाकी प्रसन्नता | ६२५ | १८८-जन्मोत्सव |
| १५१-हनुमान्जीका लघु रूप | ६२५ | १८९-विराट्मूर्ति |
| १५२-लंकिनीका उद्धार | ६२५ | १९०-बाल-विनोद |
| १५३-रावणके दरबारमें | ६३६ | १९१-फुलवारो |
| १५४-पूँछपर तेल-घी | ६३६ | १९२-चन्द्रोदय |
| १५५-पूँछमें आग लगाना | ६३६ | १९३-दुल्हीके सुन्दरकांडसे |

गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तकें

| | | |
|--|---|------|
| १-गीता-शांकरभाष्य, सरल हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ५१९, चित्र ३, मूल्य साधारण जिल्द २॥) कपड़ेकी जिल्द | ... | २॥१) |
| २-गीता-मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषा-टीकासहित, पृष्ठ ५७०, ६६००० छप चुकी, ४ चित्र मूल्य | ... | १॥) |
| ३-गीता-गुजरती टीका, गीता १॥) वालीकी तरह, मोटा टाइट, सचित्र पृष्ठ ५६०, सजिल्द, मूल्य | ... | १॥) |
| ४-गीता-मराठी टीका, गीता १॥) वालीकी तरह, मोटा टाइट, सचित्र, पृष्ठ ५७०, सजिल्द, मूल्य | ... | १॥) |
| ५-गीता-प्रायः सभी विषय १॥) वालीके समान, साइज और टाइट कुछ छोटे, पृष्ठ ४६८, मूल्य ॥३) सजिल्द ॥३) | ... | १॥) |
| ६-गीता-बंगला टीका, प्रायः सभी विषय हिन्दी गीता ॥३) वालीकी तरह, पृष्ठ ५३५, मूल्य | ... | १॥) |
| ७-गीता गुटका-(पाकेट साइज) हमारी १॥) वाली गीताकी ठीक नकल, साइज २२X२९-३२ पेजी, | ... | १॥) |
| पृष्ठ-संख्या ५८८, सजिल्द, मूल्य | ... | १॥) |
| ८-गीता-मोटे टाइट, साधारण भाषा-टीकासहित, पृष्ठ ३१६, मूल्य ॥१), सजिल्द | ... | १॥) |
| ९-गीता-मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र, (२५००० छप चुकी) पृष्ठ १०६, मूल्य १-), सजिल्द | ... | १॥) |
| १०-गीता-भाषा, इसमें श्लोक नहीं हैं। केवल भाषा है, अक्षर मोटे हैं, १ चित्र भी लगा है, मूल्य १), सजिल्द | ... | १॥) |
| ११-गीता-भाषा, गुटका, प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित, २ चित्र, पृष्ठ ४००, मूल्य १), सजिल्द | ... | १॥) |
| १२-गीता-पञ्चरत्न, मूल, सचित्र, मोटे टाइट, पृष्ठ ३२८, सजिल्द, मूल्य | ... | १॥) |
| १३-गीता-साधारण भाषा-टीका, त्यागसे भगवत्प्राप्तिसहित, सचित्र, (४८०००० छप चुकी) पृष्ठ ३५२, मूल्य ॥३) स० ॥३) | ... | १॥) |
| १४-गीता-मूल ताबीजी, साइज २X२॥ इञ्च (७५००० छप चुकी है) पृष्ठ २९६, सजिल्द, मूल्य | ... | १॥) |
| १५-गीता-मूल, विष्णुमहलनामसहित, सचित्र और सजिल्द, १३५९०० छप चुकी है, पृष्ठ १३०, मूल्य | ... | १॥) |
| १६-गीता-७॥X१० इञ्च साइजके दो पन्नामे सम्पूर्ण, मूल्य | ... | १॥) |
| १७-ईशावास्योपनिषद्-हिन्दी अनुवाद शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ ५०, मूल्य | ... | १॥) |
| १८-कैनोपनिषद्-सानुवाद शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १४६, मूल्य | ... | १॥) |
| १९-कठोपनिषद्-सानुवाद शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १७२, मूल्य | ... | १॥) |
| २०-मुण्डकोपनिषद्-सानुवाद शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १३२, मूल्य | ... | १॥) |
| २१-प्रश्नोपनिषद्-सानुवाद शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १३०, मूल्य | ... | १॥) |
| उपरोक्त पाँचो उपनिषद् एक जिल्दमे सजिल्द (उपनिषद्-भाष्य खण्ड १) मूल्य | ... | १॥) |
| २२-माण्डूक्योपनिषद्-सानुवाद शांकरभाष्य एवं गौडपादीय कारिकासहित, सचित्र, पृष्ठ ३००, मूल्य | ... | १॥) |
| २३-तैत्तिरीयोपनिषद् | सचित्र, पृष्ठ २५२, मूल्य | १॥) |
| २४-ऐतरेयोपनिषद् | पृष्ठ १०४, मूल्य | १॥) |
| उपरोक्त तीनों उपनिषद् एक जिल्दमें सजिल्द (उपनिषद्-भाष्य खण्ड २) मूल्य | ... | १॥) |
| २५-छान्दोग्योपनिषद्-(उपनिषद्-भाष्य खण्ड ३) सानुवाद शांकरभाष्यसहित, पृष्ठ-संख्या ९८४, चित्र ९, सजिल्द मूल्य | ... | १॥) |
| २६-श्रीविष्णुपुराण-हिन्दी अनुवादसहित, ८ चित्र, पृष्ठ ५४८, मूल्य साधारण जिल्द २॥) कपड़ेकी जिल्द | ... | १॥) |
| २७-श्रोकृष्णलीलादर्शन-कवीर ७५ सुन्दर-सुन्दर चित्र और उनका परिचय, सजिल्द, मूल्य | ... | १॥) |
| २८-भागवतस्तुति-संग्रह-(सानुवाद, कथाप्रसंग और शब्दकोपसहित) | सजिल्द, मूल्य २॥) | १॥) |
| २९-अध्यात्मरामायण-सातों काण्ड, सम्पूर्ण, मूल और हिन्दी-अनुवादसहित, ८ चित्र, पृष्ठ ४००, मूल्य १॥॥) सजिल्द २) | ... | १॥) |
| ३०-त्रेमयोग-सचित्र, लेखक-श्रीविद्योमी हरिजी, ११००० छप चुकी, मोटा एण्टिक कागज, पृष्ठ ४२०, मूल्य १॥) स० १॥) | ... | १॥) |
| ३१-भक्तियोग-'भक्ति' का सविस्तर वर्णन, ले०-चौधरी श्रीगुनन्दनप्रसादजी, सचित्र, पृष्ठ ७०८, मूल्य | ... | १॥) |
| ३२-श्रीतुकाराम चरित्र-पृष्ठ ६९४, चित्र ९, मूल्य १॥) सजिल्द | ... | १॥) |
| ३३-भागवतरत्न प्रकाश-३ रंगीन, ५ सादे चित्रोंसहित, मोटे अक्षर, सुन्दर छपाई, पृष्ठ ३४०, मूल्य १॥) सजिल्द १॥) | ... | १॥) |
| ३४-चिनय-पत्रिका-गो० तुलसीदासकृत सरल हिन्दी-भाषासहित, अनु०-श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, ६ चित्र, म० १॥) स० १॥) | ... | १॥) |
| ३५-गीतावली- | सरल हिन्दी-अनुवादसहित, अनु०-श्रीमुनिलालजी, ८ चित्र, पृष्ठ ४६०, मूल्य १॥) सजिल्द | १॥) |
| ३६-श्रीकृष्ण-विज्ञान-गीताका मूलसहित हिन्दी-पद्यानुवाद, सचित्र, पृष्ठ २७५, मूल्य १॥) सजिल्द | ... | १॥) |
| ३७-श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड १)-ले०-श्रीप्रसुदत्तजी ब्रह्मचारी, ६ चित्र, पृष्ठ ३६०, मूल्य १॥) सजिल्द १॥) | ... | १॥) |
| ३८- | (खण्ड २)-९ चित्र, ४५० पृष्ठ। पहले खण्डके आगेकी लीलाएँ। मूल्य १॥) सजिल्द १॥) | १॥) |
| ३९- | (खण्ड ३)-११ चित्र, ३८४ पृष्ठ, मूल्य १॥) सजिल्द | १॥) |
| ४०- | (खण्ड ४)-१४ चित्र, २२४ पृष्ठ, मूल्य १॥) सजिल्द | १॥) |

- ४१-श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड ५)-१० चित्र, पृष्ठ २८०, मूल्य ॥१॥ सजिल्द ... १)
- श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली पाँचों भाग-पूरी पुस्तक सजिल्द (दो जिल्दों में) लेनेसे ॥२॥ कम लगता है। अलग-अलग अजिल्द ४॥२॥ सजिल्द ५॥२॥ पाँचों भाग दो जिल्दों में ... ५)
- ४२-मुमुक्षुसर्वस्वसार-भाषाटीकासहित, अनु०-श्रीमुनिलालजी, पृष्ठ ४१४, मूल्य ॥१॥ सजिल्द ... १-)
- ४३-तत्त्व-चिन्तामणि भाग १-सचित्र, लेखक-श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ३५०, एण्टिक कागज, मू० ॥२॥ स० ॥१॥-)
- ४४- " " " " " " " " ४४८, गुटका, प्रचारार्थ मू० ॥२॥ स० ॥२॥-)
- ४५- " भाग २- " " " " ६३२, एण्टिक कागज, मू० ॥३॥ स० ॥२॥-)
- ४६- " " " " " " " " ७५०, गुटका, प्रचारार्थ मू० ॥२॥ स० ॥२॥-)
- ४७- " भाग ३ " " " " ४५०, मूल्य ॥३॥ सजिल्द ॥३॥-)
- ४८- " " " " " " " " ५६०, गुटका, मूल्य ॥२॥ सजिल्द ॥२॥-)
- ४९-पूजाके फूल-श्रीभूपेन्द्रनाथदेव शर्माके अनुभवपूर्ण भावमय लेखोंका संग्रह, सचित्र पृ० ४१४, मू० ... ॥२॥-)
- ५०-श्रीशानेश्वर-चरित्र-सचित्र, महाराष्ट्रके प्रसिद्ध सतकी जीवनी और उपदेश, पृष्ठ ३५६, मूल्य ... ॥२॥-)
- ५१-एकादश स्कन्ध-(श्रीमद्भागवत) सचित्र हिन्दी-टीका सहित, यह स्कन्ध बहुत ही उपदेशपूर्ण है, पृ० ४२०, मू० ॥१॥ म० १)
- ५२-देवर्षि नारद-५ चित्र, पृष्ठ २४०, मू० ॥३॥ स० ... १)
- ५३-घरणागतिरहस्य-सचित्र, पृष्ठ ३६०, मूल्य ... ॥३॥-)
- ५४-श्रीविष्णुमहत्त्वनाम-शांकरभाष्य, हिन्दी-अनुवाद-सहित, सचित्र, पृष्ठ २७५, मूल्य ... ॥२॥-)
- ५५-शतपथ चौपाई-सानुवाद, सचित्र, पृष्ठ ३४०, मू० ॥२॥-)
- ५६-भक्तिमुधाकर-सानुवाद, सचित्र, पृ० २७६, मू० ॥२॥-)
- ५७-आनन्दमार्ग-सचित्र, पृ० ३२४, मूल्य ॥२॥-)
- ५८-कवितावली-गो० तुलसीदासजीकृत, मटीक, ४ चित्र, ॥२॥-)
- ५९-श्रुतिरावली-सचित्र, संग०-श्रीभोलेबाबाजी, मू० ॥२॥-)
- ६०-स्तोत्रलावली-अनुवाद-सहित, ४ चित्र (नये संस्करणमें ७४ पृष्ठ बढ़े हैं) मूल्य ... ॥२॥-)
- ६१-दिनचर्या-सचित्र, पृष्ठ २२२, मूल्य ... ॥२॥-)
- ६२-तुलसीदल-सचित्र, पृष्ठ २९२, मूल्य ॥२॥ सजिल्द ॥३॥-)
- ६३-श्रीएकनाथ-चरित्र-सचित्र, पृष्ठ २४०, मूल्य ॥२॥-)
- ६४-नैवेद्य-ले०-श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृष्ठ ३५०, मू० ॥२॥ सजिल्द ... ॥३॥-)
- ६५-श्रीरामकृष्ण परमहंस-५ चित्र, पृष्ठ २५०, मूल्य ॥३॥-)
- ६६-भक्त भारती-(७चित्र) कवितामें सात भक्तोंके चरित्र ॥३॥-)
- ६७-धूपदीप-लेखक-श्री 'माधव' जी, पृष्ठ २४०, मू० ॥३॥-)
- ६८-तत्त्वविचार-सचित्र, पृष्ठ २०५, मूल्य ॥२॥-)
- ६९-उपनिषदोंके चौदह रत्न-पृष्ठ १००, चित्र १०, मू० ॥२॥-)
- ७०-लघुसिद्धान्तकौमुदी-सटिप्पण, पृष्ठ ३५०, मूल्य ॥२॥-)
- ७१-भक्त नरसिंह मेहता-सचित्र, पृष्ठ १८०, मूल्य ॥३॥-)
- ७२-श्रीउडियास्वामीजीके उपदेश-सचित्र, पृष्ठ २१८ ॥२॥-)
- ७३-विवेक-चूड़ामणि-सचित्र, सटीक, पृष्ठ २२४, १- स० ॥२॥-)
- ७४-गीतामें भक्तियोग-सचित्र, ले०-श्रीवियोगी हरिजी १-)
- ७५-भक्त बालक-५ चित्रोंसे सुशोभित, पृष्ठ ८०, १-)
- ७६-भक्त नारी-६ चित्रोंसे सुशोभित, पृष्ठ ८०, १-)
- ७७-भक्त पञ्चरत्न-६ चित्रोंसे सुशोभित, पृष्ठ ९८, १-)
- ७८-आदर्श भक्त-७ चित्रोंसे सुशोभित, पृ० ११२, १-)
- ७९-भक्त सतरत्न-७ चित्रोंसे सुशोभित, पृष्ठ १०६, १-)
- ८०-भक्त-चन्द्रिका-७ चित्रोंसे सुशोभित, पृष्ठ ९२, १-)
- ८१-भक्त-कुसुम-६ चित्रोंसे सुशोभित, पृष्ठ ९१, १-)
- ८२-प्रेमी भक्त-९ चित्रोंसे सुशोभित, पृष्ठ १०३, मूल्य १-)
- ८३-प्रेमदर्शन-(नारदरचित भक्तिसूत्रकी विस्तृत टीका) १-)
- ८४-गुह्याग्निकर्मयोगमाला-कर्मकाण्ड, पृष्ठ १८२, १-)
- ८५-मूर्खकी भक्त स्त्रियाँ-३ चित्रोंसे सुशोभित, पृष्ठ ९२, १)
- ८६-व्रजकी झाँकी-वर्णनसहित लगभग ५६ चित्र, मू० १)
- ८७-श्रीवदरी-केदारकी झाँकी-सचित्र, मूल्य १)
- ८८-परमार्थ-पञ्चावली-श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके कल्याणकारी ५१ पञ्चोंका स्वर्ण संग्रह, पृष्ठ १४४, १)
- ८९-ज्ञानयोग-इसमें ज्ञानयोग्य अनेक पारमार्थिक विषयोंका सुन्दर वर्णन है, पृष्ठ १२५, मूल्य १)
- ९०-कल्याणकुञ्ज-सचित्र, पृष्ठ १६४, मूल्य १)
- ९१-प्रबोध मुधाकर-सचित्र, सटीक, पृष्ठ ८०, मू० ॥३॥-)
- ९२-आदर्श भ्रातृ-प्रेम-(नयी पुस्तक) ले०-श्रीजयदयालजी गोयन्दका ॥३॥-)
- ९३-मानवधर्म-ले०-श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृ० ११२, ॥३॥-)
- ९४-प्रवाग-माहात्म्य-(१६चित्र), पृष्ठ ६४, मूल्य ॥३॥-)
- ९५-माघमकरप्रयागस्नानमाहात्म्य-सचित्र, पृष्ठ ९६, मू० ॥३॥-)
- ९६-गीता-निबन्धावली-ले०-श्रीजयदयालजी गोयन्दका ॥३॥-)
- ९७-साधन-पथ-ले०-श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, सचित्र ॥३॥-)
- ९८-अपरोक्षानुभूति-मूल श्लोक और अर्थसहित, पृ० ४८, ॥३॥-)
- ९९-मनन-माला-सचित्र, भक्तोंके कामकी पुस्तक है, मू० ॥३॥-)
- १००-नवधा भक्ति-ले०-श्रीजयदयालजी गोयन्दका, मू० ॥३॥-)
- १०१-भजन संग्रह प्रथम भाग सं०-श्रीवियोगी हरिजी ॥३॥-)
- १०२- " दूसरा भाग " ॥३॥-)
- १०३- " तीसरा भाग " ॥३॥-)
- १०४- " चौथा भाग " ॥३॥-)
- १०५- " पाँचवां भाग (पञ्च-पुष्प) लेखक-श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, मूल्य ॥३॥-)
- १०६-शतश्लोकी-हिन्दी-अनुवादसहित, मूल्य ॥३॥-)
- १०७-बाल-शिक्षा-(नयी पुस्तक) ले०-श्रीजयदयालजी गोयन्दका मूल्य ॥३॥-)

| | |
|--|--|
| १०८-चित्रकूटकी झाँकी-(२२ चित्र), मूल्य -)।। | १२७-सन्ध्या-(हिन्दी-बिधि-सहित), मूल्य)।। |
| १०९-स्त्रीधर्मप्रश्नोत्तरी-(सचित्र), पृ० ५६, मूल्य -)।। | १२८-भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय-पृष्ठ ३५, मूल्य)।। |
| ११०-नारीधर्म (नयी पुस्तक) ले०-श्रीजयदयालजी गोयन्दका -)।। | १२९-बलिवैश्वदेव-विधि-मूल्य)।। |
| १११-गोपी-प्रेम-(सचित्र) पृष्ठ ५०, मूल्य -)।। | १४०-सत्यकी शरणसे मुक्ति-पृष्ठ ३२, गुटका, मूल्य)।। |
| ११२-मनुस्मृति द्वितीय अध्याय-अर्थसहित, मूल्य -)।। | १४१-गीतोक्त सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग मूल्य)।। |
| ११३-हनुमानबाहुक-सचित्र, सटीक, मूल्य -)।। | १४२-व्यापारसुधारकी आवश्यकता और व्यापारसे मुक्ति-पृष्ठ ३२, गुटका, मूल्य)।। |
| ११४-ध्यातावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप-ले०-श्रीजयदयालजी गोयन्दका मूल्य -)।। | १४३-भगवान् क्या हैं ? मूल्य)।। |
| ११५-मनको वश करनेके कुछ उपाय-सचित्र, मूल्य -)।। | १४४-सीतारामभजन-(पाकेट-साइज) मूल्य)।। |
| ११६-श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा-लेखक-श्रीजयदयालजी गोयन्दका मूल्य -)।। | १४५-सेवाके मन्त्र-(पाकेट-साइज) मूल्य)।। |
| ११७-गीताका सूक्ष्म विषय-पाकेट-साइज, पृष्ठ ७०, मू० -)।। | १४६-प्रश्नोत्तरी-श्रीशंकराचार्यकृत (टीकासहित), मूल्य)।। |
| ११८-ईश्वर-लेखक-प० श्रीमदनमोहनजी मालवीय, मू० -)।। | १४७-गीताके श्लोकोंकी वर्णानुक्रमसूची-मूल्य)।। |
| ११९-मूल-गोसाई-चरित-मूल्य -)।। | १४८-त्यागसे भगवत्प्राप्ति -मूल्य)।। |
| १२०-मूलरामायण-१ चित्र, मूल्य -)।। | १४९-पातञ्जलयोगदर्शन-(मूल), गुटका, मूल्य)।। |
| १२१-आनन्दकी लहरें-(सचित्र), मूल्य -)।। | १५०-धर्म क्या है ?-५०००० छप चुका, मूल्य)।। |
| १२२-गोविन्ददामोदरस्तोत्र-(सार्थ)-पृष्ठ ३७, मूल्य -)।। | १५१-दिव्य सन्देश-मूल्य)।। |
| १२३-श्रीप्रेमभक्ति प्रकाश-सचित्र, मूल्य -)।। | १५२-कल्याण-भावना-ले०-श्रीताराचन्द्रजी पांड्या, गुटका)।। |
| १२४-ब्रह्मचर्य-ले०-श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, मूल्य -)।। | १५३-श्रीहरिसंकीर्तनधुन-मूल्य)।। |
| १२५-समाज-सुधार-मूल्य -)।। | १५४-नारद-भक्ति-सूत्र-(सार्थ गुटका), मूल्य)।। |
| १२६-एक संतका अनुभव-मूल्य -)।। | १५५-ईश्वरदयाल और न्यायकारी है-पृष्ठ २०, गुटका, मू०)।। |
| १२७-आचार्यके सदुपदेश-मूल्य -)।। | १५६-प्रेमका सच्चा स्वरूप-पृष्ठ २४, गुटका, मूल्य)।। |
| १२८-सप्त-महाव्रत-ले०-श्रीगान्धीजी, मूल्य -)।। | १५७-महात्मा किसे कहते हैं ? पृष्ठ २०, गुटका, मूल्य)।। |
| १२९-वर्तमान शिक्षा-पृष्ठ ४५, मूल्य -)।। | १५८-हमारा कर्तव्य-पृष्ठ २२, गुटका, मूल्य)।। |
| १३०-सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय-मूल्य -)।। | १५९-ईश्वरसाक्षात्कारके लिये नामजप सर्वोपरि साधन है, पृष्ठ २४, गुटका, मूल्य)।। |
| १३१-श्रीरामगीता-मूल, अर्थसहित (पाकेट-साइज), मू०)।।। | १६०-गीता द्वितीय अध्याय-अर्थसहित, पाकेट सा०, मू०)।। |
| १३२-विष्णुसहस्रनाम-मूल, मोटा टाइप)।।। सजिन्द -)।। | १६१-चेतावनी)।। |
| १३३-हरेरामभजन-२ माला, मूल्य)।।। | १६२-लोभमें पाप-(गुटका), मूल्य आधा पैसा |
| १३४- ,, -१४ माला -)।। | १६३-गजलगीता-(,,), मूल्य आधा पैसा |
| १३५- ,, -६४ माला)।। | १६४-सप्तश्लोकी गीता-(,,), मूल्य आधा पैसा |
| १३६-गारोकरमीमासादर्शन-मूल, पृष्ठ ५४,)।।। | पता-गीताप्रेस, गोरखपुर । |

Books in English

1. The Story of Mira Bai.
(By Bankey Behari) 32 Songs of Mira with English translation and one illustration added to the previous edition. -/13/-
2. At the touch of the Philosopher's Stone.
(A Drama in five acts) -/9/-
3. Mind: Its Mysteries & Control.
(By Swami Sivananda) -/8/-
4. Way to God-Realization.
(By Hanumanprasad Poddar) -/4/-
5. Our Present-Day Education.
(By Hanumanprasad Poddar) -/3/-
6. The Immanence of God.
(By Malaviyaji) -/2/-
7. The Divine Message.
(By Hanumanprasad Poddar) -/9/-

MANAGER—
THE GITA PRESS, GORAKHPUR.

विशेष जाननेके लिये पुस्तकोंका तथा चित्रोंका बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये ।

कल्याण

भगवान् श्रीगम



दुर्वादलघुनितनुं तरुणाब्जनेत्रं हेमाम्बरं वरविभूषणभूषणाङ्गम् ।
कन्दर्पकोटिकमनीर्यकिशोरमूर्तिं पुरति मनोरथभुवां भज जानकीशम् ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमदः पूर्णमदः पूर्णमदः ॥
पूर्णस्य पूर्णमादस्य पूर्णमवावर्तिताय नमः ॥



नालाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं माताममारेपितवामभागम् ।
पाणौ महामायकचारुचापं नमामि रामं ग्धुवंशनाथम् ॥

वर्ष १३ }

गोरखपुर, श्रावण १९९५, अगस्त १९३८

{ मंख्या १
पूर्ण मंख्या १४५

तुलसी-वंदना

श्रीमत्तुलसीदास स्वगुरु-भ्राता पद बंदे ।
मेघ मनातन विपुल ज्ञान जिन पाइ अनंद ॥
रामचरित जिन कीन्ह तापत्रय कलिमलहारी ।
करि पोथी पर सही आदरेउ आप पुगारी ॥
गखी जिनकी टेक मदनमोहन धनु धारी ।
बालमीकि अवतार कहत जेहि संत प्रचारी ॥
नन्ददासके हृदय-नयनको खोलैउ मोड़े ।
उज्ज्वल रस टपकाय दिया जानत सब कोई ॥ (नन्ददासजी)

तुलसी और तुलसीकी राम-कथा

धन्य भाग्य मम संतसिरोमनि चरनकमल तकि आयउँ ।
बदन प्रसाद मदन दगभरि लखि सुखसंदोह समायउँ ॥
दयादृष्टि ते मम दिशि हेरेउ तखस्वरूप लखायो ।
कर्म उपासन ज्ञानजनित भ्रम-संस्थ मूल नयायो ॥
हरिलीला गायों तेहि मुनि तनु पुलकित मानस धीर ।
सुधा समान बचन कहि पोषेउ सुमिरत सिय रबुबीर ॥
श्रीतुलसी सुचि संत-समागम अद्भुत अमल अनूप ।
सूरदास जीवन-फल पायो दरसन जुगल स्वरूप ॥

(सूरदासजी)

चातक भाव अनन्य एक रति गति पहिचानी ।
हटकि देवधुनि बारि टेक स्वाती पै ठानी ॥
गज तज घनस्याम सहै सब बंख फुलाये ।
अनुपम साहस बिसद प्रेमपन बिद्धि दिवाये ॥
कवि कोकिल पुरब हतं श्रेता जे हरिबंशहित ।
हरिनाम स्वाति कलिमोहि तेइ तुलसिदास चातक उदित ॥

(दिनकरिवंशजा)

सुरतर-लतान चारि फल है फलित किथीं कामधेनु धारामम नह उपजावनी ।
किथीं चिंतामनिनकी माल उर सोभित बिसाल कंठम धरे हैं ज्योति झलकावनी ॥
प्रभुकी कहानी ते गोमाईकी मधुर बानी मुक्तसुखदानी 'रसखानि' मनभावनी ।
खोंडकी खिजावनी-सी कंदकी कुड़ावनी-सी मिताकी सतावनी-यी सुधा मकुचावनी ॥

(रसखान)

यह खानि चतुष्फलकी सुखदानि अनुपम आनि हिये हुलसी ।
पुनि संतनके मनभृंगनकां अति मंजुल माल लसी तुलसी ॥
अस मानुषके तरिबे कहैं 'तोष' भई भवसागरके पुल-सी ।
सब कामन-दायक कामदुहा सम रामकथा बरनी तुलसी ॥

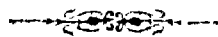
(कविवर तोष)

बोयो बिधि बीज रघुनाथ-जस कामतर कुंभज वसिष्ठ साखापलव लगायो है ।
व्यास मुकदेव आदि किसलै कुसुम कीन्हे बाल्मीकि सुफल अमल दरमायो है ॥
माधव धुरीणाचार्य रामानुजाचार्य आदि बीनि बीनि फल ग्रन्थ पथमें धरायो है ।
रघुराज तुलसी सनेहसों पगेसे पानि सीतापति सेवक निवत ऋषि आयो है ॥

(राबोतरेज राजर्षि श्रीरघुनाथमहज्ज देव)

रामचरितमानस बिमल संतन जीवनप्राण ।
हिन्दुआनको बेदमम जमनहिं प्रगट कुरान ॥

(अब्दुरहीम खानखाना रफीमकवि)



सम्पादकका निवेदन

हमारे कृपालु मित्रों और हितचिन्तकोंका बहुत दिनोंसे यह आग्रह था कि रीतिप्रियमें श्रीगामचरितमानसका एक संस्करण निकले। निकालनेका विचार भी वर्षोंसे था, परन्तु शुद्ध पाठका निर्णय न हो सकनेके कारण देर होती गयी। प्रातःस्मरणीय महात्मा श्रीगोस्वामीजीके हाथका लिखा हुआ ग्रन्थ तो कहीं मिला नहीं, और हस्तलिखित अथवा मुद्रित जिनमें भी नये-पुराने संस्करण मिले, उन सभीमें पाठभेदकी प्रचुरता मिली। इसमें यह निश्चय करना कठिन हो गया कि कौन-सा पाठ ले।

श्रीगामचरितमानसके संस्करणोंमें वर्तनी या शैलीके अतिरिक्त ऐसे भी अनेकों पाठभेद हैं, जिनमें अर्थमें महत्त्वपूर्ण अन्तर पड़ जाता है। ऐसे पाठभेदोंके सम्बन्धमें प्रायः यह कहा जाता है कि नकल करनेवाले लोगोंने अथवा कथावाचकों और मञ्चोद्योगोंने अर्थ न समझकर या ज्ञान बृद्धकर मनमाने पाठ बदल दिये हैं। निःसन्देह ऐसा हुआ है। परन्तु केवल यही बात हो ऐसा भी नहीं लगता। यह भी खूब सम्भव है कि पृथ्वीपाद गोस्वामीजी महाराजने स्वयं ही पाठ बदले हों। आजकल भी तो ऐसा होता है और यह स्वाभाविक और युक्तियुक्त भी है कि कवि या लेखक किसी ग्रन्थको लिखनेके बाद छपनेके पहले उसे बार-बार पढ़कर यथार्थानुसार उचित संशोधन करते रहते हैं, यदातक कि छपते समय अन्तिम प्रकृतके आवश्यकता होनेपर वाक्य बदल दिये जाते हैं। मैंने स्वयं देखा है पृथ्वीपाद मालवीयजी महाराज जब कुछ लिखते हैं तो उसे कई बार पढ़ते हैं और बार-बार नया-नया संशोधन करते रहते हैं। लेखकगण छपनेके बाद भी कई आधुनिक प्रयोजनके अनुसार रद्दोद्धार किया करते हैं। इसीके अनुसार यह बहुत ही सम्भव है कि श्रीगामचरितमानसकी दूसरी-तीसरी आवृत्तियोंके लिखते-लिखते समय स्वयं श्रीगोस्वामीजी महाराजने ही आवश्यक समझकर पाठ बदले हों, और उन विभिन्न पाठोक्त्यां प्रतिशेकानां भिन्न-भिन्न स्थानोंमें प्रथक-प्रथक पुरुषोद्धार अद्या-अद्या नकल होनेमें उनमें पाठभेद रह गये हों, और सम्भावितः वे सभी श्रीगोस्वामीजीके द्वारा ही सुधारनेकी दृष्टिमें किये हुए हों। कई पाठभेद ऐसे देखे जाते हैं जो अर्थकी दृष्टिसे सभी बहुत सुन्दर मात्स्य होते हैं। इससे ऐसा अनुमान करना अशङ्कित भी नहीं है। यह मान लेनेपर भी इतना तो स्पष्ट ही है कि गोस्वामीजीके बाद पीछेमें लोगोंने पाठ अत्यन्त बदले हैं, और अनेकोंकी सृष्टि भी काफी हुई है।

गम्भीरतासे विचार किया जाय तो ऐसा करनेवाले सब लोगोंकी नीयतपर दोषारोपण नहीं किया जा सकता। मेरी समझसे तो ऐसा होनेमें दो ही कारण प्रधानतया हो सकते हैं। प्रथम, स्वाभाविक ही नकल करनेमें भूल होनेमें अथवा अर्थ न समझनेके कारण पाठ बदला जाना—जैसे 'अयमय खंडे न ऊयमय'का 'अजगय खंडेहु ऊय जिमि' कर दिया गया। और दूसरे, अपनी समझके अनुसार श्रीगोसाईंजीकी कविताको और भी सुन्दर तथा पूर्ण बनानेके खयालमें, जहाँ-तहाँ, जिसमें कि सब लोगोंका चित्त उसकी ओर आकर्षित हो, पाठ बदले गये। जहाँ कथाकी अपूर्णता मात्स्य हुई, वहाँ शेषक जोड़ दिये गये। इस प्रकारका एक मनोवृत्ति थी, लोग भजन-पद बनाते थे स्वयं, और भोग देने थे तुलसीदास, मीराबाई, कबीर आदिका। 'तुलसीदास भजो भगवाना' 'मीराके प्रभु गिरधर नागर' 'कहत कबीर सुनो भई साधोंके भोगमें दूसरे-दूसरे लोगोंके बनाये हुए संकटों पद आज भी प्रचलित हैं। इसी प्रकार लोग शेषक बना-बनाकर मानसमें भी जोड़ते गये। इसमें उनकी भावना बुरी नहीं थी। पं० श्रीगामेश्वरजी और पं० श्रीज्वालाप्रसादजी आदिने शायद यह समझकर गोसाईंजीकी भाषाको संस्कृतका शुद्ध रूप दे दिया कि जिसमें गोसाईंजीको लोग संस्कृतसे अनभिज्ञ न समझें और भारतके सभी प्रांतोंमें मानसका समान आदर हो। आजकल भी बहुत-से लोग ऐसा शंका करते हैं कि गोसाईंजीने संस्कृतके विद्वान् होकर अशुद्ध शब्द क्यों लिखे? उन्हें यह समझाना पड़ता है कि गोसाईंजी महाराजने जिस भाषामें ग्रन्थ लिखा है उस भाषामें शब्दोंका जैसा उच्चारण होता है, उसीके अनुसार उन्हें लिखवद भी किया है। इसके सिवा कुछ भूलें इस कारण भी हुई कि प्राचीन कालमें लिखते समय शब्दोंका प्रायः अलग-अलग नहीं लिखते थे, इसमें पढ़नेमें कठिनाता होती थी और कहीं कहीं ठीक समझमें न आनेमें इसी कारण पाठ भी बदले गये। जैसे—'सुन्दरकाण्डमें 'सतिल निमित्त वहमि वर धारा' पाठ है जो 'प्रसन्नराधव' नाटकके 'त्व हि कार्त्तिकजितमौलिकचूर्ण धारया वहमि शीतलमम्भः' का अनुवाद-सा है परन्तु उसे कर दिया गया 'सतिल निमित्त तव अस्ति वर धारा।' इसमें भी नीयतका दोष नहीं है।

नीयत बुरी न होनेपर भी इन कामोंका न्यायकी दृष्टिसे समर्थन नहीं किया जा सकता। भूल तो भूल है ही; ज्ञान-बूझकर किसी भी दृष्टिसे पाठ बदलनेवालोंकी बड़ी गलत थी और उसीका

परिणाम यह हुआ कि अमली पाटका पता लगाना भी अत्यन्त कठिन हो गया ।

बहुत खोजने और जाँच-पड़ताल करनेपर समयकी दृष्टिसे हमे तीन प्रतियाँ पुरानी मिली—एक श्रीअयोध्याजीके श्रावण-कुञ्जका बालकाण्ड जो संवत् १६६५ का लिखा है, दूसरा राजापुरका अयोध्याकाण्ड, जो श्रीगोस्वामीजी महाराजके हाथका लिखा कहा जाता है । परन्तु इसमें सन्देह है, क्योंकि उसकी लिपि गोस्वामीजीके हाथसे लिखी हुई सरस्वतीभवन, काशीमें सुरक्षित वाल्मीकिरामायणसे नहीं मिलती; परन्तु है वह बहुत पुराना और प्रामाणिक, इसमें कोई सन्देह नहीं । और तीसरा दुल्हीका सुन्दरकाण्ड जो संवत् १६७२ का लिखा है और श्रीगोस्वामीजीके हाथका लिखा कहा जाता है । उसकी लिपि भी गोस्वामीजीकी लिपिसे ठीक मिलती है । बहुत सुन्दर अक्षर हैं (लिपिका छायाचित्र अलग देखिये) । अतएव बाल, अयोध्या और सुन्दर, इन तीन काण्डोंका उपर्युक्त तीनोंके आधारपर और शेष चारों काण्डोंका श्रीभागवत-दासजीकी प्रतिके आधारपर पाठसंशोधन और गजापुरकी प्रतिसे प्राप्त व्याकरणके अनुसार सम्पादन करके एक छपने योग्य प्रति पं० श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी एम० ए० और पं० श्रीनन्ददुलारेजी वाजपेयी एम० ए० ने मिलकर तैयार की । यद्यपि अपनी समझसे उन्होंने बड़ी ही सावधानी, लगन, परिश्रम और ईमानदारीसे पाठका चुनाव और संशोधन किया है तथापि अभी हमलोगोंको और उनको इस पाठसे सन्तोष नहीं है । हमलोग गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके हाथकी या उनके जीवन-समयकी लिखी पूरी प्रति या पृथक्-पृथक् काण्ड प्राप्त करनेकी चेष्टामें हैं, खोज हो रही है । श्रीरामजीकी कृपासे कहीं वैसी प्रति मिल गयी तो गीताप्रेससे जो रामचरितमानस प्रकाशित होगा उसमें पाठ और भी शुद्ध हो जायगा । नहीं तो जो कुछ है सो है ही ।

पाठभेद और व्याकरणके सम्बन्धमें पं० श्रीगोस्वामीजी और श्रीवाजपेयीजीने गीताप्रेसमें शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले मूल पाठके संस्करणमें लगानेके लिये जो भूमिका लिखी है उसका कुछ सार यहाँ अलग दिया जाता है । उस संस्करणमें फुटनोटमें सब पाठभेद रहेंगे और उसके प्रकाशनके बाद पूर्णरूपसे पाठ निश्चित हो जानेपर कई तरहके और भी संस्करण निकाले जा सकेंगे । इस मानमांकमें उपर्युक्त संशोधित प्रतिसे ही पाठ दिया गया है ।

‘मानमांक’ में दोहे, चौपाइयाँ आदिका अर्थ भी छापा गया है । वह न तो केवल शब्दार्थ है और न विस्तृत टीका ही । उसे भावार्थ कहना चाहिये । उसमें नयी बात कुछ भी नहीं समझनी चाहिये । हाँ, एक नयी बात अवश्य है वह यह कि—उसमें भावार्थ एक अनधिकारी मनुष्यका लिखा हुआ है, जो मानसका सच्चा विद्यार्थी भी नहीं है । उसमें जो कुछ लिखा गया है वह सचमुच प्राचीन और अर्वाचीन टीकाकारोंकी जूँठन-प्रसादीमान है । उसमें जो यथार्थ और सुन्दर भाव हैं उनका श्रेय तो उन महामना टीकाकारोंको है, और जो अनेक भूलें हैं वे निःसन्देह भावार्थलेखककी हैं ।

यदि भगवान् श्रीसीतारामजीके भक्त, उन हमारे परमपूज्य प्रातःस्मरणीय महात्माओंने, जिन्हें भगवानकी कृपासे यथार्थ अर्थ देखनेकी भगवद्भक्त दृष्टि प्राप्त थी और जिनका प्रत्येक भक्तिपूत शब्द हम-जैसे लोगोको श्रीभगवानकी ओर ले जानेवाले पावन पथमें परम प्रकाश और महान् पाथेयका काम देता है, और पूज्यचरण उन काव्यमर्मज्ञ और साहित्यके विद्वानोंने, जो शब्दशास्त्रके ज्ञाता और कवितानि रस्यका विश्लेषण करनेमें निपुण हैं, श्रीरामचरितमानसपर विभिन्न टीकाएँ न लिखी होती और अपने भावोंको कथा, लेख आदि विभिन्न प्रकारसे न प्रकट किया होता तो आज हम-जैसे लोगोंको सचमुच मानगके समझनेमें बड़ी ही कठिनाता होती । अतएव यह निःसङ्कोच कहा जाता है कि इस भावार्थमें जो कुछ अर्थ-रूपमें उत्तम लिखा गया है, उसका मुख्य श्रेय उन महात्मा और विद्वानोंको ही है । उन सबके पूज्य चरणोंमें बारबार शिरसा प्रणाम !

भावार्थके संशोधनमें मेरे माननीय मित्र पं० श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी और पं० श्रीनन्ददुलारेजी वाजपेयी—दोनोंने एक-से-एक बढ़कर आदिमें अन्ततक मेरा हाथ बँटाया है; सचमुच इनकी सहायतासे ही यह काम हो सका है ।

भावार्थमें जहाँ अर्थ स्पष्ट करनेके लिये ऊपरमें कुछ विशेष बात लिखी गयी है, वहाँ [] ऐसा ब्रैकेट लगाया है और जहाँ अर्थमें आये हुए शब्दोंका मूल्यमा करनेको कुछ लिखा गया है वहाँ () ऐसा ब्रैकेट लगाया है ।

इस कार्यमें मुझको सर्व-परमपूजनीय परमहंस श्रीनागाबाबाजी महाराज, पं० श्रीरामचन्द्रभाषाजी महाराज, पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी, पं० श्रीजयरामदासजी रामायणी, महात्मा श्रीबालकरामजी विनायकजी, महात्मा श्रीगीतान्जलिदासजी आदि महानुभावोंमें बहुत

ही आशीर्वाद और उन्माह मिला है। इसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ और इन्हीं लोगोंके आशीर्वादके बलपर मैंने यह साहस भी किया है। श्रीभगवानकी कृपा तो मुख्य है ही। मित्रोंकी सहायताके साथ ही इस कार्यके सम्पन्न होनेमें उपर्युक्त तथा वैसे ही अन्यान्य पूज्य पुरुषोंका आशीर्वाद एक प्रधान कारण है।

मानसांकमें जो मानसका पाठ दिया गया है, उसमें तथा भावार्थमें निश्चय ही अनेकों भूलें रही हैं। उसके लिये क्षमा-प्रार्थनाके साथ-साथ हाथ जोड़कर यह भी निवेदन है कि महानुभावगण कृपाकर उन भूलोंको बतलावें, जिससे गीताप्रेससे प्रकाशित होनेवाले मानसके संस्करणोंके छपते समय उनपर विचार किया जा सके।

हममें हमलोग शुद्ध पाठ और यथार्थ अर्थका कदापि दावा नहीं करते। हमारी तो यह बालचेष्टामात्र है। इसलिये हमें इस कार्यमें जरा भी अभिमान नहीं है। हमारा दावा है तो यही है

कि हमारा यह प्रयत्न ईमानदारीके साथ किया हुआ होनेपर भी भूलोंसे भरा है। परन्तु स्वयं सरकार श्रीसीतारामजी और उनके सेवक हमारे पूजनीय महात्मा पुरुष और आदरणीय विद्वान् महानुभाव अपनी कृपासे हमारी बिगाड़ी अवश्य ही सुधार लेंगे और कृपापरबश होकर बालक जानकर हमारी इस चपलतापर प्रसन्न ही होंगे। हमें यह अभिमान अवश्य है कि हम निश्चय उनके कृपापात्र हैं।

मानसांकके सम्पादन, और इसके लिये सामग्रीसंग्रह आदिमें जिन-जिन आदरणीय महानुभावों और मित्रोंसे जो विभिन्न प्रकारसे सहायता मिली है, उसके तथा अन्यान्य विषयोंके सम्बन्धमें मानसांकके तीसरे खण्डमें 'क्षमा-प्रार्थना' शीर्षक लेखमें निवेदन किया जायगा।

रास — हनुमानप्रसाद पोद्दार



पाठके सम्बन्धमें निवेदन

श्रीरामचरितमानसकी प्राचीन तथा अर्वाचीन जितनी भी हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं और उसके जितने भी संस्करण अथवा मुद्रित हो चुके हैं उन सबमें पाठभेदके अतिरिक्त, लिखनेकी शैली, शब्दोंके रूप, वर्तनी, दोहोंकी संख्या आदिमें बड़ा अन्तर है। उदाहरणके लिये कुछ प्रतियोंमें, खासकर मुद्रित प्रतियोंमें, जितने भी तद्भव शब्द हैं उन्हें—जहाँ छन्दकी कोई अड़चन नहीं आयी है—तत्सम रूप दे दिया गया है। प्राचीन प्रतियोंमें जहाँ एक साथ एकसे अधिक दोहे आये हैं वहाँ केवल अन्तिम दोहेमें संख्या दी गयी है। किन्तु मुद्रित प्रतियोंमेंसे कुछ प्रतियोंमें प्रत्येक दोहेपर अलग-अलग संख्या बिठायी गयी है। ऐसी दशामें शब्दोंका रूप कैसा रक्खा जाय और दोहोंकी संख्या आदि किम हिसाबसे रक्खी जाय, यह निर्णय करना कठिन हो जाता है। हमने इस विषयमें तथा पाठके विषयमें भी प्राचीन प्रतियोंका ही अनुसरण करनेकी चेष्टा की है। बालकाण्डके लिये हमने श्रावणकुञ्ज, अयोध्याकी प्रतिको आधार माना है, क्योंकि उपलब्ध प्रतियोंमें सबसे प्राचीन वही है। अयोध्याकाण्डकी सबसे प्राचीन प्रति राजापुरकी बतलायी जाती है और बाँटे वर पूज्य गोस्वामीजीके हाथकी लिम्बी छुर्द न भी हो तब भी वह अन्य प्रतियोंकी अपेक्षा कई

अंशोंमें प्रामाणिक भी अधिक मालूम होती है। अतः अयोध्याकाण्डका पाठ प्रायः उन्नीसे लिया गया है। और मुन्दरकाण्डका पाठ प्रायः दुल्हीकी प्रतिसे लिया गया है जो संवत् १६७२ की लिम्बी है। शेष काण्डोंमें हमने प्रायः भागवत-दामजीका पाठ लिया है। इस प्रतिमें ब्रजभाषाके प्रयोग प्रचुरतासे मिलते हैं। पता नहीं क्या बात है। दोहोंकी संख्याका क्रम हमने श्रावणकुञ्जकी पोथीके अनुसार ही लिया है। केवल जहाँ उसमें एकसे अधिक दोहोंके समूहमें केवल अन्तिम दोहेपर संख्या बिठायी गयी है, हमने वही संख्या उस समूहके प्रत्येक दोहेपर रक्खी है और संख्याके आगे पार्थक्यके लिये क्रमशः (क), (ख) आदि जोड़ दिये हैं।

प्राचीन प्रतियोंमें तद्भव शब्दोंका रूप उर्ध्व-का-त्थो रक्खा गया है, अतः हमने भी वैसा ही किया है। क्योंकि ग्रन्थ कविके प्रतिशानुसार, प्राकृत अथवा 'भाषा' में लिखे जानेके कारण उसके प्रयोग भी 'भाषा' के ही अनुकूल होने चाहिये। तद्भव शब्दोंमें, 'ऋ' स्वर तथा ण, श, अ तथा ञ इन वर्णोंका प्रयोग नहीं हुआ है। क्योंकि प्राकृत भाषाकी वर्णमालामें इनका समावेश नहीं है। प्राकृतमें 'ऋ'के स्थानमें 'रि', 'ण'के स्थानमें 'न'

‘श’ के स्थानमें स, ‘क्ष’ के स्थानमें छ, ञ, क्ख अथवा प और ‘ञ’ के स्थानमें ‘ग्य’ का प्रयोग होता है। प्राचीन प्रतियोंमें प्रायः ऐसा ही किया गया है, अतः हमने भी संस्कृतके श्लोकों तथा कुछ ऐसे छन्दोंको छोड़कर जिनमें अधिकांश तत्सम शब्दोंका प्रयोग हुआ है तथा जो संस्कृतके ढंगसे लिखे गये हैं, इसी शैलीका अनुसरण किया है। ‘श’ के बाद जिन शब्दोंमें रेफका संयोग हुआ है, अर्थात् श्र, श्रा, श्रि, श्री, श्रु तथा श्रे, इन संयुक्त वर्णोंमें प्राचीन प्रतियोंमें तालव्य शकारका ही प्रयोग हुआ है, अतः हमने भी वैसा ही किया है। ‘अ’ के स्थानमें छ, क्ख और प, तीनों अक्षरोंका प्रयोग हुआ है। अतः हमने भी जहाँ जैसा प्रयोग मिला है वैसा ही किया है। केवल जहाँ ‘क्ष’ के स्थानमें ‘प’ का प्रयोग मिलता है वहाँ हमने ‘ख’ का प्रयोग किया है, क्योंकि वही ठीक मालूम होता है—जैसे क्षीर=खीर, क्षेम=खेम, इत्यादि। प्राचीन लिपिमें ‘ग्व’ के लिये भी ‘प’ ही लिखा जाता था, ख और प दोनों वर्णोंकी उच्चारणके अनुरूप आकृति भी एक ही थी। ‘च्छ’ के स्थानमें भी प्राचीन लिपियोंमें ‘छ’ ही मिलता है। ऐसे स्थलोंमें हमने ‘च्छ’ का ही प्रयोग किया है। क्योंकि वहाँ ‘छ’ रग्यनेसे उच्चारण ठीक नहीं होगा। ‘लच्छन’ के स्थानमें ‘लछन’ का प्रयोग करनेसे ‘ल’ लघु ही पढ़ा जायगा और होना चाहिये उसका उच्चारण गुरु। प्राचीन प्रतियोंमें ‘व’ और ‘व’ दोनों ‘व’ की ही भाँति लिखे मिलते हैं। जहाँ ‘व’ अपेक्षित है, वहाँ उसकी आकृति ‘व’ इस प्रकार बनायी गयी है। परन्तु कहीं-कहीं ‘व’ के नीचेका बिन्दु भूलसे भी छूट गया है। वहाँ हमने उच्चारणकी दृष्टिसे मूठ प्रतियोंमें ‘व’ होनेपर भी ‘व’ का ही प्रयोग किया है। और कहीं-कहीं ‘व’ के नीचे भूलसे बिन्दु लगा दिया गया है, यद्यपि वहाँ उच्चारणकी दृष्टिसे ‘व’ ही होना चाहिये था। ऐसे स्थलोंमें हमने ‘व’ का ही प्रयोग किया है। मूर्धन्य ‘प’ और कवर्गका ‘ख’ दोनों वर्णोंके लिये प्राचीन प्रतियोंमें उच्चारण-साम्यके कारण तथा उस समयकी प्रथाके अनुसार ‘प’ की आकृति ही लिखी जानी थी। हमने आधुनिक शैलीके अनुसार दोनों वर्णोंको पृथक् कर दिया है।

इसके अतिरिक्त प्राचीन प्रतियोंमें कहीं-कहीं अकारान्त शब्दोंको उकारान्त करके लिखा गया है—जैसे रामु, लखनु, भरतु, एकु, सबु, बिनु, आपु, मीचु, मातु, चिरु, छिनु, अधिकु, मनु, काजु इत्यादि। और कहीं-कहीं मूल शब्दके किसी अक्षरपर अनुस्वारका चिह्न लगाकर उसे सानुनामिक बनाया गया है—जैसे गय, सुभाय,

कौमिका, नदी, आई, बधू, नीके, दुआरे, मोरे, गए आदि शब्दोंके स्थानमें राय, सुभाय, कौसिडा, नदी, आई, बधू, नीके, दुआरें, मोरें, गए आदि प्रयोग मिलते हैं। विचारपूर्वक देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि अकारके स्थानमें उकारका प्रयोग तथा ये सानुनामिक प्रयोग किन्हीं नियमोंके अनुसार किये गये हैं। राजापुरकी पोथी देखनेसे ये नियम स्पष्ट अवगत हो जाते हैं, क्योंकि उक्त प्रतिमें इन नियमोंका और प्रतियोंकी अपेक्षा अधिक पालन हुआ मालूम होता है और इसी दृष्टिसे यह प्रति अन्य प्रतियोंकी अपेक्षा अधिक प्रामाणिक भी मालूम होती है। यान ऐसी जान पड़ती है कि संज्ञा शब्दोंमें तो अकारान्त पुंलिंग शब्दोंके प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति (अर्थात् कर्ता एवं कर्मकारक) के एकवचनमें जहाँ कोई विभक्तिचिह्न नहीं है—अकारान्त पदोंको उकारान्त कर दिया गया है। जैसे—‘कहइ भुआलु मुनिअ मुनिनायक’, ‘रामचंद मुखचंदु निहारी’। व्यक्तिवाचक संज्ञाओंमें जहाँ व्यक्ति एक ही है, किन्तु आदर देनेके लिये उसके लिये बहुवचनकी क्रियाका प्रयोग किया गया है, वहाँ भी एकवचनकी भाँति ही उकारका प्रयोग हुआ है—जैसे ‘जब ते रामु व्याहि घर आये’। कर्मवाच्यमें जहाँ संस्कृत व्याकरणके अनुसार कर्ताका प्रयोग तृतीयामें और कर्मका प्रथमा विभक्तिमें प्रयोग होता है, वहाँ भी यही नियम लागू हुआ मिलता है, अर्थात् केवल कर्मकारकमें उकारका प्रयोग हुआ है—जैसे ‘गय सुभाय मुकुर कर लान्हा’ (राजने स्वभावसे ही दर्पण हाथमें लिया—अथवा संस्कृतके अनुसार, राजाके द्वारा दर्पण हाथमें लिया गया)। यहाँ ‘लान्हा’ यह कृदन्त प्रयोग कर्मवाच्यका होनेसे ‘गय’ शब्दका ‘गउ’ नहीं हुआ, केवल ‘मुकुर’ के स्थानमें ‘मुकुर’ लिखा गया। उकारान्त तथा वकारान्त पुंलिंग शब्दोंमें तो अन्तके ‘य’ और ‘व’ के स्थानमें ‘उ’ का आदेश ही हो गया है—जैसे राय (राजा) के स्थानमें ‘गउ’, ‘समय’ तथा ‘विमय’ (विस्मय) के स्थानमें ‘समउ’, ‘विमउ’, ‘माव’ तथा ‘सचिव’ के स्थानमें क्रमशः ‘माउ’ तथा ‘सचिउ’ आदि। स्त्रीलिंगमें भी जो शब्द मूठनः उकारान्त अथवा ऋकारान्त हैं उनके भी अन्तमें उकारका प्रयोग मिलता है—जैसे ‘मीचु’ (मृत्यु), ‘मातु’ (मातृ) आदि। विशेषणोंमें भी जिन विशेषणोंका संज्ञाकी भाँति प्रयोग हुआ है उनके भी अन्तिम अकारको उकार आदेश हुआ है—जैसे ‘मनु’ (मनु मनुष्य), ‘बुहु’ (बुद्धा आदमी) इत्यादि। अथवा जिन अव्ययान्त विशेषणोंके साथ उकारान्त शब्दकी गुरु बैठती है वहाँ भी अकारान्त विशेषणोंको उकारान्त रक्खा

गया है। इनके अतिरिक्त 'एक' और 'सब' इन विशेषण शब्दोंके भी उकारान्त प्रयोग मिलते हैं। इसमें कारण यह हो सकता है कि 'एक' शब्द तो सदा एकवचन होनेके कारण इस एकवचनताका बोध करानेके लिये उसे 'एकु' लिखा जाता रहा हो। और 'सब' शब्दका एकवचनान्त तथा बहुवचनान्त दोनों प्रकारके विशेषणोंके साथ प्रयोग मिलता है। जहाँ विशेष्य एकवचनान्त है, वहाँ 'सब' के स्थानमें भी 'सबु' प्रयोग मिलता है, जो उचित ही मान्य होना है—जैसे 'सबु लंगू', 'सबु कोऊ' आदि। इनके अतिरिक्त अकारान्त क्रियाविशेषण पदोंको भी कहीं-कहीं उकारान्त कर दिया गया है—जैसे चिर, छिनु, अधिकु, छिनुकु, बरकु आदि। 'बिनु' और 'आनु' का तो सर्वत्र ही इसी रूपमें प्रयोग हुआ है। हमने उपर्युक्त नियमोंके अनुकूल वही उकारान्त प्रयोग लिये हैं जो प्राचीन पोथियोंमें मिलते हैं। कुछ आधुनिक प्रतियोंमें उकारके प्रयोगको निगर्थक समझकर उसका सर्वथा बहिष्कार कर दिया गया है। हमारी समझमें यह उचित नहीं है। क्योंकि प्रथम तो ये प्रयोग प्राचीन प्रतियोंमें मिलते हैं, अतः अनावश्यक नहीं कहें जा सकते। दूसरे इनमें शब्दोंके रूप, लिंग, वचन, कारक आदिके समझनमें बड़ी सहायता मिलती है। इसके विपरीत जिन शब्दोंके मूल संस्कृत रूप उकारान्त है उन्हें प्राचीन पोथियोंमें बहुत जगह अकारान्त करके लिखा है—जैसे 'गुरु' को 'गुर', 'धातु' को 'धात', 'तनु' को 'तन' और 'केतु' को 'केत' लिखा गया है। इस विषयमें हमने प्राचीन पोथियोंका ही अनुसरण किया है। यही बात शब्दोंके अन्त्याक्षरोंमें 'इ' की मात्रा निकाल देनेके सम्बन्धमें भी समझनी चाहिये। उदाहरणतः वाल्मीकि, दधीचि, मंगत आदि शब्दोंको जहाँ पोथियोंमें वाल्मीकि, दधीचि, मंगत आदि लिखा गया है, वहाँ हमने भी वैसा ही किया है। आधुनिक प्रतियोंमें प्रायः इनके इकारान्त प्रयोग ही मिलते हैं।

इसी तरह सानुनासिक प्रयोग भी नियमानुकूल ही प्रतीत होते हैं। संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण शब्दोंमें तृतीया तथा सप्तमी विभक्ति (करण तथा अधिकरण कारक) को ब्योतन करनेके लिये यह पद्धति स्वीकार की गयी मान्य होती है। कर्मवाच्यमें जहाँ कर्ता कारकका तृतीया विभक्तिमें प्रयोग होता है वहाँ कर्तामें भी सानुनासिक प्रयोग मिलते हैं—जैसे 'रायं सुभायं सुकुरु कर लीन्हा' में 'राय' शब्दके स्थानमें 'रायं' शब्दका प्रयोग हुआ है। 'कद्रूं विनतहि दीन्ह वरुष तुम्हहि कौसिलौ देव' (कद्रूने विनताको दुःख दिया और तुम्हें कौसल्या-

के द्वारा दिया जायगा) —यहाँ भी ऐसा ही प्रयोग समझना चाहिये।

जेहि, तेहि, होहि, जाहि आदि शब्दोंमें अनुस्वार विकल्पसे कहीं-कहीं 'जे', 'ते', 'हो', 'जो' पर और कहीं 'हि' पर लगाया गया है। हमने एकरूपताकी दृष्टिसे सर्वत्र उसे अन्तिम वर्णपर ही रखा है। राजापुरकी पोथीमें विशेष्य शब्दोंके साथ-साथ विशेषणोंमें भी इस नियमका पालन हुआ है—जैसे 'भोरें हृदयं' (भोरें हृदयमें)। सम्बन्धकारकके प्रयोगोंको विशेषणवत् मानकर उनके भी की, के आदि विभक्तिचिह्नोंको सानुनासिक रखा गया है—जैसे 'तिन्ह कें तिलक' (उनके राज्य-तिलकमें)। संस्कृत व्याकरणके अनुसार तो होना भी ऐसा ही चाहिये, क्योंकि संस्कृतमें विशेष्यकी जो विभक्ति होती है, विशेषणका भी उसी विभक्तिमें प्रयोग होता है। परन्तु ऐसा करनेसे सानुनासिक प्रयोग बहुत अधिक हो जाते और पाठकोंको कदाचित् कुछ अड़चन होनी, यह समझकर एक ही जगह अर्थात् आवश्यकतानुसार कहीं विशेषणमें और कहीं विशेष्यमें विभक्तिका चिह्न बना है। 'हि' अथवा 'ही' तथा 'हू' (भी) अव्ययोंमें भी जहाँ उनका किसी तृतीयान्त अथवा सप्तम्यन्त शब्दके साथ अथवा किसी अन्य अव्ययके साथ प्रयोग हुआ है अनुस्वारका प्रयोग मिलता है—जैसे 'सचही' (सभीने), 'मही' (मैंने ही), 'चहुँदिशि' (चारों दिशाओंमें), 'जबहि' (जभी), 'बिनहि' (बिना ही), 'मनहि' मन (मन-ही-मन), 'कबहुँ' (कभी), 'काहुँ' (किसीने), 'सुनतहि' (सुनते ही) आदि। केवल क्रियाविशेषण पदोंको भी प्रायः सानुनासिक रखा गया है—जैसे नीकें (भली भाँति), सदाँ (सदा), आगें (सामने), पाछें (पीछे) आदि। कृदन्तके प्रयोगोंमें भी जिन कृदन्तोंका क्रियाविशेषणके रूपमें प्रयोग हुआ है वहाँ भी सानुनासिक प्रयोग मिलते हैं—जैसे 'गयें' (जानेमें अथवा जानेपर), 'कीन्हें' (करनेमें अथवा करनेपर), 'कीन्हें बिनु' (किये बिना), 'वांधें' (वाँधे हुए), 'बारें' (छोड़कर) आदि। इसके अतिरिक्त इकारान्त तथा उकारान्त स्त्रीलिंग शब्दोंके प्रथमा तथा द्वितीया (अर्थात् कर्ता एवं कर्मकारक) के बहुवचनान्त प्रयोगोंमें तथा उन्हींके अनुसार कहीं-कहीं वैसे ही विशेषण शब्दों तथा कृदन्त प्रयोगोंमें भी सानुनासिक प्रयोग मिलते हैं। जैसे—

'रिधि सिधि संपत्ति नदी सुहाई। उमगि अरु अंनुधि कहुँ आई ॥'

'सत्र भिजि देहि कैकहि गरी।.....॥'

उपर्युक्त नियमोंके अनुसार हमने आवश्यकतानुसार, तथा

जहाँ पढ़नेमें कोई अड़चन नहीं मालूम होती वहाँ सानुनासिक प्रयोग बरते हैं। ये प्रयोग लोगोंको कुछ अनोखे-से प्रतीत होंगे, क्योंकि इस तरहके प्रयोग अबतककी छपी हुई प्रतियोंमें कम मिलते हैं, तो भी इनसे अर्थ समझनेमें बड़ी सुगमता होगी, और ये प्रयोग प्राचीन प्रतियोंमें मिलते हैं, यही समझकर हमने इन प्रयोगोंकी बरता है। इनके अतिरिक्त कुछ शब्द ही ऐसे हैं जिनके सानुनासिक और अननुनासिक दोनों तरहके प्रयोग प्राचीन पोथियोंमें हैं—जैसे ते-ते (विभक्ति), छाड़-छाँड़ (धातु), पूछ-पूछ (धातु), बिहसि-बिहँसि (पूर्वकालिक), साचा-साँचा (विशेषण) आदि। इनके विषयमें भी हमने प्राचीन प्रतियोंकी ही प्रमाण माना है। अर्थात् जहाँ सानुनासिक प्रयोग मिलते हैं वहाँ हमने भी सानुनासिक प्रयोग ही लिये हैं, और जहाँ अननुनासिक प्रयोग मिलते हैं वहाँ अननुनासिक प्रयोग ही रक्खे हैं। 'नहि' शब्दको हमने सर्वत्र सानुनासिक ही रक्खा है। 'म', 'न' आदि अनुनासिक पञ्चम वर्णोंपर प्राचीन प्रतियोंके अनुसार चन्द्रविन्दु अथवा अनुस्वारका प्रयोग हमने प्रायः नहीं किया है—जैसे मागि, नीद, माझ आदि।

संयुक्ताक्षरोंके सम्बन्धमें भी प्राचीन प्रतियोंमें एक-सी शैली नहीं मिलती। श्रावणकुञ्ज तथा राजापुरकी पोथियोंमें संयुक्ताक्षरोंका बहुत कम प्रयोग हुआ है, अधिकांश स्थलोंमें उन्हें तोड़कर लिखा गया है। किन्तु पीछेकी प्रतियोंमें संयुक्त वर्णोंका प्रचुरतासे प्रयोग हुआ है। इस विषयमें भी हमने प्राचीन प्रतियोंका ही अनुसरण किया है। अर्थात् जिस शब्दका जैसा रूप पोथियोंमें मिलता है प्रायः वैसा ही हमने लिखा है। संस्कृतमें स्पर्श वर्णों अर्थात् कवर्गसे लेकर पवर्ग-तकके वर्णोंके पहले अनुस्वारके स्थानमें बहुधा उसी वर्गके पञ्चम वर्णका प्रयोग किया जाता है—जैसे पण्डित, कण्ठ, पतङ्ग आदि। परन्तु प्राकृतमें प्रायः ऐसे स्थलोंमें अनुस्वार ही बरता जाता है और मानसकी प्राचीन पोथियोंमें भी अधिकांश ऐसे ही प्रयोग मिलते हैं। यहाँतक कि श्रावणकुञ्ज तथा राजापुरकी पोथियोंमें तो 'प्रसन्न' और 'अन्न' के स्थानमें भी 'प्रसन्न' और 'अन्न' लिखा मिलता है। अतः हमने भी सर्वत्र ऐसे स्थलोंमें अनुस्वारका ही प्रयोग किया है। हाँ, 'प्रसन्न' और 'अन्न' इत्यादिका तो मूलरूप ही रक्खा है। क्योंकि उनमें पहला 'न' 'द' के स्थानमें आया है, अतः वहाँ अनुस्वारका प्रयोग ठीक नहीं होगा।

वर्तमान, आज्ञा, विधि तथा भविष्यकालकी क्रियाओंके

प्राचीन पोथियोंमें दो तरहके रूप मिलते हैं—करइ-करै, (करता है या करे), करउ-करौ (वह करे), करउँ-करौं (मैं करता हूँ या करूँ), करिहउँ-करिहौं (मैं करूँगा), इत्यादि। इनके मूलरूप क्रमशः करइ, करउ, करउँ और करिहउँ ही मालूम होते हैं; क्योंकि ये संस्कृतके क्रमशः करोति, करोतु, करवाणि अथवा कुर्याम् तथा करिष्यामि के बिगड़े हुए रूप हैं। आगे चलकर उच्चारणसौकर्यकी दृष्टिसे इनके करै, करौ, करौं, और करिहौं ये सधन रूप बन गये। इसी प्रकार 'ही' तथा 'भी' के अर्थमें जहाँ 'इ' और 'उ' अव्ययोंका प्रयोग हुआ है—जैसे 'एकइ', 'गुनउ' आदि, वहाँ भी पोथियोंमें विकल्पसे 'एकै', 'गुनौ' आदि रूप भी मिलते हैं। हमने इनके मूल रूपकी रक्षाकी दृष्टिसे तथा एक-से ही रूप बरतनेकी नीयतसे सर्वत्र पहले रूप ही रक्खे हैं। इस प्रसंगमें एक बात और उल्लेखनीय है। प्राचीन प्रतियोंमें वर्तमान और विधिके एक-से ही रूप मिलते हैं। 'करइ' और 'करै' दोनों रूपोंका दोनों ही अर्थोंमें प्रयोग मिलता है। हमने वर्तमान और विधिके रूपोंको पृथक् करनेके लिये वर्तमानमें पहला रूप और विधिमें दूसरा रूप रक्खा है। यह पार्थक्य आजकलके रूपोंके भी अनुकूल है, आजकल वर्तमानमें खड़ी बोलीमें 'करता है' और विधिमें 'करै' शब्दोंका प्रयोग होता है। 'करता है' 'करइ' के अधिक समीप है। कहीं-कहीं छन्दके अनुरोधसे हमने इस क्रमको बदल भी दिया है, क्योंकि कई छन्दोंमें चरणके अन्तमें सधन रूप ही ठीक बैठता है। आज्ञाके अन्यपुरुष और मध्यमपुरुषके बहुवचनमें क्रमशः 'करहु' (वे करें) और 'करहु' (तुम करो) रूप मिलते हैं। अर्थात् अन्यपुरुषमें सानुनासिक 'हुं' का प्रयोग और मध्यमपुरुषमें अननुनासिक 'हु' का प्रयोग मिलता है। वर्तमानमें जैसे 'करहि' (कुर्वन्ति) रूप होता है वैसे ही आज्ञामें 'करहुं' (कुर्वन्तु) होता है। पीछेकी प्रतियोंमें इस पार्थक्यको लोगोंने ठीक तरहसे नहीं निभाया है, किन्तु राजापुरकी प्रतिमें इसका खूब ध्यान रक्खा गया है। अतः हमने भी इसी नियमका अनुसरण किया है। कर्मवाच्यकी क्रियाओंमें भी इस नियमका पालन हुआ है—जैसे 'करिअहि' (किये जायँ), 'ब्याहिअहुं' (ब्याहे जायँ) आदि। वर्तमानकालके अन्यपुरुषके बहुवचनके रूपमें भी सानुनासिक 'हि' का प्रयोग आवश्यक है, क्योंकि अननुनासिक 'हि' का प्रयोग आज्ञाके मध्यमपुरुषके एकवचनमें हुआ है। यथा—'करहि' (तू कर)।

‘करह-कै’ की भाँति अन्य कई शब्दोंके भी दो-दो रूप मिलते हैं—जैसे अपनपउ-अपनपौ, कपिन्ह-कपिन, कहहु-कहौ, जिन्हहि-जिनहि, द्रौ-दोउ, द्रै-दुइ, आप-साप, अंजलि-अंजलि, बयर-बैर, बहठि-बैठि, चुनौती-चुनवती, ऐहहु-अइहहु, लेवाई-लवाई, कह-कै, गोसाई-गुसाई, देखाई-दिखाई, सफल-सुफल, बरष-बरिस, दोष-दोस, पूँछ-पूँछि (तुम), कहँ-कहुँ, मँहँ-महुँ, लइ अयवा लेइ-लै, हइ-है, बाहिर-बाहेर, बिबिध-बिबिधि, सिंह-सिंघ इत्यादि । इनके रूप जहाँ जैसे पोषियोंमें मिलते हैं हमने प्रायः वैसे ही रक्खे हैं । हाँ, कई शब्दोंके हमने एक-से ही रूप लिये हैं । उदाहरणतः भूतकालमें ‘होना’ क्रियाके भयउ, भयेउ और भएउ छीन प्रकारके रूप मिलते हैं । इसी प्रकार ‘आयसु’ शब्दके ‘आएसु’ और ‘आयेसु’ रूप भी मिलते हैं । हमने सौकर्यकी दृष्टिसे ‘भयउ’ और ‘आयसु’ रूप ही लिये हैं । बहुवचनमें उसी क्रियाके ‘भये’ और ‘भए’ दो तरहके रूप मिलते हैं । इनमेंसे हमने सर्वत्र ‘भए’ रूप ही लिया है । केवल आश्लके भविष्यकालमें मध्यमपुरुषके बहुवचनमें हमने ‘आएहु’ (तुम आना) इत्यादि रूप रक्खे हैं । क्योंकि मध्यमपुरुष बहुवचनमें भूतकालका रूप भी ऐसा ही होता है । अतः पार्थक्यके लिये भूतकालमें हमने ‘आयहु’ (आये हो) रूप लिया है और भविष्यमें ‘आएहु’ । संज्ञा तथा सर्वनाम शब्दोंके द्वितीया एकवचनमें ‘हि’ और ‘हि’ दोनों प्रकारके विभक्तिचिह्न बरते गये हैं । हमने तृतीया विभक्तिसे अलग करनेके लिये तथा एकरूपताकी दृष्टिसे अननुनासिक रूप ही लिया है । जाइय, हिय, सियरे, भैया, उजियार आदिके भी जाइअ आदि दो-दो रूप मिलते हैं । हमने ऐसे स्थलोंमें सर्वत्र ‘य’ के स्थानमें ‘अ’ का ही प्रयोग किया है । केवल सिय, पिय आदि दो अक्षरोंके शब्दोंमें ‘य’ का प्रयोग किया है । यह, येह, एह, इन तीन रूपोंमें हमने ‘यह’ रूप ही लिया है । ‘वर्णन करनेके लिये’ इस अर्थमें हमने सर्वत्र ‘बरने’ रूप ही लिया है । कियो, चौकें आदि शब्दोंके भी कियो, चौकें आदि बैकल्पिक रूप मिलते हैं । हमने सर्वत्र एकारान्त तथा ओकारान्त प्रयोग ही लिये हैं । भवँर, पावँर आदि शब्दोंमें अनुनासिकका चिह्न कहीं-कहीं पहले अक्षरपर और कहीं दूसरे अक्षरपर लगाया गया है । इन शब्दोंमें ‘व’ का मूल

रूप ‘म’ होनेसे (जैसे—भ्रमर, पामर आदि) हमने चन्द्रबिन्दु ‘व’ पर ही रक्खा है । प्राचीन प्रतियोंमें अनुनासिक रूपको व्योतित करनेके लिये सर्वत्र अनुस्वारका ही प्रयोग हुआ है । हमने संस्कृतकी तथा आधुनिक शैलीके अनुसार ऐसे स्थलोंमें सर्वत्र चन्द्रबिन्दुका प्रयोग किया है । केवल उन अक्षरोंमें जिनमें ऊपरकी मात्राएँ हैं, वैसे टाड़पोंका प्रचार न होनेसे हमने अनुस्वारका ही प्रयोग किया है ।

प्राचीन प्रतियोंके अनुसार ‘सोह’ शब्दके रूपोंमें हमने ओकार बरता है, किन्तु सुहावन, सुहाए आदि विशेषणोंमें उकारका ही प्रयोग किया है । प्राचीन प्रतियोंमें संस्कृतके नियमानुसार ‘ड’ और ‘ड़’ को एक ही तरहसे लिखा गया है, अर्थात् सर्वत्र ‘ड’ का ही प्रयोग किया गया है । किन्तु हमने उच्चारणके अनुसार ‘ड’ और ‘ड़’ दोनों ही आकृतियोंका प्रयोग किया है ।

विभक्तियोंको मूलमें हमने सर्वत्र प्राचीन प्रथाके अनुसार अलग रक्खा है । केवल एक अक्षरके सर्वनामोंके साथ उन्हें मिला दिया गया है—जैसे तापर, जापर आदि । समस्त पदोंको भी छोटे-छोटे पदोंको छोड़कर प्रायः अलग ही रक्खा है । यद्यपि व्याकरणकी दृष्टिसे ऐसा करना ठीक नहीं है, तथापि छपाईकी दृष्टिसे तथा पाठकोंके सुभीतेकी दृष्टिसे वैसा ठीक नहीं होता और प्राचीन शैली भी यही है, यह सोचकर हमने समस्त पदोंको तोड़कर ही रक्खा है । प्राचीन प्रतियोंमें कहीं-कहीं ऐसे प्रयोग भी मिलते हैं जो व्याकरणकी दृष्टिसे ठीक नहीं मालूम होते—जैसे जेहि, तेहि आदि रूप एकवचनके हैं; बहुवचनमें इनका रूप जिन्ह, तिन्ह होना चाहिये । परन्तु कहीं-कहीं बहुवचनमें भी जेहि, तेहि रूप ही मिलते हैं । हमने प्राचीन पाठकी रक्षाके लिये उन रूपोंको भी बदला नहीं है । केवल मानसके अलग संस्करणमें टिप्पणीमें उनकी ओर विश्व पाठकोंका ध्यान आकर्षित कर देनेका विचार है ।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि प्राचीन शुद्ध पाठ, एक व्याकरणशुद्ध शैलीसे सब लोगोंके पास पहुँच जाय, इसी उद्देश्यसे यह प्रयत्न किया गया है । आशा है, विश्वजन कृपापूर्वक हमारी भूलोंको सुधार लेंगे ।

निवेदक { चिम्मनलाल गोस्वामी
नन्ददुलारे बाजपेयी



पारायण-विधि

श्रीरामचरितमानसका विधिपूर्वक पाठ करनेवाले महानुभावों-
को पाठारम्भके पूर्व श्रीतुलसीदासजी, श्रीवाल्मीकिजी, श्रीशिवजी
तथा श्रीहनुमानजीका आवाहन-पूजन करनेके पश्चात् तीनो
माह्यौषहित श्रीसीतारामजीका आवाहन, षोडशोपचार पूजन
और ध्यान करना चाहिये । तदनन्तर पाठका आरम्भ करना
चाहिये । सबके आवाहन, पूजन और ध्यानके मन्त्र क्रमशः
नीचे लिखे जाते हैं—

अथ आवाहनमन्त्रः

तुलसीक नमस्तुभ्यमिहागच्छ शुचिमत ।
मैर्ऋत्य उपविश्येदं पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥ १ ॥

ॐ तुलसीदासाय नमः

श्रीवाल्मीक नमस्तुभ्यमिहागच्छ शुभप्रद ।
उत्तरपूर्वयोर्मध्ये तिष्ठ गृहीष्ट मेऽर्चनम् ॥ २ ॥

ॐ वाल्मीकाय नमः

गौरीपते नमस्तुभ्यमिहागच्छ महेश्वर ।
पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये तिष्ठ पूजां गृहाण मे ॥ ३ ॥

ॐ गौरीपतये नमः

श्रीलक्ष्मण नमस्तुभ्यमिहागच्छ सहप्रियः ।
वायव्यभागे समातिष्ठ पूजनं संगृहाण मे ॥ ४ ॥

ॐ श्रीसपत्नीकाय लक्ष्मणाय नमः

श्रीशत्रुघ्न नमस्तुभ्यमिहागच्छ सहप्रियः ।
पीठक पश्चिमे भागे पूजनं स्वीकुरु मे ॥ ५ ॥

ॐ श्रीसपत्नीकाय शत्रुघ्नाय नमः

श्रीभरत नमस्तुभ्यमिहागच्छ सहप्रियः ।
पीठकदक्षिणे भागे तिष्ठ पूजां गृहाण मे ॥ ६ ॥

ॐ श्रीसपत्नीकाय भरताय नमः

श्रीहनुमन् नमस्तुभ्यमिहागच्छ कृपानिधे ।
पूर्वभागे समातिष्ठ पूजनं स्वीकुरु प्रभो ॥ ७ ॥

ॐ हनुमते नमः

अथ प्रथमपूजा च कर्त्तव्या विधिपूर्वकम् ।
पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा तु ध्यानं कुर्यात्परस्य च ॥ ८ ॥
स्वाम्योषधिकाभिरामनयनं पीताम्बरालङ्कृतं
श्चामाङ्गद्विभुजं प्रसन्नवदनं श्रीसीतया क्षोभितम् ।

कारुण्यमृतसागरं प्रियगणैर्ब्रौत्रादिभिर्भौवितं
वन्दे विष्णुशिवादितेष्वमनिशं भक्तेरुत्तिष्ठिप्रदम् ॥ ९ ॥

आगच्छ जानकीनाथ जानक्या सह राघव ।

गृहाण मम पूजां च बायुपुत्रादिभिर्भुतः ॥ १० ॥

इत्यावाहनम्

सुवर्णरचितं राम दिग्गशस्त्रणक्षोभितम् ।

आसनं हि मया दत्तं गृहाण मणिचित्रितम् ॥ ११ ॥

इति षोडशोपचारैः पूजयेत्

ॐ अस्य श्रीमन्मानसरामायणश्रीरामचरितम् श्री-
शिवकाकभुशुण्डियाज्ञवल्क्यगोस्वामितुलसीदासा ऋषयः
श्रीसीतारामो देवता श्रीरामनाम बीजं भवरोगहरी भक्तिः शक्तिः
मम नियन्त्रिताशेषविघ्नतया श्रीसीतारामप्रीतिपूर्वकसकल-
मनोरथसिद्ध्यर्थं पाठे विनियोगः ॥

अथाचमनम्

श्रीसीतारामाय नमः । श्रीरामचन्द्राय नमः ॥

श्रीरामभद्राय नमः ।

इति मन्त्रत्रितयेन आचमनं कुर्यात् ॥ श्रीयुगलबीज-
मन्त्रेण प्राणायामं कुर्यात् ॥

अथ करन्यासः

जग मंगल गुणग्राम राम के । दानि मुक्ति धन धरम धाम के ॥

अङ्गुष्ठाभ्यां नमः

राम राम कहि जे जमुहाहीं । तिन्हहि न पापपुंज समुहाहीं ॥

तर्जनीभ्यां नमः

राम सकल नामन्ह ते अधिका । होउ नाथ अघ सग गन बधिका ॥

मध्यमाभ्यां नमः

उमा दारु जोषित की नाई । सबहि नचावत रामु गोसाई ॥

अनामिकाभ्यां नमः

सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥

कनिष्ठिकाभ्यां नमः

मामभिरक्षय रघुकुलनायक । धृत बरचाप रुचिर कर सायक ॥

करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

इति करन्यासः

अथ हृदयादिन्यासः

जग मंगल गुनप्राप्त राम के । दानि मुक्ति धन धरम धाम के ॥
हृदयाय नमः ॥
राम राम कहि जे जमुहाहीं । तिन्हहि न पापपुंज समुहाहीं ॥
शिरसे स्वाहा ॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका । होउ नाथ अघ लग गन बधिका ॥
शिखायै बषट् ।
उमा दास जोषित की नाई । सबहि नचावत रामु गोसाईं ॥
कवचाय हुम् ।
सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥
नेत्राभ्यां वौषट् ।
मामभिरक्षय रघुकुलनाथक । धृत बर चाप रुचिर कर सायक ॥
अस्त्राय फट् ।

इति हृदयादिन्यासः

अब प्रेमी पाठकर्ता महानुभावोंकी जानकारी और सुविधाके लिये नीचेके कोष्ठकोंमें मानसके नवाह्निक, मासिक एवं त्रिमासिक पाठोंके विरामस्थल काण्ड और दोहोंकी संख्यासहित लिखे जा रहे हैं—

अथ ध्यानम्

मामवलोकय पंकजलोचन । कृपा बिलोकनि सोच विमोचन ॥
नील तामरस स्याम काम अरि । हृदय कंज मकरंद मधुप हरि ॥
जातुधान बरूय बल मंजन । मुनि सबन रंजन अघ गंजन ॥
मूसुर ससि नव बृंद बलाहक । असरन सरन दीन जन गाहक ॥
भुजबल बिपुल भार महिखंडित । खर दूषण निराध बध पंडित ॥
रावनारि सुस्वरूप भूपवर । जय दसरथ कुलकुमुद सुधाकर ॥
सुजस पुरान बिदित निगमागम । गावत सुर मुनि संत समागम ॥
कारुणीक न्यलीक मद खंडन । सब बिधिकुसल कोसला मंडन ॥
कलि मल मयन नाम ममताहन । तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन ॥

इति ध्यानम्

| क्र. सं. | क्र. सं. | क्र. सं. | क्र. सं. | विरामोंके स्थान* | संख्या |
|----------|----------|----------|----------|---|--------|
| ... | ... | ... | १ | सपनेहुँ साचेहुँ मोहिं पर जाँ हर गौरि पसाउ | बा० १५ |
| ... | ... | १ | ... | ब्रह्म राम तैं नामु बड़ बरदायक बरदानि | २५ |
| ... | ... | ... | २ | जस मानस जेहि बिधि भयउ जग प्रचार जेहि हेतु | ३५ |
| ... | ... | ... | ३ | लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवें बार बहु | ५१ |
| ... | ... | २ | ... | गई समीप महेस तब हँसि पूछी कुसलात | ५५ |
| ... | ... | ... | ४ | सुनहि मातु मैं दीख अस सपन सुनावउँ तोहि | ७२ |
| ... | ... | ३ | ... | कहा हमार न सुनेहु तब नारद कै उपदेस | ८९ |
| ... | ... | ... | ५ | नाचहि गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब | ९३ |
| ... | ... | ... | ६ | बंदउँ पद धरि धरनि सिख बिनय करउँ कर जोरि | १०९ |
| ... | १ | ४ | ... | हियँ हरषे कामारि तब संकर सहज सुजान | १२०(क) |
| ... | ... | ... | ७ | बिरचेउ मग महुँ नगर तेहिं सत जोजन बिस्तार | १२९ |
| ... | ... | ... | ८ | श्रवन सुधासम बचन सुनि पुलक प्रफुलित गात | १४५ |
| ... | ... | ५ | ... | यह इतिहास पुनीत अति उमहि कही बृषकेतु | १५२ |
| ... | ... | ... | ९ | तुलसी जसि भवतन्यता तैसी मिलइ सहाइ | १५९(ख) |
| ... | ... | ... | १० | छुपाछीन बलहीन सुर सहजोहिं मिलिहहिं आइ | १८१ |
| ... | ... | ६ | ... | बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं | १८३ |
| ... | ... | ७ | ... | अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित दयाल | २११ |
| ... | ... | ... | ११ | रिषय संग रघुबंसमनि करि भोजनु बिश्रामु | २१७ |
| ... | ... | ... | १२ | केहरि कटि पट पीत धर सुषमा सील निधान | २३३ |

* जिन दोहों, सोरठों या चौपद्यों या श्लोकोपर विराम है, उनकी पहली पंक्ति या पहले चरण ही वहाँ लिखे गये हैं । पाठ इनके अन्तिम चरणपर समाप्त होते हैं ।

| नवार्थिक | मासिक | द्विमासिक | विरामोक्त स्थान | संख्या |
|----------|-------|-----------|--|---------|
| ... | २ | ८ | ... | ... |
| ... | ... | ... | १३ सतानंद पद बंदि प्रभु बैठे गुर पहिं जाइ | बा० २३९ |
| ... | ... | ... | १३ राजत राजसमाज महुँ कोसलराज किसोर | २४२ |
| ... | ... | ... | १४ उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बालपतंग | २५४ |
| ... | ... | ... | १५ अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत टपन्ह सकोप | २६७ |
| ... | ... | ९ | ... | २७० |
| ... | ... | ... | १६ बसइ नगर जेहिं लच्छि करि कपट नारि बर बेषु | २८९ |
| ... | ... | १० | ... | ३०४ |
| ... | ... | ... | १७ आवत जानि बरात बर सुनि गहगह निसान | ३११ |
| ... | ... | ... | १७ कहहिं परस्पर नारि बारि बिलोचन पुलक तन | ३२५ |
| ... | ... | ... | १८ मुदित अवधपति सकल सुत बंधुन्ह समेत निहारि | ३२६ |
| ... | ... | ११ | ... | ३४३ |
| ... | ... | ... | १९ पुनि पुनि रामहि चितव सिय सकुचति मनु सकुचै न | ३५८ |
| ... | ... | ... | १९ बीचबीच बर बास करि मग लोगन्ह सुख देत | ३६१ |
| ... | ३ | ... | ... | अयो० १० |
| ... | ... | ... | २० कीन्हि सौच सब सहज सुचि सरित पुनीत नहाइ | २८ |
| ... | ... | १२ | २० सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं | ३७ |
| ... | ... | ... | २१ तेहि अवसर आए लखन मगन प्रेम आनंद | ५६ |
| ... | ... | १३ | ... | ६० |
| ... | ... | ... | २२ भूप मनोरथ सुभग बन सुख सुबिहंग समाज | ७५ |
| ... | ... | ... | २२ द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रवि देखि | ९३ |
| ... | ... | ... | २३ यह बिचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेहु बढ़ाइ | १०९ |
| ... | ... | १४ | ... | ११६ |
| ... | ... | ... | २४ कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्हि मातु परितोष | १२६ |
| ... | ... | ... | २४ मातु चरन सिख नाइ चले तुरत संकित हृदयै | १३३ |
| ... | ... | १५ | २५ भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल | १४१ |
| ... | ... | ... | २६ बिदा किए बटु विनय करि फिरे पाइ मनकाम | १६० |
| ... | ४ | १६ | ... | १७६ |
| ... | ... | ... | २७ स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुषमा ऐन | १८४ |
| ... | ... | ... | २७ राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर | २०३ |
| ... | ... | १७ | ... | २१३ |
| ... | ... | ... | २८ लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत | २१५ |
| ... | ... | ... | २८ रामु लखनु सीता सहित सोहत परन निकेत | २३६ |
| ... | ... | ... | २९ भरतहि बिसरेउ पितुमरन सुनत राम बनगौनु | २५६ |
| ... | ... | १८ | ... | २७३ |
| ... | ... | ... | ३० भरतु कमल कर जोरि धीरधुरंधर धीर धरि | २९२ |
| ... | ... | ... | ३० अवसि चलिअ बन रामु जहँ भरत मंनु भल कीन्ह | ३१० |
| ... | ... | ... | ३१ भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रवेसु प्रयाग | |
| ... | ... | ... | ३२ राम बिरहँ व्याकुल भरतु सानुज सहित समाज | |
| ... | ... | १९ | ... | |
| ... | ... | ... | ३३ संपति चकई भरतु चक मुनि आयस खेलवार | |
| ... | ५ | २० | ३३ रामसैल सोभा निरखि भरत हृदयै अति पेसु | |
| ... | ... | ... | ३४ अंतरजामी रामु सिय तुम्ह सरबग्य सुजान | |
| ... | ... | ... | ३५ गुर समाज भाइन्ह सहित राम राजु पुर होउ | |
| ... | ... | ... | ३६ राम सत्यव्रत धरम रत सब कर सीछु सनेहु | |
| ... | ... | ... | ३७ कहत कूप महिमा सकल गए जहाँ रघुराउ | |

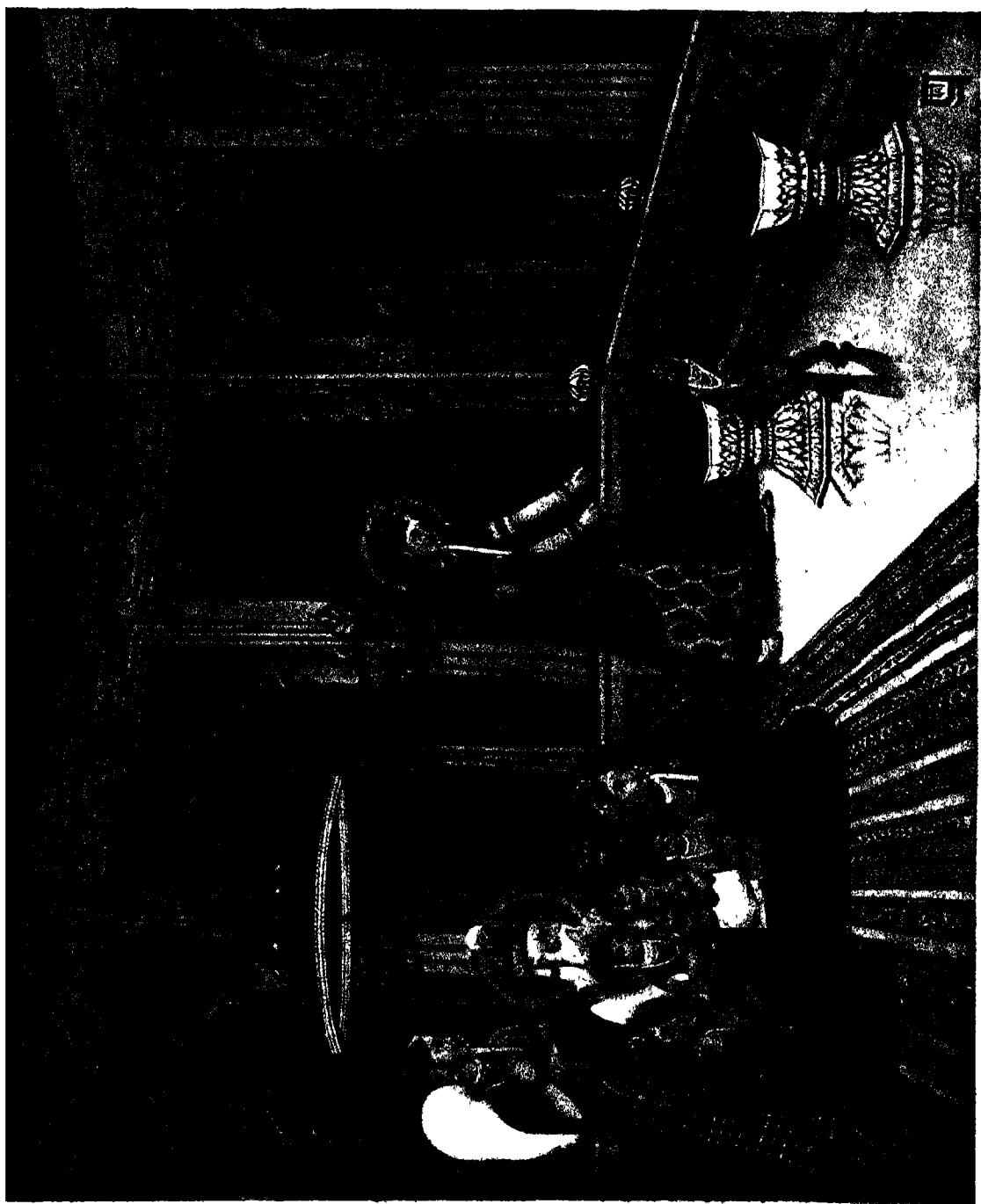
| | नवाहिक | मासिक | द्विमासिक | विरामोंके स्थान | संख्या |
|-----|--------|-------|-----------|---|--------------|
| ... | ... | २१ | ३८ | भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं | अयो० ३२६ |
| ... | ... | ... | ३९ | बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम | अर० १६ |
| ... | ... | ... | ४० | बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ | २७ |
| ... | ६ | ... | ... | हारि परा खल बहुविधि भय अरु प्रीति देखाइ | २९(क) |
| ... | ... | २२ | ४१ | दीपसिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग | ४६(ख) |
| ... | ... | ... | ४२ | भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रिनु पाइ | कि० १७ |
| ... | ... | २३ | ४३ | नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक | ३०(ख) |
| ... | ... | ... | ४४ | देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकी जाहु | सु० १७ |
| ... | ... | ... | ४५ | एहि विधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर | ३५ |
| ... | ... | २४ | ४६ | सकल सुमंगल दायक रघुनाथक गुनगान | ६० |
| ... | ७ | ... | ... | कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास | लं० १२(क) |
| ... | ... | ... | ४७ | फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद | १६(ख) |
| ... | ... | ... | ४८ | रिपुबल धरषि हरषि कपि बालितनय बलपुंज | ३५(क) |
| ... | ... | २५ | ... | हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान | ४८(क) |
| ... | ... | ... | ४९ | कृपादृष्टि कपि भालु बिलोके | ५१/४ |
| ... | ... | ... | ५० | निसिचर अधम मलकर ताहि दीन्ह निज धाम | ७१ |
| ... | ... | ... | ५१ | बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गंभीर | ८९ |
| ... | ... | २६ | ... | मुकछा बिगत भालु कपि सब आए प्रभु पास | ९८ |
| ... | ... | ... | ५२ | प्रभुके बचन श्रवन सुनि नहिं अपाहिं कपिपुंज | १०६ |
| ... | ... | २७ | ५३ | यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु विचार | १२१(ख) |
| ... | ८ | ... | ... | जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रव्य मगाइ | उ० १०(ख) |
| ... | ... | ... | ५४ | विधु महि पूर मयूखनिह रवि तप जेतनेहिं काज | २३ |
| ... | ... | ... | ५५ | उमा अवधबासी नर नारि कृतारथरूप | ४७ |
| ... | ... | २८ | ... | ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवनपति कर जान | ६२(क) |
| ... | ... | ... | ५६ | सदा कृतारथरूप तुम्ह कह मृदु बचन खरोस | ६३(ख) |
| ... | ... | ... | ५७ | सोई सुख लवलेख जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ | ८८(ख) |
| ... | ... | ... | ५८ | हरिमाया कृत दोष गुनु बिन हरिभजन न जाहिं | १०४(क) |
| ... | ... | २९ | ... | ताते यह तन मोहि प्रिय भयउ रामपद नेह | ११४(क) |
| ... | ... | ... | ५९ | यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ | ११६(क) |
| ... | ९ | ३० | ६० | पुण्य पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं | अन्तिम श्लोक |

श्रीरामचरितमानसके प्रकाण्ड पण्डित पूज्यपाद परमहंस श्रीअवधविहारीदासजी महाराज (श्रीनागाबाबाजी महाराज) के मतसे नवाहिक, मासिक, द्विमासिक एवं त्रैमासिक पाठोंके विरामस्थल कुछ और हैं। अतः उनके मान्यतानुसार चारों प्रकारके पाठोंके विरामस्थलोंका उल्लेख अगले पृष्ठमें किया जा रहा है। पाठकर्ता महानुभाव इन विरामस्थलोंके अनुसार भी पाठ कर सकते हैं--

| नवाङ्क | क | क | क | विरामोके स्थान | संख्या |
|--------|-----|-----|-----|---|-----------|
| ... | ... | ... | १ | देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्व | बा० ७ (घ) |
| ... | ... | १ | ... | अति अपार जे सरित बर जौं नृप सेतु कराहिं | १३ |
| ... | ... | ... | २ | सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ | १५ |
| ... | १ | २ | ३ | एहि बिधि निज गुन दोष कहि सबहि बहुरि सिख नाह | २९ (ग) |
| ... | ... | ... | ४ | जस मानस जेहि बिधि भयउ जग प्रचार जेहि हेतु | ३५ |
| ... | ... | ३ | ५ | कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संवाद | ४७ |
| ... | २ | ४ | ६ | सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति | ६५ |
| ... | ... | ... | ७ | तुन्ह माया भगवान सिख सकल जगत पितु मातु | ८१ |
| ... | ... | ५ | ... | हियँ हरषे मुनि बचन सुनि देखि प्रीति बिस्वास | ९० |
| ... | ... | ... | ८ | जगदंबा जहँ अवतरी सो पुरुष बरन कि जाइ | ९४ |
| ... | ३ | ६ | ९ | चरित सिंधु गिरिजा रमन बेद न पावहिं पाव | १०३ |
| ... | ... | ... | १० | रामकृपा तैं पारबति सपनेहुँ तव मन माहिं | ११२ |
| १ | ... | ... | ... | हियँ हरषे कामारि तब संकर सहज सुजान | १२० (क) |
| ... | ... | ७ | ११ | बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ | १२४ (क) |
| ... | ४ | ८ | १२ | सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल | १४० |
| ... | ... | ... | १३ | यह इतिहास पुनीत अति उमहि कही वृषकेतु | १५२ |
| ... | ... | ९ | ... | तुलसी जसि भवतन्यता तैसी मिलइ सहाइ | १५९ (ख) |
| ... | ... | ... | १४ | जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ | १६४ |
| ... | ५ | १० | १५ | उपजे जदपि पुलस्त्य कुल पावन अमल अनूप | १७६ |
| ... | ... | ... | १६ | निज लोकहि बिरचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ | १८७ |
| ... | ... | ११ | ... | तब अटस्य भए पावक सकल सभाहि समुझाइ | १८९ |
| ... | ... | ... | १७ | न्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद | १९८ |
| ... | ६ | १२ | १८ | आयुध सब समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि | २०९ |
| ... | ... | १३ | १९ | उठे लखनु निसि बिगत मुनि अरुनसिखा धुनि कान | २२६ |
| २ | ... | ... | २० | सतानंद पद बंदि प्रभु बैठे गुर पाहिं जाइ | २३९ |
| ... | ७ | १४ | २१ | बोले बंदी बचन बर सुनहु सकल महिपाल | २४९ |
| ... | ... | ... | २२ | बंदी मागध सूत गन बिरुद बदाहिं मति धीर | २६२ |
| ... | ... | १५ | ... | रघुबर उर जयमाल देखि देव बरिसहिं सुमन | २६४ |
| ... | ... | ... | २३ | गाधिसूनु कह हृदयें हंसि मुनिहि हरिअरइ सृष्ट | २७५ |
| ... | ८ | १६ | २४ | वसइ नगर जेहिं लच्छि करि कपट नारि बर बेषु | २८९ |
| ... | ... | ... | २५ | सिधि सब सिय आयसु अकनि गई जहाँ जनवास | ३०६ |
| ... | ... | १७ | ... | कहाहिं परस्पर नारि बारि बिलोचन पुलक तन | ३११ |
| ... | ... | ... | २६ | नाऊ बारी भाट नट राम निछावरि पाइ | ३१९ |
| ... | ९ | १८ | २७ | मुदित अवधपति सकल सुत बंधुन्ह समेत निहारि | ३२५ |
| ... | ... | ... | २८ | रूपसिंधु सब बंधु लखि हरषि उठा रनिवासु | ३३५ |
| ... | ... | १९ | ... | बीच-बीच बर बास करि मग लोगन्ह सुख देत | ३४३ |
| ... | ... | ... | २९ | एह बिधि सबही देत सुखु आए राज दुआर | ३४८ |

| नवाङ्क | मासिक | द्विमासिक | त्रिमासिक | विरामके स्थान | संख्या |
|--------|-------|-----------|-----------|---|---------|
| ३ | १० | ... | ... | राम प्रतोषी मातु सब कहि बिनीत बर बैन | बा० ३५७ |
| ... | ... | २० | ३० | सिय रघुबीर विवाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं | ॥ ३६१ |
| ... | ... | २१ | १ | तेहि अवसर आए लखन मगन प्रेम आनंद | अ० १० |
| ... | ... | ... | २ | प्रमुदित पुर नर नारि सब सजहिं सुमंगलचार | ॥ २३ |
| ... | ११ | २२ | ३ | द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रवि देखि | ॥ ३७ |
| ... | ... | ... | ४ | नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान | ॥ ५१ |
| ... | ... | २३ | ... | कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्हि मातु परितोष | ॥ ६० |
| ... | ... | ... | ५ | मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायें | ॥ ७० |
| ... | १२ | २४ | ६ | बालक बृद्ध बिहाइ गृह लगे लोग सब साथ | ॥ ८४ |
| ... | ... | ... | ७ | भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल | ॥ ९३ |
| ... | ... | २५ | ... | प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ | ॥ १०३ |
| ... | ... | ... | ८ | करम बचन मन छाड़ि छल जब लगि जनु न तुम्हार | ॥ १०७ |
| ... | १३ | २६ | ९ | जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ | ॥ १२३ |
| ... | ... | ... | १० | चित्रकूट के बिहग मृग बेलि ब्रिटप तृन जाति | ॥ १३८ |
| ४ | ... | २७ | ... | राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत | ॥ १४१ |
| ... | ... | ... | ११ | राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम | ॥ १५५ |
| ... | १४ | २८ | १२ | सिंघासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम | ॥ १७० |
| ... | ... | २९ | १३ | पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग | ॥ १८८ |
| ... | ... | ... | १४ | करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लय | ॥ १९३ |
| ... | १५ | ३० | १५ | तनु पुलकेउ हियँ हरषु सुनि बेनि बचन अनुकूल | ॥ २०५ |
| ... | ... | ... | १६ | रघुबर बरन बिलोकि बर बारि समेत समाज | ॥ २२० |
| ... | ... | १ | ... | भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु | ॥ २२५ |
| ... | ... | ... | १७ | लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु | ॥ २३४ |
| ... | १६ | २ | १८ | बिहरत बन चहुँ ओर प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब | ॥ २५१ |
| ... | ... | ... | १९ | तब सुनि बोले भरत सन सब सँकोचु तजि तात | ॥ २५९ |
| ... | ... | ३ | ... | प्रमु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देव | ॥ २६९ |
| ... | ... | ... | २० | गुर समाज भाइन्ह सहित राम राजु पुर होउ | ॥ २७३ |
| ... | १७ | ४ | २१ | बार बार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्हि सनमानि | ॥ २८७ |
| ... | ... | ... | २२ | सुद्ध सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बड़ि खोरि | ॥ ३०० |
| ५ | ... | ५ | ... | भरत राम संबादु सुनि सकल सुमंगल मूल | ॥ ३०८ |
| ... | ... | ... | २३ | देखे थल तीरथ सकल भरत पाँच दिन माझ | ॥ ३१२ |
| ... | १८ | ६ | २४ | भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं | ॥ ३२६ |
| ... | ... | ७ | २५ | निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह | अ० १ |
| ... | १९ | ८ | २६ | हरषित बरषहिं सुमन सुर बाजहिं गगन निसान | ॥ २०(ख) |
| ... | ... | ९ | २७ | कंद मूल फल सुरस अति दिएँ राम कहूँ आनि | ॥ ३४ |
| ... | २० | १० | २८ | दीपसिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग | ॥ ४६(ख) |
| ... | ... | ११ | २९ | प्रथमहिं देवन्ह गिरिगुहा राखेउ रुचिर बनाइ | कि० १२ |

| श्लोक | मासिक | दिनांक | त्रैमासिक | विरामोंके स्थान | संख्या |
|-------|-------|--------|-----------|---|--------------|
| ६ | २१ | १२ | ३० | नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक ... | कि० ३० (ख) |
| ... | ... | १३ | १ | देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकी जाहु ... | सु० १७ |
| ... | २२ | ... | ... | जनकसुतहि समुझाइ करि बहुविधि धीरजु दीन्ह ... | २७ |
| ... | ... | १४ | २ | एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर ... | ३५ |
| ... | २३ | १५ | ३ | सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान ... | ६० |
| ... | ... | ... | ४ | एहि बिधि कृपा रूप गुन धामु रामु आसीन ... | लं० ११ (क) |
| ... | ... | १६ | ... | फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषाहिं जलद ... | १६ (ख) |
| ... | ... | ... | ५ | जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ ... | १९ |
| ... | ... | ... | ६ | तरकि पवनसुत कर गहे आनि धरे प्रभु पास ... | ३२ (क) |
| ... | ... | १७ | ... | रिपुबल धरषि हरषि कपि बालितनय बलपुंज ... | ३५ (क) |
| ... | २४ | ... | ७ | परम चतुरता श्रवन सुनि बिहँसे रामु उदार ... | ३८ (ख) |
| ... | ... | १८ | ८ | मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ पुनि छँका आइ ... | ४९ |
| ७ | ... | ... | ९ | बचन कर्म मन कपट तजि भजहु राम रनधीर ... | ६४ |
| ... | ... | १९ | १० | खगपति सब धरि खाए माया नाग बरूथ ... | ७४ (क) |
| ... | ... | ... | ११ | निज दल बिचलत देखेहि बीस भुजों दस चाप ... | ८१ |
| ... | २५ | ... | ... | जग्य बिधंसि कुसल कपि आए रघुपति पास ... | ८५ |
| ... | ... | २० | १२ | बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गंभीर ... | ८९ |
| ... | ... | ... | १३ | मुरुछा बिगत भालु कपि सब आए प्रभु पास ... | ९८ |
| ... | ... | ... | १४ | कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु अभय किए सुरबुंद ... | १०३ |
| ... | २१ | १५ | ... | जनकसुता समेत प्रभु सोभा अमित अपार ... | १०९ (ख) |
| ... | २६ | २२ | १६ | यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार ... | १२१ (ख) |
| ... | ... | ... | १७ | लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकति मानु ... | उ० ७ |
| ... | ... | २३ | १८ | बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास ... | १४ (ख) |
| ... | ... | ... | १९ | बिधु महि पूर मयूखन्हि रथि तप जेतनेहिं काज ... | २३ |
| ... | २७ | २४ | ... | रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ ... | २९ |
| ८ | ... | ... | २० | बार बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिर नाइ ... | ३५ |
| ... | ... | २५ | २१ | नाथ एक बर मागउँ मोहि कृपा करि देहु ... | ४९ |
| ... | ... | ... | २२ | अस कहि चले देवरिषि करत राम गुन गान ... | ५९ |
| ... | २८ | २६ | २३ | श्रोता सुमति सुसील सुचि कया रसिक हरिदास ... | ६९ (ख) |
| ... | ... | ... | २४ | एक एक ब्रह्मांड महुँ रहउँ बरष सत एक ... | ८० (ख) |
| ... | ... | २७ | ... | अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल ... | ९० (ख) |
| ... | ... | ... | २५ | भाव बस्य भगवान सुख निधान करना भवन ... | ९२ (ख) |
| ... | २९ | २८ | २६ | हरिमाया कृत दोष गुन बिनु हरिभजन न जाहिं ... | १०४ (क) |
| ... | ... | ... | २७ | गुर के बचन सुरति करि राम चरन मनु लाग ... | ११० (क) |
| ... | ... | २९ | २८ | यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ ... | ११६ (क) |
| ... | ... | ... | २९ | विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे ... | १२२ (ग) |
| ९ | ३० | ३० | ३० | पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विशानभक्तिप्रदं ... | अन्तिम श्लोक |



भूमितल भूपके बड़े भाग । राम लखन रिपुदमन भरत सिद्धु निरखत अति अतुराग ॥

अनुष्ठानके प्रयोग

श्रीरामचरितमानस भगवान् श्रीशिवका मानस है अर्थात् उनका हृदय है। निरन्तर भगवत्स्वरूपका चिन्तन होते रहनेके कारण श्रीशिवजीका यह मानस भी भगवत्स्वरूप ही हो गया है। ऐसी स्थितिमें श्रीरामचरितमानसको श्रीशिवजीका मानस कहनेका यह अर्थ होता है कि श्रीरामचरितमानस स्वयं भगवान् है। जिसने श्रीरामचरितमानसको प्राप्त कर लिया उसने क्या नहीं प्राप्त किया अर्थात् उसे सभी वस्तुएँ प्राप्त हो गयीं, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो गयीं। क्योंकि भगवान् के प्राप्त कर लेनेपर कुछ पाना शेष नहीं रहता। अब प्रश्न यह होता है कि फिर श्रीरामचरितमानसके रहते हुए भी लोग दुखी क्यों हैं? इसका उत्तर यही है कि उन्होंने वास्तवमें श्रीरामचरितमानसको प्राप्त नहीं किया। उन्हें पुस्तक प्राप्त है परन्तु मानसके प्रति श्रद्धा, भक्ति, विश्वास, अभ्यास एवं परायणता नहीं प्राप्त है, और जिसे ये सब प्राप्त हैं, उसे चाहे पूरी पुस्तक न प्राप्त हो, एक अर्धालीकी प्राप्तिसे ही वह अपनी मनोकामना पूर्ण कर सकता है। इसके लिये बहुत-से महात्माओंने अनेकों प्रयोग बतलाये हैं। वे पारमार्थिक भी हैं और लौकिक भी। हाँ, इतना तो कहा जा सकता है कि जिस वस्तुसे स्वयं भगवान् और भगवान् का प्रेम प्राप्त किया जा सकता है उस वस्तुका प्रयोग छोटी-छोटी तुच्छ वस्तुओंकी प्राप्तिके लिये नहीं करना चाहिये। वे लोग, जो ऐसा करते हैं, काँचके बदले मणि दे डालते हैं इसमें सन्देह नहीं। फिर भी संक्षेपसे यहाँ दोनों ही प्रकारके कुछ थोड़े-से प्रयोग लिखे जाते हैं। क्योंकि जगत् के झूठे मालिकोंके सामने चापलूसी करने और असत्य तथा अन्यायका अवलम्बन करनेकी अपेक्षा भगवान् से ही कोई वस्तु माँग लेना उत्तम है और उसका फल यह होता ही है कि एक-न-एक दिन भगवान् की कृपासे उसकी प्रवृत्ति परमार्थकी ओर हो ही जाती है।

प्रयोग करनेवालेको चाहिये कि पहले दिन हविष्यान्नका भोजन करके रात्रिमें संयमपूर्वक पवित्र स्थान एवं पवित्र भासनपर बैठकर स्वस्थ चित्तसे श्रीहनुमान्जीका स्मरण करें। सम्भव हो तो उनके नामसे हवन करें अथवा किष्किन्धा-काण्डका पाठ कर लें। भगवान् का स्मरण करते हुए रातको पवित्र शय्यापर छातीपर हाथ रखकर सोवें। उस समय अपनी अभिलाषाको दुहराकर श्रीहनुमान्जीसे प्रार्थना करे कि 'हे देव! आप कृपा करके स्वप्नमें मुझे स्पष्ट संकेत कर दीजिये कि मैं अपनी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये कौन-सा

प्रयोग करूँ?' श्रीवानरराज हनुमान्जी प्रायः स्वप्नमें उत्तर देते हैं। यदि एक दिनमें उत्तर न मिले तो दो-तीन दिनतक लगातार करना चाहिये। श्रीहनुमान्जी जैसी आज्ञा करें, उसके अनुकूल ही अनुष्ठान करना चाहिये। इसमें श्रीहनुमान्जीमें विश्वास, श्रद्धा, निरन्तर सावधानी और मनकी एकाग्रता आवश्यक है।

आगे पारमार्थिक और लौकिक अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाली कुछ चौपाइयाँ और दोहे लिखे जाते हैं। श्रीमानसके प्रत्येक पदके साथ एक बार उनका उच्चारण करना सम्पुट है और दो बार उच्चारण करना सम्पुटबल्लो है। अब कामनाओंके अनुसार प्रयोग लिखे जाते हैं। पूर्ण श्रद्धा, विश्वास और भक्तिके साथ ही अनुष्ठान करना चाहिये। श्रद्धा विना सफलता बहुत ही कठिन है।

पारमार्थिक प्रयोग

(१)

भगवान् श्रीरामका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त करनेके लिये बालकाण्डसे लेकर उत्तरकाण्डतक सम्पूर्ण श्रीरामचरितमानसका १०५ पाठ करना चाहिये। यह पाठ चाहे नवाह्निक पाठके नियमानुसार हो, चाहे स्वतन्त्र रीतिसे हो। प्रतिदिन पाठके प्रारम्भ और अन्तमें तथा बीच-बीचमें भी इन चौपाइयोंको प्रेमसे पढ़ना चाहिये—

जौ अनाथहित हम पर नेहू । ती प्रसन्न होइ यह बर देहू ॥
जो सरूप बस सिव मन माहीं । जेहि कारन मुनि जतन कराहीं ॥
जो मुसुंडि मन मानस हंसा । सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा ॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन । कृपा करहु प्रनतरति मोचन ॥

इस अनुष्ठानके लिये पवित्र एवं एकान्त स्थान, शुद्ध चित्त, श्रद्धा और संयमकी बड़ी आवश्यकता है। १०५ पाठ पूरे होनेपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी दर्शन देते हैं।

(२)

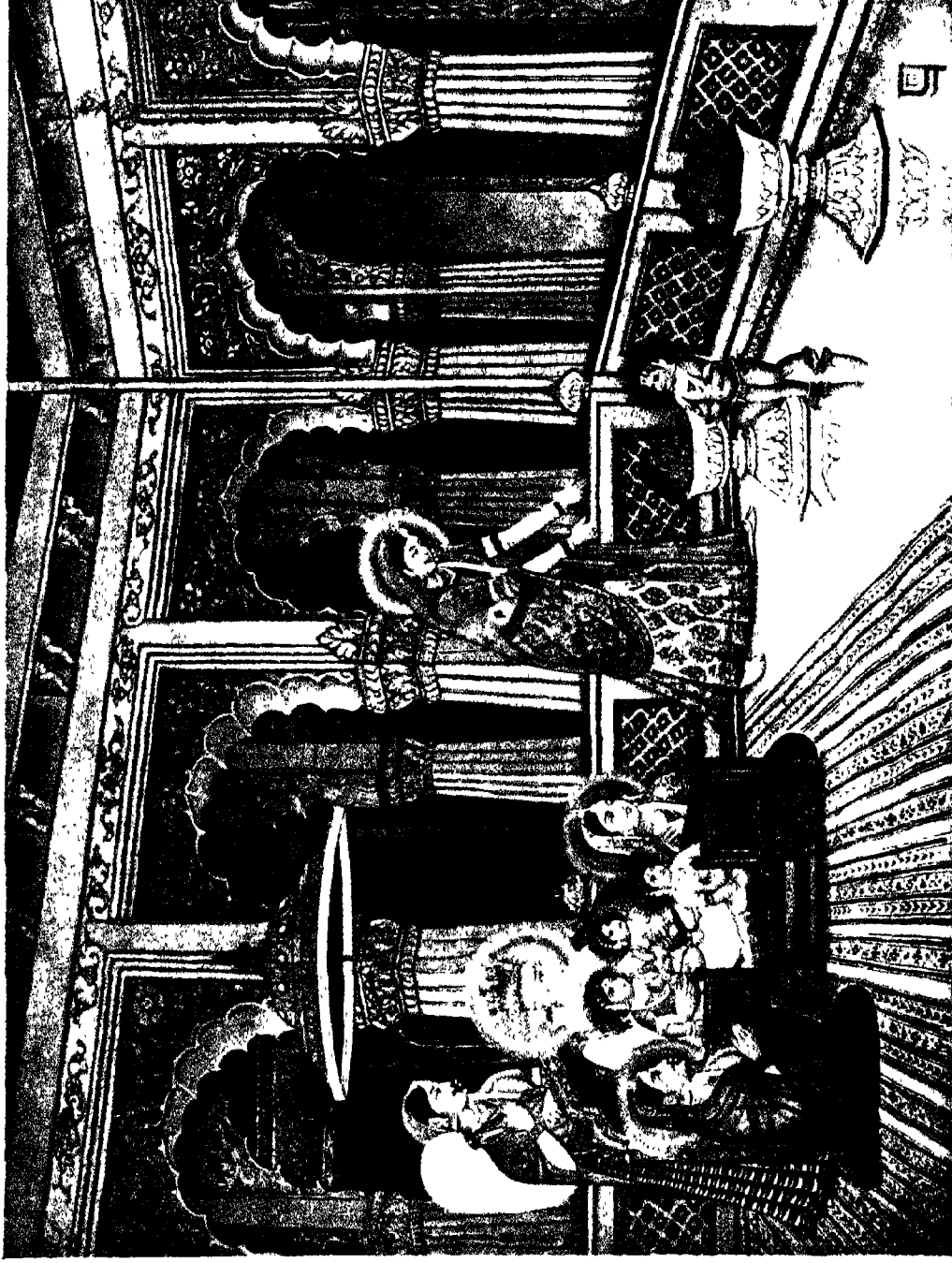
स्वायम्भुवमनु और शतरूपाको भगवान् के जिस परम-स्वरूपका दर्शन हुआ था और वे अपनी जिस अन्तरंग शक्तिके साथ प्रकट हुए थे, उस स्वरूपका दर्शन करनेके लिये श्रीरामचरितमानसका निम्नलिखित प्रकारसे पाठ करना चाहिये।

नील सरोरुह नौक मनि नील नीलधर स्वाम ।

हाजहिं तन सोमा निरखि कोटि कोटि सत काम ॥

—इस दोहेसे पाठ प्रारम्भ करके उत्तरकाण्डकी समाप्ति-तक पढ़ जाय और फिर बालकाण्डसे प्रारम्भ करके इस चौपाईतक पढ़कर समाप्त करे।

दशरथके भाग्य



भूमितल भूपके बड़े भाग । राम लखन रिपुदमन भरत सिधु निरखत अति अशुराग ॥

भगत बछल प्रभु कृपानिधान । बिस्वास प्रगटे भगवान् ॥

(३)

श्रीभगवान्की पराभक्ति प्राप्त करनेके लिये अर्थात् श्रीरामजीका वशीकरण करनेके लिये निम्नलिखित चौपाईसे पाठ प्रारम्भ करना चाहिये—

बरि धीरजु एक आलि सयानी । सीता सन बोली गहि पानी ॥

निम्नलिखित दोहेपर समाप्त करे—

केहरि कटि पट पीत धर, सुषमा सीन निधान ।

देखि भानुकुल भूषनहिं, बिसरा सखिन्ह अपान ॥

अर्थात् उक्त चौपाईसे प्रारम्भ करके उत्तरकाण्डतक और बाणकाण्डसे प्रारम्भ करके उक्त दोहेतक पाठ करके समाप्त करे । इस प्रकार पाठ करते-करते पराभक्तिका प्रकाश होने लगता है और प्रयोग पूर्ण होते-होते श्रीभगवान्की पराभक्ति प्राप्त हो जाती है ।

(४)

भगवान्की भक्ति प्राप्त करनेके लिये निम्नलिखित दोहेका सम्पुट या सम्पुटवल्ली लगाकर सम्पूर्ण श्रीरामचरितमानसका पाठ करना चाहिये—

मरु कल्पतरु प्रनत हित, कृपासिंधु सुखधाम ।

सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम ॥

(५)

अखिल लोकलोकेश भगवान् श्रीरामको प्रसन्न करनेके लिये निम्नलिखित प्रकारसे पाठ करना चाहिये । इस चौपाईसे पाठ प्रारम्भ किया जाय—

हरषि सुन्दर दुंदुभीं बजहैं । बरषि प्रसून अपसरा गाहैं ॥

और सम्पूर्ण मानसका पाठ करके यहाँ समाप्त किया जाय—
रंगभूमि जब सिध पगु घरी । देखि रूप मोहे नर नरी ॥

(६)

ज्ञानप्राप्तिके लिये निम्नलिखित चौपाईसे सम्पुट या सम्पुटवल्ली करना चाहिये—

छिति जल पावक गगन सदीरा । पंच रचित अति अवम सरीरा ॥

(७)

संसारसे वैराग्य और भगवान्के चरणोंमें प्रेम होनेके लिये निम्नलिखित दोहेका सम्पुट या सम्पुटवल्ली करना चाहिये—

मरत चरित करि नेमु, तुलसी जो सादर सुनहिं ।

सोय राम पद पेनु, अवसि होइ भव रस त्रिरति ॥

(८)

विषयभिरभुक्त वृत्तियोंको भगवान्के सम्मुख करनेके

लिये निम्नलिखित अर्धालीका सम्पुट करना चाहिये—

मन करि विषय अनल बन जरई । होइ सुखी जौ एहिं सर परई ॥

(९)

संशयनिवृत्तिके लिये उपर्युक्त रीतिसे इस चौपाईका प्रयोग करना चाहिये—

रामकथा सुंदर करतारो । संसय बिहग उड़ावनिहारो ॥

इस प्रकार विभिन्न चौपाइयों और दोहोंके परमार्थके लिये अनुष्ठान होते हैं । ऐसा सुना गया है कि निम्नलिखित दो अर्धालियोंका प्रयोग भगवत्प्रेमके लिये किया जाय तो बहुत ही शीघ्र सफलता प्राप्त होती है—

हा रघुनंदन प्रान पिरैंति । तुम्ह बिनु जितत बहुत दिन बीते ॥

× × × ×

अब प्रभु कृपा करहु एहि मौतो । सब तजि मजनु करौ दिन रातो ॥

लौकिक प्रयोग

१

बिद्याप्राप्तिके लिये निम्नलिखित अर्धालीका सम्पुट करना चाहिये—

गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई । अल्प काल बिद्या सब आई ॥

२

अपराध क्षमा करानेके लिये

अनुचित बहुत कहेउँ अग्यता । छमहु छमामंदिर दांड आता ॥

३

रक्षाके लिये

मामभिरक्षय रघुकुलनायक । धृत बर चाप रुचिर कर सायक ॥

मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ । एहि अवसर सहाय सोइ होऊ ॥

४

बर्षाके लिये

सांइ जर अनल अनिल संघता । होइ जरुद जग जीवनदाता ॥

५

विघ्ननाशके लिये

सकल विघ्न व्यापहिं नहिं ताही । राम सुखीं बिलोकहिं जाही ॥

६

विषय नाशके लिये

राजिन नयन घरे धनुसायक । भगत निपति मंत्रन सुखदायक ॥

७

विघ्ननाशके लिये

नाम प्रताप जान सिम नौको । कलकूट फल दान अभी को ॥

८

सुख-सम्पत्तिके लिये

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं । सुख संपति नानाविधि पावहिं ॥

९

मोहित करनेके लिये

करतल बान धनुष अति सोहा । देखत रूप चराचर मोहा ॥

१०

कार्यसिद्धिके लिये

स्वयंसिद्ध सब काज नाथ मोहि आदरु दियउ ।
अस बिचारि जुबराज तन पुलकित हरपित हियउ ॥
वह सोमा समाज सुख कहत न बनइ खगेस ।
बरनहिं सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस ॥
सुनिअ देव सचराचर स्वामी । प्रनतपल उर अंतरजामी ॥
मार मनोरथ जानहु नोके । बसहु सदा उर पुर सत्रहीके ॥

११

ज्वरादिनाशके लिये

त्रिविध दोष दुख दारिद दावन । कलि कुचासि कुलि कलुष नसावन ॥

१२

तिजरा बगैरह बुखार छुड़ानेके लिये

सुतु खगपति यह कथा पावनी । त्रिविध ताप भव भय दावनी ॥

१३

पुत्रप्राप्तिके लिये

एक बार भूषति मन माहों । मै गलानि मोरें सुत नाही ॥
—इस चौपाईसे आरम्भ करके उत्तरकाण्ड समाप्त करे
और बालकाण्ड प्रारम्भ करके नीचेके दोहेपर समाप्त करे—
कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत ।
पति अनुकूल प्रेम दइ हरि पद कमल बिनित ॥
अथवा निम्नलिखित चौपाईसे उलटा पाठप्रयोग शुरू करे
‘मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना’ और समाप्ति—
दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराव ॥
इस दोहेपर करे ।

१४

खेद मिटानेके लिये

जब तें रामु ब्याहि घर आए । नित नव मंगल मोद बधाए ॥

१५

। यात्रामें या किसी उद्योगमें सफलताके लिये

प्रविसि नगर कीजे सब काजा । हृदयँ राखि कौसलपुर राजा ॥

१६

संकटनाशके लिये

जो प्रभु दीनदयाल कहावा । आरति हरन बेद जस गावा ॥
जपहिं नामु जन आरत मारो । मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारो ॥
दीनदयाल बिरिदु संमारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ॥

१७

जीविकोपार्जनके लिये

विस्व भरन पोषन कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ॥
गई बहार गरीब नेवाजू । सरल सबल साहिब रघुराजू ॥

१८

दरिद्रता मिटानेके लिये

अतिथि पूज्य प्रियतम पुगारि के । कामद धन दारिद दवारि के ॥

१९

उपद्रवनाशके लिये

दैहिक दैविक भौतिक तापा । रामराज नहिं काहुहि ब्यापा ॥

२०

विवाहके लिये

तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै ।
इस छन्दसे प्रारम्भकर इस छन्दपर समाप्त करे—
भरि मुबन रहा उछाहु रामबिबाहु भा सबहीं कहा ।

२१

सब मनोरथ सिद्ध होनेके लिये

भव भेषज रघुनाथ जसु, सुनहिं जे नर अरु नारि ।
तिन्हके सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिसिरारि ॥
जिस कार्यकी सिद्धिके लिये घरसे रवाना हो उस समय
नियत स्थानपर पहुँचनेतक इस दोहेका पाठ करता जाय ।

२२

उत्सवके लिये

सिय रघुनार बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं ।
तिन्ह कहँ सदा उछाहु, मंगलायतन राम जसु ॥

२३

दुःखनाशके लिये

हरन कठिन कलि कलुष कलेसु । महा मोह निसि दलन दिनेसु ॥

२४

भूत-प्रेतादिसे बचनेके लिये

प्रनवउँ पवन कुमार खल बन पावक ग्यानधन ।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर ॥

श्रीरामशलाका प्रभावली

मानसानुरागी महानुभावोंको श्रीरामशलाका प्रभावलीका विशेष परिचय देनेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, उसकी महत्ता एवं उपयोगितासे प्रायः सभी मानसप्रेमी परिचित होंगे। अतः नीचे उसका स्वरूपमात्र अंकित करके उससे प्रभोत्तर निकालनेकी विधि तथा उसके उत्तर-फलोका उल्लेख कर दिया जाता है। श्रीरामशलाका प्रभावलीका स्वरूप इस प्रकार है—

| | | | | | | | | | | | | | | |
|-----|-----|----|-----|----|----|----|-----|------|-----|----|----|-----|----|----|
| सु | प्र | उ | वि | हो | मु | ग | व | सु | नु | वि | घ | धि | इ | द |
| र | रु | फ | सि | सि | रे | बस | है | मं | ल | न | ल | य | न | अं |
| सुज | सो | ग | सु | कु | म | स | ग | त | न | ई | ल | धा | बे | नो |
| त्य | र | न | कु | जो | म | रि | र | र | अ | की | हो | सं | रा | य |
| पु | सु | थ | सी | जे | इ | ग | म | सं | क | रे | हो | म | स | नि |
| त | र | त | र | स | इ | ह | ब | ब | प | चि | स | य | स | तु |
| म | का | । | र | र | मा | मि | मी | म्हा | । | जा | हू | हीं | । | जू |
| ता | रा | रे | री | ह | का | फ | खा | जि | ई | र | रा | पू | द | ल |
| नि | को | मि | गो | न | म | ज | य | ने | मनि | क | ज | प | स | ल |
| हि | रा | म | स | रि | ग | द | न | प | म | खि | जि | मनि | त | जं |
| सिं | मु | न | न | कौ | मि | ज | र | ग | धु | ख | सु | का | स | र |
| गु | क | म | अ | ध | नि | म | ल | । | न | ब | ती | न | रि | भ |
| ना | पु | व | अ | दा | र | ल | का | ए | तु | र | न | नु | व | थ |
| सि | ह | सु | म्ह | रा | र | स | हिं | र | त | न | प | । | जा | । |
| र | सा | । | ला | धी | । | री | ज | हू | हीं | षा | जू | ई | रा | रे |

इस रामशलाका प्रभावलीके द्वारा जिस किसीको जब कभी अपने अभीष्ट प्रश्नका उत्तर प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो सर्वप्रथम उस व्यक्तिको भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर श्रद्धा-विश्वासपूर्वक मनसे अभीष्ट

प्रश्नका चिन्तन करते हुए प्रभावलीके मनचाहे कोष्ठकमें अँगुली या कोई शलाका रख देना चाहिये और उस कोष्ठकमें जो अक्षर हो उसे अलग किसी कोंरे कागज या स्लेटपर लिख लेना चाहिये। प्रभावलीके कोष्ठकपर भी ऐसा कोई निशान

लगा देना चाहिये जिससे न तो प्रश्नावली गन्दी हो और न प्रश्नोत्तर प्राप्त होनेतक वह कोष्ठक भूल जाय। अब जिस कोष्ठकका अक्षर लिख लिया गया है उससे आगे बढ़ना चाहिये तथा उसके दसवें कोष्ठकमें जो अक्षर पड़े उसे भी लिख लेना चाहिये। इस प्रकार प्रति दसवें अक्षरके दसवें अक्षरको क्रमसे लिखते जाना चाहिये और तबतक लिखते जाना चाहिये, जबतक उसी पहले कोष्ठकके अक्षरतक अँगुली अथवा शलाका न पहुँच जाय। पहले कोष्ठकका अक्षर जिस कोष्ठकके अक्षरसे दसवाँ पड़ेगा, वहाँतक पहुँचते-पहुँचते एक चौपाई पूरी हो जायगी, जो प्रश्नकर्ताके अभीष्ट प्रश्नका उत्तर होगी। यहाँ इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि किसी-किसी कोष्ठकमें केवल 'अ' की मात्रा (।) और किसी-किसी कोष्ठकमें दो-दो अक्षर हैं। अतः गिनते समय न तो मात्रावाले कोष्ठकको छोड़ देना चाहिये और न दो अक्षरोंवाले कोष्ठकको दो बार गिनना चाहिये। जहाँ मात्राका कोष्ठक आवे वहाँ पूर्वलिखित अक्षरके आगे मात्रा लिख लेना चाहिये और जहाँ दो अक्षरोंवाला कोष्ठक आवे वहाँ दोनों अक्षर एक साथ लिख लेना चाहिये।

अब उदाहरणके तौरपर इस रामशलाका प्रभावलीसे किसी प्रश्नके उत्तरमें एक चौपाई निकाल दी जाती है। पाठक ध्यानसे देखें। किसीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान और अपने प्रश्नका चिन्तन करते हुए यदि प्रभावलीके* इस चिह्नसे संयुक्त 'म' वाले कोष्ठकमें अँगुली या शलाका रक्खा और वह ऊपर बताये क्रमके अनुसार अक्षरोंको गिन-गिनकर लिखता गया तो उत्तरस्वरूप यह चौपाई बन जायगी—

हो इ है सो ई जो रा म र चि रा सा ।

को क रि त र क न ढा व हिं सा बा ॥

यह चौपाई बालकाण्डान्तर्गत शिव और पार्वतीके संवादमें है। प्रश्नकर्ताको इस उत्तरस्वरूप चौपाईसे यह आशय निकालना चाहिये कि कार्य होनेमें सन्देह है, अतः उसे भगवान्पर छोड़ देना श्रेयस्कर है।

इस चौपाईके अतिरिक्त श्रीरामशलाका प्रभावलीसे और भी जितनी चौपाइयाँ बनती हैं, उन सबका स्थान और फलसहित उल्लेख नीचे किया जाता है।

१-सुनु सिय सत्य असोस हमारी। पूजहि मन कामना तुम्हारी ॥

स्थान-यह चौपाई बालकाण्डमें श्रीसीताजीके गौरीपूजनके

प्रसंगमें है। गौरीजीने श्रीसीताजीको आशीर्वाद दिया है।

फल-प्रश्नकर्ताका प्रश्न उत्तम है, कार्य सिद्ध होगा।

२-प्रविसि नगर कीजे सब काजा। हृदय राखि कोसलपुर राजा ॥

स्थान-यह चौपाई सुन्दरकाण्डमें हनुमान्जीके लंकामें प्रवेश करनेके समयकी है।

फल-भगवान्का स्मरण करके कार्यारम्भ करो, सफलता मिलेगी।

३-उघरे अंत न होइ निबाह। कालनेम जिमि रावन राहू ॥

स्थान-यह चौपाई बालकाण्डके आरम्भमें सत्संगवर्णनके प्रसंगमें है।

फल-इस कार्यमें भलाई नहीं है। कार्यकी सफलतामें सन्देह है।

४-बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं ॥

स्थान-यह चौपाई भी बालकाण्डके आरम्भमें ही सत्संगवर्णनके प्रसंगकी है।

फल-छोटे मनुष्योंका संग छोड़ दो। कार्य पूर्ण होनेमें सन्देह है।

५-मुद मंगलमय संत समाजू। जिमि जग जंगम तीरथ राजू ॥

स्थान-यह चौपाई बालकाण्डमें संत-समाजरूपी तीर्थके वर्णनमें है।

फल-प्रश्न उत्तम है। कार्य सिद्ध होगा।

६-गरल सुबा रिपु करय मितार्ह। गोपद सिंधु अन्न सितलाई ॥

स्थान-यह चौपाई श्रीहनुमान्जीके लंकामें प्रवेश करनेके समयकी है।

फल-प्रश्न बहुत श्रेष्ठ है। कार्य सफल होगा।

७-बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सनमुख बरि काह न वीरा ॥

स्थान-यह चौपाई लंकाकाण्डमें रावणकी मृत्युके पश्चात् मन्दोदरीके विलापके प्रसंगमें है।

फल-कार्य पूर्ण होनेमें सन्देह है।

८-सुफल मनोरथ होहुं तुम्हारे। रामु लखनु सुनि मर सुखारे ॥

स्थान-यह चौपाई बालकाण्डमें पुष्पवाटिकासे पुष्प लानेपर विश्वामित्रजीका आशीर्वाद है।

फल-प्रश्न बहुत उत्तम है। कार्य सिद्ध होगा।

इस प्रकार रामशलाका प्रभावलीसे कुल नौ चौपाइयाँ बनती हैं, जिनमें सभी प्रकारके प्रश्नोंके उत्तराशय सन्निहित हैं।

भक्तशिरोमणि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी

संतोंने एक स्वरसे यह घोषणा की है कि जीवका परम पुरुषार्थ एकमात्र भगवत्प्रेम ही है। शेष जो चार पुरुषार्थ हैं और उनमें किसी-न-किसी रूपमें 'स्व' लगा ही रहता है। एक भगवत्प्रेम ही ऐसा है जिसमें 'स्व' भी सर्वथा समर्पित हो जाता है—विलीन हो जाता है। सभी जीव उसी अनन्त भगवत्प्रेमकी प्राप्ति के लिये सचेष्ट हों और उसे प्राप्त कर लें, प्रारम्भसे ही संतोंकी यह प्रेरणा रही है और वे अपनी अन्तरात्मासे, पूर्ण शक्तिसे इसके लिये प्रयत्न करते रहे हैं। योग, कर्म, ज्ञान, ध्यान, जप, तप, विद्या, व्रत सबका एकमात्र यही उद्देश्य है कि भगवान्‌के चरणोंमें अनन्य अनुराग हो जाय। वेदोंने भगवान्‌के निर्गुण-सगुण स्वरूपकी महिमा गाकर यही प्रयत्न किया है कि सब लोग भगवान्‌से प्रेम करें। शास्त्रोंने और वस्तुओंका विश्लेषण करके उनकी अनित्यता, दुःस्वरूपता और असत्ता दिखलाकर उनसे प्रेम करनेका निषेध किया है और भगवान्‌से ही प्रेम करनेका विधान किया है। यह सब होनेपर भी अनादिकालसे मायामोहके चक्करमें फँसे हुए जीव, जैसा चाहिये, उस रूपमें भगवान्‌की ओर अग्रसर नहीं हुए, कुछ आगे बढ़े भी तो साधनोंसे पार पाना कठिन हो गया, गन्तव्यतक विरले ही पहुँच सके। भगवान्‌को स्वयं इस बातकी चिन्ता हो गयी, उन्होंने सोचा—'यदि इस क्रमसे इतने स्वल्प जीव मेरे प्रेमकी उपलब्ध कर सकेंगे, तब तो कल्पोंमें भी प्रेम पानेवालोंकी संख्या अँगुलीपर गिनने बराबर ही रहेगी। अब मुझे स्वयं जीवोंके बीचमें चलना चाहिये, प्रकट होना चाहिये और ऐसी लीला करनी चाहिये कि मेरे अन्तर्धान होनेपर भी वे मेरे गुणों और लीलाओंका कीर्तन, श्रवण एवं स्मरण करके मेरे सब्से प्रेमको प्राप्त कर सकें।'।

भगवान्‌ आये; उनके गुण, लीला, स्वरूपके कीर्तन, श्रवण, स्मरणकी प्रेरणा भी आयी। अभी लीला संवरण हो भी नहीं पायी थी कि वाल्मीकिने उन्हींके पुत्र लव-कुशके द्वारा उनकी कीर्तिका गायन कराकर सुना दिया और भगवान्‌से उसकी यथार्थताकी स्वीकृति भी प्राप्त कर ली। जगतमें आदिकवि हुए वाल्मीकि और आदिकान्य हुआ वही उनके द्वारा किया हुआ भगवान्‌ रामके गुण और लीलाका कीर्तन। श्रीहनुमान्‌जीको वह कितना प्रिय लगा होगा, इसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। उन्होंने

अपने मनमें विचार किया—यह संगीत अमर रहे। परन्तु यह तो संस्कृत वाणीमें है न। आगे चलकर जब साधारण लोग संस्कृतसे अनभिज्ञ हो जायेंगे तब वे इस रसका आस्वादन कैसे कर सकेंगे। उन्हें इस बातकी चिन्ता हो गयी।

श्रीहनुमान्‌जीने वाल्मीकि महामुनिकी योग्यता, उनका अधिकार हर तरहसे निरख लिया—परख लिया। अन्तमें उन्होंने उनसे कहा—'तुम्हारे हृदयमें भगवान्‌का प्रेम है, तुम्हें संसारका कोई भय नहीं है। तुम एक बार कलियुगमें पैदा होना, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। उस समय भी भगवान्‌ रामके गुण और लीलाओंको सर्वसाधारणके लिये सुलभ कर देना।' श्रीवाल्मीकिजीने उनकी आज्ञा स्वीकार की, उन्होंने कलियुगमें जन्म लेकर रामलीलाका मधुमय संगीत गायन करनेका वचन दिया। वे ही तुलसीदासके रूपमें प्रकट हुए।

उन दिनों देशकी परिस्थिति बड़ी विषम थी। विधर्मियोंका बोलबाला था। वेद, पुराण, शास्त्र आदि सद्ग्रन्थ जलाये जा रहे थे। एक भी हिन्दू अवशेष न रहे इसके लिये गुप्त एवं प्रकटरूपसे चेष्टा की जा रही थी। धर्मप्रेमी निराशासे हो गये थे। उन्हें अपने व्यक्तिगत सदाचारपालनकी भी सुविधा प्राप्त नहीं थी, वे मन-ही-मन परमात्मासे प्रार्थना कर रहे थे—'भगवन्‌! अब आप ही धर्मकी रक्षा करें, आप ही सदाचारकी दृक्ती हुई नौकाको बचावें। आप ही अपने चरणोंमें विशुद्ध प्रेम होनेका मार्ग बतावें। अब हमारे पास कोई शक्ति नही, कोई बल नहीं, हम सर्वथा निराश हैं, आपकी ही आज्ञा है—आपका ही भरोमा है।' देशकी आवश्यकता, जातिकी पुकार, धर्मप्रेमियोंकी प्रार्थना सर्वदा पूर्ण होती है। उनकी आवाज सुनी गयी। इस कामके लिये जो व्यक्ति तैयार ही सुरक्षित रख लिये गये थे, उन्हें प्रकट होनेकी आज्ञा दी गयी।

प्रयागके पास यमुनाके दक्षिण राजापुर नामका एक ग्राम है। उन दिनों वहाँ एक आत्माराम दूबे नामके सरयूपारीण ब्राह्मण रहते थे, वे अपने गाँवके प्रतिष्ठित, बुद्धिमान्‌, सदाचारी और शास्त्रोंमें श्रद्धा रखनेवाले थे। उनका गोत्र पराशर था। उनकी धर्मपत्नीका नाम हुलसी था, वह बड़ी पतिव्रता थीं। संवत् १५५४ श्रावण शुक्ल सप्तमीके दिन उन्हीं दम्पतिसे बारह महीनेतक गर्भमें रहनेके पश्चात् श्रीतुलसीदास-

जोका जन्म हुआ। * उस समय अभुक्तमूल भोग कर रहा था। पिताको बड़ी प्रसन्नता हुई। पुत्रजन्मका उत्सव मनाया जाने लगा। दासीने आकर कहा—‘महाराज ! चलिए, घरमें आपकी बुलाहट है। बड़ी अद्भुत घटना घटी है। नवजात शिशु तनिक भी रोया नहीं, उल्टे उसके मुँहसे राम शब्द निकला। देखनेपर मालूम हुआ कि इसके मुँहमें बत्तीसों दाँत मौजूद हैं। पाँच वर्षके बालक जैसे लगते हैं, वह वैसा ही मालूम पड़ता है। मैं बूढ़ी हो गयी परन्तु मैंने ऐसा बालक कहीं नहीं देखा। स्त्रियोंमें इस बातकी बड़ी चर्चा चल रही है। कोई कुछ कहती हैं, कोई कुछ। आप चलकर समझाइये और बच्चेकी माँकी चिन्ता मिटाइये।’

दूबेजी घरमें गये। प्रसूती घरके दरवाजेपर खड़े होकर उन्होंने नवजात शिशुको देखा। उनके मनमें बड़ा खेद हुआ। उन्होंने सोचा कि यह मेरे पूर्वजन्मका पाप है, जिसके कारण ऐसा बालक हुआ है। भाई, बन्धु, ज्योतिषी सब इकट्ठे हुए, विचार हुआ, अन्तमें यह तय पाया कि यदि यह बालक तीन दिनतक जीवित रह जाय तो इसके सम्बन्धमें फिर सोचा जायगा। सब लोग चले गये, तीन दिन बीतनेपर आये।

श्रावण शुक्ल दशमीकी रातमें ही एकादशी लग गयी थी। एकादशीके साथ ही हुलसीके हृदयमें यह सद्बुद्धि आयी। उसने अपनी दासीसे कहा—‘प्यारी सखी ! अब मेरे प्राण-पखेरू उड़ना चाहते हैं, तुम मेरे इस कलेजेके टुकड़ेको लेकर अपने सास-ससुरके गाँव हरिपुर चली जाओ। तुम मेरे लल्लाका पालन-पोषण करना। भगवान् तुम्हारा भला करेंगे। नहीं तो मेरे घरके लोग इस नन्हेंसे निरपराध शिशुको फेंक देगे। सखी ! यह बात किसीको मालूम न होने पावे। तुम रातोंरात चली जाओ।’ हुलसीने अपने बच्चेको उसकी गोदमें दे दिया और अपने सब गहने भी दे दिये। वह बच्चेको लेकर चली गयी और एकादशीके प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्तमें हुलसीने अपना शरीर त्याग दिया।

उस दासीका नाम चुनियाँ था। जब वह बालकको लेकर अपने घर पहुँची और सारी बात अपनी सासको कह सुनायी, तब सासने उसकी बड़ी प्रशंसा की और घरकी कलोरी गौका दूध पिलाकर बच्चेका लालन-पालन करनेको कहा। चुनियाँ बड़े प्रेमसे बच्चेकी सँभाल रखने लगी, बालक साढ़े पाँच वर्षके लगभगका हो गया। वह चलने लगा, तोतली बोलीसे

बोलने लगा। इसी समय चुनियाँकी मृत्यु हो गयी, उसकी सासने बालकके पिताके पास कहला भेजा कि आकर ले जायँ। उन्होंने उत्तर दिया कि ‘ऐसे बालकको लेकर मैं क्या करूँगा, जन्मते ही जिसकी माता मर गयी। पालन करनेवाली दासी भी नहीं जी सकी। वह अभागा है, जिये या मरे, मुझे उसकी परवा नहीं। बालक अनाथ हो गया, उसे रखनेवाला कोई नहीं था।’ वह द्वार-द्वारपर भटकता फिरता था। बालककी ऐसी अवस्था देखकर माता पार्वतीको बड़ी दया आयी, वे ब्राह्मण-स्त्रीका वेश धारण करके प्रतिदिन आतीं और उसे भोजन करा जातीं। लोगोंको बड़ा आश्चर्य होता कि यह कौन स्त्री है, जो प्रतिदिन इस बालकको खिला जाती है। इस प्रकार दो वर्ष और बीत गये।

भगवान् शिवने पार्वतीका व्रत देखकर यह सोचा कि अब इस बालकके भोजन, वस्त्र, विद्याध्ययन आदिका प्रबन्ध कर देना चाहिये। उन्होंने रामशैलपर रहनेवाले श्रीअनन्तानन्दजीके प्रिय शिष्य श्रीनरहर्यानन्दजीको दर्शन दिया, और भगवान् रामकी लीला सुनायी। अन्तमें उनसे कहा कि तुम हरिपुरके ब्राह्मणबालकके पास जाओ और उसे वैष्णव दीक्षा देकर भगवान् रामका चरित्र समझाओ, जब उसकी अन्तर्दृष्टि खुल जायगी, तब वह उसका बड़ा विस्तार करेगा। श्रीनरहरिजीने श्रीशिवजीकी आज्ञाका पालन किया और बालकको ढूँढ़कर उसका नाम रामबोला रख दिया। गाँवके लोगोंसे पूछकर वे रामबोलाको अयोध्या ले गये। वहाँ विद्वान् ब्राह्मणोंकी उपस्थितिमें एक यज्ञ हुआ और संवत् १५६१ माघ शुक्ल पञ्चमी शुक्रवारको उनका यज्ञोपवीत-संस्कार किया गया। विना सिखाये ही बालक रामबोलने गायत्री-मन्त्रका उच्चारण किया, वहाँके सभी ब्राह्मण विद्वान् आश्चर्य-चकित हो गये।

नरहरि स्वामीने वैष्णवोंके पाँच संस्कार करके राम-मन्त्रकी दीक्षा दी, अवधमें ही उन्होंने दस महीनेतक हनुमानटीलेपर निवास किया। उन दिनों बालक रामबोला (अब तुलसीदासजी) अपने गुरुसे विद्याध्ययन करते। उनकी धारणाशक्ति अद्भुत थी। वे अधिकांश समय गुरुकी सेवामें ही बिताते, जो एक बार सुन लेते वह कण्ठस्थ हो जाता। एक दिन पैर दबाते समय, उन्होंने जन्मसे लेकर अबतककी अपनी कथा कह सुनायी। उनका बालचरित्र सुनकर गुरुजीका हृदय द्रवित हो गया, कृष्णकी धारा उमड़ पड़ी, आँखोंसे आँसू बहने लगे। उनकी उस प्रेम-दशाका वर्णन नहीं किया जा सकता।

* ब्रह्म से जीवन विषे कालिंदीके तीर।

श्रावण शुक्ल सप्तमी तुलसी बरेउ सरीर ॥

हेमन्त ऋतु आनेपर दोनोंने अवधपुरीसे यात्रा की। अनेकों रमणीय स्थान, नदी, वन और महात्माओंके दर्शन करते हुए वे सूकरक्षेत्र (लोतों) पहुँचे। गुरु-शिष्य दोनों ही बहाँ जप, तप, स्वाध्याय करते रहे। श्रीनरहरिजीको भगवान् शिवकी आज्ञाका स्मरण हो आया। उन्होंने तुलसीदासको रामचरित सुनाया। कुछ दिनोंके बाद वे काशी आये। काशीके शेष सनातनजी तुलसीदासकी योग्यतापर रीझ गये और उन्होंने नरहरिजीसे माँगकर उन्हें पन्द्रह वर्षतक अपने पास रक्खा और वेद-वेदाङ्गोंका सम्पूर्ण अध्ययन कराया। तुलसीदासजीने विद्याध्ययन तो कर लिया, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि उन दिनों भजन कुछ शिथिल पड़ गया। उनके हृदयमें लौकिक वासनाएँ जग उठीं और अपनी जन्मभूमिका स्मरण हो आया। अपने विद्यागुरुकी अनुमति लेकर वे राजापुर पहुँचे।

राजापुरमें अब उनके घरका दूहामात्र अवशेष था। पता लगानेपर गाँवके भाटने बताया कि जब हरिपुरसे आकर नाईने कहा कि अपने बालकको ले आओ और आत्मारामजीने अस्वीकार कर दिया, तभी एक सिद्धने शाप दे दिया कि छः महीनेके भीतर तुम्हारा और दस वर्षके भीतर तुम्हारे वंशका नाश हो जाय। वैसा ही हुआ। अब तुम्हारे वंशमें कोई नहीं है। तुलसीदासने विधिपूर्वक पिण्डदान एवं भ्राद्र किया। गाँवके लोगोंने आप्रह्न करके मकान बनवा दिया और वहीं रहकर तुलसीदास लोगोंको भगवान् रामकी कथा सुनाने लगे। कार्तिककी द्वितीयाके दिन भारद्वाज गोत्रका एक ब्राह्मण वहाँ सकुटुम्ब यमुनास्नान करने आया था। कथा बाँचते समय उसने तुलसीदासको देखा और मन-ही-मन मुग्ध होकर कुछ दूरा ही संकल्प करने लगा। गाँवके लोगोंसे उनकी जाति-पॉति पूछ ली और अपने घर लौट गया।

वह वैशाख महीनेमें दुबारा आया। तुलसीदाससे उसने बड़ा आप्रह्न किया कि आप मेरी कन्या स्वीकार करें। पहले तो तुलसीदासने स्पष्ट ना कर दी, परन्तु जब उसने अनशन कर दिया, धरना देकर बैठ गया, तब उन्होंने स्वीकार कर लिया। संवत् १५८२ ज्येष्ठ शुक्ल १३ गुरुवारकी आधीरातको विवाह सम्पन्न हुआ। अपनी नवविवाहिता वधूको लेकर तुलसीदासजी अपने ग्राम राजापुर आ गये। श्रीतुलसीदासजीकी धर्मपत्नी बड़ी सुन्दरी थी। वे मुग्ध हो गये। वह अपनी माताको देखनेके लिये जाना चाहती तो भी ये अनुमति नहीं देते। वर्षों बीतनेपर एक दिन वह अपने

भाईके साथ मायके चली गयीं। जब तुलसीदासजी बाहरसे आये और उन्हें मात्स्य हुआ कि मेरी स्त्री मायके चली गयी, तब वे भी चल पड़े। रातका समय था, किसी प्रकार नदी पार करके जब वे ससुरालमें पहुँचे तब सब लोग किवाड़ बंद करके सो गये थे। तुलसीदासने आवाज़ दी, उनकी स्त्रीने पहचानकर किवाड़ खोल दिये। उसने कहा—‘प्रेममें तुम इतने अन्धे हो गये थे कि इस अँधेरी रातकी भी सुधि नहीं रही, धन्य हो। मेरे इस हाड़-मांसके शरीरसे जितना मोह है, उसका आधा भी यदि भगवान्से होता तो इस भयंकर संसारसे तुम्हारी मुक्ति हो जाती *।’

तुलसीदासजीकी स्त्री साधारण स्त्री नहीं थी, वह हृदयसे अपने पतिका उद्धार चाहनेवाली सती थी। सम्भव है उसके मुँहसे स्वयं सरस्वती ही बोली हों। परन्तु तुलसीदासको तो ऐसा दीखा कि उसके मुँहसे स्वयं भगवान् ही बोल रहे हैं। वे एक क्षण भी नहीं रुके, वहाँसे चल पड़े। उन्हें अपने गुरुके वचन याद हो आये, वे मन-ही-मन उसका जप करने लगे।†

जब उनकी पत्नीके भाईको मात्स्य हुआ तब वह उनके पीछे दौड़ा, परन्तु वे मिल नहीं सके, मिले भी तो तब, जब प्रातःकाल होनेपर आया। बहुत मनानेपर भी वे लौटे नहीं, फिर वह घर लौट आया। घरमें उसकी बहिन मूर्छित पड़ी थी। मूर्छा टूटनेपर उसने कहा—‘मैं अपने पतिदेवको उपदेश करनेके लिये आयी थी अब वे चले गये, यहाँ मेरी क्या आवश्यकता है?’ उसने अपना शरीर त्याग दिया। संवत् १५८९ आषाढ़ वदी दशमी बुधके दिन उस सतीने शरीर त्याग किया था।

तुलसीदासजी वहाँसे चलकर प्रयाग आये। वहाँ गृहस्थ-वेशके स्थानमें साधुवेश ग्रहण किया। फिर अयोध्या, काशी, पुरी, रामेश्वर, द्वारिका, बदरीनारायण, मानसरोवर आदि स्थानोंमें तीर्थाटन करते हुए काशी पहुँचे। मानसरोवरके पास उन्हें अनेक प्राचीन संतोंके दर्शन हुए, काकसुगुण्डिजीसे मिले और कैलासकी प्रदक्षिणा भी की। इस प्रकार अपनी ससुरालसे चलकर तीर्थयात्रा करते हुए काशी पहुँचनेमें उन्हें चौदह वर्ष दस महीने सतरह दिन लगे।

* हाड़ मांसकी देह मम, तापर बितनी प्रीति।

तिष्ठ आधी जो रामप्रति, अवसि भिटिहि सबभोति॥

† नरहरि कंचन कामिनी, रहिये शनतेँ दूर।

जो चाहिय कखान निज, रामदास सरपूर॥



गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज

वे काशीमें प्रतिदिन भगवान् रामकी कथा कहते थे। साधुलोग बड़े आनन्दसे सुनते थे। वहाँ एक विचित्र घटना घटी। तुलसीदासजी प्रतिदिन शौच होने जंगलमें जाते, लौटते समय जो अवशेष जल होता, उसे एक पीपलवृक्षके नीचे गिरा देते। उस पीपलपर एक प्रेत रहता था। उस जलसे प्रेतकी प्यास मिट जाती। जब प्रेतको मालूम हुआ कि ये महात्मा हैं, तब एक दिन प्रत्यक्ष होकर उसने कहा कि आपकी जो इच्छा हो, कहिये, मैं पूर्ण करूँगा। तुलसीदासने कहा—‘मैं दशरथकुमार भगवान् रामका दर्शन करना चाहता हूँ।’ प्रेतने कुछ सोचकर कहा कि कथा सुननेके लिये प्रतिदिन श्रीहनुमान्जी आते हैं, उन्हें इस प्रकार पहचाना जा सकता है कि वे सबसे पहले आते और पीछे जाते हैं। उनका वेश बड़ा अमंगल होता है। शरीरमें कोढ़ दीखती है। समय देखकर उनके चरण पकड़ लेना और हट करके उनसे भगवान्का दर्शन करानेको कहना।’ तुलसीदासने वैसा ही किया। श्रीहनुमान्जीने कहा—‘तुम्हें चित्रकूटमें भगवान्के दर्शन होंगे।’ तुलसीदासजीने चित्रकूटकी यात्रा की।

उस समय मार्गमें तुलसीदासजीके मनकी क्या अवस्था थी? इस बातका अनुभव उन्हीं लोगोंको हो सकता है, जिन्होंने ऐसी ही मनोदशामें कभी यात्रा की है। श्रीमद्भागवतमें मथुरासे वृन्दावन जाते समय अकूरकी जो मनोदशा हुई थी, तुलसीदासजीकी भी उससे मिलती जुलती ही थी। श्रीहनुमान्जीने कहा था कि चित्रकूटमें भगवान्के दर्शन होंगे। इस बातपर उन्हें पूर्ण विश्वास था तथापि वे अपने पिछले कर्मोंको सोचकर निराश हो जाते। वे सोचने लगते—‘अनेकों जन्मसक तपस्या करनेवाले अपने शुद्ध अन्तःकरणसे जिनका ध्यान करनेमें असमर्थ होते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीरामके दर्शन मेरे-जैसे नीच विषयासक्त साधनहीन प्राणीको कैसे होंगे?’ दूसरे ही क्षणमें उन्हें भगवान्की दयालुताका स्मरण हो आता और आतुर होकर अपने शरीरकी सुख भूलकर बड़े वेगसे चित्रकूटकी ओर दौड़ने लगते।

चित्रकूटमें रामघाटपर उन्हींने अपना आसन लगाया। वे प्रतिदिन मन्दाकिनीमें स्नान करते, मन्दिरोंमें भगवान्के दर्शन करते, रामायणका पाठ करते और निरन्तर भगवान्के नामका जप करते, एक दिन वे प्रदक्षिणा करने गये। मार्गमें उन्हें अनूपरूप भूषशिरोमणि भगवान् रामके दर्शन हुए। उन्हींने देखा कि दो बड़े ही सुन्दर राजकुमार

मा० अं० ४—१

दो घोड़ोंपर सवार होकर हाथमें धनुषबाण लिये शिकार खेलने जा रहे हैं। उन्हें देखकर तुलसीदासजी मुग्ध हो गये, परन्तु ये कौन हैं? यह नहीं जान सके। पीछेसे श्रीहनुमान्जीने प्रकट होकर सारा भेद बताया। वे पश्चात्ताप करने लगे, उनका हृदय उत्सुकतासे भर गया। श्रीहनुमान्जीने उन्हें धैर्य दिया कि फिर प्रातःकाल दर्शन होंगे। तब कहीं जाकर तुलसीदासजीको सन्तोष हुआ।

संवत् १६०७ मौनी अमावस्या बुधवारकी बात है, प्रातःकाल होते-न-होते तुलसीदासजी विरहसे व्याकुल होकर बैठ गये और मार्गमें अपनी पलकोंका पाँवड़ा बिछाकर निर्निमेष नयनसे भगवान् रामके आनेकी प्रतीक्षा करने लगे। उसी समय भगवान् राम प्रकट हुए। उन्हींने तुलसीदासको सम्बोधन करके कहा—‘बाबा हमें चन्दन दो।’ श्रीहनुमान्जीने सोचा कि शायद इस बार भी तुलसीदास न पहचाने, इसलिये उन्हींने तोतेका वेश धारण करके चैतावनीका दोहा पढ़ा—

चित्रकूटके घाटपर, मड़ संतनको मीर।

तुलसीदास चंदन घिसें तिलक देत रघुबार ॥

तुलसीदास अतृप्त नेत्रोंसे भगवान् रामकी मनमोहिनी छविमुधाका पान करने लगे। देहकी सुख भूल गयी, आँखोंसे आँसूकी धारा बह चली। अब चन्दन कौन घिसे? भगवान्ने पुनः कहा—‘बाबा मुझे चन्दन दो।’ परन्तु सुनता कौन? वे बेसुध पड़े थे। भगवान्ने अपने हाथसे चन्दन लेकर अपने एवं तुलसीदासके ललाटमें तिलक किया और अन्तर्धान हो गये। तुलसीदासजी पानी सूख जानेपर मछलीकी भाँति विरहवेदनासे तड़फड़ाने लगे। सारा दिन बीत गया, उन्हें पता नहीं चला। रातमें आकर श्रीहनुमान्जीने जगाया और उनकी दशा सुधार दी।

उन दिनों तुलसीदासजीकी बड़ी ख्याति हो गयी थी। गाँवकी स्त्रियाँ तोतेको पढ़ाते समय भी तुलसीदासकी महिमा ही पढ़ाया करती थीं। उनके द्वारा कई चमत्कारकी घटनाएँ भी घट गयीं, जिनसे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी और बहुतसे लोग उनके दर्शनको आने लगे। भीड़भाड़से तुलसीदासजी ऊब गये, वे एक गुफामें रहने लगे। चाहे कोई आवे जाय, वे निकलते ही नहीं थे। बहुतसे लोग आते, निराश होकर लौट जाते। एक दिन दरियास्वामी आये और गुफाके द्वारपर अड़सके कि मैं बिना दर्शन किये जाऊँगा ही नहीं। लघुश्रुति करनेके लिये निकलनेपर तुलसीदासजीसे भेंट हुई।

उन्होंने कहा कि लघुशंका आनेपर तो आप बाहर निकलते हैं और हमलोगोंके आनेपर नहीं निकलते तो क्या हम लघुशंकासे भी गये-बीते हैं। अन्तमें उन्होंने प्रार्थना की कि एक मचान बाँधकर आप बाहर बैठ जायें, लोग दर्शन करके नीचेसे लौट जाया करेंगे। तुलसीदासजीने उनका हठ मान लिया, वे बाहर बैठ गये। सब लोग आकर दर्शन करते और अपने जीवनको धन्य बनाते। मचानपर बैठनेके बाद उनकी मनोदशा ऐसी हो गयी थी कि उनकी आँखें खुली रहती और सामनेके जंगलमें भगवान् की अनेकों लीलाएँ प्रत्यक्ष दीखतीं। उन दिनों वृन्दावन, सण्डीला आदि अनेक स्थानोंसे संत-महात्मा आते और इनका दर्शन करके कृतार्थ होते।

संवत् १६१६ में जब तुलसीदासजी कामदगिरीके पास निवास कर रहे थे, तब गो० श्रीगोकुलनाथजीकी प्रेरणासे श्री-सूरदासजी उनके पास आये। उन्होंने तुलसीदासजीको अपना सूरसागर दिखाया और दो पद गाकर सुनाये। तुलसीदासजीने पुस्तक उठाकर हृदयसे लगा ली और भगवान् श्रीकृष्णकी बड़ी महिमा गायी। सूरदासजीका हाथ पकड़कर उन्हें सन्तुष्ट किया और श्रीगोकुलनाथजीको एक पत्र लिख दिया। सात दिन सत्संग करके सूरदासजी लौट गये।

उन्हीं दिनों मेवाड़से मीराबाईका पत्र लेकर सुखपाल नामक ब्राह्मण आया था। उनकी चिट्ठी पढ़कर तुलसीदासने पद बनाकर उत्तर दिया कि सब छोड़कर भगवान् का भजन करना ही उत्तम है। *

बड़े तड़के एक बालक आता। वह तुलसीदासको अपने मधुर कण्ठसे बड़े सुन्दर-सुन्दर पद सुनाता। एक बार प्रसन्न होकर तुलसीदासजीने उसके लिये चार नये पद लिख दिये। उसने उन्हें एक ही दिनमें कण्ठस्थ कर लिये और दूसरे दिन गाकर सुना दिये। वह हठ करने लगा कि और पद लिख दीजिये। तुलसीदासजीने स्वीकार कर लिया और इसी प्रकार प्रतिदिन

* जाके प्रिय न राम-बैदेही।

तजिये ताहि कोटि बैरी सम, बचपि परम सनेही ॥ १ ॥

तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषण बंधु, भरत महतारी।

बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-वन्तनिह, भये मुद-मंगलकारी ॥ २ ॥

नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेम्य जहाँ लौ।

अंजन कहा ओखि जेहि फूटै बहुतक कहाँ कहाँ लौ ॥ ३ ॥

तुलसी सो सब भँति परमहित पूज्य प्रानते प्यारो।

जासों होय सनेह राम-पद, यतो मतो हमारो ॥ ४ ॥

लिखने लगे। संवत् १६२८ में तुलसीदासजीने उन सब पदोंको इकट्ठा कर लिया जिनसे रामगीतावली और श्रीकृष्णगीतावली दो ग्रन्थ पूरे हो गये। उनमें कुछ सुधार करके श्रीहनुमान्जीको सुनाये, उन्होंने सुनकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और आशा की कि अब तुम अयोध्यामें जाकर रहो। हनुमान्जीकी आशा पाकर तुलसीदासजीने वहाँसे यात्रा की।

उन दिनों प्रयागमें माघमेला था। वहाँ कुछ दिनोंतक वे ठहर गये। पर्वके छः दिन बाद उन्हें वटवृक्षके नीचे दो मुनियोंके दर्शन हुए। वे तपस्याकी मूर्ति थे, उनके मुख-मण्डलसे अलौकिक व्योम निकल रही थी। तुलसीदास प्रणाम करके दूर ही खड़े हो गये। उन्होंने इशारेसे बुलाकर अपने पास बैठा लिया। उनके दिये हुए आसनपर न बैठकर गोस्वामीजी जमीनपर ही बैठ गये। वहाँ उस समय वही कथा चल रही थी, जो कथा सूक्तक्षेत्रमें इन्होंने अपने गुरु श्री-नरहरिदाससे सुनी थी। तुलसीदासजीके पूछनेपर उन मुनिने कहा कि पहले-पहल इसकी रचना श्रीशंकरजीने की है। उन्होंने पार्वती और काकभुशुण्डिको सुनायी, मैंने काकभुशुण्डिके सुनी और अब मैं (याज्ञवल्क्य) भरद्वाजको सुना रहा हूँ। कथा समाप्त होनेपर तुलसीदास अपने आसनपर लौट आये। दूसरे दिन उसी समय फिर वहाँ गये, परन्तु वहाँ न कथा थी, न ऋषि थे, न वह वट ही था। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, भगवान् की लीला समझकर उन्होंने सन्तोष किया और वे वहाँसे काशीकी ओर चल पड़े। मार्गमें एक वटवृक्ष पड़ा, जिसके नीचे बैठते ही उनकी वृत्ति इस प्रकार चढ़ गयी कि तीन दिनतक उतरी ही नहीं। उसके बाद विन्ध्याचल (चुनारगढ़) के राजाको कैदखानेसे छुड़ाते हुए वे काशी पहुँचे और वहाँ प्रह्लादघाटपर एक ब्राह्मणके घर निवास किया। वहाँ उनकी कवित्वशक्ति स्फुरित हो गयी और वह संस्कृतमें रचना करने लगे। यह एक अद्भुत बात थी कि दिनमें वे जितनी रचना करते रातमें सब-की-सब लुप्त हो जाती। यह घटना रोज घटती, परन्तु वे समझ नहीं पाते थे, कि मुझको क्या करना चाहिये ?

आठवें दिन तुलसीदासजीको स्वप्न हुआ। भगवान् शंकरने कहा कि तुम अपनी भाषामें काव्य-रचना करो। नींद उचट गयी, तुलसीदास उठकर बैठ गये, उनके हृदयमें स्वप्नकी आवाज गूँजने लगी। उसी समय भगवान् शिव और माता पार्वती दोनों ही उनके सामने प्रकट हुए। तुलसीदासने साष्टांग प्रणाम किया। शिवजीने कहा—‘भैया ! अपनी मातृ-भाषामें काव्य निर्माण करो, संस्कृतके पचड़ेमें मत पड़ो।

जिससे सबका कल्याण हो वही करना चाहिये। बिना सोचे-विचारे अनुकरण करनेकी आवश्यकता नहीं है, तुम जाकर अयोध्यामें रहो और वहीं काव्य-रचना करो। मेरे आशीर्वादसे तुम्हारी कविता सामवेदके समान सफल होगी।' इतना कहकर श्रीगौरीशंकर अन्तर्धान हो गये और उनकी कृपा एवं अपने सौभाग्यकी प्रशंसा करते हुए तुलसीदासजी अयोध्या पहुँचे।

वे सरयूस्नान करके अयोध्याके मन्दिरों, गलियों और अरण्योंमें विचरने लगे। एक संतने उनसे कहा—'चलिये आपके रहनेके लिये एक रमणीय स्थान ढूँढ़ें।' वे उन्हें एक स्थानपर ले गये, जहाँ बहुतसे बरगदके वृक्ष लगे हुए थे। उनमें एक सबसे बड़ा वट-वृक्ष था, जिसके नीचे बड़ी ही सुन्दर बेदी थी। उस बेदीपर अग्निके समान देदीप्यमान एक महात्मा सिद्धासनसे बैठे हुए थे। वह स्थान तुलसीदासजी को इतना अच्छा लगा कि उनके मनमें हठात् यह इच्छा हो गयी कि यहीं कुटी बनाकर रहें। जब तुलसीदासजी उन महात्माके पास गये, तब उन्होंने अपना आसन छोड़ दिया और कहा कि मेरे गुरुने जो आदेश किया था, वह पूरा हो गया। उन्होंने कहा था कि यहीं तुलसीदासजी रामायणकी रचना करेंगे, इसलिये यह सिद्धपीठ है, भीहनुमानजीके बलसे आदिकर्वाश्वर वाल्मीकि ही तुलसीदासजीके रूपमें प्रकट होकर भाषामें रामकथाका विस्तार करेंगे, उनके आते ही यह बगीचा और कुटी उन्हें सौंप देना और शरीर त्याग करके मेरे पास आ जाना। इतना कहकर वे वहाँसे हट गये और योगसे अग्नि धारण करने लगे। उनका शरीर तुलसीदासजीके सामने ही जलकर भस्म हो गया। यह कौतुक देखकर गोस्वामीजीके मुखसे एकाएक निकल पड़ा—'भगवन्! तुम्हारी बलिहारी है।'।

तुलसीदासजी वहाँ रहने लगे। एक समय दूध पीते थे, भगवान्का भरोसा था, संसारकी चिन्ता उनका स्पर्श नहीं कर पाती थी। कुछ दिन यों ही बीते। संवत् १६३१ आ गया। उस वर्ष चैत्र शुद्ध रामनवमीके दिन प्रायः वैसा ही योग जुट गया था, जैसा त्रेतामें रामजन्मके दिन था। उस दिन प्रातःकाल भीहनुमानजीने प्रकट होकर तुलसीदासजीका अभिषेक किया, शिव, पार्वती, गणेश, सरस्वती, नारद और शेषने आशीर्वाद दिये और सबकी कृपा एवं आज्ञा प्राप्त करके भीतुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसकी रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष सात महीने छब्बीस दिनमें श्रीरामचरितमानसकी रचना समाप्त हुई।

संवत् १६३३ मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें रामविवाहके दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये।

यह कथा पाखण्डियोंके छल-प्रपञ्चको मिटानेवाली है। पवित्र सात्त्विक धर्मका प्रचार करनेवाली है। कलिकालके पाप-कलापका नाश करनेवाली है। भगवत्प्रेमकी छटा दिखानेवाली है। संतोंके चित्तमें भगवत्प्रेमकी लहर पैदा करनेवाली है। भगवत्प्रेम श्रीशिवजीकी कृपाके अधीन है, यह रहस्य बतानेवाली है। इस दिव्य ग्रन्थकी समाप्ति मंगलवारको हुई, उसी दिन इसपर लिखा गया कि शुभ मिति हरिः ओम् तत्सत्। देवताओंने जय-जयकारकी ध्वनि की और फूल बरसाये। सब्बी बात तो यह है कि यह ग्रन्थ जिस दिन प्रारम्भ किया गया था उसी दिन समाप्त भी हो गया था, परन्तु मनुष्यकी दुर्बल लेखनीने इसके पूरा होनेमें इतना विलम्ब लगा दिया। उसी समय श्रीगणेशजीने इस ग्रन्थकी पाँच प्रतियाँ लिखी और वे तत्काल सत्यलोक, कैलास, नागलोक, युलोक और दिक्पाललोकमें भेज दी गयीं। चारों ओर आनन्द मनाया जाने लगा। देवता, मनुष्य आदि सभी सम्प्रदायोंके महात्माओंने इसे स्वीकार किया। इसके पश्चात् श्रीहनुमानजीने प्रकट होकर अथसे इतितक पूरी पुस्तक सुनी। श्रीतुलसीदासजीको वरदान दिये, रामायणकी प्रशंसा की। श्रीरामचरितमानस क्या है इस बातको सभी अपने-अपने भावके अनुसार समझते एवं ग्रहण करते हैं। परन्तु अब भी उसकी वास्तविक महिमाका स्पर्श विरले ही पुरुष कर सके होंगे।

मनुष्योंमें सबसे प्रथम यह ग्रन्थ सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ मिथिलके परम संत श्रीरूपारुणस्वामीजीको। वे निरन्तर विदेह जनकके भावमें ही मग्न रहते थे और श्रीरामजीको अपना जामाता समझकर प्रेम करते थे। गोस्वामीजीने उन्हेंको सबसे अच्छा अधिकारी समझा और श्रीरामचरितमानस सुनाया। उसके बाद बहुतोंने रामायणकी कथा सुनी। उन्हीं दिनों भगवान्की आज्ञा हुई कि तुम काशी जाओ और श्रीतुलसीदासजीने वहाँसे प्रस्थान किया।

काशीमें आकर गोस्वामीजीने भगवान् शिव और माता अन्नपूर्णाको श्रीरामचरितमानसका पाठ सुनाया। रातको पुस्तक श्रीविश्वनाथजीकी मूर्तिके पास रख दी, प्रातःकाल पट खुलनेके समय बड़े-बड़े विद्वान्, संन्यासी, महात्मा वहाँ उपस्थित हुए। सबके सामने पट खोला गया, सबने बड़े आश्चर्यसे देखा कि दिव्याक्षरोसे पुस्तकपर लिखा हुआ है 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' और नीचे हस्ताक्षर है सही शंकर। न केवल लिखा हुआ था

बल्कि सब लोगोंने अपने कानोंसे सुना 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' । यह बात चारों ओर फैल गयी, लोगोंमें आनन्दका समुद्र उमड़ पड़ा । जय-जयकी ध्वनि होने लगी । सभी अपना-अपना प्रेम प्रकट करने लगे ।

पण्डितोंके मनमें बड़ी चिन्ता हुई, उन्होंने सोचा हमारा तो सब मान-महात्म ही खो गया । यह आशीर्वादात्मक ग्रन्थ जब सब लोग पढ़ेंगे तब फिर हम पण्डितोंको कौन पूछेगा ? वे दल बाँधकर निन्दा करने लगे और उस पुस्तकको ही नष्ट कर देनेका उद्योग करने लगे । पुस्तक चुरानेके लिये दो चोर भेजे गये । उन्होंने जाकर देखा कि तुलसीदासकी कुटीके आस-पास दो वीर हाथमें धनुष-बाण लेकर पहरा दे रहे हैं । वे बड़े ही सुन्दर श्याम और गोरे वर्णके थे । रातभर उनकी सावधानी देखकर चोर बड़े प्रभावित हुए और उनके दर्शनसे उनकी बुद्धि भी शुद्ध हो गयी । उन्होंने तुलसीदासजीके पास जाकर सब वृत्तान्त कहा और पूछा कि आपके वे पहरेदार कौन हैं ? तुलसीदासजीकी आँखोंसे आँसूकी धारा बह चली, वाणी गद्गद हो गयी । अपने प्रभुके कृपासमुद्रमें वे डूबने-उतराने लगे । उन्होंने अपनेको सँभालकर कहा—'तुम बड़े भाग्यवान् हो, तुम धन्य हो, तुम्हें भगवान्के दर्शन प्राप्त हुए ।' उन चोरोंने अपना रोजगार छोड़ दिया और वे भजनमें लग गये । तुलसीदासजीने कुटीकी सब वस्तुएँ लुटा दीं, मूल पुस्तक यत्नके साथ अपने मित्र टोडरमलके घर रख दी । श्रीगोस्वामीजीने एक दूसरी प्रति लिखी । उसीके आधारपर पुस्तकको प्रतिलिपियाँ तैयार होने लगीं । दिन-दूना, रात-चौगुना प्रचार होने लगा । पण्डितोंका दुःख बढ़ने लगा, उन्होंने प्रसिद्ध तान्त्रिक बटेश्वर मिश्रसे प्रार्थना की कि हम लोगोंको बड़ी पीड़ा हो रही है ! किसी प्रकार तुलसीदासका अनिष्ट होना चाहिये । उन्होंने मारण प्रयोग किया और प्रेरणा करके भैरवको भेजा । भैरव तुलसीदासके आश्रमपर गये । वहाँ हनुमानजीको तुलसीदासजीकी रक्षा करते देखकर वे भयभीत होकर लौट आये, मारणका प्रयोग करनेवाले बटेश्वर मिश्रके प्राणोंपर ही आ बँती । अब भी पण्डितोंका समाधान नहीं हुआ । उन्होंने श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीके पास जाकर कहा कि भगवान् शिवने उनकी पुस्तकपर सही तो कर दी है परन्तु वह किस श्रेणीकी पुस्तक है यह बात नहीं बतलायी है । अब आप उसे देखिये और बतलाइये कि वह किसके समकक्ष है । श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीने रामायणकी पुस्तक मँगायी । उसका आयोपान्त अवलोकन किया, उन्हें बड़ा आनन्द हुआ । उन्होंने उस पुस्तकपर यह सम्मति लिख दी ।

आनन्दकानने ह्यस्मिन् जङ्गमस्तुलसीतरुः ।

कवितामञ्जरी भाति रामश्चमरमूर्धिता ॥

जब पण्डितोंने आकर श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीसे पूछा तब स्वामीजीने कहा कि यह बात श्रीशंकरजीसे ही क्यों न पूछ ली जाय । पण्डितोंने स्वीकार किया । श्रीशंकरजीके सामने सबसे ऊपर वेद, वेदोंसे नीचे शास्त्र, शास्त्रोंसे नीचे पुराण और पुराणोंके नीचे रामचरितमानस रख दिया गया । प्रातःकाल पठ खठनेके समय लोगोंकी भीड़ इकट्ठी हो गयी, लोगोंने बड़े आश्चर्यके साथ देखा कि वेदोंके ऊपर श्रीरामचरितमानस ग्रन्थ रक्खा हुआ है । पण्डित लोग संकोचसे गड़ गये । उन्होंने तुलसीदासजीसे क्षमा माँगी, उनके चरणोदक लिये ।

नवद्वीपके एक बड़े भारी विद्वान् थे, उनका नाम था श्रीरवि दत्त । उन्होंने तुलसीदासजीके न चाहनेपर भी उनसे शास्त्रार्थ किया । जब हार गये, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ । श्रीगोस्वामीजी स्नान करने जा रहे थे कि वे उन्हें मारनेके लिये लाठी लेकर पहुँच गये । परन्तु रक्षकरूपमें श्रीहनुमान्जीको देखकर भग गये और अपनी करनीपर आप ही लजित हुए । उन्होंने जाकर गोस्वामीजीको प्रसन्न किया और वर देनेके लिये बड़ा हठ किया । उन्होंने यही वर माँगा कि आप काशीपुरी छोड़ दीजिये । तुलसीदासजी वचन दे चुके थे, इसलिये विवश थे । उन्होंने भगवान् शंकरसे प्रार्थना करके दक्षिण दिशाके लिये प्रस्थान किया । श्रीशिवजीने तुलसीदासजीको दर्शन देकर उनके क्षुब्ध मनको धैर्य दिया और लौटा लिया ।

श्रीतुलसीदासजीका जाना सुनकर रवि दत्त पण्डित भगवान् शंकरके दर्शन करने गये । उनके जाते ही मन्दिरका पट बंद हो गया और क्रोधभरी आवाज सुनायी पड़ी कि जाकर गोस्वामीजीके पैरपर गिरो और विनय करके उन्हें मना लाओ । उन्हें यही लकर बसाओ, नहीं तो तुम्हारा नाश हो जायगा । जब टोडरमलजीको यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने आकर तुलसीदासजीसे बड़ी विनती की और बहुत आग्रह करके अस्तीघाटपर रहनेके लिये स्थान और गंगाजीका घाट बनवा दिया । श्रीगोस्वामीजी वहीं रहने लगे । रातमें तलवार लेकर कलियुग आया, उसने श्रीतुलसीदासजीको भयभीत करके कहा—'अपनी सब पुस्तकें जलमें डुबा दो, नहीं तो मैं तुम्हें सावधान किये देता हूँ कि तुम्हें बड़ा कष्ट दूँगा ।' इतना कहकर वह चला गया । उन्होंने श्रीहनुमान्जीका ध्यान किया । श्रीहनुमान्जीने कहा—'ऐसे तो वह मानेगा नहीं, तुम अपनी विनयावली लिखकर दो तो मैं उसे दण्ड दिलाऊँ ।' श्रीगोस्वामीजीने उसी

समय विनयावलीका निर्माण किया। भगवान्ने सुनकर उसपर सही कर दी और तुलसीदासजीको निर्भय कर दिया।

गोस्वामीजीने जनकपुरकी यात्रा की। रास्तेमें बहुत-से लोगोंका कल्याण किया। अनेकों चमत्कार प्रकट हुए। एक स्थानपर धनीदासने आकर कहा कि 'कल मेरे प्राण जानेवाले हैं, मैंने यह कहकर कि भगवान् स्वयं भोजन कर रहे हैं चूहेको प्रसाद खिला दिया। यहाँके जमींदार रघुनाथसिंहकी मेरा अपराध माफ़ हो गया। उन्होंने कहा है कि यदि कल मेरे सामने भगवान् भोजन नहीं करेंगे तो मैं तुम्हारा वध कर डालूँगा। अब आप मेरी रक्षा कीजिये।' गोस्वामीजीने उन्हें दाढ़स बँधाया, धनीदासने रसोई बनायी और जमींदारके सामने आकर भगवान्ने भोजन किया। गोस्वामीजीने भगवान्की महिमा गायी, जमींदार उन्हें अपने घर ले गया। उसके गाँवका नाम बदलकर रघुनाथपुर रख दिया। वहाँसे चलकर विचरते-विचरते वे हरिहरक्षेत्र पहुँचे और मिथिला पास ही रह गयी। श्रीजनकनन्दिनी श्रीजानकीजी एक बालिकाका वेश धारण करके आयीं और उन्होंने गोस्वामीजीको खीर खिलायी। जब गोस्वामीजीको यह बात मालूम हुई, तब वे उनकी अहैतुकी दयाका अनुभव कर विह्वल हो गये।

आगे चलनेपर ब्राह्मणोंने उनके पास आकर कहा कि हम लोग बड़ी विपत्तिमें हैं। यहाँके नवाबने हमारी बारहों गाँवोंकी वृत्ति छीन ली है। गोस्वामीजीने श्रीहनुमान्जीका स्मरण किया और उन्होंने दण्ड देकर उनकी वृत्ति वापस करा दी। संवत् १६४० में वे मिथिलासे काशी आये और वहाँ दोहावलीका संग्रह किया। संवत् १६४१ मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी रविवारको उन्होंने वाल्मीकीय रामायणका लिखना समाप्त किया। संवत् १६४२ वैशाख शुक्ल श्रीजानकीनवमीके दिन इन्होंने शतसर्दका लिखना प्रारम्भ किया।

एक बार काशीमें महामारीका प्रकोप हुआ। सब लोगोंने बड़ी दीनतासे प्रार्थना की कि हे स्वामिन्! आप हमलोगोंकी प्रार्थना सुनिये। हमलोग बड़े निर्बल हैं। हमारी रक्षा भगवान्के सेवक या स्वयं भगवान् ही कर सकते हैं। उनकी दीनता देखकर गोस्वामीजीका कोमल चित्त द्रवित हो गया और उन्होंने कवित्त बनाकर भगवान्से प्रार्थना की। भगवान्की कृपासे महामारी भग गयी, सब लोग सुखी हो गये।

एक दिन महाकवि केशवदास तुलसीदासजीसे मिलने आये। बाहरसे उन्होंने सूचना भेजी कि मैं मिलना चाहता हूँ। गोस्वामीजीने कहा—'केशव प्राकृत कवि हैं, उन्हें आने दो।' यह बात केशवके कानोंमें पड़ी, वे बिना मिले ही लौट

गये। अपनी तुच्छता उनकी समझमें आ गयी और वहाँके सेवकके पुकारनेपर उन्होंने कहा कि मैं कल आऊँगा। घर जाकर रातोंरात रामचन्द्रिकाकी रचना की और दूसरे दिन गोस्वामीजीके पास आये। दोनों खूब दिल खोलकर मिले, बड़ा आनन्द आया।

आदिलशाही राज्यके दानाध्यक्ष दत्तात्रेय नामके ब्राह्मण गोस्वामीजीके पास आये। उनके प्रसाद माँगनेपर गोस्वामीजीने अपनी हस्तलिखित वाल्मीकीय रामायणजीकी पोथी दे दी। उन दिनों जिसपर विपत्ति आती वही गोस्वामीजीके पास आता और गोस्वामीजी उसकी रक्षा करते। नीमसारके वनखण्डीजीके पास तीर्थयात्रा करता हुआ एक प्रेत आया, गोस्वामीजीके दर्शनमात्रसे ही वह प्रेतयोनिसे छूट गया और दिव्यरूप धारण करके भगवान्के धाममें चला गया। वनखण्डीजीकी प्रार्थनासे गोस्वामीजीने तीर्थयात्रा की। अयोध्यामें पहुँचकर उन्होंने गायकको रामगीतावली दे दी। वहाँसे वे अनेको तीर्थोंमें गये, कहीं दुःस्त्रियोंकी रक्षा करते, कहीं सत्संगसे साधुओंको आनन्दित करते, कहीं भगवान्की कथा कहते और कहीं प्रेममें मग्न होकर नाचने लगते। उस यात्रामें गोस्वामीजीने कितने लोगोंका लौकिक, पारलौकिक और पारमार्थिक कल्याण साधन किया यह वर्णनातीत है।

नीमसार पहुँचकर वनखण्डीजीकी इच्छाके अनुसार सब तीर्थस्थानोंको ढूँढ़ निकाला और उनकी स्थापना की। उस समय संवत् १६४९ था। वहाँसे अनेक स्थानोंमें होते हुए वृन्दावन पहुँचे। वहाँ रामघाटपर ठहरे। चारों ओर धूम मच गयी। लोग दर्शनके लिये आने लगे। गोस्वामीजी नामा स्वामीके पास गये। उन्होंने बड़ा सम्मान किया। फिर उन्हींके साथ भगवान्का दर्शन करनेके लिये श्रीमदनमोहनजीके दर्शन करने गये। तुलसीदासजीको राम-उपासक जानकर श्रीमदनमोहनजीने धनुषबाण धारण करके उन्हें रामरूपमें दर्शन दिया। भगवान् बड़े ही भक्तवत्सल हैं, उनकी लीला ऐसी ही होती है। बरसानेभरमें यह बात फैल गयी, गोस्वामीजीके स्थानपर बड़ी भीड़ हो गयी। कुछ कृष्ण-उपासकोंके मनमें द्वेषभाव आ गया, वे धनुषबाण धारण करनेपर शंका करने लगे। उन्हें गोस्वामीजीने समझाया कि भैया! रामने अपने सेवकोंका प्रण कब नहीं रक्खा है? वे सर्वदा अपने भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करते हैं।

कुछ लोग दक्षिण देशसे भगवान् रामकी मूर्ति लेकर स्थापना करनेके लिये श्रीअवध जा रहे थे। यमुनातटपर

उन्होंने विभ्राम किया। उदय नामके ब्राह्मण वह मूर्ति देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने चाहा कि इस मूर्ति की स्थापना यहीं हो जाय। गोस्वामीजीसे प्रार्थना की। दूसरे दिन जब वे लोग उस प्रतिमाको उठाकर ले जाना चाहे तब वह उठी ही नहीं। तब उसकी स्थापना वही कर दी। गोस्वामीजीने उनका नाम श्रीकौसल्यानन्दन रख दिया। श्रीगोस्वामीजीके विद्या पढ़नेके समयके गुरुभाई नन्ददासजी कनौजिया यहीं मिले। उनके साथ भगवान्‌का दर्शन एवं प्रसाद पाकर भक्तोको आनन्दित कर गोस्वामीजीने चित्रकूटकी यात्रा की।

चित्रकूटमें सतकाम नामके एक ब्राह्मण गोस्वामीजीके पास आये। उनकी इच्छा थी कि मैं गोस्वामीजीसे दीक्षा लूँ। गोस्वामीजीने देखा कि अभी इसके मनमें कामविकार है, इसलिये दीक्षा नहीं दी। वे ब्राह्मण वहीं हट करके टिक गये। एक दिन एक स्त्रीके आनेपर उनकी वासना व्यक्त हो गयी, उनके मनकी अवस्था देखकर गोस्वामीजीने उन्हें समझाया, प्रेमसे उनका विकार नष्ट कर दिया। वे ब्राह्मण गोस्वामीजीके चरणोंपर गिर पड़े और उनके कृपापात्र हो गये। एक बड़ा दरिद्र ब्राह्मण दरिद्रतासे व्यथित होकर मन्दाकिनीमें डूबने जा रहा था, गोस्वामीजीने पारस पत्थर प्रकट करके उसकी दरिद्रता नष्ट कर दी।

दिल्लीके बादशाहने अपना आदमी भेजकर गोस्वामीजीको बुलवाया। जब गोस्वामीजी चित्रकूटसे चलकर ओड़छा होते हुए दिल्ली जाने लगे, तब ओड़छेके पास रातमें केशवदास प्रेतके रूपमें मिले। गोस्वामीजीने विना प्रयास ही उनका उद्धार किया और वे विमानपर चढ़कर स्वर्ग गये। चरवारीके ठाकुरकी लड़की, जो कि बहुत ही सुन्दरी थी, उसका विवाह एक स्त्रीके साथ हो गया था। वरकी माताने सन्तान होते ही यह घोषणा कर दी थी कि मेरे पुत्र हुआ है, परन्तु अब तो विवाह हो चुका था, लोग करते ही क्या! जब गोस्वामीजी उधरसे निकले तब लोगोंने उन्हें घेर लिया और प्रार्थना की कि इस कन्याकी रक्षा कीजिये। गोस्वामीजीने श्रीरामचरित-मानसका नवाङ्क पाठ किया और वह स्त्रीसे पुरुष हो गया। यह देखकर गोस्वामीजीका शरीर पुलकित हो गया और उनके मुँहसे अतर्कित ही 'जय जय सीताराम' निकल गया।

गोस्वामीजी दिल्ली पहुँचे। बादशाहने दरबारमें बुलाकर कहा कि कोई चमत्कार दिखाओ। गोस्वामीजीने कहा कि मुझे तो कोई चमत्कार मालूम नहीं। बादशाहने खीझकर उन्हें कैद कर लिया। उनके जेलमें जाते ही चानरोंने बड़ा

उत्पात किया, महलमें कोहराम मच गया। बादशाहको बड़ी चोट आयी, फिर तो तुरन्त गोस्वामीजी जेलसे छोड़ दिये गये और बड़ा अनुनय-विनय करके उनसे अपराध क्षमा कराया गया। बादशाहने बड़े सम्मानके साथ उन्हें विदा किया।

दिल्लीसे चलकर अनेकों प्राणियोंका उद्धार करते हुए, लोगोंको अपने धर्ममें स्थिर और भगवान्‌की ओर बढ़ाते हुए वे अयोध्या पहुँचे। वहाँ एक भक्त भजन गाया करते थे। उनके भजनमें कुछ अशुद्धि थी, गोस्वामीजीने उसे सुधारनेको कहा। वे सुधार न सके, इससे उनके भजनमें विघ्न पड़ गया। स्वप्नमें गोस्वामीजीसे भगवान्‌ने कहा—'तुम उसके भजनमें शुद्ध-अशुद्धका विचार मत करो। वह जैसे भजन करता है, वैसे ही करने दो।' गोस्वामीजीने जाकर उससे कहा कि 'तुम जैसे गाते थे, वैसे ही गाया करो।' गोस्वामीजीने उनके मुखसे भगवान्‌की बालकीला सुनी। बड़ा आनन्द हुआ। उन्हें पीताम्बर देकर गोस्वामीजीने सम्मान किया।

मुरारीदेवसे भेंट करके मल्लदासके साथ गोस्वामीजी काशी आये। काशीमें उन्होंने क्षेत्रसंन्यास ले लिया। शरीर वृद्ध हो गया था, फिर भी वे माघके महीनेमें सूर्योदयसे पूर्व गंगामें खड़े होकर मन्त्रजप किया करते थे। रोएँ खड़े होते, शरीर काँपता होता, परन्तु उन्हें इसकी तनिक भी परवा नहीं। एक दिन गंगा-स्नान करके निकलते समय उनकी धोतीका दो बूँद छीटा एक वेश्यापर पड़ गया। उसकी मनोदशा ही बदल गयी। वह बहुत देरतक उन्हें एकटक देखती रही, पीछे उसके मनमें बड़ा निर्वेद हुआ। उसकी आँखोंके सामने नरकके अनेकों दृश्य आ गये। उसने सब बखेड़ोंसे अपना पिण्ड छुड़ा लिया और उपदेश लेकर भगवान्‌के गुणोंका गायन करने लगी। गंगापार हरिदत्त नामके एक ब्राह्मण रहते थे। वे बहुत ही दरिद्र थे, उन्होंने गोस्वामीजीसे अपना दुःख निवेदन किया। गोस्वामीजीने गंगामातासे प्रार्थना की, उन्होंने उसको बहुत-सी जमीन देकर उसकी विपत्ति नष्ट कर दी।

एक मुलई नामका कलवार था, वह भक्तिपथ और गोस्वामीजीकी निन्दा किया करता था। उसकी मृत्यु हो गयी, सब लोग उसे टिकठीपर सुलाकर श्मशान ले गये। उसकी स्त्री रोती हुई आयी, उसने गोस्वामीजीको प्रणाम किया। गोस्वामीजीके मुँहसे निकल गया सौभाग्यवती होओ। जब उसने अपने पतिकी दशा बतलायी, तब तुलसीदासजीने उसके शवको अपने पास मँगवा लिया और मुँहमें चरणामृत देकर

उसे जीवित कर दिया। उसी दिनसे गोस्वामीजीने नियम ले लिया और बाहर बैठना छोड़ दिया।

तीन बालक बड़े ही पुण्यात्मा थे। वे प्रतिदिन गोस्वामीजी-के दर्शनके लिये आते। गोस्वामीजी उनका प्रेम पहचानते थे। वे केवल उन्हें ही दर्शन देनेके लिये बाहर निकलते और फिर अंदर बैठ जाते। जिन्हें दर्शन नहीं मिलता, वे इस बातसे अप्रसन्न थे, गोस्वामीजीको पक्षपाती बतलाते। एक दिन गोस्वामीजीने उनका महत्त्व सब लोगोंपर प्रकट किया। उनके आनेपर भी वे बाहर नहीं निकले। गोस्वामीजीका दर्शन न मिलनेपर उन तीनोंने अपने शरीर त्याग दिये। गोस्वामीजी बाहर निकले और सबके सामने भगवान्का चरणाभूत पिलाकर उन्हें जीवनदान दिया।

संवत् १६६९ वैशाख शुक्लमें टोडरमलजीका देहान्त हुआ। उसके पाँच महीने बाद उनके दोनों लड़कोंको उनकी धन-सम्पत्ति गोस्वामीजीने बाँट दी। इसके बाद छोटी-मोटी और कई रचनाएँ की, बाहुपीड़ा होनेपर हनुमानबाहुकका निर्माण किया। पहलेके ग्रन्थोंको दुहराया, दूसरोंसे लिखवाया। संवत् १६७० बीतनेपर जहाँगीर आया, वह बहुत-सी जमीन और धन देना चाहता था, परन्तु गोस्वामीजीने ली नहीं। एक दिन बीरबलकी चर्चा हुई, उनकी बुद्धि और वाक्-पटुताकी प्रशंसा की गयी। गोस्वामीजीने कहा—‘खेद है कि इतनी बुद्धि पाकर उन्होंने भगवान्का भजन नहीं किया।’

एक दिन एक अयोध्याका भंगी आया। गोस्वामीजीने उसे भगवान्का स्वरूप समझकर अपने हृदयसे लगा लिया। गिरनारके बहुत-से सिद्ध आकाशमार्गसे आये। वे तुलसीदास-का दर्शन करके बड़े आनन्दित हुए। उन्होंने बड़े प्रेमसे पूछा कि तुम कलियुगमें रहते हो फिर भी कामसे प्रभावित नहीं होते इसका क्या कारण है? यह योगकी शक्ति है अथवा भक्तिका बल है। गोस्वामीजीने कहा—‘मुझे न भक्तिका बल है, न ज्ञानका बल है, न योगका बल है। मुझे तो केवल भगवान्के नामका भरोसा है।’ गोस्वामीजीका उत्तर सुनकर वे सिद्ध बहुत प्रसन्न हुए। उनसे आज्ञा लेकर गिरनार चले गये।

गोस्वामीजीके पास चन्द्रमणि नामका एक भाट आया। उसने उनके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना की—मेरी आधी उमर विषयोंके भोगमें ही बीत गयी। अब जो बची है, वह भी वैसे ही न बीत जाय। इन्द्रियोंके कारण मेरी बड़ी हँसी हुई। कहीं अब भी न हो। मेरे मनमें काम-क्रोधादि बड़े-बड़े खल

रहते हैं। कहीं अब भी वे न रह जायें? गोस्वामीजी महाराज! अब मुझे भगवान्के चरणोंमें ही रखिये। काशीसे मत हटाइये।’ गोस्वामीजीने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। बड़ी प्रसन्नतासे कहा—‘तुम यहीं हमेशा रहो और भगवान्का गुणगान करो।’

गोस्वामीजीके पास चन्द नामका एक हत्यारा ब्राह्मण आया। दूर खड़ा होकर वह राम-राम कहने लगा। अपने इष्टदेवका नाम सुनकर तुलसीदास आनन्दमग्न हो गये और उसके पास जाकर उसे हृदयसे लगा लिया। आदरसे भोजन कराया और बड़ी प्रसन्नतासे कहा—

तुलसी जाके मुखनि ते, धोखेहुँ निरुस्त राम।

ताँके पगकी पगतरौ, मोंर तनको चाम ॥

यह बात बातकी बातमें सारे नगरमें फैल गयी। सन्ध्या होते-होते बड़े-बड़े ज्ञानी, ध्यानी, विद्वान् इकट्ठे हो गये। उन लोगोंने गोस्वामीजीसे पूछा—‘यह हत्यारा कैसे शुद्ध हो गया?’ गोस्वामीजीने कहा—‘वेदोंमें, पुराणोंमें नाममहिमा लिखी है, उसे पढ़कर देख लीजिये।’ उन लोगोंने कहा कि श्रिता तो है परन्तु हमारा विश्वास नहीं होता। आप कोई ऐसा उपाय करें जिससे हमारा विश्वास हो जाय। गोस्वामीजीने उसके हाथोंसे भगवान् शिवके नन्दीको भोजन कराया, यह देखकर सबको विश्वास हो गया। चारों ओर जय-जयकी ध्वनि होने लगी। निन्दकोंने गोस्वामीजीके पैरोंपर पड़कर क्षमा माँगी।

वह ब्राह्मण दिनभर गोस्वामीजीके स्थानपर बैठकर लोभवश राम-राम रटता। सन्ध्याके समय श्रीहनुमानजी उसे धन दे देते थे। उसने भगवान् रामके दर्शनके लिये बड़ा हठ किया। गोस्वामीजीने कहा—‘पेड़पर चढ़कर त्रिशूलपर कूद पड़ो। भगवान्के दर्शन हो जायेंगे।’ वह त्रिशूल गाड़कर वृक्षपर चढ़ा परन्तु कूदनेकी हिम्मत नहीं पड़ी। उतर आया। एक पछाही घुड़सवार उधरसे जा रहा था, उसने सब बातें पूछ लीं और पेड़पर चढ़कर त्रिशूलपर कूद पड़ा। उसे भगवान्के दर्शन प्राप्त हो गये। हनुमानजीने उसे तत्त्वज्ञानका उपदेश किया।

गोस्वामीजीका अन्तिम समय आ गया। उन्होंने अपनी दशा देखकर लोगोंसे कहा—‘श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रका वर्णन करके अब मैं मौन होना चाहता हूँ। आपलोग तुलसीदासके मुखमें अब तुलसी और सोना डालें।’ संवत् १६८० भावण कृष्ण तृतीया शनिवारको गंगाके तटपर अस्तीघाटपर गोस्वामी-

जीने राम-राम कहते हुए अपने शरीरका परित्याग किया ।*

इस प्रकार भीहनुमानजीकी प्रेरणा और आशासे तुलसी-दासजीके रूपमें पुनर्जन्म लेकर महर्षि वाल्मीकिने भगवान् रामके पवित्र चरित्रका लोगोमें विस्तार किया । जिसके श्रवणसे, कीर्तनसे, स्मरणसे लोगोको अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति होती है और सबसे बढ़कर भगवत्प्रेमकी उपलब्धि होती है । श्रीगोस्वामीजी अमर हैं, वे अब भी श्रीरामचरितमानसके रूपमें हमलोगोंके बीचमें विद्यमान हैं और अनन्त कालतक हमलोगोंमें ही रहकर हमलोगोंका कल्याण करेंगे । भक्त भगवान्से पृथक् नहीं होते । भक्त ही भगवान्के मूर्त स्वरूप हैं, वे कृपा करके हमारे हृदयको शुद्ध करें और भगवान्के चरणोंमें निष्कपट प्रेम दें ।

यह संक्षिप्त जीवनी गोसाईंजीके समकालीन श्रीबेनीमाधवदास-जीद्वारा रचित मूलगोसाईंचरित नामक पोथीके आधारपर लिखी गयी है । कुछ सज्जनोंने इस पोथीको अप्रामाणिक माना है परन्तु महात्मा बालकरामजी विनायकजी, रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदासजी, स्वर्गीय श्रीरामदासजी गौड़ आदि महानुभावोंने इसको अत्यन्त विश्वसनीय और प्रामाणिक माना है । बेनीमाधवदासजीकी पहली भेंट श्रीगोसाईंजीसे संवत् १६०९ और १६१६ के बीच हुई थी । गोसाईंजी महाराज १६८० में शकेतवासी हुए थे । इतने लम्बे परिचयवाले सज्जनकी लिखी जीवनीको अप्रामाणिक कैसे कहा जा सकता है ? इसके सम्बन्धमें स्व० गौड़जीने लिखा था—

मूलगोसाईंचरितमें वे सभी बातें मौजूद हैं जिनका अन्तःसाक्ष्य गोस्वामीजीकी रचनाओंसे मिलता है । उन बातोंको यहाँ दोहरानेसे लेखका कलेवर बहुत बढ़ जाता है । उन विषयोंपर सुभीतेसे और लेख लिखे जा सकते हैं । यहाँ हम इतना ही कहना चाहते हैं कि जो बातें अप्राकृतिक मालूम होती हैं, उनके समान बातें भक्तोंकी कथाओंमें, संसारके सभी देशोंके साहित्यमें पायी जाती हैं । जो बातें घटनासम्बन्धी

असंगति लिये हुए जान पड़ती हैं, उनकी सत्यताकी परख उन कसौटियोंपर नहीं की जा सकती जिनको अभी इतिहास स्वयं विश्वासयोग्य नहीं ठहरा पाया है । लिखा है कि गोसाईंजीसे चित्सुखाचार्य मिले थे, परन्तु चित्सुखाचार्य कब जन्मे, कहाँ जन्मे, इसका ही निश्चय नहीं है । मूलगोसाईंचरितसे उनके समयका कुछ पता लग जाता है । मीराबाईके देहान्तवर्षके सम्बन्धमें स्वयं झगड़ा है तो गोस्वामीजीसे उनके पत्रव्यवहारकी बात क्यों सन्दिग्ध मानी जाय ? उसीको क्यों न प्रमाण मानकर यह सिद्ध किया जाय कि मीराबाईकी मृत्यु १६२० के लगभग हुई जिससे कि उदयपुर दरबार और भारतेन्दुजीकी बातकी भी पुष्टि होती है । मीराकी ससुरालवालोंके निकट तो मीरा तभी मर गयी जब उन्होंने गृहस्थी छोड़ वैराग्य लिया । इस प्रकार बेनीमाधवदास जो अपने समयकी बात लिखते हैं, क्यों न स्वयं प्रमाणकी तरह ग्रहण किये जाय ?

बजाय इसके कि हम मूलगोसाईंचरितकी बातोंको इतिहासकी संदिग्ध सामग्रीसे परखें, क्यों न हम उस संदिग्ध सामग्रीकी ही मूलगोसाईंचरितसे जाँच करें ?

बेनीमाधवदासजी गोसाईंजीके शिष्य थे और श्रद्धालु भक्त थे । सम्भव है कि गुरुके सम्बन्धमें अपने विश्वासके अनुसार कुछ सुनी-सुनायी बातें भी लिखी हों । अच्छे-से-अच्छा लेखक अनेक बातोंमें अपनी स्मृति और धारणापर अत्यधिक विश्वास करके नेकनीयतीके साथ ऐतिहासिक भूलें कर सकता है । मूलगोसाईंचरितमें तिथियोंके देनेमें जो सावधानी बेनीमाधवदासजीने बरती है, उससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि बेनीमाधवदासजीने और घटनाओंके लिखनेमें भी साधारणतया सावधानी बरती होगी । उनके वर्णनका मेल यदि किसी और लेखकसे न मिले तो हमें बेनीमाधवदासपर अविश्वास करनेकी उतावली न करनी चाहिये बल्कि सत्यान्वेषणमें और अधिक प्रवृत्त होना चाहिये ।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय ।

* संवत् सोरह सै असी, असी गंगके तीर । आवन स्यामा ताज सनि, तुलसी तज्यो सरौर ॥

एक दोहा यह भी प्रसिद्ध है—

संवत् सोलह सै असी असी गंगके तीर । आवन सुझा सप्तमी तुलसी तज्यो सरौर ॥

इसी दोहेको देखकर कुछ सज्जनोंके द्वारा यह शंका की जाती है कि जब आवन सुझा सप्तमी श्रीगोस्वामीजीके परमधाम पधारनेकी तिथि है तब तब दिन जयन्ती क्यों मनायी जाती है । उन सज्जनोंको यह जानना चाहिये कि श्रीगोस्वामीजीकी जन्मतिथि तो आवन सुझा सप्तमी उपर्युक्त चरितमें निश्चित है ही । निधनतिथिमें अन्तर है । सम्भव है जन्मतिथिके अनुसार निधनतिथिके दोहे में भी लोग वैसा ही कहने लगे हों । अथवा आवन सुझा सप्तमीको ही उनका परमधामगमन हुआ हो, श्रीबेनीमाधवजी महाराजके केषमें भूल रही हो । अनुमान तो यही है कि श्रीबेनीमाधवजीके कथनानुसार निधनतिथि आवन कृष्ण १ ही होनी चाहिये ।



आंगन फिरत घुट्टुवनि धाये ।

नीलजलद तनु स्याम गम मिसु जर्ननि निरखि मुख निकट चोलाये ॥१॥ (गी०)

मानसके प्रासंगिक चरित्र

अगस्त्य

महर्षि अगस्त्य वेदोंके एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। उनकी स्त्रीका नाम लोपामुद्रा है। बहुत स्तुति-प्रार्थना करनेपर मित्र और वरुण देवताने अपना तेज एक घड़ेमें स्थापित किया था, उसीसे अगस्त्यकी उत्पत्ति हुई थी। ये दोनों ही भगवान् शंकरके बड़े भक्त थे। काशीमें रहकर वे सर्वदा प्रेमपूर्वक श्रीविश्वनाथकी उपासना किया करते थे। एक बार विन्ध्याचलको इस बातकी बड़ी ईर्ष्या हुई कि सब देवता सूर्य, चन्द्र आदि सुमेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं, मेरी क्यों नहीं करते? यदि वे मेरी प्रदक्षिणा नहीं करेंगे तो मैं उनका मार्ग बंद कर दूँगा, देखें वे कैसे मेरा अनादर करते हैं। पाषाण ही जो ठहरा, उसमें नम्रताके भाव कहाँसे आते, वह बढ़ने लगा। सूर्यका मार्ग बंद हो गया। सब देवताओंने और सूर्यने सोचा कि विन्ध्याचलने हम-लोगोंका मार्ग रोक दिया, अब संसारमें प्रकाश कैसे फैले? यह विपत्ति कैसे दूर हो? सब-के-सब महर्षि अगस्त्यकी शरणमें गये। अगस्त्य जानते थे कि लोक-कल्याणके लिये मेरे इष्टदेव शंकरने समुद्रसे निकले हुए हलाहल विषका पान कर लिया था। यदि मैं संसारके हितके लिये भारतका उत्तरीय प्रान्त छोड़ दूँ और दक्षिणमें ही चलकर रहूँ तो क्या हानि है? भगवान् शंकरकी पूजा तो वहाँ भी हो सकती है। महर्षि अगस्त्य अपनी धर्मपत्नी लोपामुद्राके साथ विन्ध्याचलके पास गये। विन्ध्याचल शापके भयसे उनके चरणोंमें गिर गया और कहा कि मेरे योग्य सेवा बताइये। अगस्त्यने कहा—‘जबतक मैं न आऊँ तबतक तुम यों ही पड़े रहना।’ महर्षि अगस्त्य उज्जैनकी ओर चले गये और वही रहकर भगवान् शंकरकी आराधना करने लगे। तबसे अबतक विन्ध्याचल ज्यों-का-त्यों पड़ा हुआ है। वे फिर नहीं लौटे।

महर्षि अगस्त्यने समय-समयपर लोगोंका बड़ा कल्याण किया है। वृत्रासुरके मरनेके पश्चात् बचे हुए दैत्य समुद्रमें रहने लगे थे, वे रातको बाहर निकलते और ऋषियोंको खा जाते। देवताओंकी प्रार्थनासे अगस्त्यने समुद्रका जल पी लिया और देवताओंने दैत्योंको मारनेका अवसर प्राप्त कर लिया। आतापी, वातापी नामके दो बड़े भयंकर राक्षस थे। वे ऋषियोंके पेटमें घुसकर उन्हें मार डालते थे।

महर्षि अगस्त्यने ही इस विपत्तिसे लोगोंकी रक्षा की। उनका लोक-कल्याणकारी चरित्र अलग अध्ययन करना चाहिये।

अजामिल

अजामिल कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उन्होंने समस्त वेद-वेदाङ्गोंका अध्ययन किया था! वे माता-पिताकी सेवा किया करते थे और भगवान् पर उनकी आस्था भी थी। एक दिन वे समिधा लेंनेके लिये जङ्गलमें गये हुए थे, एक वेद्यापर उनकी दृष्टि पड़ी। वह शराब पीकर दुराचारमें लगी हुई थी। अजामिल अभी नौजवान थे। ऐसे दृश्य उनके सामने कभी आये नहीं थे। क्षणभरके दुःसंगसे ही वे प्रभावित हो गये और उसे अपने घर ले आये। उनके अंदर दैवी सम्पत्तिके जितने गुण थे सब धीरे-धीरे नष्ट हो गये और वे चोरी, जुवाखोरी, शराब आदि पीनेमें धर्म-कर्म, जाति-जनेऊ सब भूल गये। दिन बीतते देर नहीं लगती। उनकी जवानी चली गयी, बुढ़ापा आ गया, मौत उनके सिरपर आ पहुँची।

जन्मभर उन्होंने पाप किया था, मृत्युके समय बड़ी पीड़ा हुई। किसीके किये-धरे कुछ नहीं हुआ। यमराजके दूत आये, उनकी भयंकर आकृति और तर्जन-गर्जन देखकर अजामिल बहुत डरे। प्राण निकलनेके समय वे अपने छोटे बच्चेको, जिसे बहुत प्यार करते थे, पुकारने लगे। भगवान् की कुछ ऐसी कृपा थी कि एक दिन एक साधुके शुभागमनके फलस्वरूप उनके बच्चेका नाम ‘नारायण’ रख गया था। वे ठीक प्राण निकलनेके समय बोध उठे ‘नारायण-नारायण!’ भगवान् के नाममें अचिन्त्य-शक्ति है, नामका उच्चारण होते ही भगवान् उपस्थित हो जाते हैं। अजामिलने देखा कि उसी समय नीलवर्णके पीतम्बर पहने हुए एवं अपने हाथोंमें दिव्य आयुध लिये हुए भगवान् के दूत आ पहुँचे। यमराजके दूतोंको हटाकर उन्होंने अजामिलको छोड़ दिया। थोड़ी देरतक यमराज और भगवान् के पार्षदोंमें विवाद चलता रहा। यमदूतोंने कहा कि ‘यह घोर पापी है इसे तुमलोग क्यों छुड़ाये लिये जा रहे हो?’ भगवान् के पार्षदोंने कहा—‘भाई, तुम्हें पापी और पुण्यात्माका भेद मालूम नहीं है। चाहे जितना बड़ा पापी हो यदि उसके मुँहसे भगवान् का नाम निकलता हो

और खास करके मृत्युके समयमें, तब तो उससे बढ़कर कोई धर्मात्मा है ही नहीं। सब धर्मों, पुण्यों, व्रतों और शानका सार है भगवान्का नाम, चाहे पुत्रबुद्धिसे ही क्यों न लिया हो इसने लिया तो सही।' यमराजके दूत चले गये। भगवान्के पार्षद भी चले गये। अजामिल जीवित हो गये। अपने जीवनके पापोंका स्मरण कर उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। हरिद्वारमें जाकर उन्होंने भजन किया और मुक्ति प्राप्त की। श्रीमद्भागवतमें भगवन्नाममहिमाका यह बड़ा सुन्दर प्रसंग है। साधकोंको उसका स्वाध्याय करना चाहिये।

अदिति

ये दक्ष प्रजापतिकी पुत्री और प्रजापति कश्यपकी धर्मपत्नी थीं। दोनोंने जङ्गलमें जाकर बड़ी घोर तपस्या की। ब्रह्मा, विष्णु और शंकर इनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर कई बार इनके पास आये। परन्तु इन्होंने तपस्या नहीं छोड़ी। अन्तमें पुरुषोत्तम भगवान् राम आये और उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—‘तुम्हारी जो इच्छा हो माँग लो।’ इन दोनोंने भगवान्से कहा कि ‘आप हमारे पुत्र हों।’ भगवान्ने कहा—‘एवमस्तु’, त्रेतामें तुम दोनों अयोध्याके राजा-रानी होओगे तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा। एक कल्पमें त्रेतामें वही अदिति कौसल्या हुई और कश्यप दशरथ हुए। इसके पूर्व वामनावतार भी इन्हींके गर्भसे हुआ था। भागवतमें लिखा है कि देवकीके रूपमें भी यही अवतीर्ण हुई थी। जिसने भगवान्को पुत्ररूपमें प्राप्त कर लिया, उसकी महिमा और सौभाग्यकी भला क्या सीमा हो सकती है ?

अहल्या-गौतम

पहले सृष्टिके सब लोगोंमें जिसका जो अंग सुन्दर था उसकी सुन्दरता लेकर ब्रह्माने सर्वांगसुन्दरी अहल्याकी रचना की थी। उन्होंने कुमारी अहल्याको महर्षि गौतमके पास धरोहर रख दिया। एक वर्षके बाद गौतमने अहल्याको ब्रह्माके पास पहुँचा दिया, उनके मनमें कभी किसी प्रकारका कोई विकार नहीं आया था। गौतमके इस अलौकिक धैर्य, तपस्विद्वि और कामविजयको देखकर ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अहल्याका विवाह गौतमके साथ कर दिया। वे दोनों सुखसे रहने लगे।

एक दिन इन्द्रने चन्द्रमाकी सहायतासे गौतमको धोखा देकर आश्रमसे बाहर कर दिया और अहल्याके साथ अशिशु व्यवहार किया। गौतमने आश्रममें आकर इन्द्रको सहस्र भग हो जानेका शाप दिया और अहल्याको पत्थर हो जानेका।

अहल्याके बहुत अनुनय-विनय करनेपर उन्होंने इतना अनुग्रह किया कि त्रेतायुगमें जब भगवान् राम अवतीर्ण होंगे और तुम्हें उनके चरणोंका स्पर्श प्राप्त होगा तब तुम्हारा उद्धार हो जायगा। तभीसे वह पत्थर होगयी थी। भगवान्के चरणोंके स्पर्शसे मुक्त होकर पतिलोकमें गयीं।

अम्बरीष

सूर्यवंशी राजा नाभागके पुत्र भक्त अम्बरीष बहुत ही प्रसिद्ध है। वे हरिभक्तिपरायण और बड़े धार्मिक थे। एक बार द्वादशीके दिन वे पारण करने जा ही रहे थे कि अपनी शिष्यमण्डलीके साथ दुर्वासा ऋषि आ पहुँचे। राजाने भोजनके लिये उन्हें निमन्त्रण दिया। उन्होंने कहा—‘हम सब नदीसे सन्ध्या-वन्दन करके आते हैं।’ वे चले गये। उनके आनेमें इतना विलम्ब हुआ कि द्वादशी एक पल बाकी रह गयी। द्वादशीमें ही पारण न करनेसे दोष लगता है और ब्राह्मणको भोजन कराये बिना खाना चाहिये नहीं यह सोचकर अम्बरीष बड़े असमंजसमें पड़ गये। विद्वान् ब्राह्मणोंने सलाह दी कि ‘तुम भगवान्का चरणामृत पी लो, इससे व्रत पूरा हो जाता है और ब्राह्मणोंकी अवज्ञा नहीं होती।’ अम्बरीषने वैसा ही किया। थोड़ी देर बाद दुर्वासा आये और अम्बरीषपर बहुत बिगड़े। उन्होंने अपनी जटासे एक बाल तोड़कर पृथ्वीपर पटक दिया, उससे कृत्या नामकी राक्षसी पैदा हो गयी और वह अम्बरीषका विनाश करनेके लिये उनकी ओर दौड़ी। राजा ज्यों-के-त्यों खड़े रहे। भगवान् अपने भक्तोंकी सर्वदा रक्षा किया करते हैं। उसी समय सुदर्शनचक्र प्रकट हुआ और कृत्याको नष्ट करके वह दुर्वासाकी ओर लपका। दुर्वासा भगे। ब्रह्मा और शिवके पास गये। परन्तु उन्होंने भगवान्के भक्तसे द्रोह करनेवालेकी रक्षा नहीं की। वे विष्णुके पास गये। विष्णुने कहा—‘भाई ! भक्त तो मेरे हृदय हैं, उनका कुछ अनिष्ट हो जाय तो मैं जीवित रहना नहीं चाहता। मैं उनका क्रीतभृत्य हूँ। तुम अम्बरीषके पास जाओ वही तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं।’ दुर्वासा अम्बरीषके पास आये, अम्बरीष अबतक खड़े-खड़े उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने सुदर्शनचक्रको शान्त किया और कहा कि ‘आप चलकर भिक्षा करें, अबतक किसीने कुछ खाया-पिया नहीं है।’ दुर्वासाने जाकर प्रसाद पाया और वे अम्बरीष एवं भगवान्के भक्तोंकी प्रशंसा करते हुए अपने आश्रमपर चले गये। भागवतमें इनकी बड़ी सुन्दर कथा है।

स्वरसे भगवान्‌को चाहे जब पुकारे वे अवश्य आते हैं, यह उनकी प्रतिज्ञा है और वे इसका सर्वदा पालन करते हैं।

गणिका

प्राचीन कालमें एक जीवन्ती नामकी वेश्या हो गयी है, उसने एक तोता पाल रक्खा था। वह उसे बहुत प्यार करती थी। एक दिन उस रास्तेसे एक महात्मा निकले, उन्हें मालूम नहीं था कि यह वेश्याका घर है; वे वहाँ भिक्षाके लिये चले गये। जब उन्हें मालूम हुआ कि यह वेश्याका घर है और यह तोतेसे बड़ा प्रेम करती है तब कृपा करके उन्होंने उस वेश्यासे कहा कि तुम इस तोतेको राम-राम पढ़ाया करो। उनकी वाणीमें कुछ ऐसी शक्ति थी कि यह बात वेश्याके मनमें बैठ गयी। घरके आवश्यक कामकाजसे फुरसत मिलते ही वह तोतेके पास बैठ जाती और राम-राम पढ़ाने लगती। यद्यपि उसे मालूम नहीं था कि यह रामनामका प्रभाव है, परन्तु उसकी जीभ रामनामके उच्चारणमें इतनी अभ्यस्त हो गयी थी कि बिना राम-राम किये उससे रहा ही नहीं जाता था। अनजानमें हो सही वह भगवान्‌का नाम तो लेती थी, इसका यह फल हुआ कि मृत्युके समय भी उसके मुँहसे राम-राम निकलता रहा और वह भवसागरसे पार हो गयी। यह अनजानमे राम-राम करनेका फल है।

गरुड़

गरुड़ महर्षि कश्यपकी धर्मपत्नी विनताके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। इनके पराक्रमसे सन्तुष्ट होकर भगवान्‌ विष्णुने इन्हें वाहन बनाया था। इन्हें अपने बल, पौरुष, गति आदिका कभी-कभी बड़ा अभिमान हो आता था। इन्होंने बड़े-बड़े दैत्योंको, नागोंको परास्त किया था। देवता भी इनके सामने युद्धमें नहीं ठहरते थे। एक बार कागभुशुण्डिने चपःतावश भगवान्‌ रामके हाथसे रोटी छीन ली थी। रामकी आज्ञासे गरुड़ने उनका पीछा किया। दोनोंका बड़ा घोर युद्ध हुआ। कागभुशुण्डि पराजित हुए और गरुड़ विजयी। पराजय होनेपर तो लोग दुखी होते ही हैं, विजयी होनेपर भी लोग दुखी होते हैं क्योंकि विजय प्राप्त होनेपर अभिमान हो जाता है जो कि दुःखका मूल है। गरुड़को भी अभिमान हो गया, परन्तु भक्तभयहारी भगवान्‌ अपने भक्तके हृदयमें अंशमात्र भी अभिमान नहीं देखना चाहते। उन्होंने गरुड़का गर्व नष्ट किया और शायद इसीलिये उन्हें कागभुशुण्डिके पास शान प्राप्त करनेके लिये भी भेजा। यद्यपि अनेकों बार भगवान्‌ने स्वयं ही गरुड़को उपदेश किया है और गरुड़के

प्रति उपदेश किये हुए उपदेशोंका संग्रह ही गरुड़पुराणके नामसे प्रसिद्ध है।

गालव

पुराणोंमें गालव नामके कई व्यक्तियोंका उल्लेख मिलता है। विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम भी गालव था, परन्तु यहाँ पुत्रकी चर्चा नहीं है, उनके गालव नामक शिष्यकी चर्चा है। गालवने अपने गुरु विश्वामित्रकी बड़ी सेवा की थी। एक दिन स्वयं धर्मराज महर्षि विश्वामित्रकी परीक्षा लेनेके लिये उनके शत्रु वसिष्ठका रूप धारण करके आये। उन्होंने विश्वामित्रसे भोजनकी इच्छा प्रकट की। उस समय विश्वामित्रजीके यहाँ भोजन तैयार नहीं था, वे किसी दूसरे ऋषिके आश्रमपर चले गये और वहाँ जाकर अपनी भूख मिटायी। विश्वामित्रके यहाँ जब रसोई तैयार हुई तब वे गरम-गरम भोजन लेकर वसिष्ठवेशधारी धर्मके पास आये। धर्मने कहा—‘मैंने तो अब भोजन कर लिया है, आप यहीं खड़े रहिये।’ विश्वामित्रने अतिथिके रूपमें आये हुए अपने शत्रुकी बात मान ली क्योंकि उनकी दृष्टिमें उनके शत्रु वसिष्ठ ही थे। एक सौ वर्ष बीत गये। विश्वामित्रने वायुके अतिरिक्त और कुछ भोजन नहीं किया, धर्मराज फिर वसिष्ठका वेश धारणकर आये और बोले विश्वामित्र ! मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ तुम आजसे ब्रह्मर्षि हुए। विश्वामित्रको बड़ी प्रसन्नता हुई। अतिथिसत्कारका यह आदर्श सर्वथा प्रशंसनीय है।

जब विश्वामित्र सिरपर भोजन लिये खड़े थे तब उनके शिष्य गालवने उनकी बड़ी सेवा की थी। ब्रह्मर्षि होनेपर विश्वामित्रने कहा—‘बेटा ! अब तुम्हारी गुरुभक्ति पूरी हुई, तुम्हारी शिक्षा भी पूरी हुई, अब तुम चाहे जहाँ भी जा सकते हो।’ गालवने गुरुदक्षिणाके लिये बड़ा आग्रह किया। विश्वामित्रने पहले तो अस्वीकार कर दिया परन्तु उनके बहुत हठ करनेपर कुछ झुँझकार आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े माँगे। इसके लिये गालवको बड़ी परेशानी उठानी पड़ी। वे अपने मित्र गरुड़को लेकर राजा ययातिके पास गये और उनकी तथा उनकी लड़कीकी सहायतासे बड़ी कठिनाईसे उन्होंने गुरुदक्षिणा दी। उनका हठ प्रसिद्ध है।

गंगा और मगीरथ

महाराज सगर अयोध्याके बड़े नामी नरपति हो गये हैं। उन्होंने अपनी दो रानियोंके साथ बड़ी तपस्या करके पहली रानी केशिनीसे एक पुत्र असमंजस और दूसरी रानी सुमतिसे

साठ हजार पुत्र प्राप्त किये थे। वे साठों हजार पुत्र एक तुम्हें पैदा हुए थे और घृतके कुण्डमें रखकर पाले-पोसे गये थे। असमंजस बड़े क्रूर स्वभावका था, वह नन्हें-नन्हें बच्चोंको पकड़कर पानीमें डुबो देता था। न्यायपरायण सगरने उसे अपने देशसे निर्वासित कर दिया। असमंजसका एक पुत्र था अंशुमान्, वह बड़ा सुशील और आशाकारी था। अंशुमान् ही सगरके महायज्ञमें यज्ञीय अश्वका रक्षक था। इन्द्रने स्वर्गराज्य छिन जानेके भयसे वह घोड़ा चुरा लिया और तपस्या करते हुए कपिल मुनिके पीछे ले जाकर उसे बाँध दिया।

सगरके साठ हजार पुत्र उनकी आज्ञासे धोड़ेको ढूँढ़ते हुए और जमीनको खोदते हुए योगेश्वर कपिलके पाम पहुँचे। उन्होंने विना समझे-बूझे कपिलकी ही चोर मान लिया और उनकी प्रताड़ना करने लगे। अन्ततः कपिलकी हुंकारसे वे भस्म हो गये। बहुत दिन बीतनेपर उन्हें लौटते न देखकर सगरने अंशुमान्को भेजा और उन्होंने जाकर पता लगाया। पिताके भाइयोंकी राख देखकर उनके मनमें जलझलिल देनेकी बात आयी, परन्तु वहाँ पवित्र जल प्राप्त नहीं हुआ। गरुड़ने बताया कि गंगाजलसे इनका उद्धार होगा, अंशुमान् लौट आये। क्रमशः तपस्याके द्वारा सगर, अंशुमान् और दिलीपने चेष्टा की कि गंगाजी पृथ्वीपर आवें, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। दिलीपके पुत्र भगीरथने गंगाको लानेके लिये भगीरथ प्रयत्न किया, राज-काज छोड़कर तपस्यामें लग गये। ब्रह्माने प्रसन्न होकर गंगाको आनेका वरदान दिया, शिवजीने प्रसन्न होकर सिरपर धारण करनेका वरदान दिया और गंगाजी मर्त्यलोकमें आयीं। एक बार वे शिवजीकी जटामें उलझ गयी थीं, परन्तु भगीरथने शंकरजीको प्रसन्न करके वहाँसे निकाल लिया। गंगाजी भगीरथके पीछे-पीछे कपिल मुनिके आश्रमपर गयीं और सगरके पुत्रोंका उद्धार हुआ। भगीरथके अथक परिश्रमसे न केवल उनके पितरोंका ही उद्धार हुआ बल्कि जयतक गंगाजी रहेंगी, गंगाजीका नाम रहेगा तबतक असंख्य प्राणियोंका उद्धार होता रहेगा। सच्चे परिश्रमसे सब कुछ किया जा सकता है।

चित्रकेतु

श्रीमद्भागवतमें चित्रकेतुकी कथा बड़ी विचित्र है। उसकी स्त्रियाँ तो बहुत थीं, परन्तु सन्तान किसीसे नहीं थी। राजा चित्रकेतु सन्तानके लिये बहुत दुखी रहा करते थे। एक दिन उनके यहाँ देवर्षि नारद और महर्षि अंगिराने कृपा

की। राजाने स्वागत-सत्कारके पश्चात् अपनी अभिलाषा कह सुनायी। उन्होंने बहुत समझाया कि यह तुम्हारा मोह है। पुत्र होनेसे ही कोई सुखी नहीं होता, बहुत-से लोगोंको तो बहुत दुखी होना पड़ता है, परन्तु चित्रकेतुके मनमें यह बात नहीं बैठी। अन्तमें ऋषियोंने अनुग्रह करके एक पुत्र दिया और कह दिया कि इससे तुम्हें हर्ष और शोक दोनों ही होंगे। हुआ भी ऐसा ही। क्योंकि जिस रानीसे पुत्र हुआ था उससे राजा अधिक प्रेम करने लगा। दूसरी स्त्रियोंको डाह हुआ और उन्होंने राजकुमारको विप दे दिया। वह मर गया, चित्रकेतुके दुःखका पारावार न रहा। अंगिरा और नारदजी आये, उन्होंने राजाको बहुत समझाया और अन्तमें बच्चेकी जीवात्माको बुलाकर पूर्वजन्मकी कथा कहल्यी। उसने बताया कि वे मेरे शत्रु हैं, इन्हे दुःख देनेके लिये ही मैं पैदा हुआ था। किसका कौन पिता है, किसका कौन पुत्र है! सब स्वार्थके मीत हैं। चित्रकेतुका दुःख मिट गया, रानियोंने प्रायश्चित्त किया और नारदकी सम्मतिसे दीक्षा लेकर चित्रकेतु शेष भगवान्की आराधना करने लगे। उन्होंने प्रसन्न होकर वर दिया। चित्रकेतु विद्याधर हो गया और पार्वतीके शापसे वहाँ वृत्रासुर हुआ। ससंग मिल जानेपर एक-न-एक दिन उसका उद्धार तो होना ही था, परन्तु दयामूर्ति नारदने कैसा चकमेमे डालकर उसका उद्धार किया, यह देखने योग्य है।

चन्द्रमा

पुराणोंमें कहीं-कहीं चन्द्रमाको समुद्रका पुत्र कहा गया है और कहीं-कहीं अत्रिका। दक्षकी कन्याओंसे इनका विवाह हुआ था। एक बार इन्होंने तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त की, राजसूय यज्ञ किया। धन, सम्पत्ति, मान, प्रतिष्ठा, बल, पौरुष और युवावस्था सबके सब इकट्ठे हो गये। अब भला घमण्ड क्यों नहीं होता? गर्वसे चन्द्रमाकी आँखें अन्धी हो गयीं और उन्होंने न्याय एवं धर्मको तिलाञ्जलि दे दी। उन्होंने गुह्यपत्नीसे अशिष्ट व्यवहार किया और देवताके स्थानपर वे असुर हो गये। देवता हुए बृहस्पतिके पक्षमें। दैत्य हुए चन्द्रमाके पक्षमें। घमासान लड़ाई हुई, अन्तमें ब्रह्माने बीच-बचाव किया। चन्द्रमाको उनके पुत्र बुध मिल गये। दक्ष प्रजापतिकी कृपासे चन्द्रमाकी गर्मी भी शान्त हो गयी। वे शीतल हो गये।

तपस्विनी

विश्वकर्माकी पुत्री हेमाने अपने भक्तिपूर्ण नृत्य एवं नामकीर्तनसे भगवान् शंकरको प्रसन्न किया। उन्होंने प्रसन्न

होकर कहा कि तुम्हें दिव्यलोककी प्राप्ति होगी। उसे ब्रह्मलोकमें जानेका अधिकार प्राप्त हो गया। उसकी एक सखी थी जिसका नाम था स्वयंप्रभा, वह दिव्य नामक गन्धर्वकी पुत्री थी। हेमाने ब्रह्मलोक जाते समय अपनी सखी स्वयंप्रभासे कहा—‘बहिन ! तुम इस गुफामें रहकर निरन्तर भगवान् रामका चिन्तन किया करना। एक दिन रामके दूत माता जानकीको ढूँढ़ते हुए यहाँ आयेंगे, तब तुम प्रेमसे उन्हें खिलाना-पिलाना, स्वागत-सत्कार करना। उनसे अनुमति लेकर भगवान् रामके पास जाना और अपने जीवनको, आँखोंको सफल करना। तुम्हें उनकी कृपासे परमपदकी प्राप्ति होगी।’ जब हनुमान्, अंगद आदि जानकीको ढूँढ़नेके लिये किष्किन्धासे चले थे तब मार्गमें इसी तपस्विनीसे भेंट हुई थी।

ताड़का

ताड़काके पिताका नाम था सुकेतु। वह बड़ा ही वीर यक्ष था। सन्तान न होनेके कारण बहुत दुखी होकर उसने तपस्या की और ब्रह्मासे वरदान प्राप्त किया कि तुम्हें एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या प्राप्त होगी। ताड़का वचनमें अत्यन्त सुन्दरी थी। केवल सुन्दरी ही नहीं थी उसमें हजार हाथियोंका बल भी था। युवती होनेपर ताड़काका विवाह करुपाधिपति सुन्दके साथ हुआ। अगस्त्यके शापसे सुन्दकी मृत्यु हो गयी, तब क्रोधसे पागल होकर ताड़का उन्हें खाने दौड़ी। उस समय उसका लड़का मारीच भी उसके साथ ही था। अगस्त्यने दोनोंको राक्षस होनेका शाप दे दिया। तबसे वह बड़ी भयंकर और ऋषि मुनियोंको दुःख देनेवाली हो गयी। जहाँ वह रहती वहाँ मनुष्योंको तो क्या वात पशु-पक्षी भी नहीं रहते थे। विश्वामित्रकी प्रेरणासे भगवान् रामने ताड़काको मारा और पञ्चवटीमें मारीचकी सद्रति भी रामके हाथोंसे ही हुई।

त्रिशंकु

इक्ष्वाकुवंशी नरपति त्रय्यारुणिके पुत्र सत्यव्रतका दूसरा नाम त्रिशंकु था। वे यज्ञ करके सदेह स्वर्गमें जाना चाहते थे। वशिष्ठने, जो कि उनके पुरोहित थे, ऐसा यज्ञ करनेसे अस्वीकार कर दिया। उनके पुत्रोंने भी अस्वीकार कर दिया, यह काम ही मर्यादाविरुद्ध और असम्भव था। परन्तु त्रिशंकुने उनकी बात नहीं सुनी, उपेक्षापूर्वक कहा—‘आपलोगोंका भला हो। मैं किसी दूसरेके पास जाता हूँ।’ वशिष्ठजीके पुत्रोंने त्रिशंकुकी उपेक्षा देखकर आप दे दिया कि तुम चाण्डाल हो जाओ। सचमुच वे चाण्डाल हो गये। उनके भाई-बन्धु, मन्त्री और प्रजाने उनका परित्याग कर

दिया, वे अत्यन्त दुखी होकर विश्वामित्रकी शरणमें गये। विश्वामित्रने उन्हें आश्वासन दिया और अपने पुत्रोंसे ऋषियोंको निमन्त्रण दिलाकर यज्ञ प्रारम्भ किया। वशिष्ठके पुत्र और एक ब्राह्मणने कह दिया कि चाण्डाल यज्ञमान और पुरोहित अब्राह्मण इस यज्ञमें देवता नहीं आ सकते। ऐसा ही हुआ, कोई देवता नहीं आया। विश्वामित्रने अपनी तपस्याके बलसे त्रिशंकुको स्वर्गमें भेजा परन्तु इन्द्रादि देवताने उन्हें वहाँ स्थान नहीं दिया। इसपर विश्वामित्र रोषमें आ गये, उन्होंने कहा मैं दूसरे स्वर्गकी सृष्टि करूँगा। उन्होंने आकाशमें दूसरे ग्रह-नक्षत्र आदिकी सृष्टि प्रारम्भ की। देवता लोग डर गये वे विश्वामित्रके पास आये, उनका विचारविनिमय हुआ। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि विश्वामित्र नयी सृष्टि न करें और त्रिशंकु इसी प्रकार शून्यमें स्थित रहें। मर्यादाके विरुद्ध, सृष्टिके नियमोंके विरुद्ध असम्भवको सम्भव करनेकी चेष्टाका, अत्यन्त लोभका यही परिणाम होता है कि वह वस्तु तो मिलती ही नहीं अपने हाथकी भी चली जाती है।

दधीचि

एक बार देवराज इन्द्रको गर्व हो गया कि मैं त्रिलोकीका स्वामी हूँ। गर्वके कारण उनकी बुद्धि मारी गयी और उन्होंने अपने कुलगुरु बृहस्पतिको अपमान कर दिया। वे रुठकर अन्यत्र चले गये। गुरुका रुठना सुनकर दैत्योंने इन्द्रपर चढ़ाई कर दी, वे डरकर ब्रह्माके पास गये। उन्होंने त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपको पुरोहित बनाकर काम चलानेकी मलाह दी। उन्होंने वैसा ही किया, विश्वरूपके बतलाये हुए नारायण-कवचके प्रभावसे इन्द्रकी जीत हुई। उन्होंने अपनी विजयके उपलक्षमें विश्वरूपके पौरोहित्यमें एक यज्ञ किया। विश्वरूप यज्ञमें धीरेसे दैत्योंको भी आहुति दे दिया करते थे। जब इन्द्रको यह बात मात्तम हुई तब उन्होंने विश्वरूपका सिर धड़से अलग कर दिया। इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी। ब्रह्माने उस हत्याको किसी प्रकार बाँट-बूँटकर छुड़ाया। विश्वरूपके मरनेसे त्वष्टाको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने यज्ञ करके वृत्रासुरको पैदा किया। वह त्वष्टाकी आज्ञासे स्वर्गमें गया और उसने युद्ध करनेके लिये इन्द्रको ललकारा। इन्द्र ब्रह्माके पास गये। उन्होंने कहा—‘भाई, इसकी मृत्यु तो दधीचिकी हड्डियोंसे बने हुए वज्रके द्वारा होगी।’ पुराणोंमें और वेदोंमें भी दधीचिका वर्णन आता है। विभिन्न स्थानोंमें उनके पिताका नाम भी भिन्न-भिन्न मिलता है। हाँ, वे एक सर्वज्ञ और भगवद्भजनमें लगे हुए सर्वभूतहितेतरत ऋषि थे। जब इन्द्रने

जाकर उनसे प्रार्थना की कि आपकी हड्डीसे ही जगत्का कल्याण और आसुरी शक्तिका विनाश होगा, तो उन्होंने प्रसन्नतासे स्वीकार कर लिया। महात्माओंका जीवन जगत्के लिये होता है—भगवान्की प्रसन्नताके लिये होता है। उनकी हड्डीसे वज्र बना और उससे वृत्रासुरका और अनेकों असुरोंका वध किया गया। दधीचिकी कीर्ति आजतक बड़े आदरके साथ गायी जाती है, भगवान्ने कृपा करके उनकी आत्मा अपनी आत्मामें मिला ली।

दण्डक

राजर्षि इक्ष्वाकु-जैसे पवित्र आत्माके पुत्रोंमें एक दण्डक नामका उदण्ड बालक भी हो गया था। वह बड़ा क्रूर और दुराचारी था। उसे विन्ध्याचल और नीलगिरिके बीचका राज्य दिया गया। एक दिन वह घूमता-घामता अपने गुरु शुक्राचार्यके आश्रमपर पहुँचा। वहाँ उसने उनकी बड़ी लड़की अरजाको देखा और उसका सौन्दर्य देखकर उसका पापी मन विचलित हो गया। उसने उस श्रृषिकन्यासे पापकर्मका प्रस्ताव किया परन्तु वह राजी न हुई। अशिष्ट व्यवहार किया। अरजाने अपने पितासे सब बातें कही। शुक्राचार्यने कहा 'जिस देशका ऐसा राजा हो उसका शीघ्र-से-शीघ्र नाश हो जाना चाहिये। सात दिनके भीतर तुम्हारे राज्यका नाश हो जायगा। धूल और पत्थरकी वर्षासे इन्द्र तुम्हारा राज्य नष्ट कर दे।' राजासे इतना कहकर ऋषिने राज्यभरमें घोषणा कर दी कि जो अपनी रक्षा चाहते हों वे इसके राज्यसे निकल जायँ। सबलोग वहाँसे चले गये। सातवें दिन वह राज्य पशु-पक्षियोंसे रहित धूलिमय हो गया और उसका नाम दण्डकारण्य पड़ा। जब भगवान् रामने उसमें प्रवेश किया तब फिर वह स्थान पवित्र हो गया।

ध्रुव

महाराज उत्तानपाद स्वायंभुव मनुके पुत्र थे। उत्तानपादकी दो रानियाँ थीं। एकका नाम था सुनीति दूसरीका था सुरुचि। उत्तानपाद सुरुचिसे अधिक प्रेम करते थे। एक दिन सुरुचिका लड़का उत्तम राजाकी गोदमें खेल रहा था और सुरुचि भी वहाँ बैठी हुई थी। उसी समय सुनीतिका लड़का जिसकी अवस्था अभी पाँच वर्षकी थी वहाँ आया, अपने भाईको पिताकी गोदमें खेलते देखकर ध्रुवके मनमें भी इच्छा हुई कि मैं भी अपने भाईकी ही भाँति पिताकी गोदमें खेदूँ। वह बड़े प्रेमसे उनकी गोदमें जाना ही चाहता था कि सुरुचिने उसे झिड़कते हुए कहा—'ध्रुव!

तुम्हारे भाग्यमें राजाकी गोदमें खेलना नहीं बदा है। यदि तुम्हें उनकी गोदमें खेलना ही हो और उत्तमकी भाँति राजसिंहासनपर बैठना ही हो तो जाकर तपस्या करो, मेरे गर्भमें पैदा होनेका वरदान प्राप्त करो। भगवान् कृपा करके तुम्हें दे दें तब ऐसा हो सकता है।' राजाने भी कुछ उपेक्षा-सी की, ध्रुवको बड़ी ग्लानि हुई। वे रोने-से होकर अपनी माता सुनीतिके पास आये। माताने सब हाल सुनकर कहा—'बेटा! सुरुचि विमाता है तो क्या, उसने बात सच्ची कही है। जाकर भगवान्की आराधना करो वे ही तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण कर सकते हैं।'।

ध्रुवकी माता भी एक अपूर्व माता थी, उसने ध्रुवके कल्याणके लिये अपने दुःखकी परवा न की। ध्रुव माताका आशीर्वाद लेकर तपस्या करनेके लिये निकल पड़े। नगरसे निकलते ही देवर्षि नारदने दर्शन देकर द्वादशाक्षरमन्त्रकी दीक्षा दी। ध्रुव मथुराके पास जाकर घोर तपस्यामें लग गये और नित्य-निरन्तर भगवान्के मधुर मंगलमय नामोंका जप करने लगे। उनके प्रेमपूर्वक नाम-जपके प्रभावसे सब विघ्न-बाधाएँ टल गयीं। और भगवान्ने दर्शन देकर उन्हें वह स्थान दिया जिसकी प्राप्ति अबतक किसीको नहीं हुई थी। छतीस हजार वर्षतक एकचक्रा पृथिवीका राज्य भोगकर अन्तमें अपने धामको गये। सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, सप्तर्षि आदि आज भी उनकी प्रदक्षिणा करते हैं। यह स्थानिके साथ भगवन्नाम-जप करनेका किञ्चित् फल था। कल्पके अन्तमें वे भगवान्के लोकमें चले जायँगे।

नल-नील

ये विश्वकर्माके वानरपुत्र हैं। ये बचपनमें स्वभाववश बड़े ही नटखट थे। ऋषियोंमें रहते। वे लोग जब इन्द्रियोंको समेटकर परमात्माके ध्यानमें मग्न हो जाते तब ये दोनों भाई चुपके-से दबे पाँव आते और उनकी ठाकुरजीकी मूर्ति उठाकर जलमें फेंक देते। वात्सल्यस्नेह होनेके कारण और तपमें विघ्न पड़ जानेके कारण ऋषिलोग इनका अनिष्ट तो कर नहीं सकते थे, इसलिये वे चुप रह जाते। जब इनका उपद्रव बहुत बढ़ गया तब एक दिन ऋषियोंने सलाह करके शापके रूपमें उन्हें ऐसा आशीर्वाद दे दिया कि इनके हाथसे जिसका स्पर्श हो जाय, वह वस्तु चाहे जितनी भारी हो, जलमें न डूबे। तबसे ये किसीकी मूर्ति उठाकर जलमें फेंक देते तो वह ऊपर-ही-ऊपर उतराती रहती और ऋषिलोग उठा लते। ऋषियोंके इस आशीर्वादके प्रभावसे ही सेतुबन्धनके समय

नल-नीलने भगवान् रामकी सेवा की। उनके हाथसे समुद्रमें रखे हुए पत्थर डूबते नहीं थे।

नहुष

राजा अम्बरीषके पुत्रका नाम था नहुष। वह बड़ा प्रतापी राजा था, एक बार जब वृत्रासुरको मारनेके कारण इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी और वे स्वर्गसे भगकर मानस-सरोवरमें छिप गये तब लोगोंने सर्वगुणसम्पन्न देखकर नहुषको इन्द्रासनपर बैठाया। नहुष ही स्वर्गका शासन करने लगे। इन्द्रका राज्य प्राप्त होनेपर नहुषके मनमें बड़ा अभिमान हुआ और उन्होंने इन्द्राणीपर अपना हक बताकर उनसे अनुचित प्रस्ताव किया। इन्द्राणी बहुत दिनोत्तक टाळती रहीं। जब नहुषके अत्याचारकी हद हो गयी तब उन्होंने देवगुरु बृहस्पतिसे सलाह ली और उनकी सम्मतिसे कहला भेजा कि तुम सप्तर्षिकी सवारीपर चढ़कर आओ तो मैं वरण कर लूँगी। ऐश्वर्य एवं कामके मदसे मत्त होनेके कारण नहुषने सप्तर्षियोंकी बुलाकर उन्हें पाङ्कजीमें लगा दिया। ऋषियोंने कभी पालकी ढोयी नहीं थी, चलनेमें किसी जीव-जन्तुकी हत्या न हो जाय इस-लिये वे धीरे-धीरे चल रहे थे। नहुष उन्हें बार-बार डाँट रहा था सर्प-सर्प अर्थात् चल-चल। कई बार कहनेपर अगस्त्यने कहा—‘तू बार-बार सर्प-सर्प कहता है तू जा सर्प हो जा।’ नहुष उसी क्षण सर्प होकर पृथ्वीपर गिर गया। ब्राह्मणोंने इन्द्रसे प्रार्थित करवाकर उनकी ब्रह्महत्या छुड़ा दी और उनके पदपर बैठ दिया। शापके पश्चात् नहुष अगस्त्यके शरणागत हुए। उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति तुम्हारे प्रभोंका उत्तर दे सकेगा उसीके द्वारा तुम्हारी मुक्ति होगी। वनवासके समय सर्परूपी नहुषने भीमको पकड़ लिया, युधिष्ठिरने नहुषके प्रभोंके उत्तर देकर भीम और नहुष दोनोंको मुक्त किया।

नारद

सरस्वतीनदीके तटपर भगवान् व्यासदेव कुछ खिन्न-से हो रहे थे। वेदाका विभाजन, महाभारतकी रचना, ब्रह्मसूत्रोंका प्रणयन और सतरह पुराणोंका निर्माण कर लेनेपर भी उन्हें अपने अन्तःकरणमें कुछ कमी मालूम पड़ रही थी। वे ध्यान-मग्न होकर इस बातपर विचार कर रहे थे कि इसका कारण क्या है? उसी समय अपनी देवदत्त वीणासे आश्रमको शङ्कृत एवं भगवन्नामोंसे मुखरित करते हुए देवर्षि नारदने पदार्पण किया। आतिथ्य-सत्कार एवं कुशल-प्रश्नके अनन्तर व्यासके पूछनेपर देवर्षि नारदने बतलाया कि अबतक तुमने जो कुछ किया है वह या तो केवल ज्ञानप्रधान है जैसे ब्रह्मसूत्र अथवा

कर्मप्रधान है जैसे वेदोंका विभाजन या महाभारत, अबतक तुमने भगवान्के विशुद्ध प्रेमका उनकी चिदानन्दमयी लीलाका भावपूर्ण वर्णन नहीं किया है। संक्षेपमें भागवत धर्मका निरूपण नहीं किया है इसीसे तुम्हें अपने अंदर कुछ कमी-सी मालूम पड़ रही है। भगवान्की लीला सुननेसे सब लोग उनके साथ प्रेम करने लगते हैं, इस बातका दृष्टान्त स्वयं मैं हूँ। पहले जन्ममें दासीका एक पुत्र था, मेरी माँ चौमासेमें ऋषियोंकी सेवा किया करती थी। मैं उसीके साथ रहता। एक समय ऋषियोंका जठन खाता और कुछ न समझनेपर भी उन लोगोंकी भगवल्लीलासम्बन्धी बात-चीत सुना करता था। बचपनसे ही मेरी रुचि उनके धर्ममें हो गयी। मेरा अन्तःकरण पवित्र हो गया और मैं भी वैसे जीवनकी अभिलाषा करने लगा। मैं अभी पाँच वर्षका ही था कि साँपके काटनेसे मेरी माताकी मृत्यु हो गयी और मैं उसे भगवान्का परम अनुग्रह समझकर हिमालयकी ओर चल पड़ा। हिमालयमें एक पीपलके नीचे बैठकर मैं ध्यान करने लगा, परन्तु ध्यान जमा नहीं। एक क्षणके लिये भगवान्के दर्शन हुए फिर दूसरे ही क्षण अन्धकार ही-अन्धकार। मैं छटपटाने लगा। मुझे अत्यन्त दुःखी देखकर आकाशवाणी हुई कि अब इस जन्ममें तुम्हें मेरे दर्शन नहीं होंगे। अगले जन्ममें तुम मुझे प्राप्त कर सकोगे। मैं मृत्युकी प्रतीक्षा करता रहा, मरनेपर मरीचि आदि ऋषियोंके साथ ब्रह्मासे मेरी उत्पत्ति हुई। तभीसे मैं इस वीणापर भगवान्के नाम, गुण और लीलाओंका कीर्तन करता हुआ त्रिलोकीमें विचरण किया करता हूँ और स्मरण करते ही, लीलाका गायन करते ही निमग्नित मित्रकी भोंति श्रीकृष्ण मेरे सामने प्रकट हो जाते हैं। तुम भी भगवान्की लीलाओंका गायन करो, तुम्हारा अभाव दूर हो जायगा और तुम्हें परमशान्ति होगी। इतना कहकर देवर्षि नारद वीणा बजाते हुए अन्यत्र चले गये।

त्रेतायुगमें जनकनन्दिनी भगवती सीता स्वयंवरके पूर्व जब गिरिजापूजन करने जा रही थीं, तब रास्तेमें उन्हें नारदजीके दर्शन हुए। सीताके प्रणाम करनेपर नारदने आशीर्वाद दिया कि इस बागमें ही तुम्हें अपने स्वामीके दर्शन हो जायेंगे। जिसे देखकर तुम्हारा मन खिंच जाय वही तुम्हारा स्वामी होगा क्योंकि तुम्हारा मन और कहीं जा नहीं सकता। नारदकी वाणी सत्य हुई।

परशुराम

परशुराम महर्षि जमदग्नि और रेणुकाके औरस पुत्र थे। उनके और भी चार भाई थे—रमणबान्, सुपेण, वसु और

विश्वासु । एक दिन रेणुका नदीसे जल लाने गयी थी । नदीमें चित्ररथ जलक्रीड़ा कर रहा था । रेणुकाको उसकी जलक्रीड़ा अच्छी लगी और वह मुग्ध होकर बहुत देरतक देखती रही । अग्निहोत्रके ठीक समयतक वह जल लेकर उपस्थित न हो सकी । महर्षि जमदग्निने अपनी योगदृष्टिसे उसके मनकी अवस्था जान ली और अपने चारों बड़े पुत्रोंको आज्ञा दी कि इस पापिनीको मार डालो । मातृस्नेहसे प्रभावित होकर चारों बड़े पुत्रोंने उनकी आज्ञा अस्वीकार कर दी । अन्ततः उन्होंने परशुरामको आज्ञा दी, परशुराम बड़े बुद्धिमान् थे । उन्होंने सोचा कि यदि मैं पिताजीकी आज्ञा नहीं मानता तो वे और भी क्रुद्ध हो जायेंगे और माताके साथ ही हम सब लोगोंका नाश कर देंगे और इनकी आज्ञा मानूँ तो पीछे इन्हें खुश करके माताजीको जीवित कर सकता हूँ । उन्होंने पिताकी आज्ञा मानकर माताको मार डाला । जमदग्नि बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि 'बेटा ! वर माँगो ।' उन्होंने कहा—'पिताजी ! मैं दो वर चाहता हूँ—एक तो यह कि माताजी जीवित हो जायँ और दूसरा यह कि इस घटनाकी स्मृति किसीको न रहे ।' जमदग्निने रेणुकाको जीवित कर दिया और सब-के-सब वह बात भूल गये ।

पुराणोंमें परशुरामका चरित्र बहुत ही विस्तृत है । एक बार सहस्राजुर्नने इनके पिताकी गौ छीननेके लिये बड़ा प्रयत्न किया था और असफल होनेपर जमदग्निको ही मरवा डाला था । इसपर क्रुद्ध होकर परशुरामने इक्कीस बार पृथिवीके क्षत्रियोंका संहार किया और अन्तमें सारी पृथिवी महर्षि कश्यपको दे दी । ये भगवान्‌के आवेशावतार माने जाते हैं और अब भी शस्त्रास्त्रका परित्याग करके तपस्यामें लगे हुए कहे जाते हैं । कलियुगके अन्तमें जब कल्कि अवतार होगा तब ये उन्हें वेद-वेदाङ्गों और शस्त्रास्त्रोंकी शिक्षा देंगे ।

प्रह्लाद

हिरण्यकशिपु और हिरण्यकशिपु दोनों ही बड़े प्रभावशाली दैत्य थे । इनके भयसे देवता लोग काँपते थे । हिरण्यकशिपुने एक-एक करके सबको पराजित किया था । भगवान्‌ने बराह अवतार धारण करके उसका उद्धार किया । भाईकी मृत्युसे दुखी होकर हिरण्यकशिपु तपस्या करने चला गया । देवताओंको अवसर मिला, उन्होंने दैत्योंपर चढ़ाई की । दैत्योंको मार भगाया और हिरण्यकशिपुकी स्त्री कयाधूको हरकर ले चले । वह उस समय गर्भवती थी । देवर्षि नारदने कहा 'इसके गर्भमें भगवान्‌का परम भक्त है, इसे मत ले

मा० अं० ६—७

जाओ ।' देवताओंने उनकी बात मान ली । देवर्षि नारदने कयाधूको अनेकों उपदेश किये, जिन्हें कयाधू तो भूल गयी परन्तु गर्भमें रहनेवाले बालकने याद कर लिया । समयपर उस गर्भसे जो बालक हुआ उसीका नाम प्रह्लाद रखा गया ।

हिरण्यकशिपु बड़ी शक्ति प्राप्त करके लौटा, देवताओंको जीतकर स्वयं त्रिलोकीका स्वामी बन गया । प्रह्लाद गुरुकुलमें जाकर अध्ययन करने लगे । गुरुकी अनुपस्थितिमें वे विद्यार्थियोंको रामनामकी महिमा समझाते थे, बचपनसे ही उनकी यह आदत थी । खेलमें भी वे भगवान्‌की ही लीला करते थे, दूसरी ओर उनकी दृष्टि ही न जाती थी । गुरुओंने और स्वयं हिरण्यकशिपुने बड़ी ताड़ना की, परन्तु उन्होंने किसीकी बात नहीं मानी । उन्हें काले नागांसे डसाया गया, विष दिया गया, पहाड़परसे गिराया गया और समुद्रमें डुबाया गया; परन्तु उनका बाल भी बाँका नहीं हुआ । पुरोहितोंने क्रुःया राक्षसीको उत्पन्न किया, परन्तु उससे पुरोहितोंकी ही मृत्यु हुई । फिर प्रह्लादने भगवान्‌से प्रार्थना करके अपने समत्वकी शपथ लेकर उन्हें जीवित किया । प्रह्लादकी बूआ, जो आगमें नहीं जलती थी, इस विचारसे उन्हें गोदमें लेकर आगमें बैठ गयी कि ये जल जायँ; पर प्रह्लाद नहीं जले, वह स्वयं जल गयी । हिरण्यकशिपु स्वयं उन्हें मारने दौड़ा और उसने पूछा कि तुम्हारे भगवान्‌ कहाँ हैं ? प्रह्लादने कहा 'वे सर्वत्र हैं—तुममें, तुम्हारे खड्गमें और इस खंभेमें भी ।' उसने कहा 'इस खंभेमें भी हैं ?' प्रह्लादने कहा 'हाँ !' उसने बड़े जोरसे खंभेपर एक घूँसा लगाया । घूँसेकी आवाजके साथ ही भयंकर शब्द करते हुए नृसिंह भगवान्‌ प्रकट हुए और हिरण्यकशिपुका उद्धार किया और प्रह्लादकी रक्षा की । प्रह्लादके जीवनकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वे निरन्तर भगवान्‌के नामका जप किया करते थे ।

पृथु

प्राचीन कालमें वेन नामका एक बड़ा दुष्ट राजा था । उसने अपनेको ही ईश्वर घोषित करके यज्ञ, जप, तप, व्रत सब बंद करा दिया और लोगोंको अपनी ही उपासना करनेके लिये बाध्य किया । ऋषियोंने उसे बहुत समझाया-बुझाया, पर उसने किसीकी एक न सुनी । ऋषियोंने प्रजाके कल्याणके लिये उसे शाप दिया कि तुम्हारी मृत्यु हो जाय । वह मर गया । शासकके अभावमें चोर और बदमाशोंकी अभिवृद्धि हुई, सब लोग उच्छृंखल हो गये—प्रजामें हाहाकार मच गया । ऋषियोंको बड़ी चिन्ता हुई । उन्होंने वेनके सुरक्षित शवका

मन्यन किया, पहले उसकी जाँच मची गयी। उससे एक काल-कलटा बौना पुरुष निकल, जो भीलोंका राजा हुआ। बाँह मथनेपर पृथुका जन्म हुआ। पृथु बड़े ही धर्मात्मा थे। उनके राज्यमें किसीको कोई कष्ट नहीं था। पृथिवीने प्रकट होकर सबको अभिलषित वस्तुएँ दीं। संत-महात्माओंका बड़ा सम्मान होने लगा। स्वयं सनत्कुमार आकर उन्हें उपदेश किया करते थे। पृथिवीको पहले-पहल उन्होंने ही समान बनाया था। उन्होंने एक महान् यज्ञ किया जिसमें स्वयं विष्णुभगवान् प्रकट हुए और जब उन्होंने वर माँगनेके लिये कहा, तब पृथुने लौकिक, पारलौकिक सुख और मोक्षकी भी उपेक्षा करके केवल यही वर माँगा कि 'मेरे दस हजार कान हो जायँ, जिनसे मैं निरन्तर भगवान्के गुणानुवाद सुना करूँ।' ये केवल भगवान्के एक बड़े भक्त ही रहे हों सो बात नहीं, भगवान्के चौबीस अवतारोंमें भी इनकी गणना है।

बलि

प्रह्लादके पौत्र एवं विरोचनके पुत्र बलि बड़े ही धर्मात्मा थे। उनकी दानशीलताको लक्ष्यमें रखकर ही 'बलिदान' शब्दकी सृष्टि हुई है। बलिदानका अर्थ है सर्वस्वदान। बलिने अपना सर्वस्व दान किया था। धर्मात्मा और दानी होनेके कारण कोई भी देवता बलिको पराजित नहीं कर सकता था। बलिका ही शासन था, देवतालोग शासित हो गये। देवताओंकी माता अदितिको यह बात सहन नहीं हुई, उसने अपने पति कश्यपकी अनुमतिसे एक अनुष्ठान किया जिसके फलस्वरूप भगवान् विष्णु उसके पुत्रके रूपमें अवतीर्ण हुए। यही अवतार वामनके नामसे प्रसिद्ध है। बलिकी यज्ञभूमिमें वे ब्रह्मचारी-वेषमें गये और तीन पग पृथिवीकी उन्होंने याचना की। बलिने पहले तो उनसे बहुत कुछ लेनेका आग्रह किया, क्योंकि भक्तराज बलि उनके ज्योतिर्मय मुखमण्डलको देखकर मुग्ध हो गये थे। परन्तु पीछे जब उन्होंने उससे अधिक लेना स्वीकार नहीं किया तब तीन पग भूमिका संकल्प कर दिया। संकल्प करनेके पहले उनके गुरु शुक्राचार्यने मना भी किया था, परन्तु वे माने नहीं। संकल्प हो जानेपर भगवान् बढ़कर वामनसे विराट् हो गये। दो पगमें उनका सारा साम्राज्य नाप लिया, तीसरे पगके लिये स्थान ही न रहा। तीसरे पगके बदले बलिने अपना शरीर उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया। भगवान्ने उनके सिरपर अपने चरण-

कमल रखे। भगवान्ने उनका साम्राज्य इन्द्रको दे दिया और उन्हें इस कल्पमें इन्द्रसे भी अधिक सुख भोगनेके स्थान सुतल-लोकमें रख दिया एवं स्वयं उनके द्वारपाल बन गये। अगले कल्पमें बलि ही इन्द्र होंगे। इस प्रकार भगवान्ने राजा बलिपर महान् कृपा की।

वेन

ध्रुवके वंशमें बहुत दिनोंके बाद अंग नामका एक राजा हुआ था। सन्तानहीन होनेके कारण उसने यज्ञ किया, जिसके फलस्वरूप वेनकी उत्पत्ति हुई। माताके दोषसे वेनका स्वभाव असुरोका-सा बन गया था। वह अपने सामने किसीको कुछ नहीं समझता था, ईश्वरकी पूजाके स्थानपर अपनी ही पूजा कराना चाहता था। ऋषियोंके कोपसे इसकी मृत्यु हो गयी। इसकी कथा पृथुके प्रसंगमें आ चुकी है।

ययाति

ययाति राजा नहुपके पुत्र थे। इनकी दो स्त्रियाँ थीं, एकका नाम था देवयानी और दूसरीका शर्मिष्ठा। देवयानी दैत्यगुरु श्रीशुक्राचार्यकी लड़की थी और शर्मिष्ठा दैत्यराज वृषपर्वाकी। कुमारी अवस्थामें इन दोनोंमें कहा-सुनी और झगड़ा हो जानेके फलस्वरूप शुक्राचार्य वृषपर्वापर नाराज होकर उनकी राजधानीसे जा रहे थे, तब वृषपर्वा ने अपनी पुत्री शर्मिष्ठाको देवयानीकी दासीके रूपमें देकर उन्हें प्रसन्न किया था। जब ययातिका देवयानीसे विवाह हुआ तब उनसे यह प्रतिज्ञा करा ली गयी थी कि वे शर्मिष्ठाको दासीके रूपमें ही रखें, कभी अवधोगिनी न बनावें; परन्तु ययातिने इस प्रतिज्ञाका पालन न किया। देवयानीके गर्भसे दो पुत्र हुए—यदु और तुर्वसु। शर्मिष्ठाके गर्भसे तीन पुत्र हुए—द्रुह्यु, अनु और पुरु। जब देवयानीको यह बात मालूम हुई तब वह क्रोधित होकर अपने पिताके पास चली गयी। राजा भी उसे मनानेके लिये गये। शुक्राचार्यने सब समाचार सुनकर ययातिको शाप दिया कि तुम बुढ़े हो जाओ, वे उसी क्षण बुढ़े हो गये।

बहुत अनुनय-विनय करनेपर शुक्राचार्यने इतनी छूट दी कि यदि तुम्हारा कोई लड़का तुम्हें अपनी जवानी देकर तुम्हारा बुढ़ापा ले ले तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो सकती है। ययातिने अपने सब पुत्रोंको बुलाकर अवस्थापरिवर्तनका प्रस्ताव किया। परन्तु बड़े लड़कोंने इसे अधर्म कहकर अस्वीकार कर दिया। केवल छोटे लड़के पुरुने 'पिताकी

जो आश' कहकर अपनी जवानी दे दी और उनका बुढ़ापा ले लिया। पुत्रकी जवानी लेकर ययाति बहुत दिनोंतक भोग-विलास करते रहे, परन्तु उनकी तृप्ति न हुई। 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।' अन्तमें उन्हें विषयोंसे बड़ी विरक्ति हुई और उन्होंने कहा कि विषयोंके भोगसे तो किसीको शान्ति मिल ही नहीं सकती, इनके त्याग और कामनाओंके नाशसे ही शान्ति मिल सकती है। उन्होंने पुरुको उसकी जवानी लौटा दी और अपना बुढ़ापा ले लिया। आशपालन करनेके कारण पुरुको राजगद्दीपर बैठाकर वे स्वयं तपस्या करने चले गये और अन्तमें सद्गतिको प्राप्त हुए।

रन्तिदेव

रन्तिदेव महाराज संकृतिके पुत्र थे। इनकेजैसा उदार दाता नरपति शायद ही कोई हुआ हो। इन्होंने अपना सर्वस्व दान कर दिया। जो कुछ मिल जाता सकुटुम्भ वही खाकर रह जाते। एक बार ऐसा अवसर आया कि अड़तालीस दिनोंतक इन्हें अन्न-जल नहीं मिला; उनचासवें दिन इन्हें घी, खीर, हलुआ और पानी मिला। ये भोजन करने जा ही रहे थे कि वहाँ एक ब्राह्मण अतिथि आ पहुँचा, रन्तिदेवने उस अतिथिको अपना भाग खिला दिया। उसे विदा करके वे भोजन करनेके लिये बंठनेहीवाले थे कि एक शूद्र आ पहुँचा। उस समय उनकी स्त्री और बच्चे भूख-प्याससे व्याकुल हो रहे थे; परन्तु वे सब आगन्तुक अतिथिमें भगवान्का दर्शन कर रहे थे, इसलिये बड़ी प्रसन्नतासे अवशिष्ट भोजनमेंसे उसे भरपेट खिला दिया। अब थोड़ा-सा अन्न बच रहा था। वे उसे पानेहीवाले थे कि कुत्तोंसे घिरा हुआ एक चाण्डाल आ पहुँचा और उसने कहा कि हम सब भूखे हैं, अन्न देकर हमारी प्राणरक्षा कीजिये। राजा रन्तिदेवने वेदोंमें वर्णित 'श्वपतये नमः' कहकर कुत्तोंके स्वामीको नमस्कार किया और जो कुछ उनके पास था सब उसे खिला दिया। अब उनके पास केवल पानी बच रहा था। उन्होंने पीनेके लिये ज्यों ही उसे उठाया त्यों ही एक कसाई पुकारता हुआ आया—पानी बिना मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। राजाके मनमें उस समय यह भाव आया कि 'मैं भगवान्से ब्रह्मलोक नहीं चाहता, योगसिद्धियोंकी मुझे आवश्यकता नहीं; और तो क्या, यदि साक्षात् मोक्ष मुझे प्राप्त हो तो मैं वह भी नहीं चाहता। भगवन् ! कृपा करके मुझे यह वरदान दीजिये

कि मैं सब दुखियोंके हृदयमें स्थित होकर उनके दुःखोंका अनुभव करता रहूँ और वे सुखी हो जायँ। रन्तिदेवने बड़े प्रेमसे वह जल उस कसाईको पिला दिया। उसी समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि उनके सामने प्रकट हुए और रन्तिदेवको उन्होंने वाञ्छित वरदान देना चाहा, परन्तु रन्तिदेवने भगवान्के भजनके अतिरिक्त और कुछ नहीं माँगा। उनके सामनेसे जगे हुए मनुष्यके स्वप्नकी भाँति यह माया नष्ट हो गयी और वे विशुद्ध आत्मस्वरूपमें स्थित हो गये।

रावण

१—रावण विश्रवा मुनिका पुत्र था। जन्मसे तो वह बलवान् था ही; ब्रह्माका वरदान पाकर वह देवताओंके लिये और भी अजेय हो गया। कुबेरसे उसने उनका पुष्पक विमान छीन लिया; इन्द्र, वरुण आदि सबको उससे हार माननी पड़ी। वह मदमत्त होकर विचरने लगा। एक दिन वह पुष्पक विमानपर सवार होकर कैलास पर्वतके उपवनकी ओर, जिसमें भगवान् शंकर विहार कर रहे थे, जा रहा था। एकाएक उसके विमानकी गति रुक गयी, वह चकित हो गया। शिवके प्रधान गण नन्दीश्वरने आकर उसे मना किया कि तू इधर नहीं जा सकता। उनका विकट रूप देखकर रावणको बड़ी हँसी आयी। उसे हँसते देखकर नन्दीने कहा—'तुम मेरे वानररूपको देखकर हँस रहे हो, इसलिये वानर ही तुम्हारे वंशका नाश करेंगे।' रावणने उनकी बातकी तनिक भी परवा नहीं की, अपनी बाँह नीचे देकर समूचा कैलास उठा लिया, जिससे कैलासभरमें तहलका मच गया। शिवजीके गण काँपने लगे, पार्वती उनके शरीरसे लिपट गयीं। शिवजीने अपने बायें अँगूठेसे कैलासको दबाया, जिससे रावणकी भुजाएँ मरमरा उठी। उसने बड़ा भयङ्कर चीत्कार करके बड़ी स्तुति की और रोया, तब शंकरजीने प्रसन्न होकर उसे छोड़ दिया और चन्द्रहास नामका खड्ग दिया।

२—एक बार रावण दिग्विजयके लिये घूम रहा था। एक नदीपर बैठकर वह सन्ध्या करने लगा। इतनेमें ही विना कर्णके नदीमें अचानक ही बाढ़ आ गयी और उसकी पूजाकी सामग्री बहने लगी, देखा तो मान्दम हुआ कि नदीका पानी उल्टा बह रहा है। उसे बड़ा कुतूहल हुआ और इस बातका कारण जाननेके लिये नीचेकी ओर बढ़ा। वहाँ सहस्रबाहु अपनी स्त्रियोंके साथ जलक्रीड़ा कर रहा था और उसीने अपनी बाहोंसे पानी रोक दिया था। स्त्रियोंने रावणको देखकर सहस्र-बाहुसे कहा 'इसे पकड़ लो, यह मनोरञ्जनकी वस्तु होगी।'

रावण बहुत छटपटाया, परन्तु उसकी एक न चली। उसके सब शस्त्र-अस्त्र निष्फल हो गये। सहस्रबाहुने उसे पकड़कर रनिवासमें रख दिया। रानियाँ उसके दस सिरोंपर दिया जलतीं और बच्चे ताली बजाकर हँसते। इस प्रकार रावणकी बड़ी दुर्दशा हुई। आखिरमें पुलस्त्य मुनिने जाकर सहस्रबाहुसे रावणको छुड़ा दिया।

३-चानरराज बालिके महान् बल-पौरुषकी बात सुनकर रावणके मनमें बड़ी कुलबुलहट हुई। उसने सोचा कि बालिसे लड़कर उसे परास्त करूँ। एक दिन जब वह सन्ध्या कर रहा था तब रावण वहाँ पहुँचा। बालिने इशारा किया 'भाई, सन्ध्या कर लेने दो, फिर लड़ लेना।' परन्तु रावणने कहा— 'तुम मुझसे भयभीत होकर बहाना कर रहे हो।' यह सुनकर बालिने सोचा, आखिर ब्राह्मण ही तो है, इसके स्पर्शसे सन्ध्यामें तो कोई विघ्न पड़ता नहीं, तब इसे काँखमें ही रख लिया जाय। बस, उसने धीरेसे पकड़कर रावणको काँखमें दबा लिया और नित्य नियमानुसार चारो समुद्रपर घूमकर सन्ध्या-वन्दन किया। अन्तमें सूर्यको अर्घ्य देते समय वह भूल गया कि मेरी काँखमें रावण है; इससे बाँह उठानेपर वह द्रुट गया और फिर बड़ी अनुनय-विनय करके बालिसे मित्रता कर ली। वाल्मीकि-रामायण और भिन्न-भिन्न पुराणोंमें रावणके सम्बन्धकी बहुत-सी कथाएँ हैं, उन्हें वही पढ़ना चाहिये।

राहु-केतु

भगवान्की कृपा, शक्ति एवं सहायतासे देवता और दैत्योंने समुद्र-मन्थन किया। जब धन्वन्तरि अमृतका कलश लिये हुए समुद्रसे बाहर निकले, तब दैत्योंने उनसे वह कलश छीन लिया और फिर आपसमें लड़ने-झगड़ने लगे कि पहले मैं पीऊँगा, पहले मैं पीऊँगा। उस समय देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान्ने मोहिनी अवतार धारण किया और अपनी मायाभरी चितवनसे दैत्योंको मोहित करके उन्होंने अपनेको पंच स्वीकार करा लिया। दैत्य और देवताओंको अलग-अलग पंक्तिमें बैठाकर मोहिनीने अपनी दृष्टिसे दैत्योंको मोहित कर रखा और वह देवताओंको अमृत पिलाने लगी। सिंहिकापुत्र राहुने यह बात ताड़ ली और वह देवताओंका-सा वेष बनाकर सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें जा बैठा। मोहिनी पंक्तिमें बैठनेके कारण राहुको अमृत पिलाने ही जा रही थी कि सूर्य और

चन्द्रमाने उसे बतला दिया। उसका कपट खुलते ही विष्णु भगवान्का चक्र चला और राहुका सिर धड़से अलग हो गया। परन्तु उसके मुँहमें अमृत पहुँच चुका था, इसलिये वह मरा नहीं। बतला देनेके कारण चन्द्रमा और सूर्यसे वह द्वेष करने लगा और क्रमशः पूर्णिमा और अमावस्याको उनपर आक्रमण करता है, जिससे कि ग्रहण लगता है। उस कटे हुए सिरका नाम राहु और धड़का नाम केतु है।

वाल्मीकि

अध्यात्मरामायणमें कथा आती है कि भगवान् श्रीरामसे मिलनेपर वाल्मीकिने उन्हें स्वयं अपने मुखसे अपनी जन्मकथा सुनायी थी। उन्होंने कहा— 'हे भगवन्! जन्मसे तो मैं ब्राह्मणका बालक हूँ, परन्तु शूद्रोंके साथ रहते-रहते मैं सब अपना धर्म-कर्म भूल गया और उन्हींके समान आवरण करने लगा। दुःसंगसे मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी और मैं यात्रियोंको लूटकर अपने कुटुम्बका भरणपोषण करने लगा। एक दिन मैं यात्रियोंको ठगनेकी टोहमे था कि उसी रास्तेसे सप्तर्षि लोग जाते हुए दीखे। मैंने कहा— 'टहरो, जो तुम्हारे पास हो यहाँ रखकर तब जाओ।' मेरी बात सुनकर सप्तर्षि हँसने लग, उन्हें तनिक भी भय नहीं हुआ। उन्होंने कहा 'भाई तू अपने घर जाकर पहले पूछ ले कि तेरे कुटुम्बी तेरे पापोंका फल भोगनेमें साक्षीदार होंगे या नहीं। जबतक तू नहीं लौटेगा हम यही खड़े रहेंगे।' न जाने उनकी बातोंका मुझपर क्या असर पड़ा, मैं उनको वहीं छोड़कर घर चला गया और स्त्रीसे, बाल-बच्चोंसे पूछा। उन्होंने कहा 'हमको पापका क्या पता, तुम्हारा दिया हुआ खाते हैं।' उनकी बात सुनकर मेरी आँखें खुली और मैं ऋषियोंके शरणागत हुआ। उन्होंने आपसमें सलाह करके मेरे अत्यन्त पापी होनेके कारण मुझे रामका उलटा 'मरा' जपनेको बतलाया। थोड़े समयतक जप करनेसे वह 'मरा'से 'राम' बन गया और मैं बड़ी लगनसे उसे रटने लगा। मुझे लोक, परलोक, शरीर और प्राणोंकी भी सुध न रही। मैं राम-नाममें तल्लीन हो गया। दीमकोंने मिट्टीसे मेरा शरीर ढँक दिया और मैं बहुत वर्षोंतक उसी वल्मीकमें पड़ा रहा। पुनः सप्तर्षि आये और उन्होंने मुझे ब्रह्मर्षि वाल्मीकि कहकर उठाया। इस प्रकार यह मेरा नवीन जन्म हुआ और मैं तबसे आपके नामका जप किया करता हूँ।' महर्षि वाल्मीकिने मानस-रामायणमें भगवान् श्रीरामको टहरनेके लिये जो स्थान

बतलाये हैं वे सभीके मनन करने योग्य हैं। इन्होंने ही वाल्मीकीय रामायणकी रचना करके भगवान् श्रीरामके पुत्र लव-कुशको पढ़ाया था। इन्हींके द्वारा प्रेमप्रधान आनन्द-रामायणकी रचना हुई। और ज्ञानमय योगवाशिष्ठका निर्माण भी इन्हीं महर्षिकी कृपाका फल है।

विराध

पुराणोंमें विराधकी उत्पत्ति भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्राप्त होती है। एक स्थानपर ऐसी कथा आती है कि तुम्बुरु गन्धर्व रम्भा अप्सरापर मोहित हो जानेके कारण यक्षराज कुबेरको सेवा समयपर न कर सके। कुबेरने शाप दे दिया कि 'तुम राक्षस हो जाओ।' वही तुम्बुरु जब राक्षसकी पत्नी शतहृदाके गर्भसे पैदा हुआ तब उसका नाम विराध पड़ा। अनुनय-विनय करनेपर कुबेरने ही यह छूट कर दी थी कि भगवान् श्रीरामके बाणोंसे विराध राक्षस-योनिसे छूट जायगा। सीताको उठाकर ले भागनेपर श्रीरामने उसका उद्धार किया। दूसे प्रकारसे भी इसकी कथा आती है।

विश्वामित्र

विश्वामित्रके सम्बन्धकी बहुत-सी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। अत्यन्त संक्षेपमें भी वे सब यहाँ नहीं लिखी जा सकती। ये राजा गांधिके पुत्र थे। वसिष्ठकी कामधेनु गौको देखकर इन्होंने उसे लेना चाहा, परन्तु वसिष्ठने उसे ब्राह्मणोंकी सम्पत्ति बतलाकर देनेसे अस्वीकार कर दिया। इसपर विश्वामित्रने क्रोधित होकर उनसे लड़ाई छेड़ दी। परन्तु ब्रह्मबलके सामने इनका क्षत्रियबल कुछ काम न कर सका, ये हार गये। अब विश्वामित्रके मनमें यह इच्छा हुई कि मैं भी ब्रह्मबल अर्थात् ब्राह्मणत्व प्राप्त करूँ। उन्होंने बहुत दिनोंतक घोर तपस्या की और अन्तमें ब्रह्माने उन्हें ब्राह्मण होनेका वरदान दे दिया। यों तो विश्वामित्र जन्मसे भी आधे ब्राह्मण ही थे।

वसिष्ठ विश्वामित्रको ब्राह्मण नहीं स्वीकार करते थे। बीच-बीचमें दोनोंमें कुछ विवाद भी हो जाया करता था। एक बार दोनोंमें यह विवाद हुआ कि तपस्या बड़ी है या सत्संग। विश्वामित्र तपस्याके पक्षमें थे और वसिष्ठ सत्संगके। अपने विवादका निर्णय करानेके लिये दोनों शोध भगवान्के पास पहुँचे। उन्होंने सब बातें सुनकर कहा कि भाई ! मेरे सिरपर इतनी बड़ी पृथिवीका भार है, तुममेंसे कोई एक क्षणके लिये

इसे ले ले तो मैं निर्णय कर दूँ। विश्वामित्रने अपनी हजारों वर्षकी तपस्याके फलका संकल्प करके एक क्षणतक पृथिवीको धारण करना चाहा, पर न कर सके। वसिष्ठने एक क्षणके सत्संगका फल लगाकर सारी पृथ्वीको धारण कर लिया। बिना कुछ कहे ही निर्णय हो गया और दोनों वहाँसे लौट आये।

विश्वामित्रके मनमें वसिष्ठके प्रति कुछ दुर्भावना बाकी थी। एक दिन पूर्वसंस्कारवश वह उभड़ आयी और वे वसिष्ठका अनिष्ट करनेके लिये जा पहुँचे। उस समय अरुन्धती और वसिष्ठ आपसमें विश्वामित्रकी ही चर्चा कर रहे थे। अरुन्धतीने कहा—'आजकल विश्वामित्रके तपकी बड़ी प्रशंसा हो रही है, सुना है कि वे अपने तपोबलसे क्षत्रियसे ब्राह्मण हो गये।' वसिष्ठने कहा—'सच्ची बात है, वर्तमान समयमें विश्वामित्र बहुत ही ऊँचे तपस्वी हैं, उनके ब्राह्मण होनेमें भला किसे सन्देह है।' वसिष्ठको एकान्तमें इस प्रकार बातें करते देख-सुनकर विश्वामित्रका मन साफ हो गया, वे जाकर वसिष्ठके गले लगे और फिर तबसे दोनोंमें मित्रता हो गयी।

शबरी

पंपासरोवरके तटपर मतङ्ग मुनिके शिष्योंके आश्रमके पास ही श्रमणी नामकी एक शबरी (भीलनी) रहती थी। उसे सब लोग शबरीके नामसे ही जानते थे। वह बड़ी सेवापरायण थी, रातमें ही उठकर श्रमणियोंके मार्ग झाड़-बुहारकर साफ कर देती। मतङ्ग मुनि भी उससे बहुत प्रसन्न रहते थे। जब वे शरीरत्याग करके इस लोकसे जाने लगे तब शबरीने उनसे प्रार्थना की कि आप मुझे भी अपने साथ ले चले। मतङ्ग मुनिने कहा—'तू अभी यही रह, इस स्थानपर भगवान् श्रीराम आयेंगे। उनके दर्शनके बाद आना।' तबसे प्रातःकालसे लेकर सायंकालतक शबरी श्रीरामकी बाट जोहा करती। आसन सज्जती, फूल चुनती, फल लाती और निर्निमेष नयनोंसे देखा करती अब आ ही रहे होंगे। उसकी इस निरन्तर प्रतीक्षाके फल-स्वरूप भगवान् श्रीराम उसके पास आये और उनके दर्शन, सम्भाषण एवं सत्कारके पश्चात् जीवनधारण अनावश्यक समझकर शबरीने शरीर त्याग किया।

शिवि

राजा शिवि काशीनरेश उशीनरके पुत्र थे। वे अपने समयके बड़े ही धर्मात्मा और दानी हो गये हैं। एक बार उन्होंने

सौ यशोंका संकल्प किया। कुछ ही दिनोंमें सौ यश पूरे हो जानेवाले थे, परन्तु अपना राजसिंहासन छिन जानेके भयसे इन्द्रने बाधा डाल दी। उन्होंने अग्निको बनाया कबूतर और स्वयं बने बाज, कबूतर आगे-आगे भगा जा रहा था और बाज उसका पीछा कर रहा था। भागते-भागते वह कबूतर शिविकी गोदमें जा गिरा। बाजरूपधारी इन्द्रने जाकर कहा—‘राजन्! यह मेरा आहार है, इसे मुझे दे दीजिये।’ शिविने कहा—‘शरणागतका परित्याग ब्रह्महत्या और गोहत्यासे भी बढ़कर है। इसकी रक्षा करना ही मेरा धर्म है। और जो चाहो सो तुम ले सकते हो।’ अन्तमें कबूतरके बदले राजाका उतना ही मांस लेना बाजने स्वीकार किया। वे तराजूके एक पलड़ेपर कबूतरको बैठाकर दूसरे पलड़ेपर अपना मांस काट-काटकर रखने लगे। जब उससे कबूतरके बराबर मांस न हुआ तब वे स्वयं तराजूपर बैठ गये। उनकी धर्मनिष्ठा देखकर चारों ओर जय-जयकी ध्वनि होने लगी और स्वयं भगवान् विष्णुने प्रकट होकर उन्हें अपना परम धाम दिया।

शृङ्गी

शृङ्गी ऋषिका दूसरा नाम ऋष्यशृङ्ग था। इनके पिता कश्यपतनय महात्मा विभाण्डक थे। उन दिनों अङ्गदेशके राजा रोमपादसे अयोध्याधिपति दशरथकी बड़ी मित्रता थी। रोमपादको कोई सन्तान न होनेके कारण बड़ा दुःख था, इससे दशरथने अपनी कन्या शान्ता उन्हें दे दी थी। एक बार अङ्गदेशमें अवर्षणके कारण दुर्मिश्र पड़ गया। जब प्रजा बहुत दुखी हुई तब राजा रोमपादने ऋष्यशृङ्गको बुलकर एक यज्ञ करवाया और अपनी पुत्री शान्ताका विवाह उनसे कर दिया। वर्षा हुई, सब लोग सुखी हो गये। जब यह समाचार दशरथको मालूम हुआ तब महर्षि वसिष्ठकी अनुमतिसे उन्हें अयोध्यामें बुलाया और उनकी उपस्थितिमें पुत्रेष्टि यज्ञ किया, जिस यज्ञके चरुभक्षणसे रानियोंको गर्भ रहा और श्रीराम-लक्ष्मण आदि पुत्र उत्पन्न हुए।

सहस्रबाहु

ये माहिष्मतीके राजा कृतवीर्यके पुत्र थे। इनका नाम कार्तवीर्य अर्जुन था, इनके एक सहस्र बाहु होनेके कारण इनका नाम सहस्रबाहु भी था। ये इतने बलशाली थे कि रावण भी इनका बंदी रह चुका था। ये शिवजीके बड़े उपासक थे।

जब इन्होंने लोभवश जमदग्नीकी गौ छीन ली, तब परशुरामने इन्हें मार डाला। इनके सौ पुत्र थे। पिताकी मृत्युसे चिढ़कर उन्होंने जमदग्नीकी हत्या कर डाली। परिणामतः क्रोधित होकर परशुरामने इक्कीस बार क्षत्रियोंका संहार किया। विशेष कथा परशुरामके प्रसंगमें देखें।

हरिश्चन्द्र

अयोध्याधिपति राजा हरिश्चन्द्र बड़े ही सत्यप्रेमी और दानी थे। उनके मुँहसे भूलसे भी जो बात निकल जाती उसको वे पूरा करते। उनके दान और सत्यप्रेमकी महिमा चारों ओर गायी जाने लगी। एक दिन इन्द्रकी सभामें भी स्वयं वसिष्ठने कहा कि हरिश्चन्द्र-जैसा दानवीर न कोई हुआ, न है, न होगा। इन्द्रकी प्रेरणासे विश्वामित्रने उनकी परीक्षा लेनी चाही। स्वप्नमें हरिश्चन्द्रकी जीवात्माको उन्होंने अपने पास बुला लिया और उन्हें अपने तपोबलसे प्रभावित करके सर्वस्व-दानका संकल्प करा लिया और बहुत-सी स्वर्णमुद्राएँ भी उनसे स्वीकार करा लीं। जब हरिश्चन्द्रका स्वप्न टूटा तब उनके मनमें यह बात आयी कि चाहे स्वप्नमें ही क्यों न हो मैंने संकल्प कर दिया है, इसलिये उसको पूर्ण करना चाहिये। दूसरे ही दिन प्रातःकाल महर्षि विश्वामित्रको दूँ देनेके लिये आदमी भेज दिये गये, उनके नामकी मुहर बनवा ली और हरिश्चन्द्र मैनेजरकी भाँति राज्यका काम करने लगे। लोगोंने बहुत समझाया-बुझाया, परन्तु उन्होंने किसीकी नहीं सुनी।

विश्वामित्र आये, उन्होंने सारा राज्य ले लिया और पीछे देनेका कहीं हुई स्वर्णमुद्राओंके लिये ऋणी बनाकर हरिश्चन्द्र, उनकी पत्नी एवं छोटे बच्चे रोहिताश्वको वत्कल पहनाकर घरसे निकाल दिया और कह दिया कि ‘एक महीनेमें अगर मेरा ऋण नहीं दे दिया तो मैं तुम्हें शाय दे दूँगा।’ हरिश्चन्द्रको तो देना ही था, वे वहाँसे पैदल चलकर काशी आये। अपनी पत्नी और बच्चोंको एक धर्मात्मा ब्राह्मणके यहाँ बेच दिया और विश्वामित्रका आधा ऋण चुका दिया। आधेके लिये उन्होंने विवश होकर अपनेको एक डोमके हाथ बेचा और मरघटपर कफन बसूल करनेका काम करने लगे। एक दिन साँपके काटनेसे रोहिताश्वकी मृत्यु हो गयी, रानी शैब्या अपने बच्चोंका शव उठाकर मरघटपर ले आयीं। हरिश्चन्द्रने पहचाननेपर भी कफन लिये बिना शवका जलाना मना कर दिया। जब रानी

अपनी साड़ी फाड़कर देने लगीं तब स्वयं भगवान्, तथा धर्म, इन्द्र आदि देवता प्रकट हुए और हरिश्चन्द्रकी इच्छा-नुसार उनकी सारी प्रजाके साथ उन्हें स्वर्गमें ले गये।

गणपति

गणपति भगवान् शंकरके पुत्र हैं। पार्वतीने बहुत दिनों-तक श्रीकृष्णकी आराधना करके इन्हें प्राप्त किया था। बचपनमें गणेशको देखनेके लिये सभी देवता आये। शनैश्चर इनपर अपनी दृष्टि नहीं डालना चाहते थे, परन्तु पार्वतीके बहुत कहनेपर अपनी आँखकी एक कोरसे इन्हें देख लिया, जिससे गणेशका सिर धड़से अलग हो गया। इसपर पार्वती रोते-रोते मूर्छित हो गयी। फिर विष्णुभगवान्ने पुष्पभद्रानदीके तटपर उत्तरकी ओर सिर करके सोये हुए गजेन्द्रका मस्तक सुदर्शनचक्रसे काट लिया और उसे गणेशके धड़से जोड़कर उन्हें जीवित कर दिया। गणेश जब बहुत बच्चे थे तब उन्हें दरवाजेपर बैठकर शिव-पार्वती अन्तःपुरमें किसी काममें लगे हुए थे, उसी समय परशुराम आये। गणेशने उन्हें अंदर जानेसे रोका। दोनोंमें लड़ाई हुई। गणेशका एक दाँत टूट गया। तबसे वे एकदन्त हुए।

एक बार देवताओंमें यह प्रश्न उठा कि पहले किसकी पूजा होनी चाहिये? सर्वसम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि जो सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा सबसे पहले कर आवे, उसीकी पूजा सबसे पहले हो। सब देवता अपने-अपने वाहनपर चढ़कर चल पड़े। विष्णु गरुड़पर, ब्रह्मा हंसपर, शिव बैलपर, इन्द्र ऐरावतपर और स्वामिकार्तिक मयूरपर। गणेश क्या करते, इनके पास वाहनके नामपर था एक चूहा, वे उसपर सवार होकर क्रिसकामुत्तावश करते। कुछ हिम्मत की, परन्तु सबसे पिछड़ गये। भगवान्की लीला जानी नहीं जाती, वे बड़े कौतुकी हैं; पिछड़ेको आगे बढ़ाना, हारे हुएका जिताना उनका बाये हाथका खेल है। नारद बाबा आये गणेशके पास। उन्होंने कहा 'भैया! तुम किस फेरमें पड़े हो? इस पृथिवीकी तो बात ही क्या, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और सारा विश्व भगवान्के नाममें समायी हुआ है। नामसे ही विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है। तुम एक नाम लिखकर उसकी परिक्रमा कर लो, बस, सारी पृथिवीकी परिक्रमा हो जायगी।' गणेशजी महाराज बीसवीं शदीके तार्किक तो थे नहीं;

उनमें श्रद्धा थी, विश्वास था। उन्होंने चट राम-नाम लिखा और पट परिक्रमा कर ली। जब सब लोग पृथ्वीकी परिक्रमा करके लौटे तबतक गणेशजी सबसे ऊँचे आसनपर विराजमान थे। देवताओंको बड़ा आश्चर्य हुआ, परन्तु जब राम-नामकी महिमा उन्हें सुनायी गयी तब उन्होंने स्वीकार कर लिया। तबसे गणेशकी सर्वप्रथम पूजा होने लगी। गणेशजी पार्वतीके पुत्र होनेपर भी अनादि-अनन्त परमात्माके ही एक लीलाविग्रह हैं, इसलिये वे नित्य हैं। पार्वतीके विवाहमें भी उनकी पूजाका वर्णन आता है।

दक्ष प्रजापति

सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माके दाहिने अँगूठेसे दक्ष प्रजापतिका जन्म हुआ। ब्रह्माकी आज्ञासे इन्होंने पहले मानस सृष्टि की, पीछे मैथुनी सृष्टि भी की। इनके बहुत-से लड़के नारदके उपदेशसे घर-बार त्यागकर संन्यासी बन गये और फिर नहीं लौटे। जब सब लड़कोंकी यही दशा हुई तब दक्षने स्त्रीसक नारदका शाप दे दिया कि तुम ढाई घड़ीसे अधिक कहीं नहीं ठहर सकोगे। दक्षकी कन्याओंका बहुत बड़ा विस्तार है। कश्यप, चन्द्रमा, धर्मराज आदिसे इन्हींकी कन्याओंका विवाह हुआ है। दक्षकी ही कन्या सती थीं, जिनका विवाह भगवान् शङ्करसे हुआ था।

दक्ष भगवान् शङ्करसे बहुत चिढ़ते थे। दक्ष प्रवृत्ति-मार्गी थे, सृष्टि बढ़ानेके पक्षमें थे; और शङ्कर निवृत्तिमार्गी हैं, संहारके पक्षमें हैं। दक्ष उन्हें मर्यादाविरोधी कहा करते थे। एक दिन शङ्कर ध्यानमग्न थे, सब देवता उन्हें घेरकर बैठे हुए थे। दक्ष प्रजापतिके आनेपर सब लोगोंने उठकर उनका स्वागत किया, परन्तु शङ्कर ज्यों-के-त्यों बैठे रहे। दक्षने इसे अपना अपमान समझा। वे बिगड़ उठे और भगवान् शङ्करको शाप दे दिया कि ये अबसे यज्ञमें भाग न पावें। वहाँसे जाकर ऐसे यज्ञका श्रीगणेश करनेके लिये उन्होंने एक प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। भगवान् शङ्कर इन बातोंसे उदासीन थे मानो कुछ हुआ ही न हो।

सतीको दक्षके शापका पता नहीं था, एक दिन देवताओंको दक्ष प्रजापतिके घरकी ओर जाते देखकर उन्हें बड़ी उत्सुकता हुई। पता लगानेपर माझम हुआ कि दक्ष प्रजापतिके यहाँ कोई यज्ञ हो रहा है। इन्होंने भी जानेकी इच्छा

प्रकट की, और शङ्करकी अनुमति न प्राप्त होनेपर भी चली गयी। वहाँ आदर-सत्कार न पाकर और यज्ञमें शङ्करका भाग न देखकर वे योगाग्निसे जल गयीं। शङ्करके गणोंने यज्ञमें विघ्न डालनेकी चेष्टा की, परन्तु उन्हें सफलता न हुई। अन्तमें वीरभद्रने आकर यज्ञध्वंस किया। दक्षका सिर काटकर यज्ञकुण्डमें डाल दिया, फिर ब्रह्माकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर शङ्करजीने दक्षको जीवित किया। सती पार्वतीके रूपसे हिमाचलके घर पैदा हुई। दक्षने ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर भगवान् शङ्करकी महत्ता स्वीकार की।

अनसूया

दक्षकी चौबीस कन्याओमेंसे एकका नाम अनसूया है। महर्षि कर्दम और देवहूतिकी एक कन्याका नाम भी अनसूया था। दक्षके यज्ञमें अनसूया और उनके पति अत्रिकी भी उपस्थितिका वर्णन आता है। सती-सार्ध्वी स्त्रियोंकी गणनामें इनका नाम प्रधानतासे लिया जाता है। इनका पातिव्रत, तपस्या और भगवत्प्रेम बहुत ही प्रसिद्ध है। अनसूयाकी आराधनासे प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर तीनों ही बालक बनकर उनकी गोदीमें खेले थे। विष्णुके अंशसे दत्तात्रेय, ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा और शङ्करके अंशसे दुर्वासाका जन्म हुआ था। रामायणमें वर्णन आता है कि इन्होंने श्रीजानकीजीको पातिव्रत-धर्मकी बहुत ही उत्तम शिक्षा दी और नाना प्रकारके उपहार दिये।

अश्विनीकुमार

सूर्यकी पत्नी संज्ञा, सूर्यका तेज सहन न कर सकनेके कारण अश्विनी होकर कुरुक्षेत्रमें चली आयी थी। जब सूर्यको यह बात मालूम हुई तब वे भी कुरुक्षेत्रमें गये और वहीं अश्विनीरूपधारिणी संज्ञासे दोनों अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ। अश्विनीकुमार देवताओंके चिकित्सक हैं, उनकी चिकित्साकी महिमा वेदोंमें भी कही गयी है। शर्यातिकी कन्या सुकन्याके पातिव्रतसे प्रसन्न होकर इन्होंने ज्यवन ऋषिको दृष्टि-शक्ति, नवयौवन एवं सुन्दरताका दान किया था। उन दिनों दध्यङ् नामके एक ऋषि थे। उन्होंने इन्द्रसे ब्रह्मविद्या प्राप्त की थी, परन्तु इन्द्रने उनसे कह दिया था कि यदि तुम यह विद्या किसी औरको सिखाओगे तो तुम्हारा सिर धड़से अलग हो जायगा। यह बात जब अश्विनीकुमारोंको मालूम हुई तब वे ब्रह्मविद्याकी जिज्ञासासे दध्यङ् ऋषिके पास पहुँचे। उन्होंने कहा हम

आपका सिर धड़से अलग करके रख देते हैं और आपके धड़पर घोड़ेका सिर जोड़ देते हैं। ब्रह्मविद्याका उपदेश करनेपर जब आपका सिर कट जायगा तब हम फिर आपका पहला सिर जोड़ देंगे। ऐसा ही हुआ। दध्यङ्ने घोड़ेके मुँहसे ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया और उनका वह सिर कट जानेपर अश्विनीकुमारोंने पहला सिर जोड़ दिया। अश्विनीकुमारोंकी बड़ी महिमा है, उन्हींकी कृपासे माद्रीने नकुल और सहदेव इन दो पुत्रोंको प्राप्त किया था।

अत्रि

अत्रिका जन्म ब्रह्माजीकी आँखोंसे हुआ था, ये विभिन्न मन्वन्तरोमें प्रजापति और सप्तर्षिके रूपमें रहते हैं। इनकी धर्मपत्नी है अनसूया। इन्होंने ब्रह्माजीकी आज्ञासे अनेक ऋषियोंकी सृष्टि की थी। ये भारतके दक्षिण प्रान्तमें रहते थे। भगवान् के चरणोंमें इनका अहैतुक प्रेम था। भगवान् श्रीरामचन्द्र वनवासके समय स्वयं इनके आश्रमपर गये थे। एक बार राहुके आक्रमणसे सूर्य पृथिवीपर गिर रहे थे, अत्रिने अपनी तपस्याके प्रभावसे पतनोन्मुख सूर्यको आकाशमें ही रोक दिया। तबसे ऋषियोंने इनका नाम प्रभाकर रख दिया। इनकी धर्मपत्नी अनसूयाके तपःप्रभावसे ब्रह्मा, विष्णु, महेशने इनके यहाँ पुत्ररूपसे जन्म ग्रहण किया था।

जय-विजय

ये दोनों भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधामके द्वारपाल हैं। एक बार सनक, सनन्दन आदि चारों परमर्षि भगवान् के दर्शन करनेके लिये वैकुण्ठमें जा पहुँचे। उनकी अवस्था पाँच वर्षकी-सी थी, और वे नम्र थे; इसलिये जय-त्रिजयने उन्हें पहचाना नहीं। उन्होंने ऋषियोंको अंदर जानेसे रोका, ऋषियोंके मनमें एक लीज सूझी। उन्होंने सोचा कि भगवान् इतने दुर्लभ हो रहे हैं कि वैकुण्ठमें आनेपर भी वहाँ जानेमें रूकावट हो रही है; अब उन्हें ऐसा सुलभ कर दिया जाय कि खग, मृग, पक्षी भी सुलभतासे उनका दर्शन कर सकें। ऋषियोंने कहा —‘जय और विजय ! भगवान् के धाममें तुम्हारे-जैसे असावधान व्यक्तियोंको स्थान नहीं मिलना चाहिये। जाओ, तुम लोग कुछ दिनोंतक असुरभावापन्न होकर रहो।’ ऋषियोंका शाप सुनकर जय और विजय उनके चरणोंपर गिर पड़े। तबतक भगवान् विष्णु भी द्वारपर आ गये थे, उन्होंने ऋषियोंका स्वागत किया।

अपने सेवकोंको अपराधी बताया, ब्राह्मणोंकी महिमा गायी और कहा कि 'इनका उद्धार करनेके लिये मैं स्वयं अवतार ग्रहण करूँगा। ये तीन बार जन्म लेंगे तो मैं चार बार अवतार दूँगा।' ऋषि लोग भगवान्का दर्शन करके लौट आये। वही जय और विजय सत्ययुगमें हिरण्यश्व और हिरण्यकशिपु, त्रेतायुगमें रावण, कुम्भकर्ण और द्वापरयुगमें शिशुपाल और दन्तवक्र हुए। भगवान्ने वराह, नृसिंह, राम एवं कृष्ण अवतार धारण करके अपने भक्तोंका उद्धार किया, वे पुनः पूर्ववत् पार्षदके रूपमें स्थित हो गये।

जयन्त

देवराज इन्द्रके शचीसे उत्पन्न हुए तीन पुत्रोंमेंसे एकका नाम जयन्त था। एक बार मेषनादसे जयन्तका बड़ा भयंकर संग्राम हुआ था। जयन्तके मामा पुलोमा उस संग्रामसे भयभीत होकर भग गये थे। जयन्तकी स्त्रीका नाम कीर्ति था। सोमके यज्ञमें इन दम्पतिकी उपस्थितिका वर्णन मिलता है। एक बार भगवान् रामकी परीक्षा करनेके लिये माता जानकीपर इन्होंने कौवेका वेश धारण करके चोच प्रहार किया था, उसके बाद जो कुछ हुआ वह कथा श्रीमानसके अरण्यकाण्डमें वर्णित है।

नृसिंह

हिरण्यकशिपुने ब्रह्मासे पहले यह वर माँगा था कि मैं अमर हो जाऊँ। ब्रह्माने कहा कि 'मैया, जिसका जन्म हुआ है वह अमर नहीं हो सकता, इसलिये दूसरा वर माँगो।' हिरण्यकशिपुने दूसरी बार कहा—'मैं न रातमें मरूँ न दिनमें, न जमीनपर न आकाशमें, न मनुष्यसे न पशुसे, ब्रह्माकी बनायी सृष्टिके किसी जीवसे न मरूँ। देव-दानव, अस्त्र-शस्त्र मुझे न मार सकें।' ब्रह्माने कहा—'एवमस्तु'। हिरण्यकशिपु जाकर देवता, ब्राह्मण और गौओंको कष्ट देने लगा। जब उसने भगवद्भक्त प्रह्लादको बड़ा कष्ट पहुँचाया, मारने दौड़ा तब प्रह्लादकी वाणी सत्य करनेके लिये भगवान् स्वप्नेसे नृसिंहके रूपमें प्रकट हुए। उन्होंने दिन और रातकी सन्धिमें घर और बाहरके बीच देहलीपर बैठकर हिरण्यकशिपुको अपनी जंघाओंपर सुलाकर विना अस्त्र-शस्त्रके नाखूनोसे उसकी अँतड़ी चीर डाली। देवताओंने बड़ी स्तुति की, भगवान्का रुद्ररूप देखकर लक्ष्मी भी भयभीत हो गयी, फिर प्रह्लादने भगवान्को शान्त किया। भगवान्ने प्रह्लादसे कहा—'बेटा ! तुम्हारी अवस्था इतनी छोटी, इतना कोमल शरीर और तुम अभी दोदिनके बच्चे, इस दुष्टने कितनी ताड़ना की है तुम्हारी। गलती मेरी ओरसे हुई, मैं पहले नहीं आया। मेरे प्यारे

प्रह्लाद ! तुम मेरा अपराध क्षमा कर दो।' फिर भीनृसिंह भगवान् प्रह्लादको राजगद्दीपर बैठाकर अन्तर्धान हो गये।

मकरी और कालनेमि

इन्द्रकी सभामें नाच-गाकर सभासदोंको रिझानेवाले ये दोनों पहले अप्सरा और गन्धर्व थे। एक दिन इनके नृत्य और गानकी बड़ी प्रशंसा हुई, सब सभासद् वाह-वाह कहने लगे। वही दुर्वासा ऋषि भी थे। उन्होंने इनके नृत्य और संगीतकी कुछ प्रशंसा नहीं की। उस अप्सरा और गन्धर्वने सोचा कि ये नृत्य और गायनके सम्बन्धमें कुछ नहीं जानते, इससे उन्हें हँसी आ गयी। इसपर दुर्वासाने शाप दिया कि यह अप्सरा मकरी हो जाय और गन्धर्व राक्षस। जब उन दोनोंने ऋषिके पैरोंपर गिरकर बड़ी प्रार्थना की, बहुत गिड़गिड़ाये, तब उन्होंने बता दिया कि त्रेतायुगमें रामदूत हनुमान्के चरणोंका स्पर्श होनेसे मकरीका और उनके मारनेसे राक्षस कालनेमिका उद्धार होगा। यही बात लङ्का-काण्डमें कालनेमिका भण्डाफोड़ करते हुए मकरीने कहा थी।

मार्कण्डेय

महर्षि मृकण्डुके पुत्र मार्कण्डेय बड़े ही तपस्वी एवं गुरुभक्त थे। उनकी तपस्या और गुरुभक्तिके प्रभावसे अन्पायुमें ही होनेवाली उनकी मृत्यु टल गयी और वे दीर्घजीवी हो गये। उनकी भयङ्कर तपस्यासे घबड़ाकर इन्द्रने बहुत-सी अप्सराएँ एवं कामदेवको भेजा, परन्तु वे मार्कण्डेयके तेजसे जलने लगे और वहाँसे लौट आये। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् नारायणने उन्हें दर्शन दिया और बार-बार वर माँगनेका आग्रह किया। मार्कण्डेयने कहा—'आपके दर्शनसे बढ़कर और कौन-सी वस्तु है जिसे मैं माँगूँ। फिर भी आप प्रसन्न ही हुए हैं तो कुछ अपनी लीला दिखाइये।' भगवान्ने उन्हें प्रलयकी लीला दिखायी। सारी सृष्टिके जठ-मग्न होनेपर उन्हें वटके पत्तेपर सोये हुए भगवान्के दर्शन हुए। उस मनोहर बालककी मूर्तिको देखकर वे मुग्ध हो गये और जब विसककर उनके पास गये तो श्वासके साथ खिंचकर उनके पेटमें चले गये। वहाँ उन्हें पूर्ववत् सब सृष्टिके दर्शन हुए, फिर श्वासद्वारा वे बाहर आये। वे उस मधुरमूर्तिसे आकृष्ट होकर पुनः आलिंगन करने जा ही रहे थे कि भगवान् अन्तर्धान हो गये। उन्होंने मन-ही-मन भगवान्को प्रणाम किया और उनके शरणागत होकर सदाके लिये उनकी मूर्ति अपने हृदयमें बैठा ली।

एक बार पार्वतीजी और भगवान् शङ्कर विचरते हुए मार्कण्डेयके आश्रमकी ओर निकले। पार्वतीकी प्रेरणासे भगवान् शङ्करने उनके पास जाकर उनसे वर माँगनेको कहा। मार्कण्डेय मुनिने उनकी पूजा करके कहा—‘मुझे और किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, आप कृपा करके ऐसा वर दीजिये कि श्रीभगवान्के चरणोंमें मेरी भक्ति बनी रहे।’ शिवने कहा—‘तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो, तुम्हें अमर यश और कल्पभरका जीवन प्राप्त हो, तुम्हें विकालविपथक ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य और पुराणोंका आचार्यत्व प्राप्त हो।’ मार्कण्डेय मुनि चिरजीवी हैं और अब भी कहीं एकान्तमें तपस्या करते हुए जगत्के कल्याणार्थ अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

वसिष्ठ

महर्षि वसिष्ठ ब्रह्माके मानसपुत्र हैं। इनका चरित्र बड़ा लया है। इनकी धर्मपत्नी श्रीअरुन्धतीजी हैं। जब इन्हें पृथ्वीपर आकर रघुवंशियोंके पुरोहित बननेकी आज्ञा हुई तब इन्होंने उसे नोच कर्म बतलाकर स्पष्ट अस्वीकार कर दिया, परन्तु जब ब्रह्माने बतलाया कि इस वंशमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम अवतीर्ण होनेवाले हैं तब इन्होंने भगवान्के दर्शनके लोभसे वह काम स्वीकार कर लिया। इनके तपोबलसे अनेको दुष्टियोंका दुःख दूर हुआ है, जगत्का महान् कल्याण हुआ है। काम-क्रोधादि शत्रु पराजित होकर महर्षि वसिष्ठकी चरणसेवा किया करते थे। विश्वामित्रके द्वेष करनेपर भी ये उनसे प्रेम ही करते थे। एक बार जब विश्वामित्र रातको चुपकेसे वसिष्ठका अनिष्ट करने आये हुए थे तब उन्होंने अपने कानों सुना कि वसिष्ठ अरुन्धतीसे एकान्तमें उनकी प्रशंसा कर रहे हैं। योगवासिष्ठके उपदेशकके रूपमें महर्षि वसिष्ठ भगवान् रामके भी गुरु हैं। इससे अधिक उनकी महिमाके सम्बन्धमें और क्या कहा जा सकता है। उनके जीवनमें आदर्श त्याग है, तपस्या है, ज्ञान है, वैराग्य है और सबसे बढ़कर है भगवत्प्रेम। आज भी ये भगवान्की आज्ञासे सतर्पिमण्डलमें रहकर सारे संसारमें शान्तिका विस्तार करते हैं।

वराह-हिरण्याक्ष

भगवान्के पार्यद जय और विजय दितिके गर्भसे हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुके नामसे पैदा हुए। ये दोनों बड़े बलिष्ठ थे। हिरण्याक्षके भयसे सब देवता काँपते रहते थे। जब कोई देवता हिरण्याक्षका मुकाबला नहीं कर सका तब नारदने हिरण्याक्षको बतलाया कि भगवान् विष्णु वराह-रूपमें अवतीर्ण होकर पृथिवीको लानेके लिये रसातलमें गये हुए हैं।

ब्रह्माको जब सृष्टि करनेकी आवश्यकता हुई तब स्थानपर उनकी दृष्टि पड़ी। चारों ओर जल-ही-जल था। प्रजाको स्थान कहाँ देते? उन्होंने भगवान्का चिन्तन किया, तुरंत वराहरूपसे भगवान् प्रकट हुए। वे ब्रह्माकी प्रार्थनासे प्रलयकालीन जलमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार करने रसातलमें गये। जब वराह भगवान् पृथ्वीका उद्धार करके लौटे तब मार्गमें हिरण्याक्ष मिला। बड़ी लड़ाई हुई। अन्तमें हिरण्याक्ष मारा गया।

विश्रवा

विश्रवा मुनि ब्रह्माके पौत्र एवं पुत्रस्त्यक पुत्र थे। ये बड़े ही तपस्वी एवं आचारानुष्ठान पुरुष थे। इनके दो स्त्रियाँ थीं। एक भरद्वाजकी कन्या वरवर्णिनी और दूसरी माल्यवान्की पुत्री कैकसी। वरवर्णिनीपर प्रसन्न होकर इन्होंने एक पुत्र उत्पन्न किया था जो देवताओंके धनाध्यक्ष कुबेरके नामसे प्रसिद्ध है। पहले लड़का कुबेरकी ही राजधानी थी। वरवर्णिनीके पुत्रका सौभाग्य देखकर कैकसीके मनमें भी पुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छा हुई और वह मायंकाल मन्थ्याके समय पुत्र उत्पन्न करनेके लिये ऋषिके पास गयी। उन्होंने कहा—‘प्रिये, तुम्हारी इच्छा तो प्रशंसनीय है, परन्तु यह समय बड़ा घोर है। तुम्हारे गर्भसे राक्षस जन्म लेंगे।’ कैकसीके बहुत प्रार्थना करनेपर विश्रवा मुनिने कहा ‘एक पुत्र धार्मिक एवं भगवद्भक्त होगा।’ कैकसीके गर्भसे रावण, कुम्भकर्ण एवं विभीषणका जन्म हुआ। रावणने लोकपाल कुबेरकी राजधानी लंका छीन ली और उसमें अपनी राजधानी बनायी। कुबेरने अलकापुरी बसा ली। इस प्रकार विश्रवा मुनिके द्वारा ही यक्ष और राक्षसोंकी सृष्टि हुई।



‘मानस’ जीवनका प्रकाश है

(लेखक—पूज्यपाद पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज)

यद्यपि राम-कथा अनेक रूपोंमें विभक्त होकर आर्यावर्तनिवासियोंके कल्याणमें लगी रहती है, तथापि तुलसीकृत रामचरितमानस समस्त चेतनोके उद्धारमें विशेषतः संलग्न रहता है। यह अपने सौलभ्य तथा गाम्भीर्य आदि गुणोंसे किस प्रकार सबका कल्याण कर रहा है सो किसीसे छिपा नहीं है। श्रीगोस्वामीजी महाराजने इसके सम्बन्धमें एक जगह शाप और दूसरी जगह वरदान दिया है। शापमें वे कहते हैं—

जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए । ते कायर कलिकाल बिगोए ॥

नृषि नरिखि रबिकर भव बारी । फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी ॥

इसी प्रकार उनका आशीर्वाद सुनिये—

जे एहि कथहिं सनेह समेता । कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ॥

होइहहिं राम चरन अनुरागी । कलि मल रहित सुमंगल भागी ॥

वस्तुतः रामायण शब्दकी अन्वर्थता रामचरितमानसमें ही सन्निहित है।

मानसरामायणसे मुझे या और किसीको कितना लाभ हुआ है, होता है या हो सकता है, यह कहना पुनरुक्तिप्राय, अथवा यो कहिये कि प्रकाशनिधिको प्रकाश दिखाना है। मैं अपना अनुभव कहता हूँ कि मुझको केवल मानसरामायणसे ही सब कुछ प्राप्त हुआ है। मैंने वचनमें किसीसे अक्षर भी नहीं पढ़े थे। केवल इस शरीरके पिताने मानसके उत्तरकाण्डके राजगद्दीके प्रसङ्गको मुझे कण्ठस्थ करा दिया था। तत्पश्चात् उतने ही अंशका हस्तलिखित लेख भी मुझे मिल गया और उसीसे सब अक्षरोंका बांध हो गया। इस प्रकारसे रामचरितमानस प्रत्यक्ष फलदायी आशीर्वादात्मक ग्रन्थ है। मैं बार-बार यह कहने नहीं आघाता कि आजतक मुझे जो कुछ प्राप्त है वह मानसकी ही कृपासे प्राप्त है।

मानस ही मेरे जीवनका प्रकाश है। केवल मेरे ही लिये नहीं, वह सबके लिये विशेष कल्याणकारी है। यह बात मैं पूर्णतः निश्चितरूपसे कहूँगा और मेरे इस कथनसे सभी अनुभवी एवं सद्बुद्धय सज्जन सहमत हैं, होंगे। वस, अलमतिविस्तरेण।

‘मानस’ से भवबन्धन-मुक्ति

(लेखक—पूज्यपाद स्वामीजी श्रीअवधविहारीदासजी परमहंस ‘नागाबाबा’)

मानसकी महिमा अपरंपार है। इस कलिकालके जीवोंके लिये तो वह संसारसागरसे पार उतारनेवाला जहाज है। ऐसा कोई मनुष्य न होगा जो मानसजीकी शरण लेकर उनका श्रद्धापूर्वक पाठ करे और वह इस संसारमें भटके। एक पलमें ही मानसजीकी कृपासे भवबन्धन टूट जाता है। ऐसे मानसजीका प्रकाशन आप मानसांकके रूपमें करने जा रहे हैं। इससे किस मानसप्रेमीको प्रसन्नता न होगी ?

मानसके द्वारा अनुपम सुख और शान्ति

गोस्वामी तुलसीदासजीकी मानस-रामायण संसारमें अपने ढंगकी निराली पुस्तक है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चारों वर्णों और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी चारों आश्रमवालोंके लिये वेद, स्मृति, पुराणके उपदेशोका सारभूत यह धर्मग्रन्थ है। इसमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्यकी विमल त्रिवेणीका प्रवाह बहता है। यह असंख्य प्राणियोंके जीवनकी सर्वस्व रही है। करोड़ों प्राणियोंने इसके द्वारा इच्छाके अनुकूल ज्ञान, भक्ति, वैराग्यका अमृत-रस पान किया है और समयके अन्ततक करोड़ों इसके द्वारा अनुपम सुख और शान्ति पाते रहेंगे।

संसारने इस अद्भुत ग्रन्थके गुणोंको अभीतक पूर्णरीतिसे नहीं जाना। किन्तु मेरा विश्वास है कि भविष्यमें जैसे-जैसे इसके गुणोका अधिक प्रकाश होगा वैसे-वैसे इसका अनुवाद पृथ्वीकी अनेक भाषाओंमें छपेगा। यह ग्रन्थ समस्त मनुष्यजातिको अनिर्वचनीय सुख और शान्ति पहुँचानेका साधन है। वे लोग धन्य हैं जो गोस्वामी तुलसीदासजीके मानस-रामायण और विनयपत्रिकाको पढ़ते या सुनते हैं। वे लोग अधिक धन्य हैं, जो मानसरामायणका सस्ता और सुन्दर संस्करण छापकर इसको गरीब-से-गरीब मनुष्योंके हाथमें पहुँचाकर उनकी अनमोल सेवा कर रहे हैं। मैं प्रार्थना करता हूँ कि सस्ते-से-सस्ते दामों और अच्छे-से-अच्छे अक्षरोमें छपी हुई मानस-रामायण अधिक-से-अधिक मनुष्योंके हाथमें पहुँचे और इसके पवित्र उपदेशोंसे अनन्त प्राणियोंको लाभ हो। अब भी बहुत-से नगर और गाँवोंमें रामायणकी कथा होती है। जहाँ नहीं होती वहाँ होनी चाहिये और इसके पवित्र उपदेशोंका दिन-दिन अधिक प्रचार होना चाहिये।

मदन मोहन मालवीय.

रामचरितमानससे श्रद्धाकी प्राप्ति

(लेखक—पूज्यपाद महात्मा गान्धीजी)

तुलसीदासजीकी श्रद्धा अलौकिक थी। उनकी श्रद्धाने हिन्दूसंसारको रामायणके समान ग्रन्थरत्न भेंट किया है। रामायण विद्वत्तासे पूर्ण ग्रन्थ है, किन्तु उसकी भक्तिके प्रभावके मुकाबिले उसकी विद्वत्ताका कोई महत्त्व नहीं रहता। श्रद्धा और बुद्धिके क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। श्रद्धासे अन्तर्ज्ञान, आत्मज्ञानकी वृद्धि होती है, इसलिये अन्तःशुद्धि तो होती ही है। बुद्धिसे बाह्यज्ञानकी, सृष्टिके ज्ञानकी वृद्धि होती है। परन्तु उसका अन्तःशुद्धिके साथ कार्य-कारण-जैसा कोई सम्बन्ध नहीं रहता। अत्यन्त बुद्धिशाली लोग अत्यन्त चरित्रभ्रष्ट भी पाये जाते हैं। मगर श्रद्धाके साथ चरित्रशून्यताका हाँना असम्भव है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि एक बालक श्रद्धाकी पराकाष्ठातक पहुँच सकता है और फिर भी उसकी बुद्धि मर्यादित रह सकती है। मनुष्य यह श्रद्धा कैसे प्राप्त करे। इसका उत्तर गीतामें है, रामचरितमानसमें है। ×××× मैं तुलसीदासजीके रामायणको भक्तिमार्गका सर्वोत्तम ग्रन्थ मानता हूँ।

रामायणसे दिव्य प्रेरणा

(लेखक—श्रीयुत श्यामाप्रसाद मुकर्जी, एम० ए०, एल-एल० बी०, बार-एट-ला, वाइस चैंसलर, कलकत्ता विश्वविद्यालय)

किसी भी साहित्यमें कोई भी ऐसा ग्रन्थ नहीं है जो रामायणके समान लोकप्रिय हो और जिसका धनी-गरीब सभी समानरूपसे आदर करते हों। सैकड़ों वर्ष पूर्व यह ग्रन्थ लिखा गया, परन्तु आज भी इसकी प्राण-पूरक प्रेरणा और आनन्दविधायिनी मधुरता ऐसी है कि संसारके किसी भी अन्य साहित्यमें वह खोजे नहीं मिलती। भारतवर्षमें ऐसा कोई भी व्यक्ति न होगा जिसने बचपनमें रामायणकी महान् घटनाओं तथा दिव्य भावोंसे प्रेरणा न पायी हो।

भारतीय साहित्यका अद्वितीय ग्रन्थ

(लेखक—श्रीयुत हीरेन्द्रनाथदत्त, एम० ए०, बी० एल०, वेदान्तरत्न, वाइस प्रेसिडेंट, अ० भा० थियोसाफिकल सोसायटी)

मैंने आदिसे अन्ततक खूब अच्छी तरह रामायण पढ़ी है और इस महाकाव्यके महाकवि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके प्रति मेरे हृदयमें अपार श्रद्धा और प्रेम है।

गोस्वामी तुलसीदासजी भगवान्के परम भक्त थे। भक्ति और ज्ञानके परमतत्त्वका जितना सुन्दर समन्वय उनमें हुआ है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनका संत-जीवन, व्यापक तथा उदार दृष्टिकोण और जीवनके परम रहस्यमय तत्त्वोंको परख सकनेकी अद्भुत अन्तर्दृष्टि साधारण पाठकोंके हृदयको भी अपनी ओर सहज ही आकृष्ट करती है और हृदय भक्तिभावसे झुक जाता है। मेरा यह विश्वास है कि गोस्वामीजीकी रामायणकं ममान समस्त भारतीय साहित्यमें एक भी ग्रन्थ नहीं है। इतना ही नहीं, साहसके साथ यह भी कहा जा सकता है कि कई बातोंमें यह वाचमीकिरामायणसे भी बढ़कर है। इसीलिये हिन्दीभाषा-भाषी इसे 'सर्वशिरोमणि' मानते हैं और वैसा मानना यथार्थ है। तुलसीदासजीकी रामायणको जाननेका अर्थ यह है कि जाननेयोग्य सारी बातें जान ली गयीं।

श्रीरामचरितमानससे जीवोंका कल्याण

(लेखक—पू० श्रीरामबालकदासजी 'रामायणी')

श्रीरामचरितमानस संसारके जीवोंके हेतु साक्षात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका वाङ्मय अवतार है। इसके सम्बन्धमें भक्त-उर-चन्दन श्रीतुलसीदासजी महाराजने स्वयं आशीर्वाद देनेकी कृपा की है—

जे एहि कथहि सनेह समेता । कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ॥

होइहहिं राम चरन भनुरागी । कलिमल रहित सुमंगल भागी ॥

अर्थ स्पष्ट है। इससे अधिक मैं क्या कह सकता हूँ। संसारमें तीन प्रकारके जीव हैं। श्रीगोस्वामीजीके शब्दोंमें ही सुनिये—

विषई साधक सिद्ध सयाने । त्रिविध जीव जग बेद बखाने ॥

इन तीनों प्रकारके जीवोंका (अर्थात् विषयमें रत रहनेवालोंका, साधकोंका तथा सिद्धोंका) कल्याण रामचरितमानससे हुआ है, होता है और होगा।

रामायणसे धर्म और अध्यात्मविद्याका विस्तार

(लेखक—बाबू श्रीराजेन्द्रप्रसादजी)

तुलसीदासजीने रामचरितमानसकी रचना करके संसारका बहुत बड़ा उपकार किया है। जो शास्त्र और दर्शनके ग्रन्थ संस्कृतमें लिखे गये थे, वह साधारण जनताके लिये संस्कृतका प्रचार कम हो जानेसे प्रायः लुप्त-से हो गये थे। उनके पठन-पाठनका काम बहुत थोड़े पण्डितोंके लिये ही रह गया था। जहाँ-तहाँ कथाके रूपमें उनको लोग सुना करते थे। पर केवल इस प्रकारसे कानसे सुना हुआ मौखिक ज्ञान ही साधारण जनताको उपलब्ध हो सकता था। ऐसे अवसरपर गुसाईंजीने सारे शास्त्रों और दर्शनोंका मन्थन करके जो नवनीत निकाला, उसे हिन्दी भाषामें जनताके लिये उपस्थित कर दिया। जिस दिन मानसकी रचना हुई उस दिनसे आजतक न मातृम कितने अनगिनित नर-नारियोंको इससे आध्यात्मिक लाभ पहुँचा है, और आज भी पहुँचता है। इसलिये यदि यह कहा जाय कि पिछले तीन सौ वर्षोंमें सभी शास्त्रों और दर्शनोंका काम केवल मानसने उत्तरी भारतकी साधारण जनताके लिये किया है, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

उत्तर भारतमें रामायण-पाठकी परिपाटी है। सबेरे नित्यकर्मके बाद और रात्रिको लोग इसे अकेले अथवा जमात बाँधकर पढ़ा करते हैं, और लाखों ऐसे देहाती भी हैं जो अक्षरज्ञान नहीं रखनेपर सुन-सुनकर और गोल्में गा-गाकर रामायणकी बहुत-सी चौपाइयाँ मुखस्थ करके रखे हुए हैं, जिनको वे समय-समयपर दुहराया करते हैं। तुलसीदासजीके शब्दोंमें वह शक्ति है जो केवल भक्त और महात्माके शब्दोंमें ही हो सकती है। यही कारण है कि आज इतने दिनोंके बाद भी रामायणको लोग गाते हैं, प्रेमसे, भक्तिसे और श्रद्धापूर्वक। यही कारण है इस मानससे अनेकानेक स्त्री-पुरुष संसारका बेड़ा पार लगानेमें सहायता पाते आये हैं। तुलसीदासजीने मानसको एक भक्तके उद्गारके ही रूपमें लिखा था और सच्चे भक्तके उद्गार होनेके कारण ही इसके शब्दोंमें वह शक्ति है।

पर जो भक्त नहीं हैं उनके लिये भी इसमें इतना काव्य है, इतनी मधुरता है, रसोंका इतना सुन्दर मिश्रण है और कलाका इतना विकास है कि संसारके बड़े-से-बड़े काव्योंसे यह टक्कर ले सकता है। जो केवल काव्य-रस लेना चाहें, वे भी इसे पढ़ सकते हैं और पढ़ते हैं, और उस रसास्वादनसे कृतकृत्य होते हैं। मैं तो यह भी मानता हूँ कि काव्यकी दृष्टिसे इस उत्कृष्ट ग्रन्थके पढ़नेवाले भी अन्तमें कुछ-न-कुछ भक्ति-रसमें पगे बिना नहीं रह सकते। जो श्रद्धापूर्वक धार्मिक दृष्टिसे पठन करते हैं उनकी तो बात ही क्या है। अंगरेजीके एक विद्वान् (Addison) ने अपने एक लेखमें लिखा है कि उनकी इच्छा थी कि दर्शनोंके उच्चतातिउच्च सिद्धान्त साधारणलोगोंके लिये वह दार्शनिकोंके पुस्तकालयोंसे लेकर सड़कोंपर बिखेर दें। उनकी यह अभिलाषा उनके लेखोंद्वारा पूरी हुई या नहीं इसका तो पता नहीं, पर इसमें सन्देह नहीं है कि तुलसीदासजीने धर्म और अध्यात्मविद्याके उच्चतातिउच्च सिद्धान्तोंको सुन्दर, सुललित और सहज भाषामें केवल सड़कोंपर ही नहीं, गाँव-गाँवमें, घर-घरमें बिखेर दिया है और वह भी इस प्रकारसे कि कोई अनजान भी उनसे बिना लाभ उठाये नहीं रह सकता।

मानसमें वीरत्व और विनयपूर्ण भावोंका प्रवाह

(लेखक—२० एडविन ग्रीस)

अन्य विषयोंकी भाँति काव्यमें भी लोगोंकी अभिरुचि भिन्न-भिन्न हुआ करती है। कुछ पाठकोंको कवि विहारीलालकी रचना विशेष प्रिय मालूम होती है। शब्द-योजनामें वे अवश्य ही बड़े प्रवीण हैं, किन्तु उनकी सतसर्गमें इसके अतिरिक्त कौन-से गुण रह जाते हैं ? कुछ दूसरे लोगोंको सूरदासकी कविता बड़ी मनोहर प्रतीत होती है। निश्चय ही न तो कोई भी मनुष्य उनकी साहित्य-सुन्दरता तथा मनोरमताको लघुता प्रदान कर सकता है और न उनके पदोंके माधुर्यमें ही सन्देह कर सकता है। इस विषयपर हमें 'मेकाले' की निर्दोष अंग्रेजीके ऊपर कारलाइल्के ये उद्गार स्मरण हो आते हैं—“हे कान्तिमयी सरिते ! बहती जाओ (Flow on, thou shining river) ।” सूरदास विचित्र फूलों और फलोंसे भरपूर एक ऊँचे पठारपर स्थित है। पर क्या नीचेकी समतल भूमिमें उनकी-सी अभिरामता नहीं आ सकती ? यद्यपि उनका स्थान बहुत ऊँचा है तथापि ढालों और शृङ्गोंमें भी मनोहरता हो सकती है। महात्मा कबीरजीमें अपने ढंगकी एक महानता है। सम्भवतः कोई भी कवि इतने कम शब्दोंमें इतने ऊँचे भाव नहीं भर सकता। संक्षिप्त कथनकी शक्ति तथा सस्ते ओजपूर्ण पदोंके प्रयोगमें उनकी कोई समानता नहीं कर सकता। उनके पदोंमें बहुत-से व्यावहारिक सिद्धान्त कूट-कूटकर भरे हैं किन्तु फिर भी तुलसीदासजी और कबीरजीमें इतनी समानता नहीं कि तुलना की जा सके।

हिन्दीसाहित्यको अनेक कवियोंने समृद्धिशाली बनाया है किन्तु तुलसीदासका स्थान निश्चय ही उन सबमें ऊँचा है। अन्य कवियोंमें तुलसीदासजीकी अपेक्षा कोई विशेष गुण भले ही हो परन्तु तुलसीदासजीमें तो अनेक उच्च और महान् गुणोंका समन्वय है। उनकी रामायणमें कैसे वीरत्व और विनयपूर्ण भावोंका प्रवाह दीर्घ पड़ता है ! वे केवल हमारी प्रशंसाके ही पात्र नहीं, प्रेमके भी हैं और वह प्रेम उन्हें प्राप्त भी हुआ है, इसका ज्वलन्त उदाहरण यही है कि समस्त हिन्दीसाहित्यमें ऐसी कोई भी पुस्तक नहीं, जिसका राजप्रासादसे लेकर एक निर्धनकी कुटियातक इतना अधिक प्रसार हो।

मानसकी उपादेयता सर्वोपरि है

(लेखक—डाक्टर सच्चिदानन्दसिंह, एम० ए०, बार-एट-ला, वाइस चैंसलर, पटना यूनिवर्सिटी)

मैं गोस्वामीजीको रामायणका हृदयसे आदर करता हूँ। उत्तर-भारतमें इसके जोड़का कोई ग्रन्थ है ही नहीं और उपादेयता तथा महत्त्वकी दृष्टिसे यह सर्वोपरि है। रामायणके प्रचार और प्रसारसे हिन्दी भाषा और साहित्यका गौरव अत्रिकाधिक बढ़ेगा।

‘जो पै तुलसी न गावतो’

वेदमत सोधि, सोधि-सोधि कै पुरान सबै
संत औ असंतन को भेद को बतावतो ।
कपटी कुराही कूर कलि के कुचाली जीव
कौन रामनामहू की चरचा चलावतो ॥
‘बेनी’ कवि कहै मानो-मानो हो प्रतीति यह
पाहन-हिये में कौन प्रेम उपजावतो ।
भारी भवसागर उतारतो कवन पार
जो पै यह रामायन तुलसी न गावतो ॥

—येनी कवि

—००००००००—



श्रीराम-दरबार

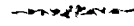
श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस



प्रथम सोपान



(बालकाण्ड)

श्लोक

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मङ्गलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥ १ ॥

अक्षरां, अर्थसमूहों, रसों, छन्दों और मङ्गलोंकी करनेवाली सरस्वतीजी और गणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।

याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥ २ ॥

श्रद्धा और विश्वासके स्वरूप श्रीपार्वतीजी और श्रीशंकरजीकी मैं वन्दना करता हूँ, जिनके बिना सिद्धजन अपने अन्तःकरणमें स्थित ईश्वरको नहीं देख सकते ॥ २ ॥

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम् ।

यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥ ३ ॥

ज्ञानमय, नित्य, शंकररूपी गुरुकी मैं वन्दना करता हूँ, जिनके आश्रित होनेसे ही टेढ़ा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दित होता है ॥ ३ ॥

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।

वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥ ४ ॥

श्रीसीतारामजीके गुणसमूहरूपी पवित्र वनमें विहार करनेवाले विशुद्ध विज्ञानसम्पन्न कवीश्वर श्रीवाल्मीकिजी और कपीश्वर श्रीहनुमान्जीकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ ४ ॥

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।

सर्वश्रेयस्करिं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥ ५ ॥

उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और संहार करनेवाली, क्लेशोंकी हरनेवाली तथा सम्पूर्ण कल्याणोंकी करनेवाली श्रीरामचन्द्रजीकी प्रियतमा श्रीसीताजीकी मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादभूवैव भाति सकलं रज्जौ यथाहर्भ्रमः ।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥ ६ ॥

जिनकी मायाके वशीभूत सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्मादि देवता और असुर हैं, जिनकी सत्तासे रस्तीमें सर्पके भ्रमकी भाँति यह सारा दृश्य जगत् सत्य ही प्रतीत होता है और जिनके केवल चरण ही भवसागरसे तरनेकी इच्छा-वालोंके लिये एकमात्र नौका हैं, उन समस्त कारणोंसे पर (सब कारणोंके कारण और सबसे श्रेष्ठ) राम कहानेवाले भगवान् हरिकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ ६ ॥

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्

रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।

स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-

भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥ ७ ॥

अनेक पुराण, वेद और [तन्त्र] शास्त्रसे सम्मत तथा जो रामायणमें वर्णित है, और कुछ अन्यत्रसे भी उपलब्ध श्रीरघुनाथजीकी कथाको तुलसीदास अपने अन्तःकरणके सुखके लिये अत्यन्त मनोहर भाषा-रचनामें विस्तृत करता है ॥ ७ ॥

सो—जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिवरचदन ।

करउ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन ॥ १ ॥

जिनहें स्मरण करनेसे सब कार्य सिद्ध होते हैं, जो गणोंके स्वामी और सुन्दर हाथीके मुखवाले हैं, वे ही बुद्धिके राशि और शुभ गुणोंके धाम (श्रीगणेशजी) मुझपर कृपा करें ॥ १ ॥

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिवर गहन ।

जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन ॥ २ ॥

जिनकी कृपासे गूँगा बहुत सुन्दर बोलनेवाला हो जाता है, लँगड़ा-लूला दुर्गम पहाड़पर चढ़ जाता है, वे कलियुगके सब पापोंको जला डालनेवाले दयालु (भगवान्) मुझपर द्रवित हों (दया करें) ॥ २ ॥

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन ।

करउ सो मम उर धाम सदाँ छीरसागर सयन ॥ ३ ॥

जो नील कमलके समान श्यामवर्ण हैं, पूर्ण खिले हुए लाल कमलके समान जिनके नेत्र हैं, और जो सदा क्षीरसागरमें शयन करते हैं, वे (भगवान् नारायण) मेरे हृदयमें निवास करें ॥ ३ ॥

कुंद इंद्रु सम देह उमारमन करुना अयन ।

जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन ॥ ४ ॥

जिनका कुन्दके पुष्प और चन्द्रमाके समान (गौर) शरीर है, जो पार्वतीजीके प्रियतम और दयाके धाम हैं, और जिनका दीनोंपर स्नेह है, वे कामदेवका मर्दन करनेवाले (शंकरजी) मुझपर कृपा करें ॥ ४ ॥

बंदउँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नररूप हरि ।

महामोह तम पुंज जासु बचन रवि कर निकर ॥ ५ ॥

मैं उन गुरु महाराजके चरणकमलकी वन्दना करता हूँ, जो कृपाके समुद्र और नररूपमें श्रीहरि ही हैं, और जिनके वचन महामोहरूपी घने अन्धकारके [नाश करनेके] लिये सूर्य-किरणोंके समूह हैं ॥ ५ ॥

चौ०—बंदउँ गुरु पद पदुम परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥

अमिथ मूरिमय चूरन चारू । समन सकल भव रुज परिवारू ॥ १ ॥

मैं गुरु महाराजके चरणकमलोंकी रजकी वन्दना करता हूँ, जो सुरुचि (सुन्दर स्वाद), सुगन्ध तथा अनुरागरूपी रसमें पूर्ण है । वह अमर मूल (संजीवनी जड़ी) का सुन्दर चूर्ण है, जो सम्पूर्ण भवरोगोंके परिवारको नाश करनेवाला है ॥ १ ॥

सुकृति संभु तन बिमल बिभूती । मंजुल मंगल मोद प्रसूती ॥

जन मन मंजु मुकुर मल हरनी । किएँ तिलक गुनगन बसकरनी ॥ २ ॥

वह रज मुकृती (पुण्यवान् पुरुष) रूपी शिवजीके शरीरपर सुशोभित निर्मल विभूति है और सुन्दर कल्याण और आनन्दकी जननी है, भक्तके मनरूपी सुन्दर दर्पणके मैलको दूर करनेवाली और तिलक करनेसे गुणोंके समूहको वशमें करनेवाली है ॥ २ ॥

श्रीगुरु पद नख मनि गन जोती । सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती ॥

दलन मोह तम सो सप्रकासू । बड़े भाग उर आवइ जासू ॥ ३ ॥

श्रीगुरु महाराजके चरण-नखोंकी ज्योति मणियोंके प्रकाशके समान है, जिसके स्मरण करते ही हृदयमें दिव्यदृष्टि उत्पन्न हो जाती है । वह प्रकाश अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश करनेवाला है; वह जिसके हृदयमें आ जाता है, उसके बड़े भाग्य है ॥ ३ ॥

उघरहिं बिमल बिलोचन ही के । मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ॥

सुझहिं रामचरित मनि मानिक । गुप्त प्रगट जहँ जो जेहि खानिक ॥ ४ ॥

उसके हृदयमें आते ही हृदयके निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसाररूपी रात्रिके दोष-दुःख मिट जाते हैं एवं श्रीरामचरित्ररूपी मणि और माणिक्य, गुप्त और प्रकट जहाँ जो जिस खानमें हैं, सब दिखायी पड़ने लगते हैं—॥ ४ ॥

दो०—जथा सुअंजन अंजि दग साधक सिद्ध सुजान ।

कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान ॥ १ ॥

जैसे सिद्धाञ्जनको नेत्रमें लगाकर साधक, सिद्ध और सुजान पर्वतों, वनों और पृथ्वीके अन्दर कौतुकसे ही बहुत-सी खानें देखते हैं ॥ १ ॥

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन । नयन अमिथ दग दोष बिभंजन ॥

तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन । बरनउँ रामचरित भवमोचन ॥ १ ॥

श्रीगुरु महाराजके चरणोंकी रज कोमल और सुन्दर नयनामृत-अञ्जन है, जो नेत्रोंके दोषोंका नाश करनेवाला है । उस अञ्जनसे विवेकरूपी नेत्रोंको निर्मल करके मैं संसार [बन्धन] को छुड़ानेवाले श्रीराम-चरित्रका वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

बंदउँ प्रथम महीसुर चरना । मोहजनित संसय सब हरना ॥

सुजनसमाज सकल गुन खानी । करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी ॥ २ ॥

पहले पृथ्वीके देवता ब्राह्मणोंके चरणोंकी वन्दना करता हूँ, जो मोहसे उत्पन्न सब सन्देहोंको हरनेवाले हैं । फिर सब गुणोंकी खान संत-समाजको प्रेमसहित सुन्दर वाणीसे प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥

साधुचरित सुभ चरित कपासू । निरस बिसद गुणमय फल जासू ॥

जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । बंदनीय जेहिं जग जस पावा ॥ ३ ॥

संत-चरित्र कपासके चरित्र (जीवन) के समान शुभ है, जिसका फल नीरस, विशद और गुणमय होता है । (कपासकी डोडी नीरस होती है, संत-चरित्रमें भी विपयासक्ति नहीं है, इससे वह भी नीरस है; कपास उज्ज्वल होता है, संतका हृदय भी अज्ञान और पापरूपी अन्धकारसे रहित होता है, इसलिये वह विशद है; और कपासमें गुण (तन्तु) होते हैं, इसी प्रकार संतका चरित्र भी सद्गुणोंका भण्डार होता है, इसलिये वह गुणमय है ।) [जैसे कपासका धागा सूईके किये हुए छेदको अपना तन देकर ढक देता है, अथवा कपास जैसे लोढ़े जाने, काते जाने, और बुने जानेका कष्ट सहकर भी वस्त्रके रूपमें परिणत होकर दूसरोंके गोपनीय स्थानोंको ढकता है उसी प्रकार] संत स्वयं दुःख सहकर दूसरोंके छिद्रों (दोषों) को ढकता है, जिसके कारण उसने जगत्में वन्दनीय यश प्राप्त किया है ॥ ३ ॥

मुद मंगलमय संत समाजू । जो जग जंगम तीरथराजू ॥

राम भक्ति जहँ सुरसरिधारा । सरसद ब्रह्मविचार प्रचारा ॥ ४ ॥

संतोंका समाज आनन्द और कल्याणमय है, जो जगत्में चलता-फिरता तीर्थगज (प्रयाग) है । जहाँ (उस संतसमाजरूपी प्रयागराजमें) रामभक्तिरूपी गंगाजीकी धारा है और ब्रह्मविचारका प्रचार सरस्वतीजी है ॥ ४ ॥

बिधि निषेधमय कलि मल हरनी । करम कथा रबिनंदनि बरनी ॥

हरि हर कथा बिराजनि बेनी । सुनत सकल मुद मंगल देनी ॥ ५ ॥

विधि और निषेध (यह करो और यह न करो) रूपी कर्मोंकी कथा कलियुगके पापोंको हरनेवाली सूर्य-तनया यमुनाजी हैं, और भगवान् विष्णु और शंकरजीकी कथाएँ त्रिवेणीरूपसे मुशोभित हैं, जो सुनते ही सब आनन्द और कल्याणोंकी देनेवाली हैं ॥ ५ ॥

बटु बिस्वास अचल निज धरमा । तीरथराज समाज सुकरमा ॥

सबहि सुलभ सब दिन सब देसा । सेवत सादर समन कलेसा ॥ ६ ॥

[उस संतसमाजरूपी प्रयागमें] अपने धर्ममें जो अटल विश्वास है वह अक्षयवट है, और शुभ कर्म ही उस तीर्थराजका समाज (परिकर) है । वह (संतसमाजरूपी प्रयागराज) सब देशोंमें, सब समय सभीको सहजहीमें प्राप्त हो सकता है और आदरपूर्वक सेवन करनेसे क्लेशोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ६ ॥

अकथ अलौकिक तीरथराज । देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ ॥ ७ ॥

वह तीर्थराज अलौकिक और अकथनीय है एवं तत्काल फल देनेवाला है, उसका प्रभाव प्रत्यक्ष है ॥ ७ ॥

दो०—सुनि समुद्राहिं जन मुदित मन मज्झहिं अति अनुराग ।

लहहिं चारि फल अछत तनु साधुसमाज प्रयाग ॥ २ ॥

जो मनुष्य इस संत-समाजरूपी तीर्थराजका प्रभाव प्रसन्न मनसे सुनते और समझते हैं और फिर अत्यन्त प्रेमपूर्वक इसमें गोते लगाते हैं, वे इस शरीरके रहते ही [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष] चारों फल पा जाते हैं ॥ २ ॥

चौ०—मज्जनफल पेखिअ ततकाला । काक होहिं पिक बकउ मराला ॥

सुनि आचरज करै जनि कोई । सतसंगति महिमा नहिं गोई ॥ १ ॥

इस तीर्थराजमें स्नानका फल तत्काल [ऐसा] देखनेमें आता है कि कौए कोयल बन जाते हैं और बगुले हंस । यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे, क्योंकि सत्संगकी महिमा छिपी नहीं है ॥ १ ॥

बालमीक नारद घटजोनी । निज निज मुखनि कही निज होनी ॥

जलचर थलचर नभचर नाना । जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥ २ ॥

वाल्मीकिजी, नारदजी और अगस्त्यजीने अपने-अपने मुखोंसे अपनी होनी (जीवनका वृत्तान्त) कही है । जलमें रहनेवाले, जमीनपर चलनेवाले और आकाशमें विचरनेवाले नाना प्रकारके जड़-चेतन जितने जीव इस जगत्में हैं, ॥ २ ॥

मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई ॥

सो जानब सतसंग प्रभाऊ । लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ॥ ३ ॥

उनसे जिनसे जिस समय जहाँ कहीं भी जिस किसी यत्नसे बुद्धि, कीर्ति, सद्गति, विभूति (ऐश्वर्य) और भलाई पायी है, सो सब सत्संगका ही प्रभाव समझना चाहिये । वेदोंमें और लोकमें [इनकी प्राप्ति] दूसरा कोई उपाय नहीं है ॥ ३ ॥

बिनु सतसंग बिबेक न होई । रामकृपा बिनु सुलभ न सोई ॥

सतसंगत मुद मंगल मूला । सोई फल सिधि सब साधन फूला ॥ ४ ॥

सत्संगके बिना बिबेक नहीं होता, और श्रीरामजीकी कृपाके बिना वह सत्संग सहजमें मिलता नहीं । सत्संगति आनन्द और कल्याणकी जड़ है । सत्संगकी सिद्धि (प्राप्ति) ही फल है, और सब साधन तो फूल हैं ॥ ४ ॥

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परस कुधात सुहाई ॥

बिधिबस सुजन कुसंगत परहीं । फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं ॥ ५ ॥

दुष्ट भी सत्संगति पाकर सुधर जाते हैं, जैसे पारसके स्पर्शसे लोहा सुहावना हो जाता है (सुन्दर सोना बन जाता है) । किन्तु दैवयोगसे यदि कभी सज्जन कुसंगतिमें पड़ जाते हैं, तो वे वहाँ भी साँपकी मणिके समान अपने गुणोंका ही अनुसरण करते हैं (अर्थात् जिस प्रकार साँपका संसर्ग पाकर भी मणि उसके विषको ग्रहण नहीं करती तथा अपने सहज गुण प्रकाशको नहीं छोड़ती, उसी प्रकार साधु पुरुष दुष्टोंके संगमें रहकर भी दूसरोंको प्रकाश ही देते हैं, दुष्टोंका उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।) ॥ ५ ॥

बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी । कहत साधुमहिमा सकुचानी ॥

सो मो सन कहि जात न कैसैं । साक बनिक मनि गुन गन जैसैं ॥ ६ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कवि और पण्डितोंकी वाणी भी संत-महिमाका वर्णन करनेमें सकुचाती है; वह मुझसे किस प्रकार नहीं कही जाती, जैसे साग-तरकारी बेचनेवालेसे मणियोंके गुणसमूह नहीं कहे जा सकते ॥ ६ ॥

दो०—बंदउँ संत समानचित हित अनहित नहिं कोइ ।

अंजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ ॥ ३ (क) ॥

मैं संतोंको प्रणाम करता हूँ, जिनके चित्तमें समता है, जिनका न कोई मित्र है और न शत्रु ! जैसे अञ्जलिमें रखे हुए सुन्दर फूल [जिस हाथने फूलोंको तोड़ा और जिसने उनको रक्खा उन] दोनों ही हाथों-को समानरूपसे सुगन्धित करते हैं [वैसे ही संत शत्रु और मित्र दोनोंका ही समानरूपसे कल्याण करते हैं] ॥ ३ (क) ॥

संत सरलचित जगतहित जानि सुभाउ सनेहु ।

बालबिनय सुनि करि कृपा रामचरन रति देहु ॥ ३ (ख) ॥

संत सरलहृदय और जगत्के हितकारी होते हैं, उनके ऐसे स्वभाव और स्नेहको जानकर [मैं विनय करता हूँ, मेरी इस] बाल-विनयको सुनकर कृपा करके श्रीरामजीके चरणोंमें मुझे प्रीति दें ॥ ३ (ख) ॥

चौ०—बहुरि बंदि खलगत सतिभाएँ । जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ ॥

परहित हानि लाभ जिन्ह केरें । उजरें हरष बिपाद बसेरें ॥ १ ॥

अब मैं सब्से भावसे दुष्टोंको प्रणाम करता हूँ, जो बिना ही प्रयोजन, अपना हित करनेवालेके भी प्रतिकूल आचरण करते हैं । दूसरोंके हितकी हानि ही जिनकी दृष्टिमें लाभ है, जिनको दूसरोंके उजड़नेमें हर्ष और बमनेमें विषाद होता है ॥ १ ॥

हरि हर जस राकेस राहु से । पर अकाज भट सहसबाहु से ॥

जे परदोष लखहिं सहसाखी । परहित घृन जिन्ह के मन माखी ॥ २ ॥

जो हरि और हरके यशरूपी पूर्णमाके चन्द्रमाके लिये राहुके समान हैं (जहाँ कहीं भगवान् विष्णु या शंकरके यशका वर्णन होता है, उसीमें वे बाधा देते हैं) और दूसरोंकी बुराई करनेमें सहस्रबाहुके समान वीर हैं । जो दूसरोंके दोषोंको हजार आँवोंसे देखते हैं, और दूसरोंके हितरूपी धीके लिये जिनका मन मक्खीके समान है (अर्थात् जिस प्रकार मक्खी धीमें गिरकर उसे खराब कर देती है और स्वयं भी मर जाती है, उसी प्रकार दुष्ट लोग दूसरोंके बने-बनाये कामको अपनी हानि करके भी बिगाड़ देते हैं) ॥ २ ॥

तेज कृसानु रोष महियेसा । अघ अवगुन धन धनी धनेसा ॥

उदय केन सम हित सबही के । कुंभकरन सम सांवत नीके ॥ ३ ॥

जो तेजमें (दूसरोंको जलानेवाले तापमें) अग्नि, और क्रोधमें यमराजके समान है, पाप और अवगुण-रूपी धनमें कुबेरके समान धनी हैं, जिनकी बढ़ती सभीके हित [का नाश करने] के लिये केतु (पुच्छल तारे) के समान है, और जिनके कुम्भकर्णकी तरह सोते रहनेमें ही भलाई है ॥ ३ ॥

पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं । जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं ॥

बंदउँ खल जस सेष सरोषा । सहस बदन बरनइ परदोषा ॥ ४ ॥

जैसे ओले खेतीका नाश करके आप भी गल जाते हैं, वैसे ही वे दूसरोंका काम बिगाड़नेके लिये अपना शरीरतक छोड़ देते हैं । मैं दुष्टोंको [हजार मुखवाले] शेषजीके समान समझकर प्रणाम करता हूँ, जो पराये दोषोंका हजार मुखोंसे बड़े रोषके साथ वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना । पर अघ सुनइ सहस दस काना ॥

बहुरि सक सम बिनवउँ तेही । संतत सुरानीक हित जेही ॥ ५ ॥

पुनः उनको राजा पृथु (जिन्होंने भगवान्का यश सुननेके लिये दस हजार कान माँगे थे) के समान

जानकर प्रणाम करता हूँ, जो दस हजार कानोंसे दूसरोंके पापोंको सुनते हैं। फिर इन्द्रके समान मानकर उनकी विनय करता हूँ, जिनको सुरा (मदिरा) नीकी और हितकारी मालूम देती है [इन्द्रके लिये भी सुरा-नीक अर्थात् देवताओंकी सेना हितकारी है] ॥ ५ ॥

वचन वज्र जेहि सदाँ पिआरा । सहस नयन परदोष निहारा ॥ ६ ॥

जिनको कठोर वचनरूपी वज्र सदा प्याग लगता है और जो हजार आँखोंसे दूसरोंके दोषोंको देखते हैं ॥ ६ ॥

दो०—उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति ।

जानि पानि जुग जोरि जन चिनती करह सप्रीति ॥ ४ ॥

दुष्टोंकी यह रीति है कि वे उदासीन, शत्रु अथवा मित्र, किसीका भी हित सुनकर जलते हैं। यह जानकर हाथ जोड़कर यह जन प्रेमपूर्वक उनसे विनय करता है ॥ ४ ॥

चौ०—मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा । तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा ॥

बायस पलिअहिं अति अनुरागा । होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा ॥ १ ॥

मैंने अपनी ओरसे विनती की है, परन्तु वे अपनी ओरसे कभी नहीं चूकेंगे। कौओंको बड़े प्रेमसे पालिये, परन्तु वे क्या कभी माँमके त्यागी हो सकते हैं ? ॥ १ ॥

बंदउँ संत असज्जन चरना । दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥

बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं । मिलत एक दुख दारुन देहीं ॥ २ ॥

अब मैं संत और असंत दोनोंके चरणोंकी वन्दना करता हूँ; दोनों ही दुःख देनेवाले हैं, परन्तु उनमें कुछ अन्तर कहा गया है। [वह अन्तर यह है कि] एक (संत) तो बिछुड़ते समय प्राण हर लेते हैं, और दूसरे (असंत) मिलते हैं तब दारुण दुःख देने हैं। (अर्थात् संतोंका बिछुड़ना मरनेके समान दुःखदायी होता है और असंतोंका मिलना) ॥ २ ॥

उपजहिं एक संग जग माहीं । जलज जौक जिमि गुन बिलगाहीं ॥

सुधा सुरा सम साधु असाधू । जनक एक जग जलधि अगाधू ॥ ३ ॥

दोनों (संत और असंत) जगत्में एक साथ पैदा होते हैं; पर [एक साथ पैदा होनेवाले] कमल और जोंककी तरह उनके गुण अलग-अलग होते हैं। (कमल दर्शन और स्पर्शसे सुख देता है, किन्तु जोंक शरीरका स्पर्श पाते ही रक्त चूसने लगती है।) साधु अमृतके समान (मृत्युरूपी संसारसे उबारनेवाला) और असाधु मदिगके समान (मोह, प्रमाद और जड़ता उत्पन्न करनेवाला) है, दोनोंको उत्पन्न करनेवाला जगत्‌रूपी अगाध समुद्र एक ही है [शास्त्रोंमें समुद्रमन्थनसे ही अमृत और मदिरा दोनोंकी उत्पत्ति बतायी गयी है] ॥ ३ ॥

भल अनभल निज निज करतूती । लहत सुजस अपलोक बिभूती ॥

सुधा सुधाकर सुरसरि साधू । गरल अनल कलिमलसरि व्याधू ॥ ४ ॥

गुन अवगुन जानत सब कोई । जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ॥ ५ ॥

भले और बुरे अपनी-अपनी करनीके अनुसार सुन्दर यश और अपयशकी सम्पत्ति पाते हैं। अमृत, चन्द्रमा, गंगाजी और साधु एवं विष, अग्नि, कलियुगके पापोंकी नदी अर्थात् कर्मनाशा और हिंसा करनेवाला व्याध, इनके गुण-अवगुण सब कोई जानते हैं; किन्तु जिसे जो भाता है, उसे वही अच्छा लगता है ॥ ४-५ ॥

दो०—भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु ।

सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु ॥ ५ ॥

भला भलाई ही ग्रहण करता है और नीच नीचताको ही ग्रहण किये रहता है । अमृतकी सराहना अमर करनेमें होती है और विषकी मारनेमें ! ॥ ५ ॥

चौ०—खल अघ अवगुन साधु गुन गाहा । उभय अपार उदधि अवगाहा ॥

तेहि तैं कछु गुन दोष बखाने । संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥ १ ॥

दुष्टोंके पापों और अवगुणोंकी और साधुओंके गुणोंकी कथाएँ दोनों ही अपार और अथाह समुद्र हैं । इसीसे कुछ गुण और दोषोंका वर्णन किया गया है, क्योंकि बिना पहचाने उनका ग्रहण या त्याग नहीं हो सकता ॥ १ ॥

भलेउ पोच सब बिधि उपजाए । गनि गुन दोष वेद बिलगाए ॥

कहहिं वेद इतिहास पुराना । बिधिप्रपंचु गुन अवगुन साना ॥ २ ॥

भले, बुरे सभी ब्रह्माके पैदा किये हुए हैं; पर गुण और दोषोंको विचारकर वेदोंने उनको अलग-अलग कर दिया है । वेद, इतिहास और पुराण कहते हैं कि ब्रह्माकी यह सृष्टि गुण-अवगुणोंसे सनी हुई है ॥ २ ॥

दुख सुख पाप पुन्य दिन राती । साधु असाधु सुजाति कुजाती ॥

दानव देव ऊँच अरु नीचू । अमिअ सुजीवन मादुरु मीचू ॥ ३ ॥

माया ब्रह्म जीव जगदीसा । लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा ॥

कासी मग सुरसरि क्रमनासा । मरु मारव महिदेव गवासा ॥ ४ ॥

सरग नरक अनुराग बिरागा । निगमागम गुन दोष बिभागा ॥ ५ ॥

दुःख-सुख, पाप-पुण्य, दिन-रात, साधु-असाधु, सुजाति-कुजाति, दानव-देवता, ऊँच-नीच, अमृत-विष, सुजीवन (सुन्दर जीवन)-मृत्यु, माया-ब्रह्म, जीव-ईश्वर, सम्पत्ति-दरिद्रता, रंक-राजा, काशी-मगध, गंगा-कर्मनाशा, मारवाड़-मालवा, ब्राह्मण-कसाई, स्वर्ग-नरक, अनुराग-वैराग्य, [ये गुण-दोषवाले सभी पदार्थ ब्रह्माकी सृष्टिमें हैं ।] वेद-शास्त्रोंने गुण-दोषोंका विभाग कर दिया है ॥ ३-५ ॥

दो०—जड़ चेतन गुनदोषमय बिस्व कीन्ह करतार ।

संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार ॥ ६ ॥

विधाताने इस जड़-चेतन विश्वको गुण-दोषमय रचा है । संतरूपी हंस दोषरूपी जलको छोड़कर गुणरूपी दूधको ग्रहण करते हैं ॥ ६ ॥

चौ०—अस बिबेक जब देइ बिधाता । तब तजि दोष गुनहिं मनु राता ॥

काल सुभाउ करम बरिआई । भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई ॥ १ ॥

जब विधाता इस प्रकारका (हंसका-सा) विवेक देते हैं तब दोषोंको छोड़कर मन गुणोंमें अनुरक्त होता है । काल, स्वभाव और कर्मकी प्रबलतासे भले लोग (साधु) भी मायाके वशमें होकर कभी-कभी भलाईसे चूक जाते हैं ॥ १ ॥

सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं । दलि दुख दोष बिमल जसु वेहीं ॥

खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू । मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू ॥ २ ॥

भगवान्के भक्त जैसे उस चूकको सुधार लेते हैं और दुःख-दोषोंको मिटाकर निर्मल यश देते हैं, वैसे ही दुष्ट भी कभी-कभी उत्तम संग पाकर भलाई करते हैं परन्तु उनका कभी भंग न होनेवाला मलिन स्वभाव नहीं मिटता ॥ २ ॥

लखि सुवेष जग बंचक जेऊ । वेषप्रताप पूजिअहिं तेऊ ॥
उघरहिं अंत न होइ निबाहू । कालनेमि जिमि रावन राहू ॥ ३ ॥

जो [वेषधारी] ठग हैं, उन्हें भी अच्छा (साधुका-सा) वेष बनाये देखकर वेषके प्रतापसे जगत् पूजता है; परन्तु एक-न-एक दिन वे चौड़े आ ही जाते हैं, अन्ततः उनका कपट नहीं निभता, जैसे कालनेमि, रावण और राहुका हाल हुआ ॥ ३ ॥

किण्डू कुबेषु साधु सनमान् । जिमि जग जामवंत हनुमान् ॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू । लोकहुं बेद बिदित सब काहू ॥ ४ ॥

बुरा वेष बना लेनेपर भी साधुका सम्मान ही होता है, जैसे जगत्में जाम्बवान् और हनुमान्जीका हुआ । बुरे संगसे हानि और अच्छे संगसे लाभ होता है, यह बात लोक और वेदमें है और सभी लोग इसको जानते हैं ॥ ४ ॥

गगन चढ़इ रज पवनप्रसंगा । कीचहि मिलइ नीच जल संगता ॥
साधु असाधु सदन सुक सारों । सुमिरहिं राम देहिं गनि गारों ॥ ५ ॥

पवनके संगसे धूल आकाशपर चढ़ जाती है और वही नीच (नीचेकी ओर बहनेवाले) जलके संगसे कीचड़में मिल जाती है । साधुके घरके तोता-मैना राम-गम सुमिरते हैं और असाधुके घरके तोता-मैना गिन-गिनकर गालियाँ देते हैं ॥ ५ ॥

धूम कुसंगति कारिख होई । लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई ॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता । होइ जलद जग जीवनदाता ॥ ६ ॥

कुसंगके कारण धुआँ कालिख कहलता है, वही धुआँ [सुसंगसे] सुन्दर स्याही होकर पुराण लिखनेके काममें आता है । और वही धुआँ जल, अग्नि और पवनके संगसे बादल होकर जगत्को जीवन देनेवाला बन जाता है ॥ ६ ॥

दो०—ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग ।

होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग ॥ ७ (क) ॥

ग्रह, ओषधि, जल, वायु और वज्र, ये सब भी कुसंग और सुसंग पाकर संसारमें बुरे और भले पदार्थ हो जाते हैं । चतुर एवं विचारशील पुरुष ही इस बातको जान पाते हैं ॥ ७ (क) ॥

सम प्रकास तम पाख दुहुं नामभेद विधि कीन्ह ।

ससि सोषक पोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह ॥ ७ (ख) ॥

महीनेके दोनों पखवाड़ोंमें उजियाला और अँधेरा समान ही रहता है, परन्तु विधाताने इनके नाममें भेद कर दिया है (एकका नाम शुक्ल और दूसरेका नाम कृष्ण रख दिया) । एकको चन्द्रमाका बढ़ानेवाला और दूसरेको उसका घटानेवाला समझकर जगत्ने एकको सुयश और दूसरेको अपयश दे दिया ॥ ७ (ख) ॥

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि ।

बंदउँ सब के पदकमल सदा जोरि जुग पानि ॥ ७ (ग) ॥

जगत्में जितने जड़ और चेतन जीव हैं, सबको राममय जानकर मैं उन सबके चरणकमलोंकी सदा दोनों हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ ॥ ७ (ग) ॥

देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्व ।

बंदउँ किंनर रजनिचर कृपा करहु अब सर्व ॥ ७ (घ) ॥

देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, प्रेत, पितर, गन्धर्व, किन्नर और निशाचर सबको मैं प्रणाम करता हूँ । अब सब मुझपर कृपा कीजिये ॥ ७ (घ) ॥

चौ०—आकर चारि लाख चौरासी । जाति जीव जल थल नभ बासी ॥

सीयराममय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥ १ ॥

चौरासी लाख योनियोंमें चार प्रकारके (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, जरायुज) जीव जल, पृथ्वी ओर आकाशमें रहते हैं; [उन सबसे भरे हुए] इस सारे जगत्को श्रीसीताराममय जानकर मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

जानि कृपाकर किंकर मोह । सब मिलि करहु छाड़ि छल छोड़ ॥

निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं । तातैं बिनय करउँ सब पाहीं ॥ २ ॥

मुझको अपना दास जानकर कृपाकी खान आप सब लोग मिलकर छल छोड़कर कृपा कीजिये । मुझे अपने बुद्धिबलका भरोसा नहीं है, इसीलिये मैं सबसे विनती करता हूँ ॥ २ ॥

करन चहउँ रघुपति गुन गाहा । लघु मति मोरि चरित अवगाहा ॥

सूझ न एकउ अंग उपाऊ । मन मति रंक मनोरथ राऊ ॥ ३ ॥

मैं श्रीरघुनाथजीके गुणोंका वर्णन करना चाहता हूँ, परन्तु मेरी बुद्धि छोटी है और श्रीरामजीका चरित्र अथाह है । इसके लिये मुझे उपायका एक भी अंग, अर्थात् कुछ (लेशमात्र) भी उपाय नहीं सूझता । मेरा मन और बुद्धि कंगाल हैं, किन्तु मनोरथ राजा है ॥ ३ ॥

मति अनि नीचि ऊँचि रुचि आछी । चहिअ अमिअ जग जुरइ न आछी ॥

छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई । सुनिहहिं बालबचन मन लाई ॥ ४ ॥

मेरी बुद्धि तो अत्यन्त नीची है और चाह बड़ी ऊँची है; चाह तो अमृत पानेकी है, पर जगत्में जुड़ती छल भी नहीं । सज्जन मेरी ढिठाईको क्षमा करेंगे और मेरे बालवचनोंको मन लगाकर (प्रेमपूर्वक) सुनेंगे ॥ ४ ॥

जौ बालक कह तोतरि बाता । सुनिहिं मुदित मन पितु अरु माता ॥

हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी । जे पर दूषन भूषनधारी ॥ ५ ॥

जैसे बालक जब तोतले वचन बोलता है तो उसके माता-पिता उन्हें प्रसन्न मनसे सुनते हैं । किन्तु कूर, कुटिल और बुरे विचारवाले लोग, जो दूसरोंके दोषोंको ही भूषणरूपसे धारण किये रहते हैं, (अर्थात् जिन्हें पराये दोष ही प्यारे लगते हैं), हँसेंगे ॥ ५ ॥

निज कवित्त केहि लग न नीका । सरस हाँउ अथवा अति फीका ॥

जे परमनिति सुनत हरषाहीं । ते घर पुरुष बहुत जग नाहीं ॥ ६ ॥

रसीली हो या अत्यन्त फीकी, अपनी कविता किसे अच्छी नहीं लगती ? किन्तु जो दूसरेकी रचनाको सुनकर हर्षित होते हैं, ऐसे उत्तम पुरुष जगत्में बहुत नहीं हैं ॥ ६ ॥

जग बहु नर सर सरि सम भाई । जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई ॥

सज्जन सकल सिंधुसम कोई । देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई ॥ ७ ॥

हे भाई ! जगत्में तालाबों और नदियोंके समान मनुष्य ही अधिक हैं, जो जल पाकर अपनी ही बाढ़से बढ़ते हैं अर्थात् अपनी ही उन्नतिसे प्रसन्न होते हैं । समुद्र-सा तो कोई एक विरला ही सज्जन होता है जो चन्द्रमाको पूर्ण देखकर (दूसरोंका उत्कर्ष देखकर) उमड़ पड़ता है ॥ ७ ॥

दो०—भाग छोट अभिलाषु बड़ करउँ एक विस्वास ।

पैहहिं सुख सुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास ॥ ८ ॥

मेरा भाग्य छोटा है और इच्छा बहुत बड़ी है, परन्तु मुझे एक विश्वास है कि इसे सुनकर सज्जन सभी सुख पावेंगे और दुष्ट हँसी उड़ावेंगे ॥ ८ ॥

चौ०—खल परिहास होइ हित मोरा । काक कहहिं कलकंठ कठोरा ॥

हंसहि बक दादुर चातकही । हँसहिं मलिन खल विमल बतकही ॥ १ ॥

दुष्टोंके हँमनेसे मेरा हित होगा । मधुर कण्ठवाली कोयलको कौए तो कठोर ही कहा करते हैं । जैसे बगुले हंसको और मेढक पपीहको हँसते हैं, वैसे ही मलिन मनवाले दुष्ट निर्मल वाणीको हँसते हैं ॥ १ ॥

कवित रसिक न रामपद नेह । तिन्ह कहँ सुखद हासरस पड़ ॥

भाषा भनिति भोरि मति मोरी । हँसिबे जोग हँसैं नहिं खोरी ॥ २ ॥

जो न तो कविताके रसिक हैं और न जिनका श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रेम है, उनके लिये भी यह कविता सुखद हास्यरसका काम देगी । प्रथम तो यह भाषाकी रचना है, दूसरे मेरी बुद्धि भोली है; इससे यह हँसनेके योग्य ही है, हँसनेमें उन्हें कोई दोष नहीं ॥ २ ॥

प्रभुपद प्रीति न सामुझि नीकी । तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी ॥

हरि हर पद रति मति न कुतरकी । तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुबरकी ॥ ३ ॥

जिनहें न तो प्रभुके चरणोंमें प्रेम है और न अच्छी समझ ही है, उनको यह कथा सुननेमें फीकी लगेगी । जिनकी श्रीहरि (भगवान् विष्णु) और श्रीहर (भगवान् शिव) के चरणोंमें प्रीति है और जिनकी बुद्धि कुतर्क करनेवाली नहीं है (जो श्रीहरि-हरमें भेदकी या ऊँच-नीचकी कल्पना नहीं करते), उन्हें श्रीरघुनाथजीकी यह कथा मीठी लगेगी ॥ ३ ॥

राम भगति भूषित जियँ जानी । सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी ॥

कवि न होउँ नहिं बचनप्रवीनू । सकल कला सब विद्या हीनू ॥ ४ ॥

सज्जनगण इस कथाको अपने जीमें श्रीरामजीकी भक्तिसे भूषित जानकर सुन्दर वाणीसे सराहना करते हुए सुनेंगे । मैं न तो कवि हूँ, न वाक्यरचनामें ही कुशल हूँ, मैं तो सब कलाओं तथा सब विद्याओंसे रहित हूँ ॥ ४ ॥

आखर अरथ अलंकृति नाना । छंद प्रबंध अनेक विधाना ॥

भावभेद रसभेद अपारा । कवित दोष गुन बिबिध प्रकारा ॥ ५ ॥

नाना प्रकारके अक्षर, अर्थ और अलंकार, अनेक प्रकारकी छन्दरचना, भावों और रसोंके अपार भेद और कविताके भौतिक-भौतिके गुण-दोष होते हैं ॥ ५ ॥

कवित विवेक एक नहिं मोरें । सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें ॥ ६ ॥

इनमेंसे काव्यसम्बन्धी एक भी बातका ज्ञान मुझमें नहीं है, यह मैं कोरे कागजपर लिखकर (शपथपूर्वक) सत्य-सत्य कहता हूँ ॥ ६ ॥

दो०—भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्वबिदित गुन एक ।

सो बिचारि सुनिहहिं सुमति जिन्ह कें विमल विवेक ॥ ९ ॥

मेरी रचना सब गुणोंसे रहित है; इसमें बस, जगत्प्रसिद्ध एक गुण है। उसे विचारकर अच्छी बुद्धिवाले पुरुष, जिनके निर्मल ज्ञान है, इसको सुनेंगे ॥ ९ ॥

चौ०—एहि महँ रघुपति नाम उदारा । अति पावन पुरान श्रुति सारा ॥

मंगल भवन अमंगलहारी । उमा सहित जेहि जपत पुरारी ॥ १ ॥

इसमें श्रीरघुनाथजीका उदार नाम है; जो अत्यन्त पवित्र है, वेद-पुराणोंका सार है, कल्याणका भवन है और अमङ्गलोंको हरनेवाला है, जिसे पार्वतीजीसहित भगवान् शिवजी सदा जपा करते हैं ॥ १ ॥

भनिति धिचित्र सुकविकृत जोऊ । रामनाम बिनु सोह न सोऊ ॥

बिबुधदनी सब भौंति सँवारी । सोह न बसन बिना बर नारी ॥ २ ॥

जो अच्छे कविके द्वारा रची हुई बड़ी अनूठी कविता है, वह भी रामनामके बिना शोभा नहीं पाती। जैसे चन्द्रमाके समान मुखवाली सुन्दर स्त्री सब प्रकारसे सुसज्जित होनेपर भी वस्त्रके बिना शोभा नहीं देती ॥ २ ॥

सब गुन रहित कुकविकृत बानी । राम नाम जस अंकित जानी ॥

सादर कहहिं सुनिहिं बुध ताही । मधुकर सरिस संत गुनग्राही ॥ ३ ॥

इसके विपरीत, कुकविकी रची हुई सब गुणोंसे रहित कविताको भी, रामके नाम एवं यशसे अंकित जानकर, बुद्धिमान् लोग आदरपूर्वक कहते और सुनते हैं; क्योंकि संतजन भौंरिकी भाँति गुणहीको ग्रहण करनेवाले होते हैं ॥ ३ ॥

जदपि कवित रस एकउ नाहीं । रामप्रताप प्रगट एहि माहीं ॥

सोइ भरोस मोरें मन आवा । केहिं न सुसंग बड़प्पनु पावा ॥ ४ ॥

यद्यपि मेरी इस रचनामें कविताका एक भी रस नहीं है, तथापि इसमें श्रीरामजीका प्रताप प्रकट है। मेरे मन यही एक भरोसा है। भले संगसे किसने बड़प्पन नहीं पाया ? ॥ ४ ॥

धूमउ तजइ सहज करुआई । अगरु प्रसंग सुगंध बसाई ॥

भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी । रामकथा जग मंगल करनी ॥ ५ ॥

धुआँ भी अगरके संगसे सुगन्धित होकर अपने स्वाभाविक कड़ुवेपनको छोड़ देता है। मेरी कविता अवश्य भद्दी है, परन्तु इसमें जगत्का कल्याण करनेवाली रामकथारूपी उत्तम वस्तुका वर्णन किया गया है। [इससे यह भी अच्छी ही समझी जायगी] ॥ ५ ॥

छं०—मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की ।

गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की ॥

प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी ।

भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरघुनाथजीकी कया कल्याण करनेवाली और कलियुगके पापोंको हरनेवाली है। मेरी इस भरी कवितारूपी नदीकी चाल पवित्र जलवाली नदी (गङ्गाजी) की चालकी भाँति टेढ़ी है। प्रभु श्रीरघुनाथजीके सुन्दर यशके संगसे यह कविता सुन्दर तथा सज्जनोंके मनको भानेवाली हो जायगी। श्मशानकी (अपवित्र) राख भी श्रीमहादेवजीके अंगके संगसे सुहावनी लगती है और स्मरण करते ही पवित्र करनेवाली होती है ॥

दो०—प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम जस संग ।

दारुबिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलयप्रसंग ॥ १० (क) ॥

श्रीरामजीके यशके संगसे मेरी कविता सभीको अत्यन्त प्रिय लगेगी। जैसे मलय पर्वतके संगसे काष्ठमात्र [चन्दन बनकर] वन्दनीय हो जाता है, फिर क्या कोई काठ [की तुच्छता] का विचार करता है ? ॥ १० (क) ॥

स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान ।

गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान ॥ १० (ख) ॥

श्यामा गौ काली होनेपर भी उसका दूध उज्ज्वल और बहुत गुणकारी होता है। [यही समझकर] सब लोग उसे पीते हैं। इसी तरह गँवारु भाषामें होनेपर भी श्रीसीतारामजीके यशको बुद्धिमान् लोग [बड़े चावसे] गाते और सुनते हैं ॥ १० (ख) ॥

चौ०—मनि मानिक मुकुता छबि जैसी । अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी ॥

नृप किरिट तरुनी तनु पाई । लहहिं सकल सोभा अधिकारि ॥ १ ॥

माणि, माणिक और मोतीकी जैसी सुन्दर छबि है, वह साँप, पर्वत और हाथीके मस्तकपर वैसी शोभा नहीं पाती। राजाके मुकुट और नवयुवती लोके शरीरको पाकर ही ये सब अधिक शोभाको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

तैसेहिं सुकवि कवित बुध कहहीं । उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं ॥

भगति हेतु बिधिभवन बिहार् । सुमिरत सारद आवति धार् ॥ २ ॥

इसी तरह, बुद्धिमान् लोग कहते हैं कि सुकविकी कविता भी उत्पन्न और कही होती है और शोभा अन्यत्र कहीं पाती है (अर्थात् कविकी वाणीसे उत्पन्न हुई कविता वहाँ शोभा पाती है जहाँ उसका विचार, प्रचार तथा उसमें कथित आदर्शका ग्रहण और अनुसरण होता है)। कविके स्मरण करते ही उसकी भक्तिके कारण सरस्वतीजी ब्रह्मलोकको छोड़कर दौड़ी आती हैं ॥ २ ॥

रामचरित सर यिनु अन्हवापँ । सो भ्रम जाइ न कोटि उपापँ ॥

कवि कोबिद अस हृदयँ बिचारी । गावहिं हरिजस कलिमलहारी ॥ ३ ॥

सरस्वतीजीकी दौड़ी आनेकी वह थकावट रामचरित्ररूपी सरोवरमें उन्हें नहलाये बिना दूसरे करोड़ों उपायोंसे भी दूर नहीं होती। कवि और पण्डित अपने हृदयमें यह विचारकर कलियुगके पापोंको हरनेवाले श्रीहरिके यशका ही गान करते हैं ॥ ३ ॥

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना । सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ॥

हृदय सिंधु मति सीप समाना । स्वाति सारदा कहहिं सुजाना ॥ ४ ॥

संसारी मनुष्योंका गुणगान करनेसे सरस्वतीजी सिर धुनकर पछताने लगती हैं [कि मैं क्यों इसके बुलनेपर आयी]। बुद्धिमान् लोग हृदयको समुद्र, बुद्धिको सीप और सरस्वतीको स्वाति नक्षत्रके समान कहते हैं ॥ ४ ॥

जौ बरषइ बर बारि बिचारु । हाहिं कवित मुकुतामनि चारु ॥ ५ ॥

इसमें यदि श्रेष्ठ विचाररूपी जल बरसता है तो मुक्तामणिके समान सुन्दर कविता होती है ॥ ५ ॥

दो०—जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग ।

पहिरहिं सजन बिमल उर सोभा अति अनुराग ॥ ११ ॥

उन कवितारूपी मुक्तामणियोंको युक्तिसे बेधकर फिर रामचरित्ररूपी सुन्दर तागेमें परोकर सजन लोग अपने निर्मल हृदयमें धारण करते हैं, जिससे अत्यन्त अनुरागरूपी शोभा होती है (वे आत्यन्तिक प्रेमको प्राप्त होते हैं) ॥ ११ ॥

चौ०—जे जनमे कलिकाल कराला । करतब बायस बेध मराला ॥

चलत कुपंथ बेदमग छाँड़े । कपट कलेवर कलि मल भाँड़े ॥ १ ॥

जो कराल कलियुगमें जन्मे हैं, जिनकी करनी कौएके समान है और वेष हंसका-सा है, जो वेदमार्गको छोड़कर कुमार्गपर चलते हैं, जो कपटकी मूर्ति और कलियुगके पापोंके भाँड़े हैं ॥ १ ॥

बंचक भगत कहाइ राम के । किंकर कंचन कोह काम के ॥

तिन्ह महुँ प्रथम रेख जग मोरी । धींग धरमध्वज धंधक धोरी ॥ २ ॥

जो श्रीरामजीके भक्त कहलाकर लोगोंको ठगते हैं, जो धन (लोभ), क्रोध और कामके गुलाम हैं और जो धींगधींगी करनेवाले, धर्मध्वजी (धर्मकी झूठी ध्वजा फहरानेवाले—दम्भी) और कपटके धन्दोंका बोझ ढोनेवाले हैं, संसारके ऐसे लोगोंमें सबसे पहले मेरी गिनती है ॥ २ ॥

जाँ अपने अवगुन सब कहऊँ । बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ ॥

ताते मैं अति अल्प बखाने । थोरे महुँ जानिहहिं सयाने ॥ ३ ॥

यदि मैं अपने सब अवगुणोंको कहने लूँ तो कथा बहुत बढ़ जायगी और मैं पार नहीं पाऊँगा । इससे मैंने बहुत कम [अवगुणोंका] वर्णन किया है । बुद्धिमान् लोग थोड़ेहीमें समझ लेंगे ॥ ३ ॥

समुझि विविधि विधि विनती मोरी । कोउ न कथा सुनि देखि खोरी ॥

पतेहु पर करिहहिं जे असंका । मोहि ते अधिक ते जइ मतिरंका ॥ ४ ॥

मेरी अनेकों प्रकारकी विनतीको समझकर, कोई भी इस कथाको सुनकर दाय नहीं देगा । इतनेपर भी जो शंका करेंगे, वे तो मुझसे भी अधिक मूर्ख और बुद्धिके कंगाल हैं ॥ ४ ॥

कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ । मति अनुरूप रामगुन गावउँ ॥

कहँ रघुपति के चरित अपारा । कहँ मति मोरि निरत संसारा ॥ ५ ॥

मैं न तो कवि हूँ, न चतुर कहलाता हूँ; अपनी बुद्धिके अनुसार श्रीरामजीके गुण गाता हूँ । कहाँ तो श्रीरघुनाथजीके अपार चरित्र, कहाँ संसारमें आसक्त मेरी बुद्धि ! ॥ ५ ॥

जेहिं माखत गिरि मेरु उड़ाहीं । कहहु तूल केहि लेखे माहीं ॥

समुझत अमित राम प्रभुताई । करत कथा मन अति कदराई ॥ ६ ॥

जिम हवासे सुमेरु-जैसे पहाड़ उड़ जाते हैं, कहिये तो, उसके मामलेमें रुई किस गिनतीमें है । श्रीरामजीकी असीम प्रभुताको समझकर कथा रचनेमें मेरा मन बहुत हिचकता है ॥ ६ ॥

दो०—सारद सेस महेस विधि आगम निगम पुरान ।

नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान ॥ १२ ॥

सरस्वतीजी, शेषजी, शिवजी, ब्रह्माजी, शास्त्र, वेद और पुराण, ये सब 'नेति-नेति' कहकर (पार नहीं पाकर 'ऐसा नहीं', 'ऐसा नहीं' कहते हुए) सदा जिनका गुणगान किया करते हैं ॥ १२ ॥

चौ०—सब जानत प्रभु प्रभुता सोई । तदपि कहैं बिनु रहा न कोई ॥

तहाँ बेद अस कारन राखा । भजनप्रभाउ भौंति बहु भाषा ॥ १ ॥

यद्यपि प्रभु (श्रीरामचन्द्रजी) की प्रभुताको सब ऐसी (अकथनीय) ही जानते हैं, तथापि कहे बिना कोई नहीं रहा । इसमें वेदने ऐसा कारण बताया है कि भजनका प्रभाव बहुत तरहसे कहा गया है । (अर्थात् भगवान्की महिमाका पूरा वर्णन तो कोई कर नहीं सकता, परन्तु जिससे जितना बन पड़े उतना भगवान्का गुणगान करना चाहिये । क्योंकि भगवान्के गुणगानरूपी भजनका प्रभाव बहुत ही अनोखा है, उसका नाना प्रकारसे शास्त्रोंमें वर्णन है । थोड़ा-सा भी भगवान्का भजन मनुष्यको सहज ही भवसागरसे तार देता है ।) ॥ १ ॥

एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानन्द परधामा ॥

व्यापक बिस्वरूप भगवाना । तेहिं धरि देह चरित कृत नाना ॥ २ ॥

जो परमेश्वर एक हैं, जिनके कोई इच्छा नहीं है, जिनका कोई रूप और नाम नहीं है, जो अजन्मा, सच्चिदानन्द और परमधाम हैं, और जो सबमें व्यापक एवं विश्वरूप हैं, उन्हीं भगवान्ने [दिव्य] शरीर धारण करके नाना प्रकारकी लीला की है ॥ २ ॥

सो केवल भगतन हित लागी । परम कृपाल प्रनत अनुरागी ॥

जेहि जन पर ममता अति छोह । जेहिं करुना करि कीन्ह न कोह ॥ ३ ॥

वह लीला केवल भक्तोंके हितके लिये ही है, क्योंकि भगवान् परम कृपाल हैं और शरणागतके बड़े प्रेमी हैं । जिनकी भक्तोंपर बड़ी ममता और कृपा है, जिन्होंने एक बार जिसपर कृपा कर दी, उसपर फिर कभी क्रोध नहीं किया ॥ ३ ॥

गई बहोर गरीब नेवाजू । सरल सबल साहिब रघुराजू ॥

बुध बरनहिं हरिजस अस जानी । करहिं पुनीत सुफल निज बानी ॥ ४ ॥

वे प्रभु श्रीरघुनाथजी गयी हुई वस्तुको फिर प्राप्त करानेवाले, गरीबनिवाज (दीनबन्धु), सरल-स्वभाव, सर्वशक्तिमान् और सबके स्वामी हैं । यही समझकर बुद्धिमान् लोग उन श्रीहरिका यश वर्णन करके अपनी वाणीको पवित्र और उत्तम फल (मोक्ष और दुर्लभ भगवत्प्रेम) देनेवाली बनाते हैं ॥ ४ ॥

तेहिं बल मैं रघुपति गुन गाथा । कहिहउँ नाइ रामपद माथा ॥

मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई । तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई ॥ ५ ॥

उसी बलसे (महिमाका यथार्थ वर्णन नहीं, परन्तु महान् फल देनेवाला भजन समझकर भगवत्कृपाके बलपर ही) मैं श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें सिर नवाकर श्रीरघुनाथजीके गुणोंकी कथा कहूँगा । [इसी विचारसे वाल्मीकि, व्यास आदि] मुनियोंने पहले हरिकी कीर्ति गायी है, भाई, उसी मार्गपर चलना मेरे लिये सुगम होगा ॥ ५ ॥

दो०—अति अपार जे सरितबर जौं नृप सेतु कराहिं ।

चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं ॥ १३ ॥

जो नदियाँ अत्यन्त बड़ी हैं, यदि राजा उनपर पुल बँधा देता है तो अत्यन्त छोटी चींटियाँ भी उनपर चढ़कर बिना ही परिश्रमके पार चली जाती हैं [इसी प्रकार मुनियोंके वर्णनके सहारे मैं भी श्रीरामचरित्रका वर्णन सहज ही कर सकूँगा] ॥ १३ ॥

चौ०—एहि प्रकार बल मनहि देखीई । करिहउँ रघुपतिकथा सुहारी ॥

व्यास आदि कबिपुंगव नाना । जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना ॥ १ ॥

इस प्रकार मनको बल दिखलकर मैं श्रीरघुनाथजीकी सुहावनी कथाकी रचना करूँगा । व्यास आदि जो अमेकों श्रेष्ठ कवि हो गये हैं, जिन्होंने बड़े आदरसे श्रीहरिका सुयश वर्णन किया है ॥ १ ॥

चरन कमल बंदउँ तिन्ह केरे । पुरवहुँ सकल मनोरथ मेरे ॥

कलि के कबिन्ह करउँ परनामा । जिन्ह बरने रघुपति गुन प्रामा ॥ २ ॥

मैं उन सब (श्रेष्ठ कवियों) के चरणकमलोंमें प्रणाम करता हूँ, वे मेरे सब मनोरथोंको पूरा करें । कलियुगके उन कवियोंको मैं प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने श्रीरघुनाथजीके गुणसमूहोंका वर्णन किया है ॥ २ ॥

जे प्राकृत कवि परम सयाने । भाषाँ जिन्ह हरिचरित बखाने ॥

भए जे अहहिं जे होइहहिं आगे । प्रनवउँ सबहि कपट सब त्यागे ॥ ३ ॥

जो बड़े बुद्धिमान् प्राकृत कवि हैं, जिन्होंने भाषामें हरिचरित्रोंका वर्णन किया है; जो ऐसे कवि पहले हो चुके हैं, जो इस समय वर्तमान हैं और जो आगे होंगे, उन सबको मैं सारा कपट त्यागकर प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥

होइ प्रसन्न देहु बरदान । साधुसमाज भनिति सनमानू ॥

जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं । सो भ्रम बादि बाल कवि करहीं ॥ ४ ॥

आप सब प्रसन्न होकर यह बरदान दीजिये कि साधु-समाजमें मेरी कविताका सम्मान हो; क्योंकि बुद्धिमान् लोग जिस कविताका आदर नहीं करते, मूर्ख कवि ही उसकी रचनाका व्यर्थ परिश्रम करते हैं ॥ ४ ॥

कीरति भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कहँ हित होई ॥

राम सुकीरति भनिति भदेसा । असमंजस अस मोहि अँदेसा ॥ ५ ॥

कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है जो गङ्गाजीकी तरह सबका हित करनेवाली हो । श्रीरामचन्द्रजीकी कीर्ति तो बड़ी सुन्दर (सबका अनन्त कल्याण करनेवाली ही) है, परन्तु मेरी कविता भद्दी है । यह असमञ्जस है (अर्थात् इन दोनोंका मेल नहीं मिलता), इसीकी मुझे चिन्ता है ॥ ५ ॥

तुम्हरी कृपाँ सुलभ सोउ मोरे । सिअनि सुहाबनि टाट पटोरे ॥ ६ ॥

[परन्तु हे कवियो !] आपकी कृपासे यह बात भी मेरे लिये सुलभ हो सकती है । रेशमकी सिलाई टाटपर भी सुहावनी लगती है ॥ ६ ॥

दो०—सरल कवित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान ।

सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान ॥ १४ (क) ॥

उसी कविताका, जो सरल हो और जिसमें निर्मल चरित्रका वर्णन हो, चतुर पुरुष आदर करते हैं, जिसे सुनकर शत्रु भी स्वाभाविक वैरको भूलकर सहायता करने लगें ॥ १४ (क) ॥

सो न होइ बिनु बिमल मति मोहि मतिबल अति थोर ।

करहु कृपा हरिजस कहउँ पुनि पुनि करउँ निहोर ॥ १४ (ख) ॥

ऐसी कविता बिना निर्मल बुद्धिके होती नहीं और मेरे बुद्धिका बल बहुत ही थोड़ा है । इसलिये बार-बार निहोरा करता हूँ कि हे कवियो ! आप कृपा करें, जिससे मैं हरियशका वर्णन कर सकूँ ॥ १४ (ख) ॥

कवि कोबिद रघुवर चरित मानस मंजु मराल ।

बालविनय मुनि सुरुचि लखि मोपर होहु कृपाल ॥ १४ (ग) ॥

कवि और पण्डितगण ! आप जो रामचरित्ररूपी मानसरोवरके सुन्दर हंस हैं, मुझ बालककी विनती सुनकर और सुन्दर बचि देखकर मुझपर कृपा करें ॥ १४ (ग) ॥

सो०—बंदउँ मुनि पद कंजु, रामायन जेहिं निरमयउ ।

सखर सुकोमल मंजु दोषरहित दूषनसहित ॥ १४ (घ) ॥

मैं उन (वाल्मीकि) मुनिके चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ, जिन्होंने रामायणकी रचना की है, जो खर (राक्षस) सहित होनेपर भी [खर (कठोर) से विपरीत] बड़ी कोमल और सुन्दर है, तथा जो दूषण (राक्षस) सहित होनेपर भी दूषण अर्थात् दोषसे रहित है ॥ १४ (घ) ॥

बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस ।

जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुवर बिसद जसु ॥ १४ (ङ) ॥

मैं चारों वेदोंकी वन्दना करता हूँ, जो संसारसमुद्रके [पार होनेके] लिये जहाजके समान हैं, तथा जिन्हें श्रीरघुनाथजीका निर्मल यश वर्णन करते स्वप्नमें भी खेद (थकावट) नहीं होता ॥ १४ (ङ) ॥

बंदउँ बिधि पद रेनु भवसागर जेहिं कीन्ह जहँ ।

संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल विष बारुनी ॥ १४ (च) ॥

मैं ब्रह्माजीके चरण-रजकी वन्दना करता हूँ, जिन्होंने भवसागर बनाया है, जहाँसे एक ओर संतरूपी अमृत, चन्द्रमा और कामधेनु निकले और दूसरी ओर दुष्ट मनुष्यरूपी विष और मदिरा उत्पन्न हुए ॥ १४ (च) ॥

दो०—बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन बंदि कहउँ कर जोरि ।

होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि ॥ १४ (छ) ॥

देवता, ब्राह्मण, पण्डित, ग्रह, इन सबके चरणोंकी वन्दना करके हाथ जोड़कर कहता हूँ कि आप प्रसन्न होकर मेरे सारे सुन्दर मनोरथोंको पूरा करें ॥ १४ (छ) ॥

चौ०—पुनि बंदउँ सारद सुरसरिता । जुगल पुनीत मनोहर चरिता ॥

मज्जन पान पाप हर एका । कहत सुनत एक हर अबिबेका ॥ १ ॥

फिर मैं सरस्वतीजी और गङ्गाजीकी वन्दना करता हूँ । दोनों पवित्र और मनोहर चरित्रवाली हैं । एक (गङ्गाजी) ज्ञान करने और जल पीनेसे पापोंको हरती हैं और दूसरी (सरस्वतीजी) गुण और यश कहने और सुननेसे अज्ञानका नाश कर देती हैं ॥ १ ॥

गुर पितु मातु महेस भवानी । प्रनवउँ दीनबन्धु दिन दानी ॥

सेवक स्वामि सखा सिय पी के । हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के ॥ २ ॥

श्रीमहेश और पार्वतीको मैं प्रणाम करता हूँ, जो मेरे गुरु और माता-पिता हैं, जो दीनबन्धु और नित्य दान करनेवाले हैं, जो सीतापति श्रीरामचन्द्रजीके सेवक, स्वामी और सखा हैं, और मुझ तुलसीदासका सब प्रकारसे कपटरहित (सखा) हित करनेवाले हैं ॥ २ ॥

कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा । साबर मंत्रजाल जिन्ह सिरिजा ॥

अनमिल आखर भरथ न जापू । प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू ॥ ३ ॥

जिन शिव-पार्वतीने कलियुगको देखकर, जगत्के हितके लिये, शाबरमन्त्रसमूहकी रचना की, जिन मन्त्रोंके अक्षर बेमेल हैं, जिनका न कोई ठीक अर्थ होता है और न जप ही होता है, तथापि भीशिवजीके प्रतापसे जिनका प्रभाव प्रत्यक्ष है ॥ ३ ॥

सो उमेस मोहि पर अनुकूला । करिहिं कथा सुव मंगल मूला ॥

सुमिरि सिधा सिध पाइ पसाऊ । बरनउँ रामचरित बित चाऊ ॥ ४ ॥

वे उमापति शिवजी मुझपर प्रसन्न होकर [भीरामजीकी] इस कथाको आनन्द और मंगलकी मूल (उत्पन्न करनेवाली) बनायेंगे । [इस प्रकार] पार्वतीजी और शिवजी दोनोंका स्मरण करके और उनका प्रसाद पाकर मैं चावभरे चित्तसे भीरामचरित्रका वर्णन करता हूँ ॥ ४ ॥

भनिति मोरि सिवकृपाँ बिभाती । ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती ॥

जे एहि कथहि सनेह समेता । कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ॥ ५ ॥

होइहहिं राम चरन अनुरागी । कलिमल रहित सुमंगलभागी ॥ ६ ॥

मेरी कविता श्रीशिवजीकी कृपासे ऐसी सुशोभित होगी, जैसी तारागणोंके सहित चन्द्रमाके साथ रात्रि शोभित होती है । जो इस कथाको प्रेमसहित एवं सावधानीके साथ समझ-बूझकर कहें-सुनेंगे, वे कलियुगके पापोंसे रहित और सुन्दर कन्याणके भागी होकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके प्रेमी बन जायेंगे ॥ ५-६ ॥

दो०— सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ ।

तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ ॥ १५ ॥

यदि मुझपर भीशिवजी और पार्वतीजीकी स्वप्नमें भी सचमुच प्रसन्नता हो, तो मैंने इस भाषा-कविताका जो प्रभाव कहा है, वह सब सच हो ॥ १५ ॥

चौ०— बंदउँ अवधपुरी अति पावनि । सरजू सरि कलिकलुष नसावनि ॥

प्रनवउँ पुर नर नारि बहोरी । ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी ॥ १ ॥

मैं अति पवित्र श्रीअयोध्याजी और कलियुगके पापोंके नाश करनेवाली श्रीसरजू नदीकी वन्दना करता हूँ, फिर अवधपुरीके उन नर-नारियोंको प्रणाम करता हूँ जिनपर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी ममता थोड़ी नहीं है अर्थात् बहुत है ॥ १ ॥

सियनिन्दक अघ ओघ नसाए । लोक बिसोक बनाइ बसाए ॥

बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची । कीरति जासु सकल जग माची ॥ २ ॥

उन्होंने [अपनी पुरीमें रहनेवाले] सीताजीकी निन्दा करनेवाले [धोबी और उसके समर्थक पुर-नर-नारियों] के पापसमूहको नाशकर उनको शोकरहित बनाकर अपने लोक (धाम) में बसा दिया । मैं कौसल्यारूपी पूर्व दिशाकी वन्दना करता हूँ, जिसकी कीर्ति समस्त संसारमें फैल रही है ॥ २ ॥

प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारु । बिस्वसुखद जल कमल तुसारु ॥

दसरथ राउ सहित सब रानी । सुकृत सुमंगल मूरति मानी ॥ ३ ॥

करउँ प्रनाम करम मन बानी । करहु कृपा सुतसेवक जानी ॥

जिन्हहि बिरचि बड़ भयउ बिधाता । महिमा अवधि राम पितु माता ॥ ४ ॥

जहाँ (कौसल्यारूपी पूर्व दिशा) से विश्वको सुख देनेवाले और दुष्टरूपी कमलोंके लिये पालके समान श्रीरामचन्द्रजीरूपी सुन्दर चन्द्रमा प्रकट हुए । सब रानियोंसहित राजा दशरथजीको पुण्य और सुन्दर कल्याणकी मूर्ति मानकर मैं मन, वचन और कर्मसे प्रणाम करता हूँ । अपने पुत्रका सेवक जानकर वे मुझपर कृपा करें, जिनको रचकर ब्रह्माजीने भी बड़ाई पायी, और जो श्रीरामजीके माता और पिता होनेके कारण महिमाकी सीमा हैं ॥ ३-४ ॥

सो०—बंदउँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि रामपद ।

बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तन इव परिहरेउ ॥ १६ ॥

मैं श्रीअवधके राजा श्रीदशरथजीकी वन्दना करता हूँ, जिनका श्रीरामजीके चरणोंमें सच्चा प्रेम था, और जिन्होंने दीनदयालु रामजीके बिछुड़ते ही अपने प्यारे शरीरको [मामूली] तिनकेकी तरह त्याग दिया ॥ १६ ॥

चौ०—प्रनवउँ परिजन सहित बिदेह । जाहि रामपद गूढ़ संनह ॥

जोग भोग महँ राखेउ गोई । राम बिलोकत प्रगटेउ सोई ॥ १ ॥

मैं परिवारसहित राजा जनकजीको प्रणाम करता हूँ, जिनका श्रीरामजीके चरणोंमें गूढ़ प्रेम था, जिसको उन्होंने योग और भोगमें छिपा रक्खा था, परन्तु श्रीरामचन्द्रजीको देखते ही वह प्रकट हो गया ॥ १ ॥

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना । जासु नेम व्रत जाइ न बरना ॥

राम चरन पंकज मन जासू । लुबुध मधुप इव तजइ न पासू ॥ २ ॥

[भाइयोंमें] सबसे पहले मैं श्रीभरतजीके चरणोंको प्रणाम करता हूँ, जिनका नियम और व्रत वर्णन नहीं किया जा सकता, जिनका मन श्रीरामजीके चरणकमलोंमें मौरेकी तरह लुभाया हुआ है, कभी उनका पास नहीं छोड़ता ॥ २ ॥

बंदउँ लछिमन पद जलजाता । सीतल सुभग भगत सुखदाता ॥

रघुपति कीरति विमल पताका । दंड समान भयउ जस जाका ॥ ३ ॥

मैं श्रीलक्ष्मणजीके चरणकमलोंको प्रणाम करता हूँ, जो शीतल, सुन्दर और भक्तोंको सुख देनेवाले हैं । श्रीरघुनाथजीकी कीर्तिरूपी विमल पताकामें जिनका (लक्ष्मणजीका) यश [पताकाको ऊँचा करके फहरानेवाले] दंडके समान हुआ ॥ ३ ॥

सेष सहस्रसीस जगकारन । जो अवतरेउ भूमिभय टारन ॥

सदा सो सानुकूल रह मोपर । कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर ॥ ४ ॥

जो हजार सिरवाले और जगत्के कारण (हजार सिरोंपर जगत्को धारणकर रखनेवाले) शेषजी हैं, जिन्होंने पृथ्वीका भय दूर करनेके लिये अवतार लिया, वे गुणोंकी खानि कृपासिंधु सुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मणजी मुझपर सदा प्रसन्न रहें ॥ ४ ॥

रिपुसूदन पद कमल नमामी । सूर सुसील भरत अनुगामी ॥

महावीर बिनवउँ हनुमाना । राम जासु जस आपु बखाना ॥ ५ ॥

मैं श्रीशत्रुघ्नजीके चरणकमलोंको प्रणाम करता हूँ, जो बड़े वीर, सुशील और श्रीभरतजीके पीछे चलनेवाले हैं। मैं महावीर श्रीहनुमान्जीकी विनती करता हूँ, जिनके यशका श्रीरामचन्द्रजीने स्वयं (अपने श्रीमुखसे) वर्णन किया है ॥ ५ ॥

सो०—प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानधन ।

जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर ॥१७॥

मैं पवनकुमार श्रीहनुमान्जीको प्रणाम करता हूँ, जो दुष्टरूपी वनके [भस्म करनेके] लिये अग्निरूप हैं, जो ज्ञानके स्वरूप हैं और जिनके हृदयरूपी भवनमें धनुष-बाण धारण किये श्रीरामजी निवास करते हैं ॥१७॥

चौ०—कपिपति रीछ निसाचर राजा । अंगदादि जे कोससमाजा ॥

बंदउँ सब के चरन सुहाए । अधम सरীর राम जिन्ह पाए ॥ १ ॥

वानरोंके राजा सुग्रीवजी, रीछोंके राजा जाम्बवान्जी, राक्षसोंके राजा विभीषणजी और अंगदजी आदि जितना वानरोंका समाज है, सबके सुन्दर चरणोंकी मैं वन्दना करता हूँ, जिन्होंने अधम (पशु और राक्षस आदि) शरीरमें भी श्रीरामचन्द्रजीको प्राप्त कर लिया ॥ १ ॥

रघुपति चरन उपासक जेते । खग मृग सुर नर असुर समेते ॥

बंदउँ पद सरोज सब केरे । जे बिनु काम राम के चेरे ॥ २ ॥

पशु, पक्षी, देवता, मनुष्य, असुर समेत जितने श्रीरामजीके चरणोंके उपासक हैं, मैं उन सबके चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ, जो श्रीरामजीके निष्काम सेवक हैं ॥ २ ॥

सुक सनकादि भगत मुनि नारद । जे मुनिवर विग्यानबिसारद ॥

प्रनवउँ सबहिं धरनि धरि सीसा । करहु कृपा जन जानि मुनीसा ॥ ३ ॥

शुकदेवजी, सनकादि, नारदमुनि आदि जितने भक्त और परम ज्ञानी श्रेष्ठ मुनि हैं, मैं धरतीपर सिर टेककर उन सबको प्रणाम करता हूँ; हे मुनीश्वरो ! आप सब मुझको अपना दास जानकर कृपा कीजिये ॥ ३ ॥

जनकसुता जगजननि जानकी । अतिसय प्रिय कछनानिधान की ॥

ताके जुग पदकमल मनावउँ । जासु कृपां निरमल मति पावउँ ॥ ४ ॥

राजा जनककी पुत्री, जगत्की माता और कछनानिधान श्रीरामचन्द्रजीकी प्रियतमा श्रीजानकी-जीके दोनों चरणकमलोंको मैं मनाता हूँ, जिनकी कृपासे निर्मल बुद्धि पाऊँ ॥ ४ ॥

पुनि मन बचन कर्म रघुनाथक । चरन कमल बंदउँ सब लायक ॥

राजिवनयन धरें धनु सायक । भगत विपति भंजन सुखदायक ॥ ५ ॥

फिर मैं मन, वचन और कर्मसे कमलनयन, धनुष-बाणधारी, भक्तोंकी विपत्तिका नाश करने और उन्हें सुख देनेवाले भगवान् श्रीरघुनाथजीके सर्वसमर्थ चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ ॥ ५ ॥

दो०—गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न ।

बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय विन्न ॥ १८ ॥

जो वाणी और उसके अर्थ, तथा जल और जलकी लहरके समान कहनेमें अलग-अलग हैं परन्तु वास्तवमें अभिन्न (एक) हैं, उन श्रीसीतारामजीके चरणोंकी मैं वन्दना करता हूँ, जिन्हें दीन-दुखी बहुत ही प्रिय हैं ॥ १८ ॥

चौ०—बंदउँ नाम राम रघुवर को । हेतु कसानु भानु हिमकर को ॥

बिधि हरि हरमय बेदप्रान सो । अगुन अनूपम गुननिधान सो ॥ १ ॥

मैं श्रीरघुनाथजीके नाम 'राम' की वन्दना करता हूँ, जो कृशानु (अग्नि), भानु (सूर्य) और हिमकर (चन्द्रमा) का हेतु अर्थात् 'र' 'आ' और 'म' रूपसे बीज है । वह 'राम' नाम ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप है । वह वेदोंका प्राण है; निर्गुण, उपमरहित और गुणाका भांडार है ॥ १ ॥

महामंत्र जोइ जपत महेसू । कासीं मुकुति हेतु उपदेसू ॥

महिमा जासु जान गनराऊ । प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ ॥ २ ॥

जो महामन्त्र है, जिसे महेश्वर श्रीशिवजी जपते हैं और उनके द्वारा जिनका उपदेश काशीमें मुक्तिका कारण है, तथा जिसकी महिमाको गणेशजी जानते हैं, जो इस 'राम' नामके प्रभावसे ही सबसे पहले पूजे जाते हैं ॥ २ ॥

जान आदिकवि नाम प्रतापू । भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ॥

सहस नाम सम सुनि सिववानी । जपति सदा पिय संग भवानी ॥ ३ ॥

आदिकवि श्रीवाल्मीकिजी रामनामके प्रतापको जानते हैं, जो उलटा नाम ('मरा', 'मरा') जपकर पवित्र हो गये । श्रीशिवजीके इस वचनको सुनकर कि एक रामनाम सहस्र नामके समान है, पार्वतीजी सदा अपने पति (श्रीशिवजी) के साथ रामनामका जप करती रहती हैं ॥ ३ ॥

हरषे हेतु हेरि हर ही को । किय भूषन तियभूषन ती को ॥

नामप्रभाउ जान सिव नीको । कालकूट फलु दीन्ह अमी को ॥ ४ ॥

नामके प्रति पार्वतीजीके हृदयकी ऐसी प्रीति देखकर श्रीशिवजी हर्षित हो गये और उन्होंने स्त्रियोंमें भूषणरूप (पतिव्रताओंमें शिरोमणि) पार्वतीजीको अपना भूषण बना लिया (अर्थात् उन्हें अपने अंगमें धारण करके अर्धाङ्गिनी बना लिया) । नामके प्रभावको श्रीशिवजी भली भाँति जानते हैं, जिन (प्रभाव) के कारण कालकूट जहरने उनको अमृतका फल दिया ॥ ४ ॥

दो०—बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास ।

राम नाम बर चरन जुग सावन भादव मास ॥ १९ ॥

श्रीरघुनाथजीकी भक्ति वर्षाऋतु है, तुलसीदासजी कहते हैं कि उत्तम सेवकगण धान हैं, और 'राम' नामके दो सुन्दर अक्षर सावन-भादोंके महीने हैं ॥ १९ ॥

चौ०—आखर मधुर मनोहर दोऊ । बरन बिलोचन जन जिय जोऊ ॥

सुमिरत सुलभ सुखद सब काहु । लोक लाहु परलोक निबाहु ॥ १ ॥

दोनों अक्षर मधुर और मनोहर हैं, जो वर्णमालारूपी शरीरके नेत्र हैं, भक्तोंके जीवन हैं तथा स्मरण करनेमें सबके लिये सुलभ और सुख देनेवाले हैं, और जो इस लोकमें लाभ और परलोकमें निर्वाह करते हैं (अर्थात् भगवान्के दिव्य धाममें दिव्य देहसे सदा भगवत्सेवामें नियुक्त रखते हैं) ॥ १ ॥

कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके । राम लखन सम प्रिय तुलसी के ॥

बरनत बरन प्रीति बिलगाती । ब्रह्म जीब सम सहज सँघाती ॥ २ ॥

ये कहने, सुनने और स्मरण करनेमें बहुत ही अच्छे (सुन्दर और मधुर) हैं, तुलसीदासको तो श्रीराम-लक्ष्मणके समान प्यारे हैं । इनका ('र' और 'म' का) अलग-अलग वर्णन करनेमें प्रीति बिलगाती है (अर्थात्

बीजमन्त्रकी दृष्टिसे इनके उच्चारण, अर्थ और फलमें भिन्नता दीख पड़ती है), परन्तु हैं ये जोव और ब्रह्मके समान स्वभावसे ही साथ रहनेवाले (सदा स्वरूप और एकरस) ॥ २ ॥

नर नारायण सरिस सुभाता । जगपालक बिसेषि जनत्राता ॥

भगति सुतिय कल करन विभूषन । जगहित हेतु बिमल बिधु पूषन ॥ ३ ॥

ये दोनों अक्षर नर-नारायणके समान सुन्दर भाई हैं, ये जगत्का पालन और विशेषरूपसे भक्तोंकी रक्षा करनेवाले हैं। ये भक्तिरूपिणी सुन्दर स्त्रीके कानोंके सुन्दर आभूषण (कर्णफूल) हैं और जगत्के हितके लिये निर्मल चन्द्रमा और सूर्य हैं ॥ ३ ॥

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के । कमठ सेष सम धर बसुधा के ॥

जन मन मंजु कंज मधुकर से । जीह जसोमति हरि हलधर से ॥ ४ ॥

ये सुन्दर गति (मोक्ष) रूपी अमृतके स्वाद और तृप्तिके समान हैं, कच्छप और शेषजीके समान पृथ्वीके धारण करनेवाले हैं, भक्तोंके मनरूपी सुन्दर कमलमें विहार करनेवाले भौरिके समान हैं, और जीभरूपी यशोदाजीके लिये श्रीकृष्ण और बलरामजीके समान [आनन्द देनेवाले] हैं ॥ ४ ॥

दो०—एकु छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ ।

तुलसी रघुवरनाम के बरन विराजत दोउ ॥ २० ॥

तुलसीदासजी कहते हैं—देखो, श्रीरघुनाथजीके नामके दोनों अक्षरोंमें एक (रकार) सब अक्षरोंके ऊपर छत्ररूप (रेफ) से और दूसरा (मकार) मुकुटमणि (अनुस्वार) रूपसे विराजमान है ॥ २० ॥

चौ०—समुद्रत सरिस नाम अरु नामी । प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी ॥

नाम रूप दुइ ईस उपाधी । अकथ अनादि सुसामुझि साधी ॥ १ ॥

समस्तनेमें नाम और नामी दोनों एकसे हैं, किन्तु दोनोंमें परस्पर स्वामी और सेवकके समान प्रीति है (अर्थात् नाम और नामीमें पूर्ण एकता होनेपर भी जैसे स्वामीके पीछे सेवक चलता है, उसी प्रकार नामके पीछे नामी चलते हैं। प्रभु श्रीरामजी अपने 'राम' नामका ही अनुगमन करते हैं, नाम लेते ही वहाँ आ जाते हैं)। नाम और रूप दोनों ईश्वरकी उपाधि हैं; ये (भगवान्के नाम और रूप) दोनों अनिर्वचनीय हैं, अनादि हैं और सुन्दर (शुद्ध भक्तियुक्त) बुद्धिसे ही इनका [दिव्य अविनाशी] स्वरूप जाननेमें आता है ॥ १ ॥

को बड़ छोट कहत अपराधू । सुनि गुनभेदु समुझिहहिं साधू ॥

देखिअहिं रूप नाम आधीना । रूपग्यान नहिं नाम बिहीना ॥ २ ॥

इन (नाम और रूप) में कौन बड़ा है, कौन छोटा, यह कहना तो अपराध है। इनके गुणोंका वारतम्य (कमी-बेशी) सुनकर साधु पुरुष स्वयं ही समझ लेंगे। रूप नामके अधीन देखे जाते हैं, नामके बिना रूपका ज्ञान नहीं हो सकता ॥ २ ॥

रूप बिसेष नाम बिनु जानै । करतलगत न परहिं पहिचानै ॥

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखै । आवत हृदयँ सनेह बिसेषै ॥ ३ ॥

कोई-सा विशेष रूप बिना उसका नाम जाने हथेलीपर रक्खा हुआ भी पहचाना नहीं जा सकता। और रूपके बिना देखे भी नामका स्मरण किया जाय तो विशेष प्रेमके साथ वह रूप हृदयमें आ जाता है ॥ ३ ॥

नाम रूप गति अकथ कहानी । समुद्रत सुखद न परति बखानी ॥

अगुन सगुन बिच नाम सुसाणी । उभयप्रबोधक चतुर दुमाणी ॥ ४ ॥

नाम और रूपकी गतिकी कहानी (विशेषताकी कथा) अकथनीय है। वह समझनेमें सुखदायक है, परन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। निर्गुण और सगुणके बीचमें नाम सुन्दर साक्षी है, और दोनोंका यथार्थ ज्ञान करानेवाला चतुर दुभाषिया है ॥ ४ ॥

दो०—रामनाम मनिदीप धरु जेह देहरी द्वार ।

तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौ चाहसि उजियार ॥ २१ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं, यदि तू भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला चाहता है तो मुखरूपी द्वारकी जीभरूपी देहलीपर रामनामरूपी मणि-दीपकको रख ॥ २१ ॥

चौ०—नाम जीह जपि जागहिं जोगी । बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ॥

ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा । अकथ अनामय नाम न रूपा ॥ १ ॥

ब्रह्माके बनाये हुए इस प्रपञ्च (दृश्य जगत्) से भली भाँति छूटे हुए वैराग्यवान् मुक्त योगी पुरुष इस नामको ही जीभसे जपते हुए [तत्त्वज्ञानरूपी दिनमें] जागते हैं और नाम तथा रूपसे रहित अनुपम, अनिर्वचनीय, अनामय ब्रह्मसुखका अनुभव करते हैं ॥ १ ॥

जाना चाहहिं गूढ़ गति जेऊ । नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ ॥

साधक नाम जपहिं लय लाएँ । होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ ॥ २ ॥

जो परमात्माके गूढ़ रहस्यको (यथार्थ महिमाको) जानना चाहते हैं वे (जिज्ञासु) भी नामको जीभसे जपकर उसे जान लेते हैं। [लौकिक सिद्धियोंके चाहनेवाले अर्थार्थी] साधक लौ लयाकर नामका जप करते हैं और अणिमादि [आर्ता] सिद्धियों को पाकर सिद्ध हो जाते हैं ॥ २ ॥

जपहिं नामु जन भारत भारी । मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥

रामभगत जग चारि प्रकारा । सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥ ३ ॥

[संकटसे घबड़ाये हुए] आर्त भक्त नामजप करते हैं तो उनके बड़े भारी बुरे-बुरे संकट मिट जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं। जगत्में चार प्रकारके (१-अर्थार्थी—धनादिकी चाहसे भजनेवाले; २-आर्त—संकटकी निवृत्तिके लिये भजनेवाले; ३-जिज्ञासु—भगवान्को जाननेकी इच्छासे भजनेवाले; ४-शानी—भगवान्को तत्त्वसे जानकर स्वाभाविक ही प्रेमसे भजनेवाले) रामभक्त हैं और चारोंही पुण्यात्मा, पापरहित और उदार हैं ॥ ३ ॥

चहू चतुर कहूँ नाम अधारा । ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा ॥

चहूँ जुग चहूँ भुति नामप्रभाऊ । कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ ॥ ४ ॥

चारों ही चतुर भक्तोंको नाम ही आधार है; इनमें शानी भक्त प्रभुको विशेषरूपसे प्रिय है। यों तो चारों युगोंमें और चारों ही वेदोंमें नामका प्रभाव है, परन्तु कलियुगमें विशेषरूपसे है, इसमें तो [नामका छोड़कर] दूसरा कोई उपाय ही नहीं है ॥ ४ ॥

दो०—सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन ।

नाम सुप्रेम पियूष हृद तिन्हहूँ किए मन मीन ॥ २२ ॥

जो सब प्रकारकी (भोग और मोक्षकी भी) कामनाओंसे रहित और श्रीरामभक्तिके रसमें लीन हैं, उन्होंने भी नामके सुन्दर प्रेमरूपी अमृतके सरोवरमें अपने मनको मछली बना रखा है (अर्थात् वे नामरूपी सुधाका निरन्तर आस्वादन करते रहते हैं, क्षणभर भी उससे अलग होना नहीं चाहते) ॥ २२ ॥

चौ०—अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥

मोरें मत बड़ नामु दुइ तें । किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें ॥ १ ॥

निर्गुण और सगुण—ब्रह्मके दो स्वरूप हैं । ये दोनों ही अकथनीय, अथाह, अनादि और अनुपम हैं । मेरी सम्मतिमें नाम इन दोनोंसे बड़ा है, जिसने अपने बलसे दोनोंको अपने वशमें कर रखा है ॥ १ ॥

प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की । कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की ॥

एकु दासगत देखिअ एकु । पावकसम जुग ब्रह्म बिबेकु ॥ २ ॥

उभय अगम जुग सुगम नाम तें । कहउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें ॥

व्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी । सत चेतन घन आनंद रासी ॥ ३ ॥

सज्जनगण इस बातको मुझ दासकी डिठाई या केवल काव्योक्ति न समझे । मैं अपने मनके विश्वास, प्रेम और रुचिकी बात कहता हूँ । [निर्गुण और सगुण] दोनों प्रकारके ब्रह्मका ज्ञान अग्निके समान है । निर्गुण उस अप्रकट अग्निके समान है जो काठके अन्दर है, परन्तु दीखती नहीं; और सगुण उस प्रकट अग्निके समान है जो प्रत्यक्ष दीखती है । [तत्त्वतः दोनों एक ही हैं, केवल प्रकट-अप्रकटके भेदसे भिन्न मात्राम् होती हैं] । इसी प्रकार निर्गुण और सगुण तत्त्वतः एक ही हैं । इतना होनेपर भी [दोनों ही जाननेमें बड़े कठिन हैं] । परन्तु नामसे दोनों सुगम हो जाते हैं । इसीसे मैंने नामको [निर्गुण] ब्रह्मसे और [सगुण] रामसे बड़ा कहा है । ब्रह्म व्यापक है, एक है, अविनाशी है; सत्ता, चैतन्य और आनन्दकी घन राशि है ॥ २-३ ॥

अस प्रभु हृदयँ अछन अधिकारी । सकल जीव जग दीन दुखारी ॥

नाम निरूपन नाम जतन तें । सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें ॥ ४ ॥

ऐसे विकाररहित प्रभुके हृदयमें रहते भी जगत्के सब जीव दीन और दुखी हैं । नामका निरूपण करके (नामके यथार्थ स्वरूप, महिमा, रहस्य और प्रभावको जानकर) नामका जतन करनेसे (भ्रष्टापूर्वक नामजपरूपी साधन करनेसे) वही ब्रह्म ऐसे प्रकट हो जाता है जैसे रत्नके जाननेसे उसका मूल्य ॥ ४ ॥

दो०—निर्गुन तें एहि भाँति बड़ नामप्रभाउ अपार ।

कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार ॥ २३ ॥

निर्गुणसे इस प्रकार नाम बड़ा है, नामका प्रभाव अपार है । अब अपने विचारके अनुसार कहता हूँ कि नाम [सगुण] रामसे भी बड़ा है ॥ २३ ॥

चौ०—राम भगत हित नरतनु धारी । सहि संकट किए साधु सुखारी ॥

नामु सप्रेम जपत अनयासा । भगत होहिं मुद मंगल बासा ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने भक्तोंके हितके लिये मनुष्यशरीर धारण करके स्वयं कष्ट सहकर साधुओंको सुखी किया; परन्तु भक्तगण प्रेमके साथ नामका जप करते हुए सहजहीमें आनन्द और कल्याणके घर हो जाते हैं ॥ १ ॥

राम एक तापस तिय तारी । नाम कोटि बल कुमति सुधारी ॥

रिषि हित राम सुकेतुसुता की । सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी ॥ २ ॥

सहित दोष दुख दास दुरासा । दलह नामु जिमि रबिनिसि नासा ॥

भंजुड राम आपु भव चापू । भव भय भंजन नाम प्रतापू ॥ ३ ॥

श्रीरामजीने एक तपस्वीकी स्त्री (अहल्या) को ही तारा; परन्तु नामने करोड़ों दुष्टोंकी बिगड़ी बुद्धिको सुधार दिया । श्रीरामजीने ऋषि विश्वामित्रके हितके लिये एक सुकेतु यक्षकी कन्या ताड़काकी सेना और पुत्र (सुबाहु) सहित समाप्ति की; परन्तु नाम अपने भक्तोंके दोष, दुःख और दुराशाओंका इस तरह नाश कर देता है जैसे सूर्य रात्रिका । श्रीरामजीने तो स्वयं शिवजीके धनुषको तोड़ा, परन्तु नामका प्रताप ही संसारके सब भयोंका नाश करनेवाला है ॥ २-३ ॥

दंडक बन प्रभु कीन्ह सुहावन । जन मन अमित नाम किए पावन ॥

निसिचर निकर दले रघुनंदन । नामु सकल कलि कलुष निकंदन ॥ ४ ॥

प्रभु श्रीरामजीने [भयानक] दण्डक वनको सुहावना बनाया; परन्तु नामने असंख्य मनुष्योंके मनोंको पवित्र कर दिया । श्रीरघुनाथजीने राक्षसोंके समूहको मारा; परन्तु नाम तो कलियुगके सारे पापोंकी जड़ उखाड़नेवाला है ॥ ४ ॥

दो०—सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ ।

नाम उधारे अमित खल वेदविदित गुनगाथ ॥ २४ ॥

श्रीरघुनाथजीने तो शबरी, जटायु आदि उत्तम सेवकोंको ही मुक्ति दी; परन्तु नामने तो अनगिनत दुष्टोंका उद्धार किया । नामके गुणोंकी कथा वेदोंमें प्रसिद्ध है ॥ २४ ॥

चो०—राम सुकंठ बिभीषन दोऊ । राखे सरन जान सबु कोऊ ॥

नाम गरीब अनेक नेवाजे । लोक बेद बर बिरिद विराजे ॥ १ ॥

श्रीरामजीने सुग्रीव और बिभीषण दोको ही अपनी शरणमें रक्ता; यह सब कोई जानते हैं; परन्तु नामने अनेक गरीबोंपर कृपा की है । नामका यह सुन्दर विरद लोक और वेदमें विशेषरूपसे प्रकाशित है ॥ १ ॥

राम भालु कपि कटकु बटोरा । सेतु हेतु भ्रमु कीन्ह न थोरा ॥

नामु छेत भवसिंधु सुखाहीं । करहु विचार सुजन मन माहीं ॥ २ ॥

श्रीरामजीने तो भालू और बन्दरोंकी सेना बटोरी और समुद्रपर पुल बाँधनेके लिये थोड़ा परिश्रम नहीं किया; परन्तु नाम छेते ही संसार-समुद्र सूख जाता है । सज्जनगण ! मनमें विचार कीजिये [कि दोनोंमें कौन बड़ा है] ॥ २ ॥

राम सकुल रन रावनु मारा । सीय सहित निज पुर पगु धारा ॥

राजा राम अवध रजधानी । गावत गुन सुर मुनि बर बानी ॥ ३ ॥

सेवक सुमिरत नामु सप्रीती । बिनु भ्रम प्रबल मोहदलु जीती ॥

फिरत सनेह मगन सुख अपने । नाम प्रसाद सोच नहिं सपने ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने कुटुम्बसहित रावणको युद्धमें मारा; तब सीतासहित उन्होंने अपने नगर (अयोध्या)में प्रवेश किया । राम राजा हुए; अवध उनकी राजधानी हुई; देवता और मुनि सुन्दर वाणीसे जिनके गुण गाते हैं । परन्तु सेवक (भक्त) प्रेमपूर्वक नामके स्मरणमात्रसे बिना परिश्रम मोहकी प्रबल सेनाको जीतकर प्रेममें मग्न हुए अपने ही सुखमें विचरते हैं; नामके प्रसादसे उन्हें सपनेमें भी कोई चिन्ता नहीं सताती ॥ ३-४ ॥

दो०—ब्रह्म राम तें नामु बड़ बरदायक बरदानि ।

रामचरित सतकोटि महँ लिय महेस जियँ जानि ॥ २५ ॥

इस प्रकार नाम [निर्गुण] ब्रह्म और [सगुण] राम दोनोंसे बड़ा है । यह वरदान देनेवालोंको भी वर देनेवाला है । श्रीशिवजीने अपने हृदयमें यह जानकर ही सौ करोड़ रामचरित्रमेसे इस 'राम' नामको [साररूपसे चुनकर] ग्रहण किया है ॥ २५ ॥

मासपारायण—पहला विश्राम

चौ०—नाम प्रसाद संभु अविनासी । साजु अमंगल मंगलरासी ॥

सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी । नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी ॥ १ ॥

नामहीके प्रसादसे शिवजी अविनाशी हैं, और अमंगल वेष्टवाले होनेपर भी मंगलकी राशि हैं । सुकदेवजी और सनकादि सिद्ध, मुनि, योगीगण नामके ही प्रसादसे ब्रह्मानन्दको भोगते हैं ॥ १ ॥

नारद जानेउ नाम प्रतापू । जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू ॥

नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । भगत सिरोमनि भे प्रह्लादू ॥ २ ॥

नारदजीने नामके प्रतापको जाना है । हरि सारे संसारको प्यारे हैं, [हरिको हर प्यारे हैं] और आप (श्रीनारदजी) हरि और हर दोनोंको प्रिय हैं । नामके जपनेसे प्रभुने कृपा की, जिससे प्रह्लाद भक्त-शिरोमणि हो गये ॥ २ ॥

ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरिनाऊँ । पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ॥

सुमिरि पवनसुत पावन नामू । अपने बस करि राखे रामू ॥ ३ ॥

ध्रुवजीने ग्लानिसे (विमाताके वचनोंसे दुखी होकर सकामभावसे) हरिनामको जपा, और [उसके प्रतापसे] अचल अनुपम स्थान (ध्रुवलोक) प्राप्त किया । हनुमान्जीने पवित्र नामका स्मरण करके रामजीको अपने वशमें कर रक्खा है ॥ ३ ॥

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ । भए मुकुत हरिनाम प्रभाऊ ॥

कहाँ कहाँ लगी नाम बड़ाई । रामु न सकहिँ नाम गुन गाई ॥ ४ ॥

नीच अजामिल, गज और गणिका (वेश्या) भी श्रीहरिके नामके प्रभावसे मुक्त हो गये । मैं नामकी बड़ाई कहाँतक कहूँ, राम भी नामके गुणोंको नहीं गा सकते ॥ ४ ॥

दो०—नामु राम को कल्पतरु कलि कल्याण निवास ।

जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु ॥ २६ ॥

कलियुगमें रामका नाम कल्पतरु (मनचाहा पदार्थ देनेवाला) और कल्याणका निवास (मुक्तिका घर) है, जिसको स्मरण करनेसे भाँग-सा (निकृष्ट) तुलसीदास तुलसीके समान [पवित्र] हो गया ॥ २६ ॥

चौ०—चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका । भए नाम जपि जीव बिसोका ॥

बेद पुरान संत मत पढ़ । सकल सुकृत फल राम स्नेह ॥ १ ॥

[केवल कलियुगकी ही बात नहीं है,] चारों युगोंमें, तीनों कालोंमें और तीनों लोकोंमें नामको जपकर जीव शोकरहित हुए हैं । वेद, पुराण और संतोंका मत यही है कि समस्त पुण्योंका फल श्रीरामजीमें [या राम-नाममें] प्रेम होना है ॥ १ ॥

ध्यानु प्रथम जुग मख बिधि दूजें । द्वापर परितोषत प्रभु पूजें ॥

कलि केवल मल मूल मलीना । पाप पयोनिधि जन मन मीना ॥ २ ॥

पहले (सत्य) युगमें ध्यानसे, दूसरे (त्रेता) युगमें यज्ञसे और द्वापरमें पूजनसे भगवान् प्रसन्न होते हैं; परन्तु कलियुग केवल पापकी जड़ और मलिन है, इसमें मनुष्योंका मन पापरूपी समुद्रमें मछली [के समान] बना हुआ है (अर्थात् पापसे कभी अलग होना ही नहीं चाहता; इससे ध्यान, यज्ञ और पूजन नहीं बन सकते) ॥ २ ॥

नाम कामतरु काल कराला । सुमिरत समन सकल जगजाला ॥

रामनाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितु माता ॥ ३ ॥

ऐसे कराल (कलियुगके) कालमें तो नाम ही कल्पवृक्ष है, जो स्मरण करते ही संसारके सब जंजालोंको नाश कर देनेवाला है । कलियुगमें यह रामनाम मन-वाञ्छित फल देनेवाला है, परलोकका परम हितैषी और इस लोकका माता-पिता है (अर्थात् परलोकमें भगवान्का परमधाम देता है और इस लोकमें माता-पिताके समान सब प्रकारसे पालन और रक्षण करता है) ॥ ३ ॥

नहिं कलि करम न भगति विबेकू । रामनाम अवलंबन एकू ॥

कालनेमि कलि कपट निधानू । नाम सुमति समरथ हनुमानू ॥ ४ ॥

कलियुगमें न कर्म है, न भक्ति है और न ज्ञान ही है; रामनाम ही एक आधार है । कपटकी खान कलियुगरूपी कालनेमिके [मारनेके] लिये रामनाम ही बुद्धिमान् और समर्थ श्रीहनुमान्जी है ॥ ४ ॥

दो०—रामनाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल ।

जापक जन प्रह्लाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल ॥ २७ ॥

रामनाम श्रीनृसिंह भगवान् है, कलियुग हिरण्यकशिपु है और जप करनेवाले जन प्रह्लादके समान हैं; यह रामनाम देवताओंके शत्रु (कलियुगरूपी दैत्य) को मारकर जप करनेवालोंकी रक्षा करेगा ॥ २७ ॥

चौ०—भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥

सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा । करउँ नाइ रघुनाथहि माथा ॥ १ ॥

अच्छे भाव (प्रेम) से, बुरे भाव (वैर) से, क्रोधसे या आलस्यसे, किसी तरहसे भी नाम जपनेसे दसों दिशाओंमें कल्याण होता है । उसी (परम कल्याणकारी) रामनामका स्मरण करके और श्रीरघुनाथजीको मस्तक नवाकर मैं रामजीके गुणोंका वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

मोरि सुधारिहि सो सब भाँती । जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती ॥

राम सुखामि कुसेवकु मोसो । निज दिसि देखि दयानिधि पोसो ॥ २ ॥

वे (श्रीरामजी) मेरी [बिगड़ी] सब तरहसे सुधार लेंगे; जिनकी कृपा कृपा करनेसे नहीं अघाती । राम-से उत्तम स्वामी और मुक्त-सरीखा बुरा सेवक ! इतनेपर भी उन दयानिधि (श्रीरामजी) ने अपनी ओर देखकर मेरा पालन किया है ॥ २ ॥

लोकहुँ बेद सुसाहिब रीती । बिनय सुनत पहिचानत प्रीती ॥

गनी गरीब भ्रामनर नागर । पंडित मूढ़ मलीन उजागर ॥ ३ ॥

लोक और वेदमें भी अच्छे स्वामीकी यही रीति प्रसिद्ध है कि वह विनय सुनते ही प्रेमको पहचान लेता है। अमीर-गरीब, गँवार-नगरनिवासी, पण्डित-मूर्ख, बदनाम-यशस्वी, ॥ ३ ॥

सुकवि कुकवि निज मति अनुहारी । नृपहि सराहत सब नर नारी ॥

साधु सुजान सुसील नृपाला । ईस अंस भव परम कृपाला ॥ ४ ॥

सुकवि-कुकवि, सभी नर-नारी अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार राजाकी सराहना करते हैं। और साधु, बुद्धिमान, सुशील, ईश्वरके अंशसे उत्पन्न कृपालु राजा—॥ ४ ॥

सुनि सनमानहिं सबहि सुबानी । भनिति भगति नति गति पहिचानी ॥

यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ । जान सिरोमनि कोसलराऊ ॥ ५ ॥

सबकी सुनकर और उनकी वाणी, भक्ति, विनय और चालको पहचानकर सुन्दर (मीठी) वाणीसे सबका यथायोग्य सम्मान करते हैं। यह स्वभाव तो संसारी राजाओंका है, कोसलनाथ श्रीरामचन्द्रजी तो चतुर-शिरोमणि हैं ॥ ५ ॥

रीझत राम सनेह निसोते । को जग मंद मलिनमति मोते ॥ ६ ॥

श्रीरामजी तो विशुद्ध प्रेमसे ही रीझते हैं, पर जगत्में मुझसे बढ़कर मूर्ख और मलिनबुद्धि और कौन होगा ? ॥ ६ ॥

दो०—सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहहिं राम कृपालु ।

उपल किए जलजान जेहिं सचिव सुमति कपि भालु ॥ २८ (क) ॥

तथापि कृपालु श्रीरामचन्द्रजी मुझ दुष्ट सेवककी प्रीति और रुचिको अवश्य रक्खेंगे, जिन्होंने पत्थरोंको जहाज और बन्दर-भालुओंको बुद्धिमान् मन्त्री बना लिया ॥ २८ (क) ॥

हौंहु कहावत सबु कहत राम सहत उपहास ।

साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास ॥ २८ (ख) ॥

सब लोग मुझे रामजीका सेवक कहते हैं, मैं भी [विना लज्जा-संकोचके] कहलाता हूँ (कहनेवालेका विरोध नहीं करता); [कृपालु] श्रीरामजी इस निन्दाको सहते हैं कि श्रीसीतानाथजी-जैसे स्वामीका तुलसीदास-सा सेवक है ॥ २८ (ख) ॥

चौ०—अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी । सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी ॥

समुझि सहम मोहि अपडर अपने । सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपने ॥ १ ॥

यह मेरी बहुत बड़ी ढिठाई और दोष है, मेरे पापको सुनकर नरकने भी नाक सिकोड़ ली है (अर्थात् नरकमें भी मेरे लिये ठौर नहीं है)। यह समझकर मुझे अपने ही कल्पित डरसे डर हो रहा है, किन्तु भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने तो स्वप्नमें भी इसपर (मेरी इस ढिठाई और दोषपर) ध्यान नहीं दिया ॥ १ ॥

सुनि अवलोकि सुचित चख चाही । भगति मोरि मति स्वामि सराही ॥

कहत नसाइ होइ दियँ नीकी । रीझत राम जानि जन जी की ॥ २ ॥

वरं मेरे प्रभु (श्रीरामचन्द्रजी) ने तो इस बातको सुनकर, देखकर और अपने सुचितरूपी चक्षुसे निरीक्षण कर मेरी भक्ति और बुद्धिकी [उलटे] सराहना की। क्योंकि कहनेमें चाहे बिगड़ जाय (अर्थात् मैं चाहे अपनेको भगवान्का सेवक कहता-कहलाता रहूँ), परन्तु हृदयमें अच्छापन होना चाहिये। (हृदयमें तो अपने-

को उनका सेवक बनने योग्य नहीं मानकर पापी और दीन ही मानता हूँ, यह अच्छापन है।) श्रीरामचन्द्रजी दासके हृदयकी [अच्छी] स्थिति जानकर रीस जाते हैं ॥ २ ॥

रहति न प्रभु चित चूक किए की । करत सुरति सय बार दिए की ॥

जेहिं अघ बधेउ व्याध जिमि बाली । फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥ ३ ॥

प्रभुके चित्तमें अपने भक्तोंकी की हुई भूल-चूक याद नहीं रहती (वे उसे भूल जाते हैं) और उनके हृदय [की अच्छाई—नीकी] को सौ-सौ बार याद करते रहते हैं । जिस पापके कारण उन्होंने बालिको व्याधकी तरह मारा था, वैसी ही कुचाल फिर सुग्रीवने चली ॥ ३ ॥

सोइ करतति बिभीषन केरी । सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी ॥

ते भरतहि भेंटत सनमाने । राजसभाँ रघुबीर बखाने ॥ ४ ॥

वही करनी बिभीषणकी थी, परन्तु श्रीरामचन्द्रजीने स्वप्नमें भी उसका मनमें विचार नहीं किया । उल्टे भरतजीसे मिलनेके समय श्रीरघुनाथजीने उनका सम्मान किया और राजसभामें भी उनके गुणोंका बखान किया ॥ ४ ॥

दो०—प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान ।

तुलसी कहूँ न राम से साहिव सोलनिधान ॥ २९ (क) ॥

प्रभु (श्रीरामचन्द्रजी) तो वृक्षके नीचे और बन्दर डालीपर (अर्थात् कहाँ मर्यादापुरुषोत्तम सच्चिदानन्द-धन परमात्मा श्रीरामजी और कहाँ पेड़ोंकी शाखाओंपर कूदनेवाले बन्दर) ! परन्तु ऐसे बन्दरोंको भी उन्होंने अपने समान बना लिया । तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी-सरीखे शीलनिधान स्वामी कहीं भी नहीं हैं ॥ २९ (क) ॥

राम निकाई रावरी है सबही को नीक ।

जों यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक ॥ २९ (ख) ॥

हे श्रीरामजी ! आपकी अच्छाईसे सभीका भला है (अर्थात् आपका कल्याणमय स्वभाव सभीका कल्याण करनेवाला है) । यदि यह बात सच है तो तुलसीदासका भी सदा कल्याण ही होगा ॥ २९ (ख) ॥

एहि बिधि निज गुन दोष कहि सबहि बहुरि सिरु नाइ ।

बरनउँ रघुबर बिसद जसु सुनि कलि कलुष नसाइ ॥ २९ (ग) ॥

इस प्रकार अपने गुण-दोषोंको कहकर और सबको फिर सिर नवाकर मैं श्रीरघुनाथजीका निर्मल यश वर्णन करता हूँ, जिसके सुननेसे कलियुगके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ २९ (ग) ॥

चौ०—जागबलिक जो कथा सुहाई । भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई ॥

कहिहउँ सोइ संवाद बखानी । सुनहुँ सकल सज्जन सुखु मानी ॥ १ ॥

मुनि याज्ञवल्क्यजीने जो सुहावनी कथा मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजीको सुनायी थी, उसी संवादको मैं बखानकर कहूँगा; सब सज्जन सुखका अनुभव करते हुए उसे सुनै ॥ १ ॥

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा । बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा ॥

सोइ सिव कागभुसुंझिहि दीन्हा । रामभगत अधिकारी चीन्हा ॥ २ ॥

शिवजीने पहले इस सुहावने चरित्रको रचा, फिर कृपा करके पार्वतीजीको सुनाया । वही चरित्र शिव-जीने काकभुशुण्डिजीको रामभक्त और अधिकारी पहचानकर दिया ॥ २ ॥

तेहि सन जागबलिक पुनि पावा । तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा ॥
ते श्रोता बक्ता समसीला । सर्वदरसी जानहिं हरिलीला ॥ ३ ॥

उन काकभुशुण्डिजीसे फिर याज्ञवल्क्यजीने पाया और उन्होंने फिर उसे भरद्वाजजीको गाकर सुनाया । वे दोनों वक्ता और श्रोता (याज्ञवल्क्य और भरद्वाज) समान शीलवाले और समदर्श हैं और श्रीहरिकी लीलाको जानते हैं ॥ ३ ॥

जानहिं तीनि काल निज ग्याना । करतलगत आमलक समाना ॥
औरउ जे हरिभगत सुजाना । कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना ॥ ४ ॥

वे अपने ज्ञानसे तीनों कालोंकी बातोंको हथेलीपर रखे हुए आँवलेके समान (प्रत्यक्ष) जानते हैं । और भी जो सुजान (भगवान्की लीलाओंका रहस्य जाननेवाले) हरिभक्त हैं, वे इस चरित्रको नाना प्रकारसे कहते, सुनते और समझते हैं ॥ ४ ॥

दो०—मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत ।

समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत ॥ ३० (क) ॥

फिर वही कथा मैंने वाराह-क्षेत्रमें अपने गुरुजीसे सुनी; परन्तु उस समय मैं लड़कपनके कारण बहुत बेसमझ था, इससे उसको उस प्रकार (अच्छी तरह) समझा नहीं ॥ ३० (क) ॥

श्रोता बक्ता ग्याननिधि कथा राम कै गूढ़ ।

किमि समुझौं मैं जीव जड़ कलि मल ग्रसित बिमूढ़ ॥ ३० (ख) ॥

श्रीरामजीकी गूढ़ कथाके वक्ता (कहनेवाले) और श्रोता (सुननेवाले) दोनों पूरे ज्ञानी होते हैं । मैं कलियुगके पापोंसे प्रसा हुआ महामूढ़ जड़ जीव भला उसको कैसे समझ सकता था ? ॥ ३० (ख) ॥

चौ०—तदपि कही गुर बारहिं बारा । समुझि परी कछु मति अनुसार ॥

भाषाबद्ध करबि मैं सोई । मोरें मन प्रबोध जेहिं होई ॥ १ ॥

तो भी गुरुजीने जब बार-बार कथा कही, तब बुद्धिके अनुसार कुछ समझमे आयी। वही अब मेरेद्वारा भाषामें रची जायगी, जिससे मेरे मनको सन्तोष हो ॥ १ ॥

जस कछु बुधि बिबेक बल मेरें । तस कहिहउँ हियँ हरि के प्रेरें ॥

निज संदेह मोह भ्रम हरनी । करउँ कथा भव सरिता तरनी ॥ २ ॥

जैसा-कुछ मुझमें बुद्धि और विवेकका बल है, मैं हृदयमे हरिकी प्रेरणासे उसीके अनुसार कहूँगा । मैं अपने सन्देह, अज्ञान और भ्रमको हरनेवाली कथा रचता हूँ, जो संसाररूपी नदीके [पार करनेके] लिये नाव है ॥ २ ॥

बुध विश्राम सकल जन रंजनि । रामकथा कलि कलुष बिभंजनि ॥

रामकथा कलि पंगव भरनी । पुनि बिबेक पावक कहूँ अरनी ॥ ३ ॥

रामकथा पण्डितोंको विश्राम देनेवाली, सब मनुष्योंको प्रसन्न करनेवाली और कलियुगके पापोंका नाश करनेवाली है । रामकथा कलियुगरूपी साँपके लिये मोरनी है और विवेकरूपी अग्निके [प्रकट करनेके] लिये अरण (मन्थन की जानेवाली लकड़ी) है, अर्थात् इस कथासे ज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

रामकथा कलि कामद गार्ह । सुजन सजीवनि मूरि सुहार्ह ॥

सोह बसुधातल सुधा तरंगिनि । भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि ॥ ४ ॥

रामकथा कलियुगमें [सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली] कामधेनु गौ है और सज्जनोंके लिये सुन्दर सजीवनी जड़ी है । पृथ्वीपर यही अमृतकी नदी है, [जन्म-मरणरूपी] भयका नाश करनेवाली और भ्रमरूपी भेदकों [को खाने] के लिये सर्पिणी है ॥ ४ ॥

असुर सेन सम नरक निकंदिनि । साधु विबुध कुल हित गिरिनंदिनि ॥

संत समाज पयोधि रमा सी । विस्व भार भर अचल छमा सी ॥ ५ ॥

यह रामकथा असुरोंकी सेनाके समान नरकोंका नाश करनेवाली और साधुरूप देवताओंके कुलका हित करनेवाली पार्वती (दुर्गा) है । यह संत-समाजरूपी क्षीरसमुद्रके लिये लक्ष्मीजीके समान है और सम्पूर्ण विश्वका भार उठानेमें पृथ्वीके समान है ॥ ५ ॥

जम गन मुहँ मसि जग जमुना सी । जीवन मुकुति हेतु जनु कासी ॥

रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी । तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी ॥ ६ ॥

यमदूतोंके मुखपर कालिख लगानेके लिये यह जगत्में यमुनाजीके समान है और जीवोंको मुक्ति देनेके लिये मानो काशी ही है । यह श्रीरामजीको पवित्र तुलसीके समान प्रिय है और तुलसीदासके लिये हुलसी (तुलसीदासजीकी माता) के समान हृदयसे हित करनेवाली है ॥ ६ ॥

सिवप्रिय मेकल सैल सुता सी । सकल सिद्धि सुख संपति रासी ॥

सदगुन सुरगन अंब अदिति सी । रघुवर भगति प्रेम परमिति सी ॥ ७ ॥

यह रामकथा शिवजीको नर्मदाजीके समान प्यारी है, यह सब सिद्धियोंकी तथा सुख-सम्पत्तिकी राशि है । सदगुणरूपी देवताओंके [उत्पन्न और पालन-पोषण करनेके] लिये माता अदितिके समान है । श्रीरघुनाथजीकी भक्ति और प्रेमकी सीमा-सी है ॥ ७ ॥

दो०—रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु ।

तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु ॥ ३१ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि रामकथा मन्दाकिनी नदी है, सुन्दर (निर्मल) चित्त चित्रकूट है, सुन्दर स्नेह ही बन है, जिसमें श्रीसीतारामजी विहार करते हैं ॥ ३१ ॥

चौ०—रामचरित चिंतामनि चारु । संत सुमति तिय सुभग सिंगारु ॥

जगमंगल गुनग्राम राम के । दानि मुकुति धन धरम धाम के ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र सुन्दर चिन्तामणि है और संतोंकी सुबुद्धिरूपी स्त्रीका सुन्दर शृङ्गार है । श्रीरामचन्द्रजीके गुणसमूह जगत्का कल्याण करनेवाले और मुक्ति, धन, धर्म और [परम] धामके देनेवाले हैं ॥ १ ॥

सदगुर ग्यान बिराग जोग के । विबुध बैद भव भीम रोग के ॥

जननि जनक सिय राम प्रेम के । बीज सकल व्रत धरम नेम के ॥ २ ॥

ज्ञान, वैराग्य और योगके लिये सद्गुरु हैं और संसाररूपी भयंकर रोगके [नाश करनेके] लिये देवताओंके वैद्य (अश्विनीकुमार) के समान हैं । ये श्रीसीतारामजीके प्रेमके [उत्पन्न करनेके] लिये माता-पिता हैं और सम्पूर्ण व्रत, धर्म और नियमोंके बीज हैं ॥ २ ॥

समन पाप संताप सोक के । प्रिय पालक परलोक लोक के ॥

सचिव सुभट भूपति विचार के । कुंभज लोभ उदधि अपार के ॥ ३ ॥

पाप, संताप और शोकका नाश करनेवाले तथा इस लोक और परलोकके प्रिय पालन करनेवाले हैं । विचार (ज्ञान) रूपी राजाके शूरवीर मन्त्री और लोभरूपी अपार समुद्रके [सोखनेके] लिये अगस्त्य मुनि हैं ॥ ३ ॥

काम कोह कलिमल करिगन के । केहरिसावक जन मन बन के ॥

अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के । कामद घन दारिद दवारि के ॥ ४ ॥

भक्तोंके मनरूपी वनमें बसनेवाले काम, क्रोध और कलियुगके पापरूपी हाथियोंके [मारनेके] लिये सिंहके बच्चे हैं । शिवजीके पूज्य और प्रियतम अतिथि हैं और दरिद्रतारूपी दावानलके [बुझानेके] लिये कामना पूर्ण करनेवाले मेघ हैं ॥ ४ ॥

मंत्र महामनि विषय न्याल के । मेढत कठिन कुंभंक भाल के ॥

हरन मोह तम दिनकर कर से । सेवक सालि पाल जलधर से ॥ ५ ॥

विषयरूपी साँप [का जहर उतारने] के लिये मन्त्र और महामणि हैं । ये ललाटपर लिखे हुए कठिनातासे मिटनेवाले बुरे लेखों (मन्द प्रारब्ध) को मिटा देनेवाले हैं । अज्ञानरूपी अन्धकारके हरण करनेके लिये सूर्यकिरणोंके समान और सेवकरूपी धानके पालन करनेमें मेघके समान हैं ॥ ५ ॥

अभिमत दानि देवतरु बर से । सेवत सुलभ सुखद हरि हर से ॥

सुकवि सरद नभ मन उडगन से । रामभगत जन जीवन घन से ॥ ६ ॥

मन-वाञ्छित वस्तु देनेमें श्रेष्ठ कल्पवृक्षके समान हैं और सेवा करनेमें हरि-हरके समान सुलभ और सुख देनेवाले हैं । सुकविरूपी शरद ऋतुके मनरूपी आकाशके [सुशोभित करनेके] लिये तारागणके समान और श्रीरामजीके भक्तोंके तो जीवनघन ही हैं ॥ ६ ॥

सकल सुरुत फल भूरि भोग से । जग हित निरुपधि साधु लोग से ॥

सेवक मन मानस मराल से । पावन गंग तरंग माल से ॥ ७ ॥

सम्पूर्ण पुण्योंके फल महान् भोगोंके समान हैं । जगत्का छलरहित (यथार्थ) हित करनेमें साधु-संतोंके समान हैं । सेवकोंके मनरूपी मानसरोवरके लिये हंसके समान और पवित्र करनेमें गंगाजीकी तरंग-मालाओंके समान हैं ॥ ७ ॥

दो०—कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाषंड ।

दहन राम गुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड ॥ ३२ (क) ॥

श्रीरामजीके गुणोंके समूह कुमार, कुतर्क, कुचाल और कलियुगके कपट, दंभ और पाषण्डके जलानेके लिये वैसे ही हैं जैसे ईंधनके लिये प्रचण्ड अग्नि ॥ ३२ (क) ॥

रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु ।

सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु ॥ ३२ (ख) ॥

रामचरित्र पूर्णिमाके चन्द्रमाकी किरणोंके समान सभीको सुख देनेवाले हैं, परन्तु सज्जनरूपी कुमुदिनी और चकोरके चिचके लिये तो विशेष हितकारी और महान् लाभदायक हैं ॥ ३२ (ख) ॥

चौ०—कीन्हि प्रसन्न जेहि भौंति भवानी । जेहि बिधि संकर कहा बखानी ॥

सो सब हेतु कहब मैं गाई । कथाप्रबंध बिचित्र बनाई ॥ १ ॥

जिस प्रकार श्रीपार्वतीजीने श्रीशिवजीसे प्रश्न किया और जिस प्रकारसे श्रीशिवजीने विस्तारसे कहा, वह सब कारण मैं बिचित्र कथाकी रचना करके गाकर कहूँगा ॥ १ ॥

जेहिं यह कथा सुनी नहिं छोई । जनि आचरजु करै सुनि सोई ॥

कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी । नहिं आचरजु करहिं अस जानी ॥ २ ॥

रामकथा कै मिति जग नाहीं । असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं ॥

नाना भौंति राम अवतारा । रामायन सत कोटि अपारा ॥ ३ ॥

जिसने यह कथा पहले न सुनी हो, वह इसे सुनकर आश्चर्य न करे। जो शानी इस बिचित्र कथाको सुनते हैं, वे यह जानकर आश्चर्य नहीं करते कि संसारमें रामकथाकी कोई सीमा नहीं है (रामकथा अनन्त है)। उनके मनमें ऐसा विश्वास रहता है। नाना प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजीके अवतार हुए हैं और सौ करोड़ तथा अपार रामायण हैं ॥ २-३ ॥

कल्पभेद हरिचरित सुहाए । भौंति अनेक मुनीसन्ह गाए ॥

करिअ न संसय अस उर आनी । सुनिअ कथा सादर रति मानी ॥ ४ ॥

कल्पभेदके अनुसार श्रीहरिके सुन्दर चरित्रोंको मुनीश्वरोंने अनेकों प्रकारसे गाया है। हृदयमें ऐसा विचारकर सन्देह न कीजिये और आदरसहित प्रेमसे इस कथाको सुनिये ॥ ४ ॥

दो०—राम अनंत अनंत गुण अमित कथा विस्तार ।

सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह के बिमल बिचार ॥ ३३ ॥

श्रीरामचन्द्रजी अनन्त हैं, उनके गुण भी अनन्त हैं और उनकी कथाओंका विस्तार भी असीम है। अतएव जिनके विचार निर्मल हैं वे इस कथाको सुनकर आश्चर्य नहीं मानेंगे ॥ ३३ ॥

चौ०—एहि बिधि सब संसय करि दूरी । सिर धरि गुर पद पंकज धूरी ॥

पुनि सबही बिनवउँ कर जोरी । करत कथा जेहिं लाग न खोरी ॥ १ ॥

इस प्रकार सब सन्देहोंको दूर करके और श्रीगुरुजीके चरणकमलोंकी रजको सिरपर धारण करके मैं पुनः हाथ जोड़कर सबकी विनती करता हूँ कि जिससे कथाकी रचनामें कोई दोष स्पर्श न करने पावे ॥ १ ॥

सादर सिवहि नाइ अब माथा । बरनउँ बिसद राम गुन गाथा ॥

संबत सोरह सै एकतीसा । करउँ कथा हरिपद धरि सीसा ॥ २ ॥

अब मैं आदरपूर्वक श्रीशिवजीको सिर नवाकर श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी निर्मल कथा कहता हूँ। श्रीहरिके चरणोंपर सिर रखकर संवत् १६३१ में इस कथाका आरम्भ करता हूँ ॥ २ ॥

नौमी भौमबार मधुमासा । अवधपुरी यह चरित प्रकासा ॥

जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं । तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं ॥ ३ ॥

चैत्र मासकी नवमी तिथि मंगलवारको श्रीअयोध्याजीमें यह चरित्र प्रकाशित हुआ। जिस दिन श्रीरामजीका जन्म होता है, वेद कहते हैं कि उस दिन सारे तीर्थ बहाँ (श्रीअयोध्याजीमें) चले आते हैं ॥ ३ ॥

असुर नाग खग नर मुनि देवा । आइ करहिं रघुनाथक सेवा ॥

जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना । करहिं राम कल कीरति गाना ॥ ४ ॥

असुर, नाग, पक्षी, मनुष्य, मुनि और देवता सब अयोध्याजीमें आकर श्रीरघुनाथजीकी सेवा करते हैं । बुद्धिमान् लोग जन्मका महोत्सव मनाते हैं और श्रीरामजीकी सुन्दर कीर्तिका गान करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—मज्झहिं सज्जनबृन्द बहु पावन सरजू नीर ।

जपहिं राम धरि ध्यान उर सुंदर स्याम सरीर ॥ ३४ ॥

सज्जनोंके बहुत-से समूह उस दिन श्रीसरयूजीके पवित्र जलमें स्नान करते हैं और हृदयमें सुन्दर श्यामशरीर श्रीरघुनाथजीका ध्यान करके उनके नामका जप करते हैं ॥ ३४ ॥

चौ०—दरस परस मज्जन अरु पाना । हरइ पाप कह बेद पुराना ॥

नदी पुनीत अमित महिमा अति । कहि न सकइ सारदा बिमल मति ॥ १ ॥

वेद-पुराण कहते हैं कि श्रीसरयूजीका दर्शन, स्पर्श, स्नान और जलपान पापोंको हरता है । यह नदी बड़ी ही पवित्र है, इसकी महिमा अनन्त है, जिसे विमल बुद्धिवाली सरस्वतीजी भी नहीं कह सकती ॥ १ ॥

रामधामदा पुरी सुहाबनि । लोक समस्त बिदित अतिपावनि ॥

चारि खानि जग जीव अपारा । अवध तजें तनु नहिं संसारा ॥ २ ॥

यह शोभायमान अयोध्यापुरी श्रीरामचन्द्रजीके परमधामकी देनेवाली है, सब लोकोंमें प्रसिद्ध है और अत्यन्त पवित्र है । जगत्में [अण्डज, स्वेदज, उद्भिज और जरायुज] चार खानि (प्रकार) के अनन्त जीव हैं, इनमेंसे जो कोई भी अयोध्याजीमें शरीर छोड़ते हैं वे फिर संसारमें नहीं आते (जन्म-मृत्युके चक्रसे छूटकर भगवान्‌के परमधाममें निवास करते हैं) ॥ २ ॥

सब बिधि पुरी मनोहर जानी । सकल सिद्धिप्रद मंगलखानी ॥

बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा । सुनत नसाहिं काम मद दंभा ॥ ३ ॥

इस अयोध्यापुरीको सब प्रकारसे मनोहर, सब सिद्धियोंकी देनेवाली और कल्याणकी खान समझकर मैंने इस निर्मल कथाका आरम्भ किया, जिसके सुननेसे काम, मद और दम्भ नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

रामचरितमानस एहि नामा । सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा ॥

मन करि बिषय अनल बन जरई । होइ सुखी जाँ एहिं सर परई ॥ ४ ॥

इसका नाम रामचरितमानस है, जिसके कानोंसे सुनते ही शान्ति मिलती है । मनरूपी हाथी विषयरूपी दावानलमें जल रहा है, वह यदि इस रामचरितमानसरूपी सरोवरमें आ पड़े तो सुखी हो जाय ॥ ४ ॥

रामचरितमानस मुनिभावन । बिरचेउ संभु सुहावन पावन ॥

त्रिविध दोष दुख दारिद दावन । कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन ॥ ५ ॥

यह रामचरितमानस मुनियोंका प्रिय है, इस सुहावने और पवित्र मानसकी शिवजीने रचना की । यह तीनों प्रकारके दोषों, दुःखों और दरिद्रताको तथा कलियुगकी कुचालों और सब पापोंको नाश करनेवाला है ॥ ५ ॥

रचि महेस निज मानस राखा । पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा ॥

तातें रामचरितमानस बर । धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर ॥ ६ ॥

श्रीमहादेवजीने इसको रचकर अपने मनमें रक्खा था और सुअवसर पाकर पार्वतीजीसे कहा । इसीसे

शिवजीने इसकी अपने हृदयमें देखकर और प्रसन्न होकर इसका सुन्दर 'रामचरितमानस' नाम रक्खा ॥ ६ ॥

कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई । सादर सुनहु सुजन मन लाई ॥ ७ ॥

मैं उसी सुख देनेवाली और सुहावनी रामकथाको कहता हूँ, हे सजनो ! आदरपूर्वक मन लगाकर इसे सुनिये ॥ ७ ॥

दो०—जस मानस जेहि बिधि भयउ जग प्रचार जेहि हेतु ।

अब सोइ कहउँ प्रसंग सब सुमिरि उमा वृषकेतु ॥ ३५ ॥

यह रामचरितमानस जैसा है, जिस प्रकार बना और जिस हेतुसे जगत्में इसका प्रचार हुआ, अब वही सब कथा मैं श्रीउमा-महेश्वरका स्मरण करके कहता हूँ ॥ ३५ ॥

चौ०—संभुप्रसाद सुमति हियँ हुलसी । रामचरितमानस कवि तुलसी ॥

करइ मनोहर मति अनुहारी । सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी ॥ १ ॥

श्रीशिवजीकी कृपासे मेरे हृदयमें सुन्दर बुद्धिका विकास हुआ, जिससे मैं तुलसीदास रामचरितमानसका कवि हुआ । अपनी बुद्धिके अनुसार तो वह इसे मनोहर ही बनाता है । किन्तु फिर भी हे सजनो ! सुन्दर चित्तसे इसे सुनकर आप सुधार लीजिये ॥ १ ॥

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू । वेद पुरान उदधि घन साधू ॥

बरषहिं राम सुजस बर बारी । मधुर मनोहर मंगलकारी ॥ २ ॥

सुन्दर (सात्त्विकी) बुद्धि भूमि है, हृदय ही उसमें गहरा स्थान है, वेद-पुराण समुद्र हैं और साधु-संत मेघ हैं । वे (साधुरूपी मेघ) श्रीरामजीके सुयशरूपी सुन्दर, मधुर, मनोहर और मंगलकारी जलकी वर्षा करते हैं ॥ २ ॥

लीला सगुन जो कहहिं बखानी । सोइ स्वच्छता करइ मलहानी ॥

प्रेम भगति जो बरनि न जाई । सोइ मधुरता सुसीतलताई ॥ ३ ॥

सगुण लीलाका जो विस्तारसे वर्णन करते हैं, वही [राम-सुयशरूपी] जलकी निर्मलता है, जो मलका नाश करती है; और जिस प्रेमाभक्तिका वर्णन नहीं किया जा सकता, वही इस जलकी मधुरता और सुन्दर शीतलता है ॥ ३ ॥

सो जल सुकृत सालि हित होई । रामभगत जन जीवन सोई ॥

मेधा महि गत सो जल पावन । सकलि श्रवन मग चलेउ सुहावन ॥ ४ ॥

भरेउ सुमानस सुथल थिराना । सुखद सीत रुचि चारु चिराना ॥ ५ ॥

वह (राम-सुयशरूपी) जल सत्कर्मरूपी धानके लिये हितकर है, और श्रीरामजीके भक्तोंका तो जीवन ही है । वह पवित्र जल बुद्धिरूपी पृथ्वीपर गिरा और तिमटकर सुहावने कानरूपी मार्गसे चला और मानस (हृदय) रूपी श्रेष्ठ स्थानमें भरकर वहीं स्थिर हो गया । वही पुराना होकर सुन्दर रुचिकर, शीतल और सुखदायी हो गया ॥ ४-५ ॥

दो०—सुठि सुंदर संवाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि ।

तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि ॥ ३६ ॥

इस कथामें बुद्धिसे विचारकर जो चार अत्यन्त सुन्दर और उत्तम संवाद (भुशुण्डि-गरुड, शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज और तुलसीदास और संत) रचे हैं, वही इस पवित्र और सुन्दर सरोवरके चार मनोहर घाट हैं ॥ ३६ ॥

चौ०—सप्त प्रबंध सुभग सोपाना । ग्यान नयन निरखत मन माना ॥

रघुपतिमहिमा अगुन अबाधा । बरनब सोई बर बारि अगाधा ॥ १ ॥

सात काण्ड ही इस मानस-सरोवरकी सुन्दर सात सीढ़ियाँ हैं, जिनको शानरूपी नेत्रोंसे देखते ही मन प्रसन्न हो जाता है । श्रीरघुनाथजीकी निर्गुण (प्राकृतिक गुणोंसे अतीत) और निर्बाध (एकरस) महिमाका जो वर्णन किया जायगा, वही इस सुन्दर जलकी अथाह गहराई है ॥ १ ॥

राम सीय जस सलिल सुधा सम । उपमा बीच बिलास मनोरम ॥

पुरइनि सघन चारु चौपाई । जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई ॥ २ ॥

भीरामचन्द्रजी और सीताजीका यश अमृतके समान जल है । इसमें जो उपमाएँ दी गयी हैं वही मनको प्रसन्न करनेवाली तरंगोंका विलास है । सुन्दर चौपाइयाँ ही इसमें घनी फैली हुई पुरइनि (कमलिनी) हैं और कविताकी युक्तियाँ सुन्दर मणि (मोती) उत्पन्न करनेवाली सुहावनी सीपियाँ हैं ॥ २ ॥

छंद सोरठा सुंदर दोहा । सोइ बहुरंग कमलकुल सोहा ॥

अरथ अनूप सुभाव सुभासा । सोइ पराग मकरंद सुभासा ॥ ३ ॥

जो सुन्दर छन्द, सोरठे और दोहे हैं, वही इसमें बहुरंगे कमलोंके समूह सुशोभित हैं । अनुपम अर्थ, ऊँचे भाव और सुन्दर भाषा ही पराग (पुष्परज), मकरन्द (पुष्परस) और सुगन्ध है ॥ ३ ॥

सुकृतपुंज मंजुल अलि माला । ग्यान बिराग बिचार मराला ॥

धुनि अवरेब कबित गुन जाती । मीन मनोहर ते बहुभाँती ॥ ४ ॥

सत्कर्मों (पुण्यों) के पुञ्ज भौरोंकी सुन्दर पंक्तियाँ हैं; ज्ञान, वैराग्य और विचार हंस हैं । कविताकी ध्वनि, वक्रोक्ति, गुण और जाति ही अनेकों प्रकारकी मनोहर मछलियाँ हैं ॥ ४ ॥

अरथ धरम कामादिक चारी । कहब ग्यान बिग्यान बिचारी ॥

नव रस जप तप जोग बिरागा । ते सब जलचर चारु तड़ागा ॥ ५ ॥

अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चारों, ज्ञान-विज्ञानका विचारके कहना, काव्यके नवरस, जप, तप, योग और वैराग्यके प्रसंग, ये सब इस सरोवरके सुन्दर जलचर जीव हैं ॥ ५ ॥

सुकृती साधु नाम गुन गाना । ते बिचित्र जलबिहग समाना ॥

संतसभा चहुँ दिसि अवँराई । भ्रद्धा रितु बसंत सम गाई ॥ ६ ॥

सुकृती (पुण्यात्मा) जनोँके, साधुओंके और श्रीरामनामके गुणोंका गान ही विचित्र जल-पक्षियोंके समान हैं । संतोंकी सभा ही इस सरोवरके चारों ओरकी अमराई (आमकी बगीचियाँ) हैं और भ्रद्धा वसन्त-ऋतुके समान कही गयी है ॥ ६ ॥

भगतिनिरूपन बिबिध बिधाना । छमा दया दम लता बिताना ॥

सम जम नियम फूल फल ग्याना । हरिपद रति रस बेद बखाना ॥ ७ ॥

नाना प्रकारसे भक्तिका निरूपण और क्षमा, दया तथा दम (इन्द्रियनिग्रह) लताओंके मण्डप हैं । मनका निग्रह, यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह), नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-

प्रणिधान) ही उनके फूल हैं, ज्ञान फल है और श्रीहरिके चरणोंमें प्रेम ही [इस ज्ञानरूपी फलका] रस है ।
ऐसा वेदोंने कहा है ॥ ७ ॥

औरउ कथा अनेक प्रसंगा । तेइ सुक पिक बहुबरन बिहंगा ॥ ८ ॥

इस (रामचरितमानस) में और भी जो अनेक प्रसंगोंकी कथाएँ हैं, वे ही इसमें तोते, कोयल आदि रंग-विरंगे पक्षी हैं ॥ ८ ॥

दो०—पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग बिहार ।

माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु ॥ ३७ ॥

कथामें जो रोमाञ्च होता है वही बाटिका, बाग और बन है; और जो सुख होता है, वही सुन्दर पक्षियोंका बिहार है । निर्मल मन ही माली है, जो प्रेमरूपी जलसे सुन्दर नेत्रोंद्वारा उनको सींचता है ॥ ३७ ॥

चौ०—जे गावहिं यह चरित सँभारे । तेइ एहि ताल चतुर रखवारे ॥

सदा सुनहिं सादर नर नारी । तेइ सुरबर मानस अधिकारी ॥ १ ॥

जो लोग इस चरित्रको सावधानीसे गाते हैं, वे ही इस तालबके चतुर रखवाले हैं; और जो स्त्री-पुरुष सदा आदरपूर्वक इसे सुनते हैं, वे ही इस सुन्दर मानसके अधिकारी उत्तम देवता हैं ॥ १ ॥

अति खल जे बिषई बग कागा । एहि सर निकट न जाहिं अभागा ॥

संबुक भेक सेवार समाना । इहाँ न बिषय कथा रस नाना ॥ २ ॥

जो अति दुष्ट और विषयी हैं वे अभागे बगुले और कौए हैं, जो इस सरोवरके समीप नहीं जाते । क्योंकि यहाँ (इस मानस-सरोवरमें) घोंघे, मेढक और सेवारके समान विषय-रसकी नाना कथाएँ नहीं हैं ॥ २ ॥

तेहि कारन आवत हियँ हारे । कामी काक बलाक बिचारे ॥

आवत एहिं सर अति कठिनार्ह । रामरूपा बिनु आइ न जाई ॥ ३ ॥

इसी कारण बेचारे कौए और बगुलेरूपी विषयी लोग यहाँ आते हुए हृदयमें हार मान जाते हैं । क्योंकि इस सरोवरतक आनेमें कठिनाइयाँ बहुत हैं । श्रीरामजीकी कृपा बिना यहाँ नहीं आया जाता ॥ ३ ॥

कठिन कुसंग कुपंथ कराला । तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला ॥

गृहकारज नाना जंजाला । ते अति दुर्गम सैल बिसाला ॥ ४ ॥

घोर कुसंग ही भयानक बुरा रास्ता है; उन कुसंगियोंके वचन ही बाघ, सिंह और साँप हैं । घरके काम-काज और [गृहस्थीके] भाँति-भाँतिके जंजाल ही अत्यन्त दुर्गम बड़े-बड़े पहाड़ हैं ॥ ४ ॥

बन बहु बिषम मोह मद माना । नदीं कुतर्क भयंकर नाना ॥ ५ ॥

मोह, मद और मान ही बहुत-से बीहड़ वन हैं और नाना प्रकारके कुतर्क ही भयानक नदियाँ हैं ॥ ५ ॥

दो०—जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ ।

तिन्ह कहूँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ ॥ ३८ ॥

जिनके पास श्रद्धारूपी राह-खर्च नहीं है और संतोंका साथ नहीं है और जिनको श्रीरघुनाथजी प्रिय नहीं हैं, उनके लिये यह मानस अत्यन्त ही अगम है । (अर्थात् श्रद्धा, सत्संग और भगवत्प्रेमके बिना कोई इसको नहीं पा सकता) ॥ ३८ ॥

चौ०—जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई । जातहिं नीद जुझाई होई ॥

जड़ता जाइ बिषम उर लागा । गपहुँ न मज्जन पाव अभागा ॥ १ ॥

यदि कोई मनुष्य कष्ट उठाकर वहाँ तक पहुँच भी जाय, तो वहाँ जाते ही उसे नींदरूपी जूड़ी आ जाती है । हृदयमें मूर्खतारूपी बड़ा कड़ा जाड़ा लगाने लगता है, जिससे वहाँ जाकर भी वह अभागा स्नान नहीं कर पाता ॥ १ ॥

करि न जाइ सर मज्जन पाना । फिरि आवइ समेत अभिमाना ॥

जौं बहोरि कोउ पूछन आवा । सरनिंदा करि ताहि बुझावा ॥ २ ॥

उससे उस सरोवरमें स्नान और उसका जलपान तो किया नहीं जाता, वह अभिमानसहित लौट आता है । फिर यदि कोई उससे [वहाँका हाल] पूछने आता है, तो वह [अपने अभाग्यकी बात न कहकर] सरोवरकी निन्दा करके उसे समझाता है ॥ २ ॥

सकल बिघ्न व्यापहिं नहिं तेही । राम सुरूपौ बिलोकहिं जेही ॥

सोइ सावर सर मज्जनु करई । महा घोर त्रयताप न जरई ॥ ३ ॥

ये सारे विघ्न उसको नहीं व्यापते (बाधा नहीं देते) जिसे श्रीरामचन्द्रजी सुन्दर कृपाकी दृष्टिसे देखते हैं । वही आदरपूर्वक इस सरोवरमें स्नान करता है और महान् भयानक त्रितापसे (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तापोंसे) नहीं जलता ॥ ३ ॥

ते नर यह सर तजहिं न काऊ । जिन्ह केँ रामचरन भल भाऊ ॥

जो नहाइ चह एहिं सर भाई । सो सतसंग करउ मन लाई ॥ ४ ॥

जिनके मनमें श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें सुन्दर प्रेम है, वे इस सरोवरको कभी नहीं छोड़ते । हे भाई ! जो इस सरोवरमें स्नान करना चाहे वह मन लगाकर सत्संग करे ॥ ४ ॥

अस मानस मानस चख चाही । भइ कबिबुद्धि बिमल अवगाही ॥

भयउ हृदयँ आनंद उछाह । उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाह ॥ ५ ॥

ऐसे मानस-सरोवरको हृदयके नेत्रोंसे देखकर और उसमें गोता लगाकर कविकी बुद्धि निर्मल हो गयी, हृदयमें आनन्द और उत्साह भर गया और प्रेम तथा आनन्दका प्रवाह उमड़ आया ॥ ५ ॥

चली सुभग कबिता सरिता सो । राम बिमल जस जल भरिता सो ॥

सरजू नाम सुमंगलमूला । लोक बेद मत मंजुल कूला ॥ ६ ॥

उससे वह सुन्दर कवितारूपी नदी बह निकली जिसमें श्रीरामजीका निर्मल यशरूपी जल भरा है । इस (कवितारूपिणी नदी) का नाम सरजू है, जो सम्पूर्ण सुन्दर मंगलोंकी जड़ है । लोकमत और वेदमत इसके दो सुन्दर किनारे हैं ॥ ६ ॥

नदी पुनीत सुमानसनंदिनि । कलिमल दन तरुमूल निकंदिनि ॥ ७ ॥

यह सुन्दर मानस-सरोवरकी कन्या सरजू नदी बड़ी पवित्र है और कलियुगके पापरूपी तिनकों और वृक्षोंको जड़से उखाड़ फेंकनेवाली है ॥ ७ ॥

दो०—श्रोता त्रिविध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल ।

संतसभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल ॥ ३९ ॥

तीनों प्रकारके श्रोताओंका समाज ही इस नदीके दोनों किनारोंपर बसे हुए पुरवे, गाँव और नगर हैं; और संतोंकी सभा ही सब सुन्दर मंगल्लोंकी जड़ अनुषम अयोध्याजी है ॥ ३९ ॥

चौ०—रामभगति सुरसरितहि जाई । मिली सुकीरति सरजु सुहाई ॥

सानुज राम समर जसु पावन । मिलेउ महानदु सोन सुहावन ॥ १ ॥

सुन्दर कीर्तिरूपी सुहावनी सरयूजी रामभक्तिरूपी गंगाजीमें जा मिली । छोटे भाई लक्ष्मणसहित श्रीरामजीके युद्धका पवित्र यशरूपी महानद सोन उसमें आ मिल ॥ १ ॥

जुग बिच भगति देवधुनि धारा । सोहति सहित सुबिरति बिचारा ॥

त्रिविध ताप त्रासक तिमुहानी । राम सरूप सिंधु समुहानी ॥ २ ॥

दोनोंके बीचमें भक्तिरूपी गंगाजीकी धारा ज्ञान और वैराग्यके सहित शोभित हो रही है । ऐसी तीनों तापोंको डरानेवाली यह तिमुहानी नदी रामस्वरूपरूपी समुद्रकी ओर जा रही है ॥ २ ॥

मानस मूल मिली सुरसरिही । सुनत सुजन मन पावन करिही ॥

बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा । जनु सरि तीर तीर बन बागा ॥ ३ ॥

इस (कीर्तिरूपी सरयू) का मूल मानस (श्रीरामचरित) है और यह [रामभक्तिरूपी] गंगाजीमें मिली है, इसलिये यह सुननेवाले सज्जनोंके मनको पवित्र कर देगी । इसके बीच-बीचमें जो भिन्न-भिन्न प्रकारकी विचित्र कथाएँ हैं वे ही मानो नदीतटके आस-पासके वन और बाग हैं ॥ ३ ॥

उमा महेस बिवाह बराती । ते जलचर अगनित बहु भाँती ॥

रघुबर जनम अनंद बधाई । भँवर तरंग मनोहरताई ॥ ४ ॥

श्रीपार्वतीजी और शिवजीके विवाहके बराती इस नदीमें बहुत प्रकारके असंख्य जलचर जीव हैं । श्रीरघुनाथजीके जन्मकी आनन्द-बधाइयाँ ही इस नदीके भँवर और तरंगोंकी मनोहरता हैं ॥ ४ ॥

दो०—बालचरित चहु बंधु के बनज विपुल बहु रंग ।

नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारि बिहंग ॥ ४० ॥

चारों भाइयोंके जो बालचरित्र हैं, वे ही इसमें [खिले हुए] रंग-बिरंगे बहुत-से कमल हैं । महाराज श्रीदशरथजी तथा उनकी रानियों और कुटुम्बियोंके सत्कर्म (पुण्य) ही भ्रमर और जल-पक्षी हैं ॥ ४० ॥

चौ०—सीय स्वयंबर कथा सुहाई । सरित सुहावनि सो छवि छाई ॥

नदी नाव पट्ट प्रसन्न अनेका । केवट कुसल उतर सबिबेका ॥ १ ॥

श्रीसीताजीके स्वयंवरकी जो सुन्दर कथा है, वही इस नदीमें सुहावनी छवि छा रही है । अनेकों सुन्दर विचारपूर्ण प्रश्न ही इस नदीकी नावें हैं और उनके विवेकयुक्त उत्तर ही चतुर केवट हैं ॥ १ ॥

सुनि अनुकथन परस्पर होई । पथिक समाज सोह सरि सोई ॥

घोर धार शृगुनाथ रिसानी । घाट सुबद्ध राम बर बानी ॥ २ ॥

इस कथाको सुनकर पीछे जो आपसमें चर्चा होती है, वही इसके तीरपर चलनेवाले यात्रियोंका समाज शोभा पा रहा है । परशुरामजीका क्रोध इस नदीकी भयानक धारा है और श्रीरामचन्द्रजीके श्रेष्ठ वचन ही सुन्दर बंधे हुए घाट हैं ॥ २ ॥

सानुज राम विवाह उछाह । सो सुभ उमग सुखद सब काह ॥

कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं । ते सुकृती मन मुदित नहाहीं ॥ ३ ॥

भाइयोंसहित श्रीरामचन्द्रजीके विवाहका उत्साह ही इस कथा-नदीकी कल्याणकारिणी बाद है, जो सभी-को सुख देनेवाली है । इसके कहने-सुननेमें जो हर्षित और पुलकित होते हैं वे ही पुण्यात्मा पुरुष हैं जो प्रसन्न मनसे इस नदीमें नहाते हैं ॥ ३ ॥

राम तिलक हित मंगलसाजा । परब जोग जनु जुरे समाजा ॥

काई कुमति केकाई केरी । परी जासु फल बिपति घनेरी ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके राजतिलकके लिये जो मंगल-साज सजाया गया वही मानो पर्वके समय इस नदीपर यात्रियोंके समूह इकट्ठे हुए हैं । कैकेयीकी कुबुद्धि ही इस नदीमें काई है, जिसके फलस्वरूप बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ी ॥ ४ ॥

दो०—समन अमित उतपात सब भरतचरित जपजाग ।

कलि अघ खल अवगुन कथन ते जलमल बग काग ॥ ४१ ॥

सम्पूर्ण अनगिनत उत्पातोंको शान्त करनेवाला भरतजीका चरित्र [नदीतटपर किया जानेवाला] जप-यश है । कलियुगके पापों और दुष्टोंके अवगुणोंके जो वर्णन हैं वे ही इस नदीके जलका कीचड़ और बगुले-कौए हैं ॥ ४१ ॥

चौ०—कीरति सरित छहँ रितु रूरी । समय सुहाबनि पावनि भूरी ॥

हिम हिमसैलसुता सिव व्याह । सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाह ॥ १ ॥

यह कीर्तिरूपिणी नदी छहों ऋतुओंमें सुन्दर है । सभी समय यह परम सुहावनी और अत्यन्त पवित्र है । इसमें शिव-पार्वतीका विवाह हेमन्त ऋतु है । श्रीरामचन्द्रजीके जन्मका उत्सव सुखदायी शिशिर ऋतु है । १ ॥

बरनब राम विवाह समाजू । सो मुद मंगलमय रितुराजू ॥

ग्रीष्म दुसह राम बन गवन । पंथकथा बर आतप पवन ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके विवाह-समाजका वर्णन ही आनन्द-मङ्गलमय ऋतुराज वसंत है । श्रीरामजीका वन-गमन दुःसह ग्रीष्म ऋतु है और मार्गकी कथा ही कड़ी धूप और लू है ॥ २ ॥

बरषा घोर निसाचर रारी । सुरकुल सालि सुमंगलकारी ॥

राम राज सुख बिनय बड़ाई । बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई ॥ ३ ॥

राक्षसोंके साथ घोर युद्ध ही वर्षा ऋतु है, जो देवकुलरूपी धानके लिये सुन्दर कल्याण करनेवाली है । रामचन्द्रजीके राज्यकालका जो सुख, विनम्रता और बड़ाई है वही निर्मल सुख देनेवाली सुहावनी शरद् ऋतु है ॥ ३ ॥

सती सिरामनि सिय गुनगाथा । सोइ गुन अमल अनुपम पाथा ॥

भरत सुभाउ सुसीतलताई । सदा एकरस बरनि न जाई ॥ ४ ॥

सती-शिरामणि श्रीसीताजीके गुणोंकी जो कथा है, वही इस जलका निर्मल और अनुपम गुण है । श्रीभरतजीका स्वभाव इस नदीकी सुन्दर शीतलता है, जो सदा एक-सी रहती है और जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ४ ॥

दो०—अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास ।

भायप मलि चहु बंधु की जल माधुरी सुबास ॥ ४२ ॥

चारों भाइयोंका परस्पर देखना, बोलना, मिलना, एक-दूसरेसे प्रेम करना, हँसना और सुन्दर भाईपना इस जलको मधुरता और सुगन्ध हैं ॥४२॥

चौ०—आरति विनय दीनता मोरी । लघुता ललित सुबारि न थोरी ॥

अदभुत सलिल सुनत गुनकारी । आस पिआस मनोमलहारी ॥ १ ॥

मेरा आर्तभाव, विनय और दीनता इस सुन्दर और निर्मल जलका कम हल्कापन नहीं है (अर्थात् अत्यन्त हल्कापन है) । यह जल बड़ा ही अनोखा है जो सुननेसे ही गुण करता है और आशारूपी प्यासको और मनके मेलको दूर कर देता है ॥ १ ॥

राम सुप्रेमहि पोषत पानी । हरत सकल कलि कलुष गलानी ॥

भव भ्रम सोषक तोषक तोषा । समन दुरित दुख दारिद दोषा ॥ २ ॥

यह जल श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर प्रेमको पुष्ट करता है, कलियुगके समस्त पापों और उनसे होनेवाली ग्लानिको हर लेता है । संसारके (जन्म-मृत्युरूप) भ्रमको सोख लेता है, सन्तोषको भी सन्तुष्ट करता है और पाप, ताप, दरिद्रता और दोषोंको नष्ट कर देता है ॥ २ ॥

काम कोह मद मोह नसावन । बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन ॥

सादर मज्जन पान किए तैं । मिटहिं पाप परिताप हिए तैं ॥ ३ ॥

यह जल काम, क्रोध, मद और मोहका नाश करनेवाला और निर्मल ज्ञान और वैराग्यका बढ़ानेवाला है । इसमें आदरपूर्वक स्नान करनेसे और इसे पीनेसे हृदयमें रहनेवाले सब पाप-ताप मिट जाते हैं ॥ ३ ॥

जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए । ते कायर कलिकाल बिगोए ॥

तृषित निरखि रबिकर भव बारी । फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी ॥ ४ ॥

जिन्होंने इस (राम-सुयशरूपी) जलसे अपने हृदयको नहीं धोया, वे कायर कलिकालके द्वारा ठगे गये । जैसे प्यासा हिरन सूर्यकी किरणों [के रेतपर पड़ने] से उत्पन्न हुए जलके भ्रमको [वास्तविक] जल समझकर पीनेको दौड़ता है और जल न पाकर दुखी होता है, वैसे ही वे (कलियुगसे ठगे हुए) जीव भी [विषयोंके पीछे भटककर] दुखी होंगे ॥ ४ ॥

दो०—मति अनुहारि सुबारि गुन गम गनि मन अन्हवाइ ।

सुमिरि भवानी संकरहि कह कवि कथा सुहाइ ॥ ४३ (क) ॥

अपनी बुद्धिके अनुसार इस सुन्दर जलके गुणोंको विचारकर, उसमें अपने मनको स्नान कराकर और श्रीभवानी-शङ्करको स्मरण करके कवि (तुलसीदास) सुन्दर कथा कहता है ॥ ४३ (क) ॥

अब रघुपति पद पंकरुह हियँ धरि पाइ प्रसाद ।

कहउँ जुगल मुनिवर्य कर मिलन सुभग संवाद ॥ ४३ (ख) ॥

मैं अब श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंको हृदयमें धारणकर और उनका प्रसाद पाकर दोनों श्रेष्ठ मुनियोंने मिलनका सुन्दर संवाद वर्णन करता हूँ ॥ ४३ (ख) ॥

चौ०—भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा । तिन्हहि रामपद अति अनुरागा ॥

तापस सम दम दया निधाना । परमार्थपथ परम सुजाना ॥ १ ॥

भरद्वाजमुनि प्रयागमें बसते हैं, उनका श्रीरामजीके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम है । वे तपस्वी, निग्रहीतचित्त, जितेन्द्रिय, दयाके निधान और परमार्थके मार्गमें बड़े ही चतुर हैं ॥ १ ॥

माघ मकरगत रवि जब होई । तीरथपतिहिं आव सब कोई ॥

देव दनुज [किंनर नर श्रेणी । सादर मज्जहिं सकल त्रिवेनी ॥ २ ॥

माघमें जब सूर्य मकर राशिपर जाते हैं, तब सब लोग तीर्थराज प्रयागको आते हैं । देवता, दैत्य, किन्नर और मनुष्योंके समूह सब आदरपूर्वक त्रिवेणीजीमें स्नान करते हैं ॥ २ ॥

पूजहिं माघव पद जलजाता । परसि अखय बटु हरषहिं गाता ॥

भरद्वाज आश्रम अति पावन । परम रम्य मुनिवर मन भावन ॥ ३ ॥

श्रीवेणीमाघवजीके चरणकमलोंको पूजते हैं और अक्षयवटका स्पर्श कर उनके शरीर पुलकित होते हैं । भरद्वाजजीका आश्रम बहुत ही पवित्र, परम रमणीय और श्रेष्ठ मुनियोंके मनको भानेवाला है ॥ ३ ॥

तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा । जाहिं जे मज्जन तीरथराजा ॥

मज्जहिं प्रात समेत उछाहा । कहहिं परसपर हरिगुनगाहा ॥ ४ ॥

तीर्थराज प्रयागमें जो स्नान करने जाते हैं उन ऋषि-मुनियोंका समाज वहाँ (भरद्वाजके आश्रममें) जुटता है । प्रातःकाल सब उत्साहपूर्वक स्नान करते हैं और फिर परस्पर भगवान्‌के गुणोंकी कथाएँ कहते हैं ॥ ४ ॥

।दो०—ब्रह्म निरूपन धरम विधि बरनहिं तत्त्व विभाग ।

कहहिं भगति भगवंत के संजुत ग्यान बिराग ॥ ४४ ॥

ब्रह्मका निरूपण, धर्मका विधान और तत्त्वोंके विभागका वर्णन करते हैं तथा ज्ञान-वैराग्यसे युक्त भगवान्‌की भक्तिका कथन करते हैं ॥ ४४ ॥

चौ०—एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं । पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं ॥

प्रति संबत अति होइ अनंदा । मकर मज्जि गवनहिं मुनिबुंदा ॥ १ ॥

इस प्रकार माघके महीनेभर स्नान करते हैं और फिर सब अपने-अपने आश्रमोंको चले जाते हैं । हर साल वहाँ इसी तरह बड़ा आनन्द होता है । मकरमें स्नान करके मुनिगण चले जाते हैं ॥ १ ॥

एक बार भरि मकर नहाए । सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए ॥

जागबलिक मुनि परम बिबेकी । भरद्वाज राखे पद टेकी ॥ २ ॥

एक बार पूरे मकरभर स्नान करके सब मुनीश्वर अपने-अपने आश्रमोंको लौट गये । परम ज्ञानी ऋषिबलिकमुनिको चरण, पकड़कर भरद्वाजजीने रख लिया ॥ २ ॥

सादर चरनसरोज ! पखारे । अति पुनीत आसन बैठारे ॥

करि पूजा मुनि सुजसु बखानी । बोले अति पुनीत मृदु बानी ॥ ३ ॥

आदरपूर्वक उनके चरणकमल धोये और बड़े ही पवित्र आसनपर उन्हें बैठाया । पूजा करके मुनि ऋषिवलिकजीके सुयशका वर्णन किया और फिर अत्यन्त पवित्र और कोमल वाणीसे बोले— ॥ ३ ॥

नाथ ! एक संसउ बड़ मोरें । करगत बेदतत्त्व सबु तोरें ॥

कहत सो मोहि लागत भय लाजा । जौ न कहउँ बड़ होइ अकाजा ॥ ४ ॥

हे नाथ ! मेरे मनमें एक बड़ा सन्देह है; वेदोंका तत्त्व सब आपकी मुट्ठीमें है (अर्थात् आप ही वेदका तत्त्व जाननेवाले होनेके कारण मेरा सन्देह निवारण कर सकते हैं) । पर उस सन्देहको कहते मुझे भय और लाज आती है [भय इसलिये कि कहीं आप यह न समझें कि मेरी परीक्षा ले रहा है; लाज इसलिये कि इतनी आयु बीत

गयी अबतक ज्ञान न हुआ] और यदि नहीं कहता तो बड़ी हानि होती है [क्योंकि अज्ञानी बना रहता हूँ] ॥ ४ ॥

दो०—संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव ।

होइ न बिमल बिबेक उर गुर सन किएँ दुराव ॥ ४५ ॥

हे प्रभो ! संतलोग ऐसी नीति कहते हैं और वेद, पुराण तथा मुनिजन भी यही बतलाते हैं कि गुरुके साथ छिपाव करनेसे हृदयमें निर्मल ज्ञान नहीं होता ॥ ४५ ॥

चौ०—अस बिचारि प्रगटँ निज मोह । हरहु नाथ करि जन पर छोह ॥

राम नाम कर अमित प्रभावा । संत पुरान उपनिषद् गावा ॥ १ ॥

यही सोचकर मैं अपना अज्ञान प्रकट करता हूँ । हे नाथ ! सेवकपर कृपा करके इस अज्ञानका नाश कीजिये । संतों, पुराणों और उपनिषदोंने रामनामके असीम प्रभावका गान किया है ॥ १ ॥

संतत जपत संभु अबिनासी । सिव भगवान ग्यान गुन रासी ॥

आकर चारि जीव जग अहहीं । कासीं मरत परमपद लहहीं ॥ २ ॥

कल्याणस्वरूप, ज्ञान और गुणोंकी राशि, अविनाशी भगवान् शम्भु निरन्तर रामनामका जप करते हैं । संसारमें चार जातिके जीव हैं, काशीमें मरनेसे सभी परमपदको प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

सोपि राम महिमा मुनिराया । सिव उपदेसु करत करि दाया ॥

रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही । कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही ॥ ३ ॥

हे मुनिराज ! वह भी राम [नाम] की ही महिमा है, क्योंकि शिवजी महाराज दया करके [काशीमें मरनेवाले जीवको] रामनामका ही उपदेश करते हैं [इसीसे उसको परमपद मिलता है] । हे प्रभो ! मैं आपसे पूछता हूँ कि वे राम कौन हैं । हे कृपानिधान ! मुझे समझाकर कहिये ॥ ३ ॥

एक राम अवधेसकुमारा । तिन्ह कर चरित बिदित संसारा ॥

नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा । भयउ रोषु रन रावनु मारा ॥ ४ ॥

एक राम तो अवधनेश दशरथजीके कुमार हैं, उनका चरित्र सारा संसार जानता है । उन्होंने स्त्रीके विरहमें अपार दुःख उठाया और क्रोध आनेपर युद्धमें रावणको मार डाला ॥ ४ ॥

दो०—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि ।

सत्यधाम सर्वग्य तुम्ह कहहु बिबेक बिचारि ॥ ४६ ॥

हे प्रभो ! वही राम हैं या और कोई दूसरे हैं, जिनको शिवजी जपते हैं ! आप सत्यके धाम हैं और सब कुछ जानते हैं, ज्ञानसे विचारकर कहिये ॥ ४६ ॥

चौ०—जैसेँ मिटै मोर भ्रम भारी । कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी ॥

जागबलिक बोले मुसुकाई । तुम्हहि बिदित रघुपतिप्रभुताई ॥ १ ॥

हे नाथ ! जिस प्रकारसे मेरा यह भारी भ्रम मिट जाय, आप वही कथा विस्तारपूर्वक कहिये । इसपर याज्ञवल्क्यजी मुस्कराकर बोले, श्रीरघुनाथजीकी प्रभुताको तुम जानते हो ॥ १ ॥

रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी । चतुराई तुम्हारि मैं जानी ॥

चाहहु सुनै रामगुन गूढ़ा । कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा ॥ २ ॥

तुम मन, वचन और कर्मसे श्रीरामजीके भक्त हो । तुम्हारी चतुराईको मैं जान गया । तुम श्रीरामजीके रहस्यमय गुणोंको सुनना चाहते हो, इसीसे तुमने ऐसा प्रश्न किया है मानो बड़े ही मूढ़ हो ॥ २ ॥

तात सुनहु सादर मनु लाई । कहउँ राम कै कथा सुहाई ॥

महामोहु महिषेसु बिसाला । रामकथा कालिका कराला ॥ ३ ॥

हे तात ! तुम आदरपूर्वक मन लगाकर सुनो, मैं श्रीरामजीकी सुन्दर कथा कहता हूँ । बड़ा भारी अज्ञान विशाल महिषासुर है और श्रीरामजीकी कथा [उसे नष्ट कर देनेवाली] भयंकर कालीजी हैं ॥ ३ ॥

रामकथा ससिकिरन समाना । संत चकोर करहिं जेहि पाना ॥

ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी । महादेव तब कहा बखानी ॥ ४ ॥

श्रीरामजीकी कथा चन्द्रमाकी किरणोंके समान है जिसे संतरूपी चकोर सदा पान करते हैं । ऐसा ही सन्देह पार्वतीजीने किया था, तब महादेवजीने विस्तारसे उसका उत्तर दिया था ॥ ४ ॥

दो०—कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संवाद ।

भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद ॥ ४७ ॥

अब मैं अपनी बुद्धिके अनुसार वही उमा और शिवजीका संवाद कहता हूँ । वह जिस समय और जिस हेतुसे हुआ उसे हे मुनि ! तुम सुनो, तुम्हारा विषाद मिट जायगा ॥ ४७ ॥

चौ०—एक बार त्रेता जुग माहीं । संभु गए कुंभज रिषि पाहीं ॥

संग सती जगजननि भवानी । पूजे रिषि अखिलेश्वर जानी ॥ १ ॥

एक बार त्रेतायुगमें शिवजी अगस्त्य ऋषिके पास गये । उनके साथ जगजननी भवानी सतीजी भी थीं । ऋषिने सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर जानकर उनका पूजन किया ॥ १ ॥

रामकथा मुनिबर्ज बखानी । सुनी महेस परम सुखु मानी ॥

रिषि पूछी हरिभगति सुहाई । कही संभु अधिकारी पाई ॥ २ ॥

मुनिवर अगस्त्यजीने रामकथा विस्तारसे कही, जिसको महेश्वरने परम सुख मानकर सुना । फिर ऋषिने शिवजीसे सुन्दर हरिभक्ति पूछी और शिवजीने उनको अधिकारी पाकर [रहस्यसहित] भक्तिका निरूपण किया ॥ २ ॥

कहत सुनत रघुपति गुन गाथा । कुछ दिन तहाँ रहे गिरिनाथा ॥

मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी । चले भवन सँग दच्छकुमारी ॥ ३ ॥

श्रीरघुनाथजीके गुणोंकी कथाएँ कहते-सुनते कुछ दिनोंतक शिवजी वहाँ रहे । फिर मुनिसे विदा माँगकर शिवजी दक्षकुमारी सतीजीके साथ घरको चले ॥ ३ ॥

तेहि अवसर भंजन महिभारा । हरि रघुवंस लीन्ह अवतारा ॥

पितावचन तजि राजु उदासी । दंडक बन बिचरत अबिनासी ॥ ४ ॥

उन्हीं दिनों पृथ्वीका भार उतारनेके लिये श्रीहरिने रघुवंशमें अवतार लिया था । वे अविनाशी भगवान् उस समय पिताके वचनसे राज्यका त्याग करके तपस्वी या साधुवेषमें दण्डक वनमें विचर रहे थे ॥ ४ ॥

दो०—हृदयँ बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होइ ।

गुप्तरूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ ॥ ४८ (क) ॥

श्रीशिवजी हृदयमें विचारते जा रहे थे कि भगवान्के दर्शन मुझे किस प्रकार हों । प्रभुने गुप्तरूपसे अवतार लिया है, मेरे जानेसे सब लोग जान जायँगे ॥ ४८ (क) ॥

सो०—संकर उर अति छोभु सती न जानहिं मरमु सोइ ।

तुलसी दरसन लोभु मन इरु लोचन लालची ॥ ४८ (ख) ॥

श्रीशंकरजीके हृदयमें [इस बातको लेकर] बड़ी खलबली उत्पन्न हो गयी, परन्तु सतीजी इस भेदको नहीं जानती थीं । तुलसीदासजी कहते हैं कि शिवजीके मनमें [भेद खुलनेका] डर था, परन्तु दर्शनके लोभसे उनके नेत्र ललचा रहे थे ॥ ४८ (ख) ॥

चौ०—रावण मरन मनुजकर जाचा । प्रभु बिधिबचनु कीन्ह चह साचा ॥

जौं नहिं जाउँ रहइ पछितावा । करत बिचार न बनत बनावा ॥ १ ॥

रावणने [ब्रह्माजीसे] अपनी मृत्यु मनुष्यके हाथसे माँगी थी । ब्रह्माजीके वचनोंको प्रभु सत्य करना चाहते हैं । मैं जो पास नहीं जाता हूँ तो बड़ा पछतावा रह जायगा । इस प्रकार शिवजी विचार करते थे, परन्तु कोई भी युक्ति ठीक नहीं बैठती थी ॥ १ ॥

एहि बिधि भए सोचबस ईसा । तेही समय जाइ दससीसा ॥

लीन्ह नीच मारीचहि संग । भयउ तुरत सोइ कपटकुरंगा ॥ २ ॥

इस प्रकार महादेवजी चिन्ताके वश हो गये । उसी समय नीच रावणने जाकर मारीचको साथ लिया और वह (मारीच) तुरन्त कपटमृग बन गया ॥ २ ॥

करि छलु मूढ़ हरी बैदेही । प्रभुप्रभाउ तस बिदित न तेही ॥

मृग बधि बंधु सहित हरि आए । आश्रमु देखि नयन जल छाए ॥ ३ ॥

मूर्ख (रावण) ने छल करके सीताजीको हर लिया । उसे श्रीरामचन्द्रजीके वास्तविक प्रभावका कुछ भी पता न था । मृगको मारकर भाई लक्ष्मणसहित रामचन्द्रजी आश्रममें आये और उसे खाली देखकर (अर्थात् वहाँ सीताजीको न पाकर) उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये ॥ ३ ॥

बिरह बिकल नर इव रघुराई । खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई ॥

कबहूँ जोग बियोग न जाकैं । देखा प्रगट विरह दुखु ताकैं ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजी मनुष्योंकी भाँति विरहसे व्याकुल हैं और दोनों भाई वनमें सीताको खोजते हुए फिर रहे हैं । जिनके कभी कोई संयोग-वियोग नहीं है, उनमें प्रत्यक्ष विरहका दुःख देखा गया ॥ ४ ॥

दो०—अति बिचित्र रघुपतिचरित जानहिं परम सुजान ।

जे मतिमंद बिमोह बस हृदयँ धरहिं कलु आन ॥ ४९ ॥

श्रीरघुनाथजीका चरित्र बड़ा ही बिचित्र है, उसको पहुँचे हुए ज्ञानीजन ही जानते हैं । जो मन्दबुद्धि हैं, वे तो विशेषरूपसे मोहके वश होकर हृदयमें कुछ दूसरी ही बात समझ बैठते हैं ॥ ४९ ॥

चौ०—संभु समय तेहि रामहि देखा । उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा ॥

भरि लोचन छबिसिंधु निहारी । कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी ॥ १ ॥

श्रीशिवजीने उसी अवसरपर श्रीरामजीको देखा और उनके हृदयमें बहुत भारी आनन्द उत्पन्न हुआ । उन शोभाके समुद्र (श्रीरामचन्द्रजी) को शिवजीने नेत्र भरकर देखा, परन्तु अवसर ठीक न जानकर परिचय नहीं किया ॥ १ ॥

जय सच्चिदानंद जगपावन । अस कहि चलेउ मनोजनसावन ॥

चले जात सिव सती समेता । पुनि पुनि पुलकत रूपानिकेता ॥ २ ॥

जगत्के पवित्र करनेवाले सच्चिदानन्दकी जय हो, इस प्रकार कहकर कामदेवका नाश करनेवाले शिवजी चल पड़े। कृपानिधान श्रीशिवजी बार-बार आनन्दसे पुलकित होते हुए सतीजीके साथ चले जा रहे थे ॥ २ ॥

सतीं सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा सन्देहु बिसेषी ॥

संकरु जगतबंध जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा ॥ ३ ॥

सतीजीने श्रीशंकरजीकी वह दशा देखी तो उनके मनमें बड़ा सन्देह उत्पन्न हो गया। [वे मन-ही-मन कहने लगी कि] शंकरजीकी सारा जगत् वन्दना करता है, वे जगत्के ईश्वर हैं; देवता, मनुष्य, मुनि सब उनके प्रति सिर नवाते हैं ॥ ३ ॥

तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा ॥

भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी ॥ ४ ॥

उन्होंने एक राजपुत्रको सच्चिदानन्द परधाम कहकर प्रणाम किया और उसकी शोभा देखकर वे इतने प्रेममग्न हो गये कि अबतक उनके हृदयमें प्रीति रोकनेसे भी नहीं रुकती ! ॥ ४ ॥

दो०—ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।

सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत वेद ॥ ५० ॥

जो ब्रह्म सर्वव्यापक, मायारहित, अजन्मा, अगोचर, इच्छारहित और भेदरहित है, और जिसे वेद भी नहीं जानते, क्या वह देह धारण करके मनुष्य हो सकता है ! ॥ ५० ॥

चौ०—विष्णु जो सुर हित नरतनुधारी। सोउ सर्वग्य जथा त्रिपुरारी ॥

खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी ॥ १ ॥

देवताओंके हितके लिये मनुष्यशरीर धारण करनेवाले जो विष्णु भगवान् हैं, वे भी शिवजीके समान सर्वश हैं। वे ज्ञानके भण्डार, लक्ष्मीपति और असुरोंके शत्रु भगवान् विष्णु क्या अशानीकी तरह स्त्रीको खोजेंगे ! ॥ १ ॥

संभुगिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्वग्य जान सबु कोई ॥

अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा ॥ २ ॥

फिर शिवजीके वचन भी झूठे नहीं हो सकते। सब कोई जानते हैं कि शिवजी सर्वश हैं। सतीके मनमें इस प्रकारका अपार सन्देह उठ खड़ा हुआ, किसी तरह भी उनके हृदयमें ज्ञानका प्रादुर्भाव नहीं होता था ॥ २ ॥

जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी ॥

सुनहि सती तब नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिअ उर काऊ ॥ ३ ॥

यद्यपि भवानीजीने प्रकट कुछ नहीं कहा, पर अन्तर्यामी शिवजी सब जान गये। वे बोले—हे सती ! सुनो, तुम्हारा स्त्रीस्वभाव है। ऐसा सन्देह मनमें कभी न रखना चाहिये ॥ ३ ॥

जासु कथा कुंभज रिषि गई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई ॥

सोइ मम इष्ट देव रघुवीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा ॥ ४ ॥

जिनकी कथाका अगस्त्य ऋषिने गान किया और जिनकी भक्ति मैंने मुनिको सुनायी, ये वही मेरे इष्टदेव श्रीरघुवीरजी हैं, जिनकी सेवा ज्ञानी मुनि सदा किया करते हैं ॥ ४ ॥

छं०—मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं ॥
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं ॥
सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवननिकायपति मायाधनी ॥
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी ॥

शानी मुनि, योगी और सिद्ध निरन्तर निर्मल चित्तसे जिनका ध्यान करते हैं, वेद, पुराण और शास्त्र 'नेति-नेति' कहकर जिनकी कीर्ति गाते हैं, उन्हीं सर्वव्यापक, समस्त ब्रह्माण्डोंके स्वामी, मायापति, नित्य परम स्वतन्त्र, ब्रह्मरूप भगवान् श्रीरामजीने अपने भक्तोंके हितके लिये [अपनी इच्छासे] रघुकुलके मणिरूपमें अवतार लिया है ॥

सो०—लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिव बार बहु ।

बोले बिहसि महेसु हरिमायाबलु जानि जियँ ॥ ५१ ॥

यद्यपि शिवजीने बहुत बार समझाया, फिर भी सतीजीके हृदयमें उनका उपदेश नहीं बैठा । तब महादेवजी मनमें भगवान् की मायाका बल जानकर मुस्कुराते हुए बोले— ॥ ५१ ॥

चो०—जौं तुम्हरे मन अति सन्देह । तौ किन जाइ परीछा लेह ॥

तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं । जब लगि तुम्ह पेहहु मोहि पाहीं ॥ १ ॥

जो तुम्हारे मनमें बहुत सन्देह है तो तुम जाकर परीक्षा क्यों नहीं लेती ? जबतक तुम मेरे पास लौट आओगी तबतक मैं इसी बड़की छाँहमें बैठा हूँ ॥ १ ॥

जैसे जाइ मोह भ्रम भारी । करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी ॥

चलीं सती सिव आयसु पाई । करहिं बिचारु करौ का भाई ॥ २ ॥

जिस प्रकार तुम्हारा यह अज्ञानजनित भारी भ्रम दूर हो, [भलीभाँति] विवेकके द्वारा सोच-समझकर तुम वही करना । शिवजीकी आज्ञा पाकर सती चलीं और मनमें सोचने लगीं कि भाई ! क्या करूँ (कैसे परीक्षा लूँ) ? ॥ २ ॥

इहाँ संभु अस मन अनुमाना । दच्छसुता कहूँ नहिं कल्याना ॥

मोरेहु कहें न संसय जाहीं । बिधि बिपरीत भलाई नाहीं ॥ ३ ॥

इधर शिवजीने मनमें ऐसा अनुमान किया कि दक्षकन्या सतीका कल्याण नहीं है । जब मेरे समझानेसे भी सन्देह दूर नहीं होता, तब [मान्य होता है] विधाता ही उलटे हैं, अब सतीका कुशल नहीं है ॥ ३ ॥

होइहि सोइ जो राम रचि राखा । को करि तर्क बढ़ावै साखा ॥

अस कहि लगे जपन हरिनामा । गई सती जहँ प्रभु सुखधामा ॥ ४ ॥

जो कुछ रामने रच रक्खा है, वही होगा । तर्क करके कौन शाखा (विस्तार) बढ़ावे । [मनमें] ऐसा कहकर शिवजी भगवान् हरिका नाम जपने लगे और सतीजी वहाँ गयीं जहाँ सुखके धाम प्रभु श्रीरामचन्द्रजी थे ॥ ४ ॥

दो०—पुनि पुनि हृदयँ बिचारु करि धरि सीता कर रूप ।

आगेँ होइ चलि पंथ तेहिं जेहिं आवत नरभूप ॥ ५२ ॥

सती बार-बार मनमें विचारकर सीताजीका रूप धारण करके उस मार्गकी ओर आगे होकर चलीं, जिससे [सतीजीके विचारानुसार] मनुष्योंके राजा रामचन्द्रजी आ रहे थे ॥ ५२ ॥

चौ०—लछिमन दीख उमाकृत बेधा । चकित भय भ्रम हृदयँ बिसेषा ॥

कहि न सकत कछु अति गंभीरा । प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा ॥ १ ॥

सतीजीके बनावटी भेषको देखकर लक्ष्मणजी चकित हो गये, और उनके हृदयमें बड़ा भ्रम हो गया । वे बहुत गम्भीर हो गये, कुछ कह नहीं सके । धीरबुद्धि लक्ष्मण प्रभु रघुनाथजीके प्रभावको जानते थे ॥ १ ॥

सतीकपटु जानेउ सुरस्वामी । सबदरसी सब अंतरजामी ॥

सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना । सोइ सरबग्य रामु भगवाना ॥ २ ॥

सब कुछ देखनेवाले और सबके हृदयकी जाननेवाले देवताओंके स्वामी रामचन्द्रजी सतीके कपटको जान गये; जिनके स्मरणमात्रसे अज्ञानका नाश हो जाता है, वही सर्वज्ञ भगवान् रामचन्द्रजी हैं ॥ २ ॥

सती कीन्ह चह तहँहुँ उराऊ । देखहु नारिसुभावप्रभाऊ ॥

निज माया बलु हृदयँ बखानी । बोले बिहसि रामु मृदु बानी ॥ ३ ॥

स्त्रीस्वभावका असर तो देखो कि वहाँ (उन सर्वज्ञ भगवान्के सामने) भी सतीजी छिपाव करना चाहती हैं । अपनी मायाके बलको हृदयमें बखानकर, श्रीरामचन्द्रजी हँसकर कोमल वाणीसे बोले ॥ ३ ॥

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू । पिता समेत लीन्ह निज नामू ॥

कहेउ बहोरि कहाँ वृषकेतू । बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ॥ ४ ॥

पहले प्रभुने हाथ जोड़कर सतीको प्रणाम किया और पितासहित अपना नाम बताया । फिर कहा कि वृषकेतु शिवजी कहाँ हैं ? आप यहाँ वनमें अकेली किस लिये फिर रही है ? ॥ ४ ॥

दो०—रामवचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोचु ।

सती समीत महेस पहिं चलों हृदयँ बड़ सोचु ॥ ५३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके कोमल और रहस्यभरे वचन सुनकर सतीजीको बड़ा संकोच हुआ । वे डरती हुई (चुपचाप) शिवजीके पास चलीं, उनके हृदयमें बड़ी चिन्ता हो गयी—॥ ५३ ॥

चौ०—मैं संकर कर कहा न माना । निज अग्यानु राम पर आना ॥

जाइ उतरु अब देहउँ काहा । उर उपजा अति दारुन दाहा ॥ १ ॥

—कि मैंने शंकरजीका कहना न माना और अपना अज्ञान श्रीरामचन्द्रजीपर रक्खा । अब जाकर [शिवजीको] क्या उत्तर दूँगी ? [यों सोचते-सोचते] सतीजीके हृदयमें अत्यन्त भयानक जलन पैदा हो गयी ॥ १ ॥

जाना राम सतीं दुखु पावा । निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा ॥

सतीं दीख कौतुकु मग जाता । आगें रामु सहित श्री भ्राता ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने जान लिया कि सतीजीको दुःख हुआ; तब उन्होंने अपना कुछ प्रभाव प्रकट करके उन्हें दिखलाया । सतीजीने मार्गमें जाते हुए यह कौतुक देखा कि श्रीरामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मणजीसहित आगे चले जा रहे हैं । [इस अवसरपर सीताजीको इसलिये दिखाया कि सतीजी श्रीरामके सच्चिदानन्दमय रूपको देखें, वियोग और दुःखकी कल्पना जो उन्हें हुई थी दूर हो जाय तथा वे प्रकृतिस्थ हों] ॥ २ ॥

कल्याण

(१) रामजीका सतीसे प्रश्न



कहेउ बहोरि कहाँ वृषकेतू ।
बिपिन अकेल फिरहु केहि हेतू ॥
[पृष्ठ १०४]

(२) सतीका आश्चर्य



फिर चितवा पाछें प्रभु देखा ।
सहित बंधु सिय सुंदर बेधा ॥
[पृष्ठ १०५]

(३) सतीकी अकुलाहट



संकर रुख अबलोकि भवानी ।
प्रभु मोहि तजेहु हृदय अकुलानी ॥
[पृष्ठ १०७]

(४) शंकरको समाधि



संकर सहज सरूपु सँभारा ।
लागि समाधि अखंड अपारा ॥
[पृष्ठ १०८]

फिर चितवा पाछे प्रभु देखा । सहित बंधु सिय सुंदर बेया ॥

जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना । सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना ॥ ३ ॥

[तब उन्होंने] पीछेकी ओर फिरकर देखा, तो वहाँ भी भाई (लक्ष्मणजी) और सीताजीके साथ रामचन्द्रजी सुन्दर वेषमें दिखायी दिये । वे जिधर देखती हैं, उधर ही प्रभु श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं और सुचतुर सिद्ध मुनीश्वर उनकी सेवा कर रहे हैं ॥ ३ ॥

देखे सिव बिधि बिष्णु अनेका । अमित प्रभाउ एक तें एका ॥

बंदत चरन करत प्रभुसेवा । बिबिध वेष देखे सब देवा ॥ ४ ॥

सतीजीने अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु देखे, जो एक-से-एक बढ़कर असीम प्रभाववाले थे । [उन्होंने देखा कि] भौंति-भौतिके वेष धारण किये सभी देवता श्रीरामचन्द्रजीकी चरणवन्दना और सेवा कर रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—सती बिधात्री इंदिरा देखीं अमित अनूप ।

जेहिं जेहिं वेष अजादि सुर तेहि तेहि तन अनुरूप ॥ ५४ ॥

उन्होंने अनगिनत अनुपम सती, ब्रह्माणी और लक्ष्मी देखीं । जिस-जिस रूपमें ब्रह्मा आदि देवता थे, उसीके अनुकूल रूपमें [उनकी] ये सब [शक्तियाँ] भी थी ॥ ५४ ॥

चौ०—देखे जहँ-तहँ रघुपति जेते । सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते ॥

जीव चराचर जो संसारा । देखे सकल अनेक प्रकारा ॥ १ ॥

सतीजीने जहाँ-तहाँ जितने रघुनाथजी देखे, शक्तियोंसहित वहाँ उतने ही सारे देवताओंको भी देखा । संसारमें जो चराचर जीव हैं, वे भी अनेक प्रकारके सब देखे ॥ १ ॥

पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेया । रामरूप दूसर नहिं देखा ॥

अबलोके रघुपति बहुतेरे । सीता सहित न वेष घनेरे ॥ २ ॥

[उन्होंने देखा कि] अनेकों वेष धारण करके देवता प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी पूजा कर रहे हैं । परन्तु श्रीरामचन्द्रजीका दूसरा रूप कहीं नहीं देखा । सीतासहित श्रीरघुनाथजी बहुत-से देखे, परन्तु उनके वेष अनेक नहीं थे ॥ २ ॥

सोइ रघुबर सोइ लछिमनु सीता । देखि सती अति भई समीता ॥

हृदय कंप तनसुधि कछु नाहीं । नयन मूढ़ि बैठें मग माहीं ॥ ३ ॥

[सब जगह] वही रघुनाथजी, वही लक्ष्मण और वही सीताजी ! सती ऐसा देखकर बहुत ही डर गयीं, हृदय कांपने लगा और देहकी सारी सुष-बुध जाती रही । वे आँख मूँदकर मार्गमें बैठ गयी ॥ ३ ॥

बहुरि बिलोकेउ नयन उधारी । कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी ॥

पुनि पुनि नाइ रामपद सीसा । चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीसा ॥ ४ ॥

फिर आँख खोलकर देखा, तो वहाँ दक्षकुमारी (सतीजी) को कुछ भी न दीख पड़ा । तब वे बार-बार श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें सिर नवाकर वहाँ चलीं जहाँ श्रीशिवजी थे ॥ ४ ॥

दो०—गई समीप महेस तब हँसि पूछी कुसलात ।

लीन्ह परीछा कवन बिधि कहहु सत्य सब बात ॥ ५५ ॥

जब पास पहुँची, तब श्रीशिवजीने हँसकर कुशल-प्रश्न करके कहा कि तुमने रामजीकी किस प्रकार परीक्षा ली, सारी बात सच-सच कहो ॥ ५५ ॥

मासपारायण—दूसरा विश्राम

चौ०—सतीं समुझि रघुबीरप्रभाऊ । भय बस सिव सन कीन्ह दुराऊ ॥
कछु न परीछा लीन्ह गोसाईं । कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाई ॥ १ ॥
सतीजीने श्रीरघुनाथजीके प्रभावको समझकर डरके मारे शिवजीसे छिपाव किया और कहा—हेस्वामिन् ! मैंने कुछ परीक्षा नहीं ली, [वहाँ जाकर] आपकी ही तरह प्रणाम किया ॥ १ ॥

जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई । मोरें मन प्रतीति अति सोई ॥
तब संकर देखेउ धरि ध्याना । सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना ॥ २ ॥
आपने जो कहा वह झूठ नहीं हो सकता, मेरे मनमें यह बड़ा (पूरा) विश्वास है । तब शिवजीने ध्यान करके देखा और सतीजीने जो चरित्र किया था, सब जान लिया ॥ २ ॥

बहुरि राममायहि सिर नावा । प्रेरि सतिहि जेहिं झूठ कहावा ॥
हरि इच्छा भावी बलवाना । हृदयँ बिचारत संभु सुजाना ॥ ३ ॥
फिर श्रीरामचन्द्रजीकी मायाको सिर नवाया कि जिसने प्रेरणा करके सतीके मुँहसे भी झूठ कहल दिया । सुजान शिवजीने मनमें विचार किया कि हरिकी इच्छारूपी भावी प्रबल है ॥ ३ ॥

सतीं कीन्ह सीता कर बेषा । सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा ॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती । मिटइ भगतिपथु होइ अनीती ॥ ४ ॥
सतीजीने सीताजीका भेष धारण किया, यह जानकर शिवजीके हृदयमें बड़ा विषाद हुआ । उन्होंने सोचा कि यदि मैं अब सतीसे प्रीति करता हूँ तो भक्तिमार्ग लुप्त हो जाता है और बड़ा अन्याय होता है ॥ ४ ॥

दो०—परम पुनीत न जाइ तजि किएँ प्रेम बड़ पापु ।

प्रगटि न कहत महेसु कछु हृदयँ अधिक संतापु ॥ ५६ ॥

सती परम पवित्र हैं, इसलिये इन्हें छोड़ते भी नहीं बनता और प्रेम करनेमें बड़ा पाप है । प्रकट करके महादेवजी कुछ भी नहीं कहते, परन्तु उनके हृदयमें बड़ा संताप है ॥ ५६ ॥

चौ०—तब संकर प्रभुपद सिर नावा । सुमिरत रामु हृदयँ अस आवा ॥
एहिं तन सतिहिं भेट मोहि नाहीं । सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं ॥ १ ॥

तब शिवजीने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें सिर नवाया और रामजीका स्मरण करते ही उनके मनमें यह आया कि सतीके इस शरीरसे मेरी [पति-पत्नीरूपमें] भेंट नहीं हो सकती । और शिवजीने अपने मनमें यह सङ्कल्प कर लिया ॥ १ ॥

अस बिचारि संकर मतिधीरा । चले भवन सुमिरत रघुबीरा ॥
चलत गगन भै गिरा सुहाई । जय महेस भलि भगति दढ़ाई ॥ २ ॥

स्थिरबुद्धि शंकरजी ऐसा विचारकर श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हुए अपने घर (कैलास) को चले । चलते समय सुन्दर आकाशवाणी हुई कि हे महेश ! आपकी जय हो । आपने भक्तिकी अच्छी दृढ़ता की ॥ २ ॥

अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना । रामभगत समरथ भगवाना ॥

सुनि नभगिरा सती उर सोचा । पूछा सिवहि समेत सकोचा ॥ ३ ॥

आपको छोड़कर दूसरा कौन ऐसी प्रतिज्ञा कर सकता है ? आप श्रीरामचन्द्रजीके भक्त हैं, समर्थ हैं और भगवान् हैं । इस आकाशवाणीको सुनकर सतीजीके मनमें चिन्ता हुई और उन्होंने सकुचाते हुए शिवजीसे पूछा—॥ ३ ॥

कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला । सत्यधाम प्रभु दीनदयाला ॥

जदपि सतीं पूछा बहु भाँती । तदपि न कहेउ त्रिपुरआराती ॥ ४ ॥

हे कृपाल ! कहिये, आपने कौन-सी प्रतिज्ञा की है ? हे प्रभो ! आप सत्यके धाम और दीनदयालु हैं । यद्यपि सतीजीने बहुत प्रकारसे पूछा, परन्तु त्रिपुरारि (शिवजी) ने कुछ न कहा ॥ ४ ॥

दो०—सतीं हृदयँ अनुमान किय सबु जानेउ सर्वग्य ।

कीन्ह कपटु मैं संशु सन नारि सहज जड़ अग्य ॥ ५७ (क) ॥

सतीजीने हृदयमें अनुमान किया कि सर्वज्ञ शिवजी सब जान गये । मैंने शिवजीसे कपट किया, स्त्री स्वभावसे ही मूर्ख और बेसमझ होती है ॥ ५७ (क) ॥

सो०—जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि ।

बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि ॥ ५७ (ख) ॥

प्रीतिकी सुन्दर रीति देखिये कि जल भी [दूधके साथ मिलकर] दूधके समान भाव विकता है; परन्तु फिर कपटरूपी खटाई पड़ते ही पानी अलग हो जाता है (दूध फट जाता है) और स्वाद जाता रहता है ॥ ५७ (ख) ॥

चौ०—हृदयँ सोचु समुझत निज करनी । चिंता अमित जाइ नहिं बरनी ॥

कृपासिंधु सिव परम अगाधा । प्रगट न कहेउ मोर अपराधा ॥ १ ॥

अपनी करनीको याद करके सतीजीके हृदयमें इतना सोच है और इतनी अपार चिन्ता है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता । [उन्होंने समझ लिया कि] शिवजी कृपाके परम असीम सागर हैं, इससे प्रकटमें उन्होंने मेरा अपराध नहीं कहा ॥ १ ॥

संकर रुख अवलोकि भवानी । प्रभु मोहि तजेउ हृदयँ अकुलानी ॥

निज अघ समुझि न कहु कहि जाई । तपइ अवाँ इव उर अधिकाई ॥ २ ॥

शिवजीका रुख देखकर सतीजीने जान लिया कि स्वामीने मेरा त्याग कर दिया और वे हृदयमें व्याकुल हो उठी । अपना पाप समझकर कुछ कहते नहीं बनता, परन्तु हृदय [भीतर-ही-भीतर कुम्हारके] आँवेके समान अत्यन्त जलने लगा ॥ २ ॥

सतिहि ससोच जानि बृषकेतु । कहीं कथा सुंदर सुखहेतु ॥

बरनत पंथ विविध इतिहासा । बिखनाथ पहुँचे कैलासा ॥ ३ ॥

बृषकेतु (शिवजी) ने सतीको चिन्तायुक्त जानकर उन्हें सुख देनेके लिये सुन्दर कथाएँ कहीं । इस प्रकार मार्गमें विविध प्रकारके इतिहासोंको कहते हुए विश्वनाथ कैलास जा पहुँचे ॥ ३ ॥

तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन । बैठे बट तर करि कमलासन ॥

संकर सहज सरुपु सम्हारा । लागि समाधि अखंड अपारा ॥ ४ ॥

वहाँ फिर शिवजी अपनी प्रतिष्ठाको याद करके बड़े के पेड़ के नीचे पद्मासन लगाकर बैठ गये । शिवजीने अपना स्वाभाविक रूप संभाला । उनकी अखण्ड और अपार समाधि लगा गयी ॥ ४ ॥

दो०—सती बसहिं कैलास तब अधिक सोचु मन माहिं ।

मरमु न कोऊ जान कछु जुग सम दिवस सिराहिं ॥ ५८ ॥

तब सतीजी कैलासपर रहने लगी । उनके मनमें बड़ा दुःख था । इस रहस्यको कोई कुछ भी नहीं जानता था । उनका एक-एक दिन युग के समान बीत रहा था ! ॥ ५८ ॥

चौ०—नित नव सोचु सती उर भारा । कब जैहउँ दुखसागर पारा ॥

मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना । पुनि पतिबचनु मृषा करि जाना ॥ १ ॥

सतीजीके हृदयमें नित्य नया और भारी सोच हो रहा था कि मैं इस दुःखसमुद्र के पार कब जाऊँगी । मैंने जो श्रीरघुनाथजीका अपमान किया और फिर पतिके वचनोंको छूट जाना—॥ १ ॥

सो फलु मोहि बिधाताँ दीन्हा । जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा ॥

अब बिधि अस बूझिअ नहिं तोही । संकर बिमुख जिआवसि मोही ॥ २ ॥

उसका फल विधाताने मुझको दिया, जो उचित था वही किया; परन्तु हे विधाता ! अब तुझे यह उचित नहीं है जो शंकरसे विमुख होनेपर भी मुझे जिला रहा है ॥ २ ॥

कहि न जाइ कछु हृदयगलानी । मन महुँ रामहि सुमिर सयानी ॥

जौं प्रभु दीनदयालु कहावा । आरतिहरन बेद जसु गावा ॥ ३ ॥

सतीजीके हृदयकी ग्लानि कुछ कही नहीं जाती । बुद्धिमती सतीजीने मनमें श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण किया और कहा—हे प्रभो ! यदि आप दीनदयालु कहलते हैं और वेदोंने आपका यह यश गाया है कि आप दुःखको हरनेवाले हैं, ॥ ३ ॥

तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी । छूटउ बेगि देह यह मोरी ॥

जौं मोरें सिवचरन सनेह । मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एह ॥ ४ ॥

तो मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि मेरी यह देह जल्दी छूट जाय । यदि मेरा शिवजीके चरणोंमें प्रेम है और मेरा यह व्रत मन, वचन और कर्म (आचरण) से सत्य है, ॥ ४ ॥

दो०—तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ ।

होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ ॥ ५९ ॥

तो हे सर्वदर्शी प्रभो ! सुनिये, और शीघ्र वह उपाय कीजिये जिससे मेरा मरण हो और बिना ही परिश्रम यह असह्य विपत्ति दूर हो जाय ॥ ५९ ॥

चौ०—एहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी । अकथनीय दारुन दुखु भारी ॥

बीतैं संबत सहस सतासी । तजी समाधि संभु अबिनासी ॥ १ ॥

दक्षसुता (सतीजी) इस प्रकार बहुत दुःखित थी, उनको इतना दारुण दुःख था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता । सत्तासी हजार वर्ष बीत जानेपर अविनाशी शिवजीने समाधि खोली ॥ १ ॥

रामनाम सिव सुमिरन लागे । जानेउ सती जगतपति जागे ॥
 जाइ संभुपद बंदनु कीन्हा । सनमुख संकर आसनु दीन्हा ॥ २ ॥
 शिवजी रामनामका स्मरण करने लगे तब सतीजीने जाना कि अब जगत्के स्वामी (शिवजी) जागे ।
 उन्होंने जाकर शिवजीके चरणोंमें प्रणाम किया । शिवजीने उनको बैठनेके लिये सामने आसन दिया ॥ २ ॥
 लगे कहन हरिकथा रसाला । दच्छ प्रजेस भए तेहि काला ॥
 देखा बिधि बिचारि सब लायक । दच्छहि कीन्ह प्रजापतिनायक ॥ ३ ॥
 शिवजी भगवान् हरिकी रसमयी कथाएँ कहने लगे । उसी समय दक्ष प्रजापति हुए । ब्रह्माजीने सब
 प्रकारसे योग्य देख-समझकर दक्षको प्रजापतियोंका नायक बना दिया ॥ ३ ॥
 बड़ अधिकार दच्छ जब पावा । अति अभिमानु हृदय तब आवा ॥
 नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं । प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ॥ ४ ॥
 जब दक्षने इतना बड़ा अधिकार पाया तब उनके हृदयमें अत्यन्त अभिमान आ गया । जगत्में ऐसा
 कोई नहीं पैदा हुआ जिसको प्रभुता पाकर मद न हो ॥ ४ ॥

दो०—दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग ।

नेवते सादर सकल सुर जे पावत मखभाग ॥ ६० ॥

दक्षने सब मुनियोंको बुल लिया और वे बड़ा यज्ञ करने लगे । जो देवता यज्ञका भाग पाते हैं,
 दक्षने उन सबको आदरसहित निमन्त्रित किया ॥ ६० ॥

चौ०—किन्नर नाग सिद्ध गंधर्वा । बधुन्ह समेत चले सुर सर्वा ॥
 बिष्णु बिरंचि महेसु बिहार्इ । चले सकल सुर जान बनाई ॥ १ ॥

[दक्षका निमन्त्रण पाकर] किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व और सब देवता अपनी-अपनी स्त्रियोंसहित
 चले । विष्णु, ब्रह्मा और महादेवजीको छोड़कर सभी देवता अपना-अपना विमान सजाकर चले ॥ १ ॥

सती बिलोके ध्योम बिमाना । जात चले सुंदर बिधि नाना ॥
 सुरसुंदरीं करहिं कल गाना । सुनत श्रवन छूटहिं मुनिध्याना ॥ २ ॥
 सतीजीने देखा अनेकों प्रकारके सुन्दर विमान आकाशमें चले जा रहे हैं । देवसुन्दरियाँ मधुर गान
 कर रही हैं, जिन्हें सुनकर मुनियोंका ध्यान छूट जाता है ॥ २ ॥

पूछेउ तब सिव कहेउ बखानी । पिताजग्य सुनि कछु हरपानी ॥
 जौं महेसु मोहि आयसु देहीं । कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं ॥ ३ ॥
 सतीजीने [विमानोंमें देवताओंके जानेका कारण] पूछा, तब शिवजीने सब बातें बतलायीं । पिताके
 यज्ञकी बात सुनकर सती कुछ प्रसन्न हुई और सोचने लगी कि यदि महादेवजी मुझे आशा दें, तो इसी
 बहाने कुछ दिन पिताके घर जाकर रहूँ ॥ ३ ॥

पतिपरित्याग हृदयँ दुखु भारी । कहइ न निज अपराध बिचारी ॥
 बोली सती मनोहर बानी । भय संकोच प्रेम रस सानी ॥ ४ ॥

क्योंकि उनके हृदयमें पतिद्वारा त्यागी जानेका बड़ा भारी दुःख था, पर अपना अपराध समझकर
 वे कुछ कहती न थीं । आखिर भय, संकोच और प्रेमरसमें सती हुई मनोहर वाणीसे बोलीं—॥ ४ ॥

दो०—पिताभवन उत्सव परम जौं प्रभु आयसु होइ ।

तौ मैं जाउँ कृपायतन सादर देखन सोइ ॥ ६१ ॥

हे प्रभो ! मेरे पिताके घर बहुत बड़ा उत्सव है । यदि आपकी आज्ञा हो तो हे कृपाधाम ! मैं आदर-सहित उसे देखने जाऊँ ॥ ६१ ॥

चौ०—कहेहु नीक मोरेहुँ, मन भाषा । यह अनुचित नहिं नेषत पठावा ॥

दच्छ सकल निज सुता बोलाई । हमरें बयर तुम्हउ बिसराई ॥ १ ॥

शिवजीने कहा—तुमने अच्छी बात कही, यह मेरे मनको भी अच्छी लगी । पर उन्होंने न्यौता नहीं भेजा, यह अनुचित है । दक्षने अपनी सब लड़कियोंको बुलाया है । किन्तु हमारे वैरके कारण उन्होंने तुमको भी भुल दिया ॥ १ ॥

ब्रह्मसभाँ हम सन दुखु माना । तेहि तें अजहुँ करहिं अपमाना ॥

जौं बिनु बोलें जाहु भवानी । रहइ न सीलु सनेहु न कानी ॥ २ ॥

एक बार ब्रह्माकी सभामें हमसे अपसन्न हो गये थे, उसीसे वे अब भी हमारा अपमान करते हैं । हे भवानी ! जो तुम बिना बुलाये जाओगी तो न शील-स्नेह ही रहेगा और न मान-मर्यादा ही रहेगी ॥ २ ॥

जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा । जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा ॥

तदपि बिरोध मान जहँ कोई । तहाँ गएँ कल्याणु न होई ॥ ३ ॥

यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरुके घर बिना बुलाये भी जाना चाहिये, तो भी जहाँ कोई विरोध मानता हो, उसके घर जानेसे कल्याण नहीं होता ॥ ३ ॥

भाँति अनेक संभु समुझावा । भावी बस न ग्यानु उर आवा ॥

कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलाएँ । नहिं भलि बात हमारे भाएँ ॥ ४ ॥

शिवजीने बहुत प्रकारसे समझाया, पर होनहारवश सतीके हृदयमें बोध नहीं हुआ । फिर शिवजीने कहा कि बिना बुलाये जाओगी, तो हमारी समझमें यह बात अच्छी नहीं होगी ॥ ४ ॥

दो०—कहि देखा हर जतन बहु रहइ न दच्छकुमारि ।

दिए मुख्य गन संग तब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि ॥ ६२ ॥

शिवजीने बहुत प्रकारसे कहकर देख लिया, किन्तु जब सती किसी प्रकार भी नहीं रुकी तब त्रिपुरारि (महादेवजी) ने अपने मुख्य गणोंको साथ देकर उनको विदा कर दिया ॥ ६२ ॥

चौ०—पिताभवन जब गई भवानी । दच्छत्रास काहुँ न सनमानी ॥

सादर भलेहिं मिली एक माता । भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता ॥ १ ॥

भवानी जब पिता (दक्ष) के घर पहुँची तब दक्षके डरके मारे किसीने उनकी आवभगत नहीं की । केवल एक माता भले ही आदरसे मिली । बहिनें बहुत मुस्कुराती हुई मिली ॥ १ ॥

दच्छ न कछु पूछी कुसलाता । सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ॥

सती जाइ देखेउ तब जागा । कतहुँ न दीख संभु कर भागा ॥ २ ॥

दक्षने तो उनकी कुछ कुशलतक नहीं पूछी, सतीजीको देखकर उलटे उनके सारे अंग जल उठे । तब सतीने जाकर यज्ञ देखा तो वहाँ कहीं शिवजीका भाग दिखायी नहीं दिया ॥ २ ॥

तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ । प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ ॥

पाछिल दुखु न हृदयँ अस व्यापा । जस यह भयउ महापरितापा ॥ ३ ॥

तब शिवजीने जो कहा था, वह उनकी समझमें आया । स्वामीका अपमान समझकर सतीका हृदय जल उठा । पिछला (पतिपरित्यागका) दुःख उनके हृदयमें उतना नहीं हुआ था जितना महान् दुःख इस समय (पति-अपमानके कारण) हुआ ॥ ३ ॥

जद्यपि जग दारुन दुख नाना । सब तें कठिन जाति अवमाना ॥

समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा । बहुबिधि जननीं कीन्ह प्रबोधा ॥ ४ ॥

यद्यपि जगत्में अनेक प्रकारके दारुण दुःख हैं, तथापि जाति-अपमान सबसे बढ़कर कठिन है । यह समझकर सतीजीको बड़ा क्रोध हो आया । माताने उन्हें बहुत प्रकारसे समझाया-बुझाया ॥ ४ ॥

दो०—सिव अपमानु न जाइ सहि हृदयँ न होइ प्रबोध ।

सकल समहि हठि हटकि तब बोलीं वचन सक्रोध ॥ ६३ ॥

परन्तु उनसे शिवजीका अपमान सहा नहीं गया, इससे उनके हृदयमें कुछ भी प्रबोध नहीं हुआ । तब वे सारी सभाको हठपूर्वक डाँटकर क्रोधभरे वचन बोलीं—॥ ६३ ॥

चौ०—सुनहु सभासद सकल मुनिंदा । कही सुनी जिन्ह संकरनिंदा ॥

सो फलु तुरत लहब सब काहूँ । भली भाँति पछिताब पिताहूँ ॥ १ ॥

हे सभासदो और सब मुनीश्वरो ! सुनो । जिन लोगोंने यहाँ शिवजीकी निन्दा की या सुनी है, उन सबको उसका फल तुरन्त ही मिलेगा और मेरे पिता दक्ष भी भली भाँति पछतायेंगे ॥ १ ॥

संत संभु श्रीपति अपबादा । सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा ॥

काटिअ तासु जीभ जो बसाई । श्रवन मूदि न त चलिअ पराई ॥ २ ॥

जहाँ संत, शिवजी और लक्ष्मीपति विष्णु भगवान्की निन्दा सुनी जाय वहाँ ऐसी मर्यादा है कि यदि अपना वश चले तो उस (निन्दा करनेवाले) की जीभ काट ले, और नहीं तो कान मूँदकर वहाँसे भाग जाय ॥ २ ॥

जगदातमा महेसु पुरारी । जगतजनक सब के हितकारी ॥

पिता मंदमति निंदत तेही । दच्छसुकसंभव यह देही ॥ ३ ॥

त्रिपुर दैत्यको मारनेवाले भगवान् महेश्वर सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हैं, वे जगत्पिता और सबका हित करनेवाले हैं । मेरा मन्दबुद्धि पिता उनकी निन्दा करता है; और मेरा यह शरीर दक्षहीके वीर्यसे उत्पन्न है ॥ ३ ॥

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू । उर धरि चंद्रमौलि वृषकेतू ॥

अस कहि जोग अग्नि तनु जारा । भयउ सकल मख हाहाकारा ॥ ४ ॥

इसलिये चन्द्रमाको ललाटपर धारण करनेवाले वृषकेतु शिवजीको हृदयमें धारण करके मैं इस शरीरको तुरन्त ही त्याग दूँगी । ऐसा कहकर सतीजीने योगाग्निमें अपना शरीर भस्म कर डाला । सारी यज्ञशालामें हाहाकार मच गया ॥ ४ ॥

दो०—सती मरनु सुनि संभुगन लगे करन मख खीस ।

जग्य बिधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्ह मुनीस ॥ ६४ ॥

सतीका मरण सुनकर शिवजीके गण यश विध्वंस करने लगे । यश विध्वंस होते देखकर मुनीश्वर भृगुजीने उसकी रक्षा की ॥६४॥

चौ०—समाचार सब संकर पाप । बीरभद्र करि कोष पठाए ॥

जग्य बिधंस जाइ तिन्ह कीन्हा । सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा ॥ १ ॥

ये सब समाचार शिवजीको मिले, तब उन्होंने क्रोध करके बीरभद्रको भेजा । उन्होंने वहाँ जाकर यश विध्वंस कर डाला और सब देवताओंको यथोचित फल (दण्ड) दिया ॥ १ ॥

भै जगबिदित दच्छगति सोई । जसि कछु संभुबिमुख कै होई ॥

यह इतिहास सकल जग जानी । ताते मैं संछेप बखानी ॥ २ ॥

दक्षकी जगत्प्रसिद्ध वही गति हुई जो शिवद्रोहीकी हुआ करती है । यह इतिहास सारा संसार जानता है, इसलिये मैंने संक्षेपमें वर्णन किया ॥ २ ॥

सतीं मरत हरि सन बर मागा । जनम जनम सिव पद अनुरागा ॥

तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई । जनमीं पारबती तनु पाई ॥ ३ ॥

सतीने मरते समय भगवान् हरिसे यह वर माँगा कि मेरा जन्म-जन्ममें शिवजीके चरणोंमें अनुराग रहे । इसी कारण उन्होंने हिमाचलके घर जाकर पार्वतीके शरीरसे जन्म लिया ॥ ३ ॥

जब तैं उमा सैलगृह जाई । सकल सिद्धि संपति तहँ छाई ॥

जहँ तहँ मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हे । उचित बास हिमभूधर दीन्हे ॥ ४ ॥

जबसे उमाजी हिमाचलके घर जन्मी तबसे वहाँ सारी सिद्धियाँ और सम्पत्तियाँ छा गयीं । मुनियोंने जहाँ-तहाँ सुन्दर आश्रम बना लिये और हिमाचलने उनको उचित स्थान दिये ॥ ४ ॥

दो०—सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति ।

प्रगटां सुंदर सैल पर मनि आकर बहु भाँति ॥ ६५ ॥

उस सुन्दर पर्वतपर बहुत प्रकारके सब नये-नये वृक्ष सदा पुष्प-फल्युक्त हो गये और वहाँ बहुत तरहकी मणियोंकी खानें प्रकट हो गयीं ॥६५॥

चौ०—सरिता सब पुनीत जलु बहहीं । खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं ॥

सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा । गिरि पर सकल करहिं अनुरागा ॥ १ ॥

सारी नदियोंमें पवित्र जल बहता है और पक्षी, पशु, भ्रमर सभी सदा सुखी रहते हैं । सब जीवोंने अपना स्वाभाविक वैर छोड़ दिया; और पर्वतपर सभी परस्पर प्रेम करते हैं ॥ १ ॥

सोह सैल गिरिजा गृह आपँ । जिमि जनु रामभगति के पायँ ॥

नित नूतन मंगल गृह तासू । ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू ॥ २ ॥

पार्वतीजीके घर आ जानेसे पर्वत ऐसा शोभायमान हो रहा है जैसा रामभक्तिको पाकर भक्त होता है । उस (पर्वतराज) के घर नित्य नये-नये मंगलोत्सव होते हैं, जिसका ब्रह्मादि यश गाते हैं ॥ २ ॥

नारद समाचार सब पाप । कौतुकीं गिरिगेह सिधाए ॥

सैलराज बड़ आदर कीन्हा । पद पखारि बर आसनु दीन्हा ॥ ३ ॥

कल्याण

(१) सतीका कोप



सिव अपमानु न जाइ सहि हृदयै न होइ प्रबोध ।
सकल सभहि हटि हटकि तय बोलीं बचन सक्रोध ॥

[पृष्ठ १११]

(२) दक्ष-यज्ञ-विध्वंस



जग्य विधंस जाइ तिन्ह कीन्हा ।
सकल मुरन्ह विधिवत फलु दीन्हा ॥

[पृष्ठ ११२]

(३) नारदजीका भविष्य कथन



कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी ।
सुता तुम्हारि सकल गुन खानी ॥

[पृष्ठ ११३]

(४) पार्वती-परीक्षा



जन्म कोटि लागि रगर हमारी ।
बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी ॥

[पृष्ठ ११२]

जब नारदजीने ये सब समाचार सुने तो वे कौतुकहीसे हिमाचलके घर पधारे । पर्वतराजने उनका बड़ा आदर किया और चरण धोकर उनको उत्तम आसन दिया ॥ ३ ॥

नारि सहित मुनिपद सिरु नावा । चरनसलिल सधु भवतु सिंचावा ॥

निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना । सुता बोलि मेली मुनिचरना ॥ ४ ॥

फिर अपनी स्त्रीसहित मुनिके चरणोंमें सिर नवाया और उनके चरणोंदकको सारे घरमें छिड़काया । हिमाचलने अपने सौभाग्यका बहुत बखान किया और पुत्रीको बुलाकर मुनिके चरणोंपर डाल दिया ॥ ४ ॥

दो०—त्रिकालग्य सर्वग्य तुम्ह गति सर्वत्र तुम्हारि ।

कहहु सुता के दोष गुन मुनिवर हृदयँ बिचारि ॥ ६६ ॥

[और कहा—] हे मुनिवर ! आप त्रिकालज्ञ और सर्वज्ञ हैं, आपकी सर्वत्र पहुँच है । अतः आप हृदयमें विचारकर कन्याके दोष-गुण कहिये ॥ ६६ ॥

चौ०—कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी । सुता तुम्हारि सकल गुन खानी ॥

सुंदर सहज सुसील सयानी । नाम उमा अंबिका भवानी ॥ १ ॥

नारद मुनिने हँसकर रहस्ययुक्त कोमलवाणीसे कहा—तुम्हारी कन्या सब गुणोंकी खान है । यह स्वभावसे ही सुन्दर, सुशील और समझदार है । उमा, अम्बिका और भवानी इसके नाम हैं ॥ १ ॥

सब लच्छन संपन्न कुमारी । होइहि संतत पियहि पिआरी ॥

सदा अचल एहि कर अहिवाता । एहि तैं जसु पैहहिं पितु माता ॥ २ ॥

कन्या सब सुलक्षणोंसे सम्पन्न है । यह अपने पतिको सदा प्यारी होगी । इसका सुहाग सदा अचल रहेगा और इससे इसके माता-पिता यश पावेंगे ॥ २ ॥

होइहि पूज्य सकल जग माहीं । एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं ॥

एहि कर नामु सुमिरि संसारा । त्रिय चढ़िहहिं पतिव्रत असिधारा ॥ ३ ॥

यह सारे जगत्में पूज्य होंगी, और इसकी सेवा करनेसे कुछ भी दुर्लभ न होगा । संसारमें स्त्रियाँ इसका नाम स्मरण करके पतिव्रतरूपी तलवारकी धारपर चढ़ जायँगी ॥ ३ ॥

सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी । सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी ॥

अगुन अमान मातु पितु हीना । उदासीन सब संसय छीना ॥ ४ ॥

हे पर्वतराज ! तुम्हारी कन्या सुलच्छनी है । अब इसमें जो दो-चार अवगुण हैं, उन्हें भी सुन लो । गुणहीन, मानहीन, माता-पिता-विहीन, उदासीन, संशयहीन (लपरवाह), ॥ ४ ॥

दो०—जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल वेष ।

अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख ॥ ६७ ॥

योगी, जटाधारी, निष्कामहृदय, नंगा और अमंगल वेषवाला, ऐसा पति इसको मिलेगा । इसके हाथमें ऐसी ही रेखा पड़ी है ॥ ६७ ॥

चौ०—सुनि मुनिगिरा सत्य जियँ जानी । दुख दंपतिहि उमा हरषानी ॥

नारदहँ यह भेदु न जाना । दसा एक समुझब बिलगाना ॥ १ ॥

[नारद] मुनिकी वाणी सुनकर और उसको हृदयमें सत्य जानकर पति-पत्नी (हिमवान् और मैना) को दुःख हुआ और पार्वतीजी प्रसन्न हुई । नारदजीने भी इस रहस्यको नहीं जाना, क्योंकि सबकी दशा एक-सी होनेपर भी समझ भिन्न-भिन्न थी ॥ १ ॥

सकल सखीं गिरिजा गिरि मैना । पुलक सरीर भरे जल नैना ॥

होइ न मृषा देवरिषि भाषा । उमा सो बचनु हृदयँ धरि राखा ॥ २ ॥

सारी सखियाँ, पार्वती, पर्वतराज हिमवान् और मैना सभीके शरीर पुलकित थे, और सभीके नेत्रोंमें जल भरा था । देवर्षिके वचन असत्य नहीं हो सकते, [यह विचारकर] पार्वतीने उन वचनोंको हृदयमें धारण कर लिया ॥ २ ॥

उपजेउ सिव पदकमल सनेहु । मिलन कठिन मन भा संदेहु ॥

जानि कुअवसरु प्रीति दुराई । सखी उछँग बैठी पुनि जाई ॥ ३ ॥

उन्हें शिवजीके चरणकमलोंमें स्नेह उत्पन्न हो आया, परन्तु मनमें यह सन्देह हुआ कि उनका मिलना कठिन है । अवसर ठीक न जानकर उमाने अपने प्रेमको छिपा लिया और वे सखीकी गोदमें जाकर बैठ गयीं ॥ ३ ॥

झूठि न होइ देवरिषि बानी । सोचहिं दंपति सखीं सयानी ॥

उर धरि धीर कहइ गिरिराज । कहहु नाथ का करिअ उपाऊ ॥ ४ ॥

देवर्षिकी वाणी झूठी न होगी [यह विचारकर] हिमवान्, मैना और सारी चतुर सखियाँ चिन्ता करने लगी । फिर हृदयमें धीरज धरकर पर्वतराजने कहा—हे नाथ ! कहिये, अब क्या उपाय किया जाय ? ॥ ४ ॥

दो०—कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार ।

देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न भेटनिहार ॥ ६८ ॥

मुनीश्वरने कहा—हे हिमवान् ! मुनो, विधाताने ललाटपर जो कुछ लिख दिया है उसको देवता, दानव, मनुष्य, नाग और मुनि कोई भी नहीं मिटा सकते ॥ ६८ ॥

चो०—तदपि एक में कहउँ उपाई । होइ करै जौँ दैउ सहाई ॥

जस बरु में बरनेउँ तुम्ह पाहीं । मिलिहि उमहि तस संसय नाहीं ॥ १ ॥

तो भी एक उपाय में बताता हूँ । यदि दैव सहायता करे तो वह [कार्य सिद्ध] हो सकता है । उमाको वर तो निःसन्देह वैसा ही मिलेगा जैसा मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया है ॥ १ ॥

जे जे बर के दोष बखाने । ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने ॥

जौँ विवाहु संकर सन होई । दोषउ गुन सम कह सबु कोई ॥ २ ॥

परन्तु मैंने वरके जो-जो दोष बतलाये हैं, मेरे अनुमानसे वे सभी शिवजीमें हैं । यदि शिवजीके साथ विवाह हो जाय तो दोनोंको भी सब लोग गुणोंके समान ही कहेंगे ॥ २ ॥

जौँ अहिसेज सयन हरि करहीं । बुध कछु तिन्ह कर दोषु न धरहीं ॥

भाबु रुसानु सर्व रस खाहीं । तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं ॥ ३ ॥

जैसे विष्णुभगवान् शेषनागकी शय्यापर सोते हैं तो भी पण्डित लोग उनको कोई दोष नहीं लगाते । सूर्य और अग्निदेव अच्छे-बुरे सभी रसोंका भक्षण करते हैं, परन्तु उनको कोई बुरा नहीं कहता ॥ ३ ॥

सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई । सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई ॥

समरथ कहँ नहिं दोषु गोसाई । रवि पावक सुरसरि की नाई ॥ ४ ॥

गंगाजीमें शुभ और अशुभ सभी जल बहता है, पर कोई उन्हें अपवित्र नहीं कहता। सूर्य, अग्नि और गंगाजीकी भौति समर्थको कुछ दोष नहीं लाता ॥ ४ ॥

दो०—जौ अस हिसिषा करहिं नर जड़ बिबेक अभिमान ।

परहिं कलप भरि नरक महुँ जीव कि ईस समान ॥ ६९ ॥

यदि मूर्ख मनुष्य ज्ञानके अभिमानसे ऐसी बराबरी करते हैं तो वे कल्पभरके लिये नरकमें पड़ते हैं। भल, कहीं जीव भी ईश्वरके समान (सर्वथा स्वतन्त्र) हो सकता है ? ॥ ६९ ॥

चौ०—सुरसरि जल कृत बारुनि जाना । कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना ॥

सुरसरि मिलें सो पावन जैसैं । ईस अनीसहि अंतरु तैसैं ॥ १ ॥

गंगाजलसे भी बनायी हुई मदिराको जानकर संत लोग कभी उसका पान नहीं करते। पर वही गंगाजीमें मिल जानेपर जैसे पवित्र हो जाती है, ईश्वर और जीवमें भी वैसा ही भेद है ॥ १ ॥

संभु सहज समर्थ भगवाना । एहि बिबाहँ सब विधि कल्याणा ॥

दुराराध्य पै अहहिं महेसू । आसुतोष पुनि किएँ कलेसू ॥ २ ॥

शिवजी सहज ही समर्थ हैं, क्योंकि वे भगवान् हैं। इसलिये इस विवाहमें सब प्रकार कल्याण है। परन्तु महादेवजीकी आराधना बड़ी कठिन है, फिर भी क्लेश (तप) करनेसे वे बहुत जल्द सन्नुष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

जौ तपु करै कुमारि तुम्हारी । भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी ॥

जद्यपि वर अनेक जग माहीं । एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं ॥ ३ ॥

यदि तुम्हारी कन्या तप करे, तो त्रिपुरारि (महादेवजी) होनहारको भी मिटा सकते हैं। यद्यपि संसारमें वर अनेक हैं, पर इसके लिये शिवजीको छोड़कर दूसरा वर नहीं है ॥ ३ ॥

वर दायक प्रनतारति भंजन । कृपासिंधु सेवक मन रंजन ॥

इच्छित फल बिनु सिव अवराधेँ । लहिअ न कोटि जोग जप साधेँ ॥ ४ ॥

शिवजी वर देनेवाले, शरणागतोंके दुःखांका नाश करनेवाले, कृपाके समुद्र और सेवकोंके मनको प्रसन्न करनेवाले हैं। शिवजीकी आराधना किये बिना करोड़ों योग और जप करनेपर भी वाञ्छित फल नहीं मिलता ॥ ४ ॥

दो०—अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्हि असीस ।

होइहि यह कल्याण अब संसय तजहु गिरीस ॥ ७० ॥

ऐसा कहकर भगवान्का स्मरण करके नारदजीने पार्वतीको आशीर्वाद दिया [और कहा कि—] हे पर्वतराज ! तुम सन्देहका त्याग कर दो, अब यह कल्याण ही होगा ॥ ७० ॥

चौ०—कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ । आगिल चरित सुनहु जस भयऊ ॥

पतिहि एकांत पाइ कह मैना । नाथ न मैं समुझे मुनिबैना ॥ १ ॥

यों कहकर नारद मुनि ब्रह्मलोकको चले गये। अब आगे जो चरित्र हुआ उसे सुनो। पतिको एकांतमें पाकर मैनाने कहा—हे नाथ ! मैंने मुनिके वचनोंका अर्थ नहीं समझा ॥ १ ॥

जौ घर बर कुलु होइ अनूपा । करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा ॥

न त कन्या बर रहउ कुआरी । कंत उमा मम प्रानपिआरी ॥ २ ॥

जो हमारी कन्याके अनुकूल घर, वर और कुल उत्तम हो तो विवाह कीजिये। नहीं तो लड़की चाहे कुमारी ही रहे। (मैं अयोग्य वरके साथ उसका विवाह नहीं करना चाहती।) क्योंकि हे स्वामिन् ! पार्वती मुझको प्राणोंके समान प्यारी है ॥ २ ॥

जौं न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू । गिरि जइ सहज कहिहि सबु लोगू ॥
सोइ बिचारि पति करेहु बिबाह । जेहिं न बहोरि होइ उर दाह ॥ ३ ॥

यदि पार्वतीके योग्य वर न मिला तो सब लोग कहेंगे कि पर्वत स्वभावसे ही जड़ (मूर्ख) होते हैं। हे स्वामी ! इस बातको विचारकर ही विवाह कीजियेगा, जिसमें फिर पीछे हृदयमें सन्ताप न हो ॥ ३ ॥

अस कहि परी चरन धरि सीसा । बोले सहित सनेह गिरीसा ॥
बरु पावक प्रगटै ससि माहीं । नारद बचनु अन्यथा नाहीं ॥ ४ ॥

इस प्रकार कहकर मैना पतिके चरणोंपर मस्तक रखकर गिर पड़ी। तब हिमवान्ने प्रेमसे कहा—चाहे चन्द्रमामें अग्नि प्रकट हो जाय, पर नारदजीके वचन झूठे नहीं हो सकते ॥ ४ ॥

दो०—प्रिया सोचु परिहरहु सबु सुमिरहु श्रीभगवान ।
पारबतिहि निरमयउ जेहिं सोइ करिहि कल्याण ॥ ७१ ॥

हे प्रिये ! सब सोच छोड़कर श्रीभगवान्का स्मरण करो। जिन्होंने पार्वतीको रचा है, वे ही कल्याण करेंगे ॥ ७१ ॥

चौ०—अब जौं तुम्हहि सुता पर नेह । तौ अस जाइ सिखावनु देह ॥
करै सो तपु जेहिं मिलहिं महेसू । आन उपायँ न मिटिहि कलेसू ॥ १ ॥

अब यदि तुम्हें कन्यापर प्रेम है तो जाकर उसे यह शिक्षा दो कि वह ऐसा तप करे जिससे शिवजी मिल जायँ। दूसरे उपायसे यह क्लेश नहीं मिटेगा ॥ १ ॥

नारद बचन सगर्भ सहेतू । सुंदर सब गुन निधि वृषकेतू ॥
अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका । सबहि भाँति संकर अकलंका ॥ २ ॥

नारदजीके वचन रहस्यसे युक्त और सकारण हैं, और शिवजी समस्त सुन्दर गुणोंके भण्डार हैं। यह विचारकर तुम [मिथ्या] सन्देहको छोड़ दो। शिवजी सभी तरहसे निष्कलङ्क हैं ॥ २ ॥

सुनि पतिबचन हरषि मन माहीं । गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं ॥
उमहि बिलोकि नयन भरे बारी । सहित सनेह गोद बैठारी ॥ ३ ॥

पतिके वचन सुन मनमें प्रसन्न होकर मैना उठकर तुरन्त पार्वतीके पास गयी। पार्वतीको देखकर उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसे स्नेहके साथ गोदमें बैठा लिया ॥ ३ ॥

बारहिं बार लेति उर लार् । गदगद कंठ न कसु कहि जाई ॥
जगत मातु सर्वम्य भवानी । मातु सुखद बोली मृदु बानी ॥ ४ ॥

फिर बार-बार उसे हृदयसे लगाने लगी। प्रेमसे मैनाका गला भर आया, कुछ कहा नहीं जाता। जगज्जननी भवानीजी तो सर्वश हैं। [माताके मनकी दशाको जानकर] वे माताको सुख देनेवाली कोमल वाणीसे बोलीं—॥ ४ ॥

दो०—सुनहि मातु मैं दीख अस सपन सुनावउँ तोहि ।
सुंदर गौर सुबिप्रबर अस उपदेसेउ मोहि ॥ ७२ ॥

मा ! सुन, मैं तुझे सुनाती हूँ; मैंने ऐसा स्वप्न देखा है कि मुझे एक सुन्दर गौरवर्ण श्रेष्ठ ब्राह्मणने ऐसा उपदेश दिया है—॥ ७२ ॥

चो०—करहि जाइ तपु सैलकुमारी । नारद कहा सौ सत्य बिचारी ॥
मातु पितहि पुनि यह मत भावा । तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा ॥ १ ॥

हे पार्वती ! नारदजीने जो कहा है उसे सत्य समझकर तू जाकर तप कर । फिर यह बात तेरे माता-पिताको भी अच्छी लगी है । तप, सुख देनेवाला और दुःख-दोषका नाश करनेवाला है ॥ १ ॥

तपबल रचइ प्रपञ्चु बिधाता । तपबल विष्णु सकल जग प्राता ॥
तपबल संभु करहि संधारा । तपबल सेषु धरइ महिभारा ॥ २ ॥

तपके बलसे ही ब्रह्मा संसारको रचते हैं और तपके बलसे ही विष्णु सारे जगत्का पालन करते हैं । तपके बलसे ही शम्भु [रुद्ररूपसे] जगत्का संहार करते हैं और तपके बलसे ही शेषजी पृथ्वीका भार धारण करते हैं ॥ २ ॥

तप अघार सब सृष्टि भवानी । करहि जाइ तपु अस जियँ जानी ॥
सुनत बचन बिसमित महतारी । सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी ॥ ३ ॥

हे भवानी ! सारी सृष्टि तपके ही आधारपर है । ऐसा जीमें जानकर तू जाकर तप कर । यह बात सुनकर माताको बड़ा अचरज हुआ और उसने हिमवान्को बुलाकर वह स्वप्न सुनाया ॥ ३ ॥

मातु पितहि बहुबिधि समुझाई । चलीं उमा तप हित हरपाई ॥
प्रिय परिवार पिता अरु माता । भए बिकल मुख आव न बाता ॥ ४ ॥

माता-पिताको बहुत तरहसे समझाकर बड़े हर्षके साथ पार्वतीजी तप करनेके लिये चलीं । प्यारे कुटुम्बी, पिता और माता सब व्याकुल हो गये । किसीके मुँहसे बात नहीं निकलती ॥ ४ ॥

दो०—बेदसिरा मुनि आइ तब सबहि कहा समुझाई ।
पारवती महिमा सुनत रहे प्रबोधहि पाई ॥ ७३ ॥

तब वेदशिरा मुनिने आकर सबको समझाकर कहा । पार्वतीजीकी महिमा सुनकर सबको समाधान हो गया ॥ ७३ ॥

चो०—उर धरि उमा प्राणपति चरना । जाइ बिपिन लागीं तपु करना ॥
अति सुकुमार न तनु तपजोगू । पतिपद सुमिरि तजेउ सबु भोगू ॥ १ ॥

प्राणपति (शिवजी) के चरणोंको हृदयमें धारण करके पार्वतीजी वनमें जाकर तप करने लगी । पार्वतीजीका अत्यन्त सुकुमार शरीर तपके योग्य नहीं था, तो भी पतिके चरणोंका स्मरण करके उन्होंने सब भोगोंको तज दिया ॥ १ ॥

नित नव चरन उपज अनुरागा । बिसरी देह तपहिं मनु लागा ॥
संबत सहस मूल फल खाए । सागु खाइ सत बरष गवाँए ॥ २ ॥

स्वामीके चरणोंमें नित्य नया अनुराग उत्पन्न होने लगा और तपमें ऐसा मन लगा कि शरीरकी सारी सुध बिसर गयी । एक हजार वर्षतक उन्होंने मूल और फल खाये, फिर सौ वर्ष साग खाकर बिताये ॥ २ ॥

कछु दिन भोजनु बारि बतासा । किय कठिन कछु दिन उपवासा ॥
बेलपाती महि परइ सुखाई । तीनि सहस संबत सोइ खाई ॥ ३ ॥

कुछ दिन जल और वायुका भोजन किया और फिर कुछ दिन कठोर उपवास किये । जो बेलपत्र सूखकर पृथ्वीपर गिरते थे, तीन हजार वर्षतक उन्हींको खाया ॥ ३ ॥

पुनि परिहरे सुखानेउ परना । उमहि नामु तब भयउ अपरना ॥

देखि उमहि तप खीन सरीरा । ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा ॥ ४ ॥

फिर सूखे पर्ण (पत्ते) भी छोड़ दिये, तभी पार्वतीका नाम 'अपर्णा' हुआ । तपसे उमाका शरीर क्षीण देखकर आकाशसे गम्भीर ब्रह्मवाणी हुई— ॥ ४ ॥

दो०—भयउ मनोरथ सुफल तब सुनु गिरिराजकुमारि ।

परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारि ॥ ७४ ॥

हे पर्वतराजकी कुमारी ! सुन, तेरा मनोरथ सफल हुआ । तू अब सारे असह्य ऋशोंको (कठिन तपको) त्याग दे । अब तुझे शिवजी मिलेंगे ॥ ७४ ॥

चौ०—अस तपु काहुँ न कीन्ह भवानी । भए अनेक धीर मुनि ग्यानी ॥

अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी । सत्य सदा संतत सुचि जानी ॥ १ ॥

हे भवानी ! धीर, मुनि और ज्ञानी बहुत हुए हैं, पर ऐसा (कठोर) तप किसीने नहीं किया । अब तू इस श्रेष्ठ ब्रह्माकी वाणीको सदा सत्य और निरन्तर पवित्र जानकर अपने हृदयमें धारण कर ॥ १ ॥

आवै पिता बोलावन जबहीं । हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं ॥

मिलिहिं तुम्हहि जब सस रिषीसा । जानेहु तब प्रमान बागीसा ॥ २ ॥

जब तेरे पिता बुलानेको आवें, तब हठ छोड़कर घर चली जाना । और जब तुम्हें ससर्प मिलें तब इस वाणीको ठीक समझना ॥ २ ॥

सुनत गिरा बिधि गगन बखानी । पुलक गात गिरिजा हरबानी ॥

उमाचरित सुंदर मैं गावा । सुनहु संभु कर चरित सुहावा ॥ ३ ॥

[इस प्रकार] आकाशसे कही हुई ब्रह्माकी वाणीको सुनते ही पार्वतीजी प्रमत्त हो गयीं और [हर्षके मारे] उनका शरीर पुलकित हो गया । [याज्ञवल्क्यजी भगद्वाजजीसे बोले कि] मैंने पार्वतीका चरित्र सुनाया, अब शिवजीका सुहावना चरित्र सुनो ॥ ३ ॥

जब तैं सतीं जाइ तनु त्यागा । तब तैं सिव मन भयउ बिरागा ॥

जपहिं सदा रघुनाथक नामा । जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा ॥ ४ ॥

जबसे सतीने जाकर शरीरत्याग किया, तबसे शिवजीके मनमें वैराग्य हो गया । वे सदा रघुनाथजीका नाम जपने लगे और जहाँ-तहाँ श्रीरघुनाथजीके गुणोंकी कथाएँ सुनने लगे ॥ ४ ॥

दो०—चिदानंद सुखधाम सिव बिगत मोह मद काम ।

बिचरहिं महि धरि हृदयँ हरि सकल लोक अभिराम ॥ ७५ ॥

चिदानन्द, सुखके धाम, मोह, मद और कामसे रहित शिवजी सम्पूर्ण लोकोंको आनन्द देनेवाले भगवान् (श्रीरामचन्द्रजी) को हृदयमें धारणकर (भगवान्के ध्यानमें मस्त हुए) पृथ्वीपर विचरने लगे ॥ ७५ ॥

चौ०—कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना । कतहुँ रामगुन करहिं बखाना ॥

जदपि अकाम तदपि भगवाना । भगत बिरह दुख दुखित सुजाना ॥ १ ॥

वे कहीं मुनियोंको शानका उपदेश करते और कहीं श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका वर्णन करते थे। यद्यपि सुजान शिवजी निष्काम हैं, तो भी वे भगवान् अपने भक्त (सती) के वियोगके दुःखसे दुखी हैं ॥ १ ॥

एहि बिधि गयउ कालु बहु बीती। नित नै होइ रामपद प्रीती ॥

नेमु प्रेमु संकर कर देखा। अबिचल हृदयँ भगति कै रेखा ॥ २ ॥

इस प्रकार बहुत समय बीत गया। रामचन्द्रजीके चरणोंमें नित-नयी प्रीति हो रही है। शिवजीके [कठोर] नियम, [अनन्य] प्रेम और उनके हृदयमें भक्तिकी अटल टेकको [जब श्रीरामचन्द्रजीने] देखा, ॥ २ ॥

प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला ॥

बहु प्रकार संकरहि सराहा। तुम्ह बिनु अस व्रतु को निरबाहा ॥ ३ ॥

तब कृतज्ञ (उपकार माननेवाले), कृपालु, रूप और शीलके भण्डार, महान् तेजपुञ्ज भगवान् श्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए। उन्होंने बहुत तरहसे शिवजीकी सराहना की और कहा कि आपके बिना ऐसा (कठिन) व्रत कौन निबाह सकता है ॥ ३ ॥

बहुबिधि राम सिवहि समुझावा। पारबती कर जन्मु सुनावा ॥

अति पुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने बहुत प्रकारसे शिवजीको समझाया और पार्वतीजीका जन्म सुनाया। कृपाके भण्डार श्रीरामचन्द्रजीने विस्तारपूर्वक पार्वतीजीकी अत्यन्त पवित्र करनीका वर्णन किया ॥ ४ ॥

दों०—अब विनती मम सुनहु सिव जौ मोपर निज नेहु।

जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मार्गें देहु ॥ ७६ ॥

[फिर उन्होंने शिवजीसे कहा—] हे शिवजी! यदि मुझपर आपका स्नेह है तो अब आप मेरी विनती सुनिये। मुझे यह मार्ग दीजिये कि आप जाकर पार्वतीके साथ विवाह कर लें ॥ ७६ ॥

चौ०—कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथबचन पुनि मेटि न जाहीं ॥

सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा ॥ १ ॥

शिवजीने कहा—यद्यपि ऐसा उचित नहीं है, परन्तु स्वामीकी बात भी मेटी नहीं जा सकती। हे नाथ! मेरा यही परमधर्म है कि मैं आपकी आज्ञाको सिरपर रखकर उसका पालन करूँ ॥ १ ॥

मानु पिता गुरु प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी ॥

तुम्ह सब भाँति परम हितकारी। अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी ॥ २ ॥

माता, पिता, गुरु और स्वामीकी बातको बिना ही विचारे शुभ समझकर करना (मानना) चाहिये। आप तो सब प्रकारसे मेरे हितकारी हैं। हे नाथ! आपकी आज्ञा मेरे सिरपर है ॥ २ ॥

प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भक्ति बिबेक धर्म जुत रचना ॥

कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखेहु जो हम कहेऊ ॥ ३ ॥

शिवजीकी भक्ति, शान और धर्मसे युक्त वचनरचना सुनकर प्रभु रामचन्द्रजी सन्तुष्ट हो गये। प्रभुने कहा—हे हर! आपकी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी। अब हमने जो कहा है, उसे हृदयमें रखना ॥ ३ ॥

अंतरधान भये अस भाषी । संकर सोइ मूरति उर राखी ॥

तबहिं सत्तरिषि सिव पहिं आए । बोले प्रभु अति बचन सुहाए ॥ ४ ॥

इस प्रकार कहकर श्रीरामचन्द्रजी अन्तर्धान हो गये । शिवजीने उनकी वह मूर्ति अपने हृदयमें रख ली । उसी समय सत्तरि शिवजीके पास आये । प्रभु महादेवजीने उनसे अत्यन्त सुहावने वचन कहे—॥ ४ ॥

दो०—पारवती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परिच्छा लेहु ।

गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूरि करेहु संदेहु ॥ ७७ ॥

आपलोग पार्वतीके पास जाकर उनके प्रेमकी परीक्षा लीजिये और हिमाचलको कहकर [उन्हें पार्वतीको लिवा लानेके लिये भेजिये तथा] पार्वतीको घर भिजवाइये और उनके सन्देहको दूर कीजिये ॥ ७७ ॥

चौ०—रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी । मूरतिमंत तपस्या जैसी ॥

बोले मुनि सुनु सैलकुमारी । करहु कवन कारन तपु भारी ॥ १ ॥

ऋषियोंने [वहाँ जाकर] पार्वतीको कैसी देखा मानो मूर्तिमान् तपस्याही हो । मुनि बोले—हे शैलकुमारी ! किस लिये इतना कठोर तप कर रही हो ? ॥ १ ॥

केहि अवराधहु का तुम्ह चहइ । हम सन सत्य मरसु किन कहइ ॥

कहत बचन मनु अति सकुचाई । हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई ॥ २ ॥

तुम किसकी आराधना करती हो और क्या चाहती हो ? हमसे अपना सच्चा भेद क्यों नहीं कहती ? [पार्वतीने कहा—] बात कहते मन बहुत सकुचाता है । आपलोग मेरी मूर्खता सुनकर हँसेंगे ॥ २ ॥

मनु हठ परा न सुनइ सिखावा । चहत बारि पर भीति उठावा ॥

नारद कहा सत्य सोइ जाना । बिनु पंखन्ह हम चहहिं उड़ाना ॥ ३ ॥

मनने हठ पकड़ लिया है, वह उपदेश नहीं सुनता और जलपर दीवाल उठाना चाहता है । नारदजीने जो कह दिया उसे सत्य जानकर मैं बिना ही पाँखके उड़ना चाहती हूँ ॥ ३ ॥

देखहु मुनि अबिबेकु हमारा । चाहिअ सदा सिवहि भरतारा ॥ ४ ॥

हे मुनियो ! आप मेरा अज्ञान तो देखिये कि मैं सदा शिवजीको ही पति बनाना चाहती हूँ ॥ ४ ॥

दो०—सुनत बचन बिहसे रिषय गिरिसंभव तव देह ।

नारद कर उपदेसु मुनि कहहु बसेउ किसु गेह ॥ ७८ ॥

पार्वतीजीकी बात सुनते ही ऋषिलोग हँस पड़े और बोले—तुम्हारा शरीर पर्वतसे ही तो उत्पन्न हुआ है ! भला, कहो तो नारदका उपदेश सुनकर आजतक किसका घर बसा है ! ॥ ७८ ॥

चौ०—दच्छसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई । तिन्ह फिरि भवनु न देखा आई ॥

चित्रकेतु कर घर उन घाला । कनककसिपु कर पुनि अस हाला ॥ १ ॥

उन्होंने जाकर दक्षके पुत्रोंको उपदेश दिया था, जिससे उन्होंने फिर लौटकर घरका मुँह ही नहीं देखा । चित्रकेतुके घरको नारदने ही चौपट किया । फिर यही हाल हिरण्यकशिपुका हुआ ॥ १ ॥

नारद सिख जे सुनहिं नर नारी । अबसि होहिं तजि भवनु भिखारी ॥

मन कपटी तन सज्जन चीन्हा । आपु सरिस सबही चह कीन्हा ॥ २ ॥

जो स्त्री-पुरुष नारदकी सीख सुनते हैं, वे घर-बार छोड़कर अवश्य ही भिखारी हो जाते हैं। उनका मन तो कपटी है, शरीरपर सबनोके चिह्न हैं। वे सभीको अपने समान बनाना चाहते हैं ॥ २ ॥

तेहि के बचन मानि बिस्वासा । तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा ॥

निर्गुन निलज कुबेष कपाली । अकुल अगेह विगंबर व्याली ॥ ३ ॥

उनके वचनोंपर विश्वास मानकर तुम ऐसा पति चाहती हो जो स्वभावसे ही उदासीन, गुणहीन, निर्लज, बुरे वेषवाला, नरकपालोंकी माला पहननेवाला, कुलहीन, विना घर-बारका, नंगा और शरीरपर साँपोंको लपेटे रखनेवाला है ॥ ३ ॥

कहहु कवन सुखु अस बरु पायँ । भल भूलिहु ठग के बौरायँ ॥

पंच कहँ सिव सती बिबाही । पुनि अवडेरि मराण्हि ताही ॥ ४ ॥

ऐसे बरके मिलनेसे कहो तुम्हें क्या सुख होगा ? तुम उस ठग (नारद) के बहकावेमें आकर खूब भूली। पहले पंचोंके कहनेसे शिवने सतीसे विवाह किया था, परन्तु फिर उसे त्यागकर मरवा डाला ॥ ४ ॥

दा०—अब सुख सोवत सोचु नहिं भीख मागि भव खाहिं ।

सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं ॥ ७९ ॥

अब शिवको कोई चिन्ता नहीं रही, भीख माँगकर खा लेते हैं और सुखसे सोते हैं। ऐसे स्वभावसे ही अकेले रहनेवालोंके घर भी भला क्या कभी स्त्री टिक सकती है ? ॥ ७९ ॥

चौ०—अजहुँ मानहु कहा हमारा । हम तुम्ह कहँ बरु नीक बिचारा ॥

अति सुंदर सुचि सुखद सुसीला । गावहिं बेद जासु जस लीला ॥ १ ॥

अब भी हमारा कहा मानो, हमने तुम्हारे लिये अच्छा वर विचारा है। वह बहुत ही सुन्दर, पवित्र, सुखदायक और सुशील है, जिसका यश और लीला वेद गाते हैं ॥ १ ॥

दूषन रहित सकल गुन रासी । श्रीपति पुर बैकुण्ठ निवासी ॥

अस बरु तुम्हहि मिलाउब आनी । सुनत बिहसि कह बचन भवानी ॥ २ ॥

वह दोषोंसे रहित, सारे सद्गुणोंकी राशि, लक्ष्मीका स्वामी और वैकुण्ठपुरीका रहनेवाला है। हम ऐसे वरको लेकर तुमसे मिला देंगे। यह सुनते ही पार्वतीजी हँसकर बोलीं—॥ २ ॥

सत्य कहेहु गिरिभव तनु पहा । हठ न छूट छूटै बरु देहा ॥

कनकउ पुनि पथान तैं होई । जारेहुँ सहजु न परिहर सोई ॥ ३ ॥

आपने यह सत्य ही कहा कि मेरा यह शरीर पर्वतसे उत्पन्न हुआ है। इसलिये हठ नहीं छूटेगा, शरीर भले ही छूट जाय। सोना भी पत्थरसे ही उत्पन्न होता है, सो वह जलाये जानेपर भी अपने स्वभाव (सुवर्णत्व) को नहीं छोड़ता ॥ ३ ॥

नारदबचन न मैं परिहरऊँ । बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ ॥

गुर कैं बचन प्रतीति न जेही । सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही ॥ ४ ॥

अतः मैं नारदजीके वचनोंको नहीं छोड़ूँगी; चाहे घर बसे या उजड़े, इससे मैं नहीं डरती। जिसको गुरुके वचनोंमें विश्वास नहीं है, उसको सुख और सिद्धि स्वप्नमें भी सुगम नहीं होती ॥ ४ ॥

दो०—महादेव अवगुन भवन बिष्णु सकल गुन धाम ।

जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम ॥८०॥

माना कि महादेवजी अवगुणोंके भवन हैं और विष्णुजी समस्त सद्गुणोंके धाम हैं; पर जिसका मन जिसमें रम गया, उसको तो उसीसे काम है ॥८०॥

चौ०—जौं तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा । सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा ॥

अब मैं जन्मु संभु हित हारा । को गुन दूषन करै बिचारा ॥१॥

हे मुनीश्वरो ! यदि आप पहले मिलते, तो मैं आपका उपदेश सिर-माथे रखकर सुनती । परन्तु अब तो मैं अपना जन्म शिवजीके लिये हार चुकी । फिर गुण-दोषोंका विचार कौन करे ? ॥१॥

जौं तुम्हरे हठ हृदय बिसेषी । रहि न जाइ बिनु किणँ बरेषी ॥

तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं । बर कन्या अनेक जग माहीं ॥२॥

यदि आपके हृदयमें बहुत ही हठ है और विवाहकी बातचीत (बरेखी) किये बिना आपसे रहा ही नहीं जाता, तो संसारमे वर-कन्या बहुत हैं, खिलवाड़ करनेवालोंको आलस्य तो होता नहीं [और कहीं जाकर कीजिये] ॥२॥

जन्म कोटि लगि रगर हमारी । बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी ॥

तजउँ न नारद कर उपदेस । आपु कहहिं सत बार महेसु ॥३॥

मेरा तो करोड़ जन्मोंतक यही हठ रहेगा कि या तो शिवजीको वरूँगी, नहीं तो कुमारी ही रहूँगी । स्वयं शिवजी सौ बार कहें, तो भी नारदजीके उपदेशको न छोड़ूँगी ॥३॥

मैं पाँ परउँ कहइ जगदंबा । तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलंबा ॥

देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी । जय जय जगदम्बिके भवानी ॥४॥

जगज्जननी पार्वतीजीने फिर कहा कि मैं आपके पैरों पड़ती हूँ । आप अपने घर जाइये, बहुत देर हो गयी । [शिवजीमें पार्वतीजीका ऐसा] प्रेम देखकर शानी मुनि बोले—हे जगज्जननी, हे भवानी, आपकी जय हो ! जय हो ॥४॥

दो०—तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगत पितु मातु ।

नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गातु ॥८१॥

आप माया हैं और शिवजी भगवान् हैं । आप दोनों समस्त जगत्के माता-पिता हैं । [यह कहकर] मुनि पार्वतीजीके चरणोंमें सिर नवाकर चल दिये । उनके शरीर बार-बार पुलकित हो रहे थे ॥८१॥

चौ०—जाइ मुनिन्ह हिमवंतु पठाए । करि बिनती गिरजहि गृह ल्याए ॥

बहुरि सप्तारिषि सिव पहिं जाई । कथा उमा कै सकल सुनाई ॥१॥

मुनियोंने जाकर हिमवान्को पार्वतीजीके पास भेजा और वे बिनती करके उनको घर ले आये; फिर सप्तर्षियोंने शिवजीके पास जाकर उनको पार्वतीजीकी सारी कथा सुनायी ॥१॥

भय मगन सिव सुनत सनेहा । हरषि सप्तारिषि गवने गेहा ॥

मनु थिर करि तब संभु सुजाना । लगे करन रघुनाथक ध्याना ॥२॥

पार्वतीजीका प्रेम सुनते ही शिवजी आनन्दमग्न हो गये। सतीर्षि प्रसन्न होकर अपने घर (लोक) को चले गये। तब सुजान शिवजी मनको स्थिर करके श्रीरघुनाथजीका ध्यान करने लगे ॥ २ ॥

तारकु असुर भयउ तेहि काला । भुज प्रताप बल तेज बिसाला ॥
तेहिं सब लोक लोकपति जीते । भय देव सुख संपति रीते ॥ ३ ॥

उसी समय तारक नामका असुर हुआ, जिसकी भुजाओंका बल, प्रताप और तेज बहुत बड़ा था। उसने सब लोक और लोकपालोंको जीत लिया, सब देवता सुख और सम्पत्तिसे रहित हो गये ॥ ३ ॥

अजर अमर सो जीति न जाई । हारे सुर करि विविध लराई ॥
तब धिरंघि सन जाइ पुकारे । देखे विधि सब देव दुखारे ॥ ४ ॥

वह अजर-अमर था, इसलिये किसीसे जीता नहीं जाता था। देवता उसके साथ बहुत तरहकी लड़ाइयाँ लड़कर हार गये। तब उन्होंने ब्रह्माजीके पास जाकर पुकार मचायी। ब्रह्माजीने सब देवताओंको दुखी देखा ॥ ४ ॥

दो०—सब सन कहा बुझाइ विधि दनुज निधन तब होइ ।

संभु सुक्र संभूत सुत एहि जीतै रन सोइ ॥ ८२ ॥

ब्रह्माजीने सबको समझाकर कहा—इस दैत्यकी मृत्यु तब होगी जब शिवजीके वीर्यसे पुत्र उत्पन्न हों, इसको युद्धमें वही जीतेगा ॥ ८२ ॥

चो०—मोर कहा सुनि करहु उपाई । होइहि ईश्वर करिहि सहाई ॥
सती जो तजी दच्छमख देहा । जनमी जाइ हिमाचल गेहा ॥ १ ॥

मेरी बात सुनकर उपाय करो। ईश्वर सहायता करेंगे और काम हो जायगा। सतीजीने जो दक्षके यज्ञमें देहका त्याग किया था, उन्होंने अब हिमाचलके घर जाकर जन्म लिया है ॥ १ ॥

तेहिं तपु कीन्ह संभु पति लागी । सिव समाधि बैठे सबु त्यागी ॥
जदपि अहइ असमंजस भारी । तदपि बात एक सुनहु हमारी ॥ २ ॥

और उन्होंने शिवजीको पति बनानेके लिये तप किया है; इधर शिवजी सब छोड़-छाड़कर समाधि लगा बैठे हैं। यद्यपि है तो बड़े असमंजसकी बात, तथापि मेरी एक बात सुनो ॥ २ ॥

पठवहु कामु जाइ सिव पाहीं । करै छोभु संकर मन माहीं ॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई । करवाउब बिबाहु बरिआई ॥ ३ ॥

तुम जाकर कामदेवको शिवजीके पास भेजो, वह शिवजीके मनमें क्षोभ उत्पन्न करे (उनकी समाधि टूट जाय)। तब हम जाकर शिवजीके चरणोंमें सिर रख देंगे और जबर्दस्ती (उन्हें राजी करके) विवाह करा देंगे ॥ ३ ॥

एहि विधि भलेहिं देवहित होई । मत अति नीक कहइ सबु कोई ॥
अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू । प्रगटेउ विषमबान झषकेतू ॥ ४ ॥

इस प्रकारसे भले ही देवताओंका हित हो [और तो कोई उपाय नहीं है।] सबने कहा—यह सम्मति बहुत अच्छी है। फिर देवताओंने बड़े प्रेमसे स्तुति की, तब विषम (पंच) बाण धारण करनेवाला और मछलीके चिह्नयुक्त ध्वजावाला कामदेव प्रकट हुआ ॥ ४ ॥

दो०—सुरन्ह कही निज विपति सब सुनि मन कीन्ह विचार ।

संभु बिरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ अस मार ॥ ८३ ॥

देवताओंने कामदेवसे अपनी सारी विपत्ति कही । सुनकर कामदेवने मनमें विचार किया और हँसकर देवताओंसे यों कहा कि यद्यपि शिवजीके साथ विरोध करनेमें मेरी कुशल नहीं है, ॥ ८३ ॥

चौ०—तदपि करब मैं काजु तुम्हारा । श्रुति कह परम धरम उपकारा ॥

परहित लागि तजइ जो देही । संतत संत प्रसंसहिं तेही ॥ १ ॥

तथापि मैं तुम्हारा काम करूँगा, क्योंकि वेद [दूसरेके] उपकारको परम धर्म कहते हैं । जो दूसरेके हितके लिये अपना शरीर त्याग देता है, संत सदा उसकी बड़ाई करते हैं ॥ १ ॥

अस कहि चलेउ सबहिं सिरु नाई । सुमनधनुष कर सहित सहाई ॥

चलत मार अस हृदयँ बिचारा । सिवबिरोध धुव मरनु हमारा ॥ २ ॥

यों कह और सबको सिर नवाकर कामदेव अपने पुष्पके धनुषको हाथमें लेकर [वसन्तादि] सहायकोंके सहित चला । चलते समय कामदेवने हृदयमें विचार किया कि शिवजीके साथ विरोध करनेसे मेरा मरण निश्चित है ॥ २ ॥

तब आपन प्रभाउ बिस्तारा । निज बस कीन्ह सकल संसारा ॥

कोपेउ जबहिं बारिखरकेतू । छन महुँ मिटे सकल श्रुतिसेतू ॥ ३ ॥

तब उसने अपना प्रभाव फैलाया और समस्त संसारको अपने वशमें कर लिया । जिस समय उस मछलीके चिह्नकी ध्वजावाले कामदेवने कोप किया, उस समय क्षणभरमें ही वेदोंकी सारी मर्यादा मिट गयी ॥ ३ ॥

ब्रह्मचर्ज व्रत संजम नाना । धीरज धरम ग्यान बिग्याना ॥

सदाचार जप जोग बिरागा । सभय बिबेक कटकु सभु भागा ॥ ४ ॥

ब्रह्मचर्य, नियम, नाना प्रकारके संयम, धीरज, धर्म, ज्ञान, विशान, सदाचार, जप, योग, वैराग्य आदि विवेककी सारी सेना डरकर भाग गयी ॥ ४ ॥

छं०—भागेउ बिबेकु सहाय सहित सो सुभट संजुगमहि मुरे ।

सदग्रंथ पर्वतकंदरन्हि महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे ॥

होनिहार का करतार को रखवार जग खरभर परा ।

दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपि कर धनु सर धरा ॥

विबेक अपने सहायकोंसहित भाग गया, उसके योद्धा रणभूमिसे पीठ दिखा गये । उस समय वे सब सद्ग्रन्थरूपी पर्वतकी कन्दराओंमें जा छिपे (अर्थात् ज्ञान, वैराग्य, संयम, नियम, सदाचारादि ग्रन्थोंमें ही लिखे रह गये; उनका आचरण छूट गया) । सारे जगत्में खलबली मच गयी [और सब कहने लगे] हे विघाता ! अब क्या होनेवाला है ? हमारी रक्षा कौन करेगा ? ऐसा दो सिरवाला कौन है, जिसके लिये रतिके पति (कामदेव) ने कोप करके हाथमें धनुष-बाण उठाया है ?

दो०—जे सजीव जग अचर चर नारि पुरुष अस नाम ।

ते निज निज भरजाद तजि भए सकल बस काम ॥ ८४ ॥

जगत्में स्त्री-पुरुष संज्ञावाले जितने चर-अचर प्राणी थे, वे सब अपनी-अपनी मर्यादा छोड़कर कामके वश हो गये ॥ ८४ ॥

चौ०—सब के हृदयें मदन अभिलाषा । लता निहारि नवहिं तरुसाखा ॥
नदीं उमगि अंबुधि कहूँ धाई । संगम करहिं तलाव तलाई ॥ १ ॥

सबके हृदयमें कामकी इच्छा हो गयी । लताओं (बेलों) को देखकर वृक्षोंकी डालियाँ छुकने लगीं । नदियाँ उमड़-उमड़कर समुद्रकी ओर दौड़ीं और ताल-तलैयाँ भी आपसमें संगम करने (मिलने-जुलने) लगीं ॥ १ ॥

जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी । को कहि सकइ सचेतन करनी ॥
पसु पच्छी नभ जल थलचारी । भए कामबस समय बिसारी ॥ २ ॥

जब जड़ (वृक्ष, नदी आदि) की यह दशा कही गयी, तब चेतन जीवोंकी करनी कौन कह सकता है ! आकाश, जल और पृथ्वीपर विचरनेवाले (सारे) पशु-पक्षी [अपने संयोगका] समय भुलाकर कामके वश हो गये ॥ २ ॥

मदन अंध व्याकुल सब लोका । निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका ॥
देव दनुज नर किंनर व्याला । प्रेत पिशाच भूत बेताला ॥ ३ ॥

सबलोग कामान्ध होकर व्याकुल हो गये । चकवा-चकई रात-दिन नहीं देखते । देव, दैत्य, मनुष्य, किन्नर, सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत, बेताल—॥ ३ ॥

इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी । सदा काम के चेरे जानी ॥
सिद्ध विरक्त महामुनि जोगी । तेपि कामबस भए बियोगी ॥ ४ ॥

ये तो सदा ही कामके गुलाम हैं, यह समझकर मैंने इनकी दशाका वर्णन नहीं किया । सिद्ध, विरक्त, महामुनि और महान् योगी भी कामके वश होकर योगरहित या स्त्रीके विरही हो गये ॥ ४ ॥

छं०—भए कामबस जोगीस तापस पावैरन्हि की को कहै ।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे ॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं ।
हुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं ॥

जब योगीश्वर और तपस्वी भी कामके वश हो गये, तब पामर मनुष्योंकी कौन कहे ! जो समस्त चराचर जगत्को ब्रह्ममय देखते थे वे अब उसे स्त्रीमय देखने लगे । स्त्रियाँ सारे संसारको पुरुषमय देखने लगीं और पुरुष उसे स्त्रीमय देखने लगे । दो षष्ठीतक सारे ब्रह्माण्डके अन्दर कामदेवका रत्ना हुआ यह कौतुक (तमाशा) रहा ॥

सो०—धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे ।

जे राखे रघुवीर ते उबरे तेहि काल महुँ ॥ ८५ ॥

किसीने भी हृदयमें धैर्य नहीं धारण किया । कामदेवने सबके मन हर लिये । श्रीरघुनाथजीने जिनकी रक्षा की केवल वे ही उस समय बचे रहे ॥ ८५ ॥

चौ०—उभय घरी अस कौतुक भयऊ । जौ लगि कामु संभु पहिं गयऊ ॥

सिंहि बिलोकि ससंकेउ मारु । भयउ जथाथिति सबु संसारु ॥ १ ॥

दो घड़ीतक ऐसा तमाशा हुआ, जबतक कामदेव शिवजीके पास पहुँच गया। शिवजीको देखकर कामदेव डर गया, तब सारा संसार फिर जैसा-का-तैसा स्थिर हो गया ॥ १ ॥

भय तुरत सब जीव सुखारे । जिमि मद उतरि गएँ मतवारे ॥

रुद्रहि देखि मदन भय माना । दुराधरष दुर्गम भगवाना ॥ २ ॥

तुरंत ही सब जीव वैसे ही सुखी हो गये जैसे मतवाले मद उतर जानेपर सुखी होते हैं। दुराधरष (जिनका पराजित करना अत्यन्त ही कठिन है) और दुर्गम (जिनका पार पाना कठिन है) भगवान् (सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, और वैराग्यरूप छः ईश्वरीय गुणोंसे युक्त) रुद्र (महामयङ्कर) शिवजीको देखकर कामदेव भयभीत हो गया ॥ २ ॥

फिरत लाज कछु करि नहिं जाई । मरनु ठानि मन रचेसि उपाई ॥

प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा । कुसुमित नव तरुराजि बिराजा ॥ ३ ॥

लौट जानेमें लजा है, और करते कुछ बनता नहीं। अखिर मनमें मरनेका निश्चय करके उसने उपाय रचा। तुरंत ही सुन्दर ऋतुराज वसन्तको प्रकट किया। फूले हुए नये-नये वृक्षोंके समूह सुशोभित हो गये ॥ ३ ॥

बन उपवन बापिका तड़ागा । परम सुभग सब दिसाबिभागा ॥

जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा । देखि मुपहुँ मन मनसिज जागा ॥ ४ ॥

वन-उपवन, बावली-तालाब और सब दिशाओंके विभाग परम सुन्दर हो गये। जहाँ-तहाँ मानो प्रेम उमड़ रहा है, जिसे देखकर मरे मनोमें भी कामदेव जाग उठा ॥ ४ ॥

छं०—जागइ मनोभव मुपहुँ मन बन सुभगता न परै कही ।

सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही ॥

बिकसे सरन्धि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा ।

कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा ॥

मरे हुए मनमें भी कामदेव जागने लगा। वनकी सुन्दरता कही नहीं जा सकती। कामरूपी अग्निका सच्चा मित्र शीतल-मन्द-सुगन्धित पवन चलने लगा। सरोवरोंमें अनेकों कमल खिल गये, जिनपर सुन्दर भौरोंके समूह गुंजार करने लगे। राजहंस, कोयल और तोते रसीली बोली बोलने लगे और अप्सराएँ गा-गाकर नाचने लगीं।

दो०—सकल कला करि कोटि बिधि हारेउ सेन समेत ।

चली न अचल समाधि सिव कोपेउ हृदयनिकेत ॥ ८६ ॥

कामदेव अपनी सेनासमेत करोड़ों प्रकारकी सब कलाएँ (उपाय) करके हार गया, पर शिवजीकी अचल समाधि न डिगी। तब कामदेव क्रोधित हो उठा ॥ ८६ ॥

चौ०—देखि रसाल बिटप बर साखा । तेहि पर चढ़ेउ मदन मन माखा ॥

सुमनचाप निज सर संधाने । अति रिस ताकि श्रवन लगि ताने ॥ १ ॥

आमके वृक्षकी एक सुन्दर डाली देखकर मनमें क्रोधसे भरा हुआ कामदेव उसपर चढ़ गया। उसने पुष्पघनुष-पर अपने [पाँचों] बाण चढ़ाये और अत्यन्त क्रोधसे [लक्ष्यकी ओर] ताककर उन्हें कान्तक तान लिया ॥ १ ॥

छाड़े बिषम बिसिख उर लागे । छूटि समाधि संभु तब जागे ॥
भयउ ईस मन छोभु बिसेषी । नयन उघारि सकल दिसि देखी ॥ २ ॥

कामदेवने तीक्ष्ण पाँच बाण छोड़े, जो शिवजीके हृदयमें लगे; तब उनकी समाधि टूट गयी और वे जाग गये । ईश्वर (शिवजी) के मनमें बहुत क्षोभ हुआ, उन्होंने आँखें खोलकर सब ओर देखा ॥ २ ॥

सौरभपल्लव मदनु बिलोका । भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोका ॥
तब सिव तीसर नयन उघारा । चितवत कामु भयउ जरि छारा ॥ ३ ॥

जब आमके पत्तोंमें [छिपे हुए] कामदेवको देखा तो उन्हें बड़ा क्रोध हुआ, जिससे तीनों लोक काँप उठे । तब शिवजीने तीसरा नेत्र खोला, उनके देखते ही कामदेव जलकर भस्म हो गया ॥ ३ ॥

हाहाकार भयउ जग भारी । डरपे सुर भय असुर सुखारी ॥
समुक्षि कामसुखु सोचहिं भोगी । भय अकंटक साधक जोगी ॥ ४ ॥

जगत्में बड़ा हाहाकार मच गया । देवता डर गये । दैत्य सुखी हुए । भोगी लोग कामसुखको याद करके चिन्ता करने लगे और साधक योगी निष्कण्टक हो गये ॥ ४ ॥

छं०—जोगी अकंटक भय पतिगति सुनत रति मुरुछित भई ।
रोदति बदति बहु भौंति करुना करत संकर पहिं गई ॥
अति प्रेम करि विनती बिबिध बिधि जोरि कर सन्मुख रही ।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही ॥

योगी निष्कण्टक हो गये । कामदेवकी स्त्री रति अपने पतिकी यह दशा सुनते ही मूर्च्छित हो गयी । रोनी-चिल्लाती, और भौंति-भौंतिसे करुणा करती हुई वह शिवजीके पास गयी । अत्यन्त प्रेमके साथ अनेकों प्रकारसे विनती करके हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो गयी । शीघ्र प्रसन्न होनेवाले कृपालु शिवजी अबला (असहाय स्त्री) को देखकर सुन्दर (उसको सान्त्वना देनेवाले) वचन बोले—

दो०—अब तैं रति तव नाथ कर होइहि नामु अनंगु ।

बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंगु ॥ ८७ ॥

हे रति ! अबसे तेरे स्वामीका नाम 'अनङ्ग' होगा । वह बिना ही शरीरके सबको व्यापेगा । अब तू अपने पतिसे मिलनेकी बात सुन ॥ ८७ ॥

चौ०—जब जदुबंस कृष्ण अवतारा । होइहि हरन महा महिभारा ॥
कृष्णतनय होइहि पति तोरा । बचनु अन्यथा होइ न मोरा ॥ १ ॥

जब पृथ्वीके बड़े भारी भारको उतारनेके लिये यदुवंशमें श्रीकृष्णका अवतार होगा, तब तेरा पति उनके पुत्र (प्रद्युम्न) के रूपमें उत्पन्न होगा । मेरा यह वचन अन्यथा नहीं होगा ॥ १ ॥

रति गवनी सुनि संकरबानी । कथा अपर अब कहउँ बखानी ॥
देवन्ह समाचार सब पाप । ब्रह्मादिक बैकुण्ठ सिधाए ॥ २ ॥

शिवजीके वचन सुनकर रति चली गयी । अब दूसरी कथा बखानकर (विस्तारसे) कहता हूँ । ब्रह्मादि देवताओंने ये सब समाचार सुने तो वे वैकुण्ठको चले ॥ २ ॥

सब सुर बिष्णु बिरंचि समेता । गए जहाँ सिव कृपानिकेता ॥
पृथक पृथक तिन्ह कीन्हि प्रसंसा । भय प्रसन्न चंद्र अवतंसा ॥ ३ ॥

फिर वहाँसे विष्णु और ब्रह्मासहित सब देवता वहाँ गये जहाँ कृपाके धाम शिवजी थे। उन सबने शिवजीकी अलग-अलग स्तुति की, तब शशिभूषण शिवजी प्रसन्न हो गये ॥ ३ ॥

बोले कृपासिंधु कृपकेतु । कहहु अमर आप केहि हेतु ॥
कह बिधि तुम्ह प्रभु अंतरजामी । तदपि भगति बस बिनवउँ स्वामी ॥ ४ ॥

कृपाके समुद्र शिवजी बोले—हे देवताओ, कहिये, आप किस लिये आये हैं ? ब्रह्माजीने कहा—हे प्रभो ! आप अन्तर्यामी हैं, तथापि हे स्वामी ! भक्तिवश मैं आपसे विनती करता हूँ ॥ ४ ॥

दो०—सकल सुरन्ह के हृदयँ अस संकर परम उछाहु ।

निज नयनन्हि देखा चाहिँ नाथ तुम्हार बिबाहु ॥ ८८ ॥

हे शंकर ! सब देवताओंके मनमें ऐसा परम उत्साह है कि हे नाथ ! वे अपनी आँखोंसे आपका विवाह देखना चाहते हैं ॥ ८८ ॥

चो०—यह उत्सव देखिय भरि लोचन । सोइ कहु करहु मदनमद मोचन ॥
कामु जारि रति कहँ बर दीन्हा । कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा ॥ १ ॥

हे कामदेवके मदको चूर करनेवाले ! आप ऐसा कुछ कीजिये जिससे सब लोग इस उत्सवको नेत्र भरकर देखें । हे कृपाके सागर ! कामदेवको भस्म करके आपने रतिको जो वरदान दिया सो बहुत ही अच्छा किया ॥ १ ॥

खासति करि पुनि करहिँ पसाऊ । नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ ॥
पारवती तपु कीन्ह अपारा । करहु तासु अब अंगीकारा ॥ २ ॥

हे नाथ ! श्रेष्ठ स्वामियोंका यह सहज स्वभाव ही है कि वे पहले दण्ड देकर फिर कृपा किया करते हैं । पार्वतीने अपार तप किया है, अब उन्हें अंगीकार कीजिये ॥ २ ॥

सुनि विधिविनय समुझि प्रभुयानी । ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी ॥
तब देवन्ह दुंदुभी बजाई । बरषि सुमन जय जय सुरसाई ॥ ३ ॥

ब्रह्माजीकी बात सुनकर और प्रभु (श्रीरामचन्द्रजी) के वचनोंको याद करके शिवजीने प्रसन्नतापूर्वक कहा 'ऐसा ही हो ।' तब देवताओंने नगाड़े बजाये और फूलोंकी वर्षा करके 'जय हो ! देवताओंके स्वामीकी जय हो' ऐसा कहने लगे ॥ ३ ॥

अवसर जानि सत्तरिषि आप । तुरतहिँ बिधि गिरिभवन पठाए ॥
प्रथम गए जहँ रहौ भवानी । बोले मधुर वचन छल सानी ॥ ४ ॥

उचित अवसर जानकर सत्तरि आये और ब्रह्माजीने तुरंत ही उन्हें हिमाचलके घर भेज दिया । वे पहले वहाँ गये जहाँ श्रीपार्वतीजी थीं और उनसे छलसे भरे मीठे (विनोदयुक्त आनन्द पहुँचानेवाले) वचन बोले—॥ ४ ॥

दो०—कहा हमार न सुनेहु तब नारद कें उपदेस ।

अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ कामु महेस ॥ ८९ ॥

नारदजीके उपदेशसे तुमने उस समय हमारी बात नहीं सुनी । अब तो तुम्हारा प्रण झूठा हो गया, क्योंकि महादेवजीमे कामको ही भस्म कर डाला ॥ ८९ ॥

मासपारायण—तीसरा विश्राम

चौ०—सुनि बोलीं मुसुकाइ भवानी । उचित कहेहु मुनिबर बिग्यानी ॥

तुम्हरेँ जान कामु अब जारा । अब लगि संभु रहे सबिकारा ॥ १ ॥

यह सुनकर पार्वतीजी मुस्कुराकर बोलीं—हे विशानी मुनिवरो ! आपने उचित ही कहा । आपकी समझमें शिवजीने कामदेवको अब जलाया है, अबतक तो वे विकारयुक्त (कामी) ही रहे ! ॥ १ ॥

हमरेँ जान सदा सिव जोगी । अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥

जौं मैं सिव सेये अस जानी । प्रीति समेत कर्म मन बानी ॥ २ ॥

किन्तु हमारी समझसे तो शिवजी सदासे ही योगी, अजन्मा, अनिन्द्य, कामरहित और भोगहीन हैं और यदि मैंने शिवजीको ऐसा समझकर ही मन, वचन और कर्मसे प्रेमसहित उनकी सेवा की है—॥ २ ॥

तौ हमार पन सुनहु मुनीसा । करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा ॥

तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा । सोइ अति बड़ अबिवेकु तुम्हारा ॥ ३ ॥

तो हे मुनीश्वरो ! सुनिये, वे कृपानिधान भगवान् मेरी प्रतिज्ञाको सत्य करेंगे । आपने जो यह कहा कि शिवजीने कामदेवको भस्म कर दिया, यही आपका बड़ा भारी अविवेक है ॥ ३ ॥

तात अनल कर सहज सुभाऊ । हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ ॥

गएँ समीप सो अवसि नसाई । असि मन्मथ महेस की नाई ॥ ४ ॥

हे तात ! अग्निका तो यह सहज स्वभाव ही है कि पाल उसके समीप कभी जा ही नहीं सकता और जानेपर वह अवश्य नष्ट हो जायगा । महादेवजी और कामदेवके सम्बन्धमें भी यही न्याय (बात) समझना चाहिये ॥ ४ ॥

दो०—हियँ हरषे मुनि बचन सुनि देखि प्रीति बिस्वास ।

चले भवानिहि नाइ सिर गए हिमाचल पास ॥ ९० ॥

पार्वतीके वचन सुनकर और उनका प्रेम तथा विश्वास देखकर मुनि हृदयमें बड़े प्रसन्न हुए । वे भवानीको सिर नवाकर चल दिये और हिमाचलके पास पहुँचे ॥ ९० ॥

चौ०—सबु प्रसंगु गिरिपतिहि सुनावा । मदनदहन सुनि अति दुखु पावा ॥

बहुरि कहेउ रति कर बरदाना । सुनि हिमवंत बहुत सुखु माना ॥ १ ॥

उन्होंने पर्वतराज (हिमाचल) को सब हाल सुनाया । कामदेवका भस्म होना सुनकर हिमाचल बहुत दुखी हुए । फिर मुनियोने रतिके वरदानकी बात कही, उसे सुनकर हिमवान्ने बहुत सुख माना ॥ १ ॥

हृदयँ बिचारि संभुप्रभुताई । सादर मुनिबर लिए बोलाई ॥

सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई । बेगि बेदबिधि लगन धराई ॥ २ ॥

शिवजीके प्रभावको मनमें विचारकर हिमाचलने श्रेष्ठ मुनियोंको आदरपूर्वक बुला लिया और उनसे शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और शुभ घड़ी सोधवाकर वेदकी विधिके अनुसार शीघ्र ही लग्न निश्चय कराकर लिखवा लिया ॥ २ ॥

पत्री ससरिषिन्ह सोइ दीन्ही । गहि पद बिनय हिमाचल कीन्ही ॥

जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्ही सो पाती । बाचत प्रीति न हृदयँ समाती ॥ ३ ॥

फिर हिमाचलने वह लग्नपत्रिका ससर्पियोंको दे दी और चरण पकड़कर उनकी विनती की । उन्होंने जाकर वह लग्नपत्रिका ब्रह्माजीको दी । उसको पढ़ते समय उनके हृदयमें प्रेम समाता न था ॥ ३ ॥

लगन बाधि अज सबहि सुनाई । हरषे मुनि सब सुर समुदाई ॥

सुमनसृष्टि नभ बाजन बाजे । मंगल कलस दसहुँ दिसि साजे ॥ ४ ॥

ब्रह्माजीने लग्न पढ़कर सबको सुनाया, उसे सुनकर सब मुनि और देवताओंका सारा समाज हर्षित हो गया । आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी, बाजे बजने लगे और दसों दिशाओंमें मंगल-कलश सजा दिये गये ॥ ४ ॥

दो०—लगे सँवारन सकल सुर बाहन विविध विमान ।

होहिं सगुन मंगल सुभद करहिं अपहरा गान ॥ ९१ ॥

सब देवता अपने भाँति-भाँतिके वाहन और विमान सजाने लगे । कल्याणप्रद मंगल शकुन होने लगे और अप्सराएँ गाने लगीं ॥ ९१ ॥

चौ०—सिबहि संभुगन करहिं सिंगारा । जटामुकुट अहिमौर सँवारा ॥

कुंडल कंकन पहिरे ब्याला । तन विभूति पट केहरि छाला ॥ १ ॥

शिवजीके गण शिवजीका शृंगार करने लगे । जटाओंका मुकुट बनाकर उसपर साँपोंका मोर सजाया गया । शिवजीने साँपोंके ही कुण्डल और कंकण पहने, शरीरपर विभूति रमायी और वस्त्रकी जगह बाघंबर लपेट लिया ॥ १ ॥

ससि ललाट सुंदर सिर गंगा । नयन तीनि उपबीत भुजंगा ॥

गरल कंठ उर नर सिर माला । असिव बेष सिवधाम कृपाला ॥ २ ॥

शिवजीके सुन्दर मस्तकपर चन्द्रमा, सिरपर गंगाजी, तीन नेत्र, साँपोंका जनेऊ, गलेमें विष और छातीपर नरमुण्डोंकी माला थी । इस प्रकार उनका वेष अद्भुत होनेपर भी वे कल्याणके धाम और कृपालु हैं ॥ २ ॥

कर त्रिसुल अरु डमरु विराजा । चले बसहुँ चढ़ि बाजहिं बाजा ॥

देखि सिबहि सुरत्रिय मुसुकाहीं । बर लायक दुलहिनि जग नाहीं ॥ ३ ॥

एक हाथमें त्रिशूल और दूसरेमें डमरू सुशोभित है । शिवजी बैलपर चढ़कर चले । बाजे बज रहे हैं । शिवजीको देखकर देवाङ्गनाएँ मुस्कुरा रही हैं [और कहती हैं कि] इस वरके योग्य दुल्हन संसारमें नहीं मिलेगी ॥ ३ ॥

विष्णु बिरंचि आदि सुरभ्राता । चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता ॥

सुर समाज सब भाँति अनूपा । नहिं बरात दूल्हा अनुरूपा ॥ ४ ॥

विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओंके समूह अपने-अपने वाहनों (सवारियों) पर चढ़कर बरातमें चले । देवताओंका समाज सब प्रकारसे अनुपम (परम सुन्दर) था; पर दूल्हेके योग्य बरात न थी ॥ ४ ॥

दो०—विष्णु कहा अस बिहंसि तब बोलि सकल दिसिराज ।

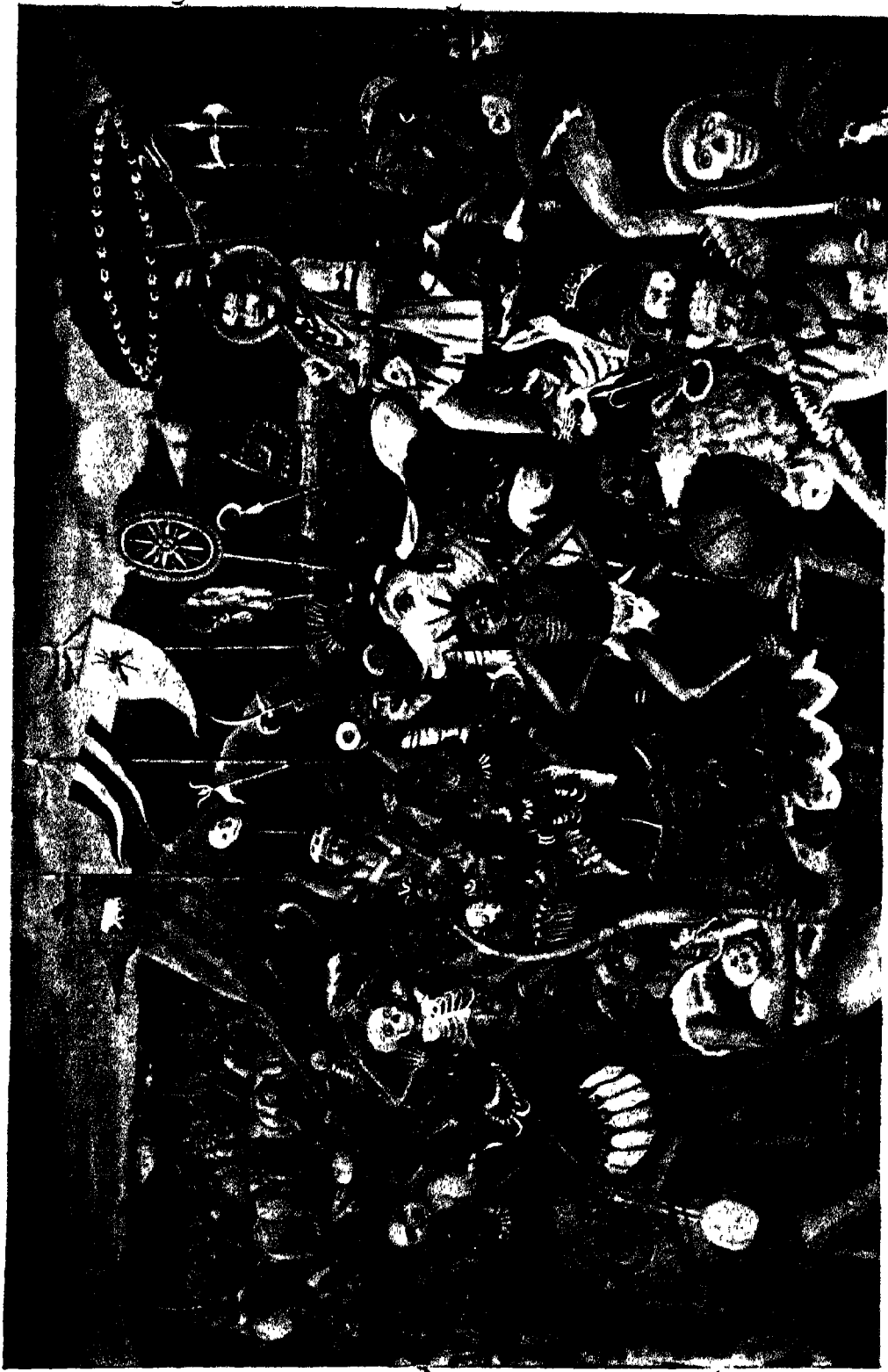
बिलग बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज ॥ ९२ ॥

तब विष्णुभगवान्ने सब दिक्पालोंको बुलाकर हँसकर कहा—सब लोग अपने-अपने दलसमेत अलग-अलग होकर चले ॥ ९२ ॥

चौ०—बर अनुहारि बरात न भाई । हँसी कौहहु परपुर जाई ॥

विष्णुबचन सुनि सुर मुसुकाने । निज निज सेन सहित बिलगाने ॥ १ ॥

शिवजीकी बरात --- तन खीन काँउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरे । भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरे ॥



खर खान सुअर सुकाल मुख गन बेप अगनित को गने । बहु जिनस ग्रन पिसाच जोगि जमान बगनत नहि वने ॥
नाचहि गावहि गीत पगम तंगी भूत सब । देखत अति विपरीत बोलहि बचन विचित्र विधि ॥

हे भाई ! हमलोगोंकी यह बरात बरके योग्य नहीं है । क्या पराये नगरमें जाकर हँसी कराओगे ?
विष्णुभगवान्की बात सुनकर देवता मुस्कराये और वे अपनी-अपनी सेनासहित अलग हो गये ॥ १ ॥

मनहीं मन महेसु मुसुकाहीं । हरि के बिंग्य बचन नहिं जाहीं ॥
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे । भुंगिहि प्रेरि सकल गन ठेरे ॥ २ ॥

महादेवजी [यह देखकर] मन-ही-मन मुस्कराते हैं कि विष्णुभगवान्के व्यङ्ग्य-वचन (दिल्ली) नहीं छूटते । अपने प्यारे (विष्णुभगवान्) के इन अति प्रिय वचनोंको सुनकर शिवजीने भी भुंगीको भेजकर अपने सब गणोंको बुलवा लिया ॥ २ ॥

सिब अनुसासन सुनि सब आप । प्रभु पद जलज सीस तिन्ह नाप ॥
नाना बाहन नाना बेषा । बिहसे सिब समाज निज देखा ॥ ३ ॥

शिवजीकी आज्ञा सुनते ही सब चले आये और उन्होंने स्वामीके चरणकमलोंमें सिर नवाया ।
तरह-तरहकी सवारियों और तरह-तरहके वेषवाले अपने समाजको देखकर शिवजी हँसे ॥ ३ ॥

कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू । बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू ॥
बिपुल नयन कोउ नयनबिहीना । रिष्टपुष्ट कोउ अति तनखीना ॥ ४ ॥

कोई बिना मुखका है, किसीके बहुत-से मुख हैं, कोई बिना हाथ-पैरका है तो किसीके कई हाथ-पैर हैं ।
किसीके बहुत आँखें हैं, तो किसीके एक भी आँख नहीं है । कोई बहुत मोटा-ताजा है तो कोई बहुत ही दुबला-पतला है ॥ ४ ॥

छं०—तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें ।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें ॥
खर खान सुखर ख्काल मुख गन बेष अगनित को गनै ।
बहु जिनस प्रेत पिशाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै ॥

कोई बहुत दुबला, कोई बहुत मोटा, कोई पवित्र और कोई अपवित्र वेष धारण किये हुए है ।
भयङ्कर गहने पहने, हाथमें कपाल लिये हैं और सब-के-सब शरीरमें ताजा खून लगे हुए हैं । गधे, कुत्ते, सूअर और सियाके-से उनके मुख हैं । गणोंके अनगिनत वेषोंको कौन गिने ? बहुत प्रकारके प्रेत, पिशाच और योगिनियोंकी जमातें हैं । उनका वर्णन करते नहीं बनता ।

सो०—नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब ।
देखत अति बिपरीत बोलहिं बचन बिचित्र बिधि ॥ ९३ ॥

भूत-प्रेत नाचते और गाते हैं, वे सब बड़े मौजी हैं । देखनेमें बहुत ही बेढंगे जान पड़ते हैं और बड़े ही विचित्र ढंगसे बोलते हैं ॥ ९३ ॥

चौ०—जस दूल्हा तसि बनी बराता । कौतुक बिबिध होहिं मग जाता ॥
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना । अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना ॥ १ ॥

जैसा दूल्हा है, अब वैसी ही बरात बन गयी है । मार्गमें चलते हुए भाँति-भाँतिके कौतुक (तमाशे) होते जाते हैं । इधर हिमाचलने ऐसा विचित्र मण्डप बनाया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता ॥ १ ॥

सैल सकल जहँ लगि जग माहीं । लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं ॥
बन सागर सब नदीं तलावा । हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा ॥ २ ॥

जगत्में जितने छोटे-बड़े पर्वत थे, जिनका वर्णन करके पार नहीं मिलता, और जितने वन, समुद्र, नदियाँ और तालाब थे, हिमाचलने सबको न्योता भेजा ॥ २ ॥

कामरूप सुंदर तन धारी । सहित समाज सहित बर नारी ॥

गए सकल तुहिनाचल गेहा । गावहिं मंगल सहित सनेहा ॥ ३ ॥

वे सब अपनी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सुन्दर शरीर धारणकर सुन्दरी स्त्रियों और समाजोंके साथ हिमाचलके घर गये । सभी स्नेहसहित मङ्गलगीत गाते हैं ॥ ३ ॥

प्रथमहिं गिरि बहु गृह संवराए । जथाजोगु तहँ तहँ सब छाए ॥

पुर सोभा अवलोकि सुहाई । लागइ लघु बिरंचि निपुनाई ॥ ४ ॥

हिमाचलने पहलेहीसे बहुत-से घर सजवा रखे थे । यथायोग्य उन-उन स्थानोंमें सब लोग उतर गये । नगरकी सुन्दर शोभा देखकर ब्रह्माकी रचना-चातुरी भी तुच्छ लगती थी ॥ ४ ॥

छं०—लघु लाग बिधि की निपुणता अवलोकि पुरसोभा सही ।

बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही ॥

मंगल बिपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं ।

बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं ॥

नगरकी शोभा देखकर ब्रह्माकी निपुणता सचमुच तुच्छ लगती है । वन, बाग, कुएँ, तालाब, नदियाँ सभी सुन्दर हैं । उनका वर्णन कौन कर सकता है ? घर-घर बहुत-से मंगलसूचक तोरण और ध्वजा-पताकाएँ सुशोभित हो रही हैं । वहाँके सुन्दर और चतुर स्त्री-पुरुषोंकी छबि देखकर मुनियोंके भी मन मोहित होते हैं ।

दो०—जगदंबा जहँ अवतरी सो पुरु बरनि कि जाइ ।

रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख नित नूतन अधिकाइ ॥ ९४ ॥

जिस नगरमें स्वयं जगदम्बाने अवतार लिया, क्या उसका वर्णन हो सकता है ! वहाँ ऋद्धि, सिद्धि, सम्पत्ति और सुख नित-नये बढ़ते जाते हैं ॥ ९४ ॥

चौ०—नगर निकट बरात सुनि आई । पुर खरभर सोभा अधिकाई ॥

करि बनाव सजि बाहन नाना । चले लेन सादर अगवाना ॥ १ ॥

बरातको नगरके निकट आयी सुनकर नगरमें चहल-पहल मच गयी, जिससे उसकी शोभा बढ़ गयी । अगवानी करनेवाले लोग बनाव-शृंगार करके तथा नाना प्रकारकी सवारियोंको सजाकर आदरसहित बरातको लेने चले ॥ १ ॥

हियँ हरषे सुरसेन निहारी । हरिहि देखि अति भय सुखारी ॥

सिवसमाज जब देखन लागे । बिडरि चले बाहन सब भागे ॥ २ ॥

देवताओंके समाजको देखकर सब मनमें प्रसन्न हुए और विष्णुभगवान्‌को देखकर तो बहुत ही सुखी हुए । किन्तु जब शिवजीके दलको देखने लगे तब तो उनके सब वाहन (सवारियोंके हाथी, घोड़े, रथके बैल आदि) डरकर भाग चले ॥ २ ॥

धरि धीरजु तहँ रहे सयाने । बालक सब लै जीव पराने ॥

गएँ भवन पूछहिं पितु माता । कहहिं बचन भयकंपित गाता ॥ ३ ॥

कुछ बड़ी उम्रके समझदार लोग धीरज धरकर वहाँ डटे रहे । लड़के तो सब अपने प्राण लेकर भागे । घर पहुँचनेपर जब माता-पिता पूछते हैं, तब वे भयसे काँपते हुए शरीरसे ऐसा वचन कहते हैं—॥ ३ ॥

कहिअ काह कहि जाइ न बाता । जम कर धार किधौ बरिआता ॥

बरु बौराह बसहँ असवारा । ब्याल कपाल बिभूषन छारा ॥ ४ ॥

क्या कहें, कोई बात कही नहीं जाती । यह बरात है या यमराजकी सेना ? दूल्हा पागल है और बैल-पर सवार है । साँप, कपाल और राख ही उसके गहने हैं ॥ ४ ॥

छं०—तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा ।

सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा ॥

जो जिवत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही ।

देखिहि सो उमाबिबाहु घर घर बात असि लरिकन्ह कही ॥

दूल्हेके शरीरपर राख लगी है, साँप और कपालके गहने हैं; वह नंगा, जटाधारी और भयङ्कर है । उसके साथ भयानक मुखवाले भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनियाँ और राक्षस हैं । जो बरातको देखकर जीता बचेगा, सचमुच उसके बड़े ही पुण्य हैं, और वही पार्वतीका विवाह देखेगा । लड़कोंने घर-घर यही बात कही ॥

दो०—समुझि महेससमाज सब जननि जनक मुसुकाहिं ।

बाल बुझाए बिबिध विधि निडर होहु डरु नाहिं ॥ ९५ ॥

महेश्वर (शिवजी) का समाज समझकर सब लड़कोंके माता-पिता मुस्कराते हैं । उन्होंने बहुत तरहसे समझाया कि निडर हो जाओ, डरकी कोई बात नहीं है ॥ ९५ ॥

चौ०—लै अगवान बरातहि आए । दिए सबहि जनवास सुहाए ॥

मैनाँ सुभ आरती सँवारी । संग सुमंगल गावहिं नारी ॥ १ ॥

अगवान लोग बरातको लिवा लये, उन्होंने सबको सुन्दर जनवासे ठहरनेको दिये । मैना (पार्वतीजीकी माता) ने शुभ आरती सजायी और उनके साथकी स्त्रियाँ उत्तम मङ्गलगीत गाने लगीं ॥ १ ॥

कंचनथार सोह बर पानी । परिछन चली हरहि हरषानी ॥

बिकट वेष रुद्रहि जब देखा । अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा ॥ २ ॥

सुन्दर हाथोंमें सोनेका थाल शोभित है, इस प्रकार मैना हर्षके साथ शिवजीका परछन करने चली । जब महादेवजीको भयानक वेषमें देखा तब स्त्रियोंके मनमें बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया ॥ २ ॥

भागि भवन पैठी अति त्रासा । गए महेसु जहाँ जनवासा ॥

मैनाहृदयँ भयउ दुखु भारी । लीन्ही बोलि गिरीसकुमारी ॥ ३ ॥

बहुत ही डरके मारे भागकर वे घरमें घुस गयीं और शिवजी जहाँ जनवासा था वहाँ चले गये । मैनाके हृदयमें बड़ा दुःख हुआ । उन्होंने पार्वतीजीको अपने पास बुल लिया ॥ ३ ॥

अधिक सनेहँ गोद बैठारी । स्याम सरोज नयन भरे बारी ॥

जेहिं विधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा । तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा ॥ ४ ॥

और अत्यन्त स्नेहसे गोदमें बैठाकर अपने नील कमलके समान नेत्रोंमें आँसू भरकर कहा—जिस विधाताने तुमको ऐसा सुन्दर रूप दिया, उस मूर्खने तुम्हारे दूल्हेको बावल कैसे बनाया ? ॥ ४ ॥

छं०—कस कीन्ह बर बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुंदरता दर्ह ।

जो फलु चहिय सुरुतरहिं सो बरबस बबूरहिं लागई ॥

तुम्ह सहित गिरि तैं गिरौ पाषक जरौ जलनिधि महुँ परौ ।

घर जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौ ॥

जिस विधातने तुमको सुन्दरता दी, उसने तुम्हारे लिये वर बावला कैसे बनाया ? जो फल कल्पवृक्षमें लगाना चाहिये, वह जवर्दस्ती बबूलमें ल्या रहा है । मैं तुम्हें लेकर पहाड़से गिर पड़ूंगी, आगमें जल जाऊँगी या समुद्रमें कूद पड़ूंगी । चाहे घर उजड़ जाय और संसारभरमें अपकीर्ति फैल जाय, पर जीते-जी मैं इस बावले वरसे तुम्हारा विवाह न करूँगी ॥

दो०—मई बिकल अबला सकल दुखित देखि गिरिनारि ।

करि बिलापु रोदति बदति सुतासनेहु सँभारि ॥९६॥

हिमाचलकी स्त्री (मैना) को दुखी देखकर सारी स्त्रियाँ व्याकुल हो गयीं । मैना अपनी कन्याके स्नेह-को याद करके विलाप करती, रोती और कहती थी—॥ ९६ ॥

चौ०—नारद कर मैं काह बिगारा । भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा ॥

अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा । बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा ॥ १ ॥

[कि] मैंने नारदका क्या बिगाड़ा था, जिन्होंने मेरा बसता हुआ घर उजाड़ दिया और जिन्होंने पार्वती-को ऐसा उपदेश दिया कि जिससे उसने बावले वरके लिये तप किया ॥ १ ॥

साचेहुँ उन्ह कैं मोह न माया । उदासीन धनु धामु न जाया ॥

परघर घालक लाज न भीरा । बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा ॥ २ ॥

सचमुच उनके न किसीका मोह है, न माया; न उनके धन है, न घर है और न स्त्री ही है; वे सबसे उदासीन हैं । इसीसे वे दूसरेका घर उजाड़नेवाले हैं । उन्हें न किसीकी लाज है, न डर है । भला, बाँझ स्त्री प्रसवकी पीड़ाको क्या जाने ? ॥ २ ॥

जननिहि बिकल बिलोकि भवानी । बोली जुत बिबेक मृदु बानी ॥

अस बिचारि सोचहि मति माता । सो न टरइ जो रचइ बिधाता ॥ ३ ॥

माताको बिकल देखकर पार्वतीजी विवेकयुक्त कोमल वाणी बोली—हे माता ! जो विधाता रच देते हैं, वह टलता नहीं; ऐसा विचारकर तुम सोच मत करो ! ॥ ३ ॥

करम लिखा जौ बाउर नाइ । तौ कत दोसु लगाइअ काइ ॥

तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका । मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका ॥ ४ ॥

जो मेरे भाग्यमें बावला ही पति लिखा है तो किसीको क्यों दोष लगाया जाय ? हे माता ! क्या विधाताके अंक तुमसे मिट सकते हैं ? वृथा कलङ्क [का टीका] मत लो ॥ ४ ॥

छं०—जनि लेहु मातु कलंकु करना परिहरहु अवसर नहीं ।

उखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पाउब तहीं ॥

सुनि उमा बचन बिनीत कोमल सकल अबला सोचहीं ।

बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचहीं ॥

हे माता ! कलङ्क मत लो, रोना छोड़ो, यह अवसर विषाद करनेका नहीं है। मेरे भाग्यमें जो दुःख-सुख लिखा है उसे मैं जहाँ जाऊँगी, वहीं पाऊँगी। पार्वतीजीके ऐसे विनयभरे कोमल वचन सुनकर सारी स्त्रियाँ सोच करने लगीं और भौंति-भौंतिसे विधाताको दोष देकर आँखोंसे आँसू बहाने लगीं ॥

दो०—तेहि अवसर नारद सहित अरु रिषि सप्त समेत ।

समाचार सुनि तुहिनगिरि गवने तुरत निकेत ॥९७॥

इस समाचारको सुनते ही हिमाचल उसी समय नारदजी और सप्तर्षियोंको साथ लेकर अपने घर गये ॥ ९७ ॥

चौ०—तब नारद सबही समुझावा । पूरुष कथाप्रसंगु सुनावा ॥

मयना सत्य सुनहु मम बानी । जगदंबा तब सुता भवानी ॥ १ ॥

तब नारदजीने पूर्वजन्मकी कथा सुनाकर सबको समझाया [और कहा] कि हे मैना ! तुम मेरी सच्ची बात सुनो ! तुम्हारी यह लड़की [साक्षात्] जगज्जननी भवानी है ॥ १ ॥

अजा अनादि सक्ति अविनासिनि । सदा संभु अरधंग निवासिनि ॥

जग संभव पालन लय कारिनि । निज इच्छा लीला बधु धारिनि ॥ २ ॥

ये अजन्मा, अनादि शक्ति और अविनाशिनी हैं। सदा शिवजीके अर्द्धाङ्गमें रहती हैं। ये जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली हैं, और अपनी इच्छासे ही लीला-शरीर धारण कर लेती हैं ॥ २ ॥

जनमों प्रथम दच्छगृह जाई । नामु सती सुंदर तनु पाई ॥

तहँहुँ सती संकरहि बिबाहों । कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं ॥ ३ ॥

पहले ये दक्षके घर जाकर जन्मी थीं, तब इनका सती नाम था, बहुत सुन्दर शरीर पाया था। वहाँ भी सती शंकरजीसे ही ब्याही गयी थीं। यह कथा सारे जगत्में प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

एक बार आवत सिव संग । देखेउ रघुकुल कमल पतंगा ॥

भयउ मोहु सिव कहा न कीन्हा । भ्रम बस बेधु सीय कर लीन्हा ॥ ४ ॥

एक बार इन्होंने शिवजीके साथ आते हुए [राहमें] रघुकुलरूपी कमलके सूर्य श्रीरामचन्द्रजीको देखा, तब इन्हें मोह हो गया और इन्होंने शिवजीका कहना न मानकर भ्रमवश सीताजीका भेष धारण कर लिया ॥ ४ ॥

छं०—सियबेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं ।

हरबिरह जाइ बहोरि पितु कै जग्य जोगानल जरीं ॥

अब जनमि तुम्हारे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया ।

अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्वदा संकरप्रिया ॥

सतीने जो सीताका भेष धारण किया, उसी अपराधके कारण शंकरजीने उनको त्याग दिया। फिर शिवजीके वियोगमें ये अपने पिताके यज्ञमें जाकर वहीं योगाग्निसे भस्म हो गयीं। अब इन्होंने तुम्हारे घर जन्म लेकर अपने पतिके लिये कठिन तप किया है। ऐसा जानकर सन्देह छोड़ दो। पार्वतीजी तो सदा ही शिवजीकी प्रिया (अर्द्धांगिनी) हैं ॥

दो०—सुनि नारद के बचन तब सब कर मिटा बिषाद ।

छन महुँ ब्यापेउ सकल पुर घर घर यह संवाद ॥९८॥

तब नारदके वचन सुनकर सबका विषाद मिट गया और क्षणभरमें यह समाचार सारे नगरमें घर-घर फैल गया ॥ ९८ ॥

चौ०—तब मयना हिमवंतु अनंदे । पुनि पुनि पारबतीपद बंदे ॥
नारि पुरुष सिसु जुबा सयाने । नगरलोग सब अति हरषाने ॥ १ ॥

तब मैना और हिमवान् आनन्दमें मग्न हो गये और उन्होंने बार-बार पार्वतीके चरणोंकी वन्दना की । स्त्री, पुरुष, बालक, युवा और वृद्ध, नगरके सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए ॥ १ ॥

लगे होन पुर मंगलगाना । सजे सबहिं हाटकघट नाना ॥
भाँति अनेक भई जेवनारा । सूपसाख जस कछु व्यवहारा ॥ २ ॥

नगरमें मंगलके गीत गाये जाने लगे और सबने भाँति-भाँतिके सुवर्णके कलश सजाये । पाकशास्त्रमें जैसी रीति है, उसके अनुसार अनेक भाँतिकी ज्योनार हुई (रसोई बनी) ॥ २ ॥

सो जेवनार कि जाइ बखानी । बसहिं भवन जेहिं मातु भवानी ॥
सादर बोले सकल बराती । बिणु बिरंचि देव सब जाती ॥ ३ ॥

जिस घरमें स्वयं माता भवानी रहती हों, वहाँकी ज्योनार (भोजनसामग्री) का वर्णन कैसे किया जा सकता है ! हिमाचलने आदरपूर्वक सब बरातियोंको-विष्णु, ब्रह्मा और सब जातिके देवताओंको बुलवाया ॥ ३ ॥

बिबिधि पाँति बैठी जेवनारा । लागे परसन निपुन सुआरा ॥
नारिवृंद सुर जेवँत जानी । लगीं देन गारीं मृदु बानी ॥ ४ ॥

भोजन [करनेवालों] की बहुत-सी पंगतें बैठी । चतुर रसोइये परोसने लगे । स्त्रियोंकी मण्डलियाँ देवताओंको भोजन करते जानकर कोमल वाणीसे गालियाँ देने लगीं ॥ ४ ॥

छं०—गारीं मधुर स्वर देहिं सुंदरि बिंग्य वचन सुनावहीं ।

भोजन करहिं सुर अति बिलंबु बिनोदु सुनि सबु पावहीं ॥

जेवँत जो बढ्यो अनंदु सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यो ।

अचवाँइ दीन्हे पान गवने बास जहँ जाको रह्यो ॥

सब सुन्दरी स्त्रियाँ मीठे स्वरमें गालियाँ देने लगीं और व्यंग्यभरे वचन सुनाने लगीं । देवगण बिनोद सुनकर बहुत सुख अनुभव करते हैं, इसलिये भोजन करनेमें बड़ी देर लगा रहे हैं । भोजनके समय जो आनन्द बढ़ा, वह करोड़ों मुँहसे भी नहीं कहा जा सकता । [भोजन कर चुकनेपर] सबके हाथ-मुँह धुलवाकर पान दिये गये । फिर सब लोग जो जहाँ ठहरे थे वहाँ चले गये ॥

दो०—बहुरि मुनिन्ह हिमवंत कहूँ लगन सुनाई आइ ।

समय बिलोकि विवाह कर पठए देव बोलाइ ॥ ९९ ॥

फिर मुनियोंने लौटकर हिमवान्को लगन (लग्नपत्रिका) सुनायी और विवाहका समय देखकर देवताओंको बुल भेजा ॥ ९९ ॥

चौ०—बोलि सकल सुर सादर लीन्हे । सबहि जयोचित आसन दीन्हे ॥

बेदी वेदबिधान सँवारी । सुभग सुमंगल गावहिं नारी ॥ १ ॥

सब देवताओंको आदरसहित बुलवा लिया और सबको यथायोग्य आसन दिये । वेदकी रीतिसे वेदी सजायी गयी और स्त्रियाँ सुन्दर श्रेष्ठ मंगलगीत गाने लगीं ॥ १ ॥

सिंघासन अति दिव्य सुहावा । जाइ न बरनि बिरंचि बनावा ॥

बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई । हृदयँ सुमिरि निज प्रभु रघुराई ॥ २ ॥

[वैदिकापर] एक अत्यन्त सुन्दर दिव्य सिंहासन था, जिस [की सुन्दरता] का वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह स्वयं ब्रह्माजीका बनाया हुआ था । ब्राह्मणोंको सिर नवाकर और हृदयमें अपने स्वामी श्रीरघुनाथजीका स्मरण करके शिवजी [उस सिंहासनपर] बैठ गये ॥ २ ॥

बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाई । करि सिंगारु सखीं लै आई ॥

देखत रुपु सकल सुर मोहे । बरनै छबि अस जग कवि को है ॥ ३ ॥

फिर मुनीश्वरोंने पार्वतीजीका बुलाया । सखियाँ शृंगार करके उन्हें ले आयीं । पार्वतीजीके रूपको देखते ही सब देवता मोहित हो गये । संसारमें ऐसा कवि कौन है जो उस सुन्दरताका वर्णन कर सके ! ॥ ३ ॥

जगदंबिका जानि भवभामा । सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा ॥

सुंदरता मरजाद भवानी । जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी ॥ ४ ॥

पार्वतीजीको जगदम्बा और शिवजीकी पत्नी समझकर देवताओंने मन-ही-मन प्रणाम किया । भवानीजी सुन्दरताकी सीमा हैं । करोड़ों मुखोंसे भी उनकी शोभा नहीं कही जा सकती ॥ ४ ॥

छं०—कोटिहुँ बदन नहिं बनै बरनत जगजननि सोभा महा ।

सकुचहिं कहत श्रुति सेष सारद मंदमति तुलसी कहा ॥

छबिखानि मातु भवानि गवनीं मध्य मंडप सिव जहाँ ।

अवलोकिक सकहिं न सकुच पति पद कमल मनु मधुकर तहाँ ॥

जगज्जननी पार्वतीजीकी महान् शोभाका वर्णन करोड़ों मुखोंसे भी करते नहीं बनता । वेद, शेषजी और सरस्वतीजीतक उसे कहते हुए सकुचा जाते हैं, तब मन्दबुद्धि तुलसी किस गिनतीमें है ! सुन्दरता और शोभाकी खान माता भवानी मण्डपके बीचमें जहाँ शिवजी थे वहाँ गयीं । वे संकोचके मारे पति (शिवजी) के चरणकमलोंको देख नहीं सकतीं, परन्तु उनका मनरूपी भौरा तो वहीं [रस-पान कर रहा] था ।

दो०—मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि ।

कोउ मुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि ॥ १०० ॥

मुनियोंकी आज्ञासे शिवजी और पार्वतीजीने गणेशजीका पूजन किया । मनमें देवताओंको अनादि समझकर कोई इस बातको सुनकर शंका न करे [कि गणेशजी तो शिव-पार्वतीकी संतान हैं, अभी विवाहसे पूर्व ही वे कहाँसे आ गये] ॥ १०० ॥

चो०—जसि बिबाह कै बिधि श्रुति गाई । महामुनिन्ह सो सब करवाई ॥

गहि गिरीस कुस कन्या पानी । भवहि समरपीं जानि भवानी ॥ १ ॥

वेदोंमें विवाहकी जैसी रीति कही गयी है, महामुनियोंने वह सभी [रीति] करवायी । पर्वतराज (हिमाचल) ने हाथमें कुश लेकर तथा कन्याका हाथ पकड़कर उन्हें भवानी (शिवपत्नी) जानकर शिवजीको समर्पण किया ॥ १ ॥

पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा । हियँ हरषे तब सकल सुरेसा ॥

बेदमंत्र मुनिबर उखरहीं । जय जय जय संकर सुर करहीं ॥ २ ॥

जब महेश्वर (शिवजी) ने पार्वतीका पाणिग्रहण किया, तब [इन्द्रादि] सब देवता हृदयमें बड़े ही हर्षित हुए। श्रेष्ठ मुनिगण वेदमन्त्रोंका उच्चारण करने लगे और देवगण शिवजीका जय-जयकार करने लगे ॥ २ ॥

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना । सुमनवृष्टि नभ भै बिधि नाना ॥

हर गिरिजा कर भयउ बिबाह । सकल भुवन भरि रहा उछाह ॥ ३ ॥

अनेकों प्रकारके बाजे बजने लगे। आकाशसे नाना प्रकारके फूलोंकी वर्षा हुई। शिव-पार्वतीका विवाह हो गया। सारे ब्रह्माण्डमें आनन्द भर गया ॥ ३ ॥

दासी दास तुरग रथ नागा । धेनु बसन मनि वस्तुबिभागा ॥

अन्न कनकभाजन भरि जाना । दाइज दीन्ह न जाइ बखाना ॥ ४ ॥

दासी, दास, रथ, घोड़े, हाथी, गायें, वस्त्र और मणि आदि अनेक प्रकारकी चीजें, अन्न तथा सोने-के बर्तन गाड़ियोंमें लदवाकर दहेजमें दिये, जिनका वर्णन नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

छं०—दाइज दियो बहु भौंति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो ।

का देउ पूरनकाम संकर चरनपंकज गहि रह्यो ॥

सिव कृपासागर ससुर कर संतोषु सब भौंतिहिं कियो ।

पुनि गहे पदपाथोज मयनाँ प्रेम परिपूरन हियो ॥

बहुत प्रकारका दहेज देकर, फिर हाथ जोड़कर हिमाचलने कहा—हे शंकर ! आप पूर्णकाम हैं, मैं आपको क्या दे सकता हूँ ? [इतना कहकर] वे शिवजीके चरणकमल पकड़कर रह गये ! तब कृपाके सागर शिवजीने अपने ससुरका सभी प्रकारसे समाधान किया। फिर प्रेमसे परिपूर्णहृदय मैनाजीने शिवजीके चरणकमल पकड़े [और कहा—]

दो०—नाथ उमा मम प्रान सम गृहकिंकरी करेहु ।

छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु ॥ १०१ ॥

हे नाथ ! यह उमा मुझे मेरे प्राणोंके समान [प्यारी] है। आप इसे अपने घरकी टहलनी बनाइयेगा। इसके सब अपराधोंको क्षमा करते रहियेगा। अब प्रसन्न होकर मुझे यही वर दीजिये ॥ १०१ ॥

चौ०—बहु बिधि संभु सासु समुझाई । गवनी भवन चरन सिख नाई ॥

जननीं उमा बोलि तब लीन्ही । लै उछंग सुंदर सिख दीन्ही ॥ १ ॥

शिवजीने बहुत तरहसे अपनी सासुको समझाया। तब वे [शिवजीके] चरणोंमें सिर नवाकर घर गयीं। फिर माताने पार्वतीको बुलाया और गोदमें बैठाकर यह सुन्दर सीख दी—॥ १ ॥

करेहु सदा संकर पद पूजा । नारिधरमु पति देउ न दूजा ॥

बचन कहत भरे लोचन बारी । बहुरि लाइ उर लीन्ही कुमारी ॥ २ ॥

हे पार्वती ! तू सदा शिवजीके चरणोंकी पूजा करना, नारियोंका यही धर्म है। उनके लिये पति ही देवता है, और कोई देवता नहीं है। [इस प्रकारकी] बातें कहते-कहते उनकी आँखोंमें आँसू भर आये, और उन्होंने कन्याको छातीसे चिपटा लिया ॥ २ ॥

कत बिधि सृजिं नारि जग माहीं । पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं ॥

भै अति प्रेम बिकल महतारी । धीरजु कीन्ह कुसमय बिचारी ॥ ३ ॥

[फिर बोली कि] विधाताने जगत्में स्त्रीजातिको क्यों पैदा किया ! पराधीनको सपनेमें भी सुख नहीं मिलता । [उस समय] माता प्रेममें अत्यन्त विकल हो गयी, परन्तु कुसमय जानकर (दुःख करनेका अवसर न जानकर) उन्होंने धीरज धरा ॥ ३ ॥

पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना । परम प्रेमु कछु जाइ न बरना ॥

सब नारिन्ह मिलि भेटि भवानी । जाइ जननि उर पुनि लपटानी ॥ ४ ॥

मैना बार-बार मिलती हैं और [पार्वतीके] चरणोंको पकड़कर गिर पड़ती हैं । बड़ा ही प्रेम है, कुछ वर्णन नहीं किया जाता । भवानी सब स्त्रियोंसे मिल-भेंटकर फिर अपनी माताके हृदयसे जा लिपटी ॥ ४ ॥

छं०—जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहँ दई ।

फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखीं लै सिव पहिं गई ॥

जाचक सकल संतोषि संकर उमा सहित भवन चले ।

सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले ॥

पार्वतीजी मातासे फिर मिलकर चलीं, सब किसीने उन्हें योग्य आशीर्वाद दिये । पार्वतीजी फिर-फिरकर माताकी ओर देखती जाती थीं । तब सखियाँ उन्हें शिवजीके पास ले गयीं । महादेवजी सब याचकोंको संतुष्टकर पार्वतीके साथ घर (कैलास) को चले । सब देवता प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे और आकाशमें सुन्दर नगाड़े बजाने लगे ।

दो०—चले संग हिमवंतु तब पहुँचावन अति हेतु ।

बिबिध भाँति परितोषु करि विदा कीन्ह वृषकेतु ॥ १०२ ॥

तब हिमवान् अत्यन्त प्रेमसे शिवजीको पहुँचानेके लिये साथ चले । वृषकेतु (शिवजी) ने बहुत तरहसे उन्हें संतोष कराकर विदा किया ॥ १०२ ॥

चौ०—तुरत भवन आप गिरिराई । सकल सैल सर लिए बोलाई ॥

आदर दान विनय बहुमाना । सब कर विदा कीन्ह हिमवाना ॥ १ ॥

पर्वतराज (हिमाचल) तुरंत घर आये और उन्होंने सब पर्वतों और सरोवरोंको बुलाया । हिमवान्ने आदर, दान, विनय और बहुत सम्मानपूर्वक सबकी विदाई की ॥ १ ॥

जबहिं संभु कैलासहिं आए । सुर सब निज निज लोक सिधाए ॥

जगत मातु पितु संभु भवानी । तेहिं सिंगारु न कहउँ बखानी ॥ २ ॥

जब शिवजी कैलास पर्वतपर पहुँचे, तब सब देवता अपने-अपने लोकोंको चले गये । [तुलसीदासजी कहते हैं कि] पार्वतीजी और शिवजी जगत्के माता-पिता हैं, इसलिये मैं उनके श्रृंगारका वर्णन नहीं करता ॥ २ ॥

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा । गनन्ह समेत बसहिं कैलासा ॥

हर गिरिजा बिहार नित नयऊ । एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ ॥ ३ ॥

शिव-पार्वती विविध प्रकारके भोग-विलास करते हुए अपने गणोंसहित कैलासपर रहने लगे । वे नित्य नये विहार करते थे । इस प्रकार बहुत समय बीत गया ॥ ३ ॥

तब जनमेउ षटबदन कुमारा । तारकु असुर समर जेहिं मारा ॥

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । बन्मुख जन्मु सकल जग जाना ॥ ४ ॥

तब छः सुखवाले (स्वामिकार्तिक) पुत्रका जन्म हुआ, जिन्होंने युद्धमें तारकासुरको मारा । वेद, शास्त्र और पुराणोंमें स्वामिकार्तिकके जन्मकी कथा प्रसिद्ध है और सारा जगत् उसे जानता है ॥ ४ ॥

छं०—जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा ।

तेहि हेतु मैं वृषकेतुसुत कर चरित संछेपहिं कहा ॥

यह उमा संभु बिबाहु जे नर नारि कहहिं जे गावहीं ।

कल्याण काज बिबाह मंगल सर्वदा सुखु पावहीं ॥

षडानन (स्वामिकार्तिक) के जन्म, कर्म, प्रताप और महान् पुरुषार्थको सारा जगत् जानता है । इसलिये मैंने वृषकेतु (शिवजी) के पुत्रका चरित्र संक्षेपसे ही कहा है । शिव-पार्वतीके विवाहकी इस कथाको जो स्त्री-पुरुष कहेंगे और गावेंगे वे कल्याणके कार्यों और विवाहादि मंगलोमें सदा सुख पावेंगे ।

दो०—चरित सिंधु गिरिजारमन बेद न पावहिं पारु ।

बरनै तुलसीदासु किमि अति मतिमंद गवाँरु ॥ १०३ ॥

गिरिजापति महादेवजीका चरित्र समुद्रके समान (अपार) है, उसका पार वेद भी नहीं पाते । तब अत्यन्त मन्दबुद्धि और गँवार तुलसीदास उसका वर्णन कैसे कर सकता है ! ॥ १०३ ॥

चौ०—संभुचरित सुनि सरस सुहावा । भरद्वाज मुनि अति सुखु पावा ॥

बहु लालसा कथा पर बाढ़ी । नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी ॥ १ ॥

शिवजीके रसीले और सुहावने चरित्रको सुनकर मुनि भरद्वाजजीने बहुत ही सुख पाया । कथा सुननेकी उनकी लालसा बहुत बढ़ गयी । नेत्रोंमें जल भर आया तथा रोमावली खड़ी हो गयी ॥ १ ॥

प्रेम बिबस मुख आव न बानी । दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी ॥

अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा । तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा ॥ २ ॥

वे प्रेममें मुग्ध हो गये, मुग्धसे वाणी नहीं निकलती । उनकी यह दशा देखकर शानी मुनि याज्ञवल्क्य बहुत प्रसन्न हुए [और बोले—] हे मुनीश ! अहा हा ! तुम्हारा जन्म धन्य है; तुमको गौरीपति शिवजी प्राणोंके समान प्रिय हैं ॥ २ ॥

सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं । रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं ॥

बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू । रामभगत कर लच्छन पट्ट ॥ ३ ॥

शिवजीके चरणकमलोंमें जिनकी प्रीति नहीं है, वे श्रीरामचन्द्रजीको स्वप्नमें भी अच्छे नहीं लगते । विश्वनाथ श्रीशिवजीके चरणोंमें निष्कपट (विशुद्ध) प्रेम होना, यही रामभक्तका लक्षण है ॥ ३ ॥

सिव सम को रघुपतिव्रतधारी । बिनु अघ तजी सती असि नारी ॥

पनु करि रघुपतिभगति देखाई । को सिव सम रामहि प्रिय भाई ॥ ४ ॥

शिवजीके समान रघुनाथजी [की भक्ति] का व्रत धारण करनेवाला कौन है ? जिन्होंने बिना ही पापके सती-जैसी स्त्रीको त्याग दिया और प्रतिज्ञा करके श्रीरघुनाथजीकी भक्तिको दिखा दिया । हे भाई ! श्रीरामचन्द्रजीको शिवजीके समान और कौन प्यारा है ! ॥ ४ ॥

दो०—प्रथमहिं मैं कहि सिवचरित बूझा मरमु तुम्हार ।

सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त बिकार ॥ १०४ ॥

मैंने पहले ही शिवजीका चरित्र कहकर तुम्हारा भेद समझ लिया । तुम रामचन्द्रजीके पवित्र सेवक हो और समस्त दोषोंसे रहित हो ॥ १०४ ॥

चौ०—मैं जाना तुम्हारा गुण सीला । कहउँ सुनहु अब रघुपतिलीला ॥
सुनु मुनि आजु समागम तोरें । कहि न जाइ जस सुखु मन मोरें ॥ १ ॥

मैंने तुम्हारा गुण और शील जान लिया । अब मैं श्रीरघुनाथजीकी लीला कहता हूँ, सुनो । हे मुनि ! सुनो, आज तुम्हारे मिलनेसे मेरे मनमें जो आनन्द हुआ है, वह कहा नहीं जा सकता ॥ १ ॥

रामचरित अति अमित मुनीसा । कहि न सकहिं सतकोटि अहीसा ॥

तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी । सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी ॥ २ ॥

हे मुनीश्वर ! रामचरित्र अत्यन्त अपार है । सौ करोड़ शेषजी भी उसे नहीं कह सकते । तथापि जैसा मैंने सुना है, वैसा वाणीके स्वामी (प्रेरक) और हाथमें धनुष लिये हुए प्रभु श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करके कहता हूँ ॥ २ ॥

सारद दारुनारि सम स्वामी । रामु सूत्रधर अंतरजामी ॥

जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी । कबि उर अजिर नचावहिं बानी ॥ ३ ॥

सरस्वतीजी कठपुतलीके समान हैं और अन्तर्यामी स्वामी श्रीरामचन्द्रजी [सूत पकड़कर कठपुतलीको नचानेवाले] सूत्रधार हैं । अपना भक्त जानकर जिस कविपर वे कृपा करते हैं, उसके हृदयरूपी आँगनमें सरस्वतीको वे नचाया करते हैं ॥ ३ ॥

प्रनवउँ सोइ कृपाल रघुनाथा । बरनउँ बिसद तासु गुनगाथा ॥

परम रम्य गिरिबरु कैलास । सदा जहाँ सिव उमा निवास ॥ ४ ॥

उन्हीं कृपाल श्रीरघुनाथजीको मैं प्रणाम करता हूँ और उन्हींके निर्मल गुणोंकी कथा कहता हूँ । कैलास पर्वतमें श्रेष्ठ और बहुत ही रमणीय है, जहाँ शिव-पार्वतीजी सदा निवास करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनिबृंद ।

बसाहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुखकंद ॥ १०५ ॥

सिद्ध, तपस्वी, योगीगण, देवता, किन्नर और मुनियोंके समूह उस पर्वतपर रहते हैं । वे सब बड़े पुण्यात्मा हैं और आनन्दकन्द श्रीमहादेवजीकी सेवा करते हैं ॥ १०५ ॥

चौ०—हरि हर बिमुख धर्म रति नाहीं । ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं ॥

तेहि गिरि पर बटबिटप बिसाला । नित नूतन सुंदर सब काला ॥ १ ॥

जो भगवान् विष्णु और महादेवजीसे विमुख हैं और जिनकी धर्ममें प्रीति नहीं है, वे लोग स्वप्नमें भी वहाँ नहीं जा सकते । उस पर्वतपर एक विशाल बरगदका पेड़ है, जो नित्य नवीन और सब काल (उन्हों ऋतुओं) में सुन्दर रहता है ॥ १ ॥

त्रिबिध समीर सुसीतलि छाया । सिव बिभ्राम बिटप श्रुति गाया ॥

एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ । तरु बिलोकि उर अति सुखु भयऊ ॥ २ ॥

वहाँ तीनों प्रकारकी (शीतल, मन्द और सुगन्ध) वायु बहती रहती है और उसकी छाया बड़ी ठंडी रहती है । वह शिवजीके विभ्राम करनेका वृक्ष है, जिसे वेदनि गाया है । एक बार प्रभु (श्रीशिवजी) उस वृक्षके नीचे गये और उसे देखकर उनके हृदयमें बहुत आनन्द हुआ ॥ २ ॥

निज कर डालि नागरिषु छाला । बैठे सहजहिं संभु कृपाला ॥

कुंद इंदु दर गौर सरीरा । भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा ॥ ३ ॥

अपने हाथसे बाधंबर बिछाकर कृपालु शिवजी स्वभावसे ही (विना किसी खास प्रयोजनके) वहाँ बैठ गये । कुन्दके पुष्प, चन्द्रमा और शंखके समान उनका गौर शरीर था । बड़ी लंबी भुजाएँ थीं और वे मुनियोंकेसे (बल्कल) वस्त्र धारण किये हुए थे ॥ ३ ॥

तरुन अरुन अंबुज सम चरना । नखदुति भगत हृदय तम हरना ॥

भुजग भूति भूषण त्रिपुरारी । आननु सरद चंद छबि हारी ॥ ४ ॥

उनके चरण नये (पूर्णरूपसे खिले हुए) लाल कमलके समान थे, नखोंकी ज्योति भक्तोंके हृदयका अन्धकार हरनेवाली थी । साँप और भस्म ही उनके भूषण थे । और उन त्रिपुरासुरके शत्रु शिवजीका मुख शरद (पूर्णिमा) के चन्द्रमाकी शोभाको भी हरनेवाला (फीकी करनेवाला) था ॥ ४ ॥

दो०—जटामुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन बिसाल ।

नीलकंठ लावन्यनिधि सोह बालबिधु भाल ॥ १०६ ॥

उनके सिरपर जटाओंका मुकुट और गंगाजी [शोभायमान] थीं । कमलके समान बड़े-बड़े नेत्र थे । उनका नील कण्ठ था और वे सुन्दरताके भण्डार थे । उनके मस्तकपर द्वितीयाका चन्द्रमा शोभित था ॥ १०६ ॥

चौ०—बैठे सोह कामरिषु कैसैं । धरें सरीर सांतरसु जैसैं ॥

पारबती भल अवसर जानी । गई संभु पहिं मातु भवानी ॥ १ ॥

कामदेवके शत्रु शिवजी वहाँ बैठे हुए ऐसे शोभित हो रहे थे, मानो शान्तरस ही शरीर धारण किये बठा हो । अच्छा मौका जानकर शिवपत्नी माता पार्वतीजी उनके पास गयीं ॥ १ ॥

जानि प्रिया आदर अति कीन्हा । वाम भाग आसनु हर दीन्हा ॥

बैठी सिव समीप हरपाई । पूरुब जन्म कथा चित आई ॥ २ ॥

अपनी प्यारी पत्नी जानकर शिवजीने उनका बहुत आदर-सत्कार किया और अपने बायी ओर बठनेके लिये आसन दिया । पार्वतीजी प्रसन्न होकर शिवजीके पास बैठ गयीं । उन्हें पिछले जन्मकी कथा स्मरण हो आयी ॥ २ ॥

पति दियँ हेतु अधिक अनुमानी । बिहसि उमा बोलीं प्रिय बानी ॥

कथा जो सकल लोक हितकारी । सोह पृछन चह सैलकुमारी ॥ ३ ॥

स्वामीके हृदयमें [अपने ऊपर पहलेकी अपेक्षा] अधिक प्रेम समझकर पार्वतीजी हँसकर प्रिय वचन बोलीं । [याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि] जो कथा सब लोगोंका हित करनेवाली है, उसे ही पार्वतीजी पूछना चाहती हैं ॥ ३ ॥

बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी । त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी ॥

चर अरु अचर नाग नर देवा । सकल करहिं पदपंकज सेवा ॥ ४ ॥

[पार्वतीजीने कहा—] हे संसारके स्वामी ! हे मेरे नाथ ! हे त्रिपुरासुरका वध करनेवाले ! आपकी महिमा तीनों लोकोंमें विख्यात है । चर, अचर, नाग, मनुष्य और देवता सभी आपके चरणकमलोंकी सेवा करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—प्रभु समर्थ सर्वग्य सिव सकल कला गुन धाम ।

जोग ग्यान वैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम ॥ १०७ ॥

हे प्रभो ! आप समर्थ, सर्वज्ञ और कल्याणस्वरूप हैं । सब कलाओं और गुणोंके निधान हैं, और योग, शान तथा वैराग्यके भण्डार हैं । आपका नाम शरणागतोंके लिये कल्पवृक्ष है ॥ १०७ ॥

चौ०—जौं मोपर प्रसन्न सुखरासी । जानिय सत्य मोहि निज दासी ॥

तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना । कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना ॥ १ ॥

हे सुखके राशि ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और सचमुच मुझे अपनी दासी [या अपनी सच्ची दासी] जानते हैं, तो हे प्रभो ! आप श्रीरघुनाथजीकी नाना प्रकारकी कथा कहकर मेरा अज्ञान दूर कीजिये ॥ १ ॥

जासु भवनु सुरतरु तर होई । सहि कि दरिद्रजनित दुखु सोई ॥

ससिभूषण अस हृदयँ बिचारी । हरहु नाथ मम मतिभ्रम भारी ॥ २ ॥

जिसका घर कल्पवृक्षके नीचे हो, वह भला दरिद्रतासे उत्पन्न दुःखको क्यों सहेगा ! हे शशिभूषण ! हे नाथ ! हृदयमें ऐसा विचारकर मेरी बुद्धिके भारी भ्रमको दूर कीजिये ॥ २ ॥

प्रभु जे मुनि परमारथवादी । कहहिं राम कहूँ ब्रह्म अनादी ॥

सेस सारदा वेद पुराना । सकल करहिं रघुपति गुन गाना ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! जो परमार्थतत्त्व (ब्रह्म) के ज्ञाता और वक्ता मुनि हैं, वे श्रीरामचन्द्रजीको अनादि ब्रह्म कहते हैं; और शेष, सरस्वती, वेद और पुराण सभी श्रीरघुनाथजीका गुण गाते हैं ॥ ३ ॥

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती । सादर जपहु अनंग आराती ॥

रामु सो अवधनृपति सुत सोई । की अज अगुन अलखगति कोई ॥ ४ ॥

और हे कामदेवके शत्रु ! आप भी दिन-रात आदरपूर्वक राम-राम जपा करते हैं । ये राम वही अयोध्याके राजाके पुत्र हैं ? या अजन्मा, निर्गुण और अगोचर कोई और राम हैं ? ॥ ४ ॥

दो०—जौं नृपतनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि ।

देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि ॥ १०८ ॥

यदि वे राजपुत्र हैं तो ब्रह्म कैसे ? [और यदि ब्रह्म हैं तो] स्त्रीके विरहमें उनकी मति बावली कैसे हो गयी ! इधर उनके ऐसे चरित्र देखकर और उधर उनकी महिमा सुनकर मेरी बुद्धि अत्यन्त चकरा रही है ॥ १०८ ॥

चौ०—जौं अनीह व्यापक बिभु कोऊ । कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ ॥

अग्य जानि रिस उर जनि धरहु । जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहु ॥ १ ॥

यदि इच्छारहित, व्यापक, समर्थ ब्रह्म कोई और है, तो हे नाथ ! मुझे उसे समझाकर कहिये । मुझे नादान समझकर मनमें क्रोध न लाइये । जिस तरह मेरा मोह दूर हो, वही कीजिये ॥ १ ॥

मैं बन दीखि रामप्रभुताई । अति भय बिकल न तुम्हहि सुनाई ॥

तदपि मलिन मन बोधु न आवा । सो फलु भली भाँति हम पावा ॥ २ ॥

मैंने [पिछले जन्ममें] वनमें श्रीरामचन्द्रजीकी प्रभुता देखी थी, परन्तु अत्यन्त भयभीत होनेके

कारण मैंने वह बात आपको सुनायी नहीं। तो भी मेरे मलिन मनको बोध न हुआ। उसका फल भी मैंने अच्छी तरह पा लिया ॥ २ ॥

अजहूँ कहहु संसउ मन मोरें। करहु कृपा बिनवउँ कर जोरें ॥

प्रभु तब मोहि बहु भाँति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा ॥ ३ ॥

अब भी मेरे मनमें कुछ सन्देह है। आप कृपा कीजिये, मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ। हे प्रभो ! आपने उस समय मुझे बहुत तरहसे समझाया था [फिर भी मेरा सन्देह नहीं गया], हे नाथ ! यह सोचकर मुझपर क्रोध न कीजिये ॥ ३ ॥

तब कर अस बिमोह अब नाहीं। रामकथा पर रुचि मन माहीं ॥

कहहु पुनीत राम गुन गाथा। भुजगराजभूषन सुरनाथा ॥ ४ ॥

मुझे अब पहले-जैसा मोह नहीं है, अब तो मेरे मनमें रामकथा सुननेकी रुचि है। हे शेषनागको अलंकाररूपमें धारण करनेवाले देवताओंके नाथ ! आप श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी पवित्र कथा कहिये ॥ ४ ॥

दो०—बंदउँ पद धरि धरनि सिरु बिनय करउँ कर जोरि ।

बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुतिसिद्धांत निचोरि ॥ १०९ ॥

मैं पृथ्वीपर सिर टेककर आपके चरणोंकी वन्दना करती हूँ और हाथ जोड़कर विनती करती हूँ। आप वेदोंके सिद्धान्तको निचोड़कर श्रीरघुनाथजीका निर्मल यश वर्णन कीजिये ॥ १०९ ॥

चौ०—जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन कम बचन तुम्हारी ॥

गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं ॥ १ ॥

यद्यपि स्त्री होनेके कारण मैं उसे सुननेकी अधिकारिणी नहीं हूँ, तथापि मैं मन, वचन और कर्मसे आपकी दासी हूँ। संत लोग जहाँ आर्त अधिकारी पाते हैं, वहाँ गूढ़ तत्त्व भी उससे नहीं छिपाते ॥ १ ॥

अति आरति पूछउँ सुरराया। रघुपतिकथा कहहु करि दाया ॥

प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी ॥ २ ॥

हे देवताओंके स्वामी ! मैं बहुत ही आर्तभाव (दीनता) से पूछती हूँ, आप मुझपर दया करके श्रीरघुनाथजीकी कथा कहिये। पहले तो वह कारण विचारकर बतलाइये जिससे निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करता है ॥ २ ॥

पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा ॥

कहहु जथा जानकी बिबाहीं। राज तजा सो दूषन काहीं ॥ ३ ॥

फिर हे नाथ ! श्रीरामचन्द्रजीके अवतार (जन्म) की कथा कहिये, तथा उनका उदार बालचरित्र कहिये। फिर जिस प्रकार श्रीजानकीजीसे विवाह किया, वह कथा कहिये, और फिर वह बतलाइये कि उन्होंने जो राज्य छोड़ा सो किस दोषसे ॥ ३ ॥

बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा ॥

राज बैठि कीन्हीं बहु लीला। सकल कहहु संकर सुखसीला ॥ ४ ॥

हे नाथ ! फिर उन्होंने बनमें रहकर जो अपार चरित्र किये तथा जिस तरह रावणको मारा, वह कहिये। हे सुखस्वरूप शंकर ! फिर आप उन सारी लीलाओंको कहिये जो उन्होंने राज्य [सिंहासन] पर बैठकर की थीं ॥ ४ ॥



सुभग सेज सोभित कौसल्या हबिर राम-सिसु गोद लिये ।
बार-बार बिभुबदन बिभोकति डोचन चार बकोर किये ॥ (गो०)

दो०—बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम ।

प्रजा सहित रघुवंसमनि किमि गवने निज धाम ॥११०॥

हे कृपाधाम ! फिर वह अद्भुत चरित्र कहिये जो श्रीरामचन्द्रजीने किया । वे रघुकुलशिरोमणि प्रजा-सहित किस प्रकार अपने धामको गये ? ॥११०॥

चौ०—पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी । जेहिं बिग्यान मगन मुनि ग्यानी ॥

भगति ग्यान बिग्यान बिरागा । पुनि सब बरनहु सहित विभागा ॥ १ ॥

हे प्रभु ! फिर आप उस तत्त्वको समझाकर कहिये, जिसकी अनुभूतिमें ज्ञानी मुनिगण सदा मग्न रहते हैं; और फिर भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्यका विभागसहित वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

औरउ राम रहस्य अनेका । कहहु नाथ अति बिमल बिबेका ॥

जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई । सोउ दयाल राखहु जनि गोई ॥ २ ॥

[इसके सिवा] श्रीरामचन्द्रजीके और भी जो अनेक रहस्य (छिपे हुए भाव अथवा चरित्र) हैं, उनको कहिये । हे नाथ ! आपका ज्ञान अत्यन्त निर्मल है । हे प्रभो ! जो बात मैंने न भी पूछी हो, हे दयालु ! उसे भी आप छिपा न रक्खियेगा ॥ २ ॥

तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना । आन जीव पावँर का जाना ॥

प्रसन्न उमा कै सहज सुहाई । छलबिहीन सुनि सिव मन भाई ॥ ३ ॥

वेदोंने आपको तीनों लोकोंका गुरु कहा है । दूसरे पामर जीव इस रहस्यको क्या जानें ! पार्वतीजी-के सहज सुन्दर और छलरहित (सरल) प्रश्न सुनकर शिवजीके मनको बहुत अच्छे लगे ॥ ३ ॥

हर हियँ रामचरित सब आए । प्रेम पुलक लोचन जल छाए ॥

श्रीरघुनाथ रूप उर आवा । परमानंद अमित सुख पावा ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजीके हृदयमें सारे रामचरित्र आ गये । प्रेमके मारे उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमें जल भर आया । श्रीरघुनाथजीका रूप उनके हृदयमें आ गया, जिससे स्वयं परमानन्दस्वरूप शिवजीने भी अपार सुख पाया ॥ ४ ॥

दो०—मगन ध्यानरस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह ।

रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह ॥१११॥

शिवजी दो घड़ीतक ध्यानके रस (आनन्द) में डूबे रहे; फिर उन्होंने मनको बाहर खींचा और तब वे प्रसन्न होकर श्रीरघुनाथजीका चरित्र वर्णन करने लगे ॥१११॥

चौ०—झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानैं । जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानैं ॥

जेहि जानैं जग जाइ हेराई । जागें जथा सपनभ्रम जाई ॥ १ ॥

जिसके बिना जाने झूठ भी सत्य मालूम होता है, जैसे बिना पहचाने रस्सीमें साँपका भ्रम हो जाता है; और जिसके ज्ञान लेनेपर जगत्का उसी तरह लोप हो जाता है जैसे जागनेपर स्वप्नका भ्रम जाता रहता है ॥ १ ॥

बंदउँ बालरूप सोई रामू । सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू ॥

मंगल भवन अमंगलहारी । द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी ॥ २ ॥

मैं उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीके बालरूपकी बन्दना करता हूँ, जिनका नाम जपनेसे सब सिद्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं। मंगलके धाम, अमंगलके हरनेवाले और श्रीदशरथजीके आँगनमें खेलनेवाले (बालरूप) श्रीरामचन्द्रजी मुझपर कृपा करें ॥ २ ॥

करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी । हरषि सुधा सम गिरा उचारी ॥

धन्य धन्य गिरिराजकुमारी । तुम्ह समान नहीं कोउ उपकारी ॥ ३ ॥

त्रिपुरासुरका वध करनेवाले शिवजी श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके आनन्दमें भरकर अमृतके समान वाणी बोले—हे गिरिराजकुमारी पार्वती ! तुम धन्य हो ! धन्य हो ! तुम्हारे समान कोई उपकारी नहीं है ॥ ३ ॥

पूछेहु रघुपति कथा प्रसंगा । सकल लोक जग पावनि गंगा ॥

तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी । कीन्हिहु प्रसन्न जगतहित लागी ॥ ४ ॥

जो तुमने श्रीरघुनाथजीकी कथाका प्रसंग पूछा है, जो कथा समस्त लोकोंके लिये जगत्को पवित्र करनेवाली गंगाजीके समान है। तुमने जगत्के कल्याणके लिये ही प्रश्न पूछे हैं। तुम श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें प्रेम रखनेवाली हो ॥ ४ ॥

दो०—रामकृपा तें पारबति सपनेहुँ तव मन माहिं ।

सोक मोह संदेह भ्रम मम विचार कछु नाहिं ॥ ११२ ॥

हे पार्वती ! मेरे विचारमें तो श्रीरामजीकी कृपासे तुम्हारे मनमें स्वप्नमें भी शोक, मोह, संदेह और भ्रम कुछ भी नहीं है ॥ ११२ ॥

चौ०—तदपि असंका कीन्हिहु सोई । कहत सुनत सब कर हित होई ॥

जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना । श्रवन रंघ अहिभवन समाना ॥ १ ॥

फिर भी तुमने इसीलिये वही (पुरानी) शंका की है कि इस प्रसङ्गके कहने-सुननेसे सबका कल्याण होगा। जिन्होंने अपने कानोंसे भगवान्की कथा नहीं सुनी, उनके कानोंके छिद्र साँपके बिलके समान हैं ॥ १ ॥

नयनन्हि संत दरस नहिं देखा । लोचन मोरपंख कर लेखा ॥

ते सिर कटु तुंबरि समत्ला । जे न नमत हरि गुर पद मूला ॥ २ ॥

जिन्होंने अपने नेत्रोंसे संतोंके दर्शन नहीं किये, उनके वे नेत्र मोरके पंखोंपर दीखनेवाली नकली आँखोंकी गिनतीमें हैं। वे सिर कड़वी तूँबीके समान हैं जो श्रीहरि और गुरुके चरणतलपर नहीं झुकते ॥ २ ॥

जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी । जीवत सब समान तेह प्राणी ॥

जो नहिं करइ राम गुन गाना । जीह सो दादुर जीह समाना ॥ ३ ॥

जिन्होंने भगवान्की भक्तिको अपने हृदयमें स्थान नहीं दिया, वे प्राणी जीते हुए ही मुर्देके समान हैं। जो जीव श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका गान नहीं करती, वह मेढककी जीभके समान है ॥ ३ ॥

कुलिसकठोर निठुर सोइ छाती । सुनि हरिचरित न जो हरपाती ॥

गिरिजा सुनहु राम कै लीला । सुर हित दनुज बिमोहनसीला ॥ ४ ॥

वह हृदय वज्रके समान कड़ा और निष्ठुर है जो भगवान्के चरित्र सुनकर हर्षित नहीं होता। हे पार्वती ! श्रीरामचन्द्रजीकी लीला सुनो, यह देवताओंका कल्याण करनेवाली और दैत्योंको विधोपरूपसे मोहित करनेवाली है ॥ ४ ॥

कल्याण

शिव-पार्वती



रामकृपा तै पारयति सपनेहुँ तव मन माहि ।
सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहि ॥

दो०—रामकथा सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि ।

सतसमाज सुरलोक सब को न सुनै अस जानि ॥११३॥

श्रीरामचन्द्रजीकी कथा कामधेनुके समान सेवा करनेसे सब सुखोंको देनेवाली है, और सत्पुरुषोंके समाज ही सब देवताओंके लोक हैं, ऐसा जानकर इसे कौन न सुनेगा ! ॥ ११३ ॥

चौ०—रामकथा सुंदर करतारी । संसय बिहग उड़ावनिहारी ॥

रामकथा कलि थिटप कुठारी । सादर सुनु गिरिराजकुमारी ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी कथा हाथकी सुन्दर ताली है, जो सन्देहरूपी पक्षियोंको उड़ा देती है । फिर राम-कथा कलियुगरूपी वृक्ष [को काटने] के लिये कुल्हाड़ी है । हे गिरिराजकुमारी ! तुम इसे आदर-पूर्वक सुनो ॥ १ ॥

राम नाम गुन चरित सुहाय । जनम करम अगनित श्रुति गाय ॥

जथा अनंत राम भगवाना । तथा कथा कीरति गुन नाना ॥ २ ॥

वेदोंने श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर नाम, गुण, चरित्र, जन्म और कर्म सभी अनगिनत कहे हैं । जिस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अनन्त हैं, उसी तरह उनकी कथा, कीर्ति और गुण भी अनन्त हैं ॥ २ ॥

तदपि जथा श्रुत जसि मति मोरी । कहिहुँ देखि प्रीति अति तोरी ॥

उमा प्रसन्न तब सहज सुहाई । सुखद संतसंमत मोहि भाई ॥ ३ ॥

तो भी तुम्हारी अत्यन्त प्रीति देखकर, जैसा कुछ मैंने सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है, उसीके अनुसार मैं कहूँगा । हे पार्वती ! तुम्हारा प्रभ स्वभाविक ही सुन्दर, सुखदायक और संतसम्मत है और मुझे बहुत अच्छा लगा है ॥ ३ ॥

एक बात नहिं मोहि सोहानी । जदपि मोह बस कहेहु भवानी ॥

तुम्ह जो कहा राम कोउ आना । जेहि श्रुति गाव घरहिं मुनि ध्याना ॥ ४ ॥

परन्तु हे पार्वती ! एक बात मुझे अच्छी नहीं लगी, यद्यपि तुमने मोहके वश होकर ही कही है । तुमने जो यह कहा कि वे राम कोई और है जिन्हें वेद गाते और मुनिजन जिनका ध्यान धरते हैं—॥ ४ ॥

दो०—कहहिं सुनिहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोहपिसाच ।

पापंढी हरिपद विमुख जानहिं झूठ न साच ॥११४॥

जो मोहरूपी पिशाचके द्वारा ग्रस्त हैं, पापण्डी हैं, भगवान्‌के चरणोंसे विमुख हैं और जो झूठ-सच कुछ भी नहीं जानते, ऐसे अधम मनुष्य ही इस तरह कहते-सुनते हैं ॥ ११४ ॥

चौ०—अग्य अकोबिद अंध अभागी । काई बिषय मुकुर मन लागी ॥

लंपट कपटी कुटिल बिसेषी । सपनेहुँ संतसभा नहिं देखी ॥ १ ॥

जो अज्ञानी, मूर्ख, अंधे और भाग्यहीन हैं और जिनके मनरूपी दर्पणपर विषयरूपी काँई जमी हुई है; जो व्यभिचारी, छली और बड़े कुटिल हैं और जिन्होंने कभी स्वप्नमें भी संत-समाजके दर्शन नहीं किये; ॥ १ ॥

कहहिं ते बेद असंमत बानी । जिन्ह कें सुख लाभ नहिं हानी ॥

मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना । राम रूप देखहिं किमि दीना ॥ २ ॥

और जिन्हें अपनी लाभ-हानि नहीं सूझती, वे ही वेदोंके विरुद्ध ऐसी बातें कहा करते हैं।
जिनका हृदयरूपी दर्पण मैला है और जो नेत्रोंसे हीन हैं, वे बेचारे श्रीरामचन्द्रजीका रूप कैसे देखें ! ॥२॥

जिन्ह कैं अगुन न सगुन बिबेका । जल्पहिं कल्पित बचन अनेका ॥

हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं । तिन्हहि कहत कछु अधटित नाहीं ॥ ३ ॥

जिनको निर्गुण-सगुणका कुछ भी विवेक नहीं है, जो अनेक मनगढ़ंत बातें बका करते हैं, जो श्रीहरिकी मायाके वशमे होकर जगत्मे (जन्म-मृत्युके चक्रमे) भ्रमते फिरते हैं, उनके लिये कुछ भी कह डालना असम्भव नहीं है ॥ ३ ॥

बातुल भूतबिबस मतवारे । ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे ॥

जिन्ह कृत महामोह मद पाना । तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना ॥ ४ ॥

जिन्हें वायुका रोग (सन्निपात, उन्माद आदि) हो गया है, जो भूतके वश हो गये हैं, और जो नशेमें हैं, ऐसे लोग विचारकर वचन नहीं बोलते। जिन्होंने महामोहरूपी मदिरा पी रखी है, उनके कहनेपर कान न देना चाहिये ॥ ४ ॥

सो०—अस निज हृदयँ विचारि तजु संसय भजु रामपद ।

सुनु गिरिराजकुमारि भ्रम तम रवि कर बचन मम ॥११५॥

अपने हृदयमें ऐसा विचारकर सन्देह छोड़ दो और श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंको भजो। हे पार्वती ! भ्रमरूपी अन्धकार [के नाश करने] के लिये सूर्यको किरणोंके समान मेरे वचनोंको सुनो ! ॥ ११५ ॥

चौ०—सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा ॥

अगुन अरूप अलख अज जई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥ १ ॥

सगुण और निर्गुणमें कुछ भी भेद नहीं है - मुनि, पुराण, पण्डित और वेद सभी ऐसा कहते हैं। जो निर्गुण, अरूप (निराकार), अलख (अव्यक्त) और अजन्मा है, वही भक्तोंके प्रेमवश सगुण हो जाता है ॥१॥

जो गुनरहित सगुन सोई कैसैं । जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसैं ॥

जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा । तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा ॥ २ ॥

जो निर्गुण है वही सगुण कैसे है ? जैसे जल और ओलेमे भेद नहीं। (दोनों जल ही हैं, ऐसे ही निर्गुण और सगुण एक ही है।) जिसका नाम भ्रमरूपी अन्धकार [के मिटाने] के लिये सूर्य है, उसके लिये मोहका प्रसंग भी कैसे कहा जा सकता है ? ॥ २ ॥

राम सच्चिदानंद दिनेसा । नहिं तहँ मोहनिसा लवलेसा ॥

सहज प्रकासरूप भगवाना । नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजी सच्चिदानन्दस्वरूप सूर्य हैं। वहाँ मोहरूपी रात्रिका लवलेश भी नहीं है। वे स्वभावसे ही प्रकाशरूप और [पदैश्वर्ययुक्त] भगवान् हैं, वहाँ तो विज्ञानरूपी प्रातःकाल भी नहीं होता। (अज्ञानरूपी रात्रि हो तब तो विज्ञानरूपी प्रातःकाल हो; भगवान तो नित्य ज्ञानस्वरूप हैं।) ॥ ३ ॥

हरष बिपाद ग्यान अग्याना । जीवधर्म अहमिति अभिमाना ॥

राम ब्रह्म व्यापक जग जाना । परमानंद परेस पुगना ॥ ४ ॥

हर्ष, शोक, ज्ञान, अज्ञान, अहंता और अभिमान, ये सब जीवके धर्म हैं। श्रीरामचन्द्रजी तो व्यापक ब्रह्म, परमानन्दस्वरूप, परात्पर प्रभु और पुराण पुरुष हैं। इस बातको मारा जगत् जानता है ॥ ४ ॥

दो०—पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि प्रगट पंशवरनाथ ।

रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवै नायउ माथ ॥११६॥

जो [पुराण-] पुरुष प्रसिद्ध हैं, प्रकाशके भण्डार हैं, सब रूपोंमें प्रकट हैं, जीव, माया और जगत् सबके स्वामी हैं, वे ही रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजी मेरे स्वामी हैं, ऐसा कहकर शिवजीने उनको मस्तक नवाया ॥ ११६ ॥

चौ०—निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी । प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी ॥

जथा गगन घनपटल निहारी । झाँपैउ भानु कहहिं कुबिचारी ॥ १ ॥

अज्ञानी मनुष्य अपने भ्रमको तो समझते नहीं और वे मूर्ख प्रभु (श्रीरामचन्द्रजी) पर उसका आरोप करते हैं । जैसे आकाशमें बादलोंका पर्दा देखकर कुबिचारी (अज्ञानी) लोग कहते हैं कि बादलोंने सूर्यको ढक लिया ॥ १ ॥

चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ । प्रगट जुगल ससि तेहि कँ भाएँ ॥

उमा रामबिपहक अस मोहा । नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा ॥ २ ॥

जो मनुष्य आँखमें उँगली लगाकर देवता है, उसके लिये तो दो चन्द्रमा प्रकट (दीखते) हैं । हे पार्वती ! श्रीरामचन्द्रजीके विषयमें मोहकी कल्पना करना वैसा ही है जैसा आकाशमें अन्धकार, धुँएँ और धूलका सोहना (दीखना) । [आकाश जैसे निर्मल और निर्लेप है, उसको कोई मलिन या स्पर्श नहीं कर सकता, इसी प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी नित्य निर्मल और निर्लेप हैं] ॥ २ ॥

बिषय करन सुर जीव समेता । सकल एक तैं एक सचेता ॥

सब कर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ॥ ३ ॥

विषय, इन्द्रियों, इन्द्रियोंके देवता और जीवात्मा, ये सब एककी सहायतासे एक चेतन होते हैं । (अर्थात् विषयोंका प्रकाश इन्द्रियोंसे, इन्द्रियोंका इन्द्रियोंके देवताओंसे और इन्द्रियदेवताओंका चेतन जीवात्मासे प्रकाश होता है ।) इन सबका जो परम प्रकाशक है (अर्थात् जिससे इन सबका प्रकाश होता है), वही अनादि ब्रह्म अयोध्या-नरेश श्रीरामचन्द्रजी हैं ॥ ३ ॥

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीस ग्यान गुन धामू ॥

जासु सत्यता तैं जड़ माया । भास सत्य इव मोह सहाया ॥ ४ ॥

यह जगत् प्रकाश्य है और श्रीरामचन्द्रजी इसके प्रकाशक हैं । वे मायाके स्वामी और ज्ञान तथा गुणोंके धाम हैं । जिनकी सत्तासे, मोहकी सहायता पाकर जड़ माया भी सत्य-सी भासित होती है, ॥ ४ ॥

दो०—रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानुकर बारि ।

जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥११७॥

जैसे सीपमें चाँदीकी और सूर्यकी किरणोंमें पानीकी [बिना हुए भी] प्रतीति होती है । यद्यपि यह प्रतीति तीनों कालोंमें छूट है, तथापि इस भ्रमको कोई हटा नहीं सकता ॥११७॥

चौ०—एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई । जदपि असत्य देत दुख अहई ॥

जौ सपनैं सिर काटै कोई । बिनु जागैं न दूरि दुख होई ॥ १ ॥

इसी तरह यह संसार भगवान्के आश्रित रहता है । यद्यपि यह असत्य है, तो भी दुःख तो देता ही है; जिस तरह स्वप्नमें कोई सिर काट ले तो बिना जागे वह दुःख दूर नहीं होता ॥ १ ॥

जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई । गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई ॥

आदि अंत कोउ जासु न पावा । मति अनुमानि निगम अस गावा ॥ २ ॥

हे पार्वती ! जिनकी कृपासे इस प्रकारका भ्रम मिट जाता है, वही कृपालु श्रीरघुनाथजी हैं । जिनका आदि और अन्त किसीने नहीं [जान] पाया । वेदोंने अपनी बुद्धिसे अनुमान करके इस प्रकार (नीचे लिखे अनुसार) गाया है—॥ २ ॥

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना । कर बिनु करम करइ बिधि नाना ॥

आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥ ३ ॥

वह (ब्रह्म) बिना ही पैरके चलता है, बिना ही कानके सुनता है, बिना ही हाथके नाना प्रकारके काम करता है, बिना मुँह (जिह्वा) के ही सारे (छहों) रसोंका आनन्द लेता है और बिना ही वाणीके बहुत योग्य वक्ता है ॥ ३ ॥

तन बिनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहइ घान बिनु बास असेषा ॥

असि सब भौंति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥ ४ ॥

वह बिना ही शरीर (त्वचा) के स्पर्श करता है, बिना ही आँखोंके देखता है । और बिना ही नाकके सब गन्धोंको ग्रहण करता (सूँघता) है । उस ब्रह्मकी करनी सभी प्रकारसे ऐसी अलौकिक है कि जिसकी महिमा कही नहीं जा सकती ॥ ४ ॥

दो०—जेहि इमि गावहिं वेद बुध आहि धरहिं मुनि ध्यान ।

सोइ दसरथसुत भगतहित कोसलपति भगवान् ॥ ११८ ॥

जिसका वेद और पण्डित इस प्रकार वर्णन करते हैं और मुनि जिसका ध्यान धरते हैं, वही दसरथनन्दन, भक्तोंके हितकारी, अयोध्याके स्वामी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं ॥ ११८ ॥

चौ०—कासीं मरत जंतु अवलोकी । जासु नामबल करउँ बिसोकी ॥

सोइ प्रभु मोर चराचरस्वामी । रघुवर सब उर अंतरजामी ॥ १ ॥

[हे पार्वती !] जिनके नामके बलसे काशीमें मरते हुए प्राणीको देव्यकर मैं उसे [राममन्त्र देकर] शोक-रहित कर देता हूँ (मुक्त कर देता हूँ), वही मेरे प्रभु रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी जड़-चेतनके स्वामी और सबके हृदयके भीतरकी जाननेवाले हैं ॥ १ ॥

बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं । जनम अनेक रचित अघ दहहीं ॥

सादर सुमिरन जे नर करहीं । भवबारिधि गोपद इव तरहीं ॥ २ ॥

विवश होकर (बिना इच्छाके) भी जिनका नाम लेनेसे मनुष्योंके अनेक जन्मोंमें किये हुए पाप जल जाते हैं । फिर जो मनुष्य आदरपूर्वक उनका स्मरण करते हैं, वे तो संसाररूपी [दुस्तर] समुद्रको गायके खुर [से बने हुए गड्ढे] के समान (अर्थात् बिना किसी परिश्रमके) पार कर जाते हैं ॥ २ ॥

राम सो परमात्मा भवानी । तहँ भ्रम अति अविहित तव बानी ॥

अस संसय आनत उर माहीं । ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं ॥ ३ ॥

[हे पार्वती !] वही परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी हैं । उनमें भ्रम [देखनेमें आता] है, तुम्हारा ऐसा कहना अत्यन्त ही अनुचित है । इस प्रकारका सन्देह मनमें लगे ही मनुष्यके ज्ञान, वैराग्य आदि सारे सद्गुण नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

सुनि सिध के भ्रमभंजन बचना । मिटि गै सब कुतरक कै रचना ॥
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती । दारुन असंभावना बीती ॥ ४ ॥

शिवजीके भ्रमनाशक वचनोंको सुनकर पार्वतीजीके सब कुतर्कोंकी रचना मिट गयी । श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें उनका प्रेम और विश्वास हो गया और कठिन असंभावना (जिसका होना सम्भव नहीं, ऐसी मिथ्या कल्पना) जाती रही ॥ ४ ॥

दो०—पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि जोरि पंकरुह पानि ।

बोलीं गिरिजा बचन बर मनहुँ प्रेमरस सानि ॥ ११९ ॥

बार-बार स्वामी (शिवजी) के चरणकमलोंको पकड़कर और अपने कमलके समान हाथोंको जोड़कर, पार्वतीजी मानो प्रेमरसमें सानकर सुन्दर वचन बोलीं ॥ ११९ ॥

चौ०—ससिकर सम सुनि गिरा तुम्हारी । मिटा मोह सरदातप भारी ॥

तुम्ह कृपाल सखु संसउ हरेऊ । रामस्वरूप जानि मोहि परेऊ ॥ १ ॥

आपकी चन्द्रमाकी किरणोंके समान शीतल वाणी सुनकर मेरा अज्ञानरूपी शरदृक्कतु (बार) की धूप का भारी ताप मिट गया । हे कृपाल ! आपने मेरा सब सन्देह हर लिया, अब श्रीरामचन्द्रजीका यथार्थ स्वरूप मेरी समझमें आ गया ॥ १ ॥

नाथकृपाँ अब गयउ बिषादा । सुखी भइउँ प्रभु चरन प्रसादा ॥

अब मोहि आपनि किंकरि जानी । जदपि सहज जड़ नारि अयानी ॥ २ ॥

हे नाथ ! आपकी कृपासे अब मेरा विषाद जाता रहा और आपके चरणोंके अनुग्रहसे मैं सुखी हो गयी । यद्यपि मैं स्त्री होनेके कारण स्वभावसे ही मूर्ख और ज्ञानहीन हूँ; तो भी अब आप मुझे अपनी दासी जानकर—॥ २ ॥

प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू । जौं मोपर प्रसन्न प्रभु अहहू ॥

राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी । सर्वरहित सब उर पुर बासी ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो जो बात मैंने पहले आपसे पूछी थी, वही कहिये । [यह सत्य है कि] श्रीरामचन्द्रजी ब्रह्म हैं, चिन्मय (ज्ञानस्वरूप) हैं, अविनाशी हैं, सबसे रहित और सबके हृदयरूपी नगरीमें निवास करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू । मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतू ॥

उमाबचन सुनि परम विनीता । रामकथा पर प्रीति पुनीता ॥ ४ ॥

फिर हे नाथ ! उन्होंने मनुष्यका शरीर किस कारणसे धारण किया ? हे धर्मकी ध्वजा धारण करनेवाले प्रभो ! यह मुझे समझाकर कहिये । पार्वतीके अत्यन्त नम्र वचन सुनकर और श्रीरामचन्द्रजीकी कथामें उनका विशुद्ध प्रेम देखकर—॥ ४ ॥

दो०—हियँ हरषे कामारि तब संकर सहज सुजान ।

बहु विधि उमहि प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान ॥ १२० (क) ॥

तब कामदेवके शत्रु, स्वाभाविक ही सुजान, कृपानिधान शिवजी मनमें बहुत ही हर्षित हुए और बहुत प्रकारसे पार्वतीकी बड़ाई करके फिर बोले—॥ १२० (क) ॥

नवाह्नपारायण—पहला विश्राम

मासपारायण—चौथा विश्राम

सो०—सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल ।

कहा भृसुंडि बखानि सुना बिहगनायक गरुड़ ॥१२०(ख)॥

हे पार्वती ! निर्मल रामचरितमानसकी वह मंगलमयी कथा सुनो जिसे काकभुशुण्डिने विस्तारसे कहा और पक्षियोंके राजा गरुड़जीने सुना था ॥१२० (ख)॥

सो संवाद उदार जेहि बिधि भा आगें कहब ।

सुनहु राम अवतार चरित परम सुंदर अनघ ॥१२०(ग)॥

वह श्रेष्ठ संवाद जिस प्रकार हुआ, वह मैं आगे कहूँगा । अभी तुम श्रीरामचन्द्रजीके अवतारका परम सुन्दर और पवित्र (पापनाशक) चरित्र सुनो ॥ १२० (ग) ॥

हरि गुन नाम अपार कथा रूप अगणित अमित ।

मैं निज मति अनुसार कहउँ उमा सादर सुनहु ॥१२०(घ)॥

श्रीहरिके गुण, नाम, कथा और रूप सभी अपार, अगणित और अमीम हैं । हे पार्वती ! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कहता हूँ, तुम आदरपूर्वक सुनो ॥ १२० (घ) ॥

चौ०—सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए । बिपुल बिसद निगमागम गाए ॥

हरि अवतार हेतु जेहि होई । इदमित्थं कहि जाइ न सोई ॥ १ ॥

हे पार्वती ! सुनो, वेद-शास्त्रोंने श्रीहरिके सुन्दर, विस्तृत और निर्मल चरित्रोंका गान किया है । हरिका अवतार जिस कारणसे होना है, वह कारण 'यस यही है' ऐसा नहीं कहा जा सकता (अनेकों कारण हो सकते हैं और ऐसे भी हो सकते हैं जिन्हें कोई जान ही नहीं सकता) ॥ १ ॥

राम अतर्क्य बुद्धि मन वानी । मत हमार अस सुनहि सयानी ॥

तदपि संत मुनि वेद पुराना । जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना ॥ २ ॥

हे सयानी ! सुनो, हमारा मत तो यह है कि बुद्धि, मन और वाणीसे श्रीरामचन्द्रजीकी तर्कना नहीं की जा सकती । तथापि संत, मुनि, वेद और पुराण अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार जैसा कुछ कहते हैं, ॥ २ ॥

तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही । समुझि परइ जस कारन मोही ॥

जब जब होइ धरम कै हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥ ३ ॥

और जैसा कुछ मेरी समझमें आता है, हे सुमुखि ! वही कारण मैं तुमको सुनाता हूँ । जब-जब धर्मका हास होता है और नीच अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं, ॥ ३ ॥

करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी । सीढ़हिं बिप्र धेनु सुर धरनी ॥

तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सजनपीरा ॥ ४ ॥

और वे ऐसा अन्याय करते हैं कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता, ब्राह्मण, गौ, देवता और पृथ्वी कष्ट पाते हैं, तब-तब वे कृपानिधान प्रभु भौति-भौतिके [दिव्य] शरीर धारणकर सजनोंकी पीड़ा हरते हैं ॥ ४ ॥

दो०—असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रति सेतु ।

जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु ॥१२१॥

वे असुरोंको मारकर देवताओंको स्थापित करते हैं, अपने वेदोंकी मर्यादाकी रक्षा करते हैं और जगत्में अपना निर्मल यश फैलाते हैं । श्रीरामचन्द्रजीके अवतारका यह कारण है ॥१२१॥

चौ०—सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । कृपासिंधु जन हित तनु घरहाँ ॥

राम जनम के हेतु अनेका । परम विचित्र एक तैं एका ॥ १ ॥

उसी यशको गा-गाकर भक्तजन भवसागरसे तर जाते हैं । कृपासागर भगवान् भक्तोंके हितके लिये शरीर धारण करते हैं । श्रीरामचन्द्रजीके जन्म लेनेके अनेक कारण हैं, जो एक-से-एक बढ़कर विचित्र हैं ॥ १ ॥

जनम एक दुइ कहउँ बखानी । सावधान सुनु सुमति भवानी ॥

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ । जय अरु विजय जान सब कोऊ ॥ २ ॥

हे सुन्दर बुद्धिवाली भवानी ! मैं उनके दो-एक जन्मोंका विस्तारसे वर्णन करता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो । श्रीहरिके जय और विजय दो प्यारे द्वारपाल हैं, जिनको सब कोई जानते हैं ॥ २ ॥

बिप्र श्राप तैं दूनउ भाई । तामस असुर देह तिन्ह पाई ॥

कनककशिपु अरु हाटकलोचन । जगत त्रिदित सुरपति मद मोचन ॥ ३ ॥

उन दोनों भाइयोंने ब्राह्मणके शापसे असुरोंका तामसी शरीर पाया । एकका नाम था हिरण्यकशिपु और दूसरेका हिरण्याक्ष । ये देवराज इन्द्रके गर्वका छुड़ानेवाले सारे जगत्में प्रसिद्ध हुए ॥ ३ ॥

विजई समर बीर बिख्याता । धरि बराह वपु एक निपाता ॥

होइ नरहरि दूसर पुनि मारा । जन प्रह्लाद सुजस बिस्तारा ॥ ४ ॥

वे युद्धमें विजय पानेवाले विख्यात वीर थे । इनमेंसे एक (हिरण्याक्ष) को भगवानने बराह (सूअर) का शरीर धारण करके मारा; फिर दूसरे (हिरण्यकशिपु) का नरमिंहरूप धारण करके वध किया और अपने भक्त प्रह्लादका सुन्दर यश फैलाया ॥ ४ ॥

दो०—भए निसाचर जाइ तेइ महावीर बलवान ।

कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान ॥ १२२ ॥

वे ही [दोनों] जाकर देवताओंको जीतनेवाले बड़े योद्धा रावण और कुम्भकर्ण नामसे बड़े बलवान् और महावीर राक्षस हुए, जिन्हें सारा जगत् जानता है ॥ १२२ ॥

चौ०—मुकुत न भए हते भगवाना । तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना ॥

एक बार तिन्ह के हित लागी । धरेउ सररी भगत अनुरागी ॥ १ ॥

भगवान्के द्वारा मारे जानेपर भी वे (हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु) इसीलिये मुक्त नहीं हुए कि ब्राह्मणके वचन (शाप) का प्रमाण तीन जन्मके लिये था । अतः एक बार उनके कल्याणके लिये भक्तप्रेमी भगवान्ने फिर अवतार लिया ॥ १ ॥

कश्यप अदिति तहाँ पितु माता । दशरथ कौसल्या बिख्याता ॥

एक कल्प एहि बिधि अवतारा । चरित पवित्र किए संसारा ॥ २ ॥

वहाँ (उस अवतारमें) कश्यप और अदिति उनके माता-पिता हुए, जो दशरथ और कौसल्याके नामसे प्रसिद्ध थे । एक कल्पमें इस प्रकार अवतार लेकर उन्होंने संसारमें पवित्र लीलाएँ की ॥ २ ॥

एक कल्प सुर देखि दुखारे । समर जलंधर सन सब हारे ॥

संभु कीन्ह संग्राम अपारा । दनुज महाबल मरइ न मारा ॥ ३ ॥

एक कल्पमें सब देवताओंको जलन्धर दैत्यने युद्धमें हार जानेके कारण दुखी देवोंकर शिवजीने उसके साथ बड़ा घोर युद्ध किया; पर वह महाबली दैत्य मारे नहीं मरा ॥ ३ ॥

परम सती असुराधिप नारी । तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी ॥ ४ ॥

उस दैत्यराजकी स्त्री परम सती (बड़ी ही पतिव्रता) थी । उसीके प्रतापसे त्रिपुरासुर [जैसे अजेय शत्रु] का विनाश करनेवाले शिवजी भी उस दैत्यको नहीं जीत सके ॥ ४ ॥

दो०—छल करि टारेउ तासु व्रत प्रभु सुरकारज कोन्ह ।

जब तेहिं जानेउ मरम तब आप कोप करि दीन्ह ॥ १२३ ॥

प्रभुने छलसे उस स्त्रीका व्रत भंगकर देवताओंका काम किया । जब उस स्त्रीने यह भेद जाना, तब उसने क्रोध करके भगवान्‌को शाप दिया ॥ १२३ ॥

चौ०—तासु आप हरि दीन्ह प्रमाना । कौतुकनिधि कृपाल भगवाना ॥

तहाँ जलंधर रावन भयऊ । रन हति राम परमपद व्यऊ ॥ १ ॥

लीलाओंके भण्डार कृपालु हरिने उस स्त्रीके शापको प्रामाण्य दिया (स्वीकार किया) । बड़ी जलंधर उस कल्पमें रावण हुआ, जिसे श्रीरामचन्द्रजीने युद्धमें मारकर परमपद दिया ॥ १ ॥

एक जनम कर कारन एहा । जेहि लगि राम घरी नरदेहा ॥

प्रति अवतार कथा प्रभु केरी । सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेगे ॥ २ ॥

एक जन्मका कारण यह था, जिससे श्रीरामचन्द्रजीने मनुष्यदेह धारण किया । हे भगवान्‌ मुनि ! सुनो, प्रभुके प्रत्येक अवतारकी कथाका कवियोंने नाना प्रकारसे वर्णन किया है ॥ २ ॥

नारद आप दीन्ह एक बारा । कल्प एक तेहि लगि अवतारा ॥

गिरिजा चकित भई सुनि धानी । नारद बिष्णुभगन पुनि ग्यायो ॥ ३ ॥

एक बार नारदजीने शाप दिया, अतः एक कल्पमें उसके लिये अवतार हुआ । यह बात सुनकर पार्वतीजी बड़ी चकित हुई और बोली कि नारदजी तो विष्णुभक्त और शानी हैं ॥ ३ ॥

कारन कवन आप मुनि दीन्हा । का अपराध रमाएनि कीन्हा ॥

यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी । मुनि मन मोह आचरज भारी ॥ ४ ॥

मुनिने भगवान्‌को शाप किस कारणसे दिया ? लक्ष्मीपति भगवान्‌ने उनका क्या अपराध किया था ? हे पुरारि (शंकरजी) ! यह कथा मुझसे कहिये । मुनि नारदके मनमें मोह होना बड़े आश्चर्यकी बात है ॥ ४ ॥

दो०—बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ ।

जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ ॥ १२४ (क) ॥

तब महादेवजीने हँसकर कहा—न कोई शानी है न मूर्ख । श्रीरघुनाथजी जब जिसको जैसा करते हैं, वह उसी क्षण वैसा ही हो जाता है ॥ १२४ (क) ॥

सो०—कहउँ राम गुन गाथ भगवान्‌ सादर सुनहु ।

भवभंजन रघुनाथ भजु तुलसी तजि मान मद ॥ १२४ (ख) ॥

[याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—] हे भगवान्‌ ! मैं श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी कथा कहता हूँ, तुम आदरसे सुनो । तुलसीदासजी कहते हैं—मान और मदको छोड़कर भव [भय] का नाश करनेवाले रघुनाथजीको भजो ॥ १२४ (ख) ॥

चौ०—हिमगिरि गुहा एक अति पावनि । वह समीप सुरसरी सुहावनि ॥

आश्रम परम पुनीत सुहावा । देखि देवरिषि मन अति भावा ॥ १ ॥

हिमालय पर्वतमें एक बड़ी पवित्र गुफा थी । उसके समीप ही सुन्दर गङ्गाजी बहती थीं । वह परम पवित्र सुन्दर आश्रम देखनेपर नारदजीके मनको बहुत ही सुहावना लगा ॥ १ ॥

निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा । भयउ रमापति पद अनुरागा ॥

सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी । सहज बिमल मन लागि समाधी ॥ २ ॥

पर्वत, नक्षे और वनके [सुन्दर] विभागोंका देखकर नारदजीका लक्ष्मीकान्त भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम हो गया । भगवान्‌का स्मरण करते ही उन (नारद मुनि) के शापकी (जो शाप उन्हें दक्ष प्रजापतिने दिया था और जिसके कारण वे एक स्थानपर नहीं ठहर सकते थे) गति रुक गयी और मनके स्वाभाविक ही निर्मल होनेसे उनकी समाधि लग गयी ॥ २ ॥

मुनिगति देखि सुरेस डेराना । कामहि बोलि कीन्ह सनमाना ॥

सहित सहाय जाहु मम हेतू । चलेउ हरषि हियँ जलचरकेतू ॥ ३ ॥

नारदमुनिकी [यह तपामयी] स्थिति देखकर देवराज इन्द्र डर गया । उसने कामदेवको बुलाकर उसका आदर-सत्कार किया [और कहा कि] मेरे [हितके] लिये तुम अपने सहायकों सहित [नारदका समाधि भंग करनेको] जाओ । [यह सुनकर] मीनध्वज कामदेव मनमें प्रसन्न होकर चला ॥ ३ ॥

सुनासीर मन महुँ असि त्रासा । चहत देवरिषि मम पुर बासा ॥

जे कामी लोलुप जग माहीं । कुटिल काक इव सबहि डेराहीं ॥ ४ ॥

इन्द्रके मनमें यह डर हुआ कि देवर्षि नारद मेरी पुरी (अमरावती) का निवास (राज्य) चाहते हैं । जगत्‌में जो कामी और लोभो होते हैं वे कुटिल कौएकी तरह सबसे डरते हैं ॥ ४ ॥

दो०—सूख हाड़ लै भाग सठ खान निरखि मृगराज ।

छोनि लेइ जनि जान जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज ॥ १२५ ॥

जैसे मूख कुत्ता सिंहको देखकर सूखी हड्डी लेकर भागे और वह मूख यह समझे कि कहीं उस हड्डीको सिंह छीन न ले, वैसे ही इन्द्रको [नारदजी मेरा राज्य छीन लेंगे ऐसा सोचते] लाज नहीं आयी ॥ १२५ ॥

चौ०—तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ । निज मायाँ बसंत निरमयऊ ॥

कुसुमिष बिबिध बिटप बहुरंगा । कूजहिं कोकिल गुंजहिं भुंगा ॥ १ ॥

जब कामदेव उस आश्रममें गया, तब उसने अपनी मायासे वहाँ वसन्त ऋतुको उत्पन्न किया । तरह-तरहके वृक्षोंपर रंग-बिरंगे फूल खिल गये और उनपर कोयलें कूकने लगी और भौंरे गुंजार करने लगे ॥ १ ॥

चली सुहावनि त्रिविध बयारी । काम कृसानु बड़ावनिहारी ॥

रंभादिक सुरनारि नबीना । सकल असमसर कला प्रबीना ॥ २ ॥

कामाग्निको भड़कानेवाली तीन प्रकारकी (शीतल, मन्द और सुगन्ध) सुहावनी हवा चलने लगी । रम्भा आदि नवयुवती देवागनाएँ जो सब-की-सब कामकलामें निपुण थीं, ॥ २ ॥

करहिं गान बहु तान तरंगा । बहुबिधि क्रीडहिं पानि पतंगा ॥

देखि सहाय मदन हरषाना । कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना ॥ ३ ॥

वे बहुत प्रकारकी तानोकी तरंगके साथ गाने लगी और हाथमें मेद लेकर नाना प्रकारके खेल खेलने लगी। कामदेव अपने इन सहायकोंको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और फिर उसने नाना प्रकारके मायाजाल किये ॥ ३ ॥

कामकला कछु मुनिहि न व्यापी । निज भयँ डरउ मनोभव पापी ॥
सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासु । बड़ रखबार रमापति जासु ॥ ४ ॥

परन्तु कामदेवकी कोई भी कला मुनिपर असर न कर सकी। तब तो पापी कामदेव अपने ही [नाशक] भयसे डर गया। लक्ष्मीपति भगवान् जिसके बड़े रक्षक हों, भला उसकी सीमा (मर्यादा) को कोई दबा सकता है! ॥ ४ ॥

दो०—सहित सहाय सभीत अति मानि हारि मन मै न ।

गहेसि जाइ मुनिचरन तब कहि सुठि आरत बैन ॥ १२६ ॥

तब अपने सहायको समेत कामदेवने बहुत डरकर और अपने मनमें हार मानकर बहुत ही आर्त (दीन) वचन कहते हुए मुनिके चरणोंको जा पकड़ा ॥ १२६ ॥

चौ०—भयउ न नारद मन कछु रोपा । कहि प्रिय वचन काम परितोषा ॥
नाइ चरन सिरु आयसु पाई । गयउ मदन तब सहित सहाई ॥ १ ॥

नारदजीके मनमें कुछ भी क्रोध न आया। उन्होंने प्रिय वचन कहकर कामदेवको सन्तुष्ट किया। तब मुनिके चरणोंमें सिर नवाकर और उनकी आज्ञा पाकर कामदेव अपने सहायको सहित लौट गया ॥ १ ॥

मुनि सुसीलता आपनि करनी । सुरपति सभाँ जाइ सब बरनी ॥
सुनि सब कै मन अचरजु आवा । मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिरु नावा ॥ २ ॥

देवराज इन्द्रकी सभामें जाकर उसने मुनिकी सुसीलता और अपनी करनूत सब कही, जिसे सुनकर सबके मनमें आश्चर्य हुआ और उन्होंने मुनिकी बढ़ाई करके श्राद्धरको सिर नवाया ॥ २ ॥

तब नारद गवन सिव पाहा । जिता काम अहमिति मन माहा ॥
मारचरित संकरहि सुनाए । अतिप्रिय जानि महंस सिखाए ॥ ३ ॥

तब नारदजी शिवजीके पास गये। उनके मनमें इस बातका अहङ्कार हो गया कि हमने कामदेवको जीत लिया। उन्होंने कामदेवके चरित्र शिवजीको सुनाये और महादेवजीने उन (नारदजी) को अत्यन्त प्रिय जानकर [इस प्रकार] शिक्षा दी—॥ ३ ॥

बार बार बिनवउँ मुनि तोही । जिमि यह कथा सुनायहु मोही ॥
तिमि जनि हरिहि सुनाएहु कयहुँ । चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहुँ ॥ ४ ॥

हे मुनि ! मैं तुमसे बार-बार बिनती करता हूँ कि जिस तरह यह कथा तुमने मुझे सुनायी है, उस तरह भगवान् श्रीहरिको कभी मत सुनाना। चर्चा भी चले तब भी इसको छिपा जाना ॥ ४ ॥

दो०—संभु दीन्ह उपदेस हित नहिं नारदहि सोहाम ।

भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान ॥ १२७ ॥

यद्यपि शिवजीने यह हितकी शिक्षा दी, पर नारदजीका वह अच्छी न लगी। हे भरद्वाज ! अब कौतुक (तमाशा) मुनो। हरिकी इच्छा बढ़ी बलवान् है ॥ १२७ ॥

चौ०—राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई । करै अन्यथा अस नहिं कोई ॥

संभु बचन मुनि मन नहिं भाए । तब बिरंचि के लोक सिखाए ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजी जो करना चाहते हैं वही होता है, ऐसा कोई नहीं जो उसके विरुद्ध कर सके। श्रीशिवजीके वचन नारदजीके मनको अच्छे नहीं लगे, तब वे वहाँसे ब्रह्मलोकको चल दिये ॥ १ ॥

एक बार करतल बर बीना । गावत हरिगुन गान प्रवीना ॥

छीरसिंधु गवने मुनिनाथा । जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा ॥ २ ॥

एक बार गानविद्यामें निपुण मुनिनाथ नारदजी हाथमें सुन्दर वीणा लिये, हरिगुण गाते हुए क्षीरसागरको गये, जहाँ वेदोंके मस्तकस्वरूप (वेदान्ततत्त्व) श्रीनिवास भगवान् नारायण रहते हैं ॥ २ ॥

हरषि मिले उठि रमानिकेता । बैठे आसन रिपिहि समेता ॥

बोले बिहसि चराचरराया । बहुते दिनन कान्हि मुनि दाया ॥ ३ ॥

रमानिवास भगवान् उठकर बड़े आनन्दसे उनसे मिले और ऋषि (नारदजी) के साथ आसनपर बैठ गये। चराचरके स्वामी भगवान् ईसकर बोले—हे मुनि ! आज आपने बहुत दिनोपर दया की ॥ ३ ॥

कामचरित नारद सब भाषे । जद्यपि प्रथम वरजि सिब राखे ॥

अति प्रचंड रघुपति कै माया । जेहि न मोह अस को जग जाया ॥ ४ ॥

यद्यपि श्रीशिवजीने उन्हें पहलसे ही बरज रक्खा था, तो भी नारदजीने कामदेवका सारा चरित्र भगवान्को कह सुनाया। श्रीरघुनाथजीकी माया बड़ी ही प्रबल है। जगत्में ऐसा कौन जन्मा है, जिसे उसने मोहित न किया हो ! ॥ ४ ॥

दो०—रुख बदन करि बचन मृदु बोलें श्रीभगवान् ।

तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं मोह मार मद मान ॥ १२८ ॥

भगवान् रुखा मुँह करके कोमल वचन बोले—हे मुनिगज ! आपका स्मरण करनेसे दूसरोंके मोह, काम, मद और अभिमान मिट जाते हैं [फिर आपकें लिये तो कहना ही क्या है !] ॥ १२८ ॥

चो०—सुनु मुनि मोह हाँइ मन ताकें । ग्यान विराग हृदय नहिं जाकें ॥

ब्रह्मचरज व्रत रत मतिधीरा । तुम्हहिं कि करइ मनोभव पीरा ॥ १ ॥

हे मुनि ! सुनिये, मोह तो उसके मनमें होता है जिसके हृदयमें ज्ञान-वैराग्य नहीं है। आप तो ब्रह्मचर्यव्रतमें तत्पर और बड़े धीरबुद्धि हैं। भला कहीं आपको भी कामदेव सता सकता है ! ॥ १ ॥

नारद कहेउ सहित अभिमाना । कृपा तुम्हारि सकल भगवाना ॥

करुनानिधि मन दीख विचारी । उर अंकुरेउ गरब तरु भारी ॥ २ ॥

नारदजीने अभिमानके साथ कहा—भगवन् ! यह सब आपकी कृपा है। करुणानिधान भगवान्ने मनमें विचारकर देखा कि इनके मनमें गर्वके भारी वृक्षका अंकुर पैदा हो गया है ॥ २ ॥

बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी । पन हमार सेवक हितकारी ॥

मुनि कर हित मम कौतुक हाँइ । अवसि उपाय करबि मैं सोई ॥ ३ ॥

मैं उसे तुरंत ही उखाड़ फेंकूँगा, क्योंकि सेवकोंका हित करना हमारा प्रण है। मैं अवश्य ही वह उपाय करूँगा जिससे मुनिका कल्याण और मेरा खेल हो ॥ ३ ॥

तब नारद हरिपद सिर नाई । चले हृदयँ अहमिति अधिकारी ॥

धीपति निज माया तब प्रेरी । सुनहु कठिन करनी तेहि केरी ॥ ४ ॥

तब नारदजी भगवान्‌के चरणोंमें सिर नवाकर चले । उनके हृदयमें अभिमान और भी बढ़ गया । तब लक्ष्मीपति भगवान्‌ने अपनी मायाको प्रेरित किया । अब उसको कठिन करनी सुनो ॥ ४ ॥

दो०—बिरचेउ मग महुँ नगर तेहिं सत जोजन बिस्तार ।

श्रीनिवासपुर तें अधिक रचना विविध प्रकार ॥ १२९ ॥

उस (हरिमाया) ने रास्तेमें सौ योजन (चार सौ कोस) का एक नगर रचा । उस नगरकी भाँति-भाँतिकी रचनाएँ लक्ष्मीनिवास भगवान्‌ विष्णुके नगर (वैकुण्ठ) से भी अधिक सुन्दर थीं ॥ १२९ ॥

चौ०—बसाहिं नगर सुंदर नर नारी । जनु बहु मनसिज रति तनुधारो ॥

तेहिं पुर बसइ सीलनिधि राजा । अगनित हय गय सेनसमाजा ॥ १ ॥

उस नगरमें ऐसे सुन्दर नर-नारी बसते थे मानो बहुत-से कामदेव और [उसकी स्त्री] रति ही मनुष्यशरीर धारण किये हुए हों । उस नगरमें शीलनिधि नामक राजा रहता था, जिसके यहाँ अशङ्क्य चाँड़े, हाथी और सेनाके समूह थे ॥ १ ॥

सत सुरेस सम बिभव बिलासा । रूप तेज बल नीति निवासा ॥

बिस्वमोहनी तासु कुमारी । श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी ॥ २ ॥

उसका वैभव और विलास सौ इन्द्रोंके समान था । वह रूप, तेज, बल और नीतिका घर था । उसके विश्वमोहिनी नामकी एक [ऐसी रूपवती] कन्या थी, जिसके रूपको देखकर लक्ष्मीजी भी मोहित हो जायें ॥ २ ॥

सोइ हरिमाया सब गुन खानी । सोभा तासु कि जाइ बखानी ॥

करइ स्वयंबर सो नृपबाला । आप तहँ अगनित महिपाला ॥ ३ ॥

वह सब गुणोंकी खान भगवान्‌की माया ही थी । उसकी शोभाका वर्णन कैसे किया जा सकता है ! वह राजकुमारी स्वयंबर करना चाहती थी, इससे वहाँ अगणित राजा आये हुए थे ॥ ३ ॥

मुनि कौतुकी नगर तेहिं गयऊ । पुरबासिन्ह सब पूछत भयऊ ॥

सुनि सब चरित भूपगृह आप । करि पूजा नृप मुनि बैठाए ॥ ४ ॥

खिलवाड़ी मुनि नारदजी उस नगरमें गये और नगरनिवासियोंसे उन्होंने सब हाल पूछा । सब समाचार सुनकर वे राजाके महलमें आये । राजाने पूजा करके मुनिको [आसनपर] बैठाया ॥ ४ ॥

दो०—आनि देखाई नारदहि भूपति राजकुमारि ।

कहहु नाथ गुन दोष सब एहि के हृदय बिचारि ॥ १३० ॥

[फिर] राजाने राजकुमारीको लकर नारदजीको दिखलाया [और पूछा कि]—हे नाथ ! आप अपने हृदयमें विचारकर इसके सब गुण-दोष कहिये ॥ १३० ॥

चौ०—देखि रूप मुनि बिरनि बिसारी । बड़ी बार लगि रहे निहारी ॥

लच्छन तासु बिलोकि भुलाने । हृदय हरष नहिं प्रगट बखाने ॥ १ ॥

उसके रूपको देखकर मुनि वैराग्य भूल गये और बड़ी देरतक उसकी ओर देखते ही रह गये । उसके लक्षण देखकर मुनि अपने आपको भी भूल गये और हृदयमें हर्षित हुए, पर प्रकटरूपमें उन लक्षणोंको नहीं कहा ॥ १ ॥

जो एहि बरह अमर सोइ होई । समरभूमि तेहि जीत न कोई ॥

सेवहिं सकल वराचर ताही । बरह सीलनिधि कन्या जाही ॥ २ ॥

[लक्ष्मणोंको सोचकर वे मनमें कहने लगे कि] जो इसे न्याहेगा, वह अमर होगा और रणभूमिमें कोई उसे जीत न सकेगा । यह शीलनिधिकी कन्या जिसको वरेगी, सब चर-अचर जीव उसकी सेवा करेंगे ॥ २ ॥

लच्छन सब विचारि ठर राखे । कछुक बनाइ भूप सन भाषे ॥

सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं । नारद चले सोच मन माहीं ॥ ३ ॥

सब लक्ष्मणोंको विचारकर मुनिने अपने हृदयमें रख लिया और राजासे कुछ दूसरे ही बनाकर कह दिखे । राजासे लक्ष्मीके सुलक्षण कहकर नारदजी चल दिये । पर उनके मनमें यह चिन्ता थी कि—॥ ३ ॥

करीं जाइ सोइ जतन विचारी । जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी ॥

अप तप कछु न होइ एहि काला । हे बिधि मिलै कवन बिधि बाला ॥ ४ ॥

मैं जाकर सोच-विचारकर अब वही उपाय करूँ जिससे यह कन्या मुझे ही बरे । इस समय जप-तप [से तो] कुछ हो नहीं सकता । हे विधाता ! मुझे यह कन्या किस तरह मिलेगी ॥ ४ ॥

दो०—एहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल ।

जो बिलोकि रीझै कुअरि तब मैलै जयमाल ॥ १३१ ॥

इस समय तो बड़ी शोभा और विशाल (सुन्दर) रूप चाहिये, जिसे देखकर राजकुमारी मुझपर रीझ जाय और तब जयमाल [मेरे गलेमें] डाल दे ॥ १३१ ॥

चो०—हरि सन मागौ सुंदरताई । होइहि जात गहर अति भाई ॥

मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ । एहि अवसर सहाय सोइ होऊ ॥ १ ॥

[एक काम करूँ कि] भगवान्‌से सुन्दरता माँगूँ; पर भाई ! उनके पास जानेमें तो बहुत देर हो जायगी । किन्तु भीहरिके समान मेरा कोई हित भी नहीं है, इसलिये इस समय वे ही मेरे सहायक हों ॥ १ ॥

बहुबिधि बिनय कीन्हि तेहि काला । प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला ॥

प्रभु बिलोकि मुनिनयन जुड़ाने । होइहि काजु हिएँ हरषाने ॥ २ ॥

उस समय नारदजीने भगवान्‌की बहुत प्रकारसे, बिनतो की । तब लीलामय कृपालु प्रभु [वहाँ] प्रकट हो गये । स्वामीको देखकर नारदजीके नेत्र शीतल हो गये और वे मनमें बड़े ही हर्षित हुए कि अब तो काम बन ही जायगा ॥ २ ॥

अति आरति कहि कथा सुनाई । करहु कृपा करि होहु सहाई ॥

आपन रूप देहु प्रभु मोही । आन भाँति नहिं पावौ ओही ॥ ३ ॥

नारदजीने बहुत आर्त (दीन) होकर सब कथा कह सुनायी [और प्रार्थना की कि] कृपा कीजिये और कृपा करके मेरे सहायक बनिये । हे प्रभो ! आप अपना रूप मुझको दीजिये, और किसी प्रकार मैं उस (राजकन्या) को नहीं पा सकता ॥ ३ ॥

जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा । करहु सो बेगि दास मैं तोरा ॥

निज माया बल देखि बिसाला । हियँ हँसि बोले दीनदयाला ॥ ४ ॥

हे नाथ ! जिस तरह मेरा हित हो, आप वही शीघ्र कीजिये । मैं आपका दास हूँ । अपनी मायाका विशाल बल देख दीनदयालु भगवान् मन-ही-मन हँसकर बोले—॥ ४ ॥

दो०—जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार ।

सोइ हम करब न आन कलु बचन न मृषा हमार ॥१३२॥

हे नारदजी ! सुनो, जिस प्रकार आपका परम हित होगा हम वही करेंगे; और कुछ नहीं । हमारा बचन असत्य नहीं होगा ॥ १३२ ॥

चौ०—कुपथ माग रुज व्याकुल रोगी । बैद न देख सुनहु मुनि जोनी ॥

एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ । कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ ॥ १ ॥

हे योगी मुनि ! सुनिये, जैसे रोगसे व्याकुल रोगी कुपथ्य माँगे तो वैद्य उसे नहीं देता, उसी प्रकार मैंने भी तुम्हारा हित करनेकी ठान ली है । ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये ॥ १ ॥

माया बिबस भए मुनि मूढ़ा । समुझी नहिं हरिगिरा निगूढ़ा ॥

गवने तुरत तहाँ रिषिराई । जहाँ स्वयंवर भूमि बनाई ॥ २ ॥

[भगवान्की] मायाके वशीभूत हुए मुनि ऐसे मूढ़ हो गये कि वे भगवान्की अगूढ़ (स्पष्ट) बाणीको भी न समझ सके । ऋषिराज नारदजी तुरन्त वहाँ गये जहाँ स्वयंवरकी भूमि बनायी गयी थी ॥ २ ॥

निज निज आसन बैठे राजा । बहु बनाव करि सहित समाजा ॥

मुनि मन हरप रूप अति भोरें । मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें ॥ ३ ॥

राजालोग खूब मज-धजकर समाजसहित अपने-अपने आसनपर बैठे थे । मुनि (नारद) मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे कि मेरा रूप बड़ा सुन्दर है, मुझे छोड़ कन्या भूलकर भी दूसरेको न बरेगी ॥ ३ ॥

मुनि हित कारन रुपानिधाना । दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना ॥

सो चरित्र लखि काहुँ न पावा । नारद जानि सबहिं सिर नावा ॥ ४ ॥

रूपानिधान भगवान्ने मुनिके कल्याणके लिये उन्हें ऐसा कुरूप बना दिया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता; पर यह चरित्र कोई भी न जान सका । सबने उन्हें नारद ही जानकर प्रणाम किया ॥ ४ ॥

दो०—रहे तहाँ दुइ रुद्रगन ते जानहिं सब मेउ ।

बिप्रवेश देखत फिरहिं परम कौतुकी तेउ ॥१३३॥

वहाँ दो शिवजीके गण भी थे । वे सब भेद जानते थे और ब्राह्मणका भेष बनाकर सारी लीला देखते फिरते थे । वे भी बड़े मौजी थे ॥ १३३ ॥

चौ०—जेहिं समाज बैठे मुनि जाई । हृदयँ रूप बहमिति अधिकारि ॥

तहँ बैठे महेशगन दोऊ । बिप्रवेश गति लखइ न कोऊ ॥ १ ॥

नारदजी अपने हृदयमें रूपका बड़ा अभिमान लेकर जिस समाज (पंक्ति) में जाकर बैठे थे, ये शिवजीके दोनों गण भी वही बैठ गये । ब्राह्मणके वेषमें होनेके कारण उनकी इस चाल्को कोई नहीं जान सका ॥ १ ॥

कल्याण

(१) मायानगरमें नारदजी



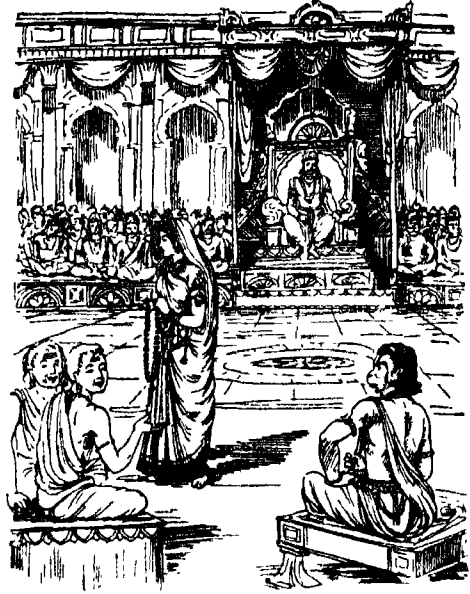
आनि देखाई नारदहि भूपति राजकुमारि ।
कहहु नाथ गुन दोष सब एहि के हृदयँ विचारि ॥
[पृष्ठ १५८]

(३) हरगणोंको शाप



बेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा ।
तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा ॥
[पृष्ठ १६१]

(२) नारदजीका मोह



पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलहीं ।
देखि दसा हरगन मुसुकाहीं ॥
[पृष्ठ १६१]

(४) मायामुक्त नारदजी



तब मुनि अति समीत हरि चरना ।
गढ़े पाहि प्रनतारति हरना ॥
[पृष्ठ १६३]

करहिं कूटि नारदहि सुनाई । नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई ॥

रीझिहि राजकुअरि छबि देखी । इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी ॥ २ ॥

वे नारदजीको सुना-सुनाकर, व्यंग्य वचन कहते थे—भगवान्ने इनको अच्छी 'सुन्दरता' दी है । इनकी शोभा देखकर राजकुमारी रीझ ही जायगी और 'हरि' जानकर इन्हींको खास तौरसे बरेगी ॥ २ ॥

मुनिहि मोह मन हाथ परायँ । हँसहिं संभुगन अति सखु पायँ ॥

जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी । समुझि न परइ बुद्धि भ्रम सानी ॥ ३ ॥

नारद मुनिको मोह हो रहा था, क्योंकि उनका मन दूसरेके हाथ (मायाके वश) में था । शिवजीके गण बहुत प्रसन्न होकर हँस रहे थे । यद्यपि मुनि उनकी अटपटी बातें सुन रहे थे, पर बुद्धि भ्रममें सनी हुई होनेके कारण वे बातें उनकी समझमें नहीं आती थीं (उनकी बातोंको वे अपनी प्रशंसा समझ रहे थे) ॥ ३ ॥

काहुँ न लखा सों चरित बिसेषा । सो सरूप नृपकन्याँ देखा ॥

मर्कट बदन भयंकर देही । देखत हृदयँ क्रोध भा तेही ॥ ४ ॥

इस विशेष चरित्रको और किसीने नहीं जाना, केवल राजकन्याने [नारदजीका] वह रूप देखा । उनका बन्दरका-सा मुँह और भयंकर शरीर देखते ही कन्याके हृदयमें क्रोध उत्पन्न हो गया ॥ ४ ॥

दो०—सखी संग लै कुअरि तब चलि जनु राजमराल ।

देखत फिरइ महीप सब कर सरोज जयमाल ॥ १३४ ॥

तब राजकुमारी सखियोंको साथ लेकर इस तरह चली मानो राजहंसिनी चल रही है । वह अपने कमल-जैसे हाथोंमें जयमाला लिये सब राजाओंको देखती हुई घूमने लगी ॥ १३४ ॥

चौ०—जेहि दिसि बैठे नारद फूली । सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली ॥

पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहों । देखि दसा हरगन मुसुकाहीं ॥ १ ॥

जिस ओर नारदजी [रूपके गर्वमें] फूले बैठे थे, उस ओर उसने भूलकर भी नहीं देखा । नारद मुनि बार-बार उचकते और छटपटाते हैं । उनकी दशा देखकर शिवजीके गण मुस्कराते हैं ॥ १ ॥

धरि नृपतनु तहँ गयउ कृपाला । कुअरि हरषि मेलेउ जयमाला ॥

दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासा । नृपसमाज सब भयउ निरासा ॥ २ ॥

कृपालु भगवान् भी राजका शरीर धारणकर वहाँ जा पहुँचे । राजकुमारीने हर्षित होकर उनके गलेमें जयमाला डाल दी । लक्ष्मीनिवास भगवान् दुलहिनको ले गये । सारी राजमण्डली निराश हो गयी ॥ २ ॥

मुनि अति बिकल मोहँ मति नाठी । मनि गिरि गई कूटि जनु गाँठी ॥

तब हरगन बोले मुसुकाई । निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई ॥ ३ ॥

मोहके कारण मुनिकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, इससे वे [राजकुमारीको गयी देख] बहुत ही विकल हो गये । मानो गाँठसे छूटकर मणि गिर गयी हो । तब शिवजीके गणोंने मुस्कराकर कहा—जकर दर्पणमें अपना मुँह तो देखिये ! ॥ ३ ॥

अस कहि दोउ भागे भयँ भारी । बदन दीख मुनि बारि निहारी ॥

बेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा । तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा ॥ ४ ॥

ऐसा कहकर वे दोनों बहुत भयभीत होकर भागे। मुनिने जलमें झाँककर अपना मुँह देखा। अपना रूप देखकर उनका क्रोध बहुत बढ़ गया। उन्होंने शिवजीके उन गणोंको अत्यन्त कठोर शाप दिया—॥ ४ ॥

दो०—होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ ।

हँसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हँसेहु मुनि कोउ ॥१३५॥

तुम दोनों कपटी और पापी जाकर राक्षस हो जाओ। तुमने हमारी हँसी की, उसका फल चक्को। अब फिर किसी मुनिकी हँसी करना ॥ १३५ ॥

चौ०—पुनि जल दीख रूप निज पावा । तदपि हृदय संतोष न आवा ॥

फरकत अधर कोप मन माहीं । सपदि चले कमलापति पाहीं ॥ १ ॥

मुनिने फिर जलमें देखा, तो उन्हें अपना (असली) रूप प्राप्त हो गया; तब भी उन्हें संतोष नहीं हुआ। उनके ओठ फड़क रहे थे और मनमें क्रोध [भरा] था। तुरन्त ही वे भगवान् कमलापतिके पास चले ॥ १ ॥

देहउँ श्राप कि मरिहउँ जाई । जगत मोरि उपहास कराई ॥

बीचहिं पंथ मिले दनुजारी । संग रमा सोइ राजकुमारी ॥ २ ॥

[मनमें सोचते जाते थे—] जाकर या तो शाप दूँगा या प्राण दे दूँगा। उन्होंने जगत्में मेरी हँसी करायी। दैत्योंके शत्रु भगवान् हरि उन्हें बीच रास्तेमें ही मिल गये। साथमें लक्ष्मीजी और वही राजकुमारी थीं ॥ २ ॥

बोले मधुर बचन सुरसाई । मुनि कहँ चले बिकल की नाई ॥

मुनत बचन उपजा अति क्रोधा । माया बस न रहा मन बोधा ॥ ३ ॥

देवताओंके स्वामी भगवान्ने मीठी वाणीमें कहा—हे मुनि ! व्याकुलकी तरह कहाँ चले ? ये शब्द मुनते ही नारदको बड़ा क्रोध आया। मायाके वशीभूत होनेके कारण मनमें चेत नहीं रहा ॥ ३ ॥

परसंपदा सकहु नहिं देखी । तुम्हरे श्रिया कपट बिसेषी ॥

मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु । सुरन्ह प्रेरि विषपान करायहु ॥ ४ ॥

[मुनिने कहा—] तुम दूसरोंकी सम्पदा नहीं देख सकते, तुम्हारे ईर्ष्या और कपट बहुत है। समुद्र मथते समय तुमने शिवजीको बावला बना दिया और देवताओंको प्रेरित करके उन्हें विषपान करायो ॥ ४ ॥

दो०—असुर सुरा विष संकरहि आपु रमा मनि चारु ।

स्वार्थ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट व्यवहार ॥१३६॥

असुरोंको मदिरा और शिवजीको विष देकर तुमने स्वयं लक्ष्मी और सुन्दर [कौस्तुभ] मणि ले ली। तुम बड़े धोखेबाज और मतलबी हो। सदा कपटका व्यवहार करते हो ॥ १३६ ॥

चौ०—परम स्वतंत्र न सिर पर कोई । भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई ॥

भलेहि मंद मंदेहि भल करहु । बिसमय हरष न हियँ कछु धरहु ॥ १ ॥

तुम परम स्वतन्त्र हो, सिरपर तो कोई है नहीं, इससे जब जो मनको भाता है, [स्वच्छन्दतासे] वही करते हो। भलेको बुरा और बुरेको भल कर देते हो। हृदयमें हर्ष-विषाद कुछ भी नहीं लते ॥ १ ॥

इहकि इहकि परिचेहु सब काहू । अति असंक मन सदा उछाहू ॥

करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा । अब लगि तुम्हहि न काहूँ साधा ॥ २ ॥

सबको ठग-ठगकर परक गये हो, और अत्यन्त निडर हो गये हो; इसीसे [ठगनेके काममें] मनमें सदा उत्साह रहता है । शुभ-अशुभ कर्म तुम्हें बाधा नहीं देते ! अबतक तुमको किसीने ठीक नहीं किया था ॥ २ ॥

भले भवन अब बायन दीन्हा । पावहुगे फल आपन कीन्हा ॥

बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा । सोइ तनु घरहु थाप मम पहा ॥ ३ ॥

अबकी तुमने अच्छे घर बैना दिया है (मेरे-जैसे जबर्दस्त आदमीसे छेड़खानी की है) । अतः अपने कियेका फल अवश्य पाओगे । जिस शरीरको धारण करके तुमने मुझे ठगा है, तुम भी वही शरीर धारण करो, यह मेरा शाप है ॥ ३ ॥

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी । करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी ॥

मम अपकार कोन्ह तुम्ह भारी । नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी ॥ ४ ॥

तुमने हमारा रूप बन्दरका-सा बना दिया था, इससे बन्दर ही तुम्हारी सहायता करेंगे । [मैं जिस स्त्रीको चाहता था उससे मेरा वियोग कराकर] तुमने मेरा बड़ा अहित किया है, इससे तुम भी स्त्रीके वियोगमें दुखी होगे ॥ ४ ॥

दो०—श्राप सीस धरि हरषि हियँ प्रभु बहु चिन्ती कीन्हि ।

निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्हि ॥ १३७ ॥

शापको सिरपर चढ़ाकर, हृदयमें हर्षित होते हुए प्रभुने नारदजीसे बहुत विनती की और कृपानिधान भगवान्ने अपनी मायाकी प्रबलता खींच ली ॥ १३७ ॥

चौ०—जब हरि माया दूरि निवारी । नहिं तहँ रमा न राजकुमारी ॥

तब मुनि अति समीत हरि चरना । गहे पाहि प्रनतारति हरना ॥ १ ॥

जब भगवान्ने अपनी मायाको हटा लिया, तब वहाँ न लक्ष्मी ही रह गयी, न राजकुमारी ही । तब मुनिने अत्यन्त भयभीत होकर श्रीहरिके चरण पकड़ लिये और कहा—हे शरणागतके दुःखोंको हरनेवाले ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ १ ॥

मृषा होउ मम श्राप कृपाला । मम इच्छा कह दीनदयाला ॥

मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे । कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे ॥ २ ॥

हे कृपालु ! मेरा शाप मिथ्या हो जाय । तब दीनोपर दया करनेवाले भगवान्ने कहा कि यह सब मेरी ही इच्छा [से हुआ] है । मुनिने कहा—मैंने आपको अनेक खोटे वचन कहे हैं । मेरे पाप कैसे मिटेंगे ? ॥ २ ॥

जपहु जाइ संकर सत नामा । होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा ॥

कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें । असि परतीति तजहु जनि भोरें ॥ ३ ॥

[भगवान्ने कहा—] जाकर शंकरजीके शतनामका जप करो, इससे हृदयमें तुरन्त शान्ति होगी । शिवजीके समान मुझे कोई प्रिय नहीं है, इस विश्वासको भूलकर भी न छोड़ना ॥ ३ ॥

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी । सो न पाव मुनि भगति हमारी ॥

अस उर धरि महि बिचरहु जाई । अब न तुम्हहि माया निअराई ॥ ४ ॥

हे मुनि ! पुरारि (शिवजी) जिसपर कृपा नहीं करते, वह मेरी भक्ति नहीं पाता । हृदयमें ऐसा निश्चय करके जाकर पृथ्वीपर विचरो । अब मेरी माया तुम्हारे निकट नहीं आवेगी ॥ ४ ॥

दो०—बहुविधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तब भए अंतरधान ।

सत्यलोक नारद चले करत राम गुन गान ॥१३८॥

बहुत प्रकारसे मुनिको समझा-बुझाकर (दाढ़स देकर) तब प्रभु अन्तर्धान हो गये और नारदजी श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका गान करते हुए सत्यलोक (ब्रह्मलोक) को चले ॥१३८॥

चौ०—हरगन मुनिहि जात पथ देखी । बिगतमोह मन हरष बिसेषी ॥

अति समीत नारद पहिं आप । गहि पद आरत बचन सुनाए ॥ १ ॥

शिवजीके गणोंने जब मुनिको मोहरहित और मनमें बहुत प्रसन्न होकर मार्गमें जाते हुए देखा, तब वे अत्यन्त भयभीत होकर नारदजीके पास आये और उनके चरण पकड़कर दीन वचन बोले—॥ १ ॥

हरगन हम न बिप्र मुनिराया । बड़ अपराध कीन्ह फल पाया ॥

आप अनुग्रह करहु कृपाला । बोले नारद दीनदयाला ॥ २ ॥

हे मुनिराज ! हम ब्राह्मण नहीं हैं, शिवजीके गण हैं । हमने बड़ा अपराध किया, जिसका फल हमने पा लिया । हे कृपालु ! [शाप देकर] अब शाप दूर करनेकी कृपा कीजिये । दीनोंपर दया करनेवाले नारदजीने कहा—॥ २ ॥

निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ । बैभव बिपुल तेज बल होऊ ॥

भुजबल बिख जितब तुम्ह जहिआ । धरिहहिं बिष्णु मनुजतनु तहिआ ॥ ३ ॥

तुम दोनों जाकर राक्षस होओ; तुम्हें महान् ऐश्वर्य, तेज और बलकी प्राप्ति होगी । तुम अपनी भुजाओंके बलसे जब सारे विश्वको जीत लोगे, तब भगवान् विष्णु मनुष्यका शरीर धारण करेंगे ॥ ३ ॥

समर मरन हरि हाथ तुम्हारा । होइहहु मुकुत न पुनि संसारा ॥

चले जुगल मुनिपद सिर नाई । भए निसाचर कालहि पाई ॥ ४ ॥

युद्धमें श्रीहरिके हाथसे तुम्हारी मृत्यु होगी, जिससे तुम मुक्त हो जाओगे और फिर संसारमें जन्म नहीं लोगे । वे दोनों मुनिके चरणोंमें सिर नवाकर चले और समय पाकर राक्षस हुए ॥ ४ ॥

दो०—एक कल्प एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार ।

सुर रंजन सज्जन सुखद हरि भंजन भुविभार ॥१३९॥

देवताओंको प्रसन्न करनेवाले, सज्जनोंको सुख देनेवाले और पृथ्वीका भार हरण करनेवाले भगवान्ने एक कल्पमें इसी कारण मनुष्यका अवतार लिया था ॥१३९॥

चौ०—एहि बिधि जनम करम हरि केरे । सुंदर सुखद बिचित्र घनेरे ॥

कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं । चारु चरित नाना बिधि करहीं ॥ १ ॥

इस प्रकार भगवान्के अनेकों सुन्दर, सुखदायक और अलौकिक जन्म और कर्म हैं । प्रत्येक कल्पमें जब-जब भगवान् अवतार लेते हैं और नाना प्रकारकी सुन्दर लीलाएँ करते हैं, ॥ १ ॥

तब तब कथा मुनीसन्ह गार्ह । परम पुनीत प्रबंध बनार्ह ॥

बिबिध प्रसंग अनूप बखाने । करहिं न सुनि आचरजु सयाने ॥ २ ॥

तब-तब मुनीश्वरोंने परम पवित्र काव्यरचना करके उनकी कथाओंका गान किया है और भाँति-भाँतिके अनुपम प्रसंगोंका वर्णन किया है, जिनको सुनकर समस्तदार (विवेकी) लोग आश्चर्य नहीं करते ॥ २ ॥

हरि अनंत हरिकथा अनन्ता । कहहिं सुनिहिं बहुविधि सब संता ॥

रामचंद्र के चरित सुहाय । कल्प कोटि लगि जाहिं न गाए ॥ ३ ॥

श्रीहरि अनन्त हैं (उनका कोई पार नहीं पा सकता) और उनको कथा भी अनन्त है; सब संत लोग उसे बहुत प्रकारसे कहते-सुनते हैं । श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर चरित्र करोड़ कल्पोंमें भी गाये नहीं जा सकते ॥ ३ ॥

यह प्रसंग मैं कहा भवानी । हरिमायाँ मोहहिं मुनि ग्यानी ॥

प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी । सेवत सुलभ सकल दुखहारी ॥ ४ ॥

[शिवजी कहते हैं कि] हे पार्वती ! मैंने [यह बतलानेके लिये] इस प्रसंगको कहा कि शानी मुनि भी भगवान्को मायासे मोहित हो जाते हैं । प्रभु कौतुकी (लीलामय) हैं और शरणागतका हित करनेवाले हैं । वे सेवा करनेमें बहुत सुलभ और सब दुःखोंके हरनेवाले हैं ॥ ४ ॥

सो—सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल ।

अस बिचारि मन माहिं मजिअ महामाया पतिहि ॥ १४० ॥

देवता, मनुष्य और मुनियोंमें ऐसा कोई नहीं है जिसे भगवान्की महान् बलवती माया मोहित न कर दे । मनमें ऐसा विचारकर उस महामायाके स्वामी (प्रेरक) श्रीभगवान्का भजन करना चाहिये ॥ १४० ॥

चो—अपर हेतु सुनु सैलकुमारी । कहउँ बिचित्र कथा विस्तारी ॥

जेहि कारन अज अगुन अरूपा । ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा ॥ १ ॥

हे गिरिराजकुमारी ! अब भगवान्के अवतारका वह दूसरा कारण सुनो—मैं उसकी बिचित्र कथा विस्तार करके कहता हूँ—जिस कारणसे जन्मरहित, निर्गुण और रूपरहित (अन्यक्त सच्चिदानन्दधन) ब्रह्म अयोध्यापुरीके राजा हुए ॥ १ ॥

जो प्रभु बिपिन फिरत तुम्ह देखा । बंधु समेत धरें मुनिबेषा ॥

जासु चरित अवलोकि भवानी । सती सरीर रहिहु बौरानी ॥ २ ॥

जिन प्रभु श्रीरामचन्द्रजी को तुमने भाई लक्ष्मणजी के साथ मुनियोंके वेषमें वनमें फिरते हुए देखा था, और हे भवानी ! जिनके चरित्र देखकर, सतीके शरीरमें तुम ऐसी बावली हो गयी थी कि—॥ २ ॥

अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी । तासु चरित सुनु भ्रम दजहारी ॥

लीला कीन्दि जो तेहिं अवतारा । सो सब कहिहुँ मति अनुसारा ॥ ३ ॥

अब भी तुम्हारे उस बावलेपनकी छाया नहीं मिटती; उन्हींके, भ्रमरूपी रोगके हरण करनेवाले, चरित्र सुनो । उस अवतारमें भगवान्ने जो-जो लीला की, वह सब मैं अपनी बुद्धिके अनुसार तुम्हें कहूँगा ॥ ३ ॥

भरद्वाज सुनि संकर बानी । सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी ॥

लगे बहुरि बरनै वृषकेतु । सो अवतार भयउ जेहि हेतु ॥ ४ ॥

याशवल्क्यजीने कहा— हे भरद्वाज ! शंकरजीके वचन सुनकर पार्वतीजी सकुचाकर प्रेमसहित मुस्कुरायीं । फिर वृषकेतु शिवजी जिस कारणसे भगवान्का वह अवतार हुआ था, उसका वर्णन करने लगे ॥ ४ ॥

दो०—सो मैं तुम्ह सन कहउँ सबु सुनु मुनीस मन लाइ ।

रामकथा कलिमल हरनि मंगल करनि सुहाइ ॥ १४१ ॥

हे मुनीश्वर (भरद्वाज) ! मैं वह सब तुमसे कहता हूँ, मन लगाकर सुनो । रामचन्द्रजीकी कथा कलियुगके पापोंको हरनेवाली, कल्याण करनेवाली और बड़ी सुन्दर है ॥ १४१ ॥

चौ०—स्वायंभू मनु अरु सतरूपा । जिन्ह तैं भै नरसृष्टि अनूपा ॥

दंपति धरम आचरण नीका । अजहुँ गाव भ्रुति जिन्ह कै लीका ॥ १ ॥

स्वायंभुव मनु और [उनकी पत्नी] शतरूपा, जिनसे मनुष्योंकी यह अनुपम सृष्टि हुई, इन दोनों पति-पत्नीके धर्म और आचरण बहुत अच्छे थे । आज भी वेद जिनकी मर्यादाका गान करते हैं ॥ १ ॥

नृप उत्तानपाद सुत तासू । ध्रुव हरिभगत भयउ सुत जासू ॥

लघु सुत नाम प्रियव्रत ताही । वेद पुरान प्रसंसहिं जाही ॥ २ ॥

राजा उत्तानपाद उनके पुत्र थे, जिनके पुत्र [प्रसिद्ध] हरिभक्त ध्रुवजी हुए । उन (मनुजी) के छोटे लड़केका नाम प्रियव्रत था, जिसकी प्रशंसा वेद और पुराण करते हैं ॥ २ ॥

देवहूति पुनि तासु कुमारी । जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी ॥

आदिदेव प्रभु दीनदयाला । जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला ॥ ३ ॥

पुनः देवहूति उनकी कन्या थी, जो कर्दम मुनिकी प्यारी पत्नी हुई और जिन्होंने आदिदेव, दीनोंपर दया करनेवाले, समर्थ एवं कृपालु भगवान् कपिलको गर्भमें धारण किया, ॥ ३ ॥

सांख्यशास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना । तत्त्वबिचार निपुन भगवाना ॥

तेहिं मनु राज कीन्ह बहुकाला । प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला ॥ ४ ॥

तत्त्वोंका विचार करनेमें अत्यन्त निपुण जिन (कपिल) भगवान्ने सांख्यशास्त्रका प्रकटरूपमें वर्णन किया । उन (स्वायम्भुव) मनुजीने बहुत समयतक राज्य किया और सब प्रकारसे भगवान्की आज्ञा [रूप शास्त्रोंकी मर्यादा] का पालन किया ॥ ४ ॥

सो०—होइ न विषय विराग भवन बसत भा चौथपन ।

हृदय बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु ॥ १४२ ॥

घरमें रहते बुढ़ापा आ गया, परन्तु विषयोंसे वैराग्य नहीं होता; [इस बातको सोचकर] उनके मनमें बड़ा दुःख हुआ कि श्रीहरिकी भक्ति बिना जन्म यों ही चला गया ॥ १४२ ॥

चौ०—बरबस राज सुतहि तब दीन्हा । नारि समेत गवन बन कीन्हा ॥

तीरथबर नैमिष बिख्याता । अति पुनीत साधक सिधिदाता ॥ १ ॥

तब मनुजीने अपने पुत्रको जबर्दस्ती राज्य देकर स्वयं स्त्रीसहित वनको गमन किया । अत्यन्त पवित्र और साधकोंको सिद्धि देनेवाला तीर्थोंमें श्रेष्ठ नैमिषारण्य प्रसिद्ध है ॥ १ ॥

बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा । तहँ हियँ हरषि चलेउ मनु राजा ॥

पंथ जात सोहहिं मतिधीरा । ग्यान भगति जुन धरै सरीरा ॥ २ ॥

वहाँ मुनियों और सिद्धोंके समूह बसते हैं । राजा मनु हृदयमें हर्षित होकर वहीं चले । वे धीरे बुद्धिवाले राजा-रानी मार्गमें जाते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो ज्ञान और भक्ति ही शरीर धारण किये जा रहे हों ॥ २ ॥

पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा । हरषि नहाने निरमल नीरा ॥

आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी । धरम धुरंधर नृपरिषि जानी ॥ ३ ॥

[चलते-चलते] वे गोमतीके किनारे जा पहुँचे । हर्षित होकर उन्होंने निर्मल जलमें स्नान किया । उनको धर्मधुरन्धर राजर्षि जानकर सिद्ध और ज्ञानी मुनि उनसे मिलने आये ॥ ३ ॥

जहँ जहँ तीरथ रहे सुहाए । मुनिन्ह सकल सादर करवाए ॥

कृस सरीर मुनिपट परिधाना । सतसमाज नित सुनहिं पुराना ॥ ४ ॥

जहाँ-जहाँ सुन्दर तीर्थ थे, मुनियोंने आदरपूर्वक सभी तीर्थ उनको करा दिये । उनका शरीर दुर्बल हो गया था, वे मुनियोंके-से (वल्कल) वस्त्र धारण करते थे और संतोंके समाजमें नित्य पुराण सुनते थे, ॥ ४ ॥

दो०—द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग ।

वासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग ॥ १४३ ॥

और द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का प्रेमसहित जप करते थे । भगवान् वासुदेवके चरणकमलोंमें उन राजा-गनीका मन बहुत ही लग्न गया ॥ १४३ ॥

चो०—करहिं अहार साक फल कंदा । सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा ॥

पुनि हरि हेतु करन तप लागे । बारि अधार मूल फल त्यागे ॥ १ ॥

वे साग, फल और कन्दका आहार करते थे और सच्चिदानन्द ब्रह्मका स्मरण करते थे । फिर वे श्रीहरिके लिये तप करने लगे और मूल-फलको त्यागकर केवल जलके सहारे रहने लगे ॥ १ ॥

उर अभिलाष निरंतर होई । देखिअ नयन परम प्रभु सोई ॥

अगुन अखंड अनंत अनादी । जेहि चिंतहिं परमार्थवादी ॥ २ ॥

हृदयमें निरन्तर यही अभिलाषा हुआ करती कि हम [कैसे] उन परम प्रभुको आँखोंसे देखें, जो निर्गुण, अखण्ड, अनन्त और अनादि हैं और परमार्थवादी (ब्रह्मज्ञानी, तत्त्ववेत्ता) लोग जिनका चिन्तन किया करते हैं ॥ २ ॥

नेति नेति जेहि बेद निरूपा । निजानंद निरूपाधि अनूपा ॥

संभु बिरंचि विष्णु भगवाना । उपजहिं जासु अंस तैं नाना ॥ ३ ॥

जिन्हें वेद 'नेति-नेति' (यह भी नहीं, यह भी नहीं) कहकर निरूपण करते हैं । जो आनन्दस्वरूप, उपाधिरहित और अनुपम हैं, जिनके अंशसे अनेकों शिव, ब्रह्मा और विष्णु भगवान् प्रकट होते हैं ॥ ३ ॥

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई । भगत हेतु लीलातनु गहई ॥

जौ यह बचन सत्य श्रुति भाषा । तौ हमार पूजिहि अभिलाषा ॥ ४ ॥

ऐसे [महान्] प्रभु भी सेवकके वशमें हैं और भक्तके लिये [दिव्य] लीला-शरीर धारण करते हैं । यदि वेदोंमें यह बचन सत्य कहा है तो हमारी अभिलाषा भी अवश्य पूरी होगी ॥ ४ ॥

दो०—एहि विधि बीते वरष षट सहस वारि आहार ।

संबत सप्त सहस पुनि रहे समीर आधार ॥ १४४ ॥

इस प्रकार जलका आहार [करके तप] करते छः हजार वर्ष बीत गये । फिर सात हजार वर्ष वे वायुके आधारपर रहे ॥ १४४ ॥

चौ०—बरष सहस्र दस त्यागेउ सोऊ । ठाढ़े रहे एक पद दोऊ ॥

बिधि हरि हर तप देखि अपारा । मनु समीप आय बहु बारा ॥ १ ॥

दस हजार वर्षतक उन्होंने बायुका आधार भी छोड़ दिया । दोनों एक-दूसरे खड़े रहे । उनका अन्तर तप देखकर ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी कई बार मनुजीके पास आये ॥ १ ॥

मागहु बर बहु भौंति लोभाय । परम धीर नहिं चलहिं चलाय ॥

अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा । तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा ॥ २ ॥

उन्होंने इन्हें अनेक प्रकारसे ललचाया और कहा कि कुछ वर माँगो; पर ये परम धैर्यवान् [राजा-रानी अपने तपसे किसीके] डिगाये नहीं डिगे । यद्यपि उनका शरीर हड्डियोंका ढाँचामात्र रह गया था, फिर भी उनके मनमें जरा भी पीड़ा नहीं थी ॥ २ ॥

प्रभु सर्वन्य दास निज जानी । गति अनन्य तापस नृप रानी ॥

मागु मागु बरु भै नभ बानी । परम गम्भीर कृपामृत सानी ॥ ३ ॥

सर्वश प्रभुने अनन्य गति (भक्ति) वाले तपस्वी राजा-रानीको 'निजदास' जाना । तब परम गम्भीर और कृपारूपी अमृतसे तनी हुई यह आकाशवाणी हुई कि 'वर माँगो', 'वर माँगो' ॥ ३ ॥

मृतक जिवावनि गिरा सुहाई । श्रवण रंध्र होइ उर जब आई ॥

दृष्ट पुष्ट तन भए सुहाय । मानहुँ अबहिं भवत ते आय ॥ ४ ॥

मुर्देको भी जिला देनेवाली यह सुन्दर वाणी कानोंके छेदोंसे होकर जब हृदयमें आयी, तब राजा-रानीके शरीर ऐसे सुन्दर और दृष्ट-पुष्ट हो गये, मानो अभी धरसे आये हैं ॥ ४ ॥

दो०—श्रवण सुधा सम बचन सुनि पुलक प्रफुल्लित गात ।

बोले मनु करि दंडवत प्रेम न हृदयँ समात ॥ १४५ ॥

कानोंमें अमृतके समान लगनेवाले वचन सुनते ही उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया । तब मनुजी दण्डवत् करके बोले, प्रेम हृदयमें समाता नहीं था—॥ १४५ ॥

चौ०—सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनु । बिधि हरि हर बंदित पद रेनु ॥

सेवत सुलभ सकल सुखदायक । प्रनतपाल सचराचर नायक ॥ १ ॥

हे प्रभो ! सुनिये, आप सेवकोंके लिये कल्पवृक्ष और कामधेनु हैं । आपकी चरण-रजकी ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी भी वन्दना करते हैं । आप सेवा करनेमें सुलभ हैं तथा सब सुखोंके देनेवाले हैं । आप शरणागतके रक्षक और जड़-चेतनके स्वामी हैं ॥ १ ॥

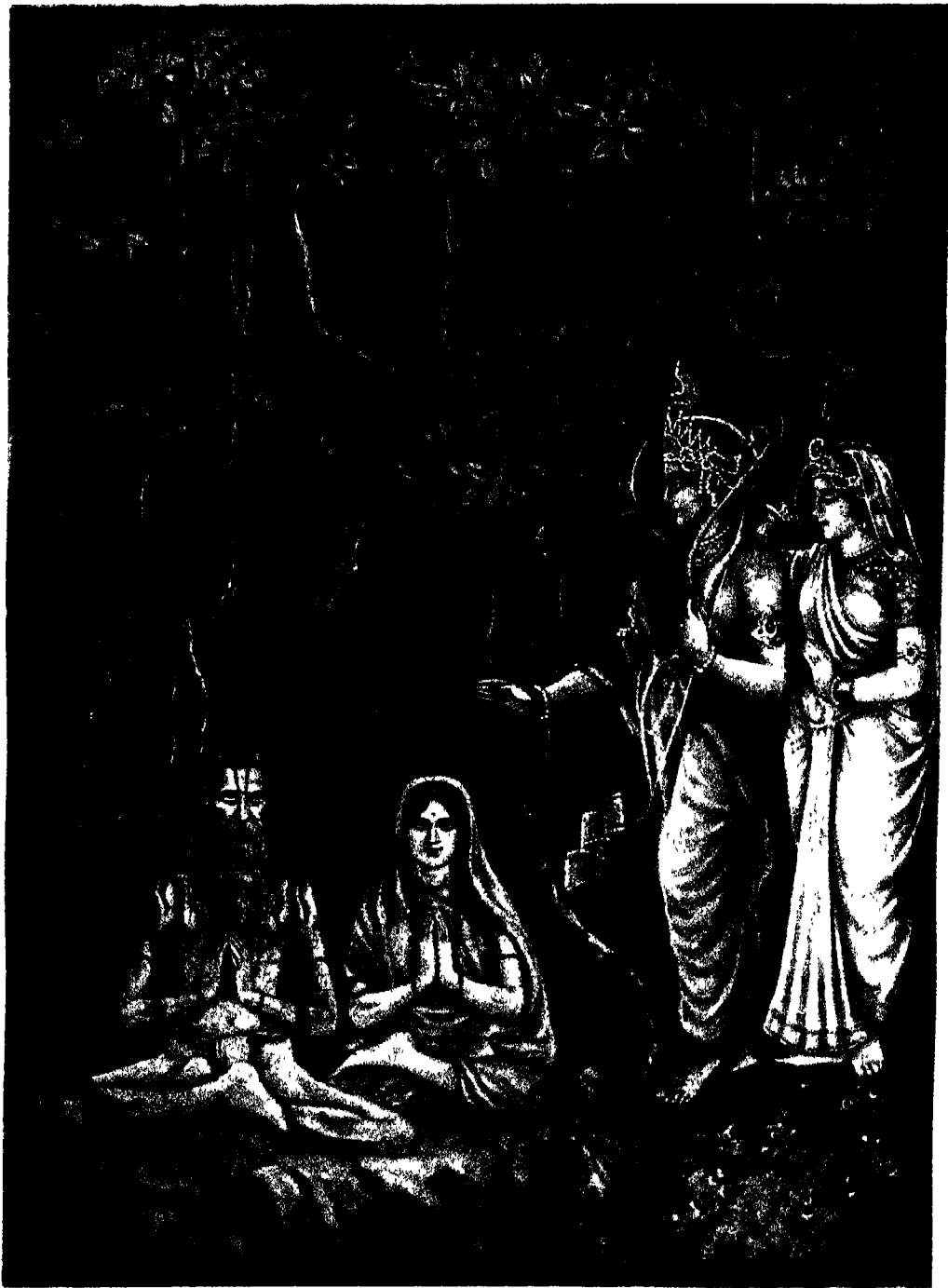
जौ अनाथहित हम पर नेह । तौ प्रसन्न होइ यह बर देह ॥

जो सरूप बस सिव मन माहीं । जेहि कारन मुनि जतन कराहीं ॥ २ ॥

हे अनार्थोंका कल्याण करनेवाले ! यदि हमलोगोंपर आपका स्नेह है, तो प्रसन्न होकर यह वर दीजिये कि आपका जो स्वरूप शिवजीके मनमें बसता है और जिस [की प्राप्ति] के लिये मुनिलोग यत्न करते हैं, ॥ २ ॥

जो भुसुंड़ि मन मानस हंसा । सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा ॥

देखहिं हम सो रूप भरि लोचन । कृपा करहु प्रनतारति मोचन ॥ ३ ॥



नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम ।
लाजहिं तनुसोभा निरखि कोटि-कोटि सत काम ॥

जो काकभुशुण्डिके मनरूपी मानसरोवरमें विहार करनेवाला हंस है, सगुण और निर्गुण कहकर वेद जिसकी प्रशंसा करते हैं, हे शरणागतके दुःख मिटानेवाले प्रभो ! ऐसी कृपा कीजिये कि हम उसी रूपकी नेत्र भरकर देखें ॥ ३ ॥

दंपति बचन परम प्रिय लागे । मृदुल विनीत प्रेमरस पागे ॥

भगतबल्लभ प्रभु कृपानिधाना । बिस्ववास प्रगटे भगवाना ॥ ४ ॥

राजा-रानीके कोमल, विनययुक्त और प्रेमरसमें पगे हुए वचन भगवान्‌को बहुत ही प्रिय लगे । भक्तवत्सल, कृपानिधान, सम्पूर्ण विश्वके निवासस्थान (या समस्त विश्वमें व्यापक), प्रभु (सर्वसमर्थ) भगवान् प्रकट हो गये ॥ ४ ॥

दो०—नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम ।

लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम ॥ १४६ ॥

भगवान्‌के नीले कमल, नीलमणि और नीले (जल्युक्त) मेघके समान [कोमल, प्रकाशमय और सरस] श्यामवर्ण [चिन्मय] शरीरकी शोभा देखकर अरबों कामदेव भी लजा जाते हैं ॥ १४६ ॥

चौ०—सरद मयंक बदन छबिसीवा । चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा ॥

अधर अरुन रद सुंदर नासा । बिधु कर निकर बिनिंदक हासा ॥ १ ॥

उनका मुख शरद् [पूर्णमा] के चन्द्रमाके समान छबिकी सीमास्वरूप था । गाल और ठोड़ी बहुत सुन्दर थे । गाल शंखके समान (त्रिरेखायुक्त, चढ़ाव-उतारवाला) था, लाल ओठ, दाँत और नाक (अत्यन्त) सुन्दर थे, उनकी हँसी चन्द्रमाकी किरणावलीको नीचा दिखानेवाली थी ॥ १ ॥

नव अंबुज अंबक छबि नीकी । चितवनि ललित भावँती जी की ॥

भृकुटि मनोज चाप छबिहारी । तिलक ललाट पटल दुतिकारी ॥ २ ॥

नेत्रोंकी छवि नये [खिले हुए] कमलके समान बड़ी सुन्दर थी । मनोहर चितवन जीको बहुत प्यारी लगती थी । टेढ़ी भौंहें कामदेवके धनुषकी शोभाको हरनेवाली थी । ललाटपटलपर प्रकाशमय तिलक था ॥ २ ॥

कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा । कुटिल केस जनु मधुप समाजा ॥

उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला । पदिक हार भूषन मनिजाला ॥ ३ ॥

कानोंमें मकराकृत (मछलीके आकारके) कुण्डल और सिरपर मुकुट सुशोभित था । टेढ़े (घुँघराले) काले बाल ऐसे सघन थे, मानो भौंहोंके झुंड हो । हृदयपर श्रीवत्स, सुन्दर बनमाला, रत्नजटित हार और मणियोंके आभूषण सुशोभित थे ॥ ३ ॥

केहरि कंधर चारु जनेऊ । बाहु बिभूषन सुंदर तेऊ ॥

करि कर सरिस सुभग भुजदंडा । कटि निषंग कर सर कोदंडा ॥ ४ ॥

सिंहकी-सी गर्दन थी, सुन्दर जनेऊ था । भुजाओंमें जो गहने थे, वे भी सुन्दर थे । हाथीकी सूँड़के समान (उतार-चढ़ाववाले) सुन्दर भुजदण्ड थे । कमरमें तरकस और हाथमें बाण और धनुष शोभा पा रहे थे ॥ ४ ॥

दो०—तड़ित बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि ।

नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भँवर छबि छीनि ॥ १४७ ॥

[स्वर्ण-वर्णका प्रकाशमय] पीताम्बर बिजलीको लजानेवाला था । पेटपर सुन्दर तीन रेखाएँ (त्रिवली) थीं । नाभि ऐसी मनोहर थी, मानो यमुनाजीके भँवरोंकी छबिको छीने लेती हो ॥ १४७ ॥

चौ०—पद राजीव बरनि नहिं जाहीं । मुनि मन मधुप बसहिं जेन्ह माहीं ॥

बाम भाग सोभति अनुकूल । आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला ॥ १ ॥

जिनमें मुनियोंके मनरूपी भौरे बसते हैं, भगवान्‌के उन चरणकमलोंका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता । भगवान्‌के बायें भागमें सदा अनुकूल रहनेवाली, शोभाकी राशि, जगत्‌की मूलकारणरूपा आदि-शक्ति श्रीजानकीजी सुशोभित हैं ॥ १ ॥

जासु अंस उपजहिं गुनखानी । अगणित लच्छि उमा ब्रह्मानी ॥

भृकुटिबिलास जासु जग होई । राम बाम दिसि सीता सोई ॥ २ ॥

जिनके अंशसे गुणोंकी खान अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी (त्रिदेवोंकी शक्तियाँ) उत्पन्न होती हैं, तथा जिनकी भौहके इशारेसे ही जगत्‌की रचना हो जाती है, वही [भगवान्‌की स्वरूपाशक्ति] श्रीसीताजी श्रीरामचन्द्रजीके बायी ओर स्थित हैं ॥ २ ॥

छबिसमुद्र हरि रूप बिलोकी । एकटक रहे नयनपट रोकी ॥

चितवहिं सादर रूप अनूपा । तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा ॥ ३ ॥

शोभाके समुद्र श्रीहरिके रूपको देखकर मनु-शतरूपा नेत्रोंके पट (पलकें) रोके हुए एकटक (स्तब्ध) रह गये । उस अनुपम रूपको वे आदरसहित देख रहे थे और देखते-देखते अघाते ही न थे ॥ ३ ॥

हरष बिबस तन दसा भुलानी । परे दंड इव गहि पद पानी ॥

सिर परसे प्रभु निज करकंजा । तुरत उठाए करुनापुंजा ॥ ४ ॥

आनन्दके अधिक वशमें हो जानेके कारण उन्हें अपने देहकी मुध भूल गयी । वे हाथोंसे भगवान्‌के चरण पकड़कर दण्डकी तरह (सीधे) भूमिपर गिर पड़े । कृपाकी राशि प्रभुने अपने करकमलोंसे उनके मस्तकोंका स्पर्श किया और उन्हें तुरंत ही उठा लिया ॥ ४ ॥

दो०—बोले कृपानिधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि ।

मागहु बर जोह भाव मन महादानि अनुमानि ॥ १४८ ॥

फिर कृपानिधान भगवान् बोले—मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर और बड़ा भारी दानी मानकर, जो मनको भाये वही बर माँग लो ॥ १४८ ॥

चौ०—सुनि प्रभुबचन जोरि जुग पानी । धरि धीरजु बोली मृदु बानी ॥

नाथ देखि पदकमल तुम्हारे । अब पूरे सब काम हमारे ॥ १ ॥

प्रभुके वचन सुनकर, दोनों हाथ जोड़कर और धीरज धरकर राजाने कोमल वाणी कही—हे नाथ ! आपके चरणकमलोंको देखकर अब हमारी सारी मनोकामनाएँ पूरी हो गयीं ॥ १ ॥

एक लालसा बड़ि उर माहीं । सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं ॥

तुम्हहि देत अति सुगम गोसाई । अगम लाग मोहि निज कृपनाई ॥ २ ॥

फिर भी मनमें एक बड़ी लालसा है । उसका पूरा होना सहज भी है और अत्यन्त कठिन भी, इसीसे उसे कहते नहीं बनता । हे स्वामी ! आपके लिये तो उसका पूरा करना बहुत सहज है, पर मुझे अपनी कृपणता (दीनता) के कारण वह अत्यन्त कठिन मादूम होता है ॥ २ ॥

जथा दरिद्र बिबुधतद पारि । बहु संपति मागत सकुचार्द्र ॥

तासु प्रभाउ जान नहिं सोई । तथा हृदयँ मम संसय होई ॥ ३ ॥

जैसे कोई दरिद्र कल्पवृक्षको पाकर भी अधिक द्रव्य माँगनेमें संकोच करता है, क्योंकि वह उसके प्रभावको नहीं जानता, वैसे ही मेरे हृदयमें संशय हो रहा है ॥ ३ ॥

सो तुम्ह जानहु अंतरजामी । पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी ॥

सकुच बिहाइ मागु नृप मोही । मोरें नहिं अदेय कछु तोही ॥ ४ ॥

हे स्वामी ! आप अन्तर्यामी हैं, इसलिये उसे जानते ही हैं । मेरा वह मनोरथ पूरा कीजिये । भगवान् ने कहा, हे राजन् ! संकोच छोड़कर मुझसे माँगो । तुम्हें न दे सकूँ ऐसा मेरे पास कुछ भी नहीं है ॥ ४ ॥

दो०—दानि शिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ ।

चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ ॥ १४९ ॥

राजाने कहा—हे दानियोंके शिरोमणि ! हे कृपाके भण्डार ! हे नाथ ! मैं अपने मनका सच्चा भाव कहता हूँ कि मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ । प्रभुसे भला क्या छिपाना ! ॥ १४९ ॥

चौ०—देखि प्रीति सुनि बचन अमोले । एवमस्तु करुणानिधि बोले ॥

आपु सरिस खोजौं कहँ जाई । नृप तव तनय होब मैं आई ॥ १ ॥

राजाकी प्रीति देखकर और उनके अमूल्य वचन सुनकर करुणानिधान भगवान् बोले—ऐसा ही हो । हे राजन् ! मैं अपने समान [दूसरा] कहाँ जाकर खोजूँ ! अतः स्वयं ही आकर तुम्हारा पुत्र बनूँगा ॥ १ ॥

सतरूपहि बिलोकि कर जोरें । देखि मागु बरु जो रुचि तोरें ॥

जो बरु नाथ चतुर नृप मागा । सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा ॥ २ ॥

शतरूपाजीको हाथ जोड़े देखकर भगवान् ने कहा—हे देवि ! तुम्हारी जो इच्छा हो, सो वर माँग लो । शतरूपाने कहा—हे नाथ ! चतुर राजाने जो वर माँगा, हे कृपालु ! वह मुझे बहुत ही प्रिय लगा ॥ २ ॥

प्रभु परंतु सुठि होति ठिठाई । जदपि भगतहित तुम्हहि सोहाई ॥

तुम्ह ब्रह्मादि जनक जगस्वामी । ब्रह्म सकल उर अंतरजामी ॥ ३ ॥

परन्तु हे प्रभु ! बहुत ठिठाई हो रही है, यद्यपि हे भक्तोंका हित करनेवाले ! वह ठिठाई भी आपको अच्छी ही लगती है । आप ब्रह्मा आदिके भी पिता (उत्पन्न करनेवाले), जगत्के स्वामी और सबके हृदयके भीतरकी जाननेवाले ब्रह्म हैं ॥ ३ ॥

अस समुझत मन संसय होई । कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई ॥

जे निज भगत नाथ तव अहहीं । जो सुख पावहिं जो गति लहहीं ॥ ४ ॥

ऐसा समझनेपर मनमें सन्देह होता है; फिर भी प्रभुने जो कहा वही प्रमाण (सत्य) है । [मैं तो यह माँगती हूँ कि] हे नाथ ! आपके जो निज जन हैं, वे जो (अलौकिक अखण्ड) सुख पाते हैं और जिस परम गतिको प्राप्त होते हैं—॥ ४ ॥

दो०—सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु ।

सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु ॥ १५० ॥

हे प्रभो ! वही सुख, वही गति, वही भक्ति, वही अपने चरणोंमें प्रेम, वही शान और वही रहन-सहन कृपा करके हमें दीजिये ॥१५०॥

चौ०—सुनि मृदु गूढ़ रुचिर वर रचना । कृपासिंधु बोले मृदु वचना ॥

जो कछु रुचि तुम्हारे मन माहीं । मैं सो दोन्ह सब संसय नाहीं ॥ १ ॥

[रानीके] कोमल, गूढ़ और मनोहर श्रेष्ठ [वचनोंकी] रचना सुनकर कृपाके समुद्र भगवान् कोमल वचन बोले—तुम्हारे मनमें जो कुछ इच्छा है, वह सब मैंने तुमको दिया, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १ ॥

मातु बिबेक अलौकिक तोरें । कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें ॥

बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी । अवर एक बिनती प्रभु मोरी ॥ २ ॥

हे माता ! मेरी कृपासे तुम्हारा अलौकिक ज्ञान कभी नष्ट न होगा । तब मनुने भगवान्‌के चरणोंकी बन्दना करके फिर कहा—हे प्रभु ! मेरी एक बिनती और है—॥ २ ॥

सुत बिषइक तब पद रति होऊ । मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ ॥

मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना । मम जीवन तिमि तुम्हहि अर्धीना ॥ ३ ॥

आपके चरणोंमें मेरी वैसी ही प्रीति हो जैसी पुत्रके लिये पिताकी होती है, चाहे मुझे कोई बड़ा भारी मूर्ख ही क्यों न कहे । जैसे मणिके बिना साँप और जलके बिना मछली [नहीं रह सकती], वैसी ही मेरा जीवन आपके अधीन रहे (आपके बिना न रह सके) ॥ ३ ॥

अस वर मागि चरन गहि रहेऊ । एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ ॥

अब तुम्ह मम अनुसासन मानी । बसहु जाइ सुरपति रजधानी ॥ ४ ॥

ऐसा वर माँगकर राजा भगवान्‌के चरण पकड़े रह गये । तब कृपाके भण्डार भगवान्‌ने कहा—ऐसा ही हो । अब तुम मेरी आज्ञा मानकर देवराज इन्द्रकी राजधानी (अमरावती) में जाकर वास करो ॥ ४ ॥

सो०—तहँ करि भोग बिसाल तात गएँ कछु काल पुनि ।

होइहहु अवध भुआल तब मैं होव तुम्हार सुत ॥१५१॥

हे तात ! वहाँ [स्वर्गके] बहुत-से भोग भोगकर, कुछ काल बीत जानेपर, तुम अवधके राजा होगे । तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा ॥ १५१ ॥

चौ०—इच्छामय नरबेष सँवारें । होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें ॥

अंसन्ह सहित देह धरि ताता । करिहउँ चरित भगत सुखदाता ॥ १ ॥

इच्छानिर्मित मनुष्यरूप सजकर मैं तुम्हारे घर प्रकट होऊँगा । हे तात ! मैं अपने अंशोंसहित देह धारण करके भक्तोंको सुख देनेवाले चरित्र करूँगा ॥ १ ॥

जे सुनि सादर नर बड़भागी । भव तरिहहिं ममता मद त्यागी ॥

आदिशक्ति जेहिं जग उपजाया । सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ॥ २ ॥

जिन (चरित्रों) को बड़े भाग्यशाली मनुष्य आदरसहित सुनकर, ममता और मद त्यागकर, भवसागरसे तर जायँगे । आदिशक्ति यह मेरी [स्वरूपभूता] माया भी, जिसने जगत्‌को उत्पन्न किया है, अवतार लेगी ॥ २ ॥

पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा । सत्य सत्य पन सत्य हमारा ॥

पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना । अंतरधान भए भगवाना ॥ ३ ॥

इस प्रकार मैं तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूँगा। मेरा प्रण सत्य है, सत्य है, सत्य है। कृपानिधान भगवान् बार-बार ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये ॥ ३ ॥

दंपति उर धरि भगत कृपाला । तेहिं आश्रम निवसे कछु काला ॥

समय पाइ तनु तजि अनयासा । जाइ कीन्ह अमरावति बासा ॥ ४ ॥

वे स्त्री-पुरुष (राजा-रानी) भक्तोंपर कृपा करनेवाले भगवान्को हृदयमें धारण करके कुछ कालतक उस आश्रममें रहे। फिर उन्होंने समय पाकर, सहज ही (विना किसी कष्टके) शरीर छोड़कर, अमरावती (इन्द्रकी पुरी) में जाकर वास किया ॥ ४ ॥

दो०—यह इतिहास पुनीत अति उमहि कही बृषकेतु ।

भरद्वाज सुनु अपर पुनि रामजनम कर हेतु ॥ १५२ ॥

[याशवल्क्यजी कहते हैं—] हे भरद्वाज ! इस अत्यन्त पवित्र इतिहासको शिवजीने पार्वतीसे कहा था। अब श्रीरामके अवतार लेनेका दूसरा कारण सुनो ॥ १५२ ॥

मासपारायण—पाँचवाँ विश्राम

चौ०—सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी । जो गिरिजा प्रति संभु बखानी ॥

बिखबिदित एक कैकय देसू । सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू ॥ १ ॥

हे मुनि ! वह पवित्र और प्राचीन कथा सुनो जो शिवजीने पार्वतीसे कही थी। संसारमें प्रसिद्ध एक कैकय देश है। वहाँ सत्यकेतु नामका राजा रहता (राज्य करता) था ॥ १ ॥

धरम धुरंधर नीतिनिधाना । तेज प्रताप सोल बलवाना ॥

तेहि कँ भय जुगल सुत बीरा । सब गुन धाम महा रणधीरा ॥ २ ॥

वह धर्मकी धुरीको धारण करनेवाला, नीतिका भण्डार, तेजस्वी, प्रतापी, मुशील और बलवान् था। उसके दो वीर पुत्र हुए, जो सब गुणोंके भण्डार और बड़े ही रणधीर थे ॥ २ ॥

राजधनी जो जेठ सुत आही । नाम प्रतापभानु अस ताही ॥

अपर सुतहि अरिमर्दन नामा । भुजबल अतुल अचल संग्रामा ॥ ३ ॥

राज्यका उत्तराधिकारी जो बड़ा लड़का था, उसका नाम प्रतापभानु था। दूसरे पुत्रका नाम अरिमर्दन था, जिसकी भुजाओंमें अपार बल था और जो युद्धमें [पर्वतके समान] अटल रहता था ॥ ३ ॥

भाइहि भाइहि परम समीती । सकल दोष छल बरजित प्रीती ॥

जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा । हरि हित आपु गवन बन कीन्हा ॥ ४ ॥

भाई-भाईमें बड़ा मेल और सब [प्रकारके] दोषों और छलोंसे रहित [सच्ची] प्रीति थी। राजाने जेठे पुत्रको राज्य दे दिया और आप भगवान् [के भजन] के लिये वनको चल दिया ॥ ४ ॥

दो०—जब प्रतापरबि भयउ नृप फिरी दोहाई देस ।

प्रजा पाल अति बेदबिधि कतहुँ नहीं अधलेस ॥ १५३ ॥

जब प्रतापभानु राजा हुआ, देशमें उसकी दुहाई फिर गयी। वह वेदमें बतायी हुई विधिके अनुसार उत्तम रीतिसे प्रजाका पालन करने लगा। उसके राज्यमें पापका कहीं लेश भी नहीं रह गया ॥ १५३ ॥

चौ०—नृप हितकारक सचिव सयाना । नाम धर्मरुचि सुक समाना ॥

सचिव सयान बंधु बलवीरा । आपु प्रतापपुंज रणवीरा ॥ १ ॥

राजाका हित करनेवाला और शुक्राचार्यके समान बुद्धिमान् धर्मरुचि नामक उसका मन्त्री था । इस प्रकार बुद्धिमान् मंत्री और बलवान् तथा वीर भाईके साथ ही स्वयं राजा भी बड़ा प्रतापी और रणवीर था ॥ १ ॥

सेन संग चतुरंग अपारा । अमित सुभट सब समर जुझार ॥

सेन बिलोकि राउ हरषाना । अरु बाजे गहगहे निसाना ॥ २ ॥

साथमें अपार चतुरङ्गिणी सेना थी, जिसमें असंख्य योद्धा थे, जो सब-के-सब रणमें जूझ मरनेवाले थे । अपनी सेनाको देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और धमाधम नगाड़े बजने लगे ॥ २ ॥

विजय हेतु कटकाई बनाई । सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई ॥

जहँ तहँ परीं अनेक लराई । जीते सकल भूप बरिआई ॥ ३ ॥

दिग्विजयके लिये सेना सजाकर, वह राजा शुभ दिन (मुहूर्त) साधकर और डंका बजाकर चला । जहाँ-तहाँ बहुत-सी लड़ाइयाँ हुई । उसने सब राजाओंको बलपूर्वक जीत लिया ॥ ३ ॥

सप्त दीप भुजबल बस कीन्हे । लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हे ॥

सकल अवनिमंडल तेहि काला । एक प्रतापभानु महिपाला ॥ ४ ॥

अपनी भुजाओंके बलसे उसने सातों द्वीपों (भूमिखण्डों) को वशमें कर लिया और राजाओंसे दण्ड (कर) ले-लेकर उन्हें छोड़ दिया । सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलका उस समय प्रतापभानु ही एकमात्र (चक्रवर्ती) राजा था ॥ ४ ॥

दो०—स्वप्नस विस्व करि बाहुबल निज पुर कीन्ह प्रबेसु ।

अथ धरम कामादि सुख सेवइ समयँ नरेसु ॥ १५४ ॥

संसारभरको अपनी भुजाओंके बलसे वशमें करके राजाने अपने नगरमें प्रवेश किया । राजा अर्थ, धर्म और काम आदिके सुखोंका समयानुसार सेवन करता था ॥ १५४ ॥

चौ०—भूप प्रतापभानु बल पाई । कामधेनु भै भूमि सुहाई ॥

सब दुख बरजित प्रजा सुखारी । धरमसील सुंदर नर नारी ॥ १ ॥

राजा प्रतापभानुका बल पाकर भूमि सुन्दर कामधेनु (मनचाही वस्तु देनेवाली) हो गयी । [उसके राज्यमें] प्रजा सब [प्रकारके] दुःखोंसे रहित और सुखी थी, और सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर और धर्मात्मा थे ॥ १ ॥

सचिव धर्मरुचि हरिपद प्रीती । नृपहित हेतु सिखव नित नीती ॥

गुर सुर संत पितर महिदेवा । करइ सदा नृप सब कै सेवा ॥ २ ॥

धर्मरुचि मन्त्रीका श्रीहरिके चरणोंमें प्रेम था । वह राजाके हितके लिये सदा उसको नीति सिखाया करता था । राजा गुरु, देवता, संत, पितर और ब्राह्मण, इन सबकी सदा सेवा करता रहता था ॥ २ ॥

भूपधरम जे बेद बखाने । सकल करइ सादर सुख माने ॥

दिन प्रति वेइ विविध विधि दाना । सुनइ साला बर बेद पुराना ॥ ३ ॥

वेदोंमें राजाओंके जो धर्म बताये गये हैं, राजा सदा आदरपूर्वक और सुख मानकर उन सबका पालन करता था । प्रतिदिन अनेक प्रकारके दान देता और उत्तम शास्त्र, वेद और पुराण सुनता था ॥ ३ ॥

नाना बापीं कूप तड़ागा । सुमन बाटिका सुंदर बागा ॥
विप्रभवन सुरभवन सुहाय । सब तीरथन्ह विचित्र बनाए ॥ ४ ॥

उसने बहुत-सी बावलियाँ, कुएँ, तालाब, फुलवाडियाँ, सुन्दर बगीचे, ब्राह्मणोंके लिये घर और देवताओंके सुन्दर विचित्र मन्दिर सब तीर्थोंमें बनवाये ॥ ४ ॥

दो०—जहँ लगी कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग ।

बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग ॥१५५॥

वेद और पुराणोंमें जितने प्रकारके यज्ञ कहे गये हैं, राजाने एक-एक करके उन सब यज्ञोंको प्रेमसहित हजार-हजार बार किया ॥ १५५ ॥

चौ०—हृदयँ न कछु फल अनुसंधाना । भूप विवेकी परम सुजाना ॥

करइ जे धरम करम मन बानी । वासुदेव अर्पित नृप ग्यानी ॥ १ ॥

[राजाके] हृदयमें किसी फलकी कामना नहीं थी । राजा बड़ा ही बुद्धिमान् और शान्ति था । वह शान्ति राजा कर्म, मन और वाणीसे जो कुछ भी धर्म करता था, सब भगवान् वासुदेवके अर्पित करके करता था ॥ १ ॥

चढ़ि बर बाजि बार एक राजा । मृगया कर सब साजि समाजा ॥

बिंध्याचल गभीर बन गथऊ । मृग पुनीत बहु मारत भयऊ ॥ २ ॥

एक बार वह राजा एक अच्छे घोड़ेपर सवार होकर, शिकारका सब सामान सजाकर, बिन्ध्याचलके घने जंगलमें गया और वहाँ उसने बहुत-से उत्तम-उत्तम हिरन मारे ॥ २ ॥

फिरत बिपिन नृप दीख बराह । जनु बन दुरेउ ससिहि प्रसि राह ॥

बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं । मनहुँ क्रोध बस उगिलत नाहीं ॥ ३ ॥

राजाने वनमें फिरते हुए एक सूअरको देखा । [दाँतोंके कारण वह ऐसा दीख पड़ता था] मानो चन्द्रमाको प्रसकर (मुँहमें पकड़कर) राहु वनमें आ छिपा हो । चन्द्रमा बड़ा होनेसे उसके मुँहमें समाता नहीं है और मानो क्रोधवश वह भी उसे उगलता नहीं है ॥ ३ ॥

कोल कराल दसन छबि गई । तनु बिसाल पीवर अधिकारि ॥

घुरघुरात हय आरौ पाएँ । चकित बिलोकत कान उठाएँ ॥ ४ ॥

यह तो सूअरके भयानक दाँतोंकी शोभा कही गयी । [इधर] उसका शरीर भी बहुत विशाल और मोटा था । घोड़ेकी आदृष्ट पाकर वह घुरघुराता हुआ कान उठाये चौकन्ना होकर देख रहा था ॥ ४ ॥

दो०—नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराह ।

चपरि चलेउ हय सुदुकि नृप हाँकि न होइ निवाह ॥१५६॥

नीले पर्वतके शिखरके समान विशाल [शरीरवाले] उस सूअरको देखकर राजा घोड़ेको चाबुक लगाकर तेजीसे चला और उसने सूअरको ललकारा कि अब तेरा बचाव नहीं हो सकता ॥१५६॥

चौ०—आवत देखि अधिक रघु बाजी । चलेउ बराह मरुतगति भाजी ॥

तुरत कीन्ह नृप सर संधाना । महि मिलि गयउ बिलोकत बाना ॥ १ ॥

अधिक शब्द करते हुए घोड़ेको [अपनी तरफ] आता देखकर सूअर पवनवेगसे भाग चला । राजाने तुरन्त ही बाणको धनुषपर चढ़ाया । सूअर बाणको देखते ही धरतीमें दुबक गया ॥ १ ॥

तकि तकि तीर महीस चलावा । करि छल सुअर सरौर बचावा ॥

प्रगटत तुरत जाइ मृग भागा । रिस बस भूप चलेउ सँग लागा ॥ २ ॥

राजा तक्र-तककर तीर चलाता है, परन्तु सूअर छल करके शरीरको बचाता जाता है । वह पशु कभी प्रकट होता और कभी छिपता हुआ भागा जाता था; और राजा भी क्रोधके वश उसके साथ (पीछे) लगा चला जाता था ॥ २ ॥

गयउ दूरि धन गहन बराह । जहँ नाहिन गज बाजि निबाह ॥

अति अकेल बन बिपुल कलेस । तदपि न मृगमग तजइ नरेस ॥ ३ ॥

सूअर बहुत दूर ऐसे घने जंगलमें चला गया जहाँ हाथी-घोड़ेका निबाह (गम) नहीं था । राजा बिलकुल अकेला था और वनमें क्लेश भी बहुत थे, फिर भी राजाने उस पशुका पीछा नहीं छोड़ा ॥ ३ ॥

कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा । भागि पैठ गिरिगुहँ गभीरा ॥

अगम देखि नृप अति पछिताई । फिरेउ महाबन परेउ भुलाई ॥ ४ ॥

राजाको बड़ा धैर्यवान् देखकर, सूअर भागकर पहाड़की एक गहरी गुफामें जा घुसा । उसमें जाना कठिन देखकर राजाको बहुत पछताकर लौटना पड़ा; पर उस घोर वनमें वह रास्ता भूल गया ॥ ४ ॥

दो०—खेदविन्न छुद्रित तृषित राजा बाजि समेत ।

खोजत व्याकुल सरित सर जल बिनु भयउ अचेत ॥ १५७ ॥

बहुत परिभ्रम करनेसे थका हुआ और घोड़ेसमेत भूख-प्याससे व्याकुल राजा नदी-तालाब खोजता-खोजता पानी बिना बेहाल हो गया ॥ १५७ ॥

चौ०—फिरत बिपिन आश्रम एक देखा । तहँ बस नृपति कपट मुनिबेषा ॥

जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई । समर सेन तजि गयउ पराई ॥ १ ॥

वनमें फिरते-फिरते उसने एक आश्रम देखा; वहाँ कपटसे मुनिका भेष बनाये एक राजा रहता था, जिसका देश राजा प्रतापभानुने छीन लिया था और जो सेनाको छोड़कर युद्धसे भाग गया था ॥ १ ॥

समय प्रतापभानु कर जानी । आपन अति असमय अनुमानी ॥

गयउ न गृह मन बहुत गलानी । मिला न राजहि नृप अभिमानी ॥ २ ॥

प्रतापभानुका समय (अच्छे दिन) जानकर और अपना कुसमय (बुरे दिन) अनुमानकर उसके मनमें बड़ी ग्लानि हुई; इससे वह न तो घर गया और न अभिमानी होनेके कारण राजा प्रतापभानुसे ही मिला (मेल किया) ॥ २ ॥

रिस उर मारि रंक जिमि राजा । बिपिन बसइ तापस के साजा ॥

तासु समीप गवन नृप कीन्हा । यह प्रतापरबि तेहिं तब चीन्हा ॥ ३ ॥

दरिद्रकी भौंति मनहीमें क्रोधको मारकर वह राजा तपस्वीके भेषमें वनमें रहता था । राजा (प्रतापभानु) उसीके पास गया । उसने तुरन्त पहचान लिया कि यह प्रतापभानु है ॥ ३ ॥

राउ तृषित नहिं सो पहिचाना । देखि सुबेष महामुनि जाना ॥

उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा । परम चतुर न कहेउ निज नामा ॥ ४ ॥

राजा प्यासा होनेके कारण [व्याकुलतामें] उसे पहचान न सका । सुन्दर वेप देवकर राजाने उसे महामुनि समझा और घोड़ेसे उतरकर उसे प्रणाम किया । परन्तु बड़ा चतुर होनेके कारण राजाने उसे अपना नाम नहीं बतलाया ॥ ४ ॥

दो०—भूपति तृषित बिलोकि तेहिं सरबरु दीन्ह देखाइ ।

मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाइ ॥ १५८ ॥

राजाको प्यासा देखकर उसने सरोवर दिखला दिया । हर्षित होकर राजाने घोड़ेसहित उसमें स्नान और जलपान किया ॥ १५८ ॥

चौ०—मै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ । निज आश्रम तापस लै गयऊ ॥

आसन दीन्ह अस्त रवि जानी । पुनि तापस बोलेउ मृदुबानी ॥ १ ॥

सब थकावट मिट गयी, राजा सुखी हो गया । तब तपस्वी उसे अपने आश्रममें ले गया और मर्यास्तका समय जानकर उसने [राजाको बैठनेके लिये] आसन दिया । फिर वह तपस्वी कोमल वाणीसे बोला—॥ १ ॥

को तुम्ह कस बन फिरहु अकेलें । सुंदर जुबा जीव परहेलें ॥

चक्रवर्ति के लच्छन तोरें । देखत दया लागि अति मोरें ॥ २ ॥

तुम कौन हो ? सुन्दर युवक होकर, जीवनकी परवाह न करके, वनमें अकेले क्यों फिर रहे हो ? तुम्हारे चक्रवर्ती राजाके-से लक्षण देवकर मुझे बड़ी दया आती है ॥ २ ॥

नाम प्रतापभानु अवनीसा । तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा ॥

फिरत अहेरें परेउँ भुलाई । बड़ें भाग देखेउँ पद आई ॥ ३ ॥

राजाने कहा—हे मुनीश्वर ! सुनिये, प्रतापभानु नामका एक राजा है, मैं उसका मन्त्री हूँ । शिकारके लिये फिरते हुए राह भूल गया हूँ । बड़े भाग्यसे यहाँ आकर मैंने आपके चरणोंके दर्शन पाये हैं ॥ ३ ॥

हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा । जानत हों कछु भल होनिहारा ॥

कह मुनि तात भयउ अँधिआरा । जोजन सत्तरि नगर तुम्हारा ॥ ४ ॥

हमे आपका दर्शन दुर्लभ था, इससे जान पड़ता है कुछ भल होनेवाला है । मुनिने कहा—हे तात ! अँधेरा हो गया; तुम्हारा नगर यहाँसे सत्तर योजनपर है ॥ ४ ॥

दो०—निसा घोर गंभीर बन पंथ न सुनहु सुजान ।

बसहु आजु अस जानि तुम्ह जाएहु होत बिहान ॥ १५९ (क) ॥

हे सुजान ! सुनो, घोर अँधेरी रात है; घना जंगल है; रास्ता नहीं है; ऐसा समझकर आज यहीं ठहर जाओ, सबेरा होते ही चले जाना ॥ १५९ (क) ॥

तुलसी जसि भवतन्यता तैसी मिलइ सहाइ ।

आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ ॥ १५९ (ख) ॥

तुलसीदासजी कहते हैं—जैसी भवितव्यता (होनहार) होती है, वैसी ही सहायता मिल जाती है। या तो वह आप ही उसके पास आती है, या उसको वहाँ ले जाती है ॥ १५९ (ख) ॥

चौ०—भलेहिं नाथ आयसु धरि सीसा । बाँधि तुरग तरु बैठ महीसा ॥

नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही । चरन बंदि निज भाग्य सराही ॥ १ ॥

‘हे नाथ ! बहुत अच्छा’ ऐसा कहकर और उसकी आज्ञा सिर चढ़ाकर, घोड़ेको वृक्षसे बाँधकर राजा बैठ गया। राजाने उसको बहुत प्रकारसे प्रशंसा की और उसके चरणोंकी बन्दना करके अपने भाग्यकी सराहना की ॥ १ ॥

पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई । जानि पिता प्रभु करउँ ढिठाई ॥

मोहि मुनीस सुत सेवक जानी । नाथ नाम निज कहहु बखानी ॥ २ ॥

फिर सुन्दर कोमल वाणीसे कहा—हे प्रभो ! आपको पिता जानकर मैं ढिठाई करता हूँ। हे मुनीश्वर ! मुझे अपना पुत्र और सेवक जानकर अपना नाम [-धाम] विस्तारसे बतलाइये ॥ २ ॥

तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना । भूप सुहृद सो कपट सयाना ॥

वैरी पुनि छत्री पुनि राजा । छल बल कीन्ह चहइ निज काजा ॥ ३ ॥

राजाने उसको नहीं पहचाना, पर वह राजाको पहचान गया था; राजा तो शुद्धहृदय था और वह कपट करनेमें चतुर था। एक तो वैरी, फिर जातिका क्षत्रिय, फिर राजा; वह छल-बलसे अपना काम बनाना चाहता था ॥ ३ ॥

समुझि राजसुख दुखित अराती । अवाँ अनल इव सुलगइ छाती ॥

सरल वचन नृप के सुनि काना । बयर सँभारि हृदयँ हरषाना ॥ ४ ॥

वह शत्रु अपने राज्यसुखको समझ करके (स्मरण करके) दुखी था; उसकी छाती [कुम्हारके] आँवेकी आगकी तरह [भीतर-ही-भीतर] सुलग रही थी। राजाके सरल वचन कानसे सुनकर, अपने वैरको यादकर, वह हृदयमें हर्षित हुआ ॥ ४ ॥

दो०—कपट बोरि बानी मृदुल बोलेउ जुगुति समेत ।

नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत ॥ १६० ॥

वह कपटमें डुबोकर बड़ी युक्तिके साथ कोमल वाणी बोला—अब हमारा नाम भिखारी है, क्योंकि हम निर्धन और अनिकेत (घरद्वारहीन) हैं ॥ १६० ॥

चौ०—कह नृप जे बिग्याननिधाना । तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना ॥

सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ । सब बिधि कुसल कुबेष बनाएँ ॥ १ ॥

राजाने कहा—जो आपके सदृश विज्ञानके निधान और सर्वथा अभिमानरहित होते हैं, वे अपने स्वरूपको सदा छिपाये रहते हैं; क्योंकि कुबेष बनाकर रहनेमें ही सब तरहका कल्याण है [प्रकट संतवेष्टमें मान होनेकी सम्भावना है और मानसे पतनकी] ॥ १ ॥

तेहि तँ कहहिं संत श्रुति टेरेँ । परम अकिंचन प्रिय हरि केरेँ ॥

तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा । होत बिरंचि सिवहि संदेहा ॥ २ ॥

इसीसे तो संत और वेद पुकारकर कहते हैं कि परम अकिञ्चन (सर्वथा अहंकार, ममता और मान-

रहित) ही भगवान्‌को प्रिय होते हैं। आपसरीखे निर्वन, भिखारी और गृहहीनोंको देखकर ब्रह्मा और शिवजीको भी सन्देह हो जाता है [कि ये वास्तविक संत हैं या भिखारी] ॥ २ ॥

जोसि सोसि तव चरन नमामी । मोपर कृपा करिअ अब स्वामी ॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी । आपु बिषय बिस्वास बिसेषी ॥ ३ ॥

आप जो हों सो हों (अर्थात् जो कोई भी हों), मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ । हे स्वामी ! अब मुझपर कृपा कीजिये । अपने ऊपर राजाकी स्वाभाविक प्रीति और अपने विषयमें उसका अधिक विश्वास देखकर—॥ ३ ॥

सब प्रकार राजहि अपनाई । बोलेउ अधिक सनेह जनाई ॥
सुनु सतिभाउ कहउ महिपाला । इहाँ बसत बीते बहु काला ॥ ४ ॥

सब प्रकारसे राजाको अपने वशमें करके, अधिक स्नेह दिखाता हुआ वह (कपट तपस्वी) बोला—हे राजन् ! सुनो, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, मुझे यहाँ रहते बहुत समय बीत गया ॥ ४ ॥

दो०—अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावउँ काहु ।

लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु ॥१६१ (क)॥

अबतक न तो कोई मुझसे मिला और न मैं अपनेको किसीपर प्रकट करता हूँ; क्योंकि लोकमें प्रतिष्ठा अग्निके समान है, जो तपरूपी वनको भस्म कर डालती है ॥ १६१ (क) ॥

सो०—तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर ।

सुंदर केकिहि पेषु वचन सुधासम असन अहि ॥१६१ (ख)॥

तुलसीदासजी कहते हैं—सुन्दर वेष देखकर मूढ़ नहीं, [मूढ़ तो मूढ़ ही हैं] चतुर मनुष्य भी धोखा खा जाते हैं । सुन्दर मोरको देखो, उसका वचन तो अमृतके समान है और आहार साँपका है ॥ १६१ (ख) ॥

चौ०—तातें गुपुत रहउ जग माहीं । इरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं ॥

प्रभु जानत सब बिनाहिं जनाएँ । कहहु कवनि सिद्धि लोक रिझाएँ ॥ १ ॥

[कपट-तपस्वीने कहा—] इसीसे मैं जगत्‌में छिपकर रहता हूँ । श्रीहरिको छोड़कर किसीसे कुछ भी प्रयोजन नहीं रखता । प्रभु तो बिना जनाये ही सब जानते हैं । फिर कहो, संसारको रिझानेसे क्या सिद्धि मिलेगी ॥ १ ॥

तुम्ह सुचि सुमति परमप्रिय मोरें । प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरें ॥

अब जाँ तात दुरावउँ तोही । दारुन दोष घटइ अति मोही ॥ २ ॥

तुम पवित्र और सुन्दर बुद्धिवाले हो, इससे मुझे बहुत ही प्यारे हो; और तुम्हारी भी मुझपर प्रीति और विश्वास है । हे तात ! अब यदि मैं तुमसे कुछ छिपाता हूँ तो मुझे बहुत ही भयानक दोष लगेगा ॥ २ ॥

जिमि जिमि तापसु कथइ उदासा । तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा ॥

देखा स्वबस कर्म मन बानी । तब बोला तापस बगध्यानी ॥ ३ ॥

ज्यों-ज्यों वह तपस्वी उदासीनताकी बातें कहता था, त्यों-ही-त्यों राजाको विश्वास उत्पन्न होता जाता था । जब उस बगुलेकी तरह ध्यान लगानेवाले (कपटी) मुनिने राजाको कर्म, मन और वचनसे अपने वशमें जाना, तब वह बोला—॥ ३ ॥

नाम हमार एकतनु भाई । सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई ॥

कहहु नाम कर अरथ बखानी । मोहि सेवक अति आपन जानी ॥ ४ ॥

हे भाई ! हमारा नाम एकतनु है । यह सुनकर राजाने फिर सिर नवाकर कहा—मुझे अपना अत्यन्त [अनुरागी] सेवक जानकर अपने नामका अर्थ समझाकर कहिये ॥ ४ ॥

दो०—आदिसृष्टि उपजी जबहिं तब उतपति भै मोरि ।

नाम एकतनु हेतु तोहि देह न धरी बहोरि ॥१६२॥

[कपटी मुनिने कहा—] जब सबसे पहले सृष्टि उत्पन्न हुई थी, तभी मेरी उत्पत्ति हुई थी । तबसे मैंने फिर दूसरी देह नहीं धारण की; इसीसे मेरा नाम एकतनु है ॥ १६२ ॥

चौ०—जनि आचरजु करहु मन माहीं । सुत तप तैं दुर्लभ कछु नाहीं ॥

तपबल तैं जग सृजइ बिधाता । तपबल बिष्णु भए परित्राता ॥ १ ॥

हे पुत्र ! मनमें आश्चर्य मत करो, तपसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है । तपके बलसे ब्रह्मा जगत्को रचते हैं; तपहीके बलसे विष्णु संसारका पालन करनेवाले बने हैं ॥ १ ॥

तपबल संभु करहिं संघारा । तप तैं अगम न कछु संसारा ॥

भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा । कथा पुरातन कहै सो लागा ॥ २ ॥

तपहीके बलसे रुद्र संहार करते हैं; संसारमें कोई ऐसी वस्तु नहीं जो तपसे न मिल सके । यह सुनकर राजाको बड़ा अनुराग हुआ । तब वह (तपस्वी) पुरानी कथाएँ कहने लगा ॥ २ ॥

करम धरम इतिहास अनेका । करइ निरूपन बिरति बिबेका ॥

उदभव पालन प्रलय कहानी । कहेसि अमित आचरज बखानी ॥ ३ ॥

कर्म, धर्म और अनेकों प्रकारके इतिहास कहकर वह वैराग्य और ज्ञानका निरूपण करने लगा । सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन (स्थिति) और संहार (प्रलय) की अपार आश्चर्यभरी कथाएँ उसने विस्तारसे कहीं ॥ ३ ॥

सुनि महीप तापसबस भयऊ । आपन नाम कहन तब लयऊ ॥

कह तापस नृप जानउँ तोही । कीन्हेहु कपट लाग भल मोही ॥ ४ ॥

राजा सुनकर उस तपस्वीके वशमें हो गया और तब वह उसे अपना नाम बताने लगा । तपस्वीने कहा—राजन् ! मैं तुमको जानता हूँ । तुमने कपट किया, वह मुझे अच्छा लगा ॥ ४ ॥

सो०—सुनु महीस असि नीति जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप ।

मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि तव ॥१६३॥

हे राजन् ! सुनो, ऐसी नीति है कि राजालोग जहाँ-तहाँ अपना नाम नहीं कहते । तुम्हारी वही चतुराई समझकर तुमपर मेरा बड़ा प्रेम हो गया है ॥ १६३ ॥

चौ०—नाम तुम्हार प्रतापदिनेसा । सत्यकेतु तब पिता नरेसा ॥

गुरप्रसाद सब जानिअ राजा । कहिअ न आपन जानि अकाजा ॥ १ ॥

तुम्हारा नाम प्रतापमानु है, महाराज सत्यकेतु तुम्हारे पिता थे । हे राजन् ! गुरुकी कृपासे मैं सब जानता हूँ, पर अपनी हानि समझकर कहता नहीं ॥ १ ॥

देखि तात तब सहज सुधाई । प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई ॥

उपजि परी ममता मन मोरें । कहउँ कथा निज पूँछे तोरें ॥ २ ॥

हे तात ! तुम्हारा स्वाभाविक सोचापन (सरलता), प्रेम, विश्वास और नीतिमें निपुणता देखकर मेरे मनमें तुम्हारे ऊपर बड़ी ममता उत्पन्न हो गयी है; इसीलिये मैं तुम्हारे पूछनेपर अपनी कथा कहता हूँ ॥२॥

अब प्रसन्न मैं संसय नहीं । मागु जो भूप भाव मन माहीं ॥

सुनि सुबचन भूपति हरषाना । गहि पद बिनय कीन्हि बिधि नाना ॥३॥

अब मैं प्रसन्न हूँ, इसमें सन्देह नहीं । हे राजन् ! जो मनको भावे, वही माँग लो । सुन्दर (प्रिय) वचन सुनकर राजा हर्षित हो गया और [मुनिके] पैर पकड़कर उसने बहुत प्रकारसे विनती की ॥ ३ ॥

कृपासिंधु मुनि दरसन तोरें । चारि पदार्थ करतल मोरें ॥

प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी । मागि अगम बर होउँ असोकी ॥४॥

हे दयासागर मुनि ! आपके दर्शनसे ही चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) मेरी मुट्ठीमें आ गये । तो भी स्वामीको प्रसन्न देखकर मैं यह दुर्लभ बर माँगकर [क्यों न] शोकरहित हो जाऊँ— ॥ ४ ॥

दो०—जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ ।

एकछत्र रिपुहीन महि राज कल्प सत होउ ॥१६४॥

मेरा शरीर वृद्धावस्था, मृत्यु और दुःखसे रहित हो जाय; मुझे युद्धमें कोई न जीत सके; और पृथ्वीपर मेरा सौ कल्पतक एकछत्र अकण्टक राज्य हो ॥ १६४ ॥

चौ०—कह तापस नृप ऐसेइ होऊ । कारन एक कठिन सुनु सोऊ ॥

कालउ तुअ पद नाइहि सीसा । एक बिप्रकुल छाड़ि महीसा ॥१॥

तपस्वीने कहा—हे राजन् ! ऐसा ही हो । पर एक बात कठिन है, उसे भी सुन लो । हे पृथ्वीके स्वामी ! केवल ब्राह्मणकुलको छोड़ काल भी तुम्हारे चरणोंपर सिर नवायेगा ॥ १ ॥

तपबल बिप्र सदा बरिआरा । तिन्ह कैं कोप न कोउ रखवारा ॥

जौ बिप्रन्ह बस करहु नरेसा । तौ तुअ बस बिधि बिणु महेसा ॥२॥

तपके बलसे ब्राह्मण सदा बलवान् रहते हैं । उनके क्रोधसे रक्षा करनेवाला कोई नहीं है । हे नरपति ! यदि तुम ब्राह्मणोंको वशमे कर लो, तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी तुम्हारे अधीन हो जायेंगे ॥ २ ॥

चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई । सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई ॥

बिप्रश्राप बिनु सुनु महिपाला । तोर नास नहिं कवनेहुँ काला ॥३॥

ब्राह्मणकुलसे जोर-जबर्दस्ती नहीं चल सकती, मैं दोनों भुजा उठाकर सत्य कहता हूँ । हे राजन् ! सुनो, ब्राह्मणोंके शाप बिना तुम्हारा नाश किसी कालमें नहीं होगा ॥ ३ ॥

हरषेउ राउ बचन सुनि तासु । नाथ न होइ मोर अब नासु ॥

तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना । मो कहूँ सर्व काल कल्याना ॥४॥

राजा उसके वचन सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा—हे स्वामी ! मेरा नाश अब नहीं होगा । हे कृपानिधान प्रभु ! आपकी कृपासे मेरा सब समय कल्याण होगा ॥ ४ ॥

दो०—एवमस्तु कहि कपटमुनि बोला कुटिल बहोरि ।

मिलब हमार भुलाब निज कहहु त हमहि न खोरि ॥१६५॥

‘एवमस्तु’ (ऐसा ही हो) कहकर वह कुटिल कपटी मुनि फिर बोला—[किन्तु] तुम मेरे मिलने

तथा अपने राह भूल जाने की बात किसीसे [कहना नहीं, यदि] कह दीगे, तो हमारा दोष नहीं ॥ १६५ ॥

चौ०—तातें मैं तोहि वरजउँ राजा । कहैं कथा तव परम अकाजा ॥
छठे श्रवन यह परत कहानी । नास तुम्हार सत्य मम बानी ॥ १ ॥

हे राजन् ! मैं तुमको इसलिये मना करता हूँ कि इस प्रसङ्गको कहनेसे तुम्हारी बड़ी हानि होगी । छठे कानमें यह बात पड़ते ही तुम्हारा नाश हो जायगा—मेरा यह वचन सत्य जानना ॥ १ ॥

यह प्रगटें अथवा द्विजश्रापा । नास तोर सुनु भानुप्रतापा ॥
आन उपायँ निधन तव नाहीं । जौ हरि हर कोपहिं मन माहीं ॥ २ ॥

हे प्रतापभानु ! सुनो, इस बातके प्रकट करनेसे अथवा ब्राह्मणोंके शापसे तुम्हारा नाश होगा । और किसी उपायसे, चाहे ब्रह्मा और शंकर भी मनमें क्रोध करें, तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी ॥ २ ॥

सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा । द्विज गुर कोप कहहु को राखा ॥
राखइ गुर जौ कोप बिधाता । गुर विरोध नहिं कोउ जग आता ॥ ३ ॥

राजाने मुनिके चरण पकड़कर कहा—हे स्वामी ! सत्य ही है । ब्राह्मण और गुरुके क्रोधसे, कहिये, कौन रक्षा कर सकता है ! यदि ब्रह्मा भी क्रोध करें, तो गुरु बचा लेते हैं; पर गुरुसे विरोध करनेपर जगत्में कोई भी बचानेवाला नहीं है ॥ ३ ॥

जौ न चलव हम कहैं तुम्हारें । होउ नास नहिं सोच हमारें ॥
एकहिं डर डरपत मन मोरा । प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा ॥ ४ ॥

यदि मैं आपके कथनके अनुसार नहीं चढ़ूँगा, तो [भले ही] मेरा नाश हो जाय । मुझे इसकी चिन्ता नहीं है । मेरा मन तो हे प्रभो ! [केवल] एक ही डरसे डर रहा है कि ब्राह्मणोंका शाप बड़ा भयानक होता है ॥ ४ ॥

दो०—होहिं बिप्र बस कवन बिधि कहहु कृपा करि सोउ ।
तुम्ह तजि दीनदयाल निज हितु न देखउँ कोउ ॥ १६६ ॥

[वे] ब्राह्मण किस प्रकारसे वशमें हो सकते हैं, कृपा करके वह भी बताइये । हे दीनदयाल ! आपको छोड़कर और किसीको मैं अपना हितु नहीं देखता ॥ १६६ ॥

चौ०—सुनु नृप बिबिध जतन जग माहीं । कष्टसाध्य पुनि होहिं कि नाहीं ॥
अहइ एक अति सुगम उपाई । तहाँ परंतु एक कठिनाई ॥ १ ॥

[तपस्वीने कहा] हे राजन् ! सुनो, संसारमें उपाय तो बहुत हैं; पर वे कष्टसाध्य हैं (बड़ी कठिनातासे बननेमें आते हैं), और इसपर भी सिद्ध हों या न हों (उनकी सफलता निश्चित नहीं है) । हाँ, एक उपाय बहुत सहज है; परन्तु उसमें भी एक कठिनाता है ॥ १ ॥

मम आर्धान जुगुति नृप सोई । मोर जाव तव नगर न होई ॥
आजु लगें अरु जब तैं भयऊँ । काहु के गृह ग्राम न गयऊँ ॥ २ ॥

हे राजन् ! वह युक्ति तो मेरे हाथ है, पर मेरा जाना तुम्हारे नगरमें हो नहीं सकता । जबसे पैदा हुआ हूँ, तबसे आजतक मैं किसीके घर अथवा गाँव नहीं गया ॥ २ ॥

जौ न जाउँ तव होइ अकाजू । बना आई असमंजस आजू ॥
सुनि महीस बोलेउ मृदु बानी । नाथ निगम असि नीति बखानी ॥ ३ ॥

परन्तु यदि नहीं जाता हूँ, तो तुम्हारा काम बिगड़ता है। आज यह बड़ा असमझस आ पड़ा है। यह सुनकर राजा कोमल वाणीसे बोला—हे नाथ ! वेदोंमें ऐसी नीति कही है कि—॥ ३ ॥

बड़े स्नेह लघुः पर करहीं । गिरि निज सिरनि सदा तन धरहीं ॥
जलधि अगाध मौलि बह फेनू । संतत धरनि धरत सिर रेनू ॥ ४ ॥

बड़े लोग छोटोंपर स्नेह करते ही हैं। पर्वत अपने सिरोंपर सदा तृण (घास) को धारण किये रहते हैं। अगाध समुद्र अपने मस्तकपर फेनको धारण करता है, और धरती अपने सिरपर सदा धूलिको धारण किये रहती है ॥ ४ ॥

दो०—अस कहि गहे नरेस पद स्वामी होहु कृपाल ।

मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु सज्जन दीनदयाल ॥१६७॥

ऐसा कहकर राजाने मुनिके चरण पकड़ लिये [और कहा—] हे स्वामी ! कृपा कीजिये। आप संत हैं, दीनदयालु हैं। [अतः] हे प्रभो ! मेरे लिये इतना कष्ट [अवश्य] सहिये ॥ १६७ ॥

चौ०—जानि नृपहि आपन आधीना । बोला तापस कपट प्रवीना ॥
सत्य कहउँ भूपति सुनु तोही । जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही ॥ १ ॥

राजाको अपने अधीन जानकर कपटमें प्रवीण तपस्वी बोला—हे राजन् ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, जगत्में मुझे कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ १ ॥

अवसि काज मैं करिहउँ तोरा । मन तन बचन भगत तैं मोरा ॥
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ । फलइ तबहिं जब करिअ दुराऊ ॥ २ ॥

मैं तुम्हारा काम अवश्य करूँगा; [क्योंकि] तुम मन, वाणी और शरीर [तीनों] से मेरे भक्त हो। पर योग, युक्ति, तप और मन्त्रोंका प्रभाव तभी फलीभूत होता है जब वे छिपाकर किये जाते हैं ॥ २ ॥

जौं नरेस मैं करौं रसोई । तुम्ह परसहु मोहि जान न कोई ॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई । सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई ॥ ३ ॥

हे नरपति ! मैं यदि रसोई बनाऊँ और तुम उसे परोसों, और मुझे कोई जानने न पावे, तो उस अन्न-को जो-जो खायगा, सो-सो तुम्हारा आज्ञाकारी बन जायगा ॥ ३ ॥

पुनि तिन्ह के गृह जेवई जोऊ । तव बस होइ भूप सुनु सोऊ ॥
जाइ उपाय रचहु नृप एह । संवत भरि संकल्प करेह ॥ ४ ॥

यही नहीं, उन (भोजन करनेवालों) के घर भी जो कोई भोजन करेगा, हे राजन् ! सुनो, वह भी तुम्हारे अधीन हो जायगा। हे राजन् ! जाकर यही उपाय करो और वर्षभर [भोजन कराने] का संकल्प कर लेना ॥ ४ ॥

दो०—नित नूतन द्विज सहस सत बरेहु सहित परिवार ।

मैं तुम्हारे संकल्प लागि दिनहिं करबि जेवनार ॥१६८॥

नित्य नये एक लाख ब्राह्मणोंको कुटुम्बसहित निमन्त्रित करना। मैं तुम्हारे संकल्प [के काल अर्थात् एक वर्ष] तक प्रतिदिन भोजन बना दिया करूँगा ॥१६८॥

चौ०—एहि विधि भूप कष्ट अति थोरें । होइहहिं सकल विप्र बस तोरें ॥
करिहहिं विप्र होम मख सेवा । तेहिं प्रसंग सहजेहिं बस देवा ॥ १ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार बहुत ही थोड़े परिश्रमसे सब ब्राह्मण तुम्हारे वशमें हो जायेंगे । ब्राह्मण हवन, यज्ञ और सेवा-पूजा करेंगे, तो उस प्रसंग (सम्बन्ध) से देवता भी सहज ही वशमें हो जायेंगे ॥ १ ॥

और एक तोहि कहउँ लखाऊ । मैं एहिं बेष न आउब काऊ ॥

तुम्हारे उपरोहित कहूँ राया । हरि आनब मैं करि निज माया ॥ २ ॥

मैं एक और पहचान तुमको बताये देता हूँ कि मैं इस रूपमें कभी न आऊँगा । हे राजन् ! मैं अपनी मायासे तुम्हारे पुरोहितको हर लाऊँगा ॥ २ ॥

तपबल तेहि करि आपु समाना । रखिहउँ इहाँ बरष परवाना ॥

मैं धरि तासु बेषु सुनु राजा । सब बिधि तोर सँवारब काजा ॥ ३ ॥

तपके बलसे उसे अपने समान बनाकर एक वर्षतक यहाँ रक्खूँगा; और हे राजन् ! सुनो, मैं उसका रूप बनाकर सब प्रकारसे तुम्हारा काम सिद्ध करूँगा ॥ ३ ॥

मै निसि बहुत सयन अब कीजे । मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे ॥

मैं तपबल तोहि तुरग समेता । पहुँचैहउँ सोवतहि निकेता ॥ ४ ॥

हे राजन् ! रात बहुत बीत गयी, अब सो जाओ; आजसे तीसरे दिन मुझसे तुम्हारी भेंट होगी । तपके बलसे मैं थोड़ेसहित तुमको सोतेहीमे घर पहुँचा दूँगा ॥ ४ ॥

दो०—मैं आउब सोइ बेषु धरि पहिचानेहु तब मोहि ।

जब एकांत बोलाइ सब कथा सुनावौ तोहि ॥ १६९ ॥

मैं वही (पुरोहितका) भेष धरकर आऊँगा । जब एकान्तमें तुमको बुलाकर सब कथा सुनाऊँ, तब तुम मुझे पहचान लेना ॥ १६९ ॥

चौ०—सयन कीन्ह नृप आयसु मानी । आसन जाइ बैठ छलग्यानी ॥

श्रमित भूप निद्रा अति आई । सो किमि सोच सोच अधिकाई ॥ १ ॥

राजाने आशा मानकर शयन किया और वह कपट-शानी आसनपर जा बैठा । राजा थका था, [उसे] खूब (गहरी) नींद आ गयी । पर वह कपटी कैसे सोता । उसे तो बहुत चिन्ता हो रही थी ॥ १ ॥

कालकेतु निसिचर तहँ आवा । जेहिं सूकर होइ नृपहि भुलावा ॥

परम मित्र तापस नृप केरा । जानइ सो अति कपट घनेरा ॥ २ ॥

[उसी समय] वहाँ कालकेतु राक्षस आया, जिसने सूअर बनकर राजाको भटकाया था । वह तपस्वी राजाका बड़ा मित्र था और खूब छल-प्रपञ्च जानता था ॥ २ ॥

तेहि के सत सुत अरु दस भाई । खल अति अजय देवदुखदाई ॥

प्रथमहिं भूप समर सब मारे । बिप्र संत सुर देखि दुखारे ॥ ३ ॥

उसके सौ पुत्र और दस भाई थे, जो बड़े ही दुष्ट, किसीसे न जीते जानेवाले और देवताओंको दुःख देनेवाले थे । ब्राह्मणों, संतों और देवताओंको दुखी देखकर राजाने उन सबको पहले ही युद्धमें मार डाला था । ३ ॥

तेहिं खल पाछिल बयर सँभारा । तापसनृप मिलि मंत्र बिचारा ॥

जेहिं रिपुछय सोइ रचेन्हि उपाऊ । भाबीबस न जान कछु राऊ ॥ ४ ॥

उस दुष्टने पिछला बैर याद करके, तपस्वी राजासे मिलकर सलह विचारी (षड्यन्त्र किया) और जिस प्रकार शत्रुका नाश हो, वही उपाय रचा । भावीवश राजा (प्रतापमानु) कुछ भी न समझ सका ॥ ४ ॥

दो०—रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु ।

अजहुँ देत दुख रबि ससिहि सिर अबसेषित राहु ॥१७०॥

तेजस्वी शत्रु अकेला भी हो, तो भी उसे छोटा नहीं समझना चाहिये । जिसका सिरमात्र बचा था, वह राहु आजतक सूर्य-चन्द्रमाको दुःख देता है ॥१७०॥

चो०—तापस नृप निज सखहि निहारी । हरषि मिलेउ ठठि भयउ सुखारी ॥

मित्रहि कहि सब कथा सुनाई । जातुधान बोला सुख पाई ॥ १ ॥

तपस्वी राजा अपने मित्रको देख प्रसन्न हो उठकर मिला और सुखी हुआ । उसने मित्रको सब कथा कह सुनायी, तब राक्षस आनन्दित होकर बोला—॥ १ ॥

अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा । जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा ॥

परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई । बिनु औषध बिआधि बिधि खोई ॥ २ ॥

हे राजन् ! सुनो, जब तुमने मेरे कहनेके अनुसार [इतना] काम कर लिया, तो अब मैंने शत्रुको काबूमें कर ही लिया [समझो] । तुम अब चिन्ता त्याग सो रहो । बिघाताने बिना ही दवाके रोग दूर कर दिया ॥ २ ॥

कुल समेत रिपु मूल वहाई । चौथे दिवस मिलब मैं आई ॥

तापस नृपहि बहुत परितोषी । चला महाकपटी अतिरोषी ॥ ३ ॥

कुलसहित शत्रुको जड़-मूलसे उखाड़ बहाकर, [आजसे] चौथे दिन मैं तुमसे आ मिलूँगा । [इस प्रकार] तपस्वी राजाको खूब दिलासा देकर वह महामायावी और अत्यन्त क्रोधी राक्षस चला ॥ ३ ॥

भानुप्रतापहि बाजि समेता । पहुँचाएसि छन माझ निकेता ॥

नृपहि नारि पहिं सयन' कराई । हयगृहँ बाँधेसि बाजि बनाई ॥ ४ ॥

उसने प्रतापमानु राजाको घोड़ेसहित क्षणभरमें घर पहुँचा दिया । राजाको रानीके पास बुलाकर घोड़ेको अच्छी तरहसे घुड़सालमें बाँध दिया ॥ ४ ॥

दो०—राजा के उपरोहितहि हरि लै गयउ बहोरि ।

लै राखेसि गिरिखोह महुँ मायाँ करि मति भोरि ॥१७१॥

फिर वह राजाके पुरोहितको उठा ले गया, और मायासे उसकी बुद्धिको भ्रममें डालकर उसे उसने पहाड़की खोहमें ला रक्खा ॥१७१॥

चो०—आपु बिरचि उपरोहित रूपा । परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा ॥

जागेउ नृप अनमएँ बिहाना । देखि भवन अति अचरजु माना ॥ १ ॥

वह आप पुरोहितका रूप बनाकर, उसकी सुन्दर सेजपर जा लेटा । राजा सवेरा होनेसे पहले ही जागा और अपना घर देखकर उसने बड़ा ही आश्चर्य माना ॥ १ ॥

मुनिमहिमा मन महुँ अनुमानी । उठेउ गवहिं जेहिं जान न रानी ॥

कानन गयउ बाजि चढ़ि तेहीं । पुर नर नारि न जानेउ केहीं ॥ २ ॥

मनमें मुनिकी महिमाका अनुमान करके वह धीरेसे उठा जिसमें रानी न जान पावे । फिर उसी घोड़ेपर चढ़कर बनको चला गया । नगरके किसी भी स्त्री-पुरुषने नही जाना ॥ २ ॥

गएँ जाम जुग भूपति आवा । घर घर उत्सव बाज बधावा ॥
उपरोहितहि देख जब राजा । चकित बिलोक सुमिरि सोइ काजा ॥ ३ ॥

दो पहर बीत जानेपर राजा आया । घर-घर उत्सव होने लगे और बधावा बजने लगा । जब राजाने पुरोहितका देखा, तब वह [अपने] उसी कार्यका स्मरण कर उसे आश्चर्यसे देखने लगा ॥ ३ ॥

जुग सम नृपहि गए दिन तीनी । कपटी मुनि पद रह मति लीनी ॥
समय जानि उपरोहित आवा । नृपहि मते सब कहि समुझावा ॥ ४ ॥

राजाको तीन दिन युगके समान बीते । उसकी बुद्धि कपटी मुनिके चरणोंमें लगी हुई थी । निश्चित समय जानकर पुरोहित [बना हुआ राक्षस] आया और राजाके साथ की हुई गुप्त सलाहके अनुसार [उसने अपनी] सब बातें उसे समझाकर कह दी ॥ ४ ॥

दो०—नृप हरषेउ पहिचानि गुरु भ्रम बस रहा न चेत ।

बरे तुरत सत सहस बर विप्र कुटुंब समेत ॥ १७२ ॥

[संकेतके अनुसार] गुरुको [उस रूपमें] पहचानकर राजा प्रसन्न हुआ । भ्रमवश उसे चेत न रहा [कि यह तापस मुनि है या कालकेतु राक्षस] । उसने तुरंत एक लाख उत्तम ब्राह्मणोंको कुटुम्ब-सहित निमन्त्रण दे दिया ॥ १७२ ॥

चो०—उपरोहित जेवनार बनाई । छरस चारि बिधि जसि श्रुति गाई ॥

मायामय तेहिं कीन्हि रसोई । बिंजन बहु गनि सकइ न कोई ॥ १ ॥

पुरोहितने छः रस और चार प्रकारके भोजन, जैसा कि वेदोंमें वर्णन है, बनाये । उसने मायामयी रसोई तैयार की और इतने व्यञ्जन बनाये जिन्हें कोई गिन नहीं सकता ॥ १ ॥

बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा । तेहि महुँ विप्र माँसु खल साँधा ॥

भोजन कहुँ सब विप्र बोलाए । पद पखारि सादर बैठाए ॥ २ ॥

अनेक प्रकारके पशुओंका मांस पकाया और उसमें उस दुष्टने ब्राह्मणोंका मांस मिला दिया । सब ब्राह्मणोंको भोजनके लिये बुलाया और चरण धोकर आदरसहित बैठाया ॥ २ ॥

परुसन जबहिं लाग महिपाला । भै अकासबानी तेहि काला ॥

विप्रबृंद उठि उठि गृह जाह । है बड़ि हानि अन्न जनि खाह ॥ ३ ॥

ज्यों ही राजा परोसने लगा, उसी समय आकाशवाणी हुई—हे ब्राह्मणो ! उठ-उठकर अपने घर जाओ; यह भन्न मत खाओ । इस [के खाने] में बड़ी हानि है ॥ ३ ॥

भयउ रसोई भूसुर माँसू । सब द्विज उठे मानि बिस्वासू ॥

भूप विकल मति मोहँ भुलानी । भावी बस न आव मुख बानी ॥ ४ ॥

रसोईमें ब्राह्मणोंका मांस बना है । [आकाशवाणीका] विश्वास मानकर सब ब्राह्मण उठ खड़े हुए । राजा व्याकुल हो गया । [परन्तु] उसकी बुद्धि मोहमें भूली हुई थी । होनहारवश उसके मुँहसे [एक] बात [भी] न निकली ॥ ४ ॥

दो०—बोले बिप्र सकोप तब नहिं कछु कीन्ह बिचार ।

जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार ॥१७३॥

तब ब्राह्मण क्रोधसहित बोल उठे—उन्होंने कुछ भी विचार नहीं किया—अरे मूर्ख राजा ! तू जाकर परिवारसहित राक्षस हो ॥ १७३ ॥

चौ०—छत्रबंधु तैं बिप्र बोलाई । घालै लिप सहित समुदाई ॥

ईश्वर राखा धरम हमारा । जैहसि तैं समेत परिवारा ॥ १ ॥

रे नीच क्षत्रिय ! तूने तो परिवारसहित ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें नष्ट करना चाहा था, ईश्वरने हमारे धर्मकी रक्षा की । अब तू परिवारसहित नष्ट होगा ॥ १ ॥

संबत मध्य नास तब होऊ । जलदाता न रहिहि कुल कोऊ ॥

नृप सुनि श्राप विकल अति त्रासा । भै बहोरि बर गिरा अकासा ॥ २ ॥

एक वर्षके भीतर तेरा नाश हो जाय, तेरे कुलमें कोई पानी देनेवालातक न रहेगा । श्राप सुनकर राजा भयके मारे अत्यन्त व्याकुल हो गया । फिर सुन्दर आकाशवाणी हुई—॥ २ ॥

बिप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा । नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा ॥

चकित बिप्र सब सुनि नभबानी । भूप गयउ जहँ भोजन खानी ॥ ३ ॥

हे ब्राह्मणो ! तुमने विचारकर शाप नहीं दिया । राजाने कुछ भी अपराध नहीं किया । आकाशवाणी सुनकर सब ब्राह्मण चकित हो गये । तब राजा वहाँ गया जहाँ भोजन बना था ॥ ३ ॥

तहँ न असन नहिं बिप्र सुआरा । फिरेउ राउ मन सोच अपारा ॥

सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई । त्रसित परेउ अवनीं अकुलाई ॥ ४ ॥

[देखा तो] वहाँ न भोजन था, न रसोइया ब्राह्मण ही था; तब राजा मनमें अपार चिन्ता करता हुआ लौटा । उसने ब्राह्मणोंको सब वृत्तान्त सुनाया और [बड़ा ही] भयभीत और व्याकुल होकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४ ॥

दो०—भूपति भावी मिटइ नहिं जदपि न दूषन तोर ।

किऐँ अन्यथा होइ नहिं बिप्रश्राप अति घोर ॥१७४॥

हे राजन् ! यद्यपि तुम्हारा दोष नहीं है, तो भी होनहार नहीं मिटता । ब्राह्मणोंका शाप बहुत ही भयानक होता है, यह किसी तरह भी टाले टल नहीं सकता ॥ १७४ ॥

चौ०—अस कहि सब महिदेव सिधाए । समाचार पुरलोगन्ह पाए ॥

सोचहिं दूषन दैवहिं देहीं । बिरचत हंस काग किय जेहीं ॥ १ ॥

ऐसा कहकर सब ब्राह्मण चले गये । नगरनिवासियोंने [जब] यह समाचार पाया, तो वे चिन्ता करने और विधाताको दोष देने लगे, जिसने हंस बनाते-बनाते कौआ कर दिया (ऐसे पुण्यात्मा राजाको देवता बनाना चाहिये था सो राक्षस बना दिया) ॥ १ ॥

उपरोहितहि भवन पहुँचाई । असुर तापसहि खबरि जनाई ॥

तेहिं खल जहँ तहँ पत्र पठाए । सजि सजि सेन भूप सब धाए ॥ २ ॥

पुरोहितको उसके घर पहुँचाकर असुर (कालकेतु) ने [कपटी] तपस्वीको खबर दी। उस दुष्टने जहाँ-तहाँ पत्र भेजे, जिससे सब [वैरी] राजा सेना सजा-सजाकर [चढ़] दौड़े ॥ २ ॥

घेरोन्हि नगर निसान बजाई। बिबिध भाँति नित होइ लराई ॥
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी ॥ ३ ॥

[और] उन्होंने डंका बजाकर नगरको घेर लिया। नित्यप्रति अनेक प्रकारसे लड़ाई होने लगी। [प्रतापमानुके] सब योद्धा [शूरवीरोंकी] करनी करके रणमें जूझ मरे [तथा] राजा भी भाईसहित खेत रहा ॥ ३ ॥

सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा। बिप्रश्राप किमि होइ असाँचा ॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय जसु पाई ॥ ४ ॥

सत्यकेतुके कुलमें कोई नहीं बचा। ब्राह्मणका शाप शूटा कैसे हो सकता है। शत्रुको जीतकर, नगरको [फिरसे] बसाकर सब राजा विजय और यश पाकर अपने-अपने नगरको चले गये ॥ ४ ॥

दो०—भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ विधाता बाम।
धूरि मेरुसम जनक जम ताहि न्यालसम दाम ॥ १७५ ॥

[याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—] हे भरद्वाज ! सुनो, विधाता जब जिसके विपरीत होते हैं, तब उसके लिये धूल सुमेरु पर्वतके समान (भारी और कुचल डालनेवाली), पिता यमके समान (कालरूप) और रस्सी साँपके समान (काट खानेवाली) हो जाती है ॥ १७५ ॥

चौ०—काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा ॥
दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा ॥ १ ॥

हे मुनि ! सुनो, समय पाकर वही राजा परिवारसहित रावण नामक राक्षस हुआ। उसके दस सिर और बीस भुजाएँ थीं और वह बड़ा ही प्रचण्ड शूरवीर था ॥ १ ॥

भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलधामा ॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू ॥ २ ॥

अरिमर्दन नामक जो राजाका छोटा भाई था, वह बलका धाम कुम्भकर्ण हुआ। उसका मंत्री जो धर्मरुचि था, वह रावणका सौतेला छोटा भाई हुआ ॥ २ ॥

नाम बिभीषन जेहि जग जाना। बिष्णुभगत बिग्यान निधाना ॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे ॥ ३ ॥

उसका विभीषण नाम था, जिसे सारा जगत् जानता है। वह विष्णुभक्त और ज्ञान-विज्ञानका भण्डार था। और जो राजाके पुत्र और सेवक थे, वे सभी बड़े भयानक राक्षस हुए ॥ ३ ॥

कामरूप खल जिनस अनेका। कुटिल भयंकर बिगत बिबेका ॥
कृपारहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाहिं बिस्वपरितापी ॥ ४ ॥

वे सब अनेकों जातिके, मनमाना रूप धारण करनेवाले, दुष्ट, कुटिल, भयंकर, विवेकरहित, निर्दयी, हिंसक, पापी और संसारभरको दुःख देनेवाले हुए; उनका वर्णन नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

दो०—उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर श्राप बस भए सकल अघरूप ॥ १७६ ॥

यद्यपि वे पुलस्त्य ऋषिके पवित्र, निर्मल और अनुपम कुलमें उत्पन्न हुए, तथापि ब्राह्मणोंके शापके कारण वे सब पापरूप हुए ॥ १७६ ॥

चौ०—कोन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई । परम उग्र नहिं बरनि सो जाई ॥

गयउ निकट तप देखि बिधाता । मागहु बर प्रसन्न मैं ताता ॥ १ ॥

तीनों भाइयोंने अनेकों प्रकारकी बड़ी ही कठिन तपस्या की, जिसका वर्णन नहीं हो सकता । [उनका उग्र] तप देखकर ब्रह्माजी उनके पास गये और बोले—हे तात ! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो ॥ १ ॥

करि बिनती पद गहि दससीसा । बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा ॥

हम काहु के मरहिं न मारें । वानर मनुज जाति दुइ बारें ॥ २ ॥

रावणने विनय करके और चरण पकड़कर कहा—हे जगदीश्वर ! सुनिये, वानर और मनुष्य इन दो जातियोंको छोड़कर हम और किसीके मारे न मरें [यह वर दीजिये] ॥ २ ॥

एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा । मैं ब्रह्माँ मिलि तेहि बर दीन्हा ॥

पुनि प्रभु कुम्भकरन पहिं गयउ । तेहि विलोकि मन विसमय भयउ ॥ ३ ॥

[शिवजी कहते हैं कि—] मैंने और ब्रह्माने मिलकर उसे वर दिया कि ऐसा ही हो, तुमने बड़ा तप किया है । फिर ब्रह्माजी कुम्भकर्णके पास गये । उसे देखकर उनके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३ ॥

जौं एहिं खल नित करब अहारू । होइहि सब उजारि संसारू ॥

सारद प्रेरि तासु मति फेरी । मागेसि नोद मास षट केरी ॥ ४ ॥

जो यह दुष्ट नित्य आहार करेगा, तो सारा संसार ही उजाड़ हो जायगा । [ऐसा विचारकर] ब्रह्माजीने सरस्वतीको प्रेरणा करके उसकी बुद्धि फेर दी । [जिससे] उसने छः महीनेकी नोद माँगी ॥ ४ ॥

दो०—गए विभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु ।

तेहि मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु ॥ १७७ ॥

फिर ब्रह्माजी विभीषणके पास गये और बोले—हे पुत्र ! वर माँगो । उसने भगवान्के चरणकमलोंमें निर्मल (निष्काम और अनन्य) प्रेम माँगा ॥ १७७ ॥

चौ०—तिन्हहि देख बर ब्रह्म सिधाए । हरषित ते अपने गृह आए ॥

मयतनुजा मंदोदरि नामा । परम सुंदरी नारि ललामा ॥ १ ॥

उनको वर देकर ब्रह्माजी चले गये । और वे [तीनों भाई] हर्षित होकर अपने घर लौट आये । मय दानवकी मन्दोदरी नामकी कन्या परम सुन्दरी और स्त्रियोंमें शिरोमणि थी ॥ १ ॥

सोइ मयँ दीन्हि रावनहि आनी । होइहि जातुधानपति जानी ॥

हरषित भयउ नारि भलि पाई । पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई ॥ २ ॥

मयने उसे लेकर रावणको दिया । उसने जान लिया कि यह राक्षसोंका राजा होगा । अच्छी स्त्री पाकर रावण प्रसन्न हुआ और फिर उसने जाकर दोनों भाइयोंका विवाह कर दिया ॥ २ ॥

गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी । बिधिनिर्मित दुर्गम अति भारी ॥

सोइ मयदानवँ बहुरि सँघारा । कनकरचित मनभवन अपारा ॥ ३ ॥

समुद्रके बीचमें त्रिकूट नामक पर्वतपर ब्रह्माका बनाया हुआ एक बड़ा भारी किला था। [महान् मायावी और निपुण कारीगर] मय दानवने उसको फिरसे सजा दिया। उसमें मणियोंसे जड़े हुए सोनेके अनगिनत महल थे ॥ ३ ॥

भोगावति जसि अहिकुल बासा। अमरावति जसि सक्रनिवासा ॥

तिन्ह तें अधिक रम्य अति वंका। जग बिख्यात नाम तेहि लंका ॥ ४ ॥

जैसी नागकुलके रहनेकी [पाताललोकमें] भोगावती पुरी है और इन्द्रके रहनेकी [स्वर्गलोकमें] अमरावती पुरी है, उनसे भी अधिक सुन्दर और बाँका वह दुर्ग था। जगत्में उसका नाम लंका प्रसिद्ध हुआ ॥ ४ ॥

दो०—खाई सिंधु गभीर अति चारिहुँ दिसि फिरि आव ।

कनककोट मनि खचित दढ़ बरनि न जाइ बनाव ॥ १७८ (क) ॥

उसे चारो ओरसे समुद्रकी अत्यन्त गहरी खाई घेरे हुए है। उस [दुर्ग] के मणियोंसे जड़ा हुआ सोनेका मजबूत परकोटा है, जिसकी कारीगरीका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ १७८ (क) ॥

हरिप्रेरित जेहिं कलप जोइ जातुधानपति होइ ।

सुर प्रतापी अतुलबल दल समेत बस सोइ ॥ १७८ (ख) ॥

भगवान्की प्रेरणासे जिस कल्पमें जो राक्षसोंका राजा (रावण) होता है, वही शूर, प्रतापी, अतुलित बलवान् अपनी सेनासहित उस पुरीमें बसता है ॥ १७८ (ख) ॥

चौ०—रहे तहाँ निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर संधारे ॥

अब तहाँ रहहिं सक के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे ॥ १ ॥

[पहले] वहाँ बड़े-बड़े योद्धा राक्षस रहते थे। देवताओंने उन सबको युद्धमें मार डाला। अब इन्द्रकी प्रेरणासे वहाँ कुबेरके एक करोड़ रक्षक (यक्षलोग) रहते हैं—॥ १ ॥

दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई ॥

देखि विकट भट वड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई ॥ २ ॥

रावणको कहीं ऐसी खबर मिली, तब उसने सेना सजाकर किलेको जा घेरा। उस बड़े विकट योद्धा और उसकी बड़ी सेनाको देखकर यक्ष अपने प्राण लेकर भाग गये ॥ २ ॥

फिरि सब नगर दसानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिसेषा ॥

सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी ॥ ३ ॥

तब रावणने घूम-फिरकर सारा नगर देखा। उसकी [स्थानसम्बन्धी] चिन्ता मिट गयी और उसे बहुत ही सुख हुआ। उस पुरीको स्वाभाविक ही सुन्दर और [बाहरवालोंके लिये] दुर्गम अनुमान करके रावणने वहाँ अपनी राजधानी कायम की ॥ ३ ॥

जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे ॥

एक बार कुबेर पर थावा। पुष्पक जान जीति लै आवा ॥ ४ ॥

योग्यताके अनुसार घरोंको बाँटकर रावणने सब राक्षसोंको सुखी किया। एक बार वह कुबेरपर चढ़ दौड़ा और उससे पुष्पक विमानको जीतकर ले आया ॥ ४ ॥

दो०—कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ ।

मनहुँ तौलि निज बाहुबल चला बहुत सुख पाइ ॥१७९॥

फिर उसने जाकर [एक बार] खिलवाड़हीमें कैलास पर्वतको उठा लिया, और मानो अपनी भुजाओंका बल तौलकर, बहुत सुख पाकर, वह वहाँसे चला आया ॥१७९॥

चो०—सुख संपति सुत सेन सहाई । जय प्रताप बल बुद्धि बढ़ाई ॥

नित नूतन सब बाढ़त जाई । जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई ॥ १ ॥

सुख, सम्पत्ति, पुत्र, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बढ़ाई, ये सब उसके नित्य नये [वैसे ही] बढ़ते जाते थे, जैसे प्रत्येक लाभपर लोभ बढ़ता है ॥ १ ॥

अतिबल कुंभकरन अस भ्राता । जेहि कहूँ नहिं प्रतिभट जग जाता ॥

करइ पान सोवइ पटमासा । जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा ॥ २ ॥

अत्यन्त बलवान् कुम्भकर्ण-सा उसका भाई था, जिसके जोड़का योद्धा जगत्में पैदा ही नहीं हुआ । वह मदिरा पीकर छः महीने सोया करता था । उसके जागते ही तीनों लोकोंमें तहलका मच जाता था ॥ २ ॥

जौ दिन प्रति अहार कर सोई । बिख बेगि सब चौपट होई ॥

समरधीर नहिं जाइ बखाना । तेहि सम अमित बीर बलवाना ॥ ३ ॥

यदि वह प्रतिदिन भोजन करता, तब तो सम्पूर्ण विश्व शीघ्र ही चौपट (खाली) हो जाता । रणधीर ऐसा था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता । [लङ्कामें] उसके-ऐसे असंख्य बलवान् वीर थे ॥ ३ ॥

बारिदनाद जेठ सुत तासू । भट महुँ प्रथम लीक जग जासू ॥

जेहि न होइ रन सनमुख कोई । सुरपुर नितहिं परावन होई ॥ ४ ॥

मेघनाद रावणका बड़ा लड़का था, जिसका जगत्के योद्धाओंमें पहला नंबर था । रणमें कोई भी उसका सामना नहीं कर सकता था । स्वर्गमें तो [उसके भयसे] नित्य भगदड़ मची रहती थी ॥ ४ ॥

दो०—कुसुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय ।

एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय ॥१८०॥

[इनके अतिरिक्त] दुर्युध, अकम्पन, वज्रदन्त, धूमकेतु और अतिकाय आदि ऐसे अनेक योद्धा थे जो अकेले ही सारे जगत्को जीत सकते थे ॥१८०॥

चौ०—कामरूप जानहिं सब माया । सपनेहुँ जिन्ह कँ धरम न दाया ॥

दसमुख बैठ सभाँ एक बारा । देखि अमित आपन परिवारा ॥ १ ॥

सभी राक्षस मनमाना रूप बना सकते थे और [आसुरी] माया जानते थे । उनके दया-धर्म स्वप्नमें भी नहीं था । एक बार सभामें बैठे हुए रावणने अपने अगणित परिवारको देखा—॥ १ ॥

सुत समूह जन परिजन नाती । गनै को पार निसाचर जाती ॥

सेन बिलोकि सहज अभिमानी । बोला बचन क्रोध मद सानी ॥ २ ॥

पुत्र-पौत्र, कुटुम्बी और सेवक ढेर-कें-ढेर थे । [सारी] राक्षसोंकी जितियोंको तो गिन ही कौन सकता था ! अपनी सेनाको देखकर स्वभावसे ही अभिमानी रावण क्रोध और गर्वमें सनी हुई वाणी बोली—॥ २ ॥

सुनहु सकल रजनीचर जूया । हमरे बैरी बिबुध बरूया ॥

ते सनमुख नहिं करहिं लराई । देखि सबल रिपु जाहिं पराई ॥ ३ ॥

हे समस्त राक्षसोंके दलौ ! सुनो, देवतागण हमारे शत्रु हैं । वे सामने आकर युद्ध नहीं करते । बलवान् शत्रुको देखकर भाग जाते हैं ॥ ३ ॥

तेन्ह कर मरन एक बिधि होई । कहउँ बुझाई सुनहु अब सोई ॥

द्विजभोजन मख होम सराधा । सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा ॥ ४ ॥

उनका मरण एक ही उपायसे हो सकता है, मैं समझाकर कहता हूँ । अब उसे सुनो । [उनके बलको बढ़ानेवाले] ब्राह्मणभोजन, यज्ञ, हवन और श्राद्ध, इन सबमें जाकर तुम बाधा डालो ॥ ४ ॥

दो०—लुधाछीन बलहीन सुर सहजेहिं मिलिहहिं आइ ।

तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ भली भाँति अपनाइ ॥ १८१ ॥

भूखसे दुर्बल और बलहीन होकर देवता सहजहीमें आ मिलेंगे । तब उनको मैं मार डालूँगा अथवा भली भाँति अपने अधीन करके [सर्वथा पराधीन करके] छोड़ दूँगा ॥ १८१ ॥

चौ०—मेघनाद कहूँ पुनि हँकरावा । दीन्ही सिख बलु बयर बढ़ावा ॥

जे सुर समरधीर बलवाना । जिन्ह कैं लरिबे कर अभिमाना ॥ १ ॥

फिर उसने मेघनादको बुलवाया और सिखा-पढ़ाकर उसके बल और [देवताओंके प्रति] वैरभावको उत्तेजना दी । फिर कहा—हे पुत्र ! जो देवता रणमें धीर और बलवान् है, और जिन्हें लड़नेका अभिमान है, ॥ १ ॥

तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी । उठि सुत पितु अनुसासन काँधी ॥

एहि बिधि सबही अग्या दीन्ही । आपुनु चलेउ गदा कर लीन्ही ॥ २ ॥

उन्हें युद्धमें जीतकर बाँध लाना । हे पुत्र ! उठो और पिताकी आज्ञाको शिरोधार्य करो । इसी तरह उसने सबको आज्ञा दी और आप भी हाथमें गदा लेकर चल दिया ॥ २ ॥

चलत दसानन डोलति अवनी । गर्जत गर्भ झवहिं सुररवनी ॥

रावन आवत सुनेउ सकोहा । देवन्ह तके मेरुगिरि खोहा ॥ ३ ॥

रावणके चलनेसे पृथ्वी डगमगाने लगी और उसकी गर्जनासे देवरमणियोंके गर्भ गिरने लगे । रावणको क्रोधसहित आते हुए सुनकर देवताओंने सुमेरु पर्वतकी गुफाएँ तर्की (भागकर सुमेरुकी गुफाओंका आश्रय लिया) ॥ ३ ॥

दिगपालन्ह के लोक सुहाए । सूने सकल दसानन पाए ॥

पुनि पुनि सिंघनाद करि भारी । देइ देवतन्ह गारि पचारी ॥ ४ ॥

दिग्पालोंके सारे सुन्दर लोकोंको रावणने सूना पाया । वह बार-बार भारी सिंहगर्जना करके देवताओंको लज्जकार-लज्जकारकर गालियाँ देता था ॥ ४ ॥

रनमद मत्त फिरइ जग धावा । प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा ॥

रवि ससि पवन बरुन बनचारी । अगिनि काल जम सब अधिकारी ॥ ५ ॥

रणके मदमें मतवाला होकर वह अपनी जोड़ीका थोड़ा खोजता हुआ जगत्भरमें दौड़ता फिरा, परन्तु उसे ऐसा थोड़ा कहीं नहीं मिला । सूर्य, चन्द्रमा, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल और यम आदि सब अधिकारी, ॥ ५ ॥

किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा । हठि सबही के पंथहिं लगा ॥
ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी । दसमुख बसबर्ती नर नारी ॥ ६ ॥

किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग सभीके पीछे वह हठपूर्वक पड़ गया (किसीको भी उसने शान्ति-पूर्वक नहीं बैठने दिया) । ब्रह्माजीकी सृष्टिमें जहाँतक शरीरधारी स्त्री-पुरुष थे, सभी रावणके अधीन हो गये ॥ ६ ॥

आयसु करहिं सकल भयभीता । नवहिं आइ नित चरन बिनीता ॥ ७ ॥

डरके मारे सभी उसकी आज्ञाका पालन करते थे और नित्य आकर मन्त्रतापूर्वक उसके चरणोंमें सिर नवाते थे ॥ ७ ॥

दो०—भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र ।

मंडलीकमनि रावन राज करइ निज मंत्र ॥ १८२ (क) ॥

उसने भुजाओंके बलसे सारे विश्वको वशमें कर लिया; किसीको स्वतन्त्र नहीं रहने दिया । [इस प्रकार] मण्डलीक राजाओंका शिरोमणि (सार्वभौम सम्राट्) रावण अपने इच्छानुसार राज्य करने लगा ॥ १८२ (क) ॥

देव जच्छ गंधर्व नर किन्नर नाग कुमारि ।

जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुंदर बर नारि ॥ १८२ (ख) ॥

देवता, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य, किन्नर और नागोंकी कन्याओं तथा बहुत-सी अन्य सुन्दरी और उत्तम स्त्रियोंको उसने अपनी भुजाओंके बलसे जीतकर न्याह लिया ॥ १८२ (ख) ॥

चो०—इंद्रजीत सन जो कछु कहेऊ । सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ ॥

प्रथमहिं जिन्ह कहूँ आयसु दीन्हा । तिन्ह कर चरित सुनहु जो कीन्हा ॥ १ ॥

मेघनादसे उसने जो कुछ कहा, उसे उसने (मेघनादने) मानो पहलेसे ही कर रक्खा था (अर्थात् रावणके कहनेभरकी देर थी, उसने आज्ञापालनमें तनिक भी देर नहीं की) । जिनको [रावणने मेघनादसे] पहले ही आज्ञा दे रक्खी थी, उन्होंने जो करतूतें कीं उन्हें सुनो ॥ १ ॥

देखत भीमरूप सब पापी । निसिचर निकर देवपरितापी ॥

करहिं उपद्रव असुर निकाया । नाना रूप धरहिं करि माया ॥ २ ॥

सब राक्षसोंके समूह देखनेमें बड़े भयानक, पापी और देवताओंको दुःख देनेवाले थे । वे असुरोंके समूह उपद्रव करते थे और मायासे अनेकों प्रकारके रूप धरते थे ॥ २ ॥

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला । सो सब करहिं बेद प्रतिकूला ॥

जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं । नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं ॥ ३ ॥

जिस प्रकार धर्मकी जड़ कटे, वे वही सब वेदविरुद्ध काम करते थे । जिस-जिस स्थानमें वे गौ और ब्राह्मणोंको पाते थे, उसी नगर, गाँव और पुरवेमें आग लगा देते थे ॥ ३ ॥

सुभ आचरन कतहु नहिं होई । देव बिप्र गुरु मान न कोई ॥

नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना । सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना ॥ ४ ॥

[उनके डरसे] कहीं भी शुभ आचरण (ब्राह्मणभोजन, यज्ञ, श्राद्ध आदि) नहीं होते थे । देवता, ब्राह्मण और गुरुको कोई नहीं मानता था । न हरिभक्ति थी, न यज्ञ, तप और ज्ञान था । वेद और पुराण तो स्वप्नमें भी सुननेको नहीं मिलते थे ॥ ४ ॥

छं०—जप जोग बिरागा तप मखभागा श्रवन सुनइ दससीसा ।

आपुन उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा ॥

अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना ।

तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना ॥

जप, योग, वैराग्य, तप तथा यज्ञमें [देवताओंके] भाग पानेकी बात रावण कहीं कानोंसे सुन पाता, तो [उसी समय] स्वयं उठ दौड़ता । कुछ भी रहने नहीं पाता, वह सबको पकड़कर विध्वंस कर डालता था । संसारमें ऐसा भ्रष्ट आचरण फैल गया कि धर्म तो कानोंसे भी सुननेमें नहीं आता था; जो कोई वेद और पुराण कहता, उसको बहुत तरहसे त्रास देता और देशसे निकाल देता था ।

सो०—बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं ।

हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति ॥१८३॥

राक्षसलोग जो घोर अत्याचार करते थे, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । हिंसापर ही जिनकी प्रीति है, उनके पापोंका क्या ठिकाना ! ॥ १८३ ॥

मासपारायण छठा विश्राम

चौ०—बाढ़े खल बहु चोर जुअरा । जे लंपट परधन परदारा ॥

मानहिं मातु पिता नहिं देवा । साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥ १ ॥

पराये धन और परायी स्त्रीपर मन चलानेवाले, दुष्ट, चोर और जुआरी बहुत बढ़ गये । लोग माता-पिता और देवताओंको नहीं मानते थे और साधुओं [की सेवा करना तो दूर रहा, उल्टे उन] से सेवा करवाते थे ॥ १ ॥

जिन्ह के यह आचरण भवानी । ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ॥

अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी । परम सभीत धरा अकुलानी ॥ २ ॥

[श्रीशिवजी कहते हैं कि—] हे भवानी ! जिनके ऐसे आचरण हैं, उन सब प्राणियोंको राक्षस ही समझना । इस प्रकार धर्मके प्रति [लोगोंकी] अतिशय ग्लानि (अरुचि, अनास्था) देखकर पृथ्वी अत्यन्त भयभीत एवं व्याकुल हो गयी ॥ २ ॥

गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही । जस मोहि गरुअ एक परद्रोही ॥

सकल धर्म देखइ बिपरीता । कहि न सकइ रावन भयभीता ॥ ३ ॥

[वह सोचने लगी कि] पर्वतों, नदियों और समुद्रोंका बोझ मुझे इतना भारी नहीं जान पड़ता जितना भारी मुझे एक परद्रोही (दूसरोंका अनिष्ट करनेवाला) लगता है । पृथ्वी सारे धर्मोंको विपरीत देख रही है, पर रावणसे भयभीत हुई वह कुछ बोल नहीं सकती ॥ ३ ॥

धेनुरूप धरि हृदयँ बिचारी । गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी ॥

निज संताप सुनाएसि रोई । काहु तँ कछु काज न होई ॥ ४ ॥

[अन्तमें] हृदयमें सोच-विचारकर, गौका रूप धारणकर धरती वहाँ गयी जहाँ सब देवता और मुनि [छिपे] थे । पृथ्वीने रोकर उनको अपना दुःख सुनाया, पर किसीसे कुछ काम न बना ॥ ४ ॥

छं०—सुर मुनि गंधर्वा मिलि करि सर्वा गे बिरंचि के लोका ।
संग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका ॥
ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर कछु न बसाई ।
जा करि तै दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई ॥

तब देवता, मुनि और गन्धर्व सब मिलकर ब्रह्माजीके लोकको गये । भय और शोकसे अत्यन्त व्याकुल बेचारी पृथ्वी भी गौका शरीर धारण किये हुए उनके साथ थी । ब्रह्माजी सब जान गये । उन्होंने मनमें अनुमान किया कि इसमें मेरा कुछ भी वश नहीं चलनेका । [तब उन्होंने पृथ्वीसे कहा कि—] जिसकी तू दासी है, वही अविनाशी हमारा और तुम्हारा दोनोंका सहायक है ।

सो०—धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरिपद सुमिरु ।

जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दारुन विपति ॥१८४॥

ब्रह्माजीने कहा—हे धरती ! मनमें धीरज धारण करके श्रीहरिके चरणोंका स्मरण करो । प्रभु अपने दासोंकी पीड़ाको जानते हैं, वे तुम्हारी कठिन विपत्तिका नाश करेंगे ॥ १८४ ॥

चौ०—बैठे सुर सब करहिं बिचारा । कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा ॥
पुर वैकुण्ठ जान कह कोई । कोउ कह पयनिधि वस प्रभु सोई ॥ १ ॥

सब देवता बैठकर विचार करने लगे कि प्रभुको कहाँ पावें ताकि उनके सामने पुकार (फर्याद) करें । कोई वैकुण्ठ जानेको कहता था, और कोई कहता था कि वे प्रभु क्षीरसमुद्रमें निवास करते हैं ॥ १ ॥

जाके हृदय भगति जसि प्रीति । प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीति ॥
तेहिं समाज गिरिजा में रहेऊँ । अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ ॥ २ ॥

जिसके हृदयमें जैसी भक्ति और प्रीति होती है, प्रभु वहाँ (उसके लिये) सदा उसी रीतिसे प्रकट होते हैं । हे पार्वती ! उस समाजमें मैं भी था । अवसर पाकर मैंने एक बात कही—॥ २ ॥

हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥ ३ ॥

मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान् सब जगह समानरूपसे व्यापक हैं, प्रेमसे वे प्रकट हो जाते हैं; देश, काल, दिशा, विदिशामें बताओ, ऐसी जगह कहाँ है जहाँ प्रभु न हों ॥ ३ ॥

अग जगमय सब रहित बिरागी । प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी ॥
मोर बचन सब के मन माना । साधु साधु करि ब्रह्म बखाना ॥ ४ ॥

वे चराचरमय (चराचरमें व्याप्त) होते हुए ही सबसे रहित हैं और विरक्त हैं (उनकी कही आसक्ति नहीं है); वे प्रेमसे प्रकट होते हैं, जैसे अग्नि । (अग्नि अव्यक्तरूपसे सर्वत्र व्याप्त है, परन्तु जहाँ उसके लिये अरणिमन्थनादि साधन किये जाते हैं वहाँ वह प्रकट होती है । इसी प्रकार सर्वत्र व्याप्त भगवान् भी प्रेमसे प्रकट होते हैं ।) मेरी बात सबको प्रिय लगी । ब्रह्माजीने 'साधु, साधु' कहकर बड़ाई की ॥ ४ ॥

दो०—सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर ।

अस्तुति करत जोरि कर सावधान मतिधीर ॥१८५॥

मेरी बात सुनकर ब्रह्माजीके मनमें बड़ा हर्ष हुआ, तन पुलकित हो गया, नेत्रोंसे [प्रेमके] आँसू बहने लगे । तब वे धीरे-धीरे ब्रह्माजी सावधान होकर, हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे—॥ १८५ ॥

छं०—जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता ।

गो विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता ॥

पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई ।

जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई ॥ १ ॥

हे देवताओंके स्वामी, सेवकोंको सुख देनेवाले, शरणागतकी रक्षा करनेवाले भगवान् ! आपकी जय हो ! जय हो !! हे गो-ब्राह्मणोंका हित करनेवाले, असुरोंका विनाश करनेवाले, समुद्रकी कन्या (श्रीलक्ष्मीजी) के प्रिय स्वामी ! आपकी जय हो ! हे देवता और पृथ्वीका पालन करनेवाले ! आपकी लीला अद्भुत है, उसका भेद कोई नहीं जानता । ऐसे जो स्वभावसे ही कृपालु और दीनदयालु हैं, वे ही हमपर कृपा करें ॥ १ ॥

जय जय अविनासी सब घट बासी व्यापक परमानंदा ।

अविगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा ॥

जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगतमोह मुनिबुंदा ।

निसि बासर ध्यावहिं गुनगन गावहिं जयति सच्चिदानंदा ॥ २ ॥

हे अविनाशी, सबके हृदयमें निवास करनेवाले (अन्तर्यामी), सर्वव्यापक, परम आनन्दस्वरूप, अशेष, इन्द्रियोंसे परे, पवित्रचरित्र, मायासे रहित मुकुन्द (मोक्षदाता) ! आपकी जय हो ! जय हो !! [इस लोक और परलोकके सब भोगोंसे] विरक्त तथा मोहसे सर्वथा छूटे हुए (शान्ति) मुनिवृन्द भी अत्यन्त अनुरागी (प्रेमी) बनकर जिनका रात-दिन ध्यान करते हैं और जिनके गुणोंके समूहका गान करते हैं, उन सच्चिदानन्दकी जय हो ॥ २ ॥

जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा ।

सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा ॥

जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूया ।

मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूया ॥ ३ ॥

जिन्होंने विना किसी दूसरे संगी अथवा सहायकके अकेले ही [या स्वयं अपनेको त्रिगुणरूप—ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप—बनाकर अथवा विना किसी उपादान कारणके अर्थात् स्वयं ही सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण बनकर] तीन प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न की, वे पापोंका नाश करनेवाले भगवान् हमारी सुधि लें, हम न भक्ति जानते हैं, न पूजा । जो संसारके (जन्म-मृत्युके) भयका नाश करनेवाले, मुनियोंके मनको आनन्द देनेवाले, और विपत्तियोंके समूहको नष्ट करनेवाले हैं, हम सब देवताओंके समूह मन, वचन और कर्मसे चतुराई करनेकी बान छोड़कर उन (भगवान्) की शरण [आये] हैं ॥ ३ ॥

सारद श्रुति सेवा रिषय असेषा जा कहूँ कोउ नहिं जाना ।

जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना ॥

भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा ।

मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा ॥ ४ ॥

सरस्वती, वेद, शेषजी और सम्पूर्ण ऋषि कोई भी जिनको नहीं जानते, जिन्हें दीन प्रिय हैं, ऐसा बेद

पुकारकर कहते हैं, वे ही श्रीभगवान् हमपर दया करें। हे संसाररूपी समुद्रके [मथनेके] लिये मन्दराचलरूप, सब प्रकारसे सुन्दर, गुणोंके धाम और सुखोंकी राशि नाथ ! आपके चरणकमलोंमें मुनि, सिद्ध और सारे देवता भयसे अत्यन्त व्याकुल होकर नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—जानि समय सुर भूमि सुनि वचन समेत सनेह ।

गगनगिरा गंभीर भई हरनि सोक संदेह ॥१८६॥

देवताओं और पृथ्वीको भयभीत जानकर और उनके स्नेहयुक्त वचन सुनकर शोक और सन्देहको हरनेवाली गम्भीर आकाशवाणी हुई—॥ १८६ ॥

चौ०—जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा । तुम्हहि लागि धरिहउँ नरबेसा ॥

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा । लेहउँ दिनकरबंस उदारा ॥ १ ॥

हे मुनि, सिद्ध और देवताओंके स्वामियो ! डरो मत । तुम्हारे लिये मैं मनुष्यका रूप धारण करूँगा और उदार (पवित्र) सूर्यवंशमें अंशोंसहित मनुष्यका अवतार लूँगा ॥ १ ॥

कश्यप अदिति महातप कीन्हा । तिन्ह कहूँ मैं पूरब वर दीन्हा ॥

ते दसरथ कौसल्या रूपा । कोसिलपुरीं प्रगट नरभूपा ॥ २ ॥

कश्यप और अदितिने बड़ा भारी तप किया था । मैं पहले ही उनको वर दे चुका हूँ । वे ही दशरथ और कौसल्याके रूपमें मनुष्योंके राजा होकर श्रीअयोध्यापुरीमें प्रकट हुए हैं ॥ २ ॥

तिन्ह कै गृह अवतरिहउँ जाई । रघुकुलतिलक सो चारिउ भाई ॥

नारद वचन सत्य सब करिहउँ । परम सक्ति समेत अवतरिहउँ ॥ ३ ॥

उन्हींके घर जाकर मैं रघुकुलमें श्रेष्ठ चार भाइयोंके रूपमें अवतार लूँगा । नारदके सब वचन मैं सत्य करूँगा और अपनी पराशक्तिके सहित अवतार लूँगा ॥ ३ ॥

हरिहउँ सकल भूमि गरुआई । निर्भय होहु देव समुदाई ॥

गगन ब्रह्मबानी सुनि काना । तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना ॥ ४ ॥

मैं पृथ्वीका सब भार हर लूँगा । हे देववृन्द ! निर्भय हो जाओ । आकाशमें ब्रह्म (भगवान्) की वाणीको कानसे सुनकर देवता तुरन्त लौट गये । उनका हृदय शीतल हो गया ॥ ४ ॥

तब ब्रह्माँ धरनिहि समुद्वावा । अभय भई भरोस जियँ आवा ॥ ५ ॥

तब ब्रह्माजीने पृथ्वीको समझाया । वह भी निर्भय हुई और उसके जीमें भरोसा (दाढ़स) आ गया ॥ ५ ॥

दो०—निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ ।

वानरतनु धरि धरि महि हरिपद सेवहु जाइ ॥१८७॥

देवताओंको यही सिखाकर कि वानरोंका शरीर धर-धरकर तुमलोग पृथ्वीपर जाकर भगवान्के चरणोंकी सेवा करो, ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये ॥ १८७ ॥

चौ०—गए देव सब निज निज धामा । भूमि सहित मन कहूँ बिश्रामा ॥

जो कहु आयसु ब्रह्माँ दीन्हा । हरषे देव बिलंब न कीन्हा ॥ १ ॥

सब देवता अपने-अपने लोकको गये । पृथ्वीसहित सबके मनको शान्ति मिली । ब्रह्माजीने जो कुछ आशा दी, उससे देवता बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने [वैसा करनेमें] देर नहीं की ॥ १ ॥

बनचर देह धरी छिति माहीं । अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं ॥

गिरि तरु नख आयुध सब बीरा । हरि मारग चितवहिं मतिधीरा ॥ २ ॥

पृथ्वीपर उन्होंने वानरदेह धारण की । उनमें अपार बल और प्रताप था । सभी शूरवीर थे; पर्वत, वृक्ष और नख ही उनके शस्त्र थे । वे धीर बुद्धिवाले [वानररूप देवता] भगवान्‌के आनेकी राह देखने लगे ॥ २ ॥

गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी । रहे निज निज अनीक रचि रूरी ॥

यह सब रुचिर चरित मैं भाषा । अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा ॥ ३ ॥

वे (वानर) पर्वतों और जंगलोंमें जहाँ-तहाँ अपनी-अपनी सुन्दर सेना बनाकर भरपूर छा गये । यह सब सुन्दर चरित्र मैंने कहा । अब वह चरित्र सुनो जिसे बीचहीमें छोड़ दिया था— ॥ ३ ॥

अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ । बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ ॥

धरमधुरंधर गुननिधि ग्यानी । हृदयँ भगति मति सारँगपानी ॥ ४ ॥

अवधपुरीमें रघुकुलशिरोमणि दशरथ नामके राजा हुए, जिनका नाम वेदोंमें विख्यात है । वे धर्म-धुरन्धर, गुणोंके भण्डार और ज्ञानी थे । उनके हृदयमें शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान्‌की भक्ति थी, और उनकी बुद्धि भी उन्हींमें लगी रहती थी ॥ ४ ॥

दो०—कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत ।

पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरि पद कमल विनीत ॥१८८॥

उनकी कौसल्या आदि प्रिय रानियाँ सभी पवित्र आचरणवाली थीं । वे [बड़ी] विनीत और पतिके अनुकूल [चलनेवाली] थी और श्रीहरिके चरणकमलोंमें उनका दृढ़ प्रेम था ॥ १८८ ॥

चौ०—एक बार भूपति मन माहीं । मै गलानि मोरें सुत नाहीं ॥

गुरुगृह गयउ तुरत महिपाला । चरन लागि करि बिनय बिसाला ॥ १ ॥

एक बार राजाके मनमें बड़ी ग्लानि हुई कि मेरे पुत्र नहीं है । राजा तुरंत ही गुरुके घर गये और चरणोंमें प्रणाम कर बहुत विनय की ॥ १ ॥

निज दुख सुख सब गुरहि सुनायउ । कहि बसिष्ठ बहुविधि समझायउ ॥

धरहु धीर होइहहिं सुत चारी । त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी ॥ २ ॥

राजाने अपना सारा दुःख-सुख गुरुको सुनाया । गुरु वशिष्ठजीने उन्हें बहुत प्रकारसे समझाया [और कहा—] धीरज धरो, तुम्हारे चार पुत्र होंगे, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध और भक्तोंके भयको हरनेवाले होंगे ॥ २ ॥

सुंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा । पुत्रकाम सुभ जग्य करावा ॥

भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें । प्रगटे अगिनि चरु कर लीन्हें ॥ ३ ॥

वशिष्ठजीने शृङ्गी ऋषिको बुलवाया और उनसे शुभ पुत्रकामेष्टि यज्ञ कराया । मुनिके भक्तिसहित आहुतियाँ देनेपर अग्निदेव हाथमें चरु (हविष्यान्न, खीर) लिये प्रकट हुए ॥ ३ ॥

जो बसिष्ठ कछु हृदयँ बिचारा । सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा ॥

यह हवि बाँटि देहु नृप जाई । जथा जोग जेहि भाग बनाई ॥ ४ ॥

कल्याण

अग्निका चरुदान



सृंगा रिपिहि बसिष्ठ बोलावा । पुत्रकाम सुभ जग्य करावा ॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें । प्रगटे अग्नि चरु कर लीन्हें ॥

[और दशरथसे बोले—] वशिष्ठने हृदयमें जो कुछ विचारा था, तुम्हारा वह सब काम सिद्ध हो गया । हे राजन् ! [अब] तुम जाकर इस हविष्यान्न (पायस) को, जिसको जैसा उचित हो, वैसा भाग बनाकर बाँट दो ॥ ४ ॥

दो०—तब अदृश्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ ।

परमानंद मगन नृप हरष न हृदयँ समाइ ॥१८९॥

तदनन्तर अग्निदेव सारी सभाको समझाकर अन्तर्धान हो गये । राजा परमानन्दमें मग्न हो गये, उनके हृदयमें हर्ष समाता न था ॥ १८९ ॥

चौ०—तबहिं रायँ प्रिय नारि बोलाई । कौसल्यादि तहाँ चलि आई ॥

अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा । उभय भाग आधे कर कीन्हा ॥ १ ॥

उसी समय राजाने अपनी प्यारी पत्नियोंको बुलाया । कौसल्या आदि सब [रानियाँ] वहाँ चली आयीं । राजाने [पायसका] आधा भाग कौसल्याको दिया, [और शेष] आधेके दो भाग किये ॥ १ ॥

कैकेई कहँ नृप सो दयऊ । रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ ॥

कौसल्या कैकेई हाथ धरि । दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि ॥ २ ॥

वह (उनमेंसे एक भाग) राजाने कैकेयीको दिया । शेष जो बच रहा उसके फिर दो भाग हुए और राजाने उनको कौसल्या और कैकेयीके हाथपर रखकर (अर्थात् उनकी अनुमति लेकर और इस प्रकार) उनका मन प्रसन्न करके, सुमित्राको दिया ॥ २ ॥

एहि विधि गर्भसहित सब नारी । भई हृदयँ हरपित सुख भारी ॥

जा दिन तँ हरि गर्भहिं आए । सकल लोक सुख संपति छाए ॥ ३ ॥

इस प्रकार सब स्त्रियाँ गर्भवती हुईं । वे हृदयमें बहुत हर्षित हुईं, उन्हें बड़ा सुख मिला । जिस दिनसे श्रीहरि [लीलासे ही] गर्भमें आये, सब लोकोंमें सुख और सम्पत्ति छा गयी ॥ ३ ॥

मंदिर महँ सब राजहिं रानी । सोभा शील तेज की खानी ॥

सुख जुत कलुष काल चलि गयऊ । जेहिं प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ ॥ ४ ॥

शोभा, शील और तेजकी खान [बनी हुई] सब रानियाँ महलमें सुशोभित हुईं । इस प्रकार कुछ समय सुखपूर्वक बीता और वह अवसर आ गया जिसमें प्रभुको प्रकट होना था ॥ ४ ॥

दो०—जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल ।

चर अरु अचर हर्ष जुत रामजनम सुखमूल ॥१९०॥

योग, लग्न, ग्रह, वार और तिथि सभी अनुकूल हो गये । जड़ और चेतन सब हर्षसे भर गये । [क्योंकि] श्रीरामका जन्म सुखका मूल है ॥ १९० ॥

चौ०—नौमी तिथि मधु मास पुनीता । सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता ॥

मध्यदिवस अति सीत न घामा । पावन काल लोक विश्रामा ॥ १ ॥

पवित्र चैत्रका महीना था, नवमी तिथि थी । शुक्ल पक्ष और भगवान्‌का प्रिय अभिजित् नक्षत्र था । दोपहरका समय था । न बहुत सरदी थी, न धूप (गरमी) थी । वह पवित्र समय सब लोकोंको शान्ति देनेवाला था ॥ १ ॥

शीतल मंद सुरभि बह बाऊ । हरषित सुर संतन मन चाऊ ॥

बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा । स्रवहिं सकल सरितामृतधारा ॥ २ ॥

शीतल, मन्द और सुगन्धित पवन बह रहा था । देवता हर्षित थे और संतोंके मनमें [बढ़ा] चाव था ।
वन फूले हुए थे, पर्वतोंके समूह मणियोंसे जगमगा रहे थे और सारी नदियाँ अमृतकी धारा बहा रही थीं ॥ २ ॥

सो अवसर बिरंछि जब जाना । चले सकल सुर साजि विमाना ॥

गगन विमल संकुल सुरजूथा । गावहिं गुन गंधर्व बरूथा ॥ ३ ॥

जब ब्रह्माजीने वह (भगवान्‌के प्रकट होनेका) अवसर जाना, तब [उनके समेत] सारे देवता विमान सजा-
सजाकर चले । निर्मल आकाश देवताओंके समूहोंसे भर गया । गन्धर्वोंके दल गुणोंका गान करने लगे, ॥ ३ ॥

बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी । गहगहि गगन दुंदुभी बाजी ॥

अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा । बहुबिधि लावहिं निज निज सेवा ॥ ४ ॥

और सुन्दर अञ्जलियोंमें सजा-सजाकर पुष्प बरसाने लगे । आकाशमें घमाघम नगाड़े बजने लगे । नाग,
मुनि और देवता स्तुति करने लगे और बहुत प्रकारसे अपनी-अपनी सेवा (उपहार) भेंट करने लगे ॥ ४ ॥

दो०—सुरसमूह विनती करि पहुँचे निज निज धाम ।

जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक विश्राम ॥ १९१ ॥

देवताओंके समूह विनती करके अपने-अपने लोकमें जा पहुँचे । ममस्त लोकोंको शान्ति देनेवाले,
जगदाधार या जगत्‌भरमे व्यापक प्रभु प्रकट हुए ॥ १९१ ॥

छं०—भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी ।

हरषित महतारी मुनिमनहारी अद्भुत रूप बिचारी ॥

लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी ।

भूषण वनमाला नयन बिस्ताला सोभासिंधु खरारी ॥ १ ॥

दीनोंपर दया करनेवाले, कौसल्याजीके हितकारी कृपालु प्रभु प्रकट हुए । मुनियोंके मनको हरनेवाले
उनके अद्भुत रूपका विचार करके माता हर्षसे भर गयी । नेत्रोंको आनन्द देनेवाला, मेघके समान श्याम शरीर
था; चारों भुजाओंमें अपने (खास) आयुध [धारण किये हुए] थे; [दिव्य] आभूषण और वनमाला
पहने थे; बड़े-बड़े नेत्र थे । इस प्रकार शोभाके समुद्र तथा स्वर राक्षसको मारनेवाले भगवान्
प्रकट हुए ॥ १ ॥

कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी कहि बिधि करौ अनंता ।

माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता ॥

करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता ।

सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता ॥ २ ॥

दोनों हाथ जोड़कर माता कहने लगी—हे अनन्त ! मैं किस प्रकार तुम्हारी स्तुति करूँ ! वेद
और पुराण तुमको माया, गुण और ज्ञानसे परे और परिमाणरहित वतलाने हैं । श्रुतियाँ और संतजन दया
और सुखका समुद्र, सब गुणोंका धाम कहकर जिनका गान करते हैं, वही भक्तोंपर प्रेम करनेवाले लक्ष्मीपति
भगवान् मेरे कल्याणके लिये प्रकट हुए हैं ॥ २ ॥

ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै ।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै ।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुतप्रेम लहै ॥ ३ ॥

वेद कहते हैं कि तुम्हारे प्रत्येक रीममें मायाके रचे हुए अनेकों ब्रह्माण्डोंके समूह [भरे] हैं, वे तुम मेरे गर्भमें रहे—इस हँसीकी बातके सुननेपर धीर (विवेकी) पुरुषोंकी बुद्धि भी स्थिर नहीं रहती (विचलित हो जाती है) ।

जब माताको शान उत्पन्न हुआ, तब प्रभु मुस्कुराये । वे बहुत प्रकारके चरित्र करना चाहते हैं । अतः उन्होंने [पूर्वजन्मकी] सुन्दर कथा कहकर माताको समझाया, जिससे उन्हें पुत्रका (वात्सल्य) प्रेम प्राप्त हो (भगवान्‌के प्रति पुत्रभाव हो जाय) ॥ ३ ॥

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा ।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा ॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा ।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा ॥ ४ ॥

माताकी वह बुद्धि बदल गयी, तब वह फिर बोली—हे तात ! यह रूप छोड़कर अत्यन्त प्रिय बाल-लीला करो । [मेरे लिये] यह सुख परम अनुपम होगा । [माताका] यह वचन सुनकर देवताओंके स्वामी सुजान भगवान्‌ने बालक [रूप] होकर रोना शुरू कर दिया । [तुलसीदासजी कहते हैं—] जो इस चरित्रका गान करते हैं, वे श्रीहरिका पद पाते हैं और [फिर] संसाररूपी कूपमें नहीं गिरते ॥ ४ ॥

दो०—बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार ।

निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार ॥ १९२ ॥

ब्राह्मण, गौ, देवता और संतोंके लिये भगवान्‌ने मनुष्यका अवतार लिया । वे [अज्ञानमयी, मलिन] माया और उसके गुण (सत्, रज, तम), और [बाहरी तथा भीतरी] इन्द्रियोंसे परे हैं । उनका [दिव्य] शरीर अपनी इच्छासे ही बना है [किसी कर्मबन्धनसे परवश होकर त्रिगुणात्मक भौतिक पदार्थोंके द्वारा नहीं] ॥ १९२ ॥

चो०—सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी । संभ्रम बलि आई सब रानी ॥

हरषित जहँ तहँ धाई दासी । आनँद मगन सकल पुरबासी ॥ १ ॥

बच्चेके रोनेकी बहुत ही प्यारी ध्वनि सुनकर सब रानियाँ उतावली होकर दौड़ी चली आयीं । दासियाँ हर्षित होकर जहाँ-तहाँ दौड़ीं । सारे पुरवासी आनन्दमें मग्न हो गये ॥ १ ॥

दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना । मानहुँ ब्रह्मानंद समाना ॥

परम प्रेम मन पुलक सरीरा । चाहत उठन करत मति धीरा ॥ २ ॥

राजा दशरथजी पुत्रका जन्म कानोंसे सुनकर मानो ब्रह्मानन्दमें समा गये । मनमें अतिशय प्रेम है, शरीर पुलकित हो गया । [आनन्दमें अधीर हुई] बुद्धिको धीरज देकर [और प्रेमसे क्षिणित हुए शरीरको संभालकर] वे उठना चाहते हैं ॥ २ ॥

जाकर नाम सुनत सुभ होई । मोरें गृह आवा प्रभु सोई ॥

परमानंद पूरि मन राजा । कहा बोलाइ बजावहु बाजा ॥ ३ ॥

जिनका नाम सुननेसे ही कल्याण होता है, वही प्रभु मेरे घर आये हैं ! [यह सोचकर] राजाका मन परम आनन्दसे पूर्ण हो गया । उन्होंने बाजेवालोंको बुलकर कहा कि बाजा बजाओ ॥ ३ ॥

गुर बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा । आए द्विजन सहित नृपद्वारा ॥

अनुपम बालक देखेन्हि जाई । रूपरासि गुन कहि न सिराई ॥ ४ ॥

गुरु वशिष्ठजीके पास बुलावा गया । वे ब्राह्मणोंको साथ लिये राजद्वारपर आये । उन्होंने जाकर अनुपम बालकको देखा, जो रूपकी राशि है और जिसके गुण कहनेसे समाप्त नहीं होते ॥ ४ ॥

दो०—नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह ।

हाटक धेनु बसन मनि नृप बिग्रन्ह कहँ दीन्ह ॥ १९३ ॥

फिर राजाने नान्दीमुख श्राद्ध करके सब जातकर्म संस्कार आदि किये और ब्राह्मणोंको सोना, गी, वस्त्र और मणियोंका दान दिया ॥ १९३ ॥

चौ०—ध्वज पताक तोरन पुर छावा । कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा ॥

सुमनवृष्टि अकास तें होई । ब्रह्मानंद मगन सब लोई ॥ १ ॥

ध्वजा, पताका और तोरणोंसे नगर छा गया । जिस प्रकारसे वह सजाया गया, उसका तो वर्णन ही नहीं हो सकता । आकाशसे फूलोंकी वर्षा हो रही है, सब लोग ब्रह्मानन्दमें मग्न हैं ॥ १ ॥

बुंद बुंद मिलि चलीं लोगाई । सहज सिंगार किएँ उठि धाई ॥

कनक कलस मंगल भरि थारा । गावत पैठहिं भूपदुआरा ॥ २ ॥

झिरियाँ झुंड-की-झुंड मिलकर चलीं । स्वाभाविक शृंगार किये ही, वे उठकर दौड़ीं । सोनेके कलश लेकर और थालोंमें मङ्गल द्रव्य भरकर गाती हुई राजद्वारमें प्रवेश करती हैं ॥ २ ॥

करि आरति नेवछावरि करहीं । बार बार सिसुचरनन्हि परहीं ॥

मागध सूत बंदिगन गायक । पावन गुन गावहिं रघुनायक ॥ ३ ॥

वे आरती करके निछावर करती हैं और बार-बार बच्चेके चरणोंपर गिरती हैं । मागध, सूत, बन्दीजन और गवैये रघुकुलके स्वामीके पवित्र गुणोंका गान करते हैं ॥ ३ ॥

सर्वसदान दीन्ह सब काहूँ । जेहिं पावा राखा नहिं ताहूँ ॥

मृगमद चंदन कुंकुम कीचा । मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा ॥ ४ ॥

सब किसीने अपना सर्वस्व दान कर दिया । जिसने पाया, उसने भी नहीं रक्खा । [नगरकी] सभी गलियोंके बीच-बीचमें कस्तूरी, चन्दन और केसरकी कीच मच गयी ॥ ४ ॥

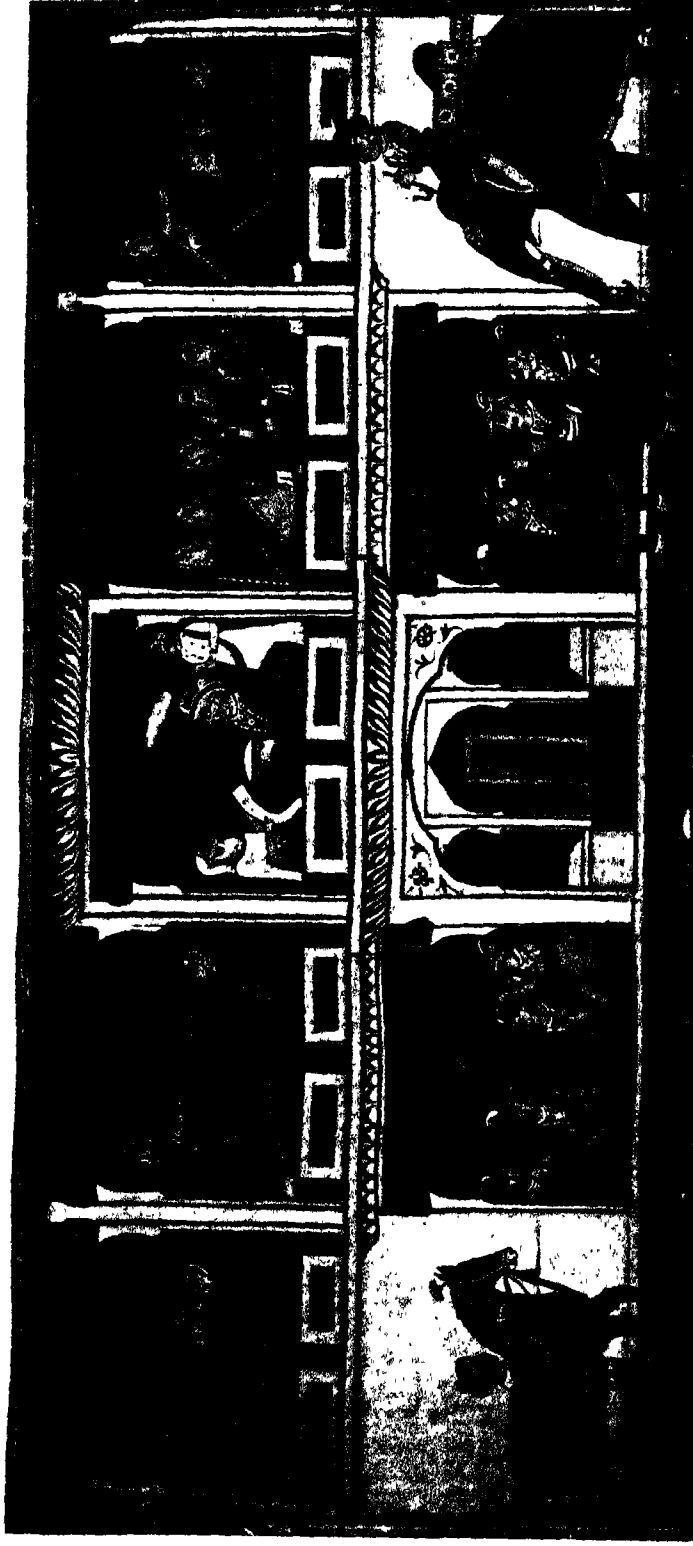
दो०—गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटे सुषमाकंद ।

हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर बृंद ॥ १९४ ॥

घर-घर मंगलमय बधावा बजने लगा, क्योंकि शोभाके मूल भगवान् प्रकट हुए हैं । नगरके स्त्री-पुरुषोंके झुंड-के-झुंड जहाँ-तहाँ आनन्दमग्न हो रहे हैं ॥ १९४ ॥

कल्याण

जन्मोत्सव



कैकयसुता सुमित्रा दाऊ । सुंदर सुन जनमत भई ओऊ ॥
वह सुख संपति समय समाजा । कहि न सकइ सारन अहिगजा ॥

[व० हनुमान शर्मोजीकी कृपासे प्राप्त]

[पृष्ठ २०३]

चौ०—कैकयसुता सुमित्रा दोऊ । सुंदर सुत जनमत भई ओऊ ॥

वह सुख संपत्ति समय समाजा । कहि न सकइ सारद अहिराजा ॥ १ ॥

कैकेयी और सुमित्रा इन दोनोंने भी सुन्दर पुत्रोंको जन्म दिया । उस सुख, सम्पत्ति, समय और समाजका वर्णन सरस्वती और सपेंकि राजा शेषजी भी नहीं कर सकते ॥ १ ॥

अवधपुरी सोहइ एहि भाँती । प्रभुहि मिलन आई जनु राती ॥

देखि भानु जनु मन सकुचानी । तदपि बनी संध्या अनुमानी ॥ २ ॥

अवधपुरी इस प्रकार सुशोभित हो रही है मानो रात्रि प्रभुसे मिलने आयी हो, और सूर्यको देखकर मानो मनमें सकुचा गयी हो, परन्तु फिर भी मनमें विचारकर वह मानो सन्ध्या बन [कर रह] गयी हो ॥ २ ॥

अगर धूप बहु जनु अँधिआरी । उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी ॥

मंदिर मनि समूह जनु तारा । नृपगृह कलस सो इंदु उदारा ॥ ३ ॥

अगरकी धूपका बहुत-सा धुआँ मानो [सन्ध्याका] अन्धकार है और जो अबीर उड़ रहा है, वह उसकी ललाई है । महलोंमें जो मणियोंके समूह हैं, वे मानो तारागण हैं । राजमहलका जो कलश है, वही मानो श्रेष्ठ चन्द्रमा है ॥ ३ ॥

भवन वेदधुनि अति मृदु बानी । जनु खगमुखर समयँ जनु सानी ॥

कौतुक देखि पतंग भुलाना । एक मास तेई जात न जाना ॥ ४ ॥

राजभवनमें जो अतिकोमल वाणीसे वेदध्वनि हो रही है, वही मानो समयके सुखसे सनी हुई पक्षियोंकी चहचहाहट है । यह कौतुक देखकर सूर्य भी [अपनी चाल] भूल गये । एक महाना उन्होंने जाता हुआ न जाना (अर्थात् उन्हें एक महीना वही बीत गया) ॥ ४ ॥

दो०—मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ ।

रथ समेत रवि थाकेउ निसा कवन विधि होइ ॥ १९५ ॥

महीनेभरका दिन हो गया । इस रहस्यको कोई नहीं जानता । सूर्य अपने रथसहित वहीं रुक गये, फिर रात किस तरह होती ॥ १९५ ॥

चौ०—यह रहस्य काहूँ नहिं जाना । दिनमनि चले करत गुनगाना ॥

देखि महोत्सव सुर मुनि नागा । चले भवन बरनत निज भागा ॥ १ ॥

यह रहस्य किसीने नहीं जाना । सूर्यदेव [भगवान् श्रीरामजीका] गुणगान करते हुए चले । यह महोत्सव देखकर देवता, मुनि और नाग अपने भाग्यकी सराहना करते हुए अपने-अपने घर चले ॥ १ ॥

औरउ एक कहउँ निज चोरी । सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी ॥

काकभुसुंडि संग हम दोऊ । मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ ॥ २ ॥

हे पार्वती ! तुम्हारी बुद्धि [श्रीरामजीके चरणोंमें] बहुत दृढ़ है, इसलिये मैं और भी अपनी एक चोरी (छिपाव) की बात कहता हूँ, सुनो । काकभुसुण्डि और मैं दोनों वहाँ साथ-साथ थे, परन्तु मनुष्यरूपमें होनेके कारण हमें कोई जान न सका ॥ २ ॥

परमानंद प्रेमसुख फूले । बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले ॥

यह सुभ चरित जान पै सोई । कृपा राम कै जापर होई ॥ ३ ॥

परम आनन्द और प्रेमके सुखमें फूले हुए हम दोनों मगन मनसे (मस्त हुए) गलियोंमें [तन-मनकी सुधि] भूले हुए फिरते थे । परन्तु यह शुभ चरित्र वही जान सकता है जिसपर श्रीरामजीकी कृपा हो ॥ ३ ॥

तेहि अवसर जो जेहि बिधि आवा । दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा ॥

गज रथ तुरग हेम गो हीरा । दीन्ह नृप नानाबिधि चीरा ॥ ४ ॥

उस अवसरपर जो जिस प्रकार आया, और जिसके मनको जो अच्छा लगा, राजाने उसे वही दिया । हाथी, रथ, घोड़े, सोना, गौएँ, हीरे और भौँति-भौँतिके वस्त्र राजाने दिये ॥ ४ ॥

दो०—मन संतोषे सबन्हि के जहँ तहँ देहिं असीस ।

सकल तनय चिर जीवहुँ तुलसिदास के ईस ॥ १९६ ॥

राजाने सबके मनको सन्तुष्ट किया । [इसीसे] सब लोग जहाँ-तहाँ आशीर्वाद दे रहे थे कि तुलसीदासके स्वामी सब पुत्र (चारों राजकुमार) चिरजीवी (दीर्घायु) हों ॥ १९६ ॥

चो०—कछुक दिवस बीते पहि भौँती । जात न जानिअ दिन अरु राती ॥

नामकरण कर अवसर जानी । भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी ॥ १ ॥

इस प्रकार कुछ दिन बीत गये । दिन और रात जाते हुए जान नहीं पड़ते । तब नामकरण संस्कारका समय जानकर राजाने शानी मुनि श्रीवशिष्ठजीको बुला भेजा ॥ १ ॥

करि पूजा भूपति अस भाषा । धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा ॥

इन्ह के नाम अनेक अनूपा । मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा ॥ २ ॥

मुनिकी पूजा करके राजाने कहा—हे मुनि ! आपने मनमें जो विचार रखे हों, वे नाम रखिये । [मुनिने कहा—] हे राजन् ! इनके अनेक अनुपम नाम हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कहूँगा ॥ २ ॥

जो आनंदसिंधु सुखरासी । सीकर तें त्रैलोक सुपासी ॥

सो सुखधाम राम अस नामा । अखिल लोक दायक बिभ्रामा ॥ ३ ॥

ये जो आनन्दके समुद्र और सुखकी राशि हैं, जिस [आनन्दसिंधु] के एक कणसे तीनों लोक सुखी होते हैं, उन [आपके सबसे बड़े पुत्र] का नाम 'राम' है, जो सुखका भवन और सम्पूर्ण लोकोंको शान्ति देनेवाला है ॥ ३ ॥

बिस्व भरन पोषन कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ॥

जाके सुमिरन तें रिपु नासा । नाम सत्रुहन बेद प्रकासा ॥ ४ ॥

जो संसारका भरण-पोषण करते हैं, उन [आपके दूसरे पुत्र] का नाम 'भरत' होगा । जिनके स्मरण-मात्रसे शत्रुका नाश होता है, उनका वेदोंमें प्रसिद्ध 'शत्रुघ्न' नाम है ॥ ४ ॥

दो०—लच्छनधाम रामप्रिय सकल जगत आधार ।

गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार ॥ १९७ ॥

जो शुभ लक्षणोंके धाम, श्रीरामजीके प्यारे और सारे जगत्के आधार हैं, गुरु वशिष्ठजीने उनका 'लक्ष्मण' ऐसा श्रेष्ठ नाम रखा ॥ १९७ ॥

चो०—घरे नाम गुर हृदयँ बिचारी । बेदतत्व नृप तब सुत चारी ॥

मुनि धन जन सरबस सिव प्राणा । बाल केलि रस तोहिं सुख माना ॥ १ ॥



छँगन मँगन अँगना खेलत चारु चारयो भाई ।

सानुज भरत लाल लखन राम लोने लोने लरिका लखि मुदित मातुसमुदाई ॥१॥

(गीता०)

गुरुजीने हृदयमें विचारकर ये नाम रक्खे [और कहा—] हे राजन् ! तुम्हारे चारों पुत्र वेदके तत्त्व (साक्षात् परात्पर भगवान्) हैं । जो मुनियोंके धन, भक्तोंके सर्वस्व और शिवजीके प्राण हैं, वे [इस समय तुमलोगोंके प्रेमवश] बाललीलाके रसमें सुख मान रहे हैं ॥ १ ॥

बारेहि ते निज हित पति जानी । लछिमन राम चरन रति मानी ॥

भरत शत्रुघ्न दूनउ भाई । प्रभु सेवक जसि प्रीति बढ़ाई ॥ २ ॥

बचपनसे ही श्रीरामचन्द्रजीको अपना परम हितैषी स्वामी जानकर लक्ष्मणजीने उनके चरणोंमें प्रीति जोड़ ली । भरत और शत्रुघ्न दोनों भाइयोंमें स्वामी और सेवककी जिस प्रीतिकी प्रशंसा है वैसी प्रीति हो गयी ॥ २ ॥

स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी । निरखहिं छबि जननीं तन तोरी ॥

चारिउ सील रूप गुन धामा । तदपि अधिक सुखसागर रामा ॥ ३ ॥

श्याम और गौर शरीरवाली दोनों सुन्दर जोड़ियोंकी शोभाको देखकर माताएँ तृण तोड़ती हैं [जिसमें दीठ न ल्या जाय] । यों तो चारों ही पुत्र शील, रूप और गुणके धाम हैं, तो भी सुखके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी सबसे अधिक हैं ॥ ३ ॥

हृदयँ अनुग्रह इंदु प्रकासा । सूषत किरन मनोहर हासा ॥

कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना । मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना ॥ ४ ॥

उनके हृदयमें कृपारूपी चन्द्रमा प्रकाशित है । [उनकी] मनको हरनेवाली हँसी उस [कृपाचन्द्र] की किरणोंको सूचित करती है । कभी गोदमें [लेकर] और कभी उत्तम पालनेमें [लिटाकर] माता 'प्यारे ललना !' कहकर दुलार करती है ॥ ४ ॥

दो०—व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत विनोद ।

सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या केँ गोद ॥ १९८ ॥

जो सर्वव्यापक, निरञ्जन, निर्गुण, विनोदरहित और अजन्मा ब्रह्म हैं, वही प्रेम और भक्तिके बंध कौसल्याजीकी गोदमें [खेल रहे] हैं ॥ १९८ ॥

चौ०—काम कोटि छबि स्याम सरीरा । नील कंज बारिद गंभीरा ॥

अरुन चरणपंकज नख जोती । कमलदलन्हि बैठे जनु मोती ॥ १ ॥

उनके नील कमल और गम्भीर (जलसे भरे हुए) मेघके समान श्याम शरीरमें करोड़ों कामदेवोंकी शोभा है । लाल-लाल चरणकमलोंके नखोंकी [शुभ्र] ज्योति ऐसी मालूम होती है जैसे [लाल] कमलके पत्तोंपर मोती स्थिर हो गये हों ॥ १ ॥

रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे । नूपुरधुनि सुनि मुनि मन मोहे ॥

कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा । नाभि गभीर जान जेहिं देखा ॥ २ ॥

[चरणतलोंमें] वज्र, ध्वजा और अङ्कुशके चिह्न शोभित हैं । नूपुर (पैजनी) की ध्वनि सुनकर मुनियोंका भी मन मोहित हो जाता है । कमरमें करधनी और पेटपर तीन रेखाएँ (त्रिवली) हैं । नाभिकी गम्भीरताको तो वही जानते हैं जिन्होंने उसे देखा है ॥ २ ॥

भुज बिसाल भूषण जुत भूरी । हियँ हरिनख अति सोभा रूरी ॥

उर मनिहार पदिक की सोभा । बिप्रचरण देखत मन लोभा ॥ ३ ॥

बहुत-से आभूषणोंसे सुशोभित विशाल भुजाएँ हैं। हृदयपर बाधके नखकी बहुत ही निराली छटा है। छातीपर रत्नोंसे युक्त मणियोंके हारकी शोभा और नाक्षत्र (भृगु) के चरणचिह्न देखते ही मन खुभा जाता है ॥ ३ ॥

कंठ कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई ॥
दुइ दुइ दसन अधर भरनारे। नासा तिलक को बरनै पारे ॥ ४ ॥

कण्ठ शङ्खके समान [तीन रेखाओंसे सुशोभित] है और ठोड़ी बहुत ही सुन्दर है। मुखपर असंख्य कामदेवोंकी छटा छा रही है। दो-दो सुन्दर दँतुलियाँ हैं, लाल-लाल ओठ हैं। नासिका और तिलकके सौन्दर्यका तो वर्णन ही कौन कर सकता है ॥ ४ ॥

सुंदर धवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला ॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे ॥ ५ ॥

सुन्दर कान और बहुत ही सुन्दर गाल हैं। मधुर तोतले शब्द बहुत ही प्यारे लगते हैं। जन्मके समयसे रक्खे हुए चिकने और घुँघराले बाल हैं, जिनको माताने बहुत प्रकारसे बनाकर सँवार दिया है ॥ ५ ॥

पीत झगुलिआ तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई ॥
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेवा। सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा ॥ ६ ॥

शरीरपर पीली झँगुली पहनायी हुई है। उनका घुटनों और हाथोंके बल चलना मुझे बहुत ही प्यारा लगता है। उनके रूपका वर्णन वेद और शेषजी भी नहीं कर सकते, उसे वही जानता है जिसने कभी स्वप्नमें भी देखा हो ॥ ६ ॥

दो०—सुख संदोह मोहपर ग्यान गिरा गोतीत।

दंपति परम प्रेम बस कर सिसुचरित पुनीत ॥ १९९ ॥

जो सुखके पुंज, मोहसे परे, तथा ज्ञान, याणी और इन्द्रियोंसे अतीत हैं, वे भगवान् दशरथ-कौसल्याके अत्यन्त प्रेमके वश होकर पवित्र बाललीला करते हैं ! ॥ १९९ ॥

चौ०—एहि बिधि राम जगत पितु माता। कोसलपुर बासिन्ह सुखदाता ॥
जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी। तिन्ह की यह गति प्रगट भवानी ॥ १ ॥

इस प्रकार [सम्पूर्ण] जगतके माता-पिता श्रीरामजी अवधपुरके निवासियोंको सुख देते हैं। जिन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रीति जोड़ी है, हे भवानी ! उनकी यह प्रत्यक्ष गति है [कि भगवान् उनके प्रेमवश बाललीला करके उन्हें आनन्द दे रहे हैं] ॥ १ ॥

रघुपति विमुख जतन कर कोरी। कवन सकइ भवबंधन छोरी ॥
जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सों भय भाखे ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजीसे विमुख रहकर मनुष्य चाहे करोड़ों उपाय करे, परन्तु उसका संसारबन्धन कौन छुड़ा सकता है। जिस मायाने सब चराचर जीवोंको अपने वश कर रक्खा है, वह [माया] भी प्रभुसे भय खाती है ॥ २ ॥

भृकुटिबिलास नचावइ ताही। अस प्रभु छाड़ि भजिअ कहु काही ॥
मन कम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिदहिं रघुराई ॥ ३ ॥

भगवान् उस मायाको भौंहके इशारेपर नचाते हैं। ऐसे प्रभुको छोड़कर कहो, [और] किसका भजन किया जाय। मन, बचन और कर्मसे, चतुराई छोड़कर, भजते ही श्रीरघुनाथजी कृपा करेंगे ॥ ३ ॥

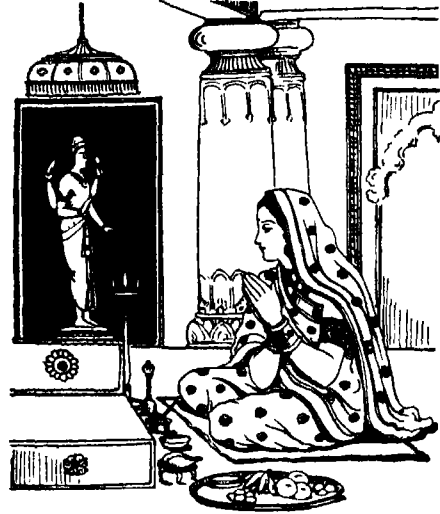
कल्याण

(१) रामजी पालनेमें



एक बार जननीं अन्हवाए ।
करि सिंगार पलनाँ पौढ़ाए ॥
[पृष्ठ २०७]

(२) इष्टदेवकी पूजा



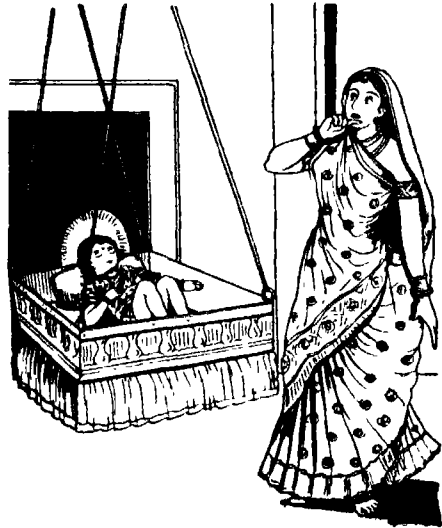
करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा ।
[पृष्ठ २०७]

(३) नैवेद्य-स्वीकार



बहुरि मातु तहवाँ चलि आई ।
भोजन करत देख सुत जाई ॥
[पृष्ठ २०७]

(४) माताका आश्चर्य



बहुरि आई देखा सुत सोई ।
हृदय कंठ मन धीर न होई ॥
[पृष्ठ २०७]

एहि बिधि सिसुविनोद प्रभु कीन्हा । सकल नगरवासिन्ह सुख दीन्हा ॥

लै उछंग कबहुँक हलरावै । कबहुँ पालनै घालि झुलावै ॥ ४ ॥

इस प्रकारसे प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने बालक्रीड़ा की और समस्त नगरनिवासियोंको सुख दिया । कौसल्याजी कभी उन्हें गोदमें लेकर हिलाती-झुलाती और कभी पालनेमें लियाकर झुलाती थीं ॥ ४ ॥

दो०—प्रेममगन कौसल्या निसि दिन जात न जान ।

सुत सनेह बस माता बालचरित कर गान ॥ २०० ॥

प्रेममें मग्न कौसल्याजी रात और दिनका बीतना नहीं जानती थीं । पुत्रके स्नेहवश माता उनके बाल-चरित्रोंका गान किया करतीं ॥ २०० ॥

चौ०—एक बार जननीं अन्हबाए । करि सिंगार पलनाँ पौढ़ाए ॥

निज कुल इष्टदेव भगवाना । पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना ॥ १ ॥

एक बार माताने श्रीरामचन्द्रजीको स्नान कराया और शृंगार करके पालनेपर पौढ़ा दिया । फिर अपने कुलके इष्टदेव भगवान्की पूजाके लिये स्नान किया ॥ १ ॥

करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा । आपु गई जहँ पाक बनावा ॥

बहुरि मातु तहवाँ चलि आई । भोजन करत देख सुत जाई ॥ २ ॥

पूजा करके नैवेद्य चढ़ाया, और स्वयं वहाँ गयी जहाँ रसोई बनायी गयी थी । फिर माता वहीं (पूजाके स्थानमें) लौट आयी, और वहाँ आनेपर पुत्रको [इष्टदेव भगवान्के लिये चढ़ाये हुए नैवेद्यका] भोजन करते देखा ॥ २ ॥

गै जननी सिसु पहिं भयभीता । देखा बाल तहाँ पुनि सूता ॥

बहुरि आइ देखा सुत सोई । हृदयँ कंप मन धीर न होई ॥ ३ ॥

माता भयभीत होकर (पालनेमें सोया था, यहाँ किसने लाकर बैठा दिया, इस बातसे डरकर) पुत्रके पास गयी, तो वहाँ बालकको सोया हुआ देखा । फिर [पूजास्थानमें लौटकर] देखा कि वही पुत्र वहाँ [भोजन कर रहा] है । उनके हृदयमें कंप होने लगा और मनको धीरज नहीं होता ॥ ३ ॥

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा । मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा ॥

देखि राम जननी अकुलानी । प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी ॥ ४ ॥

[वह सोचने लगी कि—] यहाँ और वहाँ मैंने दो बालक देखे । यह मेरी बुद्धिका भ्रम है या और कोई विशेष कारण है ? प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने माताको घबड़ायी हुई देखकर मधुर मुस्कानसे हँस दिया ॥ ४ ॥

दो०—देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड ।

रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥ २०१ ॥

फिर उन्होंने माताको अपना अखण्ड अद्भुत रूप दिखलाया, जिसके एक-एक रोममें करोड़ों ब्रह्माण्ड लगे हुए हैं ॥ २०१ ॥

चौ०—अगनित रषि ससि सिव चतुरानन । बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन ॥

काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ । सोउ देखा जो सुना न काऊ ॥ १ ॥

अगणित सूर्य, चन्द्रमा, शिव, ब्रह्मा, बहुतसे पर्वत, नदियाँ, समुद्र, पृथ्वी, वन, काल, कर्म, गुण, ज्ञान और स्वभाव देखे, और वे पदार्थ भी देखे जो कभी सुने भी न थे ॥ १ ॥

देखी माया सब बिधि गाढ़ी । अति समीत जोरें कर ठाढ़ी ॥
देखा जीव नचावइ जाही । देखी भगति जो छोरइ ताही ॥ २ ॥

सब प्रकारसे बलवती मायाको देखा कि वह [भगवान्‌के सामने] अत्यन्त भयभीत हाथ जोड़े खड़ी है । जीवको देखा, जिसे वह माया नचाती है, और [फिर] भक्तिको देखा, जो उस जीवको [मायासे] छुड़ा देती है ॥ २ ॥

तन पुलकित मुख बचन न आया । नयन मूढ़ि खरननि सिर नावा ॥
बिसमयवन्त देखि महतारी । भय बहुरि सिसुरूप खरारी ॥ ३ ॥

[माताका] शरीर पुलकित हो गया । मुखसे वचन नहीं निकलता । तब आँखें मूँदकर उसने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें स्तिर नवाया । माताको आश्चर्यचकित देखकर खरके शत्रु श्रीरामजी फिर बालरूप हो गये ॥ ३ ॥

अस्तुति करि न जाइ भय माना । जगतपिता मैं सुत करि जाना ॥
हरि जननी बहुबिधि समुझाई । यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई ॥ ४ ॥

[मातासे] स्तुति भी नहीं की जाती । वह डर गयी कि मैंने जगत्पिता परमात्माको पुत्र करके जाना । श्रीहरिने माताको बहुत प्रकारसे समझाया [और कहा]—हे माता ! सुनो, यह बात कहींपर न कहना ॥ ४ ॥

दो०—बार बार कौसल्या विनय करइ कर जोरि ।

अब जनि कबहुँ व्यापै प्रभु मोहि माया तोरि ॥२०२॥

कौसल्याजी बार-बार हाथ जोड़कर विनय करती हैं कि हे प्रभो ! मुझे आपकी माया अब कभी न व्यापे ॥२०२॥

चौ०—बालचरित हरि बहुबिधि कीन्हा । अति अनन्द दासन्ह कहँ दीन्हा ॥
कछुक काल बीतै सब भाई । बड़े भय परिजन सुखदाई ॥ १ ॥

भगवान्‌ने बहुत प्रकारसे बाललीलाएँ कीं, और अपने सेवकोंको अत्यन्त आनन्द दिया । कुछ समय बीतनेपर चारों भाई बड़े होकर कुटुम्बियोंको सुख देनेवाले हुए ॥ १ ॥

चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई । बिप्रन्ह पुनि दक्षिणा बहु पाई ॥
परम मनोहर चरित अपारा । करत फिरत चारिउ सुकुमारा ॥ २ ॥

तब गुरुजीने जाकर चूड़ाकर्म संस्कार किया । ब्राह्मणोंने फिर बहुत-सी दक्षिणा पायी । चारों सुन्दर राजकुमार बड़े ही मनोहर अपार चरित्र करते फिरते हैं ॥ २ ॥

मन क्रम बचन अगोचर जोई । दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई ॥
भोजन करत बोल जब राजा । नहिं आवत तजि बालसमाजा ॥ ३ ॥

जो मन, वचन और कर्मसे अगोचर हैं, वही प्रभु दशरथजीके आँगनमें विचर रहे हैं । भोजन करनेके समय जब राजा बुलाते हैं, तब वे अपने बालस्वजाओंके समाजको छोड़कर नहीं आते ॥ ३ ॥

कौसल्या जब बोलन जाई । उमुकु उमुकु प्रभु चलहिं पराई ॥
निगम नेति सिब अंत न पावा । ताहि धरै जननी हठि धावा ॥ ४ ॥

कौसल्याजी जब बुलाने जाती हैं, तब प्रभु उमुक-उमुक भाग चलते हैं। जिनका वेद 'नेति' (इतना ही नहीं) कहकर निरूपण करते हैं, और शिवजीने जिनका अन्त नहीं पाया, माता उन्हें हटपूर्वक पकड़नेके लिये दौड़ती हैं ॥ ४ ॥

धूसर धूरि भर्ने तनु आए । भूपति बिहसि गोद बैठाए ॥ ५ ॥

वे शरीरमें धूल लपेटे हुए आते हैं और राजा हँसकर उन्हें गोदमें बैठा लेते हैं ॥ ५ ॥

दो०—भोजन करत चपल चित इत उत अवसर पाइ ।

भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ ॥२०३॥

भोजन करते हैं, पर चित्त चञ्चल है। अवसर पाकर मुँहमें दही-भात लपटाये किलकारी मारते हुए इधर-उधर भाग चलते हैं ॥२०३॥

चौ०—बालचरित अति सरल सुहाए । सारद सेप संभु श्रुति गाए ॥

जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता । ते जन बन्धित किए बिधाता ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी बहुत ही सरल (भोली) और सुन्दर (मनभावनी) बाललीलाओंका सरस्वती, शोप-जी, शिवजी और वेदांने गान किया है। जिनका मन इन लीलाओंमें अनुरक्त नहीं हुआ, बिधाताने उन मनुष्योंको बन्धित कर दिया (नितान्त भाग्यहीन बनाया) ॥ १ ॥

भए कुमार जबहिं सब भ्राता । दीन्ह जेनऊ गुरु पितु माना ॥

गुरुगृह गए पढ़न रघुराई । अल्प काल विद्या सब आई ॥ २ ॥

ज्यों ही सब भाई कुमारावस्थाके हुए, त्यों ही गुरु, पिता और माताने उनका यशोपवीत-संस्कार कर दिया। श्रीरघुनाथजी [भाइयोंसहित] गुरुके घरमें विद्या पढ़ने गये और थोड़े ही समयमें उनको सब विद्याएँ आ गयी ॥ २ ॥

जाकी सहज स्वास श्रुति चारी । सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी ॥

बिद्या विनय निपुन गुन सीला । खेलहिं खेल सकल नृपलीला ॥ ३ ॥

चारों वेद जिनके स्वाभाविक श्रास हैं, वे भगवान् पढ़ें, यह बड़ा कौतुक (अचरज) है। चारो भाई विद्या, विनय, गुण और शीलमें [बड़े] निपुण हैं और सब राजाओंकी लीलाओंके ही खेल खेलते हैं ॥ ३ ॥

करतल बान धनुष अति सोहा । देखत रूप चराचर मोहा ॥

जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई । थकित होहिं सब लोग लुगाई ॥ ४ ॥

हाथोंमें बाण और धनुष बहुत ही शोभा देते हैं। रूप देखते ही चराचर (जड़-चेतन) मोहित हो जाते हैं। वे सब भाई जिन गलियोंमें खेलते [हुए निकलते] हैं, उन गलियोंके सभी स्त्री-पुरुष उनको देखकर स्नेहसे शिथिल हो जाते हैं अथवा टिठककर रह जाते हैं ॥ ४ ॥

दो०—कोसलपुर बासी नर नारि बृद्ध अरु बाल ।

प्रानहु ते प्रिय लागत सब कहूँ राम कृपाल ॥२०४॥

कोसलपुरके रहनेवाले स्त्री, पुरुष, बूढ़े और बालक सभीको कृपालु श्रीरामचन्द्रजी प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय लगते हैं ॥२०४॥

चौ०—बन्धु सखा सँग लेहिं बोलार्ध । बन मृगया नित खेलहिं जाई ॥

पावन मृग मारहिं जियँ जानी । दिन प्रति नृपहिं देखावहिं आनी ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजी भाइयों और इष्ट-मित्रोंको बुलकर साथ ले लेते हैं और नित्य वनमें जाकर शिकार खेलते हैं। मनमें पवित्र समझकर मृगोंको मारते हैं और प्रतिदिन लकर राजा (दशरथजी) को दिखलते हैं ॥ १ ॥

जे मृग रामबान के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे ॥

अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता भग्या अनुसरहीं ॥ २ ॥

जो मृग श्रीरामजीके बाणसे मारे जाते थे, वे शरीर छोड़कर देवलोकको चले जाते थे। श्रीरामचन्द्रजी अपने छोटे भाइयों और सखाओंके साथ भोजन करते हैं और माता-पिताकी आज्ञाका पालन करते हैं ॥ २ ॥

जेहि बिधि सुखी होहिं पुरलोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा ॥

वेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ॥ ३ ॥

जिस प्रकार नगरके लोग सुखी हों, कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी वही संयोग (लीला) करते हैं। वे मन लगाकर वेद-पुराण सुनते हैं और फिर स्वयं छोटे भाइयोंको समझाकर कहते हैं ॥ ३ ॥

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥

आयसु मागि करहिं पुरकाजा। देखि चरित हरषइ मन राजा ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजी प्रातःकाल उठकर माता, पिता और गुरुको मस्तक नवाते हैं, और आज्ञा लेकर नगरका काम करते हैं। उनके चरित्र देख-देखकर राजा मनमें बड़े हर्षित होते हैं ॥ ४ ॥

दो०—व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।

भगत हेतु नानाविधि करत चरित्र अनूप ॥ २०५ ॥

जो व्यापक, अकल (बुद्धिसे अगम्य), इच्छारहित, अजन्मा और निर्गुण हैं, जिनका न नाम है न रूप, वही भगवान् भक्तोंके लिये नाना प्रकारके अनुपम (अलौकिक) चरित्र करते हैं ॥ २०५ ॥

चौ०—यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिलि कथा सुनहु मन लाई ॥

बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी ॥ १ ॥

यह सब चरित्र मैंने गाकर कहा। अब आगेकी कथा मन लगाकर सुनो। शानी महामुनि विश्वामित्रजी वनमें शुभ आश्रम (पवित्र स्थान) जानकर बसते थे, ॥ १ ॥

जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहि डरहीं ॥

देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं ॥ २ ॥

जहाँ वे मुनि जप, यज्ञ और योग करते थे, परन्तु मारीच और सुबाहुसे बहुत डरते थे। यज्ञ देखते ही राक्षस दौड़ पड़ते थे और उपद्रव मचाते थे, जिससे मुनि [बहुत] दुःख पाते थे ॥ २ ॥

गाधितनय मन चिन्ता व्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी ॥

तब मुनिबर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महिभारा ॥ ३ ॥

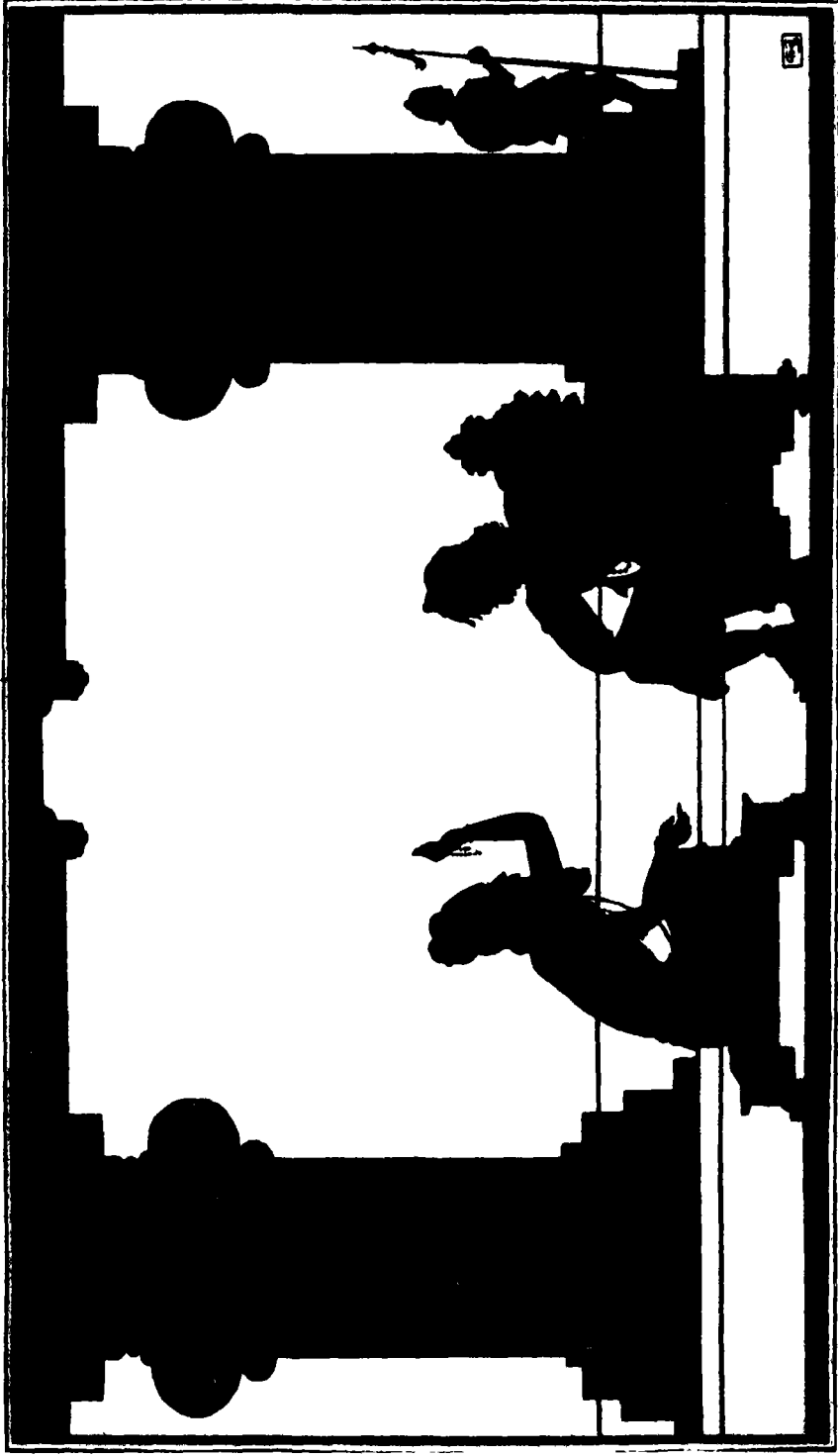
गांधिके पुत्र विश्वामित्रजीके मनमें चिन्ता छा गयी कि ये पापी राक्षस भगवान्के [मारे] बिना न मरेंगे। तब श्रेष्ठ मुनिने मनमें विचार किया कि प्रभुने पृथ्वीका भार हरनेके लिये अवतार लिया है ॥ ३ ॥

पहँ मिस देखौ पद जाई। करि बिनती आनौ दोउ भाई ॥

म्यान बिराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना ॥ ४ ॥

कल्याण

दशरथ और विश्वामित्र



सुनि राजा अति अप्रिय बानी । हृदय कंप मुखदुनि कुमुलानी ॥

इसी बहाने जाकर मैं उनके चरणोंका दर्शन करूँ और विनती करके दोनों भाइयोंको ले आऊँ ।
[अहा !] जो ज्ञान, वैराग्य और सब गुणोंके धाम हैं, उन प्रभुको मैं नेत्र भरकर देखूँगा ॥ ४ ॥

दो०—बहुविधि करत मनोरथ जात लागि नहिं बार ।

करि मञ्जन सरऊ जल गए भूपदरबार ॥२०६॥

बहुत प्रकारसे मनोरथ करते हुए जानेमें देर नहीं लगी । सरयूजीके जलमें स्नान करके वे राजाके दरवाजेपर पहुँचे ॥ २०६ ॥

चौ०—मुनि आगमन सुना जब राजा । मिलन गयउ लै बिप्रसमाजा ॥

करि दंडवत मुनिहि सनमानी । निज आसन बैठारेन्हि आनी ॥ १ ॥

राजाने जब मुनिका आना सुना, तब वे ब्राह्मणोंके समाजको साथ लेकर मिलने गये, और दण्डवत् करके मुनिका सम्मान करते हुए उन्हें लेकर अपने आसनपर बैठाया ॥ १ ॥

चरन पखारि कीन्हि अति पूजा । मो सम आजु धन्य नहिं दूजा ॥

बिबिध भाँति भोजन करवावा । मुनिबर हृदयँ हरष अति पावा ॥ २ ॥

चरणोंको धोकर बहुत पूजा की और कहा—मेरे समान धन्य आज दूसरा कोई नहीं है । फिर अनेक प्रकारके भोजन करवाये, जिससे श्रेष्ठ मुनिने अपने हृदयमें बहुत ही हर्ष प्राप्त किया ॥ २ ॥

पुनि चरननि मेले सुत चारी । राम देखि मुनि देह बिसारी ॥

भय मगन देखत मुखसोभा । जनु चकोर पूरन ससि लोभा ॥ ३ ॥

फिर राजाने चारों पुत्रोंको मुनिके चरणोंपर डाल दिया (उनसे प्रणाम कराया) । श्रीरामचन्द्रजीको देखकर मुनि अपनी देहकी मुधि भूल गये । वे श्रीरामजीके मुखकी शोभा देखते ही ऐसे मग्न हो गये, मानो चक्रोर पूर्ण चन्द्रमाको देखकर लुभा गया हो ॥ ३ ॥

बब मन हरषि बचन कह राऊ । मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ ॥

केहि कारन आगमन तुम्हारा । कहहु सो करत न लावउं बारा ॥ ४ ॥

तब राजाने मनमें हर्षित होकर ये वचन कहे—हे मुनि ! ऐसी कृपा तो आपने कभी नहीं की । आज किस कारणसे आपका शुभागमन हुआ ? कहिये, मैं उसे पूरा करनेमें देर नहीं लगाऊँगा ॥ ४ ॥

असुर समूह सतावहिं मोही । मैं जाचन आयउं नृप तोही ॥

अनुज समेत देहु रघुनाथा । निसिचर बध मैं होब सनाथा ॥ ५ ॥

[मुनिने कहा—] हे राजन् ! राक्षसोंके समूह मुझे बहुत सताते हैं । इसीलिये मैं तुमसे कुल माँगने आया हूँ । छोटे भाईसहित श्रीरघुनाथजीको मुझे दो । राक्षसोंके मारे जानेपर मैं सनाथ (सुरक्षित) हो जाऊँगा ॥ ५ ॥

दो०—देहु भूप मन हरषित तजहु मोह अग्यान ।

धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहँ अति कल्याण ॥२०७॥

हे राजन् ! प्रसन्न मनसे इनको दो । मोह और अज्ञानको छोड़ दो । हे स्वामी ! इससे तुमको धर्म और सुयशकी प्राप्ति होगी और इनका परम कल्याण होगा ॥ २०७ ॥

चौ०—सुनि राजा अति अप्रिय बानी । हृदय कंप मुखदुति कुमुलानी ॥

चौथेंपन पायउं सुत चारी । बिप्र बचन नहिं कहेहु विचारी ॥ १ ॥

इस अत्यन्त अप्रिय बाणीको सुनकर राजाका हृदय काँप उठा और उनके मुखकी कान्ति पीकी पड़ गयी । [उन्होंने कहा—] हे ब्राह्मण ! मैंने चौथेपनमें चार पुत्र पाये हैं, आपने विचारकर बात नहीं कही ॥ १ ॥

मागहु भूमि धेनु घन कोसा । सर्वस्व देऊँ भाजु सहरोसा ॥

देह प्रान तेँ प्रिय कलु नाहीं । सोउ मुनि देऊँ निमिष एक माहीं ॥ २ ॥

हे मुनि ! आप पृथ्वी, गौ, धन और खजाना माँग लीजिये, मैं आज बड़े हर्षके साथ अपना सर्वस्व दे दूँगा । देह और प्राणसे अधिक प्यारा कुछ भी नहीं होता, मैं उसे भी एक पलमें दे दूँगा ॥ २ ॥

सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाई । राम देत नहिं बनइ गोसाईँ ॥

कहँ निसिचर अति घोर कठोरा । कहँ सुंदर सुत परम किसोरा ॥ ३ ॥

सभी पुत्र मुझे प्राणोंके समान प्यारे हैं; उनमें भी हे प्रभो ! रामको तो [किसी प्रकार भी] देते नहीं बनता । कहाँ अत्यन्त डरावने और क्रूर राक्षस, और कहाँ परम किशोर अवस्थाके (बिल्कुल सुकुमार) मेरे सुन्दर पुत्र ! ॥ ३ ॥

सुनि नृपगिरा प्रेम रस सानी । हृदयँ हरष माना मुनि ग्यानी ॥

तब बसिष्ट बहुविधि समुझावा । नृप संदेह नास कहँ पावा ॥ ४ ॥

प्रेमरसमें सनी हुई राजाकी वाणी सुनकर शानी मुनि विश्वामित्रजीने हृदयमें बड़ा हर्ष माना । तब वशिष्ठजीने राजाको बहुत प्रकारसे समझाया, जिससे राजाका सन्देह नाशको प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥

अति आदर दोउ तनय बोलाए । हृदयँ लाइ बहु भाँति सिखाए ॥

मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ । तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ ॥ ५ ॥

राजाने बड़े ही आदरसे दोनों पुत्रोंको बुलाया और हृदयसे लगाकर बहुत प्रकारसे उन्हें शिक्षा दी । फिर कहा—हे नाथ ! ये दोनों पुत्र मेरे प्राण हैं; हे मुनि ! [अब] आप ही इनके पिता हैं, दूसरा कोई नहीं ॥ ५ ॥

दो०—सोंपे भूप रिपिहि सुत बहुविधि देइ असीस ।

जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस ॥ २०८ (क) ॥

राजाने बहुत प्रकारसे आशीर्वाद देकर पुत्रोंको ऋषिके हवाले कर दिया । फिर प्रभु माताके महलमें गये और उनके चरणोंमें सिर नवाकर चले ॥ २०८ (क) ॥

सो०—पुरुषसिंह दोउ वीर हरषि चले मुनि भय हरन ।

कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिस्व कारन करन ॥ २०८ (ख) ॥

पुरुषोंमें सिंह [राम-लक्ष्मण] दोनों वीर मुनिका भय हरनेके लिये प्रसन्न होकर चले । वे कृपाके समुद्र, धीरबुद्धि और सम्पूर्ण विश्वके कारणके भी कारण हैं ॥ २०८ (ख) ॥

चौ०—अरुन नयन उर बाहु बिसाला । नील जलज तनु स्याम तमाला ॥

कटि पट पीत कसैं बर भाथा । रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा ॥ १ ॥

भगवान्के लाल नेत्र हैं, चौड़ी छाती और विशाल भुजाएँ हैं; नील कमल और तमालके वृक्षकी तरह श्याम शरीर है, कमरमें पीताम्बर [पहने और] तरकस कसे हुए हैं । दोनों हाथोंमें [क्रमशः] सुन्दर धनुष और बाण हैं ॥ १ ॥

कल्याण

ताडका-उद्धार



चले जात मुनि दीन्ह देखार् । सुनि ताडका क्रोध करि धार् ॥
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा । दीन जानि तेहि निजपद दीन्हा ॥

स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई । विश्वामित्र महानिधि पाई ॥

प्रभु ब्रह्मन्मदेव मैं जाना । मोहि निति पिता तजेउ भगवाना ॥ २ ॥

स्याम और गौर बर्णके दोनों भाई परम सुन्दर हैं । विश्वामित्रजीको महाम् निधि प्राप्त हो गयी ।
[वे सोचते हैं—] प्रभु ब्रह्मन्मदेव (ब्राह्मणोंके भक्त) हैं, मैं जान गया । मेरे लिये भगवान्ने अपने पिताको भी छोड़ दिया ॥ २ ॥

चले जात मुनि दीन्हि देखाई । सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ॥

एकहिं बाम प्राण हरि लीन्हा । दीन जानि तेहि निजपद दीन्हा ॥ ३ ॥

मार्गमें चले जाते हुए मुनिने ताड़काको दिखलाया । शब्द सुनते ही वह क्रोध करके दौड़ी ।
भीरामजीने एक ही बाणसे उसके प्राण हर लिये और दीन जानकर उसको निजपद (अपना दिव्य स्वरूप) दिया ॥ ३ ॥

तब रिषि निज नाथहि जियँ चीन्ही । विद्यानिधि कहँ विद्या दीन्ही ॥

जाते लाग न छुधा पिपासा । अतुलित बल तनु तेज प्रकासा ॥ ४ ॥

तब ऋषि (विश्वामित्र) ने प्रभुको मनमें विद्याका भण्डार समझते हुए भी [लीलाको पूर्ण करनेके लिये] ऐसी विद्या दी जिससे भूख-प्यास न लगे और शरीरमें अतुलित बल और तेजका प्रकाश हो ॥ ४ ॥

दो०—आयुध सर्व समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि ।

कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि ॥ २०९ ॥

सब अस्त्र-शस्त्र समर्पण करके मुनि प्रभु श्रीरामजीको अपने आश्रममें ले आये; और उन्हें परम हित जानकर भक्तिपूर्वक कंद, मूल और फलका भोजन कराया ॥ २०९ ॥

चौ०—प्रात कहा मुनि सन रघुराई । निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई ॥

होम करन लागे मुनि झारी । आपु रहे मख कीं रखवारी ॥ १ ॥

सबसे श्रीरघुनाथजीने मुनिसे कहा—आप जाकर निडर होकर यज्ञ कीजिये । यह सुनकर सब मुनि हवन करने लगे । आप (श्रीरामजी) यज्ञकी रखवालीपर रहे ॥ १ ॥

सुनि मारीच निसाचर क्रोही । लै सहाय धाया मुनिद्रोही ॥

बिनु फर वान राम तेहि मारा । सत जोजन गा सागर पारा ॥ २ ॥

यह समाचार सुनकर मुनियोंका शत्रु क्रोधी राक्षस मारीच अपने सहायकोंको लेकर दौड़ा । श्रीरामजीने विना फलवाला बाण उसको मारा, जिससे वह सौ योजन [के विस्तार] वाले समुद्रके पार जा गिरा ॥ २ ॥

पावक सर सुबाहु पुनि मारा । अनुज निसाचर कटकु सँघारा ॥

मारि असुर द्विज निर्भयकारी । अस्तुति करहिं देव मुनि झारी ॥ ३ ॥

फिर सुबाहुको अग्निबाण मारा । इधर छोटे भाई लक्ष्मणजीने राक्षसोंकी सेनाका संहार कर डाला । इस प्रकार श्रीरामजीने राक्षसोंको मारकर ब्राह्मणोंको निर्भय कर दिया । तब सारे देवता और मुनि स्तुति करने लगे ॥ ३ ॥

तहें पुनि कछुक दिवस रघुराया । रहे कीन्ही बिप्रन्ह पर दाया ॥

भगति हेतु बहु कथा पुराना । कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजीने वहाँ कुछ दिन और रहकर ब्राह्मणोंपर दया की। भक्तिके कारण ब्राह्मणोंने उन्हें पुराणोंकी बहुत-सी कथाएँ कहीं, यद्यपि प्रभु सब जानते थे ॥ ४ ॥

तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिअ जाई ॥
धनुषजग्य सुनि रघुकुलनाथा। हरषि चले मुनिबर के साथ ॥ ५ ॥

तदनन्तर मुनिने आदरपूर्वक समझाकर कहा—हे प्रभो ! चलकर एक चरित्र देखिये। रघुकुलके स्वामी रामचन्द्रजी धनुषयज्ञ [की बात] सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजीके साथ प्रसन्न होकर चले ॥ ५ ॥

आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं ॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कहा बिसेषी ॥ ६ ॥

मार्गमें एक आश्रम दिखायी पड़ा। वहाँ पशु-पक्षी, कोई भी जीव-जन्तु नहीं था। पत्थरकी एक शिलाको देखकर प्रभुने पूछा, तब मुनिने विस्तारपूर्वक सब कथा कही ॥ ६ ॥

दो०—गौतमनारि श्राप बस उपलदेह धरि धीर ।

चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुवीर ॥ २१० ॥

गौतम मुनिकी स्त्री (अहल्या) शापवश पत्थरकी देह धारण किये बड़े धीरजसे आपके चरणकमलोंकी धूलि चाहती है। हे रघुवीर, इसपर कृपा कीजिये ॥ २१० ॥

छं०—परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही ।

देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही ॥

अति प्रेम अधीरा पुलक सररीरा मुख नहिं आवइ बचन कही ।

अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही ॥ १ ॥

श्रीरामजीके पवित्र और शोकको नाश करनेवाले चरणोंका स्पर्श पाते ही सचमुच वह तपोमूर्ति अहल्या प्रकट हो गयी। भक्तोंको सुख देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको देखकर, वह हाथ जोड़कर सामने खड़ी रह गयी। अत्यन्त प्रेमके कारण वह अधीर हो गयी; शरीर पुलकित हो उठा; मुखसे वचन कहनेमें नहीं आते थे। वह अत्यन्त बड़भागीनी अहल्या प्रभुके चरणोंसे लिपट गयी और उसके दोनों नेत्रोंसे जल (प्रेम और आनन्दके आँसुओं) की धारा बहने लगी ॥ १ ॥

धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहँ चीन्हा रघुपति कृपाँ भगति पाई ।

अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई ॥

मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावनरिपु जन सुखदाई ।

राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई ॥ २ ॥

फिर उसने मनमें धीरज धरकर प्रभुको पहचाना और श्रीरघुनाथजीकी कृपासे भक्ति प्राप्त की। तब अत्यन्त निर्मल वाणीसे उसने [इस प्रकार] स्तुति प्रारम्भ की—हे शानसे जानने योग्य श्रीरघुनाथजी ! आपकी जय हो। मैं [सहज ही] अपवित्र स्त्री हूँ; और हे प्रभो ! आप जगत्को पवित्र करनेवाले, भक्तोंको सुख देनेवाले और रावणके शत्रु हैं। हे कमलनयन ! हे संसारके (जन्म-मृत्युके) भयको दूर करनेवाले ! मैं आपकी शरण आयी हूँ, [मेरी] रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ २ ॥

मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना ।

देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहइ लाभ संकर जाना ॥

बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ, वर आना ।

पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ॥ ३ ॥

मुनिने जो मुझे शाप दिया, सो बहुत ही अच्छा किया । मैं उसे अत्यन्त अनुग्रह [करके] मानती हूँ, [कि जिसके कारण] मैंने संसारसे छुड़ानेवाले श्रीहरि (आप) को नेत्र भरकर देखा । इसी (आपके दर्शन) को शंकरजी सबसे बड़ा लाभ समझते हैं । हे प्रभो ! मैं बुद्धिकी बड़ी भोली हूँ, मेरी एक बिनती है । हे नाथ ! मैं और कोई वर नहीं माँगती; [केवल यही चाहती हूँ कि] मेरा मनरूपी भौंरा आपके चरणकमलकी रजके प्रेमरूपी रसका सदा पान करता रहे ॥ ३ ॥

जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी ।

सोई पदपंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी ॥

एहि भौंति सिधारी गौतमनारी बार बार हरिचरन परी ।

जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पतिलोक अनंद भरी ॥ ४ ॥

जिन चरणोंसे परमपवित्र देवनदी (गंगाजी) प्रकट हुई, जिन्हें शिवजीने सिरपर धारण किया, और जिन चरणकमलोंको ब्रह्माजी पूजते हैं, कृपालु हरि (आप) ने उन्हींको मेरे सिरपर रक्खा । इस प्रकार [स्तुति करती हुई] बार-बार भगवान्‌के चरणोंमें गिरकर, जो मनको बहुत ही अच्छा लगा उस वरको पाकर गौतमकी स्त्री (अहल्बा) आनन्दमें भरी हुई पतिलोकको चली गयी ॥ ४ ॥

दो०—अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित दयाल ।

तुलसिदास सठ तेहि भजु छाड़ि कपट जंजाल ॥ २११ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ऐसे दीनबन्धु और बिना ही कारण दया करनेवाले हैं । तुलसीदासजी कहते हैं, हे शठ [मन] ! तू कपट-जंजाल छोड़कर उन्हींका भजन कर ॥ २११ ॥

मासपारायण सातवाँ विश्राम

चौ०—चले राम लछिमन मुनि संग । गए जहाँ जग पावनि गंगा ॥

गाधिसूनु सब कथा सुनाई । जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ॥ १ ॥

श्रीरामजी और लक्ष्मणजी मुनिके साथ चले । वे वहाँ गये जहाँ जगत्‌को पवित्र करनेवाली गंगाजी थी । गाधिके पुत्र विश्वामित्रजीने वह सब कथा कह सुनायी जिस प्रकार, देवनदी गंगाजी पृथ्वीपर आयी थी ॥ १ ॥

तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाए । विविध दान महिदेवन्हि पाए ॥

हरषि चले मुनिबृंद सहाया । बेगि बिदेहनगर निअराया ॥ २ ॥

तब प्रभुने ऋषियोंसहित [गंगाजीमें] स्नान किया । ब्राह्मणोंने भौंति-भौंतिके दान पाये । फिर मुनिबृन्दके साथ वे प्रसन्न होकर चले और शीघ्र ही जनकपुरके निकट पहुँच गये ॥ २ ॥

पुर रम्यता राम जब देखी । हरषे अनुज समेत बिसेषी ॥

बापीं कूप सरित सर नाना । सलिल सुधासम मनिसोपाना ॥ ३ ॥

श्रीरामजीने जब जनकपुरकी शोभा देखी, तब वे छोटे भाई (लक्ष्मण) सहित अत्यन्त हर्षित हुए । वहाँ अनेकों बावलियाँ, कुएँ, नदी और तालाब हैं, जिनमें अमृतके समान जल है और मणियोंकी सीढ़ियाँ हैं ॥ ३ ॥

गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा । कूजत फल बहुवरन बिहंगा ॥

बरन बरन बिकसे बनजाता । त्रिविध समीर सदा सुखदाता ॥ ४ ॥

मकरन्द-रससे मतवाले होकर भौरे सुन्दर गुंजार कर रहे हैं । रंग-विरंगे [बहुत-से] पक्षी मधुर शब्द कर रहे हैं । रंग-रंगके कमल खिले हैं; सदा (सब ऋतुओंमें) सुख देनेवाला शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन बह रहा है ॥ ४ ॥

दो०—सुमनबाटिका बाग बन विपुल बिहंग निवास ।

फूलत फलत सुपल्लवत सोहत पुर चहुँ पास ॥ २१२ ॥

पुष्पबाटिका (फुलवारी), बाग और वन, जिनमें बहुत-से पक्षियोंका निवास है, फूलते, फलते और सुन्दर पत्तोंसे लदे हुए नगरके चारों ओर सुशोभित है ॥ २१२ ॥

चौ०—बनइ न बरनत नगर निकाई । जहाँ जाइ मन तहँ लोभाई ॥

चारु बजारु बिचित्र अंबारी । मनिमय बिधि जनु स्वकर सँवारी ॥ १ ॥

नगरकी सुन्दरताका वर्णन करते नहीं बनता । मन जहाँ जाता है वहीं लुभा जाता (रम जाता) है । सुन्दर बाजार है, मणियोंसे बने हुए विचित्र छजे हैं, मानो ब्रह्मने उन्हें अपने हाथोंसे बनाया है ॥ १ ॥

धनिक बनिक बर धनद समाना । बैठे सकल वस्तु लै नाना ॥

चौहट सुंदर गलीं सुहाई । संतत रहहिं सुगंध सिंचाई ॥ २ ॥

कुबेरके समान श्रेष्ठ धनी व्यापारी सब प्रकारकी अनेक वस्तुएँ लेकर [दुकानोंमें] बैठे हैं । सुन्दर चौराहे, और सुहावनी गलियाँ सदा सुगन्धसे सिंची रहती हैं ॥ २ ॥

मंगलमय मंदिर सब करें । चित्रित जनु रतिनाथ चितेरें ॥

पुर नर नारि सुभग सुचि संता । धरमसील ग्यानी गुनवंता ॥ ३ ॥

सबके घर मंगलमय हैं और उनपर चित्र कढ़े हुए हैं, जिन्हें मानो कामदेवरूपी चित्रकारने अंकित किया है । नगरके सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर, पवित्र, साधु स्वभाववाले, धर्मात्मा, शानी और गुणवान् हैं ॥ ३ ॥

अति अनूप जहँ जनकनिवास । बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलास ॥

होत चकित चित कोट बिलोकी । सकल भुवन सोभा जनु रोकी ॥ ४ ॥

जहाँ जनकजीका अत्यन्त अनुपम (सुन्दर) निवासस्थान (महल) है, वहाँके विलास (ऐश्वर्य) को देखकर देवता भी थकित (स्तम्भित) हो जाते हैं [मनुष्योंकी तो बात ही क्या !] । कोट (राजमहलके परकोटे) को देखकर चित्त चकित हो जाता है, [ऐसा मान्दूम होता है] मानो उसने समस्त लोकोंकी शोभाको रोक (घेर) रक्खा है ॥ ४ ॥

दो०—धवल धाम मनि पुरट पट सुघटित नाना भाँति ।

सियनिवास सुंदर सदन सोभा किमि कहि जाति ॥ २१३ ॥

उज्ज्वल महलोंमें अनेक प्रकारके सुन्दर रीतिसे बने हुए मणिजटित सोनेके किवाड़ लगे हैं । सीताजीके रहनेके सुन्दर महलकी शोभाका वर्णन किया ही कैसे जा सकता है ॥ २१३ ॥

चौ०—सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा । भूप भीर नट मागध भाटा ॥

बनी बिसाल बाजि गज साला । हय गय रथ संकुल सब काला ॥ १ ॥

राजमहलके सब दरवाजे सुन्दर हैं, जिनमें वज्रके (मजबूत अथवा हीरोंके चमकते हुए) किवाड़ लगे हैं । वहाँ [मातहत] राजाओं, नटों, मागधों और भाटोंकी भीड़ लगी रहती है । घोड़ों और हाथियोंके लिये बहुत बड़ी-बड़ी खुड़सालें और गजशालाएँ (फील्डाने) बनी हुई हैं, जो सब समय घोड़े, हाथी और रथोंसे भरी रहती हैं ॥ १ ॥

सुर सचिव सेनप बहुतेरे । नृपगृह सरिस सदन सब केरे ॥

पुर बाहेर सर सरित समीपा । उतरे जहँ तहँ विपुल महीपा ॥ २ ॥

बहुत-से शूरवीर मन्त्री और सेनापति हैं । उन सबके घर भी राजमहल-सरीखे ही हैं । नगरके बाहर तालाब और नदीके निकट जहाँ-तहाँ बहुत-से राजालोग उतरे हुए (डरा डाले हुए) हैं ॥ २ ॥

देखि अनूप एक अवँरार्ह । सब सुपास सब भाँति सुहाई ॥

कौंसिक कहँउ मोर मनु माना । इहाँ रहिय रघुवीर सुजाना ॥ ३ ॥

[वहाँ] आमोंका एक अनुपम बाग देखकर, जहाँ सब प्रकारके सुभीते थे और जो सब तरहसे सुहावना था, विश्वामित्रजीने कहा—हे सुजान रघुवीर ! मेरा मन कहता है कि यहाँ रहा जाय ॥ ३ ॥

भलेहिं नाथ कहि कृपानिकेता । उतरे तहँ मुनिबुंद समेता ॥

बिस्वामित्र महामुनि आए । समाचार मिथिलापति पाए ॥ ४ ॥

कृपाके धाम श्रीरामचन्द्रजी 'बहुत अच्छा स्वामिन् !' कहकर, वहाँ मुनियोंके समूहके साथ ठहर गये । मिथिलापति जनकजीने जब यह समाचार पाया कि महामुनि विश्वामित्र आये हैं ॥ ४ ॥

दो०—संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बर गुर ग्याति ।

चले मिलन मुनिनायकहि मुदित राउ एहि भाँति ॥ २१४ ॥

तब पवित्र हृदयके (ईमानदार, स्वामिभक्त) मन्त्री, बहुतसे योद्धा, श्रेष्ठ ब्राह्मण, गुरु (शतानन्दजी) और अपनी जातिके श्रेष्ठ लोगोंको साथ लिया और इस प्रकार प्रसन्नताके साथ राजा मुनियोंके स्वामी विश्वामित्रजीसे मिलने चले ॥ २१४ ॥

चौ०—कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा । दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा ॥

विप्रबुंद सब सादर बंदे । जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे ॥ १ ॥

राजाने मुनिके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया । मुनियोंके स्वामी विश्वामित्रजीने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया । फिर सारी ब्राह्मणमण्डलीको आदरसहित प्रणाम किया और अपना बड़ा भाग्य जानकर राजा आनन्दित हुए ॥ १ ॥

कुसलप्रस्न कहि बारहिं बारा । बिस्वामित्र नृपहि बैठारा ॥

तेहि अवसर आए दोउ भाई । गए रहे देखन फुलवाई ॥ २ ॥

बार-बार कुशलप्रश्न करके विश्वामित्रजीने राजाको बैठाया । उसी समय दोनों भाई आ पहुँचे, जो फुलवाड़ी देखने गये थे ॥ २ ॥

स्याम गौर मृदु बयस किसोरा । लोचन सुखद बिस्व चित चोरा ॥

उठे सकल जब रघुपति आए । बिस्वामित्र निकट बैठाए ॥ ३ ॥

सुकुमार किशोर अवस्थावाले श्याम और गौर वर्णके दोनों कुमार नेत्रोंको सुख देनेवाले और सारे

विश्वके चित्तको चुरानेवाले हैं। जब रघुनाथजी आये तब सभी उठकर खड़े हो गये। विश्वामित्रजीने उनको अपने पास बैठा लिया ॥ ३ ॥

भय सब सुखी देखि दोउ भ्राता। बारि बिलोचन पुलकित गाता ॥

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ विदेहु विदेहु बिसेषी ॥ ४ ॥

दोनों भाइयोंको देखकर सभी सुखी हुए। सबके नेत्रोंमें जल भर आया (आनन्द और प्रेमके आँसू उमड़ पड़े) और शरीर रोमाञ्चित हो उठे। रामजीकी मधुर मनोहर मूर्तिको देखकर विदेह (जनक) विशेषरूपसे विदेह (देहकी सुष-बुधसे रहित) हो गये ॥ ४ ॥

दो०—प्रेम मगन मनु जानि नृपु करि विवेकु धरि धीर।

बोलेउ मुनिपद नाइ सिरु गदगद गिरा गभीर ॥ २१५ ॥

मनको प्रेममें मग्न जान राजा जनकने विवेकके द्वारा धीरज धारण किया और मुनिके चरणोंमें मिर नवाकर गद्गद (प्रेमभरी) गम्भीर वाणीसे कहा— ॥ २१५ ॥

चौ०—कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुलतिलक कि नृपकुलपालक ॥

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेप धरि की सोइ आवा ॥ १ ॥

हे नाथ ! कहिये, ये दोनों सुन्दर बालक मुनिकुलके आभूषण हैं, या किसी राजवंशके पालक ? अथवा जिसका वेदोंने 'नेति' कहकर गान किया है, कहाँ वह ब्रह्म तो युगलरूप धरकर नहीं आया है ? ॥ १ ॥

सहज विरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा ॥

ताते प्रभु पृछउँ सतिभाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ ॥ २ ॥

मेरा मन, जो स्वभावसे ही वैराग्यरूप [बना हुआ] है, [इन्हे देखकर] इस तरह मुग्ध हो रहा है जैसे चन्द्रमाको देखकर चकोर। हे प्रभो ! इसलिये मैं आपसे सत्य (निश्चल) भावसे पृच्छता हूँ; हे नाथ ! बताइये, छिपाव न कीजिये ॥ २ ॥

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥

कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका ॥ ३ ॥

इनको देखते ही अत्यन्त प्रेमके वश होकर मेरे मनने जबर्दस्ती ब्रह्मसुखको त्याग दिया है। मुनिने हँसकर कहा—हे राजन् ! आपने ठीक (यथार्थ ही) कहा। आपका वचन मिथ्या नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्राणी। मन मुसुकाहिं रामु सुनि बानी ॥

रघुकुलमनि दसरथ के जाए। मम हित लागि नरेस पठाए ॥ ४ ॥

जगत्में जहाँतक (जितने भी) प्राणी हैं, ये सभीका प्रिय है। मुनिकी [रहस्यभरी] वाणी सुनकर श्रीरामजी मन-ही-मन मुस्कुराते हैं (हँसकर मानो संकेत करते हैं कि रहस्य खोलिये नहीं)। [तब मुनिने कहा—] ये रघुकुलमणि महाराज दशरथके पुत्र हैं। मेरे हितके लिये राजाने इन्हें मेरे साथ भेजा है ॥ ४ ॥

दो०—रामु लखनु दोउ बंधुवर रूप सील बल धाम।

मख राखेउ सबु साखि जगु जिते असुर संग्राम ॥ २१६ ॥

ये राम और लक्ष्मण दोनों श्रेष्ठ भाई रूप, शील और बलके धाम हैं। सारा जगत् [इस बातका] साक्षी है कि इन्होंने युद्धमें असुरोंको जीतकर मेरे यज्ञको रक्षा की है ॥ २१६ ॥

चौ०—मुनि तव चरन देखि कह राऊ। कहि न सकउँ निज पुन्य प्रभाऊ ॥

सुंदर स्याम गौर दोउ भ्राता। आनंदहु के आनंददाता ॥ १ ॥

राजाने कहा—हे मुनि ! आपके चरणोंके दर्शन कर मैं अपना पुण्य-प्रभाव कह नहीं सकता। ये सुन्दर स्याम और गौर वर्णके दोनों भाई आनन्दको भी आनन्द देनेवाले हैं ॥ १ ॥

इन्ह कै प्रीति परसपर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि ॥

सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहु। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहु ॥ २ ॥

इनकी आपसकी प्रीति बड़ी पवित्र और सुहावनी है; वह मनको बहुत भाती है, पर [वाणीसे] कहीं नहीं जा सकती। विदेह (जनकजी) आनन्दित होकर कहते हैं—हे नाथ ! मुनिये, ब्रह्म और जीवकी तरह इनमें स्वाभाविक प्रेम है ॥ २ ॥

पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू ॥

मुनिहि प्रसंसि नाइ पद सीसू। चलेउ लवाइ नगर अवनीसू ॥ ३ ॥

राजा बार-बार प्रभुको देखते हैं (दृष्टि वहाँमें हटना ही नहीं चाहती)। [प्रेमसे] गरीब पुलकित हो रहा है और हृदयमें बड़ा उत्साह है। [फिर] मुनिकी प्रशंसा करके और उनके चरणोंमें सिर नवाकर राजा उन्हें नगरमें लिया चले ॥ ३ ॥

सुंदर सदन सुखद सब काला। तहाँ वासु लै दीन्ह भुआला ॥

करि पूजा सब बिधि मेवकाई। गयउ राउ गृह बिदा कराई ॥ ४ ॥

एक सुन्दर महल जो सब समय (ऋतुओं) में सुखदायक था, वहाँ राजाने उन्हें ले जाकर ठहराया। तदनन्तर सब प्रकारमें पूजा और सेवा करके राजा विदा माँगकर अपने घर गये ॥ ४ ॥

दो०—रिषय संग रघुवंसमनि करि भोजनु विश्रामु।

बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जामु ॥ २१७ ॥

रघुकुलके शिरोमणि प्रभु रामचन्द्रजी ऋषियोंके साथ भोजन और विश्राम करके भाई (लक्ष्मण) समेत बैठे। उस समय पहर-भर दिन रह गया था ॥ २१७ ॥

चौ०—लखन हृदय लालसा बिसेषी। जाइ जनकपुर आइअ देखी ॥

प्रभुभय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं। प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं ॥ १ ॥

लक्ष्मणजीके हृदयमें विशेष लालसा है कि जाकर जनकपुर देख आएं। परन्तु प्रभु रामचन्द्रजीका डर है, और फिर मुनिसे भी सकुचाने हैं। इसलिये प्रकटमें कुछ नहीं कहते; मन-ही-मन मुस्कुरा रहे हैं ॥ १ ॥

राम अनुज मन की गति जानी। भगतबछलता हियँ हुलसानी ॥

परम बिनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुर अनुसासन पाई ॥ २ ॥

[अन्तर्यामी] श्रीरामचन्द्रजीने छोटे भाईके मनकी दशा जान ली, [तब] उनके हृदयमें भक्तवत्सलता उमड़ आयी। वे गुरुजीकी आज्ञा पाकर बहुत ही विनयके साथ सकुचाते हुए मुस्कराकर बोले— ॥ २ ॥

नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं । प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं ॥
जौ राउर आयसु मैं पावौ । नगर देखाइ तुरत लै आवौ ॥ ३ ॥

हे नाथ ! लक्ष्मण नगर देखना चाहते हैं, किन्तु प्रभु (आप) के डर और संकोचके कारण स्पष्ट नहीं कहते । यदि आपकी आज्ञा पाऊँ, तो मैं इनको नगर दिखलाकर तुरंत ही [वापस] ले आऊँ ॥ ३ ॥

सुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती । कस न राम तुम्ह राखहु नीती ॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता । प्रेम बिबस सेवक सुखदाता ॥ ४ ॥

यह सुनकर मुनीश्वर विश्वामित्रजीने प्रेमसहित वचन कहे—हे राम ! तुम नीतिकी रक्षा कैसे न करोगे; हे तात ! तुम धर्मकी मर्यादाका पालन करनेवाले और प्रेमके वशीभूत होकर सेवकोंको सुख देनेवाले हो ॥ ४ ॥

दो०—जाइ देखि आवहु नगर सुखनिधान दोउ भाइ ।

करहु सुफल सब के नयन सुंदर बदन देखाइ ॥ २१८ ॥

सुखके निधान दोनों भाई जाकर नगर देख आओ । अपने सुन्दर मुख दिखलाकर सब [नगर-निवासियों] के नेत्रोंको सफल करो ॥ २१८ ॥

चौ०—मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता । चले लोक लोचन सुखदाता ॥
बालकवृंद देखि अति सोभा । लगे संग लोचन मनु लोभा ॥ १ ॥

सब लोकोंके नेत्रोंको सुख देनेवाले दोनों भाई मुनिके चरणकमलोंकी वन्दना करके चले । बालकोंके झुंड इन [के सौन्दर्य] की अत्यन्त शोभा देखकर साथ लग गये । उनके नेत्र और मन [इनकी माधुरीपर] झुभा गये ॥ १ ॥

पीत बसन परिकर कटि भाथा । चारु चाप सर सोहत हाथा ॥
तन अनुहरत सुचंदन खोरी । श्यामल गौर मनोहर जोरी ॥ २ ॥

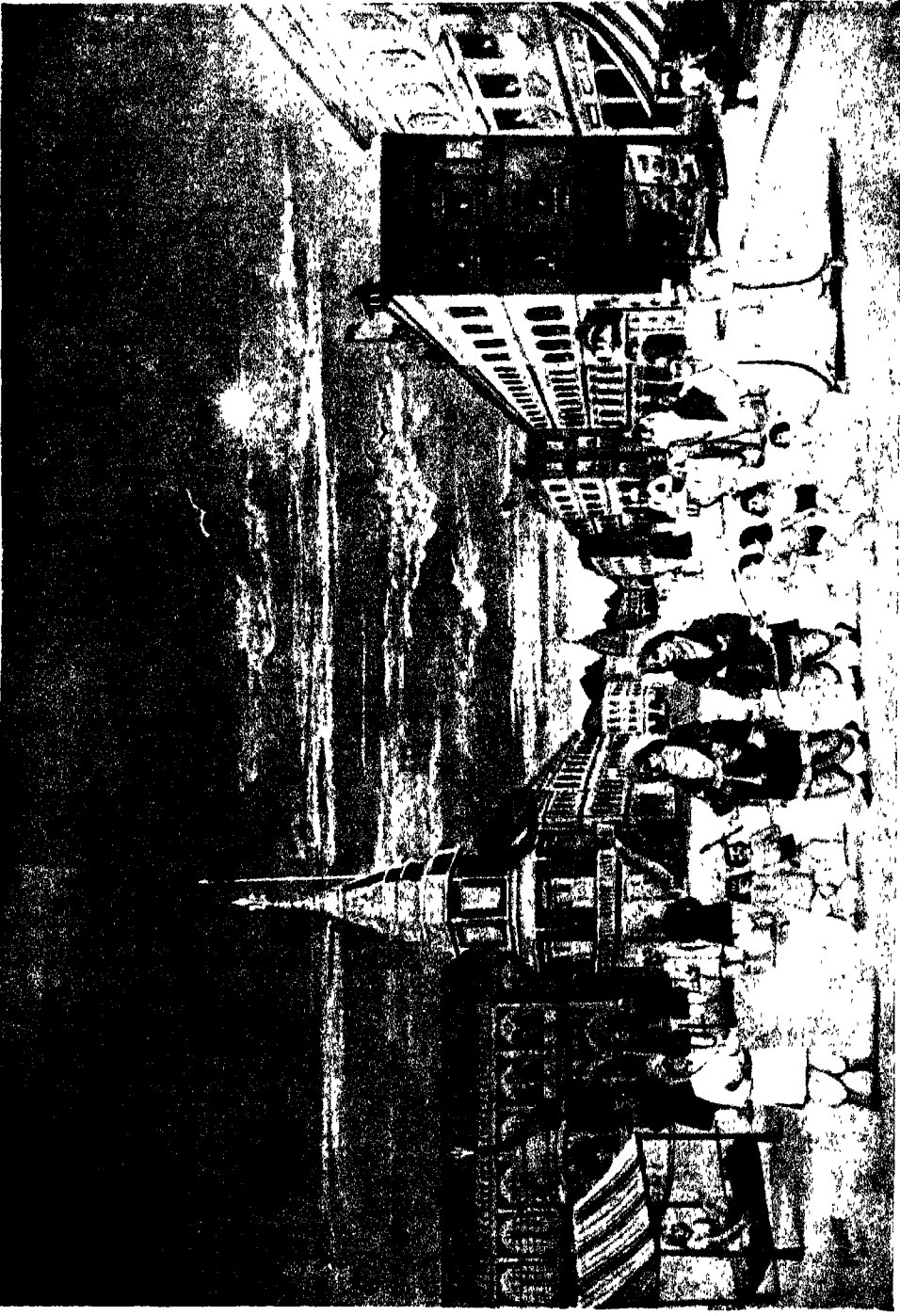
[दोनों भाइयोंके] पीले रंगके वस्त्र हैं । कमरके [पीले] दुपट्टोंमें तरकस बंधे हैं, हाथोंमें सुन्दर धनुष-बाण सुशोभित हैं । [श्याम और गौर वर्णके] शरीरोंके अनुकूल (अर्थात् जिसपर जिस रंगका चन्दन अधिक फवे उसपर उसी रंगके) सुन्दर चन्दनकी खोरी लगी है । साँवरे और गोरे [रंग] की मनोहर जोड़ी है ॥ २ ॥

केहरि कंधर वाहु बिसाला । उर अति रुचिर नागमनि माला ॥
सुभग सोन सरसीरुह लोचन । बदनमयंक तापत्रय मोचन ॥ ३ ॥

सिंहके समान (पुष्ट) गर्दन (गलेका पिछला भाग) है; विशाल भुजाएँ हैं; [चौड़ी] छातीपर अत्यन्त सुन्दर गजमुक्ताकी माला है; सुन्दर लाल कमलके समान नेत्र हैं; तीनों तापोंसे छुड़ानेवाला चन्द्रमाके समान मुख है ॥ ३ ॥

कानन्हि कनकफूल छबि देहीं । चितवत चितहि घोरि जनु लेहीं ॥
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी । तिलक रेख सोभा जनु चाँकी ॥ ४ ॥

कानोंमें सोनेके कर्णफूल [अत्यन्त] शोभा दे रहे हैं और देखते ही [देखनेवालेके] चित्तको मानो चुरा लेते हैं । उनकी चितवन (दृष्टि) बड़ी मनोहर है, और भौंहें तिरछी एवं सुन्दर हैं । [माथेपर] तिलककी रेखाएँ ऐसी सुन्दर हैं मानो [मूर्तिमती] शोभापर मुहर लगा दी गयी है ॥ ४ ॥



देखन नगर भूपमुत आए । ममाचार पुरबामिन्ह पाए ॥ आए धाम काम सब त्यागी । मनहुं रंक निधि लुटन लागी ॥
निरखि सहज हुंदर दोउ भाई । होहिं सुखी लाचनफल पाई ॥ जुबनीं भवन सरोबन्दि लागीं । निरखिं राम रूप अनुरागीं ॥

दो०—रुचिर चौतनीं सुमग सिर मेचक कुंचित केस ।

नख सिख सुंदर बंधु दोउ सोभा सकल सुदेस ॥२१९॥

सिरपर सुन्दर चौकोनी टोपियाँ [दिये] हैं । काले और घुँघराले बाल हैं । दोनों भाई नखसे लेकर शिखातक (एड़ीसे चोटीतक) सुन्दर हैं और सारी शोभा जहाँ जैसी चाहिये वैसी ही है ॥ २१९ ॥

चौ०—देखन नगर भूपसुत आप । समाचार पुरवासिन्ह पाप ॥

घाय धाम काम सब त्यागी । मनहुँ रंक निधि लूटन लागी ॥ १ ॥

जब पुरवासियोंने यह समाचार पाया कि दोनों राजकुमार नगर देखनेके लिये आये हैं, तब वे सब घर-बार और काम-काज छोड़कर ऐसे दौड़े मानो दरिद्री [धनका] खजाना लूटने दौड़े हों ॥ १ ॥

निरखि सहज सुंदर दोउ भाई । होहिं सुखी लोचनफल पाई ॥

जुबतीं भवन झरोखनिहि लागीं । निरखहिं रामरूप अनुरागी ॥ २ ॥

स्वभावहीसे सुन्दर दोनों भाइयोंको देखकर वे लोग नेत्रोंका फल पाकर सुखी हो रहे हैं । युवती स्त्रियाँ घरके झरोखोंसे लगी हुई प्रेमसहित श्रीरामचन्द्रजीके रूपको देख रही हैं ॥ २ ॥

कहहिं परसपर बचन सप्रीती । सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती ॥

सुर नर असुर नाग मुनि माहीं । सोभा असि कहूँ सुनिअति नाहीं ॥ ३ ॥

वे आपसमे बड़े प्रेमसे बातें कर रही हैं—हे सखी ! इन्होंने करोड़ों कामदेवोंकी छबिको जीत लिया है । देवता, मनुष्य, असुर, नाग और मुनियोंमें ऐसी शोभा तो कही सुननेमें भी नहीं आती ॥ ३ ॥

विष्णु चारि भुज बिधि मुख चारी । विकट वेष मुख पंच पुरारी ॥

अपर देउ अस कोउ न आही । यह छबि सखी पटतरिअ जाही ॥ ४ ॥

भगवान् विष्णुके चार भुजाएँ हैं, ब्रह्माजीके चार मुख हैं; शिवजीका विकट (भयानक) वेष है और उनके पाँच मुँह हैं । हे सखी ! दूसरा देवता भी कोई ऐसा नहीं है जिसके साथ इस छबिकी उपमा दी जाय ॥ ४ ॥

दो०—बय किसोर सुषमासदन स्याम गौर सुखधाम ।

अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम ॥२२०॥

इनकी किशोर अवस्था है, ये सुन्दरताके घर, सौवले और गोरे रंगके तथा सुखके धाम हैं । इनके अङ्ग-अङ्गपर करोड़ों-अरबों कामदेवोंको निछावर कर देना चाहिये ॥ २२० ॥

चौ०—कहहु सखी अस को तनुधारी । जो न मोह यह रूप निहारी ॥

कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी । जो मैं सुना सो सुनहु सयानी ॥ १ ॥

हे सखी ! [भली] कहो तो ऐसा कौन शरीरधारी होगा जो इस रूपको देखकर मोहित न हो जाय (अर्थात् यह रूप जड़-चेतन सबको मोहित करनेवाला है) । [तब] कोई दूसरी सखी प्रेमसहित कोमल वाणीसे बोली—हे सयानी ! मैंने जो सुना है उसे सुनो—॥ १ ॥

ए दोऊ दसरथ के ढोटा । बालमरालनिहि के कल जोटा ॥

मुनि कौसिक मख के रखवारे । जिन्ह रन अजिर निसाचर मारे ॥ २ ॥

ये दोनों [राजकुमार] महाराज दशरथजीके पुत्र हैं। बाल राजहंसोंका-सा सुन्दर जोड़ा है। ये मुनि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करनेवाले हैं; इन्होंने युद्धके मैदानमें राक्षसोंको मारा है ॥ २ ॥

स्याम गात कल कंज बिलोचन । जो मारीच सुभुज मनु मोचन ॥

कौसल्यासुत सो सुखखानी । नामु राम धनु सायक पानी ॥ ३ ॥

जिनका श्याम शरीर, और सुन्दर कमल-जैसे नेत्र हैं, जो मारीच और सुबाहुके मदको चूर करनेवाले और सुयुक्ती खान हैं, और जो हाथमें धनुष-बाण लिये हुए हैं वे कौसल्याजीके पुत्र हैं; इनका नाम राम है ॥ ३ ॥

गौर किसोर वेषु बर काछें । कर सर चाप राम के पाछें ॥

लछिमनु नामु राम लघुभ्राता । सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ॥ ४ ॥

जिनका रंग गोरा और किशोर अवस्था है, और जो सुन्दर वेष बनाये और हाथमें धनुष-बाण लिये रामजीके पीछे-पीछे चल रहे हैं, वे इनके छोटे भाई हैं; उनका नाम लक्ष्मण है। हे सखी ! सुनो, उनकी माता सुमित्रा हैं ॥ ४ ॥

दो०—विप्रकाजु करि बंधु दोउ मग मुनिबधू उधारि ।

आए देखन चापमख सुनि हरषीं सब नारि ॥ २२१ ॥

दोनों भाई ब्राह्मण विश्वामित्रका काम करके और रास्तेमें मुनि गौतमकी स्त्री (अहल्या) का उद्धार करके यहाँ धनुषयज्ञ देखने आये हैं। यह सुनकर सब स्त्रियाँ प्रसन्न हुई ॥ २२१ ॥

चो०—देखि रामछवि कोउ एक कहई । जोगु जानकिहि यह वरु अहई ॥

जौं सखि इन्हहि देख नरनाह । पन परिहरि हठि करइ बिबाह ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी छवि देखकर कोई एक [दूसरी सखी] कहने लगी—यह वर जानकीके योग्य है। हे सखी ! यदि कहीं राजा इन्हें देख ले, तो प्रतिज्ञा छोड़कर दृष्टपूर्वक इन्होंने विवाह कर देगा ॥ १ ॥

कोउ कह ए भूपति पहिचाने । मुनि समेत साँदर सनमाने ॥

सखि परंतु पनु राउ न तजई । बिधि बस हठि अबिबेकहि भजई ॥ २ ॥

किसीने कहा—राजाने इन्हें पहचान लिया है, और मुनिके सहित इनका आदरपूर्वक सम्मान किया है। परन्तु, हे सखी ! राजा अपना प्रण नहीं छोड़ता। वह होनहारके वशीभूत होकर दृष्टपूर्वक अविवेकता ही आश्रय लिये हुए है (प्रणपर अड़े रहनेकी मूर्खता नहीं छोड़ता) ॥ २ ॥

कोउ कह जौं भल अहइ बिधाता । सब कहँ सुनिअ उचिन फलदाता ॥

तौ जानकिहि मिलिहि वरु एह । नाहिन आलि इहाँ संदेह ॥ ३ ॥

कोई कहती है—यदि विधाता भले हैं और मुना जाता है कि वे सबको उचित फल देने हैं, तो जानकीजीको यही वर मिलेगा। हे सखी ! इसमें मन्देह नहीं है ॥ ३ ॥

जौं बिधि बस अस बनै सँजोगू । तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू ॥

सखि हमरें आरति अति नातें । कबहुँक ए आवहिं एहि नातें ॥ ४ ॥

जो दैवयोगसे ऐसा संयोग बन जाय, तो हम सब लोग कृतार्थ हो जायें। हे सखी ! मेरे तो इसीने इतनी अधिक आतुरता हो रही है कि इसी नाते कभी ये यहाँ आवेंगे ॥ ४ ॥

दो०—नाहिं त हम कहूँ सुनहु सखि इन्ह कर दरसन दूरि ।

यह संघटु तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि ॥२२२॥

नहीं तो (विवाह न हुआ तो) हे सखी ! सुनो, हमको इनके दर्शन दुर्लभ हैं । यह संयोग तभी हो सकता है जब हमारे पूर्वजन्मके बहुत पुण्य हो ॥ २२२ ॥

चौ०—बोली अपर कहेहु सखि नीका । एहिं बिवाह अति हित सबही का ॥

कोउ कह संकरचाप कठोरा । ए स्यामल मृदुगात किसोरा ॥ १ ॥

दूसरीने कहा—हे सखी ! तुमने बहुत अच्छा कहा । इस विवाहसे सभीका परम हित है । किसीने कहा—शंकरजीका धनुष कठोर है, और ये साँवले राजकुमार कोमल शरीरके बालक हैं ॥ १ ॥

सबु असमंजस अहइ सयानी । यह सुनि अपर कहइ मृदु बानी ॥

सखि इन्ह कहँ कोउ कोउ अस कहहीं । बड़ प्रभाउ देखत लघु अहहीं ॥ २ ॥

हे सयानी ! सब असमंजस ही है ! यह सुनकर दूसरी सखी कोमल वाणीसे कहने लगी—हे सखी ! इनके सम्बन्धमें कोई-कोई ऐसा कहते हैं कि ये देखनेमें तो छोटे हैं, पर इनका प्रभाव बहुत बड़ा है ॥ २ ॥

परसि जासु पद पंकज धूरी । तरी अहल्या कृत अघ भूरी ॥

सो कि रहिहि बिनु सिवधनु तोरें । यह प्रतीति परिहरिअ न भोरें ॥ ३ ॥

जिनके चरणकमलोंकी धूलिका स्पर्श पाकर अहल्या तर गयी, जिसने बड़ा भारी पाप किया था, वे क्या शिवजीका धनुष बिना तोड़े रहेगे । इस विश्वासको भूलकर भी नहीं छोड़ना चाहिये ॥ ३ ॥

जेहिं बिरंचि रचि सीय सँवारी । तेहिं स्यामल वरु रचेउ विचारी ॥

तासु बचन सुनि सब हरषानी । ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानी ॥ ४ ॥

जिस ब्रह्माने सीताको सँवारकर (बड़ी चतुराईसे) रचा है, उसीने विचारकर साँवला वर भी रच रक्खा है । उसके ये वचन सुनकर सब हर्षित हुई, और कोमल वाणीसे कहने लगी—ऐसा ही हो ॥ ४ ॥

दो०—हियँ हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद ।

जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ तहँ तहँ परमानंद ॥२२३॥

सुन्दर मुख और सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्रियाँ समूह-की-समूह हृदयमें हर्षित होकर फूल बरसा रही हैं । जहाँ-जहाँ दोनो भाई जाते हैं, वहाँ-वहाँ परम आनन्द छा जाता है ॥ २२३ ॥

चौ०—पुर पूरुब दिसि ने दोउ भाई । जहँ धनुमख हित भूमि बनाई ॥

अति बिस्तार चारु गच द्वारी । बिमल बेदिका रुचिर सँवारी ॥ १ ॥

दोनों भाई नगरके पूरुब ओर गये, जहाँ धनुषयज्ञके लिये [रंग] भूमि बनायी गयी थी । बहुत लंबा-चौड़ा सुन्दर ढाला हुआ पक्का आँगन था, जिसपर सुन्दर और निर्मल बेदी सजायी गयी थी ॥ १ ॥

चहुँ दिसि कंचनमंच बिसाला । रचे जहाँ बैठहिं महिपाला ॥

तेहि पाछें समोप चहुँ पासा । अपर मंचमंडली बिलासा ॥ २ ॥

चारों ओर सोनेके बड़े-बड़े मंच बने थे, जिनपर राजा लोग बैठेंगे । उनके पीछे समोप ही चारों ओर दूसरे मंचानोंका मण्डलाकार घेरा मुशोभित था ॥ २ ॥

कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई । बैठहिं नगरलोग जहँ जाई ॥

तिन्ह के निकट बिसाल सुहाए । धवल धाम बहुबरन बनाए ॥ ३ ॥

वह कुछ ऊँचा था और सब प्रकारसे सुन्दर था, जहाँ जाकर नगरके लोग बैठेंगे ।
उन्हींके पास विशाल एवं सुन्दर सफेद मकान अनेक रंगोंके बनाये गये हैं, ॥ ३ ॥

जहँ बैठें देखहिं सब नारी । जथाजोगु निज कुल अनुहारी ॥

पुरबालक कहि कहि मृदु बचना । सादर प्रभुहि देखावहिं रचना ॥ ४ ॥

जहाँ अपने-अपने कुलके अनुसार सब स्त्रियाँ यथायोग्य (जिसको जहाँ बैठना उचित है) बैठकर
देखेंगी । नगरके बालक कोमल वचन कह-कहकर आदरपूर्वक प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको [यज्ञशालाकी]
रचना दिखला रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—सब सिसु एहि मिस प्रेमबस परसि मनोहर गात ।

तन पुलकाहिं अति हरषु हियँ देखि देखि दोउ भ्रात ॥ २२४ ॥

सब बालक इसी बहाने प्रेमके वश होकर श्रीरामजीके मनोहर अंगोंको छूकर शरीरसे पुलकित
हो रहे हैं और दोनों भाइयोंको देखकर उनके हृदयमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है ॥ २२४ ॥

चौ०—सिसु सब राम प्रेमबस जाने । प्रीति समेत निकेत बखाने ॥

निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई । सहित सनेह जाहिं दोउ भाई ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने सब बालकोंको प्रेमके वश जानकर [यज्ञभूमिके] स्थानोंकी प्रेमपूर्वक प्रशंसा की ।
[इससे बालकोंका उत्साह, आनन्द और प्रेम और भी बढ़ गया, जिससे] वे सब अपनी-अपनी रुचिके
अनुसार उन्हें बुला लेते हैं और [प्रत्येकके बुलानेपर] दोनों भाई प्रेमसहित उनके पास चले जाते हैं ॥ १ ॥

राम देखावहिं अनुजहि रचना । कहि मृदु मधुर मनोहर बचना ॥

लव निमेष महुँ भुवन निकाया । रचइ जासु अनुसासन माया ॥ २ ॥

कोमल, मधुर और मनोहर वचन कहकर श्रीरामजी अपने छोटे भाई (लक्ष्मण) को [यज्ञभूमिकी]
रचना दिखलाते हैं । जिनकी आज्ञा पाकर माया लव निमेष (पलक गिरनेके चौथाई समय) में ब्रह्माण्डोंके
समूह रच डालती है, ॥ २ ॥

भगति हेतु सोइ दीनदयाला । चितवत चकित धनुष मख साला ॥

कौतुक देखि चले गुरु पाहीं । जानि बिलंबु त्रास मन माहीं ॥ ३ ॥

वही दीनोंपर दया करनेवाले श्रीरामजी भक्तिके कारण धनुष-यज्ञशालाको चकित होकर (आश्चर्यके
साथ) देख रहे हैं । इस प्रकार सब कौतुक (विचित्र रचना) देखकर वे गुरुके पास चले । देर हुई
जानकर उनके मनमें डर है ॥ ३ ॥

जासु त्रास डर कहूँ डर होई । भजन प्रभाउ देखावत सोई ॥

कहि बातें मृदु मधुर सुहाई । किए विदा बालक बरिआई ॥ ४ ॥

जिनके भयसे डरको भी डर लगता है, वही प्रभु भजनका प्रभाव [जिसके कारण ऐसे महान् प्रभु भी
भयका नाट्य करते हैं] दिखला रहे हैं । उन्होंने कोमल, मधुर और सुन्दर बातें कहकर बालकोंको जबर्दस्ती
विदा किया ॥ ४ ॥

दो०—समय सप्रेम विनीत अति सकुच सहित दोउ भाई ।

गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ ॥२२५॥

फिर भय, प्रेम, विनय और बड़े संकोचके साथ दोनों भाई गुरुके चरणकमलोंमें सिर नवाकर, आशा पाकर बैठे ॥२२५॥

चौ०—निसिप्रबेस मुनि आयसु दीन्हा । सबहीं संध्याबंदनु कीन्हा ॥

कहत कथा इतिहास पुरानी । रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी ॥ १ ॥

रात्रिका प्रवेश होते ही (सन्ध्याके समय) मुनिने आशा दी, तब सबने सन्ध्यावन्दन किया । फिर प्राचीन कथाएँ तथा इतिहास कहते-कहते सुन्दर रात्रि दो पहर बीत गयी ॥ १ ॥

मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई । लगे चरन चापन दोउ भाई ॥

जिन्ह के चरन सरोरुह लागी । करत बिबिध जप जोग बिरागी ॥ २ ॥

तब श्रेष्ठ मुनिने जाकर शयन किया । दोनों भाई उनके चरण दबाने लगे । जिनके चरणकमलोंके [दर्शन एवं स्पर्शके] लिये वैराग्यवान् पुरुष भी भाँति-भाँतिके जप और योग करते हैं, ॥ २ ॥

तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते । गुर पद कमल पलोदत प्रीते ॥

बार बार मुनि अग्या दीन्ही । रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही ॥ ३ ॥

वे ही दोनों भाई मानो प्रेमसे जीते हुए प्रेमपूर्वक गुरुजीके चरणकमलोंको दबा रहे हैं । मुनिने बार-बार आशा दी, तब श्रीरघुनाथजीने जाकर शयन किया ॥ ३ ॥

चापत चरन लखनु उर लाएँ । समय सप्रेम परम सचु पाएँ ॥

पुनि पुनि प्रभु कह सोचहु ताता । पौढ़े धरि उर पद जलजाता ॥ ४ ॥

श्रीरामजीके चरणोंको हृदयसे लगाकर भय और प्रेमसहित परम सुखका अनुभव करते हुए लक्ष्मणजी उनको दबा रहे हैं । प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने बार-बार कहा—हे तात ! [अब] सो जाओ । तब वे उन चरणकमलोंको हृदयमें धरकर सो रहे ॥ ४ ॥

दो०—उठे लखनु निसि बिगत मुनि अरुनसिखा धुनि कान ।

गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान ॥२२६॥

रात बीतनेपर, मुगेंका शब्द कानोसे सुनकर लक्ष्मणजी उठे । जगत्के स्वामी सुजान श्रीरामचन्द्रजी भी गुरुसे पहले ही जाग गये ॥२२६॥

चौ०—सकल सौच करि जाइ नहाए । नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए ॥

समय जानि गुर आयसु पाई । लेन प्रसून चले दोउ भाई ॥ १ ॥

सब शौचक्रिया करके वे जाकर नहाये । फिर [सन्ध्या-अग्निहोत्रादि] नित्यकर्म समाप्त करके उन्होंने मुनिको मस्तक नवाया । [पूजाका] समय जानकर, गुरुकी आशा पाकर दोनों भाई फूल लेने चले ॥ १ ॥

भूपबागु बर देखेउ जाई । जहँ बसंत रितु रही लोभाई ॥

लागे बिटप मनोहर नाना । बरन बरन बर बेलि बिताना ॥ २ ॥

उन्होंने जाकर राजाका सुन्दर बाग देखा, जहाँ वसन्त ऋतु छुभाकर रह गयी है। मनको लुभानेवाले अनेक वृक्ष लगे हैं। रंग-विरंगी उत्तम लताओंके मण्डप छाये हुए हैं ॥ २ ॥

नव पल्लव फल सुमन सुहाय । निज संपत्ति सुर रुख लजाय ॥

चातक कोकिल कीर चकौरा । कूजत बिहग नटत कल मोरा ॥ ३ ॥

नये पत्तों, फलों और फूलोंसे सुशोभित वृक्ष अपनी सम्पत्तिसे कल्पवृक्षको भी लजा रहे हैं। पपीहे, कोयल, तोते, चकौर आदि पक्षी मीठी बोली बोल रहे हैं, और मोर सुन्दर नृत्य कर रहे हैं ॥ ३ ॥

मध्य बाग सर सोह सुहावा । मनिसोंपान बिचित्र बनावा ॥

बिमल सलिलु सरसिज बहुरंगा । जलखग कूजत गुंजत भृंगा ॥ ४ ॥

बागके बीचोबीच सुहावना सरोवर सुशोभित है, जिसमें मणियोंकी सीढ़ियाँ विचित्र ढंगसे बनी हैं। उसका जल निर्मल है, जिसमें अनेक रंगोंके कमल खिले हुए हैं, जलके पक्षी कलरव कर रहे हैं और भ्रमर गुंजार कर रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत ।

परम रम्य आरागु यहु जो रामहि सुख देत ॥२२७॥

बाग और सरोवरको देखकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी भाई (लक्ष्मण) सहित हर्षित हुए। यह बाग [वास्तवमें] परम रमणीय है, जो [जगत्को सुख देनेवाले] श्रीरामचन्द्रजीको सुख दे रहा है ॥२२७॥

चौ०—चहुँ दिसि चितइ पूँछि मालीगन । लगे लेन दल फूल मुदित मन ॥

तेहि अवसर सीता तहँ आई । गिरिजा पूजन जननि पठाई ॥ १ ॥

चारों ओर दृष्टि डालकर और मालियोंसे पूछकर वे प्रसन्न मनसे पत्र-पुष्प लेने लगे। उसी समय सीताजी वहाँ आयीं। माताने उन्हें गिरिजा (पार्वती) जीकी पूजा करनेके लिये भेजा था ॥ १ ॥

संग सखीं सब सुभग सयानी । गावहिं गीत मनोहर बानी ॥

सर समीप गिरिजागृह सोहा । बरनि न जाइ देखि मनु मोहा ॥ २ ॥

साथमें सब सुन्दरी और सयानी सखियाँ हैं, जो मनोहर वाणीसे गीत गा रही हैं। सरोवरके पास गिरिजाजीका मन्दिर सुशोभित है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता; देखकर मन मोहित हो जाता है ॥ २ ॥

मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता । गई मुदित मन गौरिनिकेता ॥

पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा । निज अनुरूप सुभग बरु मागा ॥ ३ ॥

सखियोंसहित सरोवरमें स्नान करके सीताजी प्रसन्न मनसे गिरिजाजीके मन्दिरमें गयीं। उन्होंने बड़े प्रेमसे पूजा की और अपने योग्य सुन्दर वर माँगा ॥ ३ ॥

एक सखी सियसंगु बिहाई । गई रही देखन फुलवारी ॥

तेहि दोउ बंधु बिलोके जाई । प्रेम बियस सीता पहिं आई ॥ ४ ॥

एक सखी सीताजीका साथ छोड़कर फुलवाड़ी देखने चली गयी थी। उसने जाकर दोनों भाइयोंको देखा और प्रेममें विह्वल होकर वह सीताजीके पास आयी ॥ ४ ॥

दो०—तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नैन ।

कहु कारनु निज हरष कर पूछाहिं सब मृदु बैन ॥२२८॥



मञ्जनु करि सर सखिन्ह समेता । गई सुदित मन गोरिनिकेता ॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा । निज अनुरूप सुभग बर मागा ॥

सखियोंने उसकी दशा देखी कि उसका शरीर पुलकित है और नेत्रोंमें जल भरा है। सब कोमल वाणीसे पूछने लगीं कि अपनी प्रसन्नताका कारण बता ॥२२८॥

चौ०—देखन बागु कुअर दुइ आए। बय किसोर सब भँति सुहाए ॥

स्याम गौर किमि कहाँ बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥ १ ॥

[उसने कहा—] दो राजकुमार बाग देखने आये हैं। किशोर अवस्थाके हैं और सब प्रकारसे सुन्दर हैं। वे सौवले और गोरे [रंगके] हैं; उनके सौन्दर्यको मैं कैसे बखानकर कहूँ। वाणी बिना नेत्रकी है और नेत्रोंके वाणी नहीं है ॥ १ ॥

सुनि हरषीं सब सखीं सयानी। सियहिँ अति उतकंठा जानी ॥

एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आए काली ॥ २ ॥

यह सुनकर और सीताजीके हृदयमें बड़ी उत्कण्ठा जानकर सब सयानी सखियाँ प्रसन्न हुईं। तब एक सखी कहने लगी—हे सखी! ये वही राजकुमार हैं जो सुना है कि कल [विश्वामित्र] मुनिके साथ आये हैं, ॥ २ ॥

जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी ॥

बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहिं देखन जोगू ॥ ३ ॥

और जिन्होंने अपने रूपकी मोहिनी डालकर नगरके स्त्री-पुरुषोंको अपने वशमें कर लिया है। जहाँ-तहाँ सब लोग उन्हींकी छबिका वर्णन कर रहे हैं। अवश्य [चलकर] उन्हें देखना चाहिये, वे देखने ही योग्य हैं ॥ ३ ॥

तासु वचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने ॥

चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई ॥ ४ ॥

उसके वचन सीताजीको अत्यन्त ही प्रिय लगे और दर्शनके लिये उनके नेत्र अकुल उठे। उसी प्यारी सखीको आगे करके सीताजी चलीं। पुरानी प्रीतिको कोई लख नहीं पाता ॥ ४ ॥

दो०—सुमिरि सीय नारदवचन उपजी प्रीति पुनीत।

चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी समीत ॥२२९॥

नारदजीके वचनोंका स्मरण करके सीताजीके मनमें पवित्र प्रीति उत्पन्न हुई। वे चकित होकर सब ओर इस तरह देख रही हैं मानो डरी हुई मृगछौनी इधर-उधर देख रही हो ॥२२९॥

चौ०—कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि ॥

मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्वबिजय कहँ कीन्ही ॥ १ ॥

कंकण (हाथोंके कड़े), करधनी और पायजेबके शब्द सुनकर श्रीरामचन्द्रजी हृदयमें विचारकर लक्ष्मणसे कहते हैं—[यह ध्वनि ऐसी आ रही है] मानो कामदेवने विश्वको जीतनेका संकल्प करके डंकैपर चोट मारी है ॥ १ ॥

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सियमुख ससि भए नयन चकोरा ॥

भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल ॥ २ ॥

ऐसा कहकर श्रीरामजीने फिरकर उस ओर देखा। श्रीसीताजीके मुखरूपी चन्द्रमा [को निहारने] के लिये उनके नेत्र चकोर बन गये। सुन्दर नेत्र स्थिर हो गये (टकटकी लग गयी)। मानो निमि (जनक-

जीके पूर्वज) ने [जिनका सबकी पलकोंमें निवास माना गया है, लड़की-दामादके मिलन-प्रसंगको देखना उचित नहीं, इस भावसे] सकुचाकर पलकें छोड़ दीं (पलकोंमें रहना छोड़ दिया, जिससे पलकोंका गिरना रुक गया) ॥ २ ॥

देखि सीयसोभा सुख पावा । हृदयँ सराहत बचनु न आवा ॥

जनु बिरंचि सब निज निपुनारै । बिरंचि बिस्व कहँ प्रगटि देखारै ॥ ३ ॥

सीताजीकी शोभा देखकर श्रीरामजीने बड़ा सुख पाया । हृदयमें वे उसकी सराहना करते हैं, किन्तु मुखसे वचन नहीं निकलते । [वह शोभा ऐसी अनुपम है] मानो ब्रह्माने अपनी सारी निपुणताको मूर्तिमान् कर संसारको प्रकट करके दिखा दिया हो ॥ ३ ॥

सुंदरता कहँ सुंदर करै । छबिगृहँ दीपशिखा जनु बरै ॥

सब उपमा कबि रहे जुठारी । केहिं पटतरौं बिदेहकुमारी ॥ ४ ॥

वह (सीताजीकी शोभा) सुन्दरताको भी सुन्दर करनेवाली है । [वह ऐसी मालूम होती है] मानो सुन्दरतारूपी घरमें दीपककी लौ जल रही हो । (अबतक सुन्दरतारूपी भवनमें अँधेरा था, वह भवन मानो सीताजीकी सुन्दरतारूपी दीपशिखाको पाकर जगमगा उठा है, पहलेसे भी अधिक सुन्दर हो गया है ।) सारी उपमाओंको तो कवियोंने जूँटा कर रक्खा है । मैं जनकनन्दिनी श्रीसीताजीकी किससे उपमा दूँ । ॥ ४ ॥

दो०—सियसोभा हियँ बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि ।

बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि ॥ २३० ॥

[इस प्रकार] हृदयमें सीताजीकी शोभाका वर्णन करके और अपनी दशाको विचारकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी पवित्र मनसे अपने छोटे भाई लक्ष्मणसे समयानुकूल वचन बोले—॥ २३० ॥

चौ०—तात जनकतनया यह सोई । धनुषजग्य जेहि कारन होई ॥

पूजन गौरि सखीं लै आई । करत प्रकासु फिरइ फुलवाई ॥ १ ॥

हे तात ! यह वही जनकजीकी कन्या है जिसके लिये धनुषयज्ञ हो रहा है । सखियाँ इसे गौरीपूजनके लिये ले आयी हैं । यह फुलवाड़ीमें प्रकाश करती हुई फिर रही है ॥ १ ॥

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मनु छोभा ॥

सो सबु कारन जान बिधाता । फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता ॥ २ ॥

जिसकी अलौकिक सुन्दरता देखकर स्वभावसे ही पवित्र मेरा मन क्षुब्ध हो गया है । वह सब कारण (अथवा उसका सब कारण) तो विधाता जानें । किन्तु हे भाई ! सुनो, मेरे मंगलदायक (दाहिने) अंग फड़क रहे हैं ॥ २ ॥

रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ । मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ ॥

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी । जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी ॥ ३ ॥

रघुवंशियोंका यह सहज (जन्मगत) स्वभाव है कि उनका मन कभी कुमार्गपर पैर नहीं रखता । मुझे तो अपने मनका अत्यन्त ही विश्वास है कि जिसने [जाग्रतकी कौन कहे] स्वप्नमें भी परायी स्त्रीपर दृष्टि नहीं डाली है ॥ ३ ॥

जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी । नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी ॥

मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं । ते नरबर थोरे जग माहीं ॥ ४ ॥

प्रथम दर्शन



लताभवन ते प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ ।
निकसे जनु जुग विमल बिधु जलद पटल बिलगाइ ॥

रणमें शत्रु जिनकी पीठ नहीं देख पाते (अर्थात् जो लड़ाईके मैदानसे भागते नहीं), पराधीन जिनके मन और दृष्टिको नहीं खींच पाती और भिखारी जिनके यहाँसे 'नाहीं' नहीं पाते (खाली हाथ नहीं लौटते), ऐसे श्रेष्ठ पुरुष संसारमें थोड़े हैं ॥ ४ ॥

दो०—करत बतकही अनुज सन मन सियरूप लोमान ।

मुख सरोज मकरंद छवि करह मधुप इव पान ॥२३१॥

यों श्रीरामजी छोटे भाईसे बातें कर रहे हैं, पर मन सीताजीके रूपमें लुभाया हुआ उनके मुखरूपी कमलके छविरूप मकरन्द-रसको भौरकी तरह पी रहा है ॥२३१॥

चौ०—चितवति चकित चहूँ दिसि सीता । कहूँ गए नृपकिसोर मनु चिंता ॥

जहूँ बिलोक मृगसावक नैनी । जनु तहूँ बरिस कमल सित श्रेणी ॥ १ ॥

सीताजी चकित होकर चारों ओर देख रही हैं । मन इस बातकी चिन्ता कर रहा है कि राजकुमार कहाँ चले गये । बालमृगानयनी (मृगके छानेकी-सी आँखवाली) सीताजी जहाँ दृष्टि डालती हैं, वहाँ मानो श्वेत कमलोंकी कतार बरस जाती है ॥ १ ॥

लता ओट तब सखिन्ह लखाप । स्यामल गौर किसोर सुहाप ॥

देखि रूप लोचन ललचाने । हरषे जनु निज निधि पहिचाने ॥ २ ॥

तब सखियोंने लताकी ओटमें सुन्दर श्याम और गौर कुमारोंको दिखलाया । उनके रूपको देखकर मेघ ललचा उठे; वे ऐसे प्रसन्न हुए मानो उन्होंने अपना खजाना ही पहचान लिया ॥ २ ॥

थके नयन रघुपति छवि देखें । पलकनिहूँ परिहरीं निमेषें ॥

अधिक सनेह देह मै भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ॥ ३ ॥

श्रीरघुनाथजीकी छवि देखकर नेत्र थकित (निश्चल) हो गये । पलकोंने भी गिरना छोड़ दिया । अधिक स्नेहके कारण शरीर विह्वल (बेकाबू) हो गया । मानो शरद् ऋतुके चन्द्रमाको चकोरी [बेसुष हुई] देख रही हो ॥ ३ ॥

लोचन मग रामहि उर आनी । दीन्हे पलक कपाट सयानी ॥

जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी । कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी ॥ ४ ॥

नेत्रोंके रास्ते श्रीरामजीको हृदयमें लेकर चतुरशिरोमणि जानकीजीने पलकोंके किबाड़ लगा दिये (अर्थात् नेत्र मूँदकर उनका ध्यान करने लगीं) । जब सखियोंने सीताजीको प्रेमके वश जाना, तब वे मनमें सकुचा गयीं; कुछ कह नहीं सकती थीं ॥ ४ ॥

दो०—लताभवन तें प्रगट मे तेहि अवसर दोउ भाइ ।

निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलदपटल बिलगाइ ॥२३२॥

उसी समय दोनों भाई लतामण्डप (कुञ्ज) मेंसे प्रकट हुए । मानो दो निर्मल चन्द्रमा बादलोंके पर्दोंको हटाकर निकले हों ॥ २३२ ॥

चौ०—सोभासीबँ सुभग दोउ बीरा । नील पीत जलजाभ सरीरा ॥

मोरपंख सिर सोहत नीके । गुच्छ बीच बिच कुसुमकली के ॥ १ ॥

दोनों सुन्दर वीर शोभाकी सीमा हैं। उनके शरीरकी आभा नीले और पीले कमलकी-सी है। सिरपर सुन्दर मोरपंख सुशोभित हैं। उनके बीच-बीचमें फूलोंकी कलियोंके गुच्छे लगे हैं ॥ १ ॥

भाल तिलक भ्रमबिंदु सुहाए। भ्रवन सुभग भूषण छवि छाए ॥

बिकट भृकुटि कच घूघरचारे। नव सरोज लोचन रतनारे ॥ २ ॥

माथेपर तिलक और पसीनेकी बूँदें शोभायमान हैं। कानोंमें सुन्दर भूषणोंकी छवि छायी है। टेढ़ी भौंहें और घुँघराले बाल हैं। नये लाल कमलके समान रतनारे (लाल) नेत्र हैं ॥ २ ॥

चारु चिबुक नासिका कपोला। हासबिलास लेत मनु मोला ॥

मुखछवि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं ॥ ३ ॥

ठोड़ी, नाक और गाल बड़े सुन्दर हैं, और हँसीकी शोभा तो मनको मोल ही लिये लेती है। मुखकी छवि तो मुझसे कहीं ही नहीं जाती, जिसे देखकर बहुत-से कामदेव लजा जाते हैं ॥ ३ ॥

उर मनिमाल कंबुकल गीवा। काम कलभ कर भुज बलसींवा ॥

सुमन समेत वाम कर दोना। सावँर कुँअर सखी सुठि लोना ॥ ४ ॥

वक्षःस्थलपर मणियोंकी माला है। शंखके सदृश सुन्दर गला है। कामदेवके हाथीके बख्के सँडके समान (उतार-चढ़ाववाली एवं कोमल) भुजाएँ हैं, जो बलकी सीमा हैं। जिसके बाये हाथमें फूलोंसहित दोना है, हे सखी ! वह साँवला कुँअर तो बहुत ही सलोना है ॥ ४ ॥

दो०—केहरिकटि पट पीत धर सुपमा सील निधान।

देखि भानुकुलभूषणहि विसरा सखिन्ह अपान ॥ २३३ ॥

सिंहकी-सी (पतली, लचीली) कमरवाले, पीताम्बर धारण किये हुए, शोभा और शीलके भण्डार, सूर्यकुलके भूषण श्रीरामचन्द्रजीको देखकर सखियाँ अपने आपको भूल गयी ॥ २३३ ॥

चौ०—भरि धीरजु एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी ॥

बहुरि गौरि कर ध्यान करेह। भूपकिसोर देखि किन लेह ॥ १ ॥

एक चतुर सखी धीरज धरकर, हाथ पकड़कर सीताजीसे बोली—गिरिजाजीका ध्यान फिर कर लेना, इस समय राजकुमारको क्यों नहीं देख लेती ॥ १ ॥

सकुचि सीयँ तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंघ निहारे ॥

नख सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पितापनु मनु अति छोभा ॥ २ ॥

तब सीताजीने सकुचाकर नेत्र खोले और रघुकुलके दोनों सिंहोंको अपने सामने [खड़े] देखा। नखसे शिखातक श्रीरामजीकी शोभा देखकर और फिर पिताका प्रण याद करके उनका मन बहुत क्षुब्ध हो गया ॥ २ ॥

परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भयउ गहरु सब कहहिं सभीता ॥

पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। अस कहि मन बिहसी एक आली ॥ ३ ॥

जब सखियोंने सीताजीको परवश (प्रेमके वश) देखा, तब सब भयभीत होकर कहने लगीं—बड़ी देर हो गयी [अब चलना चाहिये]। कल इसी समय फिर आयेंगी। ऐसा कहकर एक सखी मनमें हँसी ॥ ३ ॥

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी । भयउ बिलंबु मातुभय मानी ॥

धरि बड़ि धीर रामु उर आने । फिरी अपनपउ पितुबस जाने ॥ ४ ॥

सखीकी यह रहस्यभरी बाणी सुनकर सीताजी सकुचा गयीं । देर हो गयी जान उन्हें माताका भय लगा । बहुत धीरज धरकर वे श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें ले आयीं, और [उनका ध्यान करती हुई] अपनेको पिताके अधीन जानकर लौट चलीं ॥ ४ ॥

दो०—देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि ।

निरखि निरखि रघुबीर छवि बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥ २३४ ॥

मृग, पक्षी और वृक्षोंको देखनेके बहाने सीताजी बार-बार घूम जाती हैं और श्रीरामजीकी छवि देख-देखकर उनका प्रेम कम नहीं बढ़ रहा है (अर्थात् बहुत ही बढ़ता जाता है) ॥ २३४ ॥

चौ०—जानि कठिन सिवचाप बिसूरति । चली राखि उर स्यामल मूरति ॥

प्रभु जब जात जानकी जानी । सुख सनेह सोभा गुन खानी ॥ १ ॥

शिवजीके धनुषको कटोर जानकर वे विसूरती (मनमें विलाप करती) हुई हृदयमें श्रीरामजीकी साँवली मूर्तिको रखकर चलीं । (शिवजीके धनुषकी कटोरताका स्मरण आनेसे उन्हें चिन्ता होती थी कि ये सुकुमार रघुनाथजी उसे कैसे तोड़ेंगे, पिताके प्रणकी स्मृतिसे उनके हृदयमें क्षोभ था ही, इसलिये मनमें विलाप करने लगीं । प्रेमवश ऐश्वर्यकी विस्मृति हो जानेसे ही ऐसा हुआ, फिर भगवान्‌के बलका स्मरण आते ही वे हर्षित हो गयीं और साँवली छविको हृदयमें धारण करके चलीं) । प्रभु श्रीरामजीने जब सुग, स्नेह, शोभा और गुणोंकी खान श्रीजानकीजीकी जाती हुई जाना, ॥ १ ॥

परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही । चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्ही ॥

गई भवानी भवन बहोरी । बंदि चरन बोली कर जोरी ॥ २ ॥

तब परम प्रेमकी कोमल स्याही बनाकर उनके स्वरूपको अपने सुन्दर चित्तरूपी भित्तिपर चित्रित कर लिया । सीताजी पुनः भवानीजीके मन्दिरमें गयीं और उनके चरणोंकी वन्दना करके हाथ जोड़कर बोली—॥ २ ॥

जय जय गिरिबरराज किसोरी । जय महेस मुख चंद चकोरी ॥

जय गजबदन षडानन माता । जगत जननि दामिनि दुनि गाता ॥ ३ ॥

हे श्रेष्ठ पर्वतोंके राजा हिमाचलकी पुत्री पार्वती ! आपकी जय हो, जय हो; हे महादेवजीके मुखरूपी चन्द्रमाकी [ओर टकटकी लगाकर देखनेवाली] चकोरी ! आपकी जय हो; हे हाथीके मुखवाले गणेशजी और छः मुखवाले स्वामिकार्तिकजीकी माता ! हे जगज्जननी ! हे विजलीकी-सी कान्तियुक्त शरीरवाली ! आपकी जय हो ! ॥ ३ ॥

नहिं तव आदि मध्य अवसाना । अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना ॥

भव भव बिभव पराभव कारिनि । बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि ॥ ४ ॥

आपका न आदि है, न मध्य है, और न अन्त है । आपके असीम प्रभावको वेद भी नहीं जानते । आप संसारको उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाली हैं । विश्वको मोहित करनेवाली और स्वतन्त्र रूपसे विहार करनेवाली हैं ॥ ४ ॥

दो०—पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख ।

महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष ॥२३५॥

पतिको इष्टदेव माननेवाली श्रेष्ठ नारियोंमें, हे माता ! आपकी प्रथम गणना है । आपकी अपार महिमाको हजारों सरस्वती और शेषजी भी नहीं कह सकते ॥ २३५ ॥

चौ०—सेवत तोहि सुलभ फल चारी । बरदायनी पुरारि पिभारी ॥

देवि पूजि पदकमल तुम्हारे । सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे ॥ १ ॥

हे [भक्तोंको मुँहमाँगा] वर देनेवाली ! हे त्रिपुरके शत्रु [शिवजी] की प्रिय पत्नी ! आपकी सेवा करनेसे चारों फल सुलभ हो जाते हैं । हे देवि ! आपके चरणकमलोंकी पूजा करके देवता, मनुष्य और मुनि सभी सुखी होते हैं ॥ १ ॥

मोर मनोरथु जानहु नीकें । बसहु सदा उर पुर सबही कें ॥

करीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं । अस कहि चरन गहे बैदेहीं ॥ २ ॥

मेरे मनोरथको आप भली भाँति जानती हैं, क्योंकि आप सदा सबके हृदयरूपी नगरीमें निवास करती हैं । इसी कारण मैंने उसको प्रकट नहीं किया । ऐसा कहकर जानकीजीने उनके चरण पकड़ लिये ॥ २ ॥

बिनय प्रेम बस भई भवानी । खसी माल मूरति मुसुकानी ॥

सादर सियँ प्रसादु सिर धरेऊ । बोली गौरि हरषु हियँ भरेऊ ॥ ३ ॥

गिरिजाजी सीताजीके विनय और प्रेमके वशमें हो गयीं । उन [के गले] की माला खिसक पड़ी और मूर्ति खुसकुरायी । सीताजीने आदरपूर्वक उस प्रसाद (माला) को सिरपर धारण किया । गौरीजीका हृदय हर्षसे भर गया और वे बोली—॥ ३ ॥

सुनु सिय सत्य असीस हमारी । पूजिहि मनकामना तुम्हारी ॥

नारदबचन सदा सुधि साचा । सो बर मिलिहि जाहिं मनु राचा ॥ ४ ॥

हे सीता ! हमारी सच्ची आशीस सुनो, तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी । नारदजीका वचन सदा पवित्र (संशय, भ्रम आदि दोषोंसे रहित) और सत्य है । जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही वर तुम्हको मिलेगा ॥ ४ ॥

छं०—मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बर सहज सुंदर साँबरो ।

करुणानिधान सुजान सीलु सनेहु जानत राखरो ॥

एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हिय हरषीं अली ।

तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली ॥

जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही स्वभावसे ही सुन्दर साँवला वर (श्रीरामचन्द्रजी) तुम्हको मिलेगा । वह करुणानिधान और सुजान (सर्वज्ञ) है, तुम्हारे शील और स्नेहको जानता है । इस प्रकार श्रीगौरीजीका आशीर्वाद सुनकर जानकीजीसमेत सब स्त्रियाँ हृदयमें हर्षित हुईं । तुलसीदासजी कहते हैं—भवानीजीको बार-बार पूजकर सीताजी प्रसन्न मनसे राजमहलको लौट चलीं ।

सों०—जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि ।

मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे ॥२३६॥

गौरीजीको अनुकूल जानकर सीताजीके हृदयको जो हर्ष हुआ वह कहा नहीं जा सकता ।
मुन्दर मंगलोंके मूल उनके बायें अंग फड़कने लगे ॥ २३६ ॥

चौ०—हृदयँ सराहत सीय लोनाई । गुर समीप गवने दोउ भाई ॥

राम कहा सब कौसिक पाहीं । सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं ॥ १ ॥

हृदयमें सीताजीके सौन्दर्यकी सराहना करते हुए दोनों भाई गुरुजीके पास गये । श्रीरामचन्द्रजीने विश्वामित्रजीसे सब कुछ कह दिया; क्योंकि उनका सरल स्वभाव है, छल तो उसे दूता भी नहीं है ॥ १ ॥

सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही । पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्ही ॥

सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे । रामु लखनु सुनि भए सुखारे ॥ २ ॥

फूल पाकर मुनिने पूजा की । फिर दोनों भाइयोंको आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे मनोरथ सफल हों ।
यह सुनकर श्रीराम-लक्ष्मण सुखी हुए ॥ २ ॥

करि भोजनु मुनिवर विग्यानी । लगे कहन कछु कथा पुरानी ॥

विगत दिवसु गुरु आयसु पाई । संध्या करन चले दोउ भाई ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ विज्ञानी मुनि विश्वामित्रजी भोजन करके कुछ प्राचीन कथाएँ कहने लगे । [इतनेमें] दिन बीत गया और गुरुकी आज्ञा पाकर दोनों भाई संध्या करने चले ॥ ३ ॥

प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा । सियमुख सरिस देखि सुख पावा ॥

बहुरि विचार कीन्ह मन माहीं । सीय बदन सम हिमकर नाहीं ॥ ४ ॥

[उधर] पूर्व दिशामें मुन्दर चन्द्रमा उदय हुआ । श्रीरामचन्द्रने उसे सीताके मुखके समान देखकर सुख पाया । फिर मनमें विचार किया कि यह चन्द्रमा सीताजीके मुखके समान नहीं है ॥ ४ ॥

दो०—जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंक ।

सियमुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंक ॥ २३७ ॥

खारे समुद्रमें तो इसका जन्म, फिर [उसी समुद्रसे उत्पन्न होनेके कारण] बिष इसका भाई; दिनमें यह मलिन (शोभाहीन, निस्तेज) रहता है, और कलङ्की (काले दागसे युक्त) है । बेचारा गरीब चन्द्रमा सीताजीके मुखकी बराबरी कैसे पा सकता है ॥ २३७ ॥

चौ०—घटइ बड़ विरहिनि दुखदाई । असइ राहु निज संधिहिं पाई ॥

कोक सोकप्रद पंकज द्रोही । अवगुन बहुत चंद्रमा तोही ॥ १ ॥

फिर यह घटना-वदता है और विरहिणी स्त्रियोंको दुःख देनेवाला है; राहु अपनी सन्धिमें पाकर इसे ग्रस लेता है । चक्रवेको [चक्रवीक वियोगका] शोक देनेवाला और कमलका वैरी (उसे मुरझा देनेवाला) है । हे चन्द्रमा ! तुझमें बहुत-से अवगुण हैं [जो सीताजीमें नहीं हैं] ॥ १ ॥

बैदेही मुख पटतर दीन्हे । होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हे ॥

सिय मुख छवि बिधु व्याज बखानी । गुर पहिं चले निसा बड़ि जानी ॥ २ ॥

अतः जानकीजीके मुखकी तुझे उपमा देनेमें बड़ा अनुचित कर्म करनेका दोष लगेगा । इस प्रकार चन्द्रमाके बहाने सीताजीके मुखकी छविका वर्णन करके, बड़ी रात हो गयी जान, वे गुरुजीके पास चले ॥ २ ॥

करि मुनि चरन सरोज प्रनामा । आयसु पाइ कोन्ह बिभ्रामा ॥

बिगत निसा रघुनाथक जागे । बंधु बिलोकि कहन अस लागे ॥ ३ ॥

मुनिके चरणकमलोंमें प्रणाम करके, आशा पाकर उन्होंने विभ्राम किया । रात बीतनेपर श्रीरघुनाथजी जागे और भाईको देखकर ऐसा कहने लगे—॥ ३ ॥

उयउ अरुन अवलोकहु ताता । पंकज कोक लोक सुखदाता ॥

बोले लखनु जोरि जुग पानी । प्रभु प्रभाउ सूखक मृदु बानी ॥ ४ ॥

हे तात ! देखो कमल, चक्रवाक और समस्त संसारको सुख देनेवाला अरुणोदय हुआ है । लक्ष्मणजी दोनों हाथ जोड़कर प्रभुके प्रभावको सूचित करनेवाली कोमल वाणी बोले—॥ ४ ॥

दो०—अरुनोदयँ सकुचे कुमुद उदगन जोति मलीन ।

जिमि तुम्हार आगमन सुनि भए नृपति बलहीन ॥ २३८ ॥

अरुणोदय होनेसे कुमुदिनी सकुचा गयी और तारागणोंका प्रकाश पीका पड़ गया, जिस प्रकार आपका आना सुनकर सब राजा बलहीन हो गये हैं ॥ २३८ ॥

चौ०—नृप सब नखत करहिं उजिआरी । टारि न सकहिं चाप तम भारी ॥

कमल कोक मधुकर खग नाना । हरषे सकल निसा अवसाना ॥ १ ॥

सब राजारूपी तारे उजाला (मन्द प्रकाश) करते हैं, पर वे धनुषरूपी महान् अन्धकारको हटा नहीं सकते । रात्रिका अन्त होनेसे जैसे कमल, चक्रवे, भौरे और नाना प्रकारके पक्षी हर्षित हो रहे हैं, ॥ १ ॥

पेसेहिं प्रभु सब भगत तुम्हारे । होइहहिं दूटें धनुष सुखारं ॥

उयउ भानु बिनु थम तम नासा । दुरे नखत जग तेजु प्रकासा ॥ २ ॥

वैसे ही हे प्रभो ! आपके सब भक्त धनुष दूटनेपर सुखी होंगे । सूर्य उदय हुआ; बिना ही पश्चिम अन्धकार नष्ट हो गया । तारे छिप गये, संसारमें तेजका प्रकाश हो गया ॥ २ ॥

रबि निज उदय व्याज रघुराया । प्रभुप्रनापु सब नृपन्ह दिखाया ॥

तब भुजबल महिमा उदघाटी । प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी ॥ ३ ॥

हे रघुनाथजी ! सूर्यने अपने उदयक बहाने सब राजाओंको प्रभु (आप) का प्रनाप दिखाया है । आपकी भुजाओंके बलकी महिमाको उद्घाटित करने (खोलकर दिवाने) के लिये ही धनुष तोड़नेकी यह पद्धति प्रकट हुई है ॥ ३ ॥

बंधुबचन सुनि प्रभु मुसुकांन । होइ सुचि सहज पुनीत नहानं ॥

नित्यक्रिया करि गुरु पहिं आप । चरनसरोज सुभग सिर नाप ॥ ४ ॥

भाईके वचन सुनकर प्रभु मुस्कराये । फिर स्वभावसे ही पवित्र श्रीगमजीने शौचमें निवृत्त होकर स्नान किया और नित्यकर्म करके वे गुरुजीके पास आये । आकर उन्होंने गुरुजीके सुन्दर चरणकमलोंमें सिर नवाया ॥ ४ ॥

सतानंदु तब जनक बोलाए । कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाए ॥

जनकबिनय तिन्ह आइ सुनाई । हरषे बोलि लिए दोउ भाई ॥ ५ ॥

तब जनकजीने शतानन्दजीको बुलाया और उन्हें तुरंत ही विश्वामित्र मुनिके पास भेजा। उन्होंने आकर जनकजीकी विनती सुनायी। विश्वामित्रजीने हर्षित होकर दोनों माइयोंको बुलाया ॥ ५ ॥

दो०—सतानंद पद बंदि प्रभु बैठे गुर पहिं जाइ ।

चलहु तात मुनि कहेउ तब पठवा जनक बोलाइ ॥२३९॥

शतानन्दजीके चरणोंकी वन्दना करके प्रभु श्रीरामचन्द्रजी गुरुजीके पास जा बैठे। तब मुनिने कहा— हे तात ! चलो, जनकजीने बुला भेजा है ॥ २३९ ॥

मासपारायण आठवाँ विश्राम

नवाह्नपारायण दूसरा विश्राम

चौ०—सीय स्वयंवर देखिअ जाई । ईसु काहि धौं देइ बड़ाई ॥

लखन कहा जसभाजनु सोई । नाथ कृपा तब जापर होई ॥ १ ॥

चलकर सीताजीके स्वयंवरको देखना चाहिये। देखें ईश्वर किसको बड़ाई देते हैं। लक्ष्मणजीने कहा— हे नाथ ! जिसपर आपकी कृपा होगी, वही बड़ाईका पात्र होगा (धनुष तोड़नेका श्रेय उसीको प्राप्त होगा) ॥ १ ॥

हरष मुनि सब सुनि बर बानी । दीन्हि असीस सबहिं सुखु मानी ॥

पुनि मुनिहुंद समेत कृपाला । देखन चले धनुष मख साला ॥ २ ॥

इस श्रेष्ठ वाणीको सुनकर सब मुनि प्रसन्न हुए। सभीने सुख मानकर आशीर्वाद दिया। फिर मुनियोंके समूहसहित कृपालु श्रीरामचन्द्रजी धनुषयज्ञशाला देखने चले ॥ २ ॥

रंगभूमि आए दोउ भाई । असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई ॥

चले सकल गृह काज बिसारी । बाल जुबान जरठ नर नारी ॥ ३ ॥

दोनों भाई रंगभूमिमें आये हैं, ऐसी खबर जब सब नगरनिवासियोंने पायी, तब बालक, जवान, बूढ़े, स्त्री, पुरुष सभी घर और काम-काजको भुलकर चल दिये ॥ ३ ॥

देखी जनक भीर मै भारी । सुचि सेवक सब लिए हुंकारी ॥

तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाइ । आसन उचित देहु सब काइ ॥ ४ ॥

जब जनकजीने देखा कि बड़ी भीड़ हो गयी है, तब उन्होंने सब विश्वासपात्र सेवकोंको बुलवा लिया और कहा—तुम लोग तुरंत सब लोगोंके पास जाओ और सब किसीको यथायोग्य आसन दो ॥ ४ ॥

दो०—कहि मृदु वचन विनीत तिन्ह बैठारे नर नारि ।

उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल अनुहारि ॥२४०॥

उन सेवकोंने कोमल और नम्र वचन कहकर उत्तम, मध्यम, नीच और लघु (सभी श्रेणीके) स्त्री-पुरुषोंको अपने-अपने योग्य स्थानपर बैठाया ॥ २४० ॥

चौ०—राजकुमर तेहि अवसर आए । मनहुँ मनोहरता तन छाप ॥

गुनसागर नागर बर बीरा । सुंदर स्यामल गौर सरीरा ॥ १ ॥

उसी समय राजकुमार (राम और लक्ष्मण) वहाँ आये। मानो साक्षात् मनोहरता उनके शरीरोंपर छा रही हो। सुन्दर साँवला और गोरा उनका शरीर है। वे गुणोंके समुद्र, चतुर और उत्तम वीर हैं ॥ १ ॥

राजसमाज बिराजत रूरे । उडगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे ॥
जिन्ह कँ रही भावना जैसी । प्रभुमूरति तिन्ह देखी तैसी ॥ २ ॥

वे राजाओके समाजमें ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो तारागणोंके बीच दो पूर्ण चन्द्रमा हों । जिनकी जैसी भावना थी, प्रभुकी मूर्ति उन्होंने वैसी ही देखी ॥ २ ॥

देखहिं रूप महा रनधीरा । मनहुँ बीररस धरै सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी । मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥ ३ ॥

महान् रणधीर [राजालोग] श्रीरामचन्द्रजीके रूपको ऐसा देख रहे हैं मानो स्वयं वीर-रस शरीर धारण किये हुए हो । कुटिल राजा प्रभुको देखकर डर गये, मानो बड़ी भयानक मूर्ति हो ॥ ३ ॥

रहे असुर छल छोनपबेषा । तिन्ह प्रभु प्रगट कालसम देखा ॥
पुरवासिन्ह देखे दोउ भाई । नरभूषन लोचन सुखदाई ॥ ४ ॥

छलसे जो राक्षस वहाँ राजाओंके भेषमें [बैठे] थे, उन्होंने प्रभुको प्रत्यक्ष कालके समान देखा । नगरनिवासियोंने दोनों भाइयोंको मनुष्योंके भूषणरूप और नेत्रोंको सुख देनेवाला देखा ॥ ४ ॥

दो०—नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज निज रुचि अनुरूप ।

जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप ॥ २४१ ॥

स्त्रियाँ हृदयमें हर्षित होकर अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उन्हें देख रही हैं । मानो शृंगार-रस ही परम अनुपम मूर्ति धारण किये सुशोभित हो रहा हो ॥ २४१ ॥

चौ०—बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा । बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥
जनकजाति अवलोकहिं कैसैं । सजन सगे प्रिय लागहिं जैसैं ॥ १ ॥

विद्वानोंको प्रभु विराटरूपमें दिखायी दिये, जिसके बहुतसे मुँह, हाथ, पैर, नेत्र और सिर हैं । जनकजीके सजातीय (कुटुम्बी) प्रभुको किस तरह (कैसे प्रिय रूपमें) देख रहे हैं, जैसे सगे सजन (सम्बन्धी) प्रिय लगते हैं ॥ १ ॥

सहित बिदेह बिलोकहिं रानी । सिसु सम प्रीति न जाति बखानी ॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा । सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥ २ ॥

जनकसमेत रानियाँ उन्हें अपने बच्चेके समान देख रही हैं, उनकी प्रीतिका वर्णन नहीं हो सकता । योगियोंको वे शान्त, शुद्ध, सम और स्वतःप्रकाश परम तत्त्वके रूपमें दीखे ॥ २ ॥

हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता । इष्टदेव इव सब सुखदाता ॥
रामहि चितव भायँ जेहि सीया । सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया ॥ ३ ॥

हरिभक्तोंने दोनों भाइयोंको सब सुखोंके देनेवाले इष्टदेवके समान देखा । सीताजी जिस भावसे श्रीरामचन्द्रजीको देख रही हैं, वह स्नेह और सुख कहनेमें नहीं आता ॥ ३ ॥

उर अनुभवति न कहि सक सोऊ । कवन प्रकार कहै कबि कोऊ ॥
पहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ । तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ ॥ ४ ॥

उस (स्नेह और सुख) का वे हृदयमें अनुभव कर रही हैं, पर वे भी उसे कह नहीं सकतीं । फिर कोई कवि उसे किस प्रकार कह सकता है । इस प्रकार जिसका जैसा भाव था, उसने कोसलाधीश श्रीरामचन्द्रजीको वैसा ही देखा ॥ ४ ॥

दो०—राजत राजसमाज महुँ कोसलराज किसोर ।

सुन्दर स्यामल गौर तन बिख बिलोचन चोर ॥२४२॥

सुन्दर साँवले और गौर शरीरवाले तथा विश्वभरके नेत्रोंको चुरानेवाले कोसलाधीशके कुमार राजसमाजमें [इस प्रकार] सुशोभित हो रहे हैं ॥ २४२ ॥

चौ०—सहज मनोहर मूरति दोऊ । कोटि काम उपमा लघु सोऊ ॥

सरद चंद निंदक मुख नीके । नीरज नयन भावते जी के ॥ १ ॥

दोनों मूर्तियाँ स्वभावसे ही (बिना किसी बनाव-शृंगारके) मनको हरनेवाली हैं । करोड़ों कामदेवोंकी उपमा भी उनके लिये तुच्छ है । उनके सुन्दर मुख शरद् [पूर्णिमा] के चन्द्रमाकी भी निन्दा करनेवाले (उसे नीचा दिखानेवाले) हैं और कमलके समान नेत्र मनको बहुत भाते हैं ॥ १ ॥

चितवनि चारु मार मनु हरनी । भावति हृदय जाति नहिं बरनी ॥

कल कपोल श्रुति कुंडल लोला । चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला ॥ २ ॥

सुन्दर चितवन [सारे संसारके मनको हरनेवाले] कामदेवके भी मनको हरनेवाली है । वह हृदयको बहुत ही प्यारी ल्लाती है, पर उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । सुन्दर गाल हैं, कानोंमें चञ्चल (झुमते हुए) कुण्डल हैं । ठोड़ी और अधर (ओठ) सुन्दर हैं । कोमल वाणी है ॥ २ ॥

कुमुदबंधु कर निंदक हाँसा । भृकुटी बिकट मनोहर नासा ॥

भाल बिसाल तिलक झलकाहीं । कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं ॥ ३ ॥

हँसी चन्द्रमाकी किरणोंका तिरस्कार करनेवाली है । भौंहें टेढ़ी और नासिका मनोहर है । [ऊँचे] चौड़े ललाटपर तिलक झलक रहे हैं (दीप्तिमान् हो रहे हैं) । [काले घुँघराले] बालोंको देखकर भौंरोंकी पंक्तियाँ लजा जाती हैं ॥ ३ ॥

पीत चौतनीं सिरनिह सुहाई । कुसुमकलीं बिच बीच बनाई ॥

रेखें रुचिर कंबुकल गीवाँ । जनु त्रिभुवन सुषमा की सीवाँ ॥ ४ ॥

पीली चौकोनी टोपियाँ सिरोंपर सुशोभित हैं, जिनके बीच-बीचमें फूलोंकी कलियाँ बनायी (काढ़ी) हुई हैं । शंखके समान सुन्दर (गोल) गलेमें मनोहर तीन रेखाएँ हैं, जो मानो तीनों लोकोंकी सुन्दरताकी सीमा [को बता रही] हैं ॥ ४ ॥

दो०—कुंजरमनि कंठा कलित उरनिह तुलसिका माल ।

वृषभकंध केहरि ठवनि बलनिधि बाहु बिसाल ॥ २४३ ॥

हृदयोंपर गजमुक्ताओंके सुन्दर कंठे और तुलसीकी मालाएँ सुशोभित हैं । उनके कंधे बैल्लोंके कंधेकी तरह [ऊँचे तथा पुष्ट] हैं, ऐंड़ (खड़े होनेकी शान) सिंहकी-सी है, और भुजाएँ विशाल एवं बलकी भण्डार हैं ॥ २४३ ॥

चौ०—कटि तूनीर पीतपट बाँधें । कर सर धनुष बाम वर काँधें ॥

पीत जय्य उपबीत सुहाय । नखसिख मंजु महाछवि छाए ॥ १ ॥

कमरमें तरकस और पीताम्बर बाँधे हैं । [दाहिने] हाथोंमें बाण और बायें कंधोंपर श्रेष्ठ धनुष तथा

पीले यशोपवीत (जनेऊ) सुशोभित हैं । नखसे लेकर शिखातक सब अंग सुन्दर हैं, उनपर महान् छवि छायी हुई है ॥ १ ॥

देखि लोग सब भए सुखारे । एकटक लोचन चलत न तारे ॥

हरषे जनकु देखि दोउ भाई । मुनि पद कमल गहे तब जाई ॥ २ ॥

उन्हें देखकर सब लोग सुखी हुए । नेत्र एकटक (निमेषशून्य) हैं, और तारे (पुतलियाँ) भी नहीं चलते । जनकजी दोनों भाइयोंको देखकर हर्षित हुए । तब उन्होंने जाकर मुनिके चरणकमल पकड़ लिये, ॥ २ ॥

करि बिनती निज कथा सुनाई । रंग अवनि सब मुनिहि देखाई ॥

जहँ जहँ जाहिं कुअँर बर दोऊ । तहँ तहँ चकित चितव सबु कोऊ ॥ ३ ॥

बिनती करके अपनी कथा सुनायी और मुनिको सारी रंगभूमि (यज्ञशाला) दिखलायी । [मुनिके साथ] दोनों श्रेष्ठ राजकुमार जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ-वहाँ सब कोई आश्चर्यचकित हो देखने लगते हैं ॥ ३ ॥

निज निज रुख रामहि सबु देखा । कोउ न जान कछु मरमु बिसेषा ॥

भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ । राजाँ मुदित महासुख लहेऊ ॥ ४ ॥

सबने रामजीको अपनी-अपनी ओर ही मुख किये हुए देखा, परन्तु इसका कुछ भी विशेष रहस्य कोई नहीं जान सका । मुनिने राजासे कहा—रंगभूमिकी रचना बड़ी सुन्दर है । [विश्वामित्र-जैसे निःस्पृह, विरक्त और शनी मुनिसे रचनाकी प्रशंसा सुनकर] राजा प्रसन्न हुए और उन्हें बड़ा सुख मिला ॥ ४ ॥

दो०—सब मंचन्ह तें मंचु एक सुंदर बिसद बिसाल ।

मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल ॥ २४४ ॥

सब मन्त्रोंसे एक मन्त्र अधिक सुन्दर, उज्ज्वल और विशाल था । [स्वयं] राजाने मुनिसहित दोनों भाइयोंको उसपर बैठाया ॥ २४४ ॥

चो०—प्रभुहि देखि सब नृप हियँ हारे । जनु राकेस उदय भएँ तारे ॥

असि प्रतीति सब के मन माहीं । राम चाप तोरब सक नाहीं ॥ १ ॥

प्रभुको देखकर सब राजा हृदयमें ऐसे हार गये (निराश एवं उत्साहहीन हो गये) जैसे पूर्ण चन्द्रमाके उदय होनेपर तारे प्रकाशहीन हो जाते हैं । [उनके तेजको देखकर] सबके मनमें ऐसा विश्वास हो गया कि रामचन्द्रजी ही धनुषको तोड़ेंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ १ ॥

बिनु भंजहुँ भवधनुषु बिसाला । मेलिहि सीय राम उर माला ॥

अस बिचारि गवनहु घर भाई । जसु प्रतापु बलु तेजु गवाई ॥ २ ॥

[इधर उनके रूपको देखकर सबके मनमें यह निश्चय हो गया कि] शिवजीके विशाल धनुषको [जो सम्भव है न टूट सके] बिना तोड़े भी सीताजी श्रीरामचन्द्रजीके ही गलेमें जयमाल डालेंगी (अर्थात् दोनों तरहसे ही हमारी हार होगी और विजय रामचन्द्रजीके हाथ रहेगी) । [यों सोचकर वे कहने लगे—] हे भाई ! ऐसा विचारकर यश, प्रताप, बल और तेज गँवाकर अपने-अपने घर चलो ॥ २ ॥

बिहसे भपर भूप सुनि बानी । जे अबिवेक भंघ अभिमानी ॥

तोरेहुँ धनुषु ब्याडु अवगाहा । बिनु तोरें को कुअरि बिआहा ॥ ३ ॥

दूसरे राजा, जो अबिवेकसे अंधे हो रहे थे और अभिमानी थे, यह बात सुनकर बहुत हँसे । [उन्होंने कहा—] धनुष तोड़नेपर भी विवाह होना कठिन है (अर्थात् सहजहीमें हम जानकीको हाथसे जाने नहीं देंगे), फिर बिना तोड़े तो राजकुमारीको न्याह ही कौन सकता है ॥ ३ ॥

एक बार कालउ किन होऊ । सिय हित समर जितब हम सोऊ ॥

यह सुनि अवर महिय मुसुकाने । धरमसील हरिभगत सयाने ॥ ४ ॥

काल ही क्यों न हो, एक बार तो सीताके लिये उसे भी हम युद्धमें जीत लेंगे । यह घमंडकी बात सुनकर दूसरे राजा, जो धर्मात्मा, हरिभक्त और सयाने थे, मुस्कराये ॥ ४ ॥

सो०—सीय बिआहबि राम गरब दूरि करि नृपन्ह के ।

जीति को सक संग्राम दसरथ के रनवाँकुरे ॥ २४५ ॥

[उन्होंने कहा —] राजाओंके गर्व दूर करके (जो धनुष किसीसे नहीं टूट सकेगा उसे तोड़कर) श्रीरामचन्द्रजी सीताजीको ब्याहेंगे । [रही युद्धकी बात, सो] महाराज दशरथके रणमें बाँके पुत्रोंको युद्धमें तो जीत ही कौन सकता है ॥ २४५ ॥

चौ०—अर्थ मरहु जनि गाल बजाई । मनमोदकन्हि कि भूख बुतार्ई ॥

सिख हमारि सुनि परम पुनीता । जगदंबा जानहु जियँ सीता ॥ १ ॥

गाल बजाकर व्यर्थ ही मत मरो । मनके लड़्डुओंसे भी कहीं भूख बुझती है । हमारी परम पवित्र सीखको सुनकर सीताजीको अपने जीमें साक्षात् जगज्जननी समझो (उन्हें पत्नीरूपमें पानेकी आशा एवं लालसा छोड़ दो), ॥ १ ॥

जगतपिता रघुपतिहि बिचारी । भरि लोचन छबि लेहु निहारी ॥

सुंदर सुखद सकल गुन रासी । ए दोउ बंधु संभु उर बासी ॥ २ ॥

और श्रीरघुनाथजीको जगत्का पिता परमेश्वर विचारकर, नेत्र भरकर उनकी छवि देख लो [ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलेगा] । सुन्दर, सुख देनेवाले और समस्त गुणोंकी राशि ये दोनों भाई शिवजीके हृदयमें बसनेवाले हैं (स्वयं शिवजी भी जिन्हें सदा हृदयमें छिपाये रखते हैं वे तुम्हारे नेत्रोंके सामने आ गये हैं) ॥ २ ॥

सुधासमुद्र समीप बिहार्ई । मृगजलु निरखि मरहु कत धार्ई ॥

करहु जाइ जा कहूँ जोइ भावा । हम तौ आजु जनमफलु पावा ॥ ३ ॥

समीप आये हुए [भगवद्दर्शनरूप] अमृतके समुद्रको छोड़कर तुम [जगज्जननी जानकीको पत्नीरूपमें पानेकी दुराशारूप मिथ्या] मृगजलको देखकर दौड़कर क्यों मरते हो । फिर [भाई] जिसको जो अच्छा लगे, वही जाकर करो; हमने तो [श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन करके] आज जन्म लेनेका फल पा लिया (जीवन और जन्मको सफल कर लिया) ॥ ३ ॥

अस कहि भले भूप अनुरागे । रूप अनूप बिलोकन लागे ॥

देखहिं सुर नभ खड़े बिमाना । बरषहिं सुमन करहिं कल गाना ॥ ४ ॥

ऐसा कहकर अच्छे राजा प्रेममग्न होकर श्रीरामजीका अनुपम रूप देखने लगे । [मनुष्योंकी तो बात

ही क्या] देवता लोग भी आकाशसे विमानोंपर चढ़े हुए दर्शन कर रहे हैं, और सुन्दर गान करते हुए फूल बरसा रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—जानि सुअवसरु सीय तब पठई जनक बोलाइ ।

चतुर सर्वीं सुंदर सकल सादर चलीं लवाइ ॥ २४६ ॥

तब सुअवसर जानकर जनकजीने सीताजीको बुल्य भेजा । सब चतुर और सुन्दर सखियाँ आदरपूर्वक उन्हें लिवा चली ॥ २४६ ॥

चौ०—सियसोभा नहिं जाइ बखानी । जगदंबिका रूप गुन खानी ॥

उपमा सकल मोहि लघु लागीं । प्राकृत नारि अंग अनुरागीं ॥ १ ॥

रूप और गुणोंकी खान जगजननी जानकीजीकी शोभाका वर्णन नहीं हो सकता । उनके लिये मुझे [काव्यकी] सब उपमाएँ तुच्छ लगती हैं, क्योंकि वे लौकिक स्त्रियोंके अंगोंसे अनुराग रखनेवाली हैं (अर्थात् वे जगत्की स्त्रियोंके अंगोंको दी जाती हैं) । [काव्यकी उपमाएँ सब त्रिगुणात्मक, मायिक जगत्से ली गयी हैं, उन्हें भगवान्की स्वरूपाशक्ति श्रीजानकीजीके अप्राकृत, चिन्मय अंगोंके लिये प्रयुक्त करना उनका अपमान करना और अपनेको उपहासास्पद बनाना है ।] ॥ १ ॥

सिय बरनिअ तेइ उपमा देई । कुकवि कहाइ अजसु को लेई ॥

जौ पठतरिअ तीय सम सीया । जग असि जुबति कहाँ कमनीया ॥ २ ॥

सीताजीके वर्णनमें उन्हीं उपमाओंको देकर कौन कुकवि कहलये और अपयशका भागी बने । (अर्थात् सीताजीके लिये उन उपमाओंका प्रयोग करना सुकविके पदसे च्युत होना और अपकीर्ति मोल लेना है, कोई भी सुकवि ऐसी नादानी एवं अनुचित कार्य नहीं करेगा ।) यदि किसी स्त्रीके साथ सीताजीकी तुलना की जाय, तो जगत्में ऐसी सुन्दर युवती है ही कहाँ [जिसकी उपमा उन्हे दी जाय] ॥ २ ॥

गिरा मुखर तन अरध भवानी । रति अति दुखित अतनु पति जानी ॥

विष बारुनी बंधु प्रिय जेही । कहिअ रमासम किमि वैदेही ॥ ३ ॥

[पृथ्वीकी स्त्रियोंकी तो बात ही क्या, देवताओंकी स्त्रियोंको भी यदि देखा जाय, जो हमारी अपेक्षा कहीं अधिक दिव्य और सुन्दर हैं, तो उनमें] सरस्वती तो बहुत बोलनेवाली हैं; पार्वती अर्द्धांगिनी हैं (अर्थात् अर्द्धनारीनटेश्वरके रूपमें उनका आधा ही अंग स्त्रीका है, शेष आधा अंग पुरुष-शिवजीका है); कामदेवकी स्त्री रति पतिको विना शरीरका (अंग) जानकर बहुत दुखी रहती है; और जिनके विष और मद्य-जैसे [समुद्रसे उत्पन्न होनेके नाते] प्रिय भाई हैं, उन लक्ष्मीके समान तो जानकीजीको कहा ही कैसे जाय ॥ ३ ॥

जौ छवि सुधा पयोनिधि होई । परम रूपमय कच्छपु सोई ॥

सोभा रजु मंदरु सिंगारु । मथै पानिपंकज निज मारु ॥ ४ ॥

[जिन लक्ष्मीजीकी बात ऊपर कही गयी है वे निकली थीं स्वारे समुद्रसे, जिसको मथनेके लिये भगवान्ने अति कर्कश पीठवाले कच्छपका रूप धारण किया, रस्सी बनार्या गयी महान् विषधर वासुकि नागकी, मथानीका कार्य किया अतिशय कठोर मन्दराचल पर्वतने और उसे मथा मारे देवताओं और दैत्योंने मिलकर । जिन लक्ष्मीको अतिशय शोभाकी खान और अनुपम सुन्दरी कहते हैं उनको प्रकट करनेमें हेतु बने ये सब असुन्दर एवं स्वाभाविक ही कठोर उपकरण । ऐसे उपकरणोंसे प्रकट हुई लक्ष्मी श्रीजानकीजीकी

समताको कैसे पा सकती हैं। हाँ, इसके विपरीत] यदि छबिरूपी अमृतका समुद्र हो, परम रूपमय कच्छप हो, शोभारूप रस्सी हो, शृंगार [रस] पर्वत हो और [उस छबिके समुद्रको] स्वयं कामदेव अपने ही करकमलसे मये, ॥ ४ ॥

दो०—एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल ।

तदपि सकोच समेत कबि कहहि सीय समतूल ॥ २४७॥

इस प्रकार [का संयोग होनेसे] जब सुन्दरता और सुखकी मूल लक्ष्मी उत्पन्न हो, तो भी कवि-लोग उसे [बहुत] संकोचके साथ सीताजीके समान कहेंगे ॥ २४७ ॥

[जिस सुन्दरताके समुद्रको कामदेव मयेगा वह सुन्दरता भी प्राकृत, लौकिक सुन्दरता ही होगी; क्योंकि कामदेव स्वयं भी त्रिगुणमयी प्रकृतिका ही विकार है। अतः उस सुन्दरताको मथकर प्रकट की हुई लक्ष्मी भी उपर्युक्त लक्ष्मीकी अपेक्षा कहीं अधिक सुन्दर और दिव्य होनेपर भी होगी प्राकृत ही, अतः उसके साथ भी जानकीजीकी तुलना करना कविके लिये बड़े संकोचकी बात होगी। जिस सुन्दरतासे जानकीजीका दिव्यातिदिव्य परमदिव्य विग्रह बना है वह सुन्दरता उपर्युक्त सुन्दरतासे भिन्न, अप्राकृत है—वस्तुतः लक्ष्मीजीका अप्राकृत रूप भी यही है। वह कामदेवके मथनेमें नहीं आ सकती और वह जानकीजीका स्वरूप ही है, अतः उनसे भिन्न नहीं, और उपमा दी जाती है भिन्न वस्तुके साथ। इसके अतिरिक्त जानकीजी प्रकट हुई हैं स्वयं अपनी महिमासे, उन्हें प्रकट करनेके लिये किसी भिन्न उपकरणकी अपेक्षा नहीं है। अर्थात् शक्ति शक्तिमानसे अभिन्न, अद्वैत तत्त्व है, अतएव अनुपमेय है, यही गूढ़ दार्शनिक तत्त्व भक्तशिरोमणि कविने इस अभूतोपमालंकारके द्वारा बड़ी सुन्दरतासे व्यक्त किया है।]

चौ०—चलीं संग लै सखीं सयानी । गावत गीत मनोहर बानी ॥

सोह नवल तनु सुंदर सारी । जगत जननि अनुलिन छबि भारी ॥ १ ॥

मयानी सखियाँ सीताजीको साथ लेकर मनोहर वाणीसे गीत गाती हुई चलीं। सीताजीके नवल शरीरपर सुन्दर साड़ी सुशोभित है। जगज्जननीकी महान् छवि अनुलनीय है ॥ १ ॥

भूषण सकल सुदेस सुहाय । अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए ॥

रंगभूमि जब सिय पगु धारी । देखि रूप मोहै नर नारी ॥ २ ॥

मन्त्र आभूषण अपनी-अपनी जगहपर शोभित है, जिन्हें सखियोंने अंग-अंगमें भलीभाँति सजाकर पहनाया है। जब सीताजीने रंगभूमिमें पैर रक्खा, तब उनका रूप देखकर स्त्री, पुरुष सभी मोहित हो गये ॥ २ ॥

हरषि सुरन्ह दुंदुभी बजाई । बरषि प्रसून अपछरा गाई ॥

पानिसरोज सोह जयमाला । अवचट चितए सकल भुआला ॥ ३ ॥

देवताओंने हर्षित होकर नगाड़े बजाये और पुष्प बरसाकर अप्सराएँ गाने लगीं। सीताजीके करकमलोंमें जयमाला सुशोभित है। सब राजा चकित होकर अचानक उनकी ओर देखने लगे ॥ ३ ॥

सीय चकित चित रामहि चाहा । भए मोहबस सब नरनाहा ॥

मुनि समीप देखे दोउ भाई । लगे ललकि लोचन निधि पाई ॥ ४ ॥

सीताजी चकित चित्तसे श्रीरामजीको देखने लगीं, तब सब राजालोग मोहके वश हो गये। सीताजी-

ने मुनिके पास दोनों भाइयोंको देखा तो उनके नेत्र अपना खजाना पाकर ललचाकर वहाँ (श्रीरामजीमें) जा लगे ॥ ४ ॥

दो०—गुरुजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि ।

लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि ॥२४८॥

परन्तु गुरुजनोंकी लाजसे तथा बहुत बड़े समाजको देखकर सीताजी सकुचा गयीं । वे श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें लकर सखियोंकी ओर देखने लगीं ॥ २४८ ॥

चौ०—रामरूपु अरु सियछवि देखैं । नर नारिन्ह परिहरौं निमेवैं ॥

सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं । बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका रूप और सीताजीकी छवि देखकर स्त्री-पुरुषोंने पलक मारना छोड़ दिया (सब एकटक उन्हींको देखने लगे) । सभी अपने मनमें सोचते हैं, पर कहते सकुचाते हैं । मन-ही-मन वे विधातासे विनय करते हैं—॥ १ ॥

हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई । मति हमारि असि देहि सुहाई ॥

बिनु बिचार पनु तजि नरनाह । सीय राम कर करै बिबाह ॥ २ ॥

हे विधाता ! जनककी मूढ़ताको शीघ्र हर लीजिये और हमारी ही ऐसी सुन्दर बुद्धि उन्हें दीजिये कि जिससे बिना ही विचार किये राजा अपना प्रण छोड़कर सीताजीका विवाह रामजीसे कर दे ॥ २ ॥

जगु भल कहिहि भाव सब काह । हठ कीन्हें अंतहुँ उर दाह ॥

एहिं लालसाँ मगन सब लोगू । बरु साँवरो जानकीजोगू ॥ ३ ॥

संसार उन्हें भल कहेगा, क्योंकि यह बात सब किसीको अच्छी लगती है । हठ करनेसे अन्तमें भी हृदय जलेगा । सब लोग इसी लालसामें मग्न हो रहे हैं कि जानकीजीके योग्य वर तो यह साँवला ही है ॥ ३ ॥

तब बंदीजन जनक बोलाए । बिरिदावली कहत चलि आए ॥

कह नृपु जाइ कहहु पन मोरा । चले भाट हियँ हरपु न थोरा ॥ ४ ॥

तब राजा जनकने बंदीजनो (भाटों) को बुलाया । वे विरिदावली (वंशकी कीर्ति) गाते हुए चले आये । राजाने कहा—जाकर मेरा प्रण सबसे कहो । भाट चले । उनके हृदयमें कम आनन्द नहीं था ॥ ४ ॥

दो०—बोले बंदी वचन वर मुनहु सकल महिपाल ।

पन विदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ विमाल ॥२४९॥

भाटोंने श्रेष्ठ वचन कहा—हे पृथ्वीकी पालना करनेवाले सब राजागण ! मुनिये । हम अपनी विशाल भुजा उठाकर जनकजीका प्रण कहते हैं—॥ २४९ ॥

चौ०—नृप भुजबलु बिधु सिवधनु राह । गरुअ कठोर बिदित सब काह ॥

रावनु बानु महाभट भारे । देखि सरासनु गर्वहिं सिधारे ॥ १ ॥

राजाओंकी भुजाओंका बल चन्द्रमा है, शिवजीका धनुष राहु है; वह भारी है, कठोर है, यह सबको विदित है । बड़े भारी योद्धा रावण और बाणासुर भी इस धनुषको देखकर गौंसे (चुपके-से) चलते बने (उसे उठाना तो दूर रहा, छूने तककी हिम्मत नहीं हुई) ॥ १ ॥

सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा । राजसमाज आजु जोइ तोरा ॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही । बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही ॥ २ ॥

उसी शिवजीके कठोर धनुषको आज इस राजसमाजमें जो भी तोड़ेगा, तीनों लोकोंकी विजयके साथ ही उसको जानकीजी विना किसी विचारके हठपूर्वक वरण करेंगी ॥ २ ॥

सुनि पन सकल भूप अभिलाषे । भटमानी अतिसय मन माखे ॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई । चले इष्टदेवन्ह सिर नाई ॥ ३ ॥

प्रण सुनकर सब राजा ललचा उठे । जो वीरताके अभिमानी थे, वे मनमें बहुत ही तमतमाये । कमर कसकर, अकुलाकर उठे और अपने इष्टदेवोंको सिर नवाकर चले ॥ ३ ॥

तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं । उठइ न कोटि भौंति बलु करहीं ॥
जिन्ह के कछु बिचारु मन माहीं । चाप समीप महीप न जाहीं ॥ ४ ॥

वे तमककर (बड़े तावसे) धनुषकी ओर देखते हैं और फिर निगाह जमाकर उसे पकड़ते हैं; करोड़ों भौंतिसे जोर लगाते हैं, पर वह उठता ही नहीं । जिन राजाओंके मनमें कुछ विवेक है, वे तो धनुषके पास ही नहीं जाते ॥ ४ ॥

दो०—तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठइ न चलहिं लजाइ ।

मनहुँ पाइ भट बाहुबलु अधिकु अधिकु गरुआइ ॥ २५० ॥

वे मूर्ख राजा तमककर (किटकिटाकर) धनुषको पकड़ते हैं, परन्तु जब नहीं उठता तो लजाकर चले जाते हैं । मानो वीरोंकी भुजाओंका बल पाकर वह धनुष अधिक-अधिक भारी होता जाता है ॥ २५० ॥

चौ०—भूप सहस दस एकहि वारा । लगे उठावन टरइ न टारा ॥

उगइ न संभु सरासनु कैसें । कामी वचन सती मनु जैसें ॥ १ ॥

तब दस हजार राजा एक ही बार धनुषको उठाने लगे, तो भी वह उनके टाले नहीं टला । शिवजीका वह धनुष कैसे नहीं डिगता था, जैसे कामी पुरुषके वचनोंसे सतीका मन कभी चलायमान नहीं होता ॥ १ ॥

सब नृप भए जोगु उपहासी । जैसें बिनु बिराग संन्यासी ॥
कीरति विजय बीरता भारी । चले चाप कर बरबस हारी ॥ २ ॥

सब राजा उपहासके योग्य हो गये, जैसे वैराग्यके विना संन्यासी उपहासके योग्य हो जाता है । कीर्ति, विजय, बड़ी वीरता, इन सबको वे धनुषके हाथों बरबस हारकर चले गये ॥ २ ॥

श्रीहत भए हारि हियँ राजा । बैठे निज निज जाइ समाजा ॥
नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने । बोले बचन रोष जुनु साने ॥ ३ ॥

राजालोग हृदयसे हारकर श्रीहीन (निष्प्रभ) हो गये, और अपने-अपने समाजमें जा बैठे । राजाओंको [असफल] देवकर जनक अकुला उठे और ऐसे वचन बोले जो मानो क्रोधमें सने हुए थे ॥ ३ ॥

दीप दीप के भूपति नाना । आप सुनि हम जो पनु ठाना ॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा । बिपुल बीर आप रणधीरा ॥ ४ ॥

मैंने जो प्रण ठाना था, उसे सुनकर द्वीप-द्वीपके अनेकों राजा आये । देवता और दैत्य भी मनुष्यका शरीर धारण करके आये तथा और भी बहुत-से रणधीर वीर आये ॥ ४ ॥

दो०—कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय ।

पावनिहार विरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय ॥२५१॥

परन्तु धनुषको तोड़कर मनोहर कन्या, बड़ी विजय और अत्यन्त सुन्दर कीर्तिको पानेवाला मानो ब्रह्माने किसीको रचा ही नहीं ॥ २५१ ॥

चौ०—कहहु काहि यहु लाभु न भावा । काहुँ न संकरचाप चढ़ावा ॥

रहउ चढ़ाउब तोरब भाई । तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई ॥ १ ॥

कहिये, यह लाभ किसको अच्छा नहीं लगता; परन्तु किसीने भी शंकरजीका धनुष नहीं चढ़ाया । अरे भाई ! चढ़ाना और तोड़ना तो दूर रहा, कोई तिलभर भूमि भी छुड़ा न सका ॥ १ ॥

अब जनि कोउ माखै भटमानी । वीर बिहीन मही मैं जानी ॥

तजहु आस निज निज गृह जाहु । लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहु ॥ २ ॥

अब कोई वीरताका अभिमानी नाराज न हो । मैंने जान लिया, पृथ्वी वीरोसे खाली हो गयी । अब आशा छोड़कर अपने-अपने घर जाओ; ब्रह्माने सीताका विवाह लिखा ही नहीं ॥ २ ॥

सुकुनु जाइ जौ पनु परिहरऊँ । कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ ॥

जौ जनतेउँ विनु भट भुबि भाई । तौ पनु करि होतेउँ न हँसाई ॥ ३ ॥

यदि प्रण छोड़ता हूँ तो पुण्य जाता है; इसलिये क्या करूँ, कन्या कुँआरी ही रहे । यदि मैं जानता कि पृथ्वी वीरोसे शून्य है तो प्रण करके उपहासका पात्र न बनता ॥ ३ ॥

जनकवचन सुनि सब नर नारी । देखि जानकिहि भए दुखारी ॥

माखे लखनु कुटिल भई भौहँ । रदपट फरकत नयन रिसौहँ ॥ ४ ॥

जनकके वचन सुनकर सभी स्त्री-पुरुष जानकीजीकी ओर देखकर दुखी हुए; परन्तु लक्ष्मणजी तमतमा उठे, उनकी भौहें टंढ़ी हो गयी । ओट फड़कने लगे और नेत्र क्रोधसे लाल हो गये ॥ ४ ॥

दो०—कहि न सकत रघुबीर डर लगे वचन जनु बान ।

नाइ राम पद कमल सिरु बोलें गिरा प्रमान ॥२५२॥

श्रीरघुवीरजीके डरसे कुछ कह तो सकते नहीं, पर जनकके वचन उन्हें बाण-से लगे । [जब न रह सके तब] श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें सिर नवाकर वे यथार्थ वचन बोले—॥ २५२ ॥

चौ०—रघुवंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई । तेहिं समाज अस कहइ न कोई ॥

कही जनक जसि अनुचित बानी । विद्यमान रघुकुलमनि जानी ॥ १ ॥

रघुवंशियोंमें कोई भी जहाँ होता है, उस समाजमें ऐसे वचन कोई नहीं कहता, जैसे अनुचित वचन रघुकुलशिरोमणि श्रीरामजीको उपस्थित जानते हुए भी जनकजीने कहे हैं ॥ १ ॥

सुनहु भानुकुल पंकज भानू । कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू ॥

जौ तुम्हारि अनुसासन पावौ । कंदुक इच ब्रह्मांड उठावौ ॥ २ ॥

हे सूर्यकुलरूपी कमलके सूर्य ! सुनिये । मैं स्वभावहीसे कहता हूँ, कुछ अभिमान करके नहीं; यदि आपकी आज्ञा पाऊँ, तो मैं ब्रह्माण्डको गेदकी तरह उठा लूँ, ॥ २ ॥

काचे घट जिमि डारौं फोरी । सकौं मेरु मूलक जिमि तोरी ॥

तव प्रताप महिमा भगवाना । को बापुरो पिनाक पुराना ॥ ३ ॥

और उसे कच्चे घड़ेकी तरह फोड़ डालूँ । मैं सुमेरु पर्वतकी मूलीकी तरह तोड़ सकता हूँ; हे भगवन् ! आपके प्रतापकी महिमासे यह बेचारा पुराना धनुष तो कौन चीज है ॥ ३ ॥

नाथ जानि अस आयसु होऊ । कौतुकु करां बिलोकिय सोऊ ॥

कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं । जोजन सत प्रमान लै धावौं ॥ ४ ॥

ऐसा जानकर हे नाथ ! आशा हो तो कुछ खेल करूँ, उसे भी देखिये । धनुषको कमलकी डंडीकी तरह चढ़ाकर उसे सौ योजनतक दौड़ा लिये चला जाऊँ ॥ ४ ॥

दो०—तोरौं लवकदंड जिमि तव प्रताप बल नाथ ।

जौं न करौं प्रभुपद सपथ कर न धरौं धनु भाथ ॥ २५३ ॥

हे नाथ ! आपके प्रतापके बलसे धनुषको कुकुरमुत्ते (बरसाती छत्ते) की तरह तोड़ दूँ । यदि ऐसा न करूँ तो प्रभुके चरणोंकी शपथ है, फिर मैं धनुष और तरकसको कभी हाथमें भी न लूँगा ॥ २५३ ॥

चो०—लखन सकोप बचन जे बोले । डगमगानि महि दिग्गज डोले ॥

सकल लोग सब भूप डेराने । सियहिउँ हरषु जनकु सकुचाने ॥ १ ॥

ज्यों ही लक्ष्मणजी क्रोधभरे वचन बोले कि पृथ्वी डगमगा उठी और दिशाओंके हाथी काँप गये । सभी लोग और सब राजा डर गये; सीताजीके हृदयमें हर्ष हुआ और जनकजी सकुचा गये ॥ १ ॥

गुर रघुपति सब मुनि मन माहीं । मुदित भए पुनि पुनि पुलकाहीं ॥

सयनहिं रघुपति लखनु नेवारै । प्रेम समेत निकट बैठारै ॥ २ ॥

गुरु विश्वामित्रजी, श्रीरघुनाथजी और सब मुनि मनमें प्रसन्न हुए और बार-बार पुलकित होने लगे । श्रीरामचन्द्रजीने इशारेसे लक्ष्मणको मना किया और प्रेमसहित अपने पास बैठा लिया ॥ २ ॥

बिस्वामित्रु समय सुभ जानी । बोले अति स्नेहमय वानी ॥

उठहु राम भंजहु भवचापा । मेटहु तात जनक परितापा ॥ ३ ॥

विश्वामित्रजी शुभ समय जानकर अत्यन्त प्रेमभरी वाणी बोले—हे राम ! उठो, शिवजीका धनुष तोड़ो और हे तात ! जनकका सन्ताप मिटाओ ॥ ३ ॥

सुनि गुरुबचन चरन सिर नावा । हरषु विषादु न कछु उर आवा ॥

ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ । ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ ॥ ४ ॥

गुरुके वचन सुनकर श्रीरामजीने चरणोंमें सिर नवाया । उनके मनमें न हर्ष हुआ, न विषाद; और वे अपनी पेड़ (खड़े होनेकी शान) से जवान सिंहको भी लजाते हुए सहज स्वभावसे ही उठ खड़े हुए ॥ ४ ॥

दो०—उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बालपतंग ।

बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग ॥ २५४ ॥

मञ्चरूपी उदयाचलपर रघुनाथजीरूपी बालसूर्यके उदय होते ही सब संतरूपी कमल खिल उठे और नेत्ररूपी भीरे हर्षित हो गये ॥ २५४ ॥

चौ०—नृपन्ह केरि आसा निसि नासी । बचन नखत अवली न प्रकासी ॥

मानी महिप कुमुद सकुचाने । कपटी भूप उलूक लुकाने ॥ १ ॥

राजाओंकी आशारूपी रात्रि नष्ट हो गयी । उनके वचनरूपी तारोंके समूहका चमकना बंद हो गया (वे मौन हो गये) । अभिमानी राजारूपी कुमुद संकुचित हो गये, और कपटी राजारूपी उलूक छिप गये ॥ १ ॥

भए बिसोक कोक मुनि देवा । बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा ॥

गुरपद बंदि सहित अनुरागा । राम मुनिन्ह सन आयसु मागा ॥ २ ॥

मुनि और देवतारूपी चकवे शोकरहित हो गये । वे फूल बरसाकर अपनी सेवा प्रकट कर रहे हैं । प्रेमसहित गुरुके चरणोंकी वन्दना करके श्रीरामचन्द्रजीने मुनियोंसे आज्ञा माँगी ॥ २ ॥

सहजहिं घटे सकल जग स्वामी । मत्त मंजु बर कुंजर गामी ॥

चलत राम सब पुर नर नारी । पुलक पूरि तन भए सुखारी ॥ ३ ॥

समस्त जगत्के स्वामी श्रीरामजी सुन्दर मतवाले श्रेष्ठ हाथीकी-सी चालसे स्वाभाविक ही चले । रामचन्द्रजीके चलते ही नगरभरके सब स्त्री-पुरुष मुखी हो गये और उनके शरीर रोमाञ्चसे भर गये ॥ ३ ॥

बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे । जौ कछु पुन्यप्रभाउ हमारे ॥

तौ सिवधनु मृनाल की नाई । तोरहुँ रामु गनेस गोसाई ॥ ४ ॥

उन्होंने पितर और देवताओंकी वन्दना करके अपने पुण्योंका स्मरण किया कि यदि हमारे पुण्योंका कुल भी प्रभाव हो, तो हे गणेश गोसाई ! रामचन्द्रजी शिवजीके धनुषको कमलकी डंडीकी भाँति तोड़ डालें ॥ ४ ॥

दो०—रामहि प्रेम समेत लखि सखिन्ह समीप बोलाइ ।

सीतामातु सनेह बस वचन कहइ बिलखाइ ॥ २५५ ॥

रामचन्द्रजीको [वात्सल्य] प्रेमके साथ देखकर और सखियोंको समीप बुलाकर सीताजीकी माता स्नेहवश विल्वकर (विलाप करती हुई-सी) ये वचन बोलीं—॥ २५५ ॥

चौ०—सखि सब कौतुक देखनिहार । जेउ कहावत हितू हमारे ॥

कोउ न बुझाइ कहइ गुर पाहीं । ए बालक अस्मि दृढ भलि नाहीं ॥ १ ॥

हे सखी ! ये जो हमारे हितू कहलाते हैं, वे भी सब तमाशा देखनेवाले हैं । कोई भी [इनके] गुरु विश्वामित्रजीको समझाकर नहीं कहता कि ये (रामजी) बालक हैं, इनके लिये ऐसा दृढ अच्छा नहीं । [जो धनुष रावण और बाण-जैसे जगद्विजयी वीरोंके हिलाने न हिल सका, उसे तोड़नेके लिये मुनि विश्वामित्रजीका रामजीको आज्ञा देना और रामजीका उसे तोड़नेके लिये चल देना रानीको दृढ ज्ञान पड़ा; इसलिये वे कहने लगीं कि गुरु विश्वामित्रजीको कोई समझाता भी नहीं ।] ॥ १ ॥

रावन वान लुआ नहिं चापा । हारे सकल भूप करि दाया ॥

सो धनु राजकुअँ कर देंहीं । बालमगल कि मंदर लेंहीं ॥ २ ॥

रावण और बाणासुरने जिस धनुषको छुआतक नहीं और सब राजा धमँड करके हार गये, वही धनुष इस मुकुमार राजकुमारके हाथमें दे रहे है । हमके वस्त्र भी कहीं मन्दराचट पहना उठा सकते हैं ॥ २ ॥

भूप सयानप सकल सिरानी । सखि बिधिगति कछु जानि न जानी ॥

बोली चतुर सखी मृदु बानी । तेजवंत लघु गनिअ न रानी ॥ ३ ॥

[और तो कोई समझाकर कहे या नहीं, राजा तो बड़े समझदार और ज्ञानी हैं, उन्हें तो गुरुको समझानेकी चेष्टा करनी चाहिये थी; परन्तु मानूस होता है] राजाका भी सारा सयानापन सच्चा हो गया । हे सखी ! विधाताकी गति कुछ जाननेमें नहीं आती [यों कहकर रानी चुप हो रही] । तब एक चतुर (रामजीके महत्त्वको जाननेवाली) सखी कोमल वाणीसे बोली—हे रानी ! तेजवान्को [देखनेमें छोटा होनेपर भी] छोटा नहीं गिनना चाहिये ॥ ३ ॥

कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा । सोखेउ सुजसु सकल संसारा ॥

रबिमंडल देखत लघु लागा । उदयँ तासु तिभुवन तम भागा ॥ ४ ॥

कहाँ षडेसे उत्पन्न होनेवाले [छोटे-से] मुनि अगस्त्य और कहाँ अपार समुद्र; किन्तु उन्होंने उसे सोख लिया, जिसका सुयश सारे संसारमें छाया हुआ है । सूर्यमण्डल देखनेमें छोटा लगता है, पर उसके उदय होते ही तीनों लोकोंका अन्धकार भाग जाता है ॥ ४ ॥

दो०—मंत्र परम लघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्व ।

महामन्त्र गजराज कहँ बस कर अंकुस खर्व ॥ २५६ ॥

मन्त्र अत्यन्त छोटा होता है, जिसके वशमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सभी देवता हैं । महान् मतवाले गजराजको छोटा-सा अंकुश वशमें कर लेता है ॥ २५६ ॥

चौ०—काम कुसुम धनु सायक लीन्है । सकल भुवन अपने बस कीन्है ॥

देवि तजिय संसउ अस जानी । भंजव धनुषु राम सुनु रानी ॥ १ ॥

कामदेवने फूलोंका ही धनुष-बाण लेकर समस्त लोकोंको अपने वशमें कर रक्खा है । हे देवी ! ऐसा जानकर सन्देह त्याग दीजिये । हे रानी ! सुनिये, रामचन्द्रजी धनुषको अवश्य ही तोड़ेंगे ॥ १ ॥

सखीवचन सुनि भै परतीती । मिटा बिषादु बड़ी अति प्रीती ॥

तब रामहि बिलोकि बैदही । सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही ॥ २ ॥

सखीके वचन सुनकर रानीको [श्रीरामजीके सामर्थ्यके सम्बन्धमें] विश्वास हाँ गया, उनकी उदासी मिट गयी और श्रीरामजीके प्रति प्रेम अत्यन्त बढ़ गया । उस समय श्रीरामचन्द्रजीको देखकर सीताजी भयभीत हृदयसे जिस-तिस [देवता] से विनती कर रही हैं ॥ २ ॥

मनही मन मनाव अकुलानी । होहु प्रसन्न महेस भवानी ॥

करहु सफल आपनि सेवकाई । करि हितु हरहु चापगुरुआई ॥ ३ ॥

वे व्याकुल होकर मन-ही-मन मना रही हैं—हे महेश-भवानी ! मुझपर प्रसन्न होइये, मैंने आपकी जो सेवा की है उसे सुफल कीजिये और मुझपर स्नेह करके धनुषके भारीपनको हर लीजिये ॥ ३ ॥

गननायक वरदायक देवा । आजु लगै कीन्हिउँ तुअ सेवा ॥

बार बार विनती सुनि मोरी । करहु चापगुरुता अति थोरी ॥ ४ ॥

हे गणोंके नायक, वर देनेवाले देवता गणेशजी ! मैंने आजहीके लिये तुम्हारी सेवा की थी । बार-बार मेरी विनती सुनकर धनुषका भारीपन बहुत ही कम कर दीजिये ॥ ४ ॥

दो०—देखि देखि रघुवीर तन सुर मनाव धरि धीर ।

भरे बिलोचन प्रेमजल पुलकावली सरीर ॥ २५७ ॥

श्रीरघुनाथजीकी ओर देख-देखकर सीताजी धीरज धरकर देवताओंको मना रही हैं। उनके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू भरे हैं और शरीरमें रोमाञ्च हो रहा है ॥ २५७ ॥

चौ०—नीकें निरखि नयन भरि सोभा । पितृपनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा ॥

अहह तात दारुनि हठ ठानी । समुसत नहिं कहु लाभु न हानी ॥ १ ॥

अच्छी तरह नेत्र भरकर श्रीरामजीकी शोभा देखकर, फिर पिताके प्रणका स्मरण करके सीताजीका मन क्षुब्ध हो उठा। अहो! पिताजीने बड़ा ही कठिन हठ ठाना है, वे लाभ-हानि कुछ भी नहीं समझ रहे हैं ॥ १ ॥

सचिव सभय सिख देह न कोई । बुधसमाज बड़ अनुचित होई ॥

कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा । कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा ॥ २ ॥

मन्त्री डर रहे हैं, इसलिये कोई उन्हें सीख भी नहीं देता; पण्डितोंकी सभामें यह बड़ा अनुचित हो रहा है। कहाँ तो वज्रसे भी बढ़कर कठोर धनुष और कहाँ ये कोमलशरीर किशोर श्यामसुन्दर! ॥ २ ॥

बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा । सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा ॥

सकल सभा कै मति भै भोरी । अब मोहि संभुचाप गति तोरी ॥ ३ ॥

हे विधाता! मैं हृदयमें किस तरह धीरज धरूँ; सिरसके फूलके कणसे कर्हा हीरा छेदा जाता है। सारी सभाकी बुद्धि भोली (बावली) हो गयी है, अतः हे शिवजीके धनुष! अब तो मुझे तुम्हाग ही आसरा है ॥ ३ ॥

निज जड़ता लोगन्ह पर डारी । होहि हरअ रघुपतिहि निहारी ।

अति परिताप सीय मन माहीं । लव निमेष जुग सय सम जाहीं ॥ ४ ॥

तुम अपनी जड़ता लोगोंपर डालकर, श्रीरघुनाथजी [के सुकुमार शरीर] को देखकर [उतने ही] हलके हो जाओ। इस प्रकार सीताजीके मनमें बड़ा ही सन्ताप हो रहा है। निमेषका एक लव (अंश) भी मौ युगोंके समान बीत रहा है ॥ ४ ॥

दो०—प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल ।

खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधुमंडल डोल ॥ २५८ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको देखकर फिर पृथ्वीकी ओर देखती हुई सीताजीके चञ्चल नेत्र इस प्रकार शोभित हो रहे हैं मानो चन्द्रमण्डलरूपी डोलमें कामदेवकी दो मछलियाँ खेल रही हों ॥ २५८ ॥

चौ०—गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी । प्रगट न लाज निसा अवलोकी ॥

लोचन जलु रह लोचन कोना । जैसे परम रूपन कर सोना ॥ १ ॥

सीताजीकी वाणीरूपी भ्रमरीको उनके मुखरूपी कमलने गोक रक्खा है। लाजरूपी रात्रिको देखकर वह प्रकट नहीं हो रही है। नेत्रोंका जल नेत्रोंके कोने (कोण) में ही गूँ जाना है, जैसे बड़े भारी कंजूसका सोना कोनेमें ही गड़ा रह जाता है ॥ १ ॥

सकुची व्याकुलता बड़ि जानी । धरि धीरजु प्रतीति उर आनी ॥

तन मन बचन मोर पनु साचा । रघुपति पद सरोज चितु राचा ॥ २ ॥

अपनी बढ़ी हुई व्याकुलता जानकर सीताजी सकुचा गयीं, और धीरज धरकर हृदयमें विश्वास ले आया कि यदि तन, मन और बचनसे मेरा प्रण सच्चा है और श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंमें मेरा चित्त वास्तवमें अनुरक्त है, ॥ २ ॥

कल्याण

(१) धनुष्यशाला



चहुँ दिसि कंचनमंच विसाय ।
रचे जहाँ बैठहिं महिपाल ॥

[पृष्ठ २२३]

(२) राजाओंका दर्प चूर्ण



तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं ।
उठइ न कोटि भौति बलु करहीं ॥

[पृष्ठ २४३]

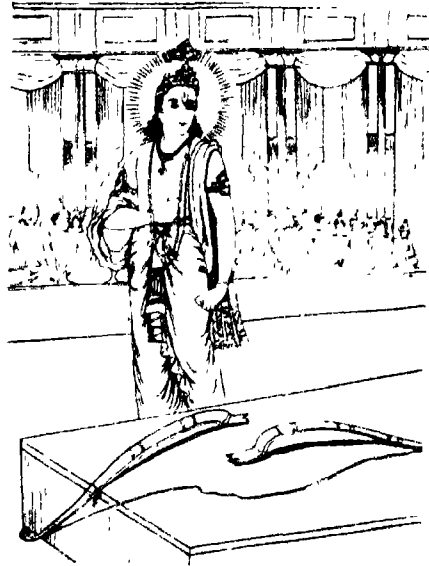
(३) धनुषकी ओर दृष्टिपात



.....तकेउ धनु कैसे ।
चितव गरुड लघु व्यालहि जैसे ॥

[पृष्ठ २४९]

(४) धनुषभंग



प्रभु दीउ चापखंड महि डारे ।
देखि लोग सब भए मुखारे ॥

[पृष्ठ २५०]

तौ भगवानु सकल उर बासी । करिहि मोहि रघुवर कै दासी ॥
जेहि कै जेहि पर सत्य सनेह । सो तेहि मिलि न कछु सन्देह ॥ ३ ॥

तो सबके हृदयमें निवास करनेवाले भगवान् मुझे श्रीरामचन्द्रजीकी दासी अवश्य बनायेंगे । जिसका जिसपर सच्चा स्नेह होता है, वह उसे मिलता ही है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥

प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना । कृपानिधान राम सबु जाना ॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसैं । चितव गरु लघु ब्यालहि जैसैं ॥ ४ ॥

प्रभुकी ओर देखकर सीताजीने शरीरके द्वारा प्रेम ठान लिया (अर्थात् यह निश्चय कर लिया कि यह शरीर इन्हींका होकर रहेगा या रहेगा ही नहीं) । कृपानिधान श्रीरामजी सब जान गये । उन्होंने सीताजीको देखकर धनुषकी ओर कैसे ताका, जैसे गरुड़जी छोटे-से साँपकी ओर देखते हैं ॥ ४ ॥

दो०—लखन लखेउ रघुबंसमनि ताकेउ हरकोदंड ।

पुलकि गात बोले बचन चरन चापि ब्रह्मांड ॥ २५९ ॥

इधर जब लक्ष्मणजीने देखा कि रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजीने शिवजीके धनुषकी ओर ताका है, तो वे शरीरसे पुलकित हो ब्रह्माण्डको चरणोंसे दबाकर निम्नलिखित वचन बोले—॥ २५९ ॥

चौ०—दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला । धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥
रामु चहहिं संकरधनु तोरा । होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥ १ ॥

हे दिग्गजो ! हे कच्छप ! हे शेष ! हे वाराह ! धीरज धरकर पृथ्वीको थामे रहो, जिसमें यह हिलने न पावे; श्रीरामचन्द्रजी शिवजीके धनुषको तोड़ना चाहते हैं । मेरी आज्ञा सुनकर सब सावधान हो जाओ ॥ १ ॥

चाप समीप रामु जब आए । नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए ॥
सब कर संसउ अरु अग्यानू । मंद महीपन्ह कर अभिमानू ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजी जब धनुषके समीप आये, तब सब स्त्री-पुरुषोंने देवताओं और पुण्योंको मनाया । सबका सन्देह और अज्ञान, नीच राजाओंका अभिमान, ॥ २ ॥

भृगुपति केरि गरुड गरुआई । सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई ॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा । रानिन्ह कर दारुन दुख दावा ॥ ३ ॥

परशुरामजीके गर्वकी गुरुता, देवता और श्रेष्ठ मुनियोंकी कातरता (भय), सीताजीका सोच, जनकका पश्चात्ताप और रानियोंके दारुण दुःखका दावानल, ॥ ३ ॥

संभुचाप बड़ बोहितु पाई । चढ़े जाइ सब संगु बनाई ॥
राम बाहुबल सिंधु अपारु । चहत पाव नहिं कोउ कड़हारु ॥ ४ ॥

ये सब शिवजीके धनुषरूपी बड़े जहाजको पाकर, समाज बनाकर उसपर जा चढ़े । ये श्रीरामचन्द्रजीकी भुजाओंके बलरूपी अपार समुद्रके पार जाना चाहते हैं, परन्तु कोई केवट नहीं है ॥ ४ ॥

दो०—राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि ।

चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि ॥ २६० ॥

श्रीरामजीने सब लोगोंकी ओर देखा और उन्हें चित्रमें लिखे हुए-से देखकर फिर कृपाधाम श्रीरामजीने सीताजीकी ओर देखा और उन्हें विशेष व्याकुल जाना ॥ २६० ॥

चौ०—देखी बिपुल विकल बैदेही । निमिष बिहात कल्प सम तेही ॥

तृपित बारि बिनु जो तनु त्यागा । मुपै करइ का सुघातइगा ॥ १ ॥

जानकीजीको बहुत ही विकल देखा; उनका एक-एक क्षण कल्पके समान बीत रहा था । यदि प्यासा आदमी पानीके बिना शरीर छोड़ दे, तो उसके मर जानेपर अमृतका तालाब भी क्या करेगा ॥ १ ॥

का बरषा सब कृषी सुखाने । समय चुकै पुनि का पछिताने ॥

अस जियँ जानि जानकी देखी । प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेषी ॥ २ ॥

सारी खेतीके सूख जानेपर वर्षा किस कामकी । समय बीत जानेपर पछतानेसे क्या लाभ । जीमें ऐसा समझकर श्रीरामजीने जानकीजीकी ओर देखा और उनका विशेष प्रेम लखकर वे पुलकित हो गये ॥ २ ॥

गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा । अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा ॥

दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ । पुनि नभ धनु मंडलसम भयऊ ॥ ३ ॥

मन-ही-मन उन्होंने गुरुको प्रणाम किया और बड़ी फुरतीसे धनुषको उठा लिया । जब उसे [हाथमें] लिया, तब वह धनुष बिजलीकी तरह चमका और फिर आकाशमें मण्डल-जैसा (मण्डलाकार) हो गया ॥ ३ ॥

लेत चढ़ावत खैचत गाढ़े । काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़े ॥

तेहि छन राम मध्य धनु तोरा । भरे भुवन धुनि घोर कठोरा ॥ ४ ॥

लेते, चढ़ाते और जोरसे खींचते हुए किसीने नहीं लखा (अर्थात् कब उठाया, कब चढ़ाया और कब खींचा इसका किसीको पता नहीं लगा); सबने श्रीरामजीको [धनुष खींचे] गवड़े देखा । उसी क्षण श्रीरामजीने धनुषको बीचसे तोड़ डाला । भयंकर कठोर ध्वनिसे सब लोक भर गये ॥ ४ ॥

छं०—भरे भुवन घोर कठोर रव रबिबाजि तजि मारगु चले ।

चिह्नरहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले ॥

सुर असुर मुनि कर कान दीन्है सकल विकल बिचारहीं ।

कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं ॥

घोर कठोर शब्दसे सब लोक भर गये; सूर्यके घोड़े मार्ग छोड़कर चलने लगे; दिग्गज चिन्हाड़ने लगे; धरती डोलने लगी; शेष, वाराह और कच्छप कलमला उठे; देवता, राक्षस और मुनि कानोंपर हाथ रखकर सब व्याकुल होकर विचारने लगे । तुलसीदासजी कहते हैं, जब [सबको निश्चय हो गया कि] रामजीने धनुषको तोड़ डाला, तब सब श्रीरामचन्द्रजीकी 'जय' बोलने लगे ।

सो०—संकरचापु जहाजु सागरु रघुबर बाहुबलु ।

बूड़ सो सकल समाजु चढ़ा जो प्रथमहिं मोहबस ॥ २६१ ॥

शिवजीका धनुष जहाज है और रघुनाथजीकी मुजाओंका बल समुद्र है; [धनुष टूटनेसे] वह सारा समाज डूब गया जो मोहवश पहले इस जहाजपर चढ़ा था [जिसका वर्णन ऊपर आया है] ॥ २६१ ॥

चौ०—प्रभु दोउ चापखंड महि डारे । देखि लोग सब भय सुखारे ॥

कौंसिकरूप पयोनिधि पावन । प्रेमबारि अवगाह सुहावन ॥ १ ॥

प्रभुने धनुषके दोनों टुकड़े पृथ्वीपर डाल दिये । यह देखकर सब लोग सुखी हुए । विश्वामित्ररूपी पवित्र समुद्रमें, जिसमें प्रेमरूपी सुन्दर अयाह जल भरा है, ॥ १ ॥

रामरूप राकेसु निहारी । बद्ध बीचि पुलकावलि भारी ॥

बाजे नम गहगहे निसाना । देवबधू नाचहिं करि गाना ॥ २ ॥

रामरूपी पूर्णचन्द्रको देखकर पुलकावलीरूपी भारी लहरें बढ़ने लगीं । आकाशमें बड़े जोरसे नगाड़े बजने लगे और देवाङ्गनाएँ गान करके नाचने लगीं ॥ २ ॥

ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा । प्रभुहिं प्रसंसहिं देहिं असीसा ॥

बरिसहिं सुमन रंग बहु माला । गावहिं किंनर गीत रसाला ॥ ३ ॥

ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध और मुनीश्वर लोग प्रभुकी प्रशंसा कर रहे हैं और आशीर्वाद दे रहे हैं । वे गविरंगे फूल और मालाएँ बरसा रहे हैं । किन्नर लोग रसीले गीत गा रहे हैं ॥ ३ ॥

रही भुवन मरि जय जय बानी । धनुषभंग धुनि जात न जानी ॥

मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी । भंजेउ राम संभु धनु भारी ॥ ४ ॥

सारे ब्रह्माण्डमें जय-जयकारकी ध्वनि छा गयी, जिसमें धनुष टूटनेकी ध्वनि जान ही नहीं पड़ती । जहाँ-तहाँ पुरुष-स्त्री प्रसन्न होकर कह रहे हैं कि रामचन्द्रजीने शिवजीके भारी धनुषको तोड़ डाला ॥ ४ ॥

दो०—बंदी मागध सूतगन बिरुद बढहिं मतिधीर ।

करहिं निछावरि लोग सब हय गय धन मनि चीर ॥ २६२ ॥

धीर बुद्धिवाले भाट, मागध और सूतलोग विरुदावली (कीर्ति) का बग्वान कर रहे हैं । सब लोग घोड़े, हाथी, धन, मणि और वस्त्र निछावर कर रहे हैं ॥ २६२ ॥

चौ०—झाँझ मृदंग संख सहनार्द । भेरि ढोल तुंदुभी सुहार्द ॥

बाजहिं बहु बाजने सुहाए । जहँ तहँ जुबतिन्ह मंगल गाए ॥ १ ॥

झाँझ, मृदंग, शंख, सहनार्द, भेरी, ढोल और सुहावने नगाड़े आदि बहुत प्रकारके सुन्दर बाजे बज रहे हैं; जहाँ-तहाँ युवतियों मङ्गलगीत गा रही हैं ॥ १ ॥

सखिन्ह सहित हरषी अति रानी । सूखत धान परा जनु पानी ॥

जनक लहेउ सुखु सोखु बिहार्द । पैरत थकै थाह जनु पार्द ॥ २ ॥

सखियोंसहित सब रानियाँ हर्षित हो गयी; मानो सूखते हुए धानपर पानी पड़ गया हो । जनकजीने सोच त्यागकर सुख प्राप्त किया; मानो तैरते-तैरते थके हुए पुरुषने थाह पा ली ॥ २ ॥

श्रीहत भए' भूप धनु टूटे । जैसे दिवस दीपछबि छूटे ॥

सीयसुखहि बरनिअ केहि भाँती । जनु चातकी पाइ जलु स्वाती ॥ ३ ॥

धनुष टूट जानेपर राजा लोग ऐसे श्रीहीन (निस्तेज) हो गये जैसे दिनमें दीपककी शोभा जाती रहती है । सीताजीका सुख किस प्रकार वर्णन किया जाय; जैसे चातकी स्वातीका जल पा गयी हो ॥ ३ ॥

रामहि लखनु बिलोकत कैसे । ससिहि चकोर किसोरकु जैसे ॥

सतानंद तब आयसु दीन्हा । सीताँ गमनु राम पहिं कीन्हा ॥ ४ ॥

भीरामजीको लक्ष्मणजी किस प्रकार देख रहे हैं जैसे चन्द्रमाको चकोरका बच्चा देख रहा हो । तब शतानन्दजीने आशा दी और सीताजीने श्रीरामजीके पास गमन किया ॥ ४ ॥

दो०—संग सखीं सुंदर चतुर गावहिं मंगलचार ।

गवनी बालमराल गति सुषमा अंग अपार ॥२६३॥

साथमें सुन्दर चतुर सखियाँ मङ्गलचारके गीत गा रही हैं । सीताजी बालहंसिनीकी चालसे चली; उनके अंगोंमें अपार शोभा है ॥ २६३ ॥

चौ०—सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसैं । छविगन मध्य महाछवि जैसैं ॥

करसरोज जयमाल सुहाई । बिखबिजय सोभा जेहिं छाई ॥ १ ॥

सखियोंके बीचमें सीताजी कैसी शोभित हो रही हैं, जैसे बहुत-सी छवियोंके बीचमें महाछवि हो । करकमलमें सुन्दर जयमाला है, जिसमें विश्वविजयकी शोभा छापी हुई है ॥ १ ॥

तन सकोचु मन परम उछाह । गूढ़ प्रेमु लखि परइ न काह ॥

जाइ समीप रामछवि देखी । रहि जनु कुअरि चित्र अवरेखी ॥ २ ॥

सीताजीके शरीरमें संकोच है, पर मनमें परम उत्साह है; उनका यह गुप्त प्रेम किसीको जान नहीं पड़ रहा है । समीप जाकर, रामजीकी शोभा देखकर राजकुमारी सीताजी चित्रमें लिखी-सी रह गयी ॥ २ ॥

चतुर सखीं लखि कहा बुझाई । पहिरावहु जयमाल सुहाई ॥

सुनत जुगल कर माल उठाई । प्रेम बिबस पहिराइ न जाई ॥ ३ ॥

चतुर सखीने यह दशा देखकर समझाकर कहा—सुहावनी जयमाला पहनाओ । यह सुनकर सीताजीने दोनों हाथोंसे माल उठाया, पर प्रेमके विवश होनेसे पहनायी नहीं जाती ॥ ३ ॥

सोहत जनु जुग जलज सनाला । ससिहि समीत देत जयमाला ॥

गावहिं छवि अवलोकि सहेली । सियँ जयमाल राम उर मेली ॥ ४ ॥

[उस समय उनके हाथ ऐसे सुशोभित हो रहे हैं] मानो डंडियोंसहित दो कमल चन्द्रमाको डरते हुए जयमाला दे रहे हों । इस छविको देखकर सखियाँ गाने लगीं । तब सीताजीने रामजीके गलेमें जयमाला पहना दी ॥ ४ ॥

सो०—रघुवर उर जयमाल देखि देव बरिसहिं सुमन ।

सकुचे सकल भुआल जनु बिलोकि रवि कुमुदगन ॥२६४॥

श्रीरघुनाथजीके हृदयपर जयमाला देखकर देवता फूल बरसाने लगे । समस्त राजागण इस प्रकार सकुचा गये मानो सूर्यको देखकर कुमुदोंका समूह सिकुड़ गया हो ॥ २६४ ॥

चौ०—पुर अरु ब्योम बाजने बाजे । खल भए मलिन साधु सब राजे ॥

सुर किंनर नर नाग मुनीसा । जय जय जय कहि देहिं असीसा ॥ १ ॥

नगर और आकाशमें बाजे बजने लगे । दुष्ट लोग उदास हो गये और सब सज्जन लोग प्रसन्न हो गये । देवता, किन्नर, मनुष्य, नाग और मुनीश्वर जय-जयकार करके आशीर्वाद दे रहे हैं ॥ १ ॥

नाचहिं गावहिं बिबुधबधूटी । बार बार कुसुमांजलि छूटी ॥

जहँ तहँ बिप्र बेदधुनि करहों । बंदी बिरिदावलि उबारहीं ॥ २ ॥

देवताओंकी स्त्रियाँ नाचती-गाती हैं । बार-बार हाथोंसे पुष्पोंकी अञ्जलियाँ छूट रही हैं । जहाँ-तहाँ ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे हैं और भाट लोग विरदावली (कुलकीर्ति) बग्वान रहे हैं ॥ २ ॥

कल्याण

(१) रावण-बाणासुर



रावन बान छुआ नहिं चापा ।
हारे सकल भूप करि दापा ॥
[पृष्ठ २४६]

(२) जयमाला



सुनत जुगल कर माल उठाई ।
प्रेम विवस पहिराइ न जाई ॥
[पृष्ठ २५२]

(३) परशुरामजीका कोप



बार बार मुनि विप्रवर कहा राम सन राम ।
बोले भृगुपति सरुष इसि तहूँ बंधु सम बाम ॥
[पृष्ठ २६४]

(४) परशुरामजीका मोहभंग



राम रमापति कर धनु लेहू ।
लैंचहु मिटे मोर संदेह ॥
[पृष्ठ २६५]

महि पाताल नाक जसु व्यापा । राम बरी सिय भंजेउ चापा ॥

करहिं आरती पुर नर नारी । देहिं निछावरि बिस बिसारी ॥ ३ ॥

पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग तीनों लोकोंमें यश फैल गया कि श्रीरामचन्द्रजीने धनुष तोड़ दिया और सीताजीको वरण कर लिया । नगरके नर-नारी आरती कर रहे हैं और अपनी पूँजी (हैसियत) को भुलकर (सामर्थ्यसे बहुत अधिक) निछावर कर रहे हैं ॥ ३ ॥

सोइति सीय राम कै जोरी । छवि सिंगार मनहुँ एक ठोरी ॥

सखीं कहहिं प्रभुपद गहु सीता । करति न चरन परस अति भीता ॥ ४ ॥

श्रीसीता-रामजीकी जोड़ी ऐसी सुशोभित हो रही है मानो छवि और शृङ्गार-रस एकत्र हो गये हों । सखियाँ कह रही हैं—सीते ! स्वामीके चरण छुओ; किन्तु सीताजी अत्यन्त भयभीत हुई उनके चरण नहीं छूतीं ॥ ४ ॥

दो०—गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि ।

मन बिहसे रघुवंसमनि प्रीति अलौकिक जानि ॥ २६५ ॥

गौतमजीकी स्त्री अहल्याकी गतिका स्मरण करके सीताजी श्रीरामजीके चरणोंको हाथोंसे स्पर्श नहीं कर रही हैं । सीताजीकी अलौकिक प्रीति जानकर रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजी मनमें हँसे ॥ २६५ ॥

चौ०—तब सिय देखि भूप अभिलाषे । कूर कपूत मूढ़ मन माखे ॥

उठि उठि पहिरि सनाह अभागे । जहँ तहँ गाल बजावन लागे ॥ १ ॥

उस समय सीताजीको देखकर कुछ राजा ललचा उठे । वे दुष्ट, कुपूत और मूढ़ राजा मनमें बहुत तमतमाये । वे अभागे उठ-उठकर, कवच पहनकर, जहाँ-तहाँ गाल बजाने लगे ॥ १ ॥

लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ । धरि बाँधहु नृपबालक दोऊ ॥

तोरे धनुषु चाहु नहिं सरई । जीवत हमहि कुँयारि को बरई ॥ २ ॥

कोई कहते हैं, सीताको छीन लो, और दोनों राजकुमारोंको पकड़कर बाँध लो । धनुष तोड़नेसे ही चाह नहीं सरेगी (पूरी होगी) । हमारे जीते-जी राजकुमारीको कौन ब्याह सकता है ॥ २ ॥

जौं बिदेहु कछु करै सहारै । जीतहु समर सहित दोउ भारै ॥

साधु भूप बोले सुनि बानी । राजसमाजहि लाज लजानी ॥ ३ ॥

यदि जनक कुछ सहायता करें, तो युद्धमें दोनों भाइयों सहित उसे भी जीत लो । ये वचन सुनकर साधु राजा बोले—इस [निर्लज्ज] राजसमाजको देखकर तो लाज भी लजा गयी ॥ ३ ॥

बलु प्रतापु वीरता बड़ाई । नाक पिनाकहि संग सिधायै ॥

सोइ सुरता कि अब कहूँ पाई । असि बुधि तौ विधि मुहँ मसि लाई ॥ ४ ॥

अरे ! तुम्हारा बल, प्रताप, वीरता, बड़ाई और नाक (प्रतिष्ठा) तो धनुषके साथ ही चली गयी । वही वीरता थी कि अब कहींसे मिली है ! ऐसी दुष्ट बुद्धि है, तभी तो विधाताने तुम्हारे मुखोंपर कालिख लगा दी ॥ ४ ॥

दो०—देखहु रामहि नयन भरि तजि इरिषा मदु कोहु ।

लखन रोषु पावकु प्रबल जानि सलभ जनि होहु ॥ २६६ ॥

ईर्ष्या, घमंड और क्रोध छोड़कर नेत्र भरकर श्रीरामजी [की छवि] को देख लो । लक्ष्मणके क्रोधको प्रबल अग्नि जानकर उसमें पतंगे मत बनो ॥ २६६ ॥

चो०—बैनतेयबलि जिमि चह कागू । जिमि ससु चहै नाग अरि भागू ॥
जिमि चह कुसल अकारन कोही । सब संपदा चहै सिवद्रोही ॥ १ ॥

जैसे गरुड़का भाग कौआ चाहे, सिंहका भाग खरगोश चाहे, विना कारण ही क्रोध करनेवाला अपनी कुशल चाहे, शिवजीसे विरोध करनेवाला सब प्रकारकी सम्पत्ति चाहे, ॥ १ ॥

लोभि लोलुप कल कीरति चहई । अकलंकता कि कामी लहई ॥
हरिपद बिमुख परमगति चाहै । तस तुम्हार लालचु नरनाहै ॥ २ ॥

लोभी-लालची सुन्दर कीर्ति चाहे, कामी मनुष्य निष्कलंकता [चाहे तो] क्या पा सकता है !
और जैसे श्रीहरिके चरणोंसे विमुख मनुष्य परमगति (मोक्ष) चाहे, हे राजाओ ! सीताके लिये तुम्हारा लालच भी वैसा ही व्यर्थ है ॥ २ ॥

कोलाहलु सुनि सीय सकानी । सखीं लवाई गईं जहँ रानी ॥
रामु सुभायँ चले गुरु पाहीं । सिय सनेहु बरनत मन माहीं ॥ ३ ॥

कोलाहल सुनकर सीताजी सशक्ति हो गयीं । तब सखियाँ उन्हें वहाँ ले गयीं जहाँ रानी (सीताजीकी माता) थीं । श्रीरामचन्द्रजी मनमें सीताजीके प्रेमका बखान करते हुए स्वाभाविक चालसे गुरुजीके पास चले ॥ ३ ॥

रानिन्ह सहित सोचबस सीया । अब धौं बिधिहि काह करनीया ॥
भूपबचन सुनि इत उत तकहीं । लखनु रामडर बोलि न सकहीं ॥ ४ ॥

रानियोंसहित सीताजी [दुष्ट राजाओंके दुर्वचन सुनकर] सोचके वश हैं कि न जाने विधाता अब क्या करनेवाले हैं । राजाओंके वचन सुनकर लक्ष्मणजी इधर-उधर ताकते हैं, किन्तु श्रीरामचन्द्रजीके डरने कुछ बोल नहीं सकते ॥ ४ ॥

दो०—अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप ।

मनहुँ मत्त गजगन निरखि सिंधकिसोरहि चोप ॥ २६७ ॥

उनके नेत्र लाल और भौंहें टेढ़ी हो गयीं, और वे क्रोधसे राजाओंकी ओर देखने लगे; मानो मतवाले हाथियोंका झुंड देखकर सिंहके बच्चेको जोश आ गया हो ॥ २६७ ॥

चो०—खरभरु देखि बिकल पुरनारी । सब मिलि देहिं महीपन्ह गारिं ॥
तेहिं अवसर सुनि सिवधनु भंगा । आयउ भृगुकुल कमल पतंगा ॥ १ ॥

खलबली देखकर जनकपुरकी स्त्रियाँ व्याकुल हो गयीं और सब मिलकर राजाओंको गालियाँ देने लगीं । उसी मौकेपर शिवजीके धनुषका टूटना सुनकर भृगुकुलरूपी कमलके सूर्य परशुरामजी आये ॥ १ ॥

देखि महीप सकल सकुचाने । बाज झपट जनु लवा लुकाने ॥
गौरि सरीर भूति भल आजा । भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा ॥ २ ॥

इन्हें देखकर सब राजा सकुचा गये, मानो बाजके झपटनेपर बटेर झुक (छिप) गये हों । गौरी शरीरपर विभूति (भस्म) बड़ी फब रही है, और विशाल ललाटपर त्रिपुण्ड्र विशेष शोभा दे रहा है ॥ २ ॥

सीस जटा ससिबदनु सुहावा । रिस बस कछुक अरुन होइ आवा ॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते । सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते ॥ ३ ॥

सिरपर जटा है; सुन्दर मुखचन्द्र क्रोधके कारण कुछ लाल हो आया है । मौँह टेढ़ी और आँखें क्रोधसे लाल हैं । सहज ही देखते हैं, तो भी ऐसा जान पड़ता है मानो क्रोध कर रहे हैं ॥ ३ ॥

वृषभकंध उर बाहु बिसाला । चारु जनेउ माल मृगछाला ॥

कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधें । धनु सर कर कुठार कल काँधें ॥ ४ ॥

बैलके समान (ऊँचे और पुष्ट) कंधे हैं, छाती और भुजाएँ विशाल हैं । सुन्दर यशोपवीत धारण किये, माला पहने और मृगचर्म लिये हैं । कमरमें मुनियोंका वस्त्र (वल्कल) और दो तरकस बाँधे हैं, हाथमें धनुष-बाण और सुन्दर कंधेपर फरसा धारण किये हैं ॥ ४ ॥

दो०—सांत वेषु करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप ।

धरि मुनितनु जनु वीरस आयउ जहँ सब भूप ॥२६८॥

शान्त वेष है, परन्तु करनी बहुत कठोर है । स्वरूपका वर्णन नहीं किया जा सकता । मानो वीर-रस ही मुनिका शरीर धारण करके, जहाँ सब राजा लोग हैं वहाँ आ गया हो ॥ २६८ ॥

चौ०—देखत भृगुपति वेषु कराला । उडे सकल भयँ विकल भुआला ॥

पितु समेत कहि कहि निज नामा । लगे करन सब दंड प्रनामा ॥ १ ॥

परशुरामजीका भयानक वेष देखकर सब राजा भयसे व्याकुल हो उठ खड़े हुए और पितासहित अपना नाम कह-कहकर सब दण्डवत् प्रणाम करने लगे ॥ १ ॥

जेहि सुभायँ चितवहिं हितु जानी । सो जानइ जनु आइ खुटानी ॥

जनक बहोरि आइ सिर नावा । सीय बोलाइ प्रनामु करावा ॥ २ ॥

परशुरामजी हित समझकर भी सहज ही जिसकी ओर देख लेते हैं, वह समझता है मानो मेरी आयु पूरी हो गयी । फिर जनकजीने आकर सिर नवाया और सीताजीको बुलाकर प्रणाम कराया ॥ २ ॥

आसिष दीन्हि सबीं हरषानीं । निज समाज लै गई सयानीं ॥

बिस्वामित्रु मिले पुनि आई । पदसरोज मेले दोउ भाई ॥ ३ ॥

परशुरामजीने सीताजीको आशीर्वाद दिया । स्त्रियाँ हर्षित हुई और वे सयानी स्त्रियाँ उनको अपनी मण्डलीमें ले गयी । फिर विश्वामित्रजी आकर मिले और उन्होंने दोनों भाइयोंको उनके चरणकमलोंपर गिराया ॥ ३ ॥

रामु लखनु दसरथके ढोटा । दीन्हि असीस देखि भल जोटा ॥

रामहि चितइ रहे थकि लोचन । रूप अपार मार मद मोचन ॥ ४ ॥

[विश्वामित्रजीने कहा—] ये राम और लक्ष्मण राजा दशरथके पुत्र हैं । उनकी सुन्दर जोड़ी देखकर परशुरामजीने आशीर्वाद दिया । कामदेवके भी मदको छुड़ानेवाले श्रीरामचन्द्रजीके अपार रूपको देखकर उनके नेत्र थकित हो रहे ॥ ४ ॥

दो०—बहुरि बिलोकि बिदेह सन कहहु काह अति भीर ।

पूँछत जानि अजान जिमि ब्यापेउ कोपु सरीर ॥२६९॥

फिर सब देखकर, जानते हुए भी अनजानकी तरह जनकजीसे पूछते हैं कि कहो, यह बड़ी भारी भीड़ कैसी है ? उनके शरीरमें क्रोध व्याप्त हो गया ॥ २६९ ॥

चौ०—समाचार कहि जनक सुनाए । जेहि कारन महीप सब आए ॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे । देखे चापखंड महि डारे ॥ १ ॥

जिस कारण सब राजा आये थे, राजा जनकने वे सब समाचार कह सुनाये । जनकके बचन सुनकर परशुरामजीने फिरकर दूसरी ओर देखा तो धनुषके टुकड़े पृथ्वीपर पड़े हुए दिखायी दिये ॥ १ ॥

अति रिस बोले बचन कठोरा । कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा ॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू । उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू ॥ २ ॥

अत्यन्त क्रोधमें भरकर वे कठोर बचन बोले—रे, मूर्ख जनक ! बता, धनुष किसने तोड़ा ! उसे शीघ्र दिखा, नहीं तो अरे मूढ़ ! आज मैं जहाँतक तेरा राज्य है वहाँतककी पृथ्वी उलट दूँगा ॥ २ ॥

अति डर उतर देत नृपु नाहीं । कुटिल भूप हरषे मन माहीं ॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी । सोचहिं सकल त्रास उर भारी ॥ ३ ॥

राजाको अत्यन्त डर लगा, जिसके कारण वे उत्तर नहीं देते । यह देखकर कुटिल राजा मनमें बड़े प्रसन्न हुए । देवता, मुनि, नाग और नगरके स्त्री-पुरुष सभी सोच करने लगे । सबके हृदयमें बढ़ा भय है ॥ ३ ॥

मन पछिताति सीय महतारी । बिधि अब सँवरी बात बिगारी ॥
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता । अरध निमेष कलपसम बीता ॥ ४ ॥

सीताजीकी माता मनमें पछता रही हैं कि हाय ! विधाताने अब बनी-बनायी बात बिगाड़ दी । परशुरामजीका स्वभाव सुनकर सीताजीको आधा क्षण भी कल्पके समान बीतने लगा ॥ ४ ॥

दो०—समय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु ।
हृदयँ न हरषु विषादु कछु बोले श्रीरघुवीरु ॥ २७० ॥

तब श्रीरामचन्द्रजी लोगोंको भयभीत और सीताजीको डरी हुई जानकर बोले—उनके हृदयमें न कुछ हर्ष था, न विषाद—॥ २७० ॥

मासपारायण नवाँ विश्राम

चौ०—नाथ संभुधनु भंजनिहारा । होइहि केउ एक दास तुम्हारा ॥
आयसु काह कहिअ किन मोही । सुनि रिसाह बोले मुनि कोही ॥ १ ॥

हे नाथ ! शिवजीके धनुषको तोड़नेवाला आपका कोई एक दास ही होगा । क्या आश है, मुझसे क्यों नहीं कहते ? यह सुनकर क्रोधी मुनि रिसाकर बोले—॥ १ ॥

सेवकु सो जो करै सेवकाई । अरि करनी करि करिअ लराई ॥
सुनहु राम जेहिं सिवधनु तोरा । सहसबाहु सम सो रिपु मोरा ॥ २ ॥

सेवक वह है जो सेवाका काम करे । शत्रुका काम करके तो लड़ाई ही करनी चाहिये । हे राम ! सुनो, जिसने शिवजीके धनुषको तोड़ा है, वह सहस्रबाहुके समान मेरा शत्रु है ॥ २ ॥

सो बिलगाउ बिहाइ समाजा । न त मारे जैहहिं सब राजा ॥
सुनि मुनिबचन लखन मुसुकाने । बोले परसुधरहि अपमाने ॥ ३ ॥

वह इस समाजको छोड़कर अलग हो जाय, नहीं तो सभी राजा मारे जायँगे । मुनिके बचन सुनकर लक्ष्मणजी मुस्कराये और परशुरामजीका अपमान करते हुए बोले—॥ ३ ॥

बहु धनुहीं तोरीं लरिकारिं । कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं ॥

पहि धनु पर ममता केहि हेतु । सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतु ॥ ४ ॥

हे गोसाईं ! लड़कपनमें हमने बहुत-सी धनुहियाँ तोड़ डालीं, आपने कभी ऐसा क्रोध नहीं किया । इसी धनुषपर इतनी ममता किस कारणसे है ? यह सुनकर भृगुवंशकी ध्वजास्वरूप परशुरामजी कुपित होकर कहने लगे—॥ ४ ॥

दो०—रे नृपबालक कालवस बोलत तोहि न संभार ।

धनुही सम तिपुरारि धनु बिदित सकल संसार ॥ २७१ ॥

अरे राजपुत्र ! कालके वश होनेसे तुझे बोलनेमें कुछ भी होश नहीं है । सारे संसारमें विख्यात शिवजीका यह धनुष क्या धनुहीके समान है ! ॥ २७१ ॥

चो०—लखन कहा हँसि हमरें जाना । सुनहु देव सब धनुष समाना ॥

का छति लाभु जून धनु तोरें । देखा राम नयन के भोरें ॥ १ ॥

लक्ष्मणजीने हँसकर कहा—हे देव ! सुनिये, हमारे जानमें तो सभी धनुष एक-से ही हैं । पुराने धनुषके तोड़नेमें क्या हानि-लाभ । श्रीरामचन्द्रजीने तो इसे नवीनके धोखेसे देखा था ॥ १ ॥

छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू । मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू ॥

बोले चितइ परसु की ओरा । रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा ॥ २ ॥

फिर यह तो छूते ही टूट गया; इसमें रघुनाथजीका भी कोई दोष नहीं है । हे मुनि ! आप बिना ही कारण किस लिये क्रोध करते हैं । परशुरामजी अपने फरसेकी ओर देखकर बोले—अरे दुष्ट ! तूने मेरा स्वभाव नहीं सुना ! ॥ २ ॥

बालकु बोलि बधउँ नहिं तोही । केवल मुनि जइ जानहि मोही ॥

बाल ब्रह्मचारी अति कोही । बिस्वबिदित छत्रिय कुल द्रोही ॥ ३ ॥

मैं तुझे बालक जानकर नहीं मारता हूँ । अरे मूर्ख ! क्या तू मुझे निरा मुनि ही जानता है ? मैं बालब्रह्मचारी और अत्यन्त क्रोधी हूँ । क्षत्रियकुलका शत्रु तो विश्वभरमें विख्यात हूँ ॥ ३ ॥

भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही । बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही ॥

सहसबाहु भुज छेदनिहारा । परसु बिलोकु महीपकुमारा ॥ ४ ॥

अपनी भुजाओंके बलसे मैंने पृथ्वीको राजाओंसे रहित कर दिया और बहुत बार उसे ब्राह्मणोंको दे डाला । हे राजकुमार ! सहस्रबाहुकी भुजाओंको काटनेवाले मेरे इस फरसेको देख ॥ ४ ॥

दो०—मातु पितहि जनि सोचवस करसि महीसकिसोर ।

गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर ॥ २७२ ॥

अरे राजाके बालक ! तू अपने माता-पिताको सोचके वश न कर । मेरा फरसा बड़ा भयानक है; यह गर्भोंके बच्चोंका भी नाश करनेवाला है ॥ २७२ ॥

चो०—बिहसि लखनु बोले मृदुबानी । अहो मुनीसु महा भटमानी ॥

पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारु । चहत उड़ावन फूँकि पहारु ॥ १ ॥

लक्ष्मणजी हँसकर कोमल वाणीसे बोले—अहो, मुनीश्वर तो अपनेको बड़ा भारी योद्धा समझते हैं । बार-बार मुझे कुल्हाड़ी दिखाते हैं । फूँकसे पहाड़ उड़ाना चाहते हैं ॥ १ ॥

इहाँ कुम्हड़बतिआ कोउ नाहीं । जे तरजनी देखि मरि जाहीं ॥

देखि कुठार सरासन बाना । मैं कछु कहा सहित अभिमाना ॥ २ ॥

यहाँ कोई कुम्हड़ेकी बतिया (छोटा कच्चा फल) नहीं है, जो तरजनी (सबसे आगेकी) उँगलीको देखते ही मर जाती है । कुठार और धनुष-बाण देखकर ही मैंने कुछ अभिमानसहित कहा था ॥ २ ॥

भृगुसुत समुशि जनेउ बिलोकी । जो कछु कहहु सहउँ रिस रोकी ॥

सुर महिसुर हरिजन अरु गार्ह । हमरें कुल इन्ह पर न सुरार्ह ॥ ३ ॥

भृगुवंशी समक्षर और यशोपवीत देखकर, तो जो कुछ आप कहते हैं उसे मैं क्रोधको रोककर सह लेता हूँ । देवता, ब्राह्मण, भगवान्‌के भक्त और गौ, इनपर हमारे कुलमें वीरता नहीं दिखायी जाती; ॥ ३ ॥

बधैं पापु अपकीरति हारें । मारतहुँ पा परिअ तुम्हारें ॥

कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा । व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा ॥ ४ ॥

क्योंकि इन्हें मारनेसे पाप लगता है और इनसे हार जानेपर अपकीर्ति होती है । इसलिये आप मारें तो भी आपके रै ही पड़ना चाहिये । आपका एक-एक वचन ही करोड़ों वज्रोंके समान है । धनुष-बाण और कुठार तो आप व्यर्थ ही धारण करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—जो बिलोकि अनुचित कहेउँ छमहु महामुनि धीर ।

सुनि सरोष भृगुवंसमनि बोले गिरा गभीर ॥ २७३ ॥

इन्हें (धनुष-बाण और कुठारको) देखकर मैंने कुछ अनुचित कहा हो, तो उसे हे धीर महामुनि ! क्षमा कीजिये । यह सुनकर भृगुवंशमणि परशुरामजी क्रोधके साथ गम्भीर वाणी बोले—॥ २७३ ॥

चौ०—कौसिक सुनहु मंद यह बालकु । कुटिल कालबस निज कुल घालकु ॥

भानुवंस राकेस कलंकु । निपट निरंकुस अबुध असंकु ॥ १ ॥

हे विश्वामित्र ! सुनो, यह बालक बड़ा कुबुद्धि और कुटिल है; कालके वश होकर यह अपने कुलका घातक बन रहा है । यह सूर्यवंशरूपी पूर्णचन्द्रका कलंक है । यह विल्कुल उद्‌ण्ड, मूर्ख और निडर है ॥ १ ॥

कालकवलु होइहि छन माहीं । कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं ॥

तुम्ह हटकहु जौ चहहु उबारा । कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा ॥ २ ॥

अभी क्षणभरमें यह कालका ग्रास हो जायगा; मैं पुकारकर कहे देता हूँ, फिर मुझे दोष नहीं है । यदि तुम इसे बचाना चाहते हो, तो हमारा प्रताप, बल और क्रोध बतलाकर इसे मना कर दो ॥ २ ॥

लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा । तुम्हहि अछत को बरनै पारा ॥

अपने मुहँ तुम्ह आपनि करनी । बार अनेक भाँति बहु बरनी ॥ ३ ॥

लक्ष्मणजीने कहा—हे मुनि ! आपका सुयश आपके रहते दूसरा कौन वर्णन कर सकता है ! आपने अपने ही मुँहसे अपनी करनी अनेकों बार बहुत प्रकारसे वर्णन की है ॥ ३ ॥

नहिं संतोषु त पुनि कछु कहहु । जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहु ॥

बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा । गारी देत न पावहु सोभा ॥ ४ ॥

इतनेपर भी संतोष न हुआ हो तो फिर कुछ कह डालिये; क्रोध रोककर असह्य दुःख मत सहिये । आप वीरताका व्रत धारण करनेवाले, धैर्यवान् और क्षोभरहित हैं; गाली देते शोभा नहीं पाते ॥ ४ ॥

दो०—सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु ।

विद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु ॥२७४॥

शूरवीर तो युद्धमें करनी (शूरवीरताका कार्य) करते हैं, कहकर अपनेको नहीं जनाते । शत्रुको युद्धमें उपस्थित पाकर कायर ही अपने प्रतापकी डींग मारा करते हैं ॥ २७४ ॥

चौ०—तुम्ह तो कालु हाँक जुनु लावा । बार बार मोहि लागि बोलावा ॥

सुनत लखन के बचन कठोरा । परसु सुधारि धरेउ कर घोरा ॥ १ ॥

आप तो मानो कालुको हाँक लगाकर बार-बार उसे मेरे लिये बुलाते हैं । लक्ष्मणजीके कठोर वचन सुनते ही परशुरामजीने अपने भयानक फरसेको सुधारकर हाथमें ले लिया ॥ १ ॥

अब अनि देख दोसु मोहि लोगू । कटुबादी बालकु बध जोगू ॥

बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा । अब यह मरनिहार भा साँचा ॥ २ ॥

[और बोले—] अब लोग मुझे दोष न दें । यह कटुआ बोलनेवाला बालक मारे जानेके ही योग्य है । इसे बालक देखकर मैंने बहुत बचाया, पर अब यह सचमुच मरनेको ही आ गया है ॥ २ ॥

कौसिक कहा छमिअ अपराधू । बाल दोष गुन गनहिं न साधू ॥

खर कुठार मैं अकरुन कोही । आगें अपराधी गुरुद्रोही ॥ ३ ॥

विश्वामित्रजीने कहा—अपराध क्षमा कीजिये । बालकोंके दोष और गुणको साधुलोग नहीं गिनते । [परशुरामजी बोले—] तीखी धारका कुठार, मैं दयारहित और क्रोधी, और यह गुरुद्रोही और अपराधी मेरे सामने—॥ ३ ॥

उतर देत छोड़उँ बिनु मारें । केवल कौसिक सील तुम्हारें ॥

न त एहि काटि कुठार कठोरें । गुरहि उरिन होतेउँ भ्रम थोरें ॥ ४ ॥

उत्तर दे रहा है ! इतनेपर भी मैं इसे बिना मारे छोड़ रहा हूँ, सो हे विश्वामित्र ! केवल तुम्हारे शील (प्रेम) से । नहीं तो इसे इस कठोर कुठारसे काटकर थोड़े ही परिश्रमसे गुरुसे उच्छ्रण हो जाता ॥ ४ ॥

दो०—गाधिसूनु कह हृदयँ हंसि मुनिहि हरिअरइ स्रज ।

अयमय खाँड़ न ऊखमय अजहुँ न बृक्ष अबृक्ष ॥२७५॥

विश्वामित्रजीने हृदयमें हँसकर कहा—मुनिको हरा-ही-हरा स्रज रहा है (अर्थात् सर्वत्र विजयी होनेके कारण ये श्रीराम-लक्ष्मणको भी साधारण क्षत्रिय ही समझ रहे हैं); किन्तु यह लौहमयी (केवल फौलदकी बनी हुई) खाँड़ (खाँड़ा-खड्ग) है, ऊखकी (रसकी) खाँड़ नहीं है [जो मुँहमें लेते ही गल जाय । खेद है,] मुनि अब भी बेसमझ बने हुए हैं; इनके प्रभावको नहीं समझ रहे हैं ! ॥ २७५ ॥

चौ०—कहेउ लखन मुनि सीलु तुम्हारा । को नहिं जान बिदित संसारा ॥

माता पिताहिं उरिन भए नीकें । गुर रिनु रहा सोचु बड़ जीकें ॥ १ ॥

लक्ष्मणजीने कहा—हे मुनि ! आपके शीलको कौन नहीं जानता, संसारभरमें प्रसिद्ध है । आप माता-पितासे तो अच्छी तरह उच्छ्रण हो ही गये; अब गुरुका श्रद्धा रहा, जिसका जीमें बड़ा सोच लगा है ॥ १ ॥

सो जुनु हमरोहि माथे काढ़ा । दिन चलि गए व्याज बड़ बाढ़ा ॥

अब आनिअ व्यवहरिआ बोली । तुरंत देखैं मैं थैली खोली ॥ २ ॥

वह मानो हमारे ही मत्थे काढ़ा था ! बहुत दिन बीत गये, इससे ब्याज भी बहुत बढ़ गया होगा । अब किसी हिसाब करनेवालेको बुला लाइये, तो मैं तुरंत बैली खोल कर दे दूँ ॥ २ ॥

सुनि कहु बचन कुठार सुधारा । हाय हाय सब सभा पुकारा ॥

भृगुवर परसु देखावहु मोही । बिप्र बिचारि बचउँ नृपद्रोही ॥ ३ ॥

लक्ष्मणजीके कहुए वचन सुनकर परशुरामजीने कुठार सम्हाला । सारी सभा हाय ! हाय ! करके पुकार उठी । लक्ष्मणजीने कहा—हे भृगुश्रेष्ठ ! आप मुझे फरसा दिखा रहे हैं, पर हे राजाओंके शत्रु ! मैं ब्राह्मण समझकर बचा रहा हूँ (तरह दे रहा हूँ) ॥ ३ ॥

मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े । द्विजदेवता घरहि के बाढ़े ॥

अनुचित कहि सब लोग पुकारे । रघुपति सयनहिं लखनु नेवारे ॥ ४ ॥

आपको कभी रणधीर बलवान् वीर नहीं मिले । हे ब्राह्मणदेवता ! आप घरहीमें बड़े हैं । यह सुनकर 'अनुचित है, अनुचित है,' कहकर सब लोग पुकार उठे । तब श्रीरघुनाथजीने इशारेसे लक्ष्मणजीको रोक दिया ॥ ४ ॥

दो०—लखन उतर आहुति सरित भृगुवर कोषु कृसानु ।

बढ़त देखि जलसम बचन बोले रघुकुलभानु ॥ २७६ ॥

लक्ष्मणजीके उत्तरसे, जो आहुतिके समान थे, परशुरामजीके क्रोधरूपी अग्निको बढ़ते देखकर रघुकुलके सूर्य श्रीरामचन्द्रजी जलके समान (शान्त करनेवाले) वचन बोले—॥ २७६ ॥

चौ०—नाथ करहु बालक पर छोड़ । सूध दूधमुख करिअ न कोइ ॥

जौ पै प्रभुप्रभाव कहु जाना । तौ कि बराबरि करत अयाना ॥ १ ॥

हे नाथ ! बालकपर कृपा कीजिये । इस सीधे और दुधमुँहे बच्चेपर क्रोध न कीजिये । यदि यह प्रभुका (आपका) कुछ भी प्रभाव जानता, तो क्या यह बेसमझ आपकी बराबरी करता ? ॥ १ ॥

जौ लरिका कहु अचगरि करहीं । गुर पितु मातु मोद मन भरहीं ॥

करिअ कृपा सिम् सेवक जानी । तुम्ह सम सील धीर मुनि ग्यानी ॥ २ ॥

बालक यदि कुछ चपलता भी करते हैं, तो गुरु, पिता और माता मनमें आनन्दसे भर जाते हैं । अतः इसे छोटा बच्चा और सेवक जानकर कृपा कीजिये । आप तो समदर्शी, मुनीन्द्र, धीर और गानी मुनि हैं ॥ २ ॥

रामबचन सुनि .कहुक जुझाने । कहि कहु लखनु बहुरि मुसुकाने ॥

हँसत देखि नखसिख रिस ब्यापी । राम तोर भ्राता बड़ पापी ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर वे कुछ ठंडे पड़े । इतनेमें लक्ष्मणजी कुछ कहकर फिर मुस्कुरा दिये । उनको हँसते देखकर परशुरामजीके नखसे शिखातक (सारे शरीरमें) क्रोध छा गया । उन्होंने कहा—हे राम ! तेरा भाई बड़ा पापी है ॥ ३ ॥

गौर सरीर स्याम मन माहीं । कालकूट मुख पयमुख नाहीं ॥

सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही । नीचु मीचुसम देख न मोही ॥ ४ ॥

यह शरीरसे गौरा पर हृदयका बड़ा काल है । यह विषमुख है, दुधमुँहा नहीं; स्वभावसे ही टेढ़ा है, तेरा अनुसरण नहीं करता (तेरे-जैसा शीलवान् नहीं है) । यह नीच मुझे कालके समान नहीं देखता ॥ ४ ॥

दो०—लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल ।

जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्वप्रतिकूल ॥२७७॥

लक्ष्मणजीने हँसकर कहा—हे मुनि ! सुनिये, क्रोध पापका मूल है, जिसके वशमें होकर मनुष्य अनुचित कर्म कर बैठते हैं और विश्वभरके प्रतिकूल चलते (सबका अहित करते) हैं ॥ २७७ ॥

चौ०—मैं तुम्हारा अनुचर मुनिराया । परिहरि कोपु करिअ अब दायया ॥

टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने । बैठिअ होइहिं पाय पिराने ॥ १ ॥

हे मुनिराज ! मैं आपका दास हूँ । अब क्रोध त्यागकर दया कीजिये, टूटा हुआ धनुष क्रोध करनेसे जुड़ नहीं जायगा । खड़े-खड़े पैर दुखने लगे होंगे, बैठ जाइये ॥ १ ॥

जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई । जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई ॥

बोलत लखनहिं जनकु डेराहीं । मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं ॥ २ ॥

यदि धनुष अत्यन्त ही प्रिय हो, तो कोई उपाय किया जाय और किसी बड़े गुणी (कारोगर) को बुलाकर जुड़वा दिया जाय । लक्ष्मणजीके बोलनेसे जनकजी डर गये और बोले—बस, चुप रहिये, अनुचित बोलना अच्छा नहीं ॥ २ ॥

थर थर काँपहिं पुर नर नारी । छोट कुमार खोट बड़ भारी ॥

भृगुपति सुनि सुनि निरभय बानी । रिस तन जरइ होइ बलहानी ॥ ३ ॥

जनकपुरके स्त्री-पुरुष थर-थर काँप रहे हैं [और मन-ही-मन कह रहे हैं कि] छोटा कुमार बड़ा ही खोटा है । लक्ष्मणजीकी निर्भय वाणी सुन-सुनकर परशुरामजीका शरीर क्रोधसे जल जा रहा है, और उनके बलकी हानि हो रही है (उनका बल घट रहा है) ॥ ३ ॥

बोले रामहि देइ निहोरा । बचउँ बिचारि बंधु लघु तोरा ॥

मनु मलीन तनु सुंदर कैसेँ । विपरस भरा कनकघट्टु जैसेँ ॥ ४ ॥

तब रामचन्द्रजीपर एहसान जनाकर परशुरामजी बोले—तेरा छोटा भाई समझकर मैं इसे बचा रहा हूँ । यह मनका मैला और शरीरका कैसा सुन्दर है, जैसे विपके रससे भरा हुआ सोनेका घड़ा ! ॥ ४ ॥

दो०—सुनि लछिमन बिहसे बहुरि नयन तररे राम ।

गुर समीप गवने सकुचि परिहरि बानी बाम ॥२७८॥

यह सुनकर लक्ष्मणजी फिर हँसे । तब श्रीरामचन्द्रजीने तिरछी नजरसे उनकी ओर देखा, जिससे लक्ष्मणजी सकुचाकर, विपरीत बोलना छोड़कर, गुरुजीके पास चले गये ॥ २७८ ॥

चौ०—अति विनीत मृदु सीतल बानी । बोले रामु जोरि जुग पानी ॥

सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना । बालकवचनु करिअ नहिं काना ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजी दोनों हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयके साथ कोमल और शीतल वाणी बोले—हे नाथ ! सुनिये, आप तो स्वभावसे ही सुजान हैं; आप बालकके वचनपर कान न कीजिये (उसे सुना-अनसुना कर दीजिये) ॥ १ ॥

बरै बालकु एक सुभाऊ । इन्हहि न संत विदूषहिं काऊ ॥

तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा । अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ॥ २ ॥

बैर और बालकका एक स्वभाव है, संतजन इन्हें कभी दोष नहीं लगाते। फिर उसने (लक्ष्मणने) तो कुछ काम भी नहीं बिगाड़ा है, हे नाथ ! आपका अपराधी तो मैं हूँ ॥ २ ॥

कृपा कोषु बधु बँधव गोसाईं ! मो पर करिअ दास की नाई ॥
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई । मुनिनायक सोइ करौं उपाई-॥ ३ ॥

अतः हे स्वामी ! कृपा, क्रोध, बध और बन्धन, जो कुछ करना हो, दासकी तरफ (अर्थात् दास समक्षकर) मुझपर कीजिये। जिस प्रकारसे शीघ्र आपका क्रोध दूर हो, हे मुनिराज ! बताइये, मैं वही उपाय करूँ ॥ ३ ॥

कह मुनि राम जाइ रिस कैसें । भजहुँ अनुज तव खितव अनैसैं ॥
एहि कँ कंठ कुठारु न दीन्हा । तौ मैं काह कोषु करि बनिहा ॥ ४ ॥

मुनिने कहा—हे राम ! क्रोध कैसे जाय; अब भी तेरा छोटा भाई टेढ़ा ही ताक रहा है। इसकी गर्दनपर मैंने कुठार न चलाया, तो क्रोध करके किया ही क्या ॥ ४ ॥

दो०—गर्म स्रवहिं अवनिप रवनि सुनि कुठारगति घोर ।

परसु अछत देखउँ जिअत बैरी भूपकिसोर ॥ २७९ ॥

मेरे जिस कुठारकी घोर करनी सुनकर राजाओंकी स्त्रियोंके गर्म गिर पड़ते हैं, उसी फरसेके रहते मैं इस शत्रु राजपुत्रको जीवित देख रहा हूँ ! ॥ २७९ ॥

चौ०—बहइ न हाथु दहइ रिस छाती । भा कुठार कुंठित नृपघाती ॥
भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ । मोरे हृदयँ कृपा कसि काऊ ॥ १ ॥

हाथ चल्ता नहीं, क्रोधसे छाती जली जाती है, राजाओंका घातक यह कुठार भी कुंठित हो गया। विधाता विपरीत हो गया, इससे मेरा स्वभाव बदल गया; नहीं तो भला, मेरे हृदयमें किसी समय भी कृपा कैसे ! ॥ १ ॥

आजु दया दुखु दुसह सहावा । सुनि सौमित्रि बिहसि सिरु नावा ॥
बाउ कृपा मूरति अनुकूला । बोलत बचन झरत जनु फूला ॥ २ ॥

आज दया मुझे यह दुःख सह रहा है। यह सुनकर लक्ष्मणजीने मुस्कुराकर सिर नवाया [और कहा—] आपकी कृपारूपी वायु भी आपकी मूर्तिके अनुकूल ही है; वचन बोलते हैं, मानो फूल झड़ रहे हैं ! ॥ २ ॥

जौ पै कृपाँ जरहिं मुनि गाता । क्रोध भएँ तनु राख बिधाता ॥
देखु जनक हठि बालकु एह । कीन्ह चहत जइ जमपुर गेह ॥ ३ ॥

हे मुनि ! यदि कृपा करनेसे आपका शरीर जल्य जाता है, तो क्रोध होनेपर तो शरीरको रक्षा विधाता ही करेंगे। [परशुरामजीने कहा—] हे जनक ! देख, यह मूर्ख बालक हठ करके यमपुरीमें घर (निवास) करना चाहता है ॥ ३ ॥

बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा । देखत छोट खोट नृपढोटा ॥
बिहसे लखनु कहा मन माहीं । मूढ़ेँ आँखि कतहुँ कोउ नाहीं ॥ ४ ॥

इसको शीघ्र ही आँखोंकी ओट क्यों नहीं करते ! यह राजपुत्र देखनेमें छोटा है, पर है बड़ा खोटा। लक्ष्मणजीने हँसकर मन-ही-मन कहा—आँख मूँद लेनेपर कहीं कोई नहीं है ॥ ४ ॥

दो०—परसुराष्ट्र तब राम प्रति बोले उर अति क्रोधु ।

संश्रुसरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोधु ॥ २८० ॥

तब परशुरामजी हृदयमें अत्यन्त क्रोध भरकर रामजीसे बोले—अरे शठ ! तू शिवजीका धनुष तोड़कर उलटा हमीको शान सिखाता है ! ॥ २८० ॥

चौ०—बंधु कहइ कटु संमत तोरें । तू छल विनय करसि कर जोरें ॥
कर परितोषु मोर संग्रामा । नाहिं त छाव कहाउब रामा ॥ १ ॥

तेरा यह भाई तेरी ही सम्मतिसे कटु वचन बोलता है, और तू छलसे हाथ जोड़कर विनय करता है ! या तो युद्धमें मेरा सन्तोष कर, नहीं तो राम कहलाना छोड़ दे ॥ १ ॥

छलु तजि करहि समर सिवद्रोही । बंधुसहित न त मारउँ तोही ॥
भृगुपति बकहिं कुठार उठाएँ । मन मुसुकाहिं रामु सिर नाएँ ॥ २ ॥
अरे शिवद्रोही ! छल त्यागकर मुझसे युद्ध कर, नहीं तो भाईसहित तुझे मार डालूँगा । इस प्रकार परशुरामजी कुठार उठाये बक रहे हैं और श्रीरामचन्द्रजी सिर छुकाये मन-ही-मन मुस्कुरा रहे हैं ॥ २ ॥

गुनह लखन कर हम पर रोष । कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोष ॥
टेढ़ जानि सब बंदइ काहु । बक चंद्रमहि असइ न राहु ॥ ३ ॥
[श्रीरामचन्द्रजीने मन-ही-मन कहा—] गुनाह (दोष) तो लक्ष्मणका और क्रोध मुझपर करते हैं ! कहीं-कहीं सीधेपनमें भी बड़ा दोष होता है । टेढ़ा जानकर सब लोग किसीकी भी वन्दना करते हैं; टेढ़े चन्द्रमाको राहु भी नहीं ग्रसता ॥ ३ ॥

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा । कर कुठारु आगें यह सीसा ॥
जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी । मोहि जानिअ आपन अनुगामी ॥ ४ ॥
श्रीरामचन्द्रजीने [प्रकट] कहा—हे मुनीश्वर ! क्रोध छोड़िये; आपके हाथमें कुठार है और मेरा यह सिर आगे है । जिस प्रकार आपका क्रोध जाय, हे स्वामी ! वही कीजिये । मुझे अपना अनुचर (दास) जानिये ॥ ४ ॥

दो०—प्रभुहि सेवकहि समर कस तजहु बिप्रवर रोसु ।
बेषु निलोकें कहेसि कछु बालकहु नहिं दोसु ॥ २८१ ॥
स्वामी और सेवकमें युद्ध कैसा । हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! क्रोधका त्याग कीजिये । आपका वीरोंका-सा बेष देखकर ही बालकने कुछ कह डाला था; वास्तवमें उसका भी कोई दोष नहीं है ॥ २८१ ॥

चौ०—देखि कुठार बान धनुधारी । मै लरिकहि रिस बीरु बिचारी ॥
नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा । बंससुभायँ उतर तेहिं दीन्हा ॥ १ ॥
आपको कुठार, बाण और धनुष धारण किये देखकर और वीर समझकर बालकको क्रोध आ गया । वह आपका नाम तो जानता था, पर उसने आपको पहचाना नहीं; अपने वंश (रघुवंश) के स्वभावके अनुसार उसने उत्तर दिया ॥ १ ॥

जौ तुम्ह औतेहु मुनि की नाई । पदरज सिर सिसु धरत गोसाई ॥
छमहु चूक अनजानत केरी । सहिअ विप्र उर कृपा घनेरी ॥ २ ॥
यदि आप मुनिकी तरह आते, तो हे स्वामी ! बालक आपके चरणोंकी धूलि सिरपर रखता । अनजानेकी भूलको क्षमा कर दीजिये; ब्राह्मणोंके हृदयमें बहुत अधिक दया होनी चाहिये ॥ २ ॥

हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा । कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा ॥
राममात्र लघु नाम हमारा । परसु सहित बड़ नाम तोहारा ॥ ३ ॥

हे नाथ ! हमारी और आपकी बराबरी कैसी ! कहिये न, कहाँ चरण और कहाँ मस्तक ! कहाँ मेरा राममात्र छोटा-सा नाम, और कहाँ आपका परशुसहित बड़ा नाम ! ॥ ३ ॥

देव एकु गुनु धनुष हमारें । नब गुन परम पुनीत तुम्हारें ॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे । छमहु विप्र अपराध हमारे ॥ ४ ॥

हे देव ! हमारे तो एक ही गुण धनुष है और आपके परम पवित्र [शम, दम, तप, शोच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता, ये] नौ गुण हैं ! हम तो सब प्रकारसे आपसे हारे हैं; हे विप्र ! हमारे अपराधोंको क्षमा कीजिये ॥ ४ ॥

दो०—बार बार मुनि विप्रवर कहा राम सन राम ।

बोले भृगुपति सरूप हसि तहूँ बंधु सम बाम ॥ २८२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने परशुरामजीको बार-बार 'मुनि' और 'विप्रवर' कहा । तब भृगुपति (परशुरामजी) कुपित होकर [अथवा क्रोधकी हंसी हँसकर] बोले— तू भी अपने भाईके समान ही टंढा है ॥ २८२ ॥

चौ०—निपटहिं द्विज करि जानहि मोही । मैं जस विप्र सुनावउँ तोही ॥

चाप सुबा सर आहुति जानू । कोपु मोर अति घोर रुसानू ॥ १ ॥

तू मुझे निरा ब्राह्मण ही समझता है ! मैं जैसा विप्र हूँ, तुझे सुनाता हूँ । धनुषको सुबा, बाणको आहुति और मेरे क्रोधको अत्यन्त भयंकर अग्नि जान ॥ १ ॥

समिधि सेन चतुरंग सुहाई । महामहीप भय पसु आई ॥

मैं एहिं परसु काटि बलि दांदिहै । समरजय जप कोटिन्ह कींन्ह ॥ २ ॥

चतुरंगिणी सेना सुन्दर समिधाएँ (यज्ञमें जलायी जानेवाली लकड़ियाँ) हैं । बड़े-बड़े राजा उसमें आकर बलिके पशु हुए हैं, जिनको मैंने इसी फरसेसे काटकर बलि दिया है । ऐसे करोड़ों जपयुक्त रणयज्ञ मैंने किये हैं (अर्थात् जैसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक 'स्वाहा' शब्दके साथ आहुति दी जाती है, उसी प्रकार मैंने पुकार-पुकारकर राजाओंकी बलि दी है) ॥ २ ॥

मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरें । बोलसि निदरि विप्र के भोरें ॥

भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा । अहमिति मनहुँ जीति जगु ठाढ़ा ॥ ३ ॥

मेरा प्रभाव तुझे मालूम नहीं है, इसीसे तू ब्राह्मणके धोखे मेरा निरादर करके बोल रहा है । धनुष तोड़ डाला, इससे तेरा घमंड बहुत बढ़ गया है । ऐसा अहंकार है, मानो संसारको जीतकर खड़ा है ॥ ३ ॥

राम कहा मुनि कहहु बिचारी । रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी ॥

छुअतहिं दूट पिनाक पुराना । मैं केहि हेतु करों अभिमाना ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे मुनि ! विचारकर बोलिये; आपका क्रोध बहुत बढ़ा है और मेरी भूल बहुत थोड़ी है । पुराना धनुष छूते ही दूट गया; मैं किस कारण अभिमान करूँ ॥ ४ ॥

दो०—जौं हम निदरहिं विप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ ।

तौ अस को जग सुभदु जेहि भय बस नावहिं माथ ॥ २८३ ॥

हे भृगुनाथ ! यदि हम सचमुच ब्राह्मण कहकर निरादर करते हैं तो यह सत्य सुनिये; फिर संसारमें ऐसा कौन योद्धा है जिसे हम डरके मारे मस्तक नवायें ? ॥ २८३ ॥

चौ०—देव दनुज भूपति भट नाना । समबल अधिक होउ बलवाना ॥

जौ रन हमहि पचारै कोऊ । लरहिं सुखेन कालु किन होऊ ॥ १ ॥

देवता, दैत्य, राजा या और बहुत-से योद्धा, वे चाहे बलमें हमारे बराबर हों, चाहे अधिक बलवान् हों, यदि रणमें हमें कोई भी ललकारे तो हम उससे सुखपूर्वक लड़ेंगे, चाहे काल ही क्यों न हो ॥ १ ॥

छत्रियतनु धरि समर सकाना । कुल कलंकु तेहिं पावैर आना ॥

कहउँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी । कालहु डरहिं न रन रघुवंसी ॥ २ ॥

क्षत्रियका शरीर धरकर जो युद्धमें डर गया, उस नीचने अपने कुलपर कलंक लगा दिया । मैं स्वभाव-से ही कहता हूँ, कुलकी प्रशंसा करके नहीं, कि रघुवंशी रणमें कालसे भी नहीं डरते ॥ २ ॥

बिप्रवंस कै असि प्रभुताई । अमय होइ जो तुम्हहि डेराई ॥

सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के । उघरे पटल परसुधर मति के ॥ ३ ॥

ब्राह्मणवंशकी ऐसी ही प्रभुता (महिमा) है कि जो आपसे डरता है वह सबसे निर्भय हो जाता है । श्रीरघुनाथजीके कोमल और रहस्यपूर्ण वचन सुनकर परशुरामजीकी बुद्धिके परदे खुल गये ॥ ३ ॥

राम रमापति कर धनु लेह । सैंचहु मिटै मोर सदेह ॥

देत चापु आपुहिं चलि गयऊ । परसुराम मन बिसमय भयऊ ॥ ४ ॥

परशुरामजीने कहा—हे राम ! हे लक्ष्मीपति ! धनुषको हाथमें [अथवा लक्ष्मीपति विष्णुका धनुष] लीजिये और इसे खींचिये, जिससे मेरा सन्देह मिट जाय । परशुरामजी धनुष देने लगे तब वह आप ही चला गया [अथवा उसीके साथ परशुरामजीका अवतारी तेज चला गया]; तब परशुरामजीके मनमें बड़ा आश्चर्य [या खेद] हुआ ॥ ४ ॥

दो०—जाना रामप्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात ।

जोरि पानि बोले बचन हृदय न प्रेमु अमात ॥ २८४ ॥

तब उन्होंने श्रीरामजीका प्रभाव जाना । उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया । वे हाथ जोड़कर वचन बोले—प्रेम उनके हृदयमें समाता न था—॥ २८४ ॥

चो०—जय रघुवंस बनज बन भानू । गहन दनुजकुल दहन कृसानू ॥

जय सुर बिप्र धेनु हितकारी । जय मद मोह कोह भ्रमहारी ॥ १ ॥

हे रघुकुलरूपी कमलवनके सूर्य ! हे राक्षसोंके कुलरूपी घने जंगलको जलनेवाले अग्नि ! आपकी जय हो । हे देवता, ब्राह्मण और गौका हित करनेवाले ! आपकी जय हो । हे मद, मोह, क्रोध और भ्रमके हरनेवाले ! आपकी जय हो ॥ १ ॥

बिनय सील करुना गुन सागर । जयति बचन रचना अति नागर ॥

सेवक सुखद सुभग सब अंगा । जय सरीर छवि कोटि अनंगा ॥ २ ॥

हे विनय, शील, कृपा आदि गुणोंके समुद्र और वचनोंकी रचनामें अत्यन्त चतुर ! आपकी जय हो । हे सेवकोंको सुख देनेवाले, सब अंगोंसे सुन्दर और शरीरमें करोड़ों कामदेवीकी छवि धारण करनेवाले ! आपकी जय हो ॥ २ ॥

करौ काह मुख एक प्रसंसा । जय महेस मन मानस हंसा ॥

अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता । छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता ॥ ३ ॥

मैं एक मुखसे आपकी क्या प्रशंसा करूँ । हे महादेवजीके मनरूपी मानसरोवरके हंस ! आपकी जय हो । मैंने अनजानमें आपको बहुत-से अनुचित वचन कहे । हे क्षमाके मन्दिर दोनों भाई ! मुझे क्षमा कीजिये ॥ ३ ॥

कहि जय जय जय रघुकुलकेत् । शृगुपति गए बनहि तप हेत् ॥
अपमयँ कुटिल महीप डेराने । जहँ तहँ कायर गबँहिं पराने ॥ ४ ॥

हे रघुकुलके पताकास्वरूप भीरामचन्द्रजी ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो । ऐसा कहकर परशुरामजी तपके लिये वनको चले गये । [यह देखकर] दुष्ट राजा लोग बिना ही कारणके (मनोकल्पित) डरसे (रामचन्द्र-जीसे तो परशुरामजी भी हार गये, हमने इनका अपमान किया था, अब कहीं ये उसका बदला न लें, इस व्यर्थके डरसे) डर गये, वे कायर चुपकेसे जहाँ-तहाँ भाग गये ॥ ४ ॥

दो०—देवन्ह दीन्हिं दुंदुभीं प्रभु पर बरषहिं फूल ।

हरषे पुर नर नारि सब मिटी मोहमय शूल ॥ २८५ ॥

देवताओंने नगाड़े बजाये । वे प्रभुके ऊपर फूल बरसाने लगे । जनकपुरके स्त्री-पुरुष सब हर्षित हो गये । उनका मोहमय (अज्ञानसे उत्पन्न) शूल मिट गया ॥ २८५ ॥

चौ०—अति गहगहे बाजने बाजे । सबहिं मनोहर मंगल साजे ॥

जूय जूय मिलि सुमुखि सुनयनीं । करहिं गान कल कोकिलबयनीं ॥ १ ॥

खूब जोरसे बाजे बजने लगे । सभीने मनोहर मङ्गल-साज सजे । सुन्दर मुख और सुन्दर नेत्रोंवाली तथा कोंयलके समान मधुर बोलनेवाली स्त्रियाँ छुंड़-की-छुंड़ मिलकर सुन्दर गान करने लगीं ॥ १ ॥

सुखु बिदेह कर बरनि न जाई । जन्मवरिद्र मनहुँ निधि पाई ॥

बिगत त्रास भइ सीय सुखारी । जनु बिधु उदयँ चकोरकुमारी ॥ २ ॥

जनकजीके सुखका वर्णन नहीं किया जा सकता; मानो जन्मका दरिद्री धनका खजाना पा गया हो ! सीताजीका भय जाता रहा; वे ऐसी सुखी हुईं जैसे चन्द्रमाके उदय होनेसे चकोरकी कन्या सुखी होती है ॥ २ ॥

जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा । प्रभुप्रसाद धनु भंजेउ रामा ॥

मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भारे । अब जो उचित सो कहिय गोसारे ॥ ३ ॥

जनकजीने विश्वामित्रजीको प्रणाम किया और कहा—आपहीकी कृपासे रामचन्द्रजीने धनुष तोड़ा है । दोनों भाइयोंने मुझे कृतार्थ कर दिया । हे स्वामी ! अब जो उचित हो सो कहिये ॥ ३ ॥

कह मुनि सुनु नरनाथ प्रवीना । रहा बिबाहु चाप आधीना ॥

टूटतहीं धनु भयउ बिबाहु । सुर नर नाग बिदित सब काहु ॥ ४ ॥

मुनिने कहा—हे चतुर नरेश ! सुनो, यों तो विवाह धनुषके अधीन था; धनुषके टूटते ही विवाह हो गया । देवता, मनुष्य और नाग सब किसीको यह मालूम है ॥ ४ ॥

दो०—तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंसव्यवहार ।

बृशि विप्र कुलवृद्ध गुर बेद बिदित आचार ॥ २८६ ॥

तथापि तुम जाकर अपने कुलका जैसा व्यवहार हो; ब्राह्मणों, कुलके बूढ़ों और गुरुओंसे पूछकर, और वेदोंमें वर्णित जैसा आचार हो वैसा करो ॥ २८६ ॥

चौ०—दूत अवधपुर पठवहु जाई । आनहिं नृप दसरथहि बोलाई ॥

मुदित राउ कहि भलेहिं कृपाला । पठय दूत बोलि तेहि काला ॥ १ ॥

जाकर अयोध्याको दूत भेजो, जो राजा दशरथको बुला लवें । राजाने प्रसन्न होकर कहा—हे कृपालु ! बहुत अच्छा ! और उसी समय दूतोंको बुलाकर भेज दिया ॥ १ ॥

बहुरि महाजन सकल बोलाय । आइ सबन्हि सादर सिर नाय ॥

हाट बाट मंदिर सुरबासा । नगर सँवारहु चारिहुँ पासा ॥ २ ॥

फिर सब महाजनोंको बुलाया, और सबने आकर राजाको आदरपूर्वक सिर नवाया । [राजाने कहा—]
बाजार, रास्ते, घर, देवालय और सारे नगरको चारों ओरसे सजाओ ॥ २ ॥

हरषि चले निज निज गृह आए । पुनि परिचारक बोलि पठाए ॥

रचहु बिचित्र बितान बनाई । सिर धरि बचन चले सचु पाई ॥ ३ ॥

महाजन प्रसन्न होकर चले और अपने-अपने घर आये । फिर राजाने नौकरोंको बुला भेजा और उन्हें आज्ञा दी कि विचित्र मण्डप सजाकर तैयार करो । यह सुनकर वे सब राजाके वचन सिरपर धरकर और सुख पाकर चले ॥ ३ ॥

पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना । जे बितान बिधि कुसल सुजाना ॥

बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा । बिरचे कनक कदलि के खंभा ॥ ४ ॥

उन्होंने अनेक कारीगरोंको बुला भेजा, जो मण्डप बनानेमें बड़े कुशल और चतुर थे । उन्होंने ब्रह्माकी वन्दना करके कार्य आरम्भ किया और [पहले] सोनेके केलेके खंभे बनाये ॥ ४ ॥

दो०—हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल ।

रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल ॥ २८७ ॥

हरी-हरी मणियों (पत्र) के पत्ते और फल बनाये, तथा पद्मराग मणियों (माणिक) के फूल बनाये । मण्डपकी अत्यन्त विचित्र रचना देखकर ब्रह्माका मन भी भूल गया ॥ २८७ ॥

चौ०—बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे । सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे ॥

कनक कलित अहिबेलि बनाई । लखि नहिं परइ सपरन सुहाई ॥ १ ॥

बाँस सब हरी-हरी मणियों (पत्र) के सीधे और गाँठोंसे युक्त ऐसे बनाये जो पहचाने नहीं जाते थे [कि मणियोंके हैं या साधारण] । सोनेकी सुन्दर नागबेलि (पानकी लता) बनायी, जो पत्तोंसहित ऐसी मली मालूम होती थी कि पहचानी नहीं जाती थी ॥ १ ॥

तेहि के रचि पचि बंध बनाए । बिच बिच मुकुता दाम सुहाए ॥

मानिक मरकत कुलिस पिरोजा । चीरि कोरि पचि रचे सरोजा ॥ २ ॥

उसी नागबेलिके रचकर और पच्चीकारी करके बन्धन (बाँधनेकी रस्ती) बनाये । बीच-बीचमें मोतियोंकी सुन्दर झालरें हैं ! माणिक, पत्ते, हरी और फिरोजे, इन रत्नोंको चीरकर, कोरकर और पच्चीकारी करके, इनके [लाल, हरे, सफेद और फिरोजी रंगके] कमल बनाये ॥ २ ॥

किए भुंग बहुरंग बिहंगा । गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा ॥

सुरप्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ी । मंगलद्रव्य लिपै सब ठाढ़ी ॥ ३ ॥

भौरे और बहुत रंगोंके पक्षी बनाये, जो हवाके सहारे गुँजते और कूजते थे । खंभोंपर देवताओंकी मूर्तियाँ गढ़कर निकालीं, जो सब मङ्गलद्रव्य लिये सज्जी थीं ॥ ३ ॥

चौकें भौंति अनेक पुराई । सिंगुर मनिमय सहज सुहाई ॥ ४ ॥

गजमुक्ताओंके सहज ही सुहावने अनेकों तरहके चौक पुराये ॥ ४ ॥

दो०—सौरभपल्लव सुभग सुठि किए नीलमनि कोरि ।

हेम बौर मरकत धवरि लसत पाटमय डोरि ॥२८८॥

नीलमणिको कोरकर अत्यन्त सुन्दर आमके पत्ते बनाये । सोनेके बौर (आमके फूल) और रेशमकी डोरीसे बँधे हुए पत्तेके बने फलोंके गुच्छे सुशोभित हैं ॥ २८८ ॥

चो०—रचे रुचिर बर बंदनिधारे । मनहुँ मनोभवँ फंद सँवारे ॥

मंगलकलस अनेक बनाए । ध्वज पताक पट चमर सुहाए ॥ १ ॥

ऐसे सुन्दर और उत्तम बंदनवार बनाये मानो कामदेवने फंदे सजाये हों । अनेकों मङ्गल-कलश और सुन्दर ध्वजा, पताका, परदे और चँवर बनाये ॥ १ ॥

दीप मनोहर मनिमय नाना । जाइ न बरनि बिचित्र बिताना ॥

जेहिं मंडप दुलहिनि बैदेही । सो बरनै असि मति कवि केही ॥ २ ॥

जिसमें मणियोंके अनेकों सुन्दर दीपक हैं, उस विचित्र मण्डपका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता । जिस मण्डपमें श्रीजानकीजी दुलहिन होंगी, किस कविकी ऐसी बुद्धि है जो उसका वर्णन कर सके ॥ २ ॥

दूल्हा रामु रूप गुन सागर । सो बितानु तिहुँ लोक उजागर ॥

जनकभवन कै सोभा जैसी । गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी ॥ ३ ॥

जिस मण्डपमें रूप और गुणोंके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी दूल्हे होंगे, वह मण्डप तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होना ही चाहिये । जनकजीके महलकी जैसी शोभा है, वैसी ही शोभा नगरके प्रत्येक घरकी दिखायी देती है ॥ ३ ॥

जेहिं तेरहुति तेहि समय निहारी । तेहि लघु लगहिं भुवन दस चारी ॥

जो संपदा नीचगृह सोहा । सो बिलोकि सुरनायक मोहा ॥ ४ ॥

उस समय जिसने तिरहुतको देखा उसे चौदह भुवन तुच्छ जान पड़े । जनकपुरमें नीचके घर भी उस समय जो सम्पदा सुशोभित थी, उसे देखकर इन्द्र भी मोहित हो जाता था ॥ ४ ॥

दो०—बसइ नगर जेहिं लच्छि करि कपट नारि बरबेषु ।

तेहि पुर कै सोभा कहत सकुचहिं सारद सेषु ॥२८९॥

जिस नगरमें साक्षात् लक्ष्मीजी कपटसे स्त्रीका सुन्दर वेष बनाकर बसती हैं, उस पुरकी शोभाका वर्णन करनेमें सरस्वती और शेष भी सकुचाते हैं ॥ २८९ ॥

चो०—पहुँचे दूत रामपुर पावन । हरषे नगर बिलोकि सुहावन ॥

भूपद्वार तिन्ह खबरि जनाई । दसरथ नृप सुनि लिए बोलाई ॥ १ ॥

जनकजीके दूत रामचन्द्रजीकी पवित्र पुरी (अयोध्या) में पहुँचे । वे सुन्दर नगर देखकर हर्षित हुए । राजद्वारपर जाकर उन्होंने खबर मेजी; राजा दशरथजीने सुनकर उन्हें बुल लिया ॥ १ ॥

करि प्रणामु तिन्ह पाती दीन्ही । मुदित महीप आपु उठि लीन्ही ॥

बारि बिलोचन बाँचत पाती । पुलक गात आई भरि छाती ॥ २ ॥

दूतोंने प्रणाम करके चिढ़ी दी । प्रसन्न होकर राजाने स्वयं उठकर उसे लिया । चिढ़ी बाँचते समय उनके नेत्रोंमें जल (प्रेम और आनन्दके आँसू) छा गया, शरीर पुलकित हो गया और छाती भर आयी ॥ २ ॥

रामु लखनु उर कर बर चीठी । रहि गए कहत न झाटी मीठी ॥
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची । हरणी सभा बात सुनि साँची ॥ ३ ॥
हृदयमें राम और लक्ष्मण हैं, हाथमें सुन्दर चिट्ठी है; राजा उसे हाथमें लिये ही रह गये, खट्‌टी-मीठी कुछ भी कह न सके । फिर धीरज धरकर उन्होंने पत्रिका पढ़ी । सारी सभा सच्ची बात सुनकर हर्षित हो गयी ॥ ३ ॥

बेलत रहे तहाँ सुधि पाई । आप भरतु सहित हित भाई ॥
पूछत भति सनेहँ सकुचार्ह । तात कहाँ तें पाती भाई ॥ ४ ॥
भरतजी अपने मित्रों और भाई शत्रुघ्नके साथ जहाँ खेलते थे वहीं समाचार पाकर वे आ गये । बहुत प्रेमसे सकुचाते हुए पूछते हैं—पिताजी ! चिट्ठी कहाँसे आयी है ? ॥ ४ ॥

दो०—कुसल प्रानप्रिय बंधु दोउ अहहिं कहहु केहिं देस ।
सुनि सनेहँ साने बचन बाची बहुरि नरेस ॥ २९० ॥
हमारे प्राणोंसे प्यारे दोनों भाई, कहिये, सकुशल तो हैं और कित देशमें हैं ! स्नेहसे सने ये वचन सुनकर राजाने फिरसे चिट्ठी पढ़ी ॥ २९० ॥

चौ०—सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता । अधिक सनेहु समात न गाता ॥
प्रीति पुनीत भरत कै देखी । सकल सभाँ सुख लहेउ बिसेषी ॥ १ ॥
चिट्ठी सुनकर दोनों भाई पुलकित हो गये । स्नेह इतना अधिक हो गया कि वह शरीरमें समाता नहीं । भरतजीका पवित्र प्रेम देखकर सारी सभाने विशेष सुख पाया ॥ १ ॥

तब नृप दूत निकट बैठारे । मधुर मनोहर बचन उचारे ॥
भैया कहहु कुसल दोउ बारे । तुम्ह नीकें निज नयन निहारे ॥ २ ॥
तब राजा दूतोंको पास बैठाकर मनको हरनेवाले मीठे वचन बोले—भैया ! कहो, दोनों बच्चे कुशलसे तो हैं ! तुमने अपनी आँखोंसे उन्हें अच्छी तरह देखा है न ? ॥ २ ॥

स्यामल गौर धरें धनु भाथा । बय किसोर कौसिक मुनि साथी ॥
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ । प्रेमबिबस पुनि पुनि कह राज ॥ ३ ॥
साँवले और गोरे शरीरवाले वे धनुष और तरकस धारण किये रहते हैं, किशोर अवस्था है, विश्वामित्र मुनिके साथ हैं । तुम उनको पहचानते हो तो उनका स्वभाव बताओ । राजा प्रेमके विशेष वश होनेसे बार-बार इस प्रकार कह (पूछ) रहे हैं ॥ ३ ॥

जा दिन तें मुनि गए लवाई । तब तें आजु साँचि सुधि पाई ॥
कहहु बिदेह कवन बिधि जाने । सुनि प्रिय बचन दूत मुसुकाने ॥ ४ ॥
[भैया !] जिस दिनसे मुनि उन्हें लिवा ले गये, तबसे आज ही हमने सच्ची खबर पायी है । कहो तो, महाराज जनकने उन्हें कैसे पहचाना ? ये प्रिय (प्रेमभरे) वचन सुनकर दूत मुस्कराये ॥ ४ ॥

दो०—सुनहु महीपति मुकुटमनि तुम्ह सम धन्य न कोउ ।

राष्ट्र लखनु जिन्ह के तनय बिस्वविभूषन दोउ ॥ २९१ ॥

[दूतोंने कहा—] हे राजाओंके मुकुटमणि ! सुनिये, आपके समान धन्य और कोई नहीं है, जिनके राम-लक्ष्मण-जैसे पुत्र हैं जो दोनों विश्वके विभूषण हैं ॥ २९१ ॥

चौ०—पूछन जोगु न तनय तुम्हारे । पुरुषसिंह तिहु पुर उजिआरे ॥

जिन्ह के जस प्रताप के आगे । ससि मलीन रबि सीतल लागे ॥ १ ॥

आपके पुत्र पूछने योग्य नहीं हैं, वे पुरुषसिंह तीनों लोकोंके प्रकाशस्वरूप हैं । जिनके यशके आगे चन्द्रमा मलिन और प्रतापके आगे सूर्य शीतल लगता है, ॥ १ ॥

तिन्ह कहँ कहिअ नाथ किमि चीन्हे । देखिअ रबि कि दीप कर लीन्हे ॥

सीय स्वयंवर भूप अनेका । समिटे सुभट एक तेँ एका ॥ २ ॥

हे नाथ ! उनके लिये आप कहते हैं कि उन्हें कैसे पहचाना ! क्या सूर्यको हाथमें दीपक लेकर देखा जाता है ! सीताजीके स्वयंवरमें अनेकों राजा और एक-से-एक बढ़कर योद्धा एकत्र हुए थे, ॥ २ ॥

संभु सरासनु काहुँ न टारा । हारे सकल वीर बरिआरा ॥

तीनि लोक महँ जे भटमानी । सभ कै सकति संभुघनु भानी ॥ ३ ॥

परन्तु शिवजीके धनुषको कोई भी नहीं हटा सका । सारे बलवान् वीर हार गये । तीनों लोकोंमें जो वीरताके अभिमानी थे, शिवजीके धनुषने सबकी शक्ति तोड़ दी ॥ ३ ॥

सकइ उठाइ सरासुर मेरू । सोउ हियँ हारि गयउ करि फेरू ॥

जेहिं कौतुक सिवसैलु उठावा । सोउ तेहि सभाँ पराभउ पावा ॥ ४ ॥

बाणासुर, जो सुमेरुको भी उठा सकता था, वह भी हृदयमें हारकर परिक्रमा करके चला गया; और जिसने खेलसे ही कैलासको उठा लिया था, वह रावण भी उस सभामें पराजयको प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥

दो०—तहाँ राम रघुवंसमनि सुनिअ महामहिपाल ।

भंजेउ चाप प्रयास विनु जिमि गज पंकजनाल ॥ २९२ ॥

हे महाराज ! सुनिये, वहाँ [जहाँ ऐसे-ऐसे योद्धा हार मान गये] रघुवंशमणि श्रीरामचन्द्रजीने विना ही प्रयास शिवजीके धनुषको वैसे ही तोड़ डाला जैसे हाथी कमलकी डंडीको तोड़ डालता है ! ॥ २९२ ॥

चौ०—सुनि सरोष भृगुनायकु आए । बहुत भौंति तिन्ह आँखि देखाय ॥

देखि रामबलु निज धनु दीन्हा । करि बहु बिनय गवनु बन कीन्हा ॥ १ ॥

धनुष टूटनेकी बात सुनकर परशुरामजी क्रोध भरे आये और उन्होंने बहुत प्रकारसे आँखें दिखलायीं । अन्तमें उन्होंने भी रामचन्द्रजीका बल देखकर अपना धनुष दे दिया और बहुत प्रकारसे विनती करके वनको गमन किया ॥ १ ॥

राजन रामु अतुलबल जैसँ । तेजनिधान लखनु पुनि तैसँ ॥

कंपहिं भूप बिलोकत जाकँ । जिमि गज हरिकिसोर के ताकँ ॥ २ ॥

हे राजन् ! जैसे रामचन्द्रजी अतुलनीय बली हैं, वैसे ही तेजनिधान फिर लक्ष्मणजी भी हैं, जिनके देखनेमात्रसे राजालोग ऐसे काँप उठते थे जैसे हाथी सिंहके बच्चे ताकनेसे काँप उठते हैं ॥ २ ॥

देख देखि तव बालक दोऊ । अब न आँखि तर आवत कोऊ ॥

दूत बचन रचना प्रिय लागी । प्रेम प्रताप बीररस पागी ॥ ३ ॥

हे देव ! आपके दोनों बालकोंको देखनेके बाद अब आँखोंके नीचे कोई आता ही नहीं । प्रेम, प्रताप और वीर-रसमें पूरी हुई दूतोंकी वचनरचना सबको बहुत प्रिय लगी ॥ ३ ॥

सभा समेत राउ अनुरागे । दूतन्ह देन निछावरि लागे ॥
कहि अनीति ते मूढ़हिं काना । घरमु विचारि सबहिं सुखु माना ॥ ४ ॥

सभासहित राजा प्रेममें मग्न हो गये और दूतोंको निछावर देने लगे । [उन्हें निछावर देते देखकर] यह नीतिविरुद्ध है, ऐसा कहकर दूत अपने हाथोंसे कान मूँदने लगे ! धर्मको विचारकर (उनका धर्मयुक्त बर्ताव देखकर) सभीने सुख माना ॥ ४ ॥

दो०—तब उठि भूप बसिष्ट कहूँ दीन्हि पत्रिका जाइ ।

कथा सुनाई गुरहि सब सादर दूत बोलाइ ॥२९३॥

तब राजाने उठकर वशिष्ठजीके पास जाकर उन्हें पत्रिका दी, और आदरपूर्वक दूतोंको बुलाकर सारी कथा गुरुजीको सुना दी ॥ २९३ ॥

चो०—सुनि बोले गुर अति सुखु पाई । पुन्य पुरुष कहूँ महि सुख छाई ॥

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं । जद्यपि ताहि कामना नाहीं ॥ १ ॥

सब समाचार सुनकर और अत्यन्त सुख पाकर गुरु बोले—पुण्यात्मा पुरुषके लिये पृथ्वी सुखोंसे छायी हुई है । जैसे नदियाँ समुद्रमें जाती हैं, यद्यपि समुद्रको नदीकी कामना नहीं होती, ॥ १ ॥

तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ । धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ ॥

तुम्ह गुर बिप्र घेनु सुरसेबी । तसि पुनीत कौसल्या देबी ॥ २ ॥

वैसे ही सुख और सम्पत्ति बिना ही बुलाये स्वाभाविक ही धर्मात्मा पुरुषके पास जाती हैं । तुम जैसे गुरु, ब्राह्मण, गाय और देवताकी सेवा करनेवाले हो, वैसी ही पवित्र कौसल्या देवी भी हैं ॥ २ ॥

सुकृती तुम्ह समान जग माहीं । भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं ॥

तुम्ह ते अधिक पुन्य बड़ काकैं । राजन रामसरिस सुत जाकैं ॥ ३ ॥

तुम्हारे समान पुण्यात्मा जगत्में न कोई हुआ, न है और न होनेका ही है । हे राजन् ! तुमसे अधिक पुण्य और किसका होगा, जिसके राम-सरीखे पुत्र हैं, ॥ ३ ॥

बीर बिनित धरम व्रतधारी । गुनसागर बर बालक चारी ॥

तुम्ह कहूँ सर्वकाल कल्याणा । सजहु बरात बजाइ निसाना ॥ ४ ॥

और जिसके चारों बालक वीर, विनम्र, धर्मका व्रत धारण करनेवाले और गुणोंके सुन्दर समुद्र हैं । तुम्हारे लिये सभी कालोंमें कल्याण है । अतएव डंका बजवाकर बारात सजाओ, ॥ ४ ॥

दो०—चलहु बेगि सुनि गुरबचन भलेहिं नाथ सिरु नाइ ।

भूपति गवने भवन तब दूतन्ह बासु देवाइ ॥२९४॥

और जल्दी चलो । गुरुजीके ऐसे वचन सुनकर, 'हे नाथ ! बहुत अच्छा' कहकर और सिर नवाकर तथा दूतोंको डेरा दिलवाकर राजा महलमें गये ॥ २९४ ॥

चो०—राजा सबु रनिवास बोलाई । जनकपत्रिका बाचि सुनाई ॥

सुनि संदेशु सकल हरषानी । अपर कथा सब भूप बखानी ॥ १ ॥

राजाने सारे रनिवासको बुलाकर जनकजीकी पत्रिका बाँचकर सुनायी। समाचार सुनकर सब रनियाँ हर्षसे भर गयीं। राजाने फिर दूसरी सब बातोंका (जो दूतोंके मुखसे सुनी थीं) वर्णन किया ॥ १ ॥

प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी । मनहुँ सिस्निनि सुनि बारिदबानी ॥

मुदित असीस देहिं गुरनारीं । अति आनंद मगन महतारीं ॥ २ ॥

प्रेममें प्रफुल्लित हुई रनियाँ ऐसी सुशोभित हो रही हैं जैसे मोरनी बादलोंकी गरज सुनकर प्रफुल्लित होती हैं। बड़ी-बूढ़ी [अथवा गुरुओंकी] स्त्रियाँ प्रसन्न होकर आशीर्वाद दे रही हैं। माताएँ अत्यन्त आनन्दमें मग्न हैं ॥ २ ॥

लेहिं परस्पर अति प्रिय पाती । हृदयँ लगाइ जुड़ावहिं छाती ॥

राम लखन कै कीरति करनी । बारहिं बार भूपबर बरनी ॥ ३ ॥

उस अत्यन्त प्रिय पत्रिकाको आपसमें लेकर सब हृदयसे लगाकर छाती शीतल करती हैं। राजाओंमें श्रेष्ठ दशरथजीने श्रीराम-लक्ष्मणकी कीर्ति और करनीका बारंबार वर्णन किया ॥ ३ ॥

मुनिप्रसादु कहि द्वार सिधाए । रानिन्ह तब महिदेव बोलाए ॥

दिष्ट दान आनंद समेता । चले विप्रवर आसिष देता ॥ ४ ॥

‘यह सब मुनिकी कृपा है’ ऐसा कहकर वे बाहर चले आये। तब रानियोंने ब्राह्मणोंको बुलाया और आनन्दसहित उन्हें दान दिये। श्रेष्ठ ब्राह्मण आशीर्वाद देते हुए चले ॥ ४ ॥

सो०—जाचक लिए हँकारि दीन्हि निछावरि कोटि बिधि ।

चिरु जीवहुँ सुत चारि चक्रवर्ति दसरथ के ॥ २९५ ॥

फिर मिथुकोंको बुलवाकर करोड़ों प्रकारकी निछावरें उनको दीं। ‘चक्रवर्ती महाराज दशरथके चारों पुत्र चिरंजीव हों,’ ॥ २९५ ॥

चौ०—कहत चले पहिरें पट नाना । हरषि हने गहगहे निसाना ॥

समाचार सब लोगन्ह पाए । लागे घर घर होन बघाए ॥ १ ॥

यों कहते हुए वे अनेक प्रकारके सुन्दर वस्त्र पहन-पहनकर चले। आनन्दित होकर नगाड़ेवालोंने बड़े जोरसे नगाड़ोंपर चोट लगायी। सब लोगोंने जब यह समाचार पाया, तब घर-घर बघावे होने लगे ॥ १ ॥

भुवन चारिदस भरा उछाह । जनकसुता रघुबीर बिआह ॥

सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे । मग गृह गर्ली सँवारन लागे ॥ २ ॥

चौदहों लोकोंमें उत्साह भर गया कि जानकीजी और श्रीरघुनाथजीका विवाह होगा। यह शुभ समाचार पाकर लोग प्रेममग्न हो गये और रास्ते, घर और गलियाँ सजाने लगे ॥ २ ॥

जद्यपि अवध सदैव सुहावनि । रामपुरी मंगलमय पावनि ॥

तद्यपि प्रीति कै प्रीति सुहाई । मंगलरचना रची बनाई ॥ ३ ॥

यद्यपि अयोध्या सदा सुहावनी है, क्योंकि वह रामजीकी मङ्गलमयी पवित्र पुरी है, तथापि प्रीतिपर प्रीति होनेसे वह सुन्दर मङ्गलरचनासे सजायी गयी ॥ ३ ॥

ध्वज पताक पट चामर चारु । छावा परम बिचित्र बजारु ॥

कनककलस तोरन मनिजाला । हरद दूब दधि अच्छत माला ॥ ४ ॥

ध्वजा, पताका, परदे और सुन्दर चँवरोंसे सारा बाजार बहुत ही अनूठा छाया हुआ है। सोनेके कलश, तोरण, मणियोंकी झालरें, हलदी, दूब, दही, अक्षत और मालाओंसे—॥ ४ ॥

दो०—मंगलमय निज निज भवन लोगन्ह रचे बनाइ ।

बीथीं सींचीं चतुरसम चौकें चारु पुराइ ॥२९६॥

लोगोंने अपने-अपने घरोंको सजाकर मङ्गलमय बना लिया। गलियोंको चतुरसमसे सीचा और [द्वारोंपर] सुन्दर चौक पुराये। [चन्दन, केशर, कस्तूरी और कपूरसे बने हुए एक सुगन्धित द्रवको चतुरसम कहते हैं] ॥ २९६ ॥

चौ०—जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि । सजि नवसस सकल दुति दामिनि ॥

बिधुबदनीं मृग सावक लोचनि । निज सरूप रतिमानु बिमोचनि ॥ १ ॥

बिजलीकी-सी कान्तिवाली, चन्द्रमुग्नी, हरिणके बच्चेके-से नेत्रोंवाली और अपने सुन्दर रूपसे कामदेवकी स्त्री रतिके अभिमानको छुड़ानेवाली सुहागिनी स्त्रियाँ सभी सोलहो शृंगार सजकर, जहाँ-तहाँ छुंड-की-छुंड मिलकर, ॥ १ ॥

गावहिं मंगल मंजुल बानीं । सुनि कलरव कलकंठि लजानीं ॥

भूपभवन किमि जाइ बखाना । बिस्वबिमोहन रचेउ बिताना ॥ २ ॥

मनोहर वाणीसे मङ्गलगीत गा रही हैं, जिनके सुन्दर स्वरको सुनकर कोयलें भी लजा जाती हैं। राजमहलका वर्णन कैसे किया जाय, जहाँ विश्वको विमोहित करनेवाला मण्डप बनाया गया है ॥ २ ॥

मंगलद्रव्य मनोहर नाना । राजत बाजत बिपुल निसाना ॥

कतहुँ बिरिद बंदी उच्चरहीं । कतहुँ बेदधुनि भूसुर करहीं ॥ ३ ॥

अनेकों प्रकारके मनोहर माङ्गलिक पदार्थ शोभित हो रहे हैं और बहुत-से नगाड़े बज रहे हैं। कहीं भाट विरुदावली (कुलकीर्ति) का उच्चारण कर रहे हैं, और कहीं ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे हैं ॥ ३ ॥

गावहिं सुंदरि मंगलगीता । लै लै नामु रामु अरु सीता ॥

बहुत उछाहु भवनु अति थोरा । मानहुँ उमगि चला चहु ओरा ॥ ४ ॥

सुन्दरी स्त्रियाँ श्रीरामजी और श्रीसीताजीका नाम ले-लेकर मङ्गलगीत गा रही हैं। उत्साह बहुत है और महल अत्यन्त ही छोटा है, इससे उसमें न समाकर मानो वह उत्साह (आनन्द) चारों ओर उमड़ चला है ॥ ४ ॥

दो०—सोभा दसरथभवन कइ को कवि बरनै पार ।

जहाँ सकल सुर सीसमनि राम लीन्ह अवतार ॥२९७॥

दशरथके महलकी शोभाका वर्णन कौन कवि कर सकता है, जहाँ समस्त देवताओंके शिरोमणि रामचन्द्रजीने अवतार लिया है ॥ २९७ ॥

चौ०—भूप भरत पुनि लिए बोलाई । हय गय स्यंदन साजहु जाई ॥

चलहु बेगि रघुबीर बराता । सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता ॥ १ ॥

फिर राजाने भरतजीको बुला लिया और कहा कि जाकर घोड़े, हाथी और रथ सजाओ; जल्दी रामचन्द्रजीकी बारातमें चलो। यह सुनते ही दोनों भाई (भरतजी और शत्रुघ्नजी) आनन्दवश पुलकसे भर गये ॥ १ ॥

भरत सकल साहनी बोलाए । आयसु दीन्ह मुदित उठि धाए ॥

रवि रवि जीन तुरग तिन्ह साजे । बरन बरन बर बाजि बिराजे ॥ २ ॥

भरतजीने सब साहनी (घुड़सालके अध्यक्ष) बुलाये और उन्हें [घोड़ोंको सजानेकी] आशा दी । वे प्रसन्न होकर उठ दौड़े । उन्होंने रविके साथ (यथायोग्य) जीनें कसकर घोड़े सजाये । रंग-रंगके उत्तम घोड़े शोभित हो गये ॥ २ ॥

सुभग सकल सुठि चंचल करनी । अय इव जरत धरत पग धरनी ॥

नाना जाति न जाहिं बखाने । निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने ॥ ३ ॥

सब घोड़े बड़े ही सुन्दर और चञ्चल करनी (चाल) के हैं । वे धरतीपर ऐसे पैर रखते हैं जैसे जलते हुए लोहेपर रखते हों । अनेकों जातिके घोड़े हैं, जिनका वर्णन नहीं हो सकता । [ऐसी तेज चालके हैं] मानो हवाका निरादर करके उड़ना चाहते हैं ॥ ३ ॥

तिन्ह सब छयल भए असवारा । भरत सरिस बय राजकुमारा ॥

सब सुंदर सब भूषनधारी । कर सर चाप तून कटि भारी ॥ ४ ॥

उन सब घोड़ोंपर भरतजीके समान अवस्थावाले सब छैल-छबीले राजकुमार सवार हुए । वे सभी सुन्दर हैं और सब आभूषण धारण किये हुए हैं, उनके हाथोंमें बाण और धनुष हैं तथा कमरमें भारी तरकस बंधे हैं ॥ ४ ॥

दो०—छरे छबीले छयल सब सूर सुजान नवीन ।

जुग पदचर असवार प्रति जे असिकला प्रवीन ॥ २९८ ॥

सभी चुने हुए छबीले छैल, सूरवीर, चतुर और नवयुवक हैं । प्रत्येक सवारके साथ दो पैदल सिपाही हैं, जो तलवार चलानेकी कलामें बड़े निपुण हैं ॥ २९८ ॥

चौ०—बाँधे बिरद बीर रन गाढ़े । निकसि भए पुर बांहर ठाढ़े ॥

फेरहिं चतुर तुरग गति नाना । हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना ॥ १ ॥

सूरताका बाना धारण किये हुए रणधीर वीर सब निकलकर नगरके बाहर आ खड़े हुए । वे चतुर अपने घोड़ोंको तरह-तरहकी चालोंसे फेर रहे हैं और भेरी तथा नगाड़ेकी आवाज सुन-सुनकर प्रसन्न हो रहे हैं ॥ १ ॥

रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए । ध्वज पताक मनि भूषन लाए ॥

चवँर चारु किंकिनि धुनि करहीं । भानुजान सोभा अपहरहीं ॥ २ ॥

सारथियोंने ध्वजा, पताका, मणि और आभूषणोंको लगाकर रथोंको बहुत विलक्षण बना दिया है । उनमें सुन्दर चवँर लगे हैं और घंटियाँ सुन्दर शब्द कर रही हैं । वे रथ इतने सुन्दर हैं मानो सूर्यके रथकी शोभाको छीने लेंते हैं ॥ २ ॥

सावँकरन अगणित हय होते । ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते ॥

सुंदर सकल अलंकृत सोहे । जिन्हहि बिलोकत मुनिमन मोहे ॥ ३ ॥

अगणित श्यामकर्ण घोड़े थे । उनको सारथियोंने उन रथोंमें जोत दिया है, जो सभी देखनेमें सुन्दर और गहनोंसे सजाये हुए सुशोभित हैं, और जिन्हें देखकर मुनियोंके मन भी मोहित हो जाते हैं ॥ ३ ॥

जे जल चलहिं थलहि की नाई । टाप न बूढ़ बेग अधिकारि ॥

अलख सख सबु साजु बनाई । रथी सारथिन्ह लिप बोलाई ॥ ४ ॥

जो जलपर भी जमीनकी तरह ही चलते हैं। वेगकी अधिकतासे उनकी टाप पानीमें नहीं डूबती। अस्त्र-शस्त्र और सब साज सजाकर सारथियोंने रथियोंको बुला लिया ॥ ४ ॥

दो०—चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात ।

होत सगुन सुंदर सबहि जो जेहि कारज जात ॥२९९॥

रथोंपर चढ़-चढ़कर बारात नगरके बाहर जुटने लगी। जो जिस कामके लिये जाता है, सभीको सुन्दर शकुन होते हैं ॥ २९९ ॥

चौ०—कलित करिबरन्हि परी अँबारि। कहि न जाहिं जेहि भाँति सँवारि ॥

चले मत्त गज घंट बिराजी। मनहुँ सुभग सावन घन राजी ॥ १ ॥

श्रेष्ठ हाथियोंपर सुन्दर अँबारियाँ पड़ी हैं। वे जिस प्रकार सजायी गयी थीं, सो कहा नहीं जा सकता। मतवाले हाथी घंटोंसे सुशोभित होकर (घंटे बजाते हुए) चले, मानो सावनके सुन्दर बादलोंके समूह [गरजते हुए] जा रहे हैं ॥ १ ॥

बाहन अपर अनेक बिधाना। सिबिका सुभग सुखासन जाना ॥

तिन्ह चढ़ि चले बिप्रबर वृंदा। जनु तनु धरें सकल श्रुतिछंदा ॥ २ ॥

सुन्दर पालकियाँ, सुन्वसे बैठने योग्य तामजान (जो कुर्सीनुमा होते हैं) और रथ आदि और भी अनेकों प्रकारकी सवारियाँ हैं। उनपर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके समूह चढ़कर चले, मानो सब वेदोंके छन्द ही शरीर धारण किये हुए हैं ॥ २ ॥

मागध सूत बंदि गुनगायक। चले जान चढ़ि जो जेहि लायक ॥

बेसर ऊँट वृषभ बहुजाती। चले बस्तु भरि अगनित भाँती ॥ ३ ॥

मागध, सूत, भाट और गुण गानेवाले सब, जो जिस योग्य थे, वैसी सवारीपर चढ़कर चले। बहुत जातियोंके खच्चर, ऊँट और बैल असंख्यों प्रकारकी वस्तुएँ लाद-लादकर चले ॥ ३ ॥

कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। बिबिध बस्तु को बरनै पारा ॥

चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साजु समाजु बनाई ॥ ४ ॥

कहार करोड़ों काँवरें लेकर चले। उनमें अनेकों प्रकारकी इतनी वस्तुएँ थीं कि जिनका वर्णन कौन कर सकता है। सब सेवकोंके समूह अपना-अपना साज-समाज बनाकर चले ॥ ४ ॥

दो०—सब कें उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरीर ।

कबहिं देखिबे नयन मरि रामु लखनु दोउ बीर ॥३००॥

सबके हृदयमें अपार हर्ष है और शरीर पुलकसे भरे हैं। [सबको एक ही लालसा लगी है कि] हम श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंको नेत्र भरकर कब देखेंगे ॥ ३०० ॥

चौ०—गरजहिं गज घंटाधुनि घोरा। रथरव बाजिहिंस चहु ओरा ॥

निदरि घनहि घुर्मरहि निसाना। निज पराई कछु सुनिअ न काना ॥ १ ॥

हाथी गरज रहे हैं। उनके घंटोंकी भीषण ध्वनि हो रही है। चारों ओर रथोंकी घरघराहट और घोड़ोंकी हिनहिनाहट हो रही है। बादलोंका निरादर करते हुए नगाड़े धोर शब्द कर रहे हैं। किसीको अपनी-परायी कोई बात कानोंसे सुनायी नहीं देती ॥ १ ॥

महा भीर भूपति के द्वारें । रज होइ जाइ पषान पबारें ॥

चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नारैं । लिएँ आरती मंगलथारैं ॥ २ ॥

राजा दशरथके दरवाजेपर इतनी भारी भीड़ हो रही है कि वहाँ पत्थर फेंका जाय तो वह भी पिसकर धूल हो जाय । अटारियोंपर चढ़ी स्त्रियाँ मङ्गल-थालोंमें आरती लिये देख रही हैं ॥ २ ॥

गावहिं गीत मनोहर नाना । अति आनंदु न जाइ बखाना ॥

तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी । जोते रवि हय निंदक बाजी ॥ ३ ॥

और नाना प्रकारके मनोहर गीत गा रही हैं । उनके अत्यन्त आनन्दका बखान नहीं हो सकता । तब सुमन्त्रजीने दो रथ सजाकर उनमें सूर्यके घोड़ोंको भी मात करनेवाले घोड़े जोते ॥ ३ ॥

दोउ रथ रुचिर भूप पहिं आने । नहिं सारद पहिं जाहिं बखाने ॥

राजसमाजु एक रथ साजा । दूसर तेजपुंज अति भ्राजा ॥ ४ ॥

दोनों सुन्दर रथ वे राजा दशरथके पास ले आये, जिनकी सुन्दरताका वर्णन सरस्वतीसे भी नहीं हो सकता । एक रथपर राजसी सामान सजाया गया; और दूसरा जो तेजका पुञ्ज और अत्यन्त ही शोभायमान था, ॥ ४ ॥

दो०—तेहिं रथ रुचिर बसिष्ठ कहूँ हरषि चढ़ाइ नरेसु ।

आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु ॥ ३०१ ॥

उस सुन्दर रथपर राजा वशिष्ठजीको हर्षपूर्वक चढ़ाकर फिर स्वयं शिव, गुरु, गौरी और गणेशजीका स्मरण करके [दूसरे] रथपर चढ़े ॥ ३०१ ॥

चौ०—सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसेँ । सुरगुर संग पुरंदर जैसेँ ॥

करि कुलरीति वेदबिधि राऊ । देखि सबहिं सब भाँति बनाऊ ॥ १ ॥

वशिष्ठजीके साथ [जाते हुए] राजा दशरथजी कैसेँ शोभित हो रहे हैं, जैसेँ देवगुरु बृहस्पतिजीके साथ इन्द्र हैं । वेदकी विधिसे और कुलकी रीतिक अनुसार सब कार्य करके तथा सबको सब प्रकारसे सजे देखकर, ॥ १ ॥

सुमिरि रामु गुर आयसु पाई । चले महीपति संख बजाई ॥

हरषे विबुध बिलोकि बराता । वरषहिं सुमन सुमंगलदाता ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके, गुरुकी आज्ञा पाकर पृथ्वीपति दशरथजी शंख बजाकर चले । बारात देखकर देवता हर्षित हुए और सुन्दर मङ्गलदायक फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २ ॥

भयउ कोलाहल हय गय गाजे । व्योम बरात वाजने बाजे ॥

सुर नर नारि सुमंगल गाई । सरस राग बाजहिं सहनाई ॥ ३ ॥

बड़ा शोर मच गया । घोड़े और हाथी गरजने लगे । आकाशमें और बारातमें [दोनों जगह] बाजे बजने लगे । देवाङ्गनाएँ और मनुष्योंकी स्त्रियाँ सुन्दर मङ्गलगान करने लगीं और रसीले रागसे शहनाइयाँ बजने लगीं ॥ ३ ॥

घंट घंटी धुनि बरनि न जाहीं । सरव करहिं पारक फहराहीं ॥

करहिं बिदूषक कौतुक नाना । हास कुसल कल गान सुजाना ॥ ४ ॥

घंटे-घंटियोंकी ध्वनिका वर्णन नहीं हो सकता । पैदल चलनेवाले सेवकगण अथवा पट्टेबाज कसरतके

खेल कर रहे हैं और फहरा रहे हैं (आकाशमें ऊँचे उछलते हुए जा रहे हैं)। हँसी करनेमें निपुण और सुन्दर गानेमें चतुर विदूषक (मसखरे) तरह तरहके तमाशे कर रहे हैं ॥ ४ ॥

दा०—तुरग नचावहिं कुअँर बर अकनि मृदंग निसान ।

नागर नट चितवहिं चकित ढगहिं न ताल बँधान ॥३०२॥

सुन्दर राजकुमार मृदङ्ग और नगाड़ेके शब्द सुनकर घोड़ोंको उन्हींके अनुसार इस प्रकार नचा रहे हैं कि वे तालके बंधानसे जरा भी डिगते नहीं हैं। चतुर नट चकित होकर यह देख रहे हैं ॥ ३०२ ॥

चौ०—बनइ न बरनत बनी बराता । होहिं सगुन सुंदर सुभदाता ॥

चारा चाषु बाम दिसि लेई । मनहुँ सकल मंगल कहि देई ॥ १ ॥

बारात ऐसी बनी है कि उसका वर्णन करते नहीं बनता। सुन्दर शुभदायक शकुन हो रहे हैं। नीलकंठ पक्षी बायीं ओर चारा ले रहा है, मानो सम्पूर्ण मङ्गलोंकी सूचना दे रहा हो ॥ १ ॥

दाहिन काग सुखेत सुहावा । नकुलदरसु सब काहँ पावा ॥

सानुकूल बह त्रिविध बयारी । सघट सवाल आव बरनारी ॥ २ ॥

दाहिनी ओर कौआ सुन्दर खेतमें शोभा पा रहा है। नेवलेका दर्शन भी सब किसीने पाया। तीनों प्रकारकी (शीतल, मंद, सुगन्धित) हवा अनुकूल दिशामें चल रही है। श्रेष्ठ (सुहागिनी) स्त्रियाँ भरे हुए घड़े और गोदमें बालक लिये आ रही है ॥ २ ॥

लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा । सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा ॥

मृगमाला फिरि दाहिनि आई । मंगलगान जनु दीन्हि देखाई ॥ ३ ॥

लोमड़ी फिर-फिरकर (बार-बार) दिखायी दे जाती है। गायें सामने खड़ी बछड़ोंको दूध पिलती हैं। हरिनोंकी टोली [बायीं ओरसे] घूमकर दाहिनी ओरको आयी, मानो सभी मङ्गलोंका समूह दिखायी दिया ॥ ३ ॥

छेमकरी कह छेम बिसेषी । स्यामा बाम सुतरु पर देखी ॥

सनमुख आयउ दधि अरु मीना । कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना ॥ ४ ॥

क्षेमकरी (सफेद सिरवाली चील) विशेष रूपसे क्षेम (कल्याण) कह रही है। स्यामा बायीं ओर सुन्दर पेड़पर दिखायी पड़ी। दही, मछली और दो विद्वान् ब्राह्मण हाथमें पुस्तक लिये हुए सामने आये ॥ ४ ॥

दो०—मंगलमय कल्याणमय अभिमत फल दातार ।

जनु सब साचे होन हित भए सगुन एक बार ॥३०३॥

सभी मङ्गलमय, कल्याणमय और मनवाञ्छित फल देनेवाले शकुन मानो सब होनेके लिये एक ही साथ हो गये ॥ ३०३ ॥

चौ०—मंगल सगुन सुगम सब ताकें । सगुन ब्रह्म सुंदर सुत जाकें ॥

राम सरिस बर दुलहिनि सीता । समधी दसरथ जनकु पुनीता ॥ १ ॥

स्वयं सगुण ब्रह्म जिसके सुन्दर पुत्र हैं, उसके लिये सब मङ्गल-शकुन सुलभ हैं। जहाँ श्रीरामचन्द्रजी-सरीखे बूल्हा और सीताजी-जैसी दुलहिन हैं, तथा दशरथजी और जनकजी-जैसे पवित्र समधी हैं, ॥ १ ॥

सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे । अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे ॥

एहि बिधि कीन्ह बरात पयाना । हय गय गाजहिं हने निसाना ॥ २ ॥

ऐसा न्याह सुनकर मानो सभी शकुन नाच उठे और कहने लगे—अब ब्रह्माजीने हमको सच्चा कर दिया । इस तरह बारातने प्रस्थान किया । घोड़े-हाथी गरज रहे हैं और नगाड़ोंपर चोट लगा रही है ॥ २ ॥

आवत जानि भानुकुलकेतू । सरितन्दि जनक बँधाय सेतू ॥

बीच बीच बर बास बनाए । सुरपुर सरिस संपदा छाप ॥ ३ ॥

सूर्यवंशके पताकास्वरूप दशरथजीको आते हुए जानकर जनकजीने नदियोंपर पुल बँधवा दिये । बीच-बीचमें ठहरनेके लिये सुन्दर घर (पड़ाव) बनवा दिये, जिनमें देवलोकके समान सम्पदा छापी है, ॥ ३ ॥

असन सयन बर वसन सुहाए । पावहिं सब निज निज मन भाए ॥

नित नूतन सुख लखि अनुकूले । सकल बरातिन्ह मंदिर भूले ॥ ४ ॥

और जहाँ बारातके सब लोग अपने-अपने मनकी पसंदके अनुसार सुहावने उत्तम भोजन, बिस्तर और वस्त्र पाते हैं । मनके अनुकूल नित्य नये सुखोंको देखकर सभी बरातियोंको अपने घर भूल गये ॥ ४ ॥

दो०—आवत जानि बरात बर सुनि गहगहे निसान ।

सजि गज रथ पदचर तुरग लेन चले अगवान ॥ ३०४ ॥

बड़े जोरसे बजते हुए नगाड़ोंकी आवाज सुनकर श्रेष्ठ बारातको आती हुई जानकर अगवानी करनेवाले हाथी, रथ, पैदल और घोड़े सजाकर बारात लेने चले ॥ ३०४ ॥

मासपारायण दसवाँ विश्राम

चौ०—कनक कलस भरि कोपर धारा । भाजन ललित अनेक प्रकारा ॥

भरे सुधासम सब पकवाने । नाना भाँति न जाहिं बखाने ॥ १ ॥

[दूध, शर्बत, ठण्डाई, जल आदिसे] भरकर सोनेके कलश, तथा जिनका वर्णन नहीं हो सकता ऐसे अमृत-के समान भाँति-भाँतिके सब पकवानोंसे भरे हुए परात, थाल आदि अनेक प्रकारके सुन्दर बर्तन, ॥ १ ॥

फल अनेक बर वस्तु सुहाई । हरषि भेंट हित भूप पठाई ॥

भूषन वसन महामनि नाना । खग मृग हय गय बहुबिधि जाना ॥ २ ॥

उत्तम फल तथा और भी अनेको सुन्दर वस्तुएँ राजाने हर्षित होकर भेंटके लिये भेजीं । गहने, कपड़े, नाना प्रकारकी मूल्यवान् मणियाँ (रत्न), पक्षी, पशु, घोड़े, हाथी और बहुत तरहकी सवारियाँ, ॥ २ ॥

मंगल [सगुन सुगंध सुहाए । बहुत भाँति महिपाल पठाए ॥

दधि चिउरा उपहार अपारा । भरि भरि काँवरि चले कहारा ॥ ३ ॥

तथा बहुत प्रकारके सुगन्धित एवं सुहावने मङ्गलद्रव्य और सगुनके पदार्थ राजाने भेजे । दही, चिउड़ा, और अगणित उपहारकी चीजें काँवरोंमें भर-भरकर कहार चले ॥ ३ ॥

अगवानन्ह जब दीक्षि बराता । उर आनंदु पुलक भर गाता ॥

देखि बनाव सहित अगवाना । मुदित बरातिन्ह हने निसाना ॥ ४ ॥

अगवानी करनेवालोंको जब बारात दिव्यायी दी, तब उनके हृदयमें आनन्द छा गया और शरीर रोमाञ्चसे भर गया । अगवानोंको सज्जजके साथ देखकर बरातियोंने प्रसन्न होकर नगाड़े बजाये ॥ ४ ॥

दो०—हरषि परसपर मिलन हित कलुक चले बगमेल ।

जनु आनंदसमुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल ॥३०५॥

[बराती तथा अगवानोंमेंसे] कुछ लाग परस्पर मिलनेके लिये हर्षके मारे बाग छोड़कर (सरपट) दौड़ चले, और ऐसे मिले मानो आनन्दके दो समुद्र मर्यादा छोड़कर मिलते हैं ॥ ३०५ ॥

चौ०—बरषि सुमन सुरसुंदरि गावहिं । सुदित देव दुंडुभी बजावहिं ॥

बस्तु सकल राखी नृप आगे । बिनय कीन्हि तिन्ह आत अनुरागे ॥ १ ॥

देवसुन्दरियाँ फूल बरसाकर गीत गा रही हैं, और देवता आनन्दित होकर नगाड़े बजा रहे हैं । [अगवानीमें आये हुए] उन लोगोंने सब चीजें दशरथजीके आगे रख दीं और अत्यन्त प्रेमसे विनती की ॥ १ ॥

प्रेम समेत रायँ सबु लीन्हा । भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा ॥

करि पूजा मान्यता बड़ाई । जनवासे कहूँ चले लवाई ॥ २ ॥

राजा दशरथजीने प्रेमसहित सब वस्तुएँ ले लीं, फिर उनकी बख्शीशें होने लगीं और वे याचकोंको दे दी गयीं । तदनन्तर पूजा, आदर-सत्कार और बड़ाई करके अगवान लोग उनको जनवासेकी ओर लिवा ले चले ॥ २ ॥

बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं । देखि धनदु धनमदु परिहरहीं ॥

अतिसुंदर दीन्हेउ जनवासा । जहँ सब कहूँ सब भाँति सुपासा ॥ ३ ॥

विलक्षण वस्त्रोंके पाँवड़े पहि रहे हैं, जिन्हें देखकर कुबेर भी अपने धनका अभिमान छोड़ देते हैं । बड़ा सुन्दर जनवासा दिया गया, जहाँ सबको सब प्रकारका सुभीता था ॥ ३ ॥

जानी सियँ बरात पुर आई । कलु निज महिमा प्रगटि जनाई ॥

हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाई । भूप पहुनई करन पठाई ॥ ४ ॥

सीताजीने बारात जनकपुरमें आयी जानकर अपनी कुछ महिमा प्रकट करके दिखलायी । हृदयमें स्मरणकर सब सिद्धियोंको बुलाया और उन्हें राजा दशरथजीकी मेहमानी करनेके लिये भेजा ॥ ४ ॥

दो०—सिधि सब सिय आयसु अकनि गई जहाँ जनवास ।

लिऐँ संपदा सकल सुख स्रपुर भोग बिलास ॥३०६॥

सीताजीकी आशा सुनकर सब सिद्धियाँ जहाँ जनवासा था वहाँ सारी सम्पदा, सुख और इन्द्रपुरीके भोग-विलासको लिये हुए गयीं ॥ ३०६ ॥

चौ०—निज निज बास बिलोकि बराती । सुरसुख सकल सुलभ सब भाँती ॥

बिभवभेद कलु कोउ न जाना । सकल जनक कर कहिँ बखाना ॥ १ ॥

बरातियोंने अपने-अपने ठहरनेके स्थान देखे तो वहाँ देवताओंके सब सुखोंको सब प्रकारसे सुलभ पाया । इस ऐश्वर्यका कुछ भी भेद कोई जान न सका । सब जनकजीकी बड़ाई कर रहे हैं ॥ १ ॥

सिय महिमा रघुनायक जानी । हरषे हृदयँ हेतु पहिचानी ॥

पितु आगमनु सुनत दोउ भाई । हृदयँ न अति आनंदु अमाई ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजी यह सब सीताजीकी महिमा जानकर और उनका प्रेम पहचानकर हृदयमें हर्षित हुए । पिता दशरथजीके आनेका समाचार सुनकर दोनों भाइयोंके हृदयमें महान् आनन्द समाता न था ॥ २ ॥

सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं । पितु दरसन लालखु मन माहीं ॥

बिखामित्र बिनय बड़ि देखी । उपजा उर संतोषु बिसेषी ॥ ३ ॥

संकोचवश वे गुरु (विश्वामित्रजी) से कह नहीं सकते थे, परन्तु मनमें पिताजीके दर्शनोंकी लालसा थी । विश्वामित्रजीने उनकी बड़ी नम्रता देखी, तो उनके हृदयमें बहुत सन्तोष उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥

हरषि बंधु दोउ हृदयँ लगाए । पुलक अंग अंबक जल छाए ॥

चले जहाँ दसरथु जनवासे । मनहुँ सरोवर तकेउ पिभासे ॥ ४ ॥

प्रसन्न होकर उन्होंने दोनों भाइयोंको हृदयसे ल्या लिया । शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमें (प्रेमाश्रुओंका) जल भर आया । वे उस जनवासेको चले जहाँ दशरथजी थे; मानो सरोवर प्यासेकी ओर लक्ष्य करके चला हो ॥ ४ ॥

दो०—भूप बिलोके जबहिं मुनि आवत सुतन्ह समेत ।

उठे हरषि सुखसिंधु महुँ चले थाह सी लेत ॥ ३०७ ॥

जब राजा दशरथजीने पुत्रोंसहित मुनिको आते देखा, तब वे हर्षित होकर उठे और सुखके समुद्रमें थाह-सी लेते हुए चले ॥ ३०७ ॥

चौ०—मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा । बार बार पदरज धरि सीसा ॥

कौंसिक राउ लिए उर लाई । कहि असीस पूछी कुसलाई ॥ १ ॥

पृथ्वीपति दशरथजीने मुनिकी चरणधूलिको बारंबार सिरपर चढ़ाकर उनको दण्डवत् प्रणाम किया । विश्वामित्रजीने राजाको उठाकर हृदयसे ल्या लिया और आशीर्वाद देकर कुशल पूछी ॥ १ ॥

पुनि दंडवत करत दोउ भाई । देखि नृपति उर सुखु न समाई ॥

सुत हियँ लाइ दुसह दुख मेटे । मृतकसरीर प्राण जुनु भेंटे ॥ २ ॥

फिर दोनों भाइयोंको दण्डवत् प्रणाम करते देखकर राजाके हृदयमें सुख समाया नहीं । पुत्रोंको उठाकर हृदयसे ल्याकर उन्होंने अपने वियोगजनित दुःसह दुःखको मिटाया; मानो मृतक शरीरको प्राण मिल गये ॥ २ ॥

पुनि बसिष्ठपद सिर तिन्ह नाए । प्रेम मुदित मुनिवर उर लाए ॥

विप्रबुंद बंदे दुहुँ भाई । मनभावती असीसँ पाई ॥ ३ ॥

फिर उन्होंने वशिष्ठजीके चरणोंमें सिर नवाया । श्रेष्ठ मुनिने प्रेमके आनन्दमें उन्हें हृदयसे ल्या लिया । दोनों भाइयोंने सब ब्राह्मणोंकी वन्दना की और मनभाये आशीर्वाद पाये ॥ ३ ॥

भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा । लिए उठाइ लाइ उर रामा ॥

हरषे लखन देखि दोउ भ्राता । मिले प्रेम परिपूरित गाता ॥ ४ ॥

भरतजीने छोटे भाई शत्रुघ्न सहित श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया । रामजीने उन्हें उठाकर हृदयसे ल्या लिया । लक्ष्मणजी दोनों भाइयोंको देखकर हर्षित हुए, और प्रेममें परिपूर्ण हुए शरीरमें उनसे मिले ॥ ४ ॥

दो०—पुरजन परिजन जातिजन जाचक मंत्री मीत ।

मिले जथाविधि सबहि प्रभु परम कृपाल विनीत ॥ ३०८ ॥

तदनन्तर परम कृपालु और विनयी श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यावासियों, कुटुम्बियों, जानिके लोगों, याचको, मन्त्रियों और मित्रों सभीसे यथायोग्य मिले ॥ ३०८ ॥

चौ०—रामहि देखि बरात जुझानी । प्रीति कि रीति न जाति बखानी ॥

नृप समीप सोहहिं सुत चारी । जनु धन घरमादिक तनुधारी ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीको देखकर बारात शीतल हुई (रामके वियोगमें सबके हृदयमें जो आग जल रही थी, वह शान्त हो गयी); प्रीतिकी रीतिका बखान नहीं हो सकता । राजाके पास चारों पुत्र ऐसी शोभा पा रहे हैं मानो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष शरीर धारण किये हुए हों ॥ १ ॥

सुतन्ह समेत दसरथहि देखी । मुदित नगर नर नारि बिसेषी ॥

सुमन बरिसि सुर इनहिं निसाना । नाकनटीं नाचहिं करि गाना ॥ २ ॥

पुत्रोंसहित दशरथजीको देखकर नगरके पुरुष-स्त्री बहुत ही प्रसन्न हो रहे हैं । [आकाशमें] देवता फूलोंकी वर्षा करके नगाड़े बजा रहे हैं और अप्सराएँ गा-गाकर नाच रही हैं ॥ २ ॥

सतानंद अरु बिप्र सचिवगन । मागध सूत बिदुष वंदीजन ॥

सहित बरात राउ सनमाना । आयसु मागि फिरे अगवाना ॥ ३ ॥

अगवानीमें आये हुए शतानन्दजी, अन्य ब्राह्मण, मन्त्रीगण, सूत, विद्वान् और भाटोंने बारातसहित राजा दशरथजीका आदर-सत्कार किया । फिर आज्ञा लेकर वे वापस लौटे ॥ ३ ॥

प्रथम बरात लगन तें आई । तातें पुर प्रमोदु अधिकारै ॥

ब्रह्मानंदु लोग सब लहहीं । बढहुं दिवस निसि बिधि सन कहहीं ॥ ४ ॥

बारात लग्नके दिनसे पहले आ गयी है, इससे जनकपुरमें अधिक आनन्द छा रहा है । सब लोग ब्रह्मानन्द प्राप्त कर रहे हैं और विधातासे मनाकर कहते हैं कि दिन-रात बढ़ जायें (बढ़े हो जायें) ॥ ४ ॥

दो०—रामु सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज ।

जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस मिलि नर नारि समाज ॥ ३०९ ॥

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी सुन्दरताकी सीमा हैं और दोनों राजा पुण्यकी सीमा हैं; जहाँ-तहाँ जनकपुर-वासी स्त्री-पुरुषोंके समूह इकट्ठे हो-होकर यही कह रहे हैं ॥ ३०९ ॥

चौ०—जनक सुकृत मूरति बैदेही । दसरथ सुकृत रामु घरें देही ॥

इन्ह सम काहुँ न सिव अवराधे । काहुँ न इन्ह समान फल लाधे ॥ १ ॥

जनकजीके सुकृत (पुण्य) की मूर्ति जानकीजी हैं और दशरथजीके सुकृत देह धारण किये हुए श्रीरामजी हैं । इन [दोनों राजाओं] के समान किसीने शिवजीकी आराधना नहीं की, और न इनके समान किसीने फल ही पाये ॥ १ ॥

इन्ह सम कोउ न भयउ जग माहीं । है नहिं कतहुँ होनेउ नाहीं ॥

हम सब सकल सुकृत कै रासी । भय जग जनमि जनकपुरवासी ॥ २ ॥

इनके समान जगत्में न कोई हुआ, न कहीं है, न होनेका ही है । हम सब भी सम्पूर्ण पुण्योंकी राशि हैं, जो जगत्में जन्म लेकर जनकपुरके निवासी हुए, ॥ २ ॥

जिन्ह जानकी राम छवि देखी । को सुकृती हम सरिस बिसेषी ॥

पुनि देखब रघुबीर बिआह । लेब भली बिधि लोचनलाह ॥ ३ ॥

और जिन्होंने जानकीजी और श्रीरामचन्द्रजीकी छवि देखी है । हमारे-सरीखा विशेष पुण्यात्मा कौन होगा ! और अब हम श्रीरघुनाथजीका विवाह देखेंगे और भलीभाँति नेत्रोंका लाभ लेंगे ॥ ३ ॥

कहहिं परसपर कोकिलबयनीं । एहि बिभाहँ बड़ लाभ सुनयनीं ॥
बड़े भाग बिधि बात बनाई । नयन अतिथि होइहहिं दोउ भाई ॥ ४ ॥

कोयलके समान मधुर बोलनेवाली स्त्रियाँ आपसमें कहती हैं कि हे सुन्दर नेत्रोंवाली ! इस विवाहमें बड़ा लाभ है । बड़े भाग्यसे विधाताने सब बात बना दी है; ये दोनों भाई हमारे नेत्रोंके अतिथि हुआ करेंगे ॥ ४ ॥

दो०—बारहिं बार सनेह बस बनक बोलाउब सीय ।

लेन आइहहिं बंधु दोउ कोटि काम कमनीय ॥ ३१० ॥

जनकजी स्नेहवश बार-बार सीताजीको बुलावेंगे, और करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर दोनों भाई सीताजीको लेने (विदा कराने) आया करेंगे ॥ ३१० ॥

चौ०—बिबिध भाँति होइहि पहुनाई । प्रिय न काहि अस सासुर भाई ॥
तब तब राम लखनहि निहारी । होइहहिं सब पुरखेग सुजारी ॥ १ ॥

तब उनकी अनेकों प्रकारसे पहुनाई होगी । सखी ! ऐसी समुराल किसे प्यारी न होगी । तब-तब हम सब पुरके लोग श्रीराम-लक्ष्मणको देख-देखकर मुली होंगे ॥ १ ॥

सखि जस राम लखन कर जोड़ा । तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा ॥

स्याम गौर सब अंग सुहाए । ते सब कहहिं देखि जे आए ॥ २ ॥

हे सखी ! जैसा श्रीराम-लक्ष्मणका जोड़ा है, वैसे ही दो कुमार राजाके साथ और भी हैं । वे भी एक स्याम और दूसरे गौर वर्णके हैं । उनके भी सब अंग बहुत सुन्दर हैं । जो लोग उन्हें देख आये हैं, वे सब यही कहते हैं ॥ २ ॥

कहा एक मैं आजु निहारे । जनु बिरंचि निज हाथ सँवारे ॥

भरतु राम ही की अनुहारी । सहसा लखि न सकहिं नर नारी ॥ ३ ॥

एकने कहा—मैंने आज ही उन्हें देखा है, इतने सुन्दर हैं मानो ब्रह्माजीने उन्हें अपने हाथों सँवारा है । भरत तो श्रीरामचन्द्रजीकी ही शकल-सूरतक है । स्त्री-पुरुष उन्हें सहसा पहचान नहीं सकते ॥ ३ ॥

लखनु सत्रुसूदन एकरूपा । नख सिख ते सब अंग अनूपा ॥

मन भावहिं मुख वरनि न जाहीं । उपमा कहँ त्रिभुवन कोउ नाहीं ॥ ४ ॥

लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनोंका एक रूप है । दोनोंके नखसं शिखानक सभी अंग अनुपम हैं । मनको बड़े अच्छे ल्याते हैं, पर मुखसे उनका वर्णन नहीं हो सकता । उनकी उपमाके योग्य तीनो लोकोंमें कोई नहीं है ॥ ४ ॥

छं०—उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहु कवि कोविद कहैं ।

बल विनय विद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एह अहैं ॥

पुरनारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं ।

ब्याहिअहुं चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं ॥

दास तुलसी कहता है कि कवि और कोविद (विद्वान) कहते हैं, इनकी उपमा कहीं कोई नहीं है; बल, विनय, विद्या, शील और शोभाके समुद्र इनके समान ये ही हैं । जनकपुरकी सब स्त्रियाँ आँचल फैलाकर विधाताको यह वचन (विनती) सुनाती हैं कि चारों भाइयोंका विवाह इसी नगरमें हो और हम सब सुन्दर मंगल गावें ।

सो०—कहहिं परस्पर नारि बारि बिलोचन पुलक तन ।

सखि सबु करब पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ ॥३११॥

नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भरकर पुलकित शरीरसे स्त्रियाँ आपसमें कह रही हैं कि हे सखी ! दोनों राजा पुण्यके समुद्र हैं, त्रिपुरारि शिवजी सब मनोरथ पूर्ण करेंगे ॥३११॥

चौ०—एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं । आनँद उमगि उमगि उर भरहीं ॥

जे नृप सीय स्वयंवर आए । देखि बंधु सब तिन्ह सुख पाए ॥ १ ॥

इस प्रकार सब मनोरथ कर रही हैं और हृदयको उमँग-उमँगकर (उत्साहपूर्वक) आनन्दसे भर रही हैं । सीताजीके स्वयंवरमें जो राजा आये थे, उन्होंने भी चारों भाइयोंको देखकर सुख पाया ॥ १ ॥

कहत रामजसु बिसद बिसाला । निज निज भवन गए महिपाला ॥

गए बीति कछु दिन एहि भाँती । प्रमुदित पुरजन सकल बराती ॥ २ ॥

भीरामचन्द्रजीका निर्मल और महान् यश कहते हुए राजा लोग अपने-अपने घर गये । इस प्रकार कुछ दिन बीत गये । जनकपुरनिवासी और बराती सभी बड़े आनन्दित हैं ॥ २ ॥

मंगलमूल लगनदिनु आवा । हिम रितु अगहन मास सुहावा ॥

ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू । लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू ॥ ३ ॥

मङ्गलका मूल लग्नका दिन आ गया । हेमन्त ऋतु और सुहावना अगहनका महीना था । ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग और वार श्रेष्ठ थे । लग्न (मुहूर्त) शोधकर ब्रह्माजीने उसपर विचार किया, ॥ ३ ॥

पटै दीन्हि नारद सन सोई । गनी जनक के गनकन्ह जोई ॥

सुनी सकल लोगन्ह यह बाता । कहहिं जोतिषी आहिं बिधाता ॥ ४ ॥

और उस (लग्नपत्रिका) को नारदजीके हाथ [जनकजीके यहाँ] भेज दिया । जनकजीके ज्योतिषियोंने भी वही गणना कर रखी थी । जब सब लोगोंने यह बात सुनी, तब वे कहने लगे—ज्योतिषी भी ब्रह्मा ही हैं ॥ ४ ॥

दो०—धेनुधूरि बेला विमल सकल सुमंगल मूल ।

बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनुकूल ॥३१२॥

निर्मल और सभी सुन्दर मङ्गलोंकी मूल गोधूलिकी पवित्र वेला आ गयी और अनुकूल शकुन होने लगे, यह जानकर ब्राह्मणोंने जनकजीसे कहा ॥ ३१२ ॥

चौ०—उपरोहितहि कहेउ नरनाहा । अब बिलंब कर कारनु काहा ॥

सतानंद तब सखिब बोलाय । मंगल सकल साजि सब ल्याए ॥ १ ॥

तब राजा जनकने उपरोहित शतामन्दजीसे कहा कि अब देरका क्या कारण है । तब शतामन्दजीने मन्त्रियोंको बुलाया । वे सब मङ्गलका सामान सजाकर ले आये ॥ १ ॥

संख निसान पनव बहु बाजे । मंगल कलस सगुन सुभ साजे ॥

सुभग सुभासिनि गावहिं गीता । करहिं बेदधुनि बिप्र पुनीता ॥ २ ॥

शंख, नगाड़े, ढोल और बहुत-से बाजे बजने लगे तथा मङ्गल-कलश और शुभ शकुनकी वस्तुएँ (दधि, दूर्वा आदि) सजायी गयीं । सुन्दर मुहागिन स्त्रियाँ गीत गा रही हैं और पवित्र ब्राह्मण वेदकी ध्वनि कर रहे हैं ॥ २ ॥

लेन चले सादर पहि भाँती । गए जहाँ जनवास बराती ॥

कोसलपति कर देखि समाजू । अति लघु लाग तिन्हहि सुरराजू ॥ ३ ॥

सब लोग इस प्रकार आदरपूर्वक बारातको लेने चले और जहाँ बरातियोंका जनवास था, वहाँ गये । अवधपति दशरथजीका समाज (वैभव) देखकर उनको देवराज इन्द्र भी बहुत ही तुच्छ लगने लगे ॥ ३ ॥

भयउ समउ अब धारिअ पाऊ । यह सुनि परा निसानहिं घाऊ ॥

गुरहि पूछि करि कुलबिधि राजा । चले संग मुनि साधु समाजा ॥ ४ ॥

[उन्होंने जाकर विनती की—] समय हो गया, अब पधारिये । यह सुनते ही नगाड़ोंपर चोट पड़ी । गुरु वशिष्ठजीसे पूछकर ओर कुलकी सब रीतियोंको करके राजा दशरथजी मुनियों और साधुओंके समाजको साथ लेकर चले ॥ ४ ॥

दो०—भाग्य विभव अवधेस कर देखि देव ब्रह्मादि ।

लगे सराहन सहस मुख जानि जनम निज बादि ॥ ३१३ ॥

अवधनरेश दशरथजीका भाग्य और वैभव देखकर और अपना जन्म व्यर्थ समझकर, ब्रह्माजी आदि देवता हजारों मुखोंसे उसकी सराहना करने लगे ॥ ३१३ ॥

चो०—सुरन्ह सुमंगल अवसरु जाना । बरषहिं सुमन बजाइ निसाना ॥

सिच ब्रह्मादिक बिबुध बरुथा । चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा ॥ १ ॥

देवगण सुन्दर मङ्गलका अवसर जानकर, नगाड़े बजा-बजाकर फूल बरसाते हैं । शिवजी, ब्रह्माजी आदि देववृन्द यूथ (टोलियाँ) बना-बनाकर विमानोंपर जा चढ़े ॥ १ ॥

प्रेम पुलक तन हृदयँ उछाह । चले विलोकन राम बिआह ॥

देखि जनकपुरु सुर अनुरागे । निज निज लोक सबहि लघु लागे ॥ २ ॥

और प्रेमसे पुलकितशरीर हो तथा हृदयमें उत्साह भरकर श्रीगमचन्द्रजीका विवाह देखने चले । जनकपुरको देखकर देवता इतने अनुरक्त हो गये कि उन सबको अपने अपने लोक बहुत तुच्छ लगने लगे ॥ २ ॥

चितवहिं चकित बिचित्र बिताना । रचना सकल अलौकिक नाना ॥

नगर नारि नर रूपनिधाना । सुधर सुधरम सुसील सुजाना ॥ ३ ॥

विचित्र मण्डपको तथा नाना प्रकारकी सब अलौकिक रचनाओंको वे चकित होकर देख रहे हैं । नगरके स्त्री-पुरुष रूपके भण्डार, सुघड़, श्रेष्ठ धर्मात्मा, सुशील और मुज्जन हैं ॥ ३ ॥

तिन्हहि देखि सब सुर सुरनारों । भए नखन जनु बिधु उजियारों ॥

बिधिहि भयउ आचरजु बिसेयी । निज करनी कछु कतहुँ न देखी ॥ ४ ॥

उन्हें देखकर सब देवता और देवाङ्गनाएँ ऐसे प्रभाहीन हो गये जैसे चन्द्रमाके उजियालेमें तारागण फीके पड़ जाते हैं । ब्रह्माजीको विशेष आश्चर्य हुआ, क्योंकि वहाँ उन्होंने अपनी कोई करनी (रचना) तो कहीं देखी ही नहीं ॥ ४ ॥

दो०—सिव समुझाए देव सब जनि आचरज भुलाहु ।

हृदयँ विचारहु धीर धरि सिय रघुवीर बिआहु ॥ ३१४ ॥

तब शिवजीने सब देवताओंको समझाया कि तुमलोग आश्चर्यमें मत भूलो । हृदयमें धीरज धरकर विचार तो करो कि यह [भगवान्की महा महिमामयी निजशक्ति] श्रीसीताजीका और [अविल ब्रह्माण्डके परम ईश्वर साक्षात् भगवान्] श्रीरामचन्द्रजीका विवाह है ॥ ३१४ ॥

चौ०—जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं । सकल अमंगल मूल नसाहीं ॥

करतल होहिं पदार्थ चारी । नेइ सिय रामु कहेंउ कामारी ॥ १ ॥

जिनका नाम लेते ही जगत्में सारे अमङ्गलोंकी जड़ कट जाती है और चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) मुझीमें आ जाते हैं, ये वही [जगत्के माता-पिता] श्रीसीतारामजी हैं; कामके शत्रु शिवजीने ऐसा कहा ॥ १ ॥

एहि बिधि संभु सुरन्ह समुझावा । पुनि आगें बर बसह चलावा ॥

देवन्ह देखे दसरथु जाता । महामोद मन पुलकित गाता ॥ २ ॥

इस प्रकार शिवजीने देवताओंको समझाया और फिर अपने श्रेष्ठ ब्रह्म (नन्दीश्वर) को आगे बढ़ाया । देवताओंने देखा कि दशरथजी मनमें बड़े ही प्रसन्न और शरीरसे पुलकित हुए चले जा रहे हैं ॥ २ ॥

साधुसमाज संग महिदेवा । जनु तनु धरें करहिं सुख सेवा ॥

सोहत साथ सुभग सुत चारी । जनु अपवरग सकल तनुधारी ॥ ३ ॥

उनके साथ [परम हर्षयुक्त] साधुओं और ब्राह्मणोंकी मण्डली ऐसी शोभा दे रही है मानो समस्त सुख शरीर धारण करके उनकी सेवा कर रहे हो । चारों सुन्दर पुत्र साथमें ऐसे मुग़्धोन्मत्त हैं मानो सम्पूर्ण मोक्ष (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य) शरीर धारण किये हुए हों ॥ ३ ॥

मरकत कनक बरन बर जोरी । देखि सुरन्ह भैं प्रीति न थोरी ॥

पुनि रामहि बिलोकि हियँ हरये । नृपहि सराहि सुमन निन्ह बरये ॥ ४ ॥

मरकतमणि और सुवर्णके रंगकी सुन्दर जाँड़ियोंको देखकर देवताओंको कम प्रीति नहीं हुई (अर्थात् बहुत ही प्रीति हुई) । फिर श्रीरामचन्द्रजीको देखकर वे हृदयमें हर्षित हुए और राजाकी सराहना करके उन्होंने फूल बरसाये ॥ ४ ॥

दो०—रामरूपु नख सिख सुभग वारहिं वार निहारि ।

पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि ॥ ३१५ ॥

नखसे शिखातक श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर रूपको बार-बार देखने हुए पार्वतीजीसहित श्रीशिवजीका शरीर पुलकित हो गया और उनके नेत्र [प्रेमाश्रुओंके] जलसे भर गये ॥ ३१५ ॥

चौ०—केकिंकठ दुति स्यामल अंगा । तड़ित बिनिंदक घसन सुरंगा ॥

ब्याहबिभूषन बिबिध बनाए । मंगल सब सब भाँति सुहाए ॥ १ ॥

रामजीका मोरके कंठकीसी कान्तिवाला श्याम शरीर है । बिजलीका अत्यन्त निगदर करनेवाले प्रकाशमय सुन्दर [पीत] रंगके वस्त्र हैं । सब मङ्गलरूप और सब प्रकारसे सुन्दर भाँति-भाँतिके विवाहके आभूषण शरीरपर सजाये हुए हैं ॥ १ ॥

सरद बिमल बिधु बधनु सुहावन । नयन नवल राजीव लजावन ॥

सकल अलौकिक सुंदरताई । कहि न जाइ मनहीं मन भाई ॥ २ ॥

उनका सुन्दर मुख शरत्पूर्णिमाके निर्मल चन्द्रमाके समान और [मनोहर] नेत्र नवीन कमलको लजानेवाले हैं। सारी सुन्दरता अलौकिक है (मायाकी बनी नहीं है, दिव्य सच्चिदानन्दमयी है)। वह कही नहीं जा सकती, मन-ही-मन बहुत प्रिय ल्याती है ॥ २ ॥

बंधु मनोहर सोहहिं संगी । जात नचावत चपल तुरंगी ॥

राजकुमर बर बाजि देखावहिं । बंसप्रसंसक बिरिद सुनावहिं ॥ ३ ॥

साथमें मनोहर भाई शोभित हैं, जो चञ्चल घोड़ोंको नचाते हुए चले जा रहे हैं। राजकुमार श्रेष्ठ घोड़ोंको (उनकी चालको) दिखला रहे हैं और वंशको प्रशंसा करनेवाले (मागध-भाट) विरुदावली सुना रहे हैं ॥ ३ ॥

जेहि तुरंग पर रामु बिराजे । गति बिलोकि खगनायकु लाजे ॥

कहि न जाइ सब भाँति सुहावा । बाजिबेषु जनु काम बनावा ॥ ४ ॥

जिस घोड़ेपर श्रीरामजी विराजमान हैं, उसकी तेज चाल देखकर गरुड़ भी लजा जाते हैं। उसका वर्णन नहीं हो सकता, वह सब प्रकारसे सुन्दर है। मानो कामदेवने ही घोड़ेका भेष धारण कर लिया हो ॥ ४ ॥

छं०—जनु बाजिबेषु बनाइ मनसिजु राम हित अति सोहई ।

आपने बय बल रूप गुण गति सकल भुवन बिमोहई ॥

जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे ।

किंकिनि ललाम लगामु ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे ॥

मानो श्रीरामचन्द्रजीके लिये कामदेव घोड़ेका भेष बनाकर अत्यन्त शोभित हो रहा है। वह अपनी अवस्था, बल, रूप, गुण और चालसे समस्त लोकोंको मोहित कर रहा है। सुन्दर मोती, मणि और माणिक्य लगी हुई जड़ाऊ जीन ज्योतिसे जगमगा रहा है। उसकी सुन्दर धुँवरू लगी ललित लगामको देखकर देवता, मनुष्य और मुनि सभी ठगे जाते हैं ॥

दो०—प्रभु मनसहिं लयलीन मनु चलत बाजि छवि पाव ।

भूषित उड़गन तड़ित घनु जनु बर बगहि नचाव ॥ ३१६ ॥

प्रभुकी इच्छामें अपने मनको लीन किये चलता हुआ वह घोड़ा बड़ी शोभा पा रहा है। मानो तारामण तथा बिजलीसे अलंकृत मेघ सुन्दर मोरको नचा रहा हो ॥ ३१६ ॥

चौ०—जेहिं बर बाजि रामु असवारा । तेहि सारदउ न बरनै पारा ॥

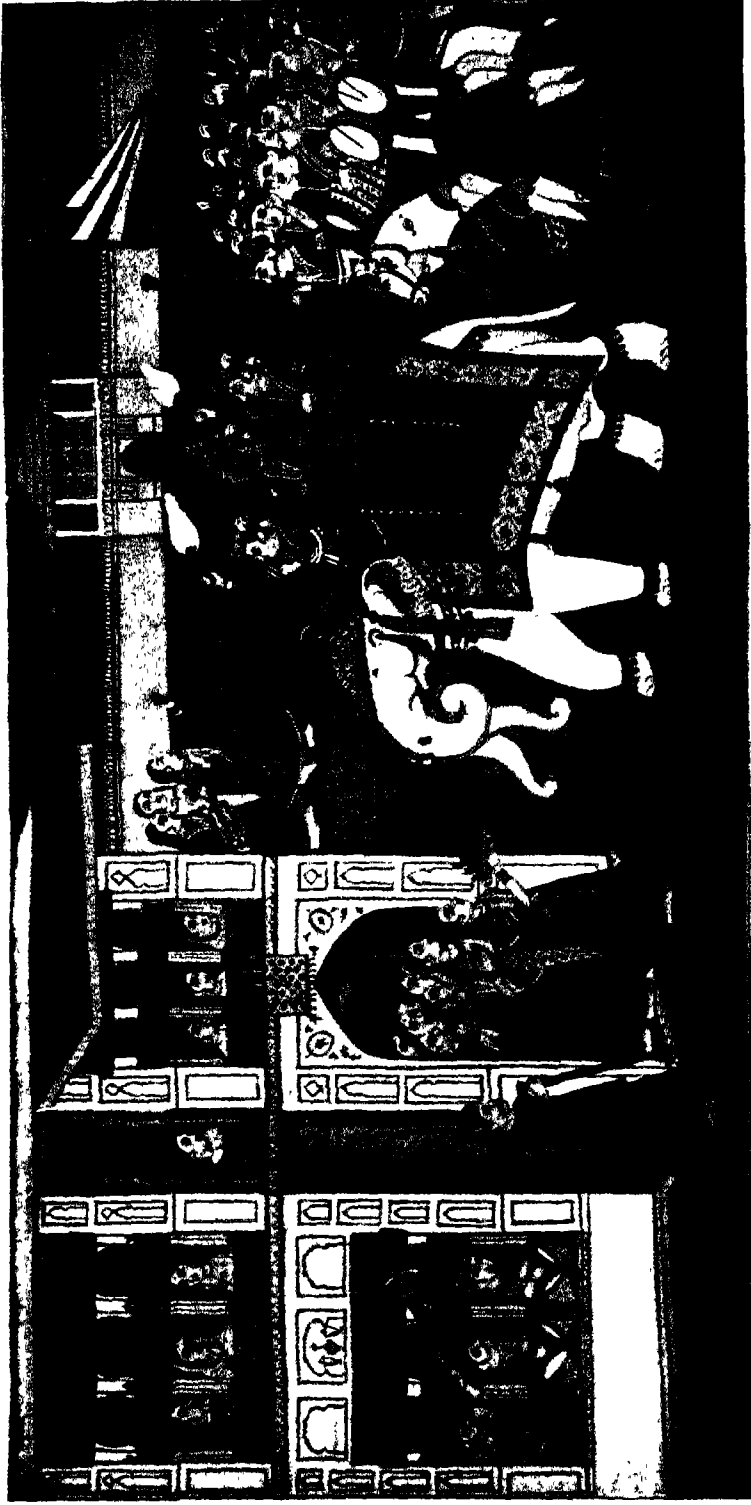
संकरु रामरूप अनुरागे । नयन पंचदस अति प्रिय लागे ॥ १ ॥

जिस श्रेष्ठ घोड़ेपर श्रीरामचन्द्रजी सवार हैं, उसका वर्णन सरस्वतीजी भी नहीं कर सकती। शंकरजी श्रीरामचन्द्रजीके रूपमें ऐसे अनुरक्त हुए कि उन्हें अपने पन्द्रह नेत्र इस समय बहुत ही प्यारे लगने लगे ॥ १ ॥

हरि हित सहित रामु जब जोहे । रमा समेत रमापति मोहे ॥

निरखि रामछवि बिधि हरषाने । आठइ नयन जानि पछिताने ॥ २ ॥

भगवान् विष्णुने जब प्रेमसहित श्रीरामको देखा, तब वे [रमणीयताकी मूर्ति] श्रीलक्ष्मीजीके प्रति श्रीलक्ष्मीजीवहित माहित हो गये। श्रीरामचन्द्रजीकी शोभा देखकर ब्रह्माजी प्रसन्न हुए, पर अपने आठ ही नेत्र जानकर पछिताने लगे ॥ २ ॥



सजि आरती अनेक विधि मंगल सकल संचारि ।
बली मुदित परिछति करन गजगामिति वर नारि ॥

[पृष्ठ २८७]

[पं० हनुमान शर्मोजीकी कृपासे प्राप्त]

सुरसेनप सर बहुत उछाड़ । बिधि ते डेवड़ लोचनलाइ ॥

रामहि चितव सुरेस सुजाना । गौतमश्रापु परम हित माना ॥ ३ ॥

देवताओंके सेनापति स्वामिकर्तिकके हृदयमें बड़ा उत्साह है, क्योंकि वे ब्रह्माजीसे ब्यौदे अर्थात् बारह नेत्रोंसे राम-दर्शनका सुन्दर काम उठा रहे हैं । सुजान इन्द्र अपने हजार नेत्रोंसे श्रीरामचन्द्रजीको देख रहे हैं और गौतमजीके श्रापको अपने लिये परम हितकर मान रहे हैं ॥ ३ ॥

देव सकल सुरपतिहि सिंहाहीं । आजु पुरंदर सम कोठ नाही ॥

मुदित देवगन रामहि देखी । नृपसमाज दुई हरषु बिसेषी ॥ ४ ॥

सभी देवता देवराज इन्द्रसे ईर्ष्या कर रहे हैं [और कह रहे हैं] कि आज इन्द्रके समान भाग्यवान् दूसरा कोई नहीं है । श्रीरामचन्द्रजीको देखकर देवगण प्रसन्न हैं, और दोनों राजाओंके समाजमें विशेष हर्ष छा रहा है ॥ ४ ॥

ॐ—अति हरषु राजसमाज दुई विसि दुंदुभों बाजहिं घनी ।

बरषहिं सुमन सुर हरषि कहि जय जयति जय रघुकुलमनी ॥

पहि भौति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहिं ।

रानी सुभासिनि बोलि परछनि हेतु मंगल साजहिं ॥

दोनों ओरके राजसमाजमें अत्यन्त हर्ष है और बड़े जोरसे नगाड़े बज रहे हैं । देवता प्रसन्न होकर और 'रघुकुलमणि श्रीरामकी जय हो, जय हो, जय हो' कहकर फूल बरसा रहे हैं । इस प्रकार बारातको आती हुई जानकर बहुत प्रकारके बाजे बजने लगे और रानी सुभागिन स्त्रियोंको बुलकर परछनके लिये मङ्गलद्रव्य सजाने लगीं ।

दो०—सजि आरती अनेक बिधि मंगल सकल सँवारि ।

चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि बर नारि ॥ ३१७ ॥

अनेक प्रकारसे आरती सजकर और समस्त मङ्गलद्रव्योंको यथायोग्य सजाकर गजगामिनी (हाथीकी-सी चालवाली) उत्तम स्त्रियाँ आनन्दपूर्वक परछनके लिये चलीं ॥ ३१७ ॥

चौ०—बिधुबदनीं सब सब मृगलोचनि । सब निज तन छबि रतिमदु मोचनि ॥

पहिरें बरन बरन बर चीरा । सकल बिभूषन सजें सरीरा ॥ १ ॥

सभी स्त्रियाँ चन्द्रमुखी (चन्द्रमाके समान मुखवाली) और सभी मृगलोचनी (हरिणकी-सी आँखों-वाली) हैं, और सभी अपने शरीरकी शोभासे रतिके गर्वको कुड़ानेवाली हैं । रंग-रंगकी सुन्दर साड़ियाँ पहने हैं और शरीरपर सब आभूषण सजे हुए हैं ॥ १ ॥

सकल सुमंगल अंग बनायँ । कराहिं गान कलकंठि लजायँ ॥

कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं । चालि बिलोकि कामगज लाजहिं ॥ २ ॥

समस्त अंगोंको सुन्दर मङ्गलपदार्थोंसे सजाये हुए वे कोयलकी भी लजाती हुई [मधुर स्वरसे] गान कर रही हैं । कंकन, करधनी और नूपुर बज रहे हैं । स्त्रियोंकी चाल देखकर कामदेवके हाथी भी लजा जाते हैं ॥ २ ॥

बाजहिं बाजने बिबिध प्रकारा । नभ अरु नगर सुमंगलचारा ॥

सच्ची सारदा रमा भवानी । जे सुरतिय सुचि सहज सयानी ॥ ३ ॥

अनेक प्रकारके बाजे बज रहे हैं। आकाश और नगर दोनों स्थानोंमें सुन्दर मङ्गलज्वार हो रहे हैं। शची (इन्द्राणी), सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती, और जो स्वभावसे ही पवित्र और सयानी देवाङ्गनाएँ थीं, ॥३॥

कपट नारि बर बेप बनाई। मिलीं सकल रनिवासहिं जाई ॥
करहिं गान कल मंगल बानीं। हरष बिबस सब काहुँ न जानीं ॥४॥

वे सब कपटसे सुन्दर स्त्रीका भेष बनाकर रनिवासमें जा मिलीं और मनोहर वाणीसे मंगल गान करने लगीं। सब कोई हर्षके विशेष वश थे, अतः किसीने उन्हें नहीं पहचाना ॥ ४ ॥

छं०—को जान केहि आनंद बस सब ब्रह्म बर परिछन चली।
कल गान मधुर निसान बरषहिं सुमन सुर सोभा भली ॥
आनंदकंदु बिलोकि दूलहु सकल हिय हरषित भई।
अंभोज अंबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छई ॥

कौन किसे जाने पहचाने ! आनन्दके वश हुई सब दूलह बने हुए ब्रह्मका परछन करने चलीं। मनोहर गान हो रहा है, मधुर-मधुर नगाड़े बज रहे हैं, देवता फूल बरसा रहे हैं, बढ़ी अच्छी शोभा है। आनन्दकन्द दूलहको देखकर सब स्त्रियाँ हृदयमें हर्षित हुई। उनके कमल-सरीखे नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंका जल उमड़ आया और सुन्दर अंगोंमें पुलकावली छा गयी ॥

दो०—जो सुखु भा सियमातु मन देखि राम बर बेषु।

सो न सकहिं कहि कलप सत सहस सारदा सेषु ॥३१८॥

श्रीरामचन्द्रजीका वरवेष देखकर सीताजीकी माता सुनयनाजीके मनमें जो सुख हुआ, उसे हजारों सरस्वती और शेषजी सौ कल्पोंमें भी नहीं कह सकते [अथवा लाखों सरस्वती और शेष लाखों कल्पोंमें भी नहीं कह सकते] ॥ ३१८ ॥

चौ०—नयन नीरु हटि मंगल जानी। परिछनि करहिं मुदित मन रानी ॥
वेदबिहित अरु कुल आचारू। कीन्ह भली बिधि सब व्यवहारू ॥१॥

मङ्गल अवसर जानकर नेत्रोंके जलको गेके हुए रानी प्रसन्न मनसे परछन कर रही हैं। वेदोंमें कहे हुए तथा कुलचारके अनुसार सभी व्यवहार रानीने भली भाँति किये ॥ १ ॥

पंच सवद धुनि मंगलगाना। पट पाँवड़े परहिं बिधि नाना ॥
करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा। राम गमनु मंडप तब कीन्हा ॥२॥

पञ्चशब्द (तन्त्री, ताल, झाँझ, नगारा और तुरही, इन पाँच प्रकारके बाजोंके शब्द), पञ्चध्वनि (वेदध्वनि, वन्दिध्वनि, जयध्वनि, शंखध्वनि और हृद्घ्वनि) और मङ्गलगान हो रहे हैं। नाना प्रकारके वस्त्रोंके पाँवड़े पड़ रहे हैं। उन्होंने (रानीने) आरती करके अर्घ्य दिया, तब श्रीरामजीने मण्डपमें गमन किया ॥ २ ॥

दसरथु सहित समाज विराजे। विभव बिलोकि लोकपति लाजे ॥

समयँ समयँ सुर बरषहिं फूला। सांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला ॥३॥

दशरथजी अपनी मण्डलीसहित विराजमान हुए। उनके वैभवको देखकर लोकपाल भी लजा गये। समय समयपर देवता फूल बरसाते हैं और भूदेव ब्राह्मण समयानुकूल शान्तिपाठ करते हैं ॥ ३ ॥

नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपनि पर कछु सुनइ न कोई ॥

एहि बिधि रामु मंडपहिं आए। अरघु देइ आसन बैठाए ॥४॥

आकाश और नगरमें शोर मच रहा है। अपनी-परायी कोई कुछ भी नहीं सुनता। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी मण्डपमें आये और अर्घ्य देकर आसनपर बैठाये गये ॥ ४ ॥

छं०—बैठारि आसन आरती करि निरखि बरु सुखु पावहीं ।
मनि बसन भूषन भूरि वारहिं नारि मंगल गावहीं ॥
ब्रह्मादि सुरवर विप्रवेश बनाइ कौतुक देखहीं ।
अवलोकि रघुकुल कमल रवि छबि सुफल जीवन लेखहीं ॥

आसनपर बैठाकर, आरती करके, दूल्हको देखकर लियाँ सुख पा रही हैं। वे ढेर-के-ढेर मणि, वस्त्र और गहने निछावर करके मङ्गल गा रही हैं। ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवता ब्राह्मणका वेष बनाकर कौतुक देख रहे हैं। वे रघुकुलरूपी कमलके प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य श्रीरामचन्द्रजीकी छबि देखकर अपना जीवन सफल जान रहे हैं।

दो०—नाऊ बारी भाट नट राम निछावरि पाइ ।

मुदित असीसहिं नाइ सिर हरषु न हृदयँ समाइ ॥३१९॥

नाई, बारी, भाट और नट श्रीरामचन्द्रजीकी निछावर पाकर आनन्दित हो, सिर नवाकर आशिष देते हैं; उनके हृदयमें हर्ष समाता नहीं है ॥ ३१९ ॥

चो०—मिले जनकु दसरथु अति प्रीतीं । करि बैदिक लौकिक सब रीतीं ॥

मिलत महा दोउ राज बिराजे । उपमा खोजि खोजि कवि लाजे ॥ १ ॥

वैदिक और लौकिक सब रीतियाँ करके जनकजी और दशरथजी बड़े प्रेमसे मिले। दोनों महाराज मिलते हुए बड़े ही शोभित हुए, कवि उनके लिये उपमा खोज-खोजकर लाजा गये ॥ १ ॥

लहरी न कतहुँ हारि हियँ मानी । इन्ह सम एइ उपमा उर आनी ॥

सामघ देखि देव अनुरागे । सुमन बरषि जसु गावन लागे ॥ २ ॥

जब कहीं भी उपमा नहीं मिली, तब हृदयमें हार मानकर उन्होंने मनमें यही उपमा निश्चित की कि इनके समान ये ही हैं। समर्थियोंका मिलाप या परस्पर सम्बन्ध देखकर देवता अनुरक्त हो गये और फूल बरसाकर उनका यश गाने लगे ॥ २ ॥

जगु बिरंचि उपजावा जब तैं । देखे सुने ब्याह बहु तब तैं ॥

सकल भौति सम साजु समाजु । सम समधी देखे हम आजु ॥ ३ ॥

[वे कहने लगे—] जबसे ब्रह्माजीने जगत्को उत्पन्न किया, तबसे हमने बहुत विवाह देखे-सुने; परन्तु सब प्रकारसे समान साज-समाज और बराबरीके (पूर्ण समतायुक्त) समधी तो आज ही देखे ॥ ३ ॥

देवगिरा सुनि सुंदर साँची । प्रीति अलौकिक दुहु दिसि मार्ची ॥

देत पाँवड़े अरघु सुहाए । सादर जनकु मंडपहिं ल्याए ॥ ४ ॥

देवताओंकी सुन्दर सत्यवाणी सुनकर दोनों ओर अलौकिक प्रीति छा गयी। सुन्दर पाँवड़े और अर्घ्य देते हुए जनकजी दशरथजीको आदरपूर्वक मण्डपमें ले आये ॥ ४ ॥

छं०—मंडपु बिलोकि बिचित्र रचनाँ रुचिरताँ मुनिमन हरे ।

निज पानि जनक सुजान सब कहूँ आनि सिंघासन धरे ॥

कुल इष्ट सरिस बसिष्ट पूजे बिनय करि आसिष लही ।

कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही ॥

मण्डपको देखकर उसकी विचित्र रचना और सुन्दरतासे मुनियोंके मन भी हरे गये (मोहित हो गये) । सुजान जनकजीने अपने हाथोंसे ला-लाकर सबके लिये सिंहासन रक्खे । उन्होंने अपने कुलके इष्ट देवताके समान वशिष्ठजीकी पूजा की और विनय करके आशीर्वाद प्राप्त किया । विश्वामित्रजीकी पूजा करते समयकी परम प्रीतिकी रीति तो कहते ही नहीं बनती ।

दो०—वामदेव आदिक रिषय पूजे मुदित महीस ।

दिए दिव्य आसन सबहि सब सन लही असीस ॥३२०॥

राजने वामदेव आदि ऋषियोंकी प्रसन्न मनसे पूजा की । सभीको दिव्य आसन दिये और सबसे आशीर्वाद प्राप्त किया ॥ ३२० ॥

चौ०—बहुरि कीन्हि कोसलपति पूजा । जानि ईससम भाउ न दूजा ॥

कीन्हि जोरि कर बिनय बढ़ाई । कहि निज भाग्य विभव बहुताई ॥ १ ॥

फिर उन्होंने कोसलधीश राजा दशरथजीकी पूजा उन्हें ईश (महादेवजी) के समान जानकर की, कोई दूसरा भाव नहीं था । तदनन्तर [उनके सम्बन्धसे] अपने भाग्य और वैभवके विस्तारकी सराहना करके हाथ जोड़कर विनती और बढ़ाई की ॥ १ ॥

पूजे भूपति सकल बराती । समधी सम सादर सब भाँती ॥

आसन उचित दिए सब काह । कहाँ काह मुख एक उछाह ॥ २ ॥

राजा जनकजीने सब बरातियोंका समधी दशरथजीके समान ही सब प्रकारसे आदरपूर्वक पूजन किया और सब किसीको उचित आसन दिये । मैं एक मुखसे उस उत्साहका क्या वर्णन करूँ ॥ २ ॥

सकल बरात जनक सनमानी । दान मान बिनती बर बानी ॥

बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ । जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ ॥ ३ ॥

राजा जनकने दान, मान-सम्मान, विनय और उत्तम वाणीसे सारी बारातका सम्मान किया । ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दिक्पाल और सूर्य जो श्रीरघुनाथजीका प्रभाव जानने हैं, ॥ ३ ॥

कपट बिप्र बर वेप बनाएँ । कौतुक देखहिं अनि सखु पाएँ ॥

पूजे जनक देवसम जानें । दिए सुआसन बिनु पहिचानें ॥ ४ ॥

वे कपटसे ब्राह्मणोंका सुन्दर वेप बनाये बहुत ही सुख पाते हुए सब लीला देख रहे थे । जनकजीने उनको देवताओंके समान जानकर उनका पूजन किया और बिना पहचाने भी उन्हें सुन्दर आसन दिये ॥ ४ ॥

छं०—पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई ।

आनन्दकंदु बिलोकि दूलहु उभय दिशि आनन्दमई ॥

सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए ।

अबलोकि सीलु सुभाउ प्रभु को बिबुध मन प्रमुदित भए ॥

कौन किसको जाने-पहिचाने ! सबको अपनी ही सुधि भूली हुई है । आनन्दकन्द दूल्हको देखकर दोनों और आनन्दमयी स्थिति हो रही है । सुजान (सर्वश) श्रीरामचन्द्रजीने देवताओंको पहचान लिया और उनकी

मानसिक पूजा करके उन्हें मानसिक आसन दिये। प्रभुका शील-स्वभाव देखकर देवगण मनमें बहुत आनन्दित हुए।

दो०—रामचंद्र मुखचंद्र छवि लोचन चारु चकोर।

करत पान सादर सकल प्रेमु प्रमोदु न थोर ॥३२१॥

भीरामचन्द्रजीके मुखरूपी चन्द्रमाकी छविको सभीके सुन्दर नेत्ररूपी चकोर आदरपूर्वक पान कर रहे हैं; प्रेम और आनन्द कम नहीं है (अर्थात् बहुत है) ॥ ३२१ ॥

चौ०—समउ बिलोकि बसिष्ठ बोलाए। सादर सतानंदु सुनि आए ॥

बेगि कुम्हारि अब धानहु जाई। चले मुदित मुनि आयसु पाई ॥१॥

समय देखकर वशिष्ठजीने शतानन्दजीको आदरपूर्वक बुलाया। वे सुनकर आदरके साथ आये। वशिष्ठजीने कहा—अब जाकर राजकुमारीको शीघ्र ले आइये। मुनिकी आज्ञा पाकर वे प्रसन्न होकर चले ॥ १ ॥

रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सखिन्ह समेत सयानी ॥

बिप्रबधू कुलबद्ध बोलाई। करि कुलरीति सुमंगल गाई ॥२॥

बुद्धिमती रानी पुरोहितकी वाणी सुनकर सखियोंसमेत बड़ी प्रसन्न हुई। ब्राह्मणोंकी स्त्रियों और कुलकी बूढ़ी स्त्रियोंको बुलाकर उन्होंने कुलरीति करके सुन्दर मङ्गलगीत गाये ॥ २ ॥

नारिवेष जे सुर बर बामा। सकल सुभायँ सुंदरी स्यामा ॥

तिन्हहि देखि सुखु पावहिं नारीं। बिनु पहिचानि प्रानहु ते प्यारीं ॥३॥

श्रेष्ठ देवाङ्गनाएँ, जो सुन्दर मनुष्य-स्त्रियोंके वेषमें हैं, सभी स्वभावसे ही सुन्दरी और दयामा (सोलह वर्षकी अवस्थावाली) हैं। उनको देखकर रनिवासकी स्त्रियाँ मुख पाती हैं और बिना पहचानके ही वे सबको प्राणोंसे भी प्यारी हो रही हैं ॥ ३ ॥

बार बार सनमानहिं रानी। उमा रमा सारद सम जानी ॥

सीय सँवारि समाजु बनाई। मुदित मंडपहिं चलीं लवाई ॥४॥

उन्हें पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वतीके समान जानकर रानी बार-बार उनका सम्मान करती हैं। [रनिवासकी स्त्रियाँ और सखियाँ] सीताजीका शृंगार करके, मण्डली बनाकर, प्रसन्न होकर उन्हें मण्डपमें लिया चली ॥ ४ ॥

छं०—चलि ल्याइ सीतहि सखीं सादर सजि सुमंगल भामिनीं।

नवसप्त साजें सुंदरीं सब मत्त कुंजर गामिनीं ॥

कलगान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं कामकोकिल लाजहीं।

मंजीर नूपुर कलित कंकन तालगति बर बाजहीं ॥

सुन्दर मङ्गलका साज सजकर [रनिवासकी] स्त्रियाँ और सखियाँ आदरसहित सीताजीको लिया ले चली। सभी सुन्दरियाँ सोलहो शृंगार किये हुए मतवाले हाथियोंकी चालसे चलनेवाली हैं। उनके मनोहर गान सुनकर मुनि ध्यान छोड़ देते हैं, और कामदेवकी कोकिलाएँ भी लजा जातो हैं। पायजेब, पैजनी और सुन्दर कंकण तालकी गतिपर बड़े सुन्दर बज रहे हैं।

दो०—सोहति बनिताबुंद महुँ सहज सुहावनि सीय।

छवि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय ॥३२२॥

सहज ही सुन्दरी सीताजी स्त्रियोंके समूहमें इस प्रकार शोभा पा रही हैं मानो छबिरूपी ललनाओंके समूहके बीच साक्षात् परम मनोहर शोभारूपी स्त्री सुशोभित हो ॥ ३२२ ॥

चौ०—सिय सुंदरता बरनि न जाई । लघु मति बहुत मनोहरताई ॥
आवत दीखि बरातिन्ह सीता । रूपरासि सब भाँति पुनीता ॥ १ ॥

सीताजीकी सुन्दरताका वर्णन नहीं हो सकता, क्योंकि बुद्धि बहुत छोटी है और मनोहरता बहुत बड़ी है । रूपकी राशि और सब प्रकारसे पवित्र सीताजीको बरातियोंने आते देखा ॥ १ ॥

सबहि मनहिं मन किए प्रनामा । देखि राम भए पूरनकामा ॥
हरषे दसरथ सुतन्ह समेता । कहि न जाइ उर आनँदु जेता ॥ २ ॥
सभीने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया । श्रीरामचन्द्रजीको देखकर तो सभी पूर्णकाम (कृत-कृत्य) हो गये । राजा दशरथजी पुत्रोंसहित हर्षित हुए । उनके हृदयमें जितना आनन्द था, वह कहा नहीं जा सकता ॥ २ ॥

सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला । मुनि असीस धुनि मंगलमूला ॥
गान निसान कोलाहलु भारी । प्रेम प्रमोद मगन नर नारी ॥ ३ ॥
देवता प्रणाम करके फूल बरसा रहे हैं । मङ्गलोंकी मूल मुनियोंके आशीर्वादोंकी ध्वनि हो रही है । गानों और नगाड़ोंके शब्दसे बड़ा शोर मच रहा है । सभी नर-नारी प्रेम और आनन्दमें मग्न हैं ॥ ३ ॥

एहि बिधि सीय मंडपहिं आई । प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई ॥
तेहि अवसर कर बिधि व्यवहारु । दुहुँ कुलगुर सब कीन्ह अचारु ॥ ४ ॥
इस प्रकार सीताजी मण्डपमें आयी । मुनिराज बहुत ही आनन्दित होकर शान्तिपाठ पढ़ रहे हैं । उस अवसरकी सब रीति, व्यवहार और कुलचार दोनों कुलगुरुओंने किये ॥ ४ ॥

छं०—आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं ।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुखु पावहीं ॥
मधुपर्क मंगलद्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहैं ।
भरे कनक कोपर कलस सो तब लिणहिं परिचारक रहैं ॥ १ ॥

कुलचार करके गुरुजी प्रसन्न होकर गौरीजी, गणेशजी और ब्राह्मणोंकी पूजा करा रहे हैं [अथवा ब्राह्मणोंके द्वारा गौरी और गणेशकी पूजा करवा रहे हैं] । देवता प्रकट होकर पूजा ग्रहण करते हैं, आशीर्वाद देते हैं और अत्यन्त सुख पा रहे हैं । मधुपर्क आदि जिम किसी भी माङ्गलिक पदार्थकी मुनि जिस समय भी मनमें चाह करते हैं, सेवकगण उसी समय सोनेकी परातोंमें और कलशोंमें भरकर उन पदार्थोंको लिये तैयार रहते हैं ॥ १ ॥

कुलरीति प्रीति समेत रबि कहि देत सबु सादर क्रियो ।
एहि भाँति देव पुजाइ सीतहि सुभग सिंघासनु दियो ॥
सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेम काहु न लखि परै ।
मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कबि कैसेँ करै ॥ २ ॥

स्वयं सूर्यदेव प्रेमसहित अपने कुलकी सब रीतियाँ बना देते हैं, और वे सब आदरपूर्वक की

जा रही हैं। इस प्रकार देवताओंकी पूजा कराके मुनियोंने सीताजीको सुन्दर सिंहासन दिया। श्रीसीताजी और श्रीरामजीका आपसमें एक दूसरेको देखना तथा उनका परस्परका प्रेम किसीको लख नहीं पड़ रहा है। जो बात श्रेष्ठ मन, बुद्धि और वाणीसे भी परे है, उसे कवि क्योंकर प्रकट करे ! ॥ २ ॥

दा०—होम समय तनु धरि अनलु अतिसुख आहुति लेहिं ।

विप्रवेश धरि बेद सब कहि विवाहविधि देहिं ॥३२३॥

हवनके समय अग्निदेव शरीर धारण करके बड़े ही सुखसे आहुति ग्रहण करने हैं और सारे वेद ब्राह्मणका वेष धरकर विवाहकी विधियाँ बताये देते हैं ॥ ३२३ ॥

चौ०—जनक पाटमहिषी जग जानी । सीयमातु किमि जाइ बखानी ॥

सुजसु सुकृत सुख सुन्दरताई । सब समेटि विधि रची बनाई ॥ १ ॥

जनकजीकी जगद्विख्यात पटरानी और सीताजीकी माताका बखान कैसे हो सकता है ! सुयश, सुकृत (पुण्य), सुख और सुन्दरता सबको बटोरकर विधाताने उन्हें सँवारकर तैयार किया है ॥ १ ॥

समउ जानि मुनिबरन्ह बोलाई । सुनत सुभासिनि सादर ल्याई ॥

जनक बाम दिसि सोह सुनयना । हिमगिरि संग बनी जनु मयना ॥ २ ॥

समय जानकर श्रेष्ठ मुनियोंने उनको बुलवाया। यह सुनते ही सुहागिनी स्त्रियाँ उन्हें आदरपूर्वक लिवा लयीं। सुनयनाजी (जनकजीकी पटरानी) जनकजीकी बायीं ओर ऐसी सोह रही हैं मानो हिमाचलके साथ मैनाजी शोभित हों ॥ २ ॥

कनककलस मनिर्कोपर करे । सुचि सुगंध मंगलजल पूरे ॥

निज कर मुदित रायँ अरु रानी । धरे राम के आगे आनी ॥ ३ ॥

पवित्र, सुगन्धित और मङ्गल जलसे भरे सोनेके कलश और मणियोंकी सुन्दर परातें राजा और रानीने आनन्दित होकर अपने हाथोंसे लेकर श्रीरामचन्द्रजीके आगे रक्तीं ॥ ३ ॥

पढ़हिं बेद मुनि मंगलबानी । गगन सुमन झरि अवसर जानी ॥

बरु बिलोकि दंपति अनुरागे । पाय पुनीत पखारन लागे ॥ ४ ॥

मुनि मङ्गलवाणीसे वेद पढ़ रहे हैं; सुअवसर जानकर आकाशसे फूलोंकी झड़ी लगी गयी है। दूल्हको देखकर राजा-रानी प्रेममग्न हो गये और उनके पवित्र चरणोंको पखारने लगे ॥ ४ ॥

छं०—लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली ।

नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहु दिसि चली ॥

जे पदसरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं ।

जे सकल सुमिरत बिमलता मन सकल कलिमल भाजहीं ॥ १ ॥

वे श्रीरामजीके चरणकमलोंको पखारने लगे। प्रेमसे उनके शरीरमें पुलकावली छा रही है। आकाश और नगरमें होनेवाले गान, नगाड़े और जय-जयकारकी ध्वनि मानो चारों दिशाओंमें उमड़ चली। जो चरणकमल कामदेवके शत्रु श्रीशिवजीके हृदयरूपी सरोवरमें सदा ही विराजते हैं; जिनका एक बार भी स्मरण करनेसे मनमें निर्मलता आ जाती है और कलियुगके सारे पाप भाग जाते हैं; ॥ १ ॥

जे परसि मुनिबनिता लही गति रही जो पातकमई ।
मकरंदु जिन्ह को संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई ॥
करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेह अभिमत गति लहै ।
ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु जय जय सब कहै ॥ २ ॥

जिनका स्पर्श पाकर गौतम मुनिकी स्त्री अहल्याने, जो पापमयी थी, परमगति पायी; जिन चरणकमलोंका मकरन्दरस (गंगाजी) शिवजीके मस्तकपर विराजमान है, जिसको देवता पवित्रताकी सीमा बताते हैं; मुनि और योगीजन अपने मनको भौरा बनाकर जिन चरणकमलोंका सेवन करके मनोवाञ्छित गति प्राप्त करते हैं; उन्हीं चरणोंको भाग्यके पात्र (बड़भागी) जनकजी धो रहे हैं, यह देखकर सब जयजयकार कर रहे हैं ॥ २ ॥

बर कुअँरि करतल जोरि साखोचारु दोउ कुलगुर करै ।
भयो पानिगहनु बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरै ॥
सुखमूल दूलहु देखि दंपति पुलक तन हुलस्यो हियो ।
करि लोक वेद बिधानु कन्यादानु नृपभूषन कियो ॥ ३ ॥

दोनो कुलोंके गुरु वर और कन्याकी हथेलियोंको मिलाकर शाखोचार करने लगे । पाणिग्रहण हुआ देखकर ब्रह्मादि देवता, मनुष्य और मुनि आनन्दमें भर गये । सुखके मूल दूलहको देखकर राजा-रानीका शरीर पुलकित हो गया और हृदय आनन्दसे उमँग उठा । राजाओंके अलङ्कारस्वरूप महाराज जनकजीने लोक और वेदकी रीतिको करके कन्यादान किया ॥ ३ ॥

हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई ।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी विस्व कल कीरति नई ॥
क्यों करै विनय बिदेहु कियो बिदेहु मूरति सावँरी ।
करि होमु बिधिवत गाँठि जोरी होन लागी भावँरी ॥ ४ ॥

जैसे हिमवान्ते शिवजीको पार्वतीजी और सागरने भगवान् विष्णुको लक्ष्मीजी दी थी, वैसे ही जनकजीने श्रीरामचन्द्रजीको सीताजी समर्पित की, जिससे विश्वमें सुन्दर नवीन कीर्ति छा गयी । विदेह (जनकजी) कैसे विनती करे ! उस माँवली मूर्तिने तो उन्हें सचमुच विदेह (देहकी सुध-बुधसे रहित) ही कर दिया । विधिपूर्वक हवन करके गठजोड़ी की गयी और भाँवरें होने लगी ॥ ४ ॥

दो०—जयधुनि बंदी वेद धुनि मंगलगान निसान ।

सुनि हरपहिं बरषहिं बिबुध सुरतरु सुमन सुजान ॥ ३२४ ॥

जयध्वनि, वन्दीध्वनि, वेदध्वनि, मङ्गलगान और नगाड़ोंकी ध्वनि सुनकर चतुर देवगण हर्षित हो रहे हैं, और कल्यवृक्षके फूलोंको बरसा रहे हैं ॥ ३२४ ॥

चो०—कुअँरु कुअँरि कल भावँरि देहीं । नयनलाभु सब सादर लेहीं ॥
जाह न बरनि मनोहर जोरी । जो उपमा कछु कहीं सो थोरी ॥ १ ॥

वर और कन्या सुन्दर भाँवरें दे रहे हैं । सब लोग आदरपूर्वक नेत्रोंका परम लाभ ले रहे हैं । मनोहर जोड़ीका वर्णन नहीं हो सकता; जो कुछ उपमा कहूँ वही थोड़ी होगी ॥ १ ॥

राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं । जगमगात मनिखंभन माहीं ॥

मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा । देखत राम बिआहु अनूपा ॥ २ ॥

श्रीरामजी और श्रीसीताजीकी सुन्दर परछाहीं मणियोंके खंभोंमें जगमगा रही हैं, मानो कामदेव और रति बहुत-से रूप धारण करके श्रीरामजीके अनुपम विवाहको देख रहे हैं ॥ २ ॥

दरस लालसा सकुच न धोरी । प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी ॥

भय मगन सब देखनिहारे । जनक समान अपान बिसारे ॥ ३ ॥

दर्शनकी लालसा और संकोच दोनों ही कम नहीं हैं (अर्थात् बहुत हैं); इसलिये वे बार-बार प्रकट होते और छिपते हैं । सब देखनेवाले आनन्दमग्न हो गये और जनकजीकी भाँति सभी अपनी सुध भूल गये ॥ ३ ॥

प्रमुदित मुनिन्ह भावैरिं फेरीं । नेग सहित सब रीति निबेरीं ॥

राम सीय सिर सँदुर देहीं । सोभा कहि न जाति बिधि केहीं ॥ ४ ॥

मुनियोंने आनन्दपूर्वक भाँवरें फिरायीं और नेगसहित सब रीतियोंको पूरा किया । श्रीरामचन्द्रजी सीताजीके सिरमें सिंदूर दे रहे हैं; यह शोभा किसी प्रकार भी कही नहीं जाती ॥ ४ ॥

अरुन पराग जलजु भरि नीकें । ससिहि भूप अहि लोभ अमी कें ॥

बहुरि बसिष्ठ दीन्हि अनुसासन । बरु दुलहिनि बैठे एक आसन ॥ ५ ॥

मानो कमलको लाल परागसे अच्छी तरह भरकर अमृतके लोभसे साँप चन्द्रमाको भूषित कर रहा है । फिर वशिष्ठजीने आज्ञा दी, तब दूल्हा और दुल्हिन एक आसनपर बैठे ॥ ५ ॥

छं०—बैठे बरासन राम जानकि मुदित मन दसरथु भय ।

तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपनै सुकृत सुरतरु फल नय ॥

भरि भुवन रहा उछाहु रामबिबाहु भा सबहीं कहा ।

केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यहु मंगलु महा ॥ १ ॥

श्रीरामजी और जानकीजी श्रेष्ठ आसनपर बैठे; उन्हें देखकर दशरथजी मनमें बहुत आनन्दित हुए । अपने सुकृतरूपी कल्पवृक्षमें नये फल [आये] देखकर उनका शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है । चौदहों भुवनोंमें उत्साह भर गया; सबने कहा कि श्रीरामचन्द्रजीका विवाह हो गया । जीभ एक है और मंगल महान् है; फिर भला, वह वर्णन करके किस प्रकार समाप्त किया जा सकता है ! ॥ १ ॥

तय जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याहसाज सँवारि कै ।

मांडवी श्रुतकीरति उरमिला कुअँरि लई हँकारि कै ॥

कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई ।

सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दर्ई ॥ २ ॥

तब वशिष्ठजीकी आज्ञा पाकर जनकजीने विवाहका सामान सजाकर माण्डवीजी, श्रुतकीर्तिजी और उर्मिल-जी इन तीनों राजकुमारियोंको बुला लिया । कुशध्वजकी बड़ी कन्या माण्डवीजीको, जो गुण, शील, सुख और शोभाकी रूप ही थी, राजा जनकने प्रेमपूर्वक सब रीतियाँ करके भरतजीको ब्याह दिया ॥ २ ॥

जानकी लघुभगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै ।

सो तनय दीन्ही ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै ॥

जेहि नामु श्रुतकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी ।

सो दर्ई रिपुखनहि भूपति रूप सील उजागरी ॥ ३ ॥

जानकीजीकी छोटी बहिन उर्मिलाजीको सब सुन्दरियोंमें शिरोमणि जानकर उस कन्याको, सब प्रकारसे सम्मान करके, लक्ष्मणजीको ब्याह दिया; और जिनका नाम श्रुतकीर्ति है और जो सुन्दर नेत्रोंवाली, सुन्दर मुखवाली, सब गुणोंकी खान और रूप तथा शीलमें उजागर हैं, उनको राजाने शत्रुघ्नको ब्याह दिया ॥ ३ ॥

अनुरूप बर दुलहिनि परस्पर लखि सकुचि हियँ हरषहीं ।

सब मुदित सुंदरता सराहहिं सुमन सुरगन बरषहीं ॥

सुंदरीं सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं ।

जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन्ह सहित बिराजहीं ॥ ४ ॥

दूल्हा और दुलहिनें परस्पर अपने-अपने अनुरूप जोड़ीको देखकर सकुचते हुए हृदयमें हर्षित हो रही हैं । सब लोग प्रसन्न होकर उनकी सुन्दरताकी सराहना करते हैं और देवगण फूल बरसा रहे हैं । सब सुन्दरी दुलहिने सुन्दर दूल्होके साथ एक ही मंडपमें ऐसी शोभा पा रही हैं मानो जीवके हृदयमें चारों अवस्थाएँ (आश्रित, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय) अपने चारों स्वामियों (विश्व, तैजस, प्राज्ञ और ब्रह्म) सहित विराजमान हो ॥ ४ ॥

दो०—मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि ।

जनु पाए महिपालमनि क्रियन्ह सहित फल चारि ॥ ३२५ ॥

सब पुत्रोंको बहुओंसहित देखकर अवधनेश दशरथजी ऐसे आनन्दित हैं मानो वे राजाओंके शिरोमणि क्रियाओं (यज्ञक्रिया, श्रद्धाक्रिया, योगक्रिया और ज्ञानक्रिया) सहित चारों फल (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) पा गये हों ॥ ३२५ ॥

चौ०—जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी । सकल कुअँर ब्याह तेहिं करनी ॥

कहि न जाइ कलु दाइज भूरी । रहा कनक मनि मंडपु पूरी ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके विवाहकी जैसी विधि वर्णन की गयी, उसी रीतिसे सब राजकुमार विवाहे गये । दहेजकी अधिकता कुछ कही नहीं जाती; सारा मंडप सोने और मणियोंसे भर गया ॥ १ ॥

कंबल बसन बिचित्र पटोरे । भाँति भाँति बहु मोल न थोरे ॥

गज रथ तुरग दास अह दासी । धेनु अलंकृत कामदुहा सीं ॥ २ ॥

बहुतसे कम्बल, वस्त्र और भाँति-भाँतिके विचित्र रेशमी कपड़े, जो थोड़ी कीमतके न थे (अर्थात् बहुमूल्य थे), तथा हाथी, रथ, घोड़े, दास-दामियाँ और गहनोंसे सजी हुई कामधेनु-सरीस्त्री गायें—॥ २ ॥

बस्तु अनेक करिअ किमि लेखा । कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा ॥

लोकपाल अवलोकि सिद्धाने । लीन्ह अवधपति सब सुखु माने ॥ ३ ॥

[आदि] अनेकों वस्तुएँ हैं, जिनकी गिनती कैसे की जाय, कुछ कही नहीं जा सकती; जिन्होंने देखा है वही जानते हैं । उन्हें देखकर लोकपाल भी सिद्धा गये । अवधराज दशरथजीने मुख मानकर सबको ले लिया ॥ ३ ॥

दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा । उबरा सो जनवामेहिं आवा ॥

तब कर जोरि जनकु मृदुबानी । बोले सब बरात सनमानी ॥ ४ ॥

वह दहेजका सामान याचकोंको, जो जिसे अच्छा लगा, दे दिया गया । जो बच रहा, वह जनवासमें चला आया । तब जनकजी हाथ जोड़कर सारी बारातका सम्मान करते हुए कोमल वाणीसे बोले ॥ ४ ॥

छं०—सनमानि सकल बरात आदर दान बिनय बड़ाइ कै ।

प्रमुदित महा मुनिबृंद बंदे पूजि प्रेम लड़ाइ कै ॥

सिरु नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किएँ ।

सुर साधु चाहत भाउ सिंधु कि तोप जल अंजलि दिएँ ॥ १ ॥

आदर, दान, विनय और बढ़ाई करके सारी बारातका सम्मान कर राजा जनकने महान् आनन्दके साथ प्रेमपूर्वक लड़ाकर (लाड़ करके) मुनियोंके समूहकी पूजा एवं वन्दना की। सिर नवाकर देवताओंको मनाकर, राजा हाथ जोड़कर सबसे कहने लगे कि देवता और साधु तो भाव ही चाहते हैं (वे प्रेमसे ही प्रसन्न हो जाते हैं, उन पूर्णकाम महानुभावोंको कोई कुछ देकर कैसे सन्तुष्ट कर सकता है)। क्या कहीं एक अञ्जलि जल देनेसे समुद्र सन्तुष्ट हो सकता है ! ॥ १ ॥

कर जोरि जनकु बहोरि बंधु समेत कोसलराय सों ।

बोले मनोहर वयन सानि सनेह सील सुभाय सों ॥

संबंध राजन रावरें हम बड़े अब सब बिधि भए ।

एहि राजसाज समेत सेवक जानिबे बिनु गथ लए ॥ २ ॥

फिर जनकजी भाईसहित हाथ जोड़कर कोसलाधीश दशरथजीसे स्नेह, शील और सुन्दर प्रेममें सानकर मनोहर वचन बोले—हे राजन् ! आपके साथ सम्बन्ध हो जानेसे अब हम सब प्रकारसे बड़े हो गये। इस राज-पाटसहित मुझको आप बिना दामका लिया हुआ सेवक ही समझिये ॥ २ ॥

ए दारिका परिवारिका करि पालिबीं करना नई ।

अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं दीट्यो कई ॥

पुनि भानुकुलभूषन सकल सनमान निधि समधी किए ।

कहि जाति नहिं बिनती परस्पर प्रेम परिपूरन हिए ॥ ३ ॥

इन लड़कियोंको टहलनी मानकर, नयी-नयी दया करके पालन कीजियेगा। मैंने बड़ी दिठाई की कि आपको यहाँ बुल्य भेजा, अपराध क्षमा कीजियेगा। फिर सूर्यकुलके भूषण दशरथजीने समधी जनकजीको सम्पूर्ण सम्मानका निधि कर दिया (इतना सम्मान किया कि वे सम्मानके भण्डार हो हो गये)। उनकी परस्पर-की विनय कही नहीं जाती। दोनोंके हृदय प्रेमसे परिपूर्ण हैं ॥ ३ ॥

बृंदारका गन सुमन बरिसहिं राउ जनवासेहि चले ।

दुंदुभी जय धुनि बेदधुनि नभ नगर कौतूहल भले ॥

तब सखीं मंगलगान करत मुनीस आयसु पाइ कै ।

दूल्ह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै ॥ ४ ॥

देवतागण फूल बरसा रहे हैं। तदनन्तर राजा जनवासेको चले। नगाड़ेकी ध्वनि, जयध्वनि, और वेदकी ध्वनि हो रही है; आकाश और नगर दोनोंमें खूब कौतूहल हो रहा है (आनन्द छा रहा है)। तब मुनीश्वरकी आशा पाकर सुन्दरी सखियाँ मङ्गलगान करती हुई दुलहिनोंसहित दूल्होंको लिवाकर कोहबरको चलीं ॥ ४ ॥

दो०—पुनि पुनि रामहि चितव सिय सकुचति मनु सकुचै न ।

हरत मनोहर मीन छबि प्रेम पिआसे नैन ॥ ३२६ ॥

सीताजी बार-बार रामजीको देखती हैं और सकुचा जाती हैं; पर उनका मन नहीं सकुचाता। प्रेमके प्यासे उनके नेत्र सुन्दर मछलियोंकी छबिको हर रहे हैं ॥ ३२६ ॥

मासपारायण ग्यारहवाँ विश्राम

चौ०—स्याम सरीर सुभायँ सुहावन । सोभा कोटि मनोज लजावन ॥

जावकजुत पदकमल सुहाय । मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका सौंवल शरीर स्वभावसे ही सुन्दर है; उसकी शोभा करोड़ों कामदेवोंको लजानेवाली है । महावरसे युक्त चरणकमल बड़े सुहावने लगते हैं, जिनपर मुनियोंके मनरूपी भौंरे सदा छाये रहते हैं ॥ १ ॥

पीत पुनीत मनोहर धोती । हरति बालरबि दामिनि जोती ॥

कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर । बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर ॥ २ ॥

पवित्र और मनोहर पीली धोती प्रातःकालके सूर्य और त्रिजलीकी ज्योतिको हरे लेती है । कमरमें सुन्दर किंकिणी और कटिसूत्र हैं । विशाल भुजाओंमें सुन्दर आभूषण सुशोभित है ॥ २ ॥

पीत जनेऊ महाछबि देई । कर मुद्रिका चोरि चितु लेई ॥

सोहत ब्याहसाज सब साजे । उर आयत उरभूषन राजे ॥ ३ ॥

पीला जनेऊ महान् शोभा दे रहा है । हाथकी अँगूठी चित्तको चुरा लेती है । ब्याहके सब साज सजे हुए वे शोभा पा रहे हैं । चौड़ी छातीपर हृदयपर पहननेके सुन्दर आभूषण सुशोभित हैं ॥ ३ ॥

पिबर उपरना काखासोती । दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती ॥

नयनकमल कल कुंडल काना । बदन सकल सौंदर्य निधाना ॥ ४ ॥

पीला दुपट्टा काँखासोती (जनेऊकी तरह) शोभित है, जिसके दोनों छोरोंपर मणि और मोती लगे हैं । कमलके समान सुन्दर नेत्र हैं, कानोंमें सुन्दर कुण्डल हैं और मुख तो सारी सुन्दरताका खजाना ही है ॥ ४ ॥

सुंदर भृकुटि मनोहर नासा । भाल तिलकु रुचिरता निवासा ॥

सोहत मौर मनोहर माथें । मंगलमय मुकुता मनि गाथें ॥ ५ ॥

सुन्दर भौंहें और मनोहर नासिका है । ललाटपर तिलक तो सुन्दरताका घर ही है । जिसमें मङ्गलमय मोती और मणि गुंथे हुए हैं, ऐसा मनोहर मौर माथेपर सोह रहा है ॥ ५ ॥

छं०—गाथे महामनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं ।

पुरनारि सुरसुंदरीं बरहि बिलोकि सब तिन तोरहीं ॥

मनि बसन भूषन वारि आरति करहिं मंगल गावहीं ।

सुर सुमन बरिसहिं सूत मागध बंदि सुजसु सुनावहीं ॥ १ ॥

सुन्दर मौरमें बहुमूल्य मणियाँ गुंथी हुई हैं । सभी अंग चित्तको चुराये लेते हैं । सब नगरकी स्त्रियाँ और देवसुन्दरियाँ दूल्हको देखकर तिनका तोड़ रही हैं (उनकी बलैयाँ ले रही हैं), और मणि, वस्त्र और आभूषण निछावर करके आरती उतार रही और मङ्गलगान कर रही हैं । देवता फूल बरसा रहे हैं, और सूत, मागध तथा भाट सुयश सुना रहे हैं ॥ १ ॥

कोहबरहि आने कुँअर कुँअरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै ।

अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ कै ॥

लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहें ।

रनिवासु हास बिलास रस बस जन्म को फलु सब लहें ॥ २ ॥

सुहागिनी स्त्रियाँ सुख पाकर कुँअर और कुमारियोंको कोहबर (कुलदेवताके स्थान) में लायीं और अत्यन्त प्रेमसे मङ्गलगान गा-गाकर लौकिक रीति करने लगीं । पार्वतीजी श्रीरामचन्द्रजीको लहकौर (वर-बधूका परस्पर

दूल्हा गम



स्याम सरीर सुभायै सुहावन । सोभा कोटि मनोज लजावन ॥
जावकजुत पदकमल सुहाण । मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाण ॥

प्राप्त देना) सिखाती हैं और सरस्वतीजी सीताजीको सिखाती हैं। रनिवास हास-विलासके आनन्दमें मग्न है।
[श्रीरामजी और सीताजीको देख-देखकर] सभी जन्मका परम फल प्राप्त कर रही हैं ॥ २ ॥

निज पानि मनि महुँ देखिअति मूरति सुरूपनिधान की।
चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरहभय बस जानकी ॥
कौतुक बिनोद प्रमोद प्रेम न जाइ कहि जानहिं अलीं।
बर कुअरि सुंदर सकल सखीं लघार जनवासेहि चलीं ॥ ३ ॥

अपने हाथकी मणियोंमें सुन्दर रूपके भण्डार श्रीरामचन्द्रजीकी परछाहीं दीख रही है, इसलिये जानकीजी दर्शनमें वियोग होनेके भयसे बाहुरूपी लताको और दृष्टिको हिलाती-डुलाती नहीं हैं। उस समयके हँसी-खेल और बिनोदका आनन्द और प्रेम कहा नहीं जा सकता, उसे सखियाँ ही जानती हैं। तदनन्तर वर-कन्याओंको सब सुन्दर सखियाँ जनवासेको ल्वा चलीं ॥ ३ ॥

तेहि समय सुनिअ असीस जहँ तहँ नगर नम आनंदु महा।
बिर जिअहुँ जोरीं चारु चारुओ मुदित मन सबहीं कहा ॥
जोगोद सिद्ध मुनीस देव बिलोकि प्रभु दुंदुभि इनी।
चले हरपि बरपि प्रसून निज निज लोक जय जय जय मनी ॥ ४ ॥

उम समय नगर और आकाशमें, जहाँ सुनिये वहीं, आशीर्वादकी ध्वनि सुनायी दे रही है और महान् आनन्द छाया है। सभीने प्रसन्न मनसे कहा कि सुन्दर चारों जोड़ियाँ चिरंजीवी हो। योगिराज, सिद्ध, मुनीश्वर और देवताओंने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको देखकर दुन्दुभी बजायी और हर्षित होकर फूलोंकी वर्षा करते हुए तथा 'जय हो, जय हो, जय हो' कहते हुए वे अपने-अपने लोकको चले ॥ ४ ॥

दे०—सहित बधूटिन्ह कुअर सब तब आए पितु पास।

सोभा मंगल मोद भरि उमगेउ जनु जनवास ॥३२७॥

तब सब (चारों) कुमार बहुओंसहित पिताजीके पास आये। ऐसा मालूम होता था मानो शोभा, मङ्गल और आनन्दसे भरकर जनवासा उमड़ पड़ा हो ॥ ३२७ ॥

चौ०—पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठए जनक बोलाइ बराती ॥
परत पाँवड़े बसन अनूपा। सुतन्ह समेत गवन कियो भूपा ॥ १ ॥

फिर बहुत प्रकारकी रसोई बनी। जनकजीने बरातियोंको बुला भेजा। राजा दशरथजीने पुत्रोंसहित गमन किया। अनुपम वस्त्रोंके पाँवड़े पहते जाते हैं ॥ १ ॥

सादर सब के पाय पखारे। जथाजोगु पीढ़न्ह बैठारे ॥
धोए जनक अवधपति चरना। सीलु सनेहु जाइ नहिं बरना ॥ २ ॥

आदरके साथ सबके चरण धोये और सबको यथायोग्य पीढ़ोंपर बैठाया। तब जनकजीने अवधपति दशरथजीके चरण धोये। उनका शील और स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ २ ॥

बहुरि राम पद पंकज धोए। जे हर हृदय कमल महुँ गोए ॥
तीनिउ भाइ रामसम जानी। धोए चरन जनक निज पानी ॥ ३ ॥

फिर श्रीरामचन्द्रजीके चरण-कमलोंको धोया, जो श्रीशिवजीके हृदय-कमलमें छिपे रहते हैं। तीनों भाइयोंको श्रीरामचन्द्रजीके ही समान जानकर जनकजीने उनके भी चरण अपने हाथोंसे धोये ॥ ३ ॥

आसन उचित सबहि नृप दीन्हे । बोलि सूपकारी सब लीन्हे ॥

सादर लगे परन पनवारे । कनककील मनिपान सँवारे ॥ ४ ॥

राजा जनकजीने सभीको उचित आसन दिये, और सब परसनेवालोंको बुला लिया । आदरके साथ पत्तलें पहने लगी, जो मणियोंके पत्तोसे सोनेकी कील लगाकर बनायी गयी थी ॥ ४ ॥

दो०—सूपोदन सुरभी सरपि सुंदर स्वादु पुनीत ।

छन महुँ सब कें परसि गे चतुर सुआर विनीत ॥ ३२८ ॥

चतुर और विनीत रसोइये सुन्दर, स्वादिष्ट और पवित्र दाल-भात और गायका [सुगन्धित] घी क्षण-भरमे सबके सामने परस गये ॥ ३२८ ॥

चौ०—पंच कवल करि जेवन लागे । गारि गान सुनि अति अनुरागे ॥

भाँति अनेक परे पकवाने । सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने ॥ १ ॥

पंचकौर करके (अर्थात् प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा और समानाय स्वाहा, इन मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए पहले पाँच ग्रास लेकर) भोजन करने लगे । गालीका गाना सुनकर वे अत्यन्त प्रेममग्न हो गये । अनेकों तरहके अमृतके समान (स्वादिष्ट) पकवान परसे गये, जिनका बखाना नहीं हो सकता ॥ १ ॥

परसन लगे सुआर सुजाना । बिंजन बिबिध नाम को जाना ॥

चारि भाँति भोजनबिधि गाई । एक एक बिधि बरनि न जाई ॥ २ ॥

चतुर रसोइये नाना प्रकारके व्यञ्जन परसने लगे । उनका नाम कौन जानता है ! चार प्रकारके (चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय, अर्थात् चबाकर, चूसकर, चाटकर और पीकर खाने योग्य) भोजनकी विधि कही गयी है, उनमेंसे एक-एक विधिके इतने पदार्थ बने थे कि जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ २ ॥

छरस रुचिर बिंजन बहुजाती । एक एक रस अगनित भाँति ॥

जेवँत देहिं मधुर धुनि गारी । लै लै नाम पुरुष अरु नारी ॥ ३ ॥

छहों रसोंके बहुत तरहके सुन्दर (स्वादिष्ट) व्यञ्जन हैं । एक-एक रसके अनगिनती प्रकारके बने हैं । भोजन करते समय पुरुष और स्त्रियोंके नाम ले-लेकर स्त्रियों मधुर ध्वनिसे गाली दे रही हैं (गाली गा रही है) ॥ ३ ॥

समय सुहावनि गारि बिराजा । हँसत राउ सुनि सहित समाजा ॥

एहि बिधि सयहीं भोजनु कीन्हा । आदर सहित आचमनु दीन्हा ॥ ४ ॥

समयकी सुहावनी गाली शोभित हो रही है । उसे सुनकर समाजसहित राजा दशरथजी हँस रहे हैं । इस रीतिसे सभीने भोजन किया, और तब सबको आदरसहित आचमन (हाथ-मुँह धोनेके लिये जल) दिया गया ॥ ४ ॥

दो०—देह पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज ।

जनवासेहि गवने मुदित सकल भूप सिरताज ॥ ३२९ ॥

फिर पान देकर जनकजीने समाजसहित दशरथजीका पूजन किया । सब राजाओंके सिरमौर (चक्रवर्ती) श्रीदशरथजी प्रसन्न होकर जनवासेको चले ॥ ३२९ ॥

चौ०—नित नूतन मंगल पुर माहीं । निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं ॥

बड़े भोर भूपतिमनि जागे । जाचक गुनगन गावन लागे ॥ १ ॥

जनकपुरमें नित्य नये मङ्गल हो रहे हैं । दिन और रात पलके समान बीत जाते हैं । बड़े सबेरे राजाओं-
के मणि दशरथजी जागे, याचक गुणोंका गान करने लगे ॥ १ ॥

देखि कुअर बर बधुन्ह समेता । किमि कहि जात मोदु मन जेता ॥
प्रातःक्रिया करि गे गुरु पाहीं । महाप्रमोदु प्रेमु मन माहीं ॥ २ ॥

चारों कुमारोंको सुन्दर वधुओंसहित देखकर उनके मनमें जितना आनन्द है, वह किस प्रकार कहा
जा सकता है । वे प्रातःक्रिया करके गुरु वशिष्ठजीके पास गये, उनके मनमें महान् आनन्द और प्रेम भरा है ॥ २ ॥

करि प्रनामु पूजा कर जोरी । बोले गिरा अमिअं जनु बोरी ॥
तुम्हरी कृपाँ सुनहु मुनिराजा । भयउँ आजु मैं पूरनकाजा ॥ ३ ॥

राजा प्रणाम और पूजन करके फिर हाथ जोड़कर मानो अमृतमें डुबोयी हुई वाणी बोले—हे मुनिराज !
सुनिये, आपकी कृपासे आज मैं पूर्णकाम हो गया ॥ ३ ॥

अब सब बिप्र बोलाइ गोसाईं । देहु धेनु सब भाँति बनाई ॥
सुनि गुरु करि महिपाल बड़ाई । पुनि पठए मुनिबृन्द बोलाई ॥ ४ ॥

हे स्वामिन् ! अब सब ब्राह्मणोंको बुलाकर उनको सब तरह [गहनों-कपड़ों] से सजी हुई गायें दीजिये ।
यह सुनकर गुरुजीने राजाकी बड़ाई करके फिर मुनिगणोंको बुलवा भेजा ॥ ४ ॥

दो०—वामदेउ अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि ।

आए मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपसालि ॥ ३३० ॥

तब वामदेव, देवर्षि नारद, वाल्मीकि, जाबालि और विश्रामित्र आदि तपस्वी श्रेष्ठ मुनियोंके समूह-के-समूह
आये ॥ ३३० ॥

चौ०—दंड प्रनाम सबहि नृप कीन्ह । पूजि सप्रेम बरासन दीन्ह ॥
चारि लच्छ बर धेनु मगाई । कामसुरभि समसील सुहाई ॥ १ ॥

राजाने सबको दण्डवत् प्रणाम किया और प्रेमसहित पूजन करके उन्हें उत्तम आसन दिये । चार लाख
उत्तम गायें मँगवायी, जो कामधेनुके समान अच्छे स्वभाववाली और सुहावनी थीं ॥ १ ॥

सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं । मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हीं ॥
करत बिनय बहुबिधि नरनाह । लहेउँ आजु जग जीवन लाह ॥ २ ॥

उन सबको सब प्रकारसे [गहनों-कपड़ोंसे] सजाकर राजाने प्रसन्न होकर भूदेव ब्राह्मणोंको दिया । राजा
बहुत तरहसे विनती कर रहे हैं कि जगत्में मैंने आज ही जीनेका लाभ पाया ॥ २ ॥

पाइ असीस महीसु अनंदा । लिप बोलि पुनि जाचकबृन्दा ॥
कनक बसन मनि हय गय स्यंदन । दिप वृद्धि रुचि रबिकुलनंदन ॥ ३ ॥

[ब्राह्मणोंसे] आशीर्वाद पाकर राजा आनन्दित हुए । फिर याचकोंके समूहोंको बुलवा लिया और सबको
उनकी रुचि समझकर सोना, वस्त्र, मणि, घोड़ा, हाथी और रथ (जिसने जो चाहा सो) सूर्यकुलको आनन्दित
करनेवाले दशरथजीने दिये ॥ ३ ॥

चले पढ़त गावत गुनगाथा । जय जय जय दिनकर कुल नाथा ॥
एहि विधि राम बिआह उछाह । सकइ न बरनि सहस मुख जाह ॥ ४ ॥

वे सब गुणानुवाद गाते और 'सूर्यकुलके स्वामीकी जय हो, जय हो, जय हो' कहते हुए चले। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके विवाहका उत्सव हुआ। जिन्हें सहस्र मुख हैं वे शेषजी भी उसका वर्णन नहीं कर सकते ॥ ४ ॥

दो०—बार बार कौसिक चरन सीसु नाइ कह राउ।

यह सबु सुखु मुनिराज तब कृपा कटाच्छ पसाउ ॥३३१॥

बार-बार विश्वामित्रजीके चरणोंमें सिर नवाकर राजा कहते हैं—हे मुनिराज ! यह सब सुख आपके ही कृपाकटाक्षका प्रसाद है ॥ ३३१ ॥

चौ०—जनक सनेहु सीलु करनूती। नृपु सब भाँति सराह बिभूती ॥

दिन उठि बिदा अवधपति मागा। राखहिं जनकु सहित अनुरागा ॥ १ ॥

राजा दशरथजी जनकजीके स्नेह, शील, करनी और ऐश्वर्यकी सब प्रकारसे सराहना करते हैं। प्रति दिन [सवेरे] उठकर अयोध्यानरेश विदा माँगते हैं, पर जनकजी उन्हें प्रेमसे रख लेते हैं ॥ १ ॥

नित नूतन आदरु अधिकारि। दिन प्रति सहस्र भाँति पहुनाई ॥

नित नव नगर अनंद उछाह। दसरथ गवनु सोहाइ न काह ॥ २ ॥

नित्य नया आदर बढ़ता जाता है। प्रतिदिन हजारों प्रकारसे मेहमानी होती है। नगरमें नित्य नया आनन्द और उत्साह रहता है, दशरथजीका जाना किसीको नहीं सुहाता ॥ २ ॥

बहुत दिवस बीते एहि भाँती। जनु सनेह रजु बँधे बराती ॥

कौसिक सतानंद तब जाई। कहा बिदेह नृपहि समुझाई ॥ ३ ॥

इस प्रकार बहुत दिन बीत गये, मानो बराती स्नेहकी रस्सीसे बंध गये हैं। तब विश्वामित्रजी और शतानन्दजीने जाकर राजा जनकको समझाकर कहा—॥ ३ ॥

अब दसरथ कहँ आयसु देह। जद्यपि छाड़ि न सकहु सनेह ॥

भलेहिं नाथ कहि सचिव बोलाए। कहि जयजीव सीस तिन्ह नाए ॥ ४ ॥

यद्यपि आप स्नेह [वश उन्हें] नहीं छोड़ सकते, तो भी अब दशरथजीको आज्ञा दीजिये। 'हे नाथ ! बहुत अच्छा' कहकर जनकजीने मन्त्रियोंको बुलवाया। वे आये और 'जय जीव' कहकर उन्होंने मस्तक नवाया ॥ ४ ॥

दो०—अवधनाथु चाहत चलन भीतर करहु जनाउ।

भए प्रेमबस सचिव सुनि बिप्र सभासद राउ ॥३३२॥

[जनकजीने कहा—] अयोध्यानाथ चलना चाहते हैं, भीतर (गनिवासमें) खबर कर दो। यह सुनकर मन्त्री, ब्राह्मण, सभामन्त्री और राजा जनक भी प्रेमके वश हो गये ॥ ३३२ ॥

चौ०—पुरवासी सुनि चलिहि बराता। बृहत्त विकल परस्पर बाता ॥

सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने। मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने ॥ १ ॥

जनकपुरवासियोंने सुना कि बारात जायगी, तब वे व्याकुल होकर एक-दूसरेसे बात पूछने लगे। जाना सत्य है, यह सुनकर सब ऐसे उदास हो गये मानो सन्ध्याके समय कमल सकुचा गये हों ॥ १ ॥

जहँ जहँ आवत बसे बराती । तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भौंती ॥

बिबिध भौंति मेवा पकवाना । भोजनसाजु न जाइ बखाना ॥ २ ॥

आते समय जहाँ-जहाँ बराती ठहरे थे, वहाँ-वहाँ बहुत प्रकारका सीधा (रसोईका सामान) भेजा गया । अनेकों प्रकारके मेवे, पकवान और भोजनकी सामग्री जो बखानी नहीं जा सकती—॥ २ ॥

भरि भरि बसहँ अपार कहारा । पठई जनक अनेक सुसारा ॥

तुरग लाख रथ सहस्र पचीसा । सकल सँवारे नख अरु सीसा ॥ ३ ॥

अनगिनत बैलों और कहारोंपर भर-भरकर (लद-लदकर) भेजी गयी । साथ ही जनकजीने अनेकों मुन्दर शय्याएँ (पलंग) भेजीं । एक लाख घोड़े और पचीस हजार रथ सब नखसे शिखातक (ऊपरसे नीचे तक) सजाये हुए, ॥ ३ ॥

मत्त सहस्र दस सिंधुर साजे । जिन्हहि देखि दिसिकुंजर लाजे ॥

कनक बसन मनि भरि भरि जाना । महिषीं धेनु बस्तु बिधि नाना ॥ ४ ॥

दस हजार सजे हुए मतवाले हाथी, जिन्हें देखकर दिशाओंके हाथी भी लजा जाते हैं, गाड़ियोंमें भरकर सोना, वस्त्र और रत्न (जवाहिरात), और मैस, गाय तथा और भी नाना प्रकारकी चीजें दीं ॥ ४ ॥

दो०—दाइज अमित न सकिअ कहि दीन्ह बिदेहँ बहोरि ।

जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि ॥ ३३३ ॥

[इस प्रकार] जनकजीने फिरसे अपरिमित दहेज दिया, जो कहा नहीं जा सकता, और जिसे देखकर लोकपालोंके लोकोंकी सम्पदा भी थोड़ी जान पड़ती थी ॥ ३३३ ॥

चौ०—सबु समाजु पहि भौंति वनाई । जनक अवधपुर दीन्ह पठाई ॥

चलिहि बरात सुनत सब रानीं । बिकल मीनगन जुनु लघु पानीं ॥ १ ॥

इस प्रकार सब सामान सजाकर राजा जनकने अयोध्यापुरीको भेज दिया । बारात चलेगी, यह सुनते ही सब रानियाँ ऐसी बिकल हो गयीं मानों थोड़े जलमें मछलियाँ छटपटा रही हों ॥ १ ॥

पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं । देह असीस सिखावन देहीं ॥

होएहु संतत पियहि पिआरी । चिरु अहिबात असीस हमारी ॥ २ ॥

वे बार-बार सीताजीको गोद कर लेती हैं और आशीर्वाद देकर सिखावन देती हैं—तुम सदा अपने पतिकी प्यारी होओ, तुम्हारा सोहाग अचल हो; हमारी यही आशिष है ॥ २ ॥

सासु ससुर गुर सेवा करेहु । पतिरुख लखि आयसु अनुसरेहु ॥

अति सनेह बस सखीं सयानीं । नारिधरम सिखवहिं मृदुबानीं ॥ ३ ॥

सास, ससुर और गुरुकी सेवा करना; पतिरुख देखकर उनकी आज्ञाका पालन करना । सयानी सखियाँ अत्यन्त स्नेहके वश कोमल वाणीसे स्त्री-धर्म सिखलाती हैं ॥ ३ ॥

सादर सकल कुँअरि समुझाई । रानिन्ह बार बार उर लाई ॥

बहुरि बहुरि भेटहिं महतारीं । कहहिं बिरंचि रचों कत नारीं ॥ ४ ॥

आदरके साथ सब पुत्रियोंको [स्त्री-धर्म] समझाकर रानियोंने बार-बार उन्हें हृदयसे लगाया । माताएँ फिर-फिर भेंटती और कहती हैं कि ब्रह्माने स्त्रियोंको क्यों रचा ॥ ४ ॥

दो०—तेहि अवसर भाइन्ह सहित रामु भानुकुलकेतु ।

चले जनकमंदिर मुदित विदा करावन हेतु ॥३३४॥

उसी समय सूर्यवंशके पताकास्वरूप श्रीरामचन्द्रजी भाइयोंसहित प्रसन्न होकर विदा करानेके लिये जनकजीके महलको चले ॥ ३३४ ॥

चौ०—चारिउ भाइ सुभायँ सुहाए । नगर नारि नर देखन धाए ॥

कोउ कह चलन चहत हहिं आजू । कीन्ह बिदेह विदा कर साजू ॥ १ ॥

स्वभावसे ही सुन्दर चारों भाइयोंको देखनेके लिये नगरके स्त्री-पुरुष दौड़े । कोई कहता है—आज ये जाना चाहते हैं, विदेहने विदाईका सब सामान तैयार कर लिया है ॥ १ ॥

लेहु नयन भरि रूप निहारी । प्रिय पाहुने भूपसुत चारी ॥

को जानै केहिं सुकृत सयानी । नयन अतिथि कीन्ह बिधि आनी ॥ २ ॥

राजाके चारों पुत्र, इन प्यारे मेहमानोंके [मनोहर] रूपको नेत्र भरकर देख लो ! हे सयानी ! कौन जाने, किस पुण्यसे विधाताने इन्हें यहाँ लकर हमारे नेत्रोंका अतिथि किया है ? ॥ २ ॥

मरनसीलु जिमि पाव पिऊषा । सुरतरु लहै जनम कर भूखा ॥

पाव नारकी हरिपदु जैसैं । इन्ह कर दरसनु हम कहँ तैसैं ॥ ३ ॥

मरनेवाला जिस तरह अमृत पा जाय, जन्मका भूखा कल्पवृक्ष पा जाय, और नरकमें रहनेवाला (या नरकक योग्य) जीव जैसे भगवान्‌के परमपदको प्राप्त हो जाय, हमारे लिये इनके दर्शन वैसे ही हैं ॥ ३ ॥

निरखि रामसोभा उर धरहु । निज मन फनि मूरति मनि करहु ॥

एहि बिधि सबहि नयनफलु देता । गए कुअँर सब राजनिकेता ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी शोभाको निरखकर हृदयमें धर लो, अपने मनको साँप और इनकी मूर्तिको मणि बना लो । इस प्रकार सबको नेत्रोंका फल देते हुए सब राजकुमार राजमहलमें गये ॥ ४ ॥

दो०—रूपसिंधु सब बंधु लखि हरषि उठा रनिवासु ।

करहिं निछावरि आरती महा मुदित मन सासु ॥३३५॥

रूपकं समुद्र सब भाइयोंको देखकर सारा रनिवासु हर्षित हो उठा । सामुएँ महान् प्रसन्न मनसे निछावर और आरती करती है ॥ ३३५ ॥

चौ०—देखि रामछवि अति अनुरागीं । प्रेमबिबस पुनि पुनि पद लागीं ॥

रही न लाज प्रीति उर छाई । सहज संनहु बरनि किमि जाई ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी छवि देखकर वे प्रेममें अत्यन्त मग्न हो गये और प्रेमके विशेष वश होकर बार-बार चरणों लगीं । हृदयमें प्रीति छा गयी, इससे लाज नहीं रह गयी । उनके स्वाभाविक स्नेहका वर्णन किस तरह किया जा सकता है ॥ १ ॥

भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए । छरस असन अति हेतु जेवाँए ॥

बोलें रामु सुअवसरु जानी । सील संनह सकुचमय बानी ॥ २ ॥

उन्होंने भाइयोंसहित श्रीरामजीको उबटन करके स्नान कराया और बड़े प्रेमसे पट्टरस भोजन कराया । सुअवसर जानकर श्रीरामचन्द्रजी शील, स्नेह और संकोचमयी वाणी बोले— ॥ २ ॥

राउ अवधपुर चहत सिधाए । बिदा होन हम इहाँ पठाए ॥
मातु मुदित मन आयसु देह । बालक जानि करब नित नेह ॥ ३ ॥

महाराज अयोध्यापुरीको चलना चाहते हैं, उन्होंने हमे विदा होनेके लिये यहाँ भेजा है । हे माता ! प्रसन्न मनसे आशा दीजिये और हमें अपने बालक जानकर सदा स्नेह बनाये रखियेगा ॥ ३ ॥

सुनत बचन बिलखेउ रनिवास । बोलि न सकहिं प्रेमबस सासू ॥
हृदयँ लगाइ कुअँरि सब लीन्ही । पतिन्ह सौँपि बिनती अति कीन्ही ॥ ४ ॥

इन वचनोंको सुनते ही रनिवास उदास हो गया । सासुएँ प्रेमवश बोल नहीं सकती । उन्होंने सब कुमारियोंको हृदयसे लगा लिया और उनके पतियोंको सौंपकर बहुत बिनती की ॥ ४ ॥

छं०—करि बिनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै ।
बलि जाउँ तात सुजानं तुम्ह कहूँ बिदित गति सब की अहँ ॥
परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी ।
तुलसीस सीलु सनेहु लखि निज किंकरी करि मानिबी ॥

बिनती करके उन्होंने सीताजीको श्रीरामचन्द्रजीको समर्पित किया और हाथ जोड़कर बार-बार कहा—
हे तात ! हे सुजान ! मैं बलि जाती हूँ, तुमको सबकी गति मालूम है । परिवारको, पुरवासियोंको, मुझको और राजाको सीता प्राणोंके समान प्रिय है, ऐसा जानियेगा । हे तुलसीकिं स्वामी ! इसकी सुशीलता और स्नेहको देखकर इसे अपनी दासी करके मानियेगा ।

सो०—तुम्ह परिपूरन काम जान सिरोमनि भावप्रिय ।
जन गुन गाहक राम दोष दलन करुनायतन ॥ ३३६ ॥

तुम पूर्णकाम हो, सुजानशिरोमणि हो और भावप्रिय हो (तुम्हें प्रेम प्यारा है) । हे राम ! तुम भक्तोंके गुणोंको ग्रहण करनेवाले, दोषोंको नाश करनेवाले और दयाके धाम हो ॥ ३३६ ॥

चौ०—अस कहि रही चरन गहि रानी । प्रेमपंक जनु गिरा समानी ॥
सुनि सनेहँ सानी बर बानी । बहुविधि राम सासु सनमानी ॥ १ ॥

ऐसा कहकर रानी चरणोंको पकड़कर [चुप] रह गयी; मानो उनकी वाणी प्रेमरूपी दलदलमे समा गयी हो । स्नेहसे सनी हुई श्रेष्ठ वाणी सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने सासका बहुत प्रकारसे सम्मान किया ॥ १ ॥

राम बिदा मागत कर जोरी । कीन्ह प्रनासु बहोरि बहोरी ॥
पाइ असीस बहुरि सिरु नाई । भाइन्ह सहित चले रघुराई ॥ २ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़कर विदा माँगते हुए बार-बार प्रणाम किया । आशीर्वाद पाकर और फिर सिर नवाकर भाइयोंसहित श्रीरघुनाथजी चले ॥ २ ॥

मंजु मधुर मूरति उर आनी । भई सनेहँ सिधिल सब रानी ॥
पुनि धीरजु धरि कुअँरि हँकारी । बार बार भेटहिं महतारी ॥ ३ ॥

श्रीरामजीकी सुन्दर माधुरी मूर्तिको हृदयमें लेकर सब रानियों स्नेहसे शिथिल हो गयी । फिर धीरज धारण करके कुमारियोंको बुलाकर माताएँ बारंबार उन्हें [गले लगाकर] भेंटने लगी ॥ ३ ॥

पहुँचावहिं फिर मिलहिं बहोरी । बड़ी परस्पर प्रीति न थोरी ॥

पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगार्ह । बाल बच्छ जिमि धेनु लवार्ह ॥४॥

पुत्रियोंको पहुँचाती हैं, फिर लौटकर मिलती हैं, परस्परमें कुछ थोड़ी प्रीति नहीं बड़ी (अर्थात् बहुत प्रीति बड़ी) । सखियोंको अलग करके माताएँ उनसे बार-बार मिलती हैं, जैसे हालकी ब्यायी हुई गाय अपने बालक बछड़े [या बछिया] से मिलती है ॥ ४ ॥

दो०—प्रेमबिबस नर नारि सब सखिन्ह सहित रनिवासु ।

मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर करुनाँ बिरहँ निवासु ॥३३७॥

सब स्त्री-पुरुष और सखियोंसहित सारा रनिवास प्रेमके विशेष वश हो रहा है । [ऐसा लगता है] मानो जनकपुरमें करुणा और बिरहने डेरा डाल दिया है ॥ ३३७ ॥

चौ०—सुक सारिका जानकीं ज्याप । कनक पिंजरन्ह राखि पढ़ाप ॥

व्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही । सुनि धीरजु परिहर न केहो ॥१॥

जानकीने जिन तोता और मैनाको पाल-पोसकर बड़ा किया था और सोनेके पिंजड़ोंमें रखकर पढ़ाया था, वे व्याकुल होकर कह रहे हैं—वैदेही कहाँ हैं ? उनके ऐसे वचनोंको सुनकर धीरज किसको नहीं त्याग देगा (अर्थात् सबका धैर्य जाता रहा) ॥ १ ॥

भय बिकल खग मृग पहि भाँती । मनुजदसा कैसें कहि जाती ॥

बंधु समेत जनकु तब आए । प्रेम उमगि लोचन जल छाप ॥२॥

जब पक्षी और पशुतक इस तरह बिकल हो गये, तब मनुष्योंकी दशा कैसे कही जा सकती है ! तब भाईसहित जनकजी वहाँ आये । प्रेमसे उमङ्गकर उनके नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया ॥ २ ॥

सीय बिलोकि धीरता भागी । रहे कहावत परम बिरागी ॥

लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी । मिटी महा मरजाद ग्यान की ॥३॥

वे परम वैराग्यवान् कहलाते थे; पर सीताजीका देखकर उनका धीरज भाग गया । राजाने जानकीजीको हृदयसे लगा लिया । [प्रेमके प्रभावसे] शानकी महान् मर्यादा मिट गयी ॥ ३ ॥

समुझावत सब सचिव सयाने । कीन्ह बिचार न अवसर जाने ॥

बारहिं बार सुता उर लाई । सजि सुंदर पालकीं मगाई ॥४॥

सब बुद्धिमान् मन्त्री उन्हें समझाते हैं । तब राजाने विषाद करनेका समय न जानकर विचार किया । बारंबार पुत्रियोंको हृदयसे लगाकर सुन्दर सजी हुई पालकियाँ मँगवायीं ॥ ४ ॥

दा०—प्रेमबिबस परिवारु सबु जानि सुलगन नरेस ।

कुअँरि चढ़ाई पालकिन्ह सुमिरे सिद्धि गनेस ॥३३८॥

सारा परिवार प्रेममें विवश है । राजाने सुन्दर मुहूर्त्त जानकर सिद्धिसहित गणेशजीका स्मरण करके कन्याओंको पालकियोंपर चढ़ाया ॥ ३३८ ॥

चौ०—बहुबिधि भूष सुता समुझाई । नारिधरसु कुलरीति सिखाई ॥

दासों दास दिए बहुतेरे । सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे ॥१॥

कल्याण

(१) माताकी सीख



सासु ससुर गुर मेवा करेहू ।
पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू ॥

[पृष्ठ ३०३]

(२) तोता-मैनाकी व्याकुलता



मुक सारिका जानकी ज्याए ।।
कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए ॥
व्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही ।

[पृष्ठ ३०६]

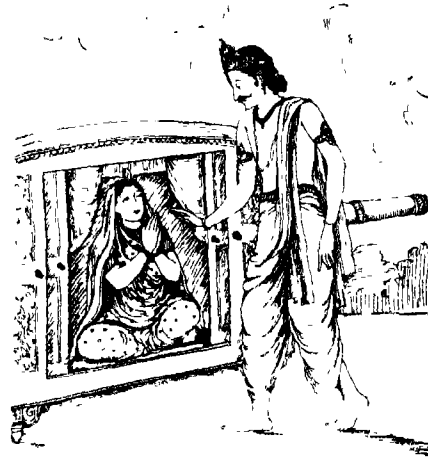
(३) पिताका स्नेह



लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी ।
मिटो महा मरनाद ग्यान की ॥

[पृष्ठ ३०६]

(४) पिताकी सीख



बहुबिधि भूप सुता समुझार् ।
नारिधरसु कुलरोति सिखाई ॥

[पृष्ठ ३०६]

राजाने पुत्रियोंको बहुत प्रकारसे समझाया और उन्हें स्त्री-धर्म और कुलकी रीति सिखायी । बहुत-से दासी-दास दिये, जो सीताजीके प्रिय और विश्वासपात्र सेवक थे ॥ १ ॥

सीय चलत व्याकुल पुरबासी । होहिं सगुन सुभ मंगलरासी ॥

भूसुर सचिव समेत समाजा । संग चले पहुँचावन राजा ॥ २ ॥

सीताजीके चलते समय जनकपुरवासी व्याकुल हो गये । मङ्गलकी राशि शुभ शकुन हो रहे हैं । ब्राह्मण और मन्त्रियोंके समाजसहित राजा जनकजी उन्हें पहुँचानेके लिये साथ चले ॥ २ ॥

समय बिलोकि बाजने बाजे । रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे ॥

दशरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे । दान मान परिपूरन कीन्हे ॥ ३ ॥

समय देखकर बाजे बजने लगे । बरातियोंने रथ, हाथी और घोड़े सजाये । दशरथजीने सब ब्राह्मणोंको बुला लिया और उन्हें दान और सम्मानसे परिपूर्ण कर दिया ॥ ३ ॥

चरनसरोज धूरि धरि सीसा । मुदित महीपति पाइ असीसा ॥

सुमिरि गजाननु कीन्हे पयाना । मंगलमूल सगुन भए नाना ॥ ४ ॥

उनके चरणकमलोंकी धूलि सिरपर धरकर और आशिष पाकर राजा आनन्दित हुए, और गणेशजीका स्मरण करके उन्होंने प्रस्थान किया । मङ्गलोंके मूल अनेको शकुन हुए ॥ ४ ॥

दो०—सुर प्रसन्न वरषहिं हरषि करहिं अपछरा गान ।

चले अवधपति अवधपुर मुदित बजाइ निसान ॥ ३३९ ॥

देवता हर्षित होकर फूल बरसा रहे हैं और अप्सराएँ गान कर रही हैं । अवधपति दशरथजी नगाड़े बजाकर आनन्दपूर्वक अयोध्यापुरीको चले ॥ ३३९ ॥

चौ०—नृप करि विनय महाजन फेरे । सादर सकल मागने ठेरे ॥

भूषन बसन बाजि गज दीन्हे । प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे ॥ १ ॥

राजा दशरथजीने विनती करके प्रतिष्ठित जनोंको लौटाया और आदरके साथ सब मंगनोंको बुलवाया । उनको गहने-कपड़े, घोड़े-हाथी दिये और प्रेमसे पुष्ट करके सबको सम्पन्न अर्थात् बलयुक्त कर दिया ॥ १ ॥

बार बार बिरिदावलि भाषी । फिरे सकल रामहि उर राखी ॥

बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीं । जनकु प्रेम बस फिरै न चहहीं ॥ २ ॥

वे सब बार-बार विरुदावली (कुलकीर्ति) बखानकर और श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें रखकर लौटे । कोसलाधीश दशरथजी बार-बार लौटनेको कहते हैं, परन्तु जनकजी प्रेमवश लौटना नहीं चाहते ॥ २ ॥

पुनि कह भूपति वचन सुहाए । फिरिभ महीस दूरि बड़ि आए ॥

राउ बहोरि उतरि भए ठाढ़े । प्रेमप्रवाह बिलोचन बाढ़े ॥ ३ ॥

दशरथजीने फिर सुहावने वचन कहे—हे राजन् ! बहुत दूर आ गये, अब लौटिये । फिर राजा दशरथजी रथसे उतरकर खड़े हो गये । उनके नेत्रोंमें प्रेमका प्रवाह बढ़ आया (प्रेमाश्रुओंकी धारा बह चली) ॥ ३ ॥

तब बिदेह बोले कर जोरी । वचन सनेहसुधाँ जनु बोरी ॥

करौं कवन बिधि विनय बनाई । महाराज मोहि दीन्हे बड़ाई ॥ ४ ॥

तब जनकजी हाथ जोड़कर मानो स्नेहरूपी अमृतमें डुबोकर वचन बोले—मैं किस तरह बनाकर (किन शब्दोंमें) विनती करूँ ! हे महाराज ! आपने मुझे बड़ी बड़ाई दी है ॥ ४ ॥

दो०—कोसलपति समधी सजन सनमाने सब भाँति ।

मिलनि परसपर विनय अति प्रीति न हृदयँ समाति ॥३४०॥

अयोध्यानाथ दशरथजीने अपने स्वजन समधीका सब प्रकारसे सम्मान किया । उनके आपसके मिलनेमें अत्यन्त विनय था और इतनी प्रीति थी जो हृदयमें समाती न थी ॥ ३४० ॥

चौ०—मुनिमंडलिहि जनक सिर नावा । आसिरबादु सबहि सन पावा ॥

सादर पुनि भेटे जामाता । रूप सील गुन निधि सब भ्राता ॥ १ ॥

जनकजीने मुनिमण्डलीको सिर नवाया और सभीसे आशीर्वाद पाया । फिर आदरके साथ वे रूप, शील और गुणोंके निधान सब भाइयोंसे—अपने दामादोंसे मिले; ॥ १ ॥

जोरि पंकरुह पानि सुहाय । बोले बचन प्रेम जनु जाय ॥

राम करौं केहि भाँति प्रसंसा । मुनि महेस मन मानस हंसा ॥ २ ॥

और सुन्दर कमलके समान हाथोंको जोड़कर ऐसे वचन बोले जो मानो प्रेमसे जन्म लिये हुए हों । हे रामजी ! मैं किस प्रकार आपकी प्रशंसा करूँ ! आप मुनियों और महादेवजीके मनरूपी मानसरोवरके हंस हैं ॥ २ ॥

करहिं जोग जोगी जेहि लागी । कोहु मोहु ममता महु त्यागी ॥

व्यापकु ब्रह्म अलखु अविनासी । चिदानंदु निरगुन गुनरासी ॥ ३ ॥

योगी लोग जिनके लिये क्रोध, मोह, ममता और मदको त्यागकर योगसाधन करते हैं; जो सर्वव्यापक, ब्रह्म, अव्यक्त, अविनाशी, चिदानन्द, निर्गुण और गुणोंकी राशि हैं; ॥ ३ ॥

मन समेत जेहि जान न बानी । तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ॥

महिमा निगमु नेति कहि कहई । जो तिहुँ काल एकरस रहई ॥ ४ ॥

जिनको मनसहित वाणी नहीं जानती और सब जिनका अनुमान ही करते हैं, कोई तर्कना नहीं कर सकते; जिनको महिमाको वेद 'नेति' कहकर वर्णन करता है, और जो [सच्चिदानन्द] तीनों कालोंमें एकरस (सर्वदा और सर्वथा निर्विकार) रहते हैं; ॥ ४ ॥

दो०—नयन विषय मो कहूँ भयउ सो समस्त सुख मूल ।

सबह लाभु जग जीव कहूँ भएँ ईस अनुकूल ॥३४१॥

वे ही समस्त सुखोंके मूल मेरे नेत्रोंके विषय हुए । ईश्वरके अनुकूल होनेपर जगत्में जीवको सब लाभ-ही-लाभ है ॥ ३४१ ॥

चौ०—सबहि भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई । निज जन जानि लीन्ह अपनाई ॥

होहिं सहस दस सारद सेवा । करहिं कलप कोटिक भरि लेखा ॥ १ ॥

आपने मुझे सभी प्रकारसे बड़ाई दी और अपना जन जानकर अपना लिया । यदि दस हजार सरस्वती और शेष हों और करोड़ों कल्पोंतक गणना करते रहें, ॥ १ ॥

मोर भाग्य राउर गुन गाथा । कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथ ।

मैं कछु कहउँ एक बल मोरें । तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें ॥ २ ॥

तो भी हे रघुनाथजी ! मेरे सौभाग्य और आपके गुणोंकी कथा वे कहकर पूरी नहीं कर सकते । मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह अपने इस एक ही बलपर कि आप अत्यन्त थोड़े प्रेमसे प्रसन्न हो जाते हैं ॥ २ ॥

बार बार मागउँ कर जोरें । मनु परिहरै चरन जनि भोरें ॥

सुनि बर बचन प्रेम जुनु पोबे । पूरनकाम रामु परितोषे ॥ ३ ॥

मैं बार-बार हाथ जोड़कर यह माँगता हूँ कि मेरा मन भूलकर भी आपके चरणोंकी न छोड़े । जनकजीके श्रेष्ठ वचनोंको सुनकर, जो मानो प्रेमसे पुष्ट किये हुए थे, पूर्णकाम श्रीरामचन्द्रजी सन्तुष्ट हुए ॥ ३ ॥

करि बर बिनय ससुर सनमाने । पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने ॥

बिनती बहुरि भरत सन कीन्ही । मिलि सप्रेम पुनि आसिष दीन्हो ॥ ४ ॥

उन्होंने सुन्दर बिनती करके पिता दशरथजी, गुरु विश्वामित्रजी और कुलगुरु वशिष्ठजीके सम्मान जानकर ससुर जनकजीका सम्मान किया । फिर जनकजीने भरतजीसे बिनती की और प्रेमके साथ मिलकर फिर उन्हें आशीर्वाद दिया ॥ ४ ॥

दो०—मिले लखन रिपुसदनहि दीन्हि असीस महीस ।

भए परसपर प्रेमबस फिरि फिरि नावहिं सीस ॥ ३४२ ॥

फिर राजाने लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजीसे मिलकर उन्हें आशीर्वाद दिया । वे परस्पर प्रेमके वश होकर बार-बार आपसमें सिर नवाने लगे ॥ ३४२ ॥

चौ०—बार बार करि बिनय बड़ाई । रघुपति चले संग सब भाई ॥

जनक गहे कौसिक पद जाई । चरन रेनु सिर नयनन्ह लाई ॥ १ ॥

जनकजीकी बार-बार बिनती और बड़ाई करके श्रीरघुनाथजी सब भाइयोंके साथ चले । जनकजीने जाकर विश्वामित्रजीके चरण पकड़ लिये और उनके चरणोंकी रजको सिर और नेत्रोंमें लगाया ॥ १ ॥

सुनु मुनीस बर दरसन तोरें । अगमु न कछु प्रतीति मन मोरें ॥

जो सुखु सुजसु लोकपति चहहीं । करत मनोरथ सकुचत अहहीं ॥ २ ॥

[उन्होंने कहा—] हे मुनीश्वर ! सुनिये, आपके सुन्दर दर्शनसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है, मेरे मनमें ऐसा विश्वास है । जो सुख और सुयश लोकपाल चाहते हैं परन्तु [असम्भव समझकर] जिसका मनोरथ करते हुए सकुचाते हैं, ॥ २ ॥

सो सुखु सुजसु सुलभ मोहि स्वामी । सब सिधि तव दरसन अनुगामी ॥

कीन्हि बिनय पुनि पुनि सिद्ध नाई । फिरे महीसु आसिषा पाई ॥ ३ ॥

हे स्वामी ! वही सुख और सुयश मुझे सुलभ हो गया; सारी सिद्धियाँ आपके दर्शनोंकी अनुगामिनी अर्थात् पीछे-पीछे चलनेवाली हैं । इस प्रकार बार-बार बिनती की, और सिर नवाकर तथा उभसे आशीर्वाद पाकर राजा जनक लौटे ॥ ३ ॥

चली बरात निसान बजाई । मुदित छोट बड़ सब समुदाई ॥

रामहि निरखि भ्राम नर नारी । पाइ नयनफलु होहिं सुखारी ॥ ४ ॥

डंका बजाकर बारात चली । छोटे-बड़े सभी समुदाय प्रसन्न हैं । [रास्तेके] गाँवोंके स्त्री-पुरुष श्रीरामचन्द्रजीको देखकर नेत्रोंका फल पाकर सुखी होते हैं ॥ ४ ॥

दो०—बीच बीच बर बास करि मगलोगन्ह सुख देत ।

अवध समीप पुनीत दिन पहुँची आइ जनेत ॥ ३४३ ॥

बीच-बीचमें सुन्दर सुकाम करती हुई, मार्गके लोगोंको सुख देती हुई वह बारात पवित्र दिनमें अयोध्यापुरीके समीप आ पहुँची ॥ ३४३ ॥

चौ०—हने निसान पनव बर बाजे । मेरि संख धुनि हय गय गाजे ॥

झाँझि बिरच डिडिमीं सुहाई । सरस राग बाजहिं सहनाई ॥ १ ॥

नगाड़ांपर चोटें पड़ने लगी; सुन्दर ढोल बजने लगे; मेरी और शंखकी बड़ी आवाज हो रही है; हाथी-घोड़े गरज रहे हैं । विशेष शब्द करनेवाली झाँझें, सुहावनी डफलियाँ तथा रसीले रागसे शहनाइयाँ बज रही हैं ॥ १ ॥

पुरजन आवत अकनि बराता । मुदित सकल पुलकावलि गाता ॥

निज निज सुंदर सदन सँचारे । हाट बाट चौहट पुर द्वारे ॥ २ ॥

बारातको आती हुई सुनकर नगरनिवासी प्रसन्न हो गये । सबके शरीरोपर पुलकावली छा गयी । सबने अपने-अपने सुन्दर घरों, बाजारों, गलियों, चौराहों और नगरके द्वारोंको सजाया ॥ २ ॥

गलीं सकल अरगजाँ सिंघाई । जहँ तहँ चौकें चारु पुराई ॥

बना बजारु न जाइ बखाना । तोरन केतु पताक बिताना ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण गलियाँ अरगजेसे सिंचायी गयीं, जहाँ-तहाँ सुन्दर चौक पुराये गये । तोरणों, ध्वजा-पताकाओं और मंडपोसे बाजार ऐसा सजा कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ३ ॥

सफल पूगफल कदलि रसाला । रोपे बकुल कदंब तमाला ॥

लगे सुभग तरु परसत धरनी । मनिय आलबाल कल करनी ॥ ४ ॥

फलसहित सुपारी, केला, आम, मौलसिरी, कदम्ब और तमालके वृक्ष लगाये गये । वे लगे हुए सुन्दर वृक्ष [फलोंके भारसे] पृथ्वीको छू रहे हैं । उनके मणियोंके थाले बड़ी सुन्दर कारीगरीसे बनाये हुए हैं ॥ ४ ॥

दो०—विधिध माँति मंगलकलस गृह गृह रचे सँवारि ।

सुर ब्रह्मादि सिंहाहिं सब रघुवरपुरी निहारि ॥ ३४४ ॥

अनेक प्रकारके मङ्गल-कलश घर-घर सजाकर बनाये गये हैं । श्रीरघुनाथजीकी पुरी (अयोध्या) को देखकर ब्रह्मा आदि सब देवता सिंहाते हैं ॥ ३४४ ॥

चौ०—भूपभवन तेहि अवसर सोहा । रचना देखि मदनमनु मोहा ॥

मंगल सगुन मनोहरताई । रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई ॥ १ ॥

उस समय राजमहल ऐसा शोभित हो रहा था कि उसकी रचना देखकर कामदेवका भी मन मोहित हो जाता था । मङ्गलशकुन, मनोहरता, ऋद्धि-सिद्धि, सुख और सुहावनी सम्पत्ति, ॥ १ ॥

जनु उछाह सब सहज सुहाए । तनु धरि धरि दसरथगृह छाप ॥
देखन हेतु राम बैदेही । कहहु लालसा होहि न केही ॥ २ ॥

ये सब मानो सहज ही सुन्दर उत्साहसे शरीर धर-धरकर दशरथजीके घरमें छा गये हैं । श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीके दर्शनोंके लिये भल, कहिये, किसे लालसा न होगी ॥ २ ॥

जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि । निज छबि निदरहिं मदनबिलासिनि ॥
सकल सुमंगल सजैं आरती । गावहिं जनु बहु वेष भारती ॥ ३ ॥

सुहागिनी झियाँ झुंड-की-झुंड मिलकर चलीं, जो अपनी छबिसे कामदेवकी स्त्री रतिका भी निरादर कर रही हैं । सभी सुन्दर मङ्गलद्रव्य एवं आरती सजाये हुए गा रही हैं, मानो सरस्वतीजी ही बहुत-से वेष धारण किये गा रही हो ॥ ३ ॥

भूपतिभवन कोलाहलु होई । जाइ न बरनि समउ सुखु सोई ॥
कौसल्यादि राम महतारीं । प्रेमबिबस तनदसा बिसारीं ॥ ४ ॥

राजमहलमें [आनन्दके मारे] शोर मच रहा है । उस समयका और सुखका वर्णन नहीं किया जा सकता । कौसल्याजी आदि श्रीरामचन्द्रजीकी सब माताएँ प्रेमके विशेष वश होनेसे शरीरकी सुध भूल गयीं ॥ ४ ॥

दो०—दिए दान बिप्रन्ह विपुल पूजि गनेस पुरारि ।

प्रमुदित परम दरिद्र जनु पाइ पदारथ चारि ॥ ३४५ ॥

गणेशजी और त्रिपुरारि शिवजीका पूजन करके उन्होंने ब्राह्मणोंको बहुत-सा दान दिया । वे ऐसी परम प्रसन्न हुई मानो अत्यन्त दरिद्री चारों पदार्थ पा गया हो ॥ ३४५ ॥

चौ०—मोद प्रमोद बिबस सब माता । चलहिं न चरन सिथिल भए गाता ॥

रामदरस हित अति अनुरागी । परिछनि साजु सजन सब लागीं ॥ १ ॥

सुख और महान् आनन्दसे विवश होनेके कारण सब माताओंके शरीर शिथिल हो गये हैं, उनके चरण चलते नहीं हैं । श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनोंके लिये वे अत्यन्त अनुरागमें भरकर परछनका सब सामान सजाने लगीं ॥ १ ॥

बिबिध बिधान बाजेन बाजे । मंगल मुदित सुमित्राँ साजे ॥

हरद दूब दधि पल्लव फूला । पान पुगफल मंगलमूला ॥ २ ॥

अनेकों प्रकारके बाजे बजते थे । सुमित्राजीने आनन्दपूर्वक मंगल-साज सजाये । हल्दी, दूब, दही, पत्ते, फूल, पान और सुपारी आदि मंगलकी मूल वस्तुएँ, ॥ २ ॥

अच्छत अंकुर लोचन लाजा । मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा ॥

छुहे पुरट घट सहज सुहाए । मदनसकुन जनु नीड़ बनाए ॥ ३ ॥

तथा अक्षत, अँखुए, गोरोचन, लावा और तुलसीकी सुन्दर मंजरियाँ सुशोभित हैं । नाना रंगोंसे चित्रित किये हुए सहज सुहावने सुवर्णके कलश ऐसे मालूम होते हैं मानो कामदेवके पक्षियोंने घोंसले बनाये हों ॥ ३ ॥

सगुन सुगंध न जाहिं बखानी । मंगल सकल सजहिं सब रानी ॥

रचीं आरतीं बहुत बिधाना । मुदित करहिं कल मंगलगाना ॥ ४ ॥

शकुनकी सुगन्धित वस्तुएँ बखानी नहीं जा सकतीं । सब रानियाँ सम्पूर्ण मङ्गल-साज सज रही हैं । बहुत प्रकारकी आरती बनाकर वे आनन्दित हुई सुन्दर मंगलगान कर रही हैं ॥ ४ ॥

दो०—कनकधार भरि मंगलन्हि कमल करन्हि लिएँ मात ।

चलीं मुदित परिछनि करन पुलक पल्लवित गात ॥३४६॥

सोनेके थाल मांगलिक वस्तुओंसे भरकर उन्हें अपने कमलके समान (कोमल) हाथोंमें लिये हुए माताएँ आनन्दित होकर परछन करने चली । उनके शरीर पुलकावलीसे छा गये हैं ॥ ३४६ ॥

चौ०—धूप धूम नभु मेचक भयऊ । सावनघन घमंडु जनु ठयऊ ॥

सुरतरु सुमन माल सुर बरषहिं । मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिं ॥ १ ॥

धूपके धुएँसे आकाश ऐसा काला हो गया है मानो सावनके बादल घुमड़-घुमड़कर छा गये हों । देवता कल्पवृक्षके फूलोंकी मालाएँ बरसा रहे हैं । वे ऐसी लगती हैं मानो बगुलोंकी पॉति मनको [अपनी ओर] खींच रही हो ॥ १ ॥

मंजुल मनिमय बंदनिबारे । मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे ॥

प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि । चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि ॥ २ ॥

सुन्दर मणियोंसे बने बंदनवार ऐसे मालूम होते हैं मानो इन्द्रधनुष सजाये हो । अशरियोंपर सुन्दर और चपल खियों प्रकट होती और छिप जाती हैं (आती-जाती है); वे ऐसी जान पड़ती हैं मानो बिजलियाँ चमक रही हैं ॥ २ ॥

दुंदुभिधुनि घन गरजनि घोरा । जाचक चातक दादुर मोरा ॥

सुर सुगंध सुचि बरषहिं बारी । सुखी सकल ससि पुर नर नारी ॥ ३ ॥

नगाड़ोंकी ध्वनि मानो बादलोंकी धोर गर्जना है; याचकगण पर्पीहे, मेढक और मोर हैं । देवता पवित्र सुगन्धरूपी जल बरसा रहे हैं, जिससे खेतोंके समान नगरके सब स्त्री-पुरुष सुखी हैं ॥ ३ ॥

समउ जानि गुर आयसु दीन्हा । पुर प्रवेशु रघुकुलमनि कीन्हा ॥

सुमिरि संभु गिरिजा गनराजा । मुदित महीपति सहित समाजा ॥ ४ ॥

[मुहूर्तका] समय जानकर गुरु वशिष्ठजीने आशा दी, तब रघुकुलमणि महाराज दशरथजीने शिवजी, पार्वतीजी और गणेशजीका स्मरण करके समाजसहित आनन्दित होकर नगरमें प्रवेश किया ॥ ४ ॥

दो०—होहिं सगुन बरषहिं सुमन सुर दुंदुभीं बजाइ ।

बिबुधबधू नाचहिं मुदित मंजुल मंगल गाइ ॥३४७॥

शकुन हो रहे हैं, देवता दुन्दुभी बजा-बजाकर फूल बरसा रहे हैं । देवताओंकी स्त्रियाँ आनन्दित होकर सुन्दर मङ्गलगीत गा-गाकर नाच रही हैं ॥ ३४७ ॥

चौ०—मागध सूत बंदि नट नागर । गावहिं जसु तिहु लोक उजागर ॥

जयधुनि विमल वेद वर बानी । दस दिसि सुनिअ सुमंगल सानी ॥ १ ॥

मागध, सूत, भाट और चतुर नट तीनों लोकोंके उजागर (सबको प्रकाश देनेवाले परम प्रकाशस्वरूप) श्रीरामचन्द्रजीका यश गा रहे हैं । जयध्वनि तथा वेदकी निर्मल श्रेष्ठ वाणी सुन्दर मंगलसे सनी हुई दसों दिशाओंमें सुनायी पड़ रही है ॥ १ ॥



कनक धार भंग मंगलान्हि कमल करन्हि लिएँ मात ।
चलीं मुदिन परिछति करत पुलक पहवित गात ॥

[पं० हनुमान शर्माजीकी कृपाये प्राप्त]

[पृष्ठ ३१२]

विपुल बाजने बाजन लागे । नभ सुर नगर लोग अनुरागे ॥

बने बराती बरनि न जाहीं । महामुदित मन सुख न समाहीं ॥ २ ॥

बहुत-से बाजे बजने लगे । आकाशमें देवता और नगरमें लोग सब प्रेममें मग्न हैं । बराती ऐसे बने-ठने हैं कि उनका वर्णन नहीं हो सकता । सब महान् आनन्दित हैं, सुख उनके मनमें समाता नहीं है ॥ २ ॥

पुरवासिन्ह तब राय जोहारे । देखत रामहि भय सुखारे ॥

करहिं निछावरि मनिगन चीरा । बारि बिलोचन पुलक सरीरा ॥ ३ ॥

तब अयोध्यावासियोंने राजाको प्रणाम किया । भीरामचन्द्रजीको देखते ही वे सुखी हो गये । सब मणियाँ और वस्त्र निछावर कर रहे हैं । नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंका जल भरा है और शरीर पुलकित है ॥ ३ ॥

आरति करहिं मुदित पुरनारी । हरषहिं निरखि कुअँर बर चारी ॥

सिबिका सुभग ओहार उघारी । देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी ॥ ४ ॥

नगरकी स्त्रियाँ आनन्दित होकर आरती कर रही हैं और सुन्दर चारों कुमारोंको देखकर हर्षित हो रही हैं । पालकियोंके सुन्दर परदे हटा-हटाकर, वे दुलहिनोंको देखकर सुखी होती हैं ॥ ४ ॥

दो०—एहि विधि सबही देत सुखु आए राजदुआर ।

मुदित मातु परिछनि करहिं बधुन्ह समेत कुमार ॥ ३४८ ॥

इस प्रकार सबको सुख देते हुए राजद्वारपर आये । माताएँ आनन्दित होकर बहुओंसहित कुमारोंका परछन कर रही हैं ॥ ३४८ ॥

चो०—करहिं आरती बारहिं बारा । प्रेसु प्रमोदु कहै को पारा ॥

भूषन मनि पट नाना जाती । करहिं निछावरि अगनित भाँती ॥ १ ॥

वे बार-बार आरती कर रही हैं, उस प्रेम और महान् आनन्दको कौन कह सकता है ! अनेकों प्रकारके आभूषण, रत्न और वस्त्र तथा अगणित प्रकारकी अन्य वस्तुएँ निछावर कर रही हैं ॥ १ ॥

बधुन्ह समेत देखि सुत चारी । परमानंद मगन महतारी ॥

पुनि पुनि सीय राम छबि देखी । मुदित सफल जग जीवन लेखी ॥ २ ॥

बहुओंसहित चारों पुत्रोंको देखकर माताएँ परमानन्दमें मग्न हो गयीं । सीताजी और रामजीकी छबिको बार-बार देखकर वे जगत्में अपने जीवनको सफल मानकर आनन्दित हो रही हैं ॥ २ ॥

सखीं सीयमुख पुनि पुनि चाही । गान करहिं निज सुकृत सराही ॥

बरषहिं सुमन छनहिं छन देवा । नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा ॥ ३ ॥

सखियाँ सीताजीके मुखको बार-बार देखकर अपने पुण्योंकी सराहना करती हुई गान कर रही हैं । देवता क्षण-क्षणमें फूल बरसाते, नाचते-गाते तथा अपनी-अपनी सेवा समर्पण करते हैं ॥ ३ ॥

देखि मनोहर चारिउ जोरीं । सारद उपमा सकल ढँढोरीं ॥

देत न बनहिं निपट लघु लागीं । एकटक रहीं रूप अनुरागीं ॥ ४ ॥

चारों मनोहर जोड़ियोंको देखकर सरस्वतीने सारी उपमाओंको खोज डाला; पर कोई उपमा देते नहीं बनी, क्योंकि उन्हें सभी बिल्कुल तुच्छ जान पड़ीं । तब हारकर वे भी रामजीके रूपमें अनुरक्त होकर एकटक देखती रह गयीं ॥ ४ ॥

दो०—निगमनीति कुलरीति करि अरघ पाँवड़े देत ।

बधुन्ह सहित सुत परिछि सब चलीं लवाइ निकेत ॥३४९॥

वेदकी विधि और कुलकी रीति करके अर्घ्य-पाँवड़े देती हुई बहुओंसमेत सब पुत्रोंको परछन करके माताएँ महलमें लिवा चलीं ॥ ३४९ ॥

चौ०—चारि सिंघासन सहज सुहाए । जनु मनोज निज हाथ बनाए ॥

तिन्ह पर कुअँरि कुअँर बैठारे । सादर पाय पुनीत पखारे ॥ १ ॥

स्वाभाविक ही सुन्दर चार सिंहासन थे, जो मानो कामदेवने ही अपने हाथसे बनाये थे; उनपर माताओंने राजकुमारियों और राजकुमारोंको बैठाया और आदरके साथ उनके पवित्र चरण धोये ॥ १ ॥

धूप दीप नैवेद बेदविधि । पूजे बर दुलहिनि मंगलनिधि ॥

बारहिं बार आरती करहीं । व्यजन चारु चामर सिर ढरहीं ॥ २ ॥

फिर वेदकी विधिके अनुसार मंगलके निधान दूल्ह और दुल्हिनोंकी धूप, दीप और नैवेद्य आदिके द्वारा पूजा की । माताएँ बारंबार आरती कर रही हैं और बर-बधुओंके सिरोंपर सुन्दर पंखे तथा चँवर ढल रहे हैं ॥ २ ॥

बस्तु अनेक निछावरि होहीं । भरीं प्रमोद मातु सब सोहीं ॥

पावा परम तत्व जनु जोगी । अमृतु लहेउ जनु संतत रोगी ॥ ३ ॥

अनेकों वस्तुएँ निछावर हो रही हैं; सभी माताएँ आनन्दसे भरी हुई ऐसी सुशोभित हो रही हैं मानो योगीने परम तत्त्वको प्राप्त कर लिया; सदाके रोगीको मानो अमृत मिल गया, ॥ ३ ॥

जनम रंक जनु पारस पावा । अंधहि लोचन लाभु सुहावा ॥

मूकबदन जनु सारद छाई । मानहुँ समर सूर जय पाई ॥ ४ ॥

जन्मका दरिद्री मानो पारस पा गया, अन्धेको सुन्दर नेत्रोंका लाभ हुआ, गूंगेके मुग्धमें मानो सरस्वती आ बिराजी और मानो युद्धमें शूरवीरने विजय पा ली ॥ ४ ॥

दो०—एहि सुख ते सतकोटि गुन पावहिं मातु अनंदु ।

भाइन्ह सहित बिआहि घर आए रघुकुलचंदु ॥३५०(क)॥

इन सुखोंसे भी सौ करोड़ गुना बढ़कर आनन्द माताएँ पा रही हैं, क्योंकि रघुकुलके चन्द्रमा श्रीरामजी विवाह करके भाइयोंसहित घर आये हैं ॥ ३५० (क) ॥

लोकरीति जननीं करहिं बर दुलहिनि सकुचाहिं ।

मोदु बिनोदु बिलोकि बड़ राघु मनहिं मृसुकाहिं ॥३५०(ख)॥

माताएँ लोकरीति करती हैं और दूल्ह-दुल्हिनें सकुचाते हैं । इस महान् आनन्द और बिनोदको देखकर श्रीरामचन्द्रजी मन-ही-मन मुस्कुरा रहे हैं ॥ ३५० (ख) ॥

चौ०—देव पितर पूजे बिधि नीकी । पूजीं सकल वासना जी की ॥

सबहि बंदि मागहिं बरदाना । भाइन्ह सहित राम कल्याणा ॥ १ ॥

मनकी सभी वासनाएँ पूरी हुई जानकर देवता और पितरोंका भलीभाँति पूजन किया । सबकी वन्दना करके माताएँ यही वरदान माँगती हैं कि भाइयोंसहित श्रीरामजीका कल्याण हो ॥ १ ॥

अंतरहित सुर आसिष देहीं । मुदित मातु अंचल भरि लेहीं ॥

भूपति बोलि बराती लीन्हे । जान बसन मनि भूषन दीन्हे ॥ २ ॥

देवता अन्तरिक्षसे छिपे हुए आशीर्वाद दे रहे हैं और माताएँ आनन्दित हो आँचल भरकर ले रही हैं । तदनन्तर राजाने बरातियोंको बुलवा लिया और उन्हें सवारियाँ, वस्त्र, मणि (रत्न) और आभूषणादि दिये ॥ २ ॥

आयसु पाइ राखि उर रामहि । मुदित गए सब निज निज धामहि ॥

पुर नर नारि सकल पहिराय । घर घर बाजन लगे बघाय ॥ ३ ॥

आज्ञा पाकर, श्रीरामजीको हृदयमें रखकर वे सब आनन्दित होकर अपने-अपने घर गये । नगरके समस्त स्त्री-पुरुषोंको राजाने कपड़े और गहने पहनाये । घर-घर बधावे बजने लगे ॥ ३ ॥

जाचकजन जाचहिं जोइ जोई । प्रमुदित राउ देहिं सोइ सोई ॥

सेवक सकल बजनिआ नाना । पूरन किए दान सनमाना ॥ ४ ॥

याचक लोग जो-जो माँगते हैं, विशेष प्रसन्न होकर राजा उन्हें वही-वही देते हैं । सम्पूर्ण सेवकों और बाजेवालोंको राजाने नाना प्रकारके दान और सम्मानसे संतुष्ट किया ॥ ४ ॥

दो०—देहिं असीस जोहारि सब गावहिं गुन गन गाथ ।

तब गुर भूसुर सहित गृह गवनु कीन्ह नरनाथ ॥३५१॥

सब जोहार (वन्दन) करके आशिष देते हैं और गुणसमूहोंकी कथा गाते हैं । तब गुरु और ब्राह्मणोंसहित राजा दशरथजीने महलमें गमन किया ॥ ३५१ ॥

चौ०—जो बसिष्ट अनुसासन दीन्ही । लोक बेद बिधि सादर कीन्ही ॥

भूसुरभीर देखि सब रानी । सादर उठीं भाग्य बड़ जानी ॥ १ ॥

वशिष्ठजीने जो आज्ञा दी, उसे लोक और वेदकी विधिके अनुसार राजाने आदरपूर्वक किया । ब्राह्मणोंकी भीड़ देखकर अपना बड़ा भाग्य जानकर सब रानियाँ आदरके साथ उठी ॥ १ ॥

पाय पखारि सकल अन्हवाय । पूजि भली बिधि भूप जेवाँय ॥

आदर दान प्रेम परिपोषे । दंत असीस चले मन तोषे ॥ २ ॥

चरण धोकर उन्होंने सबको स्नान कराया और राजाने भलीभाँति पूजन करके उन्हें भोजन कराया । आदर, दान और प्रेमसे पुष्ट हुए वे संतुष्ट मनसे आशीर्वाद देते हुए चले ॥ २ ॥

बहुबिधि कीन्हि गाधिसुत पूजा । नाथ मोहि सम धन्य न दूजा ॥

कीन्हि प्रसंसा भूपति भूरी । रानिन्ह सहित लीन्हि पगधूरी ॥ ३ ॥

राजाने विश्वामित्रजीकी बहुत तरहसे पूजा की और कहा—हे नाथ ! मेरे समान दूसरा कोई धन्य नहीं है । राजाने उनकी बहुत प्रशंसा की और रानियोंसहित उनकी चरणधूलिको ग्रहण किया ॥ ३ ॥

भीतर भवन दीन्ह बर बासू । मन जोगवत रह नृपु रनिवास ॥

पूजे गुर पद कमल बहोरी । कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी ॥ ४ ॥

उन्हें महलके भीतर ठहरनेको उत्तम स्थान दिया, जिसमें राजा और सब रनिवास उनका मन जोहता रहे (अर्थात् जिसमें राजा और महलकी सारी रानियाँ स्वयं उनकी इच्छानुसार उनके आरामकी ओर दृष्टि रख सकें) ।

फिर राजाने गुरु वशिष्ठजीके चरणकमलोंकी पूजा और विनती की। उनके हृदयमें कम प्रीति न थी (अर्थात् बहुत प्रीति थी) ॥ ४ ॥

दो०—बधुन्ह समेत कुमार सब रानिन्ह सहित महीसु ।

पुनि पुनि बंदत गुरचरन देत असीस मुनीसु ॥३५२॥

बहुओंसहित सब राजकुमार और सब रानियोंसमेत राजा बार-बार गुरुजीके चरणोंकी वन्दना करते हैं और मुनीश्वर आशीर्वाद देते हैं ॥ ३५२ ॥

चौ०—बिनय कीन्हि उर अति अनुरागें । सुत संपदा राखि सब आगें ॥

नेगु मागि मुनिनायक लीन्हि । आसिरबादु बहुत बिधि दीन्हि ॥ १ ॥

राजाने अत्यन्त प्रेमपूर्ण हृदयसे पुत्रोंको और सारी सम्पत्तिको सामने रखकर [उन्हें स्वीकार करनेके लिये] विनती की। परन्तु मुनिराजने [पुरोहितके नाते] केवल अपना नेग माँग लिया और बहुत तरहसे आशीर्वाद दिया ॥ १ ॥

उर धरि रामहि सीयसमेता । हरषि कीन्हि गुर गवनु निकेता ॥

बिप्रबधू सब भूप बोलाई । चैल चारु भूषन पहिराई ॥ २ ॥

फिर सीताजीसहित श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें रखकर गुरु वशिष्ठजी हर्षित होकर अपने स्थानको गये। राजाने सब ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको बुलवाया और उन्हें सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण पहनाये ॥ २ ॥

बहुरि बोलाइ सुआसिनि लीन्हि । रुचि बिचारि पहिरावनि दीन्हि ॥

नेगी नेग जोग सब लेहीं । रुचि अनुरूप भूषमनि देहीं ॥ ३ ॥

फिर सब सुआसिनियोंको (नगरभरकी सौभाग्यवती बहिन, बेटों, भानजी आदिको) बुलवा लिया और उनकी रुचि समझकर उसीके अनुसार उन्हें पहिरावनी दी। नेगीलोग सब अपना-अपना नेग-जोग लेते और राजाओंके शिरोमणि दशरथजी उनकी इच्छाके अनुसार देते हैं ॥ ३ ॥

प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने । भूपति भली भाँति सनमाने ॥

देव देखि रघुबीर बिबाह । बरषि प्रसून प्रसंसि उछाह ॥ ४ ॥

जिन मेहमानोंको प्रिय और पूजनीय जाना, उनका राजाने भलीभाँति सम्मान किया। देवगण श्रीरघुनाथजीका विवाह देखकर, उत्सवकी प्रशंसा करके फूल बरसाते हुए—॥ ४ ॥

दो०—चले निसान बजाइ सुर निज निज पुर सुख पाइ ।

कहत परसपर रामजसु प्रेम न हृदयँ समाइ ॥३५३॥

नगाड़े बजाकर और [परम] सुख प्राप्तकर अपने-अपने लोकोंको चले। वे एक-दूसरेसे श्रीरामजीका यश कहते जाते हैं। हृदयमें प्रेम समाता नहीं है ॥ ३५३ ॥

चौ०—सब बिधि सबहि समदि नरनाह । रहा हृदय भरि पूरि उछाह ॥

अहँ रनिवासु तहाँ पगु धारे । सहित बहूटिन्ह कुअर निहारे ॥ १ ॥

सब प्रकारसे सबका प्रेमपूर्वक भलीभाँति आदर-सत्कार कर लेनेपर राजा दशरथजीके हृदयमें पूर्ण उत्साह (आनन्द) भर गया। जहाँ रनिवास था, वे वहाँ पधारे और बहुओंसमेत उन्होंने कुमारोंको देखा ॥ १ ॥

लिय गोद करि मोद समेता । को कहि सकइ भयउ सुखु जेता ॥

बधू सप्रेम गोद बैठारैं । बार बार हियँ हरषि दुलारैं ॥ २ ॥

राजाने आनन्दसहित पुत्रोंको गोदमें ले लिया । उस समय राजाको जितना सुख हुआ उसे कौन कह सकता है ! फिर पुत्रवधुओंको प्रेमसहित गोदीमें बैठाकर, बार-बार हृदयमें हर्षित होकर उन्होंने उनका दुलार (लड़-चाव) किया ॥ २ ॥

देखि समाजु मुदित रनिवासू । सब कँ उर अनंद कियो बासू ॥

कहेउ भूप जिमि भयउ बिबाहू । सुनि सुनि हरषु होत सब काहू ॥ ३ ॥

यह समाज (समारोह) देखकर रनिवास प्रसन्न हो गया । सबके हृदयमें आनन्दने निवास कर लिया । तब राजाने जिस तरह विवाह हुआ था वह सब कहा; उसे सुन-सुनकर सब किसीको हर्ष होता है ॥ ३ ॥

जनक राज गुन सीलु बड़ाई । प्रीति रीति संपदा सुहाई ॥

बहुबिधि भूप भाट जिमि बरनी । रानी सब प्रमुदित सुनि करनी ॥ ४ ॥

राजा जनकके गुण, शील, महत्त्व, प्रीतिकी रीति और सुहावनी सम्पत्तिका वर्णन राजाने भाटकी तरह बहुत प्रकारसे किया । जनकजीकी करनी सुनकर सब रानियाँ बहुत प्रसन्न हुई ॥ ४ ॥

दो०—सुतन्ह समेत नहाइ नृप बोलि बिप्र गुर ग्याति ।

भोजन कीन्ह अनेक बिधि घरी पंच गइ राति ॥ ३५४ ॥

पुत्रोंसहित स्नान करके राजाने ब्राह्मण, गुरु और कुटुम्बियोंको बुलकर अनेक प्रकारके भोजन किये । [यह सब करते-करते] पाँच घड़ी रात बीत गयी ॥ ३५४ ॥

चौ०—मंगलगान करहिं बर भामिनि । भै सुखमूल मनोहर जामिनि ॥

अँचइ पान सब काँइ पाय । सुग सुगंध भूषित छबि छाए ॥ १ ॥

सुन्दर स्त्रियाँ मंगलगान कर रही हैं । वह रात्रि सुखकी मूल और मनोहारिणी हो गयी । सबने आचमन करके पान खाये और फूलोंकी माला, सुगन्धित द्रव्य आदिसे विभूषित होकर सब शोभासे छा गये ॥ १ ॥

रामहि देखि रजायलु पाई । निज निज भवन खले सिर नाई ॥

प्रेमु प्रमोदु बिनोदु बड़ाई । समउ समाजु मनोहरताई ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीको देखकर और आशा पाकर सब सिर नवाकर अपने-अपने घरको चले । वहाँके प्रेम, आनन्द, बिनोद, महत्त्व, समय, समाज और मनोहरताको—॥ २ ॥

कहि न सकहिं सत सारइ सेसू । बेद बिरंचि महेस गनेसू ॥

सो मैं कहौं कवन बिधि बरनी । भूमिनागु सिर धरइ कि धरनी ॥ ३ ॥

सैकड़ों सरस्वती, शेष, वेद, ब्रह्मा, महादेवजी और गणेशजी भी नहीं कह सकते । फिर भला मैं उसे किस प्रकारसे बखानकर कहूँ । कहीं केंचुआ भी धरतीको सिरपर ले सकता है ! ॥ ३ ॥

नृप सब भौंति सबहि सनमानी । कहि मृदु बचन बोलाई रानी ॥

बधू लरिकनीं पर घर आई । राखेहु नयन पलक की नाई ॥ ४ ॥

राजाने सबका सब प्रकारसे सम्मान करके, कोमल वचन कहकर रानियोंको बुलाया और कहा—
बहुएँ बच्ची हैं, पराये घर आयी हैं; इनको इस तरहसे रखना जैसे नेत्रोंको पलक रखते हैं (जैसे
पलकें नेत्रोंकी सब प्रकारसे रक्षा करती हैं और उन्हें सुख पहुँचाती हैं, वैसे ही इनको सुख पहुँचाना) ॥ ४ ॥

दो०—लरिका भ्रमित उनीद बस सयन करावहु जाइ ।

अस कहि गे विश्रामगृह रामचरन चितु लाइ ॥३५५॥

लड़के थके हुए नींदके वश हो रहे हैं; इन्हें ले जाकर शयन कराओ। ऐसा कहकर राजा
श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें मन लगाकर विश्रामभवनमें चले गये ॥ ३५५ ॥

चौ०—भूपबचन सुनि सहज सुहाए । जरित कनकमनि पलंग उसाए ॥

सुभग सुरभि पय फेन समाना । कोमल कलित सुपेती नाना ॥ १ ॥

राजाके स्वभावसे ही सुन्दर वचन सुनकर [रानियोंने] मणियोंसे जड़े सुवर्णके पलंग बिछवाये।
[गद्दोंपर] गौके दूधके फेनके समान सुन्दर एवं कोमल अनेकों सफेद चादरें बिछायी ॥ १ ॥

उपबरहन बर बरनि न जाहीं । स्रग सुगंध मनिमंदिर माहीं ॥

रतनदीप सुठि चारु चँदोवा । कहत न बनइ जान जेहिं जोवा ॥ २ ॥

सुन्दर तकियोंका वर्णन नहीं किया जा सकता। मणियोंके मन्दिरमें फूलोंकी मालाएँ और सुगन्ध-
द्रव्य सजे हैं। सुन्दर रत्नोंके दीपकों और सुन्दर चँदोवेकी शोभा कहते नहीं बनती। जिसने उन्हें देखा हो,
वही जान सकता है ॥ २ ॥

सेज रुचिर रचि रामु उठाए । प्रेम समेत पलंग पौढ़ाए ॥

अग्या पुनि पुनि भाइन्ह कीन्ही । निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही ॥ ३ ॥

इस प्रकार सुन्दर शय्या सजाकर [माताओंने] श्रीरामचन्द्रजीको उठाया और प्रेमसहित पलंगपर पौढ़ाया।
श्रीरामजीने बार-बार भाइयोंको आशा दी, तब वे भी अपनी-अपनी शय्याओंपर सो गये ॥ ३ ॥

देखि स्याम मृदु मंजुल गाता । कहहिं सप्रेम वचन सब माता ॥

मारग जात भयावनि भारी । केहि बिधि तात ताड़का मारी ॥ ४ ॥

श्रीरामजीके साँवले सुन्दर कोमल शरीरको देखकर सब माताएँ प्रेमसहित वचन कह रही हैं—हे तात !
मार्गमें जाते हुए तुमने बड़ी भयावनी ताड़का राक्षसीको किस प्रकारसे मारा ! ॥ ४ ॥

दो०—घोर निसाचर बिकट भट समर गनहिं नहिं काहु ।

मारे सहित सहाय किमि खल मारीच सुबाहु ॥३५६॥

बड़े भयानक राक्षस, जो विकट योद्धा थे और जो युद्धमें किसीको कुछ नहीं गिनते थे, उन
दुष्ट मारीच और सुबाहुको सहायकोंसहित तुमने कैसे मारा ! ॥ ३५६ ॥

चौ०—मुनिप्रसाद बलि तात तुम्हारी । ईस अनेक करवरें टारी ॥

मख रखवारी करि दुहुँ भाई । गुरुप्रसाद सब बिया पाई ॥ १ ॥

हे तात ! मैं बलैयाँ लेती हूँ, मुनिकी कृपासे ईश्वरने तुम्हारी बहुत-सी बलाओंको टाल दिया।
दोनों भाइयोंने यशकी रखवाली करके गुरुजीके प्रसादसे सब बियाएँ पायीं ॥ १ ॥

मुनितिय तरी लगत पगधूरी । कीरति रही भुवन भरि पूरी ॥

कमठपीठि पवि कूट कठोरा । नृपसमाज महुँ सिवधनु तोरा ॥ २ ॥

चरणोंकी धूलि लमाते ही मुनिपत्नी अहल्या तर गयी। विश्वभरमें यह कीर्ति पूर्णरीतिसे व्याप्त हो गयी। कच्छपकी पीठ, वज्र और पर्वतसे भी कठोर शिवजीके धनुषको राजाओंके समाजमें तुमने तोड़ दिया ॥ २ ॥

बिम्बविजय जसु जानकि पाई। आए भवन न्याहि सब भाई ॥

सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौसिकरूप सुधारे ॥ ३ ॥

विश्वविजयके यश और जानकीजीको पाया, और सब भाइयोंको न्याहकर घर आये। तुम्हारे सभी कर्म अमानुषी हैं (मनुष्यकी शक्तिके बाहर हैं), जिन्हें केवल विश्वामित्रजीकी कृपाने सुधारा है (सम्पन्न किया है) ॥ ३ ॥

आजु सुफल जग जनमु हमारा। देखि तात बिभुबदन तुम्हारा ॥

जे दिन गए तुम्हहि बिनु देखें। ते बिरंचि जनि पारहिं लेखें ॥ ४ ॥

हे तात ! तुम्हारा चन्द्रमुख देखकर आज हमारा जगत्में जन्म लेना सफल हुआ। तुमको बिना देखे जो दिन बीते हैं, उनको ब्रह्मा गिनतीमें न लवें (हमारी आयुमें शामिल न करें) ॥ ४ ॥

दो०—राम प्रतोषीं मातु सब कहि बिनीत बर बैन।

सुमिरि संभु गुर बिप्र पद किए नीदबस नैन ॥ ३५७ ॥

विनयभरे उत्तम वचन कहकर श्रीरामचन्द्रजीने सब माताओंको सन्तुष्ट किया। फिर शिवजी, गुरु और ब्राह्मणोंके चरणोंका स्पर्श कर नेत्रोंको नींदके वश किया (अर्थात् वे सो रहे) ॥ ३५७ ॥

चौ०—नीदउँ बदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना ॥

घर घर करहिं जागरन नारीं। देहिं परसपर मंगल गारीं ॥ १ ॥

नींदमें भी उनका अत्यन्त सलोना मुखड़ा ऐसा सोह रहा था मानो सन्ध्याके समयका लाल कमल सोह रहा हो। स्त्रियाँ घर-घर जागरण कर रही हैं, और आपसमें (एक-दूसरीको) मंगलमयी गालियाँ दे रही हैं ॥ १ ॥

पुरी बिराजति राजति रजनी। रानीं कहहिं बिलोकहु सजनी ॥

सुंदर बहुन्ह सासु लै सोई। फनिक्न्ह जनु सिरमनि उर गोई ॥ २ ॥

रानियाँ कहती हैं—हे सजनी ! देखो, [आज] रात्रिकी कैसी शोभा है, जिससे अयोध्यापुरी विशेष शोभित हो रही है ! सासुएँ सुन्दर बहुओंको लेकर सोयी हैं, मानो सर्पोंने अपने सिरकी मणियोंको हृदयमें छिपा लिया है ॥ २ ॥

प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड़ बर बोलन लागे ॥

बंदि मागधन्हि गुनगन गाए। पुरजन द्वार जोहारन आए ॥ ३ ॥

प्रातःकाल पवित्र ब्राह्ममुहूर्तमें प्रभु जागे। मुँगे सुन्दर बोलने लगे। भाट और मागधोंने गुणोंका गान किया, तथा नगरके लोग द्वारपर जोहार करनेको आये ॥ ३ ॥

बंदि बिप्र सुर गुर पितु माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता ॥

जननिन्ह सावर बदन निहारे। भूपति संग द्वार पगु धारे ॥ ४ ॥

ब्राह्मणों, देवताओं, गुरु, पिता और माताओंकी वन्दना करके आशीर्वाद पाकर सब भाई प्रसन्न हुए। माताओंने आदरके साथ उनके मुखोंको देखा। फिर वे राजाके साथ दरवाजे (बाहर) पधारे ॥ ४ ॥

दो०—कीन्हि सौच सब सहज सुचि सरित पुनीत नहाइ ।

प्रातःक्रिया करि तात पहिं आए चारिउ भाइ ॥३५८॥

स्वभावसे ही पवित्र चारों भाइयोंने सब शौचादिसे निवृत्त होकर पवित्र सरयू नदीमें स्नान किया और प्रातःक्रिया (सन्ध्या-वन्दनादि) करके वे पिताके पास आये ॥ ३५८ ॥

नवाह्नपारायण तीसरा विश्राम

चै०—भूप बिलोकि लिए उर लाई । बैठे हरषि रजायसु पाई ॥

देखि रामु सब सभा जुझानी । लोचन लाभ अवधि अनुमानी ॥ १ ॥

राजाने देखते ही उन्हें हृदयसे लगा लिया । तदनन्तर वे आशा पाकर हर्षित होकर बैठ गये । श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन कर, और नेत्रोंके लाभकी बस यही सीमा है ऐसा अनुमान कर सारी सभा शीतल हो गयी (अर्थात् सबके तीनों प्रकारके ताप सदाके लिये मिट गये) ॥ १ ॥

पुनि बसिष्टु मुनि कौसिकु आए । सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए ॥

सुतन्ह समेत पूजि पद लागे । निरखि रामु दोउ गुर अनुरागे ॥ २ ॥

फिर मुनि वशिष्ठजी और विश्वामित्रजी आये । राजाने उनको सुन्दर आसनोंपर बैठाया, और पुत्रों समेत उनकी पूजा करके उनके चरणों लगे । दोनों गुरु भीरामजीको देखकर प्रेममें मुग्ध हो गये ॥ २ ॥

कहहिं बसिष्टु धरम इतिहासा । सुनहिं महीसु सहित रनिवासा ॥

मुनि मन अगम गाधिसुत करनी । मुदित बसिष्टु बिपुल बिधि बरनी ॥ ३ ॥

वशिष्ठजी धर्मके इतिहास कह रहे हैं और राजा रनिवासहित सुन रहे हैं । जो मुनियोंके मनको भी अगम्य है, ऐसी विश्वामित्रजीकी करनीको वशिष्ठजीने आनन्दित होकर बहुत प्रकारसे वर्णन किया ॥ ३ ॥

बोले वामदेउ सब साँची । कीरति कलित लोक तिहुँ माची ॥

सुनि आनंदु भयउ सब काहू । राम लखन उर अधिक उछाहू ॥ ४ ॥

वामदेवजी बोले—ये सब बातें सत्य हैं, विश्वामित्रजीकी सुन्दर कीर्ति तीनों लोकोंमें छापी हुई है । यह सुनकर सब किसीको आनन्द हुआ । श्रीराम-लक्ष्मणके हृदयमें अधिक उत्साह (आनन्द) हुआ ॥ ४ ॥

दो०—मंगल मोद उछाह नित जाहिं दिवस एहि भाँति ।

उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति ॥३५९॥

नित्य ही मङ्गल, आनन्द और उत्सव होते हैं । इस तरह आनन्दमें दिन बीतते जाते हैं । अयोध्या आनन्दसे भरकर उमड़ पड़ी । आनन्दकी अधिकता अधिक-अधिक बढ़ती ही जा रही है ॥ ३५९ ॥

चौ०—सुदिन सोधि कल कंकन छोरे । मंगल मोद बिनोद न थोरे ॥

नित नव सुख सुर देखि सिहाहीं । अवध जन्म जाचहिं बिधि पाहीं ॥ १ ॥

अच्छा दिन (शुभ मुहूर्त) घोषकर सुन्दर कङ्कण खोले गये । मङ्गल, आनन्द और विनोद कुछ कम नहीं हुए (अर्थात् बहुत हुए) । इस प्रकार नित्य नये सुखको देखकर देवता सिहाते हैं और अयोध्यामें जन्म पानेके लिये ब्रह्माजीसे याचना करते हैं ॥ १ ॥

विश्वामित्र चलन नित चाहहीं । राम सप्रेम बिनय बस रहहीं ॥

दिन दिन सयगुन भूपतिभाऊ । देखि सराह महामुनिराऊ ॥ २ ॥

विश्वामित्रजी नित्य ही चलना (अपने आश्रम जाना) चाहते हैं, पर रामचन्द्रजीके स्नेह और विनयवश रह जाते हैं । दिनों-दिन राजाका सौगुना भाव (प्रेम) देखकर महामुनिराज विश्वामित्रजी उनकी सराहना करते हैं ॥ २ ॥

मागत विदा राउ अनुरागे । सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे ॥

नाथ सकल संपदा तुम्हारी । मैं सेवकु समेत सुत नारी ॥ ३ ॥

अन्तमें जब विश्वामित्रजीने विदा माँगी, तब राजा प्रेममग्न हो गये और पुत्रोंसहित आगे खड़े हो गये । [वे बोले—] हे नाथ ! यह सारी सम्पदा आपकी है; मैं तो स्त्री-पुत्रोंसहित आपका सेवक हूँ ॥ ३ ॥

करब सदा लरिकन्ह पर छोड़ । दरसन देत रहब मुनि मोड़ ॥

अस कहि राउ सहित सुत रानी । परेउ चरन मुख आव न बानी ॥ ४ ॥

हे मुनि ! लड़कोंपर सदा स्नेह करते रहियेगा और मुझे भी दर्शन देते रहियेगा । ऐसा कहकर पुत्रों और रानियोंसहित राजा दशरथजी विश्वामित्रजीके चरणोंपर गिर पड़े । [प्रेमविह्वल हो जानेके कारण] उनके मुँहसे बात नहीं निकलती ॥ ४ ॥

दीन्हि असीस बिप्र बहु भौंनी । चले न प्रीति रीति कहि जाती ॥

रामु सप्रेम संग सब भाई । आयसु पाइ फिरे पहुँचाई ॥ ५ ॥

ब्राह्मण (विश्वामित्रजी) ने बहुत प्रकारसे आशीर्वाद दिये और वे चले । प्रीतिकी रीति कही नहीं जाती । सब भाइयोंको साथ लेकर श्रीरामजी प्रेमके साथ उन्हें पहुँचाकर और आज्ञा पाकर लौटे ॥ ५ ॥

दो०—रामरूप भूपति मगति न्याहु उछाहु अनंदु ।

जात सराहत मनहिं मन मुदित गाधिकुल चंदु ॥ ३६० ॥

गाधिकुलके चन्द्रमा विश्वामित्रजी बड़े हर्षके साथ श्रीरामचन्द्रजीके रूप, राजा दशरथजीकी भक्ति, [चारों भाइयोंके] विवाह और [सबके] उत्साह और आनन्दको मन-ही-मन सराहते जाते हैं ॥ ३६० ॥

चो०—बामदेव रघुकुलगुर ग्यानी । बहुरि गाधिसुत कथा बखानी ॥

सुनि मुनिसुजसु मनहिं मन राऊ । बरनत आपन पुन्यप्रभाऊ ॥ १ ॥

वामदेवजी और रघुकुलके गुरु ज्ञानी वशिष्ठजीने फिर विश्वामित्रजीकी कथा बखानकर कही । मुनिका सुन्दर यश सुनकर राजा मन-ही-मन अपने पुण्योंके प्रभावका बखान करने लगे ॥ १ ॥

बहुरे लोग रजायसु भयऊ । सुतन्ह समेत नृपति गृहँ गयऊ ॥

जहँ तहँ रामब्याहू सबु गावा । सुजसु पुनीत लोक तिहँ छावा ॥ २ ॥

आज्ञा हुई तब सब लोग [अपने-अपने घरोंको] लौटे, राजा दशरथजी भी पुत्रोंसहित महलमें गये । जहाँ-तहाँ सब श्रीरामचन्द्रजीके विवाहकी गाथाएँ गा रहे हैं । श्रीरामचन्द्रजीका पवित्र सुयश तीनों लोकोंमें छा गया ॥ २ ॥

आए ब्याहि रामु घर जब तैं । बसइ अनंद अवध सब तब तैं ॥

प्रभुबिबाहँ जस भयउ उछाहू । सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू ॥ ३ ॥

जबसे श्रीरामचन्द्रजी विवाह करके घर आये, तबसे सब प्रकारका आनन्द अयोध्यामें आकर बसने लगा । प्रभुके विवाहमें जैसा आनन्द-उत्साह हुआ, उसे सरस्वती और शेषजी भी नहीं कह सकते ॥ ३ ॥

कबिकुल जीवतु पावन जानी । राम सीय जसु मंगलखानी ॥

तेहि ते मैं कछु कहा बखानी । करन पुनीत हेतु निज बानी ॥ ४ ॥

श्रीसीतारामजीके यशको कविकुलके जीवनको पवित्र करनेवाला और मङ्गलोंकी खान जानकर, इससे मैंने अपनी वाणीको पवित्र करनेके लिये कुछ (थोड़ा-सा) बखानकर कहा है ॥ ४ ॥

छं०—निज गिरा पावनि करन कारन रामजसु तुलसीं कह्यो ।

रघुबीरचरित अपार बारिधि पारु कबि कौनै लख्यो ॥

उपवीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं ।

बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्वदा सुखु पावहीं ॥

अपनी वाणीको पवित्र करनेके लिये तुलसीने रामका यश कहा है । [नहीं तो] श्रीरघुनाथजीका चरित्र अपार समुद्र है, किस कविने उसका पार पाया है ! जो लोग यशोपवीत और विवाहके मङ्गलमय उत्सवका वर्णन आदरके साथ सुनकर गावेंगे वे लोग श्रीजानकीजी और श्रीरामजीकी कृपासे सदा सुख पावेंगे ।

सो०—सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनिहिं ।

तिन्ह कहूँ सदा उछाहु मंगलायतन रामजसु ॥ ३६१ ॥

श्रीसीताजी और श्रीरघुनाथजीके विवाह-प्रसंगको जो लोग प्रेमपूर्वक गाते-सुनते हैं, उनके लिये सदा उत्साह (आनन्द) ही है; क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीका यश मङ्गलका धाम है ॥ ३६१ ॥

मासपारायण बारहवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने प्रथमः सोपानः समाप्तः ।

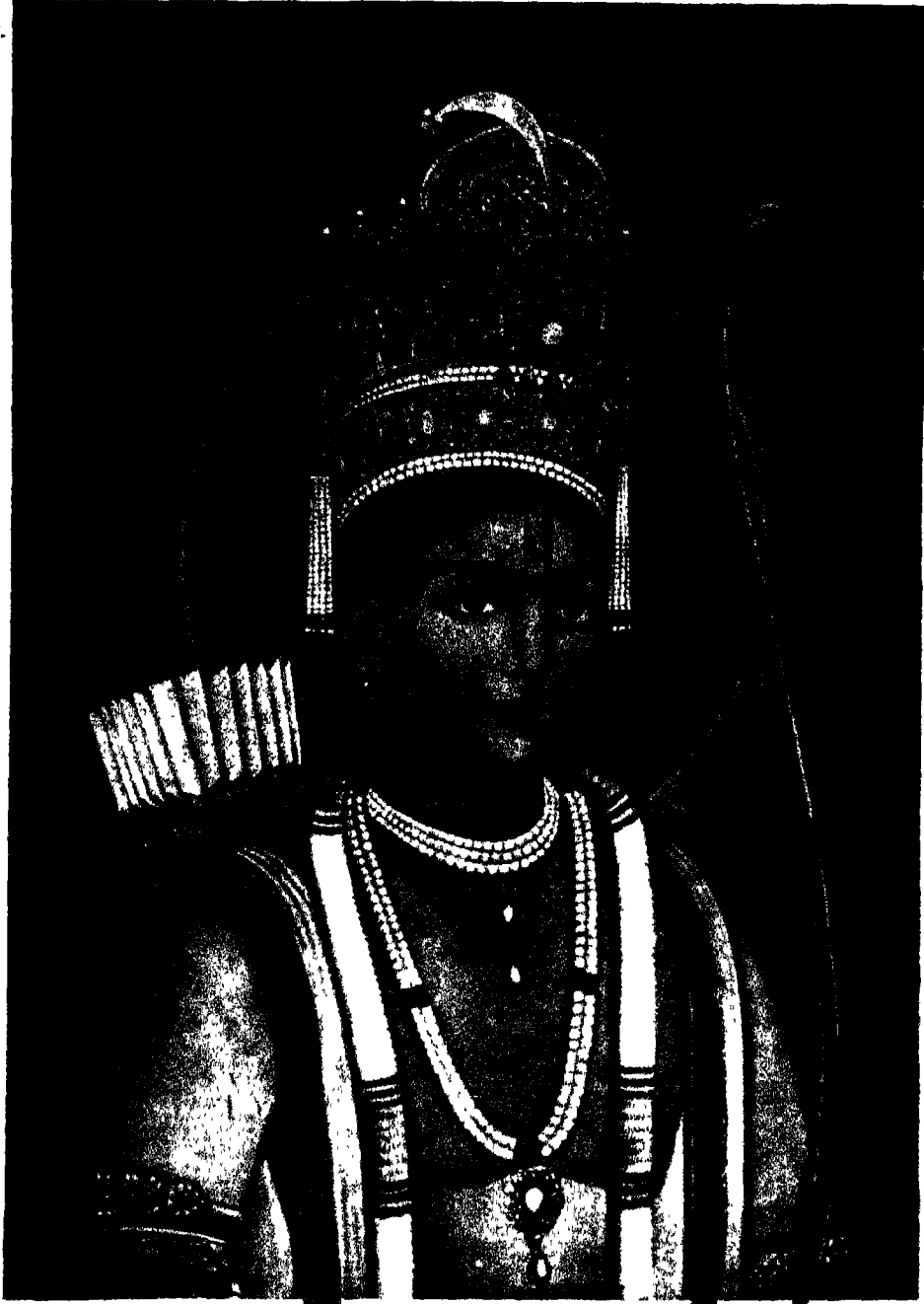
कलियुगके सम्पूर्ण पापोंको विध्वंस करनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह पहला सोपान समाप्त हुआ ॥

(बालकाण्ड समाप्त)



कल्याण

श्रीभगवतजी



प्रनवउ प्रथम भगवत के चरना । जासु नेम व्रत जाइ न बरना ॥
राम चरन पंकज मन जासु । लुबुध मधुप इव तजइ न पासु ॥

[पृष्ठ ३२३]

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

द्वितीय सोपान

(अयोध्याकाण्ड)

श्लोक

यस्याङ्गे च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशङ्करः पातु माम् ॥ १ ॥

जिनकी गोदमें हिमाचलसुता पार्वतीजी, मस्तकपर गङ्गाजी, ललाटपर द्वितीयाका चन्द्रमा, कण्ठमें हलाहल विष और वक्षःस्थलपर सर्पराज शेषजी सुशोभित हैं, वे भस्मसे विभूषित, देवताओंमें श्रेष्ठ, सर्वेश्वर, संहारकर्ता [या भक्तोंके पापनाशक], सर्वव्यापक, कल्याणरूप, चन्द्रमाके समान शुभ्रवर्ण श्रीशङ्करजी सदा मेरी रक्षा करें ॥१॥

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।

मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा ॥ २ ॥

रघुकुलको आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके मुखारविन्दकी जो शोभा राज्याभिषेक [के निश्चय] से न ता प्रसन्नताको प्राप्त हुई और न वनवासके दुःखसे मलिन ही हुई, वह (मुखकमलकी छवि) मेरे लिये सदा सुन्दर मङ्गलौकी देनेवाली हो ॥ २ ॥

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् ।

पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥ ३ ॥

नीले कमलके समान श्याम और कोमल जिनके अंग हैं, श्रीसीताजी जिनके वाम भागमें विराजमान हैं और जिनके हाथोंमें [कमशः] अमोघ बाण और सुन्दर धनुष है, उन रघुवंशके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

दो०—श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि ।

बरनउँ रघुबर विमल जसु जो दायकु फल चारि ॥

श्रीगुरुजीके चरणकमलोंकी रजसे अपने मनरूपी दर्पणको साफ करके मैं श्रीरघुनाथजीके उस निर्मल यशका वर्णन करता हूँ जो चारों फलों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का देनेवाला है ।

चौ०—जब तैं रामु ध्याहि घर आए । नित नव मंगल मोद बघाए ॥

भुवन चारिदस भूधर भारी । सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी ॥ १ ॥

जबसे भीरामचन्द्रजी विवाह करके घर आये, तबसे [अयोध्यामें] नित्य नये मङ्गल हो रहे हैं और आनन्दके बघावे बज रहे हैं । चौदहों लोकरूपी बड़े भारी पर्वतोंपर पुण्यरूपी मेघ सुखरूपी जल बरसा रहे हैं ॥ १ ॥

रिधि सिधि संपति नदीं सुहाई । उमगि अवध अंबुधि कहुं आई ॥

मनिगन पुर नर नारि सुजाती । सुचि अमोल सुंदर सब भौंती ॥ २ ॥

ऋद्धि-सिद्धि और सम्पत्तिरूपी सुहावनी नदियाँ उमड़-उमड़कर अयोध्यारूपी समुद्रमें आ मिलीं । नगरके स्त्री-पुरुष अच्छी जातिके मणियोंके समूह हैं, जो सब प्रकारसे पवित्र, अमूल्य और सुन्दर हैं ॥ २ ॥

कहि न जाइ कछु नगर बिभूती । जनु एतनिअ बिरंचि करतूती ॥

सब बिधि सब पुर लोग सुखारी । रामचंद मुखचंदु निहारी ॥ ३ ॥

नगरका ऐश्वर्य कुछ कहा नहीं जाता । ऐसा जान पड़ता है मानो ब्रह्माजीकी कारीगरी बस, इतनी ही है । सब नगरनिवासी भीरामचन्द्रजीके मुखचन्द्रको देखकर सब प्रकारसे सुखी हैं ॥ ३ ॥

मुदित मातु सब सखीं सहेली । फलित बिलोकि मनोरथ बेली ॥

राम रूपु गुन सीलु सुभाऊ । प्रमुदित होइ देखि सुनि राज ॥ ४ ॥

सब माताएँ और सखी-सहेलियाँ अपनी मनोरथरूपी बेलको फली हुई देखकर आनन्दित हैं । भीरामचन्द्रजीके रूप, गुण, शील और स्वभावको देख-सुनकर राजा दशरथजी बहुत ही आनन्दित होते हैं ॥ ४ ॥

दो०—सब कैं उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु ।

आप अछत जुवराज पद रामहि देउ नरेसु ॥ १ ॥

सबके हृदयमें ऐसी अभिलाषा है और सब महादेवजीको मनाकर (प्रार्थना करके) कहते हैं कि राजा अपने जीते-जी श्रीरामचन्द्रजीको युवराज-पद दे दें ॥ १ ॥

चौ०—एक समय सब सहित समाजा । राजसभाँ रघुराजु बिराजा ॥

सकल सुकृत मूरति नरनाइ । राम सुजसु सुनि अतिहि उछाह ॥ १ ॥

एक समय रघुकुलके राजा दशरथजी अपने सारे समाजसहित राजसभामें विराजमान थे । महाराज समस्त पुण्योंकी मूर्ति हैं, उन्हें श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर यश सुनकर अत्यन्त आनन्द हो रहा है ॥ १ ॥

नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे । लोकप करहिं प्रीति रख राखे ॥

तिभुवन तीनि काल जग माहीं । भूरिभाग दसरथ सम नाहीं ॥ २ ॥

सब राजा उनकी कृपा चाहते रहते हैं और लोकपालगण उनके रखको रखते हुए (अनुकूल होकर) प्रीति करते हैं । [पृथ्वी, आकाश, पानाट] तीनों भुवनोंमें और [भूत, भविष्य, वर्तमान] तीनों कालोंमें दशरथजीके समान बड़भागी [और] कोई नहीं है ॥ २ ॥

मंगलमूल रामु सुत जासू । जो कछु कहिअ थोर सब तासू ॥

रायें सुभायें मुकुट कर लीन्हा । बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा ॥ ३ ॥

मङ्गलके मूल श्रीरामचन्द्रजी जिनके पुत्र हैं, उनके लिये जो कुछ कहा जाय सब थोड़ा है । राजाने स्वभाविक ही हाथमें दर्पण ले लिया और उसमें अपना मुँह देखकर मुकुटको सीधा किया ॥ ३ ॥

धवन समीप भए सित केसा । मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ॥

नृप जुबराजु राम कहूँ देह । जीवन जनम लाहु किन लेह ॥ ४ ॥

[देखा कि] कानोंके पास बाल सफेद हो गये थे; मानो बुढ़ापा ऐसा उपदेश कर रहा है कि हे राजन् ! श्रीरामचन्द्रजीको युवराज-पद देकर अपने जीवन और जन्मका लाभ क्यों नहीं लेते ॥ ४ ॥

दो०—यह बिचारु उर आनि नृप सुदिनु सुजवसरु पाइ ।

प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनायउ जाइ ॥ २ ॥

हृदयमें यह विचार लेकर (युवराज-पद देनेका निश्चयकर) राजा दशरथजीने शुभ दिन और सुन्दर समय पाकर, प्रेमसे पुलकितशरीर हो आनन्दमग्न मनसे उसे गुरु वशिष्ठजीको जा सुनाया ॥ २ ॥

चौ०—कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक । भए राम सब बिधि सब लायक ॥

सेवक सचिव सकल पुरबासी । जे हमारे अरि मित्र उदासी ॥ १ ॥

राजाने कहा—हे मुनिराज ! [कृपया यह निवेदन] सुनिये । श्रीरामचन्द्र अब सब प्रकारसे सब योग्य हो गये हैं । सेवक, मन्त्री, सब नगरनिवासी और जो हमारे शत्रु, मित्र या उदासीन हैं—॥ १ ॥

सबहि रामु प्रिय जेहि बिधि मोही । प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही ॥

बिप्र सहित परिवार गोसाईं । करहिं छोडु सब रौरिहि नाई ॥ २ ॥

सभीको श्रीरामचन्द्र वैसे ही प्रिय हैं जैसे वे मुझको हैं । [उनके रूपमें] आपका आशीर्वाद ही मानो शरीर धारण करके शोभित हो रहा है । हे स्वामी ! सारे ब्राह्मण, परिवारसहित, आपके ही समान उनपर स्नेह करते हैं ॥ २ ॥

जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं । ते जनु सकल बिभव बस करहीं ॥

मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें । सब पायउँ रज पावनि पूजें ॥ ३ ॥

जो लोग गुरुके चरणोंकी रजको मस्तकपर धारण करते हैं, वे मानो समस्त ऐश्वर्यको अपने वशमें कर लेते हैं । इसका अनुभव मेरे समान दूसरे किसीने नहीं किया । आपके पवित्र चरण-रजकी पूजा करके मैंने सब कुछ पा लिया ॥ ३ ॥

अब अभिलाषु एकु मन मोरें । पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें ॥

मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेह । कहेउ नरेस रजायसु देह ॥ ४ ॥

अब मेरे मनमें एक अभिलाषा और है । हे नाथ ! वह भी आपके अनुग्रहसे पूरी होगी । राजाका सहज प्रेम देखकर मुनिने प्रसन्न होकर कहा—नरेश ! आशा दीजिये (कहिये, क्या अभिलाषा है ?) ॥ ४ ॥

दो०—राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार ।

फल अनुगामी महिपमनि मन अभिलाषु तुम्हार ॥ ३ ॥

हे राजन् ! आपका नाम और यश ही सम्पूर्ण मनचाही वस्तुओंको देनेवाला है । हे राजाओंके मुकुटमणि ! आपके मनकी अभिलाषा फलका अनुगमन करती है (अर्थात् आपके इच्छा करनेके पहले ही फल उत्पन्न हो जाता है) ॥ ३ ॥

चौ०—सब बिधि गुरु प्रसन्न जियँ जानी । बोलेउ राउ रहँसि मृदुबानी ॥

नाथ रामु करिअहिं जुबराजु । कहिअ कृपा करि करिअ समाजु ॥ १ ॥

अपने जोमें गुहजीको सब प्रकारसे प्रसन्न जानकर, हर्षित होकर राजा कोमल वागीसे बोले—
हे नाथ ! श्रीरामचन्द्रको युवराज कीजिये । कृपा करके कहिये (आशा दीजिये) तो तैयारी की जाय ॥ १ ॥

मोहि अच्छत यहु होइ उछाहू । लहहिं लोग सब लोचनलाहू ॥

प्रभुप्रसाद सिव सबइ निबाहीं । यह लालसा एक मन माहीं ॥ २ ॥

मेरे जीते-जी यह आनन्द-उत्सव हो जाय, [जिससे] सब लोग अपने नेत्रोंका लाभ प्राप्त करें ।
प्रभुके (आपके) प्रसादसे शिवजीने सब कुछ निबाह दिया (सब इच्छाएँ पूर्ण कर दीं), केवल यही एक
लालसा मनमें रह गयी है ॥ २ ॥

पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ । जेहिं न होइ पाछें पछिताऊ ॥

सुनि मुनि दसरथवचन सुहाए । मंगल मोद मूल मन भाए ॥ ३ ॥

[इस लालसाके पूर्ण हो जानेपर] फिर सोच नहीं, शरीर रहे या चला जाय, जिससे मुझे पीछे
पछतावा न हो । दशरथजीके मङ्गल और आनन्दके मूल सुन्दर वचन सुनकर मुनि मनमें बहुत प्रसन्न
हुए ॥ ३ ॥

सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं । जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं ॥

भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी । रामु पुनीत प्रेम अनुगामी ॥ ४ ॥

[वशिष्ठजीने कहा—] हे राजन् ! सुनिये, जिनसे विमुक्त होकर लोग पछताते हैं और जिनके भजन
विना बीकी जलन नहीं जाती, वही स्वामी (सर्वलोकमहेश्वर) श्रीरामजी आपके पुत्र हुए हैं, जो
पवित्र प्रेमके अनुगामी हैं । [श्रीरामजी पवित्र प्रेमके पीछे-पीछे चलनेवाले हैं, इसीसे तो प्रेमवश आपके
पुत्र हुए हैं] ॥ ४ ॥

दो०—बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु ।

सुदिनु सुमंगल तबहिं जव रामु होहिं जुबराजु ॥ ४ ॥

हे राजन् ! अब देर न कीजिये; शीघ्र सब सामान सजाइये । शुभ दिन और सुन्दर मङ्गल तभी है जब
श्रीरामचन्द्रजी युवराज हो जायें (अर्थात् उनके अभिषेकके लिये सभी दिन शुभ और
मङ्गलमय हैं) ॥ ४ ॥

चो०—मुदित महीपति मंदिर आए । सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए ॥

कहि जयजीव सीस तिन्ह नाए । भूप सुमंगल वचन सुनाए ॥ १ ॥

राजा आनन्दित होकर महलमें आये और उन्होंने सेवकोंको तथा मन्त्री सुमन्त्रको बुलवाया ।
उन लोगोंने 'जय-जीव' कहकर सिर नवाये । तब राजाने सुन्दर मङ्गलमय वचन (श्रीरामजीको युवराजपद
देनेका प्रस्ताव) सुनाये ॥ १ ॥

जौ पाँचहि मत लागे नीका । करहु हरषि हियँ रामहि टीका ॥ २ ॥

[और कहा—] यदि पंचोंको (आप सबको) यह मत अच्छा लगे, तो हृदयमें हर्षित होकर आप-
लोग श्रीरामचन्द्रका राजतिलक कीजिये ॥ २ ॥

मन्त्री मुदित सुनन प्रिय बानी । अभिमत विरवँ परेउ जनु पानी ॥

बिनती सचिव करहिं कर जोरी । जिअहु जगतपति बरिस करोरी ॥ ३ ॥

इस प्रियवाणीको सुनते ही मन्त्री ऐसे आनन्दित हुए मानो उनके मनोत्परी पौधेपर पानी पड़ गया हो। मन्त्री हाथ जोड़कर विनती करते हैं कि हे जगत्पति ! आप करोड़ों वर्ष जियें ॥ ३ ॥

जगमंगल भल काजु बिचारा । बेगिभ नाथ न लाइअ बारा ॥
नृपहि मोदु सुनि सचिव सुभाषा । बढ़त बौड़ जुनु लही सुसाखा ॥ ४ ॥

आपने जगत्भरका मङ्गल करनेवाला भल काम सोचा है । हे नाथ ! शीघ्रता कीजिये, देर न लगाइये । मन्त्रियोंकी सुन्दर वाणी सुनकर राजाको ऐसा आनन्द हुआ मानो बढ़ती हुई बेल सुन्दर डालीका सहारा पा गयी हो ॥ ४ ॥

दो०—कहेउ भूप मुनिराज कर जोड़ जोड़ आयसु होइ ।

राम राज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ ॥ ५ ॥

राजाने कहा—श्रीरामचन्द्रके राज्याभिषेकके लिये मुनिराज वशिष्ठजीकी जो-जो आज्ञा हो, आपलोग वही सब तुरंत करें ॥ ५ ॥

चौ०—हरपि मुनीस कहेउ मृदुबानी । आनहु सकल सुतीरथ पानी ॥

औषध मूल फूल फल पाना । कहे नाम गनि मंगल नाना ॥ १ ॥

मुनिराजने हर्षित होकर कोमल वाणीसे कहा कि संपूर्ण श्रेष्ठ तीर्थोंका जल ले आओ । फिर उन्होंने औषधि, मूल, फूल, फल और पत्र आदि अनेकों माङ्गलिक वस्तुओंके नाम गिनकर बताये ॥ १ ॥

चामर चरम बसन बहु भाँती । रोम पाट पट अगनित आती ॥

मनिगन मंगल वस्तु अनेका । जो जग जोगु भूप अभिषेका ॥ २ ॥

चँवर, मृगचर्म, बहुत प्रकारके वस्त्र, असंख्यौ जातियोंके ऊनी और रेशमी कपड़े, [नाना प्रकारकी] मणियाँ (रत्न) तथा और भी बहुत सी मङ्गल-वस्तुएँ, जो जगत्में राज्याभिषेकके योग्य होती हैं, [सबको मँगानेकी उन्होंने आज्ञा दी] ॥ २ ॥

बेदबिदित कहि सकल बिधाना । कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना ॥

सफल रसाल पूगफल केरा । रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा ॥ ३ ॥

मुनिने वेदोंमें कहा हुआ सब विधान बताकर कहा—नगरमें बहुत-से मण्डप (चँदोवे) सजाओ । फलोंसमेत आम, सुपारी और केलेके वृक्ष नगरकी गलियोंमें चारों ओर रोप दो ॥ ३ ॥

रचहु मंजु मनि चौकें चारू । कहहु बनावन बेगि बजारू ॥

पूजहु गनपति गुर कुलदेवा । सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा ॥ ४ ॥

सुन्दर मणियोंके मनोहर चौक पुरवाओ और बाजारको तुरंत सजानेके लिये कह दो । श्रीगणेशजी, गुरु और कुलदेवताकी पूजा करो और भूदेव ब्राह्मणोंकी सब प्रकारसे सेवा करो ॥ ४ ॥

दो०—ध्वज पताक तोरन कलस सजहु तुरग रथ नाग ।

सिर धरि मुनिबर वचन सबु निज निज काजहिं लाग ॥ ६ ॥

ध्वजा, पताका, तोरण, कलश, घोड़े, रथ और हाथी सबको सजाओ । मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजीके वचनोंको शिरोधार्य करके सब लोग अपने-अपने काममें लग गये ॥ ६ ॥

चौ०—जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा । सो तेहिं काजु प्रथम जनु कीन्हा ॥

बिम साधु सुर पूजत राजा । करत राम हित मंगल काजा ॥ १ ॥

मुनीश्वरने जिसको जिस कामके लिये आशा दी, उसने वह काम [इतनी शीघ्रतासे कर डाला कि] मानो पहलेसे ही कर रक्खा था । राजा ब्राह्मण, साधु और देवताओंको पूज रहे हैं और श्रीरामचन्द्रजीके लिये सब मङ्गलकार्य कर रहे हैं ॥ १ ॥

सुनत राम अभिषेक सुहावा । बाज गहागह अवध बधावा ॥

राम सीय तन सगुन जनाए । फरकहिं मंगल अंग सुहाए ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेककी सुहावनी खबर सुनते ही अवधभरमें बड़ी धूमसे बधावे बजने लगे । श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीके शरीरमें भी शुभ शकुन सूचित हुए । उनके सुन्दर मङ्गल अंग फट्कने लगे ॥ २ ॥

पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं । भरत आगमनु सूचक अहहीं ॥

भए बहुत दिन अति अवसेरी । सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी ॥ ३ ॥

पुलकित होकर वे दोनों प्रेमसहित एक-दूसरेसे कहते हैं कि ये सब शकुन भरतके आनेकी सूचना देनेवाले हैं । [उनको मामाके घर गये] बहुत दिन हो गये; बहुत ही अवसर आ रही है (बार-बार उनसे मिलनेकी मनमें आती है) । शकुनोंसे प्रिय (भरत) के मिलनेका विश्वास होता है ॥ ३ ॥

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं । इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं ॥

रामहि बंधु सोच दिन राती । अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती ॥ ४ ॥

भरतके समान जगत्में [हमें] कौन प्यारा है ! शकुनका बस, यही फल है; दूसरा नहीं । श्रीरामचन्द्रजीको [अपने] भाई भरतका दिन-रात ऐसा सोच रहता है जैसा कछुएके हृदयमें अंडोंका ॥ ४ ॥

दो०—एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहँसउ रनिवासु ।

सोभत लखि बिधु बढत जनु वारिधि बीचि बिलासु ॥ ७ ॥

इसी समय यह परम मङ्गल समाचार सुनकर सारा रनिवास हर्षित हो उठा, जैसे चन्द्रमाको बढ़ते देखकर समुद्रमें लहरोंका विलास (आनन्द) सुशोभित होता है ॥ ७ ॥

चौ०—प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए । भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए ॥

प्रेम पुलकि तन मन अनुरागी । मंगल कलस सजन सब लागी ॥ १ ॥

सबसे पहले [रनिवासमें] जाकर जिन्होंने ये वचन (समाचार) सुनाये, उन्होंने बहुत-से आभूषण और वस्त्र पाये । रानियोंका शरीर प्रेमसे पुलकित हो उठा, और मन प्रेममें मग्न हो गया; वे सब मङ्गल-कलश सजाने लगीं ॥ १ ॥

चौकें चारु सुमित्राँ पूरी । मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी ॥

आनंद मगन राम महतारी । दिए दान बहु बिम हँकारी ॥ २ ॥

सुमित्राजीने मणियाँ (रत्नों) के बहुत प्रकारके अत्यन्त सुन्दर और मनोहर चौक पूरे । आनन्दमें मग्न हुई श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौसल्याजीने ब्राह्मणोंको बुलवाकर बहुत दान दिये ॥ २ ॥

पूजाँ ग्रामदेवि सुर नागा । कहेउ बहोरि देन बलिमागा ॥

जेहि बिधि होइ राम कल्याण । देहु दया करि सो बरवान ॥ ३ ॥

उन्होंने ग्रामदेवियों, देवताओं और नागोंकी पूजा की और फिर बलि भेंट देनेको कहा (अर्थात् कार्य सिद्ध होनेपर फिर पूजा करनेकी मनौती मानी); और प्रार्थना की कि जिस प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजीका कल्याण हो, दया करके वही वरदान दीजिये ॥ ३ ॥

गावहिं मंगल कोकिल बयनीं । विधु बदर्नीं मृग सावक नयनीं ॥ ४ ॥

कोयलकी-सी मीठी बाणीवाली, चन्द्रमाके समान मुखवाली और हिरनके बच्चेके-से नेत्रोंवाली स्त्रियाँ मङ्गलगान करने लगीं ॥ ४ ॥

दो०—राम राज अभिषेकु सुनि हियँ हरषे नर नारि ।

लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल विचारि ॥ ८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक सुनकर सभी स्त्री-पुरुष हृदयमें हर्षित हो उठे और विधाताको अपने अनुकूल समझकर सब सुन्दर मङ्गल-साज सजाने लगे ॥ ८ ॥

चौ०—तब नरनाहँ बसिष्ठ बोलाए । रामधाम सिख देन पठाए ॥

गुर आगमनु सुनत रघुनाथा । द्वार आई पद नायउ माथा ॥ १ ॥

तब राजाने वशिष्ठजीको बुलाया और शिक्षा (समयोचित उपदेश) देनेके लिये श्रीरामचन्द्रजीके महलमें भेजा । गुरुका आगमन सुनते ही श्रीरघुनाथजीने दरवाजेपर आकर उनके चरणोंमें मस्तक नवाया ॥ १ ॥

सादर अरघ देइ घर आने । सोरह भाँति पूजि सनमाने ॥

गहे चरन सिय सहित बहोरी । बोले रामु कमल कर जोरी ॥ २ ॥

आदरपूर्वक अर्घ्य देकर उन्हें घरमें लिये, और षोडशोपचारसे पूजा करके उनका सम्मान किया । फिर सीताजीसहित उनके चरण स्पर्श किये और कमलके समान दोनों हाथोंको जोड़कर श्रीरामजी बोले—॥ २ ॥

सेवक सदन स्वामि आगमनू । मंगलमूल अमंगल दमनू ॥

तदपि उचित जनु बोलि सप्रतीती । पठइअ काज नाथ असि नीती ॥ ३ ॥

यद्यपि सेवकके घर स्वामीका पधारना मङ्गलका मूल और अमङ्गलोंका नाश करनेवाला ही होता है, तथापि हे नाथ ! उचित तो यही था कि प्रेमपूर्वक दासको ही कार्यकेलिये बुला भेजत; ऐसी ही नीति है ॥ ३ ॥

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेह । भयउ पुनीत आजु यहु गेह ॥

आयसु होइ सो करौं गोसाईं । सेवकु लहइ स्वामि सेवकाई ॥ ४ ॥

परन्तु प्रभु (आप) ने प्रभुता छोड़कर (स्वयं यहाँ पधारकर) जो स्नेह किया, इससे आज यह घर पवित्र हो गया । हे गुसाईं ! जो आशा हो, मैं वही करूँ । स्वामीकी सेवामें ही सेवकका लभ है ॥ ४ ॥

दो०—सुनि सनेहँ साने बचन मुनि रघुबरहि प्रसंस ।

राम कस न तुम्ह कहहु अस हंस बंस अवतंस ॥ ९ ॥

[श्रीरामचन्द्रजीके] प्रेममें सने हुए वचनोंको सुनकर मुनि वशिष्ठजीने श्रीरघुनाथजीकी प्रशंसा करते हुए कहा कि हे राम ! भला, आप ऐसा क्यों न कहें । आप सूर्यवंशके भूषण जो हैं ॥ ९ ॥

चौ०—बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ । बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ ॥

भूप सजेउ अभिषेक समाजु । बाहृत देन तुम्हहि जुबराजु ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके गुण, शील और स्वभावका बखान कर, मुनिराज प्रेमसे पुलकित होकर बोले—[हे रामचन्द्रजी !] राजा (दशरथजी) ने राज्याभिषेकका सामान सजाया है, वे आपको सुवराज-पद देना चाहते हैं ॥ १ ॥

राम करहु सब संजम आजू । जौ विधि कुसल निबाहै काजू ॥
गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ । राम हृदय अस बिसमउ भयऊ ॥ २ ॥

[इसलिये] हे रामजी ! आज आप [उपवास, हवन आदि विधिपूर्वक] सब संयम कीजिये, जिससे विधाता कुशलपूर्वक इस कामको निबाह दे (सफल कर दें) । गुरुजी शिक्षा देकर राजा दशरथजीके पास चले गये । श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमे [यह सुनकर] इस बातका खेद हुआ कि—॥ २ ॥

जनमे एक संग सब भाई । भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
करनबेध उपवीत बिआहा । संग संग सब भए उछाहा ॥ ३ ॥

हम सब भाई एक ही साथ जन्मे; खाना, सोना, लड़कपनके खेल-कूद, कनछेदन, यशोपवीत और विवाह आदि उत्सव सब साथ-साथ ही हुए ॥ ३ ॥

बिमल बंस यह अनुचित एकू । बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू ॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई । हरउ भगत मन कै कुटिलाई ॥ ४ ॥

पर इस निर्मल वंशमे यही एक अनुचित बात हो रहा है कि और सब भाइयोंको छोड़कर राज्याभिषेक एक बड़ेका ही (मेरा ही) होता है । [तुलसीदासजी कहते हैं कि] प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका यह सुन्दर प्रेमपूर्ण पछतावा भक्तोंके मनकी कुटिलताको हरण करे ॥ ४ ॥

दो०—तेहि अवसर आए लखन मगन प्रेम आनंद ।
सनमाने प्रिय वचन कहि रघुकुल कैव चंद ॥ १० ॥

उसी समय प्रेम और आनन्दमें मग्न लक्ष्मणजी आये । रघुकुलरूपी कुमुदके त्रिलोचनेवाले चन्द्रमा श्रीरामचन्द्रजीने प्रिय वचन कहकर उनका सम्मान किया ॥ १० ॥

चो०—बाजहिं बाजंन बिबिध विधाना । पुर प्रमोदु नहिं जाइ बखाना ॥
भरत आगमनु सकल मनावहिं । आवहुं बेगि नयनकलु पावहिं ॥ १ ॥

बहुत प्रकारके बाजे बज रहे हैं; नगरके अतिशय आनन्दका वर्णन नहीं हो सकता । सब लोग भरतजीका आगमन मना रहे हैं, और कह रहे हैं कि ये भी गीघ आवें और [राज्याभिषेकका उत्सव देखकर] नेत्रोंका फल प्राप्त करें ॥ १ ॥

हाट बाट घर गलीं अथाई । कहहिं परसपर लोग लोगाई ॥
कालि लगन भलि केतिक बारा । पूजिहि विधि अभिलापु हमारा ॥ २ ॥

बाजार, गस्ते, घर, गली और चबूतगोरा [जहाँ तहाँ] पुरुष और स्त्री आपसमें यही कहने हैं कि कल वह शुभ लग्न (मुहूर्त्त) कितने समय है जब विधाता हमारा अभिलाषा पूरी करेंगे, ॥ २ ॥

कनक सिंघासन सीय समेना । बैठहिं रामु हाँइ चित चेंता ॥
सकल कहहिं कब होइहि काली । विधन मनावहिं देव कुचाली ॥ ३ ॥

जब सीताजीसाहित श्रीरामचन्द्रजी सुवर्णके सिंहासनपर विराजेंगे और हमारा मनचीता होगा (मनःकामना पूरी होगी) । इधर तो सब यह कह रहे हैं कि कब कब होगा, उधर कुचको देवता विघ्न मना रहे हैं ॥ ३ ॥

तिन्हहि सोहाइ न अवघ बधावा । चोरहि चंदिनि राति न भावा ॥

सारद बोलि विनय सुर करहीं । बारहिं बार पाय लै परहीं ॥ ४ ॥

उन देवताओंको अवघके बधावे नहीं सुहाते, जैसे चोरको चाँदनी रात नहीं भाती । सरस्वतीजीको बुलाकर देवता विनय कर रहे हैं और बार-बार उनके पैरोंको पकड़कर उनपर गिरते हैं ॥ ४ ॥

दो०—बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु ।

रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु ॥ ११ ॥

[वे कहते हैं—] हे माता ! हमारी बड़ी विपत्तिको देखकर आज वही कीजिये जिससे श्रीरामचन्द्रजी राज्य त्यागकर वनको चले जायँ और देवताओंका सब कार्य सिद्ध हो ॥ ११ ॥

चौ०—सुनि सुरविनय ठाढ़ि पछिताती । भइँ सरोज बिपिन हिमराती ॥

देखि देव पुनि कहहिं निहोरी । मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी ॥ १ ॥

देवताओंकी विनती सुनकर सरस्वतीजी खड़ी-खड़ी पछता रही हैं कि हाय मैं कमलवनके लिये हेमंत ऋतुकी रात हुई । उन्हें इस प्रकार पछताते देखकर देवता फिर विनय करके कहने लगे—हे माता ! इसमें आपको जरा भी दोष न लगेगा ॥ १ ॥

बिसमय हरष रहित रघुराऊ । तुम्ह जानहु सब रामप्रभाऊ ॥

जीव करम बस सुख दुख भागी । जाइअ अवघ देवहित लागी ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजी विषाद और हर्षसे रहित हैं, आप तो श्रीरामजीके सब प्रभावको जानती ही हैं । जीव अपने कर्मवश ही सुख-दुःखका भागी होता है । अतएव देवताओंके हितके लिये आप अयोध्या जाइये ॥ २ ॥

बार बार गहि चरन संकोची । चली बिचारि बिबुधमति पोची ॥

ऊँच निवासु नीचि करतूनी । देखि न सकहिं पराइ बिभूती ॥ ३ ॥

बार-बार चरण पकड़कर देवताओंने सरस्वतीजीको संकोचमें डाल दिया । तब वह यह विचारकर चली कि देवताओंकी बुद्धि ओछी है । इनका निवास तो ऊँचा है, पर इनकी करनी नीची है । ये दूसरेका ऐश्वर्य नहीं देख सकते ॥ ३ ॥

आगिल काजु बिचारि बहोरी । करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी ॥

हरषि हृदयँ दसरथपुर आई । जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई ॥ ४ ॥

परन्तु आगेके कामका विचार करके (श्रीरामजीके वन जानेसे राक्षसोंका वध होगा, जिससे सारा जगत् सुखी हो जायगा) चतुर कवि [श्रीरामजीके वनवासके चरित्रोंका वर्णन करनेके लिये] मेरी चाह (कामना) करेंगे । ऐसा विचारकर सरस्वती हृदयमें हर्षित होकर दशरथजीकी पुरी अयोध्यामें आया, मानो दुःसह दुःख देनेवाली कोई ग्रहदशा आयी हो ॥ ४ ॥

दो०—नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकई केरि ।

अजस पेढारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि ॥ १२ ॥

मन्थरा नामकी कैकेयीकी एक मन्दबुद्धि दासी थी, उसे अपयशकी पिढारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धिको फेरकर चली गयी ॥ १२ ॥

चौ०—दीक्ष मंथरा नगरु बनावा । मंजुल मंगल याज बधावा ॥

पूछेसि लोगन्ह काह उछाह । रामतिलकु सुनि भा उर दाह ॥ १ ॥

मन्यराने देखा कि नगर सजाया हुआ है, सुन्दर मंगलमय बधावे बज रहे हैं। उसने लोगोंसे पूछा कि कैसा उत्सव है ? [उनसे] श्रीरामचन्द्रजीके राजतिलककी बात सुनते ही उसका हृदय जल उठा ॥ १ ॥

करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती । होइ अकाजु कर्वाण बिधि राती ॥

देखि लागि मधु कुटिल किराती । जिमि गवँ तकर लेउँ केहि भौंती ॥ २ ॥

वह दुर्बुद्धि नीच जातिवाली दासी विचार करने लगी कि किस प्रकारसे यह काम रात ही-रातमें बिगड़ जाय; जैसे कोई कुटिल भीलनी शहदका छत्ता लूटा देखकर घात लगाती है कि इसको किस तरहसे उखाड़ लूँ ॥ २ ॥

भरतमातु पहिं गइ बिलखानी । का अनमनि हसि कह हँसि रानी ॥

उतर देइ न लेइ उसासु । नारिचरित करि ढारइ आँसु ॥ ३ ॥

वह उदास होकर भरतजीकी माता (कैकेयी) के पास गयी। रानी (कैकेयी) ने हँसकर कहा—तू उदास क्यों है ! मन्यरा कुछ उत्तर नहीं देती, केवल लंबी साँस ले रही है और त्रियाचरित्र करके आँसू ढरका रही है ॥ ३ ॥

हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें । दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें ॥

तबहुँ न बोल बेरि बड़ि पापिनि । छाड़इ खास कारि जनु साँपिनि ॥ ४ ॥

रानी हँसकर कहने लगी कि तेरे बड़े गाल हैं (तू बहुत बड़-बड़कर बोलनेवाली है)। मेरा मन कहता है कि लक्ष्मणने तुझे कुछ सीख दी है। तब भी वह महान् पापिनी दासी कुछ भी नहीं बोलती, ऐसी लंबी साँस छोड़ रही है मानो काली नागिन [फुफकार छोड़ रही] हो ॥ ४ ॥

दो०—सभय रानि कह कहसि किन कुसल राघु महिपालु ।

लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु ॥ १३ ॥

तब रानीने डरकर कहा—अरी ! कहती क्यों नहीं ! श्रीरामचन्द्र, राजा, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न कुशलसे तो हैं ! यह सुनकर कुबरी (मन्यरा) के हृदयमें बड़ी ही पीड़ा हुई ॥ १३ ॥

चौ०—कत सिख देइ हमहि कोउ माई । गालु करब केहि कर बलु पाई ॥

रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू । जेहि जनेसु देइ जुबराजु ॥ १ ॥

[वह कहने लगी—] हे माई ! हमें कोई क्यों सीख देगा, और मैं किसका बल पाकर गाल करूँगी (बड़-बड़कर बोझूँगी) ! रामचन्द्रको छोड़कर आज और किसकी कुशल है, जिन्हें राजा युवराज-पद दे रहे हैं ! ॥ १ ॥

भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन । देखत गरब रहत उर नाहिन ॥

देखहु कस न जाइ सब सोभा । जो अवलोकि मोर मनु छोभा ॥ २ ॥

आज कौसल्याको विधाता बहुत ही दाहिने (अनुकूल) हुए हैं; यह देखकर उनके हृदयमें गर्व समाता नहीं। तुम स्वयं जाकर सब शोभा क्यों नहीं देख लेतीं, जिसे देखकर मेरे मनमें खोम हुआ है ॥ २ ॥

पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें । जानति हहु बस नाहु हमारें ॥

नीद बहुत प्रिय सेज तुराई । लखहु न भूप कपट चतुराई ॥ ३ ॥

तुम्हारा पुत्र परदेशमें है, तुम्हें कुछ सोच नहीं। जानती हो कि म्यामी हमारे वंशमें है। तुम्हें तो तोशक-पलंगपर पड़े-पड़े नींद लेना ही बहुत प्यारा लगता है; राजाकी कपटभरी चतुराई तुम नहीं देखती ॥ ३ ॥



पूतु बिदेस न सोखु तुम्हारे । जानतिहु बस नाहु हमारे ॥
गीद बहुत मिय सेज तुरारै । लजहु न भूप कपट चतुरारै ॥

सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी । झुकी रानि अब रहु अरगानी ॥

पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी । तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी ॥ ४ ॥

मन्थराके प्रिय वचन सुनकर किन्तु उसका मन मलिन जानकर रानी झुककर (डाँटकर) बोली—
बस, अब चुप रह घरफोड़ी कहींकी ! जो फिर कभी ऐसा कहा, तो तेरी जीभ पकड़कर निकलवा
दूँगी ॥ ४ ॥

दो०—काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि ।

तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरतमातु मुसुकानि ॥ १४ ॥

कानों, लँगड़ों और कुबड़ोंको कुटिल और कुचाली जानना चाहिये; उनमें भी, स्त्री और खासकर
दासी ! इतना कहकर भरतजीकी माता (कैकेयी) मुस्कुरा दी ॥ १४ ॥

चौ०—प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही । सपनेहुँ तोपर कोपु न मोही ॥

सुदिनु सुमंगल दायकु सोई । तोर कहा पुर जेहि दिन होई ॥ १ ॥

[और फिर बोली—] हे प्रिय वचन कहनेवाली (मन्थरा) ! मैंने तुझको यह सीख दी है । मुझे तुझपर
स्वप्नमें भी क्रोध नहीं है । सुन्दर भङ्गलदायक शुभ दिन वही होगा जिस दिन तेरा कहना सत्य होगा (अर्थात्
रामका राज्यतिलक होगा) ॥ १ ॥

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई । यह दिनकर कुल रीति सुहाई ॥

रामतिलकु जौ सँचेहुँ काली । देउँ मागु मनभावत आली ॥ २ ॥

बड़ा भाई स्वामी और छोटा भाई सेवक होता है, यह सूर्यवंशकी सुहावनी रीति ही है । यदि सचमुच
कल ही श्रीरामका तिलक है, तो हे सखी ! तेरे मनको अच्छी लगे वही वस्तु माँग ले, मैं दूँगी ॥ २ ॥

कौसल्या सम सब महतारी । रामहि सहज सुभायँ पिआरी ॥

मोपर करहिं सनेहु बिसेषी । मैं करि प्रीति परीछा देखी ॥ ३ ॥

रामको सहज स्वभावसे सब माताएँ कौसल्याके समान ही प्यारी हैं; मुझपर तो वे विशेष प्रेम
करते हैं । मैंने उनकी प्रीतिकी परीक्षा करके देख ली है ॥ ३ ॥

जौ बिधि जनमु देइ करि छोह । होहुँ राम सिय पूत पुतोह ॥

प्राण तँ अधिक रामु प्रिय मोरें । तिन्ह कँ तिलक छोभु कस तोरें ॥ ४ ॥

जो विधाता कृपा करके जन्म दें, तो [यह भी दें कि] श्रीरामचन्द्र पुत्र और सीता बहू हों । श्रीराम
मुझे प्राणीसे भी अधिक प्रिय हैं, उनके तिलकसे तुझे शोभ कैसे ! ॥ ४ ॥

दो०—भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ ।

हरष समयँ बिसमउ करसि कारन मोहि सुनाउ ॥ १५ ॥

तुझे भरतकी सौगंध है, छल-कपट छोड़कर सच-सच कह । तू हर्षके समयमें विवाद कर रही है,
मुझे इसका कारण सुना ॥ १५ ॥

चौ०—एकहिं बार आस सब पूजी । अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥

फोरै जोगु कपारु अभागा । भलेउ कहत दुख रउरोहि लगा ॥ १ ॥

मन्थराने कहा—सारी आशाएँ तो एक ही बार कहनेमें पूरी हो गयीं, अब तो दूसरी जीभ

लगाकर कुछ कहूँगी। मेरा अभाग कपाल तो फोड़ने ही योग्य है, जो अच्छी बात कहनेपर भी आपको दुःख होता है ॥ १ ॥

कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करु मैं माई ॥

हमहुं कहबि अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहब दिनु राती ॥ २ ॥

जो झूठी-सच्ची बातें बनाकर कहते हैं, हे माई ! वे ही तुम्हें प्रिय हैं, और मैं कड़वी लगती हूँ ! अब मैं भी ठकुरसोहाती (मुँहदेखी) कहा करूँगी, नहीं तो दिन-रात चुप रहूँगी ॥ २ ॥

करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ॥

कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ॥ ३ ॥

विधातने कुरूप बनाकर मुझे परवश कर दिया ! [दूसरेको क्या दोष ?] जो बोया सो काटती हूँ, दिया सो पाती हूँ। कोई भी राजा हो, हमारी क्या हानि है। दासी छोड़कर क्या अब मैं रानी होऊँगी ! ॥ ३ ॥

जारै जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥

तातैं कलुक बात अनुसारी। छमिअ देवि बड़ि चूक हमारी ॥ ४ ॥

हमारा स्वभाव तो जलने ही योग्य है, क्योंकि तुम्हारा अहित मुझसे देखा नहीं जाता। इसीलिये कुछ बात चलयी थी; किन्तु हे देवि ! हमारी बड़ी भूल हुई, क्षमा करो ॥ ४ ॥

दो०—गूढ़ कपट प्रिय वचन सुनि तीय अधरबुधि रानि।

सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि ॥ १६ ॥

धारणारहित चञ्चल बुद्धिकी स्त्री और देवताओंकी मायाके वशमें होनेके कारण रहस्ययुक्त कपटभरे प्रिय वचनोंको सुनकर रानी कैकेयीने बैरिन मन्थराको अपनी सुहृद् (अर्थात् हित करनेवाली) जानकर उसका विश्वास कर लिया ॥ १६ ॥

चौ०—सादर पुनि पुनि पूँछति ओही। सखरी गान मृगी जनु मोही ॥

तसि मति फिरि अहइ जसि भावी। रहसी चेरि घात जनु फावी ॥ १ ॥

बार-बार रानी उससे आदरके साथ पूछ रही हैं, मानो भीलनीके गानसे हिरनी मोहित हो गयी हो। जैसी भावी (होनहार) है, वैसी ही बुद्धि भा फिर गयी। दासी अपना दाँव लगा जानकर हर्षित हुई ॥ १ ॥

तुम्ह पूँछहु में कहत डेराऊँ। धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ ॥

सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़साती तब बोली ॥ २ ॥

तुम पूछती हो, किन्तु मैं कहते डरती हूँ; क्योंकि तुमने पहले ही मेरा नाम घरफोड़ी रख दिया है। बहुत तरहसे गढ़-छोलकर, ग़ुब विश्वास जमाकर, तब वह अयोध्याकी साढ़साती (शनिकी साढ़े सात वर्षकी दशारूपी मन्थरा) बोली—॥ २ ॥

प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि यानी ॥

रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समय फिरें रिपु होहिं पिराने ॥ ३ ॥

हे रानी ! तुमने जो कहा कि मुझे सीता-राम प्रिय हैं और रामको तुम प्रिय हो, सो यह बात सच्ची है। परन्तु यह बात पहले थी, वे दिन अब बीत गये। समयके फिर जानेपर मित्र भी शत्रु हो जाते हैं ॥ ३ ॥

भातु कमल कुल पोषनिहारा । बिनु जल जारि करइ सोइ छारा ॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी । रूँधहु करि उपाउ बर बारी ॥ ४ ॥

सूर्य कमलके कुलका पालन करनेवाला है, पर बिना जलके वही सूर्य उनको (कमलोंको) जलकर भस्म कर देता है। सौत कौसल्या तुम्हारी जड़ उखाड़ना चाहती है; अतः उपायरूपी श्रेष्ठ बाढ़ (घेरा) लगाकर उसे रूँध दो ॥ ४ ॥

दो०—तुम्हहि न सोचु सोहाग बल निज बस जानहु राउ ।

मन मलीन मुह मीठ नृप राउर सरल सुभाउ ॥ १७ ॥

तुमको अपने मुहागके [छूटे] बलपर कुछ भी सोच नहीं है; राजाको अपने वशमें जानती हो। किन्तु राजा मनके मैले और मुँहके मोठे हैं! और आपका सीधा स्वभाव है (आप कपट-चतुराई जानती ही नहीं) ॥ १७ ॥

चौ०—चतुर गँभीर राम महतारी । बीचु पाइ निज बात सँवारी ॥

पठए भरतु भूप ननिबउरैं । राममातु मत जानब रउरैं ॥ १ ॥

रामकी माता (कौसल्या) बड़ी चतुर और गम्भीर है (उसकी थाह कोई नहीं पाता)। उसने मौका पाकर अपनी बात बना ली! राजाने जो भरतको ननिहाल भेजा, इसमें आप, वम, रामकी माताकी ही सलाह समझिये ॥ १ ॥

सेवहिं सकल सवति मोहि नीकैं । गरवित भरतमातु बल पी कैं ॥

सांलु तुम्हार कौसिलहि माई । कपट चतुर नहिं होइ जनाई ॥ २ ॥

[कौसल्या समझती है कि] और सब सौतें तो मेरी अच्छी तरह सेवा करती हैं; एक भरतकी माँ पतिके बलपर गर्वित रहती है। इसीसे हे माई! कौसल्याको तुम बहुत ही साल (खटक) रही हो। किन्तु चतुर आदमियोंका कपट जाननेमें नहीं आता ॥ २ ॥

राजहि तुम्ह पर प्रेमु बिसेषी । सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी ॥

रचि प्रांचु भूपहि अपनाई । रामतिलक हिन लगन धराई ॥ ३ ॥

राजाका तुमपर विशेष प्रेम है, कौसल्या सौतके स्वभावसे उसे देग्य नहीं सकती। इसीलिये उसने जाल रचकर, राजाको अपने वशमें करके, [भरतकी अनुपस्थितिमें] रामके राजतिलकके लिये लग्ननिश्चय करालिया! ॥ ३ ॥

एहिं कुल उचित राम कहूँ टीका । सबहि सोहाइ मोहि सुटि नीका ॥

आगिलि बात समुझि डरु मोही । देउ दैउ फिरि सो फलु ओही ॥ ४ ॥

इस कुलमें [कुल-मर्यादाके अनुसार] रामको तिलक देना उचित है और यह बात सभीको सुझाती है; और मुझे तो बहुत ही अच्छी लगती है। परन्तु मुझे तो आगेकी बात विचारकर डर लगता है; दैव उलटकर इसका फल उसी (कौसल्या) को दे ॥ ४ ॥

दो०—रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोधु ।

कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ़ विरोधु ॥ १८ ॥

इस तरह करोड़ों कुटिलपनकी बातें बनाकर मन्थराने कैकेयीको उलटी-सीधी बात समझा दी और सौतोंकी ऐसी सैकड़ों कहानियाँ कहीं जिनसे विरोध बढ़े ॥ १८ ॥

चौ०—भावी बस प्रतीति उर आई । पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई ॥

का पूँछहु तुम्ह अयहुँ न जाना । निज हित अनहित पसु पहिचाना ॥ १ ॥

होनहारवश कैकेयीके मनमें विश्वास हो गया। रानी फिर सौगंध दिलाकर पूछने लगी। मन्थरा बोली—
क्या पूछती हो ? अरे, तुमने अब भी नहीं समझा ! अपने भले-बुरेको (अथवा मित्र-शत्रुको) तो पशु भी
पहचान लेते हैं ॥ १ ॥

भयउ पाखु दिन सजत समाजु । तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजु ॥

खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें । सत्य कहें नहिं दोषु हमारें ॥ २ ॥

पूरा पखवाड़ा बीत गया सामान सजते और तुमने खबर पायो है आज मुझसे ! मैं तुम्हारे राजमें खाती-
पहनती हूँ, इसलिये सच कहनेमें मुझे कोई दोष नहीं है ॥ २ ॥

जौं असत्य कह्यु कहव बनाई । तौ बिधि देइहि हमहि सजाई ॥

रामहि तिलक कालि जौं भयऊ । तुम्ह कह्यु बिपतिबीजु बिधि बयऊ ॥ ३ ॥

यदि मैं कुल बनाकर झूठ बोलूँ तो विधाता मुझे दण्ड देगा। यदि कल रामको राजतिलक हो गया तो
[समझ रखना कि] तुम्हारे लिये विधाताने विपत्तिका बीज बो दिया ॥ ३ ॥

रेख खंचाइ कह्युँ बलु भापी । भामिनि भइहु दूध कह माखी ॥

जौं सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ॥ ४ ॥

मैं यह बात लकीर ग्वीचकर बलपूर्वक कहती हूँ, हे भामिनी ! तुम तो अब दूधकी मक्खी हो गयीं।
जो पुत्रसहित [कौसल्याकी] चाकरी बजाओगी, तो घरमें रह सकोगी; [अन्यथा घरमें रहनेका] दूसरा उपाय
नहीं ॥ ४ ॥

दो०—कद्रं विनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलाँ देव ।

भरतु बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेव ॥ १९ ॥

कद्रने विनताको दुःख दिया था; तुम्हें कौसल्या देगी। भरत कैदग्वानेका सेवन करेगा और लक्ष्मण
रामके नायब होंगे ! ॥ १९ ॥

चो०—कैकयसुता सुनत कटु वानी । कहि न सकइ कह्यु सहमि सुखानी ॥

तन पमंउ कदली जिमि काँपी । कुबरीं दसन जीभ तब चाँपी ॥ १ ॥

कैकेयी मन्थराकी कड़वी वाणी सुनते ही डरकर सूख गयी, कुछ बोल नहीं सकती। शरीरमें पसीना
हो आया और वह कलकी तरह काँपने लगी। तब कुबरी (मन्थरा) ने अपनी जीभ दाँतों तले दबायी ॥ १ ॥

कहि कहि कंठिक कपट कहानी । धीरजु धरहु प्रबोधिसि रानी ॥

फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली । बकिहि सराइ मानि मराली ॥ २ ॥

फिर कपटकी करोड़ों कहानियाँ कह-कहकर उमने रानीको खूब समझाया कि धीरज रक्वो। कैकेयीका
भाग्य पलट गया, उसे कुचाल प्यारी लगी। वह बगुलीकी हंमिनी मानकर उसकी सराहना करने लगी ॥ २ ॥

सुनु मंथरा बात फुरि तोरी । दाहिनि आँखि नित फरकइ मोरी ॥

दिन प्रति देखउँ राति कुसपनं । कह्युँ न तोहि मोह बस अपने ॥ ३ ॥

कैकेयीने कहा—मन्थरा ! सुन, तेरी बात सत्य है; मेरी दाहिनी आँख नित्य फड़का करती है। मैं
प्रतिदिन रातको बुरे स्वप्न देखती हूँ किन्तु अपने अज्ञानवश तुझसे कहती नहीं ॥ ३ ॥

काह करौं सखि सूध सुभाऊ । दाहिन वाम न जानउँ काऊ ॥ ४ ॥

सखी ! क्या करूँ, मेरा तो सीधा स्वभाव है; मैं दायों-बायों कुछ भी नहीं जानती ॥ ४ ॥

दो०—अपने चलत न आजु लागि अनमल काहुक कीन्ह ।

केहिं अघ एकहिं बार मोहि दैअ दुसह दुखु दीन्ह ॥ २० ॥

अपनी चलते (जहाँतक मेरा बश चला) मैंने आजतक कभी किसीका बुरा नहीं किया । फिर भी न जाने किस पापसे दैवने मुझे एक ही साथ यह दुःसह दुःख दिया ॥ २० ॥

चौ०—नैहर जनमु भरब बरु जाई । जियत न करबि सवति सेवकाई ॥

अरिबस दैउ जिआवत जाही । मरनु नीक तेहि जीवन चाही ॥ १ ॥

मैं भले ही नैहर जाकर वहीं जीवन बिता दूँगी, पर जीते-जी सौतकी चाकरी नहीं करूँगी । दैव जिसको शत्रुके वशमें रखकर जिलाता है, उसके लिये तो जीनेकी अपेक्षा मरना ही अच्छा है ॥ १ ॥

दीन वचन कह बहुबिधि रानी । सुनि कुबरीं तियमाया ठानी ॥

अस कस कहहु मानि मन ऊना । सुखु सोहागु तुम्ह कहूँ दिन दूना ॥ २ ॥

रानीने बहुत प्रकारके दीन वचन कहे । उन्हें सुनकर कुबरीने त्रियाचरित्र फैलाया । वह बोली—तुम मनको छोटा करके ऐसा क्यों कह रही हो ! तुम्हारा सुख-सुहाग दिन-दिन दूना होगा ॥ २ ॥

जेहिं राउर अति अनमल ताका । सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका ॥

जब तैं कुमत सुना मैं स्वामिनि । भूख न बासर नीद न जामिनि ॥ ३ ॥

जिसने तुम्हारी बुराई चाही है, वही परिणाममें यह (बुराईरूप) फल पायेगी । हे स्वामिनि ! मैंने जबसे यह कुमत सुना है, तबसे मुझे न तो दिनमें भूख लगती है और न रातमें नींद ही आती है ॥ ३ ॥

पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची । भरत भुआल होहिं यह साँची ॥

भामिनि करहु त कहौं उपाऊ । है तुम्हरीं सेवा बस राऊ ॥ ४ ॥

मैंने ज्योतिषियोंसे पूछा, तो उन्होंने रेखा खींचकर (गणित करके निश्चयपूर्वक) कहा कि भरत राजा होंगे, यह सत्य मानो । हे भामिनी ! तुम करो, तो उपाय मैं बताऊँ; राजा तुम्हारी सेवाके वशमें है ही ॥ ४ ॥

दो०—परउँ कूप तुअ वचन पर सकउँ पूत पति त्यागि ।

कहसि मार दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि ॥ २१ ॥

[कैकेयीने कहा—] मैं तेरे कहनेसे कुपूँमें गिर सकती हूँ, पुत्र और पतिको भी छोड़ सकती हूँ । जब तू मेरा बड़ा भारी दुःख देखकर कुछ कहती है, तो भला, मैं अपने हितके लिये उसे क्यों न करूँगी ॥ २१ ॥

चौ०—कुबरीं करि कबुली कैकेई । कपट छुरी उर पाहन टेई ॥

लखइ न रानि निकट दुखु कैसैं । खरइ हरित तिन बलिपसु जैसैं ॥ १ ॥

कुबरीने कैकेयीको [सब तरहसे] कबूल करवाकर (अर्थात् बलिपशु बनाकर) कपटरूप छुरीको हृदयरूपी पत्थरपर टेया (उसकी धारको तेज किया) । रानी कैकेयी अपने निकटके (शीघ्र आनेवाले) दुःखको कैसे नहीं देखती, जैसे बलिका पशु हरी-हरी घास चरता है [पर यह नहीं जानता कि मौत सिरपर नाच रही है] ॥ १ ॥

सुनत बात मृदु अंत कठोरी । देति मनहुँ मधु माहुर घोरी ॥

कहइ चेरि सुधि बहइ कि नाही । स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं ॥ २ ॥

मन्थराकी बातें सुननेमें तो कोमल हैं, पर परिणाममें कठोर (भयानक) हैं । मानो वह शहदमें घोलकर जहर पिला रही हो । दासी कहती है—हे स्वामिनि ! तुमने मुझको एक कथा कही थी, उसकी याद है कि नहीं ! ॥ २ ॥

दुष्ट बरदान भूप सन थाती । मागेहु आजु जुड़ावहु छाती ॥
सुतहि राजु रामहि बनबास् । देहु लेहु सब सबति हुलास् ॥ ३ ॥

तुम्हारे दो बरदान राजाके पास धरोहर हैं । आज उन्हें राजासे माँगकर अपनी छाती टेंदी करो । पुत्रको राज्य और रामको बनवास दो और सौतका सारा आनन्द तुम ले लो ॥ ३ ॥

भूपति रामसपथ जब करई । तब मागेहु जेहिं बचनु न टरई ॥
होइ अकाजु आजु निसि बीतें । बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें ॥ ४ ॥

जब राजा रामकी सौगंध खा लें, तब वर माँगना, जिससे वचन टलने न पावे । आजकी रात बीत गयी, तो काम बिगाड़ जायगा । मेरी बातको हृदयसे प्रिय [या प्राणोसे भी प्यारी] समझना ॥ ४ ॥

दो०—बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृह जाहु ।

काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु ॥ २२ ॥

पापिनी मन्थराने बड़ी बुरी घात लगाकर कहा—कोपभवनमें जाओ । सब काम बड़ी सावधानीसे बनाना । राजापर सहसा विश्वास न कर लेना (उनकी बातोंमें न आ जाना) ॥ २२ ॥

चौ०—कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी । बार बार बड़ि बुद्धि बखानी ॥
तोहि सम हित न मोर संसारा । बड़े जात कह भइसि अधारा ॥ १ ॥
कुबरीको रानीने प्राणोके समान प्रिय समझकर बार-बार उसकी बड़ी बुद्धिका बखान किया और बोली—संसारमें मेरा नेरे समान हितकारी और कोई नहीं है । तू मुझ बड़ी जाती हुईके लिये महारा हुई है ॥ १ ॥

जौ बिधि पुरख मनोरथ काली । करों तोहि चख पूतरि आली ॥
बहुबिधि चेरिहि आदरु देई । कोपभवन गवनी कैकेई ॥ २ ॥

यदि विधाता कल मेरा मनोरथ पूरा कर दें, तो हे सखी ! मैं तुझे आँखोंकी पुतली बना दूँ । इस प्रकार दामीको बहुत तरहसे आदर देकर कैकेयी कोपभवनमें चली गयी ॥ २ ॥

बिपति बीजु वरषा रितु चेरी । भुईं भइ कुमति कैकेई केरी ॥

पाइ कपट जलु अंकुर जामा । वर दोउ दल दुख फल परिनामा ॥ ३ ॥

विपत्ति (कलह) बीज है, दासी वर्षा-ऋतु है, कैकेयीकी कुबुद्धि [उस बीजके बोनेके लिये] जमान हो गयी । उसमें कपटरूपी जल पाकर अंकुर फूट निकल । दोनों वरदान उस अंकुरके दो पत्ते हैं और अन्तमें इसके दुःस्वरूपी फल होगा ॥ ३ ॥

कोपसमाजु साजि सबु सोई । राजु करत निज कुमति बिगोई ॥

राउर नगर कांलाहलु होई । यह कुचालि कलु जान न कोई ॥ ४ ॥

कैकेयी कोपका सब साज सजकर [कोपभवनमें] जा मोयी । राज्य करती हुई वह अपनी दुष्ट बुद्धिसे नष्ट हो गयी । राजमहल और नगरमें धूमधाम मच रही है, इस कुचालको कोई कुछ नहीं जानता ॥ ४ ॥

कुवर्गिकुमुदिता



दुद वरदान भूप मन थानी । मागहु आनु जुड़ावहु छाती ॥ सुतहि राजु गामहि वनवास् । देहु लेहु सब सवति हुलास् ॥

दो०—प्रसुदित पुर नर नारि सब सजहिं सुमंगलचार ।

एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं मोर भूप दरबार ॥ २३ ॥

बड़े ही आनन्दित होकर नगरके सब स्त्री-पुरुष शुभ मङ्गलचारके साज सज रहे हैं । कोई भीतर जाता है, कोई बाहर निकलता है; राजद्वारमें बड़ी भीड़ हो रही है ॥ २३ ॥

चौ०—बालसखा सुनि हियँ हरषाहीं । मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं ॥

प्रभु आदरहिं प्रेमु पहिचानी । पूँछहिं कुशल खेम मृदु बानी ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके बालसखा राजतिलकका समाचार सुनकर हृदयमें हर्षित होते हैं; वे दस-पाँच मिलकर श्रीरामचन्द्रजीके पास जाते हैं । प्रेम पहचानकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी उनका आदर करते हैं और कोमल वाणीसे कुशल-खेम पूछते हैं ॥ १ ॥

फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई । करत परसपर राम बड़ाई ॥

को रघुवीर सरिस संसारा । सीलु सनेहु निबाहनिहारा ॥ २ ॥

अपने प्रिय सखा श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर वे आपसमें एक-दूसरेसे श्रीरामचन्द्रजीकी बड़ाई करते हुए घर लौटते हैं और कहते हैं—संसारमें श्रीरघुनाथजीके समान शील और स्नेहको निबाहनेवाला कौन है ! ॥ २ ॥

जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं । तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं ॥

मेवक हम स्वामी सियनाह । होउ नात यह ओर निबाह ॥ ३ ॥

भगवान् हमें यही दें कि हम अपने कर्मवश भ्रमते हुए जिस-जिस योनिमें जन्में, वहाँ-वहाँ (उस-उस योनिमें) हम तो मेवक हों और सीतापति श्रीरामचन्द्रजी हमारे स्वामी हों, और यह नाता अन्ततक निभ जाय ॥ ३ ॥

अस अभिलाषु नगर सब काह । कैकयसुता हृदय अति दाह ॥

को न कुसंगति पाइ नसाई । रहइ न नीच मतेँ चतुराई ॥ ४ ॥

नगरमें सबकी ऐसी ही अभिलाषा है; परन्तु कैकेयीके हृदयमें बड़ी जलन हो रही है । कुसंगति पाकर कौन नष्ट नहीं होता ! नीचके मतके अनुसार चलनेसे चतुराई नहीं रह जाती ॥ ४ ॥

दो०—साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकई गेहँ ।

गवनु निष्ठुरता निकट किय जनु धरि देह सनेह ॥ २४ ॥

सन्ध्याके समय राजा दशरथ आनन्दके साथ कैकेयीके महलमें गये; मानो साक्षात् स्नेह ही शरीर धारणकर निष्ठुरताके पास गया हो ! ॥ २४ ॥

चौ०—कोपभवन सुनि सकुचेउ राज । भय बस अगहुइ परइ न पाऊ ॥

सुरपति बसइ बाइबल जाकै । नरपति सकल रहहिं रुख ताकै ॥ १ ॥

कोपभवनका नाम सुनकर राजा सहम गये । डरके मारे उनका पाँव आगेको नहीं पड़ता । स्वयं देवराज इन्द्र जिनकी भुजाओंके बलपर [राक्षसोंसे निर्भय होकर] बसता है, और सम्पूर्ण राजालोग जिनका रुख देखते रहते हैं, ॥ १ ॥

सो सुनि तियरिस गयउ सुखाई । देखहु काम प्रताप बड़ाई ॥

सूल कुलिस असि अँगवनिहारे । ते रतिनाथ सुमन सर मारे ॥ २ ॥

वही राजा दशरथ स्त्रीका क्रोध सुनकर सूख गये ! कामदेवका प्रताप और महिमा तो देखिये । जो त्रिशूल, वज्र और तलवार आदिकी चोट अपने अङ्गोंपर सहनेवाले हैं वे रतिनाथ कामदेवके पुष्पवाणसे मारे गये ! ॥ २ ॥

सभय नरेसु प्रिया पहिं गयऊ । देखि दसा दुखु दारुन भयऊ ॥

भूमि सयन पट्ट मोट पुराना । दिए डारि तन भूषन नाना ॥ ३ ॥

राजा डरते-डरते अपनी प्यारी कैकेयीके पास गये । उसकी दशा देखकर उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ । कैकेयी जमीनपर पड़ी है । पुराना मोटा कपड़ा पहने हुए है । शरीरके नाना आभूषणोंको उतारकर फेंक दिया है ॥ ३ ॥

कुमतिहि कसि कुबेपता फाबी । अनग्रहिबातु सूच जनु भाबी ॥

जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी । प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी ॥ ४ ॥

उस दुर्बुद्धि कैकेयीको यह कुबेपता (बुरा वेष) ऐसी फव रही है मानों भावी विधवापनकी सूचना दे रही हो । राजा उसके पास जाकर कोमल वाणीसे बोले—हे प्राणप्रिये ! किस लिये रिसाई (रूठी) हो ! ॥ ४ ॥

छं०—केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई ।

मानहुँ सरोष भुवंग भामिनि बिपम भाँति निहारई ॥

दोउ वासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई ।

तुलसी नृपति भवतव्यता वस काम कौतुक लेखई ॥

‘हे रानी ! किम लिये रूठी हो ?’ यह कहकर राजा उसे हाथसे स्पर्श करने हैं तो वह उनके हाथको [झटककर] हटा देती है और ऐसे देखती है मानों क्रोधमें भरी हुई नागिन क्रूर दृष्टिसे देख रही हो । दोनों [वरदानोंकी] वासनाएँ उस नागिनकी दो जीमें हैं, और दोनों वरदान दाँत हैं; वह काटनेके लिये मर्मस्थान देख रही है । तुलसीदासजी कहते हैं कि राजा दशरथ होनहारके वशमे होकर इसे (इस प्रकार हाथ झटकने और नागिनकी भाँति देखनेको) कामदेवकी क्रीड़ा ही समझ रहे हैं ।

सो०—बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकवचनि ।

कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर ॥ २५ ॥

राजा बार-बार कह रहे हैं—हे सुमुखी ! हे सुलोचनी ! हे कोकिलबयनी ! हे गजगामिनी ! मुझे अपने क्रोधका कारण तो सुना ॥ २५ ॥

चौ०—अनहित तोर प्रिया केहँ कीन्हा । केहि दुइ सिर केहि अमु चह लीन्हा ॥

कहु केहि रंकहि करौं नरेसू । कहु केहि नृपहि निकासौं देसू ॥ १ ॥

हे प्रिये ! किसने तेरा अनिष्ट किया ? किसके दाँ सिर हैं ? यमराज किसको लेना (अपने लोकको ले जाना) चाहते हैं ? कह, किस कंगालको राजा कर दूँ ? या किम राजाको देशसे निकाल दूँ ? ॥ १ ॥

सकउँ तोर अरि अमरउ मागी । काह कीट बपुरे नर नारी ॥

जानसि मोर सुभाउ बरोरू । मनु तव आनन चंद चकोरू ॥ २ ॥

तेरा शत्रु अमर (देवता) भी हो, तो मैं उसे भी मार सकता हूँ ! बेचारे कीड़े-मकोड़े-सरीसृप नर-नारी

तो चीज ही क्या हैं। हे सुन्दरी! तू तो मेरा स्वभाव जानती ही है कि मेरा मन सदा तेरे मुखरूपी चन्द्रमाका चकोर है ॥ २ ॥

प्रिया प्राण सुत सरबसु मोरें। परिजन प्रजा सकल बस तोरें ॥

जौ कछु कहौ कपटु करि तोही। भामिनि राम सपथ सत मोही ॥ ३ ॥

हे प्रिये! मेरी प्रजा, कुटुम्बी, सर्वस्व (सम्पत्ति), पुत्र, यहाँ तक कि मेरे प्राण भी, ये सभी तेरे वशमें (अधीन) हैं। यदि मैं तुझसे कुछ कपट करके कहता होऊँ तो हे भामिनि! मुझे सौ बार रामकी सौगंध दे ॥ ३ ॥

बिहसि मागु मनभावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता ॥

घरी कुघरी समुझि जियँ देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुबेष्ट ॥ ४ ॥

तू हँसकर (प्रसन्नतापूर्वक) अपनी मनचाही बात माँग ले और अपने मनोहर अंगोंको आभूषणोंसे सजा। मोढ़ा-बेमोढ़ा तो मनमें विचारकर देख। हे प्रिये! जल्दी इस बुरे वेषको त्याग दे ॥ ४ ॥

दो०—यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि बिहसि उठी मतिमंद ।

भूषन सजति बिलोकि मृगु मनहुँ किरातिनि फंद ॥ २६ ॥

यह सुनकर और मनमें रामजीकी बढ़ी सौगंधको विचारकर मन्दबुद्धि कैकेयी हँसती हुई उठी और गहने पहनने लगी; मानो कोई भीलनी मृगको देखकर फंदा तैयार कर रही हो ॥ २६ ॥

चो०—पुनि कह राउ सुहृद जियँ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी ॥

भामिनि भयउ तोर मनभावा। घर घर नगर अनंद बधावा ॥ १ ॥

अपने जीमें कैकेयीको सुहृद् जानकर राजा दशरथजी प्रेमसे पुलकित होकर कोमल और सुन्दर वार्णोंसे फिर बोले—हे भामिनि! तेरी मनचाही हो गयी, नगरमें घर-घर आनन्दके बंधावे बज रहे हैं ॥ १ ॥

रामहि देखँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू ॥

दलकि उठेउ सुनि हृदउ कठोरू। जनु छुह गयउ पाक बरतोरू ॥ २ ॥

मैं कल ही रामको युवराज-पद दे रहा हूँ; इसलिये हे सुनयनी! तू मंगल-साज सज। यह सुनते ही उसका कठोर हृदय दलक उठा (फटने लगा), मानो पका हुआ बाबूतोड़ (फोड़ा) छू गया हो ॥ २ ॥

पेसिउ पीर बिहसि तेहिं गोई। चोरनारि जिमि प्रगटि न रोई ॥

लखहि न भूप कपटचतुराई। कोटि कुटिल मनि गुरु पढ़ाई ॥ ३ ॥

ऐसी भारी पीड़ाको भी उसने हँसकर छिपा लिया, जैसे चोरकी स्त्री प्रकट होकर नहीं रोती (जिसमें उसका भेद न खुल जाय)। राजा उसकी कपट-चतुराईको नहीं लख रहे हैं, क्योंकि वह करोड़ों कुटिलोंकी शिरोमणि गुरु (मन्थरा) की पढ़ाई हुई है ॥ ३ ॥

जद्यपि नीति निपुन नरनाह। नारिचरित जलनिधि अवगाह ॥

कपट सनेहु बड़ाइ बहोरी। बोली बिहसि नयन मुहु मोरी ॥ ४ ॥

यद्यपि राजा नीतिमें निपुण हैं, परन्तु नियाचरित्र अथाह समुद्र है। फिर वह कपटयुक्त प्रेम बढ़ाकर (ऊपरसे प्रेम दिखाकर) नेत्र और मुँह मोड़कर हँसती हुई बोली—॥ ४ ॥

दो०—मागु मागु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु ।

देन कहेहु वरदान दुइ तेउ पावत संदेहु ॥ २७ ॥

हे प्रियतम ! आप माँग-माँग तो कहा करते हैं, पर देते-लेते कभी कुछ भी नहीं। आपने दो वरदान देनेको कहा था, उनके मिलनेमें भी सन्देह है ॥ २७ ॥

चौ०—जानेऊँ मरमु राउ हँसि कहाई । तुम्हहि कोहाव परम प्रिय अहाँ ॥

थाती राखि न मागिहु काऊ । बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ ॥ १ ॥

राजाने हँसकर कहा कि अब मैं तुम्हारा मर्म (मतलब) समझा ! मान करना तुम्हें परम प्रिय है। तुमने उन वरोंको थाती (धरोहर) रखकर फिर कभी माँगा ही नहीं, और मेरा भूलनेका स्वभाव होनेसे मुझे भी वह प्रसंग याद नहीं रहा ॥ १ ॥

झूठेहूँ हमहि दोषु जनि देह । दुइ कै चारि मागि मकु लेह ॥

रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्राण जाहूँ बरु बचनु न जाई ॥ २ ॥

मुझे झूठ-मूठ दोष मत दो। चाहे दोके बदले चार माँग लो ! रघुकुलमें सदासे यह रीति चली आयी है कि प्राण भले ही चले जायँ, पर वचन नहीं जाता ॥ २ ॥

नाहिँ असत्य सम पातक पुंजा । गिरिसम होहिँ कि कोटिक गुंजा ॥

सत्यमूल सब सुकृत सुहाय । वेद पुरान बिदित मनु गाए ॥ ३ ॥

असत्यके समान पापोंका समूह भी नहीं है। क्या करोड़ों धुँधचियाँ मिलकर भी कहीं पहाड़के समान हो सकती हैं। 'सत्य' ही समस्त उत्तम सुकृतोंकी (पुण्योंकी) जड़ है। यह बात वेद-पुराणोंमें प्रसिद्ध है और मनुजीने भी यही कहा है ॥ ३ ॥

तेहि पर रामसपथ करि आई । सुकृत सनेह अवधि रघुराई ॥

वात दड़ाइ कुमति हँसि बोली । कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली ॥ ४ ॥

उसपर मेरेद्वारा श्रीरामजीकी शपथ करनेमें आ गयी (मुँहसे निकल पड़ी)। श्रीरघुनाथजी मेरे सुकृत (पुण्य) और स्नेहकी सीमा हैं। इस प्रकार बात पक्की कराके दुर्बुद्धि कैकेयी हँसकर बोली, मानो उसने कुमत (बुरे विचार) रूपी दुष्ट पक्षी (बाज) [को छोड़नेके लिये उस] की कुल्ही (आंगवोंपरकी टोपी) खोल दी ॥ ४ ॥

दो०—भूप मनोरथ सुभग वनु सुख सुबिहंग समाजु ।

मिथिनि जिमि छाड़न चाहति बचनु भयंकर बाजु ॥ २८ ॥

राजाका मनोरथ सुन्दर वन है, सुख सुन्दर पक्षियोंका समुदाय है। उसपर भाल्मीकी तरह कैकेयी अपना वचनरूपी भयङ्कर बाज छोड़ना चाहती है ॥ २८ ॥

मासपागयण तेरहवाँ विश्राम

चौ०—सुनहु प्राणप्रिय भावत जी का । देहु एक वर भरतहि टीका ॥

मागउ दूसर वर कर जोरी । पुरखहु नाथ मनोरथ मोरी ॥ १ ॥

[वह बोली—] हे प्राणप्यारे ! सुनिये ! मेरे मनको भानेवाला एक वर तो दीजिये भरतको राजनिलक; और हे नाथ ! दूसरा वर भी मैं हाथ जोड़कर माँगती हूँ, मेरा मनोरथ पूरा कीजिये—॥ १ ॥

तापस वेष विमेषि उदासी । चौदह वरिस राम बनबासी ॥

सुनि मृदु वचन भूप हियँ साक । ससि कर द्रुअत विकल जिमि कोक ॥ २ ॥

तपस्वियोंके वेषमें विशेष उदासीन भावमें (राज्य और कुटुम्ब आदिकी ओरसे भलीभाँति उदासीन होकर विरक्त सुनियोंकी भाँति) राम चौदह वर्षतक वनमें निवास करें। कैकेयीके कोमल (विनययुक्त) वचन सुनकर राजाके हृदयमें ऐसा शोक हुआ जैसे चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे चकवा विकल हो जाता है ॥ २ ॥

गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा । जनु सचान बन झपटेउ लावा ॥

बिबरन भयउ निपट नरपालू । दामिनि हनेउ मनहुँ तर तालू ॥ ३ ॥

राजा सहम गये, उनसे कुछ कहते न बना; मानो बाज वनमें बटेरपर झपटा हो। राजाका गंग बिलकुल उड़ गया; मानो ताड़के पेड़को बिजलीने मारा हो। (जैसे ताड़के पेड़पर बिजली गिरनेसे वह झूलसकर बदरंगा हो जाता है, वही हाल राजाका हुआ) ॥ ३ ॥

माथें हाथ मूढ़ि दोउ लोचन । तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥

मोर मनोरथु सुरतर फूला । फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ॥ ४ ॥

माथेपर हाथ रखकर, दोनों नेत्र बंद करके राजा ऐसे सोच करने लगे मानो साक्षात् सोच ही शरीर धारणकर सोच कर रहा हो। [वे सोचते हैं—] हाथ ! मेरा मनोरथरूपी कल्पवृक्ष फूल चुका था, परन्तु फलते समय कैकेयीने हथिनीकी तरह उसे जड़समेत उखाड़कर नष्ट कर डाला ॥ ४ ॥

अवध उजारि कीन्हि कैकेई । दीन्हिसि अचल विपति कै नेई ॥ ५ ॥

कैकेयीने अयोध्याको उजाड़ कर दिया और विपत्तिकी अचल (मुट्ठ) नीच डाल दी ॥ ५ ॥

दो०—कवनें अवसर का मयउ गयउ नारिबिस्वास ।

योग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अविद्या नास ॥ २० ॥

किस अवसरपर क्या हो गया ! स्त्रीका विश्वास करके मैं वैसे ही मारा गया जैसे योगकी सिद्धिरूपी फल मिलनेके समय योगीको अविद्या नष्ट कर देती है ॥ २० ॥

चो०—एहि विधि राउ मनहिं मन झाँखा । देखि कुभाँति कुमति मन माखा ॥

भरतु कि राउर पूत न होही । आनेहु मोल बेसाहि कि मोही ॥ १ ॥

इस प्रकार राजा मन-ही-मन झाँख रहे हैं। राजाका ऐसा बुरा हाल देखकर दुर्बुद्धि कैकेयी मनमें बुरी तरहसे क्रोधित हुई। [और बोली—] क्या भरत आपके पुत्र नहीं हैं ? क्या मुझे आप दाम देकर खरीद लिये हैं ? (क्या मैं आपकी विवाहिता पत्नी नहीं हूँ ?) ॥ १ ॥

जो सुनि सरु अस लाग तुम्हारें । काहे न बोलहु बचनु सँभारें ॥

देहु उतर अनु करहु कि नाहीं । सत्यसंघ तुम्ह रघुकुल माहीं ॥ २ ॥

जो मेरा बचन सुनते ही आपको बाण-सा लगा, तो आप सोच-समझकर बात क्यों नहीं कहते ? उत्तर दीजिये—हाँ कीजिये, नहीं तो नाही कर दीजिये। आप रघुवंशमें सत्य प्रतिज्ञावाले [प्रसिद्ध] हैं ! ॥ २ ॥

देन कहहु अब जनि बरु देहु । तजहु सत्य जग अपजसु लेहु ॥

सत्य सराहि कहहु बरु देना । जानेहु लेहि मागि चबेना ॥ ३ ॥

आपने ही देनेको कहा था, अब भले ही न दीजिये। सत्यको छोड़ दीजिये और जगत्में अपयश लीजिये। सत्यकी बढ़ी सराहना करके वर देनेको कहा था, समझा था कि यह चबेना ही माँग लेगी ॥ ३ ॥

सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा । तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा ॥

भति कटु बचन कहति कैकेई । मानहुँ लोन जरे पर देई ॥ ४ ॥

राजा शिवि, दधीचि और बलिने जो कुछ कहा, शरीर और धन त्यागकर भी उन्होंने अपने

वचनकी प्रतिशको निवाहा । कैकेयी बहुत ही कड़वे वचन कह रही है, मानो जलेपर नमक छिड़क रही हो ॥ ४ ॥

दो०—धरम धुरंधर धीर धरि नयन उधारे रामँ ।

सिरु धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठायँ ॥ ३० ॥

धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले राजा दशरथने धीरज धरकर नेत्र खोले और सिर धुनकर तथा लंबी साँस लेकर इस प्रकार कहा कि इसने मुझे बड़े कुठौर मारा ॥ ३० ॥

चौ०—आगें दीखि जरत रिस भारी । मनहुँ रोष तरवारि उधारी ॥

मूठि कुबुद्धि धार निठुराई । धरी कूबरीं सान बनारै ॥ १ ॥

राजाने प्रचण्ड क्रोधसे जलती हुई कैकेयीको अपने आगे (सामने) इस प्रकार देखा मानो क्रोधरूपी तलवार नंगी (म्यानसे बाहर) खड़ी हो । कुबुद्धि उस तलवारकी मूठ है, निष्ठुरता धार है और वह कुबरी (मन्थरा) रूपी सानपर धरकर तेज की हुई है ॥ १ ॥

लखी महीप कराल कठोरा । सत्य कि जीवु लेशहि मोरा ॥

बोले राउ कठिन करि छाती । बानी सखिनय तासु सोहाती ॥ २ ॥

राजाने देखा कि यह (तलवार) बड़ी ही भयंकर और कठोर है [और सोचा—] क्या सत्य ही यह मेरा जीवन लेगी ? राजा अपनी छाती कड़ी करके, बहुत ही नम्रताके साथ उसे (कैकेयीको) सुहानेवाली वाणी बोले—॥ २ ॥

प्रिया वचन कस कहसि कुभाँती । भीर प्रतीति प्रीति करि हाँती ॥

मोरें भरतु रामु दुइ आँखी । सत्य कहउँ करि संकरु साखी ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! हे भीर ! विश्वास और प्रेमको नष्ट करके ऐसे बुरी तरहके वचन कैसे कह रही हो । मेरे तो भरत और रामचन्द्र दो आँखें (अर्थात् एक-से) हैं, यह मैं शङ्करजीकी साक्षी देकर सत्य कहता हूँ ॥ ३ ॥

अवसि दूतु मैं पडइव प्राता । ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता ॥

सुदिन सोधि सबु साजु सजाई । देउँ भरत कहूँ राजु बजाई ॥ ४ ॥

मैं अवश्य सवेरे ही दूत भेजूँगा । दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) सुनते ही तुरंत आ जायेंगे । अच्छा दिन (शुभ मुहूर्त) शोधवाकर, सब तैयारी करके डंका बजाकर मैं भरतको राज्य दे दूँगा ॥ ४ ॥

दो०—लोभु न रामहि राजु कर बहुत भरत पर प्रीति ।

मैं बड़ छोट बिचारि जियँ करत रहेउँ नृपनीति ॥ ३१ ॥

रामको राज्यका लोभ नहीं है और भरतपर उनका बड़ा ही प्रेम है । मैं ही अपने मनमें बड़े-छोटेका विचार करके राजनीतिका पालन कर रहा था ॥ ३१ ॥

चौ०—रामसपथ सत कहउँ सुभाऊ । राममातु कछु कहेउ न काऊ ॥

मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूँछें । तेहि तैं परेउ मनोरथु छूँछें ॥ १ ॥

रामकी सौ वार सौगंध खाकर मैं स्वभावसे ही कहता हूँ कि रामकी माता (कौसल्या) ने मुझसे कभी कुछ नहीं कहा । अवश्य ही मैंने तुमसे बिना पूछे यह सब किया, इसीसे मेरा मनोरथ खाली गया ॥ १ ॥

रिस परिहर अब मंगल साजू । कछु दिन गएँ भरत जुबराजू ॥

एकहिं बात मोहि दुखु लागा । बर दूसर असमंजस मागा ॥ २ ॥

अब क्रोध छोड़ दे और मङ्गल-साज सज, कुछ ही दिनों बाद भरत युवराज हो जायेंगे ।
तेरी एक ही बातसे मुझे दुःख हुआ कि तूने दूसरा वरदान बड़ी अइचनका माँगा ॥ २ ॥

भजहुँ हृदय जरत तेहि आँचा । रिस परिहास कि साँचिहुँ साँचा ॥

कहु तजि रोषु राम अपराधू । सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू ॥ ३ ॥

उसकी आँचसे अब भी मेरा हृदय जल रहा है । यह दिलगीका क्रोध है, अथवा सचमुच ही (वास्तवमें)
सच्चा है ! क्रोधको त्यागकर रामका अपराध तो बता । सब कोई तो कहते हैं कि राम बड़े ही साधु हैं ॥ ३ ॥

तुहुँ सराहसि करसि स्नेह । अब सुनि मोहि भयउ संदेह ॥

जसु सुभाउ अरिहि अनुकूला । सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला ॥ ४ ॥

तू स्वयं भी रामकी सराहना करती और उनपर स्नेह किया करती थी । अब यह सुनकर मुझे सन्देह हो
गया है । जिसका स्वभाव शत्रुको भी अनुकूल है, वह माताके प्रतिकूल आचरण क्योंकर करेगा ॥ ४ ॥

दो०—प्रिया हास रिस परिहरहि मागु बिचारि विवेकु ।

जेहि देखौ अब नयन मरि भरत राज अभिषेकु ॥ ३२ ॥

हे प्रिये ! इसीका क्रोध छोड़कर, विवेक (उचित-अनुचित) विचारकर वर माँग, जिससे अब मैं
नेत्र भरकर भरतका राज्याभिषेक देख सकूँ ॥ ३२ ॥

चो०—जिणें मीन बरु बारि बिहीना । मनि बिनु फनिकु जिणें दुखदीना ॥

कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं । जीवनु मोर राम बिनु नाहीं ॥ १ ॥

मछली चाहे बिना पानीके जीती रहे और साँप भी चाहे बिना मणिके दीन-दुखी होकर जीता रहे; परन्तु
मैं स्वभावसे ही कहता हूँ, मनमें [जरा भी] छल रखकर नहीं, कि मेरा जीवन रामके बिना नहीं है ॥ १ ॥

समुझि देखु जियँ प्रिया प्रबीना । जीवनु राम दरस आधीना ॥

सुनि मृदु बचन कुमति भति जरई । मनहुँ अनल आहुति घृत परई ॥ २ ॥

हे चतुर प्रिये ! जोमें समझ देख, मेरा जीवन भीरामके दर्शनके अधीन है । राजाके कोमल वचन
सुनकर दुर्बुद्धि कैकेयी अत्यन्त जल रही है । मानो अग्निमें घोंकी आहुतियाँ पड़ रही हैं ॥ २ ॥

कहइ करहु किन कोटि उपाया । इहाँ न लागिहि राउरि माया ॥

वेहु कि लेहु भजसु करि नाहीं । मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ॥ ३ ॥

कैकेयी कहती है—आप करोड़ों उपाय क्यों न करें, यहाँ आपकी माया (चालबाजी) नहीं लमा
सकती । या तो मैंने जो माँगा है सो दीजिये, नहीं तो 'नाहीं' करके अपयश लीजिये । मुझे बहुत प्रपञ्च
(बलवेड़े) नहीं सुहाते ॥ ३ ॥

रामु साधु तुम्ह साधु सयाने । राममातु भलि सब पहिचाने ॥

जस कौसिलौ मोर भल ताका । तस फलु उन्हहि देउँ करि साका ॥ ४ ॥

राम साधु हैं, आप भी साधु एवं सयाने हैं और रामकी माता भी भली हैं; मैंने सबको पहचान लिया
है । कौसल्याने मेरा जैसा भला चाहा है मैं भी साका करके (याद रखने योग्य) उन्हें वैसा ही फल दूँगी ॥ ४ ॥

दो०—होत प्रातु मुनिबेष धरि जौं न रामु बन जाहिं ।

मोर भरनु राउर अजसु नृप समुझिअ मन माहिं ॥ ३३ ॥

सबेरा होते ही मुनिका वैष धारणकर यदि राम वनको न चले जायँगे, तो हे राजन् ! मनमें निश्चय समझ लीजिये कि मेरा मरना होगा और आपका अपयश ! ॥ ३३ ॥

चौ०—अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी । मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भई सोई । भरी क्रोधजल जाइ न जाई ॥ १ ॥

ऐसा कहकर कुटिल कैकेयी उठ खड़ी हुई, मानो क्रोधकी नदी उमड़ी हो। वह नदी पापरूपी पहाड़से प्रकट हुई है और क्रोधरूपी जलसे भरी है; ऐसी भयानक है कि देखी नहीं जाती ! ॥ १ ॥

दोउ बर कूल कठिन हठ धारा । भवँर कूबरी बचन प्रचारा ॥
दाहत भूपरूप तर मूला । चली बिपति बारिधि अनुकूला ॥ २ ॥

दोनों वरदान उस नदीके दो किनारे हैं, कैकेयीका कठिन हठ ही उसकी [तीव्र] धारा है और कुबरी (मन्थरा) के वचनोंकी प्रेरणा ही भँवर है। [वह क्रोधरूपी नदी] राजा दशरथरूपी वृक्षको जड़-मूलसे दहाती हुई विपत्तिरूपी समुद्रकी ओर सीधी चली है ॥ २ ॥

लखी नरेस बात फुरि साँची । तिय मिस मीचु सीस पर नाची ॥
गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी । जनि दिनकरकुल होसि कुठारी ॥ ३ ॥

राजाने समझ लिया कि बात सचमुच (वास्तवमें) सची है, स्त्रीके बहाने मेरी मृत्यु हो मिरपर नाच रही है। [तदनन्तर राजाने कैकेयीके] चरण पकड़कर उसे बिठाकर विनती की कि तू सूर्यकुल [रूपी वृक्ष] के लिये कुल्हाड़ी मत बन ॥ ३ ॥

मागु माथ अवहीं दंड तोही । रामबिरहँ जनि मारसि मोही ॥
राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँती । नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती ॥ ४ ॥

तू मेरा मस्तक माँग ले, मैं तुझे अभी दे दूँ; पर रामके विरहमें मुझे मत मार। जिम किसी प्रकारसे हो, तू रामको रख ले, नहीं तो जन्मभर तेरी छाती जलेगी ॥ ४ ॥

दो०—देखी व्याधि असाधि नृपु परेउ धरनि धुनि माथ ।

कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ ॥ ३४ ॥

राजाने देखा कि रोग असाध्य है, तब वे अत्यन्त आर्तवाणीमें 'हा राम ! हा राम ! हा रघुनाथ !' कहते हुए सिर पीटकर जमीनपर गिर पड़े ॥ ३४ ॥

चौ०—व्याकुल राउ सिथिल सब गाता । करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता ॥

कंडु सख मुख आव न धानी । जनु पाडीनु दीन बिनु पानी ॥ १ ॥

राजा व्याकुल हो गये, उनका सारा शरीर शिथिल पड़ गया ! मानो हथिनीने कल्पवृक्षको उखाड़ फेंका हो। कंड सख गया, मुखसे बात नहीं निकलती; मानो पानीके बिना पहिना नामक मछली तड़प रही हो ॥ १ ॥

पुनि कह कंडु कठोर कैकई । मनहुँ घाय महुँ मादुर देई ॥

जौ अंतहुँ अस करतबु रहेऊ । मागु मागु तुम्ह केहिं बल कहँऊ ॥ २ ॥

कैकेयी फिर कड़वे और कठोर वचन बोली, मानो घावमें जहर भर गयी हो। [कहती है—] जो अन्तमें ऐसा ही करना था, तो आपने 'माँग, माँग' किस बलपर कहा था ? ॥ २ ॥

दुर कि होइ एक समय भुआला । हँसब ठडाइ फुलाउब गाला ॥

दानि कहाउब अरु कृपनाई । होइ कि बेम कुसल रीताई ॥ ३ ॥

हे राजा ! ठहाका मारकर हँसना और गाल फुलाना क्या ये दोनों एक साथ हो सकते हैं ! दानी भी कहाना और कंजूसी भी करना ! क्या रजपूतीमें क्षेम-कुशल भी रह सकती है ! (लड़ाईमें बहादुरी भी दिखावेँ और कहीं चोट भी न लगे !) ॥ ३ ॥

छाड़हु बचनु कि धीरजु धरहु । जनि अबला जिमि करना करहु ॥

तनु तिय तनय धामु धनु धरनी । सत्यसंध कहूँ तन सम बरनी ॥ ४ ॥

या तो बचन (प्रतिज्ञा) ही छोड़ दीजिये, या धैर्य धारण कीजिये । याँ असहाय स्त्रीकी तरह रोह्ये-पीटिये नहीं । सत्यव्रतीके लिये तो शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, धन और पृथ्वी सब तिनकेके बराबर कहे गये हैं ॥ ४ ॥

दो०—मरम बचन सुनि राउ कह कहु कछु दोषु न तोर ।

लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर ॥ ३५ ॥

कैकेयीके मर्मभेदी बचन सुनकर राजाने कहा कि तू जो चाहे कह, तेरा कुछ भी दोष नहीं है । मेरा काल तुझे मानो पिशाच होकर लगा गया है, वही तुझसे यह सब कहला रहा है ॥ ३५ ॥

चो०—चहत न भरत भूपतहि भोरें । बिधि बस कुमति बसी जिय तोरें ॥

सो सबु मोर पाप परिनामू । भयउ कुठाहर जेहिं बिधि बामू ॥ १ ॥

भरत तो भूलकर भी राजपद नहीं चाहते । होनहारवश तेरे ही जीमें कुमति आ बसी है । यह सब मेरे पापोंका परिणाम है, जिससे कुसमयमें (बेमौके) विधाता विपरीत हो गया ॥ १ ॥

सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई । सब गुन धाम राम प्रभुताई ॥

करिहहिं भाइ सकल सेवकाई । होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई ॥ २ ॥

[तेरी उजाड़ी हुई] यह सुन्दर अयोध्या फिर भली भाँति बसेगी और समस्त गुणोंके धाम श्रीरामकी प्रभुता भी होगी । सब भाई उनकी सेवा करेंगे और तीनों लोकोंमें श्रीरामकी बड़ाई होगी ॥ २ ॥

तोर कलंकु मोर पछिताऊ । मुपहुँ न मिटिहि न जाइहि काऊ ॥

अब तोहि नीक लाग करु सोई । लोचन ओट बैठु मुहु गोई ॥ ३ ॥

केवल तेरा कलंक और मेरा पछतावा मरनेपर भी नहीं मिटेगा, यह किसी तरह नहीं जायगा । अब तुझे जो अच्छा लगे वही कर । मुँह छिपाकर मेरी आँखोंकी ओट जा बैठ (अर्थात् मेरे सामनेसे हट जा, मुझे मुँह न दिखा) ॥ ३ ॥

जब लगि जिओं कहउँ कर जोरी । तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी ॥

फिरि पछितैहसि अंत अभागी । मारसि गाइ नहारु लागी ॥ ४ ॥

मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जबतक मैं जीता रहूँ, तबतक फिर कुछ न कहना (अर्थात् मुझसे न बोलना) । अरी अभागिनी ! फिर तू अन्तमें पछतायेगी जो तू नहारु (तौत) के लिये गायको मार रही है ॥ ४ ॥

दो०—परेउ राउ कहि कोटि बिधि काहे करसि निदानु ।

कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसानु ॥ ३६ ॥

राजा करोड़ों प्रकारसे (बहुत तरहसे) समझाकर [और यह कहकर] कि तू क्यों सर्वनाश कर रही है, पृथ्वीपर गिर पड़े । पर कपट करनेमें चतुर कैकेयी कुछ बोलती नहीं, मानो [मौन होकर] मसान जगा रही हो (श्मशानमें बैठकर प्रेतमंत्र सिद्ध कर रही हो) ॥ ३६ ॥

चौ०—राम राम रट बिकल भुआतू । जनु बिनु पंख बिहंग बेहातू ॥

हृदयँ मनाव भोरु जनि होई । रामहि जाइ कहै जनि कोई ॥ १ ॥

राजा 'राम-राम' रट रहे हैं और ऐसे व्याकुल हैं जैसे कोई पक्षी पॉखके बिना बेहाल हो । वे अपने हृदयमें मनाते हैं कि सवेरा न हो, और कोई जाकर श्रीरामचन्द्रजीसे यह बात न कहे ॥ १ ॥

उदउ करहु जनि रबि रघुकुलगुर । अवध बिलोकि सुल होरहि उर ॥

भूप प्रीति कैकर कठिनारै । उभय अवधि बिधि रची बनारै ॥ २ ॥

हे रघुकुलके गुरु (बड़ेरे, मूलपुरुष) सूर्य भगवान् ! आप अपना उदय न करें; अयोध्याको बेहाल देखकर आपके हृदयमें बड़ी पीड़ा होगी । राजाकी प्रीति और कैकेयीकी निष्ठुरता दोनोंको ब्रह्माने सीमातक रचकर बनाया है (अर्थात् राजा प्रेमकी सीमा है और कैकेयी निष्ठुरताकी) ॥ २ ॥

बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा । बीना बेनु संख धुनि द्वारा ॥

पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक । सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक ॥ ३ ॥

बिलाप करते-करते ही राजाको सवेरा हो गया । राजद्वारपर वीणा, बाँसुरी और शंखकी ध्वनि होने लगी । भाटलोग विरदावली पढ़ रहे हैं और गवैये गुणोंका गान कर रहे हैं । सुनते ही राजाको वे बाण-जैसे लगते हैं ॥ ३ ॥

मंगल सकल सोहाहिं न कैसैं । सहगामिनिहि बिभूषन जैसैं ॥

तेहि निसि नीद परी नहिं काहू । राम दरस लालसा उछाहू ॥ ४ ॥

राजाको ये सब मङ्गल-साज कैसे नहीं मुहा रहे हैं जैसे पतिके साथ सती होनेवाली स्त्रीको आभूषण । भीगमचन्द्रजीके दर्शनकी लालसा और उत्साहसे उस रात्रिमें किसीकी भी नींद नहीं आयी ॥ ४ ॥

दो०—द्वार भोर सेवक सचिव कहहिं उदित रबि देखि ।

जागेउ अजहुँ न अवधपति कारनु कवनु विसेषि ॥ ३७ ॥

राजद्वारपर मन्त्रियों और सेवकोंकी भीड़ लगी है । वे सब सूर्यको उदय हुआ देखकर कहते हैं कि ऐसा कौन-सा विशेष कारण है कि जिससे अवधपति दशरथजी अभीतक नहीं जागे ॥ ३७ ॥

चौ०—पछिले पहर भूपु नित जागा । आजु हमहि बड़ अबरजु लागा ॥

जाहु सुमंत्र जगावहु जाई । कीजिअ काजु रजायसु पाई ॥ १ ॥

राजा नित्य ही रात्रिके पिछले पहर जाग जाया करते हैं, किन्तु आज हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है । हे सुमन्त्र ! जाओ, जाकर राजाको जगाओ; उनकी आज्ञा पाकर हम सब काम करें ॥ १ ॥

गए सुमंत्र तब राउर माहीं । देखि भयावन जात डेराहीं ॥

घाइ छाई जनु जाइ न हेरा । मानहुँ बिपति बिषाद बसेरा ॥ २ ॥

तब सुमन्त्र रावलेमें (राजमहलमें) गये । पर महलको भयानक देखकर वे जाते हुए डर रहे हैं । [ऐसा लगता है] मानो दौड़कर काट खायागा । उसकी ओर देखा भी नहीं जाता । मानो विपत्ति और विषादने वहाँ डेरा डाल रक्ता हो ॥ २ ॥

पूछै कोउ न उतरु दई । गए जहिं भवन भूप कैकरै ॥

कहि जयजीव बैठ सिरु नारै । देखि भूपगति गयउ सुनारै ॥ ३ ॥

पूछनेपर कोई जवाब नहीं देता; वे उस महलमें गये जहाँ राजा और कैकेयी थे। 'जय-जीव' कहकर, सिर नवाकर (प्रणाम करके) बैठे और राजाकी दशा देखकर तो वे सूख ही गये ॥ ३ ॥

सोच बिकल बिबरन मझि परेऊ । मानहुँ कमल मूलु परिहरेऊ ॥

सचिउ सभित सकइ नहिं पूँछी । बोली असुभ भरी सुभ छूँछी ॥ ४ ॥

[देखा कि—] राजा सोचसे व्याकुल हैं, चेहरेका रंग उड़ गया है, जमीनपर ऐसे पड़े हैं मानो कमल जड़से उलड़कर [मुर्झाया] पड़ा हो। मन्त्री मारे डरके कुछ पूछ नहीं सकते; तब अशुभसे भरी हुई और शुभसे विहीन कैकेयी बोली—॥ ४ ॥

दो०—परी न राजहि नीद निसि हेतु जान जगदीसु ।

रामु रामु रटि भोरु किय कहइ न मरसु महीसु ॥ ३८ ॥

राजाको रातभर नींद नहीं आयी; इसका कारण जगदीश्वर ही जानें। इन्होंने 'राम-राम' रटकर सोरा कर दिया, परन्तु इसका भेद राजा कुछ भी नहीं चतलाते ॥ ३८ ॥

चो०—आनहु रामहि बेगि बोलाई । समाचार तब पूँछेहु आई ॥

चलेउ सुमंत्रु राय रुख जानी । लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी ॥ १ ॥

तुम जल्दी रामको बुला लोओ। तब आकर समाचार पूछना। राजाका रुख जानकर सुमन्त्रजी चले, समझ गये कि रानीने कुछ कुचाल की है ॥ १ ॥

सोच बिकल मग परइ न पाऊ । रामहि बोलि कहिहि का राऊ ॥

उर धरि धीरजु गयउ दुआरें । पूँछहिं सकल देखि मनु माँ ॥ २ ॥

सुमन्त्र सोचसे व्याकुल हैं, रास्तेपर पैर नहीं पड़ता (आगे बढ़ा नहीं जाता)। [सोचते हैं—] रामजीको बुलाकर राजा क्या कहेंगे? किसी तरह हृदयमें धीरज धरकर वे द्वारपर गये। सब लोग उनको मनमारे (उदास) देखकर पूछने लगे ॥ २ ॥

समाधानु करि सो सबही का । गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका ॥

राम सुमंत्रहि आवत देखा । आदरु कीन्ह पितासम लेखा ॥ ३ ॥

सब लोगोंका समाधान करके (किसी तरह समझा-बुझाकर) सुमन्त्र वहाँ गये जहाँ सूर्यकुलके तिलक श्रीरामचन्द्रजी थे। श्रीरामचन्द्रजीने सुमन्त्रको आते देखा, तो पिताके समान समझकर उनका आदर किया ॥ ३ ॥

निरखि बदनु कहि भूप रजाई । रघुकुलदीपहि चलेउ लेवाई ॥

रामु कुभाँति सचिव सँग जाहीं । देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके मुखको देखकर और राजाकी आज्ञा सुनाकर वे रघुकुलके दीपक श्रीरामचन्द्रजीको [अपने साथ] लिवा चले। श्रीरामचन्द्रजी मन्त्रीके साथ बुरी तरहसे (बिना किसी लवाजमेके) जा रहे हैं, यह देखकर लोग जहाँ-तहाँ विषाद कर रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—जाइ दीख रघुवंसमनि नरपति निपट कुसाजु ।

सहमि परेउ लखि सिंधिनिहि मनहुँ बृद्ध गजराजु ॥ ३९ ॥

रघुवंशमणि श्रीरामचन्द्रजीने जाकर देखा कि राजा अत्यन्त ही बुरी हालतमें पड़े हैं, मानो सिंहीको देखकर कोई बूढ़ा गजराज सहमकर गिर पड़ा हो ॥ ३९ ॥

चौ०—सूखहिं अधर जरइ सबु अंगू । मनहुँ वीन मनिहीन भुअंगू ॥

सरुष समीप दीखि कैकेई । मानहुँ मीचु घरी गनि छेई ॥ १ ॥

राजाके ओठ सूख रहे हैं और सारा शरीर जल रहा है । मानो मणिके बिना साँप दुखी हो रहा हो । पास ही क्रोधसे भरी कैकेयीको देखा, मानो [साक्षात्] मृत्यु ही बैठी [राजाके जीवनकी अन्तिम] घड़ियाँ गिन रही हो ॥ १ ॥

करुनामय मृदु राम सुभाऊ । प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ ॥

तदपि धीर धरि समउ बिचारी । पूँछी मधुर बचन महतारी ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका स्वभाव कोमल और करुणामय है । उन्होंने यह पहला ही दुःख देखा; इससे पहले दुःख कभी सुना ही न था । तो भी समयका विचार करके, हृदयमें धीरज धरकर उन्होंने मीठे वचनोसे माता कैकेयीसे पूछा—॥ २ ॥

मोहि कहु मातु तात दुख कारन । करिअ जतन जेहिं होइ निवारन ॥

सुनहु राम सबु कारनु एह । राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहु ॥ ३ ॥

हे माता ! मुझे पिताजीके दुःखका कारण कहो, ताकि जिससे उसका निवारण हो (दुःख दूर हो) वह यत्न किया जाय । [कैकेयीने कहा—] हे राम ! सुनो, सारा कारण यही है कि राजाका तुमपर बहुत स्नेह है ॥ ३ ॥

देन कहेन्हि मोहि दुइ वरदाना । मांगउँ जो कहु मोहि सोहाना ॥

सो सुनि भयउ भूप उर सोचू । छाड़ि न सकहिं तुम्हार संकोचू ॥ ४ ॥

इन्होंने मुझे दो वरदान देनेको कहा था । मुझे जो कुछ अच्छा लया, वही मैंने माँगा । उसे सुनकर राजाके हृदयमें सोच हो गया; क्योंकि ये तुम्हारा संकोच नहीं छोड़ सकते ॥ ४ ॥

दो०—सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु ।

सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलंसु ॥ ४० ॥

इधर तो पुत्रका स्नेह है और उधर वचन (प्रतिज्ञा) ; राजा इसी धर्मसंकटमें पड़ गये हैं । यदि तुम कर सकते हो, तो राजाकी आज्ञा शिरोधार्य करो और इनके कठिन क्लेशका मिटाओ ॥ ४० ॥

चौ०—निधरक बैठि कहइ कटु यानी । सुनत कठिनता अनि अकुलानी ॥

जीभ कमान बचन सर नाना । मनहुँ महिष मृदु लच्छ समाना ॥ १ ॥

कैकेयी बेधइक बैठी ऐसी कड़वी वाणी कह रही है जिसे सुनकर स्वयं कठोरता भी अत्यन्त व्याकुल हो उठी । जीभ धनुष है, वचन बहुतसे तीर हैं, और मानो राजा ही कोमल निशानेके समान हैं ॥ १ ॥

जनु कठोरपनु धरें सरीरु । सिखइ धनुषविद्या बर वीरु ॥

सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई । बैठि मनहुँ तनु धरि निदुराई ॥ २ ॥

[इस सारे साज-सामानके साथ] मानो स्वयं कठोरपन श्रेष्ठ वीरका शरीर धारण करके धनुषविद्या सीख रहा है । श्रीरघुनाथजीको सब हाल सुनाकर वह ऐसे बैठी है मानो निधुरता ही शरीर धारण किये हुए हो ॥ २ ॥

मन मुसुकार भानुकुलभानू । राम सहज आनंदनिधानू ॥

बोले बचन बिगत सब दूषण । मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषण ॥ ३ ॥

सूर्यकुलके सूर्य, स्वाभाविक ही आनन्दनिधान श्रीरामचन्द्रजी मनमें मुस्कराकर सब दूषणोंसे रहित ऐसे कोमल और सुन्दर वचन बोले जो मानो वाणीके भूषण ही थे—॥ ३ ॥

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥

तनय मातु पितु तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥ ४ ॥

हे माता ! सुनो, वही पुत्र बड़भागी है जो पिता-माताके वचनोंका अनुरागी है । माता-पिताको सन्तुष्ट करनेवाला पुत्र, हे जननी ! सारे संसारमें दुर्लभ है ॥ ४ ॥

दो०—मुनिगन मिलनु बिसेषि वन सबहि माँति हित मोर ।

तेहि महुँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर ॥ ४१ ॥

वनमें विशेषरूपसे मुनियोंका मिलाप होगा, जिसमें मेरा सभी प्रकारसे कल्याण है । उसमें भी, फिर पिताजीकी आज्ञा और हे जननी ! तुम्हारी भी सम्मति है; ॥ ४१ ॥

चौ०—भरतु प्राणप्रिय पावहिं राजू । बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू ॥

जौं न जाऊँ बन ऐसेहु काजा । प्रथम गनिअ मोहि मूढ़समाजा ॥ १ ॥

और प्राणप्रिय भरत राज्य पावेंगे । [इन सभी बातोंको देखकर यह प्रतीत होता है कि] आज विधाता सब प्रकारसे मुझे सम्मुख है (मेरे अनुकूल हैं) । यदि ऐसे कामके लिये भी मैं वनको न जाऊँ तो मूर्खोंके समाजमें सबसे पहले मेरी गिनती करनी चाहिये ॥ १ ॥

सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी । परिहरि अमृत लेहिं बिषु मागी ॥

तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं । देवु बिचारि मातु मन माहीं ॥ २ ॥

जो कल्पवृक्षको छोड़कर रेंडकी सेवा करते हैं और अमृत त्यागकर विष माँग लेते हैं, हे माता ! तुम मनमें विचारकर देखो, वे भी ऐसा मौका पाकर कभी न चूकेंगे ॥ २ ॥

अंश एक दुखु मोहि बिसेरी । निपट बिकल नरनायकु देखी ॥

थोरिहिं बात पितहि दुख भारी । होति प्रतीति न मोहि महतारी ॥ ३ ॥

हे माता ! मुझे एक ही दुःख विशेषरूपसे हो रहा है, वह महाराजको सर्वथा व्याकुल देखकर । इस थोड़ी-सी बातके लिये ही पिताजीको इतना भारी दुःख हो, हे माता ! मुझे इस बातपर विश्वास नहीं होता ॥ ३ ॥

राउ धीर गुन उब्धि अगाधू । भा मोहि तैं कलु बड़ अपराधू ॥

जातैं मोहि न कहत कलु राजू । मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ ॥ ४ ॥

क्योंकि महाराज तो बड़े ही धीर और गुणोंके अगाध समुद्र हैं । अवश्य ही मुझसे कोई बड़ा अपराध हो गया है, जिसके कारण महाराज मुझसे कुछ नहीं कहते । तुम्हें मेरी सौगंध है, माता ! तुम सच-सच कहो ॥ ४ ॥

दो०—सहज सरल रघुवर बचन कुमति कुटिल करि जान ।

चलइ जौंक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समान ॥ ४२ ॥

रघुकुलमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके स्वभावसे ही सीधे वचनोंको दुर्बुद्धि कैकेयी टेढ़ा ही करके जान रही है; जैसे, यद्यपि जल समान ही होता है, परन्तु जोंक उसमें टेढ़ी चालसे ही चलती है ॥ ४२ ॥

चौ०—रहसी राखि रामरख पाई । बोली कपट सनेहु जनाई ॥

सपथ तुम्हार भरत कै माना । हेतु न दूसर मैं कछु जाना ॥ १ ॥

रानी कैकेयी श्रीरामचन्द्रजीका रख पाकर हर्षित हो गयी और कपटपूर्ण स्नेह दिखाकर बोली—तुम्हारी सपथ और भरतकी सौगंध है, मुझे राजाके दुःखका दूसरा कुछ भी कारण विदित नहीं है ॥ १ ॥

तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता । जननी जनक बंधु सुखदाता ॥

राम सत्य सबु जो कछु कहह । तुम्ह पितु मातु बचन रत अहह ॥ २ ॥

हे तात ! तुम अपराधके योग्य नहीं हो (तुमसे माता-पिताका अपराध बन पड़े, यह सम्भव नहीं) । तुम तो माता-पिता और भाइयोंको सुख देनेवाले हो । हे राम ! तुम जो कुछ कह रहे हो, सब सत्य है । तुम पिता-माताके वचनों [के पालन] में तत्पर हो ॥ २ ॥

पितहि बुझाई कहहु बलि सोई । चौथेपन जेहिं अजसु न हाई ॥

तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहिं दीन्हें । उचित न तासु निरादर कीन्हें ॥ ३ ॥

मैं तुम्हारी बलिहारी जाती हूँ, तुम पिताको समझाकर वही बात कहो जिससे चौथेपन (बुढ़ापे) में इनका अपयश न हो । जिस पुण्यने इनको तुम-जैसे पुत्र दिये हैं उसका निरादर करना उचित नहीं ॥ ३ ॥

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे । मगहँ गयादिक तीरथ जैसे ॥

रामहि मातुबचन सब भाए । जिमि सुरसरिगत सलिल सुहाए ॥ ४ ॥

कैकेयीके बुरे मुखमें ये शुभ वचन कैसे लगते हैं जैसे मगध देशमें गया आदिक तीर्थ ! श्रीरामचन्द्रजीकी माता कैकेयीके सब वचन ऐसे अच्छे लगे जैसे गंगाजीमें जाकर [अच्छे-बुरे सभी प्रकारके] जल शुभ, सुन्दर हो जाते हैं ॥ ४ ॥

दो०—गइ मुरुछा रामहि सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह ।

सचिव राम आगमन कहि विनय समय सम कीन्ह ॥ ४३ ॥

इतनेमें राजाकी मूर्च्छा दूर हुई, उन्होंने रामका स्मरण करके ('राम ! राम !' कहकर) फिरकर करवट ली । मन्त्रीने श्रीरामचन्द्रजीका आना कहकर समयानुकूल विनती की ॥ ४३ ॥

चौ०—अवनिय अकनि रामु पगु धारे । धरि धीरजु तब नयन उधारे ॥

सचिव सँभारि राउ बैठारे । चरन परत नृप रामु निहारे ॥ १ ॥

जब राजाने सुना कि श्रीरामचन्द्र पधारे हैं तो उन्होंने धीरज धरके नेत्र खोले । मन्त्रीने सँभालकर राजाको बैठाया, राजाने श्रीरामचन्द्रजीको अपने चरणोंमें पड़ते (प्रणाम करते) देखा ॥ १ ॥

लिप सनेहँ विकल उर लाई । गै मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई ॥

रामहि चितइ रहेउ नरनाह । चला बिलोचन बारिप्रबाह ॥ २ ॥

स्नेहसे विकल राजाने रामजीकी हृदयसे लगा लिया, मानो सौंपने अपनी खोयी हुई मणि फिरसे पा ली हो । राजा दशरथजी श्रीरामजीको देखते ही रह गये । उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली ॥ २ ॥

सोकबिबस कछु कहै न पारा । हृदयँ लगावत बारहिं बारा ॥

बिधिहि मनाष राउ मन माहीं । जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं ॥ ३ ॥

शोकके विशेष वश होनेके कारण राजा कुछ कह नहीं सकते। वे बार-बार श्रीरामचन्द्रजीको हृदयसे लगाते हैं और मनमें ब्रह्माजीको मनाते हैं कि जिससे श्रीरघुनाथजी वनको न जायँ ॥ ३ ॥

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी । विनती सुनहु सदासिब मोरी ॥

आसुतोष तुम्ह अवदर दानी । भारति हरहु दीन जनु जानी ॥ ४ ॥

फिर महादेवजीका स्मरण करके उनसे निहोरा करते हुए कहते हैं—हे सदाशिव ! आप मेरी विनती सुनिये । आप आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होनेवाले) हैं, और औदरदानी (मुँहमाँगा दे डालनेवाले) हैं । अतः मुझे अपना दीन सेवक जानकर मेरे दुःखको दूर कीजिये ॥ ४ ॥

दो०—तुम्ह प्रेरक सब के हृदयँ सो मति रामहि देहु ।

बचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सीलु सनेहु ॥ ४४ ॥

आप प्रेरकरूपसे सबके हृदयमें हैं, आप श्रीरामचन्द्रको ऐसी बुद्धि दीजिये जिससे वे मेरे वचनको त्यागकर और शील-स्नेहको छोड़कर घरहीमें रह जायँ ॥ ४४ ॥

चौ०—अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ । नरक पर्यँ बर सुखपुर्ण जाऊ ॥

सब दुख दुसह सदावहु मोही । लोचन ओट रामु जनि होही ॥ १ ॥

जगतमें चाहे अपयश हो और सुयश नष्ट हो जाय; चाहे [नया पाप होनेसे] मैं नरकमें गिरूँ, अथवा स्वर्ग चला जाय (पूर्व पुण्योंके फलस्वरूप मिलनेवाला स्वर्ग चाहे मुझे न मिले); और भी सब प्रकारके दुःख दुःख आप मुझसे सहन करा लें, पर श्रीरामचन्द्र मेरी आँखोंकी ओट न हों ॥ १ ॥

अस मन गुनइ राउ नहिं बोला । पीपर पात सरिस मनु डोला ॥

रघुपति पितहि प्रेमबस जानी । पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी ॥ २ ॥

राजा मन-ही-मन इस प्रकार विचार कर रहे हैं, बोलते नहीं । उनका मन पीपलके पत्तेकी तरह झोल रहा है । श्रीरघुनाथजीने पिताको प्रेमके वश जानकर, और यह अनुमान करके कि माता फिर कुछ कहेगी [तो पिताजीको दुःख होगा]—॥ २ ॥

वेस काल अवसर अनुसारी । बोले बचन विनीत बिचारी ॥

तात कहउँ कछु करउँ दिठारै । अनुचितु छमब जानि लरिकाई ॥ ३ ॥

देश, काल और अवसरके अनुकूल विचारकर विनीत वचन कहे—हे तात ! मैं कुछ कहता हूँ, यह दिठारै करता हूँ; इस अनौचित्यको मेरी बाल्यावस्था समझकर क्षमा कीजियेगा ॥ ३ ॥

अति लघु बात लागि दुखु पावा । काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥

देखि गोसाईँहि पूँछिउँ माता । सुनि प्रसंगु भप सीतल गाता ॥ ४ ॥

इस अत्यन्त तुच्छ बातके लिये आपने इतना दुःख पाया ! मुझे किसीने पहले कहकर यह बात नहीं जनायी । स्वामीको (आपको) इस दशमें देखकर मैंने मातासे पूछा । उनसे सारा प्रसंग सुनकर मेरे सब अंग झीतल हो गये (मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई) ॥ ४ ॥

दो०—मंगल समय सनेहबस सोच परिहरिअ तात ।

आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात ॥ ४५ ॥

हे पिताजी ! इस मङ्गलके समय कोहवश होकर सोच करना छोड़ दीजिये और हृदयमें प्रसन्न होकर मुझे आशा दीजिये । यह कहते हुए प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सर्वाङ्ग पुलकित हो गये ॥ ४५ ॥

चौ०—घन्य जनमु जगतीतल तासू । पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ॥
चारि पदरथ करतल ताकें । प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें ॥ १ ॥

[उन्होंने फिर कहा—] इस पृथ्वीतलपर उसका जन्म घन्य है जिसके चरित्र सुनकर पिताको परम आनन्द हो । जिसको माता-पिता प्राणोंके समान प्रिय हैं, चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) उसके करतलगत (मुझमें) रहते हैं ॥ १ ॥

आयसु पालि जनमफलु पाई । ऐहउँ बेगिहिं होउ रजार्ई ॥
बिदा मातु सन आवउँ मागी । चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी ॥ २ ॥

आपको आज्ञा पालन करके और जन्मका फल पाकर मैं जल्दी ही लौट आऊँगा, अतः कृपया आज्ञा दीजिये । मातासे विदा माँग आता हूँ, फिर आपके पैर लगकर (प्रणाम करके) वनको चढ़ूँगा ॥ २ ॥

अस कहि राम गवनु तब कीन्हा । भूप सोक बस उतर न दीन्हा ॥
नगर व्यापि गइ बात सुतीछी । लुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी ॥ ३ ॥

ऐसा कहकर तब श्रीरामचन्द्रजी वहाँसे चले गये । राजाने शोकवश कोई उत्तर नहीं दिया । वह बहुत ही तीखी (अप्रिय) बात नगरभरमें इतनी जल्दी फैल गयी मामो डंक मारते ही बिच्छूका विष सारे शरीरमें चढ़ गया हो ॥ ३ ॥

सुनि भय बिकल सकल नर नारी । बेलि बिटप जिमि देखि दवारी ॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई । बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई ॥ ४ ॥

इस बातको सुनकर सब स्त्री-पुरुष ऐसे व्याकुल हो गये जैसे दावानल (वनमें आग लगी) देखकर बेल और वृक्ष मुरझा जाते हैं । जो जहाँ सुनता है वह वहीं सिर धुनने (पीटने) लगता है । बड़ा विषाद है । किसीको धीरज नहीं बँधता ॥ ४ ॥

दो०—मुख सुखाहिं लोचन स्रवाहिं सोकु न हृदयँ समाइ ।

मनहुँ करुनरस कटकई उतरी अवध बजाइ ॥ ४६ ॥

सबके मुख सूखे जाते हैं । आँखोंसे आँसू बहते हैं । शोक हृदयमें नहीं समाता । मानो करुणारसकी सेना अवधपर डंका बजाकर उतर आयी हो ॥ ४६ ॥

चौ०—मिलेहि माझ बिधि बात बेगारी । जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी ॥
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ । छाइ भवन पर पावकु धरेऊ ॥ १ ॥

सब मेल मिल गये थे (सब संयोग ठीक हो गये थे), इतनेमें ही विधाताने बात बिगाड़ दी । जहाँ-तहाँ लोग कैकेयीको गाली दे रहे हैं । इस पापिनको क्या सूझ पड़ा, जो इसने छाये घरपर आग रख दी ॥ १ ॥

निज कर नयन काढ़ि चह दीखा । डारि सुधा बिषु चाहत चीखा ॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी । भइ रघुवंस बेनु बन आगी ॥ २ ॥

यह अपने हाथसे अपनी आँखोंको निकालकर (आँखोंके बिना ही) देखना चाहती है, और अमृत फेंककर विष चखना चाहती है ! यह कुटिल, कठोर, दुर्बुद्धि और अभागिनी कैकेयी रघुवंशरूपी बाँसके वनके लिये अग्नि हो गयी ! ॥ २ ॥

पालव बैठि पेहु एहिं काटा । सुख महुँ सोक ठाडु धरि ठाटा ॥
सदा रामु एहि प्रान समाना । कारन कवन कुटिलपनु ठाना ॥ ३ ॥

टहनीपर बैठकर इसने पेड़को काट डाला, सुखमें शोकका ठाट ठटकर रख दिया। भीरामचन्द्रजी इसे सदा प्राणोंके समान प्रिय थे; फिर भी न जाने किस कारण इसने यह कुटिलता ठानी ॥ ३ ॥

सत्य कहहिं कबि नारिसुभाऊ । सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ ॥
निज प्रतिबिंबु बरकु गहि आई । जानि न जाइ नारिगति भाई ॥ ४ ॥

कवि सत्य ही कहते हैं कि स्त्रीका स्वभाव सब प्रकारसे पकड़में न आने योग्य, अथाह और भेद-भरा होता है। अपनी परछाहीं भले ही पकड़ी जाय, पर भाई ! स्त्रियोंकी गति (चाल) नहीं जानी जाती ॥ ४ ॥

दो०—काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाह ।

का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाह ॥ ४७ ॥

आग क्या नहीं जला सकती ! समुद्रमें क्या नहीं समा सकता ! अबला कहनेवाली प्रबल स्त्री [जाति] क्या नहीं कर सकती ! और जगत्में काल किसको नहीं खाता ! ॥ ४७ ॥

चौ०—का सुनाइ बिधि काह सुनावा । का देखाइ चह काह देखावा ॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा । बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा ॥ १ ॥

विधाताने क्या सुनाकर क्या सुना दिया और क्या दिखाकर अब वह क्या दिखाना चाहता है ! एक कहते हैं कि राजाने अच्छा नहीं किया। दुर्बुद्धि कैकेयीको विचारकर वर नहीं दिया—॥ १ ॥

जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु । अबला बिबस ग्यानु गुनु गा जनु ॥
एक धरम परमिति पहिचाने । नृपहि दोसु नहिं देहिं सयाने ॥ २ ॥

जो (जिसके कारण) वे हठ करके (कैकेयीकी बातको पूरा करनेमें अड़े रहकर) स्वयं सब दुःखोंके पात्र हो गये। स्त्रीके विशेष वश होनेके कारण मानो उनका ज्ञान और गुण जाता रहा। एक (दूसरे) जो धर्मकी मर्यादाको जानते हैं और सयाने हैं, वे राजाको दोष नहीं देते ॥ २ ॥

सिबि दधीचि हरिचंद कहानी । एक एक सन कहहिं बखानी ॥
एक भरत कर संमत कहहीं । एक उदास भायँ सुनि रहहीं ॥ ३ ॥

वे शिवि, दधीचि और हरिश्चन्द्रकी कथा एक दूसरेसे बखानकर कहते हैं। कोई एक इसमें भरतजीकी सम्मति बताते हैं। कोई एक सुनकर उदासीनभावसे रह जाते हैं (कुछ बोलते नहीं) ॥ ३ ॥

कान मूदि कर रद गहि जीहा । एक कहहिं यह बात अलीहा ॥
सुहुन जाहिं अस कहत तुम्हारे । रामु भरत कहँ प्रान पिआरे ॥ ४ ॥

कोई हाथोंसे कान मूँदकर और जीभको दाँतोंतले दबाकर कहते हैं कि यह बात झूठ है, ऐसी बात कहनेसे तुम्हारे पुण्य नष्ट हो जायँगे। भरतजीको तो भीरामचन्द्रजी प्राणोंके समान प्यारे हैं ॥ ४ ॥

दो०—चंदु चवै बरु अनल कन सुधा होइ बिषतूल ।

सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु भरतु राम प्रतिकूल ॥ ४८ ॥

चन्द्रमा चाहे [शीतल किरणोंकी जगह] आगकी चिनगारियाँ बरसाने लगे और अमृत चाहे विषके समान हो जाय, परन्तु भरतजी स्वप्नमें भी भीरामचन्द्रजीके विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे ॥ ४८ ॥

चौ०—एक बिधातहि दूषनु देहीं । सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं ॥

सरभरु नगर सोधु सब काहु । दुसह दाहु उर मिटा उछाहु ॥ १ ॥

कोई एक विधाताको दोष देते हैं कि जिसने अमृत दिखाकर विष दे दिया। नगरभरमें खलबली मच गयी, सब किसीको सोच हो गया। हृदयमें दुःसह जलन हो गयी, आनन्द-उत्साह मिट गया ॥ १ ॥

विप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकई केरी ॥

लगीं देन सिख सीलु सराही। बचन बानसम लागहिं ताही ॥ २ ॥

ब्राह्मणोंकी खियाँ, कुलकी माननीय बड़ी-बूढ़ी और जो कैकेयीकी परम प्रिय थीं, वे उसके शीलकी सराहना करके उसे सीख देने लगीं। पर उसको उनके वचन बाणके समान लगते हैं ॥ २ ॥

भरतु न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यहु सबु जगु जाना ॥

करहु राम पर सहज सनेह। केहिं अपराध आजु बनु वेह ॥ ३ ॥

[वे कहती हैं—] तुम तो सदा कहा करती थीं कि श्रीरामचन्द्रके समान मुझको भरत भी प्यारे नहीं हैं; इस बातको सारा जगत् जानता है। श्रीरामचन्द्रजीपर तो तुम स्वाभाविक ही स्नेह करतो रही हो। आज किस अपराधसे उन्हें वन देती हो ? ॥ ३ ॥

कबहुँ न कियहु सवति आरेसु। प्रीति प्रतीति जान सबु देसु ॥

कौसल्याँ अब काह बिगारा। तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा ॥ ४ ॥

तुमने कभी सौतियाडाह नहीं किया। सारा देश तुम्हारे प्रेम और विश्वासको जानता है। अब कौसल्याने तुम्हारा कौन-सा बिगाड़ कर दिया, जिसके कारण तुमने सारे नगरपर बज्र गिरा दिया ॥ ४ ॥

दो०—सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु कि रहिहहिं धाम ।

राजु कि भूँजब भरत पुर नृपु कि जिहहि विनु राम ॥ ४९ ॥

क्या सीताजी अपने पति (श्रीरामचन्द्रजी) का साथ छोड़ देंगी ? क्या लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके बिना घर रह सकेंगे ? क्या भरतजी श्रीरामचन्द्रजीके बिना अयोध्यापुरीका राज्य भोग सकेंगे ? और क्या राजा श्रीरामचन्द्रजीके बिना जीवित रह सकेंगे ? (अर्थात् न सीताजी यहाँ रहेंगी, न लक्ष्मणजी रहेंगे, न भरतजी राज्य करेंगे और न राजा ही जीवित रहेंगे; सब उजाड़ हो जायगा) ॥ ४९ ॥

चौ०—अस बिचारि उर छाड़हु कोह। सोक कलंक कोटि जनि होह ॥

भरतहि अवसि देहु जुवराजू। कानन काह राम कर काजू ॥ १ ॥

हृदयमें ऐसा विचारकर क्रोध छोड़ दो, शोक और कलङ्ककी कोठी मत बनो। भरतको अवश्य युवराज-पद दो, पर श्रीरामचन्द्रजीका वनमें क्या काम है ! ॥ १ ॥

नाहिन रामु राज के भूखे। घरम धुरीन बिषय रस रुखे ॥

गुरगृह बसहुँ रामु तजि गेह। नृप सन अस बर दूसर लेह ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजी राज्यके भूखे नहीं हैं। वे धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले और विषय-रससे रुखे हैं अर्थात् उनमें विषयासक्ति है ही नहीं। [इसलिये तुम यह शंका न करो कि श्रीरामजी वन न गये तो भरतके राज्यमें विघ्न करेंगे; इतनेपर भी मन न माने तो] तुम राजासे दूसरा ऐसा (यह) वर ले लो कि श्रीराम घर छोड़कर गुरुके घर रहें ॥ २ ॥

जौ नहिं लगिहहु कहें हमारें। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारें ॥

जौ परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई ॥ ३ ॥

जो तुम हमारे कहनेपर न चलेगी तो तुम्हारे हाथ कुछ भी न लगेगा। यदि तुमने कुछ हँसी की हो तो उसे प्रकटमें कहकर जना दो [कि मैंने दिल्ली की है] ॥ ३ ॥

राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहि सुनि तुम्ह कहूँ लोगू ॥

उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई ॥ ४ ॥

राम-सरीखे पुत्र क्या वनके योग्य हैं ! यह सुनकर लोग तुम्हें क्या कहेंगे ! जल्दी उठो और वही उपाय करो जिस उपायसे इस शोक और कलङ्कका नाश हो ॥ ४ ॥

छं०—जेहि भाँति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल पालही।

हठि फेर रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही ॥

जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चंद बिनु जिमि जामिनी।

तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जियँ भामिनी ॥

जिस तरह [नगरभरका] शोक और [तुम्हारा] कलङ्क मिटे, वही उपाय करके कुलकी रखा कर। वन जाते हुए श्रीरामजीको हठ करके लौटा ले, दूसरी कोई बात न चला। तुलसीदासजी कहते हैं—जैसे सूर्यके बिना दिन, प्राणके बिना शरीर और चन्द्रमाके बिना रात [निजीव तथा शोभाहीन हो जाते हैं], वैसे ही श्रीरामचन्द्रजीके बिना अयोध्या हो जायगी; हे भामिनि ! तू अपने हृदयमें इस बातको समझ (विचारकर देख) तो सही ॥

सो०—सखिन्ह सिखावनु दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित।

तेईं कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी ॥ ५० ॥

इस प्रकार सखियोंने ऐसी सीख दी जो सुननेमें मीठी और परिणाममें हितकारी थी। पर कुटिल कुबरीकी सिखायी-पढ़ायी हुई कैकेयीने इधर जरा भी कान नहीं दिया ॥ ५० ॥

चौ०—उतर न देइ दुसह रिस रुखी। मृगिन्ह चितव जनु बाधनि भूखी ॥

व्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अमागी ॥ १ ॥

कैकेयी कोई उत्तर नहीं देती, वह दुःसह क्रोधके मारे रुखी (बेमुरव्वत) हो रही है। ऐसे देखती है मानो भूखी बाधिन हरिनियोंको देख रही हो। तब सखियोंने रोगको असाध्य समझकर उसे छोड़ दिया। सब उसको मन्दबुद्धि, अभागिनी कहती हुई चल दीं ॥ १ ॥

राजु करत यह दैअं बिगोई। कीन्हैसि अस जस करइ न कोई ॥

एहि बिधि बिलपहिं पुर नर नारीं। देहिं कुचालिहि कौटिक गारीं ॥ २ ॥

राज्य करते हुए इस कैकेयीको दैवने नष्ट कर दिया। इसने जैसा कुछ किया, वैसा कोई भी न करेगा ! नगरके सब स्त्री-पुरुष इस प्रकार विलाप कर रहे हैं और उस कुचाली कैकेयीको करोड़ों गालियाँ दे रहे हैं ॥ २ ॥

जरहिं बिषम जर लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा ॥

बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जलचर गन सूखत पानी ॥ ३ ॥

लोग विषमज्वर (भयानक दुःखकी आग) से जल रहे हैं। लंबी साँसें लेते हुए वे कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीके बिना जीनेकी कौन आशा है। महान् वियोगकी आशंकासे प्रजा ऐसी व्याकुल हो गयी है मानो पानी सूखनेके समय जलचर जीवोंका समुदाय व्याकुल हो ! ॥ ३ ॥

अति विषाद बस लोग लोगार्ह । गए मातु पहिं रामु गोसाईं ॥

मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ । मिटा सोचु जनि राखै राज ॥ ४ ॥

सभी पुरुष और स्त्रियाँ अत्यन्त विषादके वश हो रहे हैं । स्वामी श्रीरामचन्द्रजी माता (कोसल्या) के पास गये । उनका मुख प्रसन्न है और चित्तमें चौगुना चाव है । यह सोच मिट गया है कि राजा कहीं रख न लें । [श्रीरामजीको राजतिलककी बात सुनकर विषाद हुआ था कि सब भाइयोंको छोड़कर बड़े भाई मुझको ही राजतिलक क्यों होता है । अब माता कैकेयीकी आज्ञा और पिताकी मौन सम्मति पाकर वह सोच मिट गया ।] ॥ ४ ॥

दो०—नव गयंदु रघुवीर मनु राजु अलान समान ।

छूट जानि वन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान ॥ ५१ ॥

रघुवीर (श्रीरामचन्द्रजी) का मन नये पकड़े हुए हाथीके समान और राजतिलक उस हाथीके बाँधनेकी काँटेदार लोहेकी बेड़ीके समान है । 'वन जाना है' यह सुनकर, अपनेको बन्धनसे छूटा जानकर, उनके हृदयमें आनन्द बढ़ गया है ॥ ५१ ॥

चौ०—रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा । मुदित मातुपद नायउ माथा ॥

दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हि । भूषन बसन निछावरि कीन्हि ॥ १ ॥

रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजीने दोनों हाथ जोड़कर आनन्दके साथ माताके चरणोंमें सिर नवाया । माताने आशीर्वाद दिया, अपने हृदयसे लगा लिया और उनपर गहने तथा कपड़े न्योछावर किये ॥ १ ॥

बार बार मुख चुंबति माता । नयन नेह जलु पुलकित गाता ॥

गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए । झवत प्रेमरस पयद सुहाए ॥ २ ॥

माता बार-बार श्रीरामचन्द्रजीका मुख चूम रही हैं । नेत्रोंमें प्रेमका जल भर आया है, और सब अंग पुलकित हो गये हैं । अपनी गोदमें बैठकर फिर हृदयसे लगा लिया । सुन्दर स्तन प्रेमरस (दूध) बहाने लगे ॥ २ ॥

प्रेमु प्रमोदु न कछु कहि जाई । रंक धनद पदवी जनु पाई ॥

सादर सुंदर बदनु निहारी । बौली मधुर बचन महतारी ॥ ३ ॥

उनका प्रेम और महान् आनन्द कुछ कहा नहीं जाता । मानो कंगालने कुबेरकी पदवी पा ली हो । बड़े आदरके साथ सुन्दर मुख देखकर माता मधुर वचन बोली—॥ ३ ॥

कहहु तात जननी बलिहारी । कबहिं लगन मुद मंगलकारी ॥

सुकुत सील सुख सीवँ सुहाई । जनम लाभ कह अवधि अघाई ॥ ४ ॥

हे तात ! माता बलिहारी जाती है, कहो, वह आनन्द-मङ्गलकारी लग्न कब है, जो मेरे पुण्य, शील और सुखकी सुन्दर सीमा है और जन्म लेनेके लाभकी पूर्णतम अवधि है; ॥ ४ ॥

दो०—जेहि चाहत नर नारि सब अति आरत एहि मौति ।

जिमि चातक चातकि तृपित वृष्टि सरद रितु स्वाति ॥ ५२ ॥

तथा जिस (लग्न) को सभी स्त्री-पुरुष अत्यन्त व्याकुलतासे इस प्रकार चाहते हैं जिस प्रकार प्यासे चातक और चातकी शरद् ऋतुके स्वातिनक्षत्रकी वर्षाको चाहते हैं ॥ ५२ ॥

चौ०—तात जाउँ बलि बेगि नहाइ । जो मन भाव मधुर कहु खाइ ॥

पितु समीप तब जाणहु मैआ । भइ बड़ि बार जाइ बलि मैआ ॥ १ ॥

हे तात ! मैं बलैया लेती हूँ, तुम जल्दी नहा लो और जो मन भावे, कुछ मिठाई खा लो । मैआ ! तब पिताके पास जाना । बहुत देर हो गयी है, माता बलिहारी जाती है ॥ १ ॥

मातुबचन सुनि अति अनुकूला । जनु सनेह सुरतर के फूला ॥

सुख मकरंद भरे धियमूला । निरखि राम मनु भवँ न भूला ॥ २ ॥

माताके अत्यन्त अनुकूल वचन सुनकर—जो मानो स्नेहरूपी कल्पवृक्षके फूल थे, जो सुखरूपी मकरन्द (पुष्परस) से भरे थे और श्री (राजलक्ष्मी) के मूल थे—ऐसे वचनरूपी फूलोंको देखकर श्रीरामचन्द्रजीका मनरूपी भौरा उनपर नहीं भूला ॥ २ ॥

धरम धुरीन धरमगति जानी । कहेउ मातु सन अति मृदु बानी ॥

पिताँ दीन्ह मोहि काननराजू । जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥ ३ ॥

धर्मधुरीण श्रीरामचन्द्रजीने धर्मकी गतिको जानकर मातासे अत्यन्त कोमल वाणीसे कहा—हे माता ! पिताजीने मुझको वनका राज्य दिया है, जहाँ सब प्रकारसे मेरा बड़ा काम बननेवाला है ॥ ३ ॥

आयसु देहि मुदित मन माता । जेहिं मुद मंगल कानन जाता ॥

जनि सनेह बस डरपसि भोरें । आनदु अंघ अनुग्रह तोरें ॥ ४ ॥

हे माता ! आप प्रसन्न मनसे मुझे आश दीजिये, जिससे मेरी वनयात्रामें आनन्द-मङ्गल हो । मेरे स्नेहवश भूलकर भी डरिये नहीं; हे माता ! आपके अनुग्रहसे आनन्द ही होगा ॥ ४ ॥

दो०—बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितुबचन प्रमान ।

आइ पाय पुनि देखिहउँ मनु जनि करसि मलान ॥ ५३ ॥

चौदह वर्ष वनमें रहकर, पिताजीके वचनको पूरा कर, फिर लौटकर आपके चरणोंका दर्शन करूँगा; आप मनको म्लान (दुखी) न कीजिये ॥ ५३ ॥

चौ०—बचन बिनीत मधुर रघुबर के । सर सम लगे मातु उर करके ॥

सहमि सुखि सुनि सीतलि बानी । जिमि जबास परें पावस पानी ॥ १ ॥

रघुकुलमें श्रेष्ठ श्रीरामजीके ये बहुत ही नम्र और मीठे वचन माताके हृदयमें बाणके समान लगे और कसकने लगे । उस झीतल वाणीको सुनकर कौसल्या वैसे ही सहमकर सूख गयीं जैसे बरसातका पानी पड़नेसे जवासा सूख जाता है ॥ १ ॥

कहि न जाइ कहु हृदय विषाद । मनहुँ मृगी सुनि केहरिनादू ॥

नयन सजल तन थर थर काँपी । माजहि खाइ मीन जनु मापी ॥ २ ॥

हृदयका विषाद कुछ कहा नहीं जाता । मानो सिंहकी गर्जना सुनकर हिरनी विकल हो गयी हो । नेत्रोंमें जल भर आया, शरीर थर-थर काँपने लगा । मानो मछली माँजा (पहली वर्षाका फेन) खाकर बहवसा हो गयी हो ! ॥ २ ॥

धरि धीरजु सुतबदनु निहारी । गदगद बचन कहति महतारी ॥
तात पितहि तुम्ह प्रानपिआरे । देखि मुदित नित चरित तुम्हारे ॥ ३ ॥

धीरज धरकर, पुत्रका मुख देखकर माता गदगद बचन कहने लगीं—हे तात ! तुम तो पिताको प्राणोंके समान प्रिय हो, तुम्हारे चरित्रोंको देखकर वे नित्य प्रसन्न होते थे ॥ ३ ॥

राजु देन कहँ सुभ दिन साधा । कहेउ जान बन केहिं अपराधा ॥
तात सुनाबहु मोहि निदानू । को दिनकरकुल भयउ कृसानू ॥ ४ ॥

राज्य देनेके लिये उन्होंने ही शुभ दिन शोधवाया था । फिर अब किस अपराधसे वन जानेको कहा ! हे तात ! मुझे इसका कारण सुनाओ ! सूर्यवंश [रूपी वन] को जलानेके लिये अग्नि कौन हो गया ! ॥ ४ ॥

दो०—निरखि रामरुख सचिवसुत कारनु कहेउ बुझाइ ।

सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि दसा बरनि नहिं जाइ ॥ ५४ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीका रुख देखकर मन्त्रीके पुत्रने सब कारण समझाकर कहा । उस प्रसंगको सुनकर वे गूँगी-जैसी [चुप] रह गयीं, उनकी दशाका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ५४ ॥

चौ०—राखि न सकइ न कहि सक जाइ । दुहँ भौंति उर दाहन दाइ ॥

लिखत सुधाकर गा लिखि राइ । बिधिगति बाम सदा सब काइ ॥ १ ॥

न रख ही सकती हैं, न यही कह सकते हैं कि वन चले जाओ । दोनों ही प्रकारसे हृदयमें बड़ा भारी संताप हो रहा है । [मनमें सोचती हैं कि देखो—] विधाताकी चाल सदा सबके लिये टेढ़ी होती है । लिखने लगे चन्द्रमा और लिख गया राहु ! ॥ १ ॥

धरम सनेह उभयँ मति घेरी । भइ गति साँप छुछुंदरि केरी ॥

राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू । धरमु जाइ अरु बंधुविरोधू ॥ २ ॥

धर्म और स्नेह दोनोंने कौसल्याजीकी बुद्धिको घेर लिया । उनकी दशा साँप-छल्लूंदरकी-सी हो गयी । वे सोचने लगी कि यदि मैं अनुरोध करके (बीचमें रोककर) पुत्रको रख लेती हूँ तो धर्म जाता है और भाइयोंमें विरोध होता है; ॥ २ ॥

कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी । संकट सोच बिबस भइ रानी ॥

बहुरि समुझि तियधरमु सयानी । रामु भरतु दोउ सुत सम जानी ॥ ३ ॥

और यदि वन जानेको कहती हूँ तो बड़ी हानि होती है । इस प्रकारके धर्म-संकटमें पड़कर रानी विशेषरूपसे सोचके वश हो गयीं । फिर बुद्धिमती कौसल्याजी स्त्री-धर्म (पातिव्रत-धर्म) को समझकर और राम तथा भरत दोनों पुत्रोंको समान जानकर—॥ ३ ॥

सरल सुभाउ राम महतारी । बोली बचन धीर धरि मारी ॥

तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका । पितु आयसु सब धरमक टीका ॥ ४ ॥

सरल स्वभाववाली श्रीरामचन्द्रजीकी माता बड़ा धीरज धरकर वचन बोलीं—हे तात ! मैं बलिहारी जाती हूँ, तुमने अच्छा किया । पिताकी आज्ञाका पालन करना ही सब धर्मोंका शिरोमणि धर्म है ॥ ४ ॥

दो०—राजु देन कहि दीन्ह बन मोहि न सो दुख लेसु ।

तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु ॥ ५५ ॥

कल्याण

(१) श्रीरामजीकी प्रसन्नता



मुनु जननी सोइ मुनु बड़भागी ।
जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥

[पृष्ठ ३५१]

(२) कौसल्याकी महानता



जो पितु मातु कहेउ बन जाना ।
तौ कानन सत अवध समाना ॥

[पृष्ठ ३६१]

(३) बल्कल-चल्लादि-दान



सो मुनि तमकि उठो कैकेई ॥
मुनि पट भूपन भाजन आनी ।

[पृष्ठ ३७६]

(४) गुरुको प्रणाम



बेदि विप्र गुरु चरन प्रभु
चले करि सवहि अयेत ॥

[पृष्ठ ३७६]

राज्य देनेको कहकर वन दे दिया, उसका मुझे लेशमात्र भी दुःख नहीं है । [दुःख तो इस बातका है कि] तुम्हारे बिना भरतको, महाराजको और प्रजाको बड़ा भारी क्लेश होगा ॥ ५५ ॥

चो०—जौं केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥

जौं पितु मातु कहैउ बन जाना । तौ कानन सत अवध समाना ॥ १ ॥

हे तात ! यदि केवल पिताजीकी ही आज्ञा हो, तो माताको [पितासे] बड़ी जानकर वनको मत जाओ । किन्तु यदि पिता-माता दोनोंने वन जानेको कश हो, तो वन तुम्हारे लिये नैकड़ों अयोध्याके समान है ॥ १ ॥

पितु बनदेव मातु बनदेवी । खग मृग चरनसरोरुह सेवी ॥

अंतहुँ उचित नृपहि बनवास । बय बिलोकि हियँ होइ हराँस ॥ २ ॥

वनके देवता तुम्हारे पिता होंगे और वनदेवियाँ माता होंगी; वहाँके पशु-पक्षी तुम्हारे चरण-कमलके सेवक होंगे । राजाके लिये अन्तमें तो वनवास करना उचित ही है; केवल तुम्हारी [सुकुमार] अवस्था देखकर हृदयमें दुःख होता है ॥ २ ॥

बड़भागी बनु अवध अभागी । जो रघुवंसतिलक तुम्ह त्यागी ॥

जौं सुत कहाँ संग मोहि लेह । तुम्हरँ हृदयँ होइ संदेह ॥ ३ ॥

हे रघुवंशके तिलक ! वन बड़ा भाग्यवान् है और यह अवध अभागी है, जिसे तुमने त्याग दिया । हे पुत्र ! यदि मैं कहूँ कि मुझे भी साथ ले चलो तो तुम्हारे हृदयमें सन्देह होगा [कि माता इसी बहाने मुझे रोकना चाहती है] ॥ ३ ॥

पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के । प्राण प्राण के जीवन जी के ॥

ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ । मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ ॥ ४ ॥

हे पुत्र ! तुम सभीके परम प्रिय हो । प्राणोंके प्राण और हृदयके जीवन हो । वही (प्राणाधार) तुम कहते हो कि माता ! मैं वनको जाऊँ, और मैं तुम्हारे वचनोंको सुनकर बैठी पछिताती हूँ ! ॥ ४ ॥

दो०—यह बिचारि नहिं करउँ हठ शूठ सनेहु बड़ाइ ।

मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ ॥ ५६ ॥

यह सोचकर शूटा स्नेह बढ़ाकर मैं हठ नहीं करती ! बेटा ! मैं बलैया लेती हूँ, माताका नाता मानकर मेरी सुघ भूल न जाना ॥ ५६ ॥

चो०—देव पितर सब तुम्हहि गोसाईं । राखहुँ पलक नयन की नाई ॥

अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना । तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना ॥ १ ॥

हे गोसाईं ! सब देव और पितर तुम्हारी वैसे ही रक्षा करें, जैसे पलकें आँखोंकी रक्षा करती हैं । तुम्हारे वनवासकी अवधि (चौदह वर्ष) जल है, प्रियजन और कुटुम्बी मछली हैं । तुम दयाकी खान और धर्मकी धुरीकी धारण करनेवाले हो ॥ १ ॥

अस बिचारि सोइ करहु उपाई । सबहि जियत जेहिं भेंटहु आई ॥

जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ । करि अनाथ जन परिजन गाऊँ ॥ २ ॥

ऐसा बिचारकर वही उपाय करना जिसमें सबके जीते-जी तुम आ मिलो । मैं बलिहारी जाती हूँ, तुम सेवकों, परिवारवालों और नगरभरको अनाथ करके सुखपूर्वक वनको जाओ ॥ २ ॥

सब कर आजु सुकृत फल बीता । भयउ कराल कालु बिपरीता ॥
बहुबिधि बिलपि चरन लपटानी । परम अभागिनि आपुहि जानी ॥ ३ ॥

आज सबके पुण्योंका फल पूरा हो गया । कठिन काल हमारे विपरीत हो गया । [इस प्रकार] बहुत विलाप करके और अपनेको परम अभागिनी जानकर माता श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लिपट गयीं ॥ ३ ॥

दाखन दुसह दाहु उर व्यापा । बरनि न जाहिं बिलाप कलापा ॥
राम उठाइ मातु उर लाई । कहि मृदु बचन बहुरि समुझाई ॥ ४ ॥

हृदयमें भयानक दुःसह संताप छा गया । उस समयके बहुविध विलापका वर्णन नहीं किया जा सकता । श्रीरामचन्द्रजीने माताको उठाकर हृदयसे लगा लिया और फिर कोमल वचन कहकर उन्हें समझाया ॥ ४ ॥

दो०—समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ ।
जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ ॥ ५७ ॥

उसी समय यह समाचार सुनकर सीताजी अकुला उठीं और मासके पाम जाकर उनके दोनों चरण-कमलोंकी वन्दना कर सिर नीचा करके बैठ गयीं ॥ ५७ ॥

चौ०—दीन्हि असीस सासु मृदुबानी । अति सुकुमारी देखि अकुलानी ॥

बैठि नमितमुख सोचति सीता । रूपरासि पति प्रेम पुनीता ॥ १ ॥

सासने कोमल वाणीसे आशीर्वाद दिया । वे सीताजीको अत्यन्त सुकुमारी देखकर व्याकुल हो उठीं । रूपकी राशि और पतिके साथ पवित्र प्रेम करनेवाली सीताजी नीचा मुख किये बैठी सोच रही हैं ॥ १ ॥

चलन चहत बन जीवननाथू । केहि सुकृती सन होइहि साथू ॥

की तनु प्राण कि केवल प्राणा । बिधि करतबु कछु जाइ न जाना ॥ २ ॥

जीवननाथ बनको चलना चाहते हैं । देखें किस पुण्यवान्से उनका साथ होगा—शरीर और प्राण दोनों साथ जायेंगे या केवल प्राणहीसे इनका साथ होगा ! विधाताकी करनी कुछ जानी नहीं जाती ॥ २ ॥

चारु चरननख लेखति धरनी । नूपुर मुखर मधुर कधि बरनी ॥

मनहुँ प्रेम बस विनती करहीं । हमहि सीयपद जनि परिहरहीं ॥ ३ ॥

सीताजी अपने सुन्दर चरणोंके नखोंसे धरती कुरेद रही हैं । ऐसा करते समय नूपुरोंका जो मधुर शब्द हा रहा है, कवि उसका इस प्रकार वर्णन करते हैं कि मानो प्रेमके वश होकर नूपुर यह विनती कर रहे हैं कि हमें सीताजीके चरण कभी त्याग न करें ॥ ३ ॥

मंजु बिलोचन मोचति बारी । बोली देखि राम महतारी ॥

तात सुनहु सिय अति सुकुमारी । सास ससुर परिजनहि पिबारी ॥ ४ ॥

सीताजी सुन्दर नेत्रोंसे जल बहा रही हैं । उनकी यह दशा देखकर श्रीरामजीकी माता (कौसल्याजी) बोली—हे तात ! सुनो, सीता अत्यन्त ही सुकुमारी हैं तथा मास, समुग और कुटुम्बी सभीको प्यारी हैं ॥ ४ ॥

दो०—पिता जनक भूपालमनि ससुर भानुकुल भानु ।

पति रविकुल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप निधानु ॥ ५८ ॥

इनके पिता जनकजी राजाओंके शिरोमणि हैं, समुर सूर्यकुलके सूर्य हैं और पति सूर्यकुलरूपी कुमुदवन-को खिलानेवाले चन्द्रमा तथा गुण और रूपके भण्डार हैं ॥ ५८ ॥

चौ०—मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई । रूपरासि गुन सील सुहाई ॥
नयन पुनरि करि प्रीति बढ़ाई । राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई ॥ १ ॥

फिर मैंने रूपकी राशि, सुन्दर गुण और शीलवाली प्यारी पुत्रबधू पायी है । मैंने इन (जानकी) को आँखोंकी पुतली बनाकर इनसे प्रेम बढ़ाया है और अपने प्राण इनमें लगा रखे हैं ॥ १ ॥

कलपबेलि जिमि बहुबिधि छाली । सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली ॥
फूलत फलत भयउ बिधि बामा । जानि न जाइ काह परिनामा ॥ २ ॥

इन्हें कल्पलताके समान मैंने बहुत तरहसे बड़े लाड़-चावके साथ स्नेहरूपी जलसे सींचकर पाला है । अब इस लताके फूलने-फलनेके समय विधाता वाम हो गये ! कुछ जाना नहीं जाता कि इसका क्या परिणाम होगा ॥ २ ॥

पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा । सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा ॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ । दीपवाति नहिं टारन कहऊँ ॥ ३ ॥

सीताने पलंग, कोमल पीढ़े, गोद और हिंडोलेको छोड़कर कठोर पृथ्वीपर कभी पैर नहीं रक्खा । मैं सदा सजीवनी जड़ीके समान [सावधानीसे] इनकी रखवाली करती रही हूँ ! कभी दीपककी बत्ती हटानेको भी नहीं कहती ॥ ३ ॥

सोइ सिय चलन चहति बन साथ । आयसु काह होइ रघुनाथ ॥
चंदकिरन रस रसिक चकोरी । रबि रुख नयन सकइ किमि जोरी ॥ ४ ॥

वही सीता अब तुम्हारे साथ वन चलना चाहती है । हे रघुनाथ ! क्या आशा होती है ! चन्द्रमाकी किरणोंका रस (अमृत) चाहनेवाली चकोरी सूर्यकी ओर आँख किस तरह मिल सकती है ॥ ४ ॥

दो०—करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि ।
विषवाटिकाँ कि सोह सुत सुमग सजीवनि मूरि ॥ ५९ ॥

हाथी, सिंह, राक्षस आदि अनेक दुष्ट जीव-जन्तु वनमें विचरते रहते हैं । हे पुत्र ! क्या विषकी वाटिकामें सुन्दर सजीवनी बूटी शोभा पा सकती है ? ॥ ५९ ॥

चौ०—बन हित कोल किरात किसोरी । रचीं बिरंचि विषयसुख भोरी ॥
पाहनकुमि जिमि कठिन सुभाऊ । तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ ॥ १ ॥
वनके लिये तो ब्रह्माजीने विषयसुखको न जाननेवाली कोल और भीलोंकी लड़कियोंको रचा है, जिनका पत्थरके कीड़े-जैसा कठोर स्वभाव है । उन्हें वनमें कभी क्लेश नहीं होता ॥ १ ॥

कै तापस तिय कानन जोगू । जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू ॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती । चित्रलिखित कपि देखि डेराती ॥ २ ॥
अथवा तपस्वियोंकी स्त्रियाँ वनमें रहने योग्य हैं, जिन्होंने तपस्याके लिये सब भोग तज दिये हैं । हे पुत्र ! जो तस्वीरके बन्दरको देखकर भी डर जाती हैं वे सीता वनमें किस तरह रह सकेंगी ? ॥ २ ॥

सुरसर सुभग बनज बन बारी । डाबर जोगु कि हंसकुमारी ॥
अस बिचारि जस आयसु होई । मैं सिख देउँ जानकिहि सोई ॥ ३ ॥

देवसरोवरके कमलवनमें विचरण करनेवाली हंसिनी क्या गड़ैयों (तलैयों) में रहनेके योग्य है ? ऐसा विचारकर जैसी तुम्हारी आशा हो, मैं जानकीको वैसी ही शिक्षा दूँ ॥ ३ ॥

जौं सिय भवन रहै कह अंबा । मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ॥

सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी । सील सनेह सुघौं जनु सानी ॥ ४ ॥

माता कहती हैं—यदि सीता घरमें रहें तो मुझको बहुत सहारा हो जाय । रघुबीर (भीरामचन्द्रजी) ने माताकी प्रिय वाणी सुनकर, जो मानो शील और स्नेहरूपी अमृतसे सनी हुई थी, ॥ ४ ॥

दो०—कहि प्रिय वचन बिबेकमय कीन्हि मातु परितोष ।

लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन गुन दोष ॥ ६० ॥

बिबेकमय प्रिय वचन कहकर माताको सन्तुष्ट किया । फिर वनके गुण-दोष प्रकट करके वे जानकीजीको समझाने लगे ॥ ६० ॥

मासपारायण चौदहवाँ विश्राम

चौ०—मातु समीप कहत सकुचाहीं । बोले समउ समुझि मन माहीं ॥

राजकुमारि सिखावन सुनह । आन भाँति जियँ जनि कछु गुनह ॥ १ ॥

माताके सामने सीताजीसे कुछ कहनेमें सकुचाते हैं । पर मनमें यह समझकर कि यह समय ऐसा ही है, वे बोले—हे राजकुमारी ! मेरी सिखावन सुनो । मनमें कुछ दूसरी तरह न समझ लेना ॥ १ ॥

आपन मोर नीक जौं चहइ । बचनु हमार मानि गृह रहइ ॥

आयसु मोर सासु सेवकाई । सब बिधि भामिनि भवन भलाई ॥ २ ॥

जो अपना और मेरा भला चाहती हो, तो मेरा वचन मानकर घर रहो । हे भामिनी ! मेरी आशाका पालन होगा, सासकी सेवा वन पड़ेगी; घर रहनेमें सभी प्रकारसे भलाई है ॥ २ ॥

एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा । सादर सासु ससुर पद पूजा ॥

जब जब मातु करिहि सुधि मोरी । होइहि प्रेम बिकल मति भोरी ॥ ३ ॥

आदरपूर्वक सास-ससुरके चरणोंकी पूजा (सेवा) करनेसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है । जब-जब माता मेरी याद करेगी और प्रेममें व्याकुल होनेके कारण उनकी बुद्धि भोली हो जायगी (वे आत्मविस्मृत हो जायँगी) ॥ ३ ॥

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी । सुंदरि समुझायहु मृदुबानी ॥

कहउँ सुभायँ सपथ सत मोही । सुमुखि मातु हिन राखउँ तोही ॥ ४ ॥

हे सुन्दरी ! तब-तब तुम कोमल वाणीसे पुरानी कथाएँ कह-कहकर इन्हें समझाना । हे सुमुखि ! मुझे सैकड़ों सौगंध हैं, मैं थह स्वभावसे ही कहता हूँ कि मैं तुम्हें केवल माताके लिये ही घरपर रखता हूँ ॥ ४ ॥

दो०—गुर श्रुति संमत धरम फल पाइअ बिनिहिं कलेस ।

हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस ॥ ६१ ॥

[मेरी आशा मानकर घरपर रहनेसे] गुरु और वेदके द्वारा सम्मत धर्म [के आचरण] का फल तुम्हें बिना ही क्लेशके मिल जाता है । किन्तु हठके वश होकर गालव मुनि और राजा नहुष आदि सबने संकट ही सहे ॥ ६१ ॥

चौ०—मैं पुनि करि प्रवान पितुबानी । बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी ॥
 दिवस जात नहिं लागिहि बारा । सुंदरि सिखवतु सुनहु हमारा ॥ १ ॥
 हे सुमुखि ! हे सयानी ! सुनो, मैं भी पिताके वचनोंका पूरा करके शीघ्र ही लौटूँगा । दिन जाते देर नहीं लगेगी । हे सुन्दरी ! हमारी यह सीख सुनो ! ॥ १ ॥
 जौं हठ करहु प्रेम बस बामा । तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा ॥
 काननु कठिन भयंकर भारी । घोर घामु हिम बारि बयारी ॥ २ ॥
 हे वामा ! यदि प्रेमवश हठ करोगी, तो तुम इसके परिणाममें दुःख पाओगी । वन बड़ा कठिन (क्लेशदायक) और भयानक है । वहाँकी धूप, जाड़ा, वर्षा और हवा सभी बड़े भयानक हैं ॥ २ ॥
 कुस कंटक मग काँकर नाना । चलब पयादेहिं बिनु पदवाना ॥
 चरनकमल मृदु मंजु तुम्हारे । मारग अगम भूमिघर भारे ॥ ३ ॥
 रास्तेमें कुश, काँटे और बहुत-से कंकड़ हैं । उनपर बिना जूतेके पैदल ही चलना होगा । तुम्हारे चरण-कमल कोमल और सुन्दर हैं और रास्तेमें बड़े-बड़े दुर्गम पर्वत हैं ॥ ३ ॥
 कंदर खोह नदी नद नारे । अगम अगाध न जाहिं निहारे ॥
 भालु बाघ बृक केहरि नागा । करहिं नाद सुनि धीरजु भागा ॥ ४ ॥
 पर्वतोंकी गुफाएँ, खोह, नदियाँ, नद और नाले ऐसे अगम्य और गहरे हैं कि जिनकी ओर देखातक नहीं जाता । रीछ, बाघ, भेड़िये, सिंह और हाथी ऐसे [भयानक] शब्द करते हैं कि सुनकर धीरज भाग जाता है ॥ ४ ॥

दो०—भूमि सयन बलकल बसन असनु कंद फल मूल ।

ते कि सदा सब दिन मिलहिं सबुइ समय अनुकूल ॥ ६२ ॥

जमीनपर सोना, पेड़ोंकी छालके वस्त्र पहनना और कन्द, मूल, फलका भोजन करना होगा । और वे भी क्या सदा सब दिन मिलेंगे ! सब कुछ अपने-अपने समयके अनुकूल ही मिल सकेगा ॥ ६२ ॥

चौ०—नर अहार रजनीचर चरहीं । कपटबेष बिधि कोटिक करहीं ॥

लागइ अति पहार कर पानी । बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी ॥ १ ॥

मनुष्योंको खानेवाले निशिचर (राक्षस) फिरते रहते हैं । वे करोड़ों प्रकारके कपट-रूप धारण कर लेते हैं । पहाड़का पानी बहुत ही लम्बा है । वनकी विपत्ति बखानी नहीं जा सकती ॥ १ ॥

ध्याल कराल बिहग बन घोरा । निसिचर निकर नारि नर चोरा ॥

डरपहिं धीर गहनसुधि आएँ । मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ ॥ २ ॥

वनमें भीषण सर्प, भयानक पक्षी और स्त्री-पुरुषोंको चुरानेवाले राक्षसोंके छुंड-के-छुंड रहते हैं । वनकी [भयङ्करता] याद आनेमात्रसे धीर पुरुष भी डर जाते हैं । फिर हे मृगलोचनि ! तुम तो स्वभावसे ही डरपोक हो ! ॥ २ ॥

हंसगवनि तुम्ह नहिं बनजोगू । सुनि अपजसु मोहि देखि लोगू ॥

मानस सलिल सुघाँ प्रतिपाली । जिमइ कि लवनपयोधि मराली ॥ ३ ॥

हे हंसगवनी ! तुम वनके योग्य नहीं हो । तुम्हारे वन जानेकी बात सुनकर लोग मुझे अपयश देंगे । मानसरोवरके अमृतके समान जलसे पाले हुई हंसिनी कहीं खारे समुद्रमें जी सकती है ॥ ३ ॥

नव रसाल बन बिहरनसीला । सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥

रहहु भवन भस हृदयँ बिचारी । चंदबदन दुखु कानन भारी ॥ ४ ॥

नवीन आमके वनमें विहार करनेवाली कोयल क्या करीलके जंगलमें शोभा पाती है ! हे चन्द्रमुखी ! हृदयमें ऐसा विचारकर तुम घरहीपर रहो । वनमें बड़े दुःख हैं ॥ ४ ॥

दो०—सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि ।

सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि ॥ ६३ ॥

स्वाभाविक ही हित चाहनेवाले गुरु और स्वामीकी सीखको जो सिर चढ़ाकर नहीं मानता, वह हृदयमें भरपेट पछताता है और उसके हितकी हानि अवश्य होती है ॥ ६३ ॥

चौ०—सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के । लोचन ललित भरे जल सिय के ॥

सीतल सिख दाहक भइ कैसैं । चकइहि सरद चंद निसि जैसैं ॥ १ ॥

प्रियतमके कोमल तथा मनोहर बचन सुनकर सीताजीके सुन्दर नेत्र जलसे भर गये । भीरामजीकी यह शीतल सीख उनको कैसी जलानेवाली हुई, जैसे चकवीको शरद् ऋतुकी चोंदनी रात होती है ॥ १ ॥

उतर न भाव बिकल बैदेही । तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥

बरबस रोकि बिलोचन बारी । धरि धीरजु उर अवनिकुमारी ॥ २ ॥

जानकीजीसे कुछ उत्तर देते नहीं बनता, वे यह सोचकर व्याकुल हो उठीं कि मेरे पवित्र और प्रेमी स्वामी मुझे छोड़ जाना चाहते हैं । नेत्रोंके जलको जबर्दस्ती रोककर वे पृथ्वीकी कन्या सीताजी हृदयमें धीरज धरकर, ॥ २ ॥

लागि सासु पग कह कर जोरी । छमबि देबि बड़ि अभिनय मोरी ॥

दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई । जेहि बिधि मोर परम हित होई ॥ ३ ॥

सासके पैर लगकर, हाथ जोड़कर कहने लगीं—हे देवि ! मेरी इस बड़ी भारी दिट्ठाईको क्षमा कीजिये । मुझे प्राणपतिने वही शिक्षा दी है जिससे मेरा परम हित हो ॥ ३ ॥

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं । पियबियोग सम दुखु जग नाहीं ॥ ४ ॥

परन्तु मैंने मनमें समझकर देख लिया कि पतिके वियोगके समान जगत्में कोई दुःख नहीं है ॥ ४ ॥

दो०—प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान ।

तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान ॥ ६४ ॥

हे प्राणनाथ ! हे दयाके धाम ! हे सुन्दर ! हे सुखोंके देनेवाले ! हे सुजान ! हे रघुकुलरूपी कुमुदके खिलनेवाले चन्द्रमा ! आपके बिना स्वर्ग भी मेरे लिये नरकके समान है ॥ ६४ ॥

चौ०—मातु पिता भगिनी प्रिय भाई । प्रिय परिवार सुहृद समुदाई ॥

सासु ससुर गुर सजन सहार । सुत सुंदर सुशील सुखदारी ॥ १ ॥

माता, पिता, प्यारी बहन, प्यारा भाई, प्यारा परिवार, सुहृदोंका समुदाय, सास, ससुर, गुरु, स्वजन, सहायक और सुन्दर, सुशील और सुख देनेवाला पुत्र—॥ १ ॥

जहँ लगि नाथ नेह भर नाते । पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते ॥

तनु धनु घामु घरनि पुर राजू । पति बिहीन सब सोकसमाजू ॥ २ ॥

हे नाथ ! जहाँतक स्नेह और नाते हैं, पतिके विना स्त्रीको सभी सूर्यसे भी बढ़कर तपानेवाले हैं । शरीर, धन, घर, पृथ्वी, नगर और राज्य, पतिके विना स्त्रीके लिये यह सब शोकका समाज है ॥ २ ॥

भोग रोगसम भूषण भारू । जम जातना सरिस संसारू ॥

प्राणनाथ तुम्ह बिनु जग माहीं । मो कहूँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥ ३ ॥

भोग रोगके समान हैं, गहने भाररूप हैं और संसार यम-यातना (नरककी पीड़ा) के समान है । हे प्राणनाथ ! आपके विना जगत्में मुझे कहीं कुछ भी सुखप्रद नहीं है ॥ ३ ॥

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें । सरद बिमल बिधु बदन निहारें ॥ ४ ॥

जैसे विना जीवके देह और विना जलके नदी, वैसे ही हे नाथ ! विना पुरुषके स्त्री है ! हे नाथ ! आपके साथ रहकर आपका शरद्- [पूर्णिमा] के निर्मल चन्द्रमाके समान मुख देखनेसे मुझे समस्त सुख प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥

दो०—खग मृग परिजन नगर बन बलकल बिमल दुकूल ।

नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुखमूल ॥ ६५ ॥

हे नाथ ! आपके साथ पक्षी और पशु ही मेरे कुटुम्बी होंगे, वन ही नगर और वृक्षोंकी छाँट ही निर्मल वस्त्र होंगे और पर्णकुटी (पत्तोंकी बनी झोपड़ी) ही स्वर्गके समान सुखोंकी मूल होगी ॥ ६५ ॥

चौ०—वनदेवी वनदेव उदारा । करिहहिं सासु ससुर सम सारा ॥

कुस किसलय साथरी सुहाई । प्रभु संग मंजु मनोज तुराई ॥ १ ॥

उदार हृदयके वनदेवी और वनदेवता ही सासु-ससुरके समान मेरी सार-सँभार करेंगे, और कुशा और पत्तोंकी सुन्दर साथरी (बिछौना) ही प्रभुके साथ कामदेवकी मनोहर तोशकके समान होगी ॥ १ ॥

कंद मूल फल अमिअ अहारू । अबघ सौध सत सरिस पहारू ॥

छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी । रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी ॥ २ ॥

कन्द, मूल और फल अमृतके समान आहार होंगे और वनके पहाड़ ही अयोध्याके सैकड़ों राजमहलोंके समान होंगे । क्षण-क्षणमें प्रभुके चरणकमलोंको देख-देखकर मैं ऐसी आनन्दित रहूँगी जैसी दिनमें चकवी रहती है ॥ २ ॥

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय बिषाद परिताप घनेरे ॥

प्रभु बियोग लवलेस समाना । सब मिलि होहिं न कृपानिधाना ॥ ३ ॥

हे नाथ ! आपने वनके बहुतसे दुःख और बहुतसे भय, विषाद और सन्ताप कहे । परन्तु हे कृपानिधान ! वे सब मिलकर भी प्रभुवियोगके दुःखके लवलेशके समान भी नहीं हो सकते ॥ ३ ॥

अस जियँ जानि सुजानसिरोमनि । लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि ॥

बिनती बहुत करौ का स्वामी । करुनामय उर अंतरजामी ॥ ४ ॥

ऐसा जीमें जानकर, हे सुजानशिरोमणि ! आप मुझे साथ लीजिये, यहाँ न छोड़िये ! हे स्वामी ! मैं अधिक क्या बिनती करूँ ! आप करुणामय हैं और सबके हृदयके अन्दरकी जाननेवाले हैं ॥ ४ ॥

दो०—राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्राण ।

दीनबंधु सुंदर सुखद सील सनेह निधान ॥ ६६ ॥

हे दीनबन्धु ! हे सुन्दर ! हे सुख देनेवाले ! हे शील और प्रेमके भण्डार ! यदि अवधि (चौदह वर्ष) तक मुझे अयोध्यामें रक्खेंगे तो जान लीजिये कि मेरे प्राण नहीं रहेंगे ॥ ६६ ॥

चौ०—मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरनसरोज निहारी ॥
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं । मारग जनित सकल श्रम हरिहौं ॥ १ ॥

क्षण-क्षणमें आपके चरणकमलोंको देखते रहनेसे मुझे मार्ग चलनेमें थकावट न होगी । हे प्रियतम ! मैं सभी प्रकारसे आपकी सेवा करूँगी और मार्ग चलनेसे होनेवाली सारी थकावटको दूर करूँगी ॥ १ ॥

पाय पत्थारि बैठि तरुछाहीं । करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं ॥
श्रमकन सहित स्याम तनु देखें । कहँ दुख समउ प्राणपति पेखें ॥ २ ॥
आपके पैर धोकर, पेड़ोंको छायामें बैठकर, मनमें प्रसन्न होकर हवा करूँगी (पंखा झलूँगी) । पसीनेकी बूंदोंसहित श्याम शरीरको देखकर—प्राणपतिके दर्शन करते हुए दुःखके लिये मुझे समय ही कहाँ रहेगा ॥ २ ॥

सम महि तन तरुपल्लव दासी । पाय पलोटिहि सब निसि दासी ॥
बार बार मृदु मूरति जोही । लागिहि तात बयारि न मोही ॥ ३ ॥
समतल भूमिपर घास और पेड़ोंके पत्ते बिछाकर यह दासी रातभर चरण दवावेगी । बार-बार आपकी कोमल मूर्त्तिको देखकर मुझको गरम हवा भी न लगेगी ॥ ३ ॥

को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा । सिंघबधुहि जिमि ससक सिआरा ॥
मैं सुकुमारि नाथ बनजोगू । तुम्हहि उचित तप मो कहूँ भोगू ॥ ४ ॥
प्रभुके साथ मुझे [आँख उठाकर] देखनेवाला कौन है (अर्थात् कोई नहीं देख सकता) ! जैसेसिंहकी स्त्रीको खरगोश और सियार नहीं देख सकते । मैं सुकुमारी हूँ और नाथ वनके योग्य हूँ ! आपको तो तपस्या उचित है और मुझको विषय-भोग ? ॥ ४ ॥

दो०—ऐसेउ वचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान ।

तौ प्रभु विषम वियोग दुख सहिहहिं पावँर प्राण ॥ ६७ ॥

ऐसे कठोर वचन सुनकर भी जो मेरा हृदय न फटा तो, हे प्रभु ! ये पामर प्राण आपके वियोगका भीषण दुःख सहेंगे ॥ ६७ ॥

चौ०—अस कहि सीय बिकल भइ भारी । वचन वियोगु न सकी सँभारी ॥
देखि दसा रघुपति जियँ जाना । हठि राखें नहिं राखिहि प्राणा ॥ १ ॥

ऐसा कहकर सीताजी बहुत ही व्याकुल हो गयीं । वे वचनके वियोगको भी न समझाल सकी (अर्थात् शरीरसे वियोगकी बात तो अलग रही, वचनमें भी वियोगकी बात सुनकर वे अत्यन्त विकल हो गयीं) । उनकी यह दशा देखकर श्रीरघुनाथजीने अपने जीमें जान लिया कि दृष्टपूर्वक इन्हें यहाँ रखनेसे ये प्राणोंको न रक्खेंगी ॥ १ ॥

कहेउ कृपाल भानुकुलनाथा । परिहरि सोचु चलहु बन साथा ॥
नहिं बिषाद कर अवसर आजू । बेगि करहु बन गवन समाजू ॥ २ ॥

तब कृपालु, सूर्यकुलक स्वामी श्रीगमचन्द्रजीने कहा कि सोच छोड़कर मेरे साथ वनको चलो । आज विषाद करनेका अवसर नहीं है । तुरंत वनगमनकी तैयारी करो ॥ २ ॥

कहि प्रिय वचन प्रिया समुझाई । लगे मातु पद आसिष पाई ॥
बेगि प्रजादुख मेटव आई । जननी निठुर बिसरि जानि जाई ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने प्रिय वचन कहकर प्रियतमा सीताजीको समझाया। फिर माताके पैरों लगाकर आशीर्वाद प्राप्त किया। माताने कहा—बेटा! जल्दी लौटकर प्रजाके दुःखको मिटाना! और यह निडुर जननी तुम्हें भूल न जाय! ॥ ३ ॥

फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहउँ नयन मनोहर जोरी ॥

सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जियत बदनविधु जोइहि ॥ ४ ॥

हे विधाता! क्या मेरी दशा भी फिर फिरेगी? क्या अपने नेत्रोंसे मैं इस मनोहर जोड़ीको फिर देखूँगी? हे पुत्र! वह सुन्दर दिन और शुभ घड़ी कब होगी जब तुम्हारी जननी जीते-जी तुम्हारा मुखचन्द्र फिर देखेगी! ॥ ४ ॥

दो०—बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुवर तात।

कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ हरषि निरखिहउँ गात ॥ ६८ ॥

हे तात! 'वत्स' कहकर, 'लाल' कहकर, 'रघुपति' कहकर, 'रघुवर' कहकर, मैं फिर कब तुम्हें बुलाकर हृदयसे लगाऊँगी और हर्षित होकर तुम्हारे अंगोंको देखूँगी! ॥ ६८ ॥

चौ०—लखि सनेह कातरि महतारी। बचनु न आव बिकल भइ भारी ॥

राम प्रबोधु कीन्ह बिधि नाना। समउ सनेहु न जाइ बखाना ॥ १ ॥

यह देखकर कि माता स्नेहके मारे अघोर हो गयी हैं और इतनी अधिक व्याकुल हैं कि मुँहसे वचन नहीं निकलता, श्रीरामचन्द्रजीने अनेक प्रकारसे उन्हें समझाया। वह समय और स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥

तब जानकी सासु पग लागी। सुनिअ माय में परम अभागि ॥

सेवा समय दैअ बन दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा ॥ २ ॥

तब जानकीजी सासके पाँव लगीं और बोली—हे माता! सुनिये, मैं बड़ी ही अभागिनी हूँ। आपकी सेवा करनेके समय दैवने मुझे वनवास दे दिया। मेरा मनोरथ सफल न किया ॥ २ ॥

तजब छोभु जनि छाड़िअ छोह। करमु कठिन कछु दोसु न मोह ॥

सुनि सियबचन सासु अकुलाजी। दसा कवनि बिधि कहाँ बखानी ॥ ३ ॥

आप क्षोभका त्याग कर दें, परन्तु कृपा न छोड़ियेगा। कर्मकी गति कठिन है, मुझे भी कुछ दोष नहीं है। सीताजीके वचन सुनकर सास व्याकुल हो गयीं। उनकी दशाको मैं किस प्रकार बखानकर कहूँ! ॥ ३ ॥

बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही ॥

अचल होउ अहिबातु तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा ॥ ४ ॥

उन्होंने सीताजीको बार-बार हृदयसे लगाया और धीरज धरकर शिक्षा दी, और आशीर्वाद दिया कि जबतक गङ्गाजी और यमुनाजीमें जलकी धारा बहे, तबतक तुम्हारा सुहाग अचल रहे ॥ ४ ॥

दो०—सीतहि सासु असीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार।

चली नाइ पदपदुम सिरु अति हित बारहिं बार ॥ ६९ ॥

सीताजीको सासने अनेकों प्रकारसे आशीर्वाद और शिक्षाएँ दीं, और वे (सीताजी) बड़े ही प्रेमसे बार-बार चरणकमलोंमें सिर नवाकर चलीं ॥ ६९ ॥

चौ०—समाचार जब लछिमन पाए । व्याकुल बिलख बदन उठि धाए ॥

कंप पुलक तन नयन सनीरा । गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥ १ ॥

जब लक्ष्मणजीने ये समाचार पाये, तब वे व्याकुल होकर उदास मुँह उठ दौड़े । शरीर काँप रहा है । रोमाञ्च हो रहा है । नेत्र आँसुओंसे भरे हैं । प्रेमसे अत्यन्त अधीर होकर उन्होंने श्रीरामजीके चरण पकड़ लिये ॥ १ ॥

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े । मीनु दीन जनु जल तैं काढ़े ॥

सोचु हृदय बिधि का होनिहारा । सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा ॥ २ ॥

वे कुछ कह नहीं सकते, खड़े-खड़े देख रहे हैं । [ऐसे दीन हो रहे हैं] मानो जलसे निकाले जानेपर मछली दीन हो रही हो । हृदयमें यह सोच है कि हे विधाता ! क्या होनेवाला है ? क्या हमारा सब सुख और पुण्य पूरा हो गया ? ॥ २ ॥

मो कहुँ काह कहव रघुनाथा । रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा ॥

राम बिलोकि बंधु कर जोरें । देह गेह सब सन तुनु तोरें ॥ ३ ॥

मुझको श्रीरघुनाथजी क्या कहेंगे ? घरपर रक्खेंगे या साथ ले चलेंगे ? श्रीरामचन्द्रजीने भाई लक्ष्मणको हाथ जोड़े और शरीर तथा घर सर्मासे नाता तोड़े हुए खड़े देखा ॥ ३ ॥

बोलें वचनु राम नयनागर । सील सनेह सरल सुख सागर ॥

तात प्रेम बस जनि कदराहू । समुझि हृदयँ परिनाम उछाहू ॥ ४ ॥

तब नीतिमें निपुण और शील, स्नेह, सरलता और सुखके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी वचन बोले—हे तात ! परिणाममें होनेवाले आनन्दको हृदयमें समझकर तुम प्रेमवश अर्घार मत होओ ॥ ४ ॥

दो०—मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ ।

लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ ॥ ७० ॥

जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामीकी शिक्षाको स्वाभाविक ही सिर चढ़ाकर उसका पालन करते हैं, उन्होंने ही जन्म लेनेका लाभ पाया है । नहीं तो जगत्में जन्म व्यर्थ ही है ॥ ७० ॥

चौ०—अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई । करहु मातु पितु पद सेवकाई ॥

भवन भरतु रिपुसुदनु नाहीं । राउ बृद्ध मम दुखु मन माहीं ॥ १ ॥

हे भाई ! हृदयमें ऐसा जानकर मेरी सीख सुनो और माता-पिताके चरणोंकी सेवा करो । भरत और शत्रुघ्न घरपर नहीं हैं, महाराज वृद्ध हैं और उनके मनमें मेरा दुःख है ॥ १ ॥

मैं वन जाऊँ तुम्हहि लेइ साथा । होइ सबहि बिधि अवघ अनाथा ॥

गुरु पितु मातु प्रजा परिवारु । सब कहुँ परइ दुसह दुखभारु ॥ २ ॥

इस अवस्थामें मैं तुमको साथ लेकर वन जाऊँ तो अयोध्या सभी प्रकारसे अनाथ हो जायगी । गुरु, पिता, माता, प्रजा और परिवार सभीपर दुःखका दुःसह भार आ पड़ेगा ॥ २ ॥

रहहु करहु सब कर परितोषू । नतरु तात होइहि बड़ दोषू ॥

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ॥ ३ ॥

अतः तुम यहीं रहो और सबका सन्तोष करते रहो । नहीं तो हे तात ! बड़ा दोष होगा । जिसके राज्यमें प्यारी प्रजा दुखी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरकका अधिकारी होता है ॥ ३ ॥

रहहु तात असि नीति विचारी । सुनत लखनु भय व्याकुल भारी ॥
सिअरें वचन सुखि गए कैसें । परसत तुहिन तामरसु जैसें ॥ ४ ॥

हे तात ! ऐसी नीति विचारकर तुम घर रह जाओ । यह सुनते ही लक्ष्मणजी बहुत ही व्याकुल हो गये । इन शीतल वचनोंसे वे कैसे सुख गये, जैसे पालेके स्पर्शसे कमल सुख जाता है ! ॥ ४ ॥

दो०—उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ ।

नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ ॥ ७१ ॥

प्रेमवश लक्ष्मणजीसे कुछ उत्तर देते नहीं बनता । उन्होंने व्याकुल होकर श्रीरामजीके चरण पकड़ लिये और कहा—हे नाथ ! मैं दास हूँ, और आप स्वामी हैं; अतः आप मुझे छोड़ ही दें तो मेरा क्या बचा है ? ॥ ७१ ॥

चो०—दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं । लागि अगम अपनी कदराई ॥

नरवर धीर धरम धुर धारी । निगम नीति कहूँ ते अधिकारी ॥ १ ॥

हे स्वामी ! आपने मुझे सीख तो बड़ी अच्छी दी है, पर मुझे अपनी कायरतासे वह मेरे लिये अगम (पहुँचके बाहर) लगी । शास्त्र और नीतिके तो वे ही श्रेष्ठ पुरुष अधिकारी हैं जो धीर हैं और धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले हैं ॥ १ ॥

मैं सिसु प्रभुसनेहँ प्रतिपाला । मंदरु मेरु कि लेहिं मराला ॥

गुर पितु मातु न जानउँ काह । कहउँ सुभाउ नाथ पतिआह ॥ २ ॥

मैं तो प्रभु (आप) के स्नेहमें पला हुआ छोटा बच्चा हूँ । कहीं हंस भी मन्दराचल या सुमेरु पर्वतको उठा सकते हैं ! हे नाथ ! मैं स्वभावसे ही कहता हूँ, आप विश्वास करें, मैं आपको छोड़कर गुरु, पिता, माता किसीको भी नहीं जानता ॥ २ ॥

जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ॥

मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबंधु उर अंतरजामी ॥ ३ ॥

जगत्में जहाँतक स्नेहका सम्बन्ध, प्रेम और विश्वास है, जिनको स्वयं वेदने गाया है—हे स्वामी ! हे दीनबन्धु ! हे सबके हृदयके अन्दरकी जाननेवाले ! मेरे तो वे सब कुछ केवल आप ही हैं ॥ ३ ॥

धरम नीति उपदेसिअ ताही । कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ॥

मन क्रम वचन चरन रत होई । कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई ॥ ४ ॥

धर्म और नीतिका उपदेश तो उमको करना चाहिये जिसे कीर्ति, विभूति (ऐश्वर्य) या सद्गति प्यारी हो । किन्तु जो मन, वचन और कर्ममें चरणोंमें ही प्रेम रखता हो, हे कृपामिन्धु ! क्या वह भी त्यागनेके योग्य है ? ॥ ४ ॥

दो०—कल्लासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु वचन विनीत ।

समुझाए उर लाइ प्रभु जानि सनेहँ समीत ॥ ७२ ॥

दयाके समुद्र श्रीरामचन्द्रजीने भले भाईके कोमल और नम्रतायुक्त वचन सुनकर और उन्हें स्नेहके कारण डरे हुए जानकर, हृदयसे लगाकर समझाया ॥ ७२ ॥

चो०—मागहु बिदा मातु सन जाई । आवहु बेगि चलहु बन भाई ॥

मुदित भए सुनि रघुबर बानी । भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी ॥ १ ॥

[और कहा—] हे भाई ! जाकर मातासे विदा माँग आओ और जल्दी वनको चलो । रघुकुलमें भेष्ट श्रीरामजीकी बाणी सुनकर लक्ष्मणजी आनन्दित हो गये । बड़ी हानि दूर हो गयी और बड़ा लाभ हुआ ! ॥ १ ॥

हरषित हृदयँ मातु पहिँ आए । मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए ॥

जाइ जननि पग नायउ माथा । मनु रघुनंदन जानकि साथी ॥ २ ॥

वे हर्षित हृदयसे माता (सुमित्राजी) के पास आये, मानो अंधा फिरसे नेत्र पा गया हो । उन्होंने जाकर माताके चरणोंमें मस्तक नवाया; किन्तु उनका मन रघुकुलको आनन्द देनेवाले श्रीरामजी और जानकीजीके साथ था ॥ २ ॥

पूँछे मातु मलिन मन देखी । लखन कही सब कथा बिसेयी ॥

गई सहमि सुनि बचन कठोरा । मृगी देखि दव जनु चहु ओरा ॥ ३ ॥

माताने उदास मन देखकर उनसे [कारण] पूछा । लक्ष्मणजीने सब कथा विस्तारमें कह सुनायी । सुमित्रा कठोर वचनोंको सुनकर ऐसी सहम गयीं जैसे हिरनी चारों ओर वनमें आग लगी देखकर सहम जाती है ॥ ३ ॥

लखन लखेउ भा अनरथ आजु । एहिँ सनेह बस करब अकाजु ॥

मागत बिदा सभय सकुचाहीं । जाइ संग बिधि कहिहि कि नहिँ ॥ ४ ॥

लक्ष्मणने देखा कि आज (अब) अनर्थ हो गया । ये स्नेहवश काम बिगाड़ देंगी ! इसलिये वे विदा माँगते हुए डरके मारे सकुचाते हैं और मन-ही-मन सोचते हैं कि वे विधाता ! माता साथ जानेको कहेंगी या नहीं ॥ ४ ॥

दो०—समुझि सुमित्राँ राम सिय रूपु सुमीलु सुभाउ ।

नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ ॥ ७३ ॥

सुमित्राजीने श्रीरामजी और श्रीसीताजीके रूप, सुन्दर शील और स्वभावकी ममझकर और उनपर राजाका प्रेम देखकर अपना सिर धुना (पीटा) और कहा कि पापिनी कैकेयीने बुरा तरह धान लमाया ॥ ७३ ॥

चो०—धीरजु धरेउ कुअवसर जानी । सहज सुहृद बोली मृदुबानी ॥

तात तुम्हारि मातु बैदेही । पिता रामु सब भाँति सनेही ॥ १ ॥

परन्तु कुसमय जानकर धैर्य धारण किया और स्वभावसे ही हित चाहनेवाली सुमित्राजी कोमल वाणीसे बोली—हे तात ! जानकीजी तुम्हारी माता हैं और सब प्रकारसे स्नेह करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे पिता हैं ! ॥ १ ॥

अवध तहाँ जहँ राम निवामु । तहँ दिवसु जहँ भानुप्रकामु ॥

जौं पै सीय रामु वन जाहौं । अवध तुम्हार काजु कहु नाहौं ॥ २ ॥

जहाँ श्रीरामजीका निवास हो वहाँ अयोध्या है; जहाँ सूर्यका प्रकाश हो वहाँ दिन है । यदि निश्चय ही सीता-राम वनको जाते हैं तो अयोध्यामें तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है ॥ २ ॥

गुर पितु मातु बंधु सुग साई । सेइअहिँ सकल प्राण की नाई ॥

रामु प्राणप्रिय जीवन जी के । स्वारथरहित सखा सबही के ॥ ३ ॥

गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी, इन सबकी सेवा प्राणके समान करनी चाहिये । फिर श्रीरामचन्द्रजी तो प्राणोंके भी प्रिय हैं, हृदयके भी जीवन हैं और सभीके स्वार्थरहित सखा हैं ॥ ३ ॥

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तैं । सब मानिअहिं राम के नातैं ॥

अस जियँ जानि संग बन जाहु । लेहु तात जग जीवन लाहु ॥ ४ ॥

जगत्में जहाँतक पूजनीय और परम प्रिय लोग हैं, वे सब रामजीके नातेसे ही [पूजनीय और परम प्रिय] मानने योग्य हैं । हृदयमें ऐसा जानकर, हे तात ! उनके साथ बन जाओ और जगत्में जीनेका लाभ उठाओ ! ॥ ४ ॥

दो०—भूरि भाग भाजनु मयहु मोहि समेत बलि जाउँ ।

जौ तुम्हें मन छाड़ि छलु कीन्ह रामपद ठाउँ ॥ ७४ ॥

मैं बलिहारी जाती हूँ, [हे पुत्र !] मेरे समेत तुम बड़े ही सौभाग्यके पात्र हुए, जो तुम्हारे चित्तने छल छोड़कर भीरामके चरणोंमें स्थान प्राप्त किया है ॥ ७४ ॥

चो०—पुत्रवती जुवती जग सोई । रघुपति भगनु जासु सुनु होई ॥

नतर बाँझ बलि बाढ़ि बिआनी । रामविमुख सुत तैं हित जानी ॥ १ ॥

संसारमें वही युवती स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र श्रीरघुनाथजीका भक्त हो । नहीं तो जो रामसे विमुख पुत्रसे अपना हित जानती है, वह तो बाँझ ही अच्छी । पशुकी भाँति उसका व्याना (पुत्र प्रसव करना) व्यर्थ ही है ॥ १ ॥

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं । दूसर हेतु तात कळु नाहीं ॥

सकल सुकृत कर बड़ फलु पडु । राम सीय पद सहज सनेहु ॥ २ ॥

तुम्हारे ही भाग्यसे भीरामजी बनको जा रहे हैं । हे तात ! दूसरा कोई कारण नहीं है । सम्पूर्ण पुण्योंका सबसे बड़ा फल यही है कि श्रीसीतारामजीके चरणोंमें स्वाभाविक प्रेम हो ॥ २ ॥

रामु रोषु हरिया महु मोहु । जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहु ॥

सकल प्रकार बिकार बिहाई । मन क्रम बचन करेहु सेवकार ॥ ३ ॥

राम, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह, इनके बश स्वप्नमें भी मत होना । सब प्रकारके विकारोंका त्याग कर मन, बचन और कर्मसे भीसीतारामजीकी सेवा करना ॥ ३ ॥

तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासु । सँग पितु मातु रामु सिय जासु ॥

जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसु । सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसु ॥ ४ ॥

तुमको वनमें सब प्रकारसे आराम है, जिसके साथ भीरामजी और सीताजीरूप पिता-माता हैं । हे पुत्र ! तुम वही करना जिससे भीरामचन्द्रजी वनमें क्रेश न पावें, मेरा यही उपदेश है ॥ ४ ॥

छं०—उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हें राम सिय सुख पावहीं ।

पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं ॥

तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु कीन्ह पुनि आसिष दई ।

रति होउ अचिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई ॥

हे तात ! मेरा यही उपदेश है (अर्थात् तुम वही करना) जिससे वनमें तुम्हारे कारण भीरामजी और सीताजी सुख पावें और पिता, माता, प्रिय परिवार तथा नगरके सुखोंकी याद भूल जायें । तुलसीदासजी कहते हैं

कि सुमित्राजीने इस प्रकार हमारे प्रभु (श्रीलक्ष्मणजी) को शिक्षा देकर वन जानेकी आज्ञा दी और फिर यह आशीर्वाद दिया कि श्रीसीताजी और श्रीरघुवीरजीके चरणोंमें तुम्हारा निर्मल (निष्काम और अनन्य) एवं प्रगाढ़ प्रेम नित-नित नया हो ! ॥

सो०—मातु चरन सिरु नाइ चले तुरत संकित हृदयँ ।

बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भाग बस ॥७५॥

माताके चरणोंमें सिर नवाकर, हृदयमें डरते हुए [कि अब भी कोई विघ्न न आ जाय] लक्ष्मणजी तुरंत इस तरह चल दिये जैसे सौभाग्यवश कोई हिरण कठिन फंदेको तुड़ाकर भाग निकला हो ॥ ७५ ॥

चौ०—गए लखनु जहँ जानकिनाथू । भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू ॥

बंदि राम सिय चरन सुहाए । चले संग नृपमंदिर आए ॥ १ ॥

लक्ष्मणजी वहाँ गये जहाँ श्रीजानकीनाथजी थे, और प्रियका साथ पाकर मनमें बड़े ही प्रसन्न हुए । श्रीरामजी और सीताजीके सुन्दर चरणोंकी वन्दना करके वे उनके साथ चले और राजभवनमें आये ॥ १ ॥

कहहिं परसपर पुर नर नारी । भलि बनाइ बिधि बात बिगारी ॥

तन कस मन दुखु वदन मलीने । बिकल मनहुँ माखी मधु छीने ॥ २ ॥

नगरके स्त्री-पुरुष आपसमें कह रहे हैं कि विधाताने खूब बनाकर बात बिगाड़ी ! उनके शरीर दुबले, मन दुखी, और मुख उदास हो रहे हैं । वे ऐसे व्याकुल हैं जैसे शहद छीन लिये जानेपर शहदकी मक्खियाँ व्याकुल हों ॥ २ ॥

कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताहीं । जनु विनु पंख बिहग अकुलाहीं ॥

भइ वड़ि भीर भूपदरबारा । बरनि न जाइ विषादु अपारा ॥ ३ ॥

सब हाथ मल रहे हैं और सिर धुनकर (पीटकर) पछता रहे हैं, मानो बिना पंखके पक्षी व्याकुल हो रहे हों । राजद्वारपर बड़ी भीड़ हो रही है, अपार विषादका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ३ ॥

सचिवँ उठाइ राउ बैठारे । कहि प्रिय बचन रामु पशु धारे ॥

सिय समेत दोउ तनय निहारी । व्याकुल भयउ भूमिपति भारी ॥ ४ ॥

‘श्रीरामचन्द्रजी पधारे हैं’ ये प्रिय वचन कहकर मन्त्रीने राजाको उठाकर बैठाया । सीतासहित दोनों पुत्रोंको [वनके लिये तैयार] देखकर राजा बहुत व्याकुल हुए ॥ ४ ॥

दो०—सीय सहित सुत सुभग दोउ देखि देखि अकुलाइ ।

बारहिं बार सनेह बस राउ लेइ उर लाइ ॥७६॥

सीतासहित दोनों सुन्दर पुत्रोंको देख-देखकर राजा अकुलाते हैं और स्नेहवश बार-बार उन्हें हृदयसे लगा लेते हैं ॥ ७६ ॥

चौ०—सकइ न चोलि बिकल नरनाह । सोकजनित उर दारुन दाह ॥

नाइ सीसु पद अति अनुरागा । उठि रघुबीर बिदा तब मागा ॥ १ ॥

राजा व्याकुल हैं, बोल नहीं सकते । हृदयमें शोकसे उत्पन्न हुआ भयानक सन्ताप है । तब रघुकुल-के वीर श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त प्रेमसे चरणोंमें सिर नवाकर उठकर विदा माँगी—॥ १ ॥

पितु असीस आयसु मोहि दीजै । हरष समय बिसमउ कत कीजै ॥

तात किएँ प्रियप्रेम प्रमादू । जसु जग जाइ होइ अपवादू ॥ २ ॥

हे पिताजी ! मुझे आशीर्वाद और आज्ञा दीजिये । हर्षके समय आप शोक क्यों कर रहे हैं ? हे तात ! प्रियके प्रेमवश प्रमाद (कर्तव्यकर्ममें त्रुटि) करनेसे जगत्में यश जाता रहेगा और निन्दा होगी ॥ २ ॥

मुनि सनेह बस उठि नरनाहाँ । बैठारे रघुपति गहि बाहाँ ॥

सुनहु तात तुम्ह कहूँ मुनि कहहीं । रामु चराचरनायक अहहीं ॥ ३ ॥

यह सुनकर स्नेहवश राजाने उठकर श्रीरघुनाथजीकी बाँह पकड़कर उन्हें बैठा लिया और कहा— हे तात ! मुनो, तुम्हारे लिये मुनिलोग कहते हैं कि श्रीराम चराचरके स्वामी हैं ॥ ३ ॥

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी । ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी ॥

करइ जो करम पाव फल सोई । निगम नीति असि कह सबु कोई ॥ ४ ॥

शुभ और अशुभ कर्मोंके अनुसार ईश्वर हृदयमें विचारकर फल देता है । जो कर्म करता है वही फल पाता है । ऐसी वेदकी नीति है, यह सब कोई कहते हैं ॥ ४ ॥

दो०—औरु करै अपराधु कोउ और पाव फलभोगु ।

अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु ॥ ७७ ॥

[किन्तु इस अवसरपर तो इसके विपरीत हो रहा है,] अपराध तो कोई और ही करे और उसके फलका भोग कोई और ही पावे ! भगवान्की लीला बड़ी ही विचित्र है, उसे जाननेयोग्य जगत्में कौन है ! ॥ ७७ ॥

चौ०—रायँ राम राखन हित लागी । बहुत उपाय किए छलु त्यागी ॥

लखी राम रख रहत न जाने । धरम धुरंधर धीर सयाने ॥ १ ॥

राजाने इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीको रखनेके लिये छल छोड़कर बहुत-से उपाय किये; पर जब उन्होंने धर्मधुरंधर, धीर और बुद्धिमान् श्रीरामजीका रख देख लिया और वे रहते हुए न जान पड़े, ॥ १ ॥

तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही । अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही ॥

कहि बन के दुख दुसह सुनाए । सासु ससुर पितु सुख समझाए ॥ २ ॥

तब राजाने सीताजीको हृदयसे लगा लिया और बड़े प्रेमसे बहुत प्रकारकी शिक्षा दी । वनके दुःख दुःख कहकर सुनाये । फिर सास, ससुर तथा पिताके [पास रहनेके] सुखोंको समझाया ॥ २ ॥

सियमनु रामचरन अनुरागा । घर न सुगमु बन बिपमु न लागा ॥

औरउ सबहिं सीय समझाई । कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई ॥ ३ ॥

परन्तु सीताजीका मन श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें अनुरक्त था; इसलिये उन्हें घर अच्छा नहीं लगा, और न वन भयानक लगा । फिर और सब लोगोंने भी वनमें विपत्तियोंकी अधिकता बता- बताकर सीताजीको समझाया ॥ ३ ॥

सचिव नारि गुर नारि सयानी । सहित सनेह कहहिं मृदुवानी ॥

तुम्ह कहूँ तौ न दीन्ह बनबासु । करहु जो कहहिं ससुर गुर सासु ॥ ४ ॥

मन्त्री सुमन्त्रजीकी पत्नी, और गुप्त वशिष्ठजीकी स्त्री (अरुन्धतीजी), तथा और भी चतुर

स्त्रियाँ स्नेहके साथ कोमल वाणीसे कहती हैं कि तुमको तो वनवास दिया नहीं है; इसलिये जो ससुर, गुरु और सास कहें, तुम तो वही करो ॥ ४ ॥

दो०—सिख सीतलि हित मधुर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि ।

सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि ॥ ७८ ॥

यह शीतल, हितकारी, मधुर और कोमल सीख सुननेपर सीताजीको अच्छी नहीं लगी । [वे इस प्रकार व्याकुल हो गयीं] मानो शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी चाँदनी लगते ही चकई व्याकुल हो उठी हो ॥ ७८ ॥

चौ०—सीय सकुच बस उतर न देई । सो सुनि तमकि उठी कैकई ॥

मुनि पट भूषन भाजन आनी । आगें घरि बोली मृदु बानी ॥ १ ॥

सीताजी संकोचवश उत्तर नहीं देती । इन बातोंको सुनकर कैकेयी तमककर उठी । उसने मुनियोंके वस्त्र, आभूषण (माला, मेखला आदि) और वर्तन (कमण्डलु आदि) लेकर श्रीरामचन्द्रजीके आगे रख दिये और कोमल वाणीसे कहा—॥ १ ॥

नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा । सील सनेह न छाड़िहि भीरा ॥

सुरुतु सुजसु परलोकु नसाऊ । तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ ॥ २ ॥

हे रघुवीर ! राजाको तुम प्राणोंके समान प्रिय हो; भीरु (प्रेमवश दुर्बल हृदयके) राजा शील और स्नेह नहीं छोड़ेंगे ! पुण्य, सुन्दर यश और परलोक चाहें नष्ट हो जाय, पर तुम्हें वन जानेको वे कभी न कहेंगे ॥ २ ॥

अस विचारि सोइ करहु जो भावा । राम जननिसिख सुनि सुख पावा ॥

भूपहि बचन बानसम लागे । करहि न प्रान पयान अभागे ॥ ३ ॥

ऐसा विचारकर जो तुम्हें अच्छा लगे वही करो । माताकी सीख सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने सुख पाया । परन्तु राजाको ये वचन बाणके समान लगे । [वे सोचने लगे] अब भी अभागो प्राण [क्यों] नहीं निकलते ॥ ३ ॥

लोग बिकल मुरुछित नरनाइ । काह करिअ कछु सूझ न काइ ॥

रामु तुरत मुनिबेषु बनाई । चले जनक जननिहि सिर नाई ॥ ४ ॥

राजा मूर्छित हो गये, लोग व्याकुल हैं । किसीको कुछ सूझ नहीं पड़ता कि क्या करें । श्रीरामचन्द्रजी तुरंत मुनिका वेष बनाकर और माता-पिताको सिर नवाकर चल दिये ॥ ४ ॥

दो०—सजि बन साजु समाजु सबु बनिता बंधु समेत ।

बंदि विप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत ॥ ७९ ॥

वनका सघ साज-सामान सजकर (वनके लिये आवश्यक वस्तुओंको साथ लेकर) श्रीरामचन्द्रजी स्त्री (श्रीसीताजी) और भाई (लक्ष्मणजी) सहित, ब्राह्मण और गुरुके चरणोंकी बन्दना करके सबको अचेत करके चले ॥ ७९ ॥

चौ०—निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढ़ । देखे लोग बिरहदवँ दाढ़ ॥

कहि प्रिय बचन सकल समुझाय । बिप्रचंद रघुबीर बोलाय ॥ १ ॥

राजमहलसे निकलकर श्रीरामचन्द्रजी वशिष्ठजीके दरवाजेपर जा खड़े हुए और देखा कि सब लोग विरहकी अग्निमें जल रहे हैं। उन्होंने प्रिय वचन कहकर सबको समझाया। फिर श्रीरघुवीरजीने ब्राह्मणोंकी मण्डलीको बुलाया ॥ १ ॥

गुर सन कहि बरषासन दीन्हे । आदर दान विनय बस कीन्हे ॥
जाचक दान मान संतोषे । मीत पुनीत प्रेम परितोषे ॥ २ ॥

गुरुजीसे कहकर उन सबको वर्षाशन (वर्षभरका भोजन) दिये और आदर, दान तथा विनयसे उन्हें वशमें कर लिया। फिर याचकाको दान और मान देकर संतुष्ट किया, तथा मित्रोंको पवित्र प्रेमसे प्रसन्न किया ॥ २ ॥

दासी दास बोलाइ बहोरी । गुरहि सौंपि बोले कर जोरी ॥
सब कै सार सँभार गोसाईं । करबि जनक जननी की नारी ॥ ३ ॥

फिर दास-दासियोंको बुलाकर, उन्हें गुरुजीकी सौंपकर, हाथ जोड़कर बोले—हे गुसाईं ! इन सबकी माता-पिताके समान सार-सँभार (देख-रेख) करते रहियेगा ॥ ३ ॥

बारहिं बार जोरि जुग पानी । कहत रामु सब सन मृदु बानी ॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी । जेहि तैं रहै भुआल सुखारी ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बार-बार दोनों हाथ जोड़कर सबसे कोमल वाणी कहते हैं कि मेरा सब प्रकारसे हितकारी मित्र बही होगा जिसकी चेष्टासे महाराज सुखी रहें ॥ ४ ॥

दो०—मातु सकल मोरें विरहैं जेहिं न होहिं दुखदीन ।
सोइ उपाउ तुम्ह करहु सब पुरजन परम प्रवीन ॥ ८० ॥

हे परम चतुर पुरवासी सज्जनो ! आपलोग सब वही उपाय करियेगा जिससे मेरी सब माताएँ मेरे विरहके दुःखसे दुखी न हों ॥ ८० ॥

चौ०—एहि बिधि राम सबहि समुझावा । गुर पद पदुम हरषि सिख नावा ॥
गनपति गौरि गिरीसु मनाई । चले असीस पाइ रघुराई ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीरामजीने सबको समझाया, और हर्षित होकर गुरुजीके चरणकमलोंमें सिर नवाया। फिर गणेशजी, पार्वतीजी और कैलासपति महादेवजीको मनाकर तथा आशीर्वाद पाकर श्रीरघुनाथजी चले ॥ १ ॥

राम चलत अति भयउ बिषादू । सुनि न जाइ पुर आरतनादू ॥
कुसगुन लंक अवघ अति सोकू । हरष बिषाद बिबस सुरलोकू ॥ २ ॥

श्रीरामजीके चलते ही बड़ा भारी विषाद हो गया। नगरका आर्तनाद (हाहाकार) सुना नहीं जाता। लंकामें बुरे शकुन होने लगे, अयोध्यामें अत्यन्त शोक छा गया और देवलोकमें सब हर्ष और विषाद दोनोंके वशमें हो गये। [हर्ष इस बातका था कि अब राक्षसोंका नाश होगा, और विषाद अयोध्यावासियोंके शोकके कारण था।] ॥ २ ॥

गइ मुरुछा तब भूपति जागे । बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे ॥
रामु चले बन प्रान न जाहीं । केहि सुख लागि रहत तन माहीं ॥ ३ ॥

मूर्च्छा दूर हुई, तब राजा जागे और सुमन्त्रको बुलाकर ऐसा कहने लगे—श्रीराम वनको चले गये, पर मेरे प्राण नहीं जा रहे हैं: न जाने ये किस सुखके लिये शरीरमें टिक रहे हैं ॥ ३ ॥

एहि तैं कवन व्यथा बलवाना । जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राणा ॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाह । लै रथ संग सखा तुम्ह जाह ॥ ४ ॥

इससे अधिक बलवान् और कौन-सा व्यथा होगी जिस दुःखको पाकर प्राण शरीरको छोड़ेंगे ! फिर धीरज धरकर राजाने कहा—हे सखा ! तुम रथ लेकर श्रीरामके साथ जाओ ॥ ४ ॥

दो०—सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनकसुता सुकुमारि ।

रथ चढ़ाइ देखराइ वनु फिरहु गएँ दिन चारि ॥ ८१ ॥

अत्यन्त सुकुमार दोनों कुमारोंकी और सुकुमारी जानकीकी रथमें चढ़ाकर, वन दिखलाकर चार दिनोंके बाद लौट आना ॥ ८१ ॥

चौ०—जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई । सत्यमंध दृढ़व्रत रघुराई ॥
ताँ तुम्ह विनय करेहु कर जोरी । फेरिअ प्रभु मिथिलेस किसोरी ॥ १ ॥

यदि धैर्यवान् दोनों भाई न लौटें—क्योंकि श्रीरघुनाथजी प्रणक सबे और दृढतामें नियमका पालन करने वाले हैं—तो तुम हाथ जोड़कर विनती करना कि हे प्रभो ! जनककुमारी सीताजीको तो लौटा दीजिये ॥ १ ॥

जब सिय कानन देखि डंगई । कहेहु मोरि सिख अवसरु पाई ॥
सामु समुसर अस कहेउ सँदेसू । पुत्रि फिरिअ वन बहुत कलेसू ॥ २ ॥

जब सीता वनको देखकर डंग, तब मोका पाकर मेरी यह सीख उनमें कहना कि तुम्हारा मास और समुसरने ऐसा सन्देश कहा है कि हे पुत्री ! तुम लौट चलो; वनमें बहुत क्लेश हैं ॥ २ ॥

पितुगृह कबहुँ कबहुँ समुसारी । रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी ॥
एहि विधि करेहु उपाय कदंबा । फिरइ त होइ प्राण अवलंबा ॥ ३ ॥

कभी पिताके घर, कभी समुसर, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ रहना । इस प्रकार तुम बहुत-से उपाय करना । यदि सीता लौट आयी, तो मेरे प्राणोंको सहारा हो जायगा ॥ ३ ॥

नाहिं त मोर मरनु परिनामा । कलु न बसाइ भएँ विधि बामा ॥
अस कहि मुखि परा महि राऊ । रामु लखनु सिय आनि देखाऊ ॥ ४ ॥

नहीं तो मोर मरण ही होगा । विधाताके विपरीत होनेपर कुछ बस नहीं चल्ता । हा ! राम, लक्ष्मण और सीताको लाकर दिखाओ । ऐसा कहकर राजा मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४ ॥

दो०—पाइ रजायसु नाइ सिरु रथु अति बंग बनाइ ।
गयउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ ॥ ८२ ॥

सुमन्त्रजी राजाकी आज्ञा पाकर, सिर नवाकर और बहुत जल्दी रथ जुड़वाकर वहाँ गये जहाँ नगरके बाहर सीताजीसहित दोनों भाई थे ॥ ८२ ॥

चौ०—तब सुमंत्र नृपवचन सुनाए । करि विनती रथ रामु चढ़ाए ॥
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई । चले हृदय अवधहि सिरु नाई ॥ १ ॥

तब (वहाँ पहुँचकर) मुमन्त्रने राजाके वचन श्रीरामचन्द्रजीकी सुनाये और विनती करके उनको रथपर चढ़ाया । सीताजीसहित दोनों भाई रथपर चढ़कर हृदयमें अयोध्याकी सिर नवाकर चले ॥ १ ॥

चलत रामु लखि अवध अनाथा । विकल लोग सब लागे साथ ॥

कृपासिंधु बहुविधि समुझावहिं । फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकां जाते हुए और अयोध्याकी अनाथ [होते हुए] देखकर सब लोग व्याकुल होकर उनके साथ हो लिये । कृपाके समुद्र श्रीरामजी उन्हें बहुत तरहसे समझाते हैं, तो वे [अयोध्याकी ओर] लौट जाते हैं; परन्तु प्रेमवश फिर लौट आते हैं ॥ २ ॥

लागति अवध भयावनि भारी । मानहुँ कालराति अँधियारी ॥

घोर जंतु सम पुर नर नारी । डरपहिं एकहि एक निहारी ॥ ३ ॥

अयोध्यापुरी बड़ी डरावनी लग रही है । मानो अन्धकारमयी कालरात्रि ही हो । नगरके नर-नारी भयानक जन्तुओंके समान एक-दूसरेको देखकर डर रहे हैं ॥ ३ ॥

घर मसान परिजन जनु भूता । सुत हित मीत मनहुँ जमदूता ॥

बागन्ह ब्रिटप बेलि कुम्हिलाहीं । सरित सरोवर देखि न जाहीं ॥ ४ ॥

घर श्मशान, कुटुम्बा भूत-प्रेत और पुत्र, हितेयी और मित्र मानो यमराजके दूत हैं । बगीचोंमें वृक्ष और वेले कुम्हल्य रही हैं । नदी और तालाब ऐसे भयानक लगते हैं कि उनकी ओर देखा भी नहीं जाता ॥ ४ ॥

दो०—हय गय कोटिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर ।

पिक रथांग सुक सारिका सास हंस चकोर ॥ ८३ ॥

करोड़ों घोड़े, हाथी, खेलनेके लिये पाले हुए हिरन, नगरके [गाय, बैल, चकरी आदि] पशु, पपीहे, मोर, कोयल, चकवे, तोते, मैना, सारस, हंस और चकोर—॥ ८३ ॥

चौ०—रामत्रियोग विकल सब ठाढ़े । जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े ॥

नगर सफल वनु गहबर भारी । खग मृग विपुल सकल नर नारी ॥ १ ॥

श्रीरामजीके त्रियोगमें सभी व्याकुल हुए, जहाँ-तहाँ [ऐसे चुपचाप स्थिर होकर] खड़े हैं, मानो तस्वीरोंमें लिखकर बनाये हुए हैं । नगर मानो फलोंसे परिपूर्ण सघन वन था, नगरनिवासी सब स्त्री-पुरुष बहुत-से पशु-पक्षी थे । (अर्थात् अवधपुरी अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चांगें फलोंको देनेवाली नगरी थी और सब स्त्री-पुरुष सुखमें उन फलोंको प्राप्त करते थे ।) ॥ १ ॥

विधि कैकई किरातिनि कान्हि । जेहिं दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही ॥

सहि न सके रघुबर बिरहागी । चले लोग सब व्याकुल भागी ॥ २ ॥

विधानमें कैकयीकां भीलनी बनाया, जिसने दसो दिशाओंमें दुःसह दावाग्नि (भयानक आग) लगा दी । रघुकुलमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके विरहकी इस अग्निकी लोग सह न सके । सब लोग व्याकुल होकर भाग चले ॥ २ ॥

सबहिं बिचार कान्ह मन माहीं । राम लखन सिय बिनु सुख नाहीं ॥

जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू । बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू ॥ ३ ॥

सबने मनमें विचार कर लिया कि श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजीके बिना सुख नहीं है । जहाँ श्रीरामजी रहेंगे, वहाँ सारा समाज रहेगा । श्रीरघुवीरजीके बिना अयोध्यामें हमलोगोंका कुछ काम नहीं है ॥ ३ ॥

चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई । सुर दुर्लभ सुखसदन बिहाई ॥

राम चरन पंकज प्रिय जिन्हही । बिषयभोग बस करहिं कि तिन्हही ॥ ४ ॥

ऐसा विचार दृढ़ करके देवताओंको भी दुर्लभ सुखोंसे पूर्ण घरोंको छोड़कर सब श्रीरामचन्द्रजीके साथ चल पड़े । जिनको श्रीरामजीके चरणकमल प्यारे हैं, उन्हें क्या कभी विषयभोग वशमें कर सकते हैं ॥ ४ ॥

दो०—बालक बृद्ध बिहाइ गृह लगे लोग सब साथ ।

तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ ॥ ८४ ॥

बच्चों और बूढ़ोंको घरोंमें छोड़कर सब लोग साथ हो लिये । पहले दिन श्रीरघुनाथजीने तमसा नदीके तीरपर निवास किया ॥ ८४ ॥

चौ०—रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी । सद्य हृदयँ दुखु भयउ बिसेषी ॥

करुणामय रघुनाथ गोसाँई । बेगि पाइअहिं पीर पराई ॥ १ ॥

प्रजाको प्रेमवश देखकर श्रीरघुनाथजीके दयालु हृदयमें बड़ा दुःख हुआ । प्रभु श्रीरघुनाथजी करुणामय हैं । परायी पीड़ाको वे तुरंत पा जाने हैं (अर्थात् दूसरेका दुःख देखकर वे तुरंत स्वयं दुःखित हो जाते हैं) ॥ १ ॥

कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए । बहुविधि राम लोग समुझाए ॥

किए धरम उपदेस घनेरे । लोग प्रेमबस फिरहिं न फेरे ॥ २ ॥

प्रेमयुक्त कोमल और सुन्दर वचन कहकर श्रीरामजीने बहुत प्रकारसे लोगोंको समझाया और बहुतेरे धर्मसम्बन्धी उपदेश दिये । परन्तु प्रेमवश लोग लौटाये लौटते नहीं ॥ २ ॥

सीलु सनेहु छाड़ि नहिं जाई । असमंजस बस भे रघुराई ॥

लोग सोग श्रम बस गए सोई । कलुक देवमायाँ मति मोई ॥ ३ ॥

शील और स्नेह छोड़ा नहीं जाता । श्रीरघुनाथजी असमंजसके अधीन हो गये (दुविधामें पड़ गये) । शोक और परिश्रम (धकावट) के मारे लोग सो गये और कुछ देवताओंकी मायासे भी उनकी बुद्धि मोहित हो गयी ॥ ३ ॥

जबहिं जाम जुग जामिनिं बीती । राम सचिव सन कहेउ सप्रतीती ॥

खोज मारि रथु हाँकहु ताता । आन उपायँ बनिहि नहिं बाता ॥ ४ ॥

जब दो पहर रात बीत गयी, तब श्रीरामचन्द्रजीने प्रेमपूर्वक मन्त्री सुमन्त्रसे कहा—हे तात ! रथके खोज मारकर (अर्थात् पहियोंके चिह्नोंसे दिशाका पता न चले इस प्रकार) रथको ढूँढ़िये; और किसी उपायसे बात नहीं बनेगी ॥ ४ ॥

दो०—राम लखन सिय जान चढ़ि संभुचरन सिरु नाइ ।

सचिवँ चलायउ तुरत रथु इत उत खोज दुराइ ॥ ८५ ॥

शंकरजीके चरणोंमें सिर नवाकर श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी रथपर सवार हुए । मन्त्रीने तुरंत ही रथको, हथर-उधर खोज छिपाकर चला दिया ॥ ८५ ॥

चौ०—जागे सकल लोग भएँ भोरू । ने रघुनाथ भयउ अति सोरू ॥

रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं । राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं ॥ १ ॥

सबेरा होते ही सब लोग जागे, तो बड़ा शोर मचा कि श्रीरघुनाथजी चले गये । कहीं रथका खोज नहीं पाते, सब 'हा राम ! हा राम !' पुकारते हुए चारों ओर दौड़ रहे हैं ॥ १ ॥

मनहुँ बारिनिधि बूढ़ जहाजू । भयउ बिकल बड़ बनिकसमाजू ॥
एकहि एक देहिं उपदेसू । तजे राम हम जानि कलेसू ॥ २ ॥

मानो समुद्रमें जहाज डूब गया हो, जिससे व्यापारियोंका समुदाय बहुत ही व्याकुल हो उठा हो । वे एक दूसरेको उपदेश देते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीने हमलोगोंको क्लेश होगा, यह जानकर छोड़ दिया है ॥ २ ॥

निंदहिं आपु सराहिं मीना । धिग जीवनु रघुवीर बिहीना ॥
जौ पै प्रियबियोगु बिधि कीन्हा । तौ कस मरनु न मागौ दीन्हा ॥ ३ ॥

वे लोग अपनी निन्दा करते हैं और मछलियोंकी सराहना करते हैं । कहते हैं—श्रीरघुवीरजीके बिना हमारे जीनेको थिकार है । विधाताने यदि प्यारेका वियोग ही रचा, तो फिर उसने माँगनेपर मृत्यु क्यों नहीं दी ! ॥ ३ ॥

एहि बिधि करन प्रलाप कलापा । आप अवध भरे परितापा ॥
बिषम बियोगु न जाइ बखाना । अवधि आस सब राखहिं प्राना ॥ ४ ॥

इस प्रकार बहुत-से प्रलाप करते हुए वे सन्तापसे भरे हुए अयोध्याजीमें आये । उन लोगोंके विषम वियोगकी दशाका वर्णन नहीं किया जा सकता । [चौदह सालकी] अवधिकी आशासे ही वे प्राणोंको रख रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—राम दरस हित नेम व्रत लगे करन नर नारि ।

मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि ॥ ८६ ॥

सब स्त्री-पुरुष श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये नियम और व्रत करने लगे और ऐसे दुर्गवी हो गये जैसे चकवा, चकवी और कमल सूर्यके बिना दीन हो जाते हैं ॥ ८६ ॥

चा०—सीता सचिव सहित दोउ भाई । संगबेरपुर पहुँचे जाई ॥
उतरे राम देवसरि देखी । कीन्ह दंडवत हरषु बिसेपी ॥ १ ॥

सीताजी और मन्त्रीसहित दोनों भाई शृंगबेरपुर जा पहुँचे । वहाँ गङ्गाजीको देखकर श्रीरामजी रथसे उतर पड़े और बड़े हर्षके साथ उन्होंने दण्डवत् की ॥ १ ॥

लखन सचिवँ सियँ किए प्रनामा । सबहि सहित सुखु पायउ रामा ॥
गंग सकल मुद मंगल मूला । सब सुख करनि हरनि सब सुला ॥ २ ॥

लक्ष्मणजी, सुमन्त्र और सीताजीने भी प्रणाम किया । सबके साथ श्रीरामचन्द्रजीने सुख पाया । गङ्गाजी समस्त आनन्द-मङ्गलोंकी मूल हैं । वे सब सुखोंकी करनेवाली और सब पीड़ाओंकी हरनेवाली हैं ॥ २ ॥

कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा । रामु बिलोकहिं गंग तरंगा ॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई । बिबुध नदी महिमा अधिकारि ॥ ३ ॥

अनेक कथा-प्रसंग कहते हुए श्रीरामजी गङ्गाजीकी तरङ्गोंको देख रहे हैं । उन्होंने मन्त्रीको, छोटे भाई लक्ष्मणजीको और प्रिया सीताजीको देवनदी गङ्गाजीकी बड़ी महिमा सुनायी ॥ ३ ॥

मजनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ । सुचि जलु पियत मुदित मन भयऊ ॥
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू । तेहि श्रम यह लौकिक व्यवहारू ॥ ४ ॥

इसके बाद सबने स्नान किया, जिससे मार्गका सारा श्रम (थकावट) दूर हो गया और पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया । जिनके स्मरणमात्रसे बार-बार जन्मने और मरनेका [महान् श्रम] मिट जाता है, उनको 'श्रम' होना—यह केवल लौकिक व्यवहार है (नरलीला है) ॥ ८ ॥

दो०—सुद्ध सच्चिदानन्दमय कन्द भानुकुल केतु ।

चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु ॥ ८७ ॥

गुद्ध (प्रकृतिजन्य विगुणोंमें रहित, मायातीत दिव्य मङ्गलविग्रह) सच्चिदानन्दकन्दस्वरूप सूर्यकुलके भवजास्य भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मनुष्योंके सदृश ऐंसे चरित्र करते हैं जो संसाररूपी समुद्रके पार उतरनेके लिये पुलके समान हैं ॥ ८७ ॥

चौ०—यह सुधि गुहँ निपाद जब पाई । मुदित लिप प्रिय बंधु बोलाई ॥

लिप फल मूल भेंट भरि भारा । मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा ॥ १ ॥

जब निपादराज गुहने यह खबर पायी, तब आनन्दित होकर उसने अपने प्रियजनों और भाई-बन्धुआकां धुल्य दिया और भेंट देनेके लिये फल, मूल (कन्द) लेकर और उन्हें भारोंमें (बहंगियोंमें) भरकर मिलनेके लिये चला । उसके हृदयमें हर्षका पार नहीं था ॥ १ ॥

करि दंडवत भेंट धरि आगें । प्रभुहि विलोकन अति अनुरागें ॥

सहज सनेह बिबस रघुराई । पूछी कुसल निकट बैठाई ॥ २ ॥

दण्डवत करके भेंट सामने रखकर वह अत्यन्त प्रेममें प्रभुको देखने लगा । श्रीरघुनाथजीने स्वाभाविक स्नेहके वश होकर उसे अपने पास बैठाकर कुशल पूछी ॥ २ ॥

नाथ कुसल पद पंकज देखें । भयउँ भागभाजन जन लेखें ॥

देव धरनि धनु धामु तुम्हारा । मैं जनु नीचु सहित परिवारा ॥ ३ ॥

निपादराजने उत्तर दिया—हे नाथ ! आपके चरणकमलके दर्शनसे ही कुशल है । [आपके चरणारविन्दोंके दर्शनकर] आज मैं भाग्यवान् पुण्योंकी गिनतीमें आ गया । हे देव ! यह पृथ्वी, धन और घर सब आपका है । मैं तो परिवारमहित आपका नीच सेवक हूँ ॥ ३ ॥

कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ । थापिय जनु सबु लोगु सिहाऊ ॥

कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना । मोहि दीन्ह पितु आयसु आना ॥ ४ ॥

अब कृपा करके पुर (शृंगवेरपुर) में पधारिये और हम दामकी प्रतिष्ठा बढ़ाइये, जिसमें सब लोग मेरे भाग्यकी बढ़ाई करें । श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे मुजान सखा ! तुमने जो कुछ कहा सब सत्य है, परन्तु पिताजीने मुझको और ही आज्ञा दी है ॥ ४ ॥

दो०—बरष चारिदस बासु बन मुनि व्रत बेषु अहार ।

ग्रामवासु नहिं उचित मुनि गुहहि भयउ दुखु भार ॥ ८८ ॥

[उनकी आज्ञानुसार] मुझे चौदह वर्षतक मुनियोंका व्रत और वेप धारणकर और मुनियोंके योग्य आहार करते हुए वनमें ही बसना है, गाँवके भीतर निवास करना उचित नहीं है । यह सुनकर गुहको बड़ा दुःख हुआ ॥ ८८ ॥

चौ०—राम लखन सिय रूप निहारी । कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी ॥

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे । जिन्ह पठए बन बालक ऐसे ॥ १ ॥

श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजीके रूपको देखकर गाँवके स्त्री-पुरुष प्रेमके साथ चर्चा करते हैं। कोई कहती है—हे सखी ! कहो तो, वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे [सुन्दर सुकुमार] बालकोंको वनमें भेज दिया है ! ॥ १ ॥

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा । लोयनलाहु हमहि बिधि दीन्हा ॥

तब निषादपति उर अनुमाना । तब सिंसुपा मनोहर जाना ॥ २ ॥

कोई एक कहते हैं—राजाने अच्छा ही किया, इसी बहाने हमें भी ब्रह्माने नेत्रोंका लाभ दिया। तब निषादराजने हृदयमें अनुमान किया, तो सीसमके पेड़को उनके ठहरनेके लिये मनोहर समझा ॥ २ ॥

लै रघुनाथहि ठाउँ देखावा । कहेउ राम सब भाँति सुहावा ॥

पुरजन करि जोहार घर आए । रघुबर संध्या करन सिंघाए ॥ ३ ॥

उसने श्रीरघुनाथजीको ले जाकर वह स्थान दिखाया। श्रीरामचन्द्रजीने [देखकर] कहा कि यह सब प्रकारसे सुन्दर है। पुरवासी लोग जोहार (वन्दना) करके अपने-अपने घर लौटे और रघुकुलमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी सन्ध्या करने पधारे ॥ ३ ॥

गुहँ सँवारि साँथरी डसाई । कुस किसलयमय मृदुल सुहाई ॥

सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी । दोनों भरि भरि राखेंसि पानी ॥ ४ ॥

गुहने [इसी बीच] कुश और कोमल पत्तोंकी कोमल और सुन्दर साथरी मजाकर बिछा दी; और पवित्र, मोटे और कोमल देख-देखकर दोनोंमें भर-भरकर फल-मूल और पानी रख दिया [अथवा अपने हाथसे फल-मूल दोनोंमें भर-भरकर रख दिये] ॥ ४ ॥

दो० सिय सुमंत्र आता सहित कंद मूल फल खाइ ।

मयन कीन्ह रघुवंसमनि पाय पलोटत भाइ ॥ ८९ ॥

सीताजी, सुमन्त्रजी और भाई लक्ष्मणजी सहित कन्द-मूल-फल खाकर रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजी लेंट गये। भाई लक्ष्मणजी पैर दबाने लगे ॥ ८९ ॥

चौ०—उठे लखनु प्रभु सोवन जानी । कहि सचिवहि सोवन मृदुवानी ॥

कलुक दूरि मजि वान सगसन । जागन लगे बैठि वीरासन ॥ १ ॥

फिर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको सोने जानकर लक्ष्मणजी उठे और कोमल बाणोंसे मन्त्री सुमन्त्रजीको सोनेके लिये कहकर वहाँसे कुछ दूरपर धनुष-बाणसे सजकर, वीरामनमें बैठकर जागने (पहरा देने) लगे ॥ १ ॥

गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीती । ठावँ ठावँ राखे अति प्रीती ॥

आपु लखन पहिँ बैठेउ जाई । कटि भार्या सर चाप चढ़ाई ॥ २ ॥

गुहने विश्रामपात्र पहेरेदारोंको बुलाकर अत्यन्त प्रेममें जगह-जगह नियुक्त कर दिया; और आप कमरमें तरकम बाँधकर, तथा धनुषबाण चढ़ाकर लक्ष्मणजीके पास जा बैठा ॥ २ ॥

सोवन प्रभुहि निहारि निषाद । भयउ प्रेम बस हृदयँ विषाद ॥

तनु पुलकित जलु लोचन वहई । वचन सप्रेम लखन सन कहई ॥ ३ ॥

प्रभुको जमीनपर सोते देखकर प्रेमवश निषादराजके हृदयमें विषाद हो आया। उसका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंसे [प्रेमाश्रुओंका] जल बहने लगा। वह प्रेमसहित लक्ष्मणजीसे वचन कहने लगा—॥ ३ ॥

भूपति भवन सुभायँ सुहावा । सुरपतिसदनु न पटतर पाषा ॥
मनिमय रचित चारु चौबारे । जनु रतिपति निज हाथ सँवारे ॥ ४ ॥

महाराज दशरथजीका महल तो स्वभावसे ही सुन्दर है, इन्द्रभवन भी जिसकी समानता नहीं पा सकता । उसमें सुन्दर मणियोंके रचे चौबारे (छतके ऊपरके बँगले) हैं, जिन्हें मानो रतिके पति कामदेवने अपने ही हाथों सजाकर बनाया है; ॥ ४ ॥

दो०—सुचि सुबिचित्र सुभोगमय सुमन सुगंध सुवास ।
पलंग मंजु मनिदीप जहँ सब बिधि सकल सुपास ॥ ९० ॥

जो पवित्र, बड़े ही विलक्षण, सुन्दर भोग-पदार्थोंसे पूर्ण और फूलोंकी सुगन्धसे सुवासित हैं; जहाँ सुन्दर पलंग और मणियोंके दीपक हैं तथा सब प्रकारका पूरा आराम है; ॥ ९० ॥

चौ०—बिविध बसन उपधान तुराई । छीरफेन मृदु विसद सुहाई ॥
तेहँ सिय रामु सयन निसि करहीं । निज छवि रति मनोज मनु हरहीं ॥ १ ॥

जहाँ [ओढ़ने-बिछानेके] अनेकों वस्त्र, तर्किये और गद्दे हैं, जो दूधके फेनके समान कोमल, निर्मल (उज्ज्वल) और सुन्दर हैं; वहाँ (उन चौबारोंमें) श्रीसीताजी और श्रीरामचन्द्रजी रातको सोया करते थे और अपनी शोभासे रति और कामदेवके गर्वको हरण करते थे ॥ १ ॥

ते सिय रामु साथरीं सोए । श्रमित बसन विनु जाहिं न जोए ॥
मानु पिता परिजन पुरवासी । सखा सुसील दास अरु दासी ॥ २ ॥

वही श्रीसीता और श्रीरामजी आज घास-फूसकी साथरीपर थके हुए बिना वस्त्रके ही सोये हैं । ऐसी दशा में वे देखे नहीं जाते । माता, पिता, कुटुम्बी, पुरवासी (प्रजा), मित्र, अच्छे शील-स्वभावके दास और दासियाँ—॥ २ ॥

जोगवहिं जिन्हहि प्राण की नाई । महि सोवत तेह राम गोसाई ॥
पिता जनक जग विदित प्रभाऊ । ससुर सुरेससखा रघुराऊ ॥ ३ ॥

सब जिनकी अपने प्राणोंकी तरह सार-सँभार करते थे, वही प्रभु श्रीरामचन्द्रजी आज पृथ्वीपर सो रहे हैं । जिनके पिता जनकजी हैं, जिनका प्रभाव जगत्में प्रसिद्ध है; जिनके ससुर इन्द्रके मित्र रघुराज दशरथजी हैं, ॥ ३ ॥

रामचंदु पति सो बैदेही । सोवत महि बिधि वाम न केही ॥
सिय रघुवीर कि काननजोगू । करम प्रधान सत्य कह लोगू ॥ ४ ॥

और पति श्रीरामचन्द्रजी हैं, वही जानकोजी आज जमीनपर सो रही हैं । विधाता किसको प्रतिकूल नहीं होता ! सीताजी और रघुवीर श्रीरामचन्द्रजी क्या वनके योग्य हैं ? लोग सच कहते हैं कि कर्म (भाग्य) ही प्रधान है ॥ ४ ॥

दो०—कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह ।
जेहिं रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुखु दीन्ह ॥ ९१ ॥

कैकयराजकी लड़की नीचबुद्धि कैकेयीने बड़ी ही कुटिलता की, जिसने रघुनन्दन श्रीरामजीको और जानकीजीको सुखके समय दुःख दिया ॥ ९१ ॥

चौ०—भइ दिनकरकुल बिटप कुठारी । कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी ॥

भयउ बिषादु निषादहि भारी । राम सीय महि सयन निहारी ॥ १ ॥

वह सूर्यकुलरूपी वृक्षके लिये कुत्हाड़ी हो गयी । उस कुबुद्धिने सम्पूर्ण विश्वको दुखी कर दिया । श्रीराम-सीताको जमीनपर सोते हुए देखकर निषादको बड़ा दुःख हुआ ॥ १ ॥

बोले लखन मधुर मृदु बानी । ग्यान बिराग भगति रस सानी ॥

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥ २ ॥

तब लक्ष्मणजी ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके रससे सनी हुई मीठी और कोमल वाणी बोले—हे भाई ! कोई किसीको सुख-दुःखका देनेवाला नहीं है । सब अपने ही किये हुए कर्मोंका फल भोगते हैं ॥ २ ॥

जोग बियांग भोग भल मंदा । हित अनहित मध्यम भ्रमफंदा ॥

जनमु मरनु जहँ लगि जगजालू । संपति बिपति करमु अरु कालू ॥ ३ ॥

संयोग (मिलना), वियोग (बिछुड़ना), मले-चुरे भोग, शत्रु, मित्र और उदासीन, ये सभी भ्रमके फंदे हैं । जन्म-मृत्यु, सम्पत्ति-विपत्ति, कर्म और काल—जहाँतक जगत्के जंजाल हैं; ॥ ३ ॥

घरनि धामु धनु पुर परिवारु । सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारु ॥

देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं । मोह मूल परमारथु नाहीं ॥ ४ ॥

घरती, घर, धन, नगर, परिवार, स्वर्ग और नरक आदि जहाँतक व्यवहार हैं, जो देखने, सुनने और मनके अन्दर विचारनेमें आते हैं, इन सबका मूल मोह (अज्ञान) ही है । परमार्थतः ये नहीं हैं ॥ ४ ॥

दो०—सपनें होइ मिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ ।

जागें लाभ न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ ॥ ९२ ॥

जैसे स्वप्नमें राजा मिखारी हो जाय या कंगाल स्वर्गका स्वामी इन्द्र हो जाय, तो जागनेपर लाभ या हानि कुछ भी नहीं है; वैसे ही इस दृश्य प्रपञ्चको हृदयसे देखना चाहिये ॥ ९२ ॥

चौ०—अस बिचारि नहिं कीजिअ रोसू । काहुहि बादि न देखअ दोसू ॥

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा । देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥ १ ॥

ऐसा विचारकर क्रोध नहीं करना चाहिये और न किसीको व्यर्थ दोष ही देना चाहिये । सब लोग मोहरूपी रात्रिमें सोनेवाले हैं और सोते हुए उन्हें अनेकों प्रकारके स्वप्न दिखायी देते हैं ॥ १ ॥

एाहं जग जामिनि जागहिं जोगी । परमारथी प्रपंच बियोगी ॥

जानिअ तबहिं जीव जग जागा । जब सब बिषय विलास बिरागा ॥ २ ॥

इस जगत्रूपी रात्रिमें योगी लोग जागते हैं, जो परमार्थी हैं और प्रपञ्चसे (मायिक जगत्से) छूटे हुए हैं । जगत्में जीवको जागा हुआ तभी जानना चाहिये जब सम्पूर्ण भोग-विलासोंसे वैराग्य हो जाय ॥ २ ॥

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा । तब रघुनाथ चरन अनुरागा ॥

सखा परम परमारथु पढ़ । मन क्रम बचन राम पद नेह ॥ ३ ॥

विवेक होनेपर मोहरूपी भ्रम भाग जाता है, तब (अज्ञानका नाश होनेपर) श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें प्रेम होता है । हे सखा ! मन, वचन और कर्मसे श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम होना, यही सर्वश्रेष्ठ परमार्थ है ॥ ३ ॥

राम ब्रह्म परमार्थ रूपा । अविगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकल बिकार रहित गतभेदा । कहि नित नेति निरूपहिं बेदा ॥ ४ ॥

श्रीरामजी ही परमार्थस्वरूप परब्रह्म हैं । वे अविगत (जाननेमें न आनेवाले), अलख (स्थूल दृष्टिसे देखनेमें न आनेवाले), अनादि, अनुपम, सब विकारोंसे रहित और भेदशून्य हैं, वेद जिनका नित्य 'नेति-नेति' कहकर निरूपण करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुजतनु सुनत मिटहिं जगजाल ॥ ९३ ॥

वही कृपालु श्रीरामचन्द्रजी भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गौ और देवताओंके हितके लिये मनुष्यशरीर धारण करके लीलाएँ करते हैं, जिनके सुननेसे जगत्के जंजाल मिट जाते हैं ॥ ९३ ॥

मासपारायण पन्द्रहवाँ विश्राम

चौ०—सखा समुझि अस परिहरि मोह । सिय रघुवीर चरन रत होइ ॥
कहत रामगुन भा भिनुसारा । जागे जग मंगल सुखदारा ॥ १ ॥

हे सखा ! ऐसा समझ, मोहको त्यागकर श्रीसीतारामजीके चरणोंमें प्रेम करो । इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके गुण कहते-कहते सवेरा हो गया । तब जगत्को मङ्गल और सुख देनेवाले श्रीरामजी जागे ॥ १ ॥

सकल सौच करि राम नहावा । सुचि सुजान बटछीर मगावा ॥
अनुज सहित सिर जटा बनाए । देखि सुमंत्र नयन जल छाए ॥ २ ॥

सौचके सब कार्य करके नित्य पवित्र और सुजान श्रीरामचन्द्रजीने स्नान किया; फिर बड़का दूध मँगाया और छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित उस दूधसे सिरपर जटाएँ बनायीं । यह देखकर सुमन्त्रजीके नेत्रोंमें जल छा गया ॥ २ ॥

हृदय दाहु अति बदन मलीना । कह कर जोरि बचन अति दीना ॥
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा । लै रघु जाहु राम के साथ ॥ ३ ॥

सुमन्त्रका हृदय अत्यन्त जलने लगा । मुँह मलिन (उदास) हो गया । वे हाथ जोड़कर अत्यन्त दीन वचन बोले—हे नाथ ! मुझे कोसलनाथ (दशरथजी) ने ऐसी आज्ञा दी थी कि तुम रथ लेकर श्रीरामजीके साथ जाओ; ॥ ३ ॥

बनु देखाइ सुरसरि अन्हवाई । आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई ॥
लखनु रामु सिय आनेहु फेरी । संसय सकल सँकोच निबेरी ॥ ४ ॥

वन दिखाकर, गङ्गास्नान कराकर दोनों भाइयोंको तुरन्त लौटा लाना । सब संशय और संकोचको दूर करके लक्ष्मण, राम, सीताको फिर लाना ॥ ४ ॥

दो०—नृप अस कहेउ गोसाईं जस कहह करौ बलि सोइ ।
करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥ ९४ ॥

महाराजने ऐसा कहा था । अब प्रभु जैसा कहें, मैं वही करूँ । आपकी बलिहारी हूँ । इस प्रकार बिनती करके वे श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें गिर पड़े और उन्होंने बालककी तरह रो दिया ॥ ९४ ॥

कल्याण

(१) निषादकी भेंट



करि दंडवत भेट धरि आगें ।

प्रभुहि बिलोकत अनि अनुरागें ॥

[पृष्ठ ३८२]

(३) सुमंत्रको सन्देश



तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें ।

विनती करउँ तात कर जोरें ॥

[पृष्ठ ३८७]

(२) पहरेदार लक्ष्मण



कछुक दूर सजि यान सरासन ।

जागन लग बंढि बीरासन ॥

[पृष्ठ ३८३]

(४) घोड़ोंका विरह



चरफगहिं मग चलहिं न धोरे ।

बगमृग मनहुँ आनि रथ जोरे ॥

[पृष्ठ ४२०]

चौ०—तात कृपा करि कीजिय सोई । जातैं अवध अनाथ न होई ॥

मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा । तात धरम मतु तुम्ह सबु सोधा ॥ १ ॥

[और कहा—] हे तात ! कृपा करके वही कीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो । श्रीरामजीने मन्त्रीको उठाकर धैर्य बँधाते हुए समझाया कि हे तात ! आपने तो धर्मके सभी सिद्धान्तोंको छान डाला है ॥ १ ॥

सिबि दधीच हरिचंद नरेसा । सहै धरम हित कोटि कलेसा ॥

रंतिवेव बलि भूप सुजाना । धरमु धरेउ सहि संकट नाना ॥ २ ॥

शिबि, दधीच, और राजा हरिश्चन्द्रने धर्मके लिये करोड़ों (अनेकों) कष्ट सहै थे । बुद्धिमान् राजा रन्तिदेव और बलि बहुत-से संकट सहकर भी धर्मको पकड़े रहे (उन्होंने धर्मका परित्याग नहीं किया) ॥ २ ॥

धरमु न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ॥

मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा । तजैं तिहँ पुर अपजसु छावा ॥ ३ ॥

वेद, शास्त्र और पुराणोंमें कहा गया है कि सत्यके समान दूसरा धर्म नहीं है । मैंने उस धर्मको सहज ही पा लिया है । इस [सत्यरूपी धर्म] का त्याग करनेसे तीनों लोकोंमें अपयश छा जायगा ॥ ३ ॥

संभावित कहूँ अपजस लाहू । मरन कोटि सम दाहन दाहू ॥

तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ । दिऐँ उतरु फिरि पातकु लहऊँ ॥ ४ ॥

प्रतिष्ठित पुरुषके लिये अपयशकी प्राप्ति करोड़ों मृत्युके समान भीषण संताप देनेवाली है । हे तात ! मैं आपसे अधिक क्या कहूँ ! लौटकर उत्तर देनेमें भी पापका भागी होता हूँ ॥ ४ ॥

दो०—पितुपद गहि कहि कोटि नति बिनय करव कर जोरि ।

चिंता कवनिहु बात कै तात करिअ जनि मोरि ॥ ९५ ॥

आप जाकर पिताजीके चरण पकड़कर करोड़ों नमस्कारके साथ ही हाथ जोड़कर विनती करियेगा कि हे तात ! आप मेरी किसी बातकी चिन्ता न करें ॥ ९५ ॥

चौ०—तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें । बिनती करउँ तात कर जोरें ॥

सब विधि सोइ करतव्य तुम्हारें । दुख न पाव पितु सोच हमारें ॥ १ ॥

आप भी पिताके समान ही मेरे बड़े हितैषी हैं । हे तात ! मैं हाथ जोड़कर आपसे विनती करता हूँ कि आपका भी सब प्रकारसे वही कर्त्तव्य है जिसमें पिताजी हमलोगोंके सोचमें दुःख न पावें ॥ १ ॥

सुनि रघुनाथ सचिव संबादू । भयउ सपरिजन बिकल निपादू ॥

पुनि कछु लखन कही कटु बानी । प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजी और सुमन्त्रका यह संवाद सुनकर निषादराज कुटुम्बियोंसहित व्याकुल हो गया । फिर लक्ष्मणजीने कुछ कड़वी बात कही । प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने उसे बहुत ही अनुचित जानकर उनको मना किया ॥ २ ॥

सकुचि राम निज सपथ देवाई । लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई ॥

कह सुमंत्रु पुनि भूप सँदेसु । सहि न सकिहि सिय बिपिनकलेसु ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने सकुचाकर, अपनी सौगंध दिलाकर सुमन्त्रजीसे कहा कि आप जाकर लक्ष्मणका यह सन्देश न कहियेगा । सुमन्त्रने फिर राजाका सन्देश कहा कि सीता वनके ह्वेन न सह सकेंगी ॥ ३ ॥

जेहि बिधि अवघ आव फिरि सीया । सोइ रघुबरहि तुम्हहि करनीया ॥

नतर निपट अवलंब बिहीना । मैं न जिअब जिमि जल बिनु मीना ॥ ४ ॥

अतएव जिस तरह सीता अयोध्याको लौट आवें, तुमको और श्रीरामचन्द्रको वही उपाय करना चाहिये । नहीं तो मैं बिल्कुल ही बिना सहारेका होकर वैसे ही नहीं जीऊंगा, जैसे बिना जलके मछली नहीं जीती ॥ ४ ॥

दो०—मइकें ससुरें सकल सुख जबहिं जहाँ मनु मान ।

तहँ तब रहिहि सुखेन सिय जब लगि विपति बिहान ॥ ९६ ॥

सीताके मायके (पिताके घर) और ससुरालमें सब सुख हैं । जबतक यह विपत्ति दूर नहीं होती, तबतक वह जब जहाँ जी चाहे, वहीं सुखसे रहेंगी ॥ ९६ ॥

चौ०—बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती । आरति प्रीति न सो कहि जाती ॥

पितु सँदेसु सुनि कृपानिधाना । सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना ॥ १ ॥

राजाने जिस तरह (जिस दीनता और प्रेमसे) विनती की है, वह दीनता और प्रेम कहा नहीं जा सकता । कृपाके भण्डार श्रीरामचन्द्रजीने पिताका सन्देश सुनकर सीताजीको करोड़ों (अनेकों) प्रकारसे सीख दी ॥ १ ॥

सासु ससुर गुर प्रिय परिवारु । फिरहु त सब कर मिटै जमारु ॥

सुनि पतिबचन कहति बैदेही । सुनहु प्रानपति परम सनेही ॥ २ ॥

[उन्होंने कहा—] जो तुम घर लौट जाओ, तो सास, ससुर, गुरु, प्रियजन एवं कुटुम्बी सबकी चिन्ता मिट जाय । पतिके वचन सुनकर जानकीजी कहती हैं—हे प्राणपति ! हे परम स्नेही ! सुनिये ॥ २ ॥

प्रभु करुणामय परम बिबेकी । तनु तजि रहति छाँह किमि छँको ॥

प्रभा जाइ कहँ भातु बिहारै । कहँ चंद्रिका चंदु तजि जारै ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! आप करुणामय और परम शानी हैं । [कृपा करके विचार तो कीजिये] शरीरको छोड़कर छाया अल्पा कैसे रोकी रह सकती है ? सूर्यकी प्रभा सूर्यको छोड़कर कहाँ जा सकती है ? और चाँदनी चन्द्रमाको त्यागकर कहाँ जा सकती है ! ॥ ३ ॥

पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई । कहति सचिव सन गिरा सुहाई ॥

तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी । उतर देउँ फिरि अनुचित भारी ॥ ४ ॥

इस प्रकार पतिको प्रेममयी विनती सुनाकर सीताजी मन्त्रीसे सुहावनी वाणी कहने लगीं—आप मेरे पिताजी और ससुरजीके समान मेरा हित करनेवाले हैं । आपको मैं बदलेमें उत्तर देती हूँ, यह बहुत ही अनुचित है ॥ ४ ॥

दो०—आरति बस सनमुख भइउँ बिलगु न मानव तात ।

आरजसुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात ॥ ९७ ॥

किन्तु हे तात ! मैं आर्त होकर ही आपके सम्मुख हुई हूँ, आप बुरा न मानियेगा । आर्यपुत्र (स्वामी) के चरणकमलोंके बिना जगत्में जहाँतक नाते हैं सभी मेरे लिये व्यर्थ हैं ॥ ९७ ॥

चौ०—पितु बैभव बिलास मैं डीठा । नृप मनि मुकुट मिलित पद पीठा ॥

सुखनिधान अस पितु गृह मोरें । पिय बिहीन मन भाव न भोरें ॥ १ ॥

मैंने पिताजीके ऐश्वर्यकी छटा देखी है, जिनके चरण रखनेकी चौकीसे सर्वशिरोमणि राजाओंके मुकुट मिलते हैं (अर्थात् बड़े-बड़े राजा जिनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं) । ऐसे पिताका घर भी, जो सब प्रकारके सुखोंका भण्डार है, पतिके बिना मेरे मनको भूलकर भी नहीं जाता ॥ १ ॥

ससुर चक्रवर्त्त कोसलराज । भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥

आगें होइ जेहि सुरपति लेई । अरघ सिंघासन आसनु देंई ॥ २ ॥

मेरे ससुर कोसलराज चक्रवर्ती सम्राट् हैं, जिनका प्रभाव चौदहों लोकोंमें प्रकट है; इन्द्र भी आगे होकर जिनका स्वागत करता है और अपने आगे सिंहासनपर बैठनेके लिये स्थान देता है, ॥ २ ॥

ससुर पतावस अवध निवास । प्रिय परिवार मातु सम सासू ॥

बिनु रघुपति पद पदुम परागा । मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा ॥ ३ ॥

ऐसे [ऐश्वर्य और प्रभावशाली] ससुर; [उनकी राजधानी] अयोध्याका निवास; प्रिय कुटुम्बी और माताके समान सासुएँ—ये कोई भी भीरघुनाथजीके चरणकमलोंकी रजके बिना मुझे स्वप्नमें भी सुखदायक नहीं लगते ॥ ३ ॥

अगम पंथ बनभूमि पहारा । करि केहरि सर सरित अपारा ॥

कोल किरात कुरंग बिहंगा । मोहि सब सुखद प्रानपति संग्गा ॥ ४ ॥

दुर्गम रास्ते, जंगली धरती, पहाड़; हाथी, सिंह, अथाह तालाब एवं नदियाँ; कोल, भील, हिरन और पक्षी—प्राणपति (भीरघुनाथजी) के साथ रहते ये सभी मुझे सुख देनेवाले होंगे ॥ ४ ॥

दो०—सासु ससुर सन मोरि हूँति विनय करवि पारि पायँ ।

मोर सोचु जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभायँ ॥ ९८ ॥

अतः सासु और ससुरके पाँव पड़कर, मेरी ओरसे विनती कीजियेगा कि वे मेरा कुछ भी सोच न करें; मैं वनमें स्वभावसे ही सुखी हूँ ॥ ९८ ॥

चौ०—प्राणनाथ प्रिय देवर साथ । भीरघुरीन घरें धनु भाथा ॥

नहिं मग भ्रमु भ्रमु दुख मन मोरें । मोहि लागि सोचु करिअ जनि भोरें ॥ १ ॥

वीरोंमें अग्रगण्य तथा धनुष और [बाणोंसे भरे] तरकस धारण किये मेरे प्राणनाथ और प्यारे देवर साथ हैं । इससे मेरे मनमें न रास्तेकी यकावट है न भ्रम है, और न कोई दुःख ही है । आप मेरे लिये भूलकर भी सोच न करें ॥ १ ॥

सुनि सुमंत्रु सिय सीतलि बानी । भयउ बिकल जनु फनि मनिहानी ॥

नयन सूझ नहिं सुनइ न काना । कहि न सकइ कछु अति अकुलाना ॥ २ ॥

सुमन्त्र सीताजीकी शीतल वाणी सुनकर ऐसे व्याकुल हो गये जैसे साँप मणि खो जानेपर । नेत्रोंसे कुछ सूझता नहीं, कानोंसे सुनायी नहीं देता । वे बहुत व्याकुल हो गये, कुछ कह नहीं सकते ॥ २ ॥

राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती । तदपि होति नहिं सीतलि छाती ॥

जतन अनेक साथ हित कीन्ह । उचित उतर रघुनन्दन दीन्ह ॥ ३ ॥

भीरामचन्द्रजीने उनका बहुत प्रकारसे समाधान किया । तो भी उनकी छाती ठंडी न हुई । साथ चलनेके लिये मन्त्रीने अनेकों यत्न किये (युक्तियाँ पेश कीं), पर रघुनन्दन भीरामजी उन सब युक्तियोंका यथोचित उत्तर देते गये ॥ ३ ॥

मेटि जाइ नहिं रामरजाई । कठिन करमगति कछु न बसाई ॥

राम लखन सिय पद सिरु नाई । फिरेउ बनिक जिमि मूर गवाँई ॥ ४ ॥

श्रीरामजीकी आज्ञा मेटी नहीं जा सकती । कर्मकी गति कठिन है, उसपर कुछ भी बश नहीं चलता । भीराम, लक्ष्मण और सीताजीके चरणोंमें सिर नवाकर सुमन्त्र इस तरह लौटे जैसे कोई व्यापारी अपना मूलधन (पूँजी) गँवाकर लौटे ॥ ४ ॥

दो०—रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं ।

देखि निषाद बिषादबस धुनहिं सीस पछिताहिं ॥ ९९ ॥

सुमन्त्रने रथको हाँका, घोड़े श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देख-देखकर हिनहिनाते हैं । यह देखकर निषादलोग विषादके वश होकर सिर धुन-धुनकर (पीट-पीटकर) पछताते हैं ॥ ९९ ॥

चौ०—जासु बियोग बिकल पसु पेसैं । प्रजा मातु पितु जिहहिं कैसैं ॥

बरबस राम सुमन्त्र पठाए । सुरसरि तीर आपु तब आप ॥ १ ॥

जिनके वियोगमें पशु इस प्रकार व्याकुल हैं, उनके वियोगमें प्रजा, माता और पिता कैसे जोते रहेंगे ? श्रीरामचन्द्रजीने जबर्दस्ती सुमन्त्रको लौटाया । तब आप गङ्गाजीके तीरपर आये ॥ १ ॥

मागी नाव न केवटु आना । कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ॥

चरणकमल रज कहुँ सबु कहई । मानुषकरनि मूरि कछु अहई ॥ २ ॥

केवटसे नाव माँगी पर वह लाता नहीं । वह कहने लगा—मैंने तुम्हारा मर्म (भेद) जान लिया । तुम्हारे चरणकमलोंकी धूलके लिये सब लोग कहते हैं कि वह मनुष्य बना देनेवाली कोई जड़ी है, ॥ २ ॥

लुभत सिला भइ नारि सुहाई । पाहन तैं न काठ कठिनाई ॥

तरनिउ मुनिघरिनी होइ जाई । बाट परइ मोरि नाव उड़ाई ॥ ३ ॥

जिसके छूते ही पत्थरकी शिला सुन्दरी स्त्री हो गयी । [मेरी नाव तो काठकी है] काठ तो पत्थरसे कठोर नहीं होता । मेरी नाव भी मुनिकी स्त्री हो गयी और इस प्रकार मेरी नाव उड़ गयी, तो मैं लुट जाऊँगा (मेरी कमाने-खानेकी राह ही मारी जायगी) ॥ ३ ॥

एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारु । नहिं जानउँ कछु अउर कवारु ॥

जौं प्रभु पार अवसि गा चहइ । मोहि पदपदुम पखारन कहइ ॥ ४ ॥

मैं तो इसी नावसे सारे परिवारका पालन-पोषण करता हूँ । दूसरा कोई धंधा नहीं जानता । हे प्रभु ! यदि तुम अवश्य ही पार जाना चाहते हो तो मुझे पहले अपने चरणकमल पखारने (धो लेने) के लिये कह दो ॥ ४ ॥

छं०—पद कमल घोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं ।

मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं ॥

बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं ।

तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं ॥

हे नाथ ! मैं चरणकमल धोकर आपलोगोंको नावपर चढ़ा लूँगा; मैं आपसे कुछ उतराई नहीं चाहता । हे राम ! मुझे आपकी दुहाई और दशरथजीकी सौगंध है, मैं सब सब-सब कहता हूँ । लक्ष्मण

भले ही मुखे तीर मारें, पर जबतक मैं पैरोंको पखार न दूँगा, तबतक हे तुलसीदासके नाथ ! हे कृपाछु ! मैं पार नहीं उतारूँगा ॥

सो०—सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे ।

बिहसे करुनाएन चितइ जानकी लखन तन ॥१००॥

केवटके प्रेममें लपेटे हुए अटपटे वचन सुनकर करुणाधाम श्रीरामचन्द्रजी जानकीजी और लक्ष्मणजीकी ओर देखकर हैंसे ॥ १०० ॥

चौ०—कृपासिंधु बोले मुसुकाई । सोइ कर जेहिं तव नाव न जाई ॥

बेगि भानु जल पाय पखारू । होत बिलंबु उतारहि पारू ॥ १ ॥

कृपाके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी केवटसे मुस्कराकर बोले—भाई ! तू वही कर जिससे तेरी नाव न जाय । जल्दी पानी लाकर पैर धो ले । देर हो रही है, पार उतार दे ॥ १ ॥

जासु नाम सुमिरत एक बारा । उतरहिं नर भवसिंधु अपारा ॥

सोइ कृपालु केवटहि निहोरा । जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा ॥ २ ॥

एक बार जिनका नाम स्मरण करते ही मनुष्य अपार भवसागरके पार उतर जाते हैं, और जिन्होंने वामनावतारमें जगत्को तीन पगसे भी छोटा कर दिया था (दो ही पगमें त्रिलोकीको नाप लिखा था), वही कृपाछु श्रीरामचन्द्रजी [गंगाजीसे पार उतारनेके लिये] केवटका निहोरा कर रहे हैं ! ॥ २ ॥

पदनख निरखि देवसरि हरषी । सुनि प्रभुबचन मोहँ मति करपी ॥

केवट राम रजायसु पावा । पानि कठवता भरि लेइ आवा ॥ ३ ॥

प्रभुके इन वचनोंको सुनकर गङ्गाजीकी बुद्धि मोहसे खिंच गयी थी [कि ये साक्षात् भगवान् होकर भी पार उतारनेके लिये केवटका निहोरा कैसे कर रहे हैं]; परन्तु [समीप आनेपर अपनी उत्पत्तिके स्थान] पदनोंको देखते ही [उन्हें पहचानकर] देवकी गङ्गाजी हर्षित हो गयी । (वे समझ गयी कि भगवान् नरलीला कर रहे हैं, इससे उनका मोह नष्ट हो गया; और इन चरणोंका स्पर्श प्राप्त करके मैं धन्य होऊँगी, यह विचारकर वे हर्षित हो गयी ।) केवट श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर कठौतेमें भरकर जल ले आया ॥ ३ ॥

अति आनंद उमगि अनुरागा । चरन सरोज पखारन लागा ॥

बरषि सुमन सुर सकल सिंहाही । एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं ॥ ४ ॥

अत्यन्त आनन्द और प्रेममें उमंगकर वह भगवान्के चरणकमल धोने लगा । सब देवता फूल बरसाकर सिंहाने लगे कि इसके समान पुण्यकी राशि कोई नहीं है ॥ ४ ॥

दो०—पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार ।

पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार ॥१०१॥

चरणोंको धोकर और सारे परिवारसहित स्वयं उस जल (चरणोदक) को पीकर, पहले [उस महान् पुण्यके द्वारा] अपने पितरोंको भवसागरसे पारकर फिर आनन्दपूर्वक प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको गङ्गाजीके पार ले गया ॥ १०१ ॥

चौ०—उतरि ठाढ़ भय सुरसरि रेता । सोय रामु गुह लखन समेता ॥

केवट उतरि दंडवत कीन्हा । प्रभुहि सकुच एहि नहिं कबु दीन्हा ॥ १ ॥

निषादराज और लक्ष्मणजीसहित श्रीसीताजी और श्रीरामचन्द्रजी नाबसे उतरकर गङ्गाजीकी रेत (बालू) में खड़े हो गये । तब केवटने उतरकर दण्डवत् की । [उसको दण्डवत् करते देखकर] प्रभुको संकोच हुआ कि इसको कुछ दिया नहीं ॥ १ ॥

पिय हिय की सिय जाननिहारी । मनिमुदरी मन मुदित उतारी ॥

कहेउ कृपाल लेहि उतराई । केवट चरन गहे अकुलाई ॥ २ ॥

पतिके हृदयकी जाननेवाली सीताजीने आनन्दभरे मनसे अपनी रजजटित अँगूठी [अँगुलीसे] उतारी । कृपाल श्रीरामचन्द्रजीने केवटसे कहा, नावकी उतराई लो । केवटने व्याकुल होकर चरण पकड़ लिये ॥ २ ॥

नाथ आजु मैं काह न पावा । मिटे दोष दुख दारिद दावा ॥

बहुत काल मैं कीन्ह मजूरी । आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी ॥ ३ ॥

[उसने कहा—] हे नाथ ! आज मैंने क्या नहीं पाया ? मेरे दोष, दुःख और दरिद्रताकी आग आज बुझ गयी । मैंने बहुत समयतक मजदूरी की; विधाताने आज बहुत अच्छी भरपूर मजूरी दे दी ॥ ३ ॥

अब कछु नाथ न चाहिय मोरें । दीनदयाल अनुग्रह तोरें ॥

फिरती बार मोहि जो देवा । सो प्रसादु मैं सिर धरि लेवा ॥ ४ ॥

हे नाथ ! हे दीनदयाल ! आपकी कृपासे अब मुझे कुछ नहीं चाहिये । लौटती बार आप मुझे जो कुछ देंगे, वह प्रसाद मैं सिर चढ़ाकर लूँगा ॥ ४ ॥

दो०—बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहिं कछु केवटु लेइ ।

विदा कीन्ह करुनायतन भगति विमल चरु देइ ॥ १०२ ॥

प्रभु श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजीने बहुत आग्रह [या यत्न] किया, पर केवट कुछ नहीं लेता । तब कर्णाके धाम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने निर्मल भक्तिका वरदान देकर उसे विदा किया ॥ १०२ ॥

चौ०—तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा । पूजि पारधिव नायउ माथा ॥

सियँ सुरसरिहि कहेउ कर जोरी । मातु मनोरथ पुरउत्रि मोरी ॥ १ ॥

फिर रघुकुलके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीने स्नान करके पार्थिवपूजा की और शिवजीको सिर नवाया । सीताजीने हाथ जोड़कर गङ्गाजीसे कहा—हे माता ! मेरा मनोरथ पूरा कीजियेगा, ॥ १ ॥

पति देवर सँग कुसल बहोरी । आइ करौं जेहिं पूजा तारी ॥

सुनि सियबिनय प्रेमरस सानी । भइ तब विमल बारि बर बानी ॥ २ ॥

जिससे मैं पति और देवरके साथ कुशलपूर्वक लौट आकर तुम्हारी पूजा करूँ । सीताजीकी प्रेमरसमें सनी हुई विनती सुनकर तब गङ्गाजीके निर्मल जलमेंसे श्रेष्ठ वाणी हुई—॥ २ ॥

सुनु रघुवीर प्रिया बैदेही । तव प्रभाव जग बिदित न केही ॥

लोकप होहिं बिलोकत तोरें । तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें ॥ ३ ॥

हे रघुवीरकी प्रियतमा जानकी ! सुनो, तुम्हारा प्रभाव जगत्में किसी नहीं मालूम है ? तुम्हारे [कृपा-दृष्टिसे] देखते ही लोग लोकपाल हो जाते हैं । सब सिधियाँ हाथ जोड़े तुम्हारी सेवा करती हैं ॥ ३ ॥

तुम्ह जो हमहि बड़ि बिनय सुनाई । कृपा कीन्ह मोहि दीन्हि बड़ाई ॥

तपि देबि मैं देबि असीसा । सफल होन हित निज बागीसा ॥ ४ ॥

कल्याण

(१) केवटके भाग्य



अति आनंद उमगि अनुगागा ।

चरन सरोज पखारन लागा ॥

[पृष्ठ ३९१]

(२) गंगा पार



पद पखारि जल्य पान करि आपु सहित परिवार ।

पितर पाठ करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार ॥

[पृष्ठ ३९१]

(३) पार्थिव पूजन

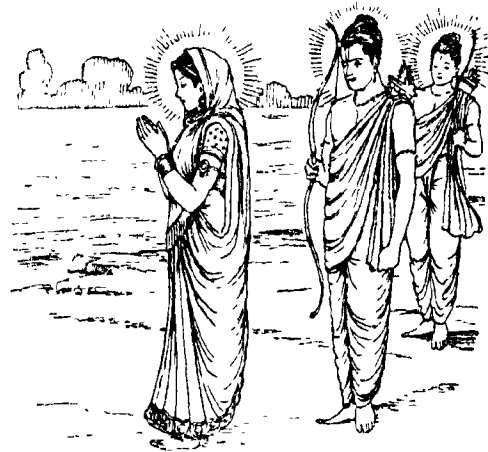


तव मजनु करि रघुकुलनाथा ।

पूजि पार्थिव नायउ माथा ॥

[पृष्ठ ३९२]

(४) गंगाजीसे प्रार्थना



सियँ सुरसरिहि कहैउ कर जोरी ।

मातु मनोग्ध पुरउनि मोरी ॥

[पृष्ठ ३९२]

तुमने जो मुझको बड़ी विनती सुनायी, यह तो मुझपर कृपा करके मुझे बड़ाई दी है। तो भी हे देवि ! मैं अपनी वाणी सफल होनेके लिये तुम्हें आशीर्वाद दूँगी ॥ ४ ॥

दो०—प्राणनाथ देवर सहित कुशल कोसला आइ ।

पूजिहि सब मनकामना सुजसु रहिहि जग छाइ ॥१०३॥

तुम अपने प्राणनाथ और देवरसहित कुशलपूर्वक अयोध्या लौटोगी। तुम्हारी सारी मनोकामनाएँ पूरी होंगी और तुम्हारा सुन्दर यश जगत्भरमें छा जायगा ॥ १०३ ॥

चौ०—गंग बचन सुनि मंगलमूला । मुदित सीय सुरसरि अनुकूला ॥

तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाइ । सुनत सूख मुख भा उर दाइ ॥१॥

मङ्गलके मूल गङ्गाजीके वचन सुनकर और देवनदीको अनुकूल देखकर सीताजी आनन्दित हुई । तब प्रभु भीरामचन्द्रजीने निषादराज गुहसे कहा कि भैया ! अब तुम घर चले जाओ । यह सुनते ही उसका मुँह सूख गया और हृदयमें दाह उत्पन्न हो गया ॥ १ ॥

दीन बचन गुह कह कर जोरी । विनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी ॥

नाथ साथ रहि पंथु देखारै । करि दिन चारि चरन सेवकारै ॥२॥

गुह हाथ जोड़कर दीन वचन बोला—हे रघुकुलशिरोमणि ! मेरी विनती सुनिये । मैं नाथके (आपके) साथ रहकर, रामा दिखाकर, चार (कुछ) दिन चरणोंकी सेवा करके—॥ २ ॥

जेहिं बन जाइ रहब रघुरारै । परनकुटी में करबि सुहारै ॥

तब मोहि कहँ जसि देव रजारै । सोइ करिहउँ रघुवीर दोहारै ॥३॥

हे रघुराज ! जिस वनमें आप जाकर रहेंगे, वहाँ मैं सुन्दर पर्णकुटी (पत्तोंकी कुटिया) बना दूँगा । तब मुझे आप जैसी आज्ञा देंगे, मुझे रघुवीरजी (आप) की दुहाई है, मैं वैसा ही करूँगा ॥ ३ ॥

सहज सनेह राम लखि तासू । संग लीन्ह गुह हृदयँ हुलासू ॥

पुनि गुह ग्यात बोलि सब लीन्हे । करि परितोषु बिदा तब कीन्हे ॥४॥

उसके स्वाभाविक प्रेमको देखकर भीरामचन्द्रजीने उसको साथ ले लिया । इससे गुहके हृदयमें बड़ा आनन्द हुआ । फिर गुह (निषादराज) ने अपनी जानिके लोगोंको बुला लिया और उनका संतोष कराके तब उनको विदा किया ॥ ४ ॥

दो०—तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ ।

सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ ॥१०४॥

तब प्रभु श्रीरघुनाथजी गणेशजी और शिवजीका स्मरण करके तथा गङ्गाजीको मस्तक नवाकर सखा निषादराज, छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजीसहित वनको चले ॥ १०४ ॥

चौ०—तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू । लखन सखाँ सब कीन्ह सुपासू ॥

प्रात प्रातकृत करि रघुरारै । तीरथराजु दीख प्रभु जाई ॥१॥

उस दिन पेड़के नीचे निवास हुआ । लक्ष्मणजी और सखा गुहने विभ्रामकी सब सुव्यवस्था कर दी । प्रभु भीरामचन्द्रजीने सबेरे प्रातःकालकी सब क्रियाएँ करके जाकर तीर्थकी राजा प्रयागके दर्शन किये ॥ १ ॥

सचिव सत्य भद्रा प्रिय नारी । माधव सरिस मीतु हितकारी ॥

चारि पदारथ भरा भँडारु । पुण्य प्रदेश देस अति चारु ॥ २ ॥

उस राजाका सत्य मन्त्री है, भद्रा प्यारी स्त्री है और भीषणीमाधवजी-सरीखे हितकारी मित्र हैं । चार पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) से भण्डार भरा है, और वह पुण्यमय प्रान्त ही उस राजाका सुन्दर देश है ॥ २ ॥

छेत्रु अगम गढु गाढ़ सुहावा । सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा ॥

सेन सकल तीरथ बर बीरा । कलुष अनीक दलन रनधीरा ॥ ३ ॥

प्रयाग क्षेत्र ही दुर्गम, मजबूत और सुन्दर गढ़ (किला) है, जिसको स्वप्नमें भी [पापरूपी] शत्रु नहीं पा सके हैं । सम्पूर्ण तीर्थ ही उसके श्रेष्ठ वीर सैनिक है, जो पापकी सेनाको कुचल डालनेवाले और बड़े रणधीर हैं ॥ ३ ॥

संगमु सिंहासनु सुठि सोहा । छत्रु अखयबटु मुनि मनु मोहा ॥

चवँर जमुन अरु गंग तरंगा । देखि होहिं दुख दारिद भंगा ॥ ४ ॥

गङ्गा, यमुना और सरस्वतीका सङ्गम ही उसका अत्यन्त सुशोभित सिंहासन है । अखयबट छत्र है, जो मुनियोंकी भी मनको मोहित कर लेता है । यमुनाजी और गङ्गाजीकी तरंगें उसके [दयाम और श्वेत] चवँर हैं, जिनको देखकर ही दुःख और दरिद्रता नष्ट हो जाती है ॥ ४ ॥

दो०—सेवाहिं सुकृतो साधु सुचि पावाहिं सब मनकाम ।

बंदी बेद पुरान गन कहहिं विमल गुनग्राम ॥ १०५ ॥

पुण्यात्मा, पवित्र साधु उसकी सेवा करते हैं और सब मनोरथ पाते हैं । वेद और पुराणोंके समूह भाट है, जो उसके निर्मल गुणगणोंका बखान करते हैं ॥ १०५ ॥

चौ०—को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ । कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ ॥

अस तीरथपति देखि सुहावा । सुखसागर रघुबर सुखु पावा ॥ १ ॥

पापोंके समूहरूपी हाथीके मारनेके लिये सिंहरूप प्रयागराजका प्रभाव (महात्त्व—माहात्म्य) कौन कह सकता है । ऐसे सुहावने तीर्थराजका दर्शन कर सुखके समुद्र रघुकुलश्रेष्ठ श्रीगमजीने भी सुख पाया ॥ १ ॥

कहि सिय लखनहि सखहि सुनाई । श्रीमुख तीरथराज बड़ाई ॥

करि प्रनामु देखत बन बागा । कहत महातम अति अनुरागा ॥ २ ॥

उन्होंने अपने श्रीमुखसे सीताजी, लक्ष्मणजी और सखा गुहको तीर्थराजकी महिमा कहकर सुनायी । तदनन्तर प्रणाम करके, वन और वर्गाचोंको देखते हुए और बड़े प्रेमसे माहात्म्य कहते हुए—॥ २ ॥

एहि विधि आइ बिलोकी बेनी । सुमिरत सकल सुमंगल देनी ॥

मुदित नहाइ कीन्हि सिय सेवा । पूजि जथाविधि तीरथ देवा ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीरामने आकर त्रिवेणीका दर्शन किया, जो स्मरण करनेसे ही सब सुन्दर मङ्गलोंको देनेवाली है । फिर आनन्दपूर्वक त्रिवेणीमें स्नान करके शिवजीकी सेवा (पूजा) की और विधिपूर्वक तीर्थदेवताओंका पूजन किया ॥ ३ ॥

तब प्रभु भरद्वाज पढ़िं आए । करत दंडवत मुनि उर लाए ॥

मुनि मन मोद न कछु कहि जाई । ब्रह्मानंद रासि जनु पाई ॥ ४ ॥

[ज्ञान, पूजन आदि सब करके] तब प्रभु श्रीरामजी भरद्वाजजीके पास आये । उन्हें दण्डवत् करते हुए ही मुनिने हृदयसे लमा लिया । मुनिके मनका आनन्द कुछ कहा नहीं जाता, मानो उन्हें ब्रह्मानन्दकी राशि मिल गयो हो ॥ ४ ॥

दो०—दीन्हि असीस मृनीस उर अति अनंदु अस जानि ।

लोचन गोचर सुकृतफल मनहुं किए बिधि आनि ॥ १०६ ॥

मुनीश्वर भरद्वाजजीने आशीर्वाद दिया । उनके हृदयमें ऐसा जानकर अत्यन्त आनन्द हुआ कि आज विधाताने [भीसीताजी और लक्ष्मणजीसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन कराकर] मानो हमारे सम्पूर्ण पुण्योंके फलको लाकर आँखोंके सामने कर दिया ॥ १०६ ॥

चौ०—कुसल प्रसन्न करि आसन दीन्हें । पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हें ॥

कंद मूल फल अंकुर नीके । दिए आनि मुनि मनहुं अमी के ॥ १ ॥

कुशल पूछकर मुनिराजने उनको आसन दिये और प्रेमसहित पूजन करके उन्हें सन्तुष्ट कर दिया । फिर मानो अमृतके ही बने हों, ऐसे अच्छे-अच्छे कन्द, मूल, फल और अंकुर लाकर दिये ॥ १ ॥

सीय लखन जन सहित सुहाए । अति रुचि राम मूल फल खाए ॥

भए बिगतश्रम राम सुखारे । भरद्वाज मृदु बचन उचारे ॥ २ ॥

सीताजी, लक्ष्मणजी और सेवक गुह सहित श्रीरामचन्द्रजीने उन सुन्दर मूल-फलकोंकी बड़ी रुचिके साथ खाया । थकावट दूर होनेसे श्रीरामचन्द्रजी सुखी हो गये, तब भरद्वाजजीने उनसे कोमल वचन कहे—॥ २ ॥

आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू । आजु सुफल जप जोग बिरागू ॥

सफल सकल सुभ साधन साजू । राम तुम्हहि अवलोकत आजू ॥ ३ ॥

हे राम ! आपका दर्शन करते ही आज मेरा तप, तीर्थसेवन और त्याग सफल हो गया । आज मेरा जप, योग और वैराग्य सफल हो गया और आज मेरे सम्पूर्ण शुभ साधनोंका समुदाय भी सफल हो गया ॥ ३ ॥

लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी । तुम्हरे दरस आस सब पूजी ॥

अब करि कृपा देहु बर एहु । निज पद सरसिज सहज सनेहु ॥ ४ ॥

लाभकी सीमा और सुखकी सीमा [प्रभुके दर्शनको छोड़कर] दूसरी कुछ भी नहीं है । आपके दर्शनसे मेरी सब आशाएँ पूर्ण हो गयीं । अब कृपा करके यह वरदान दीजिये कि आपके चरणकमलोंमें मेरा स्वाभाविक प्रेम हो ॥ ४ ॥

दो०—करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार ।

तब लगि सुख सपनेहुं नहीं किए कोटि उपचार ॥ १०७ ॥

जबतक कर्म, वचन और मनसे छल छोड़कर मनुष्य आपका दास नहीं हो जाता, तबतक करोड़ों उपाय करनेसे भी, स्वप्नमें भी वह सुख नहीं पाता ॥ १०७ ॥

चौ०—मुनि मुनिबचन रामु सकुचाने । भाव भगति आनंद अघाने ॥

तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा । कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा ॥ १ ॥

मुनिके बचन सुनकर, उनकी भाव-भक्तिके कारण आनन्दसे तृप्त हुए भगवान् श्रीरामचन्द्रजी [लीलाकी दृष्टिसे] सकुचा गये । तब [अपने ऐश्वर्यको छिपाते हुए] श्रीरामचन्द्रजीने भरद्वाज मुनिका सुन्दर सुयश करोड़ों (अनेकों) प्रकारसे कहकर सबको सुनाया ॥ १ ॥

सो बड़ सो सब गुन गन गेहू । जेहि मुनीस तुम्ह आदर वेहू ॥

मुनि रघुबीर परसपर नवहीं । बचन अगोचर सुख अनुभवहीं ॥ २ ॥

[उन्होंने कहा—] हे मुनीश्वर ! जिसको आप आदर दें, वही बड़ा है और वही सब गुणसमूहोंका घर है । इस प्रकार रघुबीर श्रीरामजी और मुनि भरद्वाजजी दोनों परस्पर विनम्र हो रहे हैं और अनिर्वचनीय सुखका अनुभव कर रहे हैं ॥ २ ॥

यह सुधि पाइ प्रयागनिवासी । बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी ॥

भरद्वाज आश्रम सब आए । देखन दसरथ सुअन सुहाए ॥ ३ ॥

यह (श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजीके आनेकी) खबर पाकर प्रयागनिवासी ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि, सिद्ध और उदासी सब श्रीदशरथजीके सुन्दर पुत्रोंको देखनेके लिये भरद्वाजजीके आश्रमपर आये ॥ ३ ॥

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू । मुदित भए लहि लोयनलाहू ॥

देहिं असीस परम सुखु पाई । फिरे सराहत सुंदरतारै ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने सब किसीको प्रणाम किया । नेत्रोंका लाम पाकर सब आनन्दित हो गये और परम सुख पाकर आशीर्वाद देने लगे । श्रीरामजीके सौन्दर्यकी सराहना करते हुए वे लौटे ॥ ४ ॥

दो०—राम कीन्ह विश्राम निसि प्रात प्रयाग नहाइ ।

चले सहित सिय लखन जन मुदित मुनिहि मिरु नाइ ॥ १०८ ॥

श्रीरामजीने रातको वहीं विश्राम किया और प्रातःकाल प्रयागगङ्गाका स्नान करके और प्रसन्नताके साथ मुनिको सिर नवाकर श्रीसीताजी, लक्ष्मणजी और सेवक गुरुके साथ वे चले ॥ १०८ ॥

चौ०—राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं । नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं ॥

मुनि मन बिहसि राम सन कहहीं । सुगम सकल मग तुम्ह कहूँ अहहीं ॥ १ ॥

[चलते समय] बड़े प्रेमसे श्रीरामजीने मुनिसे कहा—हे नाथ ! वनाइये हम किम मार्गसे जायें । मुनि मनमें हँसकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहते हैं कि आपके लिये सभी मार्ग सुगम हैं ॥ १ ॥

साथ लागि मुनि सिष्य बोलाए । मुनि मन मुदित पचासक आए ॥

सबन्हि राम पर प्रेम अपारा । सकल कहहिं मगु दीख हमारा ॥ २ ॥

फिर उनके साथके लिये मुनिने शिष्योंका बुझाया । [साथ जानेकी बात] मुनने ही चित्तमें हर्षित हो कोई पचास शिष्य आ गये । सभीका श्रीरामजीपर अपार प्रेम है । सभी कहते हैं कि मार्ग हमारा देखा हुआ है ॥ २ ॥

मुनि बटु चारि संग तय दीन्हे । जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे ॥

करि प्रनाम रिषि आयसु पाई । प्रमुदित हृदयँ चले रघुराई ॥ ३ ॥

तब मुनिने [चुनकर] चार ब्रह्मचारियोंको साथ कर दिया, जिन्होंने बहुत जन्मोंतक सब सुकृत (पुण्य) किये थे । श्रीरघुनाथजी प्रणाम कर और ऋषिकी आज्ञा पाकर हृदयमें बड़े ही आनन्दित होकर चले ॥ ३ ॥

ग्राम निकट जब निकसहिं जाई । देखहिं दरसु नारि नर धाई ॥
होहिं सनाथ जनमफलु पाई । फिरहिं दुखित मनु संग पठाई ॥ ४ ॥

जब वे किसी गाँवके पास होकर निकलते हैं तब स्त्री-पुरुष दौड़कर उनके रूपको देखने लगते हैं । जन्मका फल पाकर वे [सदाके अनाथ] सनाथ हो जाते हैं और मनको नाथके साथ भेजकर [शरीरसे साथ न रहनेके कारण] दुखी होकर लौट आते हैं ॥ ४ ॥

दो०—विदा किए बटु विनय करि फिरे पाइ मनकाम ।

उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम ॥ १०९ ॥

तदनन्तर श्रीरामजीने विनती करके चारों ब्रह्मचारियोंको विदा किया; वे मनचाही वस्तु (अनन्य भक्ति) पाकर लौटे । यमुनाजीके पार उतरकर सवने यमुनाजीके जलमें स्नान किया, जो श्रीरामचन्द्रजीके शरीरके समान ही श्याम रंगका था ॥ १०९ ॥

चो०—सुनत तीरबासी नर नारी । धाए निज निज काज बिसारी ॥
लखन राम सिय सुंदरताई । देखि करहिं निज भाग्य बढ़ाई ॥ १ ॥

यमुनाजीके किनारेपर रहनेवाले स्त्री-पुरुष [यह सुनकर कि निषादके साथ दो परम सुन्दर सुकुमार नवयुवक और एक परम सुन्दरी स्त्री आ रही हैं] सब अपना-अपना काम भूलकर दौड़े और लक्ष्मणजी, श्रीरामजी और सीताजीका सौन्दर्य देखकर अपने भाग्यकी बढ़ाई करने लगे ॥ १ ॥

अति लालसा बसहिं मन माहीं । नाउँ गाउँ वृक्षत सकुचाहीं ॥
जे तिन्ह महुँ ययविरिध सयाने । तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने ॥ २ ॥

उनके मनमें [परिचय जाननेकी] बहुत-सी लालसाएँ भरी हैं, पर वे नाम-गाँव पूछते सकुचाते हैं । उन लोगोंमें जो वयोवृद्ध और चतुर थे, उन्होंने युक्तिसे श्रीरामचन्द्रजीको पहचान लिया ॥ २ ॥

सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई । बनहि चले पितु आयसु पाई ॥
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं । रानी रायँ कीन्ह भल नाहीं ॥ ३ ॥

उन्होंने सब कथा सब लोगोंको सुनायी कि पिताकी आज्ञा पाकर ये वनको चले हैं । यह सुनकर सब लोग दुःखित हो पछता रहे हैं कि रानी और राजाने अच्छा नहीं किया ॥ ३ ॥

तेहि अचसर एक तापसु आवा । तेजपुंज लघु बयस सुहावा ॥
कवि अलखित गति वेषु विरागी । मन क्रम बचन राम अनुरागी ॥ ४ ॥

उसी अवसरपर वहाँ एक तपस्वी आया, जो तेजका पुंज, छोटी अवस्थाका और सुन्दर था । उसकी गति कवि नहीं जानते [अथवा वह कवि था जो अपना परिचय नहीं देना चाहता] । वह वैरागीके वेषमें था और मन, वचन तथा क्रमसे श्रीरामचन्द्रजीका प्रेमी था ॥ ४ ॥

[इस तेजपुंज तापसके प्रसंगको कुछ टीकाकार क्षेपक मानते हैं और देखनेमें यह अप्रासंगिक और ऊपरसे जोड़ा हुआ-सा जान भी पड़ता है, परन्तु यह सभी प्राचीन प्रतियोंमें है । गुसाईंजी अलौकिक अनुभवी पुरुष थे । पता नहीं, यहाँ इस प्रसंगके रखनेमें क्या रहस्य है; परन्तु यह क्षेपक तो नहीं है । इस तापसको जब 'कवि अलखित गति' कहते हैं, तब निश्चयपूर्वक कौन क्या कह सकता है । हमारी समझसे ये तापस या तो श्रीहनुमान्जी थे अथवा ध्यानस्थ तुलसीदासजी !]

दो०—सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेउ पहिचानि ।

परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि ॥ ११० ॥

अपने इष्टदेवको पहचानकर उसके नेत्रोंमें जल भर आया और शरीर पुलकित हो गया । वह दण्डकी भौंति पृथ्वीपर गिर पड़ा, उसकी [प्रेमबिह्वल] दशाका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ११० ॥

चौ०—राम सप्रेम पुलकि उर लावा । परम रंक जनु पारसु पावा ॥

मनहुँ प्रेम परमारथु दोऊ । मिलत धरें तन कह सबु कोऊ ॥ १ ॥

श्रीरामजीने प्रेमपूर्वक पुलकित होकर उसको हृदयसे लगा लिया । [उसे इतना आनन्द हुआ] मानो कोई महादरिद्री मनुष्य पारस पा गया हो । सब कोई [देखनेवाले] कहने लगे कि मानो प्रेम और परमार्थ (परम तत्व) दोनों शरीर धारण करके मिल रहे हैं ॥ १ ॥

बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा । लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा ॥

पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा । जननि जानि सिसु दीन्ह असीसा ॥ २ ॥

फिर वह लक्ष्मणजीके चरणों लगा । उन्होंने प्रेमसे उमँगकर उसको उठा लिया । फिर उसने सीताजीकी चरणधूलिको अपने सिरपर धारण किया । माता सीताजीने भी उसको अपना छोटा बच्चा जानकर आशीर्वाद दिया ॥ २ ॥

कीन्ह निपाद दंडवत तेही । मिलेउ मुदित लखि रामसनेही ॥

पिअत मयनपुट रूपु पियूपा । मुदित सअसनु पाइ जिमि भूखा ॥ ३ ॥

फिर निपादराजने उसको दण्डवत् की । श्रीरामचन्द्रजीका प्रेमी जानकर वह उस (निपाद) से आनन्दित होकर मिला । वह तपस्वी अपने नेत्ररूपी दोनोंसे श्रीरामजीकी सौन्दर्य-मुधाका पान करने लगा और ऐसा आनन्दित हुआ जैसे कोई भूखा आदमी सुन्दर भोजन पाकर आनन्दित होता है ॥ ३ ॥

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे । जिन्ह पठए वन बालक ऐसे ॥

राम लखन सिय रूपु निहारी । होहिं सनेहँ बिकल नर नारी ॥ ४ ॥

[इधर गाँवकी बियाँ कह रही हैं—] हे सखी ! कहो तो, वे माता-पिता कैसे हैं जिन्होंने ऐसे (सुन्दर-सुकुमार) बालकोंको वनमें भेज दिया है । श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजीके रूपको देखकर सब स्त्री-पुरुष स्नेहसे व्याकुल हो जाते हैं ॥ ४ ॥

दो०—तब रघुवीर अनेक विधि सखहि सिखावनु दीन्ह ।

राम रजायसु सीस धरि भवन गवनु तेई कीन्ह ॥ १११ ॥

तब रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीने सखा गुहको अनेकों तरहसे [घर लौट जानेके लिये] समझाया । श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर उसने अपने घरको गमन किया ॥ १११ ॥

चौ०—पुनि सियँ राम लखन कर जोरी । जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी ॥

चले ससीय मुदित दोउ भाई । रवितनुजा कह करत बड़ाई ॥ १ ॥

फिर सीताजी, श्रीरामजी और लक्ष्मणजीने हाथ जोड़कर यमुनाजीको पुनः प्रणाम किया, और सूर्यकन्या यमुनाजीकी बड़ाई करते हुए सीताजीसहित दोनों भाई प्रसन्नतापूर्वक आगे चले ॥ १ ॥

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता । कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता ॥

राजलखन सब अंग तुम्हारें । देखि सोचु अति हृदयँ हमारें ॥ २ ॥

रास्तेमें जाते हुए उन्हें अनेकों यात्री मिलते हैं । वे दोनों भाइयोंको देखकर उनसे प्रेमपूर्वक कहते हैं कि तुम्हारे सब अंगोंमें राजचिह्न देखकर हमारे हृदयोंमें बड़ा सोच होता है ॥ २ ॥

मारग चलहु पयादेहिं पायँ । ज्योतिषु झूठ हमारें भायँ ॥

अगमु पंथु गिरि कानन भारी । तेहि महुँ साथ नारि सुकुमारी ॥ ३ ॥

[ऐसे राजचिह्नोँके होते हुए भी] तुमलोग रास्तेमें पैदल ही चल रहे हो, इससे हमारी समझमें आता है कि ज्योतिष-शास्त्र झूठा ही है। भारी जंगल और बड़े-बड़े पहाड़ोंका दुर्गम रास्ता है; तिसपर तुम्हारे साथ सुकुमारी ली है ॥ ३ ॥

करि केहरि बन जाइ न जोरै । हम सँग चलहिं जो आयसु होरै ॥

जाब जहाँ लगि तहुँ पहुँचार्ह । फिरब बहोरि तुम्हहि सिरु नारै ॥ ४ ॥

हाथी और सिंहोंसे भरा यह भयानक वन देखातक नहीं जाता। यदि आशा हो तो हम साथ चलें। आप जहाँतक जायेंगे वहाँतक पहुँचाकर, फिर आपको प्रणाम करके हम लौट आवेंगे ॥ ४ ॥

दो०—एहि बिधि पूँछहिं प्रेम बस पुलक गात जलु नैन ।

कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहि कहि विनीत मृदु बैन ॥११२॥

इस प्रकार वे यात्री प्रेमवश पुलकितशरीर हो और नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भरकर पूछते हैं। किन्तु कृपाके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी कोमल विनययुक्त वचन कहकर उन्हें लौटा देते हैं ॥ ११२ ॥

चो०—जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं । तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाहीं ॥

केहि सुकृती केहि घरी बसाए । धन्य पुन्यमय परम सुहाए ॥ १ ॥

जो गाँव और पुरवे रास्तेमें बसे हैं, नागों और देवताओंके नगर उनको देखकर प्रशंसापूर्वक ईर्ष्या करते और लज्जाते हुए कहते हैं कि किस पुण्यवान्ने किस शुभ घड़ीमें इनको बसाया था, जो आज ये इतने धन्य और पुण्यमय तथा परम सुन्दर हो रहे हैं ॥ १ ॥

जहँ जहँ रामचरन चलि जाहीं । तिन्ह समान अमरावति नाहीं ॥

पुन्यपुंज मग निकट निवासी । तिन्हहि सराहहिं सुरपुरवासी ॥ २ ॥

जहाँ-जहाँ श्रीरामचन्द्रजीके चरण चले जाते हैं, उनके समान इन्द्रकी पुरी अमरावती भी नहीं है। रास्तेके समीप बसनेवाले भी बड़े पुण्यात्मा हैं—स्वर्गमें रहनेवाले देवता भी उनकी सराहना करते हैं—॥ २ ॥

जे भरि नयन बिलोकहिं रामहि । सीता लखन सहित धनस्यामहि ॥

जे सर सरित राम अवगाहहिं । तिन्हहि देव सर सरित सराहहिं ॥ ३ ॥

जो नेत्र भरकर सीताजी और लक्ष्मणजीसहित धनश्याम श्रीरामजीके दर्शन करते हैं। जिन तालाबों और नदियोंमें श्रीरामजी स्नान कर लेते हैं, देवसरोवर और देवनदियाँ भी उनकी बड़ाई करती हैं ॥ ३ ॥

जेहि तर तर प्रभु बैठहिं जाई । करहिं कलपतरु तासु बड़ाई ॥

परसि राम पद पदुम परागा । मानति भूमि भूरि निज भागा ॥ ४ ॥

जिस वृक्षके नीचे प्रभु जा बैठते हैं, कल्पवृक्ष भी उसकी बड़ाई करते हैं। श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंकी रजका स्पर्श करके पृथ्वी अपना बड़ा सौभाग्य मानती है ॥ ४ ॥

दो०—छाँह करहिं धन बिबुधगन बरषहिं सुमन सिहाहिं ।

देखत गिरि बन बिहग मृग रामु चले मग जाहिं ॥११३॥

रास्तेमें बादल छाया करते हैं और देवता फूल बरसाते और सिंहाते हैं। पर्वत, वन और पशु-पक्षियोंको देखते हुए श्रीरामजी रास्तेमें चले जा रहे हैं ॥ ११३ ॥

चौ०—सीता लखन सहित रघुराई । गाँव निकट जब निकसहिं जाई ॥

सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी । चलहिं तुरत गृह काजु बिसारी ॥ १ ॥

सीताजी और लक्ष्मणजीसहित श्रीरघुनाथजी जब किसी गाँवके पास जा निकलते हैं तब उनका आना सुनते ही बालक-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब अपने घर और काम-काजको भूलकर तुरंत उन्हें देखनेके लिये चल देते हैं ॥ १ ॥

राम लखन सिय रूप निहारी । पाइ नयनफलु होहिं सुखारी ॥

सजल बिलोचन पुलक सररीरा । सब भए मगन देखि दोउ बीरा ॥ २ ॥

श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजीका रूप देखकर, नेत्रोंका [परम] फल पाकर वे सुखी होते हैं। दोनों वीरोंको देखकर सब प्रेमानन्दमें मग्न हो गये। उनके नेत्रोंमें जल भर आया और शरीर पुलकित हो गये ॥ २ ॥

बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी । लहि जनु रंकन्ह सुर मनि देरी ॥

एकन्ह एक बोलि सिख देहीं । लोचनलाहु लेहु छन पहीं ॥ ३ ॥

उनकी दशा वर्णन नहीं की जाती। मानो दरिद्रोंने चिन्तामणिकी देरी पा ली हो। वे एक-एकको पुकारकर सीख देते हैं कि इसी क्षण नेत्रोंका लाभ ले लो ॥ ३ ॥

रामहि देखि एक अनुरागे । चितवत चले जाहिं संग लागे ॥

एक नयन मग छबि उर धानी । होहिं सिथिल तन मन बर बानी ॥ ४ ॥

कोई श्रीरामचन्द्रजीको देखकर ऐसे अनुरागमें भर गये हैं कि वे उन्हें देखते हुए उनके साथ लगे चले जा रहे हैं। कोई नेत्रमार्गसे उनकी छबिको हृदयमें लकर, शरीर, मन और श्रेष्ठ वाणीसे सिथिल हो जाते हैं (अर्थात् उनके शरीर, मन और वाणीका व्यवहार बन्द हो जाता है) ॥ ४ ॥

दो०—एक देखि बटछाँह भलि ढासि मृदुल तन पात ।

कहहिं गवाँइअ छिनुकु श्रमु गवनव अबहिं कि प्रात ॥ ११४ ॥

कोई बड़की सुन्दर छाया देखकर, वहाँ नरम घास और पत्ते बिछाकर कहते हैं कि क्षणभर यहाँ बैठकर थकावट मिटा लीजिये। फिर चाहे अभी चले जाइयेगा, चाहे सबेरे ॥ ११४ ॥

चौ०—एक कलस भरि आनहिं पानी । अँचइअ नाथ कहहिं मृदुबानी ॥

सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी । राम कृपाल सुसील बिसेषी ॥ १ ॥

कोई घड़ा भरकर पानी ले आते हैं और कोमल वाणीसे कहते हैं—नाथ! आचमन तो कर लीजिये। उनके प्यारे वचन सुनकर और उनका अत्यन्त प्रेम देखकर दयालु और परम सुशील श्रीरामचन्द्रजीने— ॥ १ ॥

जानी श्रमित सीय मन माहीं । घरिक बिलंबु कीन्ह बटछाहीं ॥

मुदित नारि नर देखहिं सोभा । रूप अनूप नयन मनु लोभा ॥ २ ॥

मनमें सीताजीको थकी हुई जानकर घड़ीभर बड़की छायामें विश्राम किया। स्त्री-पुरुष आनन्दित होकर शोभा देखते हैं। अनुपम रूपने उनके नेत्र और मनोंको लुभा लिया है ॥ २ ॥



एक कलस भरी आनहि पानी । अँचइअ नाथ कहहि मृदु बानी ॥ सुनि प्रिय वचन प्रीति अति देखी । गम कृपाल सुसील त्रिमेली ॥
जानी अमित सीय मन माहीं । घनिक विलंबु कीन्ह वटछाहीं ॥ मुदित नगिन देखहि सोभा । रूप अनूप नयन मनु लोभा ॥

एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा । रामचंद्र मुख चंद चकोरा ॥

तरुन तमाल बरन तनु सोहा । देखत कोटि मदन मनु मोहा ॥ ३ ॥

सब लोग एकटकी लगाये श्रीरामचन्द्रजीके मुखचन्द्रको चकोरकी तरह (तन्मय होकर) देखते हुए चारों ओर सुशोभित हो रहे हैं। श्रीरामजीका नवीन तमाल वृक्षके रंगका (रसमय) शरीर अत्यन्त शोभा दे रहा है, जिसे देखते ही करोड़ों कामदेवोंके मन मोहित हो जाते हैं ॥ ३ ॥

स्वामिनि बरन लखन सुठि नीके । नख सिख सुभग भावते जी के ॥

मुनिपट कटिन्ह कसैं तूनीरा । सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा ॥ ४ ॥

बिजलीकेसे रंगके लक्ष्मणजी बहुत ही भले मान्द्रम होते हैं। वे नखसे शिखातक सुन्दर हैं, और मनको बहुत भाते हैं। दोनों मुनियोंके (वलकल आदि) वस्त्र पहने हैं और कमरमें तरकस कसे हुए हैं। कमलके समान हाथोंमें धनुष-बाण शोभित हो रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—जटा मुकुट सीसनि सुभग उर भुज नयन बिसाल ।

सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वेद कन जाल ॥ ११५ ॥

उनके सिरोंपर सुन्दर जटाओंके मुकुट हैं; वक्षःस्थल, भुजा और नेत्र विशाल हैं और शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान (परम मनोहर) मुखोंपर पसीनेकी बूँदोंका समूह शोभित हो रहा है ॥ ११५ ॥

चो०—बरनि न जाइ मनोहर जोरी । सोभा बहुत थोरि मति मोरी ॥

राम लखन सिय सुंदरताई । सब चितवहिं चित मन मति लाई ॥ १ ॥

उम मनोहर जोड़ीका वर्णन नहीं किया जा सकता; क्योंकि शोभा बहुत अधिक है, और मेरी बुद्धि थोड़ी है। श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजीकी सुन्दरताको सब लोग मन, चित और बुद्धि तीनोंको लगाकर देख रहे हैं ॥ १ ॥

थके नारि नर प्रेम पिआसे । मनहुँ मृगी मृग देखि दिआ से ॥

सीय समीप प्राप्तिय जाहों । पूँछत अति सनेहँ सकुचाहों ॥ २ ॥

प्रेमके प्यासे [वे गाँवोंके] स्त्री पुरुष [इनके सौन्दर्यमाधुर्यकी छटा देखकर] ऐसे थकित रह गये जैसे दीपकको देखकर हिरनी और हिरन [निस्तब्ध रह जाते हैं]! गाँवोंकी स्त्रियाँ सीताजीके पास जाती हैं। परन्तु अत्यन्त स्नेहके कारण पूछते सकुचाती हैं ॥ २ ॥

बार बार सब लागहिं पाएँ । कहहिं वचन मृदु सरल सुभाएँ ॥

राजकुमारि बिनय हम करहों । तिय सुभायँ कछु पूँछत डरहीं ॥ ३ ॥

बार-बार सब उनके पाँव लगीं और सहज ही सीधे-सादे कोमल वचन कहती हैं—हे राजकुमारी! हम विनती करती हैं (कुछ निवेदन करना चाहती हैं); परन्तु स्त्री-स्वभावके कारण कुछ पूछते हुए डरती हैं ॥ ३ ॥

स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी । बिलगु न मानब जानि गवाँरी ॥

राजकुमार दोउ सहज सलोने । इन्ह तैं लही दुति मरकत सोने ॥ ४ ॥

हे स्वामिनि! हमारी दिठाई क्षमा कीजियेगा और हमको गँवारी जानकर बुरा न मानियेगा। ये दोनों राजकुमार स्वभावसे ही लावण्यमय (परम सुन्दर) हैं। मरकतमणि (पन्ने) और सुवर्णने कान्ति इन्हींसे

पायी है (अर्थात् मरकतमणिमें और स्वर्णमें जो हरित और स्वर्णवर्णकी आभा है वह इनकी हरिताभनील और स्वर्णकान्तिके एक कणके बराबर भी नहीं है) ॥ ४ ॥

दो०—स्यामल गौर किसोर वर सुंदर सुषमा ऐन ।

सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन ॥११६॥

इयाम और गौर वर्ण है, सुन्दर किशोर अवस्था है; दोनों ही परम सुन्दर और शोभाके धाम हैं । शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान इनके मुख और शरद्-ऋतुके कमलके समान इनके नेत्र हैं ॥ ११६ ॥

मासपारायण सोलहवाँ विश्राम

नवाह्नपारायण चौथा विश्राम

चौ०—कोटि मनोज लजावनिहारे । सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥

सुनि सनेहमय मंजुल बानी । सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी ॥ १ ॥

हे सुमुखि ! कहाँ तो अपनी सुन्दरतासे करोड़ों कामदेवोंको लजानेवाले ये तुम्हारे कौन हैं ? उनकी ऐसी प्रेममयी सुन्दर वाणी सुनकर सीताजी सकुचा गयीं और मन-ही-मन मुस्करायीं ॥ १ ॥

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी । दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी ॥

सकुचि संप्रम बाल मृग नयनी । बोली मधुर वचन पिकवयनो ॥ २ ॥

उत्तम (गौर) वर्णवाली सीताजी उनको देखकर [सकोचवश] पृथ्वीकी ओर देखती हैं । वे दोनों ओरके संकोचसे सकुचा रही हैं (अर्थात् न बतानेमें ग्रामकी स्त्रियोंको दुःख होनेका संकोच है और बतानेमें लज्जारूप संकोच) । हिरनके बच्चेके सदृश नेत्रवाली और कोकिलकी-सी वाणीवाली सीताजी सकुचाकर प्रेमसहित मधुर वचन बोली—॥ २ ॥

सहज सुभाय सुभग तन गोरे । नामु लखनु लघु देवर मोरे ॥

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी । पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ॥ ३ ॥

ये जो सहजस्वभाव, सुन्दर और गोरे शरीरके हैं, इनका नाम लक्ष्मण है; ये मेरे छोटे देवर हैं । फिर सीताजीने [लज्जावश] अपने चन्द्रमुखको आँचलसे ढककर और प्रियतम (श्रीरामजी) की ओर निहारकर भौंह टेढ़ी करके, ॥ ३ ॥

खंजन मंजु तिरीछे नयननि । निजपनि कहंउ तिन्हहि सिय सयननि ॥

भई मुदित सब ग्रामबधूटी । रंकन्ह रायरासि जनु लूटी ॥ ४ ॥

खंजन पक्षीके-से सुन्दर नेत्रोंको तिरछा करके इशारेमें उन्हें कहा कि ये (श्रीगमचन्द्रजी) मेरे पति हैं । यह जानकर गाँवकी सब युवती स्त्रियाँ इस प्रकार आनन्दित हुईं मानो कंगालोने धनका राशियाँ लूट ली हों ॥ ४ ॥

दो०—अति संप्रम सिय पायँ परि बहुबिधि देहिं असीस ।

सदा सोहागिनि हांहु तुम्ह जब लगि महि अहिसीस ॥११७॥

वे अत्यन्त प्रेमसे सीताजीके पैरो पड़कर बहुत प्रकारसे आशिष देती हैं (शुभ कामना करती हैं) कि जबतक शेषजीके सिरपर पृथ्वी रहे तबतक तुम सदा सुहागिनी बनी रहो, ॥ ११७ ॥

कल्याण

(१) वनवासिनी स्त्रियोंका अचरज



ते पितु मातु कहहु सखि कैसे ।
जिन्ह पठए वन बालक ऐसे ॥
[पृष्ठ ३९८]

(२) पथिकोंका प्रेम



करि केहरि बन जाइ न जोई ।
हम सँग चलहिं जो आयसु होई ॥
[पृष्ठ ३९९]

(३) परिचय-प्रदान



स्वजन मंजु तिरीछे नयननि ।
निजपति कहेन तिन्हहि सिय सयननि ॥
[पृष्ठ ४०२]

(४) यात्रामें मर्यादा



सीय राम पद अंक बराएँ ।
लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ ॥
[पृष्ठ ४०६]

चौ०—पारबती सम पतिप्रिय होइ । देवि न हम पर छाड़ब छोड़ ॥

पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी । जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी ॥ १ ॥

और पार्वतीजीके समान अपने पतिकी प्यारी होओ । हे देवि ! हमपर कृपा न छोड़ना (बनाये रखना) । हम बार-बार हाथ जोड़कर विनती करती हैं जिसमें आप फिर इसी रास्ते लौटें, ॥ १ ॥

दरसनु देब जानि निज दासी । लखीं सीर्यँ सब प्रेम पिआसी ॥

मधुर वचन कहि कहि परितोषी । जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषी ॥ २ ॥

और हमें अपनी दासी जानकर दर्शन दें । सीताजीने उन सबको प्रेमकी प्यासी देखा; उन्होंने मधुर वचन कह-कहकर उनका भलीभाँति सन्तोष किया । मानो चाँदनीने कुमुदिनियोंको खिलकर पुष्ट कर दिया हो ॥ २ ॥

तबहिं लखन रघुबर रुख जानी । पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदुबानी ॥

सुनत नारि नर भए दुखारी । पुलकित गात बिलोचन बारी ॥ ३ ॥

उसी समय श्रीरामचन्द्रजीका रुख जानकर लक्ष्मणजीने कोमल वाणीसे लोगोंसे रास्ता पूछा । यह सुनते ही स्त्री-पुरुष दुखी हो गये । उनके शरीर पुलकित हो गये और नेत्रोंमें [वियोगकी सम्भावनासे प्रेमका] जल भर आया ॥ ३ ॥

मिट्टा मोदु मन भए मलीने । बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने ॥

समुझि करमगति धीरजु कीन्हा । सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा ॥ ४ ॥

उनका आनन्द मिट गया और मन में उदास हो गये मानो विधाता दी हुई सम्पत्ति छीने लेता हो । कर्मकी गति समझकर उन्होंने धैर्य धारण किया और अच्छी तरह निर्णय करके सुगम मार्ग बनला दिया ॥ ४ ॥

दो०—लखन जानकी सहित तब गवनु कीन्ह रघुनाथ ।

फेरे सब प्रिय वचन कहि लिए लाइ मन साथ ॥ ११८ ॥

तब लक्ष्मणजी और जानकीजीसहित श्रीरघुनाथजीने गमन किया और सब लोगोंको प्रिय वचन कहकर लौटाया; किन्तु उनके मनोंको अपने साथ ही लया लिया ॥ ११८ ॥

चौ०—फिरत नारि नर अनि पछिताही । दैअहि दोषु देहिं मन माही ॥

सहित बिपाद परसपर कहहीं । बिधि करतब उलटे सब अहहीं ॥ १ ॥

लौटते हुए वे स्त्री-पुरुष बहुत ही पछताते हैं और मन-ही-मन दैवको दोष देते हैं । परस्पर [बड़े ही] विषादके साथ कहते हैं कि विधाताके सभी काम उलटे हैं ॥ १ ॥

निपट निरंकुस निठुर निसंकू । जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलंकू ॥

रुख कलपतरु सागरु खारा । तेहिं पठए बन राजकुमारा ॥ २ ॥

वह विधाता बिल्कुल निरंकुश (स्वतन्त्र), निर्दय और निडर हैं, जिसने चन्द्रमाको रोगी (घटने-बढ़नेवाला) और कलंकी बनाया, कल्पवृक्षको पेड़ और समुद्रको खारा बनाया । उसीने इन राजकुमारोंको वनमें भेजा है ॥ २ ॥

जौं पै इन्हहि दीन्ह बनबासू । कीन्ह बादि बिधि भोगबिलासू ॥

ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना । रचे बादि बिधि बाहन नाना ॥ ३ ॥

जब विधाताने इनको वनवास दिया है, तब उसने भोग-विलास व्यर्थ ही बनाये । जब ये बिना जूतेके (नंगे ही पैरों) रास्तेमें चल रहे हैं, तब विधाताने अनेकों बाहन (सवारियों) व्यर्थ ही रचे ॥ ३ ॥

ए महि परहिं डासि कुस पाता । सुभग सेज कत सजत बिधाता ॥

तरुवर वास इन्हहि बिधि दीन्हा । धवल घाम रचि रचि श्रमु कीन्हा ॥ ४ ॥

जब ये कुश और पत्ते बिछाकर जमीनपर ही पड़ रहते हैं, तब विधाता सुन्दर सेज (पलंग और बिछौने) किस लिये बनाता है ? विधाताने जब इनको बड़े-बड़े पेड़ों [के नीचे] का निवास दिया, तब उज्ज्वल महलोंको बना-बनाकर उसने व्यर्थ ही परिश्रम किया ॥ ४ ॥

दो०—जों ए मुनिपटधर जटिल सुंदर सुठि सुकुमार ।

बिबिध भाँति भूषन बसन बादि किए करतार ॥ ११९ ॥

जो ये सुन्दर और अत्यन्त सुकुमार होकर मुनियोंके (वल्कल) वस्त्र पहनते और जटा धारण करते हैं, तो फिर करतार (विधाता) ने भाँति-भाँतिके गहने और कपड़े वृथा ही बनाये ॥ ११९ ॥

चो०—जों ए कंद मूल फल खाहीं । बादि सुधादि असन जग माहीं ॥

एक कहहिं ए सहज सुहाए । आपु प्रगट भए बिधि न बनाए ॥ १ ॥

जो ये कन्द, मूल, फल खाते हैं तो जगत्में अमृत आदि भोजन व्यर्थ ही हैं । कोई एक कहते हैं—ये स्वभावसे ही सुन्दर हैं [इनका सौन्दर्य-माधुर्य नित्य और स्वाभाविक है] । ये अपने आप प्रकट हुए हैं, ब्रह्माके बनाये नहीं हैं ॥ १ ॥

जहँ लगि बेद कहाँ बिधिकरनी । श्रवन नयन मन गोचर बरनी ॥

देखहु खोजि भुवन दस चारी । कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी ॥ २ ॥

हमारे कानों, नेत्रों और मनके द्वाग अनुभवमे आनेवाली विधाताकी करनीको जहाँतक वेदोंने वर्णन करके कहा है, वहाँतक चौदहो लोकोंमें ढूँढ देखो, ऐसे पुरुष और ऐसी स्त्री कहाँ हैं ? [कहाँ भी नहीं है, इसीसे सिद्ध है कि ये विधाताके चौदहो लोकोंसे अलग हैं और अपनी महिमामे ही आप निर्मित हुए हैं] ॥ २ ॥

इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा । पटतर जोग बनावै लागा ॥

कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आप । तेहिं शरिपा बन आनि दुराए ॥ ३ ॥

इन्हे देखकर विधाताका मन अनुरक्त (मुग्ध) हो गया, तब वह भी इन्हींकी उपमाके योग्य दूभरे स्त्री-पुरुष बनाने लगा । उसने बहुत परिश्रम किया, परन्तु कोई उसकी अटकलमें ही नहीं आये (पूरे नहीं उतरे) । इसी ईर्ष्याके मारे उसने इनको जंगलमें लाकर छिपा दिया है ॥ ३ ॥

एक कहहिं हम बहुत न जानहिं । आपुहि परम धन्य करि मानहिं ॥

ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे । जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे ॥ ४ ॥

कोई एक कहते हैं—हम बहुत नहीं जानते । हाँ, अपनेको परम धन्य अवश्य मानते हैं [जो इनके दर्शन कर रहे हैं] । और हमारी समझमें वे भी बड़े पुण्यवान हैं जिन्होंने इनको देखा है, जो देख रहे हैं और जो देखेंगे ॥ ४ ॥

दो०—एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय लेहिं नयन भरि नीर ।

किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर ॥ १२० ॥

इस प्रकार प्रिय वचन कह-कहकर सब नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर लेते हैं और कहते हैं कि ये सुन्दर सुकुमार शरीरवाले दुर्गम (कठिन) मार्गमें कैसे चलेंगे ॥ १२० ॥

चो०—नारि स्नेह बिकल बस होहीं । चकई साँझ समय जनु सोहीं ॥

मृदु पदकमल कठिन मगु जानी । गहबरी हृदय कहहिं बरबानी ॥ १ ॥

झियाँ स्नेहवश बिकल हो जाती हैं, मानो सन्ध्याके समय चकवी [भावी वियोगकी पीड़ासे] सोह रही हों (दुखी हो रही हों) । इनके चरणकमलोंको कोमल तथा मार्गको कठोर जानकर वे व्यथित हृदयसे उत्तम वाणी कहती हैं—॥ १ ॥

परसत मृदुल चरन अरुनारे । सकुचति महि जिमि हृदय हमारे ॥

जौ जगदीस इन्हि बनु दीन्हा । कस न सुमनमय मारगु कीन्हा ॥ २ ॥

इनके कोमल और लाल-लाल चरणों (तलवों) को छूते ही पृथ्वी वैसे ही सकुचा जाती है जैसे हमारे हृदय सकुचा रहे हैं । जगदीश्वरने यदि इन्हें वनवास ही दिया, तो सारे रास्तेको पुष्पमय क्यों नहीं बना दिया ? ॥ २ ॥

जौ मागा पाइअ बिचि पाहों । ए रस्त्रिअहिं सखि आँखिन्ह माहों ॥

जे नर नारि न अवसर आप । तिन्ह सिय रामु न देखन पाप ॥ ३ ॥

यदि ब्रह्मासे माँगे मिले तो हे सखि ! [हम तो उनसे माँगकर] इन्हें अपनी आँखोंमें ही रक्वें ! जो स्त्री-पुरुष इस अवसरपर नहीं आये, वे श्रीसीतारामजीको नहीं देख सकें ॥ ३ ॥

सुनि सुरूप बूझहिं अकुलाई । अब लगि गए कहाँ लगि भाई ॥

समरथ धाइ बिलोकहिं जाई । प्रसुदित फिरहिं जनमफलु पाई ॥ ४ ॥

उनके सौन्दर्यको सुनकर वे व्याकुल होकर पूछते हैं कि भाई ! अबतक वे कहाँतक गये होंगे ? और जो समर्थ हैं, वे दौड़ते हुए जाकर उनके दर्शन कर लेते हैं और जन्मका परम फल पाकर, विशेष आनन्दित होकर लौटते हैं ॥ ४ ॥

दो०—अबला बालक बृद्ध जन कर मीजहिं पछिताहिं ।

होहिं प्रेमबस लोग इमि रामु जहाँ जहँ जाहिं ॥ १२१ ॥

[गर्भवती, प्रमूता आदि] अबला झियाँ, बच्चे और बूढ़े दर्शन न पानेसे हाथ मलते और पछताते हैं । इस प्रकार जहाँ-जहाँ श्रीरामचन्द्रजी जाते हैं, वहाँ-वहाँ लोग प्रेमके वशमें हो जाते हैं ॥ १२१ ॥

चो०—गावँ गावँ अस होइ अनंद । देखि भानुकुल कैरव चंद ॥

जे कछु समाचार सुनि पावहिं । ते नृप रानिहि दोसु लगावहिं ॥ १ ॥

सूर्यबुलरूपी कुमुदिनीके प्रफुल्लित करनेवाले चन्द्रमास्वरूप श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन कर गाँव-गाँवमें ऐसा ही आनन्द हो रहा है । जो लोग [वनवास दिये जानेका] कुछ भी समाचार सुन पाते हैं, वे राजा-रानी [दशरथ-कैकेयी] को दोष लगाते हैं ॥ १ ॥

कहहिं एक अति भल नरनाह । दीन्ह हमहि जोइ लोचनलाह ॥

कहहिं परसपर लोग लोगार् । बातें सरल स्नेह सुहाई ॥ २ ॥

कोई एक कहते हैं कि राजा बहुत ही अच्छे हैं, जिन्होंने हमें नेत्रोंका लाभ दिया । स्त्री-पुरुष सभी आपसमें सीधी, स्नेहभरी सुन्दर बातें कह रहे हैं ॥ २ ॥

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाए । धन्य सो नगरु जहाँ तँ आए ॥
धन्य सो देसु सैलु बन गाऊँ । जहँ जहँ जाहिं धन्य सोह ठाऊँ ॥ ३ ॥

[कहते हैं—] वे माता-पिता धन्य हैं जिन्होंने इन्हें जन्म दिया । वह नगर धन्य है जहाँसे ये आये हैं । वह देश, पर्वत, वन और गाँव धन्य है, और वही (वे सभी) स्थान धन्य हैं जहाँ-जहाँ ये जाते हैं ॥ ३ ॥

सुख पायउ बिरंचि रचि तेही । ए जेहि के सब भाँति सनेही ॥
राम लखन पथि कथा सुहाई । रही सकल मग कानन छाई ॥ ४ ॥

ब्रह्माने उसीको रचकर सुख पाया है जिसके ये (श्रीरामचन्द्रजी) सब प्रकारसे स्नेही हैं । पथिकरूप श्रीराम-लक्ष्मणकी सुन्दर कथा सारे रास्ते और जंगलमें छा गयी है ॥ ४ ॥

दो०—एहि बिधि रघुकुल कमल रवि मगलोगन्ह सुख देत ।

जाहिं चले देखत बिपिन सिय सौमित्रि समेत ॥ १२२ ॥

रघुकुलरूपी कमलके खिलानेवाले सूर्य श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार मार्गके लोगोंको सुख देते हुए सीताजी और लक्ष्मणजीसहित वनको देखते हुए चले जा रहे हैं ॥ १२२ ॥

चो०—आगें रामु लखनु बने पाछें । तापस बेष बिराजत काछें ॥
उभय बीच सिय सोहति कैसैं । ब्रह्म जीव बिच माया जैसैं ॥ १ ॥

आगे श्रीरामजी हैं, पीछे लक्ष्मणजी सुशोभित हैं । तपस्वियोंके वेष बनाये दोनों बड़ी ही शोभा पा रहे हैं । दोनोंके बीचमें सीताजी कैसी सुशोभित हो रही हैं, जैसे ब्रह्म और जीवके बीचमें माया ॥ १ ॥

बहुरि कहउँ छवि जसि मन बसई । जनु मधु मदन मध्य रति लसई ॥
उपमा बहुरि कहउँ जियँ जोही । जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही ॥ २ ॥

फिर जैसी छवि मेरे मनमें बस रही है, उसको कहता हूँ—मानो वसन्तऋतु और कामदेवके बीचमें रति (कामदेवकी स्त्री) शोभित हो । फिर अपने हृदयमें खोजकर उपमा कहता हूँ कि मानो बुध (चन्द्रमाके पुत्र) और चन्द्रमाके बीचमें रोहिणी (चन्द्रमाकी स्त्री) सोह रही हो ॥ २ ॥

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता । धरति चरन मग चलति सभीता ॥
सिय राम पद अंक बराएँ । लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ ॥ ३ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके [जमीनपर अंकित होनेवाले दोनों] चरणचिह्नोंके बीच-बीचमें पैर रखती हुई सीताजी [कही भगवान्‌के चरणचिह्नोंपर पैर न टिक जाय इस बातसे] डरती हुई मार्गमें चल रही हैं, और लक्ष्मणजी [मर्यादाकी रक्षाके लिये] सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी दोनोंके चरणचिह्नोंको बचाते हुए उन्हें दाहिने रखकर रास्ता चल रहे हैं ॥ ३ ॥

राम लखन सिय प्रीति सुहाई । बचन अगोचर किमि कहि जाई ॥
खग मृग मगन देखि छवि होही । लिए चोरि चित राम बटोही ॥ ४ ॥

श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजीकी सुन्दर प्रीति वाणीका विषय नहीं है (अर्थात् अनिर्वचनीय है), अतः वह कैसे कही जा सकती है ? पक्षी और पशु भी उस छविको देखकर [प्रेमानन्दमें] मग्न हो जाते हैं । पथिकरूप श्रीरामचन्द्रजीने उनके भी चित्त चुरा लिये हैं ॥ ४ ॥

दो०—जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ माह ।

भवमगु अगम अनंदु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ ॥१२३॥

प्यारे पथिक सीताजीसहित दोनों भाइयोंको जिन-जिन लोगोंने देखा, उन्होंने भवका अगम मार्ग (जन्म-मृत्युरूपी संसारमें भटकनेका भयानक मार्ग) बिना ही परिश्रम आनन्दके साथ तै कर लिया (अर्थात् वे आवागमनके चक्रसे सहज ही छूटकर मुक्त हो गये) ॥ १२३ ॥

चौ०—अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ । बसहुँ लखनु सिय रामु बटाऊ ॥

रामधाम पथ पाइहि सोई । जो पथ पाव कबहुँ मुनि काई ॥ १ ॥

आज भी जिसके हृदयमें स्वप्नमें भी कभी लक्ष्मण, सीता, राम तीनों बटोही आ बसैं, तो वह भी श्रीरामजीके परमधामके उस मार्गको पा जायगा जिस मार्गको कभी कोई विरले ही मुनि पाते हैं ॥ १ ॥

तब रघुबीर श्रमित सिय जानी । देखि निकट बटु सीतल पानी ॥

तहँ बसि कंद मूल फल खाई । प्रात नहाइ चले रघुराई ॥ २ ॥

तब श्रीरघुवीरजी सीताजीको थकी हुई जानकर और समीप ही एक बड़का वृक्ष और ठंडा पानी देखकर उस दिन वहीं टहर गये । कन्द, मूल, फल खाकर [रातभर वहाँ रहकर] प्रातःकाल स्नान करके श्रीरघुनाथजी चले ॥ २ ॥

देखत बन सर सैल सुहाए । बालमीकि आश्रम प्रभु आप ॥

राम दीख मुनिबासु सुहावन । सुंदर गिरि काननु जलु पावन ॥ ३ ॥

सुन्दर वन, तालाब और पर्वत देखते हुए प्रभु श्रीरामचन्द्रजी वाल्मीकिजीके आश्रममें आये । श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि मुनिका निवासस्थान बहुत सुन्दर है, जहाँ सुन्दर पर्वत, वन और पवित्र जल है ॥ ३ ॥

सरनि सरोज बिटप बन फूले । गुंजत मंजु मधुप रस भूले ॥

खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं । बिरहित बैर मुदित मन चरहीं ॥ ४ ॥

सरोवरोंमें कमल और वनोंमें वृक्ष फूल रहे हैं और मकरन्द-रसमें मस्त हुए भौंरे सुन्दर गुंजार कर रहे हैं । बहुत-से पक्षी और पशु कोलाहल कर रहे हैं और वैरसे रहित होकर प्रसन्न मनसे विचर रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—सुचि सुंदर आश्रमु निरखि हरपे राजिवनेन ।

मुनि रघुबर आगमनु मुनि आगे आयउ लेन ॥१२४॥

पवित्र और सुन्दर आश्रमको देखकर कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी हर्षित हुए । रघुश्रेष्ठ श्रीरामजीका आगमन सुनकर मुनि वाल्मीकिजी उन्हें लेनेके लिये आगे आये ॥ १२४ ॥

चौ०—मुनि कहूँ राम दंडवत कीन्हा । आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा ॥

देखि रामछवि नयन जुड़ाने । करि सनमानु आश्रमहिं आने ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने मुनिको दण्डवत् किया । विप्रश्रेष्ठ मुनिने उन्हें आशीर्वाद दिया । श्रीरामचन्द्रजीकी छवि देखकर मुनिके नेत्र शीतल हो गये । सम्मानपूर्वक मुनि उन्हें आश्रममें ले आये ॥ १ ॥

मुनिबर अतिथि प्राणप्रिय पाए । कंद मूल फल मधुर मगाए ॥

सिय सौमित्रि राम फल खाए । तब मुनि आश्रम दिप सुहाए ॥ २ ॥

श्रेष्ठ मुनि वाल्मीकिजीने प्राणप्रिय अतिथियोंको पाकर उनके लिये मधुर कन्द, मूल और फल मँगवाये । श्रीसीताजी, लक्ष्मणजी और रामचन्द्रजीने फलोंको खाया । तब मुनिने उनको [विश्राम करनेके लिये] सुन्दर स्थान बतला दिये ॥ २ ॥

बालमीकि मन आनँदु भारी । मंगल मूरति नयन निहारी ॥

तब कर कमल जोरि रघुराई । बोले बचन श्रवन सुखदाई ॥ ३ ॥

[मुनि श्रीरामजीके पास बैठे हैं और उनकी] मङ्गल-मूर्तिको नेत्रोंसे देखकर बालमीकिजीके मनमें बड़ा भारी आनन्द हो रहा है। तब श्रीरघुनाथजी कमलसदृश हाथोंको जोड़कर, कानोंको सुन्न देनेवाले मधुर वचन बोले—॥ ३ ॥

तुम्ह त्रिकालदरसी मुनिनाथा । बिख बदर जिमि तुम्हरें हाथा ॥

अस कहि प्रभु सब कथा बखानो । जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनु रानी ॥ ४ ॥

हे मुनिनाथ ! आप त्रिकालदर्शी हैं, सम्पूर्ण विश्व आपके लिये हथेलीपर रखे हुए घेरके समान है। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहकर फिर जिस-जिस प्रकारसे रानी कैकेयीने बनबास दिया, वह सब कथा विस्तार-से सुनायी ॥ ४ ॥

दो०—तातबचन पुनि मातुहित भाइ भरत अस राउ ।

मो कहूँ दरस तुम्हार प्रभु सबु मम पुन्यप्रभाउ ॥ १२५ ॥

[और कहा—] हे प्रभो ! पिताकी आज्ञाका पालन, माताका हित और भरत जैसे भाईका राजा होना, और फिर मुझे आपके दर्शन होना, यह सब मेरे पुण्योंका प्रभाव है ॥ १२५ ॥

चौ०—देखि पाय मुनिराय तुम्हारे । भय सुरुत सब सुफल हमारे ॥

अब जहँ राउर आयसु होई । मुनि उदबेगु न पावै कोई ॥ १ ॥

हे मुनिराज ! आपके चरणोंका दर्शन करनेसे आज हमारे सब पुण्य सफल हो गये (हमें सारे पुण्योंका फल मिल गया) । अब जहाँ आपकी आज्ञा हो और जहाँ कोई भी मुनि उद्वेगको प्राप्त न हो—॥ १ ॥

मुनि तापस जिन्ह तँ दुखु लहहीं । ते नरेस बिनु पावक दहहीं ॥

मंगल मूल विप्र परितोषु । दहइ कोटि कुल भूसुरोषु ॥ २ ॥

क्योंकि जिनसे मुनि और तपस्वी दुःख पाते हैं, वे राजा बिना अभिषेक हो जलकर भस्म हो जाते हैं। ब्राह्मणोंका संतोष सब मङ्गलोंकी जड़ है, और भूदेव ब्राह्मणोंका क्रोध कगोड़ो कुलोंको भस्म कर देता है ॥ २ ॥

अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ । सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ ॥

तहँ रचि रहिर परन तन साला । वासु करौँ कहु काल कृपाला ॥ ३ ॥

ऐसा हृदयमें समझकर—वह ग्यान बतलाइये जहाँ मैं लक्ष्मण और सीतासहित जाऊँ। और वहाँ सुन्दर पत्नी और घासकी कुटी बनाऊँ, हे दयालु ! कुछ समय निवास करूँ ॥ ३ ॥

सहज सरल सुनि रघुवर बानी । साधु साधु बोले मुनि ग्यानी ॥

कस न कहहु अस रघुकुलकेतू । तुम्ह पालक संतत श्रुतिसेतू ॥ ४ ॥

रघुवरकी सहज ही सरल वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि बालमीकि बोले—साधु ! साधु ! हे रघुकुलके ध्वजास्वरूप ! आप ऐसा क्यों न कहेंगे ? आप सदैव वेदकी मर्यादाका पालन (रक्षण) करते हैं ॥ ४ ॥

छं०—श्रुतिसेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी ।

जो सृजति जगु पालति हरनि रुख पाइ कृपानिधान की ॥

जो सइससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर घनी ।

सुरकाज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनो ॥

कल्याण

(१) ग्रामीणोंका प्रेम



लखन जानकी सहित तब गवतु कीन्ह रघुनाथ ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि लिए लाइ मन साथ ॥

[पृष्ठ ४०३]

(२) वाल्मीकिजीके अतिथि



सिय सौमित्रि राम फल खाए ।

[पृष्ठ ४०७]

(३) वाल्मीकिजीसे बातचीत



पूछेहु मोहि कि रहीं कहैं मैं पूछत सकुचाउँ ।

[पृष्ठ ४०९]

(४) रामजीकी पर्णकुटी



रचे परन तन सदन सुहाए ।

[पृष्ठ ४१३]

हे राम ! आप वेदकी मर्यादाके रक्षक जगदीश्वर हैं और जानकीजी [आपकी स्वरूपभूता] माया हैं, जो कृपाके भण्डार आपकी रख पाकर जगत्का सृजन, पालन और संहार करती हैं। जो हजार मस्तकवाले, सपोंके स्वामी और पृथ्वीको अपने सिरपर धारण करनेवाले हैं, वही चराचरके स्वामी शेषजी लक्ष्मण हैं। देवताओंके कार्यके लिये आप राजाका शरीर धारण करके दुष्ट राक्षसोंकी सेनाका नाश करनेके लिये चले हैं।

सो०—राम सरूप तुम्हारे वचन अगोचर बुद्धिपर।

अविगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ॥१२६॥

हे राम ! आपका स्वरूप वाणीके अगोचर, बुद्धिसे परे, अशक्त, अकथनीय और अपार है। वेद निरन्तर उसका 'नेति-नेति' कहकर वर्णन करते हैं ॥ १२६ ॥

चौ०—जगु मेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचाबनिहारे ॥

तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। और तुम्हहि को जाननिहारा ॥ १ ॥

हे राम ! जगत् दृश्य है, आप उसके देखनेवाले हैं। आप ब्रह्मा, विष्णु और शंकरको भी नचानेवाले हैं। जब वे भी आपके मर्मको नहीं जानते, तब और कौन आपको जाननेवाला है ? ॥ १ ॥

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ॥

तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन ॥ २ ॥

वही आपको जानता है जिसे आप जना देते हैं और जानते ही वह आपका ही स्वरूप बन जाता है। हे रघुनन्दन ! हे भक्तोंके हृदयके शीतल करनेवाले चन्दन ! आपकी ही कृपासे भक्त आपको जान पाते हैं ॥ २ ॥

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत विकार जान अधिकारी ॥

नरतनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा ॥ ३ ॥

आपकी देह चिदानन्दमय है (यह प्रकृतिजन्य पञ्चमहाभूतोंकी बनी हुई, कर्मबन्धनयुक्त, त्रिदेहविशिष्ट, मायिक नहीं है) और जन्म-मरणादि सब विकारोंसे रहित है। इस रहस्यको अधिकारी पुरुष ही जानते हैं। आपने देवता और संतोंके कार्यके लिये [दिव्य] नर-शरीर धारण किया है, और प्राकृत (प्रकृतिके तत्त्वोंसे निर्मित देहवाले, साधारण) राजाओंकी तरहसे कहते और करते हैं ॥ ३ ॥

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जइ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ॥

तुम्ह जो कहहु करहु सब साँचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा ॥ ४ ॥

हे राम ! आपके चरित्रोंको देख और सुनकर मूर्ख लोग तो मोहको प्राप्त होते हैं और ज्ञानीजन सुखी होते हैं। आप जो कुछ कहते, करते हैं, वह सब सत्य (उचित) ही है; क्योंकि जैसा स्वाँग भरे वैसा ही नाचना भी तो चाहिये (इस समय आप मनुष्यरूपमें हैं, अतः मनुष्योचित व्यवहार करना ठीक ही है) ॥ ४ ॥

दो०—पूछेहु मोहि कि रहैं कहँ मैं पूछत सकुचाउँ।

जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावाँ ठाउँ ॥१२७॥

आपने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ रहूँ ? परन्तु मैं यह पूछते सकुचाता हूँ कि जहाँ आप न हों, वह स्थान बता दीजिये। तब मैं आपके रहनेके लिये स्थान दिखाऊँ ॥ १२७ ॥

चौ०—सुनि मुनिबचन प्रेमरस साने। सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने ॥

बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी ॥ १ ॥

मुनिके प्रेमरससे सने हुए वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी सकुचाकर मनमें मुस्कराये । वाल्मीकिजी हँसकर फिर अमृत-रसमें डुबोयी हुई वाणी बोले—॥ १ ॥

सुनहु राम अब कहउँ निकेता । जहाँ बसहु सिय लखन समेता ॥

जिन्ह के श्रवण समुद्र समाना । कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥ २ ॥

हे रामजी ! सुनिये, अब मैं वे स्थान बताता हूँ जहाँ आप सीताजी और लक्ष्मणजी समेत निवास करें । जिनके कान समुद्रकी भाँति आपकी सुन्दर कथारूपी अनेकों सुन्दर नदियोंसे—॥ २ ॥

भरहिं निरंतर होहिं न पूरे । तिन्ह के हिय तुम्ह कहूँ गृह रूरे ॥

लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ॥ ३ ॥

निरन्तर भरते रहते हैं, परन्तु कभी पूरे नहीं होते, उनके हृदय आपके लिये सुन्दर घर हैं । और जिन्होंने अपने नेत्रोंको चातक बना रखा है, जो आपके दर्शनरूपी मेघके लिये सदा लालायित रहते हैं; ॥ ३ ॥

निदरहिं सरित सिंधु सर भारी । रूप बिंदु जल होहिं सुखारी ॥

तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक । बसहु बंधु सिय सह रघुनायक ॥ ४ ॥

तथा जो भारी भारी नदियों, समुद्रों और झीलोंका निरादर करते हैं और आपके सौन्दर्य [रूपी मेघ] के एक बूँद जलसे सुखी हो जाते हैं (अर्थात् आपके दिव्य सच्चिदानन्दमय स्वरूपके किसी एक अंगकी जरा-सी भी झँकीके सामने स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों जगत्के, अर्थात् पृथ्वी, स्वर्ग और ब्रह्मलोकतत्त्वके सौन्दर्यका निरस्कार करते हैं), हे रघुनाथजी ! उन लोगोंके हृदयरूपी सुखदायी भवनोंमें आप भाई लक्ष्मणजी और सीताजीसहित निवास कीजिये ॥ ४ ॥

दो०—जसु तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु ।

मुकताहल गुनगन चुनइ राम बसहु हियँ तासु ॥ १२८ ॥

आपके यथारूपी निर्मल मानसमंजरमें जिनकी जीभ हंसिनी बनी हुई आपके गुणसमूहरूपी मोतियोंको चुगती रहता है, आप उसके हृदयमें बसिये ॥ १२८ ॥

चो०—प्रभुप्रसाद सुचि सुभग सुवासा । सादर जासु लहइ नित नासा ॥

तुम्हहि निवेदित भोजन कर्हीं । प्रभुप्रसाद पट भूषण धरहीं ॥ १ ॥

जिनकी नामिका प्रभु (आप) के पवित्र और सुगन्धित [पुष्पादि] सुन्दर प्रसादको नित्य आदरके साथ ग्रहण करती (मँघती) है; और जो आपको अर्पण करके भोजन करते हैं और आपके प्रसादरूप ही वस्त्राभूषण धारण करते हैं; ॥ १ ॥

सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी । प्रीति सहित करि बिनय बिसेधी ॥

कर नित करहिं राम पद पूजा । रामभरोस हृदयँ नहिं दूजा ॥ २ ॥

जिनके मस्तक देवता, गुरु और ब्राह्मणोंको दम्भकर बड़ी नम्रताके साथ प्रेमसहित छुक्त जाते हैं; जिनके हाथ नित्य श्रीरामचन्द्रजी (आप) के चरणोंकी पूजा करते हैं, और जिनके हृदयमें श्रीरामचन्द्रजी (आप) का ही भरोसा है, दूसरा नहीं; ॥ २ ॥

चरन राम तीरथ चलि जाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥

मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा । पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा ॥ ३ ॥

तथा जिनके चरण श्रीरामचन्द्रजी (आप) के तीर्थोंमें चलकर जाते हैं; हे रामजी! आप उनके मनमें निवास कीजिये। जो नित्य आपके रामनामरूप मन्त्रराजको जपते हैं और परिवारसहित आपकी पूजा करते हैं; ॥ ३ ॥

तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाइ देहिं बहु दाना ॥

तुम्ह तैं अधिक गुरहिं जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी ॥ ४ ॥

जो अनेकों प्रकारसे तर्पण और हवन करते हैं, तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराकर बहुत दान देते हैं; तथा जो गुरुको हृदयमें आपसे भी अधिक (बड़ा) जानकर सर्वभावसे सम्मान करके उनकी सेवा करते हैं; ॥ ४ ॥

दो०—सबु करि मागहिं एक फलु रामचरन रति होउ।

तिन्ह केँ मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ ॥१२९॥

और ये सब कर्म करके सबका एकमात्र यही फल मांगते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें हमारी प्रीति हो; उन लोगोंके मनरूपी मन्दिरमें सीताजी और रघुबुलको आनन्दित करनेवाले आप दोनों बसिये ॥ १२९ ॥

चो०—काम कोह मद् मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥

जिन्ह केँ कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह केँ हृदय बसहु रघुराया ॥ १ ॥

जिनके न तो काम, क्रोध, मद, अभिमान और मोह है; न लोभ है; न क्षोभ है; न राग है; न द्वेष है; और न कपट, दम्भ और माया ही है—हे रघुराज! आप उनके हृदयमें निवास कीजिये ॥ १ ॥

सब के प्रिय सय के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥

कहहिं सत्य प्रिय वचन बिचारी। जागत सांवत सरन तुम्हारी ॥ २ ॥

जो सबके प्रिय और सबका हित करनेवाले हैं, जिन्हें दुःख और सुख तथा प्रशंसा (बड़ाई) और गाली (निन्दा) समान हैं, जो विचारकर सत्व और प्रिय वचन बोलते हैं, तथा जो जागते-मोते आपकी ही शरण हैं, ॥ २ ॥

तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह केँ मन माहीं ॥

जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तैं बिष भारी ॥ ३ ॥

और आपको छोड़कर जिनके दूसरे कोई गति नहीं है, हे रामजी! आप उनके मनमें बसिये। जो परायी स्त्रीको जन्म देनेवाली माताके समान जानते हैं और पराया धन जिन्हें विषसे भी भारी विष है; ॥ ३ ॥

जे हरषहिं परसंपति देखी। दुखित होहिं परबिपति बिसेषी ॥

जिन्हहि राम तुम्ह प्रानपिआरे। तिन्ह केँ मन मुभ सदन तुम्हारे ॥ ४ ॥

जो दूसरेकी सम्पत्ति देखकर हर्षित होते हैं और दूसरेकी विपत्ति देखकर विशेषरूपसे दुखी होते हैं, और हे रामजी! जिन्हें आप प्राणोंके समान प्यारे हैं; उनके मन आपके रहनेयोग्य शुभ भवन हैं ॥ ४ ॥

दो०—स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह केँ सब तुम्ह तात।

मन मंदिर तिन्ह केँ बसहु सीय सहित दोउ भ्रात ॥१३०॥

हे तात! जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु सब कुछ आप ही हैं, उनके मनरूपी मन्दिरमें सीतासहित आप दोनों भाई निवास कीजिये ॥ १३० ॥

चौ०—अवगुन तजि सब के गुन गहहीं । बिप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥

नीतिनिपुन जिन्ह कह जग लीका । घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका ॥ १ ॥

जो अवगुणोंको छोड़कर सबके गुणोंको ग्रहण करते हैं, ब्राह्मण और गौके लिये संकट सहते हैं, नीति-निपुणतामें जिनकी जगत्में मर्यादा है, उनका सुन्दर मन आपका घर है ॥ १ ॥

गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा । जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥

रामभगत प्रिय लागहिं जेही । तेहि उर बसहु सहित वैदेही ॥ २ ॥

जो गुणोंको आपका और दोषोंको अपना समझता है, जिसे सब प्रकारसे आका ही भरोसा है, और रामभक्त जिसे प्यारे लगते हैं, उसके हृदयमें आप सीतासहित निवास कीजिये ॥ २ ॥

जाति पाँति धनु घरमु बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥

सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई । तेहि कँ हृदयँ रहहु रघुराई ॥ ३ ॥

जाति, पाँति, धन, धर्म, बड़ाई, प्यारा परिवार और सुख देनेवाला घर—सबको छोड़कर जो केवल आपको ही हृदयमें धारण किये रहता है, हे रघुनाथजी ! आप उसके हृदयमें रहिये ॥ ३ ॥

सरगु नरकु अपबरगु समाना । जहँ तहँ देख धरँ धनु बाना ॥

करम वचन मन राउर चेरा । राम करहु तेहि कँ उर डेरा ॥ ४ ॥

स्वर्ग, नरक और मोक्ष जिसकी दृष्टिमें समान हैं, क्योंकि वह जहाँ-तहाँ (सब जगह) केवल धनुष-बाण धारण किये आपको ही देवता है; और जो कर्मसे, वचनसे और मनसे आपका दास है; हे रामजी ! आप उसके हृदयमें डेरा कीजिये ॥ ४ ॥

दो०—जाहि न चाहिअ कबहुँ कलु तुम्ह सन सहज सनेहु ।

बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु ॥ १३१ ॥

जिसको कभी कुछ भी नहीं चाहिये, और जिसका आपसे स्वाभाविक प्रेम है, आप उसके मनमें निरन्तर निवास कीजिये; वह आपका अपना घर है ॥ १३१ ॥

चौ०—एहि बिधि मुनिबर भवन देखाए । वचन संप्रम राम मन भाए ॥

कह मुनि सुनहु भानुकुलनायक । आश्रम कहउँ समय सुखदायक ॥ १ ॥

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजीने श्रीगामचन्द्रजीको घर दिखाये । उनके प्रेमपूर्ण वचन श्रीरामजीके मनको अच्छे लगे । फिर मुनिने कहा—हे सूर्यकुलके स्वामी ! सुनिये, अब मैं इस समयके लिये सुखदायक आश्रम कहता हूँ (निवासस्थान बतलाता हूँ) ॥ १ ॥

चित्रकूट गिरि करहु निवास । तहँ तुम्हार सब भाँति सुपास ॥

सैलु सुहावन कानन चारु । करि केहरि मृग बिहग बिहारु ॥ २ ॥

आप चित्रकूट पर्वतपर निवास कीजिये, वहाँ आपके लिये सब प्रकारकी सुविधा है । सुहावना पर्वत है और सुन्दर वन है । वह हाथी, सिंह, हिरन और पक्षियोंका विहारस्थल है ॥ २ ॥

नदी पुनीत पुरान बखानी । अत्रिप्रिया निज तरबल आनी ॥

सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि । जो सब पातक पोतक डाकिनि ॥ ३ ॥

वहाँ पवित्र नदी है, जिसकी पुराणोंने प्रशंसा की है, और जिसकी अत्रि ऋषिकी पत्नी अनसूयाजी अपने तपोबलसे लायी थीं; वह गङ्गाजीकी धारा है, उसका मन्दाकिनी नाम है। वह सब पापरूपी बालकोंको खा डालनेके लिये डाकिनी (डाइन) रूप है ॥ ३ ॥

अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं । करहिं जोग जप तप तन कसहीं ॥

चलहु सफल श्रम सब कर करहु । राम देहु गौरव गिरिबरहु ॥ ४ ॥

अत्रि आदि बहुत-से श्रेष्ठ मुनि वहाँ निवास करते हैं, जो योग, जप और तप करते हुए शरीरको कसते हैं। हे रामजी ! चलिye, सबके परिश्रमको सफल कीजिये और पर्वतश्रेष्ठ चित्रकूटको भी गौरव दीजिये ॥ ४ ॥

दो०—चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ ।

आइ नहाए सरित चर सिय समेत दोउ भाइ ॥ १३२ ॥

महामुनि वाल्मीकिजीने चित्रकूटकी अपरिमित महिमा बखानकर कही। तब सीताजीसहित दोनों भाइयोंने आकर श्रेष्ठ नदी मन्दाकिनीमें स्नान किया ॥ १३२ ॥

चौ०—रघुबर कहेउ लखन भल घाट । करहु कतहुँ अब ठाहर ठाट ॥

लखन दीख पय उतर करारा । चहुँ दिसि फिरेष धनुष जिमि नारा ॥ १ ॥

रघुबर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—लक्ष्मण ! बड़ा अच्छा घाट है, अब यही कहीं ठहरनेकी व्यवस्था करो। तब लक्ष्मणजीने पयस्विनी (मन्दाकिनी) के उत्तरके ऊँचे किनारेको देखा [और कहा कि—] इसके चारों ओर धनुषके जैसा एक नाला फिरा हुआ है ॥ १ ॥

नदी पनच सर सम दम दाना । सकल कलुष कलि साउज नाना ॥

चित्रकूट जनु अचल अहेरी । चुकइ न घात मार मुठभेरी ॥ २ ॥

नदी उस धनुषकी प्रत्यक्षा (डोरी) है और शम, दम, दान बाण हैं; कलियुगके समस्त पाप उसके अनेकों हिसक पशु [रूप निशाने] हैं। चित्रकूट ही मानो अचल शिकारी है, जिसका निशाना कभी चूकता नहीं, और जो सामनेसे मारता है ॥ २ ॥

अस कहि लखन ठाउँ देखरावा । थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा ॥

रमेउ राम मनु दंघन्ह जाना । चले सहित सुर थपति प्रधाना ॥ ३ ॥

ऐसा कहकर लक्ष्मणजीने स्थान दिखलाया। स्थानको देखकर रघुबर श्रीरामचन्द्रजीने सुख पाया। जब देवताओंने जाना कि श्रीरामचन्द्रजीका मन यहाँ रम गया, तब वे देवताओंके प्रधान थवई (मकान बनानेवाले) विश्वकर्माको साथ लेकर चले ॥ ३ ॥

कोल किरात वेष सब आए । रचे परन तन सदन सुहाए ॥

बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला । एक ललित लघु एक बिसाला ॥ ४ ॥

सब देवता कोल-भीलोंके वेषमें आये और उन्होंने [दिव्य] पत्तों और घासोंके सुन्दर घर बना दिये। दो ऐसी सुन्दर कुटियाँ बनायीं जिनका वर्णन नहीं हो सकता। उनमें एक बड़ी सुन्दर छोटी-सी थी और दूसरी बड़ी थी ॥ ४ ॥

दो०—लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत ।

सोह मदनु मुनिवेष जनु रति रितुराज समेत ॥ १३३ ॥

लक्ष्मणजी और जानकीजीसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सुन्दर घास-पत्तोंके, घरमें शोभायमान हैं। मानो कामदेव मुनिका वेष धारण करके पत्नी रति और वसन्तश्रुतके साथ सुशोभित हो ॥ १३३ ॥

मासपारायण सत्रहवाँ विश्राम

चौ०—अमर नाग किन्नर दिसिपाला । चित्रकूट आए तेहि काला ॥
राम प्रनामु कीन्ह सब काह । मुदित देव लहि लोचनलाह ॥ १ ॥
उस समय देवता, नाग, किन्नर और दिक्पाल चित्रकूटमें आये और श्रीरामचन्द्रजीने सब किसीको प्रणाम किया । देवता नेत्रोंका लज्जित पाकर आनन्दित हुए ॥ १ ॥

बरषि सुमन कह देवसमाजू । नाथ सनाथ भय हम आजू ॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाए । हरषित निज निज सदन सिधाए ॥ २ ॥
फूलोंकी वर्षा करके देव-समाजने कहा—हे नाथ ! आज [आपका दर्शन पाकर] हम सनाथ हो गये । फिर बिनती करके उन्होंने अपने दुःसह दुःख सुनाये और [दुःखोंके नाशका आश्वासन पाकर] हर्षित होकर अपने-अपने स्थानोंकी चले गये ॥ २ ॥

चित्रकूट रघुनन्दनु छाप । समाचार सुनि सुनि मुनि आप ॥
आवत देखि मुदिन मुनिबृन्दा । कीन्ह दंडवत रघुकुलचन्दा ॥ ३ ॥
श्रीरघुनाथजी चित्रकूटमें आ बसे हैं, यह समाचार सुन-सुनकर बहुत-से मुनि आये । रघुकुलके चन्द्रमा श्रीरामचन्द्रजीने मुदित हुई मुनिमण्डलीको आते देखकर दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ३ ॥

मुनि रघुवर्गहि लाइ उर लेही । सुफल होन हित आसिष देही ॥
सिय सौमित्रि राम छवि देखहिं । साधन सकल सफल करि लेखहिं ॥ ४ ॥
मुनिगण श्रीरामजीको हृदयसे लगा लेते हैं और सफल होनेके लिये आशीर्वाद देते हैं । वे सीताजी, लक्ष्मणजी और श्रीरामचन्द्रजीकी छवि देखते हैं और अपने-अपने साधनोंको सफल हुआ समझते हैं ॥ ४ ॥

दो०—जथाजोग सनमानि प्रभु विदा किए मुनिबृन्द ।

करहिं जोग जप जाग तप निज आश्रमनि सुछन्द ॥ १३४ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने यथायोग्य सम्मान करके मुनिमण्डलीको विदा किया । [श्रीरामचन्द्रजीके आ जानेसे] वे सब अपने-अपने आश्रमोंमें अब स्वतन्त्रताके साथ योग, जप, यज्ञ और तप करने लगे ॥ १३४ ॥

चौ०—यह सुधि कोल किरातन्ह पाई । हरषे जनु नव निधि घर आई ॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना । चलै रंक जनु लूटन सोना ॥ १ ॥
यह (श्रीरामजीके आगमनका) समाचार जब कोल-भीलोंने पाया, तो वे ऐसे हर्षित हुए मानो नवों निधियों उनके घरहीपर आ गयी हो । वे दोनोंमें कन्द, मूल, फल भर-भरकर चले, मानो दरिद्र सोना लूटने चले हों ॥ १ ॥

तिन्ह महुँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता । अपर तिन्हहि पूँछहिं मगु जाता ॥

कहत सुनत रघुवीर निकाई । आइ सबन्हि देखे रघुराई ॥ २ ॥

उनमेंसे जो दोनों भाइयोंको [पहले] देख चुके थे, उनसे दूसरे लोग रास्तेमें जाते हुए पूछते हैं । इस प्रकार रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीकी सुन्दरता कहते-सुनते सवने आकर श्रीरघुनाथजीके दर्शन किये ॥ २ ॥

करहिं जोहार भेंट धरि आगे । प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे ॥

चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े । पुलक सरीर नयन जल बाढ़े ॥ ३ ॥

भेंट आगे रखकर वे लोग जोहार करते हैं और अत्यन्त अनुरागके साथ प्रभुको देखते हैं । वे मुग्ध हुए जहाँ-के-तहाँ मानो चित्र-लिखे-से खड़े हैं । उनके शरीर पुलकित हैं और नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंके जलकी बाढ़ आ रही है ॥ ३ ॥

राम सनेहँ मगन सब जाने । कहि प्रिय वचन सकल सनमाने ॥

प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी । वचन विनीत कहहिं कर जोरी ॥ ४ ॥

भीरामजीने उन सबको प्रेममें मग्न जाना, और प्रिय वचन कहकर सबका सम्मान किया । वे बार-बार प्रभु भीरामचन्द्रजीको जोहार करते हुए हाथ जोड़कर विनीत वचन कहते हैं—॥ ४ ॥

दो०—अब हम नाथ सनाथ सब भए देखि प्रभु पाय ।

भाग हमारें आगमनु राउर कोसलराय ॥ १३५ ॥

हे नाथ ! प्रभु (आप) के चरणोंका दर्शन पाकर अब हम सब सनाथ हो गये । हे कोसलराज ! हमारे ही भाग्यसे आपका यहाँ शुभागमन हुआ है ॥ १३५ ॥

चौ०—धन्य भूमि बन पंथ पहार । जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा ॥

धन्य बिहग मृग काननचारी । सफल जनम भए तुम्हहि निहारी ॥ १ ॥

हे नाथ ! जहाँ-जहाँ आपने अपने चरण रक्खे हैं, वे पृथ्वी, वन, मार्ग और पहाड़ धन्य हैं; वे वनमें विचरनेवाले पक्षी और पशु धन्य हैं, जो आपको देखकर सफलजन्म हो गये ॥ १ ॥

हम सब धन्य सहित परिवारा । दीख दसु भरि नयन तुम्हारा ॥

कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी । इहाँ सकल रितु रहय सुखारी ॥ २ ॥

हम सब भी अपने परिवारसहित धन्य हैं, जिन्होंने नेत्र भरकर आपका दर्शन किया । आपने बड़ी अच्छी जगह विचारकर निवास किया है, यहाँ सभी ऋतुओंमें आप सुखी रहियेगा ॥ २ ॥

हम सब भौंति करब सेवकाई । करि केहरि अहि बाघ बराई ॥

बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा । सब हमार प्रभु पग पग जोहा ॥ ३ ॥

हमलोग सब प्रकारसे हाथी, सिंह, सर्प और बाघोंसे बचाकर आपकी सेवा करेंगे । हे प्रभो ! यहाँके बीहड़ वन, पहाड़, गुफाएँ और खोह सब पग-पग हमारे देखे हुए हैं ॥ ३ ॥

तहँ तहँ तुम्हहि अंहर खेलाउब । सर निरझर जलठाउँ देखाउब ॥

हम सेवक परिवार समंता । नाथ न सकुचब आयसु देता ॥ ४ ॥

हम वहाँ-वहाँ (उन-उन स्थानोंमें) आपको गिकार खिलवेंगे और तालाब, झरने आदि जलशायोंको दिखावेंगे । हम कुटुम्बसमेत आपके सेवक हैं । हे नाथ ! हमलिये हमें आज्ञा देनेमें संकोच न कीजियेगा ॥ ४ ॥

दो०—बेदबचन मुनिमन अगम ते प्रभु करुनाएन ।

बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालकबैन ॥ १३६ ॥

जो वेदोंके वचन और मुनियोंके मनको भी अगम हैं, वे करुणाके धाम प्रभु भीरामचन्द्रजी भीलोंके वचन इस तरह सुन रहे हैं जैसे पिता बालकोंके वचन सुनता है ॥ १३६ ॥

चौ०—रामहि केवल प्रेसु पिआरा । जानि लेउ जो जाननिहारा ॥

राम सकल बनचर तब तोषे । कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीको केवल प्रेम प्यारा है; जो जाननेवाला हो (जानना चाहता हो), वह जान ले । तब श्रीरामचन्द्रजीने प्रेमसे परिपुष्ट हुए (प्रेमपूर्ण) कोमल वचन कहकर उन सब वनमें विचरण करनेवाले लोगोंको संतुष्ट किया ॥ १ ॥

विदा किए सिर नाइ सिधाए । प्रसुगुन कहत सुनत घर आए ॥

एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई । वसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई ॥ २ ॥

फिर उनको विदा किया । वे सिर नबाकर चले और प्रभुके गुण कहते-सुनते घर आये । इस प्रकार देवता और मुनियोंको सुख देनेवाले दोनों भाई सीताजीसमेत वनमें निवास करने लगे ॥ २ ॥

जब तैं आइ रहे रघुनायकु । तब तैं भयउ बनु मंगलदायकु ॥

फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना । मंजु बलित बर बेलि बिताना ॥ ३ ॥

जबसे श्रीरघुनाथजी वनमें आकर रहे तबसे वन मङ्गलदायक हो गया । अनेकों प्रकारके वृक्ष फूलते और फलते हैं और उनपर लिपटी हुई सुन्दर बेलोंके मण्डप तने हैं ॥ ३ ॥

सुरतरु सरिस सुभायँ सुहाए । मनहुँ बिबुधबन परिहरि आए ॥

गुंज मंजुतर मधुकर श्रेणी । त्रिविध बयारि बहइ सुखदेनी ॥ ४ ॥

वे कल्पवृक्षके समान स्वाभाविक ही सुन्दर हैं, मानो वे देवताओंके वन (नन्दनवन) को छोड़कर आये हों । भौरोंकी पंक्तियाँ बहुत ही सुन्दर गुंजार करती हैं और सुगंध देनेवाली शीतल, मन्द, सुगन्धित हवा चलती रहती है ॥ ४ ॥

दो०—नीलकंठ कलकंठ मुक चातक चक चकोर ।

भाँति भाँति बोलहिं बिहग श्रवन सुखद चितचोर ॥ १३७ ॥

नीलकण्ठ, कोयल, तोते, परीहे, चकवे और चकोर आदि पक्षी कानोंको सुख देनेवाली और चित्तको चुरानेवाली तरह-तरहकी बोलियाँ बोलते हैं ॥ १३७ ॥

चौ०—करि केहरि कपि कोल कुरंगा । शिगतवर बिचरहिं सब संगी ॥

फिरत अहर राम छवि देखी । होहिं मुदित मृगशृङ्ग बिसेपी ॥ १ ॥

हाथी, सिंह, बंदर, गूअर और हिरन, ये सब बेग छोड़कर साथ-साथ विचरते हैं । शिकारके लिये फिरते हुए श्रीरामचन्द्रजीकी छाँवको देखकर पशुओंके समूह विभंग भ्रानन्दिन होते हैं ॥ १ ॥

बिबुधबिपिन जहँ लगि जग माहीं । देखि रामबनु सकल सिहाहीं ॥

सुरसरि सरसइ दिनकरकन्या । मंकलसुता गोदावरि धन्या ॥ २ ॥

जगत्में जहाँतक (जितने) देवताओंके वन हैं, सब श्रीरामजीके वनको देखकर मिहाते हैं । गङ्गा, सरस्वती, सूर्यकुमारी यमुना, नर्मदा, गोदावरी आदि धन्य (पुण्यमयी) नदियाँ, ॥ २ ॥

सब सर सिंधु नदी नद नाना । मंदाकिनि कर करहिं बखाना ॥

उदय अस्त गिरि अरु कैलास । मंदर मेरु सकल सुरबास ॥ ३ ॥

सारे तालब, समुद्र, नदी और अनेकों नद सब मन्दाकिनीकी बड़ाई करते हैं। उदयाचल, अस्ताचल, कैलास, मन्दराचल और सुमेरु आदि सब, जो देवताओंके रहनेके स्थान हैं, ॥ ३ ॥

सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहिं तेते ॥

बिंधि मुदित मन सुखु न समाई। भ्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई ॥ ४ ॥

और हिमालय आदि जितने पर्वत हैं, सभी चित्रकूटका यश गाते हैं। विन्ध्याचल बड़ा आनन्दित है, उसके मनमें सुख समाता नहीं; क्योंकि उसने विना परिश्रम ही बहुत बड़ी बड़ाई पा ली है ॥ ४ ॥

दो०—चित्रकूट के बिहग मृग बेलि बिटप तन जाति।

पुन्यपुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिनराति ॥ १३८ ॥

चित्रकूटके पक्षी, पशु, बेल, वृक्ष, तृण-अंकुरादिकी सभी जातियाँ पुण्यकी राशि हैं और धन्य हैं—देवता दिन-रात ऐसा कहते हैं ॥ १३८ ॥

चौ०—नयनवंत रघुबरहि बिलोकी। पाइ जनमफल होहिं बिसोकी ॥

परसि चरन रज अचर सुखारी। भय परमपद के अधिकारी ॥ १ ॥

आँखोंवाले जीव रघुवर श्रीरामचन्द्रजीको देखकर जन्मका फल पाकर शोकरहित हो जाते हैं, और अचर (पर्वत, वृक्ष, भूमि, नदी आदि) भगवान्की चरणरजका स्पर्श पाकर सुखी होते हैं। यों सभी परमपद (मोक्ष) के अधिकारी हो गये ॥ १ ॥

सो बनु सैलु सुभायँ सुहावन। मंगलमय अतिपावन पावन ॥

महिमा कहिअ कवनि बिधि तासु। सुखसागर जहँ कीन्ह निवास ॥ २ ॥

वह वन और पर्वत स्वाभाविक ही सुन्दर, मङ्गलमय और अत्यन्त पवित्रोंको भी पवित्र करनेवाला है। उसकी महिमा किस प्रकार कही जाय, जहाँ सुखके समुद्र श्रीरामजीने निवास किया है ? ॥ २ ॥

पय पयोधि तजि अवध बिहारी। जहँ सिय लखनु रामु रहे आई ॥

कहि न सकहिं सुषमा जसि कानन। जौ सत सहस होहिं सहसानन ॥ ३ ॥

श्रीरसागरको त्यागकर और अयोध्याको छोड़कर जहाँ सीताजी, लक्ष्मणजी और श्रीरामचन्द्रजी आकर रहे, उस वनकी जैसी परम शोभा है, उसको हजार मुखवाले जो लाख शेषजी हों तो वे भी नहीं कह सकते ॥ ३ ॥

सो मैं बरनि कहौं बिधि केहीं। डाबर कमठ कि मंदर लेहीं ॥

सेवहिं लखनु करम मन बानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी ॥ ४ ॥

उसे भला, मैं किस प्रकारसे वर्णन करके कह सकता हूँ। कहीं पोखरेका (क्षुद्र) कछुआ भी मन्दराचल उठा सकता है ! लक्ष्मणजी मन, वचन और कर्मसे श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करते हैं। उनके शील और स्नेहका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ४ ॥

दो०—छिनु छिनु लखि सिय राम पद जानि आपु पर नेहु।

करत न सपनेहुँ लखनु चितु बंधु मातु पितु नेहु ॥ १३९ ॥

क्षण-क्षणपर भीसीतारामजीके चरणोंको देखकर और अपने ऊपर उनका स्नेह जानकर लक्ष्मणजी स्वप्नमें भी भाइयों, माता-पिता और घरकी याद नहीं करते ॥ १३९ ॥

चौ०—राम संग सिय रहति सुखारी । पुर परिजन गृह सुरति बिसारी ॥

छिनु छिनु पिय बिधु बदन निहारी । प्रमुदित मनहुँ चकोरकुमारी ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके साथ सीताजी अयोध्यापुरी, कुटुम्बके लोग और घरकी याद भूलकर बहुत ही सुखी रहती हैं । क्षण-क्षणपर पति श्रीरामचन्द्रजीके चन्द्रमुखको देखकर वे वैसे ही परम प्रसन्न रहती हैं जैसे चकोर-कुमारी (चकोरी) चन्द्रमाको देखकर ! ॥ १ ॥

नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी । हरपित रहति दिवस जिमि कोकी ॥

सिय मनु रामचरन अनुरागा । अवध सहस सम बन प्रिय लागा ॥ २ ॥

स्वामीका प्रेम अपने प्रति नित्य बढ़ता हुआ देखकर सीताजी ऐसी हर्षित रहती हैं जैसे दिनमें चकवी ! सीताजीका मन श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें अनुरक्त है, इससे उनको वन हजारों अवधके समान प्रिय लगता है ॥ २ ॥

परनकुटी प्रिय प्रियतम संगी । प्रिय परिवार कुंरंग बिहंगा ॥

सासु ससुर सम मुनितिय मुनिबर । असनु अमिअ सम कंद मूल फर ॥ ३ ॥

प्रियतम (श्रीरामचन्द्रजी) के साथ पर्णकुटी प्यारी लगती है । मृग और पक्षी प्यारे कुटुम्बियोंके समान लगते हैं । मुनियोंकी स्त्रियाँ सासके समान, श्रेष्ठ मुनि ससुरके समान और कन्द-मूल-फलोंका आहार उनको अमृतके समान लगता है ॥ ३ ॥

नाथ साथ साथी सुहाई । मयन सयन सय सम सुखदाई ॥

लोकप होहिं बिलोकत जासू । तेहि कि मोहि सक बिषयबिलासू ॥ ४ ॥

स्वामीके साथ सुन्दर साथी (कुश और पत्नीकी सेज) मैकड़ों कामदेवकी मेजोंके समान सुख देनेवाली है । जिनके [कृपापूर्वक] देखनेमात्रसे जीव लोकात्तल हो जाते हैं, उनको कहीं भोग-विलास मोहित कर सकते हैं ! ॥ ४ ॥

दो०—सुमिरत रामहि तजहिं जन तन सम बिषयबिलासु ।

रामप्रिया जगजननि सिय कछु न आचरजु तासु ॥ १४० ॥

जिन श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करनेसे ही भक्तजन तमाम भोग-विलासको तिनकेके समान त्याग देते हैं, उन श्रीरामचन्द्रजीकी प्रिय पत्नी और जगत्की माता सीताजीके लिये यह भोग विलासका त्याग कुछ भी आश्चर्य नहीं है ॥ १४० ॥

चौ०—सीय लखन जेहि बिधि सुख लहहीं । सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं ॥

कहहिं पुरातन कथा कहानी । सुनहिं लखनु सिय अनि सुख मानी ॥ १ ॥

सीताजी और लक्ष्मणजीको जिन प्रकार सुख मिले, श्रीरघुनाथजी वही करने और वही कहने हैं । भगवान् प्राचीन कथाएँ और कहानियाँ कहते हैं और लक्ष्मणजी तथा सीताजी अत्यन्त सुख मानकर सुनते हैं ॥ १ ॥

जय जय राम अवध सुधि करहीं । तब तब वारि बिलोचन भरहीं ॥

सुमिरि मातु पितु परिजन भाई । भरत सनेहु सीलु सेवकाई ॥ २ ॥

जब-जब श्रीरामचन्द्रजी अयोध्याकी याद करते हैं, तब-तब उनके नेत्रोंमें जल भर आता है । माता-पिता, कुटुम्बियों और भाइयों तथा भरतके प्रेम, शील और सेवाभावको याद करके—॥ २ ॥

कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी । धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी ॥

लखि सिय लखनु विकल होइ जाहीं । जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं ॥ ३ ॥

कृपाके समुद्र प्रभु श्रीरामचन्द्रजी दुखी हो जाते हैं, किन्तु फिर कुसमय समझकर धीरज धारण कर लेते हैं। श्रीरामचन्द्रजीको दुखी देखकर सीताजी और लक्ष्मणजी भी व्याकुल हो जाते हैं, जैसे किसी मनुष्यकी परछाही उस मनुष्यके समान ही चेष्टा करती है ॥ ३ ॥

प्रिया बंधु गति लखि रघुनंदनु । धीर कृपाल भगत उर चंदनु ॥

लगे कहन कछु कथा पुनीता । सुनि सुखु लहहिं लखनु अरु सीता ॥ ४ ॥

तब धीर, कृपाल और भक्तोंके हृदयोंको शीतल करनेके लिये चन्दनरूप, रघुकुलको आनन्दित करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी प्यारी पत्नी और भाई लक्ष्मणकी दशा देखकर कुछ पवित्र कथाएँ कहने लगते हैं, जिन्हें सुनकर लक्ष्मणजी और सीताजी मुख प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—रामु लखन सीता सहित सोहत परन निकेत ।

जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत ॥१४१॥

लक्ष्मणजी और सीताजीसहित श्रीरामचन्द्रजी पर्णकुटीमें ऐसे सुशोभित हैं जैसे अमरावतीमें इन्द्र अपनी पत्नी शची और पुत्र जयन्तसहित बसता है ॥ १४१ ॥

चो०—जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसैं । पलक बिलोचन गोलक जैसैं ॥

सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि । जिमि अबिवेकी पुरुष सरीरहि ॥ १ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मणजीकी कैसी सँभाल रखते हैं, जैसे पलकें नेत्रोंके गोलकोंकी । इधर लक्ष्मणजी श्रीसीताजीकी और रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीकी [अथवा लक्ष्मणजी और सीताजी श्रीरामचन्द्रजीकी] ऐसी सेवा करते हैं जैसे अज्ञानी मनुष्य शरीरकी करते हैं ॥ १ ॥

एहि विधि प्रभु बन बसहिं सुखारी । खग मृग सुर तापस हितकारी ॥

कहेउँ राम बन गवनु सुहावा । सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा ॥ २ ॥

पक्षी, पशु, देवता और तपस्वियोंके हितकारी प्रभु इस प्रकार सुखपूर्वक वनमें निवास कर रहे हैं । तुलसीदासजी कहते हैं—मैंने श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर वनगमन कहा । अब जिस तरह सुमन्त्र अयोध्यामें आये वह [कथा] सुनो ॥ २ ॥

फिरेउ निषादु प्रभुहि पहुँचाई । सचिव सहित रथ देखेसि आई ॥

मंत्री बिकल बिलोकि निषादु । कहि न जाइ जस भयउ विषादु ॥ ३ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको पहुँचाकर जब निषादराज लौटा, तब आकर उसने रथको मन्त्री (सुमन्त्र) सहित देखा । मन्त्री (सुमन्त्र) को व्याकुल देखकर निषादको जैसा दुःख हुआ, वह कहा नहीं जाना ॥ ३ ॥

राम राम सिय लखन पुकारी । परेउ धरनितल व्याकुल भारी ॥

देखि दखिन दिसि हय द्विहिनाहीं । जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं ॥ ४ ॥

[निषादको अकेले आया देखकर] सुमन्त्र हा राम ! हा राम ! हा सीते ! हा लक्ष्मण ! पुकारते हुए, बहुत व्याकुल होकर धरतीपर गिर पड़े । रथके छोड़े दक्षिण दिशाकी ओर [जिधर श्रीरामचन्द्रजी गये थे] देख-देखकर दिनहिनाते हैं । मानो बिना पंखके पक्षी व्याकुल हो रहे हों ॥ ४ ॥

दो०—नहिं तन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि ।

व्याकुल भए निषाद सब रघुबर बाजि निहारि ॥१४२॥

वे न तो घास चरते हैं, न पानी पीते हैं। केवल आँखोंसे जल बहा रहे हैं। श्रीरामचन्द्रजीके घोड़ोंको इस दशामें देखकर सब निषाद व्याकुल हो गये ॥ १४२ ॥

चौ०—धरि धीरजु तब कहइ निषादू। अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू ॥

तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता ॥ १ ॥

तब धीरज धरकर निषादराज कहने लगा—हे सुमन्त्रजी ! अब विषादको छोड़िये। आप पण्डित और परमार्थके जाननेवाले हैं। विधाताको प्रतिकूल जानकर धैर्य धारण कीजिये ॥ १ ॥

बिबिधि कथा कहि कहि मृदुबानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी ॥

सोक सिथिल रथ सकइ न हाँकी। रघुवर बिरह पीर उर बाँकी ॥ २ ॥

कोमल वाणीसे भाँति-भाँतिकी कथाएँ कहकर निषादने जबर्दस्ती लाकर सुमन्त्रको रथपर बैठाया। परन्तु शोकके मारे वे इतने शिथिल हो गये कि रथको हाँक नहीं सकते। उनके हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीके विरहकी बड़ी तीव्र वेदना है ॥ २ ॥

चरफराहिं मग चलाहिं न धोरें। बनमृग मनहुँ आनि रथ जोरे ॥

अबुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। रामबियोगि बिकल दुख तीछें ॥ ३ ॥

घोड़े तड़फड़ाते हैं और ठीक रास्तेपर नहीं चलते। मानो जंगली पशु लाकर रथमें जोत दिये गये हो। वे श्रीरामचन्द्रजीके वियोगी घोड़े कभी ठोकर खाकर गिर पड़ते हैं, कभी घूमकर पीछेकी ओर देखने लगते हैं। वे तीक्ष्ण दुःखसे व्याकुल हैं ॥ ३ ॥

जो कह रामु लखनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही ॥

बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती ॥ ४ ॥

जो कोई राम, लक्ष्मण या जानकीका नाम ले लेता है, घोड़े हिकर-हिकरकर उसकी ओर प्यारसे देखने लगते हैं। घोड़ोंकी विरहदशा कैसे कही जा सकती है? वे ऐसे व्याकुल हैं जैसे मणिके बिना साँप व्याकुल होता है ॥ ४ ॥

दो०—भयउ निषादु विषादबस देखत सचिव तुरंग।

बोलि सुसेवक चारि तब दिए सारथी संग ॥ १४३ ॥

मन्त्री और घोड़ोंकी यह दशा देखकर निषादराज विषादके वश हो गया। तब उसने अपने चार उत्तम सेवक बुलाकर सारथीके साथ कर दिये ॥ १४३ ॥

चौ०—गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई। बिरहु बिषादु बरनि नहिं जाई ॥

चले अवध लेइ रथहि निषादा। होहिं छनहिं छन मगन बिषादा ॥ १ ॥

निषादराज गुह सारथी (सुमन्त्रजी) को पहुँचाकर (विदा करके) लौटा। उसके विरह और दुःखका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे चारों निषाद रथ लेकर अवधको चले। [सुमन्त्र और घोड़ोंको देख-देखकर] वे भी क्षण-क्षणपर विषादमें डूबे जाते थे ॥ १ ॥

सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना ॥

रहिहि न अंतहुँ अधम सरीरु। जसु न लहेउ बिलुरत रघुबीरु ॥ २ ॥

व्याकुल और दुःखसे दीन हुए सुमन्त्रजी सोचते हैं कि श्रीरघुवीरके विना जीना धिक्कार है। आखिर यह अधम शरीर रहेगा तो है ही नहीं; अभी श्रीरामचन्द्रजीके बिछुड़ते ही छूटकर इसने यश [क्यों] नहीं ले लिया ॥ २ ॥

भय अजस अघ भाजन प्राणा । कवन हेतु नहिं करत पयाना ॥

अहह मंद मनु अवसर चूका । अजहुँ न हृदय होत दुर दूका ॥ ३ ॥

ये प्राण अपयश और पापके भँड़े हो गये। अब ये किस कारण कूच नहीं करते (निकलते नहीं)? हाय! नीच मन [बड़ा अन्ध] मौका चूक गया। अब भी तो हृदयके दो टुकड़े नहीं हो जाते! ॥ ३ ॥

मीजि हाथ सिर धुनि पछितार्ह । मनहुँ रुपन घनरासि गवाँई ॥

बिरिद बाँधि बर बीर कहाई । चलेउ समर जनु सुभट पराई ॥ ४ ॥

सुमन्त्र हाथ मल-मलकर और सिर पीट-पीटकर पछताते हैं। मानो कोई कंजूस धनका खजाना खो बैठा हो। ये इस प्रकार चले मानो कोई बड़ा योद्धा वीरका बाना पहनकर और उत्तम शूरवीर कहलाकर युद्धसे भाग चला हो! ॥ ४ ॥

दो०—विप्र विवेकी वेदविद संमत साधु सुजाति ।

जिमि धोखें मदपान कर सचिव सोच तेहि माँति ॥ १४४ ॥

जैसे कोई विवेकशील, वेदका शता, साधुसम्मत आचरणवाला और उत्तम जातिका (कुलीन) ब्राह्मण धोखेसे मदिरा पी ले और पीछे पछतावे, उसी प्रकार मन्त्री सुमन्त्र सोच कर रहे (पछता रहे) हैं ॥ १४४ ॥

चो०—जिमि कुलीन तिय साधु सयानी । पतिदेवता करम मन बानी ॥

रहै करम बस परिहरि नाह । सचिव हृदयँ तिमि दारुन दाह ॥ १ ॥

जैसे किसी उत्तम कुलवाली, साधुस्वभावकी, समझदार और मन, वचन, कर्मसे पतिको ही देवता माननेवाली पतिव्रता स्त्रीको भाग्यवश पतिको छोड़कर (पतिसे अलग) रहना पड़े, उस समय उसके हृदयमें जैसे भयानक सन्ताप होता है, वैसे ही मन्त्रीके हृदयमें हो रहा है ॥ १ ॥

लोचन सजल डीठि भइ थोरी । सुनइ न श्रवण बिकल मति भोरी ॥

सूखहिं अघर लागि मुहँ लाटी । जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी ॥ २ ॥

नेत्रोंमें जल भरा है, दृष्टि मन्द हो गयी है। कानोंसे सुनायी नहीं पड़ता, व्याकुल हुई बुद्धि बेठिकाने हो रही है। ओठ सूख रहे हैं, मुँहमें लाटी लगा गयी है। किन्तु [ये सब मृत्युके लक्षण हो जानेपर भी] प्राण नहीं निकलते; क्योंकि हृदयमें अवधिरूपी किवाड़ लगे हैं (अर्थात् चौदह वर्ष बीत जानेपर भगवान् फिर मिलेंगे, यही आशा रुकावट डाल रही है) ॥ २ ॥

बिबरन भयउ न जाइ निहारी । मारेसि मनहुँ पिता महतारी ॥

हानि गलानि बिपुल मन व्यापी । जमपुर पंथ सोच जिमि पापी ॥ ३ ॥

सुमन्त्रजीके मुखका रंग बदल गया है, जो देखा नहीं जाता। ऐसा मालूम होता है मानो इन्होंने माता-पिताको मार डाला हो। उनके मनमें रामविशेषरूपी हानिकी महान् ग्लानि (पीड़ा) छा रही है, जैसे कोई पापी मनुष्य नरकको जाता हुआ रास्तेमें सोच कर रहा हो ॥ ३ ॥

बचनु न आव हृदयँ पछिताई । अवध काह में देखब जाई ॥

राम रहित रथ देखिहि जोई । सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई ॥ ४ ॥

मुँहसे वचन नहीं निकलते । हृदयमें पछताते हैं कि मैं अयोध्यामें जाकर क्या देखूँगा ? श्रीरामचन्द्रजीसे रहित जो भी रथको देखेगा, वही मुझे देखनेमें संकोच करेगा (अर्थात् मेरा मुँह नहीं देखना चाहेगा) ॥ ४ ॥

दो०—धाइ पूँछिहहिं मोहि जब बिकल नगर नर नारि ।

उतरु देव में सबहि तब हृदयँ बन्नु बैठारि ॥ १४५ ॥

नगरके सब व्याकुल स्त्री-पुरुष जब दौड़कर मुझसे पूछेंगे, तब मैं हृदयपर वज्र रखकर सबको उत्तर दूँगा ॥ १४५ ॥

चौ०—पुछिहहिं दीन दुखित सब माता । कहब काह में तिन्हहि बिधाता ।

पूछिहि जबहिं लखन महतारी । कहिहउँ कवन सँदस सुखारी ॥ १ ॥

जब दीन-दुखी सब माताएँ पूछेंगी, तब हे बिधाता ! मैं उन्हें क्या कहूँगा ? जब लक्ष्मणजीकी माता मुझसे पूछेंगी, तब मैं उन्हें कौन-सा सुखदायी सँदेश कहूँगा ? ॥ १ ॥

रामजननि जब आइहि धाई । सुमिरि बच्छु जिमि धनु लवाई ॥

पूँछत उतरु देव में तेही । ने बन राम लखनु वैदेही ॥ २ ॥

श्रीरामजीकी माता जब इस प्रकार दौड़ी आवेगी जैसे नयी ब्यायी हुई गौ बछड़ेको याद करके दौड़ी आती है, तब उनके पूछनेपर मैं उन्हें यह उत्तर दूँगा कि श्रीराम, लक्ष्मण, सीता वनको चले गये ! ॥ २ ॥

जोइ पूँछिहि तेहि उतरु देवा । जाइ अवध अब यह सुखु लेवा ॥

पूँछिहि जबहिं राउ दुख दीना । जिवनु जासु रघुनाथ अधीना ॥ ३ ॥

जो भी पूछेगा उसे यही उत्तर देना पड़ेगा ! हाय ! अयोध्या जाकर अब मुझे यही सुख लेना है ! जब दुःखमें दीन महाराज, जिनका जीवन श्रीरघुनाथजीके [दर्शनके] ही अधीन है, मुझसे पूछेंगे, ॥ ३ ॥

देहउँ उतरु कौनु मुहु लाई । आयउँ कुसल कुअँर पहुँचाई ॥

मुनत लखन सिय राम सँदसू । तन जिमि तनु परिहरिहि नरंसू ॥ ४ ॥

तब मैं कौन-सा मुँह लेकर उन्हें उत्तर दूँगा कि मैं राजकुमारोंको कुशलपूर्वक पहुँचा आया हूँ ! लक्ष्मण, सीता और श्रीरामका समाचार सुनते ही महाराज तिनकेकी तरह शरीरको त्याग देंगे ॥ ४ ॥

दो०—हृदउ न विदरेउ पंक जिमि बिलुगत प्रीतमु नीरु ।

जानत हों मोहि दीन्ह बिधि यह जातना सरीरु ॥ १४६ ॥

प्रियतम (श्रीरामजी) रूपी जलके बिछुड़ने ही मेरा हृदय कीचड़की तरह फट नहीं गया, इससे मैं जानता हूँ कि विधाताने मुझे यह 'यातनाशरीर' ही दिया है [जो पापी जीवोंको नरक भोगनेके लिये मिलता है] ॥ १४६ ॥

चौ०—एहि बिधि करन पंथ पछितावा । तमसानारि तुरत रघु आवा ॥

विदा किए करि विनय निपादा । फिर पायँ परि बिकल बिषादा ॥ १ ॥

मुमन्त्र इस प्रकार मार्गमें पछतावा कर रहे थे, इतनेमें ही रथ तुरंत तमसा नदीके तटपर आ पहुँचा । मन्त्रीने विनय करके चारों निपादोंको विदा किया । वे विषादमें व्याकुल होते हुए मुमन्त्रके पैरों पड़कर लौटे ॥ १ ॥

पैठत नगर सचिव सकुचाई । जनु मारेसि गुर बाँभन गाई ॥

बैठि ब्रिटप तर दिवसु गवाँवा । साँझ समय तब अवसरु पावा ॥ २ ॥

नगरमें प्रवेश करने मन्त्री ऐसे सकुचाते हैं, मानो गुरु, ब्राह्मण या गौको मारकर आये हो । सारा दिन एक पेड़के नीचे बैठकर बिताया । जब सन्ध्या हुई तब मौका मिला ॥ २ ॥

अवध प्रवेशु कीन्ह अँधिआरें । पैठ भवन रथु राखि दुआरें ॥

जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए । भूपद्वार रथु देखन आए ॥ ३ ॥

अँधेरा होनेपर उन्होंने अयोध्यामें प्रवेश किया और रथको दरवाजेपर खड़ा करके वे [चुपके-से] महलमें घुसे । जिन-जिन लोगोंने यह समाचार सुन पाया, वे सभी रथ देखनेको राजद्वारपर आये ॥ ३ ॥

रथु पहिचानि बिकल लखि घोरें । गरहिं गात जिमि आतप ओरें ॥

नगर नारि नर व्याकुल कैसैं । निघटत नीर मीनगन जैसैं ॥ ४ ॥

रथको पहचानकर और घोड़ोंको व्याकुल देखकर उनके शरीर ऐसे गले जा रहे हैं (मरे-से जा रहे हैं) जैसैं धाममें आले ! नगरके स्त्री-पुरुष कैसे व्याकुल हैं, जैसे जलके घटनेपर मछलियाँ [व्याकुल होती हैं] ॥ ४ ॥

दो०—सचिव आगमनु मुनत सब बिकल भयउ रनिवासु ।

भवनु भयंकरु लाग तेहि मानहुं प्रेत निवासु ॥ १४७ ॥

मन्त्रीका अँकेले ही आना सुनकर सारा रनिवास व्याकुल हो गया । राजमहल उनको ऐसा भयानक लगा मानो प्रेतोंका निवासस्थान (दमशान) हो ॥ १४७ ॥

चो०—अति आरति सब पूँछहिं रानी । उनरु न आव बिकल भइ बानी ॥

सुनइ न श्रवन नयन नहिं सूझा । कहहु कहाँ नृपु तेहि तेहि बूझा ॥ १ ॥

अत्यन्त आर्त होकर सब रानियाँ पूछती हैं; पर सुमन्त्रको कुछ उत्तर नहीं आता; उनकी वाणी बिकल हो गयी (रुक गयी) है । न कानोंसे सुनायी पड़ता है और न आँखोंसे कुछ गूझता है । वे जो भी सामने आता है उस-उससे पूछते हैं—कहाँ, राजा कहाँ है ? ॥ १ ॥

दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई । कौसल्या गृहँ गई लेवाई ॥

जाइ सुमंत्र दीख कस राजा । अमिअ रहित जनु चंडु बिराजा ॥ २ ॥

दासियाँ मन्त्रीको व्याकुल देखकर उन्हें कौसल्याजीके महलमें लिवा गयीं । सुमन्त्रने जाकर वहाँ राजाको कैसा [बैठे] देखा मानो बिना अमृतका चन्द्रमा हो ॥ २ ॥

आसन सयन बिभूपन हीना । परेउ भूमितल निपट मलीना ॥

लेइ उसासु सोच पहि भाँती । सुरपुर तैं जनु खँसेउ जजाती ॥ ३ ॥

राजा आसन, शय्या और आभूषणोंसे रहित बिल्कुल मलिन (उदास) पृथ्वीपर पड़े हुए है । वे लंबी साँसें लेकर इस प्रकार सोच करते हैं मानो राजा ययाति स्वर्गसे गिरकर सोच कर रहे हों ॥ ३ ॥

लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती । जनु जरि पंख परेउ संपाती ॥

राम राम कह राम सनेही । पुनि कह राम लखन वैदेही ॥ ४ ॥

राजा क्षण-क्षणमें सोचते छाती भर लेते है । ऐसी बिकल दशा है मानो [गीधराज जटायुका भाई] सम्पाती पंखोंके जल जानेपर गिर पड़ा हो । राजा [बार-बार] 'राम, राम' 'हा सनेही (प्यारे) राम !' कहते हैं, फिर 'हा राम, हा लक्ष्मण, हा जानकी' ऐसा कहने लगते हैं ॥ ४ ॥

दो०—देखि सचिवँ जय जीव कहि कीन्हैउ दंड प्रनाम् ।

सुनत उठैउ व्याकुल नृपति कहु सुमंत्र कहँ राम ॥१४८॥

मन्त्रीने देखकर 'जयजीव' कहकर दण्डवत् प्रणाम किया । सुनते ही राजा व्याकुल होकर उठे और बोले—
सुमन्त्र ! कहो, राम कहाँ हैं ? ॥ १४८ ॥

चौ०—भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई । बूझत कहु अघार जनु पारि ॥

सहित सनेह निकट बैठारी । पूँछत राउ नयन भरि बारी ॥ १ ॥

राजने सुमन्त्रको हृदयसे लगा लिया । मानो डूबते हुए आदमीको कुछ सहारा मिल गया हो ।
मन्त्रीको स्नेहके साथ पास बैठाकर, नेत्रोंमें जल भरकर राजा पूछने लगे—॥ १ ॥

राम कुसल कहु सखा सनेही । कहँ रघुनाथु लखनु बैदेही ॥

आने फेरि कि बनहि सिधाए । सुनत सचिव लोचन जल छाए ॥ २ ॥

हे मेरे प्रेमी सखा ! श्रीरामकी कुशल कहो । बताओ, श्रीराम, लक्ष्मण और जानकी कहाँ हैं ? उन्हें
लौटा लाये हो कि वे वनको चले गये ? यह सुनते ही मन्त्रीके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ २ ॥

सोक बिकल पुनि पूँछ नरेम् । कहु सिय राम लखन संदेस ॥

राम रूप गुन सील सुभाऊ । सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ ॥ ३ ॥

शोकसे व्याकुल होकर राजा फिर पूछने लगे—सीता, राम और लक्ष्मणका संदेश तो कहो ।
श्रीरामचन्द्रजीके गुण, शील और स्वभावको याद कर-करके राजा हृदयमें सोच करते हैं ॥ ३ ॥

राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू । सुनि मन भयउ न हरपु हराँसू ॥

सो सुत बिछुरत गए न प्राना । को पापी बड़ मोहि समाना ॥ ४ ॥

[और कहते हैं—] मैंने राजा होनेकी बात सुनाकर वनवास दे दिया, यह सुनकर भी जिस (राम) के
मनमें हर्ष और विषाद नहीं हुआ, ऐसे पुत्रके बिछुड़नेपर भी मेरे प्राण नहीं गये, तब मेरे समान बड़ा पापी
कौन होगा ? ॥ ४ ॥

दो०—सखा राम सिय लखनु जहँ तहाँ मोहि पहुँचाउ ।

नाहिं त चाहत चलन अब प्रान कहउँ सतिमाउ ॥१४९॥

हे सखा ! श्रीराम, जानकी और लक्ष्मण जहाँ है, मुझे भी वहीं पहुँचा दो । नहीं तो मैं सत्य भावसे कहता
हूँ कि अब प्राण चलना ही चाहते हैं ॥१४९॥

चौ०—पुनि पुनि पूँछत मंत्रिहि राऊ । प्रियतम सुअन संदेस सुनाऊ ॥

करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ । राम लखनु सिय नयन देख्नाऊ ॥ १ ॥

राजा बार-बार मन्त्रीसे पूछते हैं—मेरे प्रियतम पुत्रोंका संदेश सुनाओ । हे सखा ! तुम तुरंत वही
उपाय करो जिससे श्रीराम, लक्ष्मण और सीताको मुझे आँखों दिवा दो ॥ १ ॥

सचिव धीर धरि कह मृदुबानी । महाराज तुम्ह पंडित ग्यानी ॥

बीर सुधीर धुरंधर देवा । साधुसमाजु सदा तुम्ह सेवा ॥ २ ॥

मन्त्री धीरज धरकर कोमल वाणी बोले—महाराज ! आप पण्डित और शानी हैं । हे देव ! आप
शूरवीर तथा उत्तम धैर्यवान् पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं, आपने सदा साधुओंके समाजका सेवन किया है ॥ २ ॥

जनम मरन सब दुख सुख भोगा । हानि लाभ प्रिय मिलन बियोगा ॥

काल करम बस होहिं गोसाईं । बरबस राति दिवस की नाई ॥ ३ ॥

जन्म-मरण, सुख-दुःखके भोग, हानि-लाभ, प्यारोंका मिलना-बिछुड़ना, ये सब हे स्वामी ! काल और कर्मके अधीन रात और दिनकी तरह बरबस होते रहते हैं ॥ ३ ॥

सुख हरषहिं जइ दुख बिलखाहीं । दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ॥

धीरज धरहु विवेकु विचारी । छाड़िअ सोच सकल हितकारी ॥ ४ ॥

मूर्खलोग सुखमें हर्षित होते और दुःखमें रोते हैं, पर धीर पुरुष अपने मनमें दोनोंको समान समझते हैं । हे सबके हितकारी (रक्षक) ! आप विवेक विचारकर धीरज धरिये और शोकका परित्याग कीजिये ॥ ४ ॥

दो०—प्रथम बासु तमसा भयउ दूसर सुरसरि तीर ।

न्हाइ रहे जलपानु करि सिय समेत दोउ बीर ॥ १५० ॥

श्रीरामजीका पहला निवास (मुकाम) तमसाके तटपर हुआ, दूसरा गङ्गातीरपर । सीताजीसहित दोनों भाई उस दिन स्नान करके जल पीकर ही रहे ॥ १५० ॥

चो०—केवट कीन्हि बहुत सेवकाई । सो जामिनि सिंगरौर गवाँई ॥

होत प्रात बटछीरु मगावा । जटा मुकुट निज सीस बनावा ॥ १ ॥

केवट (निषादराज) ने बहुत सेवा की । वह रात सिंगरौर (शृंगवेरपुर) में ही बितायी । दूसरे दिन मंघरा होते ही बड़का दूध मँगावाया और उससे श्रीराम-लक्ष्मणने अपने सिरोंपर जटाओंके मुकुट बनाये ॥ १ ॥

रामसखाँ तब नाव मगाई । प्रिया चढ़ाई चढ़े रघुराई ॥

लखन बान धनु धरे बनाई । आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई ॥ २ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीके सखा निषादराजने नाव मँगावायी । पहले प्रिया सीताजीको उसपर चढ़ाकर फिर श्रीरघुनाथजी चढ़े । फिर लक्ष्मणजीने धनुष-बाण सजाकर रक्खे और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर स्वयं चढ़े ॥ २ ॥

बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा । बोले मधुर वचन धरि घीरा ॥

तात प्रनामु तात सन कहेहु । बार बार पद पंकज गहेहु ॥ ३ ॥

मुझे व्याकुल देखकर रघुवीर श्रीरामचन्द्रजी धीरज धरकर मधुर वचन बोले—हे तात ! पिताजीसे मेरा प्रणाम कहना और मेरी ओरसे बार-बार उनके चरणकमल पकड़ना ॥ ३ ॥

करवि पायँ परि विनय बहोरी । तात करिअ जनि चिंता मोरी ॥

बन मग मंगल कुसल हमारें । कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारें ॥ ४ ॥

फिर पाँव पड़कर विनती करना कि हे पिताजी ! आप मेरी चिन्ता न कीजिये; आपकी कृपा, अनुग्रह और पुण्यसे वनमें और मार्गमें हमारा कुशल-मंगल होगा ॥ ४ ॥

छं०—तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पावहौ ।

प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आवहौ ॥

जननीं सकल परितोषि परि परि पायँ करि बिनती घनी ।

तुलसी करेहु सोइ जतनु जेहिं कुसली रहहिं कोसलघनी ॥

हे पिताजी ! आपके अनुग्रहसे मैं बन जाते हुए सब प्रकारका सुख पाऊँगा । आशाका भलीभाँति पालन करके चरणोंका दर्शन करने कुशलपूर्वक फिर लौट आऊँगा । सब माताओंके पैरों पड़-पड़कर उनका समाधान करके और उनसे बहुत विनती करके—तुलसीदास कहते हैं—तुम वही प्रयत्न करना जिसमे कोसलपति पिताजी कुशल रहें ।

सो०—गुर सन कहब सँदेसु बार बार पद पदुम गहि ।

करब सोइ उपदेसु जेहिं न सोच मोहि अवधपति ॥१५१॥

बार-बार चरणकमलोको पकड़कर गुरु वशिष्ठजीसे मेरा सँदेसा कहना कि वे वही उपदेश दें जिससे अवधपति पिताजी मेरा सोच न करें ॥१५१॥

चौ०—पुरजन परिजन सकल निहोरी । तात सुनायहु बिनती मोरी ॥

सोइ सब भाँति मोर हितकारी । जातैं रह नरनाहु सुखारी ॥ १ ॥

हे तात ! सब पुरवासियों और कुटुम्बियोंसे निहोरा (अनुरोध) करके मेरी विनती सुनाना कि वही मनुष्य मेरा सब प्रकारसे हितकारी है जिसकी चेष्टासे महाराज सुखी रहें ॥ १ ॥

कहब सँदेसु भरत के आएँ । नीति न तजिअ राजपदु पाएँ ॥

पालेहु प्रजहि करम मन बानी । सेपहु मातु सकल सम जानी ॥ २ ॥

भरतके आनेपर उनको मेरा सँदेसा कहना कि राजाका पद पा जानेपर नीति न छोड़ देना; कर्म, वचन और मनसे प्रजाका पालन करना और सब माताओंको समान जानकर उनकी सेवा करना ॥ २ ॥

ओर निवाहेहु भायप भाई । करि पितु मातु सुजन सेवकाई ॥

तात भाँति तेहि राखब राज । सोच मोर जेहिं करै न काऊ ॥ ३ ॥

और हे भाई ! पिता, माता और स्वजनोंकी सेवा करके भाईपनेको अन्ततक निबाहना । हे तात ! राजाको (पिताजीको) उसी प्रकारसे रखना जिससे वे कभी (किसी तरह भी) मेरा सोच न करें ॥ ३ ॥

लखन कहे कछु बचन कठोरा । बरजि राम पुनि मोहि निहोरा ॥

बार बार निज सपथ देवाई । कहवि न तात लखन लरिकाई ॥ ४ ॥

लक्ष्मणजीने कुछ कठोर वचन कहे, किन्तु श्रीरामजीने उन्हें बरजकर फिर मुझसे अनुरोध किया, और बार-बार अपनी सौगंध दिलायी [और कहा—] हे तात ! लक्ष्मणका लड़कपन वहाँ न कहना ॥४॥

दो०—कहि प्रनामु कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह ।

थकित बचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह ॥१५२॥

प्रणामकर सीताजी भी कुछ कहने लगी थीं, परन्तु स्नेहवश वे शिथिल हो गयीं । उनकी वाणी रुक गयी, नेत्रोंमें जल भर आया और शरीर रोमाञ्चसे व्याप्त हो गया ॥१५२॥

चौ०—तेहि अवसर रघुवर रुख पाई । केवट पारहि नाव चलाई ॥

रघुकुलतिलक चले पहि भाँती । देखउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती ॥ १ ॥

उसी समय रघुवर श्रीरामचन्द्रजीका रुख पाकर केवटने पार जानेके लिये नाव चला दी । इस प्रकार रघुवंशतिलक श्रीरामचन्द्रजी चल दिये और मैं छातीपर वस्त्र रखकर खड़ा-खड़ा देखता रहा ॥ १ ॥

मैं आपन किमि कहाँ कलेसु । जित फिरेउँ लेइ रामसँदेसु ॥

अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ । हानि गलानि सोचबस भयऊ ॥ २ ॥

मैं अपने क्लेशको कैसे कहूँ, जो श्रीरामजीका यह सँदेश लेकर जीता ही लौट आया ! ऐसा कहकर मन्त्रीकी बाणी रुक गयी (वे चुप हो गये) और वे हानिकी ग्लानि और सोचके वश हो गये ॥ २ ॥

सूत बचन सुनतहिं नरनाह । परेउ धरनि उर दारुन दाह ॥

तलफत बिषम मोह मन मापा । माजा मनहुँ मीन कहूँ व्यापा ॥ ३ ॥

सारथी (सुमन्त्र) के वचन सुनते ही राजा पृथ्वीपर गिर पड़े, उनके हृदयमें भयानक दाह हो गया । वे तड़पने लगे, उनका मन भीषण मोहसे व्याकुल हो गया । मानो मछलीको माँजा व्याप गया हो (पहली वर्षाका जल लगा गया हो) ॥ ३ ॥

करि बिलाप सब रोवहिं रानी । महा बिपत्ति किमि जाइ बखानी ॥

सुनि बिलाप दुखहु दुखु लागा । धीरजहु कर धीरजु भागा ॥ ४ ॥

सब रानियाँ विलाप करके रो रही हैं । उस महान् विपत्तिका कैसे वर्णन किया जाय ! उस समयके विलापको सुनकर दुःखको भी दुःख लगा और धीरजका भी धीरज भाग गया ! ॥ ४ ॥

दो०—भयउ कोलाहलु अवध अति सुनि नृप राउर सोरु ।

बिपुल बिहगवन परेउ निसि मानहुँ कालस कठोरु ॥ १५३ ॥

राजाके रावलेमें (रनिवासमें) रोनेका शोर सुनकर अयोध्याभरमें बड़ा भारी कुहराम मच गया ! [ऐसा जान पड़ता था] मानो पक्षियोंके विशाल वनमें रातके समय कठोर वज्र गिरा हो ॥ १५३ ॥

चौ०—प्राण कंठगत भयउ भुआलु । मनिबिहीन जनु व्याकुल व्यालु ॥

इन्द्रौ सकल बिकल भई भारी । जनु सर सरसिज बनु विनु बारी ॥ १ ॥

राजाके प्राण कण्ठमें आ गये । मानो मणिके विना साँप व्याकुल (मरणासन्न) हो गया हो । इन्द्रियों सब बहुत ही विकल हो गयीं, मानो विना जलके तालाबमें कमलोंका वन मुरझा गया हो ॥ १ ॥

कौसल्याँ नृपु दीख मलाना । रबि कुल रबि अँथयउ जियँ जाना ॥

उर धरि धीर राम महतारी । बोली बचन समय अनुसारी ॥ २ ॥

कौसल्याजीने राजाको बहुत दुखी देखकर अपने हृदयमें जान लिया कि अब सूर्यकुलका सूर्य अस्त हो चला ! तब श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौसल्या हृदयमें धीरज धरकर समयके अनुकूल वचन बोलीं—॥ २ ॥

नाथ समुझि मन करिअ बिचारु । रामवियोग पयोधि अपारु ॥

करनधार तुम्ह अवध जहाजु । चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजु ॥ ३ ॥

हे नाथ ! आप मनमें समझकर विचार कीजिये कि श्रीरामचन्द्रका वियोग अपार समुद्र है । अयोध्या जहाज है और आप उसके कर्णधार (खेनेवाले) हैं । सब प्रियजन (कुटुम्बी और प्रजा) ही यात्रियोंका समाज है, जो इस जहाजपर चढ़ा हुआ है ॥ ३ ॥

धीरजु धरिअ त पाइअ पारु । नाहिं त बूझिहि सबु परिवारु ॥

जौ जिय धरिअ बिनय पिय मोरी । रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी ॥ ४ ॥

आप धीरज धरियेगा, तो सब पार पहुँच जायेंगे । नहीं तो सारा परिवार डूब जायगा । हे प्रिय स्वामी ! यदि मेरी विनती हृदयमें धारण कीजियेगा, तो श्रीराम, लक्ष्मण, सीता फिर आ मिलेंगे ॥ ४ ॥

दो०—प्रियावचन मृदु सुनत नृप चितयउ आँखि उधारि ।

तलफत मीन मलीन जनु सोंचत सीसल बारि ॥१५४॥

प्रिय पत्नी कौसल्याके कोमल वचन सुनते हुए राजाने आँखें खोलकर देखा । मानो तड़पती हुई दीन मछलीपर कोई शीतल जल छिड़क रहा हो ॥ १५४ ॥

चो०—धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू । कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालू ॥

कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही । कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही ॥ १ ॥

धीरज धरकर राजा उठ बैठे और बोले—सुमन्त्र ! कहो, कृपालु श्रीराम कहाँ हैं ? लक्ष्मण कहाँ हैं ? स्नेही राम कहाँ हैं ? और मेरी प्यारी बहू जानकी कहाँ है ? ॥ १ ॥

बिलपत राउ बिकल बहु भाँती । भइ जुग सरिस सिराति न राती ॥

तापस अंध साप सुधि आई । कौसल्यहि सब कथा सुनाई ॥ २ ॥

राजा व्याकुल होकर बहुत प्रकारसे विलाप कर रहे हैं । वह रात युगके समान बड़ी हो गयी, बीतती ही नहीं । राजाको अंधे तपस्वी (श्रवणकुमारके पिता) के शापकी याद आ गयी । उन्होंने सब कथा कौसल्याको कह सुनायी ॥ २ ॥

भयउ बिकल बरनत इतिहासा । राम रहित धिग जीवन आसा ॥

सो तनु राखि करब मैं काहा । जेहिं न प्रेमपनु मोर निबाहा ॥ ३ ॥

उस इतिहासका वर्णन करते-करते राजा व्याकुल हो गये [और कहने लगे कि] श्रीरामके विना जीनेकी आशाको धिक्कार है । मैं उस शरीरको रखकर क्या करूँगा जिसने मेरा प्रेमका प्रण नहीं निबाहा ? ॥ ३ ॥

हा रघुनंदन प्रान पिरीते । तुम्ह बिनु जियत बहुत दिन बीते ॥

हा जानकी लखन हा रघुवर । हा पितु हितचित चातक जलधर ॥ ४ ॥

हा रघुकुलको आनन्द देनेवाले मेरे प्राणप्यारे राम ! तुम्हारे विना जीते हुए मुझे बहुत दिन बीत गये । हा ! जानकी, लक्ष्मण ! हा रघुवर ! हा ! पिताके चित्तरूपी चातकके हित करनेवाले मेध ! ॥ ४ ॥

दो०—राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।

तनु परिहरि रघुवर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम ॥१५५॥

राम-राम कहकर, फिर राम कहकर, फिर राम-राम कहकर और फिर राम कहकर राजा रघुवरके विरहमें शरीर त्यागकर सुरलोकको सिधार गये ॥ १५५ ॥

चो०—जियन मरन फलु दसरथ पावा । अंड अनेक अमल जसु छावा ॥

जियत राम बिधुबदनु निहारा । रामबिरह करि मरनु सँवारा ॥ १ ॥

जीने और मरनेका फल तो दशरथजीने ही पाया, जिनका निर्मल यश अनेकों ब्रह्माण्डोंमें छा गया । जीते-जी तो श्रीरामचन्द्रजीके मुखचन्द्रको देखा और श्रीरामके विरहको निमित्त बनाकर अपना मरण सुधार लिया ॥ १ ॥

सोक बिकल सब रोवहिं रानी । रूपु सीलु बलु तेजु बखानी ॥

करहिं बिलाप अनेक प्रकारा । परहिं भूमितल बारहिं बारा ॥ २ ॥

सब रानियाँ शोकके मारे व्याकुल होकर रो रही हैं । वे राजाके रूप, शील, बल और तेजका बखान कर-करके अनेकों प्रकारसे विलाप कर रही हैं और बार-बार धरतीपर गिर-गिर पड़ती हैं ॥ २ ॥



राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम ॥

बिलपहिं बिकल दास अरु दासी । घर घर रुदनु करहिं पुरवासी ॥

अँधयउ आजु भानुकुल भानू । घरम अवधि गुन रूप निधानू ॥ ३ ॥

दास-दासीगण व्याकुल होकर विलाप कर रहे हैं और नगरनिवासी घर-घर रो रहे हैं । कहते हैं कि आज धर्मकी सीमा, गुण और रूपके भण्डार सूर्यकुलके सूर्य अस्त हो गये ! ॥ ३ ॥

गारों सकल कैकइहि देहीं । नयनबिहीन कीन्ह जग जेहीं ॥

एहि विधि बिलपत रैन बिहानी । आप सकल महामुनि ग्यानी ॥ ४ ॥

सब कैकयीको गालियाँ देते हैं, जिसने संसारभरको विना नेत्रका (अंघा) कर दिया ! इस प्रकार विलाप करते रात बीत गयी । प्रातःकाल सब बड़े-बड़े ज्ञानी मुनि आये ॥ ४ ॥

दो०—तब बसिष्ठ मुनि समयसम कहि अनेक इतिहास ।

सोक निवारेउ सबहि कर निज बिग्यान प्रकास ॥ १५६ ॥

तब वशिष्ठ मुनिने समयके अनुकूल अनेक इतिहास कहकर अपने विज्ञानके प्रकाशसे सबका शोक निवारण किया ॥ १५६ ॥

चो०—तेल नावें भरि नृपतनु राखा । दूत बोलाइ बहुरि अस भाषा ॥

धावहु बेगि भरत पहिं जाहू । नृपसुधि कतहुँ कहहु जनि काहू ॥ १ ॥

वशिष्ठजीने नावमें तेल भरवाकर राजाके शरीरको उसमें रखवा दिया । फिर दूतोंको बुलवाकर उनसे ऐसा कहा—तुम लोग जल्दी दौड़कर भरतके पास जाओ । राजाकी मृत्युका समाचार कहीं किसीसे न कहना ॥ १ ॥

पतनेइ कहेहु भरत सन जाई । गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई ॥

सुनि मुनि आयसु धावन धाप । चले बेग बर वाजि लजाए ॥ २ ॥

जाकर भरतसे इतना ही कहना कि दोनों भाइयोंको गुरुजीने बुलवा भेजा है । मुनिकी आज्ञा सुनकर धावन (दूत) दौड़े । वे अपने वेगसे उत्तम घोड़ोंको भी लजाते हुए चले ॥ २ ॥

अनरथु अवध अरंभेउ जब तैं । कुसगुन होहिं भरत कहूँ तब तैं ॥

देखहिं राति भयानक सपना । जागि करहिं कटु कोटि कल्पना ॥ ३ ॥

जबसे अयोध्यामें अनर्थ प्रारम्भ हुआ, तभीसे भरतजीको अपवादकुन होने लगे । वे रातको भयंकर स्वप्न देखते थे, और जागनेपर उन स्वप्नके कारण करोड़ों (अनेकों) तरहकी बुरी-बुरी कल्पनाएँ किया करते थे ॥ ३ ॥

विप्र जेंवाइ देहिं दिन दाना । सिव अभिषेक करहिं विधि नाना ॥

मागहिं हृदयँ महेस मनाई । कुसल मातु पितु परिजन भाई ॥ ४ ॥

अनिष्टशान्तिके लिये वे प्रतिदिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दान देते थे । अनेकों विधियोंसे रुद्राभिषेक करते थे । महादेवजीको हृदयमें मनाकर उनसे माता-पिता, कुटुम्बी और भाइयोंका कुशल-क्षेम माँगते थे ॥ ४ ॥

दो०—एहि विधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ ।

गुर अनुसासन श्रवन सुनि चले गनेसु मनाइ ॥ १५७ ॥

भरतजी इस प्रकार मनमें चिन्ता कर रहे थे कि दूत आ पहुँचे। गुरुजीकी आज्ञा कानोंसे सुनते ही वे गणेशजीको मनाकर चल पड़े ॥१५७॥

चौ०—चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके ॥

हृदयँ सोचु बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जियँ जाउँ उड़ाई ॥ १ ॥

हवाके समान वेगवाले घोड़ोंको हाँकते हुए वे विकट नदी, पहाड़ तथा जंगलोंको लाँघते हुए चले। उनके हृदयमें बड़ा सोच था, कुछ सुहाता न था। मनमें ऐसा सोचते थे कि उड़कर पहुँच जाऊँ ॥ १ ॥

एक निमेष बरष सम जाई। एहि बिधि भरत नगर निभराई ॥

असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा ॥ २ ॥

एक-एक निमेष वर्षके समान बीत रहा था। इस प्रकार भरतजी नगरके निकट पहुँचे। नगरमें प्रवेश करते समय अपशकुन होने लगे। कौए बुरी जगह बैठकर बुरी तरहसे काँव-काँव कर रहे हैं ॥ २ ॥

खर सिआर बोलहिं प्रतिकूल। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला ॥

श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगर बिसेषि भयावनु लागा ॥ ३ ॥

गड़हे और सियार प्रतिकूल बोल रहे हैं। यह सुन-सुनकर भरतके मनमें बड़ी पीड़ा हो रही है। तालाब, नदी, वन, बगीचे सब श्रीहीन हो रहे हैं। नगर बहुत ही भयानक लग रहा है ॥ ३ ॥

खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम वियोग कुरोग बिगोए ॥

नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्धि सब संपति हारी ॥ ४ ॥

श्रीरामजीके वियोगरूपी बुरे रोगसे सताये हुए पक्षी-पशु, घोड़े-हाथी [ऐसे दुखी हो रहे हैं कि] देखे नहीं जाते। नगरके स्त्री-पुरुष अत्यन्त दुखी हो रहे हैं। मानो सब अपनी सारी सम्पत्ति हार बैठे हों ॥ ४ ॥

दो०—पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गवँहिं जोहारहिं जाहिं ।

भरत कुसल पूँछि न सकहिं भय विषाद मन माहिं ॥१५८॥

नगरके लोग मिलते हैं, पर कुछ कहते नहीं; गँसे (चुपके-से) जोहार करके (वन्दना करके) चले जाते हैं। भरतजी भी किसीसे कुशल नहीं पूछ सकते, क्योंकि उनके मनमें भय और विषाद छा रहा है ॥१५८॥

चौ०—हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी ॥

आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनि ॥ १ ॥

बाजार और रास्ते देखे नहीं जाते। मानो नगरमें दसों दिशाओंमें दावाग्रि लगी है। पुत्रको आते सुनकर सूर्यकुलरूपी कमलके लिये चोंदनीरूपी कैकेयी [बड़ी] हर्षित हुई ॥ १ ॥

सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई ॥

भरत दुखित परिवार निहारा। मानहुँ तुहिन बनज बन मारा ॥ २ ॥

वह आरती सजाकर आनन्दमें भरकर उठ दौड़ी और दरवाजेपर ही मिलकर भरत-शत्रुघ्नको महलमें ले आयी। भरतने सारे परिवारको दुखी देखा। मानो कमलोंके वनको पाल मार गया हो ॥ २ ॥

कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती ॥

सुतहि ससोच देखि मनु मारें। पूँछति नैहर कुसल हमारें ॥ ३ ॥

एक कैकेयी ही इस तरह हर्षित दीखती है मानो भीलनी जंगलमें आग लगाकर आनन्दमें भर रही हो। पुत्रको सोचवश और मनमारे (बहुत उदास) देखकर वह पूछने लगी—हमारे नैदरमें कुशल तो है ? ॥३॥

सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूँछी निज कुल कुसल भलाई ॥

कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता ॥४॥

भरतजीने सब कुशल कह सुनायी। फिर अपने कुलकी कुशल-क्षेम पूछी। [भरतजीने कहा—] कहां, पिताजी कहाँ हैं ? मेरी सब माताएँ कहाँ हैं ? सीताजी और मेरे प्यारे भाई राम-लक्ष्मण कहाँ हैं ? ॥४॥

दो०—सुनि सुतवचन सनेहमय कपट नीर भरि नैन।

भरत श्रवन मन झलसम पापिनि बोली बैन ॥१५९॥

पुत्रके स्नेहमय वचन सुनकर नेत्रोंमें कपटका जल भरकर पापिनी कैकेयी भरतके कानोंमें और मनमें झलके समान चुभनेवाले वचन बोली— ॥१५९॥

चौ०—तात बात मैं सकल सँवारी। भै मंथरा सहाय विचारी ॥

कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ ॥१॥

हे तात ! मैंने सारी बात बना ली थी। बेचारी मन्थरा सहायक हुई। पर विधाताने बीचमें जरा-सा काम बिगाड़ दिया। वह यह कि राजा देवलोकको पधार गये ॥१॥

सुनत भरतु भय विबस विषादा। जनु सहमेउ करि केहरिनादा ॥

तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल व्याकुल भारी ॥२॥

भरत यह सुनते ही विषादके मारे विवश (बेहाल) हो गये। मानो सिंहकी गर्जना सुनकर हाथी सहम गया हो। वे 'तात ! तात ! हा तात !' पुकारते हुए अत्यन्त व्याकुल होकर जमीनपर गिर पड़े ॥२॥

चलत न देखन पायउँ तोही। तात न रामहि सौँपेहु मोही ॥

बहुरि धीर धरि उठे सँभारी। कहु पितु मरन हेतु महतारी ॥३॥

[और विलाप करने लगे कि] हे तात ! मैं आपको [स्वर्गके लिये] चलते समय देख भी न सका। हाय ! आप मुझे श्रीरामजीको सौँप भी नहीं गये ! फिर धीरज धरकर वे सम्हलकर उठे और बोले—माता ! पिताके मरनेका कारण तो बताओ ! ॥३॥

सुनि सुत वचन कहति कैकेई। मरसु पाँछि जनु माहुर देई ॥

आदिहु तँ सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदित मन बरनी ॥४॥

पुत्रका वचन सुनकर कैकेयी कहने लगी। मानो मर्मस्थानको पाछकर (चाकूसे चीरकर) उसमें जहर भर रही हो। कुटिल और कठोर कैकेयीने अपनी सब करनी शुरूसे अखीरतक बड़े प्रसन्न मनसे सुना दी ॥४॥

दो०—भरतहि बिसरेउ पितुमरन सुनत राम बन गौनु।

हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु ॥१६०॥

श्रीरामचन्द्रजीका वन जाना सुनकर भरतजीको पिताका मरण भूल गया और हृदयमें इस सारे अनर्थका कारण अपनेको ही जानकर वे मौन होकर स्तम्भित रह गये (अर्थात् उनकी बोली बंद हो गयी और वे सन्न रह गये) ॥१६०॥

चौ०—बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति । मनहुँ जरे पर लोनु लगावति ॥

तात राउ नहिं सोचै जोगू । बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हैउ भोगू ॥ १ ॥

पुत्रको व्याकुल देखकर कैकेयी समझाने लगी । मानो जलेपर नमक लगा रही हो । [वह बोली—] हे तात ! राजा सोच करने योग्य नहीं हैं । उन्होंने पुण्य और यश कमाकर उसका पर्याप्त भोग किया ॥ १ ॥

जीवत सकल जनम फल पाए । अंत अमरपति सदन सिधाए ॥

अस अनुमानि सोच परिहरहु । सहित समाज राज पुर करहु ॥ २ ॥

जीवनकालमें ही उन्होंने जन्म लेनेके सम्पूर्ण फल पा लिये और अन्तमें वे इन्द्रलोकको चले गये । ऐसा विचारकर सोच छोड़ दो और समाजसहित नगरका राज्य करो ॥ २ ॥

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू । पाकैं छत जनु लाग अंगारू ॥

धीरज धरि भरि लेहिं उसासा । पापिनि सबहि भौंति कुल नासा ॥ ३ ॥

राजकुमार भरतजी यह सुनकर बहुत ही सहम गये । मानो पके धावपर अंगार दू गया हों । उन्होंने धीरज धरकर बड़ी लंबी साँस लेते हुए कहा—पापिनी ! तूने सभी तरहसे कुलका नाश कर दिया ॥ ३ ॥

जौं पै कुरुचि रही अति तोही । जनमत काहे न मारे मांही ॥

पेड़ काटि तैं पालउ सींचा । मीन जिअन निति वारि उलीचा ॥ ४ ॥

हाय ! यदि तेरी ऐसी ही अत्यन्त बुरी रुचि (दुष्ट इच्छा) थी, तो तूने जन्मते ही मुझे मार क्यों नहीं डाला ? तूने पेड़को काटकर पत्तोंको सींचा है और मछलीके जीनेके लिये पानीको उलीच डाला ! ॥ ४ ॥

दो०—हंसवंसु दसरथु जनकु राम लखन से भाइ ।

जननी तूँ जननी भई विधि सन कछु न बसाइ ॥ १६१ ॥

मुझे सूर्यवंश [-सा वंश], दशरथजी [सरीखे] पिता और राम-लक्ष्मण-से भाई मिले; पर हे जननी ! मुझे जन्म देनेवाली माता तू हुई ! विधातासे कुछ भी वश नहीं चलता ॥ १६१ ॥

चौ०—जब तैं कुमति कुमति जियँ ठयऊ । खंड खंड होइ हृदउ न गयऊ ॥

वर मागत मन भइ नहिं पीरा । गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा ॥ १ ॥

अरी कुमति ! जब तूने हृदयमें यह बुरा विचार (निश्चय) ठाना, उसी समय तेरे हृदयके टुकड़े-टुकड़े [क्यों] न हो गये ? वरदान माँगने समय तेरे मनमें कुछ भी पीड़ा नहीं हुई ? तेरी जीभ गल नहीं गयी ? तेरे मुँहमें कीड़े नहीं पड़ गये ? ॥ १ ॥

भूँ प्रतीति तोरि किमि कीन्ही । मरनकाल विधि मनि हरि लीन्ही ॥

विधिहुँ न नारि हृदय गति जानी । सकल कपट अघ अवगुन खानी ॥ २ ॥

राजाने तेरा विश्वास कैसे कर लिया ? जान पड़ता है, विधाताने मरनेके समय उनकी बुद्धि हर ली थी । स्त्रियोंके हृदयकी गति (चाल) विधाता भी नहीं जान सके । वह सम्पूर्ण कपट, पाप और अवगुणोंकी खान है ॥ २ ॥

सरल सुसील धरमरत राऊ । सो किमि जानै तीयमुभाऊ ॥

अस को जीव जंतु जग माहीं । जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं ॥ ३ ॥

कल्याण

(१) पुत्रका स्वागत



सजि आरती मुदित उठि धाई ।

[पृष्ठ ४२०]

(२) भरतका विवाद



जो पै कुरुचि रही अति तोही ।

जनमत काहे न मोरे मोही ॥

[पृष्ठ ४२२]

(३) भरतका असहकार



जो हसि सो हसि मुहँ मसि लाई ।

आँखि ओट उठि बैठहि जाई ॥

[पृष्ठ ४२३]

(४) कुबरीको दंड



हुमगि लात तकि कुबर मारा ।

परि मुद्द भर मदि करत पुकारा ॥

[पृष्ठ ४२३]

फिर राजा तो सीधे, सुशील और धर्मपरायण थे। वे भला, स्त्री-स्वभावको कैसे जानते ! अरे, जगतके जीव-जन्तुओंमें ऐसा कौन है जिसे भीरघुनाथजी प्राणोंके समान प्यारे नहीं हैं ? ॥ ३ ॥

भे अति अहित रामु तेउ तोही । को तू अहसि सत्य कहु मोही ॥

जो हसि सो हसि मुहँ मसि लार्ह । आँखि ओट उठि बैठहि जार्ह ॥ ४ ॥

वे श्रीरामजी भी तुझे अहित हो गये (वैरी लगे) ! तू कौन है ! मुझे सच-सच कह ! तू जो है, सो है, अब मुँहमें स्याही पोतकर (मुँह काला करके) उठकर मेरी आँखोंकी ओटमें जा बैठ ॥ ४ ॥

दो०—राम विरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि ।

मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहि ॥ १६२ ॥

विधाताने मुझे भीरामजीसे विरोध करनेवाले (तेरे) हृदयसे उत्पन्न किया [अथवा विधाताने मुझे हृदयसे रामका विरोधी जाहिर कर दिया] । मेरे बराबर पापी दूसरा कौन है ? मैं व्यर्थ ही तुझे कुछ कहता हूँ ॥ १६२ ॥

चो०—सुनि सत्रुघुन मातु कुटिलार्ह । जरहिं गात रिस कछु न बसार्ह ॥

तेहि अवसर कुबरी तहँ आर्ह । बसन बिभूषन बिबिध बनार्ह ॥ १ ॥

माताकी कुटिलता सुनकर शत्रुघ्नजीके सब अङ्ग क्रोधसे जल रहे हैं, पर कुछ वश नहीं चलता । उसी समय भौंति-भौंतिके कपड़ों और गहनोंसे सजकर कुबरी (मन्थरा) वहाँ आयी ॥ १ ॥

लखि रिस भरेउ लखन लघु भार्ह । बरत अनल घृत आहुति पार्ह ॥

हुमगि लात तकि कूबर मारा । परि मुहभर महि करत पुकारा ॥ २ ॥

उसे [सजी] देखकर लक्ष्मणजीके छोटे भाई शत्रुघ्नजी क्रोधमें भर गये । मानो जलती हुई आगको पीकी आहुति मिल गयी हो । उन्होंने जोरसे तककर कूबड़पर एक लात जमा दी । वह चिल्लाती हुई मुँहके बल जमीनपर गिर पड़ी ॥ २ ॥

कूबर दूटेउ फूट कपारु । दलित दसन मुख रुधिर प्रचारु ॥

आह दइअ मैं काह नसावा । करत नीक फलु अनइस पावा ॥ ३ ॥

उसका कूबड़ दूट गया, कपाल फूट गया । दाँत दूट गये और मुँहसे खून बहने लगा । [वह कराहती हुई बोली—] हाय दैव ! मैंने क्या बिगाड़ा ! जो भला करते बुरा फल पाया ॥ ३ ॥

सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी । लगे घसीटन धरि धरि झोटी ॥

भरत दयानिधि दीन्ह छड़ाई । कौसल्या पहिं ने दोउ भार्ह ॥ ४ ॥

उसकी यह बात सुनकर और उसे नखसे शिखातक दुष्ट जानकर शत्रुघ्नजी झोंटा पकड़-पकड़कर उसे सीटने लगे । तब दयानिधि भरतजीने उसको छुड़ा दिया । और दोनों भाई [तुरंत] कौसल्याजीके पास थे ॥ ४ ॥

दो०—मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीर दुखमार ।

कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ इनी तुसार ॥ १६३ ॥

कौसल्याजी मैले वस्त्र पहने हैं, चेहरेका रंग बदला हुआ है; व्याकुल हो रही हैं, दुःखके बोझसे शरीर सूख गया है । ऐसी दीख रही हैं मानो सोनेकी सुन्दर कल्पलताको वनमें पाला मार गया हो ॥ १६३ ॥

चौ०—भरतहि देखि मातु उठि धाई । मुसुलित अवनि परी झाई आई ॥

देखत भरतु बिकल भए भारी । परे चरन तन दसा बिसारी ॥ १ ॥

भरतको देखते ही माता कौसल्याजी उठ दौड़ी । पर चक्कर आ जानेसे मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी । यह देखते ही भरतजी बड़े व्याकुल हो गये और शरीरकी सुष भुलकर चरणोंमें गिर पड़े ॥ १ ॥

मातु तात कहँ देहि देखाई । कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई ॥

कैकइ कत जनमी जग माझा । जाँ जनमि त भइ काहे न बाँझा ॥ २ ॥

[फिर बोले—] माता ! पिताजी कहाँ हैं ? उन्हें दिखा दे । सीताजी तथा मेरे दोनों भाई श्रीराम-लक्ष्मण कहाँ हैं ? [उन्हें दिखा दे ।] कैकयी जगत्में क्यों जनमी ? और यदि जनमी ही, तो फिर बाँझ क्यों न हुई ?—॥ २ ॥

कुल कलंकु जेहिं जनमेउ मोही । अपजस भाजन प्रियजन द्रोही ॥

को तिभुवन मोहि सरिस अभागी । गति असि तोरि मातु जेहि लागी ॥ ३ ॥

जिसने कुलके कलङ्क, अपयशके भाँड़े और प्रियजनोंके द्रोही मुझ-जैसे पुत्रको उत्पन्न किया । तीनों लोकोंमें मेरे समान अभागा कौन है ? जिसके कारण, हे माता ! तेरी यह दशा हुई ! ॥ ३ ॥

पितु सुरपुर बन रघुबर केतू । मैं केवल सब अनरथ हेतू ॥

धिग मोहि भयउँ बेनुबन आगी । दुसह दाह दुख दूषन भागी ॥ ४ ॥

पिताजी स्वर्गमें हैं और रघुवर श्रीरामजी वनमें हैं; केतुके समान केवल मैं ही इन सब अनर्थोंका कारण हूँ । मुझे धिक्कार है ! मैं बाँसके वनमें आग उत्पन्न हुआ और कठिन दाह, दुःख और दोषोंका भागी बना ॥ ४ ॥

दो०—मातु भरत के वचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि ।

लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि ॥ १६४ ॥

भरतजीके कोमल वचन सुनकर माता कौसल्याजी फिर सँभलकर उठीं । उन्होंने भरतको उठाकर छातीसे लगा लिया और नेत्रोंसे आँसू बहाने लगीं ॥ १६४ ॥

चौ०—सरल सुभायँ मायँ हियँ लाए । अति हित मनहुँ राम फिरि आए ॥

भैंटेउ बहुरि लखन लघु भाई । सोकु सनेहु न हृदयँ समारि ॥ १ ॥

सरल स्वभाववाली माताने बड़े प्रेमसे भरतजीको छातीसे लगा लिया, मानो श्रीरामजी ही लौटकर आ गये हों । फिर लक्ष्मणजीके छोटे भाई शत्रुघ्नको हृदयसे लगाया । शोक और स्नेह हृदयमें समाता नहीं है ॥ १ ॥

देखि सुभाउ कहत सबु कोई । राम मातु अस काहे न होई ॥

माताँ भरतु गोद बैठारे । आँसु पोंछि मृदु वचन उचारे ॥ २ ॥

कौसल्याजीका स्वभाव देखकर सब कोई कह रहे हैं—श्रीरामकी माताका ऐसा स्वभाव क्यों न हो । माताने भरतजीको गोदमें बैठा लिया और उनके आँसू पोंछकर कोमल वचन बोलीं—॥ २ ॥

अजहुँ बच्छ बलि धीरज घरहु । कुसमउ समुझि सौक परिहरहु ॥

जनि मानहु हियँ हानि गलानी । काल करम गति अघटित जानी ॥ ३ ॥

हे वत्स ! मैं बलैया लेती हूँ ! तुम अब भी धीरज धरो । बुरा समय जानकर शोक त्याग दो । काल और कर्मकी गति अमिट जानकर हृदयमें हानि और ग्लानि मत मानो ॥ ३ ॥

काहुहि दोसु देहु जनि ताता । भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता ॥

जो पतेहुँ दुख मोहि जिभावा । अजहुँ को जानइ का तेहि भावा ॥ ४ ॥

हे तात ! किसीको दोष मत दो । बिधाता मुझको सब प्रकारसे उलटा हो गया है, जो इतने दुःखपर भी मुझे जिला रहा है । अब भी कौन जानता है, उसे क्या भा रहा है ? ॥ ४ ॥

दो०—पितु आयस भूषन बसन तात तजे रघुवीर ।

विसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर ॥१६५॥

हे तात ! पिताकी आज्ञासे श्रीरघुवीरने भूषण-बस्त्र त्याग दिये और बल्कल-वस्त्र पहन लिये । उनके हृदयमें न कुछ विषाद था, न हर्ष ॥१६५॥

चौ०—मुख प्रसन्न मन रंग न रोष । सब कर सब बिधि करि परितोष ॥

चले बिपिन सुनि सिय संग लागी । रहइ न राम चरन अनुरागी ॥ १ ॥

उनका मुख प्रसन्न था; न आसक्ति थी, न रोष (द्वेष) । सबका सब तरहसे सन्तोष कराकर वे वनको चले । यह सुनकर सीता भी उनके साथ लग गयीं । श्रीरामके चरणोंकी अनुरागिणी वे किसी तरह न रहीं ॥ १ ॥

सुनतहिं लखनु चले उठि साथा । रहहिं न जतन किए रघुनाथा ॥

तब रघुपति सबही सिरु नाई । चले संग सिय अरु लघु भाई ॥ २ ॥

सुनते ही लक्ष्मण भी साथ ही उठ चले । श्रीरघुनाथने उन्हें रोकनेके बहुत यत्न किये, पर वे न रहे । तब श्रीरघुनाथ सबको सिर नवाकर सीता और छोटे भाई लक्ष्मणको साथ लेकर चले गये ॥ २ ॥

रामु लखनु सिय बनहि सिधाए । गहउँ न संग न प्रान पठाए ॥

यहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगें । तउ न तजा तनु जीव अभागें ॥ ३ ॥

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता वनको चले गये । मैं न तो साथ ही गयी और न मैंने अपने प्राण ही उनके साथ भेजे ! यह सब इन्हीं आँखोंके सामने हुआ । तो भी अभागे जीवने शरीर नहीं छोड़ा ॥ ३ ॥

मोहि न लाज निज नेहु निहारी । राम सरिस सुत मैं महतारी ॥

जिये मरै भल भूपति जाना । मोर हृदय सत कुलिस समाना ॥ ४ ॥

अपने स्नेहकी ओर देखकर मुझे लाज भी नहीं आती; राम-सरीखे पुत्रकी मैं माता ! जीना और मरना तो राजाने खूब जाना । मेरा हृदय तो सैकड़ों वज्रोंके समान कठोर है ॥ ४ ॥

दो०—कौसल्या के बचन सुनि भरत सहित रनिवासु ।

व्याकुल बिलपत राजगृह मानहुँ सोक नेवासु ॥१६६॥

कौसल्याजीके वचनोंकी सुनकर भरतसहित सारा रनिवास व्याकुल होकर विलाप करने लगा । राजमहल मानो शोकका निवास बन गया ॥१६६॥

चौ०—बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई । कौसल्याँ लिय हृदय लगाई ॥

भाँति अनेक भरतु समुझाय । कहि बिबेकमय बचन सुनाय ॥ १ ॥

भरत, शत्रुघ्न दोनों भाई बिकल होकर बिलाप करने लगे । तब कौसल्याजीने उनको हृदयसे लगा लिया । अनेकों प्रकारसे भरतजीको समझाया, और बहुत-सी विवेकभरी बातें उन्हें कहकर सुनायीं ॥ १ ॥

भरतहुँ मातु सकल समुझाई । कहि पुरान श्रुति कथा सुझाई ॥
छलबिहीन सुचि सरल सुबानी । बोले भरत जोरि जुग पानी ॥ २ ॥

भरतजीने भी सब माताओंको पुराण और वेदोंकी सुन्दर कथाएँ कहकर समझाया । दोनों हाथ जोड़कर भरतजी छलरहित, पवित्र और सीधी सुन्दर वाणी बोले—॥ २ ॥

जे अघ मातु पिता सुत मारें । गाइगोठ महिसुर पुर जारें ॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें । मीत महीपति माझुर दीन्हें ॥ ३ ॥

जो पाप माता-पिता और पुत्रके मारनेसे होते हैं, और जो गोशाला और ब्राह्मणोंके नगर जलनेसे होते हैं; जो पाप स्त्री और बालककी हत्या करनेसे होते हैं, और जो मित्र और राजाको जहर देनेसे होते हैं—॥ ३ ॥

जे पातक उपपातक अहर्हो । करम बचन मनभव कवि कहर्हो ॥
ते पातक मोहि होहुँ बिधाता । जौ यहु होइ मोर मत माता ॥ ४ ॥

कर्म, बचन और मनसे होनेवाले जितने पातक एवं उपपातक (बड़े-छोटे पाप) हैं, जिनको कवि लोग कहते हैं, हे विधाता ! यदि इस काममें मेरा मत हो, तो हे माता ! वे सब पाप मुझे लगें ॥ ४ ॥

दो०—जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर ।

तेहि कइ गति मोहि देउ विधि जौ जननी मत मोर ॥१६७॥

जो लोग श्रीहरि और श्रीशंकरजीके चरणोंको छोड़कर भयानक भूत-प्रेतोंको भजते हैं, हे माता ! यदि इसमें मेरा मत हो, तो विधाता मुझे उनकी गति दे ॥१६७॥

चौ०—बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं । पिसुन पराय पाप कहि वेहीं ॥
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी । बेद बिदूषक बिल्व बिरोधी ॥ १ ॥
जो लोग वेदोंको बेचते हैं, धर्मको दुह लेते हैं, चुगलखोर हैं, दूसरोंके पापोंको कह देते हैं; जो कपटी, कुटिल, कलहप्रिय और क्रोधी हैं, तथा जो वेदोंकी निन्दा करनेवाले और विश्वभरके विरोधी हैं; ॥ १ ॥

लोभी लंपट लोलुपचारा । जे ताकहिं परधनु परदारा ॥
पावौ मैं तिन्ह कै गति घोरा । जौ जननी यहु संमत मोरा ॥ २ ॥

जो लोभी, लम्पट और लालचियोंका आचरण करनेवाले हैं; जो पराये धन और परायी स्त्रीकी ताकमें रहते हैं; हे जननी ! यदि इस काममें मेरी सम्मति हो तो मैं उनकी भयानक गतिको पाऊँ ॥ २ ॥

जे नहिं साधुसंग अनुरागे । परमार्थ पथ विमुख मभागे ॥
जे न भजहिं हरि नरननु पाई । जिन्हहि न हरि हर सुजसु सोझाई ॥ ३ ॥

जिनका सत्संगमें प्रेम नहीं है; जो अभागों परमार्थके मार्गसे विमुख हैं; जो मनुष्यशरीर पाकर श्रीहरिका भजन नहीं करते; जिनको हरि-हर (भगवान् विष्णु और शंकरजी) का सुयश नहीं सुझाता; ॥ ३ ॥

तजि श्रुतिपंथु बामपथ चलहीं । बंचक बिरचि बेध जगु छलहीं ॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ । जननी जौ यहु जानौ भेऊ ॥ ४ ॥

जो वेदमार्गको छोड़कर वाम (वेदप्रतिकूल) मार्गपर चलते हैं; जो ठग हैं और भेष बनाकर जगत्को छलते हैं; हे माता ! यदि मैं इस भेदको जानता भी होऊँ तो शंकरजी मुझे उन लोगोंकी गति दें ॥ ४ ॥

दो०—मातु भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुमायँ ।

कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन कायँ ॥१६८॥

माता कौसल्याजी भरतजीके स्वामाविक ही सच्चे और सरल वचनोंको सुनकर कहने लगीं—हे तात ! तुम तो मन, वचन और शरीरसे सदा ही श्रीरामचन्द्रके प्यारे हो ॥१६८॥

चौ०—राम प्रानहु तैं प्रान तुम्हारे । तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तैं प्यारे ॥

बिभु बिष चवै झवै हिमु आगी । होइ बारिखर बारि बिरागी ॥ १ ॥

श्रीराम तुम्हारे प्राणोंके भी प्राण हैं और तुम भी श्रीरघुनाथको प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हो । चन्द्रमा चाहे बिष चुआने लगे और पाला आग बरमाने लगे; जलचर जीव जलसे विरक्त हो जाय; ॥ १ ॥

भयँ ग्यानु बरु मिटै न मोह । तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होइ ॥

मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं । सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं ॥ २ ॥

और शान हो जानेपर भी चाहे मोह न मिटे; पर तुम श्रीरामचन्द्रके प्रतिकूल कभी नहीं हो सकते । इसमें तुम्हारी सम्मति है, जगत्में जो कोई ऐसा कहते हैं वे स्वप्नमें भी सुख और शुभ गति नहीं पावेंगे ॥ २ ॥

अस कहि मातु भरतु हियँ लाए । धन पय झवहिं नयन जल छाए ॥

करत बिलाप बहुत यहि भाँती । बैठहिं बीति गई सब राती ॥ ३ ॥

ऐसा कहकर माता कौसल्याने भरतजीको हृदयसे लगा लिया । उनके स्तनोंसे दूध बहने लगा और नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल छा गया । इस प्रकार बहुत बिलाप करते हुए सारी रात बैठे-ही-बैठे बीत गयी ॥३॥

बामदेउ बसिष्ठ तय आप । सचिव महाजन सकल बोलाए ॥

मुनि यहु भाँति भरत उपदेसे । कहि परमारथ बचन सुदेसे ॥ ४ ॥

तब वामदेवजी और वशिष्ठजी आये । उन्होंने सब मन्त्रियों तथा महाजनोंको बुलवाया । फिर मुनि वशिष्ठजीने परमार्थके सुन्दर समयानुकूल वचन कहकर बहुत प्रकारसे भरतजीको उपदेश दिया ॥ ४ ॥

दो०—तात हृदयँ धीरजु धरहु करहु जो अवसर आजु ।

उठे भरत गुर बचन सुनि करन कहेउ सबु साजु ॥१६९॥

[वशिष्ठजीने कहा—] हे तात ! हृदयमें धीरज धरो और आज जिस कार्यके करनेका अवसर है, उसे करो । गुप्तजीके वचन सुनकर भरतजी उठे और उन्होंने सब तैयारी करनेके लिये कहा ॥ १६९ ॥

चौ०—नृपतनु वेदविदित अन्हवावा । परम विचित्र विमानु बनावा ॥

गहि पद भरत मातु सय गखीं । रहीं रानि दरसन अभिलाषी ॥ १ ॥

वेदोंमें बतायी हुई विधिसे राजाकी देहको स्नान कराया गया और परम विचित्र विमान बनाया गया । भरतजीने सब माताओंको चरण पकड़कर रक्खा (अर्थात् प्रार्थना करके उनको सती होनेसे रोक लिया) । वे रानियाँ भी श्रीरामके दर्शनकी अभिलाषासे रह गयीं ॥ १ ॥

खंवन अगर भार बहु आए । अमित अनेक सुगंध सुहाए ॥

सरजु तीर रवि चिता बनाई । जनु सुरपुर सोपान सुहाई ॥ २ ॥

चन्दन और अगरके तथा और भी अनेकों प्रकारके अपार [कपूर, गुग्गुलु, केसर आदि] सुगन्ध-द्रव्योंके बहुत-से बोझ आये । सरयूजीके तटपर सुन्दर चित्ता रचकर बनायी गयी, [जो ऐसी मालूम होती थी] मानो स्वर्गकी सुन्दर सीढ़ी हो ॥ २ ॥

एहि बिधि दाहक्रिया सब कीन्ही । विधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही ॥

सोधि सुमृति सब वेद पुराना । कीन्ह भरत दसगात बिधाना ॥ ३ ॥

इस प्रकार सब दाहक्रिया की गयी और सबने ज्ञान करके तिलाञ्जलि दी । फिर वेद, स्मृति और पुराण, सबका मत निश्चय करके उसके अनुसार भरतजीने पिताका दशगात्र-विधान (दस दिनोंके कृत्य) किया ॥ ३ ॥

जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा । तहँ तस सहस भौति सबु कीन्हा ॥

भए बिसुद्ध दिए सब दाना । धेनु बाजि गज बाहन नाना ॥ ४ ॥

मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजीने जहाँ जैसी आशा दी, वहाँ भरतजीने सब वैसा ही हजारों प्रकारसे किया । शुद्ध हो जानेपर [विधिपूर्वक] सब दान दिये । गौएँ, तथा घोड़े, हाथी आदि अनेक प्रकारकी सवारियाँ, ॥ ४ ॥

दो०—सिंघासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम ।

दिए भरत लहि भूमिसुर भे परिपूरनकाम ॥ १७० ॥

सिंहासन, गद्दने, कपड़े, अन्न, पृथ्वी, धन और मकान भरतजीने दिये; भूदेव ब्राह्मण दान पाकर परिपूर्णकाम हो गये (अर्थात् उनकी सारी मनोकामनाएँ अच्छी तरहसे पूरी हो गयी) ॥ १७० ॥

चौ०—पितु हित भरत कीन्ही जसि करनी । सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी ॥

सुदिनु सोधि मुनिवर तब आए । सचिव महाजन सकल बोलाए ॥ १ ॥

पिताजीके लिये भरतजीने जैसी करनी की, वह लाखों मुखोंसे भी वर्णन नहीं की जा सकती । तब शुभ दिन शोधकर श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठजी आये और उन्होंने मन्त्रियों तथा सब महाजनोंको बुलवाया ॥ १ ॥

बैठे राजसभाँ सब जाई । पठए बोलि भरत दोउ भाई ॥

भरतु बसिष्ट निकट बैठारे । नीति धरममय बचन उचारे ॥ २ ॥

सब लोग राजसभामें जाकर बैठ गये । तब मुनिने भरतजी तथा शत्रुघ्नजी दोनों भाइयोंको बुलवा भेजा । भरतजीको वशिष्ठजीने अपने पास बैठा लिया और नीति और धर्ममें भरे हुए वचन कहे ॥ २ ॥

प्रथम कथा सब मुनिवर बरनी । कैकई कुटिल कीन्ही जसि करनी ॥

भूप धरमव्रतु सत्य सराहा । जेहिं तनु परिहरि प्रेमु निबाहा ॥ ३ ॥

पहले तो कैकेयीने जैसी कुटिल करनी की थी, श्रेष्ठ मुनिने वह सारी कथा कही । फिर राजाके धर्मव्रत और सत्यकी सराहना की, जिन्होंने शरीर त्यागकर प्रेमकी निवाहा ॥ ३ ॥

कहत राम गुन सील मुभाऊ । सजल नयन पुलकैउ मुनिराऊ ॥

बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी । सोक सनेहँ मगन मुनि म्यानी ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके गुण, शील और स्वभावका वर्णन करते-करते तो मुनिराजके नेत्रोंमें जल भर आया और वे शरीरसे पुलकित हो गये । फिर लक्ष्मणजी और सीताजीके प्रेमकी बड़ाई करते हुए खानी मुनि शोक और स्नेहमें मग्न हो गये ॥ ४ ॥

दो०—सुनहु भरत भावी प्रबल बिलसि कहेउ मुनिनाथ ।

हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु विधि हाथ ॥१७१॥

मुनिनाथने बिलखकर (दुखी होकर) कहा—हे भरत ! सुनो, भावी (होनहार) बड़ी बलवान है । हानि-लाभ, जीवन-मरण, और यश-अपयश, ये सब विधाताके हाथ हैं ॥ १७१ ॥

चौ०—अस बिचारि केहि देख दोस् । धरथ काहि पर कीजिअ रोस् ॥

तात बिचार करहु मन माहीं । सोच जोगु दसरथ नृपु नाहीं ॥ १ ॥

ऐसा विचारकर किसे दोष दिया जाय ? और व्यर्थ किसपर क्रोध किया जाय ? हे तात ! मनमें विचार करो । राजा दशरथ सोच करनेके योग्य नहीं हैं ॥ १ ॥

सोचिअ विप्र जो बेदबिहीना । तजि निज घरमु बिषय लयलीना ॥

सोचिअ नृपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥ २ ॥

सोच उस ब्राह्मणका करना चाहिये जो वेद नहीं जानता, और जो अपना धर्म छोड़कर विषय-भोगमें ही लीन रहता है । उस राजाका सोच करना चाहिये जो नीति नहीं जानता और जिसको प्रजा प्राणोंके समान प्यारी नहीं है ॥ २ ॥

सोचिअ बयसु कृपन धनवान् । जो न अतिथि सिव भगति सुजान् ॥

सोचिअ सुदु बिप्र अवमानी । मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी ॥ ३ ॥

उस वेश्यका सोच करना चाहिये जो धनवान् होकर भी कंजूस है, और जो अतिथिस्तकार तथा शिवजीकी भक्ति करनेमें कुशल नहीं है । उस शूद्रका सोच करना चाहिये जो ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाला, बहुत बोलनेवाला, मान-बड़ाई चाहनेवाला और शानका घमंड रखनेवाला है ॥ ३ ॥

सोचिअ पुनि पतिबंचक नारी । कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी ॥

सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई । जो नहिं गुर आयसु अनुसरई ॥ ४ ॥

पुनः उस स्त्रीका सोच करना चाहिये जो पतिको छलनेवाली, कलहप्रिय और स्वेच्छाचारिणी है । उस ब्रह्मचारीका सोच करना चाहिये जो अपने ब्रह्मचर्य-व्रतको छोड़ देता है और गुरुकी आज्ञाके अनुसार नहीं चलता ॥ ४ ॥

दो०—सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग ।

सोचिअ जती प्रपंचरत बिगत बिबेक बिराग ॥१७२॥

उस गृहस्थका सोच करना चाहिये जो मोहवश कर्ममार्गका त्याग कर देता है; उस संन्यासीका सोच करना चाहिये जो दुनियाके प्रपञ्चमें फँसा हुआ है और ज्ञान-वैराग्यसे हीन है ॥ १७२ ॥

चौ०—बैखानस सोइ सोचै जोगू । तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू ॥

सोचिअ पिंसुन अकारन क्रोधी । जननि जनक गुर बंधु बिरोधी ॥ १ ॥

वानप्रस्थ वही सोच करने योग्य है जिसको तपस्या छोड़कर भोग अच्छे लगते हैं । सोच उसका करना चाहिये जो चुगलखोर है, बिना ही कारण क्रोध करनेवाला है तथा माता, पिता, गुरु एवं भाई-बन्धुओंके साथ विरोध रखनेवाला है ॥ १ ॥

सब बिधि सोबिअ पर अपकारी । निज तनु पोषक निरख्य भारी ॥

सोचनीय सबहीं बिधि सोई । जो न छाड़ि छलु हरिजन होई ॥ २ ॥

सब प्रकारसे उसका सोच करना चाहिये जो दूसरोंका अनिष्ट करता है, अपने ही शरीरका पोषण करता है और बड़ा भारी निर्दयी है । और वह तो सभी प्रकारसे सोच करने योग्य है जो छल छोड़कर हरिका भक्त नहीं होता ॥ २ ॥

सोचनीय नहिं कोसलराऊ । भुषन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥

भयउ न अहइ न अब होनिहारा । भूप भरत जस पिता तुम्हारा ॥ ३ ॥

कोसलराज दशरथजी सोच करने योग्य नहीं हैं, जिनका प्रभाव चौदहों लोकोंमें प्रकट है । हे भरत ! तुम्हारे पिता-जैसा राजा तो न हुआ, न है और न अब होनेका ही है ॥ ३ ॥

बिधि हरि हरु सुरपति दिसिनाथा । बरनहिं सब दसरथ गुन गाथा ॥ ४ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र और दिक्पाल सभी दशरथजीके गुणोंकी कथाएँ कहा करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—कहहु तात केहि भाँति कोउ करिहि बड़ाई तासु ।

राम लखन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु ॥ १७३ ॥

हे तात ! कहो, उनकी बड़ाई कोई किस प्रकार करेगा जिनके श्रीराम, लक्ष्मण, तुम और शत्रुघ्न-सरीखे पवित्र पुत्र हैं ? ॥ १७३ ॥

चो०—सब प्रकार भूपति बड़भागी । बादि विपादु करिअ तेहि लागी ॥

यहु सुनि समुझि सोचु परिहरहु । सिर धरि राज रजायसु करहु ॥ १ ॥

राजा सब प्रकारसे बड़भागी थे । उनके लिये विषाद करना व्यर्थ है । यह सुन और समझकर सोच त्याग दो और राजाकी आज्ञा सिर चढ़ाकर तदनुसार करो ॥ १ ॥

रायँ राजपदु तुम्ह कहँ दीन्हा । पिता वचनु फुर चाहिअ कीन्हा ॥

तजे रामु जेहिं वचनहि लागो । तनु परिहरेउ राम बिरहागी ॥ २ ॥

राजाने राजपद तुमको दिया है । पिताका वह वचन तुम्हें सत्य करना चाहिये जिस वचनके लिये ही उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको त्याग दिया और रामविरहकी अग्निसे अपने शरीरकी आहुति दे दी ! ॥ २ ॥

नृपहि वचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना । करहु तात पितुवचन प्रवाना ॥

करहु सीस धरि भूप रजाई । हइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई ॥ ३ ॥

राजाको वचन प्रिय थे, प्राण प्रिय नहीं थे । इसीलिये हे तात ! पिताके वचनोंको प्रमाण (सत्य) करो । राजाकी आज्ञा सिर चढ़ाकर पालन करो । इसमें तुम्हारी सब तरह भलाई है ॥ ३ ॥

परसुराम पितु अग्या राखी । मारी मातु लोक सब साखी ॥

तनय जजातिहि जौवनु दयऊ । पितु अग्याँ अघ अजसु न भयऊ ॥ ४ ॥

परशुरामजीने पिताकी आज्ञा रक्खी, और माताको मार डाला; सब लोक इस बातके साक्षी हैं । राजा ययातिके पुत्रने पिताको अपनी जवानी दे दी । पिताकी आज्ञा पालन करनेसे उन्हें पाप और अपयश नहीं हुआ ॥ ४ ॥

दो०—अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन ।

ते भाजन सुख सुजस के बसाहिं अमरपति ऐन ॥ १७४ ॥

जो अनुचित और उचितका विचार छोड़कर पिताके वचनोंका पालन करते हैं, वे यहाँ सुख और सुयशके पात्र होकर अन्तमें इन्द्रपुरी (स्वर्ग) में निवास करते हैं ॥१७४॥

चौ०—अवसि नरेस बचन कुर करहु । पालहु प्रजा सोकु परिहरहु ॥

सुरपुर नृप पाइहि परितोष । तुम्ह कहूँ सुकृत सुजसु नहिं दोष ॥ १ ॥

राजाका वचन अवश्य सत्य करो । शोक त्याग दो और प्रजाका पालन करो । ऐसा करनेसे स्वर्गमें राजा सन्तोष पावेंगे और तुमको पुण्य और सुन्दर यश मिलेगा, दोष नहीं लगेगा ॥ १ ॥

वेद बिदित संमत सबही का । जेहि पितु देह सो पावइ टीका ॥

करहु राजु परिहरहु गलानी । मानहु मोर बचन हित जानी ॥ २ ॥

यह वेदमें प्रसिद्ध है और [स्मृति-पुराणादि] सभी शास्त्रोंके द्वारा सम्मत है कि पिता जिसको दे, वही राजतिलक पाता है । इसलिये तुम राज्य करो, रत्नानिका त्याग कर दो । मेरे वचनको हित समझकर मानो ॥ २ ॥

सुनि सुख लहव राम बैदेहीं । अनुचित कहव न पंडित केहीं ॥

कौसल्यादि सकल महतारीं । तेउ प्रजासुख होहिं सुखारीं ॥ ३ ॥

इस बातको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी और जानकीजी सुख पावेंगे और कोई पण्डित इसे अनुचित नहीं कहेगा । कौसल्याजी आदि तुम्हारी सब माताएँ भी प्रजाके सुखसे सुखी होंगी ॥ ३ ॥

परम तुम्हार राम कर जानिहि । सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि ॥

सौपेहु राजु राम कें आएँ । सेवा करेहु सनेह सुहाएँ ॥ ४ ॥

जो तुम्हारे और श्रीरामचन्द्रजीके श्रेष्ठ सम्बन्धको जान लेगा, वह सभी प्रकारसे तुमसे भला मानेगा । श्रीरामचन्द्रजीके लौट आनेपर राज्य उन्हें सौंप देना और सुन्दर स्नेहसे उनकी सेवा करना ॥ ४ ॥

दो०—कीजिअ गुर आयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि ।

रघुपति आएँ उचित जस तस तब करब बहोरि ॥१७५॥

मन्त्री हाथ जोड़कर कह रहे हैं—गुरुजीकी आज्ञाका अवश्य ही पालन कीजिये । श्रीरघुनाथजीके लौट आनेपर जैसा उचित हो, तब फिर वैसा ही कीजियेगा ॥१७५॥

चौ०—कौसल्या धरि धीरजु कहई । पूत पथ्य गुर आयसु अहई ॥

सो आदरिअ करिअ हित मानी । तजिअ बिषादु कालगति जानी ॥ १ ॥

कौसल्याजी भी धीरज धरकर कह रही हैं—हे पुत्र ! गुरुजीकी आज्ञा पथ्यरूप है, उसका आदर करना चाहिये और हित मानकर उसका पालन करना चाहिये । कालकी गतिको जानकर विषादका त्याग कर देना चाहिये ॥ १ ॥

बन रघुपति सुरपति नरनाह । तुम्ह पहि भाँति तात कदराह ॥

परिजन प्रजा सचिव सब अंबा । तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजी वनमें हैं, महाराज स्वर्गका राज्य करने चले गये । और हे तात ! तुम इस प्रकार कातर हो रहे हो । हे पुत्र ! कुटुम्ब, प्रजा, मन्त्री और सब माताओंके—सबके एक तुम ही सहारे हो ॥ २ ॥

लखि बिधि बाम कालु कठिनाई । धीरजु धरहु मातु बलि जाई ॥

सिर धरि गुर आयसु अनुसरहु । प्रजा पालि परिजन दुखु हरहु ॥ ३ ॥

विधाताको प्रतिकूल और कालको कठोर देखकर धीरज धरो, माता तुम्हारी बलिहारी जाती है। गुरुकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर उसीके अनुसार कार्य करो और प्रजाका पालन कर कुटुम्बियोंका दुःख हरो ॥ ३ ॥

गुर के बचन सचिव अभिनंदनु । सुने भरत हिय हित जनु चंदनु ॥

सुनी बहोरि मातु मृदु बानी । सील सनेह सरल रस सानी ॥ ४ ॥

भरतजीने गुरुके वचनों और मन्त्रियोंके अभिनन्दन (अनुमोदन) को सुना, जो उनके हृदयके लिये मानो चन्दनके समान शीतल थे। फिर उन्होंने शील, स्नेह और सरलताके रसमें सनी हुई माता कौसल्याकी कोमल वाणी सुनी ॥ ४ ॥

छं०—सानी सरल रस मातुबानी सुनि भरतु व्याकुल भए ।

लोचन सरोरुह स्रवत सींचत विरह उर अंकुर नए ॥

सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की ।

तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज सनेह की ॥

सरलताके रसमें सनी हुई माताकी वाणी सुनकर भरतजी व्याकुल हो गये। उनके नेत्र-कमल जल बहाकर हृदयके नवीन विरह-अंकुरको सींचने लगे (नेत्रोंके आँसुओंने उनके वियोग-दुःखको बहुत ही बढ़ाकर उन्हें अत्यन्त व्याकुल कर दिया)। उनकी वह दशा देखकर उस समय सबको अपने शरीरकी सुष भूल गयी। तुलसीदासजी कहते हैं—स्वामाविक प्रेमकी सीमा श्रीभरतजीकी सब लोग आदरपूर्वक सराहना करने लगे।

सो०—भरतु कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि ।

बचन अमिअँ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि ॥ १७६ ॥

धैर्यकी धुरीको धारण करनेवाले भरतजी धीरज धरकर, कमलके समान हाथोंको जोड़कर, वचनोंको मानो अमृतमें डुबाकर सबको उचित उत्तर देने लगे—॥ १७६ ॥

मासपारायण अठारहवाँ विश्राम

चो०—मोहि उपदेशु दीन्ह गुर नीका । प्रजा सचिव संमत सबही का ॥

मातु उचित धरि आयसु दीन्हा । अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा ॥ १ ॥

गुरुजीने मुझे सुन्दर उपदेश दिया। प्रजा, मन्त्री आदि सभीको यही सम्मत है। माताने भी उचित समझकर ही आज्ञा दी है और मैं भी अवश्य उसको सिर चढ़ाकर वैसा ही करना चाहता हूँ ॥ १ ॥

गुर पितु मातु स्वामि हित बानी । सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी ॥

उचित कि अनुचित किँएँ बिचारू । धरमु जाइ सिर पातक भारू ॥ २ ॥

क्योंकि गुरु, पिता, माता, स्वामी और सुहृद्की वाणी सुनकर आनन्दभरे मनसे उसे अच्छी समझकर करना (मानना) चाहिये। उचित-अनुचितका विचार करनेसे धर्म जाता है और सिरपर पापका भार चढ़ता है ॥ २ ॥

तुम्ह तो देहु सरल सिख सोई । जो आचरत मोर भल होई ॥

जद्यपि यह समुझत हउँ नीकँ । तदपि होत परितोषु न जी कँ ॥ ३ ॥

आप तो मुझे वही सरल शिक्षा दे रहे हैं, जिसके आचरण करनेमें मेरा भला हो। यद्यपि मैं इस बातकी भलीभाँति समझता हूँ, तथापि मेरे हृदयको सन्तोष नहीं हाता ॥ ३ ॥

अब तुम्ह विनय मोरि सुनि लेहू । मोहि अनुहरत सिखावनु देहू ॥

ऊतर देऊँ छमब अपराधू । दुखित दोष गुन गनहिं न साधू ॥ ४ ॥

अब आपलोग मेरी विनती सुन लीजिये, और मेरी योग्यताके अनुसार मुझे शिक्षा दीजिये । मैं उत्तर दे रहा हूँ, यह अपराध क्षमा कीजिये । साधु पुरुष दुखी मनुष्यके दोष-गुणोंको नहीं गिनते ॥ ४ ॥

दो०—पितु सुरपुर सिय रामु बन करन कहहु मोहि राजु ।

एहि तैं जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु ॥ १७७ ॥

पिताजी स्वर्गमें हैं, श्रीसीतारामजी वनमें हैं और मुझे आप राज्य करनेके लिये कह रहे हैं । इसमें आप मेरा कल्याण समझते हैं या अपना कोई बड़ा काम [होनेकी आशा रखते हैं] ? ॥ १७७ ॥

चौ०—हित हमार सियपति सेवकाई । सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई ॥

मैं अनुमानि दीख मन माहीं । आन उपायँ मोर हित नाहीं ॥ १ ॥

मेरा कल्याण तो सीतापति श्रीरामजीकी चाकरीमें है, सो उसे माताकी कुटिलताने छीन लिया । मैंने अपने मनमें अनुमान करके देख लिया है कि दूसरे किसी उपायसे मेरा कल्याण नहीं है ॥ १ ॥

सोकसमाजु राजु केहि लेखें । लखन राम सिय बिनु पद देखें ॥

बादि बसन बिनु भूषनभारू । बादि बिरति बिनु ब्रह्मविचारू ॥ २ ॥

यह शोकका समुदाय राज्य लक्ष्मण, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीके चरणोंको देखे बिना किस गिनतीमें है । जैसे कपड़ोंके बिना गहनोका बोझ व्यर्थ है । वैराग्यके बिना ब्रह्मविचार व्यर्थ है ॥ २ ॥

सरजु सरीर बादि बहु भोगा । बिनु हरिभगति जायँ जप जोगा ॥

जायँ जीव बिनु देह सुहाई । बादि मोर सबु बिनु रघुराई ॥ ३ ॥

रोगी शरीरके लिये नाना प्रकारके भोग व्यर्थ हैं । श्रीहरिकी भक्तिके बिना जप और योग व्यर्थ हैं । जीवके बिना सुन्दर देह व्यर्थ है । वैसे ही श्रीरघुनाथजीके बिना मेरा सब कुछ व्यर्थ है ॥ ३ ॥

जाउँ राम पहिँ आयसु देहू । एकहिँ आँक मोर हित एहू ॥

मोहि नृप करि भल आपन चहहू । सोउ सनेह जड़ता बस कहहू ॥ ४ ॥

मुझे आज्ञा दीजिये, मैं श्रीरामजीके पास जाऊँ । एक ही आँक (निश्चयपूर्वक) मेरा हित इसीमें है । और मुझे राजा बनाकर आप अपना भला चाहते हैं, यह भी आप स्नेहकी जड़ता (मोह) के वश होकर ही कह रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—कैकेई सुअ कुटिलमति रामविमुख गतलाज ।

तुम्ह चाहत सुख मोहबस मोहि से अधम कें राज ॥ १७८ ॥

कैकेयीके पुत्र, कुटिलबुद्धि, रामविमुख और निर्लज मुझ-से अधमके राज्यसे आप मोहके वश होकर ही सुख चाहते हैं ॥ १७८ ॥

चौ०—कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहू । चाहिअ धरमसील नरनाहू ॥

मोहि राजु हठि देहहू जबहीं । रसा रसातल जाइहि तबहीं ॥ १ ॥

मैं सत्य कहता हूँ, आप सब सुनकर विश्वास करें, धर्मशीलको ही राजा होना चाहिये । आप मुझे हठ करके ज्यों ही राज्य देंगे, त्यों ही पृथ्वी पातालमें धँस जायगी ॥ १ ॥

मोहि समान को पापनिवास् । जेहि लागि सीय राम बनबास् ॥

रायँ राम कहँ काननु दीन्हा । बिछुरत गमनु अमरपुर कीन्हा ॥ २ ॥

मेरे समान पापोंका घर कौन होगा, जिसके कारण सीताजी और श्रीरामजीका बनवास हुआ ? राजाने श्रीरामजीको बन दिया, और उनके बिछुड़ते ही स्वयं स्वर्गको गमन किया ॥ २ ॥

मैं सठु सब अनरथ कर हेतू । बैठ बात सब सुनउँ सचेतू ॥

बिनु रघुबीर बिलोकि अबास् । रहे प्रान सहि जग उपहास् ॥ ३ ॥

और मैं दुष्ट, जो सारे अनर्थोंका कारण हूँ, होश-हवासमें बैठा सब बातें सुन रहा हूँ ! श्रीरघुनाथजीसे रहित घरको देखकर और जगत्का उपहास सहकर भी ये प्राण बने हुए हैं ॥ ३ ॥

राम पुनीत विषय रस रूखे । लोलुप भूमि भोग के भूखे ॥

कहँ लागि कहौं हृदय कठिनाई । निदरि कुलिसु जेहिं लही वड़ाई ॥ ४ ॥

[इसका यही कारण है कि ये प्राण] श्रीरामरूपी पवित्र विषय-रसमें आसक्त नहीं हैं । ये लालची भूमि और भोगिकी ही भूखे हैं । मैं अपने हृदयकी कठोरता कहाँतक कहूँ ? जिसने वज्रका भी तिरस्कार करके बढ़ाई पायी है ॥ ४ ॥

दो०—कारन तें कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर ।

कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर ॥ १७९ ॥

कारणसे कार्य कठिन होता ही है; इसमें मेरा दोष नहीं । हड्डीसे वज्र और पत्थरसे लोहा भयानक और कठोर होता है ॥ १७९ ॥

चो०—कैकई भव तनु अनुरागे । पावँर प्रान अघाइ अभागो ॥

जौं प्रियबिरहँ प्रान प्रिय लागे । देखव सुनव बहुत अब आगे ॥ १ ॥

कैकेयीसे उत्पन्न देहमें प्रेम करनेवाले ये पामर प्राण भ्रष्ट (पूरी तरहसे) अभागो हैं । जब प्रियके वियोगमें भी मुझे प्राण प्रिय लग रहे हैं तब अभी आगे मैं और भी बहुत कुछ देखूँ-सुनूँगा ॥ १ ॥

लखन राम सिय कहँ बन दीन्हा । पठइ अमरपुर पतिहित कीन्हा ॥

लीन्ह बिधवापन अपजसु आपू । दीन्हेउ प्रजहि सोकु संतापू ॥ २ ॥

लक्ष्मण, श्रीरामजी और सीताजीको तो बन दिया; स्वर्ग भेजकर पतिका कल्याण किया; स्वयं विधवापन और अपयश लिया; प्रजाको शोक और सन्ताप दिया; ॥ २ ॥

मोहि दीन्ह सुख सुजसु सुराजू । कीन्ह कैकई सब कर काजू ॥

एहि तें मोर काह अब नीका । तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका ॥ ३ ॥

और मुझे सुख, सुन्दर यश और उत्तम राज्य दिया ! कैकेयीने सभीका काम बना दिया ! इससे अच्छा अब मेरे लिये और क्या होगा ? उसपर भी आप लोग मुझे राजतिलक देनेको कहते हैं ! ॥ ३ ॥

कैकई जठर जनमि जग माहीं । यह मोहि कहँ कह्यु अनुचित नाहीं ॥

मोरि बात सब बिधिहिं बनाई । प्रजा पाँच कत करहु सहाई ॥ ४ ॥

कैकेयीके पेटसे जगत्में जन्म लेकर यह मेरे लिये कुछ भी अनुचित नहीं है । मेरी सब बात तो विधाताने ही बना दी है । फिर उसमें प्रजा और पंच (आप लोग) क्यों सहायता कर रहे हैं ? ॥ ४ ॥

दो०—ग्रह ग्रहीत पुनि बातबस तेहि पुनि बीछी मार ।

तेहि पिआइअ बारूनी कहहु काह उपचार ॥१८०॥

जिसे कुग्रह लगे हों [अथवा जो पिशाचग्रस्त हो], फिर जो वायुरोगसे पीड़ित हो, और उसीको फिर बिच्छू डंक मार दे, उसको यदि मदिरा पिलायी जाय, तो कहिये यह कैसा इलाज है ! ॥१८०॥

चौ०—कैकह सुअन जोगु जग जोई । चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई ॥

दसरथ तनय राम लघु भाई । दीन्ह मोहि बिधि बादि बड़ाई ॥ १ ॥

कैकेयीके लड़केके लिये जो कुछ योग्य था, चतुर विधाताने मुझे वही दिया । पर 'दशरथजीका पुत्र' और 'रामका छोटा भाई' होनेकी बड़ाई मुझे विधाताने व्यर्थ ही दी ॥ १ ॥

तुम्ह सब कहहु कदावन टीका । राय रजायसु सब कहँ नीका ॥

उतर देउँ केहि बिधि केहि केही । कहहु सुखेन जथा रुचि जेही ॥ २ ॥

आप सब लोग भी मुझे टीका कढ़ानेके लिये कह रहे हैं ! राजाकी आज्ञा सभीके लिये अच्छी है । मैं किस-किसको किस-किस प्रकारसे उत्तर दूँ ? जिसकी जैसी रुचि हो, आप लोग सुखपूर्वक वही कहें ॥ २ ॥

मोहि कुमातु समेत बिहाई । कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई ॥

मो बिनु को सचराचर माहीं । जेहि सिय रामु प्रानप्रिय नाहीं ॥ ३ ॥

मेरी कुमाता कैकेयी समेत मुझे छोड़कर, कहिये, और कौन कहेगा कि यह काम अच्छा किया गया ! जड़-चेतन जगत्में मेरे सिवा और कौन है जिसको श्रीसीतारामजी प्राणोंके समान प्यारे न हों ॥ ३ ॥

परम हानि सब कहँ बड़ लाह । अदिनु मोर नहिँ दूषन काह ॥

संसय सील प्रेम बस अहह । सबुइ उचित सब जो कहु कहह ॥ ४ ॥

जो परम हानि है, उसीमें सबको बड़ा लाम दीख रहा है । मेरा बुरा दिन है, किसीका दोष नहीं । आप सब जो कुछ कहते हैं सो सब उचित ही है । क्योंकि आप लोग संशय, शील और प्रेमके बश हैं ॥ ४ ॥

दो०—राममातु मुठि सरलचित मोपर प्रेमु बिसेषि ।

कहह सुभाय सनेह बस मोरि दीनता देखि ॥१८१॥

श्रीरामचन्द्रजीकी माता बहुत ही सरलहृदय हैं और मुझपर उनका विशेष प्रेम है । इसलिये मेरी दीनता देखकर वे स्वाभाविक स्नेहवश ही ऐसा कह रही हैं ॥१८१॥

चौ०—गुर बिबेकसागर जगु जाना । जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना ॥

मो कहँ तिलक साज सज सोऊ । भएँ बिधि बिमुख बिमुख सबु कोऊ ॥ १ ॥

गुरुजी ज्ञानके संप्रद हैं, इस बातको मारा जगत् जानता है, जिनके लिये विश्व हथेलीपर रखे हुए बेरके समान है । वे भी मेरे लिये राजतिलकका साज मज रहे हैं ! सत्य है, विधाताके विपरीत होनेपर सब कोई विपरीत हो जाते हैं ॥ १ ॥

परिहरि रामु सीय जग माहीं । कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं ॥

सो मैं सुनब सहब सुखु मानी । अंतहुँ कीच तहाँ जहँ पानी ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीको छोड़कर जगत्में कोई यह नहीं कहेगा कि इस अनर्थमें मेरी सम्मति नहीं है । मैं उसे सुखपूर्वक सुनूँगा और सहूँगा । क्योंकि जहाँ पानी होता है, वहाँ अन्तमें कीचड़ होता ही है ॥२॥

डर न मोहि जग कहिहि कि पोचू । परलोकहु कर नाहिन सोचू ॥

एकइ उर बस दुसह दवारी । मोहि लगि भे सिय रामु दुखारी ॥ ३ ॥

मुझे इसका डर नहीं है कि जगत् मुझे बुरा कहेगा, और न मुझे परलोकका ही सोच है। मेरे हृदयमें तो बस, एक ही दुःसह दावानल घघक रहा है कि मेरे कारण श्रीसीतारामजी दुखी हुए ॥ ३ ॥

जीवनलाहु लखन भल पावा । सबु तजि रामचरन मनु लावा ॥

मोर जनम रघुवर वन लागी । झूठ काह पछिताउँ अभाणी ॥ ४ ॥

जीवनका उत्तम लाभ तो लक्ष्मणने पाया, जिन्होंने सब कुछ तजकर श्रीरामजीके चरणोंमें मन लगाया। मेरा जन्म ता रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामजीके वनवासके लिये ही हुआ था। मैं अभागा झूठ-मूठ क्या पछताता हूँ ? ॥ ४ ॥

दो०—आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ ।

देखें बिनु रघुनाथपद जिय कै जरनि न जाइ ॥ १८२ ॥

सबको सिर झुकाकर मैं अपनी दारुण दीनता कहता हूँ। श्रीरघुनाथजीके चरणोंके दर्शन किये बिना मेरे जीकी जलन न जायगी ॥ १८२ ॥

चौ०—आन उपाउ मोहि नहिं सूझा । को जिय कै रघुवर बिनु बूझा ॥

एकहिं आँक इहइ मन माहीं । प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं ॥ १ ॥

मुझे दूसरा कोई उपाय नहीं सूझता। रघुवरके बिना मेरे हृदयकी बात कौन जान सकता है ? मनमें एक ही आँक (निश्चयपूर्वक) यही है कि प्रातःकाल प्रभु श्रीरामजीके पास चल दूँगा ॥ १ ॥

जद्यपि मैं अनभल अपराधी । मैं मोहि कारन सकल उपाधी ॥

तदपि सरन सनमुख मोहि देखी । छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी ॥ २ ॥

यद्यपि मैं बुरा हूँ और अपराधी हूँ, और मेरे ही कारण यह सब उपद्रव हुआ है, तथापि श्रीरामजी मुझे शरणमें सम्मुख आया हुआ देखकर सब अपराध क्षमा करके मुझपर विशेष कृपा करेंगे ॥ २ ॥

सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ । कृपा सनेह सदन रघुराऊ ॥

अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा । मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा ॥ ३ ॥

श्रीरघुनाथजी शीघ्र, संकोच, अत्यन्त सरल स्वभाव, कृपा और स्नेहके घर हैं। श्रीरामजीने कभी शत्रुका भी अनिष्ट नहीं किया। मैं यद्यपि टेढ़ा हूँ, पर हूँ तो उनका बच्चा और गुलाम ही ॥ ३ ॥

तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी । आयसु आसिप देहु सुबानी ॥

जेहिं सुनि बिनय मोहि जनु जानी । आवहिं बहुरि रामु रजधानी ॥ ४ ॥

आप पच (सब) लोग भी इसीमें मेरा कल्याण मानकर सुन्दर वाणीसे आज्ञा और आशीर्वाद दीजिये। जिसमें मेरी विनती सुनकर और मुझे अपना दास जानकर श्रीरामचन्द्रजी राजधानीको लौट आवें ॥ ४ ॥

दो०—जद्यपि जनमु कुमातु तैं मैं सटु सदा सदोस ।

आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस ॥ १८३ ॥

यद्यपि मेरा जन्म कुमातासे हुआ है और मैं दुष्ट तथा सदा दोषयुक्त भी हूँ, तो भी मुझे श्रीरामजीका भरोसा है कि वे मुझे अपना जानकर त्यागेंगे नहीं ॥ १८३ ॥

चौ०—भरत बचन सब कहँ प्रिय लागे । राम सनेह सुघाँ जनु पागे ॥

लोग बियोग विरम विष दागे । मंत्र सबीज सुनत जनु जागे ॥ १ ॥

भरतजीके बचन सबको प्यारे लगे । मानो वे श्रीरामजीके प्रेमरूपी अमृतमें पगे हुए थे । श्रीरामवियोगरूपी भीषण विषसे सब लोग जले हुए थे । वे मानो बीजसहित मन्त्रको सुनते ही जाग उठे ॥ १ ॥

मातु सचिव गुर पुर नर नारी । सकल सनेहँ बिकल भए भारी ॥

भरतहि कहहिं सराहि सराही । राम प्रेम मूरति तनु आही ॥ २ ॥

माता, मन्त्री, गुरु, नगरके स्त्री-पुरुष सभी स्नेहके कारण बहुत ही व्याकुल हो गये । सब भरतजीको सराह-सराहकर कहते हैं कि आपका शरीर श्रीरामप्रेमकी साक्षात् मूर्ति ही है ॥ २ ॥

तात भरत अस काहे न कहइ । प्रान समान राम प्रिय अहइ ॥

जो पावँर अपनी जइताई । तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाई ॥ ३ ॥

हे तात भरत ! आप ऐसा क्यों न कहें ? श्रीरामजीको आप प्राणोंके समान प्यारे हैं । जो नीच अपनी मूर्खतासे आपकी माता कैकेयीकी कुटिलताको लेकर आपपर सन्देह करेगा, ॥ ३ ॥

सो सठ कोटिक पुरुष समेता । वसिहि कलप सत नरक निकेता ॥

अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई । हरइ गरल दुख दारिद दहई ॥ ४ ॥

वह दुष्ट करोड़ों पुरुषोंसहित भी कल्पोंतक नरकके घरमें निवास करेगा । साँपके पाप और अवगुणको मार्ग नहीं ग्रहण करनी । बल्कि वह विषको हर लेती है और दुःख तथा दरिद्रताको भस्म कर देती है ॥ ४ ॥

दो०—अवसि चलिअ बन रामु जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह ।

सोकसिंधु बूड़त सबहि तुम्ह अवलंबनु दीन्ह ॥ १८४ ॥

हे भरत ! बनको अवश्य चलिए, जहाँ श्रीरामजी हैं; आपने बहुत अच्छी सलाह विचारी । शोकसमुद्रमें डूबने हुए सब लोगोंको आपने [बड़ा] सहाय दे दिया ॥ १८४ ॥

चौ०—भा सब केँ मन मोदु न थोरा । जनु घनधुनि सुनि चातक मोरा ॥

चलत प्रात लखि निरनउ नीके । भरतु प्रानप्रिय भे सबही के ॥ १ ॥

सबके मनमें कम आनन्द नहीं हुआ (अर्थात् बहुत ही आनन्द हुआ) । मानो मेघोंकी गर्जना सुनकर चातक और मोर आनन्दित हो रहे हों । कल प्रातःकाल चलते हैं, यह सुन्दर निर्णय देखकर भरतजी सभीको प्राणप्रिय हो गये ॥ १ ॥

मुनिहि बंदि भरतहि सिरु नाई । चले सकल घर विदा कराई ॥

धन्य भरत जीबनु जग माहीं । सीलु सनेहु सराहत जाहीं ॥ २ ॥

मुनि वशिष्ठजीकी वन्दना करके और भरतजीको सिर नवाकर, सब लोग विदा लेकर अपने-अपने घरको चले । जगत्में भरतजीका जीवन धन्य है, इस प्रकार कहते हुए वे उनके शील और स्नेहकी सराहना करते जाते हैं ॥ २ ॥

कहहिं परसपर भा बड़ काजू । सकल चले कर साजहिं साजू ॥

जेहि राखहिं रहु घर रखवारी । सो जानइ जनु गरदनि मारी ॥ ३ ॥

आपसमें कहते हैं—बड़ा काम हुआ । सभी चलनेकी तैयारी करने लगे । जिसको भी घरकी रखवालोके लिये रहो, ऐसा कहकर रखते हैं, वही समझता है मानो मेरी गर्दन मारी गयी ॥ ३ ॥

कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू । को न चहइ जग जीवनलाहू ॥ ४ ॥

कोई-कोई कहते हैं—रहनेके लिये किसीको भी मत कहो । जगत्में जीवनका लाभ कौन नहीं चाहता ? ॥ ४ ॥

दो०—जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ ।

सनमुख होत जो रामपद करइ न सहस सहाइ ॥१८५॥

वह सम्पत्ति, घर, सुख, मित्र, माता, पिता, भाई सब जल जायें जो श्रीरामजीके चरणोंके सम्मुख होनेमें हँसते हुए (प्रसन्नतापूर्वक) सहायता न करें ॥१८५॥

चौ०—घर घर साजहिं बाहन नाना । हरषु हृदयँ परभात पयाना ॥

भरत जाइ घर कीन्ह विचारू । नगर बाजि गज भवन भँडारू ॥ १ ॥

घर-घर लोग अनेकों प्रकारकी सवारियों सजा रहे हैं । हृदयमें [बड़ा] हर्ष है कि सवेरे चलना है । भरतजीने घर जाकर विचार किया कि नगर, घोड़े-हाथी, महल-खजाना आदि—॥ १ ॥

संपति सब रघुपति कै आही । जौ विनु जतन चलौ तजि ताही ॥

तौ परिनाम न मोरि भलाई । पाप सिरोमनि साँइ दोहाई ॥ २ ॥

सारी सम्पत्ति श्रीरघुनाथजीकी है । यदि उसकी रक्षाकी व्यवस्था किये बिना उसे ऐसे ही छोड़कर चल दूँ, तो परिणाममें मेरी भलाई नहीं है । क्योंकि स्वामीका द्रोह सब पापोंमें शिरोमणि (श्रेष्ठ) है ॥ २ ॥

करइ स्वामिहित सेवकु सोई । दूपन कोटि देइ किन कोई ॥

अस विचारि सुचि सेवक बोले । जे सपनेहुँ निज धरम न डोले ॥ ३ ॥

सेवक वही है जो स्वामीका हित करे, चाहे कोई करोड़ों दोष क्यों न दे । भरतजीने ऐसा विचारकर ऐसे विश्वासपात्र सेवकोंको बुलाया जो कर्मा स्वप्नमें भी अपने धर्मसे नहीं डिगे थे ॥ ३ ॥

कहि सबु मरमु घरमु भल भाग । जो जेहि लायक सो तेहिं राखा ॥

करि सबु जतनु राखि रखचारें । राममातु पहिं भरतु सिघारें ॥ ४ ॥

भरतजीने उनको सब भेद समझाकर फिर उत्तम धर्म बतलाया; और जो जिस योग्य था, उसे उसी कामपर नियुक्त कर दिया । सब व्यवस्था करके, रक्षकोंको रखकर भरतजी राममाता कौसल्याजीके पास गये ॥ ४ ॥

दो०—आरत जननीं जानि सब भरत सनेह सुजान ।

कहेउ बनावन पालकीं सजन सुखासन जान ॥१८६॥

स्नेहके सुजान (प्रेमके तत्त्वको जाननेवाले) भरतजीने सब माताओंको आर्त (दुखी) जानकर उनके लिये पालकियाँ तैयार करने तथा सुखामन यान (सुखयात्रा) मजानेके लिये कहा ॥१८६॥

चौ०—चक्र चक्रि जिमि पुर नर नारी । चहत प्रात उर आरत भारी ॥

जागत सब निसि भयउ बिहाना । भरत बोलाए सचिव सुजाना ॥ १ ॥

कल्याण

(१) भरत-शत्रुघ्नका वन-गमन



मौपि नगर मुनि सेवकनि सादर सकल चलाइ ।
सुमिरि राम सिध चरन तव चंदे भरत दांड भाइ ॥
[पृष्ठ ४४९]

(२) भरत-निषाद-मिलन



करन दंडवत देवि नेहि भरत लीन्ह उर लाइ ।
मनहुँ लखन सन भेट भइ प्रेमु न हृदय समाइ ॥
[पृष्ठ ४५३]

(३) भरद्वाज-मिलन



भाद उठाए लाइ उर लीन्है ।
दीन्हि अमीम पूतागण कीन्है ॥
[पृष्ठ ४६२]

(४) राम-भरत-मिलन



बरखस शिष्ट उठाइ उर लाए कृपानिधान ।
भरत राम की मिलनि लीन चिगरे सवाहि अपान ॥
[पृष्ठ ४८६]

नगरके नर-नारी चकवे-चकवीकी भौंति हृदयमें अत्यन्त आर्त होकर प्रातःकालका होना चाहते हैं । सारी रात जागते-जागते सबेरा हो गया । तब भरतजीने चतुर मन्त्रियोंको बुलवाया—॥ १ ॥

कहेउ लेहु सबु तिलकसमाजू । बनहिं देब मुनि रामहि राजू ॥
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे । तुरत तुरग रथ नाग सँवारे ॥ २ ॥

और कहा—तिलकका सब सामान ले चलो । वनमें ही मुनि वशिष्ठजी भीरामचन्द्रजीको राज्य देंगे, जल्दी चलो । यह सुनकर मन्त्रियोंने वन्दना की और तुरन्त घोड़े, रथ और हाथी सजवा दिये ॥ २ ॥

अरुंधती अरु अग्निनि समाऊ । रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ ॥
बिप्रबृंद चढ़ि बाहन नाना । चले सकल तप तेज निधाना ॥ ३ ॥

सबसे पहले मुनिराज वशिष्ठजी अरुन्धती और अग्निहोत्रकी सब सामग्रीसहित रथपर सवार होकर चले । फिर ब्राह्मणोंके समूह, जो सब-के-सब तपस्या और तेजके भण्डार हैं, अनेकों सवारियोंपर चढ़कर चले ॥ ३ ॥

नगर लोग सब सजि सजि जाना । चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना ॥
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी । चढ़ि चढ़ि चलत भई सब रानी ॥ ४ ॥

नगरके सब लोग रथोंको सजा-सजाकर चित्रकूटको चल पड़े । जिनका वर्णन नहीं हो सकता, ऐसी सुन्दर पालकियोंपर चढ़-चढ़कर सब रानियाँ चलीं ॥ ४ ॥

दो०—सौंपि नगर सुचि सेवकनि सादर सकल चलाइ ।

सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरत दोउ भाइ ॥ १८७ ॥

विश्वासपात्र सेवकोंको नगर सौंपकर और सबको आदरपूर्वक रवाना करके, तब भीसीतारामजीके चरणोंको स्मरण करके भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले ॥ १८७ ॥

चौ०—राम दरस बस सब नर नारी । जनु करि करिनि चले तकि बारी ॥

बन सिय रामु समुझि मन माहीं । सानुज भरत पयादेहिं जाहीं ॥ १ ॥

भीरामचन्द्रजीके दर्शनके वशमें हुए (दर्शनकी अनन्य लालसासे) सब नर-नारी ऐसे चले मानो प्यासे हाथी-हथिनो जलको तककर [बड़े तेजीसे बावले-से हुए] जा रहे हों । भीसीतारामजी [सब सुखोंको छोड़कर] वनमें हैं, मनमें ऐसा विचार करके छोटे भाई शत्रुघ्नजी सहित भरतजी पैदल ही चले जा रहे हैं ॥ १ ॥

देखि सनेहु लोग अनुरागे । उतरि चले हय गय रथ त्यागे ॥

जाइ समीप राखि निज डोली । राममातु मृदु बानी बोली ॥ २ ॥

उनका स्नेह देखकर लोग प्रेममें मग्न हो गये और सब घोड़े, हाथी, रथोंको छोड़कर, उनसे उतरकर पैदल चलने लगे । तब भीरामचन्द्रजीकी माता कौसल्याजी भरतजीके पास जाकर और अपनी पालकी उनके समीप खड़ी करके कोमल वाणीसे बोली—॥ २ ॥

तात चढ़हु रथ बलि महतारी । होइहि प्रिय परिवार दुखारी ॥

तुम्हरे चलत चलिहि सबु लोगू । सकल सोककस नहिं मग जोगू ॥ ३ ॥

हे बेटा ! माता बलैयाँ लेती है, तुम रथपर चढ़ जाओ । नहीं तो सारा प्यारा परिवार दुखी हो जायगा । तुम्हारे पैदल चलनेसे सभी लोग पैदल चलेंगे । शोकके मारे सब दुबले हो रहे हैं, पैदल रास्तेके योग्य नहीं हैं ॥ ३ ॥

सिर धरि बचन चरन सिरु नाई । रथ चढ़ि चलत भय दोउ भाई ॥
तमसा प्रथम दिवस करि वासू । दूसर गोमति तीर निवासू ॥ ४ ॥

माताकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर और उनके चरणोंमें सिर नवाकर दोनों भाई रथपर चढ़कर चलने लगे । पहले दिन तमसापर वास (मुकाम) करके दूसरे दिन गोमतीके तीरपर निवास किया ॥ ४ ॥

दो०—पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग ।

करत राम हित नेम व्रत परिहरि भूषन भोग ॥ १८८ ॥

कोई दूध ही पीते, कोई फलहार करते और कुछ लोग रातको एक ही बार भोजन करते हैं । भूषण और भोग-विलासको छोड़कर सब लोग श्रीरामचन्द्रजीके लिये नियम और व्रत करते हैं ॥ १८८ ॥

चौ०—सई तीर बसि चले बिद्वान । सुंगबेरपुर सब निबराने ॥

समाचार सब सुने निषादा । हृदयँ बिचार करइ सविषादा ॥ १ ॥

रातभर सई नदीके तीरपर निवास करके सबेरे वहाँसे चल दिये और सब शृंगवेरपुरके समीप जा पहुँचे । निषादराजने सब समाचार सुने, तो वह दुखी होकर हृदयमें विचार करने लगा— ॥ १ ॥

कारन कवन भरतु बन जाहीं । है कलु कपटभाउ मन माहीं ॥

जौ पै जियँ न होति कुटिलाई । तौ कत लीन्ह संग कटकाई ॥ २ ॥

क्या कारण है जो भरत वनको जा रहे हैं ? मनमें कुछ कपटभाव अवश्य है । यदि मनमें कुटिलता न होती, तो साथमें सेना क्यों ले चले है ॥ २ ॥

जानहिं सानुज रामहि मारी । करौ अकंटक राजु सुखारी ॥

भरत न राजनीति उर आनी । तब कलंकु अब जीवनहानी ॥ ३ ॥

समझते हैं कि छोटे भाई लक्ष्मणसहित श्रीरामको मारकर सुखमें निष्कण्टक राज्य करूँगा । भरतने हृदयमें राजनीतिको स्थान नहीं दिया । तब (पहले) तो कलंक ही लगा था, अब तो जीवनसे ही हाथ धोना पड़ेगा ॥ ३ ॥

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा । रामहि समर न जीतनिहारा ॥

का आचरजु भरतु अस करहीं । नहिं बिषवेलि अमिअ फल फरहीं ॥ ४ ॥

सम्पूर्ण देवता और दैत्य वीर जुट जायँ, तो भी श्रीरामजीको रणमें जीतनेवाला कोई नहीं है । भरत जो ऐसा कर रहे हैं, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? विषकी वेले अमृतफल कभी नहीं फलती ! ॥ ४ ॥

दो०—अस बिचारि गुहँ ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु ।

हथवाँसहु बोरहु तरनि कीजिअ घाटारोहु ॥ १८९ ॥

ऐसा विचारकर गुह (निषादराज) ने अपनी जातिवालोंसे कहा कि सब लोग सावधान हो जाओ । नावोंको हाथमें (कब्जेमें) कर लो और फिर उन्हें डुबा दो, तथा सब घाटोंको रोक दो ॥ १८९ ॥

चौ०—होहु सँजोइल रोकहु घाटा । ठाटहु सकल मरै के ठाटा ॥

सनमुख लोह भरत सन लेऊँ । जियत न सुरसरि उतरन देऊँ ॥ १ ॥

सुसज्जित होकर घाटोंको रोक लो और सब लोग मरनेके साज सजा लो (अर्थात् भरतसे युद्धमें लड़कर मरनेके लिये तैयार हो जाओ) । मैं भरतसे सामने लोहा दूँगा और जीते-जी उन्हें गङ्गापार न उतरने दूँगा ॥ १ ॥

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा । रामकाजु छनभंगु सरीरा ॥
भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू । बड़ें भाग असि पाइअ मीचू ॥ २ ॥

युद्धमें मरण, फिर गङ्गाजीका तट; श्रीरामजीका काम और क्षणभंगुर शरीर (जो चाहे जब नाश हो जाय); भरत श्रीरामजीके भाई और राजा (उनके हाथसे मरना) और मैं नीच सेवक—बड़े भाग्यसे ऐसी मृत्यु मिलती है ॥ २ ॥

स्वामिकाज करिहउ रन रारी । जस धवलहिउँ भुवन दस चारी ॥
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें । दुहँ हाथ मुद मोदक मोरें ॥ ३ ॥

मैं स्वामीके कामके लिये रणमें लड़ाई करूँगा और चौदहो लोकोंको अपने यशसे उज्ज्वल कर दूँगा । श्रीरघुनाथजीके निमित्त प्राण त्याग दूँगा । मेरे तो दोनों ही हाथोंमें आनन्दके लड्डू हैं ॥ ३ ॥

साधुसमाज न जाकर लेखा । रामभगत महुँ जासु न रेखा ॥
जायँ जियत जग सो महिभारू । जननी जौवन विटप कुठारू ॥ ४ ॥

साधुओंके समाजमें जिसकी गिनती नहीं और श्रीरामजीके भक्तोंमें जिसका स्थान नहीं, वह जगत्में पृथ्वीका भार होकर व्यर्थ हो जाता है । वह माताके यौवनरूपी वृक्षके काटनेके लिये कुल्हाड़ामात्र है ॥ ४ ॥

दो०—बिगत विषाद निषादपति सबहि बड़ाइ उछाहु ।

सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु ॥ १९० ॥

[इस प्रकार श्रीरामजीके लिये प्राणसमर्पणका निश्चय करके] निषादराज विषादसे रहित हो गया और सबका उत्साह बढ़ाकर तथा श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके उसने तुरंत ही तरकस, धनुष और कवच माँगा ॥ १९० ॥

चौ०—बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ । सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ ॥

भलेहिं नाथ सब कहहिं सहरषा । एकहि एक बड़ावइ करषा ॥ १ ॥

[उसने कहा—] हे भाइयो ! जल्दी करो और सब सामान सजाओ । मेरी आज्ञा सुनकर कोई मनमें कायरता न लाये । सब हर्षके साथ बोल उठे—हे नाथ ! बहुत अच्छा; और आपसमें एक-दूसरेका जोश बढ़ाने लो ॥ १ ॥

चले निषाद जोहारि जोहारी । सूर सकल रन रुचइ रारी ॥

सुमिरि राम पद पंकज पनहीं । भार्यी बाँधि चढ़ाइन्हि धनहीं ॥ २ ॥

निषादराजको जोहार कर-करके सब निषाद चले । सभी बड़े शूरवीर हैं और संग्राममें लड़ना उन्हें बहुत अच्छा लगता है । श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंकी जूतियोंका स्मरण करके उन्होंने भार्या (छोटे-छोटे तरकस) बाँधकर धनुहियों (छोटे-छोटे धनुषों) पर प्रत्यक्षा चढ़ायी ॥ २ ॥

अँगरीं पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं । फरसा बाँस सेल सम करहीं ॥

एक कुसल अति ओढ़न खाँड़े । कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े ॥ ३ ॥

कवच पहनकर सिरपर लोहेका टोप रखते हैं और फरसे, भाले तथा बरछोंको सीधा कर रहे हैं (सुघर रहे हैं) । कोई तलवारके वार रोकनेमें अत्यन्त ही कुशल हैं; वे ऐसे उमंगमें भरे हैं मानो भरती छोड़कर आकाशमें कूद (उछल) रहे हो ॥ ३ ॥

निज निज साजु समाजु बनाई । गुह राउतहि जोहारे जाई ॥
देखि सुभट सब लायक जाने । लै लै नाम सकल सनमाने ॥ ४ ॥

अपना-अपना साज-समाज (लड़ाईका सामान और दल) बनाकर उन्होंने जाकर निषादराज गुहको जोहार की । निषादराजने सुन्दर योद्धाओंको देखकर, सबको सुयोग्य जाना और नाम ले-लेकर सबका सम्मान किया ॥ ४ ॥

दो०—भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहि ।
सुनि सरोष बोले सुभट वीर अधीर न होहि ॥१९१॥

[उसने कहा—] हे भाइयो ! धोखा न लाना (अर्थात् मरनेसे न घबराना), आज मेरा बड़ा भारी काम है । यह सुनकर सब योद्धा बड़े जोशके साथ बोल उठे—हे वीर ! अधीर मत हो ॥१९१॥

चौ०—राम प्रताप नाथ बल तोरें । करहिं कटकु बिनु भट बिनु धोरें ॥
जीषत पाउ न पाछें धरहीं । रुंड मुंडमय मेदिनि करहीं ॥ १ ॥

हे नाथ ! श्रीरामचन्द्रजीके प्रतापसे और आपके बलसे हमलोग भरतकी सेनाको विना वीर और विना घोड़ेकी कर देंगे (एक-एक वीर और एक-एक घोड़ेको मार डालेंगे) । जीते-जी पीछे पाँव न रक्खेंगे । पृथ्वी-को रुण्ड-मुण्डमयी कर देंगे (सिरों और घड़ोंसे छा देंगे) ॥ १ ॥

दीख निषादनाथ भल टोल् । कहेउ बजाउ जुझाऊ दोल् ॥
एतना कहत छीक भइ बाँप । कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाप ॥ २ ॥

निषादराजने वीरोंका बढ़िया दल देखकर कहा—जुझाऊ (लड़ाईका) दौल बजाओ । इतना कहते ही बायीं ओर छीक हुई । शकुन विचारनेवालोंने कहा कि खेत सुन्दर हैं (जीत होगी) ॥ २ ॥

बूहु एकु कह सगुन बिचारी । भरतहि मिलिअ न होइहि रारी ॥
रामहि भरतु मनावन जाहीं । सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं ॥ ३ ॥

एक बूढ़ेने शकुन विचारकर कहा—भरतसे मिल लीजिये, उनसे लड़ाई नहीं होगी । भरत श्रीरामचन्द्रजीको मनाने जा रहे है । शकुन ऐसा कह रहा है कि विरोध नहीं है ॥ ३ ॥

सुनि गुह कहइ नीक कट बूढ़ा । सहसा करि पछिताहिं विमूढ़ा ॥
भरत सुभाउ सीलु विनु बूझें । बड़ि हितहानि जानि बिनु जूझें ॥ ४ ॥

यह सुनकर निषादराज गुहने कहा—बूढ़ा ठीक कह रहा है । जन्दीमे (विना विचारे) कोई काम करके मूर्खलोग पछताते हैं । भरतजीका शील-स्वभाव विना समझे और विना जाने युद्ध करनेमें हितकी बहुत बड़ी हानि है ॥ ४ ॥

दो०—गइहु घाट भट समिटि सब लेउँ मरम मिलि जाइ ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति तस तब करिहुँ आइ ॥१९२॥

अतएव सब वीर लोग इकट्ठे होकर सब घाटोंको रोक लो । मैं जाकर भरतजीसे मिलकर उनका भेद लेता हूँ । उनका भाव मित्रता है या शत्रुता या उदासीनता, यह जानकर तब आकर वैसा (उसीके अनुसार) प्रबन्ध करूँगा ॥१९२॥

चौ०—लखब सनेहु सुमायँ सुहायँ । बैर प्रीति नहिँ दुराँ दुराँ ॥

अस कहि भेंट सँजोवन लागे । कंद मूल फल खग मृग मागे ॥ १ ॥

उनके सुन्दर स्वभावसे मैं उनके स्नेहको पहचान लूँगा । बैर और प्रेम छिपानेसे नहीं छिपते । ऐसा कहकर वह भेंटका सामान सजाने लगा । उसने कन्द, मूल, फल, पशु और हिरन मँगवाये ॥ १ ॥

मीन पीन पाठीन पुराने । भरि भरि भार कहारन्ह आने ॥

मिलन साजु सजि मिलन सिधाप । मंगलमूल सगुन सुभ पाप ॥ २ ॥

कहार लींग पुरानी और मोटी पहिना नामक मछलियोंके भार भर-भरकर लाये । भेंटका सामान सजाकर मिलनेके लिये चले तो मङ्गलदायक शुभ शकुन मिले ॥ २ ॥

देखि दूरि तैं कहि निज नामू । कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू ॥

जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा । भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा ॥ ३ ॥

निषादराजने मुनिराज वशिष्ठजीको देखकर अपना नाम बतलाकर दूरहीसे दण्डवत् प्रणाम किया । मुनीश्वर वशिष्ठजीने उसको रामका प्यारा जानकर आशीर्वाद दिया और भरतजीको समझाकर कहा [कि यह श्रीरामजीका मित्र है] ॥ ३ ॥

रामसखा सुनि संदनु त्यागा । चले उतरि उमगत अनुरागा ॥

गाउँ जानि गुहँ नाउँ सुनाई । कीन्ह जोहार माथ महि लाई ॥ ४ ॥

यह श्रीरामका मित्र है, इतना सुनते ही भरतजीने रथ त्याग दिया । वे रथसे उतरकर प्रेममें उमंगते हुए चले । निषादराज गुहने अपना गाँव, जाति और नाम सुनाकर पृथ्वीपर माथा टेककर जोहार की ॥ ४ ॥

दो०—करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ ।

मनहुँ लखब सन भेंट भइ प्रेसु न हृदयँ समाइ ॥ १९३ ॥

दण्डवत् करते देखकर भरतजीने उठाकर उसको छातीसे लगा लिया । हृदयमें प्रेम समाता नहीं है, मानो स्वयं लक्ष्मणजीसे भेंट हो गयी हो ॥ १९३ ॥

चौ०—भेंटत भरतु ताहि अति प्रीति । लोग सिद्दाहिँ प्रेम कै रीति ॥

धन्य धन्य धुनि मंगलमूला । सुर सराहि तेहि बरिसहिँ फूला ॥ १ ॥

भरतजी गुहको अत्यन्त प्रेमसे गले लगा रहे हैं । प्रेमकी रीतिको सब लोग सिद्दा रहे हैं (ईर्ष्यापूर्वक प्रशंसा कर रहे हैं) । मङ्गलकी मूल 'धन्य-धन्य'की ध्वनि करके देवता उसकी सराहना करते हुए फूल बरसा रहे हैं ॥ १ ॥

लोक बेद सब भाँतिहिँ नीचा । जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा ॥

तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता । मिलत पुलक पस्पूरित गाता ॥ २ ॥

[वे कहते हैं—] जो लोक और वेद दोनोंमें सब प्रकारसे नीचा माना जाता है, जिसकी छायाके छू जानेसे भी स्नान करना होता है, उसी निषादसे अँकवार भरकर (हृदयसे चिपटाकर) श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई भरतजी [आनन्द और प्रेमवश] शरीरमें पुलकावलीसे परिपूर्ण हो मिल रहे हैं ॥ २ ॥

राम राम कहि जे जमुहाहीं । तिन्हहि न पापपुंज समुहाहीं ॥

यह तौ राम लाइ उर लीन्हा । कुल समेत जगु पावन कीन्हा ॥ ३ ॥

जो लोग राम-राम कहकर जँभाई लेते हैं (अर्थात् आलस्यसे भी जिनके मुँहसे रामनामका उच्चारण हो जाता है) पापोंके समूह (कोई भी पाप) उनके सामने नहीं आते । फिर इस गुहको तो स्वयं श्रीरामचन्द्रजीने हृदयसे ल्या लिया और कुलसमेत इसे जगत्पावन (जगत्को पवित्र करनेवाला) बना दिया ! ॥ ३ ॥

करमनास जलु सुरसरि परई । तेहि को कहहु सीस नहिं धरई ॥

उलटा नामु जपत जगु जाना । बालमीकि भए ब्रह्म समाना ॥ ४ ॥

कर्मनाशा नदीका जल गङ्गाजीमे पड़ जाता है (मिल जाता है), तब कहिये, उसे कौन सिरपर धारण नहीं करता ! जगत् जानता है कि उलटा नाम (मरा-मरा) जपते-जपते वाल्मीकिजी ब्रह्मके समान हो गये ॥ ४ ॥

दो०—स्वपच सबर स्वस जमन जड़ पावरँ कोल किरात ।

रामु कहत पावन परम होत भुवन विख्यात ॥ १९४ ॥

मूर्ख और पामर चाण्डाल, शबर, स्वस, यवन, कोल और किरात भी राम नाम कहते ही परम पवित्र और त्रिभुवनमें विख्यात हो जाते हैं ॥ १९४ ॥

चौ०—नहिं अचिरिजु जुग जुग चलि आई । केहि न दीन्हि रघुवीर बड़ाई ॥

राम नाम महिमा सुर कहहीं । सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहहीं ॥ १ ॥

इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, युग-युगान्तरसे यही रीति चली आ रही है । श्रीरघुनाथजीने किसको बड़ाई नहीं दी ! इस प्रकार देवता रामनामकी महिमा कह रहे हैं और उसे सुन-सुनकर अयोध्याके लोग सुख पा रहे हैं ॥ १ ॥

रामसखहि मिलि भरत सप्रेमा । पूँछी कुसल सुमंगल खेमा ॥

देखि भरत कर सालु सनेहु । भा निपाद तेहि समय विदेहु ॥ २ ॥

रामसखा निपादराजसे प्रेमके साथ मिलकर भरतजीने कुशल-क्षेम और सुन्दर मङ्गल-समाचार पूछे । भरतजीका शील और प्रेम देखकर निपाद उस समय विदेह हो गया (प्रेममुग्ध होकर देहकी सुध भूल गया) ॥ २ ॥

सकुच सनेहु मोदु मन बाढ़ा । भरतहि चितवत एकटक ठाढ़ा ॥

धरि धीरजु पद बंदि बहोरी । बिनय सप्रेम करत कर जोरी ॥ ३ ॥

उसके मनमें संकोच, प्रेम और आनन्द इतना बढ़ गया कि वह खड़ा-खड़ा एकटकी ल्याये भरतजीको देखता रहा । फिर धीरज धरकर भरतजीके चरणोंकी वन्दना करके प्रेमके साथ हाथ जोड़कर विनती करने लगा—॥ ३ ॥

कुसलमूल पद पंकज पेखी । मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी ॥

अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें । सहित कोटि कुल मंगल मोरें ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! कुशलके मूल आपके चरणकमलोंके दर्शन कर मैंने तीनों कालोंमें अपना कुशल जान लिया । अब आपके परम अनुग्रहसे करोड़ों कुलों (पीढ़ियों) सहित मेरा मङ्गल (कल्याण) हो गया ॥ ४ ॥

दो०—समुझि मोरि करतूति कुलु प्रभुमहिमा जियँ जोह ।

जो न भजइ रघुवीरपद जग विधिबंचित सोह ॥१९५॥

मेरी करतूत और कुलुको समझकर और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी महिमाको मनमें देख (विचार) कर (अर्थात् कहाँ तो मैं नीच जाति और नीच कर्म करनेवाला जीव, और कहाँ अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंके स्वामी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ! पर उन्होंने मुझ-जैसे नीचको भी अपनी अहैतुकी कृपावश अपना लिया—यह समझकर) जो रघुवीर श्रीरामजीके चरणोंका भजन नहीं करता, वह जगत्में विघातके द्वारा ठगा गया है ॥ १९५ ॥

चौ०—कपटी कायर कुमति कुजाती । लोक वेद बाहेर सब भाँती ॥

राम कीन्ह आपन जबही तैं । भयउँ भुवनभूषन तबही तैं ॥ १ ॥

मैं कपटी, कायर, कुबुद्धि और कुजाति हूँ और लोक-वेद दोनोंसे सब प्रकारसे बाहर हूँ । पर जबसे श्रीरामचन्द्रजीने मुझे अपनाया है, तभीसे मैं विश्वास भूषण हो गया ! ॥ १ ॥

देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई । मिलेउ बहोरि भरत लघु भाई ॥

कहि निपाद निज नाम सुबानी । सादर सकल जोहारी रानी ॥ २ ॥

निपादराजकी प्रीतिको देखकर और सुन्दर विनय सुनकर फिर भरतजीके छोटे भाई शत्रुघ्नजी उससे मिले । फिर निपादने अपना नाम ले-लेकर सुन्दर (नम्र और मधुर) वाणीसे सब रानियोंको आदरपूर्वक जोहार की ॥ २ ॥

जानि लखनसम देहिं बसीसा । जिबहु सुखी सय लाख बरीसा ॥

निरखि निपादु नगर नर नारी । भए सुखी जनु लखनु निहारी ॥ ३ ॥

रानियाँ उसे लक्ष्मणजीके समान समझकर आशीर्वाद देती हैं कि तुम सौ लाख वर्षोंतक सुखपूर्वक जिओ । नगरके स्त्री-पुरुष निपादको देखकर ऐसे सुखी हुए मानो लक्ष्मणजीको देख रहे हों ॥ ३ ॥

कहहिं लहेउ एहिं जीवन लाह । भेंटैउ रामभद्र भरि बाह ॥

सुनि निपादु निज भाग बढ़ाई । प्रमुदित मन लइ चलेउ लेवाई ॥ ४ ॥

सब कहते हैं कि जीवनका लाभ तो इसीने पाया है, जिसे कल्याणस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीने भुजाओंमें बाँधकर गले लगाया है । निपाद अपने भाग्यकी बढ़ाई सुनकर मनमें परम आनन्दित हो सबको अपने साथ लिवा ले चला ॥ ४ ॥

दो०—सनकारे सेवक सकल चले स्वामिरुख पाइ ।

घर तरु तर सर बाग बन बास बनाएन्हि जाइ ॥१९६॥

उसने अपने सब सेवकोंको इशारेसे कह दिया; वे स्वामीका रुख पाकर चले और उन्होंने घरोंमें, वृक्षोंके नीचे, तालाबोंपर तथा बगीचों और जंगलोंमें ठहरनेके लिये स्थान बना दिये ॥ १९६ ॥

चौ०—सुंगवेरपुर भरत दीख जब । भे सनेहँ सब अंग सिथिल तब ॥

सोहत दिउँ निपादहि लागू । जनु तनु घरें बिनय अनुरागू ॥ १ ॥

भरतजीने जब शृङ्गवेरपुरको देखा, तब उनके सब अंग प्रेमके कारण शिथिल हो गये । वे निपादको लागू दिये (अर्थात् उसके कंधेपर हाथ रखके चलते हुए) ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो विनय और प्रेम शरीर धारण किये हुए हों ॥ १ ॥

एहि बिधि भरत सेनु सबु संगी । दीखि जाइ जगपावनि गंगा ॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू । भा मनु मगनु मिले जनु रामू ॥ २ ॥

इस प्रकार भरतजीने सब सेनाको साथमें लिये हुए जगत्को पवित्र करनेवाली गङ्गाजीके दर्शन किये । भीरामघाटको [जहाँ श्रीरामजीने स्नान-सन्ध्या की थी] प्रणाम किया । उनका मन इतना आनन्दमग्न हो गया मानो उन्हें स्वयं श्रीरामजी मिल गये हों ॥ २ ॥

करहिं प्रनाम नगर नर नारी । सुदित ब्रह्ममय बारि निहारी ॥
करि मञ्जनु मागहिं कर जोरी । रामचंद्र पद प्रीति न थोरी ॥ ३ ॥

नगरके नर-नारी प्रणाम कर रहे हैं और गङ्गाजीके ब्रह्मरूप जलको देख-देखकर आनन्दित हो रहे हैं । गङ्गाजीमें स्नानकर हाथ जोड़कर सब यही वर माँगते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें हमारा प्रेम कम न हो (अर्थात् बहुत अधिक हो) ॥ ३ ॥

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू । सकल सुखद सेवक सुरधेनू ॥
जोरि पानि बर मागउँ एहू । सीय राम पद सहज सनेहू ॥ ४ ॥

भरतजीने कहा—हे गङ्गे ! आपकी रज सबको सुख देनेवाली तथा सेवकके लिये तो कामधेनु ही है । मैं हाथ जोड़कर यही वरदान माँगता हूँ कि श्रीसीतारामजीके चरणोंमें मेरा स्वाभाविक प्रेम हो ॥ ४ ॥

दो०—एहि बिधि मञ्जनु भरतु करि गुर अनुसासन पाइ ।

मातु नहानीं जानि सब डेरा चले लवाइ ॥ १९७ ॥

इस प्रकार भरतजी स्नानकर और गुरुजीकी आज्ञा पाकर तथा यह जानकर कि सब माताएँ स्नान कर चुकी हैं, डेरा उठा ले चले ॥ १९७ ॥

चौ०—जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा । भरत सोधु सबही कर लोन्हा ॥
सुरसेवा करि आयसु पाई । राममातु पहिं गे दोउ भाई ॥ १ ॥

लोगोंने जहाँ-तहाँ डेरा डाल दिया । भरतजीने सभीका पता लगाया [कि सब लोग आकर आरामसे टिक गये हैं या नहीं] । फिर देवपूजन करके आज्ञा पाकर दोनों भाई श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौसल्याजीके पास गये ॥ १ ॥

चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी । जननीं सकल भरत सनमानी ॥
भाइहि सौँपि मातु सेवकाई । आपु निषादहि लीन्ह बोलार्ह ॥ २ ॥

चरण दबाकर और कोमल वचन कह-कहकर भरतजीने सब माताओंका सत्कार किया । फिर भाई शत्रुघ्नको माताओंकी सेवा सौंपकर आपने निषादको बुला लिया ॥ २ ॥

चले सखा कर सौँ कर जोरें । सिथिल सरीरु सनेहँ न थोरें ॥
पूँछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ । नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ ॥ ३ ॥

सखा निषादराजके हाथसे हाथ मिलाये हुए भरतजी चले । प्रेम कुछ थोड़ा नहीं है (अर्थात् बहुत अधिक प्रेम है), जिससे उनका शरीर शिथिल हो रहा है । भरतजी सखासे पूछते हैं कि मुझे वह स्थान दिखलाओ—और नेत्र और मनकी जलन कुछ ठंडी करो—॥ ३ ॥

कल्याण

(१) निषादका उत्साह



होहु सँजोइल गोकहु घाटा ।

ठाटहु सकल मरै के ठाटा ॥

[पृष्ठ ४५०]

(२) भरत-निषाद-मिलन



भेटव भरतु ललित प्रीति प्रीति ।

जोग सिक्कि प्रेम के मीरी ॥

[पृष्ठ ४५३]

(३) भरतका प्रेम

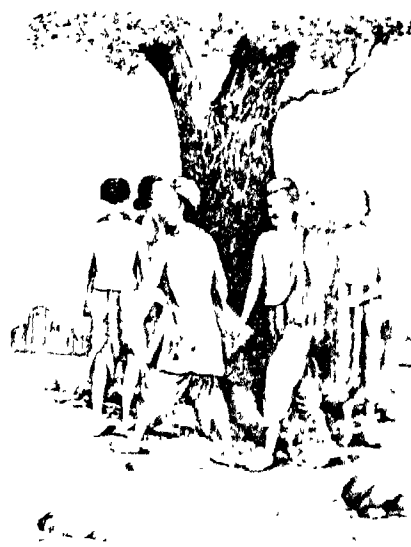


कनकविंदु दुइ चारिक देये ।

राग्ये सोस गीत सम लेये ॥

[पृष्ठ ४५७]

(४) नगरनिवासियोंका प्रेम



परनिवास गीत प्रीति प्रीति ।

[पृष्ठ ४५९]

जहँ सिय रामु लखनु निसि सोए । कहत भरे जल लोचन कोए ॥

भरत बचन सुनि भयउ बिषाद । तुरत तहाँ लइ गयउ निषाद ॥ ४ ॥

जहाँ सीताजी, श्रीरामजी और लक्ष्मण रातकी सोये थे। ऐसा कहते ही उनके नेत्रोंके कोयोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया। भरतजीके वचन सुनकर निषादको बड़ा विषाद हुआ। वह तुरंत ही उन्हें वहाँ ले गया—॥ ४ ॥

दो०—जहँ सिंसुपा पुनीत तर रघुवर किय विश्राम ।

अति सनेहँ सादर भरत कीन्हैउ दंडप्रनाम ॥ १९८ ॥

जहाँ पवित्र सीसमके वृक्षके नीचे रघुवर श्रीरामजीने विश्राम किया था। भरतजीने वहाँ अत्यन्त प्रेमसे आदरपूर्वक दण्डवत्-प्रणाम किया ॥ १९८ ॥

चो०—कुस साँथरी निहारि सुहाई । कोन्ह प्रनाम प्रदच्छिन जाई ॥

चरन रेख रज आँखिन्ह लाई । बनइ न कहत प्रांति अधिकारि ॥ १ ॥

कुशोकी सुन्दर माथरी देखकर उसकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया। श्रीरामचन्द्रजीके चरणचिह्नोंकी रज आँखोंमें लगायी। [उस समयकी] प्रेमकी अधिकता कहते नहीं बनती ॥ १ ॥

कनकबिंदु दुइ चारिक देखे । राखे सीस सीयसम लेखे ॥

सजल बिलोचन हृदयँ गलानी । कहन सखा सन वचन सुबानी ॥ २ ॥

भरतजीने दो चार स्वर्णबिन्दु (मोनेके कण या तारे आदि जो मोताजीके गहने-करड़ोंसे गिर पड़े थे) देखे तो उनको मोताजीके समान समझकर मिरग रख लिया। उनके नेत्र [प्रेमाश्रुक] जम्मे भरे हैं और हृदयमें ग्लानि भरी है। वे सम्बन्धसे सुन्दर वाणीमें ये वचन बोले—॥ २ ॥

श्रीहन सीय बिरहँ दुनिहीना । जथा अवध नर नारि बिलीना ॥

पिता जनक देउँ पटनर केही । करतल भोगु जागु जग जेही ॥ ३ ॥

ये स्वर्णके कण या तारे भी सीताजीके विरहसे ऐसे श्रीहन (शोभाहीन) एवं कान्तिहीन हो रहे हैं जैसे रामविषयमें अयोध्याके नर-नारी विज्ञान (शोकके कारण श्री और तेजसे ओण) हो रहे हैं जिन सीताजीके पिता राजा जनक हैं, इस जगत्में भोग और योग दोनों ही जिनकी मुझमें हैं, उन जनकजीकी मैं किसकी उपमा दूँ ? ॥ ३ ॥

ससुर भानुकुल भानु भुआलू । जेहि सिहात अमरावति पालू ॥

प्राणनाथ रघुनाथ गोसाईं । जो बड़ होत सो राम बड़ाई ॥ ४ ॥

सूर्यकुलके सूर्य राजा दशरथजी जिनके ससुर हैं, जिनकी अमरावतीके स्वामी इन्द्र भी सिहाते थे (ईश्वरपूर्वक उनके-जैसा ऐश्वर्य और प्रताप प्राप्ता चाहते थे); और प्रभु श्रीरघुनाथजी जिनके प्राणनाथ हैं, जो इतने बड़े हैं कि जो कोई भी बड़ा होता है वह श्रीरामचन्द्रजीकी ही हुई बड़ाईसे ही होता है; ॥ ४ ॥

दो०—पतिदेवता मुतोयमनि सीय साँथरी देखि ।

बिहरत हृदउ न हहरि हर पवि तें कंठिन विसोषि ॥ १९९ ॥

उन भ्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियोंमें शिरोमणि सीताजीकी साथरी (कुशशय्या) देखकर मेरा हृदय हहराकर (दहलकर) फट नहीं जाता; हे शंकर ! यह वज्रसे भी अधिक कठोर है ! ॥ १९९ ॥

चौ०—लालन जोगु लखन लघु लोने । भे न भाइ अस अहहिं न होने ॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे । सिय रघुबीरहिं प्रानपिआरे ॥ १ ॥

मेरे छोटे भाई लक्ष्मण बहुत ही सुन्दर और प्यार करने योग्य हैं । ऐसे भाई न तो किसीके हुए, न हैं, न होनेके ही हैं । जो लक्ष्मण अवधके लोगोको प्यारे, माता-पिताके दुलारे और श्रीसीतारामजीके प्राणप्यारे हैं; ॥ १ ॥

मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ । तात बाउ तन लाग न काऊ ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती । निदरे कोटि कुलिस एहिं छाती ॥ २ ॥

जिनकी कोमल मूर्ति और सुकुमार स्वभाव है, जिनके शरीरमें कभी गरम हवा भी नहीं लगी, वे वनमें सब प्रकारकी विपत्तियाँ सह रहे हैं । हाय ! इस मेरी छातीने कठोरतामें करोड़ों वज्रोका भी निरादर कर दिया [नहीं तो कभीकी फट गयी होती] ॥ २ ॥

राम जनमि जगु कीन्ह उजागर । रूप सील सुख सब गुन सागर ॥
पुरजन परिजन गुर पितु माता । राम सुभाउ सबहिं सुखदाता ॥ ३ ॥

जिन श्रीरामचन्द्रजीने जन्म (अवतार) लेकर जगत्को प्रकाशित (परम सुशोभित) कर दिया । वे रूप, शील, सुख और समस्त गुणोंके समुद्र हैं । पुरवासी, कुटुम्बी, गुरु, पिता-माता सभीको श्रीरामजीका स्वभाव सुख देनेवाला है ॥ ३ ॥

बैरिउ राम बड़ाई करहीं । बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं ॥
सारद कोटि कोटि सत सेपा । करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा ॥ ४ ॥

शत्रु भी श्रीरामजीकी बड़ाई करते हैं । बोलचाल, मिलनसारी और विनयसे वे मनको हर लेते हैं । करोड़ों सरस्वती और अरबों शेषजी भी प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके गुणसमूहोंकी गिनती नहीं कर सकते ॥ ४ ॥

दो०—सुखस्वरूप रघुवंसमनि मंगल मोद निधान ।
ते सोवत कुस ढासि महि बिधिगति अति बलवान् ॥ २०० ॥

जो सुखस्वरूप रघुवंशशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी मङ्गल और आनन्दके भण्डार हैं, वे पृथ्वीपर कुशा बिछाकर सोते हैं ! विधाताकी गति बढ़ी ही बलवान् है ॥ २०० ॥

चौ०—राम सुना दुखु कान न काऊ । जीवनतरु जिमि जोगवह राऊ ॥
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती । जोगवहिं जननि सकल दिन राती ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने कानोंसे भी कभी दुःखका नाम नहीं सुना । महाराज स्वयं जीवन-वृक्षकी तरह उनकी शर-सँभाल किया करते थे । सब माताएँ भी रातदिन उनकी ऐसी सार-सँभाल करती थीं जैसे पलक नेत्रोंकी और साँप अपनी मणिकी करते हैं ॥ १ ॥

ते अब फिरत बिपिन पदचारी । कंद मूल फल फूल अहारी ॥
धिग कैकई अमंगल मूला । भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला ॥ २ ॥

वही श्रीरामचन्द्रजी अब जंगलोंमें पैदल फिरने हैं और कन्द-मूल तथा फल-फूलोंका भोजन करते हैं । अमङ्गलकी मूल कैकेयीकी धिक्कार है, जो अपने प्राण-प्रियतम पतिसे भी प्रतिकूल हो गयी ॥ २ ॥

मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी । सबु उतपातु भयउ जेहि लागी ॥

कुलकलंकु करि सृजेउ विधाताँ । साँदोह मोहि कोन्ह कुमाताँ ॥ ३ ॥

मुझ पापोंके समुद्र और अभागोको धिक्कार है, धिक्कार है, जिसके कारण ये सब उत्पात हुए। विधाताने मुझे कुलका कलंक बनाकर पैदा किया और कुमाताने मुझे स्वामिद्रोही बना दिया ॥ ३ ॥

सुनि सप्रेम समुझाव निषादु । नाथ करिअ कत बादि बिषादु ॥

राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि । यह निरजोसु दोसु बिधि बामहि ॥ ४ ॥

यह सुनकर निषादराज प्रेमपूर्वक समझाने लगा—हे नाथ ! आप व्यर्थ विषाद किस लिये करते हैं ? श्रीरामचन्द्रजी आपको प्यारे हैं और आप श्रीरामचन्द्रजीको प्यारे हैं । यही निचोड़ (निश्चित सिद्धान्त) है, दोष तो प्रतिकूल विधाताको है ॥ ४ ॥

छं०—बिधि बाम की करनी कठिन जेहिं मातु कीन्ही बावरी ।

तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरी ॥

तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतमु कहतु हौं सौहैं किपै ।

परिनाम मंगल जानि अपने आनिप धीरजु हिपै ॥

प्रतिकूल विधाताकी करनी बड़ी कठोर है, जिसने माता कैकेयीको बावली बना दिया (उसकी मति फेर दी) । उस रातको प्रभु श्रीरामचन्द्रजी बार-बार आदरपूर्वक आपकी बड़ी सराहना करते थे । तुलसीदासजी कहते हैं—[निषादराज कहता है कि—] श्रीरामचन्द्रजीको आपके समान अतिशय प्रिय और कोई नहीं है, मैं सौगंध खाकर कहता हूँ । परिणाममे मङ्गल होगा, यह जानकर आप अपने हृदयमे धैर्य धारण कीजिये ।

सो०—अंतरजामी रामु सकुच सप्रेम कृपायतन ।

चलिअ करिअ विश्रामु यह बिचारि दद आनि मन ॥ २०१ ॥

श्रीरामचन्द्रजी अन्तर्यामी, तथा संकोच, प्रेम और कृपाके धाम हैं, यह विचारकर और मनमे दृढ़ता लाकर चलिये और विश्राम कीजिये ॥ २०१ ॥

चौ०—सखा वचन सुनि उर धरि धीरा । बास चले सुमिरत रघुवीरा ॥

यह सुधि पाइ नगर नर नारी । चले बिलोकन आरन भारी ॥ १ ॥

सखाके वचन सुनकर, हृदयमें धीरज धरकर श्रीरघुवीरजीका स्मरण करते हुए भरतजी डेरेको चले । नगरके सारे स्त्री-पुरुष यह (श्रीरामजीके ठहरनेके स्थानका) समाचार पाकर बहुत दुखी होकर उस स्थानको देखने चले ॥ १ ॥

परदखिना करि करहिं प्रनामा । देहिं कैकइहि खोरि निकामा ॥

भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं । बाम बिधातहि दूषन देहीं ॥ २ ॥

वे उस स्थानकी परिक्रमा करके प्रणाम करते हैं—और कैकेयीको बहुत दोष देते हैं । नेत्रोंमे जल भर-भर लेते हैं और प्रतिकूल विधाताको दूषण देते हैं ॥ २ ॥

एक सराहहिं भरत सनेह । कोउ कह नृपति निबाहेउ नेह ॥

निंदहिं आपु सराहि निषादहि । को कहि सकइ बिमोह बिषादहि ॥ ३ ॥

कोई भरतजीके स्नेहकी सराहना करते हैं, और कोई कहते हैं कि राजाने अपना प्रेम खूब निबाहा। सब अपनी निन्दा करके निषादकी प्रशंसा करते हैं। उस समयके विमोह और विषादको कौन कह सकता है ! ॥ १ ॥

यहि बिधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसार गुदारा लगा ॥
गुरहि सुनावै चढ़ाई सुहाई। नई नाव सब मातु चढ़ाई ॥ ४ ॥

इस प्रकार रातभर सब लोग जागते रहे। सबेरा होते ही खेवा लगा। सुन्दर नावपर गुरुजीको चढ़ाकर फिर नयी नावपर सब माताओंको चढ़ाया ॥ ४ ॥

दंड चारि महुँ भा सबु पारा। उतरि भरत तब सबहि सँभारा ॥ ५ ॥
चार घड़ीमें सब गङ्गाजीके पार उतर गये। तब भरतजीने उतरकर सबको सँभाला ॥ ५ ॥

दो०—प्रातःक्रिया करि मातुपद बंदि गुरहि सिरु नाइ।

आगे किए निषादगन दीन्हेउ कटकु चलाइ ॥ २०२ ॥

प्रातःकालकी क्रियाओंको करके माताके चरणोंकी वन्दना कर और गुरुजीको सिर नवाकर भरतजीने निषादगणोंको [रास्ता दिखलानेके लिये] आगे कर लिया और सेना चला दी ॥ २०२ ॥

चौ०—कियउ निषादनाथु अगुआई। मातु पालकों सकल चलाई ॥

साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। विप्रन्ह सहित गवनु गुर कीन्हा ॥ १ ॥

निषादराजको आगे करके पीछे सब माताओंकी पालकियाँ चलायीं। छोटे भाई शत्रुघ्नजीको बुलाकर उनके साथ कर दिया। फिर ब्राह्मणोंसहित गुरुजीने गमन किया ॥ १ ॥

आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लखन सहित सिय रामू ॥

गवने भरत पयादेहि पाए। कोतल संग जाहिं डोरियाए ॥ २ ॥

तदनन्तर आपने (भरतजीने) गङ्गाजीको प्रणाम किया और लक्ष्मणसहित श्रीसीतारामजीका स्मरण किया। भरतजी पैदल ही चले। उनके साथ कोतल घोड़े बागडोरसे बँधे हुए चले जा रहे हैं ॥ २ ॥

कहहिं सुमेवक बारहिं बारा। होइख नाथ अस असवारा ॥

रामु पयादेहिं पायँ मिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए ॥ ३ ॥

उत्तम सेवक बार-बार कहते हैं कि हे नाथ ! आप घोड़ेपर सवार हो लीजिये। [भरतजी जवाब देते हैं कि] श्रीरामचन्द्रजी तो पैदल ही गये और हमारे लिये रथ, हाथी, घोड़े बनाये गये हैं ! ॥ ३ ॥

सिरभर जाउँ उचित अस मोरा। सब नैं सेवक धरमु कठोरा ॥

देखि भरत गति सुनि मृदु वानी। सब सेवकगन गरहिं गलानी ॥ ४ ॥

मुझे उचित तो ऐसा है कि मैं सिरके बल चलकर जाऊँ। सेवकका धर्म सबसे कठिन है। भरतजीकी दशा देखकर और कोमल वाणी सुनकर सब सेवकगण ग्लानिके मारे गले जा रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—भगत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रवेसु प्रयाग।

कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग ॥ २०३ ॥

प्रेममें उमँग-उमँगकर सीताराम-सीतागम कहते हुए भरतजीने तीसरे पहर प्रयागमें प्रवेश किया ॥ २०३ ॥

चो०—झलका झलकत पायन्ह कैसें । पंकज कोस ओसकन जैसें ॥

भरत पयादेहिं आए आजु । भयउ दुखित सुनि सकल समाजु ॥ १ ॥

उनके चरणोंमें छाले कैसे चमकते हैं, जैसे कमलके कोशपर ओसकी बूंदें चमकती हों । भरतजी आज पैदल ही चलकर आये हैं, यह समाचार सुनकर सारा समाज दुखी हो गया ॥ १ ॥

खबरि लीन्ह सब लोग नहाए । कीन्ह प्रनामु त्रिवेनिहि आए ॥

सविधि सितासित नीर नहाने । दिए दान महिसुर सनमाने ॥ २ ॥

जब भरतजीने यह पता पा लिया कि सब लोग स्नान कर चुके, तब त्रिवेणीपर आकर उन्हें प्रणाम किया । फिर विधिपूर्वक [गङ्गा-यमुनाके] श्वेत और श्याम जलमें स्नान किया और दान देकर ब्राह्मणोंका सम्मान किया ॥ २ ॥

देखत स्यामल घवल हलोरे । पुलकि सरीर भरत कर जोरे ॥

सकल कामप्रद तीरथराऊ । वेद विदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥ ३ ॥

श्याम और सफेद (यमुनाजी और गङ्गाजीकी) लहरोंको देखकर भरतजीका शरीर पुलकित हो गया और उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—हे तीर्थराज ! आप समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं । आपका प्रभाव वेदोंमें प्रसिद्ध और संसारमें प्रकट है ॥ ३ ॥

मागउँ भीख त्यागि निज घरमू । भारत काह न करइ कुकरमू ॥

अस जियँ जानि सुजान सुदानी । सफल करहिं जग जाचक बानी ॥ ४ ॥

मैं अपना धर्म (न माँगनेका क्षत्रियधर्म) त्यागकर आपसे भीख माँगता हूँ । आर्त मनुष्य कौन-सा कुकर्म नहीं करता ? ऐसा हृदयमें जानकर सुजान उत्तम दानी जगत्में माँगनेवालेकी वाणीको सफल किया करते हैं (अर्थात् वह जो माँगता है सो दे देते हैं) ॥ ४ ॥

दो०—अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।

जनम जनम रति रामपद यह बरदानु न आन ॥ २०४ ॥

मुझे न अर्थकी रुचि (इच्छा) है, न धर्मकी, न कामकी, और न मैं मोक्ष ही चाहता हूँ । जन्म-जन्ममें मेरा श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम हो, बस यही वरदान माँगता हूँ, दूसरा कुछ नहीं ॥ २०४ ॥

चो०—जानहुँ रामु कुटिल करि मोही । लोग कहउ गुर साहिव द्रोही ॥

सीता राम चरन रति मोरें । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ॥ १ ॥

स्वयं श्रीरामचन्द्रजी भी भले ही मुझे कुटिल समझें और लोग मुझे गुरुद्रोही तथा स्वामिद्रोही भले ही कहें; पर श्रीमतीरामजीके चरणोंमें मेरा प्रेम आपकी कृपासे दिन-दिन बढ़ता ही रहे ॥ १ ॥

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ । जाचत जलु पवि पाहन डारउ ॥

चातकु रटनि घटें घटि जाई । बढ़े प्रेमु सब भाँति भलाई ॥ २ ॥

मेघ चाहे जन्मभर चातककी सुध भुल दे और जल माँगनेपर वह चाहे वज्र और पत्थर (ओले) ही गिरावे; पर चातककी रटन घटनेसे तो उसकी बात ही घट जायगी (प्रतिष्ठा ही नष्ट हो जायगी) । उसकी तो प्रेम बढ़नेमें ही सब तरहसे भलाई है ॥ २ ॥

कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहैं । तिमि प्रियतम पद नेम निबाहैं ॥

भरत वचन सुनि माझ त्रिवेनी । भइ मृदु बानि सुमंगल देनी ॥ ३ ॥

जैसे तपानेसे सोनेपर आब आ जाती है, वैसे ही प्रियतमके चरणोंमें प्रेमका नियम निबाहनेसे प्रेमी सेवकका गौरव बढ़ जाता है । भरतजीके वचन सुनकर बीच त्रिवेणीमेंसे सुन्दर मङ्गल देनेवाली कोमल वाणी हुई ॥ ३ ॥

तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू । राम चरन अनुराग अगाधू ॥

धादि गलानि करहु मन माहीं । तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं ॥ ४ ॥

हे तात भरत ! तुम सब प्रकारसे साधु हो । श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें तुम्हारा अथाह प्रेम है । तुम व्यर्थ ही मनमें गलानि कर रहे हो । श्रीरामचन्द्रको तुम्हारे समान प्रिय कोई नहीं है ॥ ४ ॥

दो०—तनु पुलकेउ हियँ हरषु सुनि बेनि वचन अनुकूल ।

भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल ॥ २०५ ॥

त्रिवेणीजीके अनुकूल वचन सुनकर भरतजीका शरीर पुलकित हो गया, हृदयमें हर्ष छा गया । भरतजी धन्य हैं, धन्य हैं, कहकर देवता हर्षित होकर फूल बरसाने लगे ॥ २०५ ॥

चौ०—प्रमुदित तीरथराज निवासी । वैखानस बटु गृही उदासी ॥

कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा । भरत संनेहु सीलु सुचि साँचा ॥ १ ॥

तीर्थराज प्रयागमें रहनेवाले वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, गृहस्थ और उदासीन (संन्यासी) सब बहुत ही आनन्दित हैं और दस-पाँच मिलकर आपसमें कहते हैं कि भरतजीका प्रेम और शील पवित्र और सचा है ॥ १ ॥

सुनत राम गुनग्राम सुहाय । भरद्वाज मुनिवर पहिं आप ॥

दंडप्रनामु करत मुनि देखे । मूर्तिमंत भाग्य निज लेखे ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर गुणसमूहोंको सुनते हुए वे मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजीके पास आये । मुनिने भरतजीको दण्डवत् प्रणाम करते देखा और उन्हें अपना मूर्तिमान् सौभाग्य समझा ॥ २ ॥

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे । दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे ॥

आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे । चहत सकुचगृहँ जनु भजि पैंटे ॥ ३ ॥

उन्होंने दौड़कर भरतजीको उठाकर हृदयसे लप्पा लिया और आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया । मुनिने उन्हें आसन दिया । वे सिर नवाकर इस तरह बैठे मानो भागकर संकोचके घरमें धुस जाना चाहते हैं ॥ ३ ॥

मुनि पूँछव कछु यह वड़ सोचू । बोले रिपि लखि सीलु संकोचू ॥

सुनहु भरत हम सब मुधि पाई । विधि करतव पर कछु न बसाई ॥ ४ ॥

उनके मनमें यह बड़ा सोच है कि मुनि कुछ पूछेंगे [तो मैं क्या उत्तर दूँगा] । भरतजीके शील और संकोचको देखकर ऋषि बोले—भरत ! मुनो, हम सब खबर पा चुके हैं । विधाताके कर्तव्यपर कुछ चश नहीं चलता ॥ ४ ॥

दो०—तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु समझि मातु करतूति ।

तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति ॥ २०६ ॥

माताकी करतूत समझकर तुम हृदयमें ग्लानि मत करो । हे तात ! कैकेयीका कोई दोष नहीं है, उसकी बुद्धि तो सरस्वती बिगाड़ गयी थी ॥२०६॥

चो०—यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ । लोकु बेदु बुध संमत दोऊ ॥
तात तुम्हार विमल जसु गार्ह । पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई ॥ १ ॥

यह कहते भी कोई भला न कहेगा, क्योंकि लोक और वेद दोनों ही विद्वानोंको मान्य हैं । किन्तु हे तात ! तुम्हारा निर्मल यश गाकर तो लोक और वेद दोनों बड़ाई पावेंगे ॥ १ ॥

लोक वेद संमत सबु कहई । जेहि पितु देर राजु सो लहई ॥
राउ सत्यव्रत तुम्हहि बोलाई । देत राजु सुखु धरमु बड़ाई ॥ २ ॥

यह लोक और वेद दोनोंको मान्य है और सब यही कहते हैं कि पिता जिसको राज्य दे, वही पाता है । राजा सत्यव्रती थे; तुमको बुलाकर राज्य देते, तो सुख मिलता, धर्म रहता और बड़ाई होती ॥ २ ॥

राम गवनु वन अनरथमूला । जो सुनि सकल बिस्व भइ सुला ॥
सो भावी बस रानि अयानी । करि कुचालि अंतहुँ पछितानी ॥ ३ ॥

सारे अनर्थकी जड़ तो श्रीरामचन्द्रजीका वनगमन है, जिसे सुनकर समस्त संसारको पीड़ा हुई । वह श्रीरामका वनगमन भी भावीवश हुआ । वेसमस्त रानी तो भावीवश कुचाल करके अन्तमें पछितायी ॥ ३ ॥

तहँउँ तुम्हार अलप अपराधू । कहै सो अधम अयान असाधू ॥
करतेहु राजु त तुम्हहि न दोषू । रामहि होत सुनत संतोषू ॥ ४ ॥

उसमें भी तुम्हारा कोई तनिक-सा भी अपराध कहे, तो वह अधम, अज्ञानी और असाधु है । यदि तुम राज्य करते, तो भी तुम्हें दोष न होता । सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको भी सन्तोष ही होता ॥ ४ ॥

दो०—अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहि उचित मत एहु ।

सकल सुमंगल मूल जग रघुवर चरन सनेहु ॥२०७॥

हे भरत ! अब तो तुमने बहुत ही अच्छा किया; यही मत तुम्हारे लिये उचित था । श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रेम होना ही समस्त सुन्दर मङ्गलोंका मूल है ॥२०७॥

चो०—सो तुम्हार धनु जीवनु प्राणा । भूरिभाग को तुम्हहि समाना ॥

यह तुम्हार आचरजु न ताता । दसरथ सुअन राम प्रिय भ्राता ॥ १ ॥

सो वह (श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका प्रेम) तो तुम्हारा धन, जीवन और प्राण ही है; तुम्हारे समान बड़भागी कौन है ? हे तात ! तुम्हारे लिये यह आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि तुम दशरथजीके पुत्र और श्रीरामचन्द्रजीके प्यारे भाई हो ॥ १ ॥

सुनहु भरत रघुवर मन माहीं । पेमषात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं ॥

लखन राम सीतहि अति प्रीती । निसि सब तुम्हहि सराहत वीती ॥ २ ॥

हे भरत ! सुनो, रघुवर श्रीरामचन्द्रके मनमें तुम्हारे समान प्रेमपात्र दूसरा कोई नहीं है । लक्ष्मणजी, श्रीरामजी और सीताजी तीनोंको सारी रात उस दिन अत्यन्त प्रेमके साथ तुम्हारी सराहना करते ही वीती ॥ २ ॥

जाना मरमु नहात प्रयागा । मगन होहिं तुम्हें अनुरागा ॥

तुम्ह पर अस सनेहु रघुवर कै । सुख जीवन जग जस जड़ नर कै ॥ ३ ॥

प्रयागराजमें जब वे स्नान कर रहे थे, उस समय मैंने उनका यह मर्म जाना । वे तुम्हारे प्रेममें मग्न हो रहे थे । तुमपर श्रीरामचन्द्रजीका ऐसा ही (अगाध) स्नेह है जैसा मूर्ख (विषयासक्त) मनुष्यका संसारमें सुखमय जीवनपर होता है ॥ ३ ॥

यह न अधिक रघुबीर बड़ाई । प्रनत कुटुंब पाल रघुराई ॥

तुम्हें तौ भरत मोर मत पट्ट । धरें देह जनु रामसनेह ॥ ४ ॥

यह श्रीरघुनाथजीकी बहुत बड़ाई नहीं है, क्योंकि श्रीरघुनाथजी शरणागतके कुटुम्बभरको पालने-वाले हैं । हे भरत ! मेरा यह मत है कि तुम तो मानो शरीरधारी श्रीरामजीके प्रेम ही हो ॥ ४ ॥

दो०—तुम्हें कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु ।

राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु ॥ २०८ ॥

हे भरत ! तुम्हारे लिये (तुम्हारी समझमें) यह कलंक है, पर हम सबके लिये तो उपदेश है ! श्रीरामभक्तिरूपी रसकी सिद्धिके लिये यह समय गणेश (बड़ा शुभ) हुआ है ॥ २०८ ॥

चो०—नव बिधु बिमल तात जसु तोरा । रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ॥

उदित सदा अँथहहि कबहँ ना । घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ॥ १ ॥

हे तात ! तुम्हारा यश निर्मल नवीन चन्द्रमा है और रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके दास कुमुद और चकोर है । [वह चन्द्रमा तो प्रतिदिन अस्त होता और घटता है, जिससे कुमुद ओर चकोरकी दुःख होता है]; परन्तु यह तुम्हारा यशरूपी चन्द्रमा सदा उदय रहेगा, कभी अस्त होगा ही नहीं । जगत्‌रूपी आकाशमें यह घटेगा नहीं, वरं दिन-दिन दूना होगा ॥ १ ॥

कोक तिलोक प्रीति अति करिही । प्रभु प्रताप रबि छबिहि न हरिही ॥

निस्सिदिन सुखद सदा सब काह । प्रसिद्धि न कैकइ करतवु राह ॥ २ ॥

त्रैलोक्यरूपी चक्रवा इम यशरूपी चन्द्रमापर अत्यन्त प्रेम करेगा और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका प्रतापरूपी सूर्य इसकी छविकी हरण नहीं करेगा । यह चन्द्रमा रात-दिन सदा सब किमीकी सुख देनेवाला होगा । कैकेयीका कुकर्मरूपी राहु इसे ग्रास नहीं करेगा ॥ २ ॥

पूरन राम सुपेम पियूपा । गुर अवमान दोष नहिं दूपा ॥

रामभगत अय अमिअँ अघाहँ । कीन्हहु सुलभ सुधा वसुधाहँ ॥ ३ ॥

यह चन्द्रमा श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर प्रभुरूपी अमृतसे पूर्ण है; यह गुरुके अपमानरूपी दोषमें दूषित नहीं है । तुमने इस यशरूपी चन्द्रमाकी सृष्टि करके पृथ्वीपर भी अमृतको सुलभ कर दिया, अब श्रीरामजीके भक्त इस अमृतसे तृप्त हो ले ॥ ३ ॥

भूप भगीरथ सुरसरि आनी । सुमिरन सकल सुमंगल खानी ॥

दशरथ गुनगन वरनि न जाही । अधिकु कहा जेहि सम जग नाही ॥ ४ ॥

राजा भगीरथ गङ्गाजीको लाये, जिनका स्मरण करना सम्पूर्ण सुन्दर मङ्गलको पान है । दशरथजीके गुणसमूहोंका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता, अधिक क्या, उनकी बगवतीका जगत्‌में कोई नहीं है ॥ ४ ॥

दो०—जामु सनेह सकोच बस राम प्रगट भए आइ ।

जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ ॥ २०९ ॥

कल्याण

भरद्वाज-भरत



सब साधन कर सुफल सुहावा । लखन गम भिय दरसनु पावा ॥
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हाग । सहित पयानं सुभाग हमारा ॥

जिनके प्रेम और संकोचके वशमें होकर स्वयं [सच्चिदानन्दधन] भगवान् श्रीराम आकर प्रकट हुए, जिन्हें श्रीमहादेवजी अपने हृदयके नेत्रोंसे कभी अपाकर नहीं देख पाये (अर्थात् जिनका स्वरूप हृदयमें देखते-देखते शिवजी कभी तृप्त नहीं हुए) ॥२०९॥

चो०—कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा । जहँ वस रामपेम मृगरूपा ॥
तात गलानि करहु जियँ जाएँ । डरहु दरिद्रहि पारसु पाएँ ॥ १ ॥

[परन्तु उनसे भी बढ़कर] तुमने कीर्तिरूपी अनुपम चन्द्रमणको उत्पन्न किया, जिसमें श्रीरामप्रेमरूपी हिरनका चिह्न वसता है । हे तात ! तुम व्यर्थ ही हृदयमें ग्लानि कर रहे हो । पारस पाकर भी तुम दरिद्रतासे डर रहे हो ! ॥ १ ॥

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं । उदासीन तापस वन रहहीं ॥
सय साधन कर सुफल सुदावा । लखन राम सिय दरसन पावा ॥ २ ॥

हे भरत ! सुनो, हम झूठ नहीं कहते । हम उदासीन हैं (किसीका पक्ष नहीं करते), तपस्वी हैं (किसीकी सुँह-देखी नहीं करते) और वनमें रहते हैं (किसीसे कुछ प्रयोजन नहीं रखते) । सब साधनोंका उत्तम फल हमें लक्ष्मणजी, श्रीरामजी और सीताजीका दर्शन प्राप्त हुआ ॥ २ ॥

तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा । सहित पयाग सुभाग हमारा ॥
भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ । कहि अस पेम मगन मुनि भयऊ ॥ ३ ॥

सीता-लक्ष्मणसहित श्रीरामदर्शनरूप उस महान् फलका परम फल यह तुम्हारा दर्शन है ! प्रयागराज-समेत हमारा बड़ा भाग्य है । हे भरत ! तुम धन्य हो, तुमने अपने वशसे जगत्को जीत लिया है । ऐसा कहकर मुनि प्रेममें मग्न हो गये ॥ ३ ॥

मुनि मुनिवचन सभासद हरये । साधु सराहि सुमन सुर वरये ॥
धन्य धन्य धुनि गगन पयागा । सुनि सुनि भरतु मगन अनुरागा ॥ ४ ॥

भरद्वाज मुनिके वचन सुनकर सभासद् हर्षित हो गये । साधु-साधु कहकर सराहना करते हुए देवताओंने फूल बरसाये । आकाशमें और प्रयागराजमें धन्य, धन्यकी ध्वनि सुन-सुनकर भरतजी प्रेममें मग्न हो रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—पुलक गात हियँ रामु सिय सजल सरोरुह नैन ।

करि प्रनामु मुनिमंडलिहि बोले गदगद बैन ॥ २१० ॥

भरतजीका शरीर पुलकित है । हृदयमें श्रीसीतारामजी हैं और कमलके समान नेत्र [प्रेमाश्रुके] जलसे भरे हैं । वे मुनियोंकी मण्डलीको प्रणाम करके गद्गद वचन बोले— ॥ २१० ॥

चो०—मुनिसमाजु अरु तीर्थराजु । साँचिहुँ सपथ अघाह अकाजु ॥
एहि थल जाँ किछु कहिअ बनाई । एहि सम अधिक न अघ अधमाई ॥ १ ॥

मुनियोंका समाज है और फिर तीर्थराज है । यहाँ सच्ची सौगंध खानेसे भी भरपूर हानि होती है । इस स्थानमें यदि कुछ बनाकर कहा जाय, तो इसके समान कोई बड़ा पाप और नीचता न होगी ॥ १ ॥

तुम्ह सर्बग्य कहउँ सतिभाऊ । उर अंतरजामी रघुराऊ ॥
मोहि न मातु करतब कर सोचू । नहिं दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू ॥ २ ॥

मैं सब्से भावसे कहता हूँ। आप सर्वज्ञ हैं, और भीरघुनाथजी हृदयके भीतरकी जाननेवाले हैं (मैं कुछ भी असत्य कहूँगा तो आपसे और उनसे छिपा नहीं रह सकता)। मुझे माता कैकेयीकी करनीका कुछ भी सोच नहीं है और न मेरे मनमें इसी बातका दुःख है कि जगत् मुझे नीच समझेगा ॥ २ ॥

नाहिन डर बिगरिहि परलोक् । पितहु मरन कर मोहि न सोक् ॥

सुकुत सुजस भरि भुवन सुहाय । लछिमन राम सरिस सुत पाय ॥ ३ ॥

न यही डर है कि मेरा परलोक बिगड़ जायगा और न पिताजीके मरनेका ही मुझे शोक है। क्योंकि उनका सुन्दर पुण्य और सुयश विश्वभरमें सुशोभित है। उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मण-सगीले पुत्र पाये ॥ ३ ॥

रामबिरहँ तजि तनु छनभंगू । भूपसांच कर कवन प्रसंगू ॥

राम लखन सिय विनु पग पनहीं । करि मुनिबेष फिरहिं वन वनहीं ॥ ४ ॥

फिर जिन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके विरहमें क्षणभङ्गुर शरीरको त्याग दिया, ऐसे राजाके लिये सोच करनेका कौन प्रसंग है ? [सोच इसी बातका है कि] श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी पैरोमें विना जूतीके मुनियोंका वेष बनाये वन-वनमें फिरते हैं ॥ ४ ॥

दो०—अजिन बसन फल असन महि सयन दासि कुस पात ।

बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरपा बात ॥ २११ ॥

वे वल्कल वस्त्र पहनते हैं, फलोंका भोजन करते हैं, पृथ्वीपर कुग और पत्ते बिछाकर सोते हैं और वृक्षोंके नीचे निवास करके नित्य सर्दी, गर्मी, वर्षा और हवा सहते हैं ॥ २११ ॥

चो०—पहिं दुखदाह दहइ दिन छाती । भूख न वासर नीद न राती ॥

पहिं कुरोग कर औपधु नाहीं । सोवेउँ सकल विस्व मन माहीं ॥ १ ॥

इसी दुःखकी जलनसे निरन्तर मेरी छाती जलती रहती है। मुझे न दिनमें भूख लगती है, न रातको नींद आती है। मैंने मन-ही-मन समस्त विश्वको खोज डाला, पर इस कुरोगकी ओपध कहीं नहीं है ॥ १ ॥

मातु कुमत बढ़ई अघमूला । तेहिं हमार हित कीन्ह बसूला ॥

कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्र । गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्र ॥ २ ॥

माताका कुमत (बुरा विचार) पापोंका मूल बढ़ई है। उसने हमारे हितका बसूला बनाया। उससे कलहरूपी कुकाठका कुयन्त्र बनाया और चौदह वर्षकी अवधिरूपी कठिन कुमन्त्र पढ़कर उस यन्त्रको गाड़ दिया। [यहाँ माताका कुविचार बढ़ई है, भरतको राज्य बसूला है, रामका वनवास कुयन्त्र है और चौदह वर्षकी अवधि कुमन्त्र है] ॥ २ ॥

मोहि लगि यह कुटाटु तेहिं ठाटा । घालेसि सब जगु वारहवाटा ॥

मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ । बसइ अवध नहिं आन उपाएँ ॥ ३ ॥

मेरे लिये उसने यह सारा कुटाट (बुरा साज) रचा और सारे जगत्को बारहवाट (छिन्न-भिन्न) करके नष्ट कर डाला। यह कुयोग श्रीरामचन्द्रजीके लौट आनेपर ही मिट सकता है और तभी अयोध्या बस सकती है, दूसरे किसी उपायसे नहीं ॥ ३ ॥

भरतबचन सुनि मुनि सुखु पाई । सबहिं कीन्हि बहु भाँति यड़ाई ॥

तात करहु जनि सोचु विसेषी । सब दुखु मिटिहि रामपग देखी ॥ ४ ॥

भरतजीके वचन सुनकर मुनिने सुख पाया और सभीने उनकी बहुत प्रकारसे बड़ाई की । [मुनिने कहा—] हे तात ! अधिक सोच मत करो । श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका दर्शन करते ही सारा दुःख मिट जायगा ॥४॥

दो०—करि प्रबोधु मुनिवर कहेउ अतिथि प्रेमप्रिय होहु ।

कंद मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु ॥२१२॥

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजीने समझा-बुझाकर कहा—अब आपलोग हमारे प्रेमप्रिय अतिथि बनिये और कृपा करके कन्द-मूल, फल-फूल, जो कुछ हम दें, स्वीकार कीजिये ॥ २१२ ॥

चौ०—सुनि मुनिवचन भरत हियँ सोचू । भयउ कुथवसर कठिन संकोचू ॥

जानि गरुड गुरगिरा बहोरी । चरन बंदि बोले कर जोरी ॥१॥

मुनिके वचन सुनकर भरतके हृदयमें सोच हुआ कि यह बेमौके बड़ा बेटव संकोच आ पड़ा । फिर गुरुजनोंकी वाणीको महत्त्वपूर्ण (आदरणीय) समझकर, चरणोंकी वन्दना करके हाथ जोड़कर बोले—॥ १ ॥

सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा । परम धरम यहु नाथ हमारा ॥

भरत वचन मुनिपर मन भाए । सुचि सेवक सिध निकट बोलाए ॥२॥

हे नाथ ! आपकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर उसका पालन करना, यह हमारा परम धर्म है । भरतजीके ये वचन मुनिश्रेष्ठके मनको अच्छे लगे । उन्होंने विश्वासपात्र सेवकों और शिष्योंको पास बुलाया ॥ २ ॥

चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई । कंद मूल फल आनहु जाई ॥

भलेहिं नाथ कहि तिन्ह सिर नाए । प्रमुदित निज निज काज सिधाए ॥३॥

[और कहा कि] भरतकी पहुनाई करनी चाहिये । जाकर कन्द, मूल और फल लाओ । उन्होंने 'हे नाथ ! बहुत अच्छा,' कहकर सिर नवाया और तब वे बड़े आनन्दित होकर अपने-अपने कामको चल दिये ॥ ३ ॥

मुनिहि सोच पाहुन वड़ नेवता । तसि पूजा चाहिअ जस देवता ॥

सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आई । आयसु होइ सो करहिं गोसाईं ॥४॥

मुनिको चिन्ता हुई कि हमने बहुत बड़े मेहमानको न्योता है । अब जैसा देवता हो, वैसी ही उसकी पूजा भी होनी चाहिये । यह सुनकर ऋद्धियाँ और अग्निमादि सिद्धियाँ आ गयीं [और बोलीं—] हे गोसाईं ! जो आपकी आज्ञा हो सो हम करें ॥ ४ ॥

दो०—राम विरहँ व्याकुल भरतु सानुज सहित समाज ।

पहुनाई करि हरहु श्रम कहा मुदित मुनिराज ॥२१३॥

मुनिराजने प्रसन्न होकर कहा—छोट भाई शत्रुघ्न और समाजसहित भरतजी श्रीरामचन्द्रजीके विरहमें व्याकुल हैं, इनकी पहुनाई (अतिथ्य-सत्कार) करके इनके श्रमको दूर करो ॥ २१३ ॥

चौ०—रिधि सिधि सिर धरि मुनिवर बानी । बड़भागिनि आपुहि अनुमानी ॥

कहहिं परसपर सिधि समुदाई । अनुलित अतिथि राम लघु भाई ॥१॥

ऋद्धि-सिद्धिने मुनिराजकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर अपनेको बड़भागिनी समझा । सब सिद्धियाँ आपसमें कहने लगीं—श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई भरत ऐसे अतिथि हैं जिनकी तुलनामें कोई नहीं आ सकता ॥ १ ॥

मुनिपद बंदि करिअ सोइ आजू । होइ सुखी सब राजसमाजू ॥

अस कहि रचे रुचिर गृह नाना । जेहि विलोकि विलखाहिं बिमाना ॥२॥

अतः मुनिके चरणोंकी वन्दना करके आज वही करना चाहिये जिससे सारा राजसमाज सुखी हो । ऐसा कहकर उन्होंने बहुत-से सुन्दर घर बनाये, जिन्हें देखकर विमान भी विलखते हैं (लजा जाते हैं) ॥ २ ॥

भोग विभूति भूरि भरि राखे । देखत जिन्हहि अमर अभिलाषे ॥

दासीं दास साजु सब लीन्हें । जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हें ॥ ३ ॥

उन घरोंमें बहुत-से भोग (इन्द्रियोंके विषय) और ऐश्वर्य (टाट-बाट) का सामान भरकर रख दिया, जिन्हें देखकर देवता भी ललचा गये । दासी-दास सब प्रकारकी सामग्री लिये हुए मन लगाकर उनके मनोंको देखते रहते हैं (अर्थात् उनके मनकी रुचिके अनुसार करते रहते हैं) ॥ ३ ॥

सब समाजु सजि सिधि पल माहीं । जे सुख सुरपुर सपनेहुं नाहीं ॥

प्रथमहिं बास दिए सब केही । सुंदर सुखद जथा रुचि जेही ॥ ४ ॥

जो सुखके सामान स्वर्गमें भी स्वप्नमें भी नहीं है ऐसे सब सामान सिद्धियोंने पलभरमें सज दिये । पहले तो उन्होंने सब किसीको, जिसकी जैसी रुचि थी वैसे ही, सुन्दर सुखदायक निवासस्थान दिये ॥ ४ ॥

दो०—बहुरि सपरिजन भरत कहूँ रिषि अस आयसु दीन्ह ।

विधि विसमय दायकु विभव मुनिवर तपवल कीन्ह ॥ २१४ ॥

और फिर कुटुम्बसहित भरतजीको दिये, क्योंकि ऋषि भरद्वाजजीने ऐसी ही आज्ञा दे रखी थी । [भरतजी चाहते थे कि उनके सब संगियोंको आराम मिले, इसलिये उनके मनकी बात जानकर मुनिने पहले उन लोगोंको स्थान देकर पीछे सपरिवार भरतजीको स्थान देनेके लिये आज्ञा दी थी ।] मुनिश्रेष्ठने तपोबलसे ब्रह्माको भी चकित कर देनेवाला वैभव रच दिया ॥ २१४ ॥

चौ०—मुनि प्रभाउ जब भरत विलोका । सब लघु लगे लोकपति लोका ॥

सुख समाजु नहिं जाइ बखानी । देखत विरति विसारहिं ग्यानी ॥ १ ॥

जब भरतजीने मुनिके प्रभावको देखा, तो उसके सामने उन्हें सभी लोकपालोंके लोक तुच्छ जान पड़े । सुखकी सामग्रीका वर्णन नहीं हो सकता, जिसे देखकर ज्ञानीयोग भी वैराग्य भूल जाते हैं ॥ १ ॥

आसन सयन सुवसन विताना । वन वाटिका विहग मृग नाना ॥

सुरभि फूल फल अमिअ समाना । विमल जलासय विविध विधाना ॥ २ ॥

आसन, सेज, सुन्दर वस्त्र, चँदोवे, वन, बगीचे, भौति-भौतिके पक्षी और पशु, सुगन्धित फूल और अमृतके समान स्वादिष्ट फल, अनेकों प्रकारके (तालाब, कुएँ, बावली आदि) निर्मल जलशाय, ॥ २ ॥

असन पान सुचि अमिअ अमी सं । देखि लोग सकुचान जमी मे ॥

सुरसुरभी सुरतरु सबही कें । लखि अभिलाषु सुरेस सची कें ॥ ३ ॥

तथा अमृतके भी अमृत-सरीसृपे पवित्र स्नान-पानके पदार्थ थे, जिन्हें देखकर सब लोग संयमी पुरुषोंकी तरह सकुचा रहे हैं । सभीके डेगोंमें [मनवान्छित वस्तु देनेवाले] कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं, जिन्हें देखकर इन्द्र और इन्द्राणीको भी अभिलाषा होती है (उनका भी मन ललचा जाता है) ॥ ३ ॥

रितु वसंत वह त्रिविध वयारी । सब कहैं सुलभ पदारथ चारी ॥

स्रक चंदन वनितादिक भोगा । देखि हरप विसमय वस लोगा ॥ ४ ॥

वसन्त ऋतु है । शीतल, मन्द, सुगन्ध तीन प्रकारकी हवा वह रही है । सभीको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थ सुलभ हैं । माला, चन्दन, स्त्री आदिक भोगोंको देखकर सब लोग हर्ष और विषादके

बसा हो रहे हैं । [हर्ष तो भोग-सामग्रियोंको और मुनिके तप-प्रभावको देखकर होता है और विषाद इस बातसे होता है कि श्रीरामके वियोगमें नियम-व्रतसे रहनेवाले हम लोग भोग-विलासमें क्यों आ पँसे; कहीं इनमें आसक्त होकर हमारा मन नियम-व्रतोंको न त्याग दे] ॥ ४ ॥

दो०—संपति चकई भरतु चक्र मुनि आयस खेलवार ।

तेहि निसि आश्रम पिंजराँ राखे भा भिनुसार ॥२१५॥

सम्पत्ति (भोग-विलासकी सामग्री) चकवी है और भरतजी चकवा हैं, और मुनिकी आज्ञा खिलड़ी है, जिसने उस रातको आश्रमरूपी पिंजड़ेमें दोनोंको बन्द कर रक्खा और ऐसे ही सबेरा हो गया । [जैसे किसी बहेलियेके द्वारा एक पिंजड़ेमें रक्खे जानेपर भी चकवी-चकवेका रातको संयोग नहीं होता, वैसे ही भरद्वाजजीकी आज्ञासे रातभर भोग-सामग्रियोंके साथ रहनेपर भी भरतजीने मनसे भी उनका स्पर्शतक नहीं किया ।] ॥ २१५ ॥

मासपारायण उन्नीसवाँ विश्राम

चो०—कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा । नाइ मुनिहि सिर सहित समाजा ॥

रिषि आयसु असीस सिर राखी । करि दंडवत विनय बहु भारी ॥ १ ॥

[प्रातःकाल] भरतजीने तीर्थराजमें स्नान किया और समाजसहित मुनिको सिर नवाकर और ऋषिकी आज्ञा तथा आशीर्वादको सिर चढ़ाकर दण्डवत् करके बहुत विनती की ॥ १ ॥

पथगति कुसल साथ सब लीन्हें । चले चित्रकूटहि चितु दीन्हें ॥

रामसखा कर दीन्हें लागू । चलत देह धरि जनु अनुरागू ॥ २ ॥

तदनन्तर रास्तेकी पहचान रखनेवाले लोगों (कुशल पथप्रदर्शकों) के साथ सब लोगोंको लिये हुए भरतजी चित्रकूटमें चित्त लगाये चले । भरतजी रामसखा गुहके हाथमें हाथ दिये हुए ऐसे जा रहे हैं, मानों साक्षात् प्रेम ही शरीर धारण किये हुए हो ॥ २ ॥

नहिं पदत्रान सीस नहिं छाया । पेमु नेमु व्रत धरमु अमाया ॥

लखन राम सिय पंथ कहानी । पूँछत सखहि कहत मृदुवानी ॥ ३ ॥

न तो उनके पैरोंमें जूते हैं, और न किरपर छाया है । उनका प्रेम, नियम, व्रत और धर्म निष्कपट (सच्चा) है । वे सखा निषादराजसे लक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीके रास्तेकी बातें पूछते हैं, और वह कोमल वाणीसे कहता है ॥ ३ ॥

राम घास थल विटप विलोकें । उर अनुराग रहत नहिं रोकें ॥

देखि दसा सुर वरिसहिं फूला । भइ मृदु महि मगु मंगलमूला ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके उठरनेकी जगहों और वृक्षोंको देखकर उनके हृदयमें प्रेम रोकें नहीं सकता । भरतजीकी यह दशा देखकर देवता फूल बरसाने लगे । पृथ्वी कोमल हो गयी और मार्ग मङ्गलका मूल बन गया ॥ ४ ॥

दो०—किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात ।

तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात ॥२१६॥

बादल छाया किये जा रहे हैं, सुख देनेवाली सुन्दर हवा बह रही है । भरतजीके जाते समय मार्ग जैसा सुखदायक हुआ, वैसा श्रीरामचन्द्रजीके जाने समय भी नहीं हुआ था ॥ २१६ ॥

चो०—जइ चेतन मग जीव घनेरे । जे चितप प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे ॥

ते सब भए परमपद जोगू । भरत दरस मेटा भवरोगू ॥ १ ॥

रास्तेमें असंख्य जड़-चेतन जीव थे। उनमेंसे जिनको प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने देखा, अथवा जिन्होंने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको देखा वे सब [उसी समय] परमपदके अधिकारी हो गये। परन्तु अब भरतजीके दर्शनने तो उनका भवरोग मिटा ही दिया। [श्रीरामदर्शनसे तो वे परमपदके अधिकारी ही हुए थे, परन्तु भरतदर्शनसे उन्हें वह परमपद प्राप्त हो गया] ॥१॥

यह बड़ि बात भरत कह नाहीं। सुमिरत जिनहि रामु मन माहीं ॥

बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ ॥२॥

भरतजीके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है, जिन्हें श्रीरामजी स्वयं अपने मनमें स्मरण करते रहते हैं। जगत्में जो भी मनुष्य एक बार 'राम' कह लेते हैं, वे भी तरने-तारनेवाले हो जाते हैं! ॥ २ ॥

भरतु रामप्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मगु मंगलदाता ॥

सिद्ध साधु मुनिवर अस कहहीं। भरतहि निरखि हरषु हियँ लहहीं ॥३॥

फिर भरतजी तो श्रीरामचन्द्रजीके प्यारे तथा उनके छोटे भाई हैं, तब भला उनके लिये मार्ग मङ्गल (सुख) दायक कैसे न हो ! सिद्ध, साधु और श्रेष्ठ मुनि ऐसा कह रहे हैं और भरतजीको देखकर हृदयमें हर्ष-लाम करते हैं ॥ ३ ॥

देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू। जगु भल भलेहि पोच कहूँ पोचू ॥

गुर सन कहेउ करिअ प्रभु सोई। रामहि भरतहि भेट न होई ॥४॥

भरतजीके [इस प्रेमके] प्रभावको देखकर देवराज इन्द्रको सोच हो गया [कि कहीं इनके प्रेमवश श्रीरामजी लौट न जायँ और हमारा बना-बनाया काम बिगड़ न जाय]। संसार भलेके लिये भला और बुरेके लिये बुरा है (मनुष्य जैसा आप होता है जगत् उसे वैसा ही दीखता है)। उसने गुरु बृहस्पतिजीसे कहा— हे प्रभो ! वही उपाय कीजिये जिससे श्रीरामचन्द्रजी और भरतजीकी भेट ही न हो ॥ ४ ॥

दो०—रामु सँकोची प्रेमवस भरत सपेम पयोधि ।

बनी बात बेगरन चहति करिअ जतनु छलु सोधि ॥२१७॥

श्रीरामचन्द्रजी संकोची और प्रेमके वश हैं और भरतजी प्रेमके समुद्र हैं। बनी-बनायी बात बिगड़ना चाहती है, इसलिये कुछ छल ढूँढ़कर इसका उपाय कीजिये ॥२१७॥

चौ०—वचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने। सहसनयन यिनु लोचन जाने ॥

मायापति सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुरराया ॥१॥

इन्द्रके वचन सुनते ही देवगुरु बृहस्पतिजी मुस्कुगये। उन्होंने हजार नेत्रोंवाले इन्द्रको विना नेत्रोंका (मूर्ख) समझा [और कहा—] हे देवराज ! मायाके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके सेवकके साथ कोई माया करता है तो वह उलटकर अपने ही ऊपर आ पड़ती है ॥ १ ॥

तब किछु कौन्ह रामरुख जानी। अत्र कुचालि करि होइहि हानी ॥

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ ॥२॥

उस समय (पिछली बार) तो श्रीरामचन्द्रजीका दण्ड जानकर कुछ किया था। परन्तु इस समय कुचाल करनेसे हानि ही होगी। हे देवराज ! श्रीरघुनाथजीका स्वभाव सुनो, वे अपने प्रति किये हुए अपराधसे कभी रुष्ट नहीं होते ॥ २ ॥

जो अपराधु भगत कर करई । राम रोष पावक सो जरई ॥

लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा । यह महिमा जानहिं दुरवासा ॥ ३ ॥

पर जो कोई उनके भक्तका अपराध करता है, वह श्रीरामकी क्रोधामिमें जल जाता है । लोक और वेद दोनोंमें यह इतिहास (कथा) प्रसिद्ध है । इस महिमाको दुर्वासाजी जानते हैं ॥ ३ ॥

भरत सरिस को राम सनेही । जगु जप राम रामु जप जेही ॥ ४ ॥

सारा जगत् श्रीरामको जपता है, वे श्रीरामजी जिनको जपते हैं उन भरतजीके समान श्रीरामचन्द्रजीका प्रेमी कौन होगा ! ॥ ४ ॥

दो०—मनहुँ न आनिअ अमरपति रघुवर भगत अकाजु ।

अजसु लोक परलोक दुख दिन दिन सोकसमाजु ॥ २१८ ॥

हे देवराज ! रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके भक्तका काम बिगाड़नेकी बात मनमें भी न लाइये । ऐसा करनेसे लोकमें अपयश और परलोकमें दुःख होगा, और शोकका सामान दिनोंदिन बढ़ता ही चला जायगा ॥ २१८ ॥

चौ०—सुनु सुरेस उपदेशु हमारा । रामहि सेवकु परम पिआरा ॥

मानत सुखु सेवक सेवकाई । सेवक बैर बैर अधिकाई ॥ १ ॥

हे देवराज ! हमारा उपदेश सुनो । श्रीरामजीको अपना सेवक परम प्रिय है । वे अपने सेवककी सेवासे सुख मानते हैं और सेवकके साथ बैर करनेसे बड़ा भारी बैर मानते हैं ॥ १ ॥

जद्यपि सम नहिं राग न रोष । गहहिं न पाप पूनु गुन दोष ॥

करम प्रधान विस्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फलु चाखा ॥ २ ॥

यद्यपि वे सम हैं—उनमें न राग है, न रोष है । और न वे किसीका पाप-पुण्य और गुण-दोष ही ग्रहण करते हैं । उन्होंने विश्वमें कर्मको ही प्रधान कर रक्खा है । जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल भोगता है ॥ २ ॥

तदपि करहिं सम विषम विहारा । भगत अभगत हृदय अनुसार ॥

अगुन अलेख अमान एकरस । रामु सगुन भए भगत पेम बस ॥ ३ ॥

तथापि वे भक्त और अभक्तके हृदयके अनुसार सम और विषम व्यवहार करते हैं (भक्तको प्रेमसे गले लगा लेते हैं और अभक्तको मारकर तार देते हैं) । गुणरहित, निर्लेख, मानरहित और सदा एकरस भगवान् श्रीराम भक्तके प्रेमवश ही सगुण हुए हैं ॥ ३ ॥

राम सदा सेवक रुचि राखी । बेद पुरान साधु सुर साखी ॥

अस जियँ जानि तजहु कुटिलाई । करहु भरत पद प्रीति सुहाई ॥ ४ ॥

श्रीरामजी सदा अपने सेवकों (भक्तों) की रुचि रखते आये हैं । वेद, पुराण, साधु और देवता इसके साक्षी हैं । ऐसा हृदयमें जानकर कुटिलता छोड़ दो और भरतजीके चरणोंमें सुन्दर प्रीति करो ॥ ४ ॥

दो०—रामभगत परहित निरत पर दुख दुखी दयाल ।

भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल ॥ २१९ ॥

हे सुरपालक इन्द्र ! श्रीरामचन्द्रजीके भक्त सदा दूसरोंके हितमें लगे रहते हैं । वे दूसरोंके दुःखसे दुखी और दयालु होते हैं । फिर, भरतजी तो भक्तोंके शिरोमणि हैं, उनसे बिल्कुल न डरो ॥ २१९ ॥

चौ०—सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी । भरत राम आयस अनुसारी ॥

स्वार्थ बिबस विकल तुम्ह होइ । भरत दोसु नहिं राउर मोइ ॥ १ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सत्यप्रतिज्ञ और देवताओंका हित करनेवाले हैं। और भरतजी श्रीरामजीकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले हैं। तुम व्यर्थ ही स्वार्थके विशेष बश होकर व्याकुल हो रहे हो। इसमें भरतजीका कोई दोष नहीं, तुम्हारा ही मोह है ॥ १ ॥

सुनि सुरबर सुरगुर बर वानी । भा प्रमोदु मन मिटी गलानी ॥

बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ । लगे सराहन भरत सुभाऊ ॥ २ ॥

देवगुरु बृहस्पतिजीकी श्रेष्ठ वाणी सुनकर इन्द्रके मनमें बड़ा आनन्द हुआ और उनकी चिन्ता मिट गयी। तब हर्षित होकर देवराज फूल बरसाकर भरतजीके स्वभावकी सराहना करने लगे ॥ २ ॥

एहि विधि भरत चले मग जाहीं । दसा देखि मुनि सिद्ध सिद्दाहीं ॥

जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा । उमगत पेसु मनहुँ चहुँ पासा ॥ ३ ॥

इस प्रकार भरतजी मार्गमें चले जा रहे हैं। उनकी [प्रेममयी] दशा देखकर मुनि और सिद्ध लोग भी सिद्दाते हैं। भरतजी जमी 'राम' कहकर लंबी साँस लेते हैं, तभी मानो चारों ओर प्रेम उमड़ पड़ता है ॥ ३ ॥

द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पपाना । पुरजन पेसु न जाइ यखाना ॥

बीच बास करि जमुनहिं आए । निरखि नीरु लोचन जल छाए ॥ ४ ॥

उनके [प्रेम और दीनतासे पूर्ण] वचनोंको सुनकर वज्र और पत्थर भी पिघल जाते हैं। अयोध्यावासियोंका प्रेम कहते नहीं बनता। बीचमें निवास (मुकाम) करके भरतजी यमुनाजीके तटपर आये। यमुनाजीका जल देखकर उनके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ४ ॥

दो०—रघुवर बरन विलोकि बर बारि समेत समाज ।

होत मगन वारिधि विरह चढ़े विवेक जहाज ॥ २२० ॥

श्रीरघुनाथजीके (श्याम) रंगका सुन्दर जल देखकर सारे समाजसहित भरतजी [प्रेमविह्वल होकर] श्रीरामजीके विरहरूपी समुद्रमें डूबते-डूबते विवेकरूपी जहाजपर चढ़ गये (अर्थात् यमुनाजीका श्यामवर्ण जल देखकर सब लोग श्यामवर्ण भगवान्के प्रेममें विह्वल हो गये और उन्हें न पाकर विरहव्यथासे पीड़ित हो गये; तब भरतजीको यह ध्यान आया कि जल्दी चलकर उनके साक्षात् दर्शन करेंगे, इस विवेकसे वे फिर उत्साहित हो गये) ॥ २२० ॥

चौ०—जमुनतीर तेहि दिन करि वासू । भयउ समय सम सवहि सुपासू ॥

रातिहिं घाट घाट की तरनी । आई अगणित जाहिं न बरनी ॥ १ ॥

उस दिन यमुनाजीके किनारे निवास किया। समयानुसार सबके लिये [स्नान-पान आदिकी] सुन्दर व्यवस्था हुई। [निपादराजका संकेत पाकर] रात-ही-रातमें घाट-घाटकी अगणित नावें वहाँ आ गयीं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥

प्रात पार भए एकहि खेवाँ । तोये रामसखा की सेवाँ ॥

चले नहाइ नदिहि सिर नाई । साथ निपादनाथ दोउ भाई ॥ २ ॥

सबसे एक ही खेवेंमें सब लोग पार हो गये और श्रीरामचन्द्रजीके सखा निपादराजकी इस सेवासे सन्तुष्ट हुए। फिर स्नान करके और नदीको सिर नयाकर निपादराजके साथ दोनों भाई चले ॥ २ ॥

आगेँ मुनिबर बाहन आछें । राजसमाज जाइ सबु पाछें ॥
तेहि पाछें दोउ बंधु पयादें । भूषन बसन बेष सुठि सादें ॥ ३ ॥

आगे अन्धी-अन्धी सवारियोंपर भ्रेष्ठ मुनि हैं, उनके पीछे सारा राजसमाज जा रहा है । उसके पीछे दोनों भाई बहुत सादे भूषण-वस्त्र और वेपथे पैदल चल रहे हैं ॥ ३ ॥

सेवक सुहृद सचिवसुत साथ । सुमिरत लखनु सीय रघुनाथा ॥
जहँ जहँ राम बास विश्रामा । तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा ॥ ४ ॥

सेवक, मित्र और मन्त्रीके पुत्र उनके साथ हैं । लक्ष्मण, सीताजी और श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते जा रहे हैं । जहाँ-जहाँ श्रीरामजीने निवास और विश्राम किया था, वहाँ-वहाँ वे प्रेमसहित प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—मगबासी नर नारि सुनि धाम काम तजि धाइ ।

देखि सरूप सनेह सब मुदित जनमफलु पाइ ॥ २२१ ॥

मार्गमें रहनेवाले स्त्री-पुरुष यह सुनकर घर और काम-काज छोड़कर दौड़ पड़ते हैं और उनके रूप (सौन्दर्य) और प्रेमको देखकर वे सब जन्म लेनेका फल पाकर आनन्दित होते हैं ॥ २२१ ॥

चौ०—कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं । रामु लखनु सखि होहिं कि नाहीं ॥

बय बपु बरन रूपु सोइ आली । सीलु सनेहु सरिस सम चाली ॥ १ ॥

गाँवोंकी स्त्रियाँ एक-दूसरीसे प्रेमपूर्वक कहती हैं—सखी ! ये राम-लक्ष्मण हैं कि नहीं ? हे सखी ! इनकी अवस्था, शरीर और रंग-रूप तो वही है । शील, स्नेह उन्हींकी सदृश है और चाल भी उन्हींकी समान है ॥ १ ॥

बेषु न सो सखि सीय न संग । आगेँ अनी चली चतुरंगा ॥

नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा । सखि संदेहु होइ एहिं भेदा ॥ २ ॥

परन्तु हे सखी ! इनका न तो वह वेष (वल्कलवस्त्रधारी मुनिवेष) है, न सीताजी ही संग हैं । और इनके आगे चतुरङ्गिणी सेना चली जा रही है । फिर इनके मुख प्रसन्न नहीं हैं, इनके मनमें खेद है । हे सखी ! इसी भेदके कारण सन्देह होता है ॥ २ ॥

तासु तरक तियगन मन मानी । कहहिं सकल तेहि क्षम न सयानी ॥

तेहि सराहि बानी फुरि पूजी । बोली मधुर वचन तिय दूजी ॥ ३ ॥

उसका तर्क (युक्ति) अन्य स्त्रियोंके मन भाया । सब कहती हैं कि इसके समान सयानी (चतुर) कोई नहीं है । उसकी सराहना करके और 'तेरी वाणी सत्य है' इस प्रकार उसका सम्मान करके दूसरी स्त्री मीठे वचन बोली ॥ ३ ॥

कहि सप्रेम सब कथाप्रसंगू । जेहि बिधि राम राज रस भंगू ॥

भरतहि बहुरि सराहन लागी । सील सनेह सुभाय सुभागी ॥ ४ ॥

श्रीरामजीके राजतिलकका आनन्द जिस प्रकारसे भंग हुआ था वह सब कथाप्रसंग प्रेमपूर्वक कहकर फिर वह भाग्यवती स्त्री श्रीभरतजीके शील, स्नेह और स्वभावकी सराहना करने लगी ॥ ४ ॥

दो०—चलत पयादें स्वात फल पिता दीन्ह तजि राजु ।

जात मनावन रघुबरहि भरत सरिस को आजु ॥ २२२ ॥

[वह बोली—] देखो, ये भरतजी पिताके दिये हुए राज्यको त्यागकर पैदल चलते और फलहार करते हुए श्रीरामजीको मनानेके लिये जा रहे हैं ! इनके समान आज कौन है ? ॥ २२२ ॥

चो०—भायप भगति भरत आचरनू । कहत सुनत दुख दूषन हरनू ॥

जो किल्लु कहब थोर सखि सोई । रामबंभु अस काहे न होई ॥ १ ॥

भरतजीका भाईपना, भक्ति और इनके आचरण कहने और सुननेसे दुःख और दोषोंके हरनेवाले हैं । हे सखी ! उनके सम्बन्धमें जो कुछ भी कहा जाय, वह थोड़ा है । श्रीरामचन्द्रजीके भाई ऐसे क्यों न हों ? ॥ १ ॥

हम सब सानुज भरतहि देखें । भइन्ह धन्य जुबती जन लेखें ॥

सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं । कैकइ जननि जोगु सुनु नाहीं ॥ २ ॥

छोटे भाई शत्रुघ्नसहित भरतजीको देखकर हम सब भी आज धन्य (बड़भागिनी) स्त्रियोंकी गिनतीमें आ गयीं । इस प्रकार भरतजीके गुण सुनकर और उनकी दशा देखकर स्त्रियाँ पछताती हैं और कहती हैं—यह पुत्र कैकेयी-जैसी माताके योग्य नहीं है ॥ २ ॥

कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन । विधि सबु कीन्ह हमहि जो दाहिन ॥

कहँ हम लोक वेद विधि हीनी । लघु तिय कुल करतूति मलोनी ॥ ३ ॥

कोई कहती हैं—इसमें रानीका भी दोष नहीं है । यह सब विधाताने ही किया है, जो हमारे अनुकूल है । कहाँ तो हम लोक और वेद दोनोंकी विधि (मर्यादा) से हीन, कुल और करतूत दोनोंसे मलिन नुच्छ स्त्रियाँ, ॥ ३ ॥

बसहिं कुदेस कुगावँ कुवामा । कहँ यह दरसु पुन्य परिनामा ॥

अस अनंदु अचिरिजु प्रति ग्रामा । जनु मरुभूमि कलपतरु जामा ॥ ४ ॥

जो बुरे देश (जंगली प्रान्त) और बुरे गाँवोंमें बसती हैं और [स्त्रियोंमें भी] नीच स्त्रियाँ हैं ! और कहाँ यह महान् पुण्योंका परिणामस्वरूप इनका दर्शन ! ऐसा ही आनन्द और आश्चर्य गाँव-गाँवमें हो रहा है । मानो मरुभूमिमें कल्पवृक्ष उग गया हो ॥ ४ ॥

दो०—भरत दरसु देखत खुलेउ मगलोगन्ह कर भागु ।

जनु सिंघलबासिन्ह भयउ विधि बस सुलभ प्रयागु ॥ २२३ ॥

भरतजीका स्वरूप देखते ही रास्तेमें रहनेवाले लोगोंके भाग्य खुल गये । मानो देवयोगसे सिंहलद्वीपके बसनेवालोंको तीर्थराज प्रयाग सुलभ हो गया हो ! ॥ २२३ ॥

चो०—निज गुन सहित राम गुन गाथा । सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा ॥

तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा । निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा ॥ १ ॥

[इस प्रकार] अपने गुणोंसहित श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी कथा सुनते और श्रीरघुनाथजीको स्मरण करते हुए भरतजी चले जा रहे हैं । वे तीर्थ देखकर स्नान, और मुनियोंके आश्रम तथा देवताओंके मन्दिर देखकर प्रणाम करते हैं, ॥ १ ॥

मनहीं मन मागहिं बरु पइ । सीय राम पद पदुम सनेइ ॥

मिलहिं किरात कोल बनवासी । बैखानस बटु जती उदासी ॥ २ ॥

और मन-ही-मन यह वरदान माँगते हैं कि श्रीसीतारामजीके चरणकमलोंमें प्रेम हो । मार्गमें मील, कोल आदि बनवासी, तथा वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, संन्यासी और विरक्त मिलते हैं ॥ २ ॥

करि प्रनामु पूँछहिं जेहि तेही । केहि बन लखनु रामु बैदेही ॥

ते प्रभु समाचार सब कहहीं । भरतहि देखि जनमफलु लहहीं ॥ ३ ॥

उनमेंसे जिस-तिससे प्रणाम करके पूछते हैं कि लक्ष्मणजी, श्रीरामजी और जानकीजी किस वनमें हैं ? वे प्रभुके सब समाचार कहते हैं और भरतजीको देखकर जन्मका फल पाते हैं ॥ ३ ॥

जे जन कहहिं कुसल हम देखे । ते प्रिय राम लखन सम लेखे ॥

एहि विधि बृहत्त सबहि सुबानी । सुनत राम बनवास कहानी ॥ ४ ॥

जो लोग कहते हैं कि हमने आपको कुशलपूर्वक देखा है, आपको वे श्रीराम-लक्ष्मणके समान ही प्यारे मानते हैं । इस प्रकार सबसे सुन्दर वाणीसे पूछते और श्रीरामजीके वनवासकी कहानी सुनते जाते हैं ॥ ४ ॥

दो०—तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमिरि रघुनाथ ।

रामदरस की लालसा भरत सरिस सब साथ ॥ २२४ ॥

उस दिन वही टहरकर दूसरे दिन प्रातःकाल ही श्रीरघुनाथजीका स्मरण करके चले । साथके सब लोगोंको भी श्रीरामजीके दर्शनकी लालसा भरतजीके समान ही है ॥ २२४ ॥

चो०—मंगल सगुन होहिं सब काहू । फरकाहिं सुखद बिलोचन बाहू ॥

भरतहि सहित समाज उछाहू । मिलिहहिं रामु मिटिहि दुखदाहू ॥ १ ॥

सबको मङ्गलस्वक शकुन हो रहे हैं । सुख देनेवाले [पुरुषोंके दाहिने और स्त्रियोंके बायें] नेत्र और भुजाएँ फड़क रही हैं । समाजसहित भरतजीको उत्साह हो रहा है कि श्रीरामचन्द्रजी मिलेंगे और दुःखका दाह मिट जायगा ॥ १ ॥

करत मनोरथ जस जियँ जाके । जाहिं सनेह सुराँ सब छाके ॥

सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं । बिहबल वचन पेम बस बोलहिं ॥ २ ॥

जिसके जीमें जैसा है, वह वैसा ही मनोरथ करता है । सब स्नेहरूपी मदिरासे छके (प्रेममें मतवाले हुए) चले जा रहे हैं । अंग शिथिल हैं । रास्तेमें पैर डगमगा रहे हैं और प्रेमवश बिह्वल वचन बोल रहे हैं ॥ २ ॥

रामसखाँ तेहि समय देखावा । सैलसिरोमनि सहज सुहावा ॥

जासु समीप सरित पय तीरा । सीय समेत बसहिं दोउ बीरा ॥ ३ ॥

रामसखा निषादराजने उसी समय स्वाभाविक ही सुहावना पर्वतशिरोमणि कामदगिरि दिखलाया । जिसके निकट ही पयस्विनी नदीके तटपर सीताजीसमेत दोनों भाई निवास करते हैं ॥ ३ ॥

देखि करहिं सब दंडप्रनामा । कहि जय जानकि जीवन रामा ॥

प्रेम मगन अस राजसमाजू । जनु फिर अवध चले रघुराजू ॥ ४ ॥

सब लोग उस पर्वतको देखकर 'जानकीजीवन श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो!' ऐसा कहकर दण्डवत् प्रणाम करते हैं । राजसमाज प्रेममें ऐसा मग्न है मानो श्रीरघुनाथजी अयोध्याको लौट चले हों ॥ ४ ॥

दो०—भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु ।

कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुख अह मम मलिन जनेषु ॥ २२५ ॥

भरतजीका उस समय जैसा प्रेम था, वैसा शेषजी भी नहीं कह सकते। कविके लिये तो वह वैसा ही अगम है जैसा अहंता और ममतासे मलिन मनुष्योंके लिये ब्रह्मानन्द ! ॥२२५॥

चौ०—सकल सनेह सिधिल रघुबर कैं। गए कोस दुइ दिनकर ढरकैं ॥

जलु थलु देखि बसे निसि बीतैं। कीन्ह गवन रघुनाथ पिरितैं ॥ १ ॥

सब लोग श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमके मारे शिथिल होनेके कारण सूर्यास्त होनेतक (दिन भरमें) दो ही कोस चल पाये और जल-स्थलका सुपास देखकर रातको वहीं [बिना खाये-पिये ही] रह गये। रात बीतनेपर श्रीरघुनाथजीके प्रेमी भरतजीने आगे गमन किया ॥ १ ॥

उहाँ राम रजनी अवसेषा। जागे सीयँ सपन अस देखा ॥

सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए ॥ २ ॥

उधर श्रीरामचन्द्रजी रात शेष रहते ही जागे। रातको सीताजीने ऐसा स्वप्न देखा [जिसे वे श्रीरामजीको सुनाने लगीं] मानो समाजसहित भरतजी यहाँ आये हैं। प्रभुके वियोगकी अग्निसे उनका शरीर संतप्त है ॥ २ ॥

सकल मलिन मन दीन दुखारीं। देखीं सासु आन अनुहारीं ॥

सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोचबस सोच बिमोचन ॥ ३ ॥

सभी लोग मनमें उदास, दीन और दुखी हैं। सासुओंको दूसरी ही सूरतमें देखा। सीताजीका स्वप्न सुनकर श्रीरामचन्द्रजीके नेत्रोंमें जल भर आया और सबको सोचसे छुड़ा देनेवाले प्रभु स्वयं [लीलासे] सोचके बश हो गये ॥ ३ ॥

लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई ॥

अस कहि बंधु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमने ॥ ४ ॥

[और बोले—] लक्ष्मण ! यह स्वप्न अच्छा नहीं है। कोई भीषण कुसमाचार (बहुत ही बुरी खबर) सुनावेगा। ऐसा कहकर उन्होंने भाईसहित स्नान किया और त्रिपुरारि महादेवजीका पूजन करके साधुओंका सम्मान किया ॥ ४ ॥

छं०—सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भए।

नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गए ॥

तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।

सब समाचार किरात कोलन्हि आए तेहि अवसर कहे ॥

देवताओंका सम्मान (पूजन) और मुनियोंकी वन्दना करके श्रीरामचन्द्रजी बैठ गये और उत्तर दिशाकी ओर देखने लगे। आकाशमें धूल छा रही है; बहुत-से पक्षी और पशु व्याकुल होकर भागे हुए प्रभुके आश्रमको आ रहे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु श्रीरामचन्द्रजी यह देखकर उठे और सोचने लगे कि क्या कारण है ? वे चित्तमें आश्चर्ययुक्त हो गये। उसी समय कोल-भीलोंने आकर सब समाचार कहे।

सो०—सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।

सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल ॥२२६॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सुन्दर मङ्गलवचन सुनते ही श्रीरामजीके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। शरीरमें पुलकावली छा गयी, और शरद् ऋतुके कमलके समान नेत्र प्रेमाश्रुओंसे भर गये ॥२२६॥

चौ०—बहुरि सोचबस भे सियरवनू । कारन कवन भरत आगवनू ॥

एक आइ अस कहा बहोरी । सेन संग चतुरंग न थोरी ॥ १ ॥

सीतापति श्रीरामचन्द्रजी पुनः सोचके वश हो गये कि भरतके आनेका क्या कारण है ! फिर एकने आकर ऐसा कहा कि उनके साथमें बड़ी भारी चतुरङ्गिणी सेना भी है ॥ १ ॥

सो सुनि रामहि भा अति सोचू । इत पितुबच इत बंधुसँकोचू ॥

भरत सुभाउ समुझि मन माहीं । प्रभु चित हित थिति पावत नाही ॥ २ ॥

यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको अत्यन्त सोच हुआ। इधर तो पिताके वचन और इधर भाई भरतजीका संकोच ! भरतजीके स्वभावको मनमें समझकर तो प्रभु श्रीरामचन्द्रजी चित्तको टहरानेके लिये कोई स्थान ही नहीं पाते हैं ॥ २ ॥

समाधान तब भा यह जाने । भरतु कहे महुँ साधु सयाने ॥

लखन लखेउ प्रभुहृदयँ खभाकू । कहत समय सम नीति बिचारू ॥ ३ ॥

तब यह जानकर समाधान हो गया कि भरत साधु और सयाने हैं तथा मेरे कहनेमें (आज्ञाकारी) हैं। लक्ष्मणजीने देखा कि प्रभु श्रीरामजीके हृदयमें क्षोभ है तो वे समयके अनुसार अपना नीतियुक्त विचार कहने लगे—॥ ३ ॥

बिनु पूछें कछु कहउँ गोसाईं । सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाई ॥

तुम्ह सर्वग्य शिरोमनि स्वामी । आपनि समुझि कहउँ अनुगामी ॥ ४ ॥

हे स्वामी ! आपके बिना ही पूछे मैं कुछ कहता हूँ; सेवक समयपर ढिठाई करनेसे ढीठ नहीं समझा जाता (अर्थात् आप पूछें तब मैं कहूँ, ऐसा अवसर नहीं है; इसीलिये यह मेरा कहना ढिठाई नहीं होगा)। हे स्वामी ! आप सर्वज्ञोंमें शिरोमणि है (सब जानते ही हैं)। मैं सेवक तो अपनी समझकी बात कहता हूँ ॥ ४ ॥

दो०—नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान ।

सब पर प्रीति प्रतीति जियँ जानिअ आपु समान ॥२२७॥

हे नाथ ! आप परम सुहृद (बिना ही कारण परम हित करनेवाले), सरलहृदय, तथा शील और स्नेहके भण्डार हैं; आपका सभीपर प्रेम और विश्वास है, और अपने हृदयमें सबको अपने ही समान जानते हैं ॥ २२७ ॥

चौ०—बिषई जीव पाइ प्रभुताई । मूढ़ मोह बस होहिं जनाई ॥

भरतु नीति रत साधु सुजाना । प्रभुपद प्रेमु सकल जगु जाना ॥ १ ॥

परन्तु मूढ़ विषयी जीव प्रभुता पाकर मोहवश अपने असली स्वरूपको प्रकट कर देते हैं। भरत नीतिपरायण, साधु और चतुर हैं तथा प्रभु (आप) के चरणोंमें उनका प्रेम है, इस बातको सारा जगत् जानता है ॥ १ ॥

तेऊ भाजु रामपदु पाई । चले घरम मरजाद मेटाई ॥

कुटिल कुबंभु कुभवसरु ताकी । जानि राम बनवास एकाकी ॥ २ ॥

वे भरत भी आज श्रीरामजीका (आपका) पद (सिंहासन या अधिकार) पाकर धर्मकी मर्यादाको मिटाकर चले हैं। कुटिल, खोटे भाई भरत कुसमय देखकर और यह जानकर कि रामजी (आप) वनवासमें अकेले हैं, ॥२॥

करि कुमंभु मन साजि समाजू । आप करै अकंटक राजू ॥

कोटि प्रकार कल्पि कुटिलाई । आप दल बटोरि दोउ भाई ॥ ३ ॥

अपने मनमें बुरा विचार करके, समाज जोड़कर राज्यको निष्कण्टक करनेके लिये यहाँ आये हैं। करोड़ों (अनेकों) प्रकारकी कुटिलताएँ रचकर सेना बटोरकर दोनों भाई आये हैं ॥ ३ ॥

जौं जियँ होति न कपट कुचाली । केहि सोहाति रथ बाजि गजाली ॥

भरतहि दोसु देख को जाएँ । जग बौराइ राजपदु पाएँ ॥ ४ ॥

यदि इनके हृदयमें कपट और कुचाल न होती, तो रथ, घोड़े और हाथियोंकी कतार ऐसे समय किसे सुहाती ? परन्तु भरतको ही व्यर्थ कौन दोष दे ? राजपद पा जानेपर सारा जगत् ही पागल (मतवाला) हो जाता है ॥ ४ ॥

दो०—ससि गुर तिय गामी नहुषु चढ़ेउ भूमिसुर जान ।

लोक बेद तें विमुख भा अधम न बेन समान ॥२२८॥

चन्द्रमा गुरुपत्नीगामी हुआ, राजा नहुष ब्राह्मणोंकी पालकीपर चढ़ा। और राजा वेनके समान नीच तो कोई नहीं होगा, जो लोक और वेद दोनोंसे विमुख हो गया ॥ २२८ ॥

चो०—सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू । केहि न राजमद दीन्ह कलंकू ॥

भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ । रिपु रिन रंच न राखब काऊ ॥ १ ॥

सहस्रबाहु, देवराज इन्द्र और विशंकु आदि किसको राजमदने कलंक नहीं दिया ? भरतने यह उपाय उचित ही किया है। क्योंकि शत्रु और ऋणको कभी जरा भी शेष नहीं रखना चाहिये ॥ १ ॥

एक कीन्ह नहिं भरत भलाई । निदरे रामु जानि असहाई ॥

समुझि परिहि सोउ आजु बिसेयी । समर सरोष राम मुखु पेखी ॥ २ ॥

हाँ, भरतने एक बात अच्छी नहीं की, जो रामजीको (आपको) असहाय जानकर उनका निरादर किया ! पर आज संग्राममें श्रीरामजीका (आपका) क्रोधपूर्ण मुख देखकर यह बात भी उनकी समझमें विशेषरूपसे आ जायगी (अर्थात् इस निरादरका फल भी वे अच्छी तरह पा जायेंगे) ॥ २ ॥

एतना कहत नीति रस भूला । रन रस बिटपु पुलक मिस फूला ॥

प्रभुपद बंदि सीस रज राखी । बोले सत्य सहज बलु भाषी ॥ ३ ॥

इतना कहते ही लक्ष्मणजी नीतिरस भूल गये और युद्धरसरूपी वृक्ष पुलकावलीके बहानेसे फूल उठा (अर्थात् नीतिकी बात कहते-कहते उनके शरीरमें वीर-रस छा गया)। वे प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी वन्दना करके, चरण-रजको सिरपर रखकर सच्चा और स्वाभाविक बल कहते हुए बोले— ॥ ३ ॥

अनुचित नाथ न मानब मोरा । भरत हमहि उपचार न थोरा ॥

कहँ लगि सहिअ रहिअ मनु मारें । नाथ साथ धनु हाथ हमारें ॥ ४ ॥

हे नाथ ! मेरा कहना अनुचित न मानियेगा। भरतने हमें कम नहीं प्रचारा है (हमारे साथ कम छेड़छाड़ नहीं की है) आखिर कहाँतक सहा जाय और मन मारे रहा जाय, जब स्वामी हमारे साथ हैं और धनुष हमारे हाथमें है ! ॥ ४ ॥

दो०—छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जगु जान ।

लातहुँ मारें चढ़ति सिर नीच को धूरि समान ॥२२९॥

क्षत्रिय जाति, रघुकुलमें जन्म और फिर मैं श्रीरामजी (आप) का अनुगामी (सेवक) हूँ, यह जगत् जानता है । [फिर भला कैसे सहा जाय ?] धूलके समान नीच कौन है, परन्तु वह भी लात मारनेपर सिर ही चढ़ती है ॥२२९॥

चो०—उठि कर जोरि रजायसु मागा । मनहुँ बीररस सोवत जागा ॥

बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा । साजि सरासनु सायकु हाथा ॥ १ ॥

यो कहकर लक्ष्मणजीने उठकर, हाथ जोड़कर आशा माँगी । मानो वीररस सोतेसे जाग उठा हो । सिरपर जटा बाँधकर कमरमें तरकस कस लिया और धनुषको सजकर तथा बाणको हाथमें लेकर कहा—॥ १ ॥

आजु राम सेवक जसु लेऊँ । भरतहि समर सिखावन देऊँ ॥

राम निरादर कर फलु पाई । सोवहुँ समर सेज दोउ भाई ॥ २ ॥

आज मैं श्रीरामका (आपका) सेवक होनेका यश ले लूँ और भरतको संग्राममें शिक्षा दे दूँ । श्रीरामचन्द्रजीके (आपके) निरादरका फल पाकर दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) रणशय्यापर सोवें ! ॥ २ ॥

आइ बना भल सकल समाजू । प्रगट करउँ रिस पाछिल आजु ॥

जिमि करि निकर दलइ मृगराजू । लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥ ३ ॥

अच्छा हुआ जो सारा समाज आकर एकत्र हो गया । आज मैं पिछिल सब क्रोध प्रकट करूँगा । जैसे सिंह हाथियोंके झुंडको कुचल डालता है, और बाज जैसे लवेको लपेटमें ले लेता है, ॥ ३ ॥

तैसेहिं भरतहि सेन समेता । सानुज निदरि निपातउँ खेता ॥

जौ सहाय कर संकर आई । तौ मारउँ रन रामदोहाई ॥ ४ ॥

वैसे ही भरतको सेनासमेत और छोटे भाईसहित तिरस्कार करके मैदानमें पछाड़ूँगा । यदि शङ्करजी भी आकर उनकी सहायता करें, तो भी मैं उन्हें युद्धमें मार डालूँगा (छोड़ूँगा नहीं) । मुझे रामजीकी सौगंध है ॥ ४ ॥

दो०—अति सरोष माखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रवान ।

सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान ॥२३०॥

लक्ष्मणजीको अत्यन्त क्रोधसे तमतमाया हुआ देखकर और उनकी प्रामाणिक (सत्य) सौगंध सुनकर सब लोक भयभीत हो जाते हैं और लोकपति घबराकर भागना चाहते हैं ॥ २३० ॥

चो०—जगु भय मगन गगन भइ बानी । लखन बाहुबलु विपुल बखानी ॥

तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा । को कहि सकइ को जाननिहारा ॥ १ ॥

सारा जगत् भयमें डूब गया । तब लक्ष्मणजीके अपार बाहुबलकी प्रशंसा करती हुई आकाशवाणी हुई—हे तात ! तुम्हारे प्रताप और प्रभावको कौन कह सकता है और कौन जान सकता है ! ॥ १ ॥

अनुचित उचित काजु किछु होऊ । समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ ॥

सहसा करि पाछे पछिताहीं । कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं ॥ २ ॥

परन्तु कोई भी काम हो, उसे अनुचित-उचित खूब समझ-बूझकर किया जाय तो सब कोई अच्छा कहते हैं। वेद और विद्वान् कहते हैं कि जो बिना विचारे जल्दीमें किसी कामको करके पीछे पछताते हैं, वे बुद्धिमान् नहीं हैं ॥ २ ॥

सुनि सुर बचन लखन सकुचाने । राम सीयें सादर सनमाने ॥

कही तात तुम्ह नीति सुहाई । सब तैं कठिन राजमदु भाई ॥ ३ ॥

देववाणी सुनकर लक्ष्मणजी सकुचा गये। श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीने उनका आदरके साथ सम्मान किया [और कहा—] हे तात ! तुमने बड़ी सुन्दर नीति कही। हे भाई ! राजमद सबसे कठिन मद है ॥ ३ ॥

जो अचवैत नृप मातहिं तेई । नाहिन साधुसभा जेहिं सेई ॥

सुनहु लखन भल भरत सरीसा । बिधिप्रपंच महँ सुना न दीसा ॥ ४ ॥

जिन्होंने साधुओंकी सभाका सेवन (सत्संग) नहीं किया, वे ही राजा राजमदरूपी मदिराका अचमन करते ही (पीते ही) मतवाले हो जाते हैं। हे लक्ष्मण ! सुनो, भरत-सरीखा उत्तम पुरुष ब्रह्माकी सृष्टिमें न तो कहीं सुना गया है, न देखा ही गया है ॥ ४ ॥

दो०—भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ ।

कबहुँ कि कांजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ॥ २३१ ॥

[अयोध्याके राज्यकी तो बात ही क्या है] ब्रह्मा, विष्णु और महादेवका पद पाकर भी भरतको राजमद नहीं हानेका ! क्या कभी कांजीकी बूँदोंसे छीरसमुद्र नष्ट हो सकता है (फट सकता है) ? ॥ २३१ ॥

चौ०—तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई । गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई ॥

गोपद जल बूझहिं घटजोनी । सहज छमा बरु छाहै छोनी ॥ १ ॥

अन्धकार चाहे तरुण (मध्याह्नके) सूर्यको निगल जाय। आकाश चाहे बादलोंमें समाकर मिल जाय। गोके खुर-इतने जलमें अगस्त्यजी डूब जायें। और पृथ्वी चाहे अपनी स्वाभाविक क्षमाको छोड़ दे ॥ १ ॥

मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई । होइ न नृपमदु भरतहि भाई ॥

लखन तुम्हार सपथ पितु आना । सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ॥ २ ॥

मच्छरकी फूँकसे चाहे सुमेरु उड़ जाय। परन्तु हे भाई ! भरतको राजमद कभी नहीं हो सकता। हे लक्ष्मण ! मैं तुम्हारी शपथ और पिताजीकी सौगंध खाकर कहता हूँ, भरतके समान पवित्र और उत्तम भाई संसारमें नहीं है ॥ २ ॥

सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता । मिलइ रचइ परपंचु विधाता ॥

भरतु हंस रविबंस तड़ागा । जनमि कीन्ह गुन दोष विभागा ॥ ३ ॥

हे तात ! गुणरूपी दूध और अवगुणरूपी जलको मिलकर विधाता इस दृश्य प्रपञ्च (जगत्) को रचता है। परन्तु भरतने सूर्यवंशरूपी तालाबमें हंसरूप जन्म लेकर गुण और दोषका विभाग कर दिया (दोनोंको अलग-अलग कर दिया) ॥ ३ ॥

गहि गुन पय तजि अवगुन बारी । निज जस जगत कीन्ह उजिआरी ॥

कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ । पेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥ ४ ॥

गुणरूपी दूधको ग्रहणकर और अवगुणरूपी जलको त्यागकर भरतने अपने यशसे जगत्में उजियाला कर दिया है। भरतजीके गुण, शील और स्वभावको कहते-कहते श्रीरघुनाथजी प्रेमसमुद्रमें मग्न हो गये ॥ ४ ॥

दो०—सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु ।

सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपानिकेतु ॥२३२॥

श्रीरघुबरकी वाणी सुनकर और भरतजीपर उनका प्रेम देखकर समस्त देवता उनकी सराहना करने लगे [और कहने लगे कि] श्रीरामचन्द्रजीके समान कृपाके धाम प्रभु और कौन हैं ? ॥ २३२ ॥

चौ०—जौ न होत जग जनम भरत को । सकल घरम धुर धरनि धरत को ॥

कबि कुल अगम भरत गुन गाथा । को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥ १ ॥

यदि जगत्में भरतका जन्म न होता, तो पृथ्वीपर सम्पूर्ण घमोंकी धुरीको कौन धारण करता ? हे रघुनाथजी ! कविकुलके लिये अगम (उनकी कल्पनासे अतीत) भरतजीके गुणोंकी कथा आपके सिवा और कौन जान सकता है ? ॥ १ ॥

लखन राम सियँ सुनि सुरबानी । अति सुख लहेउ न जाइ बखानी ॥

इहाँ भरतु सब सहित सहाय । मंदाकिनीं पुनीत नहाय ॥ २ ॥

लक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीने देवताओंकी वाणी सुनकर अत्यन्त सुख पाया, जो वर्णन नहीं किया जा सकता । यहाँ भरतजीने सारे समाजके साथ पवित्र मन्दाकिनीमें स्नान किया ॥ २ ॥

सरित समीप राखि सब लोगा । मागि मातु गुर सचिव नियोगा ॥

चले भरतु जहँ सिय रघुआई । साथ निषादनाथु लघु भाई ॥ ३ ॥

फिर सबको नदीके समीप ठहराकर तथा माता, गुरु और मन्त्रीकी आज्ञा माँगकर निषादराज और शत्रुघ्नको साथ लेकर भरतजी वहाँको चले जहाँ श्रीसीताजी और श्रीरघुनाथजी थे ॥ ३ ॥

समुझि मातु करतब सकुचाहीं । करत कुतरक कोटि मन माहीं ॥

रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ । उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ ॥ ४ ॥

भरतजी अपनी माता कैकेयीकी करनी समझकर सकुचाते हैं और मनमें करोड़ों (अनेकों) कुतर्क करते हैं । [सोचते हैं—] श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी मेरा नाम सुनकर स्थान छोड़कर कहीं दूसरी जगह उठकर न चले जायें ॥ ४ ॥

दो०—मातु मते महुँ मानि मोहि जो कछु करहिं सो थोर ।

अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर ॥२३३॥

मुझे माताके मतमें मानकर वे जो कुछ भी करें सो थोड़ा है, पर वे अपनी ओर समझकर (अपने विरद और सम्बन्धको देखकर) मेरे पापों और अवगुणोंको क्षमा करके मेरा आदर ही करेंगे ॥ २३३ ॥

चौ०—जौ परिहरहिं मलिन मनु जानी । जौ सनमानहिं सेवकु मानी ॥

मोरें सरन रामहि की पनही । राम सुखामि दोसु सब जनही ॥ १ ॥

चाहे मलिन-मन जानकर मुझे त्याग दे, चाहे अपना सेवक मानकर मेरा सम्मान करें, (कुछ भी करें); मेरे तो श्रीरामचन्द्रजीकी जूतियाँ ही शरण हैं । श्रीरामचन्द्रजी तो अच्छे स्वामी हैं, दोष तो सब दासका ही है ॥ १ ॥

जग जसभाजन चातक मीना । नेम पेम निज निपुन नवीना ॥

अस मन गुनत चले मग जाता । सकुच सनेह सिधिल सब गाता ॥ २ ॥

जगत्में यशके पात्र तो चातक और मछली ही हैं, जो अपने नेम और प्रेमकों सदा नया बनाये रखनेमें निपुण हैं। ऐसा मनमें सोचते हुए भरतजी मार्गमें चले जाते हैं। उनके सब अंग संकोच और प्रेमसे शिथिल हो रहे हैं ॥ २ ॥

फेरति मनहुं मातुलत खोरी। चलत भगतिबल धीरज धोरी ॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ ॥ ३ ॥

माताकी की हुई बुराई मानो उन्हें लौटाती है, पर धीरजकी धुरीको धारण करनेवाले भरतजी भक्तिके बलसे चले जाते हैं। जब श्रीरघुनाथजीके स्वभावको समझते (स्मरण करते) हैं तब मार्गमें उनके पैर जल्दी-जल्दी पड़ने लगते हैं ॥ ३ ॥

भरतदसा तेहि अवसर कैसी। जलप्रवाह जल अलि गति जैसी ॥
देखि भरत कर सोचु सनेह। भा निषाद तेहि समय बिदेह ॥ ४ ॥

उस समय भरतकी दशा कैसी है? जैसी जलके प्रवाहमें जलके भौरेकी गति होती है। भरतजीका सोच और प्रेम देखकर उस समय निषाद विदेह हो गया (देहकी सुब-बुध भूल गया) ॥ ४ ॥

दो०—लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोचु होइहि हरषु पुनि परिनाम बिषादु ॥ २३४ ॥

मंगल-शकुन होने लगे। उन्हें सुनकर और विचारकर निषाद कहने लगा—सोच मिटेगा, हर्ष होगा, पर फिर अन्तमें दुःख होगा ॥ २३४ ॥

चौ०—सेवक बचन सत्य सब जाने। आश्रम निकट जाइ निअराने ॥
भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ॥ १ ॥
भरतजीने सेवक (गुह) के सब वचन सत्य जाने और वे आश्रमके समीप जा पहुँचे। वहाँके वन और पर्वतोंके समूहको देखा तो भरतजी इतने आनन्दित हुए मानो कोई भूवा अच्छा अन्न (भोजन) पा गया हो ॥ १ ॥

इति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी ॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहि भरतगति तेहि अनुहारी ॥ २ ॥

जैसे इतिके भयसे दुःखी हुई और तीनों (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक) तापों तथा क्रूर ग्रहों और महामारियोंसे पीड़ित प्रजा किसी उत्तम देश और उत्तम राज्यमें जाकर सुखी हो जाय, भरतजीकी गति (दशा) ठीक उन्ही प्रकारकी हो रही है ॥ २ ॥

[अधिक जल बरसना, न बरसना, चूहोंका उत्पात, टिड्डियाँ, तोते और दूसरे राजाकी चढ़ाई—खेतोंमें बाधा देनेवाले इन छः उपद्रवोंको 'इति' कहते हैं।]

रामबास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ॥
सचिव विरागु बिबेकु नरेस्। बिपिन सुहावन पावन देस् ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके निवाससे वनकी सम्पत्ति ऐसी सुशोभित है मानो अच्छे राजाको पाकर प्रजा सुखी हो। सुहावना वन ही पवित्र देश है। विवेक उसका राजा है और वैराग्य मन्त्री है ॥ ३ ॥

भट जम नियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुंदर रानी ॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ। राम चरन आश्रित चित चाऊ ॥ ४ ॥

यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) तथा नियम (शौच, सन्तोष, दान, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान) योद्धा हैं। पर्वत राजधानी है, शान्ति तथा सुबुद्धि दो सुन्दर पवित्र रानियाँ हैं। वह

श्रेष्ठ राजा राज्यके सब अंगोंसे पूर्ण है और श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके आश्रित रहनेसे उसके चित्तमें चाव (आनन्द या उत्साह) है ॥ ४ ॥

दो०—जीति मोह महिपालु दल सहित बिबेक भुआलु ।

करत अकंटक राजु पुरँ सुख संपदा सुकालु ॥२३५॥

मोहरूपी राजाको सेनासहित जीतकर विवेकरूपी राजा निष्कण्टक राज्य कर रहा है। उसके नगरमें सुख, सम्पत्ति और सुकाल वर्तमान है ॥२३५॥

चो०—बन प्रदेश मुनिवास घनेरे । जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे ॥

बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना । प्रजासमाजु न जाइ बखाना ॥ १ ॥

वनरूपी प्रान्तोंमें जो मुनियोंके बहुत-से निवासस्थान हैं वही मानो झरों, नगरों, गाँवों और खेड़ोंका समूह है। बहुत-से विचित्र पक्षी और अनेकों पशु ही मानो प्रजाओंका समाज है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥

खगहा करि हरि बाघ बराहा । देखि महिष वृष साजु सराहा ॥

बयरु बिहाइ चरहिं एक संग । जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥ २ ॥

गैंडा, हाथी, सिंह, बाघ, सूअर, भैंसे और बैलोंको देखकर राजाके साजको सराहते ही बनता है। ये सब आपसका घेर छोड़कर जहाँ-तहाँ एक साथ विचरते हैं। यही मानो चतुरंगिणी सेना है ॥ २ ॥

झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं । मनहुँ निसान बिबिधि बिधि बाजहिं ॥

चक चकोर चातक सुक पिकगन । कूजत मंजु मराल मुदित मन ॥ ३ ॥

पानीके झरने झर रहे हैं और मतवाले हाथी चिंचाड़ रहे हैं। वे ही मानो वहाँ अनेकों प्रकारके नगाड़े बज रहे हैं। चकवा, चकोर, पपीहा, तोता तथा कोयलोंके समूह और सुन्दर हंस प्रसन्न मनसे कूज रहे हैं ॥ ३ ॥

अलिगन गावत नाचत मोरा । जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा ॥

बेलि बिटप तन सफल सफूला । सब समाजु मुद मंगल मूला ॥ ४ ॥

भौरोंके समूह गुंजार कर रहे हैं और मोर नाच रहे हैं। मानो उस अच्छे राज्यमें चारों ओर मङ्गल हो रहा है। बेल, वृक्ष, वृण सब फल और फूलोंसे युक्त हैं। सारा समाज आनन्द और मङ्गलका मूल बन रहा है ॥ ४ ॥

दो०—राम सैल सोभा निरखि भरत हृदयँ अति पेसु ।

तापस तपफलु पाइ जिमि सुखी सिरानें नेसु ॥२३६॥

श्रीरामजीके पर्वतकी शोभा देखकर भरतजीके हृदयमें अत्यन्त प्रेम हुआ। जैसे तपस्वी नियमकी समाप्ति होनेपर तपस्याका फल पाकर सुखी होता है ॥२३६॥

मासपारायण बसवाँ विश्राम

नवाह्नपारायण पाँचवाँ विश्राम

चो०—तब केवट ऊँचे चढ़ि घाई । कहेउ भरत सन भुजा उठाई ॥

नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला । पाकरि जंभु रसाल तमाला ॥ १ ॥

तब केवट दौड़कर ऊँचे चढ़ गया और भुजा उठाकर भरतजीसे कहने लगा—हे नाथ ! ये जो पाकर, जामुन, आम और तमालके विशाल वृक्ष दिखायी देते हैं, ॥ १ ॥

जिन्ह तरुवरन्ह मध्य बटु सोहा । मंजु बिलाल देखि मनु मोहा ॥

नील सघन पल्लव फल लाला । अबिरल छाहँ सुखद सब काला ॥ २ ॥

जिन श्रेष्ठ वृक्षोंके बीचमें एक सुन्दर विशाल बड़का वृक्ष सुशोभित है, जिसको देखकर मन मोहित हो जाता है, उसके पत्ते नीले और सघन हैं और उसमें लाल फल लगे हैं। उसकी धनी छाया सब ऋतुओंमें सुख देनेवाली है ॥ २ ॥

मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी । बिरची बिधि सँकेलि सुषमा सी ॥

ए तरु सरित समीप गोसाँई । रघुबर परनकुटी जहँ छाई ॥ ३ ॥

मानो ब्रह्माजीने परम शोभाको एकत्र करके अन्धकार और लालिमामयी राशि-सी रच दी है। हे गुसाई ! ये वृक्ष नदीके समीप हैं, जहाँ श्रीरघुवरकी पर्णकुटी छायी है ॥ ३ ॥

तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए । कहूँ कहूँ सियँ कहूँ लखन लगाए ॥

बटछायँ बेदिका बनाई । सियँ निज पानि सरोज सुहाई ॥ ४ ॥

वहाँ तुलसीजीके बहुत-से सुन्दर वृक्ष सुशोभित हैं, जो कहीं-कहीं सीताजीने और कहीं लक्ष्मणजीने लगाये हैं। इसी बड़की छायामें सीताजीने अपने करकमलसे सुन्दर वेदी बनायी है ॥ ४ ॥

दो०—जहाँ बैठि मुनिगन सहित नित सिय राम सुजान ।

सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान ॥ २३७ ॥

जहाँ सुजान श्रीसीतारामजी मुनियोंके वृन्दसमेत बैठकर नित्य शास्त्र, वेद और पुराणोंके सब कथा-इतिहास सुनते हैं ॥ २३७ ॥

चो०—सखाबचन सुनि बिटप निहारी । उमगे भरत बिलोचन बारी ॥

करत प्रनाम चले दोउ भाई । कहत प्रीति सारद सकुचार् ॥ १ ॥

सखाके वचन सुनकर और वृक्षोंको देखकर भरतजीके नेत्रोंमें जल उमड़ आया। दोनों भाई प्रणाम करते हुए चले। उनके प्रेमका वर्णन करनेमें सरस्वतीजी भी सकुचाती हैं ॥ १ ॥

हरषहिं निरखि राम पद अंका । मानहुँ पारसु पायउ रंका ॥

रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं । रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके चरणचिह्न देखकर दोनों भाई ऐसे हर्षित होते हैं मानो दरिद्र पारस पा गया हो। वहाँकी रजका मस्तकपर रखकर हृदयमें और नेत्रोंमें लगाते हैं और श्रीरघुनाथजीके मिलनेके समान सुख पाते हैं ॥ २ ॥

देखि भरत गति अकथ अतीवा । प्रेम मगन मृग लग जड़ जीवा ॥

सखाहि सनेह बिबस मग भूला । कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला ॥ ३ ॥

भरतजीकी अत्यन्त अनिर्वचनीय दशा देखकर वनके पशु, पक्षी और जड़ (वृक्षादि) जीव प्रेममें मग्न हो गये। प्रेमके विशेष वश होनेसे सखा निषादराजको भी रास्ता भूल गया। तब देवता सुन्दर रास्ता बतलाकर फूल बरसाने लगे ॥ ३ ॥

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे । सहज सनेहु सराहन लागे ॥

होत न भूतल भाउ भरत को । अचर सचर चर अचर करत को ॥ ४ ॥

भरतके प्रेमकी इस स्थितिको देखकर सिद्ध और साधकलोग भी अनुरागसे भर गये और उनके स्वाभाविक प्रेमकी प्रशंसा करने लगे कि यदि इस पृथ्वीतलपर भरतका जन्म [अथवा प्रेम] न होता, तो जइको चेतन और चेतनको जइ कौन करता ? ॥ ४ ॥

दो०—प्रेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर ।

मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर ॥ २३८ ॥

प्रेम अमृत है, विरह मन्दराचल पर्वत है, भरतजी गहरे समुद्र हैं । कृपाके समुद्र श्रीरामचन्द्रजीने देवता और साधुओंके हितके लिये स्वयं [इस भरतरूपी गहरे समुद्रको अपने विरहरूपी मन्दराचलसे] मथकर यह प्रेमरूपी अमृत प्रकट किया है ॥ २३८ ॥

चो०—सखा समेत मनोहर जोटा । लखेउ न लखन सघन बन ओटा ॥

भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन । सकल सुमंगल सवन सुहावन ॥ १ ॥

सखा निपादराजसहित इस मनोहर जोड़ीको सघन बनकी आड़के कारण लक्ष्मणजी नहीं देख पाये । भरतजीने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके समस्त सुमङ्गलोंके धाम और सुन्दर पवित्र आश्रमको देखा ॥ १ ॥

करत प्रवेश मिटे दुख दावा । जनु जोर्गी परमारथु पावा ॥

देखे भरत लखन प्रभु आगे । पूछे बचन कहत अनुरागे ॥ २ ॥

आश्रममें प्रवेश करते ही भरतजीका दुःख और दाह (जलन) मिट गया, मानो योगीको परमार्थ (परमात्मा) की प्राप्ति हो गयी हो । भरतजीने देखा कि लक्ष्मणजी प्रभुके आगे खड़े हैं और पूछे हुए वचन प्रेमपूर्वक कह रहे हैं (पूछी हुई बातका प्रेमपूर्वक उत्तर दे रहे हैं) ॥ २ ॥

सीस जटा कटि मुनिपट बाँधें । तून कसैं कर सब धनु काँधें ॥

वेदी पर मुनि साधु समाजू । सीय सहित राजत रघुराजू ॥ ३ ॥

सिरपर जटा है । कमरमें मुनियोंका (वल्कल) वस्त्र बाँधे हैं और उसीमें तरकस कसे हैं । हाथमें बाण तथा कंधेपर धनुष है । वेदीपर मुनि तथा साधुओंका समुदाय बैठा है और सीताजीसहित श्रीरघुनाथजी विराजमान हैं ॥ ३ ॥

बलकल बसन जटिल तनु स्यामा । जनु मुनिबेष कीन्ह रति कामा ॥

करकमलनि धनु सायकु फेरत । जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ॥ ४ ॥

श्रीरामजीके वल्कल वस्त्र हैं, जटा धारण किये हैं, श्याम शरीर है । (सीतारामजी ऐसे लगते हैं) मानो रति और कामदेवने मुनिका वेष धारण किया हो । श्रीरामजी अपने करकमलोंसे धनुष-बाण फेर रहे हैं, और हँसकर देखते ही जीकी जलन हर लेते हैं । (अर्थात् जिसकी ओर भी एक बार हँसकर देख लेते हैं, उसीको परम आनन्द और शान्ति मिल जाती है ।) ॥ ४ ॥

दो०—लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु ।

ग्यानसमाँ जनु तनु धरें मगति सच्चिदानंद ॥ २३९ ॥

सुन्दर मुनिमण्डलीके बीचमें सीताजी और रघुकुलचन्द्र श्रीरामचन्द्रजी ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो शानकी समामें साक्षात् भक्ति और सच्चिदानन्द शरीर धारण करके विराजमान हैं ॥ २३९ ॥

चौ०—सानुज सखा समेत मगन मन । बिसरे हरष सोक सुख दुख गन ॥

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं । भूतल परे लकुट की नाई ॥ १ ॥

छोटे भाई शत्रुघ्न और सखा निषादराज समेत भरतजीका मन [प्रेममें] मग्न हो रहा है । हर्ष-शोक, सुख-दुःख आदि सब भूल गये । 'हे नाथ ! रक्षा कीजिये, हे गुसाईं ! रक्षा कीजिये' ऐसा कहकर वे पृथ्वीपर दण्डकी तरह गिर पड़े ॥ १ ॥

बचन सप्रेम लखन पहिचाने । करत प्रनामु भरत जियै जाने ॥

बंधु सनेह सरस एहिं ओरा । उत साहिब सेवा बस जोरा ॥ २ ॥

प्रेमभरे वचनोंसे लक्ष्मणजीने पहचान लिया और मनमें जान लिया कि भरतजी प्रणाम कर रहे हैं । [वे श्रीरामजीकी ओर मुँह किये खड़े थे, भरतजी पीठ-पीछे थे; इससे उन्होंने देखा नहीं ।] अब इस ओर तो भाई भरतजीका सरस प्रेम और उधर स्वामी श्रीरामचन्द्रजीकी सेवाकी प्रबल परवशता ॥ २ ॥

मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई । सुकवि लखन मन की गति भनई ॥

रहे राखि सेवा पर भारू । चढ़ी चंग जनु खैंच खेलाऊ ॥ ३ ॥

न तो [क्षणभरके लिये भी सेवासे पृथक् होकर] मिलते ही बनता है और न [प्रेमवश] छोड़ते (उपेक्षा करते) ही । कोई श्रेष्ठ कवि ही लक्ष्मणजीके चित्तकी इस गति (दुविधा) का वर्णन कर सकता है । वे सेवापर भार रखकर रह गये (सेवाको ही विशेष महत्त्वपूर्ण समझकर उसीमें लगे रहे) मानो चढ़ी हुई पतंगको खिलड़ी (पतंग उड़ानेवाला) खींच रहा हो ॥ ३ ॥

कहत सप्रेम नाइ महि माथा । भरत प्रनाम करत रघुनाथा ॥

उठे रामु सुनि पेम अधीरा । कहूँ पट कहूँ निपंग धनु तीरा ॥ ४ ॥

लक्ष्मणजीने प्रेमसहित पृथ्वीपर मस्तक नवाकर कहा—हे रघुनाथजी ! भरतजी प्रणाम कर रहे हैं । यह सुनते ही श्रीरघुनाथजी प्रेममें अधीर होकर उठे । कहीं वज्र गिरा, कहीं तरकस, कहीं धनुष और कहीं बाण ॥ ४ ॥

दो०—बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान ।

भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान ॥ २४० ॥

कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजीने उनको जबर्दस्ती उठाकर हृदयसे लगा लिया ! भरतजी और श्रीरामजीके मिलनेकी रीतिको देखकर सबको अपनी सुघ भूल गयी ॥ २४० ॥

चौ०—मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी । कबिकुल अगम करम मन बानी ॥

परम पेम पूरन दोउ भाई । मन बुधि चित अहमिति बिसराई ॥ १ ॥

मिलनकी प्रीति कैसे बखानी जाय ! वह तो कविकुलके लिये कर्म, मन, वाणी तीनोंसे अगम है । दोनों भाई (भरतजी और श्रीरामजी) मन, बुद्धि, चित और अहंकारको भुलकर परम प्रेमसे पूर्ण हो रहे हैं ॥ १ ॥

कहहु सुपेम प्रगट को करई । केहि छाया कबि मति अनुसरई ॥

कबिहि अरथ आकर बलु साँचा । अनुहरि तालगतिहि नडु नाचा ॥ २ ॥

कहिये, उस श्रेष्ठ प्रेमको कौन प्रकट करे ? कविको बुद्धि किसकी छायाका अनुसरण करे ? कविको तो अक्षर और अर्थका ही सच्चा बल है । नट तालकी गतिके अनुसार ही नाचता है ! ॥ २ ॥

अगम सनेह भरत रघुबर को । जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को ॥

सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती । बाज सुराग कि गाँडर ताँती ॥ ३ ॥

भरतजी और भीरघुनाथजीका प्रेम अगम्य है, जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महादेवका भी मन नहीं जा सकता । उस प्रेमको मैं कुबुद्धि किस प्रकार कहूँ ? भला, गाँडरकी ताँतसे भी कहीं सुन्दर राग बज सकता है ! ॥ ३ ॥ तालाबों और झीलेंमें एक तरहकी घास होती है उसे गाँडर कहते हैं ।

मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की । सुरगन सभय धकधकी घरकी ॥

समुझाय सुरगुरु जड़ जागे । बरषि प्रसून प्रसंसन लागे ॥ ४ ॥

भरतजी और भीरामचन्द्रजीके मिलनेका दंग देखकर देवता भयभीत हो गये । उनकी धुकधुकी धड़कने लगी । देवगुरु बृहस्पतिजीने समझाया, तब कहीं वे मूर्ख चेतें और फूल बरसाकर प्रशंसा करने लगे ॥ ४ ॥

दो०—मिलि सपेम रिपुसूदनहि केवटु भेंटेउ राम ।

भूरि भायँ भेंटे भरत लल्लिमन करत प्रनाम ॥२४१॥

फिर भीरामचन्द्रजी प्रेमके साथ शत्रुघ्नसे मिलकर तब केवट (निषादराज) से मिले । प्रणाम करते हुए लक्ष्मणजीसे भरतजी बड़े ही प्रेमसे मिले ॥२४१॥

चो०—भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई । बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई ॥

पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे । अभिमत आसिष पाइ अनंदे ॥ १ ॥

तब लक्ष्मणजी ललककर (बड़ी उमंगके साथ) छोटे भाई शत्रुघ्नसे मिले । फिर उन्होंने निषाद-राजको हृदयसे लगा लिया । फिर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाइयोंने [उपस्थित] मुनियोंको प्रणाम किया और इच्छित आशीर्वाद पाकर वे आनन्दित हुए ॥ १ ॥

सानुज भरत उमगि अनुरागा । धरि सिर सिय पद पदुम परागा ॥

पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए । सिर करकमल परसि बैठाए ॥ २ ॥

छोटे भाई शत्रुघ्नसहित भरतजी प्रेममें उमंगकर सीताजीके चरणकमलोंकी रज सिरपर धारणकर बार-बार प्रणाम करने लगे । सीताजीने उन्हें उठाकर उनके सिरको अपने करकमलसे स्पर्शकर (सिरपर हाथ फेरकर) उन दोनोंको बैठाया ॥ २ ॥

सीयँ असीस दीन्हि मन माहों । मगन सनेहँ देहसुधि नाही ॥

सब बिधि सानुकूल लखि सीता । भे निसोच उर अपडर बीता ॥ ३ ॥

सीताजीने मन-ही-मन आशीर्वाद दिया । क्योंकि वे स्नेहमें मग्न हैं, उन्हें देहकी सुध-बुध नहीं है । सीताजीको सब प्रकारसे अपने अनुकूल देखकर भरतजी सोचरहित हो गये और उनके हृदयका कल्पित भय जाता रहा ॥ ३ ॥

कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूँछा । प्रेम भरा मन निज गति छूँछा ॥

तेहि अवसर केवटु घीरजु धरि । जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि ॥ ४ ॥

उस समय न तो कोई कुछ कहता है, न कोई कुछ पूछता है। मन प्रेमसे परिपूर्ण है, वह अपनी गतिसे खाली है (अर्थात् संकल्प-विकल्प और चाञ्चल्यसे शून्य है)। उस अवसरपर केवट (निषादराज) धीरज धर और हाथ जोड़कर प्रणाम करके विनती करने लगा—॥ ४ ॥

दो०—नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुरलोग ।

सेवक सेनप सचिव सब आए बिकल वियोग ॥२४२॥

हे नाथ ! मुनिनाथ वशिष्ठजीके साथ सब माताएँ, नगरनिवासी, सेवक, सेनापति, मन्त्री सब आपके वियोगसे व्याकुल होकर आये हैं ॥२४२॥

चौ०—सीलसिंधु सुनि गुर आगवन् । सिय समीप राखे रिपुदवन् ॥

बले सबेग रामु तेहि काला । धीर धरम धुर दीनदयाला ॥ १ ॥

गुरुका आगमन सुनकर शीलके समुद्र श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीके पास शत्रुघ्नजीको रख दिया और वे परम धीर, धर्मधुरन्धर, दीनदयालु श्रीरामचन्द्रजी उसी समय वेगके साथ चल पड़े ॥ १ ॥

गुरहि देखि सानुज अनुरागे । दंडप्रनाम करन प्रभु लागे ॥

मुनिबर धाह लिए उर लार्ह । प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई ॥ २ ॥

गुरुजीके दर्शन करके लक्ष्मणजीसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी प्रेममें भर गये और दण्डवत् प्रणाम करने लगे। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजीने दौड़कर उन्हें हृदयसे लगा लिया और प्रेममें उमंगकर वे दोनों भाइयोंसे मिले ॥ २ ॥

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू । कीन्ह दूरि तैं दंडप्रनामू ॥

रामसखा रिषि बरबस भेंटा । जनु महि लुठत सनेह समेटा ॥ ३ ॥

फिर प्रेमसे पुलकित होकर केवट (निषादराज) ने अपना नाम लेकर दूरसे ही वशिष्ठजीको दण्डवत् प्रणाम किया। ऋषि वशिष्ठजीने रामसखा जानकर उसको जबर्दस्ती हृदयसे लगा लिया। मानो जमीनपर लोटते हुए प्रेमको समेट लिया हो ॥ ३ ॥

रघुपति भगति सुमंगल मूला । नभ सराहि सुर बरिसहिं फूला ॥

एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं । बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजीकी भक्ति सुन्दर मङ्गलोंका मूल है इस प्रकार कहकर सगहना करने हुए देवता आकाशसे फूट बरसाने लगे। [वे कहने लगे—] जगत्में इसके समान सर्वथा नीच कोई नहीं और वशिष्ठजीके समान बड़ा कौन है ! ॥ ४ ॥

दो०—जेहि लखि लखनहु तैं अधिक मिले मुदित मुनिराउ ।

सो सीतापति भजन को प्रगट प्रताप प्रमाउ ॥२४३॥

जिसको देखकर मुनिराज वशिष्ठजी लक्ष्मणजीसे भी अधिक उससे आनन्दित होकर मिले। यह सब सीतापति श्रीरामचन्द्रजीके भजनका प्रत्यक्ष प्रताप और प्रभाव है ॥२४३॥

चौ०—आरत लोग राम सबु जाना । कवनाकर सुजान भगवाना ॥

जो जेहि भायँ रहा अभिलाषी । तेहि तेहि कै तसि तसि बख राखी ॥ १ ॥

दयाकी खान, सुजान भगवान् श्रीरामजीने सब लोगोंको दुखी जाना । तब जो जिस भावसे मिलने-का अभिलाषी था, उस-उसका उस-उस प्रकारका रख रखते हुए (उसकी रुचिके अनुसार) ॥ १ ॥

सानुज मिलि पल महुँ सब काहू । कीन्ह दूरि दुखु दारुन दाहू ॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं । जिमि घट कोटि एक रवि छाहीं ॥ २ ॥

उन्होंने लक्ष्मणजीसहित पलभरमें सब किसीसे मिलकर उनके दुःख और कठिन संतापको दूर कर दिया । श्रीरामचन्द्रजीके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है । जैसे करोड़ों घड़ोंमें एक ही सूर्यकी [पृथक्-पृथक्] छाया (प्रतिबिम्ब) एक साथ ही दीखती है ॥ २ ॥

मिलि केवटहि उमगि अनुरागा । पुरजन सकल सराहहिं भागा ॥
देखीं राम दुखित महतारीं । जनु सुबेलि अवलीं हिम मारीं ॥ ३ ॥

समस्त पुरवासी प्रेममें उमंगकर केवटसे मिलकर [उसके] भाग्यकी सराहना करते हैं । श्रीरामचन्द्रजीने सब माताओंको दुखी देखा । मानो सुन्दर लताओंकी पंक्तियोंकी पाला मार गया हो ॥ ३ ॥

प्रथम राम भेंटी कैकेई । सरल सुभायँ भगति मति भेई ॥
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी । काल करम विधि सिर धरि खोरी ॥ ४ ॥

सबसे पहले रामजी कैकेयीसे मिले और अपने सरल स्वभाव तथा भक्तिसे उसकी बुद्धिको तर कर दिया । फिर चरणोंमें गिरकर काल, कर्म और विधाताके मित्र दोष मँदकर, श्रीरामजीने उनको सान्त्वना दिया ॥ ४ ॥

दो०—भेंटीं रघुबर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु ।

अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु ॥२४४॥

फिर भीरघुनाथजी सब माताओंसे मिले । उन्होंने सबको समझा-बुझाकर सन्तोष कराया कि हे माता ! जगत् ईश्वरके अधीन है । किसीको भी दोष नहीं देना चाहिये ॥ २४४ ॥

चौ०—गुरतिय पद बंदे दुहुँ भाई । सहित विप्रतिय जे सँग आई ॥
गंग गौरि सम सब सनमानी । देहिं असीस मुदित मृदुबानी ॥ १ ॥

फिर दोनों भाइयोंने ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंसहित—जो भरतजीके साथ आयी थीं, गुह्यजीकी पत्नी अरुन्धतीजीके चरणोंकी वन्दना की और उन सबका गंगाजी तथा गौरीजीके समान सम्मान किया । वे सब आनन्दित होकर कोमल वाणीसे आशीर्वाद देने लगीं ॥ १ ॥

गहि पद लगे सुमित्रा अंका । जनु भेंटी संपति अति रंका ॥
पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता । परे पेम व्याकुल सब गाता ॥ २ ॥

तब दोनों भाई पैर पकड़कर सुमित्राजीकी गोदमें जो चिपटे । मानो किसी अत्यन्त दरिद्रको सम्पत्तिसे भेंट हो गयी हो । फिर दोनों भाई माता कौसल्याजीके चरणोंमें गिर पड़े । प्रेमके मारे उनके सब अंग विकल हैं ॥ २ ॥

अति अनुराग अंब उर लाए । नयन सनेह सलिल अन्हवाए ॥
तेहि अवसर कर हरष बिषादु । किमि कबि कहै मूक जिमि स्वादु ॥ ३ ॥

बड़े ही स्नेहसे माताने उन्हें हृदयसे लगा लिया और नेत्रोंसे बड़े हुए प्रेमाश्रुओंके जलसे उन्हें नहला दिया । उस समयके हर्ष और विषादको कवि कैसे कहे ! जैसे गूँगा स्वादको कैसे बतावे ! ॥ ३ ॥

मिलि जननिहि सानुज रघुराज । गुर सन कहेउ कि धारिअ पाऊ ॥

पुरजन पाइ मुनीस नियोगू । जल थल तकि तकि उतरेउ लोगू ॥ ४ ॥

भीरघुनाथजीने छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित माता कौसल्यासे मिलकर गुरुसे कहा कि आभमपर पधारिये । तदनन्तर मुनीश्वर वशिष्ठजीकी आज्ञा पाकर अयोध्यावासी सब लोग जल और थलका सुभीता देख-देखकर उतर गये ॥ ४ ॥

दो०—महिसुर मंत्री मातु गुर गने लोग लिए साथ ।

पावन आश्रम गवनु किय भरत लखन रघुनाथ ॥२४५॥

ब्राह्मण, मन्त्री, माताएँ और गुरु आदि गिने-चुने लोगोंको साथ लिये हुए, भरतजी, लक्ष्मणजी और भीरघुनाथजी पवित्र आश्रमको चले ॥ २४५ ॥

चौ०—सीय आइ मुनिवर पग लागी । उचिन असीस लही मन मागी ॥

गुरपतिनिहि मुनितियन्ह समेता । मिली पेसु कहि जाइ न जेता ॥ १ ॥

सीताजी आकर मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजीके चरणों लगीं और उन्होंने मनमोंगी उचित आश्रय पायी । फिर मुनियोंकी स्त्रियोंसहित गुरुपत्नी अरुन्धतीजीसे मिली । उनका जितना प्रेम था, वह कहा नहीं जाता ॥ १ ॥

बंदि बंदि पग सिय सवही के । आसिरयचन लहे प्रिय जो के ॥

सासु सकल जब सीयँ निहारी । मूदे नयन सहमि सुकुमारी ॥ २ ॥

सीताजीने सभीके चरणोंकी अलग-अलग वन्दना करके अपने हृदयको प्रिय (अनुकूल) लगानेवाले आशीर्वाद पाये । जब सुकुमारी सीताजीने सब सासुओंको देखा, तब उन्होंने महमकर अपनी आँखें बन्द कर लीं ॥ २ ॥

परीं बधिकबस मनहुँ मराली । काह कान्ह करतार कुचाली ॥

तिन्ह सिय निरखि निपट दुखु पावा । सो सबु सहिअ जो देउ सहावा ॥ ३ ॥

[सासुओंकी बुरी दशा देखकर उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ] मानो राजहंसिनियाँ अधिकके वशमें पड़ गयी हो । [मनमें सोचने लगीं कि] कुचाली विश्रामने क्या कर डाला ? उन्होंने भी सीताजीको देखकर बड़ा दुःख पाया । [सोचा] जो कुछ दैव सहावे, वह सब सहना ही पड़ता है ॥ ३ ॥

जनकसुता तब उर धरि धीरा । नील नलिन लोयन भरि नीरा ॥

मिली सकल सासुन्ह सिय जाई । तेहि अवसर करुना महि छाई ॥ ४ ॥

तब जानकीजी हृदयमें धीरज धरकर, नील कमलके समान नेत्रोंमें जल भरकर, सब सासुओंसे मिलीं । उस समय पृथ्वीवर करुणा (करुण-रस) छा गयी ! ॥ ४ ॥

दो०—लागि लागि पग सबनि सिय भेंटति अति अनुराग ।

हृदयँ असीसहिं पेस बस रहिअहु भरी सोहाग ॥२४६॥

सीताजी सबके पैरों लगा-लगाकर अत्यन्त प्रेमसे मिल रही हैं और सब सासुएँ स्नेहवश हृदयसे आशीर्वाद दे रही हैं कि तुम सुहागसे भरी रहो (अर्थात् मदा सोभाग्यवती रहो) ॥ २४६ ॥

चौ०—बिकल स्नेह सीय सब रानी । बैठन सबहि कहंउ गुर ग्यानी ॥

कहि जग गति मायिक मुनिनाथा । कहे कछुक परमार्थ गाथा ॥ १ ॥

सीताजी और सब रानियाँ स्नेहके मारे व्याकुल हैं । तब शानी गुरुने सबको बैठ जानेके लिये कहा । फिर मुनिनाथ वशिष्ठजीने जगत्की गतिको मायिक कहकर (अर्थात् जगत् मायाका है, इसमें कुछ भी नित्य नहीं है, ऐसा कहकर) कुछ परमार्थकी कथाएँ कहीं ॥ १ ॥

नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा । मुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा ॥

मरनहेतु निज नेहु बिचारी । भे अति बिकल धीर धुरधारी ॥ २ ॥

तदनन्तर वशिष्ठजीने राजा दशरथजीके स्वर्गगमनकी बात सुनायी । जिसे सुनकर रघुनाथजीने दुःसह दुःख पाया । और अपने प्रति उनके स्नेहको उनके मरनेका कारण विचारकर धीरधुरन्धर श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त व्याकुल हो गये ॥ २ ॥

कुलिस कठोर मुनत कटु बानी । बिलपत लखन सीय सब रानी ॥

सोक बिकल अति सकल समाज । मानहुँ राजु अकाजेउ आजु ॥ ३ ॥

वक्त्रके समान कठोर, कड़वी बाणी सुनकर लक्ष्मणजी, सीताजी और सब रानियाँ विलप करने लगीं । सारा समाज शोकसे अत्यन्त व्याकुल हो गया । मानो राजा आज ही मरे हों ॥ ३ ॥

मुनिबर बहुरि राम समुझाय । सहित समाज सुसरित नहाय ॥

ब्रत निरंनु तेहि दिन प्रभु कीन्हा । मुनिहु कहँ जलु काहुँ न लीन्हा ॥ ४ ॥

फिर मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजीने श्रीरामजीको समझाया । तब उन्होंने समाजसहित श्रेष्ठ नदी मन्दाकिनीजीमें स्नान किया । उस दिन प्रभु (श्रीरामचन्द्रजी) ने निर्जल व्रत किया । मुनि वशिष्ठजीके कहनेपर भी किसीने जल ग्रहण नहीं किया ॥ ४ ॥

दो० —भोर भएँ रघुनंदनहि जो मुनि आयसु दीन्ह ।

श्रद्धा भगति समेत प्रभु सो सब सादरु कीन्ह ॥ २४७ ॥

दूसरे दिन संवेग होनेपर मुनि वशिष्ठजीने श्रीरघुनाथजीको जो-जो आज्ञा दी, वह सब कार्य प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने श्रद्धा-भक्तिसहित आदरके साथ किया ॥ २४७ ॥

चौ०—करि पितृक्रिया बंद जसि बरनी । भे पुनीत पातक तम तरनी ॥

जासु नाम पावक अघ तूला । सुमिरत सकल सुमंगल मूला ॥ १ ॥

वेदोंमें जैसा कहा गया है, उसीके अनुसार पिताकी क्रिया करके, पापरूपी अन्धकारके नष्ट करनेवाले सूर्यरूप श्रीरामचन्द्रजी शुद्ध हुए ! जिनका नाम पापरूपी रूईके [तुरंत जला डालनेके] लिये अग्नि है, और जिनका स्मरणमात्र समस्त शुभ मङ्गलोंका मूल है, ॥ १ ॥

सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस । तीरथ आवाहन सुरसरि जस ॥

सुद्ध भएँ दुइ बासर बीते । बोले गुर सन राम पिरिते ॥ २ ॥

वे [नित्य शुद्ध बुद्ध] भगवान् श्रीरामजी शुद्ध हुए ! साधुओंकी ऐसी सम्मति है कि उनका शुद्ध होना वैसे ही है जैसा तीर्थोंके आवाहनसे गङ्गाजी शुद्ध होती हैं ! जब शुद्ध हुए दो दिन बीत गये तब श्रीरामचन्द्रजी प्रीतिके साथ गुरुजीसे बोले—॥ २ ॥

नाथ लोग सब निपट दुखारी । कंद मूल फल अंबु अहारी ॥

सानुज भरतु सचिव सब माता । देखि मोहि पल जिमि जुग जाता ॥ ३ ॥

हे नाथ ! सब लोग यहाँ अत्यन्त दुखी हो रहे हैं । कन्द, मूल, फल और जलका ही आहार करते हैं । भाई शत्रुघ्नसहित भरतको, मन्त्रियोंको और सब माताओंको देखकर मुझे एक-एक पल युगके समान बीत रहा है ॥ ३ ॥

सब समेत पुर धारिअ पाऊ । आपु इहाँ अमरावति राऊ ॥

बहुत कहेउँ सब कियउँ ढिठाई । उचित होइ तस करिअ गोसाँई ॥ ४ ॥

अतः सबके साथ आप अयोध्यापुरीको पधारिये (लौट जाइयें) । आप यहाँ हैं, और राजा अमरावती (स्वर्ग) में हैं (अयोध्या सूती है) । मैंने बहुत कह डाला, यह सब बड़ी ढिठाई की है । हे गोसाँई ! जैसा उचित हो, वैसा ही कीजिये ॥ ४ ॥

दो०—धर्मसेतु करुनायतन कस न कहहु अस राम ।

लोग दुखित दिन दुइ दस देखि लहहुँ विश्राम ॥ २४८ ॥

[वशिष्ठजीने कहा—] हे राम ! तुम धर्मके सेतु और दयाके धाम हो, तुम भला ऐसा क्यों न कहो ? लोग दुखी हैं । दो-चार दिन तुम्हें देखकर शान्ति लाभ कर लें ॥ २४८ ॥

चौ०—रामबचन सुनि सभय समाजू । जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू ॥

सुनि गुर गिरा सुमंगलमूला । भयउ मनहुँ मारुत अनुकूला ॥ १ ॥

श्रीरामजीके वचन सुनकर सारा समाज भयभीत हो गया । मानो बीच समुद्रमें जहाज डगमगा गया हो । परन्तु जब उन्होंने गुरु वशिष्ठजीकी श्रेष्ठ कन्यागमन्यक वार्त्ता सुनी, तो उस जहाजके लिये मानो हवा अनुकूल हो गयी ॥ १ ॥

पावन पयँ तिहुँ काल नहाहीं । जां बिलोकि अघ ओघ नसाहीं ॥

मंगलमूरति लोचन भरि भरि । निरखहिं हरपि दंडघन करि करि ॥ २ ॥

सब लोग पवित्र पयस्विनी नदीमें त्रिकाल (प्रातः, मध्याह्न और साय) स्नान करते हैं, जिसके दर्शनसे ही पापोंके समुह नष्ट हो जाते हैं और मङ्गलमूर्ति श्रीगमचन्द्रजीको दण्डघन प्रणाम कर करके उन्हें नेत्र भर-भर कर देखते हैं ॥ २ ॥

राम सैल वन देखन जाहीं । जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं ॥

झरना झरहिं सुधासम बारी । त्रिविध नापहर त्रिविध बयारी ॥ ३ ॥

सब श्रीगमचन्द्रजीके पर्वत (कामदगिनि) और वनको देखने जाते हैं जहाँ सभी सुख हैं और सभी दुःखोंका अभाव है । झरने अमृतके समान जल झरने हैं और तीन प्रकारकी (शीतल, मन्द, सुगन्ध) हवा त्रिविध तापोंको हर लेती है ॥ ३ ॥

ब्रिटप बेलि तन अगनित जाती । फल प्रमून पल्लव बहु भांती ॥

सुंदर सिला सुखद तरुछाहीं । जाइ बरनि वन छबि केहि पाहीं ॥ ४ ॥

असंख्य जातिके वृक्ष, लताएँ और तृण हैं तथा बहुत तरहके फल, फूल और पत्ते हैं । सुन्दर शिलाएँ हैं । वृक्षोंकी छाया सुख देनेवाली है । वनकी शोभा किससे वर्णन की जा सकती है ? ॥ ४ ॥

दो०—सरनि सरोरुह जलविहग कूजत गुंजत भृंग ।

वैर बिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहुरंग ॥२४९॥

तालाबोंमें कमल खिल रहे हैं, जलके पक्षी कूज रहे हैं, भोंरे गुंजार कर रहे हैं और बहुत रंगोंके पक्षी और पशु वनमें वैररहित होकर बिहार कर रहे हैं ॥ २४९ ॥

चौ०—कोल किरात भिल बनबासी । मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी ॥

भरि भरि परनपुटीं रचि करीं । कंद मूल फल अंकुर जूरीं ॥ १ ॥

कोल, किरात और भील आदि वनके रहनेवाले लोग मीठे, पवित्र, सुन्दर एवं अमृतके समान स्वादिष्ट कन्द, मूल, फल और अंकुर आदिके गुच्छोंको सुन्दर दोने बनाकर और उनमें भर-भरकर, ॥ १ ॥

सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा । कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा ॥

देहिं लोग बहु मोल न लेहीं । फेरत राम दोहाई देहीं ॥ २ ॥

सबको बिनय और प्रणाम करके उन चीजोंके अलग-अलग स्वाद, भेद (प्रकार) गुण और नाम बता-बताकर देते हैं । लोग उनका बहुत दाम देने हैं, पर वे नहीं लेते और लौटा देनेमें श्रीरामजीकी दुहाई देते हैं ॥ २ ॥

कहहिं सनेह मगन मृदु बानी । मानत साधु पेम पहिचानी ॥

तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा । पावा दरसनु रामप्रसादा ॥ ३ ॥

प्रेममें मग्न हुए वे कोमल वाणीसे कहते हैं कि साधु लाभ प्रेमको पहचानकर उसका सम्मान करते हैं (अर्थात् आप साधु हैं, आप हमारे प्रेमको देखिये, दाम देकर या वस्तुएँ लौटाकर हमारे प्रेमका तिरस्कार न कीजिये) । आप तो पुण्यात्मा हैं, हम नीच निषाद हैं । श्रीरामजीकी कृपासे ही हमने आपलोगोंके दर्शन पाये हैं ॥ ३ ॥

हमहि अगम अति दरसु तुम्हारा । जस मरुधरनि देवधुनि धारा ॥

राम कृपाल निषाद नवाजा । परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा ॥ ४ ॥

हमलोगोंको आपके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं, जैसे मरुभूमिके लिये गङ्गाजीकी धारा दुर्लभ है ! [देखिये,] कृपालु श्रीरामचन्द्रजीने निषादपर कैसी कृपा की है । जैसे राजा हैं, वैसा ही उनके परिवार और प्रजाको भी होना चाहिये ॥ ४ ॥

दो०—यह जियँ जानि सँकोचु तजि करिअ छोहु लखि नेहु ।

हमहि कृतार्थ करन लगि फल तन अंकुर लेहु ॥२५०॥

हृदयमें ऐसा जानकर संकोच छोड़कर और हमारा प्रेम देखकर कृपा कीजिये और हमको कृतार्थ करनेके लिये ही फल, तृण और अंकुर लीजिये ॥ २५० ॥

चौ०—तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे । सेवा जोगु न भाग हमारे ॥

देख काह हम तुम्हहि गोसाँई । ईधनु पात किरात मितार्ई ॥ १ ॥

आप प्रिय पाहुने वनमें पधारे हैं । आपकी सेवा करनेके योग्य हमारे भाग्य नहीं हैं । हे स्वामी ! हम आप-को क्या देंगे ? भोलोंकी मित्रता तो बस, ईधन (लकड़ी) और पत्तों ही तक है ॥ १ ॥

यह हमारी अति बड़ि सेवकाई । लेहिं न बासन बसन चोराई ॥

हम जड़ जीव जीवगन घाती । कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ॥ २ ॥

हमारी तो यही बड़ी भारी सेवा है कि हम आपके कपड़े और बर्तन नहीं चुरा लेते । हमलोग जड़ जीव हैं, जीवोंकी हिंसा करनेवाले हैं; कुटिल, कुचाली, कुबुद्धि और कुजाति हैं ॥ २ ॥

पाप करत निसि बासर जाहीं । नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं ॥
सपनेहुँ धरमबुद्धि कस काऊ । यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ ॥ ३ ॥

हमारे दिन-रात पाप करते ही बीतते हैं । तो भी न तो हमारी कमरमें कपड़ा है और न पेट ही भरते हैं । हममें स्वप्नमें भी कभी धर्मबुद्धि कैसी ? यह सब तो श्रीरघुनाथजीके दर्शनका प्रभाव है ॥ ३ ॥

जब तैं प्रभु पद पदुम निहारे । मिटे दुसह दुख दोष हमारे ॥
वचन सुनत पुरजन अनुरागे । तिन्ह के भाग सराहन लागे ॥ ४ ॥

जबसे प्रभुके चरणकमल देखे, तबसे हमारे दुःसह दुःख और दोष मिट गये । वनवासियोंके वचन सुनकर अयोध्याके लोग प्रेममें भर गये और उनके भाग्यकी सराहना करने लगे ॥ ४ ॥

छंद—लागे सराहन भाग सब अनुराग वचन सुनावहीं ।
बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेहु लखि सुख पावहीं ॥
नर नारि निदरहिं नेहु निज मुनि कोल भिल्लनि की गिरा ।
तुलसी कृपा रघुवंसमनि की लोह लै लौका तिरा ॥

सब उनके भाग्यकी सराहना करने लगे और प्रेमके वचन सुनाने लगे । उन लोगोंके बोलने और मिलनेका दंग तथा श्रीसीतारामजीके चरणोंमें उनका प्रेम देखकर सब सुख पा रहे हैं । उन कोल-भील्लोंकी वाणी सुनकर सभी नर-नारी अपने प्रेमका निरादर करने हैं (उसे धिक्कार देने हैं) । तुलसीदासजी कहते हैं कि यह रघुवंशमणि श्रीरामचन्द्रजीकी कृपा है कि लोहा नौकाका अपने ऊपर लेकर तैर गया ।

सो०—बिहरहिं बन चहुँ ओर प्रतिदिन प्रसुदित लोग सब ।

जल ज्यों दादुर मोर भए पीन पावस प्रथम ॥ २५१ ॥

सब लोग दिनोंदिन परम आनन्दित होते हुए, वनमें चारों ओर विचरते हैं । जैसे पहली वर्षाके जलसे भेदक और मोर मोटे हो जाते हैं (प्रसन्न होकर नाचने-कूदने हैं) ॥ २५१ ॥

चौ०—पुर जन नारि मगन अति प्रीती । बासर जाहिं पलक सम बीती ॥

सीय सासु प्रति बेप बनाई । सादर करइ सरिस संवकाई ॥ १ ॥

अयोध्यापुरीके पुरुष और स्त्री सभी प्रेममें अत्यन्त मग्न हो रहे हैं । उनके दिन पलकके समान बीत जाते हैं । जितनी सासुएं थीं, उतने ही वेप (रूप) बनाकर गीताजी सब सासुओंकी आदरपूर्वक एक ही सेवा करती हैं ॥ १ ॥

लखा न मरमु राम बिनु काहूँ । माया सब सियमाया माहूँ ॥

सीय सासु सेवा बस कीन्हीं । तिन्ह लहि सुख सिख आसिय दीन्हीं ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके सिवा इस भेदको और किसीने नहीं जाना । सब मायाएँ [पराशक्ति महामाया] श्रीसीताजीकी मायामें ही हैं । सीताजीने सासुओंको सेवासे बशमें कर लिया । उन्होंने सुख पाकर सीख और आशीर्वाद दिये ॥ २ ॥

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई । कुटिल रानि पछितानि भघाई ॥

भबनि जमहि जाचति कैकेई । महि न बीखु बिधि मीखु न देखे ॥ ३ ॥

सीताजी समेत दोनों भाइयों (श्रीराम-लक्ष्मण) को सरल स्वभाव देखकर कुटिल रानी कैकेयी भरपेट पछतायी । वह पृथ्वी तथा यमराजसे याचना करती है, किन्तु धरती बीच (फटकर समा जानेके लिये रास्ता) नहीं देती और विधाता मौत नहीं देता ॥ ३ ॥

लोकहुँ वेद विदित कवि कहहीं । रामबिमुख थलु नरक न लहहीं ॥

यहु संसउ सख के मन माहीं । राम गवनु बिधि अवध कि नाहीं ॥ ४ ॥

लोक और वेदमें प्रसिद्ध है और कवि (शानी) भी कहते हैं कि जो श्रीरामजीसे विमुख हैं उन्हें नरकमें भी ठौर नहीं मिलती । सबके मनमें यह सन्देह हो रहा था कि हे विधाता ! श्रीरामचन्द्रजीका अयोध्याको जाना होगा या नहीं ॥ ४ ॥

दो०—निसि न नीद नहिं भूख दिन भरतु बिकल सुचि सोच ।

नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल संकोच ॥ २५२ ॥

भरतजीकी न तो रातको नींद आती है, न दिनमें भूख ही लगती है । वे पवित्र सोचमें ऐसे विकल हैं, जैसे नीचे (तल) के कीचड़में डूबी हुई मछलीको जलकी कमीसे व्याकुलता होती है ॥ २५२ ॥

चौ०—कीन्हि मातु मिस काल कुचाली । ईति भीति जस पाकत साली ॥

केहि बिधि होइ राम अभियेकू । मोहि अवकलत उपाउ न एकू ॥ १ ॥

[भरतजी सोचते हैं कि] माताके मिससे काल्ने कुचाल की है । जैसे धानके पकते समय इंतिका भय आ उपस्थित हो । अब श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक किस प्रकार हो, मुझे तो एक भी उपाय नहीं सूझ पड़ता ॥ १ ॥

अवसि फिरहिं गुर आयसु मानी । मुनि पुनि कहय राम रुचि जानी ॥

मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ । रामजननि हठ करबि कि काऊ ॥ २ ॥

गुरुजीकी आज्ञा मानकर तो श्रीरामजी अवश्य ही अयोध्याको लौट चलेंगे । परन्तु मुनि वशिष्ठजी तो श्रीरामचन्द्रजीकी रुचि जानकर ही कुछ कहेंगे (अर्थात् वे श्रीरामजीकी रुचि देखे बिना जानेको नहीं कहेंगे) । माता कौसल्याजीके कहनेसे भी श्रीरघुनाथजी लौट सकते हैं; पर भला, श्रीरामजीको जन्म देनेवाली माता क्या कभी हठ करेगी ! ॥ २ ॥

मोहि अनुचर कर केतिक बाता । तेहि महँ कुसमउ वाम बिधाता ॥

जौ हठ करउँ त निपट कुकर्मू । हरगिरि तें गुरु सेवक घरमू ॥ ३ ॥

मुझ सेवककी तो बात ही कितनी है ! उसमें भी समय खराब है (मेरे दिन अच्छे नहीं हैं) और विधाता प्रतिकूल है । यदि मैं हठ करता हूँ तो यह घोर कुकर्म (अधर्म) होगा, क्योंकि सेवकका धर्म शिवजीके पर्वत कैलाससे भी भारी (निवाहनेमें कठिन) है ॥ ३ ॥

एकउ जुगुति न मन ठहरानी । सोचत भरतहि रैन बिहानी ॥

प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई । बैठत पठय रिषय बोलार्ह ॥ ४ ॥

एक भी युक्ति भरतजीके मनमें न ठहरी । सोचते-ही-सोचते रात बीत गयी । भरतजी प्रातःकाल स्नान करके और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको सिर नवाकर बैठे ही थे कि ऋषि वशिष्ठजीने उनको बुलवा भेजा ॥ ४ ॥

दो०—गुरु पद कमल प्रनाम्न करि बैठे आयसु पाइ ।

बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ ॥२५३॥

भरतजी गुरुके चरणकमलोंमें प्रणाम करके आशा पाकर बैठ गये । उसी समय ब्राह्मण, महाजन, मन्त्री आदि सभी सभासद आकर जुट गये ॥ २५३ ॥

चौ०—बोले मुनिबर समय समाना । सुनहु सभासद भरत सुजाना ॥

धरम धुरीन भानुकुल भानू । राजा रामु स्वबस भगवान् ॥ १ ॥

श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठजी समयोचित वचन बोले—हे सभासदो ! हे सुजान भरत ! मुनो । सूर्यकुलके सूर्य महाराज श्रीरामचन्द्र धर्मधुरन्धर और स्वतन्त्र भगवान् हैं ॥ १ ॥

सत्यसंध पालक श्रुति सेतू । राम जनमु जग मंगल हेतू ॥

गुरु पितु मातु वचन अनुसारी । खल दलु दलन देव हितकारी ॥ २ ॥

वे सत्यप्रतिज्ञ हैं और वेदकी मर्यादाके रक्षक हैं । श्रीरामजीका अवतार ही जगत्के कल्याणके लिये हुआ है । वे गुरु, पिता और माताके वचनोंके अनुसार चलनेवाले हैं । दुष्टोंके दलका नाश करनेवाले और देवताओंके हितकारी हैं ॥ २ ॥

नीति प्रीति परमार्थ स्वारथ । कोउ न राम सम जान जथारथ ॥

विधि हरि हरु ससि रवि दिसिपाला । माया जीव करम कुलि काला ॥ ३ ॥

नीति, प्रेम, परमार्थ और स्वार्थको श्रीरामजीके समान वचार्थ (तत्त्वमें) कोई नहीं जानता । ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, सभी कर्म और काल, ॥ ३ ॥

अहिष महिष जहँ लगि प्रभुताई । जोग सिद्धि निगमागम गाई ॥

करि बिचार जियँ देखहु नीकँ । राम रजाइ साँस सब ही कँ ॥ ४ ॥

शेषजी और [पृथ्वी एवं पातालके अन्यान्य] राजा आदि जहाँतक प्रभुता है, और योगकी सिद्धियाँ जो वेद और शास्त्रोंमें गायी गयी हैं, अच्छी तरह विचारकर देखो, [तो यह स्पष्ट दिखायी देगा कि] श्रीरामजीकी आशा इन सभीके सिरेपर है (अर्थात् श्रीरामजी ही सबके एकमात्र महान् महेश्वर हैं) ॥ ४ ॥

दो०—राखें राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ ।

समुझि सयाने करहु अब सब मिलि संमत सोइ ॥२५४॥

अतएव श्रीरामजीकी आशा और रुख रखनेमें ही हम सबका हित होगा । [इस तत्त्व और रहस्यको समझकर] अब तुम सयाने लोग जो सबको सम्मत हो, वही मिलकर करो ॥ २५४ ॥

चौ०—सब कहँ सुखद राम अभियेकू । मंगल मोद मूल मग एकू ॥

केहि विधि अवध चलहिं रघुराऊ । कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ ॥ १ ॥

श्रीरामजीका राज्याभिषेक सबके लिये सुखदायक है । मङ्गल और आनन्दका मूल यही एक मार्ग है । अब, श्रीरघुनाथजी किस प्रकार अयोध्याको लौट चले ! सोचकर कहो, वही उपाय किया जाय ॥ १ ॥

सब सादर सुनि मुनिबर बानी । नय परमार्थ स्वारथ सामी ॥

उतर न आव लोग भए भोरे । तब सिर नाइ भरत कर जोरे ॥ २ ॥

मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजीकी नीति, परमार्थ और स्वार्थ (प्रजाहित) में सनी हुई बाणी सबने आदरपूर्वक सुनी । पर किसीको कोई उत्तर नहीं आता, सब लोग भोले (विचारशक्तिते रहित) हो गये । तब भरतने सिर नवाकर हाथ जोड़े ॥ २ ॥

भानुबंस भय भूप घनेरे । अधिक एक तैं एक बड़ेरे ॥
जनम हेतु सब कहैं पितु माता । करम सुभासुभ देइ विधाता ॥ ३ ॥

[और कहा—] सूर्यवंशमें एक-से-एक अधिक बड़े बहुत-से राजा हो गये हैं । सभीके जन्मके कारण पिता-माता होते हैं, और शुभ-अशुभ कर्मोंको विधाता देते हैं ॥ ३ ॥

दलि दुख सजइ सकल कल्याना । अस असीस राउरि जगु जाना ॥
सो गोसाईं विधिगति जेहिं छोकी । सकर को टारि टेक जो टेकी ॥ ४ ॥

आपकी आशिष ही एक ऐसी है जो दुःखोंका दलन करके, समस्त कल्याणोंको सज देती है; यह जगत् जानता है । हे स्वामी ! आप वही हैं जिन्होंने विधाताकी गति (विधान) को भी रोक दिया । आपने जो टेक टेक दी (जो निश्चय कर दिया) उसे कौन टाल सकता है ! ॥ ४ ॥

दो०—बृहस्पति मोहि उपाउ अब सो सब मोर अमागु ।

सुनि सनेहमय वचन गुर उर उमगा अनुरागु ॥ २५५ ॥

अब आप मुझसे उपाय पूछते हैं, यह सब मेरा अभग्य है । भरतजीके प्रेममय वचनोंको सुनकर गुरुजीके हृदयमें प्रेम उमड़ आया ॥ २५५ ॥

चौ०—तात बात फुरि राम कृपाहीं । राम बिमुख सिधि सपनेहुं नाहीं ॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता । अरघ तजहिं बुध सरबस जाता ॥ १ ॥

[वे बोले—] हे तात ! बात सत्य है, पर है रामजीकी कृपासे ही । रामबिमुखको तो स्वप्नमें भी सिद्धि नहीं मिलती । हे तात ! मैं एक बात कहनेमें सकुचाता हूँ । बुद्धिमान् लोग सर्वस्व जाता देखकर [आधेकी रक्षाके लिये] आधा छोड़ दिया करते हैं ॥ १ ॥

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई । फेरिअहिं लखन सीय रघुराई ॥
सुनि सुबचन हरये दोउ भ्राता । भे प्रमोद परिपूरन गाता ॥ २ ॥

अतः तुम दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) वनको जाओ और लक्ष्मण, सीता और श्रीरामचन्द्रको लौटा दिया जाय । ये सुन्दर वचन सुनकर दोनों भाई हर्षित हो गये । उनके सारे अंग परमानन्दसे परिपूर्ण हो गये ॥ २ ॥

मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा । जनु जिय राउ रामु भय राजा ॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी । सम दुख सुख सब रोवहिं रानी ॥ ३ ॥

मन प्रसन्न हो गये । शरीरमें तेज सुशोभित हो गया । मानो राजा दशरथ जी उठे हों और श्रीरामचन्द्रजी राजा हो गये हों ! अन्य लोगोंको तो इसमें लाभ अधिक और हानि कम प्रतीत हुई । परन्तु रानियोंको दुःख-सुख समान ही थे (राम-लक्ष्मण वनमें रहें या भरत-शत्रुघ्न, दो पुत्रोंका वियोग तो रहेगा ही), यह समझकर वे सब रोने लगीं ॥ ३ ॥

कहिहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे । फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे ॥
कानन करउँ जनम भरि वासू । पहि तैं अधिक न मोर सुपासू ॥ ४ ॥

भरतजी कहने लगे—मुनिने जो कहा, वह करनेसे जगत्भरके जीवोंको उनकी इच्छित वस्तु देनेका फल होगा । [चौदह वर्षकी कोई अवधि नहीं,] मैं जन्मभर वनमें वास करूँगा । मेरे लिये इससे बढ़कर और कोई सुख नहीं है ॥ ४ ॥

दो०—अंतरजामी रामु सिय तुम्ह सरबग्य सुजान ।

जौं फुर कहहु त नाथ निज कीजिअ बचनु प्रवान ॥२५६॥

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी हृदयकी जाननेवाले हैं और आप सर्वज्ञ तथा सुजान हैं । यदि आप यह सत्य कह रहे हैं तो हे नाथ ! अपने वचनोंको प्रमाण (सत्य) कीजिये ॥२५६॥

चौ०—भरत बचन सुनि देखि सनेहु । सभासहित मुनि भय बिदेहु ॥

भरत महा महिमा जलरासी । मुनिमति ठाढ़ि तीर अबला सी ॥ १ ॥

भरतजीके वचन सुनकर और उनका प्रेम देखकर सारी सभासहित मुनि वशिष्ठजी विदेह हो गये (किसीको अपने देहकी सुख न रही) । भरतजीकी महान् महिमा समुद्र है, मुनिकी बुद्धि उसके तटपर अबला स्त्रीके समान खड़ी है ॥ १ ॥

गा चह पार जतनु हियँ देरा । पावति नाव न बोहितु बेरा ॥

औरु करिहि को भरत बढ़ाई । सरसीं सीपि कि सिंधु समाई ॥ २ ॥

वह पार जाना चाहती है, इसके लिये उसने हृदयमें उपाय ढूँढ़े । पर नाव, जहाज या बेड़ा कुछ भी नहीं पाती । भरतजीकी बढ़ाई और कौन करेगा ? तलैयाकी सीपोंमें भी कहीं समुद्र समा सकता है ? ॥ २ ॥

भरतु मुनिहि मन भीतर भाप । सहित समाज राम पढ़िं आप ॥

प्रभु प्रनामु करि दीन्ह मुआसनु । बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु ॥ ३ ॥

मुनि वशिष्ठजीके अन्तर्गत्माको भरतजी बहुत अच्छे लगे और वे समाजसहित श्रीरामजीके पास आये । प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने प्रणामकर उत्तम आसन दिया । सब लोग मुनिकी आज्ञा सुनकर बैठ गये ॥ ३ ॥

बोले मुनिवरु बचन बिचारी । देस काल अवसर अनुहारी ॥

सुनहु राम सरबग्य सुजाना । धरम नीति गुन ग्यान निधाना ॥ ४ ॥

श्रेष्ठ मुनि देश, काल और अवसरके अनुसार विचार करके वचन बोले—हे सर्वज्ञ ! हे सुजान ! हे धर्म, नीति, गुण और ज्ञानके भण्डार राम ! मुनिये—॥ ४ ॥

दो०—सब के उर अंतर बसहु जानहु माउ कुभाउ ।

पुरजन जननी भरत हित होइ मो कहिअ उपाउ ॥२५७॥

आप सबके हृदयके भीतर बसने हैं और सबके भले-बुरे भावको जानते हैं । जिसमें पुरवासियोंका, माताओंका और भरतका हित हो, वही उपाय बतलाइये ॥२५७॥

चौ०—आरत कहहिं बिचारि न काऊ । सूझ जुआरिहि आपन दाऊ ॥

सुनि मुनिबचन कहन रघुराऊ । नाथ तुम्हारेहिं हाथ उपाऊ ॥ १ ॥

आर्त (दुखी) लोग कभी विचारकर नहीं कहते । जुआरीको अपना ही दाँव सूझता है । मुनिके वचन सुनकर श्रीरघुनाथजी कहने लगे—हे नाथ ! उपाय तो आपके ही हाथ है ॥ १ ॥

सब कर हित रख राउरि राखें । आयसु किएँ मुदित फुर भावें ॥

प्रथम जो आयसु मो कहूँ होई । माथें मानि करौ सिख सोई ॥ २ ॥

आपका रख रखनेमें और आपकी आज्ञाको सत्य कहकर प्रसन्नतापूर्वक पालन करनेमें ही सबका हित है । पहले तो मुझे जो आज्ञा हो, मैं उसी शिक्षाको माथेपर चढ़ाकर करूँ ॥ २ ॥

पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाई । सो सब भौंति घटिहि सेवकाई ॥

कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा । भरतसनेहँ बिचारु न राखा ॥ ३ ॥

फिर हे गोसाई ! आप जिसको जैसा कहेंगे वह सब तरहसे सेवामें लग जायगा (आज्ञा पूरी करेगा) । मुनि वशिष्ठजी कहने लगे—हे राम ! तुमने सच कहा । पर भरतके प्रेमने विचारको नहीं रहने दिया ॥ ३ ॥

तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी । भरत भगति बस भइ मति मोरी ॥

मोरें जान भरतरुचि राखी । जो कीजिय सो सुभ सिव साखी ॥ ४ ॥

इसीलिये मैं बार-बार कहता हूँ, मेरी बुद्धि भरतकी भक्तिके वश हो गयी है । मेरी समझमें तो भरतकी रुचि रखकर जो कुछ किया जायगा, वह सब शुभ ही होगा । शिवजी इसके साक्षी हैं ॥ ४ ॥

दो०—भरत विनय सादर सुनिअ करिय बिचारु बहोरि ।

करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि ॥ २५८ ॥

पहले भरतकी विनती आदरपूर्वक सुन लीजिये, फिर उसपर विचार कीजिये । तब साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेदोंका निचोड़ (सार) निकालकर वैसा ही (उसीके अनुसार) कीजिये ॥ २५८ ॥

चौ०—गुरु अनुरागु भरत पर देखी । राम हृदयँ आनंदु बिसंषी ॥

भरतहि धरमधुरंधर जानी । निज सेवक तन मानस बानी ॥ १ ॥

भरतजीपर गुरुजीका स्नेह देखकर श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें विशेष आनन्द हुआ । भरतजीको धर्मधुरन्धर और तन, मन, वचनसे अपना सेवक जानकर—॥ १ ॥

बोले गुरु आयस अनुकूला । बचन मंजु मृदु मंगलमूला ॥

नाथ सपथ पितुचरन दोहाई । भयउ न भुअन भरत सम भाई ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजी गुरुकी आज्ञाके अनुकूल मनोहर, कोमल और कल्याणमूलक वचन बोले—हे नाथ ! आपकी शपथ और पिताजीके चरणोंकी दुहाई है (मैं सत्य कहता हूँ कि) विश्वभरमें भरतके समान भाई कोई हुआ ही नहीं ॥ २ ॥

जे गुरु पद अंबुज अनुरागी । ते लोकहुँ वेदहुँ बड़भागी ॥

राउर जापर अस अनुरागू । को कहि सकइ भरत कर भागू ॥ ३ ॥

जो लोग गुरुके चरणकमलोंके अनुरागी हैं, वे लोकमें (लौकिक दृष्टिसे) भी और वेदमें (पारमार्थिक दृष्टिसे) भी बड़भागी होते हैं । [फिर] जिसपर आप (गुरु) का ऐसा स्नेह है, उस भरतके भाग्यको कौन कह सकता है ! ॥ ३ ॥

लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचार्ह । करत बदन पर भरत बड़ाई ॥

भरतु कहहिं सोई किएँ भलाई । अस कहि राम रहे अरगारै ॥ ४ ॥

छोटा भाई जानकर भरतके मुँहपर उसकी बड़ाई करनेमें मेरी बुद्धि सकुचाती है । भरत जो कुछ कहें, वही करनेमें भलाई है । ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी चुप हो रहे ॥ ४ ॥

दो०—तब मुनि बोले भरत सन सब संकोचु तजि तात ।

कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कै बात ॥२५९॥

तब मुनि भरतजीसे बोले—हे तात ! सब संकोच त्यागकर कृपाके समुद्र अपने प्यारे भाईसे अपने हृदयकी बात कहो ॥ २५९ ॥

चौ०—मुनि मुनि वचन रामरुख पारि । गुरु साहिब अनुकूल भवाई ॥

लखि अपने सिर सबु छरु भारू । कहि न सकहिं कछु करहिं विचारू ॥ १ ॥

मुनिके वचन सुनकर और श्रीरामचन्द्रजीका रुख पाकर—गुरु तथा स्वामीको भरपेट अपने अनुकूल जानकर—सारा बोझ अपने ही ऊपर समझकर भरतजी कुछ कह नहीं सकते । वे विचार करने लगे ॥ १ ॥

पुलकि सरीर सभाँ भए ठाढ़े । नीरज नयन नेहजल बाढ़े ॥

कहय मोर मुनिनाथ निबाहा । एहि तँ अधिक कहौँ मैं काहा ॥ २ ॥

शरीरसे पुलकित होकर वे सभामें खड़े हुए । कमलसदृश नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंकी बाढ़ आ गयी । [वे बोले—] मेरा कहना तो मुनिनाथने ही निबाह दिया (जो कुछ मैं कह सकता था वह उन्होंने ही कह दिया) । इससे अधिक मैं क्या कहूँ ? ॥ २ ॥

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ । अपराधिहु पर कोह न काऊ ॥

मोपर कृपा सनेहु बिसंपी । खेलत खुनिस न कबहुँ देखी ॥ ३ ॥

अपने नाथका स्वभाव मैं जानता हूँ । वे अपराधीपर भी कभी क्रोध नहीं करते । मुझपर तो उनकी विशेष कृपा और स्नेह है । मैंने खेलमें भी कभी उनकी रीस (अप्रसन्नता) नहीं देखी ॥ ३ ॥

सिसुपन तँ परिहरेउँ न संगू । कबहुँ न कीन्ह मोर मनभंगू ॥

मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही । हारेहुँ खेल जितावहिं मोही ॥ ४ ॥

बचपनसे ही मैंने उनका साथ नहीं छोड़ा और उन्होंने भी मेरे मनको कभी नहीं तोड़ा । मैंने प्रभुकी कृपाकी रीतिको हृदयमें भलीभाँति देखा है (अनुभव किया है) । मेरे हारनेपर भी खेलमें प्रभु मुझे जिता देते रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—महँ सनेह सकाँच बस सनमुख कही न बैन ।

दरसन तृपित न आजु लगि पेम पिआसे नैन ॥२६०॥

मैंने भी प्रेम और संकोचवश कभी सामने मुँह नहीं खोला । प्रेमके प्यासे मेरे नेत्र आजतक प्रभुके दर्शनसे तृप्त नहीं हुए ॥ २६० ॥

चौ०—विधि न संकेउ सहि मोर दुलारा । नीच बोचु जननी मिस पारा ॥

यहउ कहत मोहि आजु न सोभा । अपनी समुझि साधु सुखि को मा ॥ १ ॥

परन्तु विधाता मेरा दुलार न सह सका । उमने नीच माताके बहाने अन्तर डाल दिया । यह भी कहना आज मुझे शोभा नहीं देता । क्योंकि अपनी समझमें कौन साधु और पवित्र हुआ है ? (जिसको दूसरे साधु और पवित्र मानें वही साधु है) ॥ १ ॥

मातु मंदि मैं साधु सुचाली । उर अस आनत छोटि कुचाली ॥
फरद कि कोदध बालि सुसाली । मुकता प्रसव कि संबुक् काली ॥ २ ॥

माता नीच है और मैं सदाचारी और साधु हूँ, ऐसा हृदयमें लाना ही करोड़ों दुराचारोंके सम्मन है ।
क्या कोदोंकी बाली उत्तम धान फल सकती है ? क्या काली घोधी मोती उत्पन्न कर सकती है ? ॥ २ ॥

सपनेहुँ दोस क लेसु न काहू । मोर अभाग उदधि अवगाहू ॥
बिनु समुझैं निज अध परिपाकू । जारिउँ जायँ जननि कहि फाकू ॥ ३ ॥

स्वप्नमें भी किसीको दोषका लेश भी नहीं है । मेरा अभाग्य ही अथाह समुद्र है । मैंने अपने पापोंका परिणाम समझे बिना ही माताको कुवचन कहकर व्यर्थ ही जलया ॥ ३ ॥

हृदयैं हेरि हारेउँ सव ओरा । एकहि भाँति भलेहिं भल मोरा ॥
गुर गोसाँ साहिब सिय रामू । लागत मोहि नीक परिनामू ॥ ४ ॥

मैं अपने हृदयमें सब ओर खोजकर हार गया (मेरी भलाईका कोई साधन नहीं सूझता) । एक ही प्रकार है जिससे भले ही (निश्चय ही) मेरा भल्य है । वह यह है कि गुरु महाराज सर्वसमर्थ हैं और श्रीसीतारामजी मेरे स्वामी हैं । इसीसे परिणाम मुझे अच्छा जान पड़ता है ॥ ४ ॥

दो०—साधुसभाँ गुर प्रभु निकट कहउँ सुथल सतिमाउ ।

प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ ॥ २६१ ॥

साधुओंकी सभामें गुरुजी और स्वामीके समीप इस पवित्र तीर्थ-स्थानमें मैं सत्य भावसे कहता हूँ ।
यह प्रेम है या प्रपञ्च (छल-कपट) ? झूठ है या सच ? इसे [सर्वज्ञ] मुनि वशिष्ठजी और [अन्तर्यामी] श्रीरघुनाथजी जानते हैं ॥ २६१ ॥

चौ०—भूषति मरन प्रेमपनु राखी । जननी कुमति जगनु सबु साक्षी ॥

देखि न जाहिं बिकल महतारीं । जरहिं दुसह जर पुर नर नारीं ॥ १ ॥

प्रेमके प्रणको रखकर महाराज (पिताजी) का मरना और माताकी कुबुद्धि, दोनोंका सारा संसार साक्षी है । माताएँ व्याकुल हैं, वे देखी नहीं जातीं । अवधपुरीके नर-नारी दुःसह तापसे जल रहे हैं ॥ १ ॥

महीं सकल अनरथ कर मूला । सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला ॥

सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा । करि मुनिबेष लखन सिय साथी ॥ २ ॥

बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ । संकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ ॥

बहुरि निहारि निषाद सनेह । कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू ॥ ३ ॥

इन सारे अनर्थोंका मूल मैं ही हूँ । यह सुन और समझकर मैंने सब दुःख सहा है । श्रीरघुनाथजी लक्ष्मण और सीताजीके साथ मुनिवेष धारणकर बिना जूते पहने पाँव-प्यादे (पैदल) ही वनको चले गये, यह सुनकर, शंकरजी साक्षी हैं, इस घावसे भी मैं जीता रह गया ! फिर निषादराजका प्रेम देखकर भी इस वज्रसे भी कठोर हृदयमें छेद नहीं हुआ (यह फटा नहीं) ! ॥ २-३ ॥

अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई । जियत जीव जइ सबह सहाई ॥

जिन्हहि निरखि मग साँपनि बीछी । तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी ॥ ४ ॥

अब यहाँ आकर सब आँखों देख लिया। यह जड़ जीव जीता रहकर सभी सहावेगा। जिनको देखकर रास्तेकी तीक्ष्ण साँपिनी और बीछी भी अपने भयानक विष और क्रोधको त्याग देती हैं—॥ ४ ॥

• दो०—तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित लागे जाहि ।

तासु तनय तजि दुसह दुख दैउ सहावइ काहि ॥२६२॥

वे ही श्रीरघुनन्दन, लक्ष्मण और सीता जिसको शत्रु जान पड़े, उस कैकेयीके पुत्र मुझको छोड़कर दैव दुःसह दुःख और किसे सहावेगा ? ॥ २६२ ॥

चौ०—सुनि अति बिकल भरत वर बानी । आरति प्रीति बिनय नय सानी ॥

सोक मगन सब सभौ खभारू । मनहुँ कमल बन परेउ तुसारू ॥ १ ॥

दुःख, प्रेम, विनय और नीतिमें सनी हुई अत्यन्त व्याकुल भरतजीकी श्रेष्ठ वाणी सुनकर सब लोग शोकमें मग्न हो गये, सारी सभामें विषाद छा गया। मानो कमलके वनपर पाला पड़ गया हो ॥ १ ॥

कहि अनेक विधि कथा पुरानी । भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी ॥

बोले उचित वचन रघुनंदू । दिनकर कुल कैरवबन चंदू ॥ २ ॥

तब शानी मुनि वशिष्ठजीने अनेक प्रकारकी पुरानी (ऐतिहासिक) कथाएँ कहकर भरतजीका समाधान किया। फिर सूर्यकुलरूपी कुमुदवनके प्रफुल्लित करनेवाले चन्द्रमा श्रीरघुनन्दन उचित वचन बोले—॥ २ ॥

तात जायँ जियँ करहु गलानी । ईस अर्धान जीवगति जानी ॥

तीनि काल निभुअन मत मोरें । पुन्यसिलोक तात तर तोरें ॥ ३ ॥

हे तात ! तुम अपने हृदयमें व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। जीवकी गतिके ईश्वरके अधीन जानो। मेरे मतमें तीनों कालों और तीनों लोकोंके सब पुण्यात्मा पुरुष तुमसे नीचे हैं ॥ ३ ॥

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई । जाइ लोकु परलोकु नसाई ॥

दोसु देहिं जननिहि जइ तेई । जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई ॥ ४ ॥

हृदयमें भी तुमपर कुटिलताका आरोप करते ही लोक-परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। माताजीको तो वे ही मूर्ख दोष देते हैं जिन्होंने गुरु और साधुओंकी सभाका सेवन नहीं किया है ॥ ४ ॥

दो०—मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार ।

लोक सुजसु परलोक सुख सुमिरत नाम तुम्हार ॥२६३॥

हे भरत ! तुम्हारा नाम स्मरण करने ही सब पाप, प्रपञ्च (अज्ञान) और समस्त अमङ्गलोंके समूह मिट जायेंगे तथा हम लोकमें सुन्दर यश और परलोकमें सुख प्राप्त होगा ॥ २६३ ॥

चौ०—कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । भग्न भूमि रह राउरि राखी ॥

तात कुनरक करहु जनि जाएँ । बैर प्रेम नहिं दुरइ दुराएँ ॥ १ ॥

हे भरत ! मैं स्वभावसे ही सत्य कहता हूँ, शिवजी साखी हैं—यह पृथ्वी तुम्हारी ही रक्खी रह रही है। हे तात ! तुम व्यर्थ कुतर्क न करो। बैर और प्रेम छिपाये नहीं छिपते ॥ १ ॥

मुनिगन निकट बिहग मृग जाहीं । बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ॥

हित अनहित पसु पछिउ जाना । मानुषतनु गुन ग्यान निधाना ॥ २ ॥

पक्षी और पशु मुनियोंके पास नेषक चले जाते हैं, पर हिंसा करनेवाले बघिकोंको देखते ही भाग जाते हैं। मित्र और शत्रुको पशु-पक्षी भी पहचानते हैं। फिर मनुष्यशरीर तो गुण और शानका भण्डार ही है ॥ २ ॥

तात तुम्हहि मैं जानउँ नीकें। करौं काह असमंजस जीकें ॥

राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पन लागी ॥ ३ ॥

हे तात ! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। क्या करूँ ? जीमें बड़ा असमंजस है। राजाने मुझे त्यागकर सत्यको रक्खा और प्रेम-प्रणके लिये शरीर छोड़ दिया ॥ ३ ॥

तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि तैं अधिक तुम्हार संकोचू ॥

तापर गुर मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा ॥ ४ ॥

उनके बचनको मेटते मनमें सोच होता है। उससे भी बढ़कर तुम्हारा संकोच है। उसपर भी गुरुजीने मुझे आशा दी है। इसलिये अब तुम जो कुछ कहो, अवश्य ही मैं वही करना चाहता हूँ ॥ ४ ॥

दो०—मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।

सत्यसंध रघुवर बचन सुनि भा सुखी समाजु ॥ २६४ ॥

तुम मनको प्रसन्न कर और संकोचको त्यागकर जो कुछ कहो, मैं आज वही करूँ। सत्यप्रतिष्ठ रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामजीका यह वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया ॥ २६४ ॥

चो०—सुरगन सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू ॥

वनत उपाउ करत कहु नाहीं। राम सरन सब ने मन माहीं ॥ १ ॥

देवगणोंसहित देवराज इन्द्र भयभीत होकर सोचने लगे कि अब बना-बनाया काम बिगड़ना ही चाहता है। कुछ उपाय करते नहीं बनता। तब वे मन-ही-मन श्रीरामजीकी शरण गये ॥ १ ॥

बहुरि बिचारि परस्पर कहहीं। रघुपति भगत भगति बस अहहीं ॥

सुधि करि अंबरीष दुरबासा। भे सुर सुरपति निपट निरासा ॥ २ ॥

फिर वे विचार करके आपसमें कहने लगे कि श्रीरघुनाथजी तो भक्तकी भक्तिके वश हैं। अम्बरीष और दुर्वासाकी [घटना] याद करके तो देवता और इन्द्र बिल्कुल ही निराश हो गये ॥ २ ॥

सहे सुरन्ह बहु काल बिपादा। नरहरि किए प्रगट प्रह्लादा ॥

लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा। अब सुरकाज भरतके हाथा ॥ ३ ॥

पहले देवताओंने बहुत समयतक दुःख सहे। तब भक्त प्रह्लादने ही नृसिंह भगवान्को प्रकट किया था। सब देवता परस्पर कानोंसे लग-लगाकर और सिर धुनकर कहते हैं कि अब (इस बार) देवताओंका काम भरतजीके हाथ है ॥ ३ ॥

आन उपाउ न देखिअ देवा। मानत राम सुसेवक सेवा ॥

हियँ सपेम सुमिरहु सब भरतहि। निज गुन सील राम बस करतहि ॥ ४ ॥

हे देवताओ ! और कोई उपाय नहीं दिखाया देता। श्रीरामजी अपने श्रेष्ठ सेवकोंकी सेवाको मानते हैं (अर्थात् उनके भक्तकी कोई सेवा करता है तो उसपर बहुत प्रसन्न होते हैं)। अतएव अपने गुण और शीलसे श्रीरामजीको वशमे करनेवाले भरतजीका ही सब लोग अपने-अपने हृदयमें प्रेमसहित स्मरण करो ॥ ४ ॥

दो०—सुनि सुरमत सुरगुर कहेउ भल तुम्हार बड़ भागु ।

सकल सुमंगल मूल जग भरत चरन अनुरागु ॥२६५॥

देवताओंका मत सुनकर देवगुरु बृहस्पतिजीने कहा—अच्छा विचार किया, तुम्हारे बड़े भाग्य हैं । भरतजीके चरणोंका प्रेम जगत्में समस्त शुभ मङ्गलोंका मूल है ॥ २६५ ॥

चौ०—सीतापति सेवक सेवकाई । कामधेनु सय सरिस सुहाई ॥

भरत भगति तुम्हरे मन आई । तजहु सोचु बिधि बात बनाई ॥ १ ॥

सीतानाथ श्रीरामजीके सेवककी सेवा सैकड़ों कामधेनुओंके समान सुन्दर है । तुम्हारे मनमें भरतजीकी भक्ति आयी है, तो अब सोच छोड़ दो । विधाताने बात बना दी ॥ १ ॥

देखु देवपति भरत प्रभाऊ । सहज सुभायँ बिबस रघुराऊ ॥

मन थिर करहु देव डरु नाहीं । भरतहि जानि राम परिछाहीं ॥ २ ॥

हे देवराज ! भरतजीका प्रभाव तो देखो । श्रीरघुनाथजी सहज स्वभावसे ही उनके पूर्णरूपसे वशमें हैं । हे देवताओ ! भरतजीको श्रीरामचन्द्रजीकी परछाईँ जानकर मन स्थिर करो, डरकी बात नहीं है ॥ २ ॥

सुनि सुरगुर सुर संमत सोचू । अंतरजामी प्रभुहि सकोचू ॥

निज स्तिर भारु भरत जियँ जाना । करन कोटि बिधि उर अनुमाना ॥ ३ ॥

देवगुरु बृहस्पतिजी और देवताओंकी सम्मति (आपसका विचार) और उनका सोच सुनकर अन्तर्यामी प्रभु श्रीरामजीको संकोच हुआ । भरतजीने अपने मनमें सब बोझा अपने ही सिर जाना और वे हृदयमें करोड़ों (अनेकों) प्रकारके अनुमान (विचार) करने लगे ॥ ३ ॥

करि बिचारु मन दान्ही ठोका । राम रजायस आपन नीका ॥

निज पन तजि रखेउ पनु मोरा । छोडु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा ॥ ४ ॥

सब तरहसे विचार करके अन्तमें उन्होंने मनमें यही निश्चय किया कि श्रीरामजीकी आज्ञामें ही अपना कल्याण है । उन्होंने अपना प्रण छोड़कर मेरा प्रण रक्खा । यह कुछ कम कृपा और स्नेह नहीं किया (अर्थात् अन्तमें ही अनुग्रह और स्नेह किया) ॥ ४ ॥

दो०—कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब बिधि सीतानाथ ।

करि प्रनाम बोलै भरतु जोरि जलज जुग हाथ ॥२६६॥

श्रीसीतानाथजीने सब प्रकारसे मुझपर अत्यन्त अशर अनुग्रह किया । तदनन्तर भरतजी दोनों करकमलोंसे जोड़कर प्रणाम करके बोले— ॥ २६६ ॥

चौ०—कहाँ कहावों का अब स्वामी । कृपा अंबुनिधि अंतरजामी ॥

गुर प्रसन्न साहिय अनुकूल । मिटी मलिन मन कल्पित सूला ॥ १ ॥

हे स्वामी ! हे कृपाके समुद्र ! हे अन्तर्यामी ! अब मैं अधिकक्या कहूँ और क्या कहाऊँ ! गुरु महाराजको प्रसन्न और स्वामीको अनुकूल जानकर मेरे मलिन मनकी कल्पित पीड़ा मिट गयी ॥ १ ॥

अपहर डरेउँ न सोच समूलें । रविहि न दोसु देव विसि भूलें ॥

मोर भभागु मातु कुटिलाई । बिधिगति विषम काल कठिनाई ॥ २ ॥

मैं मिथ्या ढरसे ही ढर गया था । मेरे सोचकी जड़ ही न थी । दिशा भूल जानेपर हे देव ! सूर्यका दोष नहीं है । मेरा दुर्भाग्य, माताकी कुटिलता, विधाताकी भयानक गति और कालकी कटिन्ता, ॥ २ ॥

पाउ रोपि सब मिलि मोहि घाला । प्रनतपाल पन आपन पाला ॥

यह नह रीति न राउरि होई । लोकहुँ बेद बिदित नहिं गोई ॥ ३ ॥

इन सबने मिलकर पैर रोपकर (प्रण करके) मुझे नष्ट कर दिया था । परन्तु शरणागतके रक्षक आपने अपना प्रण निवाहा (मुझे बचा लिया) । यह आपकी कोई नयी रीति नहीं है । यह लोक और वेदोंमें प्रकट है, छिपी नहीं है ॥ ३ ॥

जगु अनभल भल एकु गोसाईं । कहिय होइ भल कासु भलाई ॥

देउ देवतर सरिस सुभाऊ । सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ ॥ ४ ॥

सारा जगत् बुरा है; हे स्वामी ! भले तो एक आप हैं । फिर कहिये, किसकी भलाईसे भला हो सकता है ? हे देव ! आपका स्वभाव कल्पवृक्षके समान है; वह न कभी किसीके सम्मुख (अनुकूल) है, न विमुख (प्रतिकूल) ॥ ४ ॥

दो०—जाइ निकट पहिचानि तर छाहँ समनि सब सोच ।

मागत अभिमत पाव जग राउ रंकु भल पोच ॥ २६७ ॥

उस वृक्ष (कल्पवृक्ष) का पहचानकर जो उसके पास जाय, तो उसकी छाया सब प्रकारके सोचका नाश करनेवाली है । राजा रंक, भले बुरे, जगत्में सभी उससे माँगते ही मनचाही वस्तु पाते हैं ॥ २६७ ॥

चौ०—लखि सब विधि गुर स्वामि सनेह । मिटैउ छोभु नहिं मन संदेह ॥

अब करुनाकर कीजिअ सोई । जनहित प्रभुचित छोभु न होई ॥ १ ॥

गुरु और स्वामीका सब प्रकारसे स्नेह देखकर मेरा क्षोभ मिट गया, मनमें कुछ भी सन्देह नहीं रहा । हे दयाकी खान ! अब वही कीजिये जिससे दासका हित हो और प्रभुके चित्तमें क्षोभ न हो ॥ १ ॥

जो सेवकु साहिबहि सँकोची । निज हित चहइ तासु मति पोची ॥

सेवक हित साहिब सेवकाई । करै सकल सुख लोभ बिहाई ॥ २ ॥

जो सेवक स्वामीको संकोचमें डालकर अपना भल चाहता है, उसकी बुद्धि नीच है । सेवकका हित तो इसीमें है कि वह समस्त सुखो और लोभोको छोड़कर स्वामीकी सेवा ही करे ॥ २ ॥

स्वारथु नाथ फिरें सबही का । किऐँ रजाइ कोटि विधि नीका ॥

यह स्वारथ परमारथ सारु । सकल सुकृत फल सुगति सिंगारु ॥ ३ ॥

हे नाथ ! आपके लौटनेमें सभीका स्वार्थ है, और आपकी आज्ञा पालन करनेमें करोड़ों प्रकारसे कल्याण है । यही स्वार्थ और परमार्थका सार है, समस्त पुण्योंका फल और सम्पूर्ण शुभ गतियोंका शृङ्गार है ॥ ३ ॥

देव एक यिनती सुनि मोरी । उचित होइ तस करब बहोरी ॥

तिलक समाजु साजि सबु आना । करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना ॥ ४ ॥

हे देव ! आप मेरी एक विनती सुनकर, फिर जैसा उचित हो वैसा ही कीजिये । राजतिलककी सब सामग्री सजाकर लायी गयी है, जो प्रभुका मन माने तो उसे सफल कीजिये ॥ ४ ॥

दो०—सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ ।

नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ ॥२६८॥

छोटे भाई शत्रुघ्नसमेत मुझे वनमें भेज दीजिये और सबको सनाथ कीजिये । नही तो हे नाथ ! लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों भाइयोंको लौटा दीजिये और मैं आपके साथ चलूँ ॥ २६८ ॥

चौ०—नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई । बहुरिअ सीय सहित रघुराई ॥

जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई । करुनासागर कीजिअ सोई ॥ १ ॥

अथवा हम तीनों भाई वन चले जायँ और हे श्रीरघुनाथजी ! आप श्रीसीताजीसहित [अयोध्याको] लौट जाइये । हे दयासागर ! जिस प्रकारसे प्रभुका मन प्रसन्न हो, वही कीजिये ॥ १ ॥

देवँ दीन्ह सब मोहि अमारु । मोरें नीति न धरम बिचारु ॥

कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू । रहत न आरत कैं चित चेतू ॥ २ ॥

हे देव ! आपने सारा भार (जिम्मेवारी) मुझपर रख दिया । पर मुझमें न तो नीतिका विचार है, और न धर्मका ही । मैं तो अपने स्वार्थके लिये सब बातें कह रहा हूँ । आर्त (दुखी) मनुष्यके चित्तमें चेत (विवेक) नहीं रहता ॥ २ ॥

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई । सो सेवकु लखि लाज लजाई ॥

अस मैं अवगुन उदधि अगाधू । स्वामि सनेहँ सराहत साधू ॥ ३ ॥

स्वामीकी आज्ञा सुनकर जो उत्तर दे, ऐसे सेवकको देखकर लजा भी लजा जाती है । मैं अवगुणोंका ऐसा अथाह समुद्र हूँ [कि प्रभुको उत्तर दे रहा हूँ] । किन्तु स्वामी (आप) स्नेहवश साधु कहकर मुझे सराहते हैं ! ॥ ३ ॥

अब कृपाल मोहि सो मत भावा । सकुच स्वामि मन जाइ न पावा ॥

प्रभु पद सपथ कहउँ सतिभाऊ । जग मंगल हित एक उपाऊ ॥ ४ ॥

हे कृपाल ! अब तो वही मत मेरे मन भाता है, जिससे स्वामीका मन संकोच न पावे । प्रभुके चरणोंकी शपथ है, मैं सत्य भावसे कहता हूँ, जगत्के कल्याणके लिये एक यही उपाय है ॥ ४ ॥

दो०—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देव ।

सो मिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेच ॥२६९॥

प्रसन्न मनसे संकोच त्यागकर प्रभु जिसे जो आज्ञा देंगे, उसे सब मिर चढ़ा-चढ़ाकर [पालन] करेंगे और सब उपद्रव और उलझनें मिट जायँगी ॥ २६९ ॥

चौ०—भरत वचन सुचि सुनि सुर हरये । साधु सराहि सुमन सुर बरये ॥

असमंजस बस अवध नेवासी । प्रमुदित मन तापस बनवासी ॥ १ ॥

भरतजीके पवित्र वचन सुनकर देवता हर्षित हुए और 'साधु-साधु' कहकर सराहना करके देवताओंने फूल बरसाये । अयोध्यानिवासी असमंजसके वश हो गये (दुविधामें पड़ गये) । तपस्वी तथा वनवासी लोग मनमें परम आनन्दित हुए ॥ १ ॥

चुणहिं रहे रघुनाथ सँकोची । प्रभुगति देखि सभा सब सोची ॥

जनकदूत तेहि अवसर आप । मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए ॥ २ ॥

संकोची श्रीरघुनाथजी चुप ही रह गये। प्रभुकी यह स्थिति (मौन) देख सारी सभा सोचमें पड़ गयी। उसी समय जनकजीके दूत आये। यह सुनकर मुनि वशिष्ठजीने उन्हें तुरंत बुलवा लिया ॥ २ ॥

करि प्रनाम तिन्ह रामु निहारे। बेषु देखि भए निपट दुखारे ॥
दूतन्ह मुनिबर बूझी बाता। कहहु विदेह भूप कुसलाता ॥ ३ ॥

उन्होंने आकर प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजीको देखा। उनका [मुनियोंका-सा] वेष देखकर वे बहुत ही दुखी हुए। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजीने दूतोंसे बात पूछी कि विदेहराजका कुशल-समाचार कहां ॥ ३ ॥

सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चरवर जोरें हाथा ॥
बूझव राउर सादर साई। कुसलहेतु सो भयउ गोसाई ॥ ४ ॥

यह (मुनिका कुशलप्रश्न) सुनकर सकुचाकर पृथ्वीपर मस्तक नवाकर वे श्रेष्ठ दूत हाथ जोड़कर बोले—हे स्वामी ! आपका आदरके साथ पूछना, यही है गोसाई ! कुशलका कारण हो गया ॥ ४ ॥

दो०—नाहिं त कोसलनाथ के साथ कुसल गइ नाथ ।

मिथिला अवध विसेष तें जगु सब भयउ अनाथ ॥२७०॥

नहीं तो हे नाथ ! कुशल तो सब कोसलनाथ दशरथजीके साथ ही चली गयी। यों तो सारा जगत् ही अनाथ हो गया, किन्तु मिथिला और अवध तो विशेषरूपसे अनाथ हो गये ॥ २७० ॥

चौ०—कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सव लोक सोकबस वौरा ॥
जेहिं देखे तेहि समय विदेह। नामु सत्य अस लाग न केह ॥ १ ॥

कोसलपति की गति (दशरथजीका मरण) सुनकर जनकपुरवासी सभी लोग शोकवश बावले हो गये। उस समय जिन्होंने विदेहको [शोकमग्न] देखा, उनमेंसे किसीको ऐसा न लगा कि उनका विदेह नाम सत्य है ! ॥ १ ॥

रानि कुचालि सुनत नरपालहि। सूझ न कह्यु जस मनि विनु व्यालहि ॥
भरत राज रघुबर वनवासू। भा मिथिलेसहि हृदयँ हराँसू ॥ २ ॥

रानीकी कुचाल सुनकर राजा जनकजीको कुछ सूझ न पड़ा, जैसे मणि विना सोंपको नहीं सूझता। फिर भरतजीको राज्य और रघुवर श्रीरामचन्द्रजीका वनवास सुनकर मिथिलेश्वर श्रीजनकजीके हृदयमें बड़ा दुःख हुआ ॥ २ ॥

नृप बूझे बुध सचिव समाजू। कहहु विचारि उचित का आजू ॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ। चलिअ कि रहिअ न कह कह्यु कोऊ ॥ ३ ॥

राजाने विद्वानों और मन्त्रियोंके समाजसे पूछा कि विचारकर कहिये, आज (इस समय) क्या करना उचित है ? अयोध्याकी दशा समझकर और दोनों प्रकारसे असमंजस जानकर 'चले या रहे ?' किसीने कुछ नहीं कहा ॥ ३ ॥

नृपहिं धीर धरि हृदयँ विचारी। पठए अवध चतुर चर चारी ॥
बूझि भरत सतिभाउ कुभाऊ। आपहु बेगि न होइ लखाऊ ॥ ४ ॥

[जब किसीने कोई सम्मति नहीं दी] तब राजाने धीरज धर हृदयमें विचारकर चार चतुर गुप्तचर अयोध्याको भेजे। उनसे कह दिया कि तुमलोग भरतजीके सद्भाव या दुर्भावका यथार्थ पता लगाकर जल्दी लौट आना, किसीको तुम्हारा पता न लगने पावे ॥ ४ ॥

दो०—गए अवध चर भरत गति बूझि देखि करतूति ।

चले चित्रकूटहि भरतु चार चले तेरहूति ॥२७१॥

गुप्तचर अवधको गये और भरतजीका दंग जानकर और उनकी करनी देखकर, जैसे ही भरतजी चित्रकूटको चले, वे तिरहुत (मिथिला) को चल दिये ॥ २७१ ॥

चौ०—दूतन्ह आइ भरत कह करनी । जनक समाज जयामति बरनी ॥

सुनि गुर परिजन सचिव महीपति । भे सब सोच सनेहँ बिकल अति ॥ १ ॥

गुप्त दूतोंने आकर राजा जनकजीकी सभामें भरतजीकी करनीका अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन किया । उसे सुनकर गुरु, कुटुम्बी, मन्त्री और राजा सभी सोच और स्नेहसे अत्यन्त व्याकुल हो गये ॥ १ ॥

धरि धीरजु करि भरत बड़ाई । लिए सुभट साहनी बोलाई ॥

घर पुर देस राखि रखवारे । हय गय रथ बहु जान सँवारे ॥ २ ॥

फिर जनकजीने धीरज धरकर और भरतजीकी बड़ाई करके अच्छे योद्धाओं और साहनियोंको बुलाया । घर, नगर और देशमें रक्षकोंको रखकर घोड़े, हाथी, रथ आदि बहुत-सी सवारियाँ सजवायीं ॥ २ ॥

दुधरी साधि चले ततकाला । किय विश्रामु न मग महिपाला ॥

भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा । चले जमुन उतरन सबु लागा ॥ ३ ॥

वे दुधड़िया मुहूर्त साधकर उसी समय चल पड़े । राजाने रास्तेमें कही विश्राम भी नहीं किया । आज ही सवेरे प्रयागराजमें स्नान करके चले हैं । जब सब लोग यमुनाजी उतरने लगे, ॥ ३ ॥

खवरि लेन हम पठय नाथा । तिन्ह कहि अस महि नायउ माथा ॥

साथ किरात छ सातक दीन्हे । मुनिवर तुरत विदा चर कीन्हे ॥ ४ ॥

तब हे नाथ ! हमें खबर लेनेको भेजा । उन्होंने (दूतोंने) ऐसा कहकर पृथ्वीपर सिर नवाया । मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजीने कोई छः-सात भीलोंको साथ देकर दूतोंको तुरंत विदा कर दिया ॥ ४ ॥

दो०—सुनत जनक आगवनु सबु हरषेउ अवधसमाजु ।

रघुनंदनहि सकोचु बड़ सोचबिबस सुरराजु ॥२७२॥

जनकजीका आगमन सुनकर अयोध्याका सारा समाज हर्षित हो गया । श्रीगमजीको बड़ा संकोच हुआ और देवराज इन्द्र तो विशेषरूपसे सोचके वशमें हो गये ॥ २७२ ॥

चौ०—गरइ गलानि कुटिल कैकेई । काहि कहै केहि दूषनु देई ॥

अस मन आनि मुदित नर नारी । भयउ बहोरि रहब दिन चारी ॥ १ ॥

कुटिल कैकयी मन-ही-मन गलानिसे गली जाती है । किससे कहे और किसको दोष दे ? और सब नर-नारी मनमें ऐसा विचारकर प्रसन्न हो रहे हैं कि अच्छा हुआ, चार (कुछ) दिन और रहना हो गया ॥ १ ॥

एहि प्रकार गत वासर सोऊ । प्रात नहान लाग सबु कोऊ ॥

करि मज्जनु पूजहिं नर नारी । गनप गौरि तिपुरारि तमारी ॥ २ ॥

इस तरह वह दिन भी बीत गया । दूसरे दिन प्रातःकाल सब कोई स्नान करने लगे । स्नान करके सब नर-नारी गणेशजी, गौरीजी, महादेवजी और सूर्य भगवान्की पूजा करते हैं ॥ २ ॥

रमारमन पद बंदि बहोरी । बिनबहिं अंजुलि अंचल जोरी ॥

राजा रामु जानकी रानी । आनंद अवधि अवध रजधानी ॥ ३ ॥

फिर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके चरणोंकी बन्दना करके, दोनों हाथ जोड़कर, आँचल पसारकर विनती करते हैं कि श्रीरामजी राजा हों, जानकीजी रानी हों तथा राजधानी अयोध्या आनन्दकी सीमा होकर—॥ ३ ॥

सुखस बसउ फिरि सहित समाजा । भरतहि रामु करहुँ जुबराजा ॥

एहि सुखसुधाँ सींचि सब काहु । देव देहु जग जीवनलाहु ॥ ४ ॥

फिर समाजसहित सुखपूर्वक बसे और श्रीरामजी भरतजीको युवराज बनावें । हे देव ! इस सुखरूपी अमृतसे सींचकर सबको जगत्में जीनेका लाभ दीजिये ॥ ४ ॥

दो०—गुर समाज भाइन्ह सहित रामराजु पुर होउ ।

अछत राम राजा अवध मरिअ माग सबु कोउ ॥ २७३ ॥

गुरु, समाज और भाइयोंसमेत श्रीरामजीका राज्य अवधपुरीमें हो और रामजीके राजा रहने ही हमलोग अयोध्यामें मरें । सब कोई यही माँगते हैं ॥ २७३ ॥

चौ०—सुनि सनेहमय पुरजन बानी । निंदहिं जोग बिरति मुनि ग्यानी ॥

एहि बिधि नित्यकर्म करि पुरजन । रामहिं करहिं प्रनाम पुलकि तन ॥ १ ॥

अवधवासियोंकी प्रेममयी वाणी सुनकर शानी मुनि भी अपने योग और वैराग्यकी निन्दा करते हैं । अवध-वासी इस प्रकार नित्यकर्म करके श्रीरामजीको पुलकितशरीर हो प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

ऊँच नीच मध्यम नर नारी । लहहिं दरसु निज निज अनुहारी ॥

सावधान सयही सनमानहि । सकल सराहत कृपानिधानहि ॥ २ ॥

ऊँच, नीच और मध्यम सभी श्रेणियोंके स्त्री-पुरुष अपने-अपने भावके अनुसार श्रीरामजीका दर्शन प्राप्त करते हैं । श्रीरामचन्द्रजी सावधानीके साथ सबका सम्मान करते हैं, और सभी कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजीकी सराहना करते हैं ॥ २ ॥

लरिकाइहि तें रघुबर बानी । पालत नीति प्रीति पहिचानी ॥

शील सकोच सिंधु रघुराऊ । सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ॥ ३ ॥

श्रीरघुवरकी लड़कपनसे ही यह बान है कि वे प्रेमको पहचानकर नीतिका पालन करते हैं । श्रीरघुनाथजी शील और संकोचके समुद्र हैं । वे सुन्दर मुखके या सबके अनुकूल रहनेवाले, सुन्दर लोचनवाले या सबको कृपा और प्रेमकी दृष्टिसे देखनेवाले और सरलस्वभाव हैं ॥ ३ ॥

कहत राम गुनगन अनुरागे । सब निज भाग सराहन लागे ॥

हम सम पुन्यपुंज जग थोरे । जिन्हहि रामु जानत करि मोरे ॥ ४ ॥

श्रीरामजीके गुणसमूहोंको कहते-कहते सबलोग प्रेममें भर गये और अपने भाग्यकी सराहना करने लगे कि जगत्में हमारे समान पुण्यकी बड़ी पूँजीवाले थोड़े ही हैं; जिन्हें श्रीरामजी अपना करके जानते हैं (ये मेरे हैं ऐसा जानते हैं) ॥ ४ ॥

दो०—प्रेम मगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेसु ।

सहित सभा संभ्रम उठेउ रबिकुल कमल दिनेसु ॥ २७४ ॥

उस समय सबलोग प्रेममें मग्न हैं । इतनेमें ही मिथिलापति जनकजीको आते हुए सुनकर सूर्यकुलरूपी कमलके सूर्य श्रीरामचन्द्रजी सभासहित आदरपूर्वक जल्दीसे उठ खड़े हुए ॥ २७४ ॥

चौ०—भाइ सचिव गुर पुरजन साथ। आगें गवनु कीन्ह रघुनाथा ॥

गिरिबर दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं ॥ १ ॥

भाई, मन्त्री, गुरु और पुरवासियोंको साथ लेकर श्रीरघुनाथजी आगे (जनकजीकी अगवांनीमें) चले। जनकजीने ज्यों ही पर्वतश्रेष्ठ कामदनाथको देखा, त्यों ही प्रणाम करके उन्होंने रथ छोड़ दिया (पैदल चलना शुरू कर दिया) ॥ १ ॥

राम दरस लालसा उछाह। पथ श्रम लेसु कलेसु न काह ॥

मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही ॥ २ ॥

श्रीरामजीके दर्शनकी लालसा और उत्साहके कारण किसीको जरा भी रास्तेकी थकावट और क्लेश नहीं है। मन तो वहाँ है जहाँ श्रीरघुवर और जानकीजी हैं। बिना मनके शरीरके सुख-दुःखकी सुध किसको हो ! ॥ २ ॥

आवत जनकु चले यहि भाँती। सहित समाज प्रेम मति मार्ती ॥

आप निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे ॥ ३ ॥

जनकजी इस प्रकार चले आ रहे हैं। समाजसहित उनकी बुद्धि प्रेममें मतवाली हो रही है। निकट आये देखकर सब प्रेममें भर गये और आदरपूर्वक आपसमें मिलने लगे ॥ ३ ॥

लगे जनक मुनिजन पद बंदन। रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनंदन ॥

भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहि। चले लवाइ समंत समाजहि ॥ ४ ॥

जनकजी [वशिष्ठ आदि अयोध्यावासी] मुनियोंके चरणोंकी वन्दना करने लगे और रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीने [शतानन्द आदि जनकपुरवासी] ऋषियोंको प्रणाम किया। फिर भाइयोंसमंत श्रीरामजी राजा जनकजीसे मिलकर उन्हें समाजमहित अपने आश्रमको लिवा चले ॥ ४ ॥

दो०—आश्रम सागर सांत रस पूरन पावन पाथु।

सेन मनहुँ करुना सरित लिपँ जाहिं रघुनाथु ॥ २७५ ॥

श्रीरामजीका आश्रम शान्तरसरूपी पवित्र जलसे परिपूर्ण समुद्र है। जनकजीकी सेना (समाज) मानो करुणा (करुणरस) की नदी है, जिसे श्रीरघुनाथजी [उस आश्रमरूपी शान्तरमके समुद्रमें मिलानेके लिये] लिये जा रहे हैं ॥ २७५ ॥

चौ०—बोरति ग्यान विराग करारे। बचन ससंक मिलन नद नारे ॥

सोच उसास समोर तरंगा। धीरज तट तरुवर कर भंगा ॥ १ ॥

यह करुणाकी नदी [इतनी बड़ी हुई है कि] ज्ञान-वैराग्यरूपी किनारोंको डुबाती जाती है। शोकभरे वचन नद और नाले हैं, जो इस नदीमें मिलते हैं; और सांचकी लम्बी साँमें (आँहें) ही वायुके झकोरोंसे उठने-वाली तरंगें हैं, जो धैर्यरूपी तटके उत्तम वृक्षोंको तोड़ रही हैं ॥ १ ॥

विषम विपाद तोरावति धारा। भय भ्रम भवैर अबर्त अपारा ॥

केषट बुध विद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेह ऐक नहिं आवा ॥ २ ॥

भयानक विपाद ही उस नदीकी तेज धारा है। भय और भ्रम ही उसके असंख्य भँवर और चक्र हैं। विद्वान् मल्लाह हैं, विद्या ही बड़ी नाव है। परन्तु वे खे नहीं सकते हैं, किसीको अटकल ही नहीं आती है ॥ २ ॥

बनचर काल किरात बिचारे। थके विलोकि पथिक हियँ हारे ॥

आश्रम उदधि मिली जय जाई। मनहुँ उठैउ अंबुधि अकुलाई ॥ ३ ॥

वनमें विचरनेवाले बेचारे कोल-किरात ही पथिक हैं, जो उस नदीको देखकर हृदयमें हारकर थक गये हैं। जब यह करुणा-नदी आश्रम-समुद्रमें जाकर मिली, तो मानो समुद्र अकुल उठा (क्षुब्ध हो उठा) ॥ ३ ॥

सोक बिकल दोड़ राजसमाजा । रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा ॥

भूप रूप गुन सील सराही । रोवहिं सोकसिंधु अवगाही ॥ ४ ॥

दोनों राजसमाज शोकसे व्याकुल हो गये। किसीको न ज्ञान रहा, न धीरज और न लाज ही रही। राजा दशरथजीके रूप, गुण और शीलकी सराहना करने हुए सब रो रहे हैं और शोकसमुद्रमें डुबकी लगा रहे हैं ॥ ४ ॥

छं०—अवगाहि सोकसमुद्र सोचहिं नारि नर व्याकुल महा ।

दै दोष सकल सरोष बोलहिं वाम विधि कीन्हो कहा ॥

सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा विदेह की ।

तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित स्नेह की ॥

शोकसमुद्रमें डुबकी लगाने हुए सभी स्त्री-पुरुष महान् व्याकुल होकर सोच कर रहे हैं। वे सब विधाताको दोष देते हुए क्रोधयुक्त होकर कह रहे हैं कि दुष्ट विधाताने यह क्या किया? तुलसीदासजी कहते हैं कि देवता, सिद्ध, तपस्वी, योगी और मुनिगणोंमें कोई भी समर्थ नहीं है जो उस समय विदेह (जनकराज) की दशा देखकर प्रेमकी नदीको पार कर सके (प्रेममें मग्न हुए बिना रह सके)।

सो०—किए अमित उपदेस जहँ तहँ लंगन्ह मुनिवरन्ह ।

धीरजु धरिअ नरेस कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन ॥ २७६ ॥

जहाँ-तहाँ श्रेष्ठ मुनियोंने लोगोंको अपरिमित उपदेश दिये और वशिष्ठजीने विदेह (जनकजी) से कहा— हे राजन्! आप धैर्य धारण कीजिये ॥ २७६ ॥

चौ०—जासु ग्यानु रवि भव निसि नासा । वचन किरन मुनि कमल बिकासा ॥

तेहि कि मोह ममता निभराई । यह सिय राम सनेह बड़ाई ॥ १ ॥

जिन राजा जनकका ज्ञानरूपी सूर्य भव (आवागमन) रूपी रात्रिका नाश कर देता है, और जिनके वचनरूपी किरणें मुनिरूपी कमलोंको खिलाने देती हैं, क्या मोह और ममता उनके निकट भी आ सकते हैं? यह तो श्रीसीतारामजीके प्रेमकी महिमा है! [अर्थात् राजा जनककी यह दशा श्रीसीतारामजीके अलौकिक प्रेमके कारण हुई, लौकिक मोह-ममताके कारण नहीं। जो लौकिक मोह-ममताको पार कर चुके हैं उनपर भी श्रीसीतारामजीका प्रेम अपना प्रभाव दिखाये बिना नहीं रहता] ॥ १ ॥

विपई साधक सिद्ध सयाने । त्रिविध जीव जग बेद बखाने ॥

राम सनेहँ सरस मन जासू । साधुसभाँ बड़ आदर तासू ॥ २ ॥

विषयी, साधक और ज्ञानवान् सिद्धपुरुष—जगत्में ये तीन प्रकारके जीव वेदोंने बताये हैं। इन तीनोंमें जिसका चित्त श्रीरामजीके स्नेहमें सरस (सराबोर) रहता है, साधुओंकी सभामें उसीका बड़ा आदर होता है ॥ २ ॥

सोह न रामपेम बिनु ग्यानु । करनधार बिनु जिमि जलजानू ॥

मुनि बहुबिधि बिदेहु समुझाप । रामघाट सब लोग नहाप ॥ ३ ॥

श्रीरामजीके प्रेमके बिना ज्ञान शोभा नहीं देता, जैसे कर्णधारके बिना जहाज। वशिष्ठजीने विदेहराज (जनकजी) को बहुत प्रकारसे समझाया। तदनन्तर सब लोगोंने रामघाटपर स्नान किया ॥ ३ ॥

सकल सोक संकुल नर नारी । सो यासरु बीतेउ बिनु बारी ॥

पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारु । प्रिय परिजन कर कौन बिचारु ॥ ४ ॥

स्त्री-पुरुष सब शोकसे पूर्ण थे । वह दिन बिना ही जलके बीत गया (भोजनकी बात तो दूर रही, किसीने जलतक नहीं पिया) । पशु, पक्षी और हिरनोतकने कुछ आहार नहीं किया, तब प्रियजनों एवं कुटुम्बियोंका तो विचार ही क्या किया जाय ? ॥ ४ ॥

दो०—दोउ समाज निमिराजु रघुराजु नहाने प्रात ।

बैठे सब बट बिटप तर मन मलीन कृसगात ॥ २७७ ॥

निमिराज जनकजी और रघुराज रामचन्द्रजी तथा दोनों ओरके समाजने दूसरे दिन सबेरे स्नान किया और सब बड़े के वृक्षके नीचे जा बैठे । सबके मन उदास और शरीर दुबले हैं ॥ २७७ ॥

चौ०—जे महिसुर दसरथपुरबासी । जे मिथिलापति नगर निवासी ॥

हंस बंस गुर जनक पुरोध । जिन्ह जगमगु परमारथु सोधा ॥ १ ॥

जो दशरथजीकी नगरी अयोध्याके रहनेवाले और जो मिथिलापति जनकजीके नगर जनकपुरके रहनेवाले ब्राह्मण थे, तथा सूर्यवंशके गुरु वशिष्ठजी तथा जनकजीके पुरोहित शतानन्दजी, जिन्होंने सांसारिक अभ्युदयका मार्ग तथा परमार्थका मार्ग छान डाला था, ॥ १ ॥

लगे कहन उपदेस अनेका । सहित धरम नय बिरति बिबेका ॥

कौसिक कहि कहि कथा पुरानी । समुझाई सब सभा सुबानी ॥ २ ॥

वे सब धर्म, नीति, बैराग्य तथा विवेकयुक्त अनेको उपदेश देने लगे । विश्वामित्रजीने पुरानी कथाएँ (इतिहास) कह-कहकर सारी सभाको सुन्दर वाणीसे समझाया ॥ २ ॥

तब रघुनाथ कौसिकहि कहेऊ । नाथ कालि जल बिनु सबु रहेऊ ॥

मुनि कह उचित कहत रघुराई । गयउ वीति दिन पहर अढ़ाई ॥ ३ ॥

तब श्रीरघुनाथजीने विश्वामित्रजीसे कहा कि हे नाथ ! कल सब लोग बिना जल पिये ही रह गये थे [अब कुछ आहार करना चाहिये] । विश्वामित्रजीने कहा कि श्रीरघुनाथजी उचित कह रहे हैं । ढाई पहर दिन आज भी बीत गया ॥ ३ ॥

रिषिरुख लखि कह तेरहुतिराजू । इहाँ उचित नहिं असन अनाजू ॥

कहा भूप भल सबहि सोहाना । पाइ रजायसु चले नहाना ॥ ४ ॥

विश्वामित्रजीका रुख देखकर निरहुतराज जनकजीने कहा—यहाँ अब ग्याना उचित नहीं है । राजाका सुन्दर कथन सबके मनको अच्छा लगा । सब आशा पाकर नहाने चले ॥ ४ ॥

दो०—तेहि अवसर फल फूल दल मूल अनेक प्रकार ।

लइ आए बनचर बिपुल भरि भरि काँवरि भार ॥ २७८ ॥

उसी समय अनेकों प्रकारके बहुत-से फल, फूल, पत्ते, मूल आदि बहूँगियों और बोझोंमें भर-भरकर बनबासी (कोल-किंगत) लोग ले आये ॥ २७८ ॥

चौ०—कामद भे गिरि रामप्रसादा । अवलोकत अपहरत बिषादा ॥

सर सरिता धन भूमिबिभागा । जनु उमगत आनँद अनुरागा ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे सब पर्वत मनचाही वस्तु देनेवाले हो गये । वे देखनेमात्रसे ही दुःखोंको सर्वथा हर लेते थे । वहाँके तालाबों, नदियों, वन और पृथ्वीके सभी भागोंमें मानो आनन्द और प्रेम उमड़ रहा है ॥ १ ॥

बेलि बिटप सब सफल सफूला । बोलत खग मृग अलि अनुकूला ॥

तेहि अवसर बन अधिक उछाह । त्रिविध समीर सुखद सब काह ॥ २ ॥

बेलें और वृक्ष सभी फल और फूलोंसे युक्त हो गये । पक्षी, पशु और भौंरे अनुकूल बोलने लगे । उस अवसरपर वनमें बहुत उत्साह (आनन्द) था, सबको सुख देनेवाली शीतल, मन्द, सुगन्ध हवा चल रही थी ॥ २ ॥

जाइ न बरनि मनोहरताई । जनु महि करति जनक पहुनाई ॥

तब सब लोग नहाइ नहाई । राम जनक मुनि आयसु पाई ॥ ३ ॥

देखि देखि तरुवर अनुरागे । जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥

दल फल मूल कंद विधि नाना । पावन सुंदर सुधा समाना ॥ ४ ॥

वनकी मनोहरता वर्णन नहीं की जा सकती, मानो पृथ्वी जनकजीकी पहुनाई कर रही है । तब जनकपुरवासी सब लोग नहा-नहाकर रामचन्द्रजी, जनकजी और मुनिकी आज्ञा पाकर, सुन्दर वृक्षोंको देख-देखकर प्रेममें भरकर जहाँ-तहाँ उतरने लगे । पवित्र, सुन्दर और अमृतके समान स्वादिष्ट अनेकों प्रकारके पत्ते, फल, मूल और कन्द—॥ ३-४ ॥

दो०—सादर सब कहँ रामगुर पठए भरि भरि भार ।

पूजि पितर सुर अतिथि गुर लगे करन फरहार ॥ २७९ ॥

श्रीरामजीके गुरु वशिष्ठजीने सबके पाम बोधे भर-भरकर आदरपूर्वक भेजे । तब वे पितर, देवता, अतिथि और गुरुकी पूजा करके फलहार करने लगे ॥ २७९ ॥

चौ०—एहि विधि बासर बीते चारी । रामु निरखि नर नारि सुखारी ॥

दुहुँ समाज असि रुचि मन माहीं । बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं ॥ १ ॥

इम प्रकार चार दिन बीत गये । श्रीरामचन्द्रजीको देखकर सभी नर-नारी सुखी हैं । दोनों समाजोंके मनमें ऐसी इच्छा है कि श्रीसीतारामजीके बिना लौटना अच्छा नहीं है ॥ १ ॥

सीता राम संग वनबासु । कोटि अमरपुर सरिस सुपासु ॥

परिहरि लखन रामु बैदेही । जेहि घर भाव बाम विधि तेही ॥ २ ॥

श्रीसीतारामजीके साथ वन-निवास करना करोड़ों देवलोकोँके [निवासके] समान सुखदायक है । श्रीलक्ष्मणजी, श्रीरामजी और श्रीजानकीजीको छोड़कर जिसको घर अच्छा लगे, विधाता उसके विपरीत हैं ॥ २ ॥

दाहिन दइउ होइ जय सबही । राम समीप बसिअ बन तबही ॥

मंदाकिनि मजनु तिहुँ काला । रामदरसु मुद मंगल माला ॥ ३ ॥

जब दैव सबके अनुकूल हो, तभी श्रीरामजीके पास वनमें निवास हो सकता है । मन्दाकिनीजीका त्रिकाल स्नान और आनन्द तथा मङ्गलोंकी माला (समूह) रूप श्रीरामदर्शन, ॥ ३ ॥

अटनु रामगिरि बन तापसथल । असनु अमिअ सम कंद मूल फल ॥

सुख समेत संबत वुह साता । पल सम होहिं न जनिअहिं जाता ॥ ४ ॥

श्रीरामजीके पर्वत, वन और तपस्वियोंके स्थानोंमें धूमना और अमृतके समान कन्द, मूल, फलोंका भोजन । चौदह वर्ष सुखके साथ पलके समान हो जायेंगे (बीत जायेंगे), जाते हुए जान ही न पड़ेंगे ॥ ४ ॥

दो०—एहि सुख जोग न लोग सब कहहिं कहाँ अस भागु ।

सहज सुभायँ समाज दुहुँ रामचरन अनुरागु ॥२८०॥

सब लोग कह रहे हैं कि हम इस सुखके योग्य नहीं हैं, हमारे ऐसे भाग्य कहाँ ? दोनों समाजोंका श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें सहज स्वभावसे ही प्रेम है ॥२८०॥

चौ०—एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं । वचन सप्रेम सुनत मन हरहीं ॥

सीयमानु तेहि समयँ पठाई । दासी देखि सुअवसर आई ॥ १ ॥

इस प्रकार सब मनोरथ कर रहे हैं । उनके प्रेमयुक्त वचन सुनते ही [सुननेवालोंके] मनोंको हर लेते हैं । उसी समय सीताजीकी माता श्रीसुनयनाजीकी भेजी हुई दासियाँ [कौसल्याजी आदिके मिलनेका] सुन्दर अवसर देखकर आयीं ॥ १ ॥

सावकास सुनि सव सियसासू । आयउ जनकराज रनिवासू ॥

कौसल्याँ सादर सनमानी । आसन दिए समयसम आनी ॥ २ ॥

उनसे यह सुनकर कि सीताकी सब सासुएँ इस समय फुरसतमें हैं, जनकराजका रनिवास उनसे मिलने आया । कौसल्याजीने आदरपूर्वक उनका सम्मान किया और समयोचित आसन लकर दिये ॥२॥

सीलु सनेहु सकल दुहुँ ओरा । द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा ॥

पुलक सिथिल तन बारि बिलोचन । महि नख लिखन लगीं सब सोचन ॥ ३ ॥

दोनों ओर सबके शील और प्रेमको देख और सुनकर कठोर वज्र भी पिघल जाते हैं । शरीर पुलकित और शिथिल हैं, और नेत्रोंमें [शोक और प्रेमके] आँसू हैं । सब अपने पैरोंके नखोंसे जमीन कुरेदने और सोचने लगीं ॥ ३ ॥

सब सिय राम प्रीति कि सीं मूरति । जनु करुना बहु बेप बिसूरति ॥

सीयमानु कह बिधिबुधि बाँकी । जो पयफेनु फोर पबिटाँकी ॥ ४ ॥

सभी श्रीसीतारामजीके प्रेमकी मूर्ति-सी हैं, मानो स्वयं करुणा ही बहुत-से बेप (रूप) धारण करके विसूर रही हो (दुःख कर रही हो) । सीताजीकी माता सुनयनाजीने कहा—विधाताकी बुद्धि बड़ी टेढ़ी है, जो दूधके फेन-जैसी कोमल वस्तुको वज्रकी टाँकीसे फोड़ रहा है (अर्थात् जो अत्यन्त कोमल और निर्दोष हैं उनपर विपत्तिपर विपत्ति दहा रहा है) ॥ ४ ॥

दो०—सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल ।

जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल ॥२८१॥

अमृत केवल सुननेमें आता है और विष जहाँ-तहाँ प्रत्यक्ष देखे जाते हैं । विधाताकी सभी करतूतें भयङ्कर हैं । जहाँ-तहाँ कौए, उल्लू और बगले ही होते हैं; हंस तो एक मानसरोवरमें ही है ॥२८१॥

चौ०—सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा । बिधिगति बड़ि बिपरीत बिचित्रा ॥

जो सृजि पालइ हरइ बहोरी । बालकेलि सम बिधिमति भोरी ॥ १ ॥

यह सुनकर देवी सुमित्राजी शोकके साथ कहने लगीं—विधाताकी चाल बड़ी ही विपरीत और बिचित्र

है, जो सृष्टिको उत्पन्न करके पालता है और फिर नष्ट कर डालता है। विधाताकी बुद्धि बालकोंके खेलके समान भोली (विवेकशून्य) है ॥ १ ॥

कौसल्या कह दोसु न काहू । करम बिषस सुख सुख छति लाहू ॥

कठिन करम गति जान बिधाता । जो सुभ असुभ सकल फल दाता ॥ २ ॥

कौसल्याजीने कहा—किसीका दोष नहीं है; दुःख-सुख, हानि-लाभ सब कर्मके अधीन हैं। कर्मकी गति कठिन (दुर्विशेष्य) है, उसे विधाता ही जानता है, जो शुभ और अशुभ सभी फलोंका देनेवाला है ॥ २ ॥

ईस रजाइ सीस सबही कैं । उत्पति थिति लय बिषहु अमी कैं ॥

देबि मोह बस सोचिअ बादी । बिधिप्रपंचु अस अचल अनादी ॥ ३ ॥

ईश्वरकी आज्ञा सभीके सिरपर है। उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और लय (संहार) तथा अमृत और विषके भी सिरपर है (ये सब भी उसीके अधीन हैं)। हे देवि! मोहवश सोच करना व्यर्थ है। विधाताका प्रपञ्च ऐसा ही अचल और अनादि है ॥ ३ ॥

भूपति जिअब मरब उर आनी । सोचिअ सखि लखि निज हित हानी ॥

सीयमातु कह सत्य सुबानी । सुकृती अवधि अवधपति रानी ॥ ४ ॥

महाराजके मरने और जीनेकी बातको हृदयमें याद करके जो चिन्ता करती हैं, वह तो हे सखी! हम अपने ही हितकी हानि देखकर (स्वार्थवश) करती हैं। सीताजीकी माताने कहा—आपका कथन उत्तम और सत्य है। आप पुण्यात्माओंके नीमारूप अवधपति (महाराज दशरथजी) की ही तो रानी हैं। [फिर भला, ऐसा क्यों न कहेंगी] ॥ ४ ॥

दो०—लखनु रामु सिय जाहुँ बन भल परिनाम न पोचु ।

गहवरि हियँ कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु ॥ २८२ ॥

कौसल्याजीने दुःखभरे हृदयसे कहा—श्रीराम, लक्ष्मण और सीता वनमें जायँ, इसका परिणाम तो अच्छा ही होगा, बुरा नहीं। मुझे तो भरतकी चिन्ता है ॥ २८२ ॥

चौ०—ईस प्रसाद असीस तुम्हारी । सुत सुतबधू देवसरि बारी ॥

राम सपथ में कीन्हि न काऊ । सो करि कहउँ सखी सतिभाऊ ॥ १ ॥

ईश्वरके अनुग्रह और आपके आशीर्वादसे मेरे चारों पुत्र और चारों पुत्रवधुएँ गङ्गाजीके जलके समान पवित्र हैं। हे सखी! मैंने कभी श्रीरामकी सौगंध नहीं की, सो आज श्रीरामकी शपथ करके सत्य भावसे कहती हूँ—॥ १ ॥

भरत सील गुन बिनय बढ़ाई । भायप भगति भरोस भलाई ॥

कहत सारदहु कर मति हीचे । सागर सीप कि जाहिँ उलीचे ॥ २ ॥

भरतका शील, गुण, नम्रता, महत्ता, भाईपन, भक्ति, भरोसा और भलेपनका वर्णन करनेमें सरस्वतीजीकी बुद्धि भी असमर्थ हो जाती है। सीपसे कहीं समुद्र उलीचे जा सकते हैं? ॥ २ ॥

जानउँ सदा भरत कुलदीपा । बार बार मोहि कहेउ महीपा ॥

कसैं कनकु मनि पारिखि पायँ । पुरुष परिखिअहिँ समयँ सुभायँ ॥ ३ ॥

मैं भरतको सदा कुलका दीपक जानती हूँ। महाराजने भी बार-बार मुझे यही कहा था। सोना कसौटीपर

कसे जानेपर और रत्न पारखी (जौहरी) के मिलनेपर ही पहचाना जाता है । वैसे ही पुरुषकी परीक्षा समय पड़नेपर उसके स्वभावसे ही (उसका चरित्र देखकर) हो जाती है ॥ ३ ॥

अनुचित आजु कहब अस मोरा । सोक सनेहँ सयानप थोरा ॥

सुनि सुरसरि सम पावनि वानी । भई सनेह बिकल सय रानी ॥ ४ ॥

किन्तु आज मेरा ऐसा कहना भी अनुचित है । शोक और स्नेहमें सयानापन (विवेक) कम हो जाता है (लोग कहेंगे कि मैं स्नेहवश भरतकी बड़ाई कर रही हूँ) । कौसल्याजीकी गङ्गाजीके समान पवित्र करनेवाली वाणी सुनकर सब रानियाँ स्नेहके मारे बिकल हो उठीं ॥ ४ ॥

दो०—कौसल्या कह धीर धरि सुनहु देवि मिथिलेसि ।

को विवेकनिधि बल्लभहि तुम्हहि सकइ उपदेसि ॥ २८३ ॥

कौसल्याजीने फिर धीरज धरकर कहा—हे देवि मिथिलेश्वरी ! सुनिये, ज्ञानके भण्डार श्रीजनकजीकी प्रिया आपको कौन उपदेश दे सकता है ? ॥ २८३ ॥

चौ०—रानि राय सन अवसरु पाई । अपनी भाँति कहब समुझाई ॥

रखिअहिं लखनु भरतु गवनहिं बन । जौ यह मत मानै महीप मन ॥ १ ॥

हे रानी ! मौका पाकर आप राजाको अपनी ओरसे जहाँतक हो सके समझाकर कहियेगा कि लक्ष्मणको घर रख लिया जाय और भरत वनको जायँ । यदि यह राय राजाके मनमें [ठीक] जँच जाय, ॥ १ ॥

तौ भल जतनु करब सुबिचारी । मोरें सोचु भरत कर भारी ॥

गूढ़ सनेह भरत मन माहीं । रहें नीक मोहि लागत नाहीं ॥ २ ॥

तो भलीभाँति खूब विचारकर ऐसा यत्न करें । मुझे भरतका अत्यधिक सोच है । भरतके मनमें गूढ़ प्रेम है । उनके घर रहनेमें मुझे भलाई नहीं जान पड़ती (यह डर लगता है कि उनके प्राणोंको कोई भय न हो जाय) ॥ २ ॥

लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी । सब भइ मगन करुन रस रानी ॥

नभ प्रसून शरि धन्य धन्य धुनि । सिथिल सनेहँ सिद्ध जोगी मुनि ॥ ३ ॥

कौसल्याजीका स्वभाव देखकर और उनकी सरल और उत्तम वाणीको सुनकर सब रानियाँ करुणरसमें निमग्न हो गयीं । आकाशसे पुष्पवर्षाकी झड़ी लग गयी और धन्य-धन्यकी ध्वनि होने लगी । सिद्ध, योगी और मुनि स्नेहसे सिथिल हो गये ॥ ३ ॥

सबु रनिवासु बिथकि लखि रहेऊ । तव धरि धीर सुमित्राँ कहेऊ ॥

देवि दंड जुग जामिनि बीती । राममातु सुनि उठी समीती ॥ ४ ॥

सारा रनिवास देखकर थकित रह गया (निस्तब्ध हो गया) । तब सुमित्राजीने धीरज धरके कहा कि हे देवि ! दो घड़ी रात बीत गयी है । यह सुनकर श्रीरामजीकी माता कौसल्याजी प्रेमपूर्वक उठीं— ॥ ४ ॥

दो०—बेगि पाउ धारिअ थलहि कह सनेहँ सतिभाय ।

हमरें तव अब ईस गति कै मिथिलेस सहाय ॥ २८४ ॥

और प्रेमसहित सद्भावसे बोलीं—अब आप शीघ्र डरेको पधारिये । हमारे तो अब ईश्वर ही गति हैं, अथवा मिथिलेश्वर जनकजी सहायक हैं ॥ २८४ ॥

चौ०—लखि सनेह सुनि बचन विनीता । जनकप्रिया गह पाय पुनीता ॥

देवि उचित असि बिनय तुम्हारी । दसरथ धरिनि राम महतारी ॥ १ ॥

कौसल्याजीके प्रेमको देखकर और उनके विनम्र वचनोंको सुनकर जनकजीकी प्रिय पत्नीने उनके पवित्र चरण पकड़ लिये और कहा—हे देवि ! आप राजा दशरथजीकी रानी और श्रीरामजीकी माता हैं । आपकी ऐसी नम्रता उचित ही है ॥ १ ॥

प्रभु अपने नीचहु आदरहीं । अग्नि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं ॥

सेवकु राउ करम मन बानी । सदा सहाय महेसु भवानी ॥ २ ॥

प्रभु अपने नीच जनोंका भी आदर करते हैं । अग्नि धुँएँको और पर्वत तृण (घास) को अपने सिरपर धारण करते हैं । हमारे राजा तो कर्म, मन और वाणीसे आपके सेवक हैं और सदा सहायक तो श्रीमहादेव-पार्वतीजी हैं ॥ २ ॥

रउरे अंग जोगु जग को है । दीप सहाय कि दिनकर सोहै ॥

रामु जाइ बनु करि सुरकाजू । अचल अवधपुर करिहहिं राजू ॥ ३ ॥

आपका सहायक होने योग्य जगत्में कौन है ? दीपक सूर्यकी सहायता करने जाकर कहीं शोभा पा सकता है ? श्रीरामचन्द्रजी वनमें जाकर देवताओंका कार्य करके अवधपुरीमें अचल राज्य करेंगे ॥ ३ ॥

अमर नाग नर राम बाहु बल । सुख बसिहहिं अपने अपने थल ॥

यह सब जागबलिक कहि राखा । देवि न होइ मुघा मुनि भाषा ॥ ४ ॥

देवता, नाग और मनुष्य सब श्रीरामचन्द्रजीकी भुजाओंके बलपर अपने-अपने स्थानों (लोकों) में सुखपूर्वक बसेंगे । यह सब याज्ञवल्क्य मुनिने पहलेहीसे कह रक्खा है । हे देवि ! मुनिका कथन झूठा नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

दो०—अस कहि पग परि पेम अति सिय हित विनय सुनाइ ।

सिय समेत सियमातु तब चली सुआयसु पाइ ॥ २८५ ॥

ऐसा कहकर बड़े प्रेमसे पैरों पड़कर सीताजीको साथ भेजनेके लिये विनती करके और सुन्दर आशा पाकर तब सीताजीसमेत सीताजीकी माता डेरेकी चली ॥ २८५ ॥

चौ०—प्रिय परिजनहि मिली बैदेही । जो जेहि जोगु भाँति तेहि तेही ॥

तापस वेष जानकी देखी । भा सबु विकल बिषाद विसेषी ॥ १ ॥

जानकीजी अपने प्यारे कुटुम्बियोंसे—जो जिस योग्य था, उस-उससे उसी प्रकार मिली । जानकीजीको तपस्विनीके वेषमें देखकर सभी अत्यन्त विषादसे व्याकुल हो गये ॥ १ ॥

जनक राम गुर आयसु पाई । चले थलहि सिय देखी आई ॥

लीन्हि लाइ उर जनक जानकी । पाहुनि पावन पेम प्रान की ॥ २ ॥

जनकजी श्रीरामजीके गुरु वशिष्ठजीकी आज्ञा पाकर डेरेको चले और आकर उन्होंने सीताजीको देखा । जनकजीने अपने पवित्र प्रेम और प्राणोंकी पाहुनी जानकीजीको हृदयसे लगा लिया ॥ २ ॥

उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू । भयउ भूप मनु मनहुँ पयागू ॥

सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा । तापर राम पेम सिसु सोहा ॥ ३ ॥

उनके हृदयमें वात्सल्य-प्रेमका समुद्र उमड़ पड़ा । राजाका मन मानो प्रयाग हो गया । उस समुद्रके अन्दर उन्होंने [आदिशक्ति] सीताजीके अलौकिक स्नेहरूपी अक्षयवटको बढ़ते हुए देखा । उस (सीताजीके प्रेमरूपी वट) पर श्रीरामजीका प्रेमरूपी बालक (बालरूपधारी भगवान्) सुशोभित हो रहा है ॥ ३ ॥

चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु । बूढ़त लहैउ बाल अबलंबनु ॥

मोह मगन मति नहिं बिदेह की । महिमा सिय रघुबर सनेह की ॥ ४ ॥

जनकजीका ज्ञानरूपी चिरंजीवी (मार्कण्डेय) मुनि व्याकुल होकर झूबते-झूबते मानो उस भीरामप्रेमरूपी बालकका सहारा पाकर बच गया । वस्तुतः [शनिशिरोमणि] विदेहराजकी बुद्धि मोहमें मग्न नहीं है । यह तो श्रीसीतारामजीके प्रेमकी महिमा है [जिसने उन जैसे महान् ज्ञानीके ज्ञानको भी विकल कर दिया] ॥ ४ ॥

दो०—सिय पितु मातु सनेह बस बिकल न सकी सँभारि ।

धरनिमुताँ धीरजु धरेउ समउ सुधरमु विचारि ॥ २८६ ॥

पिता-माताके प्रेमके मारे सीताजी ऐसी विकल हो गयीं कि अपनेको सँभाल न सकीं । [परन्तु परम धैर्यवती] पृथ्वीकी कन्या सीताजीने समय और सुन्दर धर्मका विचार कर धैर्य धारण किया ॥ २८६ ॥

चौ०—तापसबेष जनक सिय देखी । भयउ पेमु परितोषु बिसेषी ॥

पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ । सुजस धवल जगु कह सधु कोऊ ॥ १ ॥

सीताजीको तपस्विनी वेषमें देखकर जनकजीको विशेष प्रेम और सन्तोष हुआ । [उन्होंने कहा—] बेटी ! तूने दोनों कुल पवित्र कर दिये । तेरे निर्मल यशसे सारा जगत् उज्ज्वल हो रहा है, ऐसा सब कोई कहते हैं ॥ १ ॥

जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी । गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी ॥

गंग अबनि थल तीनि बड़ेरे । पहिं किए साधुसमाज घनरे ॥ २ ॥

तेरी कीर्तिरूपी नदी देवनदी गङ्गाजीको भी जीतकर [जो एक ही ब्रह्माण्डमें बहती है] करोड़ों ब्रह्माण्डोंमें बह चली है । गङ्गाजीने तो पृथ्वीपर तीन ही स्थानों (हरिद्वार, प्रयागराज और गंगासागर) को बड़ा (तीर्थ) बनाया है । पर तेरी इस कीर्तिनदीने तो अनेकों संतसमाजरूपी तीर्थस्थान बना दिये हैं ॥ २ ॥

पितु कह सत्य सनेहँ सुबानी । सीय सकुच महुँ मनहुँ समानी ॥

पुनि पितु मातु लीन्ह उर लाई । सिख आसिष हित दीन्ह सुहाई ॥ ३ ॥

पिता जनकजीने तो स्नेहसे सच्ची सुन्दर वाणी कही । परन्तु अपनी बड़ाई सुनकर सीताजी मानो संकोचमें समा गयीं । पिता-माताने उन्हें फिर हृदयसे लगा लिया और हितभरी सुन्दर सीख और आशिष दी ॥ ३ ॥

कहति न सीय सकुचि मन माहीं । इहाँ बसब रजनीं भल नाहीं ॥

लखि रुख रानि जनायउ राऊ । हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ ॥ ४ ॥

सीताजी कुछ कहती नहीं हैं, परन्तु मनमें सकुचा रही हैं कि रातमें [सासुओंकी सेवा छोड़कर] यहाँ रहना अच्छा नहीं है । रानी सुनयनाजीने जानकीजीकी दख देखकर (उनके मनकी बात समझकर) राजा जनकजीको जना दिया । तब दोनों अपने हृदयोंमें सीताजीके शील और स्वभावकी सराहना करने लगे ॥ ४ ॥

दो०—बार बार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्ह सनमानि ।

कही समय सिर भरतगति रानि सुबानि सयानि ॥ २८७ ॥

राजा-रानीने बार-बार मिलकर और हृदयसे लगाकर तथा सम्मान करके सीताजीको बिदा किया । चतुर रानीने समय पाकर राजासे सुन्दर वाणीमें भरतजीकी दशाका वर्णन किया ॥ २८७ ॥

चौ०—सुनि भूपाल भरत व्यवहार । सोन सुगंध सुधा ससिसारू ॥

मूदे सजल नयन पुलके तन । सुजसु सराहन लगे मुदित मन ॥ १ ॥

सोनेमें सुगन्ध और सुधामें चन्द्रमाके सार अमृतके समान भरतजीका व्यवहार सुनकर राजाने प्रेमविह्वल होकर अपने [प्रेमाश्रुओंके] जलसे भरे नेत्रोंको मूँद लिया (भरतजीके प्रेममें मानो ध्यानस्थ हो गये) । वे शरीरसे पुलकित हो गये, और मनमें आनन्दित होकर भरतजीके सुन्दर यशकी सराहना करने लगे ॥ १ ॥

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि । भरत कथा भवबंध विमोचनि ॥

धरम राजनय ब्रह्मविचार । इहाँ जयामति मोर प्रचार ॥ २ ॥

[वे बोले—] हे सुमुखि ! हे सुनयनी ! सावधान होकर सुनो ! भरतजीकी कथा संसारके बन्धनको छुड़ानेवाली है । धर्म, राजनीति और ब्रह्मविचार इन तीनों विषयोंमें अपनी बुद्धिके अनुसार मेरी [थोड़ी-बहुत] गति है । (अर्थात् इनके सम्बन्धमें मैं कुछ जानता हूँ) ॥ २ ॥

सो मति मोरि भरत महिमाही । कहै काह छलि छुबति न छाँही ॥

बिधि गनपति अहिपति सिव सारद । कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद ॥ ३ ॥

वह (धर्म, राजनीति और ब्रह्मज्ञानमें प्रवेश रखनेवाली) मेरी बुद्धि भरतजीकी महिमाका वर्णन तो क्या करे, छल करके भी उसकी छायातकको नहीं छू पाती ! ब्रह्माजी, गणेशजी, शेषजी, महादेवजी, सरस्वतीजी, कवि, शानी, पण्डित और बुद्धिमान्—॥ ३ ॥

भरत चरित कीरति करतूती । धरम सील गुन विमल विभूती ॥

समुझत सुनत सुखद सब काह । सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाह ॥ ४ ॥

सब किसीका भरतजीके चरित्र, कीर्ति, करनी, धर्म, शील, गुण और निर्मल ऐश्वर्य समझनेमें और सुननेमें सुख देनेवाले हैं और पाँचवतामें गङ्गाजीका तथा स्वाद (मधुरता) में अमृतका भी तिरस्कार करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

दो०—निरवधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरतसम जानि ।

कहिअ सुमेरु कि सेरसम कबिकुल मति सकुचानि ॥ २८८ ॥

भरतजी असीम गुणसम्पन्न और उपमारहित पुरुष हैं । भरतजीके समान बस, भरतजी ही हैं, ऐसा जानो । सुमेरु पर्वतको क्या सेरके बराबर कह सकते हैं ? इसलिये यहाँ कविसमाजकी बुद्धि भी सकुचा गयी ! ॥ २८८ ॥

चौ०—अगम सबहि बरनत बरबरनी । जिमि जलहीन मीन गमु घरनी ॥

भरत अमित महिमा सुनु रानी । जानहिं रामु न सकहिं बखानी ॥ १ ॥

हे श्रेष्ठ वर्णवाली ! भरतजीकी महिमाका वर्णन करना सभीके लिये वैसे ही अगम है जैसे जलरहित पृथ्वीपर मछलीका चलना । हे रानी ! सुनो, भरतजीकी अपरिमित महिमाको एक श्रीरामचन्द्रजी जानते हैं; किन्तु वे भी उसका वर्णन नहीं कर सकते ॥ १ ॥

बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ । तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ ॥

बहुरहिं लखनु भरतु बन जाही । सब कर भल सबके मन माही ॥ २ ॥

इस प्रकार प्रेमपूर्वक भरतजीके प्रभावका वर्णन करके, फिर पत्नीके मनकी रुचि जानकर राजाने कहा— लक्ष्मणजी लौट जायँ और भरतजी बनको जायँ, इसमें सभीका भला है और यही सबके मनमें है ॥ २ ॥

देवि परंतु भरत रघुवरकी । प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी ॥

भरतु अवधि सनेह ममताकी । जद्यपि राम सीम समताकी ॥ ३ ॥

परन्तु हे देवि ! भरतजी और श्रीरामचन्द्रजीका प्रेम और एक-दूसरेपर विश्वास बुद्धि और विचारकी सीमामें नहीं आ सकता । यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी समताकी सीमा हैं, तथापि भरतजी प्रेम और ममताकी सीमा हैं ॥ ३ ॥

परमार्थ स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ॥

साधन सिद्धि राम पग नेह । मोहि लखि परत भरत मत एह ॥ ४ ॥

[श्रीरामचन्द्रजीके प्रति अनन्य प्रेमको छोड़कर] भरतजीने समस्त परमार्थ, स्वार्थ और सुखोंकी ओर स्वप्नमें भी मनसे भी नहीं ताका है । श्रीरामजीके चरणोंका प्रेम ही उनका साधन है और वही सिद्धि है । मुझे तो भरतजीका बस, यही एकमात्र सिद्धान्त जान पड़ता है ॥ ४ ॥

दो०—भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाइ ।

करिअ न सोचु सनेहबस कहेउ भूप बिलखाइ ॥ २८९ ॥

राजाने बिलखकर (प्रेमसे गद्गद होकर) कहा - भरतजी भूलकर भी श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाको मनसे भी नहीं टाँलेंगे । अतः स्नेहके बस होकर चिन्ता नहीं करनी चाहिये ॥ २८९ ॥

चौ०—राम भरत गुन गनत सप्रीती । निसि दंपतिहि पलकसम बीती ॥

राजसमाज प्रात जुग जागे । न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे ॥ १ ॥

श्रीरामजी और भरतजीके गुणोंकी प्रेमपूर्वक गणना करते (कहते-सुनते) पति-पत्नीको रात पलकके समान बीत गयी । प्रातःकाल दोनों राजसमाज जागे और नहा नहाकर देवताओंकी पूजा करने लगे ॥ १ ॥

गे न्हाइ गुर पहिं रघुराई । बंदि चरन बोले रुख पारि ॥

नाथ भरतु पुरजन महतारी । सोक थिकल बनबास दुखारी ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजी स्नान करके गुरु वशिष्ठजीके पास गये और चरणोंकी वन्दना करके उनका रुख पाकर बोले—हे नाथ ! भरत, अवधपुरवासी, तथा मानाएँ, सब शोकसे व्याकुल और बनबासे दुखी हैं ॥ २ ॥

सहित समाज राउ मिथिलेसु । बहुत दिवस भए सहत कलेसु ॥

उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा । हिन सबही कर गैरें हाथा ॥ ३ ॥

मिथिलापति राजा जनकजीको भी समाजसहित श्रेय सहते बहुत दिन हो गये । इसलिये हे नाथ ! जो उचित हो वही कीजिये । आपके ही हाथ सर्वाका हित है ॥ ३ ॥

बस कहि अति सकुचे रघुराऊ । मुनि पुलके लखि सीलु सुभाऊ ॥

तुम्ह बिनु राम सकल सुख साजा । नरक सरिस दुहु राजसमाजा ॥ ४ ॥

ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजी अत्यन्त ही सकुचा गये । उनका शील-स्वभाव देखकर [प्रेम और आनन्दसे] मुनि वशिष्ठजी पुलकित हो गये । उन्होंने [खुलकर] कहा—हे राम ! तुम्हारे बिना [घर-बार आदि] सम्पूर्ण सुखोंके साज दोनों समाजोंको नरकके समान हैं ॥ ४ ॥

दो०—प्राण प्राण के जीव के जिव सुख के सुख राम ।

तुम्ह तजि तात सोहात गृह जिन्हहि तिन्हहि बिधि बाम ॥ २९० ॥

हे राम ! तुम प्राणोंके मी प्राण, आत्माके भी आत्मा और सुखके भी सुख हो । तुमको छोड़कर जिन्हें घर मुहाता है, उन्हें विधाता विपरीत है ॥ २९० ॥

चौ०—सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ । जहँ न राम पद पंकज भाऊ ॥

जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानु । जहँ नहिं रामपेम परधानू ॥ १ ॥

जहाँ श्रीरामके चरणकमलोंमें प्रेम नहीं है, वह सुख, कर्म और धर्म जल जाय । जिसमें श्रीरामप्रेमकी प्रधानता नहीं है, वह योग कुयोग है और वह शान अज्ञान है ॥ १ ॥

तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेहीं । तुम्ह जानहु जियँ जो जेहि केहीं ॥

राउर आयसु सिर सबही कैं । बिदित कृपालहि गति सथ नीकैं ॥ २ ॥

तुम्हारे बिना ही सब दुखी हैं और तुम्हींसे सुखी हैं । जिस किसीके जीमें जो कुछ है तुम सब जानते हो । आपकी आशा सभीके सिरपर है । कृपाछु (आप) को सभीकी स्थिति अच्छी तरह मानूस है ॥ २ ॥

आपु आश्रमहि धारिअ पाऊ । भयउ सनेहँ सिथिल मुनिराऊ ॥

करि प्रनामु तब रामु सिधाए । रिषि धरि धीर जनक पहिँ आए ॥ ३ ॥

अतः आप आश्रमको पधारिये । इतना कह मुनिराज स्नेहसे शिथिल हो गये । तब रामजी प्रणाम करके चले गये और ऋषि वशिष्ठजी धीरज धरकर जनकजीके पास आये ॥ ३ ॥

रामबचन गुरु नृपहि सुनाए । सील सनेहँ सुभायँ सुहाए ॥

महाराज अब कीजिय सोई । सब कर धरम सहित हित होई ॥ ४ ॥

गुरुजीने श्रीरामचन्द्रजीके शील और स्नेहसे युक्त स्वभावसे ही सुन्दर वचन राजा जनकजीको सुनाये [और कहा :-] हे महाराज ! अब वही कीजिये जिसमें सबका धर्मसहित हित हो ॥ ४ ॥

दो०—ग्यान निधान मुजान सुचि धरमधीर नरपाल ।

तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ एहि काल ॥ २९१ ॥

हे राजन ! तुम ज्ञानके भण्डार, मुजान, पवित्र और धर्ममें धीर हो । इस समय तुम्हारे बिना इस दुविधाको दूर करनेमें और कौन समर्थ है ? ॥ २९१ ॥

चौ०—सुनि मुनिबचन जनक अनुरागे । लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे ॥

सिथिल सनेहँ गुनत मन माहीं । आए इहाँ कीन्ह भल नाहीं ॥ १ ॥

मुनि वशिष्ठजीके वचन सुनकर जनकजी प्रेममें मग्न हो गये । उनकी दशा देखकर ज्ञान और वैराग्यको भी वैराग्य हो गया (अर्थात् उनके ज्ञान-वैराग्य दृष्ट-से गये) । वे प्रेमसे शिथिल हो गये और मनमें विचार करने लगे कि हम यहाँ आये, यह अच्छा नहीं किया ॥ १ ॥

रामहि रायँ कहेउ वन जाना । कीन्ह आपु प्रियप्रेम प्रवाना ॥

हम अब वन तँ वनहि पठाई । प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई ॥ २ ॥

राजा दशरथजीने श्रीरामजीको वन जानेके लिये कहा और स्वयं अपने प्रियके प्रेमको प्रमाणित (सच्चा) कर दिया (प्रियविद्योगमें प्राण त्याग दिये) । परन्तु हम अब इन्हे वनसे [और गहन] वनको भेजकर अपने विवेककी बड़ाईमें आनन्दित होते हुए लौटेंगे [कि हमें जरा भी मोह नहीं है; हम श्रीरामजीको वनमें छोड़कर चले आये, दशरथजीकी तरह मरे नहीं !!] ॥ २ ॥

तापस मुनि महिसुर सुनि देखी । भय प्रेम बस बिकल बिसेयी ॥

समउ समुझि धरि धीरजु राजा । चले भरत पहिं सहित समाजा ॥ ३ ॥

तपस्वी, मुनि और ब्राह्मण यह सब मुन और देखकर प्रेमवश बहुत ही व्याकुल हो गये । समयका विचार करके राजा जनकजी धीरज धरकर समाजसहित भरतजीके पास चले ॥ ३ ॥

भरत आह आगों भइ लीन्हे । अवसर सरिस सुभासन दीन्हे ॥

तात भरत कह तेरहुति राज । तुम्हहि बिदित रघुवीर सुभाज ॥ ४ ॥

भरतजीने आकर उन्हें आगे होकर लिया (सामने आकर उनका स्वागत किया) और समयानुकूल अच्छे आसन दिये । तिरहुतराज जनकजी कहने लगे—हे तात भरत ! तुमको रघुवीर रामजीका स्वभाव मालूम है ॥ ४ ॥

दो०—राम सत्यव्रत धरम रत सब कर लालु सनेहु ।

संकट सहत सकोच बस कहिअ जो आयसु देहु ॥ २९२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी सत्यव्रती और धर्मपरायण हैं, सबका शील और स्नेह रखनेवाले हैं । इसीलिये वे संकोचवश संकट सह रहे हैं । अब तुम जो आशा दी, वह उनसे कही जाय ॥ २९२ ॥

चौ०—सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी । बोले भरतु धीर धरि भारी ॥

प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू । कुलगुरु सम हित माय न बापू ॥ १ ॥

भरतजी यह सुनकर पुलकितशरीर हो नेत्रोंमें जल भरकर बड़ा भारी धीरज धरकर बोले—हे प्रभो ! आप हमारे पिताके समान प्रिय और पूज्य है । और कुलगुरु श्रीवशिष्ठजीके समान हितैषी तो माता-पिता भी नहीं हैं ॥ १ ॥

कौसिकादि मुनि सचिव समाजू । ग्यान अंबुनिधि आपुनु भाजू ॥

सिसु सेवकु आयसु अनुगामी । जानि मोहि सिख देखि स्वामी ॥ २ ॥

विश्वामित्रजी आदि मुनियों और मन्त्रियाका समाज है । और आजके दिन ज्ञानके समुद्र आप भी उपस्थित हैं । हे स्वामी ! मुझे अपना बच्चा, सेवक और आज्ञानुसार चलनेवाला समझकर शिक्षा दीजिये ॥ २ ॥

पहिं समाज थल बूझ राउर । मौन मलिन मैं बोलब बाउर ॥

छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता । छमब तात लखि बाम बिधाता ॥ ३ ॥

इस समाज और [पुण्य] स्थलमें आप [जैमे ज्ञानी और पूज्य] का पूछना ! इसपर यदि मैं मौन रहता हूँ तो मलिन समझा जाऊँगा; और बोलना पागलपन होगा । तथापि मैं छोटे मुँह बड़ी बात कहता हूँ । हे तात ! विधाताको प्रतिकूल जानकर क्षमा कीजियेगा ॥ ३ ॥

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । सेवाधरसु कठिन जगु जाना ॥

स्वामि धरम स्वारयहि बिरोधू । बैर अंच प्रेमहि न प्रबोधू ॥ ४ ॥

वेद, शास्त्र और पुराणोंमें प्रसिद्ध है और जगत् जानता है कि सेवाधर्म बड़ा कठिन है । स्वामिधर्ममें (स्वामीके प्रति कर्तव्यपालनमें) और स्वार्थमें विरोध है (दोनों एक साथ नहीं निभ सकते) । बैर अंघा होता है और प्रेमको शान नहीं रहता [मैं स्वार्थवश कहूँगा या प्रेमवश, दोनोंमें ही भूल होनेका भय है] ॥ ४ ॥

दो०—राखि राम स्तव धरसु ब्रतु पराधोन मोहि जानि ।

सब के सम्मत सर्वहित करिअ पेशु पहिचानि ॥ २९३ ॥

अतएव मुझे पराधीन जानकर (मुझसे न पूछकर) श्रीरामचन्द्रजीके रुख (रुचि), धर्म और सत्य व्रतको रखते हुए, जो सबके सम्मत और सबके लिये हितकारी हो, आप सबका प्रेम पहचानकर वही कीजिये ॥२९३॥

चौ०—भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ । सहित समाज सराहत राज ॥

सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे । अरु अमित अति आखर थोरे ॥ १ ॥

भरतजीके बचन सुनकर और उनका स्वभाव देखकर समाजसहित राजा जनक उनकी सराहना करने लगे । भरतजीके बचन सुगम और अगम, सुन्दर, कोमल और कठोर हैं । उनमें अक्षर थोड़े हैं, परन्तु अर्थ अत्यन्त अपार भरा हुआ है ॥ १ ॥

ज्यों मुख मुकुर मुकुर निज पानी । गहि न जाइ अस अद्भुत बानी ॥

भूप भरत मुनि सहित समाजू । गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराज ॥ २ ॥

जैसे मुखका प्रतिबिम्ब दर्पणमें दीखता है और दर्पण अपने हाथमें है, फिर भी वह (मुखका प्रतिबिम्ब) पकड़ा नहीं जाता, इसी प्रकार भरतजीकी यह अद्भुत वाणी भी पकड़में नहीं आती (शब्दोंसे उसका आशय समझमें नहीं आता) ! [किसीसे कुछ उत्तर देते नहीं बना] तब राजा जनकजी और भरतजी मुनियोंसहित समाजके साथ वहाँ गये जहाँ देवतारूपी कुमुदके खिलानेवाले चन्द्रमा श्रीरामचन्द्रजी थे ॥२॥

सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा । मनहुँ मनिगन नव जल जोगा ॥

देवँ प्रथम कुलगुर गति देखी । निरखि बिदेह सनेह बिसेषी ॥ ३ ॥

यह समाचार सुनकर सब लोग सोचसे व्याकुल हो गये, जैसे नये (पहली वषकि) जलके संयोगसे मछलियाँ व्याकुल होती हैं । देवताओंने पहले कुलगुरु वशिष्ठजीकी [प्रेमविह्वल] दशा देखी, फिर विदेहजीके विशेष स्नेहको देखा; ॥ ३ ॥

रामभगति मय भरतु निहारे । सुर स्वारथी हहरि हियँ हारे ॥

सब कोउ रामपेम मय पेखा । भए अलेख सोच बस लेखा ॥ ४ ॥

और तब श्रीरामभक्तिये ओतप्रोत भरतजीको देखा । इन सबको देखकर स्वार्थी देवता घबड़ाकर हृदयमें हार मान गये (निराश हो गये) । उन्होंने सब किसीको श्रीरामप्रेममें सराबोर देखा । इससे देवता इतने सोचके वश हो गये कि जिसका कोई हिसाब नहीं ॥ ४ ॥

दो०—राम सनेह संकोच बस कह ससोच सुरराजु ।

रचहु प्रपंचहि पंच मिलि नाहिं त भयउ अकाजु ॥२९४॥

देवराज इन्द्र सोचमें भरकर कहने लगे कि श्रीरामचन्द्रजी तो स्नेह और संकोचके वशमें हैं । इसलिये सब लोग मिलकर कुछ प्रपञ्च (माया) रचो; नहीं तो काम बिगड़ा [ही समझो] ॥ २९४ ॥

चौ०—सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही । देवि देव सरनागत पाही ॥

फेरि भरतमति करि निज माया । पालु बिबुधकुल करि छल छाया ॥ १ ॥

देवताओंने सरस्वतीका स्मरण कर उनकी सराहना (स्तुति) की और कहा— हे देवि ! देवता आपके शरणागत हैं, उनकी रक्षा कीजिये । अपनी माया रचकर भरतजीकी बुद्धिको फेर दीजिये । और छलझो छाया कर देवकुलका पालन कीजिये ॥ १ ॥

बिबुध विनय सुनि देवि सयानी । बोली सुर स्वारथ जड़ जानी ॥

मो सन कहहु भरतमति फेरु । लोचन सहस न स्रष्ट सुमेरु ॥ २ ॥

देवताओंकी विनती सुनकर और देवताओंको स्वार्थके वश होनेसे मूर्ख जानकर बुद्धिमती सरस्वतीजी बोली—मुझसे कह रहे हो कि भरतजीकी मति पलट दो ! हजार नेत्रोंसे भी तुमको सुमेरु नहीं सूझ पड़ता ! ॥२॥

बिधि हरि हर माया बड़ि भारी । सोउ न भरतमति सकर निहारी ॥

सो मति मोहि कहत करु भोरी । चंदिनि कर कि चंडकर चोरी ॥ ३ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी माया बड़ी प्रबल है । किन्तु वह भी भरतजीकी बुद्धिकी ओर ताक नहीं सकती । उस बुद्धिको, तुम मुझसे कह रहे हो कि, भोली कर दो (भुलवेम डाल दो) ! अरे ! चाँदनी कही प्रचण्ड किरणवाले सूर्यको चुरा सकती है ! ॥ ३ ॥

भरतहृदयँ सिय राम निवासू । तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ॥

अस कहि सारद गइ बिधिलोका । बिबुध विकल निसि मानहुँ कोका ॥ ४ ॥

भरतजीके हृदयमे श्रीसीतारामजीका निवास है । जहाँ सूर्यका प्रकाश है, वहाँ कहीं अँधेरा रह सकता है ! ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोकको चली गयी । देवता ऐसे व्याकुल हुए जैसे रात्रिमे चक्रवा व्याकुल होता है ॥ ४ ॥

दो०—सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठादु ।

रवि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अति उचादु ॥२९५॥

मलिन मनवाले स्वार्थी देवताओंने बुरी सलाह करके दुरा टाट (पड्यन्त्र) रचा । प्रबल माया-जाल रचकर भय, भ्रम, अप्रीति और उच्चाटन फैला दिया ॥ २९५ ॥

चौ०—करि कुचालि सोचन सुरराजू । भरत हाथ सब काजु भकाजू ॥

गए जनकु रघुनाथ समीपा । मनमाने सब रबिकुल दीपा ॥ १ ॥

कुचाल करके देवराज इन्द्र सोचने लगे कि कामका बनना बिगड़ना सब भरतजीके हाथ है । इधर राजा जनकजी [मुनि वशिष्ठ आदिके साथ] श्रीरघुनाथजीके पास गये । सूर्यकुलके दीपक श्रीरामचन्द्रजीने सबका सम्मान किया ॥ १ ॥

समय समाज धरम अबिरोधा । बोलै तब रघुवंस पुरोधा ॥

जनक भरत संवादु सुनार्ह । भरत कहाउनि कही मुहार्ह ॥ २ ॥

तब रघुकुलके पुरोहित वशिष्ठजी समय, समाज और धर्मके अधिकारी (अर्थात् अनुकूल) वचन बोले । उन्होंने पहले जनकजी और भरतजीका संवाद सुनाया; फिर भरतजीकी कही हुई सुन्दर बातें कह सुनायी ॥२॥

तात राम जस आयसु देह । सो सबु करे मोर मत एह ॥

सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी । बोलै सत्य सरल मृदु बानी ॥ ३ ॥

[फिर बोले—] हे तात राम ! मेरा मत तो यह है कि तुम जैसा आज्ञा दो, वैसा ही सब करें । यह सुनकर, दोनों हाथ जोड़कर श्रीरघुनाथजी सत्य, सरल और कोमल वाणी बोले— ॥ ३ ॥

विद्यमान आपुनि मिथिलेम् । मोर कहव सब माँति भवेम् ॥

राउर राय रजायसु होई । राउरि सपथ सही मिर सोई ॥ ४ ॥

आपके और मिथिलेश्वर जनकजीके विद्यमान रहने मेरा कुछ कहना सब प्रकारसे भदा (अनुचित) है । आपकी और महाराजकी जो आज्ञा होगी, मैं आपकी शपथ करके कहना हूँ, वह सत्य ही सबको शिरोधार्य होगी ॥ ४ ॥

दो०—रामसपथ मुनि मुनि जनकु सकुचे समा समेत ।

सकल बिलोकत भरतमुख बनइ न उतर देत ॥२९६॥

श्रीरामचन्द्रजीकी शपथ सुनकर समासमेत मुनि और जनकजी सकुचा गये (स्तमित रह गये)। किमीसे उत्तर देते नहीं बनता, सब लोग भरतजीका मुँह ताक रहे हैं ॥ २९६ ॥

चौ०—सभा सकुचबस भरत निहारी । रामबन्धु धरि धीरजु भारी ॥

कुसमउ देखि सनेहु सँभारा । बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा ॥ १ ॥

भरतजीने सभाको संकोचके वश देखा । रामबन्धु (भरतजीने) बड़ा भारी धीरज धरकर और कुसमय देखकर अपने [उमड़ते हुए] प्रेमको सँभाला, जैसे बढ़ते हुए विन्ध्याचलको अगस्त्यजीने रोका था ॥ १ ॥

सोक कनकलोचन मति छोनी । हरी विमल गुनगन जगजोनी ॥

भरत विवेक बराहँ बिसाला । अनायास उधरी तेहिँ काला ॥ २ ॥

शोकरूपी हिरण्याक्षने (सारा सभाकी) बुद्धिरूपी पृथ्वीको हर लिया । उसी समय विमल गुणममूहोंवाले भरतजीरूपी ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए विवेकरूपी विशाल बराह (बराहरूपधारी भगवान्) ने [शोकरूपी हिरण्याक्षको नष्ट कर] विना ही परिश्रम उसका उद्धार कर दिया ! ॥ २ ॥

करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे । राम राउ गुर साधु निहारे ॥

छमब आजु अनि अनुचित मोरा । कहउँ वदन मृदु बचन कठोरा ॥ ३ ॥

भरतजीने प्रणाम करके सबके प्रति हाथ जोड़े, तथा श्रीरामचन्द्रजी, राजा जनकजी, गुरु वशिष्ठजी और साधु-संत सबसे विनती की और कहा—आज मेरे इस अत्यन्त अनौचित्यको क्षमा कीजियेगा । मैं कोमल (छोटे) मुखसे कठोर (धृष्टतापूर्ण) वचन कह रहा हूँ ॥ ३ ॥

हियँ सुमिरी सारदा सुहार् । मानस तँ मुख पंकज आई ॥

विमल विवेक धरम नयसाली । भरत भारती मंजु मराली ॥ ४ ॥

फिर उन्होंने हृदयमें मुहावरी सरस्वतीजीका स्मरण किया । वे मानससे (उनके मनरूपी मानसरोवरसे) उनके मुखारविन्दपर आ विराजी । निर्मल विवेक, धर्म और नीतिसे युक्त भरतजीकी वाणी सुन्दर हंसिनी [के समान गुण-दोषका विवेचन करनेवाली] है ॥ ४ ॥

दो०—निरखि बिबेक बिलोचनन्हि सिथिल सनेहँ समाजु ।

करि प्रनामु बोले भरतु सुमिरि सीय रघुराजु ॥२९७॥

विवेकके नेत्रोंसे सारे समाजको प्रेमसे शिथिल देख, सबको प्रणाम कर, श्रीसीताजी और श्रीरघुनाथजीका स्मरण करके भरतजी बोले—॥ २९७ ॥

चौ०—प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी । पूज्य परम हित अंतरजामी ॥

सरल सुसाहिबु सील निधानू । प्रनतपाल सर्वग्य सुजानू ॥ १ ॥

हे प्रभु ! आप पिता, माता, सुहृद् (मित्र), गुरु, स्वामी, पूज्य, परमहितैषी और अन्तर्यामी हैं । सरलहृदय, श्रेष्ठ मालिक, शीलके भण्डार, शरणागतकी रक्षा करनेवाले, सर्वज्ञ, सुजान, ॥ १ ॥

समरथ सरनागत हितकारी । गुनगाहकु अवगुन भगवारी ॥

स्वामि गोसाँइहि सरिस गोसाँइ । मोहि समान मैं साँइबोहाई ॥ २ ॥

समर्थ, शरणागतका हित करनेवाले, गुणोंका आदर करनेवाले और अवगुणों तथा पापोंको हरनेवाले हैं ।
हे गोसाई ! आप-सरीखे स्वामी आप ही हैं और स्वामिद्रोहमें मेरे समान मैं ही हूँ ॥ २ ॥

प्रभु पितु बचन मोह बस पेली । आयउँ इहाँ समाजु सकेली ॥

जग भल पोच ऊँच अरु नीचू । अमिअ अमरपद माहुअ मीचू ॥ ३ ॥

मैं मोहवश प्रभु (आप) के और पिताजीके वचनोंका उल्लंघन कर और समाज बटोरकर यहाँ आया हूँ । जगत्में भले-बुरे, ऊँचे और नीचे, अमृत और अमरपद (देवताओंका पद), विष और मृत्यु आदि—॥ ३ ॥

राम रजाइ मेट मन माहीं । देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं ॥

सो मैं सब विधि कीन्हि ढिठाई । प्रभु मानी सनेह सेवकाई ॥ ४ ॥

किसीको भी कहीं ऐसा नहीं देखा-सुना जो मनमें भी श्रीरामचन्द्रजी (आप) की आज्ञाको मेट दे । मैंने सब प्रकारसे बही ढिठाई की, परन्तु प्रभुने उस ढिठाईको स्नेह और सेवा मान लिया ! ॥ ४ ॥

दो०—कृपाँ भलाई आपनीं नाथ कीन्ह मल मोर ।

दूषन मे भूषन सरिस सुजसु चारु चहुँ ओर ॥ २९८ ॥

हे नाथ ! आपने अपनी कृपा और भलाईसे मेरा भल किया, जिससे मेरे दूषण भूषणके समान हो गये और चारों ओर मेरा सुन्दर यश छा गया ! ॥ २९८ ॥

चौ०—राउरि रीति सुबानि बड़ाई । जगन बिदिन निगमागम गाई ॥

कूर कुटिल खल कुमति कलंकी । नीच निसील निरीस निशंकी ॥ १ ॥

हे नाथ ! आपकी रीति और सुन्दर स्वभावकी बड़ाई जगत्में प्रसिद्ध है, और वेद-शास्त्रोंने गायी है । जो क्रूर, कुटिल, दुष्ट, कुबुद्धि, कलंकी, नीच, शीलहीन, निरीश्वरवादी (नास्तिक) और निःशंक (निहर्) हैं ॥ १ ॥

तेउ सुनि सरन सामुहें आए । सकुत प्रनामु किहें अपनाए ॥

देखि दोष कबहुँ न उर आने । सुनि गुन साधुसमाज बखाने ॥ २ ॥

उन्हें भी आपने शरणमें सम्मुख आया सुनकर एक बार प्रणाम करनेपर ही अपना लिया । उन (शरणागतों) के दोषोंको देखकर भी आप कभी हृदयमें नहीं लाये और उनके गुणोंको सुनकर साधुओंके समाजमें उनका बखान किया ॥ २ ॥

को साहिय सेवकहि नेवाजी । आपु समाज साज सब साजी ॥

निज करनूति न समुझिय सपने । सेवक सकुच सोचु उर अपने ॥ ३ ॥

ऐसा सेवकपर कृपा करनेवाला स्वामी कौन है जो आप ही सेवकका सारा साज-समाज सज दे, और स्वप्नमें भी अपनी कोई करनी न समझकर (अर्थात् मैंने सेवकके लिये कुछ किया है ऐसा न जानकर) उल्टा सेवकको संकोच होगा इसका सोच अपने हृदयमें रखे ! ॥ ३ ॥

सो गोसाईं नहिं दूसर कोपी । भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी ॥

पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना । गुन गति नट पाठक आचीना ॥ ४ ॥

मैं भुजा उठाकर और प्रण रोपकर (बड़े जोरके साथ) कहता हूँ, ऐसा स्वामी आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है ।

पशु नाचते और तोते [सीखे हुए] पाठमें प्रवीण हो जाते हैं। परन्तु तोतेका पाठप्रवीणतारूप गुण और पशुके नाचनेकी गति पढ़ानेवाले और नचानेवालेके अधीन है ॥ ४ ॥

दो०—यों सुधारि सनमानि जन किए साधु सिरमोर ।

को कृपाल बिनु पालिहै बिरिदावलि बरजोर ॥२९९॥

इस प्रकार अपने सेवकोंकी [बिगड़ी] बात सुधारकर और सम्मान देकर आपने उन्हें साधुओंका शिरोमणि बना दिया। कृपाछु (आप) के बिना अपनी बिरिदावलीका और कौन जबर्दस्ती (हठपूर्वक) पालन करेगा ! ॥२९९॥

चो०—सोक सनेहँ कि बालसुभायँ । आयउँ लाह रजायसु बायँ ॥

तबहुँ कृपाल हेरि निज मोरा । सबहि भौंति भल मानेउ मोरा ॥ १ ॥

मैं शोकसे या स्नेहसे या बालकस्वभावसे आशुको बायें लकर (न मानकर) चला आया, तो भी कृपाल स्वामीने अपनी ओर देखकर सभी प्रकारसे मेरा भला ही माना (मेरे इस अनुचित कार्यको अच्छा ही समझा) ॥१॥

देखेउँ पाय सुमंगल मूला । जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला ॥

बढ़ै समाज बिलोकेउँ भागू । बढ़ीं चूक साहिब अनुरागू ॥ २ ॥

मैंने आपके सुन्दर मङ्गलोंके मूल चरणोंका दर्शन किया, और यह जान लिया कि स्वामी मुझपर स्वभावसे ही अनुकूल हैं। इस बड़े समाजमें अपने भाग्यको देखा कि इतनी बड़ी चूक होनेपर भी स्वामीका मुझपर इतना अनुराग है ! ॥ २ ॥

कृपा अनुग्रहु अंगु अघाई । कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई ॥

राखा मोर दुलार गोसाई । अपनै सील सुभायँ भलाई ॥ ३ ॥

कृपानिधानने मुझपर साङ्गोपाङ्ग भरपेट कृपा और अनुग्रह, सब अधिक ही किये हैं (अर्थात् मैं जिसके जरा भी लायक नहीं था उतनी अधिक सर्वाङ्गपूर्ण कृपा आपने मुझपर की है)। हे गोसाई ! आपने अपने सील, स्वभा और भलाईसे मेरा दुलार रखा ॥ ३ ॥

नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई । स्वामि समाज सकोच विहाई ॥

अबिनय बिनय जथारुचि बानी । छमिहि देउ अति आरति जानी ॥ ४ ॥

हे नाथ ! मैंने स्वामी और समाजके संकोचको छोड़कर अबिनय या विनयभरो जैसी रुचि हुई वैसी ही वाणी कहकर सर्वथा ढिठाई की है। हे देव ! मेरे आर्तभाव (व्याकुलता) को जानकर क्षमा करेंगे ॥ ४ ॥

दो०—सुहृद् सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बड़ि खोरि ।

आयसु देहअ देव अब सबइ सुधारी मोरि ॥३००॥

सुहृद् (विना ही हेतुके हित करनेवाले), बुद्धिमान् और श्रेष्ठ मालिकसे बहुत कहना बड़ा अपराध है। इसलिये हे देव ! अब मुझे आशा दीजिये, आपने मेरी सभी बात सुधार दी ॥ ३०० ॥

चो०—प्रभु पद पदुम पराग दोहाई । सत्य सुकृत सुख सीवँ सुहाई ॥

सो करि कहउँ हिए अपने की । रुचि जागत सोवत सपने की ॥ १ ॥

प्रभु (आप) के चरणकमलोंकी रज, जो सत्य, सुकृत (पुण्य) और सुखकी सुहावनों सीमा (अवधि) है, उसकी दुहाई करके मैं अपने हृदयकी जागते, सोते और स्वप्नमें भी बनी रहनेवाली रुचि (इच्छा) कहता हूँ ॥१॥

सहज सनेहँ स्वामि सेवकाई । स्वारथ छल फल चारि बिहाई ॥

अग्या सम न सुसाहिब सेवा । सो प्रसादु जन पावै देवा ॥ २ ॥

वह रुचि है—कपट, स्वार्थ और अर्थ-धर्म-काम-मोक्षरूप चारों फलोंको छोड़कर स्वाभाविक प्रेमसे स्वामीकी सेवा करना । और आशा पालन समान श्रेष्ठ स्वामीकी और कोई सेवा नहीं है । हे देव ! अब वही आशारूप प्रसाद सेवकको मिल जाय ॥ २ ॥

अस कहि प्रेमबिबस भए भारी । पुलक सरीर विलोचन बारी ॥

प्रभु पद कमल गहे अकुलाई । समउ सनेहु न सो कहि जाई ॥ ३ ॥

भरतजी ऐसा कहकर प्रेमके बहुत ही विवश हो गये । शरीर पुलकित हो उठा, नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया । अकुलकर उन्होंने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमल पकड़ लिये । उस समयको और स्नेहको कहा नहीं जा सकता ॥ ३ ॥

कृपासिंधु सनमानि सुबानी । बैठाए समीप गहि पानी ॥

भरतबिनय सुनि देखि सुभाऊ । सिथिल सनेहँ सभा रघुराऊ ॥ ४ ॥

कृपासिंधु श्रीरामचन्द्रजीने सुन्दर वाणीसे भरतजीका सम्मान करके हाथ पकड़कर उनको अपने पास बिठा लिया । भरतजीकी विनती सुनकर और उनका स्वभाव देखकर सारी सभा और श्रीरघुनाथजी स्नेहसे शिथिल हो गये ॥ ४ ॥

छं०—रघुराउ सिथिल सनेहँ साधुसमाज मुनि मिथिलाधनी ।

मन महुँ सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी ॥

भरतहि प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस मलिन से ।

तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से ॥

श्रीरघुनाथजी, साधुओंका समाज, मुनि वशिष्ठजी और मिथिलापति जनकजी स्नेहसे शिथिल हो गये । सब मन-ही-मन भरतजीके भाईपन और उनकी भक्तिकी अतिशय महिमाको सराहने लगे । देवता मलिन-से मनसे भरतजीकी प्रशंसा करते हुए उनपर फूल बरसाने लगे । तुलसीदासजी कहते हैं—सब लोग भरतजीका भाषण सुनकर व्याकुल हो गये, और ऐसे सकुचा गये जैसे रात्रिके आगमनसे कमल ! ॥

सो०—देखि दुखारी दीन दुहु समाज नर नारि सब ।

मधवा महा मलीन गुए मारि मंगल चहत ॥ ३०१ ॥

दोनों समाजोंके सभी नर-नारियोंको दीन और दुखी देखकर महा मलिन-मन इन्द्र मरे हुओंको मारकर अपना मङ्गल चाहता है ॥ ३०१ ॥

चौ०—कपट कुचालि सीवँ सुरराजू । पर अकाज प्रिय आपन काजू ॥

काक समान पाकरिपु रीती । छली मलीन कतहुँ न प्रतीती ॥ १ ॥

देवराज इन्द्र कपट और कुचालकी सीमा है । उसे परायी हानि और अपना लाभ ही प्रिय है । इन्द्रकी रीति कौएके समान है । वह छली और मलिन-मन है, उसका कहीं किसीपर विश्वास नहीं है ॥ १ ॥

प्रथम कुमत करि कपटु सँकेला । सो उचाटु सच कँ सिर मेला ॥

सुरमायाँ सब लोग बिमोहे । रामप्रेम अतिसय न बिछोहे ॥ २ ॥

पहले तो कुमत् (बुरा विचार) करके कपटको एकत्र किया। फिर वह (कपटजनित) उचाट सबके सिरपर डाल दिया। फिर देवमायासे सब लोगोंको विशेषरूपसे मोहित कर दिया। किन्तु श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमसे उनका अत्यन्त विछोड़ नहीं हुआ (अर्थात् उनका श्रीरामजीके प्रति प्रेम कुछ तो बना ही रहा) ॥ २ ॥

भय उचाट बस मन थिर नहीं। छन बन रुचि छन सदन सोहाहीं ॥

दुविध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिंधु संगम जनु वारी ॥ ३ ॥

भय और उचाटके वश किमीका मन स्थिर नहीं है। क्षणमें वनमें रहनेकी इच्छा होती है और क्षणमें घर उन्हें अच्छे लगने लगते हैं। मनकी इस प्रकारकी दुविधामयी स्थितिसे प्रजा दुखी हो रही है। मानो नदी और समुद्रके सङ्गमका जल धुब्ध हो रहा हो। (जैसे नदी और समुद्रके सङ्गमका जल स्थिर नहीं रहता, कभी इधर आता और कभी उधर जाता है, उसी प्रकारकी दशा प्रजाके मनकी हो गयी) ॥ ३ ॥

दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं। एक एक सन मरमु न कहहीं ॥

लखि हियँ हँसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवान जुवानू ॥ ४ ॥

चित्त दोतरफा हो जानेसे वे कहीं सन्तोष नहीं पाते और एक दूसरेसे अपना मर्म भी नहीं कहते। कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी यह दशा देखकर हृदयमें हँसकर कहने लगे—कुता, इन्द्र और नवयुवक (कामी पुरुष) एक-सरीखे (एक ही स्वभावके) हैं [पाणिनीय व्याकरणके अनुसार श्वन्, युवन् और मघवन् शब्दोंके रूप भी एक-सरीखे होते हैं] ॥ ४ ॥

दा०—भरतु जनकु मुनिजन सचिव साधु सचेत विहाइ।

लागि देवमाया सबहि जथाजोगु जनु पाइ ॥ ३०२ ॥

भरतजी, जनकजी, मुनिजन, मन्त्री और रानी साधु-संतोंको छोड़कर अन्य सभीपर जिस मनुष्यको जिस योग्य (जिस प्रकृति और जिस स्थितिका) पाया, उसपर वैसे ही देवमाया लग गयी ॥ ३०२ ॥

चौ०—कृपासिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेहँ मुरपति छल भारे ॥

सभा राउ गुर महिसुर मंत्री। भरत भगति सब कै मति जंत्री ॥ १ ॥

कृपासिंधु श्रीरामचन्द्रजीने लोगोंको अपने स्नेह और देवराज इन्द्रके भारी छलसे दुखी देखा। सभा, राजा जनक, गुरु, ब्राह्मण और मन्त्री आदि सभीकी बुद्धिको भरतजीकी भक्तिने कील दिया ॥ १ ॥

रामहि चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत वचन सिखे से ॥

भरत प्रीति नति विनय बढ़ाई। सुनत सुखद वरनत कठिनाई ॥ २ ॥

सब लोग चित्र लिखे-से श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देख रहे हैं। सकुचाते हुए सिखाये हुए-से वचन बोलते हैं। भरतजीकी प्रीति, नम्रता, विनय और बढ़ाई सुननेमें सुग्य देनेवाली है, पर उसके वर्णन करनेमें कठिनाता है ॥ २ ॥

जासु विलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू ॥

महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभायँ सुमति हियँ हुलसी ॥ ३ ॥

जिनकी भक्तिका लवलेसा देखकर मुनिगण और मिथिलेश्वर जनकजी प्रेममें मग्न हो गये, उन भरतजीकी महिमा तुलसीदास कैसे कहे? भक्ति और सुन्दर भावसे [कविके] हृदयमें सुबुद्धि हुलस रही है (विकसित हो रही है) ॥ ३ ॥

आमु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिकुल कानि मानि सकुचानी ॥

कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मति गति वाल वचन की नाई ॥ ४ ॥

परन्तु वह बुद्धि अपनेको छोटी और भरतजीकी महिमाको बड़ी जानकर कविपरम्पराकी मर्यादाको मानकर सकुचा गयी (उसका वर्णन करनेका साहस नहीं कर सकी) । उसकी गुणोंमें रुचि तो बहुत है, पर उन्हें कह नहीं सकती । बुद्धिकी गति बालकके वचनोंकी तरह हो गयी (वह कुण्ठित हो गयी) ! ॥ ४ ॥

दो०—भरत बिमल जसु बिमल बिधु सुमति चकोरकुमारि ।

उदित बिमल जन हृदय नभ एकटक रही निहारि ॥३०३॥

भरतजीका निर्मल यश निर्मल चन्द्रमा है, और कविकी सुबुद्धि चकोरी है, जो भक्तोंके हृदयरूपी निर्मल आकाशमें उस चन्द्रमाको उदित देखकर उसकी ओर एकटक देखती रह गयी है ॥ ३०३ ॥

चो०—भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ । लघु मति चापलता कवि छमहूँ ॥

कहत सुनत सतिभाउ भरत को । सीय राम पद होइ न रत को ॥ १ ॥

भरतजीके स्वभावका वर्णन वेदोंके लिये भी सुगम नहीं है । मेरी वृच्छ बुद्धिकी चञ्चलताको कवि क्षमा कर ! भरतजीके सद्भावको कहते सुनते कौन मनुष्य श्रीसीतारामजीके चरणोंमें अनुरक्त न हो जायगा ॥ १ ॥

सुमिरत भरतहि प्रेमु राम को । जेहि न सुलभु तेहि सरिस वाम को ॥

देखि दयाल दसा सबही की । राम सुजान जानि जन जी की ॥ २ ॥

भरतजीका स्मरण करनेसे जिसको श्रीरामजीका प्रेम सुलभ न हुआ, उसके समान वाम (अभागा) और कौन होगा ? दयाल और सुजान श्रीरामजीने सभीकी दशा देखकर और भक्त (भरतजी) के हृदयकी स्थिति जानकर, ॥ २ ॥

धरम धुरीन धीर नय नागर । सत्य सनेह सील सुख सागर ॥

देसु कालु लखि समउ समाजु । नीति प्रीति पालक रघुराजु ॥ ३ ॥

धर्मधुरन्धर, धीर, नीतिमें चतुर; सत्य, स्नेह, शील और सुखके समुद्र; नीति और प्रीतिके पालन करनेवाले श्रीरघुनाथजी देश, काल, अवसर और समाजको देखकर, ॥ ३ ॥

बोले वचन बानि सरवसु से । हित परिनाम सुनत ससि रसु से ॥

तात भरत तुम्ह धरम धुरीना । लोक वेदविद प्रेम प्रवीना ॥ ४ ॥

तदनुसार ऐसे वचन बोले जो मानो बाणीके सर्वस्व ही थे, परिणाममें हितकारी थे और सुननेमें चन्द्रमाके रस (अमृत) सरोवरे थे । [उन्होंने कहा—] हे तात भरत ! तुम धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले हो, लोक और वेद दोनोंके जाननेवाले और प्रेममें प्रवीण हो ॥ ४ ॥

दो०—करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात ।

गुरसमाज लघु बंधु गुन कुसमयँ किमि कहि जात ॥३०४॥

हे तात ! कर्मसे, वचनसे और मनसे निर्मल तुम्हारे समान तुम्हीं हो । गुरुजनोंके समाजमें और ऐसे कुसमयमें छोटे भाईके गुण किस तरह कहे जा सकते हैं ? ॥ ३०४ ॥

चो०—जानहु तात तरनि कुल रीती । सत्यसंध पिनु कीरति प्रीती ॥

समउ समाजु लाज गुरुजन की । उदासीन हित अनहित मन की ॥ १ ॥

हे तात ! तुम सूर्यकुलकी रीतिकी, सत्यप्रतिष्ठ पिताजीकी कीर्ति और प्रीतिकी, समय, समाज और गुरुजनोंकी लजा (मर्यादा) को, तथा उदासीन, मित्र और शत्रु सबके मनकी बातको जानते हो ॥ १ ॥

तुम्हहि विदित सबही कर करमू । आपन मोर परम हित धरमू ॥

मोहि सब भीति भरोस तुम्हारा । तदपि कहउँ अवसर अनुसार ॥ २ ॥



कर्म वन्नत मानस विमल तुम्ह समान तुम्ह तात ।
गुग्ममाज लघुवंधु गुन कुसमय किमि कहि जात ॥

तुमको सबके कर्मों (कर्तव्यों) का और अपने तथा मेरे परम हितकारी धर्मका पता है। यद्यपि मुझे तुम्हारा सब प्रकारसे भरोसा है, तथापि मैं समयके अनुसार कुछ कहता हूँ ॥ २ ॥

तात तात विनु बात हमारी। केवल गुरु कुल रूपाँ सँभारी ॥

नतर प्रजा परिजन परिवारू। हमहि सहित सबु होत खुबारू ॥ ३ ॥

हे तात ! पिताजीके बिना (उनकी अनुपस्थितिमें) हमारी बात केवल गुरुवंशकी कृपाने ही सम्हाल रखी है; नहीं तो हमारे समेत प्रजा, कुटुम्ब, परिवार सभी बर्बाद हो जाते ॥ ३ ॥

जौ विनु अवसर अथवँ दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू ॥

तस उतपध्नु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा ॥ ४ ॥

यदि बिना समयके (सन्ध्यासे पूर्व ही) सूर्य अस्त हो जाय, तो कहो जगत्में किसको क्लेश न होगा ? हे तात ! उसी प्रकारका उत्पात विघाताने यह (पिताकी असामयिक मृत्यु) किया है। पर मुनि महाराजने तथा मिथिलेश्वरने सबको बचा लिया ॥ ४ ॥

दो०—राजकाज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम।

गुरुप्रभाउ पालिहि सबहि भल होइहि परिनाम ॥३०५॥

राज्यका सब कार्य, लजा, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी, धन, घर, इन सभीका पालन (रक्षण) गुरुजीका प्रभाव (सामर्थ्य) करेगा और परिणाम शुभ होगा ॥३०५॥

चौ०—सहित समाज तुम्हार हमारा। घर वन गुरुप्रसाद रखवारा ॥

मातु पिता गुरु स्वामि निदेसू। सकल घरम घरनीघर सेसू ॥ १ ॥

गुरुजीका प्रसाद (अनुग्रह) ही घरमें और वनमें समाजसहित तुम्हारा और हमारा रक्षक है। माता, पिता, गुरु और स्वामीकी आज्ञाका पालन समस्त धर्मरत्नी पृथ्वीकी धारण करनेमें शेषजीके समान है ॥ १ ॥

सो तुम्ह करहु करावहु मोह। तात तरनिकुल पालक होह ॥

साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी ॥ २ ॥

हे तात ! तुम वही करो और मुझसे भी कराओ, और सूर्यकुलके रक्षक बनो। साधकके लिये यह एक ही (आज्ञापालनरूपी साधना) सम्पूर्ण सिद्धियोंकी देनेवाली, कीर्तिमयी, सद्गतिमयी और ऐश्वर्यमयी त्रिवेणी है ॥ २ ॥

सो बिचारि सहि संकट भारी। करहु प्रजा परिवारु सुखारी ॥

बाँटी विपत्ति सबहि मोहि भाई। तुम्हहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई ॥ ३ ॥

इसे विचारकर भारी संकट सहकर भी प्रजा और परिवारको सुखी करो। हे भाई ! मेरी विपत्ति समीने बाँट ली है, परन्तु तुमको तो अवधि (चौदह वर्ष) तक बड़ी कठिनाई है (सबसे अधिक दुःख है) ॥ ३ ॥

जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा। कुसमयँ तात न अनुचित मोरा ॥

होहिं कुठायँ सुबंधु सहाय। ओड़िअहिं हाथ असनिहु के घाप ॥ ४ ॥

तुमको कोमल जानकर भी मैं कठोर (वियोगकी बात) कह रहा हूँ। हे तात ! बुरे समयमें मेरा यह कोई अनौचित्य नहीं है। कुठोर (कुअवसर) में श्रेष्ठ भाई ही सहायक होते हैं। वज्रके आघात भी हाथसे ही रोके जाते हैं ॥ ४ ॥

दो०—सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ ।

तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकवि सराहहिं सोइ ॥३०६॥

सेवक हाथ, पैर और नेत्रोंके समान और स्वामी मुखके समान होना चाहिये । तुलसीदासजी कहते हैं कि सेवक-स्वामीकी ऐसी प्रीतिकी रीति सुनकर सुकवि उमकी सराहना करते हैं ॥३०६॥

चौ०—सभा सकल सुनि रघुवर वानी । प्रेम पयोधि अमिअँ जनु सानी ॥

स्थितिल समाज सनेह समाधी । देखि दसा चुप सारद साधी ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजीकी वाणी सुनकर, जो मानो प्रेमस्नानी समुद्रके [मन्थनसे निकले हुए] अमृतमें सनी हुई थी, सारा समाज स्थितिल हो गया: सबको प्रेमसमाधि लग गयी । यह दशा देखकर सरस्वतीने चुप साध ली ॥ १ ॥

भरतहि भयउ परम संतोष । सनमुख स्वामि विमुख दुख दोष ॥

मुख प्रसन्न मन मिटा विपाद । भा जनु गुँगेहि गिरा प्रसाद ॥ २ ॥

भरतजीको परम सन्तोष हुआ । स्वामीके सम्मुख (अनुकूल) होने ही उनके दुःख और दोषोंने मुँह मोड़ लिया (वे उन्हें छोड़कर भाग गये) । उनका मुख प्रसन्न हो गया और मनका विपाद मिट गया । मानो गङ्गेपर सरस्वतीकी कृपा हो गयी हो ॥ २ ॥

कीन्ह संप्रम प्रनामु वहोरी । बोलै पानि पंकरुह जोरी ॥

नाथ भयउ सुखु साथ गए को । लहेउँ लाहु जग जनमु भए को ॥ ३ ॥

उन्होंने फिर प्रेमपूर्वक प्रणाम किया और करकमलोंको जोड़कर ये बोले—हे नाथ ! मुझे आपके साथ जानेका सुख प्राप्त हो गया और मैंने जगत्में जन्म लेनेका व्याम भोग पा लिया ॥ ३ ॥

अब कृपाल जस आयसु होई । करी सीम धरि सादर मोई ॥

सो अवलंब देव मोहि देई । अवधि पारु पावौं जेहि मोई ॥ ४ ॥

हे कृपाल ! अब जैसा आज्ञा हो, उसीको मैं निरपर धरकर आदरपूर्वक करूँ । परन्तु देव ! आप मुझे वह अवलम्बन (कोई सहारा) दें जिसकी सेवा कर मैं अवधिका पार पा जाऊँ (अवधिकी विता दूँ) ॥ ४ ॥

दो०—देव देव अभिपंक हित गुर अनुसामनु पाइ ।

आनेउँ सब तीरथ सलिलु तेहि कहँ काह रजाइ ॥३०७॥

हे देव ! स्वामी (आप) के अभिपंकके लिये गुरुजीकी आज्ञा पाकर मैं सब तीर्थोंका जल लेता आया हूँ; उसके लिये क्या आज्ञा होती है ? ॥३०७॥

चौ०—एकु मनोरथु यह मन माहीं । सभय सकोच जान कहि नाहीं ॥

कहहु तात प्रभु आयसु पाई । बोलै वानि सनेहँ सुहाई ॥ १ ॥

मेरे मनमें एक और बड़ा मनोरथ है, जो भय और संकोचके कारण कहा नहीं जाता । [श्रीरामचन्द्रजीने कहा—] हे भाई ! कहो । तब प्रभुकी आज्ञा पाकर भरतजी स्नेहपूर्ण सुन्दर वाणी बोलें—॥ १ ॥

चित्रकूट सुचि थल तीरथ वन । खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन ॥

प्रभु पद अंकित अवनि विनयो । आयसु होइ न आवौं देखी ॥ २ ॥

आज्ञा हो तो चित्रकूटके पवित्र स्थान, मृग, वन, पक्षी पशु, नागाव नदी, स्रग्ने और पर्वतोंके समूह तथा विशेषकर प्रभु (आप) के चरणविह्वलमें अंकित भूमियों देख आऊँ ॥ २ ॥

अवसि अत्रि आयसु सिर धरह । तात बिगतभय कानन चरह ॥

मुनिप्रसाद बनु मंगल दाता । पावन परम सुहावन आता ॥ ३ ॥

[भीरघुनाथजी बोले—] अवश्य ही अत्रि ऋषिकी आज्ञाको सिरपर धारण करो (उनसे पूछकर वे जैसा कहें वैसा करो) और निर्भय होकर वनमें विचरो । हे भाई ! अत्रि मुनिके प्रसादसे वन मङ्गलोंका देनेवाला, परम पवित्र और अत्यन्त सुन्दर है ॥ ३ ॥

रिषिनाथकु जहँ आयसु देहीं । राखेहु तीरथ जलु थल तेहीं ॥

मुनि प्रभुवचन भरत सुख पावा । मुनि पद कमल मुदित सिर नावा ॥ ४ ॥

और ऋषियोंके प्रमुख अत्रिजी जहाँ आज्ञा दें, वही लाया हुआ तीर्थोंका जल स्थापित कर देना । प्रभुके वचन सुनकर भरतजीने सुख पाया और आनन्दित होकर मुनि अत्रिजीके चरणकमलोंमें सिर नवाया ॥ ४ ॥

दो०—भरत राम संवादु मुनि सकल सुमंगल मूल ।

सुर स्वारथी सराहि कुल वरषत सुरतरु फूल ॥ ३०८ ॥

भरतजी और श्रीरामचन्द्रजीका समस्त सुन्दर मङ्गलोंका मूल संवाद मुनिके स्वार्थी देवता रघुकुलकी सराहना करके कल्पवृक्षके फूल बरमाने लगें ॥ ३०८ ॥

चो०—धन्य भरत जय राम गोसाईं । कहत देव हरषत बरिआई ॥

मुनि मिथिलेस सभौ सब काह । भरत वचन सुनि भयउ उछाह ॥ १ ॥

‘भरतजी धन्य हैं, स्वामी श्रीरामजीकी जय हो !’ ऐसा कहते हुए देवता बलपूर्वक (अत्यधिक) हर्षित होने लगे । भरतजीके वचन सुनकर मुनि वशिष्ठजी, मिथिलपति जनकजी और मधामें सब किसीकी बड़ा उन्माह (आनन्द) हुआ ॥ १ ॥

भरत राम गुन ग्राम सनेह । पुलकि प्रसंसत राउ विदेह ॥

सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन । नेमु पेमु अति पावन पावन ॥ २ ॥

भरतजी और श्रीरामचन्द्रजीके गुणसमूहकी तथा प्रेमकी विदेहराज जनकजी पुलकित होकर प्रशंसा कर रहे हैं । सेवक और स्वामी दोनोंका सुन्दर स्वभाव है । इनके नियम और प्रेम पवित्रको भी अत्यन्त पवित्र करनेवाले हैं ॥ २ ॥

मति अनुसार सराहन लागे । सचिव सभासद सब अनुरागे ॥

सुनि सुनि राम भरत संवाद । दुहु समाज हियँ हरषु विषाद ॥ ३ ॥

मन्त्री और सभासद् सभी प्रेममग्न होकर अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार सराहना करने लगे । श्रीरामचन्द्रजी और भरतजीका संवाद सुन-सुनकर दोनों समाजोंके हृदयोंमें हर्ष और विषाद (भरतजीके सेवाधर्मको देखकर हर्ष और रामवियोगकी सम्भावनासे विषाद) दोनों हुए ॥ ३ ॥

राममानु दुखु सुखु सम जानी । कहि गुन राम प्रबोधी रानी ॥

एक कहहि रघुबीर बड़ाई । एक सराहत भरत भलाई ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौसल्याजीने दुःख और सुखको समान जानकर श्रीरामजीके गुण कहकर दूसरी रानियोंको धैर्य बँधाया । कोई रघुबीर श्रीरामजीकी बड़ाई (बड़पन) की चर्चा कर रहे हैं, तो कोई भरतजीके भलेपनकी सराहना करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—अत्रि कहेउ तब भरत सन सैल समीप सुकूप ।

राखिअ तोरथ तोय तहँ पावन अमिअ अनूप ॥३०९॥

तब अत्रिजीने भरतजीसे कहा—इस पर्वतके समीप ही एक सुन्दर कुआँ है। इस पवित्र, अनुपम और अमृत-जैसे तीर्थजलको उसीमें स्थापित कर दीजिये ॥ ३०९ ॥

चौ०—भरत अत्रि अनुसासन पाई । जलभाजन सब दिए चलाई ॥

सानुज आपु अत्रि मुनि साधू । सहित गए जहँ कूप अगाधू ॥ १ ॥

भरतजीने अत्रिमुनिकी आज्ञा पाकर जलके सब पात्र रवाना कर दिये और छोटे भाई शत्रुघ्न, अत्रिमुनि, तथा अन्य साधु-संतोंसहित आप वहाँ गये, जहाँ वह अयाह कुआँ था, ॥ १ ॥

पावन पाथ पुन्यथल राखा । प्रमुदिन प्रेम अत्रि अस भाषा ॥

तात अनादि सिद्धथल एह । लोपेउ काल बिदित नहिं केहू ॥ २ ॥

और उस पवित्र जलको उस पुण्यस्थलमें रख दिया। तब अत्रिकृष्णने प्रेमसे आनन्दित होकर ऐसा कहा—हे तात ! यह अनादि सिद्धस्थल है। कालक्रमसे यह लोप हो गया था, इसलिये किसीको इसका पता नहीं था ॥ २ ॥

तब सेवकन्ह सरस थलु देखा । कीन्ह सुजल हित कूप बिसेपा ॥

बिधि बस भयउ बिस्व उपकार । सुगम अगम अति धरम बिचार ॥ ३ ॥

जब हमारे सेवकोंने इस सुन्दर जलधुक स्थानको देखा, तब उन्होंने सुन्दर जलके लिये एक खास कुआँ बना लिया। दैवयोगसे विश्वभरका उपकार हो गया। धर्मका विचार जो अत्यन्त अगम था, वह [इस कूपके प्रभावसे] सुगम हो गया ॥ ३ ॥

भरतकूप अब कहिहहिं लोगा । अति पावन तीरथ जल जोगा ॥

प्रेम सनेम निमज्जन प्राणी । होइहहिं धिमल करम मन बानी ॥ ४ ॥

अब इसको लोग भरतकूप कहेंगे। तीर्थोंके जलके संयोगसे तो यह अत्यन्त ही पवित्र हो गया। इसमें प्रेमपूर्वक नियमसे स्नान करनेपर प्राणी मन, वचन और कर्ममें निर्मल हो जायेंगे ॥ ४ ॥

दो०—कहत कूप महिमा सकल गए जहाँ रघुराउ ।

अत्रि सुनायउ रघुबरहि तीरथ पुन्य प्रभाउ ॥३१०॥

कूपकी महिमा कहते हुए सब लोग वहाँ गये जहाँ श्रीरघुनाथजी थे। श्रीरघुनाथजीको अत्रिजीने उस तीर्थका पुण्य प्रभाव सुनाया ॥ ३१० ॥

चौ०—कहत धरम इतिहास सप्रतीती । भयउ भोग निसि सो सुख बीनी ॥

नित्य निबाहि भरत दाउ भाई । राम अत्रि गुर आयसु पाई ॥ १ ॥

प्रेमपूर्वक धर्मके इतिहास कहते बड़ रात सुखसे बीत गयी और सवेरा हो गया। भरत शत्रुघ्न दोनों भाई नित्यक्रिया पूरी करके, श्रीरामजी, अत्रिजी और गुरु वशिष्ठजीकी आज्ञा पाकर, ॥ १ ॥

सहित समाज साज सब सादे । चले रामधन अटन पयादे ॥

कोमल चरन चलत विनु पनहीं । भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं ॥ २ ॥

समाजसहित सब सादे साजसे रामधनमें भ्रमण (प्रदक्षिणा) करनेके लिये पैदल ही चले।

कोमल चरण हैं और बिना जूतेके चल रहे हैं। यह देखकर पृथिवी मन-ही-मन सकुचा कर कोमल हो गयी ॥ २ ॥

कुस कंटक काँकरीं कुराईं। कटुक कठोर कुवस्तु दुराईं ॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे। वहत समीर त्रिविध सुख लीन्हे ॥ ३ ॥

कुस, काँटे, कंकड़ी, दरारें आदि कड़वी, कठोर और बुरी वस्तुओंको छिपाकर पृथिवीने सुन्दर और कोमल मार्ग कर दिये। सुखोंको साग लिये शीतल, मन्द, सुगन्ध हवा चलने लगी ॥ ३ ॥

सुमन बरपि सुर घन करि छाहीं। बिटप फूल फलि तन मृदुताहीं ॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुधानी। सेवहिं सकल रामप्रिय जानी ॥ ४ ॥

रास्तेमें देवता फूल बरसाकर, बादल छाया करके, वृक्ष फूल-फाड़कर, तृण अपनी कोमलतासे, मृग (पशु) देखकर और पक्षी सुन्दर कर्णा बोलकर—सभी भरतजीको श्रीरामचन्द्रजीके प्यारे जानकर उनकी सेवा करने लगे ॥ ४ ॥

दो०—सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात।

राम प्रानप्रिय भरत कहुँ यह न होइ बड़ि बात ॥३११॥

जब एक साधारण मनुष्यको भी आलस्यसे जैभाई लेते समय 'राम' कह देनेसे ही सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं तब श्रीरामचन्द्रजीके प्राणायारे भगतजीके लिये यह कोई बड़ी (आश्चर्यकी) बात नहीं है ॥ ३११ ॥

चौ०—एहि विधि भरतु फिरत घन माहीं। नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं ॥

पुन्य जलाश्रय भूमि विभागा। खग मृग तरु तन गिरि बन वागा ॥ १ ॥

इस प्रकार भरतजी वनमें फिर रहे हैं। उनके नियम और प्रेमको देखकर मुनि भी सकुचा जाते हैं। पवित्र जलके स्थान (नदी, बावली, कुण्ड आदि), पृथिवीके पृथक्-पृथक् भाग, पक्षी, पशु, वृक्ष, तृण (घास), पर्वत, वन और बगीचे—॥ १ ॥

चारु विचित्र पवित्र विसेषी। वृक्षत भरतु दिव्य सब देखी ॥

सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ ॥ २ ॥

सभी विशेषरूपसे सुन्दर, विचित्र, पवित्र और दिव्य देखकर भरतजी पूछते हैं और उनका प्रश्न सुनकर ऋषिराज अत्रिजी प्रसन्न मनसे सबके कारण, नाम, गुण, और पुण्य प्रभावको कहते हैं ॥ २ ॥

कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा ॥

कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोड भाई ॥ ३ ॥

भरतजी कहीं स्नान करते हैं, कहीं प्रणाम करते हैं, कहीं मनोहर स्थानोंके दर्शन करते हैं और कहीं मुनि अत्रिजीकी आज्ञा पाकर बैठकर, सीताजीसहित श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंका स्मरण करते हैं ॥ ३ ॥

देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित बनदेवा ॥

फिरहिं गएँ दिनु पहर अढ़ाई। प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई ॥ ४ ॥

भरतजीके स्वभाव, प्रेम और सुन्दर सेवाभावको देखकर वनदेवता आनन्दित होकर आशीर्वाद देते हैं। यों घूम-फिरकर ढाई पहर दिन बीतनेपर लौट पड़ते हैं और आकर प्रभु श्रीरघुनाथजीके चरण-कमलोंका दर्शन करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—देखे थल तीरथ सकल भरत पाँच दिन माझ ।

कहत सुनत हरि हर सुजसु गयउ दिवसु भइ साँझ ॥३१२॥

भरतजीने पाँच दिनमें सब तीर्थस्थानोंके दर्शन कर लिये। भगवान् विष्णु और महादेवजीका सुन्दर यश कहते-सुनते वह (पाँचवों) दिन भी बीत गया, सन्ध्या हो गयी ॥ ३१२ ॥

चो०—भोर न्हाइ सबु जुरा समाजु । भरत भूमिसुर तेरहुति राजू ॥

भल दिन आजु जानि मन माहीं । रामु कृपाल कहत सकुवाहीं ॥ १ ॥

अगले छठे (दिन) सबेरे स्नान करके भरतजी, ब्राह्मण, राजा जनक और सारा समाज आ जुटा। आज सबको विदा करनेके लिये अच्छा दिन है, यह मनमें जानकर भी कृपालु श्रीरामजी कहनेमें सकुचा रहे हैं ॥ १ ॥

गुर नृप भरत सभा अवलोकी । सकुचि राम फिरि अवनि विलोकी ॥

सील सराहि सभा सब सोची । कहूँ न राम सम स्वामि सँकोची ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने गुरु वशिष्ठजी, जनकजी, भरतजी और सारी सभाकी ओर देखा। किन्तु फिर सकुचाकर दृष्टि फेरकर वे पृथ्वीकी ओर ताकने लगे। सभा उनके शीलकी सराहना करके सोचती है कि श्रीरामचन्द्रजीके समान संकोची स्वामी कहीं नहीं है ॥ २ ॥

भरत सुजान रामरुख देखी । उठि संप्रम धरि धीर विसेयी ॥

करि दंडवत कहत कर जोरी । राखी नाथ सकल रुचि मोरी ॥ ३ ॥

सुजान भरतजी श्रीरामचन्द्रजीका रुख देख प्रेमपूर्वक उठकर, विशेषरूपसे धीरज धारणकर दण्डवत् करके हाथ जोड़कर कहने लगे—हे नाथ ! आपने मेरी सभी रुचियाँ रक्खी ॥ ३ ॥

मोहि लगि सहेउ सचहिं संतापू । बहुत भौंति दुखु पावा आपू ॥

अब गोसाईं मोहि देउ रजाई । मेवीं अवध अवधि भरि जाई ॥ ४ ॥

मेरे लिये सब लोगोंने सन्ताप सहा और आपने भी बहुत प्रकारसे दुःख पाया। अब स्वामी मुझे आज्ञा दें। मैं जाकर अवधिभर (चौदह वार्षिक) अवधका सेवन करूँ ॥ ४ ॥

दो०—जेहिं उपाय पुनि पाय जुनु देखें दीनदयाल ।

सो सिख देइअ अवधि लगि कोसलपाल कृपाल ॥३१३॥

हे दीनदयाल ! जिस उपायसे यह काम फिर चरणोंका दर्शन करे—हे कोमलधीरा ! हे कृपाल ! अवधिभरके लिये मुझे वही शिक्षा दीजिये ॥ ३१३ ॥

चो०—पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं । सब सुचि सरस संनई सगाईं ॥

राउर बदि भल भव दुख दाह । प्रभु बिनु बादि परमपद लाह ॥ १ ॥

हे गोसाईं ! आपके प्रेमसे और सम्बन्धसे अवधपुरवासी, कुटुम्बी और प्रजा सभी पवित्र और रस (आनन्द) से युक्त हैं। आपके लिये भवदुःख (जन्म-मरणके दुःख) की ज्वालामें जलना भी अच्छा है और प्रभु (आप) के बिना परमपद (मोक्ष) का लाभ भी व्यर्थ है ॥ १ ॥

स्वामि सुजानु जानि सब ही की । रुचि लालसा रहनि जन जी की ॥

प्रणतपालु पालिहि सब काहु । देउ दुहँ दिसि ओर निवाहु ॥ २ ॥

हे स्वामी ! आप सुजान हैं, सभीके हृदयकी और मुझ सेवकके मनकी रुचि, लालसा और रहनी जानकर, हे प्रणतपाल ! आप सब किसीका पालन करेंगे और हे देव ! दोनों तरफको ओर-छोरतक निवाहेंगे ॥ २ ॥

अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो । किणँ बिचारु न सोचु खरो सो ॥

भारति मोर नाथ कर छोह । दुहँ मिलि कौन्ह दीउ हठि मोह ॥ ३ ॥

मुझे सब प्रकारसे ऐसा बहुत बड़ा भरोसा है । विचार करनेपर तिनकेके बराबर (जरा-सा) भी सोच नहीं रह जाता । मेरी दीनता और स्वामीका स्नेह दोनोंने मिलकर मुझे जबर्दस्ती ढीठ बना दिया है ॥ ३ ॥

यह बड़ दोषु कूरि करि स्वामी । तजि सकोच सिखइअ अनुगामी ॥

भरत बिनय सुनि सबहिं प्रसंसी । खीर नीर बिधरन गति हंसी ॥ ४ ॥

हे स्वामी ! इस बड़े दोषको दूर करके सकोच त्यागकर मुझ सेवकको शिक्षा दीजिये । दूध और जलको अलग-अलग करनेमें हंसिनोकी-सी गतिवाली भरतजीकी बिनती सुनकर उसकी सभीने प्रशंसा की ॥ ४ ॥

दो०—दीनबंधु सुनि बंधु के वचन दीन छलहीन ।

देस काल अवसर सरिस बोले रामु प्रवीन ॥ ३१४ ॥

दीनबन्धु और परम चतुर श्रीरामजी भाई भरतजीके दीन और छलरहित वचन सुनकर देश, काल और अवसरके अनुकूल वचन बोले—॥ ३१४ ॥

चो०—तात तुम्हारि मोरि परिजन की । चिंता गुरहि नृपहि घर बन की ॥

माथे पर गुर मुनि मिथिलेसु । हमहि तुम्हहि सपनेहुँ न कलेसु ॥ १ ॥

हे तान ! तुम्हारी, मेरी, परिवारकी, घरकी और वनकी सारी चिन्ता गुरु वशिष्ठजी और महाराज जनकजीकी है । हमारे सिरपर जब गुरुजी, मुनि विश्वामित्रजी और मिथिलापति जनकजी हैं, तब हमें और तुम्हें स्वप्नमें भी क्लेश नहीं है ॥ १ ॥

मोर तुम्हार परम पुरुषार्थु । स्वारथु सुजसु धरमु परमार्थु ॥

पितु आयसु पालिहिं दुहु भाई । लोक बेद भल भूप भलाई ॥ २ ॥

मेरा और तुम्हारा तो परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ इसीमें है कि हम दोनों भाई पिताजीकी आज्ञाका पालन करें । राजाकी भलाई (उनके व्रतकी रक्षा) से ही लोक और वेद दोनोंमें भला है ॥ २ ॥

गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें । चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें ॥

अस बिचारि सब सोच बिहार् । पालहु अवध अवधि भरि जाई ॥ ३ ॥

गुरु, पिता, माता और स्वामीकी शिक्षाका (आज्ञाका) पालन करनेसे कुमार्गपर भी चलनेसे पैर गड़बड़ेमें नहीं पड़ता (पतन नहीं होता) । ऐसा विचारकर सब सोच छोड़कर अवध जाकर अवधिभर उसका पालन करो ॥ ३ ॥

देसु कोसु परिजन परिवारु । गुर पद रजहिं लाग छरभारु ॥

तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी । पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी ॥ ४ ॥

देश, खजाना, कुटुम्ब, परिवार आदि सबकी जिम्मेदारी तो गुरुजीकी चरणरजपर है । तुम तो मुनि

वशिष्ठजी, माताओं और मन्त्रियोंकी शिक्षा मानकर तदनुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानीका पालन (रक्षा) भर करते रहना ॥ ४ ॥

दो०—मुखिया मुखु सो चाहिये खान पान कहूँ एक ।

पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित विवेक ॥३१५॥

तुलसीदासजी कहते हैं—[श्रीरामजीने कहा—] मुखिया मुखके समान होना चाहिये, जो खाने-पीनेको तो एक (अकेला) है परन्तु विवेकपूर्वक सब अंगोंका पालन-पोषण करता है ॥ ३१५ ॥

चौ०—राजधरम सरवसु एतनोई । जिमि मन माहँ मनोरथ गोई ॥

बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती । बिनु अधार मन तोषु न साँती ॥ १ ॥

राजधर्मका सर्वस्व (सार) भी इतना ही है । जैसे मनके भीतर मनोरथ छिपा रहता है । श्रीरघुनाथजीने भाई भरतको बहुत प्रकारसे समझाया, परन्तु कोई अवलम्बन पाये बिना उनके मनमें न सन्तोष हुआ, न शान्ति ॥ १ ॥

भरत सील गुर सचिव समाजू । सकुच सनेह विवस रघुराजू ॥

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हों । सादर भरत सीस धरि लीन्हों ॥ २ ॥

इधर तो भरतजीका शील (प्रेम) और उधर गुरुजनों, मन्त्रियों तथा समाजकी उपस्थिति ! यह देखकर श्रीरघुनाथजी संकोच तथा स्नेहके विशेष वशीभूत हो गये । (अर्थात् भरतजीके प्रेमवश उन्हें पाँवरी देना चाहते हैं, किन्तु साथ ही गुरु आदिका संकोच भी होता है) । आखिर [भरतजीके प्रेमवश] प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने कृपाकर खड़ाऊँ दे दी और भरतजीने उन्हें आदरपूर्वक सिंगर धारण कर लिया ॥ २ ॥

चरनपीठ करुनानिधान के । जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ॥

संपुट भरत सनेह रतन के । आखर जुग जनु जीव जनन के ॥ ३ ॥

करुणानिधान श्रीरामचन्द्रजीके दोनों खड़ाऊँ प्रजाके प्राणोंकी रक्षाके लिये मानो दो पट्टदार हैं । भरतजीके प्रेमरूपी रत्नके लिये मानो डिव्या है । और जोवक साधनके लिये मानो राम-नामके दो अक्षर हैं ॥ ३ ॥

कुल कपाट कर कुसल करम के । विमल नयन मेवा सुधरम के ॥

भरत मुदिन अवलंब लहे तें । अस सुख जस सिय रामु रहे तें ॥ ४ ॥

रघुकुलके लिये कियाड़ हैं । कुशल (श्रेष्ठ) कर्म करनेके लिये दो हाथकी भाँति (सहायक) हैं । और सेवारूपी श्रेष्ठ धर्मके मुझानेके लिये निर्मल नेत्र हैं । भरतजी इस अवलम्बके मिल जानेसे परम आनन्दित हैं । उन्हें ऐसा ही सुख हुआ, जैसे श्रीसीतारामजीके रहनेसे होना ॥ ४ ॥

दो०—मागेउ बिदा प्रनामु करि गम लिए उर लाइ ।

लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ ॥३१६॥

भरतजीने प्रणाम करके विदा माँगी, तब श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें हृदयसे लगा लिया । इधर कुटिल इन्द्रने बुरा मौका पाकर लोगोंका उच्चाटन कर दिया ॥ ३१६ ॥

चौ०—सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी । अर्वाधि आस सम जीवनि जी की ॥

नतर लखन सिय राम बियोगाँ । दहरि भरत मय लोग कुरोगाँ ॥ १ ॥

वह कुचाल भी सबके लिये हितकर हो गयी । अवधि की आशाके समान ही वह जीवनके लिये संजीवनी



प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही । सादर भगत सीस धरि लीन्ही ॥

हो गयी। नहीं तो (उच्चाटन न होता तो) लक्ष्मणजी, सीतलजी और श्रीरामचन्द्रजीके वियोगरूपी बुरे रोगसे सब लोग घबराकर (हाय-हाय करके) मर ही जाते ॥ १ ॥

रामकृपाँ अवरेव सुधारी । बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी ॥

भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो । राम प्रेम रसु कहि न परत सो ॥ २ ॥

श्रीरामजीकी कृपाने सारी उलझन सुधार दी। देवताओंकी सेना जो लड़ने आयी थी, वही गुणदायक (हितकारी) और रक्षक बन गयी। श्रीरामजी भुजाओंमें भरकर भाई भरतसे मिल रहे हैं। श्रीरामजीके प्रेमका वह रस (आनन्द) कहने नहीं बनता ॥ २ ॥

तन मन वचन उमग अनुरागा । धीर धुरंधर धीरजु त्यागा ॥

बारिज लोचन मोचत बारी । देखि दसा सुरसभा दुखारी ॥ ३ ॥

तन, मन और वचन तीनोंमें प्रेम उमड़ पड़ा। धीरजकी धुरीको धारण करनेवाले श्रीरघुनाथजीने भी धीरज त्याग दिया ! वे कमलसदृश नेत्रोंसे [प्रेमाश्रुओंका] जल बहाने लगे। उनकी यह दशा देखकर देवताओंकी सभा (समाज) दुखी हो गयी ॥ ३ ॥

मुनिगन गुर धुर धीर जनक से । ग्यान अनल मन कसें कनक से ॥

जे बिरन्नि निरलेप उपाए । पदुमपत्र जिमि जग जल जाए ॥ ४ ॥

मुनिगण, गुरु वशिष्ठजी और जनकजी सरीखे धीरधुरन्धर, जो अपने मनोंको ज्ञानरूपी अग्निमें सोनेके समान कस चुके थे, जिनको ब्रह्माजीने निर्लेप ही रचा और जो जगत्पूरी जलमें कमलके पत्तेकी तरह ही (जगन्में रहते हुए भी जगत्से अनासक्त) पैदा हुए, ॥ ४ ॥

दो०—तेउ बिलोकि रघुवर भरत प्रीति अनूप अपार ।

भए मगन मन तन वचन सहित बिराग बिचार ॥ ३१७ ॥

वे भी रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामजीके और भरतजीके उपमारहित अपार प्रेमको देखकर वंराग्य और विवेकसहित तन, मन, वचनसे उस प्रेममें मग्न हो गये ॥ ३१७ ॥

चौ०—जहाँ जनक गुर गति मति भोरी । प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी ॥

वरनत रघुवर भरत बिर्योगू । सुनि कठोर कवि जानिहि लोगू ॥ १ ॥

जहाँ जनकजी और गुरु वशिष्ठजीकी गति और बुद्धि भी कुण्ठित हो गयी, उस दिव्य प्रेमको प्राकृत (लौकिक) कहनेमें बड़ा दोष है। रघुवर श्रीरामचन्द्रजी और भरतजीके वियोगका वर्णन करते सुनकर लोग कविको कठोरहृदय समझेंगे ॥ १ ॥

सो सकोच रसु अकथ सुबानी । समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी ॥

भेंटि भरतु रघुवर समुझाप । पुनि रिपुदवतु हरषि हियँ लाए ॥ २ ॥

वह संकोचरस अकथनीय है। अतएव कविकी सुन्दर वाणी उस समय उसके प्रेमको स्मरण करके सकुचा गयी। भरतजीको भेंटकर श्रीरघुनाथजीने उनको समझाया। फिर हर्षित होकर शत्रुपक्षजीको हृदयसे लगा लिया ॥ २ ॥

सेवक सचिव भरत रुख पाई । निज निज काज लगे सब जाई ॥

सुनि दारुन दुख दुहुँ समाजा । लगे चलन के साजन साजा ॥ ३ ॥

सेवक और मन्त्री भरतजीका रुख पाकर सब अपने-अपने काममें जा लगे । यह सुनकर दोनों समाजोंमें दारुण दुःख छा गया । वे चलनेकी तैयारियाँ सजने लगे ॥ ३ ॥

प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई । चले सीस धरि राम रजाई ॥

मुनि तापस वनदेव निहोरी । सब सनमानि बहोरि बहोरी ॥ ४ ॥

प्रभुके चरणकमलोंकी वन्दना करके तथा श्रीरामजीकी आज्ञाको सिरपर धर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले । मुनि, तपस्वी और वनदेवता सबका बार-बार सम्मान करके उनकी विनती की ॥ ४ ॥

दो०—लखनहि भेंटि प्रनामु करि सिर धरि सिय पद धूरि ।

चले सप्रेम असीस मुनि सकल सुमंगल मूरि ॥३१८॥

फिर लक्ष्मणजीको क्रमशः भेंटकर तथा प्रणाम करके और सीताजीके चरणोंकी धूलिको सिरपर धारण करके और समस्त मङ्गलोंके मूल आशीर्वाद सुनकर वे प्रेमसहित चले ॥ ३१८ ॥

चौ०—सानुज राम नृपहि सिर नाई । कीन्हि बहुत विधि विनय बढ़ाई ॥

देव दयावस बड़ दुखु पायउ । सहित समाज काननहिं आयउ ॥ १ ॥

छोटे भाई लक्ष्मणजी समेत श्रीरामजीने राजा जनकजीको सिर नवाकर उनकी बहुत प्रकारसे विनती और बढ़ाई की [और कहा—] हे देव ! दयावश आपने बहुत दुःख पाया । आप समाजसहित वनमें आये ॥ १ ॥

पुर पगु धारिअ देइ असीसा । कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा ॥

मुनि महिदेव साधु सनमाने । बिदा किए हरि हर सम जाने ॥ २ ॥

अब आशीर्वाद देकर नगरको पधारिये । यह सुन राजा जनकजीने धीरज धरकर गमन किया । फिर श्रीरामचन्द्रजीने मुनि, ब्राह्मण और साधुओंको विष्णु और शिवके समान जानकर सम्मान करके उनको विदा किया ॥ २ ॥

सासु समीप गए दोउ भाई । फिरे बंदि पग आसिष पाई ॥

कौसिक वामदेव जाबाली । पुरजन परिजन सचिव सुचाली ॥ ३ ॥

तब श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाई सासके पास गये और उनके चरणोंकी वन्दना करके आशीर्वाद पाकर लौट आये । फिर विश्वामित्र, वामदेव, जाबालि और शुभ आचरणवाले कुटुम्बी, नगरनिवासी और मन्त्री—॥ ३ ॥

जथाजोगु करि विनय प्रनामा । बिदा किए सब सानुज रामा ॥

नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे । सब सनमानि कृपानिधि फेरे ॥ ४ ॥

सबको छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित श्रीरामचन्द्रजीने यथायोग्य विनय एवं प्रणाम करके विदा किया । कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजीने छोटे, मध्यम (मझले) और बड़े सभी श्रेणीके स्त्री-पुरुषोंका सम्मान करके उनको लौटाया ॥ ४ ॥

दो०—भरत मातु पद बंदि प्रभु सुचि सनेहँ मिलि भेंटि ।

बिदा कीन्ह सजि पालकी सकुच सोच सब मेति ॥३१९॥

भरतकी माता कैकेयीके चरणोंकी वन्दना करके प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने पवित्र (निरुद्धल) प्रेमके साथ उनसे मिल-भेंटकर तथा उनके सारे संकोच और सोचको मिटाकर पालकी सजाकर उनको विदा किया ॥ ३१९ ॥

कल्याण

पर्णकुटी के पद्मेदार



श्रीलक्ष्मण जा

चौ०—परिजन मातु पितहि मिलि सीता । फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता ॥
करि प्रनामु भैंटी सब सासू । प्रीति कहत कबि हियँ न हुलासू ॥ १ ॥

प्राणप्रिय पति श्रीरामचन्द्रजीके साथ पवित्र प्रेम करनेवाली सीताजी नैहरके कुटुम्बियोंसे तथा माता-पितासे मिलकर लौट आयीं । फिर प्रणाम करके सब सासुओंसे गले लगाकर मिलीं । उनके प्रेमका वर्णन करनेके लिये कविके हृदयमें हुलास (उत्साह) नहीं होता ॥ १ ॥

सुनि सिख अभिमत आसिय पाई । रहो सीय दुहुँ प्रीति समाई ॥
रघुपति पट्ट पालकों मगाई । करि प्रबोधु सब मातु चढ़ाई ॥ २ ॥

उनका शिक्षा सुनकर और मनचाहा आशीर्वाद पाकर सीताजी सासुओं तथा माता-पिता दोनों ओरकी प्रीतिमें समायी (बहुत देरतक निमग्न) रहीं । श्रीरघुनाथजीने सुन्दर पालकियाँ मँगवाई और सब माताओंकी आश्वसन देकर उनपर चढ़ाया ॥ २ ॥

बार बार हिलि मिलि दुहुँ भाई । सम सनहँ जननी पहुँचाई ॥
साजि बाजि गज बाहन नाना । भरत भूप दल कीन्ह पयाना ॥ ३ ॥

दोनों भाइयोंने माताओंमें समान प्रेमे बार-बार मिल-जुलकर उनको पहुँचाया । भरतजी और राजा जनकजीके दलोंने घोड़े, हाथी और अनेको तरहकी सवारियाँ सजाकर प्रस्थान किया ॥ ३ ॥

हृदयँ रामु सिय लखन समेता । चले जाहिं सब लोग बचेता ॥
बसह याजि गज पसु हियँ हारें । चले जाहिं परबस मन मारें ॥ ४ ॥

सीताजी एवं लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें रखकर सब लोग वेसुध हुए चले जा रहे हैं । बैल, घोड़े, हाथा आदि पशु हृदयमें होगे (शिथिल) हुए, परबस मनमारे चले जा रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु सीता लखन समेत ।
फिरे हरष बिसमय सहित आए परननिकेत ॥ ३२० ॥

गुर वशिष्ठजी और गुन्पत्री अरुन्धतीजीके चरणोंकी वन्दना करके सीताजी और लक्ष्मणजी-सहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी हर्ष और विषादके गाय लौटकर पर्णकुटीपर आये ॥ ३२० ॥

चौ०—विदा कीन्ह सनमानि निषादू । चलेउ हृदयँ बड़ विरह विषादू ॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी । फेरे फिरे जोहारि जोहारी ॥ १ ॥

फिर सम्मान करके निषादराजको विदा किया । वह चला तो सही, किन्तु उसके हृदयमें विरहका बड़ा भारी विषाद था । फिर श्रीरामजीने कोल, किरात, भिल्ल आदि वनवासी लोगोंको लौटाया । वे सब जोहार-जोहारकर (वन्दना कर-करके) लौटे ॥ १ ॥

प्रभु सिय लखन बैठि बटछाहीं । प्रिय परिजन वियोग विलखाहीं ॥
भरत सनह सुभाउ सुयानी । प्रिया अनुज सन कहत बखानी ॥ २ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी और लक्ष्मणजी बड़ी छायामें बैठकर प्रियजन एवं परिवारके वियोगसे दुखी हो रहे हैं । भरतजीके स्नेह, स्वभाव और सुन्दर वाणीको बखान-बखानकर वे प्रियपत्नी सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ २ ॥

प्रीति प्रतीति बचन मन करनी । श्रीमुख राम प्रेमबस बरनी ॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना । चित्रकूट चर अचर मलीना ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने प्रेमके वश होकर भरतजीके वचन, मन, कर्मकी प्रीति तथा विश्वासका अपने भीमुखसे वर्णन किया। उस समय पक्षी, पशु और जलकी मछलियाँ, चित्रकूटके सभी जैन और जड़ जीव उदास हो गये ॥ ३ ॥

बिबुध बिलोकि दसा रघुवर की । वरपि सुमन कहि गति घर घर की ॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरोसो । चले मुदित मन डर न खरो सो ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजीकी दशा देखकर देवताओंने उनपर फूल बरसाकर अपनी घर-घरकी दशा कही (दुःखड़ा मुनाया) । प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें प्रणामकर आश्वामन दिया। तब वे प्रसन्न होकर चले, मनमें जरा-सा भी डर नहीं रहा ॥ ४ ॥

दो०—सानुज सीय समेत प्रभु राजत परनकुटीर ।

भगति ग्यानु बैराग्य जनु मोहत धरें सरीर ॥३२१॥

छोट भाई लक्ष्मणजी और सीताजीसमेत प्रभु श्रीरामचन्द्रजी पर्णकुटीरमें ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो बैराग्य, भक्ति और ज्ञान वरीर धारण करके शोभित हो रहे हों ॥३२१॥

चौ०—मुनि महिसुर गुर भरत भुआल । रामविरहें सब साजु बिहाल ॥
प्रभु गुनग्राम गनत मन माहीं । सब चुपचाप चले मग जाहीं ॥ १ ॥

मुनि, ब्राह्मण, गुप्त वशिष्ठजों, भरतजी और राजा जनकजी—सारा समाज श्रीरामचन्द्रजीके विरहमें विह्वल है। प्रभुके गुणसमूहोंका संगमें स्मरण करने हुए सब लोग मार्गमें चुपचाप चले जा रहे हैं ॥ १ ॥

जमुना उतरि पार सबु भयऊ । सो बामर बिनु भोजन गयऊ ॥
उतरि देवसरि दूसर बामू । रामसखाँ सब कीन्ह सुपासू ॥ २ ॥

[पहले दिन] सब लोग यमुनाजी उतरकर पार हुए। वह दिन बिना भोजनके ही बीत गया। दूसरा मुकाम गङ्गाजी उतरकर (गङ्गापार शृङ्गधरपुरमें) हुआ। वहाँ रामसखाँ निपादगजनें सब सुप्रबन्ध कर दिया ॥ २ ॥

सई उतरि गोमती नहाए । चौथें दिवस अवधपुर भाए ॥
जनकु रहे पुर बामर चारी । राजकाज सब साज सँभारी ॥ ३ ॥

फिर सई उतरकर गोमतीजीमें स्नान किया और चौथे दिन सब अयोध्याजी जा पहुँचे। जनकजी चार दिन अयोध्याजीमें रहे और राजकाज और सब साज सामानको मरहालकर, ॥ ३ ॥

सौपि सचिव गुर भरतहि राजू । तिरहुति चले साजि सबु साजू ॥
नगर नारि नर गुर सिख मानी । वसे सुखेन रामरजधानी ॥ ४ ॥

और मन्त्री, गुरुजी तथा भरतजीको राज्य सौंपकर, सारा साज-सामान ठोक करके तिरहुतको चले। नगरके स्त्री-पुरुष गुरुजीकी शिक्षा मानकर श्रीरामजीको राजधानी अयोध्याजीमें सुखपूर्वक रहने लगे ॥ ४ ॥

दो०—राम दग्ग लागि लोग सब करत नेम उपवास ।

तजि तजि भूषन भोग मुख जिअत अवधि कीं आस ॥३२२॥

सब लोग श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये नियम और उपवास करने लगे। वे भूषण और भोग-सुखोंको छोड़-छोड़कर अवधिकी आशापर जी रहे हैं ॥ ३२२ ॥

चौ०—सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे । निज निज काज पाइ सिख ओंधे ॥
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघुभाई । सौपी सकल मातु संवकाई ॥ १ ॥

भरतजीने मन्त्रियों और विश्वासी सेवकोंको समझाकर उद्यत किया। वे सब सीख पाकर अपने-अपने काममें लग गये। फिर छोटे भाई (शत्रुघ्नजी) को बुलाकर शिक्षा दी और सब माताओंकी सेवा उनको सौंपी ॥ १ ॥

भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम वय विनय निहारे ॥
ऊँच नीच कारजु भल पोचू। आयसु देव न करव सँकोचू ॥ २ ॥

ब्राह्मणोंको बुलाकर भरतजीने हाथ जोड़कर प्रणामकर अवस्थाके अनुसार विनय और निहारा किया कि आपलोग ऊँचा-नीचा (छोटा बड़ा), अच्छा-मन्दा जो कुछ भी कार्य हो, उसके लिये आज्ञा दीजियेगा। संकोच न कीजियेगा ॥ २ ॥

परिजन पुरजन प्रजा बोलाए। समाधानु करि सुवस वसाए ॥
सानुज गं गुरगेहँ बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी ॥ ३ ॥

भरतजीने फिर परिवारके लोगोंको, नागरिकोंको तथा अन्य प्रजाको बुलाकर, उनका समाधान करके, उनको सुव्यवस्था बसाया। फिर छोटे भाई शत्रुघ्नजी महिन्त धं गुरुजीके घर गये और दण्डवत् करके हाथ जोड़कर बोले—॥ ३ ॥

आयसु होइ त रहैं सनेमा। बोलें मुनि तन पुलकि सपेमा ॥
समुझय कहव करव नुस्र जोई। धरम सारु जग होइहि सोई ॥ ४ ॥

आशा हो तो मैं नियमपूर्वक रहूँ। मुनि वशिष्ठजी पुलकितशरीर हों प्रेमके साथ बोले—हे भरत! तुम जो कुछ समझोगे, कहोगे और करोगे, वही जगत्में धर्मका सार होगा ॥ ४ ॥

दो०—मुनि मिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि।

मिंघामन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि ॥३२३॥

भरतजीने यह मुनिकर और शिष्या तथा बड़ा आशोवाद पाकर ज्योतिषियोंको बुलाया और दिन (अच्छा मुहूर्त) मायकर प्रभुकी चरणपादुकाओंको शान्तिपूर्वक मिंघामनपर विराजित करवाया ॥३२३॥

चौ०—राममानु गुर पद सिरु नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई ॥
नंदिगावँ करि परनकुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा ॥ १ ॥

फिर राममाना कौसल्याजी और गुरुजीके चरणोंमें सिर नवाकर और प्रभुकी चरणपादुकाओंकी आज्ञा पाकर धर्मकी धुरी धारण करनेमें थोर भरतजीने नंदिग्राममें पर्णकुटी बनाकर उन्नीमें निवास किया ॥ १ ॥

जटाजूट सिर मुनिपट धारी। मढि खनि कुससांधरी सँवारी ॥
असन वसन वासन व्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा ॥ २ ॥

सिरपर जटाजूट और शरीरमें मुनियोंके (बलकल) वस्त्र धारणकर, पृथ्वीको खोदकर उसके अन्दर कुशकी आतनी बिछाया। भोजन, वस्त्र, वरतन, व्रत, नियम—सभी बातोंमें वे ऋषियोंके कठिन धर्मका प्रेममहित आचरण करने लगे ॥ २ ॥

भूषन वसन भोग सुख भूरी। मन तन वचन तजे निन तूरी ॥
अवध राजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई ॥ ३ ॥

गहने-कपड़े, और अनेकों प्रकारके भोग-सुखोंको मन, तन और वचनसे तृण तोड़कर (प्रतिज्ञा करके)

त्याग दिया। जिस अयोध्याके राज्यको देवराज इन्द्र सिंहाते थे और दशरथजीकी सम्पत्ति सुनकर कुबेर भी लजा जाते थे, ॥ ३ ॥

तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा । चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥
रमाबिलासु राम अनुरागी । तजत वमन जिमि जन बड़भागी ॥ ४ ॥

उसी अयोध्यापुरीमें भरतजी अनासक्त होकर इस प्रकार निवास कर रहे हैं जैसे चम्पाके बागमें भौरा । श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमी बड़भागी पुरुष लक्ष्मीके विलासको (भोगैश्वर्यको) वमनकी भाँति त्याग देते हैं ॥ ४ ॥

दो०—राम प्रेम भाजन भरतु बड़े न एहिं करतूति ।

चातक हंस सराहिअत टैंक बिबेक बिभूति ॥३२४॥

फिर भरतजी तो श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमके पात्र हैं । वे इस (भोगैश्वर्यत्यागरूप) करनीसे बड़े नहीं हुए (अर्थात् उनके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है) । चातककी पृथ्वीपरका जल न पीनेकी टेकसे और हंसकी नीर-खीर-बिबेककी विभूति (शक्ति) से ही सराहना होती है ॥ ३२४ ॥

चौ०—देह दिनहुँ दिन दूयारि होई । घटइ तेजु बलु मुखछवि सोई ॥

नित नव रामप्रेम पनु पीना । बढ़त धरमदलु मनु न मलीना ॥ १ ॥

भरतजीका शरीर दिनोंदिन दुबला होता जाता है । तेज (अन्न, घृत आदिसे उत्पन्न होनेवाला मंद*) घट रहा है । बल और मुखछवि (मुखकी कान्ति अथवा शोभा) वैसी ही बनी हुई है । रामप्रेमका प्रण नित्य नया और पुष्ट होता है, धर्मका दल बढ़ता है और मन उदास नहीं है (अर्थात् प्रमत्त है) ॥ १ ॥

* संस्कृत कोषमें 'तेज' का अर्थ मंद मिलता है और यह अर्थ लेनेसे 'घटइ' के अर्थमें भी किसी प्रकारकी खोजतान नहीं करना पड़ती ।

जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे । विलसत बेतस बनज बिकासे ॥

सम दम संजम नियम उपासा । नखत भरत हिय विमल अकासा ॥ २ ॥

जैसे शरद् ऋतुके प्रकाश (विकास) से जल घटता है किन्तु बेत शोभा पाते हैं और कमल विकसित होते हैं । शम, दम, संजम, नियम और उपवास आदि भरतजीके हृदयरूपी निर्मल आकाशके नक्षत्र (तारागण) हैं ॥ २ ॥

ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी । स्वामि सुरति सुरवीथि बिकासी ॥

रामप्रेम विधु अचल अदोषा । सहित समाज सोह नित चोखा ॥ ३ ॥

विश्वास हो उस आकाशमें ध्रुवतारा है; चौदह वर्षकी अवधि [का ध्यान] पूर्णमासे समान है । और स्वामी श्रीरामजीकी सुरति (स्मृति) आकाशगङ्गा-सरीखी प्रकाशित है । रामप्रेम ही अचल (सदा रहनेवाला) और कलंकरहित चन्द्रमा है । वह अपने समाज (नक्षत्रों) सहित नित्य मुन्दर मुशोभित है ॥ ३ ॥

भरत रहनि समुझनि करतूती । भगति विरति गुन विमल विभूती ॥

बरनत सकल सुकवि सकुचाहों । सेस गनेस गिरा गमु नाहीं ॥ ४ ॥

भरतजीकी रहनी, समझ, करनी, भक्ति, वैराग्य, निर्मल गुण और ऐश्वर्यका वर्णन करनेमें सभी सुकवि सकुचाते हैं । क्योंकि वहाँ [औरोंकी तो बात ही क्या] स्वयं शेष, गणेश और सरस्वतीकी भी पहुँच नहीं है ॥ ४ ॥

दो०—नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समाति ।

मागि मागि आयसु करत राजकाज बहूँ भाँति ॥३२५॥

वे नित्यप्रति प्रभुकी पादुकाओंका पूजन करते हैं; हृदयमें प्रेम समाता नहीं है । पादुकाओंसे आशा माँग-माँगकर वे बहुत प्रकार (सब प्रकारके) राज-काज करते हैं ॥ ३२५ ॥

चौ०—पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू । जीह नामु जप लोचन नीरू ॥
लखन राम सिय कानन बसहीं । भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं ॥ १ ॥

शरीर पुलकित है; हृदयमें श्रीसीता-रामजी हैं। जीभ राम-नाम जप रही है; नेत्रोंमें प्रेमका जल भरा है।
लक्ष्मणजी, श्रीरामजी और सीताजी तो वनमें बसते हैं, परन्तु भरतजी घरमें रहकर तपसे शरीरको कस रहे हैं ॥ १ ॥

दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू । सब बिधि भरत सराहन जोगू ॥
सुनि व्रत नेम साधु सकुचाहीं । देखि दसा मुनिराज लज्जाहीं ॥ २ ॥

दोनों ओरकी स्थिति समझकर सब लोग कहते हैं कि भरतजी सब प्रकारसे सराहने योग्य हैं। उनके व्रत और
नियमोंको सुनकर साधु-संत भी सकुचा जाते हैं, और उनकी स्थिति देखकर मुनिराज भी लज्जित होते हैं ॥ २ ॥

परम पुनीत भरत आचरनू । मधुर मंजु मुद मंगल करनू ॥
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू । महामोह निसि दलन दिनेसू ॥ ३ ॥

भरतजीका परम पवित्र आचरण (चरित्र) मधुर, सुन्दर और आनन्द-मङ्गलोंका करनेवाला है। कलियुगके
कठिन पापों और क्लेशोंको हरनेवाला है। महामोहरूपी रात्रिको नष्ट करनेके लिये सूर्य [के समान] है ॥ ३ ॥

पापपुंज कुंजर मृगराजू । समन सकल संताप समाजू ॥
जन रंजन भंजन भवभारू । राम सनेह सुधाकर सारू ॥ ४ ॥

पापसमूहरूपी हाथीके लिये सिंह है। सारे सन्तापोंके दलका नाश करनेवाला है। भक्तोंको आनन्द देनेवाला
और भवके भार (संसारके दुःख) का भञ्जन करनेवाला, तथा श्रीरामप्रेमरूपी चन्द्रमाका सार (अमृत) है ॥ ४ ॥

छं०—सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को ।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम व्रत आचरत को ॥
दुख दाह दारिद्र्य दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को ।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ॥

श्रीसीतारामजीके प्रेमाभूतसे परिपूर्ण भरतजीका जन्म यदि न होता, तो मुनियोंके मनको भी अगम यम, नियम,
शम, दम आदि कठिन व्रतोंका आचरण कौन करता ! दुःख, सन्ताप, दारिद्र्य, दम्भ आदि दोषोंको अपने सुयशके
बहाने कौन हरण करता ! तथा कलिकालमें तुलसीदास-जैसे शठोंको हठपूर्वक कौन श्रीरामजीके सम्मुख करता !

सो०—भरत चरित करि नेष्ट तुलसी जो सादर सुनिहिं ।

सीय राम पद पेष्ट अवसि होइ भव रस बिरति ॥ ३२६ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं—जो कोई भरतजीके चरित्रको नियमसे आदरपूर्वक सुनेंगे, उनको अवश्य ही
श्रीसीतारामजीके चरणोंमें प्रेम होगा और सांसारिक विषय-रससे वैराग्य होगा ॥ ३२६ ॥

मासपारायण इच्छोसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने द्वितीयः सोपानः समाप्तः ।

कलियुगके सम्पूर्ण पापोंको विध्वंस करनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह दूसरा सोपान समाप्त हुआ ॥

(अयोध्याकाण्ड समाप्त)

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस



तृतीय सोपान

(अरण्यकाण्ड)

श्लोक

मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्दं
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यधधनध्वान्तापहं तापहम् ।
मोहाम्मोघरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शंकरं
चन्द्रे ब्रह्मकुलं कलङ्कशमनं श्रीरामभूप्रियम् ॥ १ ॥

धर्मरूपी वृक्षके मूल, विवेकरूपी समुद्रको आनन्द देनेवाले पूर्णचन्द्र, वैराग्यरूपी कमलके [विकसित करनेवाले] सूर्य, पापरूपी घोर अन्धकारको निश्चय ही मिटानेवाले, तीनों तापोंको हरनेवाले, मोहरूपी बादलोंके समूहको छिन्न-भिन्न करनेकी विधि (क्रिया) में आकाशसे उत्पन्न पवनस्वरूप, ब्रह्माजीके वंश (आत्मज) तथा कलङ्कनाशक, महाराज श्रीरामचन्द्रजीके प्रिय श्रीशंकरजीकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्त्पूर्णरमारं वरम् ।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ॥ २ ॥

जिनका शरीर जलयुक्त मेघोंके समान सुन्दर (श्यामवर्ण) एवं आनन्दधन है, जो सुन्दर [वल्कलका] पीतवस्त्र धारण किये हैं, जिनके हाथोंमें बाण और धनुष हैं, कमर उत्तम तरकसके भारसे सुशोभित है, कमलके समान विशाल नेत्र हैं और ममकपर जटाजूट धारण किये हैं, उन अत्यन्त शोभायमान श्रीसीताजी, लक्ष्मणजीसहित मार्गमें चलते हुए आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको मैं भजता हूँ ॥ २ ॥

सो०—उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति ।

पावहिं मोह विमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति ॥

हे पार्वती ! श्रीरामजीके गुण गूढ़ हैं; पण्डित और मुनि उन्हें समझकर वैराग्य प्राप्त करते हैं । परन्तु जो भगवान्से विमुख हैं और जिनका धर्ममें प्रेम नहीं है, वे महामूढ़ मोहको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

जटायुकी स्तुति



गीध देह तजि धरि हरिरूपा । भूषन बहु पट पीत अनूपा ॥
स्याम गात बिसाल भुज चारी । अस्तुति करत नयन भरि बारी ॥

[पृष्ठ ५८१]

कल्याण

(१) जयन्तकी नीचता



सिता चरन चोच हति भागा ।
मूढ मंदमति कारन कागा ॥
[पृष्ठ ५४७]

(२) जयन्तपर कोष



प्रेषित मंत्र ब्रह्मसर धावा ।
चय भाजि वायस भय पावा ॥
[पृष्ठ ५४७]

(३) भयभीत जयन्त



ब्रह्मधाम मित्रपुर नव लोक ।
किंग श्रमिन् व्याकुल नव सोका ॥
[पृष्ठ ५४७]

(४) जयन्तपर कृपा



मृगि मृगः मृगि मृगः मृगि ।
मृगमृगः मृगि मृगः मृगि ॥
[पृष्ठ ५४८]

चौ०—पुर नर भरत प्रीति में गाई । मति अनुरूप अनूप सुहाई ॥

अब प्रभुचरित सुनहु अति पावन । करत जे बन सुर नर मुनि भावन ॥ १ ॥

पुरवासियोंके और भरतजीके अनुपम और सुन्दर प्रेमका मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार गान किया । अब बेवता, मनुष्य और मुनियोंके मनको भानेवाले प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके वे अत्यन्त पवित्र चरित्र सुनो, जिन्हें वे वनमें कर रहे हैं ॥ १ ॥

एक बार चुनि कुसुम सुहाए । निज कर भूषन राम बनाए ॥

सीतहि पहिराए प्रभु सादर । बैठे फटिकसिला पर सुंदर ॥ २ ॥

एक बार सुन्दर फूल चुनकर श्रीरामजीने अपने हाथोंसे भाँति-भाँतिके गहने बनाये और सुन्दर स्फटिकशिलापर बैठे हुए प्रभुने आदरके साथ वे गहने श्रीसीताजीको पहनाये ॥ २ ॥

सुरपति सुत धरि बायस बेया । सठ चाहत रघुपति बल देखा ॥

जिमि पिपीलिका सागर थाहा । महा मंदमति पावन चाहा ॥ ३ ॥

देवराज इन्द्रका मूर्ख पुत्र जयन्त कौएका रूप धरकर श्रीरघुनाथजीका बल देखना चाहता है । जैसे महान् मन्दबुद्धि चींटी समुद्रका थाह पाना चाहती हो ॥ ३ ॥

सीता चरन चौंच हति भागा । मूढ़ मंदमति कारन कागा ॥

चला रघिर रघुनाथक जाना । सीक धनुष सायक संघाना ॥ ४ ॥

वह मूढ़, मन्दबुद्धि कारणसे (भगवान्‌के बलकी परीक्षा करनेके लिये) बना हुआ कौआ सीताजीके चरणोंमें चौंच मारकर भागा । जब रक्त वह चला, तब श्रीरघुनाथजीने जाना और धनुषपर सीकका बाण सन्धान किया ॥ ४ ॥

दो०—अति कृपाल रघुनाथक सदा दीन पर नेह ।

ता सन आइ कीन्ह छलु मूरख अवगुनगेह ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजी, जो अत्यन्त ही कृपाल हैं और जिनका दीनोंपर सदा प्रेम रहता है, उनसे भी उस अवगुणोंके धर मूर्ख जयन्तने आकर छल किया ॥ १ ॥

चौ०—प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा । चला भाजि बायस भय पावा ॥

धरि निजरूप गयउ पितु पाहीं । रामबिमुख राखा तेहि नाहीं ॥ १ ॥

मन्त्रसे प्रेरित होकर वह ब्रह्मबाण दोड़ा । कौआ भयभीत होकर भाग चला । वह अपना असली रूप धरकर पिता इन्द्रके पास गया । पर श्रीरामजीका विरोधी जानकर इन्द्रने उसको नहीं रखा ॥ १ ॥

भा निरास उपजी मन आसा । जथा चक्रभय रिषि दुर्वासा ॥

ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका । फिरा भ्रमित व्याकुल भय सोका ॥ २ ॥

तब वह निराश हो गया, उसके मनमें भय उत्पन्न हो गया । जैसे दुर्वासा ऋषिको चक्रसे भय हुआ था । वह ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि समस्त लोकोंमें थका हुआ और भय-शोकसे व्याकुल होकर भागता फिरा ॥ २ ॥

काहूँ बैठन कहा न ओही । राखि को सकइ राम कर द्रोही ॥

मातु मृत्यु पितु समन समाना । सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना ॥ ३ ॥

[पर रखना तो दूर रहा] किसीने उसे बैठने तक के लिये नहीं कहा । भीरामजीके द्रोहीको कौन रख सकता है ? [काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़ ! सुनिये, उसके लिये माता मृत्युके समान, पिता यमराजके समान और अमृत विषके समान हो जाता है ॥ ३ ॥

मित्र करइ सत रिपु कै करनी । ता कहँ बिबुधनदी बैतरनी ॥

सब जगु ताहि अनलहु ते ताता । जो रघुवीर विमुख सुनु भ्राता ॥ ४ ॥

मित्र सैकड़ों शत्रुओंकी-सी करनी करने लगता है । देवनदी गङ्गाजी उसके लिये बैतरणी (यमपुरीकी नदी) हो जाती है । हे भाई ! सुनिये, जो भीरघुनाथजीके विमुख होता है, समस्त जगत् उसके लिये अग्निसे भी अधिक गरम (जलानेवाला) हो जाता है ॥ ४ ॥

नारद देखा बिकल जयंता । लागि दया कोमलचित संता ॥

पठवा तुरत राम पहिं ताही । कहेसि पुकारि प्रनतहित पाही ॥ ५ ॥

नारदजीने जयन्तको व्याकुल देखा तो उन्हें दया आ गयी, क्योंकि संतोंका चित्त बड़ा कोमल होता है । उन्होंने उसे [समझाकर] तुरंत श्रीरामजीके पास भेज दिया । उसने [जाकर] पुकारकर कहा—हे शरणागतके हितकारी ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ ५ ॥

आतुर समय गहेसि पद जाई । त्राहि त्राहि दयाल रघुराई ॥

अतुलित बल अतुलित प्रभुताई । मैं मतिमंद जानि नहिं पाई ॥ ६ ॥

आतुर और भयभीत जयन्तने जाकर भीरामजीके चरण पकड़ लिये [और कहा—] हे दयालु रघुनाथजी ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । आपके अतुलित बल और आपकी अतुलित प्रभुता [सामर्थ्य] को मैं मन्दबुद्धि जान नहीं पाया था ॥ ६ ॥

निजकृत कर्म जनित फल पायउँ । अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ ॥

सुनि कृपाल अति आरत बानी । एक नयन करि तजा भवानी ॥ ७ ॥

अपने किये हुए कर्मसे उत्पन्न हुआ फल मैंने पा लिया । अब हे प्रभु ! मेरी रक्षा कीजिये ! मैं आपकी शरण तककर आया हूँ । [शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती ! कृपालु श्रीरघुनाथजीने उसकी अत्यन्त आर्त (दुःखभरी) वाणी सुनकर उसे एक आँखका काना करके छोड़ दिया ॥ ७ ॥

सो०—कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित ।

प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुवीर सम ॥ २ ॥

उसने मोहवश द्रोह किया था, इसलिये यद्यपि उसका वध ही उचित था, पर प्रभुने कृपा करके उसे छोड़ दिया । रघुवीर श्रीरामजीके समान कृपालु और कौन होगा ? ॥ २ ॥

चौ०—रघुपति चित्रकूट बसि नाना । चरित किए श्रुति सुधा समाना ॥

बहुरि राम अस मन अनुमाना । होइहि भीर सबहिं मोहि जाना ॥ १ ॥

चित्रकूटमें बसकर श्रीरघुनाथजीने बहुत-से चरित्र किये, जो कानोंको अमृतके समान प्रिय हैं । फिर (कुछ समय पश्चात्) श्रीरामजीने मनमें ऐसा अनुमान किया कि मुझे सब लोग जान गये हैं, इससे बड़ी भीड़ हो जायगी ॥ १ ॥

सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई । सीता सहित चले द्वौ भाई ॥

अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ । सुनत महामुनि हरषित भयऊ ॥ २ ॥

कल्याण

(१) चित्रकूटसे विदा



सकल मुनिन्ह सन विदा कराई ।
सीता सहित चले द्रौ भाई ॥
[पृष्ठ ५४८]

(२) अत्रिके आश्रममें



पुलकित गात अत्रि उठि धाए ।
देखि रामु आतुर चलि आए ॥
[पृष्ठ ५४९]

(३) अत्रिके अतिथि



करि पूजा कहि वचन सुहाए ।
दिए मृद फट प्रभु मन भाए ॥
[पृष्ठ ५४९]

(४) अनसूयाका प्रेम



दिज्य वसन भूपन पहिगाए ।
जे नित नूतन अमल सुहाए ॥
[पृष्ठ ५५१]

[इसलिये] सब मुनियोंसे विदा लेकर सीताजीसहित दोनों भाई चले । जब प्रभु अत्रिजीके आश्रममें गये, तो उनका आगमन सुनते ही महामुनि हर्षित हो गये ॥ २ ॥

पुलकित गात अत्रि उठि धाए । देखि रामु आतुर चलि आए ॥

करत दंडवत मुनि उर लाए । प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए ॥ ३ ॥

शरीर पुलकित हो गया, अत्रिजी उठकर दौड़े । उन्हें दौड़े आते देखकर भीरामजी और भी शीघ्रतासे चले आये । दण्डवत् करते हुए ही श्रीरामजीको [उठाकर] मुनिने हृदयसे लगा लिया, और प्रेमाश्रुओंके जलसे दोनों जनकों (दोनों भाइयोंको) नहला दिया ॥ ३ ॥

देखि रामलुखि नयन जुझाने । सादर निज आश्रम तब आने ॥

करि पूजा कहि वचन सुहाए । दिए मूल फल प्रभु मन भाए ॥ ४ ॥

भीरामजीकी छवि देखकर मुनिके नेत्र शीतल हो गये; तब वे उनको आदरपूर्वक अपने आश्रममें ले आये । पूजन करके, सुन्दर वचन कहकर मुनिने मूल और फल दिये, जो प्रभुके मनको बहुत रुचे ॥ ४ ॥

सो०—प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि ।

मुनिवर परम प्रवीन जोरि पानि अस्तुति करत ॥ ३ ॥

प्रभु आसनपर विराजमान हैं । नेत्र भरकर उनकी शोभा देखकर परम प्रवीण मुनिश्रेष्ठ हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे—॥ ३ ॥

छं०—नमामि भक्त वत्सलं । कृपालु शील कोमलं ॥

भजामि ते पदाम्बुजं । अकामिनां स्वधामदं ॥ १ ॥

हे भक्तवत्सल ! हे कृपालु ! हे कोमल स्वभाववाले ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । निष्काम पुरुषोंको अपना परमवाम देनेवाले आपके चरणकमलोंको मैं भजता हूँ ॥ १ ॥

निकाम श्याम सुन्दरं । भवाम्बुनाथ मन्दरं ॥

प्रफुल्ल कंज लोचनं । मदादि दोष मोचनं ॥ २ ॥

आप नितान्त सुन्दर, श्याम, संसाररूपी समुद्रको मथनेके लिये मंदराचलरूप, फूले हुए कमलके समान नेत्रोंवाले और मद आदि दोषोंको नष्ट करनेवाले हैं ॥ २ ॥

प्रलंब बाहु विक्रमं । प्रभोऽप्रमेय वैभवं ॥

निषंग चाप सायकं । धरं त्रिलोक नायकं ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! आपकी लंबी भुजाओंका पराक्रम और आपका ऐश्वर्य अप्रमेय (बुद्धिके परे अथवा असीम) है । आप तरकस और धनुष-बाण धारण करनेवाले, तीनों लोकोंके स्वामी, ॥ ३ ॥

दिनेश वंश मंडनं । महेश चाप खंडनं ॥

मुनीन्द्र संत रंजनं । सुरारि घृद भंजनं ॥ ४ ॥

सूर्यवंशके भूषण, महादेवजीके धनुषको तोड़नेवाले, मुनिराजों और संतोंको आनन्द देनेवाले तथा देवताओंके शत्रु असुरोंके समूहका नाश करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

मनोज वैरि वंदितं । अजावि वेद्य सेवितं ॥

विशुद्ध बोध विप्रहं । समस्त दूषणापहं ॥ ५ ॥

आप कामदेवके शत्रु महादेवजीके द्वारा वन्दित, ब्रह्मा आदि देवताओंसे सेवित, विशुद्ध ज्ञानमय विग्रह और समस्त दोषोंको नष्ट करनेवाले हैं ॥ ५ ॥

नमामि इन्दिरा पतिं । सुखाकरं सतां गतिं ॥

भजे सशक्ति सानुजं । शची पति प्रियानुजं ॥ ६ ॥

हे लक्ष्मीपते ! हे सुखोंकी खान और सत्पुरुषोंकी एकमात्र गति ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे शचीपति (इन्द्र) के प्रिय छोटे भाई (वामनजी) ! स्वरूपा-शक्ति श्रीसीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित आपको मैं भजता हूँ ॥ ६ ॥

त्वदंघ्रि मूल ये नराः । भजंति होन मत्सराः ॥

पतंति नो भवार्णवे । वितर्क वीचि संकुले ॥ ७ ॥

जो मनुष्य मत्सररहित होकर आपके चरणकमलोका सेवन करते हैं, वे तर्क-वितर्करूपी तरंगोंसे पूर्ण भवसागरमें नहीं गिरते (आवागमनके चक्रमें नहीं पड़ते) ॥ ७ ॥

विविक्त वासिनः सदा । भजंति मुक्तये मुदा ॥

निरस्य इन्द्रियादिकं । प्रयांति ते गतिं स्वकं ॥ ८ ॥

जो एकान्तवासि पुरुष मुक्तिकी आशासे, इन्द्रियादिका निग्रह करके प्रसन्नतापूर्वक आपको भजते हैं, वे स्वकीय गतिको (अपने स्वरूपको) प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

तमेकमद्भुतं प्रभुं । निरीहमीश्वरं विभुं ॥

जगद्गुरुं च शाश्वतं । तुरीयमेव केवलं ॥ ९ ॥

उन (आप) को जो एक (अद्वितीय), अद्भुत, प्रभु (सर्वसमर्थ), इच्छारहित, ईश्वर (सबके स्वामी), व्यापक, जगद्गुरु, सनातन (नित्य), तुरीय (तीनों गुणोंसे सर्वथा परे) और केवल (अपने स्वरूपमें स्थित) हैं ॥ ९ ॥

भजामि भाव बल्लभं । कुयोगिनां सुदुर्लभं ॥

स्वभक्त कल्प पादपं । समं सुसेव्यमन्वहं ॥ १० ॥

जो भावप्रिय, कुयोगियोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ, अपने भक्तोंके लिये कल्पवृक्ष (अर्थात् उनकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले), सम (वैषम्यरहित) और सदा सुखपूर्वक सेवन करने योग्य हैं, मैं निरन्तर भजता हूँ ॥ १० ॥

अनूप रूप भूपतिं । नतोऽहमुर्विजापतिं ॥

प्रसीद मे नमामि ते । पदाब्ज भक्ति देहि मे ॥ ११ ॥

हे अतुलनीय सुन्दर ! हे पृथ्वीपति ! हे जानकीनाथ ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ । मुझपर प्रसन्न होइये, मैं आपको नमस्कार करता हूँ । मुझे अपने चरणकमलोंकी भक्ति दीजिये ॥ ११ ॥

पठंति ये स्तवं इदं । नरादरेण ते पदं ॥

व्रजंति नात्र संशयं । त्वदीय भक्ति संयुताः ॥ १२ ॥

जो मनुष्य इस स्तुतिको आदरपूर्वक पढ़ते हैं, वे आपकी भक्तिसे युक्त होकर आपके परमपदको प्राप्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ १२ ॥

दो०—बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि ।

चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुं तजै मति मोरि ॥ ४ ॥

मुनिने [इस प्रकार] बिनती करके और फिर सिर नवाकर, हाथ जोड़कर कहा—हे नाथ ! मेरी बुद्धि आपके चरणकमलोंकी कभी न छोड़े ॥ ४ ॥

चौ०—अनुसुइया के पद गहि सीता । मिली बहोरि सुसील बिनतीता ॥

रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई । आसिष देइ निकट बैठाई ॥ १ ॥

फिर परम शीलवती और विनम्र श्रीसीताजी अत्रिजीकी पत्नी अनसूयाजीके चरण पकड़कर
उनसे मिलीं। ऋषिपत्नीके मनमें बड़ा सुख हुआ। उन्होंने आशिष देकर सीताजीको पास बैठा लिया—॥ १ ॥

दिव्य वसन भूषण पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए ॥

कह रिषिवधू सरस मृदु बानी। नारिधर्म कछु व्याज बखानी ॥ २ ॥

और उन्हें ऐसे दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनाये, जो नित्य-नये, निर्मल और सुहावने बने रहते हैं।
फिर ऋषिपत्नी उनके बहाने मधुर और कोमल वाणीसे कुछ स्त्रीधर्म बखानकर कहने लगी—॥ २ ॥

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ॥

अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥ ३ ॥

हे राजकुमारी! सुनिये—माता, पिता, भाई सभी हित करनेवाले हैं, परन्तु ये सब एक सीमातक ही [फल] देनेवाले हैं। परन्तु हे जानकी! पति तो असीम [फल] देनेवाला है। वह स्त्री अधम है जो ऐसे पतिकी सेवा नहीं करती ॥ ३ ॥

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद् काल परिखिअहिं चारी ॥

वृद्ध रोगयस जड़ धनहीना। अंच बधिर क्रोधी अति दीना ॥ ४ ॥

धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री, इन चारोंकी विपत्तिके समय ही परीक्षा होती है। वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अंधा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त ही दीन—॥ ४ ॥

ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥

एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा ॥ ५ ॥

ऐसे भी पतिका अपमान करनेसे स्त्री यमपुरमें भौंति-भौतिके दुःख पाती है। शरीर, वचन और मनसे पतिके चरणोंमें प्रेम करना, स्त्रीके लिये, बस यह एक ही धर्म है, एक ही व्रत है और एक ही नियम है ॥ ५ ॥

जग पतिव्रता चारि विधि अहर्ही। वेद पुरान संत सब कहर्ही ॥

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं ॥ ६ ॥

जगत्में चार प्रकारकी पतिव्रताएँ हैं। वेद, पुराण और संत सब ऐसा कहते हैं कि उत्तम श्रेणीकी पतिव्रताके मनमें ऐसा भाव बसा रहता है कि जगत्में [मेरे पतिको छोड़कर] दूसरा पुरुष स्वप्नमें भी नहीं है ॥ ६ ॥

मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें ॥

धर्म विचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई ॥ ७ ॥

मध्यम श्रेणीकी पतिव्रता पराये पतिको कैसे देखती है, जैसे वह अपना सगा भाई, पिता या पुत्र हो। (अर्थात् समान अवस्थावालेको वह भाईके रूपमें देखती है, बड़ेको पिताके रूपमें और छोटेको पुत्रके रूपमें देखती है।) जो धर्मकी विचारकर और अपने कुलकी मर्यादा समझकर बची रहती है वह निकृष्ट (निम्न श्रेणीकी) स्त्री है, ऐसा वेद कहते हैं ॥ ७ ॥

बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई ॥

पतिबंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई ॥ ८ ॥

और जो स्त्री मौका न मिलनेसे या भयवश पतिव्रता बनी रहती है, जगत्में उसे अधम स्त्री

जानना । पतिको धोखा देनेवाली जो स्त्री पराये पतिसे रति करती है, वह तो सौ कल्पोंतक रौरव नरकमें पड़ी रहती है ॥ ८ ॥

छन सुख लागि जन्म सत कोटी । दुख न समुझ तेहि सम को खोटी ॥

बिनु भ्रम नारि परमगति लहई । पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई ॥ ९ ॥

क्षणभरके सुखके लिये जो सौ करोड़ (असंख्य) जन्मोंके दुःखको नहीं समझती, उसके समान दुष्टा कौन होगी ! जो स्त्री छल छोड़कर पातिव्रत धर्मको ग्रहण करती है, वह बिना ही परिभ्रम परम गतिको प्राप्त करती है ॥ ९ ॥

पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई । विधवा होइ पाइ तरुनाई ॥ १० ॥

किन्तु जो पतिके प्रतिकूल चलती है वह जहाँ भी जाकर जन्म लेती है, वहीं जवानी पाकर (भरी जवानीमें) विधवा हो जाती है ॥ १० ॥

सो—सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ ।

जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥ ५ (क) ॥

स्त्री जन्मसे ही अपवित्र है; किन्तु पतिकी सेवा करके वह अनायास ही शुभ गति प्राप्त कर लेती है । [पातिव्रतधर्मके कारण ही] आज भी 'तुलसीजी' भगवान्‌को प्रिय हैं और चारों वेद उनका यश गाते हैं ॥ ५ (क) ॥

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं ।

तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित ॥ ५ (ख) ॥

हे सीता ! सुनो, तुम्हारा तो नाम ही ले-लेकर स्त्रियाँ पातिव्रत-धर्मका पालन करेंगी । तुम्हें तो श्रीरामजी प्राणोंके समान प्रिय हैं; यह (पातिव्रत-धर्मकी) कथा तो मैंने संसारके हितके लिये कही है ॥ ५ (ख) ॥

चो—सुनि जानकी परम सुखु पावा । सादर तासु चरन सिरु नावा ॥

तब मुनि सन कह कृपानिधाना । आयसु होइ जाउँ बन आना ॥ १ ॥

जानकीजीने सुनकर परम सुख पाया और आदरपूर्वक उनके चरणोंमें सिर नवाया । तब कृपाकी खान श्रीरामजीने मुनिसे कहा—आज्ञा हो तो अब दूसरे वनमें जाऊँ ॥ १ ॥

संतत मोपर कृपा करेइ । सेवक जानि तजेहु जनि नेह ॥

धर्म धुरंधर प्रभु कै वानी । सुनि सप्रेम बोले मुनि ग्यानी ॥ २ ॥

मुझपर निरन्तर कृपा करते रहियेगा और अपना सेवक जानकर स्नेह न छोड़ियेगा । धर्मधुरन्धर प्रभु श्रीरामजीके वचन सुनकर शानी मुनि प्रेमपूर्वक बोले— ॥ २ ॥

जासु कृपा भज सिव सनकादी । चाहत सकल परमार्थवादी ॥

ते तुम्ह राम अकाम पिबारे । दीनबंधु मृदु वचन उचारे ॥ ३ ॥

ब्रह्मा, शिव और सनकादि सभी परमार्थवादी जिनकी कृपा चाहते हैं, हे रामजी ! आप वही निष्काम पुरुषोंके भी प्रिय और दीनोंके बन्धु भगवान् हैं जो इस प्रकार कोमल वचन बोल रहे हैं ॥ ३ ॥

अब जानी मैं श्री चतुराई । भजी तुम्हहि सब देव बिहारी ॥

जेहि समान अतिसय नहिं कोई । ता कर सील कस न अस होई ॥ ४ ॥

अब मैंने लक्ष्मीजीकी चतुराई समझी, जिन्होंने सब देवताओंको छोड़कर आपहीको भजा । जिसके समान [सब बातोंमें] अत्यन्त बड़ा और कोई नहीं है, उसका शील भला ऐसा क्यों न होगा ! ॥ ४ ॥

कहि विधि कहाँ जाहु अब स्वामी । कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी ॥

अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा । लोचन जल बह पुलक सरीरा ॥ ५ ॥

मैं किस प्रकार कहूँ कि हे स्वामी ! आप अब जाइये । हे नाथ ! आप अन्तर्यामी हैं, आप ही कहिये । ऐसा कहकर धीरे मुनि प्रभुको देखने लगे । मुनिके नेत्रोंसे [प्रेमाश्रुओंका] जल बह रहा है और शरीर पुलकित है ॥ ५ ॥

छं०—तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए ।

मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए ॥

जप जोग धर्म समूह तैं नर भगति अनुपम पावई ।

रघुवीर चरित पुनीत निसिदिन दास तुलसी गावई ॥

मुनि अत्यन्त प्रेमसे पूर्ण हैं; उनका शरीर पुलकित है और नेत्रोंको श्रीरामजीके मुख-कमलोंमें लगाये हुए हैं । [मनमें विचार रहे हैं कि] मैंने ऐसे कौन-से जप-तप किये थे जिसके कारण मन, ज्ञान, गुण और इन्द्रियोंसे परे प्रभुके दर्शन पाये । जप, योग और धर्मसमूहसे मनुष्य अनुपम भक्तिको पाता है । श्रीरघुवीरके पवित्र चरित्रको तुलसीदास रात-दिन गाता है ।

दो०—कलि मल समन दमन मन राम सुजस सुखमूल ।

सादर सुनहिं जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल ॥ ६ (क) ॥

श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर यश कलियुगके पापोंका नाश करनेवाला, मनको दमन करनेवाला, और सुखका मूल है । जो लोग इसे आदरपूर्वक सुनते हैं उनपर श्रीरामजी प्रसन्न रहते हैं ॥ ६ (क) ॥

सो०—कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप ।

परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर ॥ ६ (ख) ॥

यदि कठिन कलिकाल पापोंका खजाना है; इसमें न धर्म है, न ज्ञान है और न योग तथा जप ही है । इसमें तो जो लोग सब भरोसोंको छोड़कर श्रीरामजीको ही भजते हैं, वे ही चतुर हैं ॥ ६ (ख) ॥

चौ०—मुनि पद कमल नाइ करि सीसा । चले वनहि सुर नर मुनि ईसा ॥

आगें राम अनुज पुनि पाछें । मुनि वर बेध बने अति काछें ॥ १ ॥

मुनिके चरणकमलोंमें सिर नवाकर देवता, मनुष्य और मुनियोंके स्वामी श्रीरामजी वनको चले । आगे श्रीरामजी हैं, और उनके पीछे छोटे भाई लक्ष्मणजी हैं । दोनों ही मुनियोंका सुन्दर वेप बनाये अत्यन्त सुशोभित हैं ॥ १ ॥

उभय बीच श्री सोहइ कैसी । ब्रह्म जीव विच माया जैसी ॥

सरिता वन गिरि अवघट घाटा । पति पहिचानि देहिं वर बाटा ॥ २ ॥

दोनोंके बीचमें श्रीजानकीजी कैसी सुशोभित हैं, जैसे ब्रह्म और जीवके बीच माया हो । नदी, वन पर्वत और दुर्गम घाटियाँ, सभी अपने स्वामीको पहचानकर सुन्दर रास्ता दे देते हैं ॥ २ ॥

जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया । करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया ॥

मिला असुर विराध मग जाता । आवतहीं रघुवीर निपाता ॥ ३ ॥

जहाँ-जहाँ देव श्रीरघुनाथजी जाते हैं, वहाँ-वहाँ बादल आकाशमें छाया करते जाते हैं । रास्तेमें जाते हुए विराध राक्षस मिला । सामने आते ही श्रीरघुनाथजीने उसे मार डाला ॥ ३ ॥

तुरतहिं रुखिर रूप तेहिं पावा । देखि दुखी निज धाम पठावा ॥
पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा । सुंदर अनुज जानकी संगी ॥ ४ ॥

[श्रीरामजीके हाथसे मरते ही] उसने तुरंत सुन्दर (दिव्य) रूप प्राप्त कर लिया । दुखी देखकर प्रभुने उसे अपने परम धामको भेज दिया । फिर वे सुन्दर छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजीके साथ वहाँ आये जहाँ मुनि शरभंगजी थे ॥ ४ ॥

दो०—देखि राम मुख पंकज मुनिवर लोचन भुंग ।
सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभंग ॥ ७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका मुख-कमल देखकर मुनिश्रेष्ठके नेत्ररूपी झरारे अत्यन्त आदरपूर्वक उसका मकरन्द-रस पान कर रहे हैं । शरभङ्गजीका जन्म धन्य है ॥ ७ ॥

चौ०—कह मुनि सुनु रघुवीर कृपाला । संकर मानस राजमराला ॥
जात रहेउँ विरंचि के घामा । सुनेउँ भवन बन ऐहहिं रामा ॥ १ ॥
मुनिने कहा—हे कृपालु रघुवीर ! हे शंकरजीके मनरूपी मानसरोवरके राजहंस ! मैं ब्रह्मलोकको जा रहा था । इतनेमें सुना कि श्रीरामजी वनमें आवेंगे ॥ १ ॥

चितवत पंथ रहेउँ दिन राती । अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती ॥
नाथ सकल साधन मैं हीना । कीन्ही कृपा जानि जन दीना ॥ २ ॥
तबसे मैं दिन-रात आपकी राह देखता रहा हूँ । अब आज प्रभुको देखकर मेरी छाती शीतल हो गयी । हे नाथ ! मैं सब साधनोसे हीन हूँ । आपने अपना दीन सेवक जानकर मुझपर कृपा की है ॥ २ ॥

सो कछु देव न मोहि निहोरा । निज पन राखेउ जन मन चोरा ॥
तब लागि रहहु दीन हित लागी । जब लागि मिलौ तुम्हहि तनु त्यागी ॥ ३ ॥
हे देव ! यह कुछ मुझपर आपका एहसान नहीं है । हे भक्त-मन-चोर ! ऐसा करके आपने अपने प्रणकी ही रक्षा की है । अब इस दीनके कल्याणके लिये तबतक यहाँ टहरिये जबतक मैं शरीर छोड़कर आपसे [आपके धाममें न] मिलूँ ॥ ३ ॥

जोग जग्य जप तप वन कीन्हा । प्रभु कहँ देर भगति घर लीन्हा ॥
एहि विधि सर रचि मुनि सरभंगा । बैठ हृदयँ छाड़ि सय संगी ॥ ४ ॥

जितने भी योग, यज्ञ, जप, तप और व्रत मुनिने किये थे, सब प्रभुको समर्पण करके बदलेमें भक्तिका वरदान ले लिया । इस प्रकार [दुर्लभ भक्ति प्राप्त करके फिर] चिता रचकर मुनि शरभङ्गजी हृदयसे सब आसक्ति छोड़कर उसपर जा बैठे ॥ ४ ॥

दो०—सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम ।
मम हियँ बसहु निरंतर सगुनरूप श्रीराम ॥ ८ ॥

नीले मेघके समान श्याम शरीरवाले सगुणरूप श्रीरामजी ! सीताजी और लक्ष्मणजीसहित प्रभु (आप) निरन्तर मेरे हृदयमें निवास कीजिये ॥ ८ ॥

चौ०—बस कहि जोग अगिनि तनु जारा । राम कृपाँ बैकुण्ठ सिधारा ॥
ताते मुनि हरिलीन न भयऊ । प्रथमहिं भेद भगति घर खबऊ ॥ १ ॥

ऐसा कहकर शरभङ्गजीने योगमिसे अपने शरीरको जला डाला और श्रीरामजीकी कृपासे वैकुण्ठको चले गये । मुनि भगवानमें लीन हसलिये नहीं हुए कि उन्होंने पहले ही भेद-भक्तिका वर ले लिया था ॥ १ ॥

रिषि निकाय मुनिवर गति देखी । सुखी भए निज हृदय बिसेषी ॥

अस्तुति करहिं सकल मुनिबुंदा । जयति प्रनत हित करुना कंदा ॥ २ ॥

ऋषिमूह मुनिश्रेष्ठ शरभङ्गजीकी यह [दुर्लभ] गति देखकर अने हृदयमें विशेषरूपसे सुन्नी हुए । समस्त मुनिवृन्द श्रीरामजीकी स्तुति कर रहे हैं [और कह रहे हैं] शरणागतहितकारी करुणाकन्द प्रभुकी जय हो ! ॥ २ ॥

पुनि रघुनाथ खले वन आगे । मुनिवर बुंद विपुल संग लागे ॥

अस्थिसमूह देखि रघुराया । पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया ॥ ३ ॥

फिर श्रीरघुनाथजी आगे वनमें चले । श्रेष्ठ मुनियोंके बहुत-से समूह उनके साथ हो लिये । हड्डियोंका ढेर देखकर श्रीरघुनाथजीकी बड़ी दया आयी, उन्होंने मुनियोंसे पूछा ॥ ३ ॥

जानतहुँ पूछिअ कस स्वामी । सवदरसी तुम्ह अंतरजामी ॥

निसिचर निकर सकल मुनि खाए । सुनि रघुवीर नयन जल छाए ॥ ४ ॥

[मुनियोंने कहा—] हे स्वामी ! आप सर्वदर्शी (सर्वज्ञ) और अन्तर्यामी (सबके हृदयकी जाननेवाले) हैं । जानते हुए भी [अनजानकी तरह] हमसे कैसे पूछ रहे हैं ? राक्षसोंके दिलोंने सब मुनियोंको खा डाला है [ये सब उन्हींकी हड्डियोंके ढेर हैं] । यह मुनने ही श्रीरघुवीरजीके नेत्रोंमें जल छा गया (उनकी आँवोंमें करुणाके आँसू भर आये) ॥ ४ ॥

दो० — निसिचरहीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह ।

सकल मुनिन्ह के आश्रमनिह जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥ ५ ॥

श्रीरामजीने भुजा उठाकर प्रण किया कि मैं पृथ्वीको राक्षसोंमें रहित कर दूँगा । फिर समस्त मुनियोंके आश्रमोंमें जा-जाकर उनको [दर्शन एवं सम्भाषणका] सुख दिया ॥ ५ ॥

चो० — मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना । नाम सुतीछन रति भगवाना ॥

मन क्रम बचन राम पद सेवक । सपनेहुँ आन भरोस न देवक ॥ १ ॥

मुनि अगस्त्यजीके एक सुतीक्ष्ण नामक सुजान (ज्ञानी) सिष्य थे । उनकी भगवानमें प्रीति थी । वे मन, वचन और कर्मसे श्रीरामजीके चरणोंके सेवक थे । उन्हें स्वप्नमें भी किसी दूसरे देवताका भरोसा नहीं था ॥ १ ॥

प्रभु आगवनु भवन सुनि पावा । करन मनोरथ आतुर धावा ॥

हे बिधि दीनबन्धु रघुराया । मो मे सठ पर करिहहिं दाया ॥ २ ॥

उन्होंने ज्यों ही प्रभुका आगमन कानोंमें सुन पाया, त्यों ही [भौंति-भौंनिके] मनोरथ करते हुए वे आतुरता (शीघ्रता) से दौड़ चले । हे विधाता ! क्या दीनबन्धु श्रीरघुनाथजी मुझ-जैसे दुष्टपर भी दया करेंगे ? ॥ २ ॥

सहित अनुज मोहि राम गोसाई । मिलिहहिं निज सेवक की नाई ॥

मोरे जियँ भरोस दड़ नाहीं । भगति बिरति न ग्यान मन माहीं ॥ ३ ॥

क्या स्वामी श्रीरामजी छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित मुझसे अपने सेवककी तरह मिलेंगे ? मेरे हृदयमें दृढ़ विश्वास नहीं होता । क्योंकि मेरे मनमें भक्ति, वैराग्य या ज्ञान कुछ भी नहीं है ॥ ३ ॥

नहिं सतसंग जोग जप जागा । नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा ॥

एक बानि करुनानिधान की । सो प्रिय जाके गति न आन की ॥ ४ ॥

मैंने न तो सतसंग, योग, जप अथवा यज्ञ ही किये हैं । और न प्रभुके चरण-कमलोंमें मेरा दृढ़ अनुराग ही है । हाँ, दयाके भण्डार प्रभुकी एक बानि है कि जिसे किसी दूसरेका सहारा नहीं है, वह उन्हें प्रिय होता है ॥ ४ ॥

होइहैं सुफल आजु मम लोचन । देखि बदन पंकज भवमोचन ॥

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी । कहि न जाइ सो दसा भवानी ॥ ५ ॥

[भगवान्की इस बानिका स्मरण आते ही मुनि आनन्दमग्न होकर मन-ही-मन कहने लगे—] अहा ! भव-बन्धनसे छुड़ानेवाले प्रभुके मुखारविन्दको देखकर आज मेरे नेत्र सफल होंगे । [शिवजी कहते हैं—] हे भवानी ! शानी मुनि प्रेममें पूर्णरूपसे निमग्न हैं । उनकी वह दशा कही नहीं जाती ॥ ५ ॥

दिसि अरु विदिसि पंथ नहिं सूझा । को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा ॥

कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई । कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ॥ ६ ॥

उन्हें दिशा-विदिशा (दिशाएँ और उनके कोण आदि) और रास्ता, कुछ भी नहीं सूझ रहा है । मैं कौन हूँ और कहाँ जा रहा हूँ, इसका भी शान नहीं है । वे कभी पीछे घूमकर फिर आगे चलने लगते हैं और कभी प्रभुके गुण गा-गाकर नाचने लगते हैं ॥ ६ ॥

अविरल प्रेम भगति मुनि पाई । प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई ॥

अतिसय प्रीति देखि रघुवीरा । प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा ॥ ७ ॥

मुनिने प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति प्राप्त कर ली ! प्रभु (श्रीरामजी) वृक्षकी आड़में छिपकर [भक्तकी प्रेमोन्मत्त दशा] देख रहे हैं । मुनिका अत्यन्त प्रेम देखकर भवभयको हरनेवाले श्रीरघुनाथजी मुनिके हृदयमें प्रकट हो गये ॥ ७ ॥

मुनि मग माझ अचल होइ वैसा । पुलक सरीर पनस फल जैसा ॥

तब रघुनाथ निकट चलि आए । देखि दसा निज जन मन भाए ॥ ८ ॥

[हृदयमें प्रभुके दर्शन पाकर] मुनि बीच रास्तेमें अचल (स्थिर) होकर बैठ गये । उनका शरीर रोमाञ्चसे कटहलके फलके समान [कण्टकित] हो गया । तब श्रीरघुनाथजी उनके पास चले आये और अपने भक्तकी प्रेमदशा देखकर मनमें बहुत प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा । जाग न ध्यानजनित सुख पावा ॥

भूपरूप तब राम कुरावा । हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा ॥ ९ ॥

श्रीरामजीने मुनिको बहुत प्रकारसे जगाया; पर मुनि नहीं जागे । क्योंकि उन्हें प्रभुके ध्यानका सुख प्राप्त हो रहा था । तब श्रीरामजीने अपने राज-रूपको छिपा लिया और उनके हृदयमें अपना चतुर्भुजरूप प्रकट किया ॥ ९ ॥

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसँ । विकल हीन मनि फनिथर जैसँ ॥

आगें देखि राम तन स्यामा । सीता अनुज सहित सुखधामा ॥ १० ॥

तब (अपने शृष्ट-स्वरूपके अन्तर्धान होते ही) मुनि कैसे व्याकुल होकर उठे, जैसे भ्रेष्ठ (मणिधर) सर्प मणिके बिना व्याकुल हो जाता है ! मुनिने अपने सामने सीताजी और लक्ष्मणजीसहित श्यामसुन्दरविग्रह सुखधाम श्रीरामजीको देखा ॥ १० ॥

कल्याण

(१) सुतीक्ष्णकी प्रेमयात्रा



दिसि अर विदिसि पंथ नहिं मूझा ।
को मै चंटेउं कहाँ नहिं बूझा ॥

[पृष्ठ ५५६]

(३) सुतीक्ष्णजीके हृदयमें चतुर्भुज रूप



भूपरूप तब राम दुगवा ।
हृदयें चतुर्भुज रूप देखावा ॥

[पृष्ठ ५५६]

(२) सुतीक्ष्णजी रामके ध्यानमें



अतिसय प्रांति देखि रघुवीर ।
प्रगटे हृदयें हरन भव भीरा ॥

[पृष्ठ ५५६]

(४) सुतीक्ष्णजीकी चतुरता



देखि कृपानिधि मुनि चतुराई ।
लिये संग बिहसे द्रो भाई ॥

[पृष्ठ ५५९]

परेउ लकुट ह्व चरनन्हि लागी । प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी ॥

भुज बिसाल गहि लिए उठाई । परम प्रीति राखे उर लाई ॥११॥

प्रेममें मग्न हुए वे बड़भागी श्रेष्ठ मुनि लठोकी तरह गिरकर श्रीरामजीके चरणोंमें लग गये । श्रीरामजीने अपनी विशाल भुजाओंसे पकड़कर उन्हें उठा लिया और बड़े प्रेमसे हृदयसे लगा रक्ता ॥ ११ ॥

मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला । कनकतरुहि जनु भेंट तमाला ॥

रामबदनु बिलोक मुनि ठाढ़ा । मानहुँ चित्र माझ लिखि काढ़ा ॥१२॥

कृपालु श्रीरामचन्द्रजी मुनिसे मिलते हुए ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानो सोनेके वृक्षसे तमालका वृक्ष गले लगाकर मिल रहा हो । मुनि निस्तब्ध खड़े हुए [टुकड़की लगाकर] श्रीरामजीका मुख देख रहे हैं । मानो चित्रमें लिखकर बनाये गये हों ॥ १२ ॥

दो०—तब मुनि हृदयँ धीर धरि गहि पद बारहिं बार ।

निज आश्रम प्रभु आनि करि पूजा विविध प्रकार ॥ १० ॥

तब मुनिने हृदयमें धीरज धरकर बार-बार चरणोंको स्पर्श किया । फिर प्रभुको अपने आश्रममें लाकर अनेक प्रकारसे उनकी पूजा की ॥ १० ॥

चौ०—कह मुनि प्रभु सुनु विनती मोरी । अस्तुति करौं कवन विधि तोरी ॥

महिमा अमित मोरि मति थोरी । रघि सन्मुख खद्योत अँजोरी ॥ १ ॥

मुनि कहने लगे—हे प्रभो ! मेरी विनती सुनिये, मैं किस प्रकारसे आपकी स्तुति करूँ ? आपकी महिमा अगार है और मेरी बुद्धि अल्प है । जैसे सूर्यके सामने जुगनूका उजाला ! ॥ १ ॥

श्याम तामरस दाम शरीरं । जटा मुकुट परिधन मुनिचीरं ॥

पाणि चाप शर कटि तूणारं । नौमि निरंतर श्रीरघुवीरं ॥ २ ॥

हे नीलकमलकी मालके समान श्याम शरीरवाले ! हे जटाओंका मुकुट और मुनियोंके (वल्कल) वस्त्र पहने हुए, हाथोंमें धनुष-बाण लिये तथा कमरमें तरकस बसे हुए श्रीरघुवीरजी ! मैं आपको निरन्तर नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

मोह विपिन घन दहन कृशानुः । संत सरोरुह कानन भानुः ॥

निशिचर करि वरूथ मृगराजः । त्रातु सदा नो भव खग बाजः ॥ ३ ॥

जो मोहरूपी घने वनको जलानेके लिये अग्नि हैं, संतरूपी कमलके वनके प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्य हैं, राक्षसरूपी शयियोंके समूहके पछाड़नेके लिये सिंह हैं, और भव (आवागमन) रूपी पक्षीके मारनेके लिये बाजरूप हैं, वे प्रभु सदा हमारी रक्षा करें ॥ ३ ॥

अरुण नयन राजीव सुवेशं । सीता नयन चकोर निशेशं ॥

हर हृदि मानस बाल मरालं । नौमि राम उर बाहु विशालं ॥ ४ ॥

हे लाल कमलके समान नेत्र और सुन्दर वेषवाले ! सीताजीके नेत्ररूपी चकोरके चन्द्रमा, शिवजीके हृदयरूपी मानसरोवरके बालहंस, विशाल हृदय और भुजावाले श्रीरामचन्द्रजी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

संशय सर्प प्रसन्न उरगादः । शमन सुकर्कश तर्क विषादः ॥

भव भंजन रंजन सुरयूथः । त्रातु सदा नो कृपावरूथः ॥ ५ ॥

जो संशयरूपी सर्पको प्रसन्नेके लिये गरुड़ हैं, अत्यन्त कठोर तर्कसे उत्पन्न होनेवाले विषादका नाश करनेवाले हैं, आवागमनको मिटानेवाले और देवताओंके समूहको आनन्द देनेवाले हैं, वे कृपाके समूह श्रीरामजी सदा हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥

निर्गुण सगुण विषम सम रूपं । ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं ॥

अमलमखिलमनवद्यमपारं । नौमि राम भंजन महिभारं ॥ ६ ॥

हे निर्गुण, सगुण, विषम और समरूप ! हे ज्ञान, वाणी और इन्द्रियोंसे अतीत ! हे अनुपम, निर्मल, सम्पूर्ण, दोषरहित, अनन्त एवं पृथ्वीका भार उतारनेवाले श्रीरामचन्द्रजी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥

भक्त कल्पपादप आरामः । तर्जन क्रोध लोभ मद कामः ॥

अति नागर भवसागर सेतुः । त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः ॥ ७ ॥

जो भक्तोंके लिये कल्पवृक्षके बगीचे हैं; क्रोध, लोभ, मद और कामको डरानेवाले हैं; अत्यन्त ही चतुर और संसाररूपी समुद्रसे तरनेके लिये सेतुरूप हैं, वे सूर्यकुलकी ध्वजा श्रीरामजी सदा मेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥

अतुलित भुज प्रताप बलधामः । कलिमल विपुल विभंजन नामः ॥

धर्मवर्म नर्मद गुणग्रामः । संतत शं तनोतु मम रामः ॥ ८ ॥

जिनकी भुजाओंका प्रताप अतुलनीय है, जो बलके धाम हैं, जिनका नाम कलियुगके बड़े भारी पापोंका नाश करनेवाला है, जो धर्मके कवच (रक्षक) हैं और जिनके गुणसमूह आनन्द देनेवाले हैं, वे श्रीरामजी निरन्तर मेरे कल्याणका विस्तार करें ॥ ८ ॥

जदपि बिरज व्यापक अविनासी । सब के हृदय निरन्तर वासी ॥

तदपि अनुज श्री सहित खरारी । बसतु मनसि मम काननचारी ॥ ९ ॥

यद्यपि आप निर्मल, व्यापक, अविनाशी और सबके हृदयमें निरन्तर निवास करनेवाले हैं, तथापि हे खरारि श्रीरामजी ! लक्ष्मणजी और सीताजीसहित वनमें विचरनेवाले आप इसी रूपमें मेरे हृदयमें निवास कीजिये ॥ ९ ॥

जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी । सगुन अगुन उर अंतरजामी ॥

जो कोसलपति राजिवनयना । करउ सो राम हृदय मम अयना ॥ १० ॥

हे स्वामी ! आपको जो सगुण, निर्गुण और अन्तर्यामी जानते हों, वे जाना करें । मेरे हृदयको तो कोसलपति कमलनयन श्रीरामजी ही अपना घर बनावें ॥ १० ॥

अस अभिमान जाइ जनि भोरे । मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥

सुनि मुनि वचन राम मन भाए । बहुरि हरपि मुनिवर उर लाए ॥ ११ ॥

ऐसा अभिमान भूलकर भी न छूटे कि मैं सेवक हूँ और श्रीरघुनाथजी मेरे स्वामी हैं । मुनिके वचन सुनकर श्रीरामजी मनमें बहुत प्रसन्न हुए । तब उन्होंने दर्शित होकर श्रेष्ठ मुनिको हृदयसे लगा लिया ॥ ११ ॥

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही । जो वर मागहु देउँ सो तोही ॥

मुनि कह मैं वर कबहुँ न जाचा । समुझि न परह झूठ का साचा ॥१२॥

[और कहा—] हे मुनि ! मुझे परम प्रसन्न जानो । जो वर माँगो, वही मैं तुम्हें दूँ । मुनि सुतीक्ष्णजीने कहा—मैंने तो वर कभी माँगा ही नहीं । मुझे समझ ही नहीं पड़ता कि क्या झूठ है और क्या सत्य है (क्या माँगूँ, क्या नहीं) ॥ १२ ॥

तुम्हहि नीक लगै रघुराई । सो मोहि देहु दास सुखदाई ॥

अधिरल भगति बिरति बिग्याना । होहु सकल गुन ग्यान निधाना ॥१३॥

हे रघुनाथजी ! हे दासोंको सुख देनेवाले ! आपको जो अच्छा लगे मुझे वही दीजिये । [श्रीरामचन्द्रजीने कहा—] हे मुनि ! तुम प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और समस्त गुणों तथा ज्ञानके निधान हो जाओ ॥ १३ ॥

प्रभु जो दीन्ह सो वर मैं पावा । अब सो देहु मोहि जो भावा ॥१४॥

[तब मुनि बोले—] प्रभुने जो वरदान दिया वह तो मैंने पा लिया । अब मुझे जो अच्छा लगता है वह दीजिये—॥ १४ ॥

दो०—अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम ।

मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम ॥११॥

हे प्रभो ! हे श्रीरामजी ! छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजीसहित धनुष-बाणधारी आप निष्काम (स्थिर) होकर मेरे हृदयरूपी आकाशमें चन्द्रमाकी भाँति सदा निवास कीजिये ॥ ११ ॥

चौ०—एवमस्तु करि रमानिवासा । हरपि चले कुंभज रिपि पासा ॥

बहुत दिवस गुर दरसनु पाएँ । भए मोहि पहिं आश्रम आएँ ॥१॥

‘एवमस्तु’ (ऐसा ही हो) ऐसा उच्चारण कर लक्ष्मीनिवास श्रीरामचन्द्रजी हर्षित होकर अगस्त्य ऋषिके पास चले । [तब सुतीक्ष्णजी बोले]—गुरुजी (अगस्त्यजी) का दर्शन पाये और इस आश्रममें आये मुझे बहुत दिन हो गये ॥ १ ॥

अब प्रभु संग जाउँ गुर पाहीं । तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं ॥

देखि कृपानिधि मुनि चतुराई । लिए संग बिहसे द्वौ भाई ॥२॥

अब मैं भी प्रभु (आप) के साथ गुरुजीके पास चलता हूँ । इसमें हे नाथ ! आपपर मेरा कोई एहसान नहीं है । मुनिकी चतुरता देखकर कृपाके भण्डार श्रीरामजीने उनको साथ ले लिया और दोनों भाई हँसने लगे ॥ २ ॥

पंथ कहत निज भगति अनूपा । मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा ॥

तुरत सुतीछन गुर पहिं गयऊ । करि दंडवत कहत अस भयऊ ॥३॥

रास्तेमें अपनी अनुपम भक्तिका वर्णन करते हुए, देवताओंके राजराजेश्वर श्रीरामजी अगस्त्य मुनिके आश्रमपर पहुँचे । सुतीक्ष्णजी तुरंत ही गुरु (अगस्त्यजी) के पास गये और दण्डवत् करके ऐसा कहने लगे—॥ ३ ॥

नाथ कोसलाधीस कुमारा । आप मिलन जगत आधारा ॥

राम अनुज समेत बैदेही । निसि दिनु देव जपत हबु जेही ॥४॥

हे नाथ ! कोसलपति दशरथजीके कुमार जगदाधार श्रीरामचन्द्रजी छोटे भाई (लक्ष्मणजी) और सीताजीसहित आपसे मिलने आये हैं, जिनका हे देव ! आप रात-दिन जप करते रहते हैं ॥ ४ ॥

सुनत अगस्ति तुरत उठि घाय । हरि विलोकि लोचन जल छाय ॥

मुनि पद कमल परे झौ भाई । रिषि अति प्रीति लिए उर लाई ॥ ५ ॥

यह सुनते ही अगस्त्यजी तुरन्त ही उठ दौड़े । भगवान्‌को देखते ही उनके नेत्रोंमें [आनन्द और प्रेमके आँसुओंका] जल भर आया । दोनों भाई मुनिके चरणकमलोंपर गिर पड़े । ऋषिने [उठाकर] बड़े प्रेमसे उन्हें हृदयसे लगा लिया ॥ ५ ॥

सादर कुसल पूछि मुनि ग्यानी । आसन वर बैठाये आनी ॥

पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा । मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा ॥ ६ ॥

शानी मुनिने आदरपूर्वक कुशल पूछकर उनको लेकर श्रेष्ठ आसनपर बैठाया । फिर बहुत प्रकारसे प्रभुकी पूजा करके कहा—मेरे समान भाग्यवान्‌ आज दूसरा कोई नहीं है ॥ ६ ॥

जहँ लगि रहे अपर मुनिबुंदा । हरषे सब विलोकि सुखकंदा ॥ ७ ॥

वहाँ जहाँतक (जितने भी) अन्व मुनिगण थे, सभी आनन्दकन्द श्रीरामजीके दर्शन करके हर्षित हो गये ॥ ७ ॥

दो०—मुनिसमूह महुँ बैठे सन्मुख सब की ओर ।

सरद इंदु तन चितवत मानहुँ निकर चकोर ॥ १२ ॥

मुनियोंके समूहमें श्रीरामचन्द्रजी सबकी ओर सम्मुख होकर बैठे हैं (अर्थात्‌ प्रत्येक मुनिकी श्रीरामजी अपने ही सामने मुख करके बैठे दिखायी देते हैं, और सब मुनि टकटकी लगाये उनके मुखको देख रहे हैं) । ऐसा जान पड़ता है मानो चकोरोंका समुदाय शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी ओर देख रहा हो ॥ १२ ॥

चौ०—तब रघुवीर कहा मुनि पार्हीं । तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं ॥

तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउँ । ताते तात न कहि समुझायउँ ॥ १ ॥

तब श्रीरघुवीरजीने मुनिसे कहा—हे प्रभो ! आपसे तो कुछ छिपाव है नहीं; मैं जिस कारणसे आया हूँ, वह आप जानते ही हैं । इसीसे हे तात ! मैंने आपसे समझकर कुछ नहीं कहा ॥ १ ॥

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही । जेहि प्रकार मारों मुनिद्रोही ॥

मुनि मुसुकाने सुनि प्रभुवानी । पूछेहु नाथ मोहि का जानी ॥ २ ॥

हे प्रभो ! अब आप मुझे वही मन्त्र (सलाह) दीजिये, जिस प्रकार मैं मुनियोंके द्रोही राक्षसोंको मारूँ । प्रभुकी वाणी सुनकर मुनि मुस्कराये और बोले—हे नाथ ! आपने क्या समझकर मुझसे पूछा है ? ॥ २ ॥

तुम्हरेई भजन प्रभाव अघारी । जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी ॥

ऊमरि तरु बिसाल तव माया । फल ब्रह्मांड अनेक निकाया ॥ ३ ॥

हे पापनाशन ! मैं तो आपके ही भजनके प्रभावसे आपकी कुल थोड़ी-सी महिमा जानता हूँ । आपकी माया गूलरके विशाल वृक्षके समान है, अनेकों ब्रह्माण्डोंके समूह उसके फल हैं ॥ ३ ॥

जीव चराचर जंतु समाना । भीतर बसहिं न जानहिं आना ॥

ते फल भच्छक कठिन कराला । तब भयँ डरत सदा सोउ काला ॥ ४ ॥

चर और अचर जीव गूलरके फलके भीतर रहनेवाले छोटे-छोटे जन्तुओंके समान उन ब्रह्माण्ड-रूपी फलोंके भीतर बसते हैं और वे [अपने उस छोटे-से जगत्‌के बिना] दूसरा कुछ नहीं जानते । उन फलोंका भक्षण करनेवाला कठिन और कराल काल है । वह काल भी सदा आपसे भयभीत रहता है ॥ ४ ॥

ते तुम्ह सकल लोकपति साई । पूँछेहु मोहि मनुज की नाई ॥
 यह वर मागउँ कृपानिकेता । बसहु हृदयँ श्री मनुज समेता ॥ ५ ॥
 वही आप समस्त लोकपालोंके स्वामी होकर मुझसे मनुष्यकी तरह पूछ रहे हैं ! हे कृपाके धाम ! मैं तो यह वर माँगता हूँ कि आप श्रीसीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित मेरे हृदयमें सदा निवास कीजिये ॥ ५ ॥
 अचिरल भगति विरति सतसंगा । चरन सरोरुह प्रीति अभंगा ॥
 जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता । अनुभवगम्य भजहिं जेहि संता ॥ ६ ॥
 मुझे प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, सत्संग और आपके चरणकमलोंमें अटूट प्रेम प्राप्त हो । यद्यपि आप अखण्ड और अनन्त ब्रह्म हैं, जो अनुभवसे ही जाननेमें आते हैं और जिनका संतजन भजन करते हैं; ॥ ६ ॥
 अस तव रूप बखानउँ जानउँ । फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानउँ ॥
 संतत दासन्ह देहु बड़ाई । तातें मोहि पूँछेहु रघुराई ॥ ७ ॥
 यद्यपि मैं आपके ऐसे रूपको जानता हूँ और उसका वर्णन भी करता हूँ, तो भी लौट-लौटकर मैं सगुण ब्रह्ममे (आपके इस सुन्दर स्वरूपमें) ही प्रेम मानता हूँ । आप सेवकोंको सदा ही बड़ाई दिया करते हैं, इसीसे हे रघुनाथजी ! आपने मुझसे पूछा है ॥ ७ ॥
 है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ । पावन पंचवटी तेहि नाऊँ ॥
 दंडक बन पुनीत प्रभु करहु । उग्र साप मुनिबर कर हरहु ॥ ८ ॥
 हे प्रभो ! एक परम मनोहर और पवित्र स्थान है, जिसका नाम पञ्चवटी है । हे प्रभो ! आप दण्डकवन-को [जहाँ पञ्चवटी है] पवित्र कीजिये और श्रेष्ठ मुनि गौतमजीके कठोर शापको हर लीजिये ॥ ८ ॥
 बास करहु तहँ रघुकुलराया । कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया ॥
 चले राम मुनि आयसु पाई । तुरतहिं पंचवटी निभराई ॥ ९ ॥
 हे रघुकुलके स्वामी ! आप सब मुनियोंपर दया करके वहाँ निवास कीजिये । मुनिकी आशा पाकर श्रीरामचन्द्रजी वहाँसे चल दिये और शीघ्र ही पञ्चवटीके निकट पहुँच गये ॥ ९ ॥
 दो०—गीधराज सैं भेंट भइ बहु विधि प्रीति बढ़ाइ ।
 गोदावरी निकट प्रभु रहे परनगृह छाइ ॥ १३ ॥
 वहाँ गीधराज जटायुसे भेंट हुई । उसके साथ बहुत प्रकारसे प्रेम बढ़ाकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी गोदावरीजीके समीप पर्णकुटी छाकर रहने लगे ॥ १३ ॥
 चौ०—जब ते राम कीन्ह तहँ बासा । सुखी भए मुनि बीती आसा ॥
 गिरि बन नदी ताल छवि छाए । दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए ॥ १ ॥
 जबसे श्रीरामजीने वहाँ निवास किया तबसे मुनि सुखी हो गये, उनका डर जाता रहा । पर्वत, बन, नदी और तालाब शोभासे छा गये और वे दिनों-दिन अधिक सुहावने [मालूम] होने लगे ॥ १ ॥
 खग मृग वृंद अनंदित रहहीं । मधुप मधुर गुंजत छवि लहहीं ॥
 सो बन वरनि न सक अहिराजा । जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा ॥ २ ॥
 पक्षी और पशुओंके समूह आनन्दित रहते हैं और भीरे मधुर गुंजार करते हुए शोभा पा रहे हैं । जहाँ प्रत्यक्ष भीरधुवीरजी विराजमान हैं उस वनका वर्णन सर्पराज शेषजी भी नहीं कर सकते ॥ २ ॥

एक बार प्रभु सुख आसीना । लछिमन बचन कहे छलहीना ॥

सुर नर मुनि सचरावर साई । मैं पूछउँ निज प्रभु की नाई ॥ ३ ॥

एक बार प्रभु श्रीरामजी सुखसे बैठे हुए थे । उस समय लक्ष्मणजीने उनसे छलरहित (सरल) वचन कहे—हे देवता, मनुष्य, मुनि और चराचरके स्वामी ! मैं अपने प्रभुकी तरह (अपना स्वामी समझकर) आपसे पूछता हूँ ॥ ३ ॥

मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा । सब तजि करौ चरन रज सेवा ॥

कहहु ग्यान विराग अरु माया । कहहु सो भगति करहु जेहिं दायी ॥ ४ ॥

हे देव ! मुझे समझाकर वही कहिये, जिससे सब छोड़कर मैं आपकी चरण-रजकी ही सेवा करूँ । शान, वैराग्य और मायाका वर्णन कीजिये, और उस भक्तिको कहिये जिसके कारण आप दया करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ ।

जातैं होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ ॥ १४ ॥

हे प्रभो ! ईश्वर और जीवका भेद भी सब समझाकर कहिये, जिससे आपके चरणोंमें मेरी प्रीति हो और शोक, मोह, भ्रम नष्ट हो जायँ ॥ १४ ॥

चौ०—थोरेहि महुँ सब कहउँ बुझाई । सुनहु तात मति मन चित लाई ॥

मैं अरु मोर तोर तैं माया । जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ॥ १ ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे तात ! मैं थोड़ेमें ही सब समझाकर कहे देता हूँ । तुम मन, चित्त और बुद्धि लगाकर सुनो । मैं और मेरा, तू और तेरा—यही माया है, जिसने समस्त जीवोंको वशमें कर रक्खा है ॥ १ ॥

गो गोचर जहुँ लगि मन जाई । सो सब माया जानेहु भाई ॥

तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ । विद्या अपर अविद्या दोऊ ॥ २ ॥

इन्द्रियोंके विषयोंको और जहाँतक मन जाता है, हे भाई ! उस सबको माया जानना । उसके भी—एक विद्या और दूसरी अविद्या, इन दोनों भेदोंको तुम सुनो—॥ २ ॥

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा । जा बस जीव परा भवकृपा ॥

एक रचइ जग गुन बस जाकैं । प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकैं ॥ ३ ॥

एक (अविद्या) दुष्ट (दोषयुक्त) है और अत्यन्त दुःखरूप है, जिसके वश होकर जीव संसाररूपी कुपमें पड़ा हुआ है । और एक (विद्या) जिसके वशमें गुण हैं और जो जगत्की रचना करती है, वह प्रभुसे ही प्रेरित होती है; उसमें अपना बल कुछ भी नहीं है ॥ ३ ॥

न्यान मान जहुँ एकउ नाहीं । देख ब्रह्म समान सब माहीं ॥

कहिअ तात सो परम विरागी । तुन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी ॥ ४ ॥

शान वह है जहाँ (जिसमें) मान आदि एक भी [दोष] नहीं है, और जो सबमें समानरूपसे ब्रह्मको देखता है । हे तात ! उसीको परम वैराग्यवान् कहना चाहिये जो सारी सिद्धियोंको और तीनों गुणोंको तिनकेके समान त्याग चुका हो ॥ ४ ॥

[जिसमें मान, दम्भ, हिंसा, क्षमाराहित्य, टेढ़ापन, आचार्यसेवाका अभाव, अपवित्रता, अस्थिरता, मनका निरुद्धता न होना, इन्द्रियोंके विषयमें आसक्ति, अहंकार, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिमय जगत्में सुखबुद्धि, स्त्री-पुत्र-धन आदिमें आसक्ति तथा ममता, इष्ट और अनिष्टकी प्राप्तिमें हर्ष-शोक, भक्तिका अभाव,

एकान्तमें मन न लगना, विषयी मनुष्योंके संगमें प्रेम—ये अठारह न हों और नित्य अध्यात्म (आत्मा) में स्थिति तथा तत्त्वज्ञानके अर्थ (तत्त्वज्ञानके द्वारा जाननेयोग्य) परमात्माका नित्य दर्शन हो, वही ज्ञान कहलाता है । [देखिये गीता अ० १३ । ७ से ११]

दो०—माया ईस न आपु कहूँ जान कहिअ सो जीव ।

बंध मोच्छप्रद सर्वपर मायाप्रेरक सीव ॥ १५ ॥

जो मायाको, ईश्वरको और अपने स्वरूपको नहीं जानता, उसे जीव कहना चाहिये । जो कर्मानुसार बन्धन और मोक्ष देनेवाला, सबसे परे और मायाका प्रेरक है वह ईश्वर है ॥ १५ ॥

चौ०—धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना । ग्यान मोच्छप्रद वेद बखाना ॥

जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई । सो मम भगति भगत सुखदाई ॥ १ ॥

धर्म [के आचरण] से वैराग्य और योगसे ज्ञान होता है तथा ज्ञान मोक्षका देनेवाला है—ऐसा वेदोंने वर्णन किया है । और हे भाई ! जिससे मैं शीघ्र ही प्रसन्न होता हूँ, वह मेरी भक्ति है जो भक्तोंको सुख देनेवाली है ॥ १ ॥

सो सुतंत्र अवलंब न आना । तेहि आधीन ग्यान बिग्याना ॥

भगति तात अनुपम सुखमूला । मिलइ जो संत होई अनुकूला ॥ २ ॥

वह भक्ति स्वतन्त्र है, उसको [ज्ञान-विज्ञान आदि किसी] दूसरे साधनका सहारा (अपेक्षा) नहीं है । वरं ज्ञान और विज्ञान भी उसके अधीन हैं । हे तात ! भक्ति अनुपम एवं सुखकी मूल है, और वह तभी मिलती है जब संत अनुकूल (प्रसन्न) होते हैं ॥ २ ॥

भगति कि साधन कहउँ बखानी । सुगम पंथ मोहि पावहिं प्राणी ॥

प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती । निज निज कर्म निरत श्रुति रीती ॥ ३ ॥

अब मैं भक्तिके साधन विस्तारसे कहता हूँ—यह सुगम मार्ग है, जिससे जीव मुक्तको सहज ही पा जाते हैं । पहले तो ब्राह्मणोंके चरणोंमें अत्यन्त प्रीति हो और वेदकी रीतिके अनुसार अपने-अपने [वर्णाश्रमके] कर्ममें लगा रहे ॥ ३ ॥

एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा । तब मम धर्म उपज अनुरागा ॥

श्रवनादिक नव भक्ति दढ़ाहीं । मम लीला रति अति मन माहीं ॥ ४ ॥

इसका फल, फिर विषयोंसे वैराग्य होगा । तब (वैराग्य होनेपर) मेरे धर्ममें (भागवतधर्ममें) प्रेम उत्पन्न होगा । तब श्रवण आदि नौ प्रकारकी भक्तियाँ दढ़ होंगी और मनमें मेरी लीलाओंके प्रति अत्यन्त प्रेम होगा ॥ ४ ॥

संत चरन पंकज अति प्रेमा । मन क्रम बचन भजन दढ़ नेमा ॥

गुरु चितु मातु बंधु पति देवा । सब मोहि कहँ जानइ दढ़ सेवा ॥ ५ ॥

जिसका संतोंके चरणकमलोंमें अत्यन्त प्रेम हो; मन, वचन और कर्मसे भजनका दढ़ नियम हो और जो मुक्तको ही गुरु, पिता, माता, भाई, पति और देवता, सब कुछ जाने और सेवामें दढ़ हो; ॥ ५ ॥

मम गुन गावत पुलक सरीरा । गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥

काम आदि मद दंभ न जाकैं । तात निरंतर बस मैं ताकैं ॥ ६ ॥

मेरा गुण गाते समय जिसका शरीर पुलकित हो जाय, बाणी गद्गद हो जाय और नेत्रोंसे

[प्रेमाश्रुओंका] जल बहने लगे और काम, मद और दम्भ आदि जिसमें न हों, हे भाई ! मैं सदा उसके वश रहता हूँ ॥ ६ ॥

दो०—बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम ।

तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम ॥ १६ ॥

जिनको कर्म, वचन और मनसे मेरी ही गति है; और जो निष्काम भावसे मेरा भजन करते हैं, उनके हृदय-कमलमें मैं सदा विश्राम किया करता हूँ ॥ १६ ॥

चौ०—भगति जोग सुनि अति सुख पावा । लछिमन प्रभु चरनन्हि सिर नावा ॥

एहि बिधि गए कछुक दिन बीती । कहत बिराग ग्यान गुन नीती ॥ १ ॥

इस भक्तियोंगो सुनकर लक्ष्मणजीने अत्यन्त सुख पाया और उन्होंने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें सिर नवाया । इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गये ॥ १ ॥

सुपनखा रावन कै बहिनी । दुष्टहृदय दारुन जस अहिनी ॥

पंचवटी सो गइ एक बारा । देखि बिकल भइ जुगल कुमारा ॥ २ ॥

शूर्पणखा नामक रावणकी एक बहिन थी, जो नागिन-जैसी भयानक और दुष्ट हृदयकी थी। वह एक बार पञ्चवटीमें गयी और दोनों राजकुमारोंका देखकर बिकल (कामसे पीड़ित) हो गयी ॥ २ ॥

भ्राता पिता पुत्र उरगारी । पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥

होइ बिकल सक मनहि न रोकी । जिमि रविमनि द्रव रविहि बिलोकी ॥ ३ ॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़जी ! [शूर्पणखा-जैसी राक्षसी, धर्मज्ञानशून्य कामान्ध] स्त्री मनोहर पुरुषको देखकर, चाहे वह भाई, पिता, पुत्र ही हो, बिकल हो जाती है और मनको नहीं रोक सकती । जैसे सूर्यकान्तमणि सूर्यको देखकर द्रवित हो जाती है (ज्वालासे पिघल जाती है) ॥ ३ ॥

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई । बोली बचन बहुत मुसुकाई ॥

तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी । यह सँजोग बिधि रचा विचारी ॥ ४ ॥

वह सुन्दर रूप धरकर प्रभुके पास जाकर और बहुत मुसकुराकर वचन बोली—न तो तुम्हारे समान कोई पुरुष है, न मेरे समान स्त्री ! विधाताने यह संयोग (जोड़ा) बहुत विचारकर रचा है ॥ ४ ॥

मम अनुरूप पुरुष जग माहीं । देखेउँ खोजि लोक तिहु माहीं ॥

तातें अब लगि रहिउँ कुमारी । मनु माना कछु तुम्हहि निहारी ॥ ५ ॥

मेरे योग्य पुरुष (वर) जगत् भरमें नहीं है, मैंने तीनों लोकोंको खोज देखा । इन्हींसे मैं अबतक कुमारी (अविवाहित) रही । अब तुमको देखकर कुछ मन माना (चिन टहरा) है ॥ ५ ॥

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता । अहइ कुआर मोर लघु भ्राता ॥

गइ लछिमन रिपुभगिनी जानी । प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी ॥ ६ ॥

सीताजीकी ओर देखकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई कुमार है । तब वह लक्ष्मणजीके पास गयी । लक्ष्मणजी उसे शत्रुकी बहन समझकर और प्रभुकी ओर देखकर कोमल वाणीसे बोले— ॥ ६ ॥

सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा । पराधीन नहिं तोर सुपासा ॥

प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा । जो कछु करहिं उनहि सब छाजा ॥ ७ ॥

कल्याण

(१) शूर्पणखाको दण्ड



नाक कान बिनु भइ बिकरारा ।
जनु खव मेल गेर कै थारा ॥
[पृष्ठ ५६५]

(२) खरके पास पुकार



खर दूपन पहिं गइ बिलपाता ।
धिग धिग तव पोरुप बल भ्राता ॥
[पृष्ठ ५६५]

(३) गिरिकन्दरामें सीताजी



ले जानहि जाहु गिरिकंदर ।
[पृष्ठ ५६६]

(४) खरका उद्धार



गम गम कहि तनु तजहिं
पायहिं पद निर्बान ।
[पृष्ठ ५६९]

हे सुन्दरी ! सुन, मैं तो उनका दास हूँ । मैं पराधीन हूँ, अतः तुम्हें सुभीता (सुख) न होगा । प्रभु समर्थ हैं, कोसलपुरके राजा हैं । वे जा कुछ करें, उन्हें सब फबता है ॥ ७ ॥

सेवक सुख चाह मान भिखारी । व्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी ॥

लोभी जसु चाह चार गुमानी । नभ दुहि दूध चाहत ए प्राणी ॥ ८ ॥

सेवक सुख चाहे, भिखारी सम्मान चाहे, व्यसनी (जिसे जुए, शराब आदिका व्यसन हो) धन और व्यभिचारी शुभगति चाहे, लोभी यश चाहे, और दूत बमंडी होकर [अपने स्वामीका कार्य करना चाहे], तो ये सब प्राणी आकाशको दुहकर दूध लेना चाहते हैं (अर्थात् असम्भव बातको सम्भव करना चाहते हैं) ॥ ८ ॥

पुनि फिरि राम निकट सो आई । प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई ॥

लछिमन कहा तोहि सो बरई । जो तन तोरि लाज परिहरई ॥ ९ ॥

वह लौटकर फिर श्रीरामजीके पास आयी । प्रभुने उसे फिर लक्ष्मणजीके पास भेज दिया । लक्ष्मणजीने कहा—तुम्हें वही बरेगा जो लज्जाको नृण तोड़कर (अर्थात् प्रतिज्ञा करके) त्याग देगा । (अर्थात् जो निपट निर्लज्ज होगा) ॥ ९ ॥

तब खिसिआनि राम पहिं गई । रूप भयंकर प्रगटत भई ॥

सीतहि सभय देखि रघुराई । कहा अनुज सन सयन बुझाई ॥ १० ॥

तब वह खिसियायी हुई (कुढ़ होकर) श्रीरामजीके पास गयी और उसने अपना भयङ्कर रूप प्रकट किया । सीताजीको भयभीत देखकर श्रीरघुनाथजीने लक्ष्मणजीको इशारा देकर कहा ॥ १० ॥

दो०—लछिमन अति लाघव सो नाक कान बिनु कीन्हि ।

ताके कर रावन कहँ मनो चुनौती दीन्हि ॥ १७ ॥

लक्ष्मणजीने बड़ी फुर्तासे उसको बिना नाक-कानकी कर दिया । मानो उसके हाथ रावणको चुनौती दी हो ! ॥ १७ ॥

चौ०—नाक कान बिनु भइ विकरारा । जनु खर सैल गेरु कै धारा ॥

खर दूयन पहिं गई बिलपाता । धिग धिग तब पौरुष बल भ्राता ॥ १ ॥

बिना नाक-कानके वह विकराल हो गयी । [उसके शरीरसे रक्त इस प्रकार बहने लगा] मानो [काले] पर्वतसे गेरुकी धारा बह रही हो । वह विलाप करती हुई खर-दूषणके पास गयी [और बोली—] हे भाई ! तुम्हारे पौरुष (वीरता) को धिक्कार है, तुम्हारे बलको धिक्कार है ॥ १ ॥

तेहिं पूछा सब कहेसि बुझाई । जातुधान सुनि सेन बनाई ॥

धाए निसिचर निकर बरूथा । जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा ॥ २ ॥

उन्होंने पूछा, तब शूर्पणखाने सब समझाकर कहा । सब सुनकर राक्षसोंने सेना तैयार की । राक्षस-समूह झुंड-के-झुंड दौड़े मानो पंखधारी काजलके पर्वतोंका झुंड हो ॥ २ ॥

नाना बाहन नानाकारा । नानायुध घर घोर अपारा ॥

सूयनखा भागें करि लीनी । असुभ रूप श्रुति नासा हीनी ॥ ३ ॥

वे अनेकों प्रकारकी सवारियोंपर चढ़े हुए तथा अनेकों आकार (सूरतों) के हैं । वे अक्षर हैं और अनेकों प्रकारके असंख्य भयानक हथियार धारण किये हुए हैं । उन्होंने नाक-कान कटी हुई अमङ्गलरूपिणी शूर्पणखाको आगे कर लिया ॥ ३ ॥

असगुन अमित होहिं भयकारी । गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी ॥

गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं । देखि कटकु भट अति हरषाहीं ॥ ४ ॥

अनगिनत भयङ्कर अशकुन हो रहे हैं । परन्तु मृत्युके वश होनेके कारण वे सब-के-सब उनको कुछ गिनते ही नहीं । गरजते हैं, ललकारते हैं और आकाशमें उड़ते हैं । सेना देखकर थोड़ा लोग बहुत ही हर्षित होते हैं ॥ ४ ॥

कोउ कह जिअत घरहु द्रौ भाई । धरि मारहु तिय लेहु छड़ाई ॥

धूरि पूरि नभ मंडल रहा । राम बोलाइ अनुज सन कहा ॥ ५ ॥

कोई कहता है दोनो भाइयोंको जीता ही पकड़ लो, पकड़कर मार डालो और स्त्रीको छीन लो । आकाशमण्डल धूलसे भर गया । तब श्रीरामजीने लक्ष्मणजीको बुलाकर उनसे कहा— ॥ ५ ॥

लै जानकिहि जाहु गिरिकंदर । आवा निसिचर कटकु भयंकर ॥

रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी । चले सहित धी सर धनु पानी ॥ ६ ॥

राक्षसोंकी भयानक सेना आ गयी है । जानकीजीको लेकर तुम पर्वतकी कन्दरामें चले जाओ । सावधान रहना । प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर लक्ष्मणजी हाथमें धनुष-बाण लिये श्रीसीताजीसहित चले ॥ ६ ॥

देखि राम रिपुदल चलि आवा । बिहसि कठिन कोदंड चढ़ावा ॥ ७ ॥

शत्रुओंकी सेना [समीप] चली आयी है, यह देखकर श्रीरामजीने हंसकर कठिन धनुषको चढ़ाया ॥ ७ ॥

छं०—कोदंड कठिन चढ़ाई सिर जटजूट बाँधत सोह क्यों ।

मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों ॥

कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै ।

चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै ॥

कठिन धनुष चढ़ाकर सिरपर जटाका जूड़ा बाँधते हुए प्रभु कैसे शोभित हो रहे हैं, जैसे मरकतमणि (पत्थर) के पर्वतपर करोड़ों बिजलियोंसे दो साँप लड़ रहे हों । कमरमें तरकस कसकर, विशाल भुजाओंमें धनुष लेकर और बाण सुधारकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी राक्षसोंकी ओर देख रहे हैं । मानो मतवाले हाथियोंके समूहको आता देखकर मिंद ताक रहा हो ॥

सो०—आइ गए बगमेल धरहु धरहु धावत सुभट ।

जथा बिलोकि अकेल बालरबिहि घेरत दनुज ॥ १८ ॥

‘पकड़ो-पकड़ो’ पुकारते हुए राक्षस थोड़ा बाग छोड़कर (बड़ी तेजीसे) दौड़े हुए आये [और उन्होंने रामजीको चारों ओरसे घेर लिया] जैसे बालगूर्य (उदयकालीन गूर्य) को अकेला देखकर मन्देह नामक दैत्य घेर लेते हैं ॥ १८ ॥

चौ०—प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी । थकित भई रजनीचर धारी ॥

सचिव बोलि बोले खर दूषन । यह कोउ नृपबालक नरभूषन ॥ १ ॥

[सौन्दर्य-माधुर्यनिधि] प्रभु श्रीरामजीको देखकर राक्षसोंकी सेना थकित रह गयी । वे उनपर बाण नहीं छोड़ सके । मन्त्रीको बुलाकर खर-दूषणने कहा—यह राजकुमार कोई मनुष्योंका भूषण है ॥ १ ॥

नाग असुर सुर नर मुनि जेते । देखे जिते हते हम केते ॥

हम भरि जन्म सुनहु सब भाई । देखी नहिं असि सुंदरताई ॥ २ ॥

जितने भी नाग, असुर, देवता, मनुष्य और मुनि हैं, उनमेंसे हमने कितनोंहीको देखा है; जीता है और मार डाला है। पर हे सब भाइयो ! सुनो, हमने जन्मभरमें ऐसी सुन्दरता कहीं नहीं देखी ॥ २ ॥

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूप । बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥

देहु तुरत निज नारि दुराई । जीभत भवन जाहु द्वौ भाई ॥ ३ ॥

यद्यपि इन्होंने हमारी बहिनको कुरूप कर दिया तथापि ये अनुपम पुरुष बध करने योग्य नहीं हैं। 'छिपायी हुई अपनी स्त्री हमें तुरंत दे दो और दोनों भाई जीते-जी घर लौट जाओ' ॥ ३ ॥

मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु । तासु वचन सुनि आतुर आवहु ॥

दूतन्ह कहा राम सन जाई । सुनत राम बोले मुसुकाई ॥ ४ ॥

मेरा यह कथन तुम लोग उसे सुनाओ और उसका वचन (उत्तर) सुनकर शीघ्र आओ। दूतोंने जाकर यह सन्देश श्रीरामचन्द्रजीसे कहा। उसे सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी मुस्कराकर बोले—॥ ४ ॥

हम छत्री मृगया वन करहीं । तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं ॥

रिपु बलवन्त देखि नहिं डरहीं । एक बार कालहु सन लरहीं ॥ ५ ॥

हम क्षत्रिय हैं, वनमें शिकार करते हैं और तुम्हारे-सरीखे दुष्ट पशुओंको तो ढूँढ़ते ही फिरते हैं। हम बलवान् शत्रुको देखकर नहीं डरते। [लड़नेको आवे तो] एक बार तो हम कालसे भी लड़ सकते हैं ॥ ५ ॥

जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक । मुनि पालक खल सालक बालक ॥

जौ न होइ बल घर फिरि जाहु । समर विमुख मैं हतउं न काहु ॥ ६ ॥

यद्यपि हम मनुष्य हैं, परन्तु दैत्यकुलका नाश करनेवाले और मुनियोंकी रक्षा करनेवाले हैं। हम बालक हैं, परन्तु हैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाले ! यदि बल न हो तो घर लौट जाओ। संग्राममें पीट दिखानेवाले किसीको मैं नहीं मारता ॥ ६ ॥

रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई । रिपु पर कृपा परम कदराई ॥

दूतन्ह जाइ तुरत सब कहैऊ । सुनि खर दूषण उर अति दहेऊ ॥ ७ ॥

रणमें चढ़ आकर कपट-चतुराई करना और शत्रुपर कृपा करना (दया दिखाना) तो बड़ी भारी कायरता है। दूतोंने लौटकर सब बातें कहीं, जिन्हें सुनकर खर-दूषणका हृदय अत्यन्त जल उठा ॥ ७ ॥

छ०—उर दहेउ कहैउ कि घरहु धाए विकट भट रजनीचरा ।

सर चाप तोमर शक्ति सूल कृपान परिघ परसु घरा ॥

प्रभु कीन्हि धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा ।

भय बधिर व्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा ॥

खर-दूषणका हृदय जल उठा। तब उन्होंने कहा—पकड़ लो (कैद कर लो)। [यह सुनकर] भयानक राक्षस योद्धा बाण, धनुष, तोमर, शक्ति (सोंग), शूल (बरछी), कृपण (कटार), परिघ और फरसा धारण किये हुए दौड़ पड़े। प्रभु श्रीरामजीने पहले धनुषका बड़ा कठोर, घोर और भयानक टङ्कार किया; जिसे सुनकर राक्षस बहरे और व्याकुल हो गये। उस समय उन्हें कुछ भी होश नहीं रहा ॥

दो०—सावधान होइ धाए जानि सबल आराति ।

लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहुभाँति ॥ १९ (क) ॥

फिर वे शत्रुको बलवान् जानकर सावधान होकर दौड़े, और श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर बहुत प्रकारके अस्त्र-सस्त्र बरसाने लगे ॥ १९ (क) ॥

तिन्ह के आयुध तिल सम करि काटे रघुवीर ।

तानि सरासन श्रवन लागि पुनि छाँड़े निज तीर ॥ १९ (ख) ॥

श्रीरघुवीरजीने उनके हथियारोंको तिलके समान (टुकड़े-टुकड़े) करके काट डाला । फिर धनुषको कानतक तानकर अपने तीर छोड़े ॥ १९ (ख) ॥

छं०—तब चले बान कराल । फुंकरत जनु बहु ब्याल ॥

कोपेउ समर श्रीराम । चले बिसिख निसित निकाम ॥ १ ॥

तब भयानक बाण ऐसे चले मानो फुफकारते हुए बहुत-से सर्प जा रहे हैं । श्रीरामचन्द्रजी संग्राममें क्रुद्ध हुए और अत्यन्त तीक्ष्ण बाण चले ॥ १ ॥

अवलोकि खरतर तीर । मुरि चले निसिचर बीर ॥

भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ । जो भागि रन ते जाइ ॥ २ ॥

अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंको देखकर राक्षस वीर पीठ दिखाकर भाग चले । तब खर, दूषण और विशिरा तीनों भाई क्रुद्ध होकर बोले—जो रणसे भागकर जायगा, ॥ २ ॥

तेहि बधब हम निज पानि । फिरे मरन मन महुँ ठानि ॥

आयुध अनेक प्रकार । सनमुख ते करहिं प्रहार ॥ ३ ॥

उसका हम अपने हाथों वध करेंगे । तब मनमें मरना ठानकर भागने हुए राक्षस लौट पड़े । और सामने होकर वे अनेकों प्रकारके हथियारोंसे श्रीरामजीपर प्रहार करने लगे ॥ ३ ॥

रिपु परम कोपे जानि । प्रभु धनुष सर संधानि ॥

छाँड़े बिपुल नाराच । लगं कटन विकट पिसाच ॥ ४ ॥

शत्रुको अत्यन्त कुपित जानकर प्रभुने धनुषपर बाण चढ़ाकर बहुत-से बाण छोड़े, जिनसे भयानक राक्षस कटने लगे ॥ ४ ॥

उर सीस भुज कर चरन । जहँ तहँ लगे महि परन ॥

चिक्करत लागत बान । धर परत कुधर ममान ॥ ५ ॥

उनकी छाती, सिर, भुजा, हाथ और पैर जहाँ-तहाँ पृथ्वीपर गिरने लगे । बाण लगते ही वे हाथीकी तरह चिगड़ाते हैं । उनके पहाड़के समान धड़ कट-कटकर गिर रहे हैं ॥ ५ ॥

भट कटत तन सत खंड । पुनि उठत करि पाखंड ॥

नभ उड़त बहु भुज मुंड । विनु मौलि घावत रुंड ॥ ६ ॥

योद्धाओंके शरीर कटकर नैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं । वे फिर माया करके उठ खड़े होते हैं । आकाशमें बहुत-सी भुजाएँ और सिर उड़ रहे हैं तथा बिना सिरके धड़ दौड़ रहे हैं ॥ ६ ॥

खग कंक काक खगाल । कटकटहिं कठिन कराल ॥ ७ ॥

चौल [या कौंच], कोए आदि पक्षी और सियार कठौर और भयङ्कर कट-कट शब्द कर रहे हैं ॥ ७ ॥

छं०—कटकटहिं जंघुक भूत प्रेत पिशाच सर्पर संचहीं ।
बैताल बीर कपाल ताल बजार जोगिनि मंचहीं ॥
रघुबीर बाण प्रचंड खंडहिं भटन्ह के सर भुज सिरा ।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं घर घर घर करहिं भयकर गिरा ॥ १ ॥

सियार कटकटाते हैं; भूत, प्रेत और पिशाच खोंपड़ियाँ बटोर रहे हैं [अथवा खप्पर भर रहे हैं] ।
बीर-बैताल खोंपड़ियोंपर ताल दे रहे हैं और योगिनियाँ नाच रही हैं । भीरुबीरके प्रचण्ड बाण योद्धाओंके
बक्षःस्थल, भुजा और सिरोंके टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं । उनके घड़ जहाँ-तहाँ गिर पड़ते हैं, फिर उठते और
लड़ते हैं, और 'पकड़ो-पकड़ो' का भयङ्कर शब्द करते हैं ॥ १ ॥

मंताबरीं गहि उड़त गीघ पिशाच कर गहि घावहीं ।
संग्राम पुर बासी मनहु बहु बाल गुड़ी सड़ावहीं ॥
मारे पछारे सर बिदारे विपुल भट कहरत परे ।
अवलोकि निज दल विकल भट तिसिरादि सर दूषण फिरे ॥ २ ॥

अंतर्द्वारोंके एक छोरको पकड़कर गीघ उड़ते हैं और उन्हींका दूसरा छोर हाथसे पकड़कर
पिशाच दौड़ते हैं । ऐसा मालूम होता है मानो संग्रामरूपी नगरके निवासी बहुत-से बालक पतंग उड़ा रहे हों ।
अनेकों योद्धा मारे और पछाड़े गये, बहुत-से, जिनके हृदय विदीर्ण हो गये हैं, पड़े कराह रहे हैं । अपनी सेनाको
व्याकुल देखकर विशिरा और सर-दूषण आदि योद्धा श्रीरामजीकी ओर फिरे ॥ २ ॥

सर सक्ति तोमर परसु शूल कृपान पकाहि बारहीं ।
करि कोप श्रीरघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं ॥
प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका ।
दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायका ॥ ३ ॥

अनगिनत राक्षस क्रोध करके बाण, शक्ति, तोमर, फरसा, शूल और कृपाण एक ही बारमें
भीरुबीरपर छोड़ने लगे । प्रभुने पलभरमें शत्रुओंके बाणोंको नष्ट करके ललकारकर उनपर अपने बाण
छोड़े । सब राक्षस-सेनापतियोंके हृदयमें दस-दस बाण मारे ॥ ३ ॥

महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी ।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध घनी ॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक करषो ।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरयो ॥ ४ ॥

योद्धा पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं, फिर उठकर भिड़ते हैं । मरते नहीं, बहुत प्रकारकी अतिशय माया
रचते हैं । देवता यह देखकर डरते हैं कि प्रेत (राक्षस) चौदह हजार हैं और अयोध्यानाथ श्रीरामजी
अकेले हैं । देवता और मुनियोंको भयभीत देखकर मायापति प्रभुने एक बड़ा कौतुक किया, जिससे
शत्रुओंकी सेना एक दूसरेको रामरूप देखने लगी और आपसमें ही युद्ध करके लड़ मरी ॥ ४ ॥

दो०—राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान ।
करि उपाय रिपु मारे छन महुँ कृपानिधान ॥ २० (क) ॥

सब ['यही राम है, इसे मारो' इस प्रकार] राम-राम कहकर शरीर छोड़ते हैं और निर्वाण (मोक्ष) पद पाते हैं । कृपानिधान भीरामजीने यह उपाय करके क्षणभरमें शत्रुओंको मार डाला ॥ २० (क) ॥

हरषित चरषहिं सुमन सुर बाजहिं गगन निसान ।

अस्तुति करि करि सब चले सोमित विविध विमान ॥ २० (ख) ॥

देवता हरषित होकर फूल बरसाते हैं, आकाशमें नगाड़े बज रहे हैं । फिर वे सब स्तुति कर-करके अनेकों विमानोंपर सुशोभित हुए चले गये ॥ २० (ख) ॥

चौ०—जब रघुनाथ समर रिपु जीते । सुर नर मुनि सब के भय बीते ॥

तब लछिमन सीतहि ले आए । प्रभु पद परत हरषि उर लाए ॥ २१ ॥

जब भीरघुनाथजीने युद्धमें शत्रुओंको जीत लिया, और देवता, मनुष्य और मुनि सबके भय नष्ट हो गये, तब लक्ष्मणजी सीताजीको ले आये । चरणोंमें पड़ते हुए उनको प्रभुने प्रसन्नतापूर्वक उठाकर हृदयसे लगा लिया ॥ २१ ॥

सीता चितव स्याम मृदु गाता । परम प्रेम लोचन न भ्रमता ॥

पंचवटी बसि श्री रघुनायक । करत चरित सुर मुनि सुखदायक ॥ २२ ॥

सीताजी भीरामजीके श्याम और कोमल शरीरको परम प्रेमके साथ देख रही हैं । नेत्र अघाते नहीं हैं । इस प्रकार पञ्चवटीमें बसकर श्रीसीताजीसहित श्रीरघुनाथजी देवताओं और मुनियोंको सुख देनेवाले चरित्र करने लगे ॥ २२ ॥

धुआँ देखि खर दूषन केरा । जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा ॥

बोली वचन क्रोध करि भारी । देस कोस कै सुरति बिसारी ॥ २३ ॥

खर-दूषणका विध्वंस देखकर शूर्पणखाने जाकर रावणको भड़काया । वह बड़ा क्रोध करके वचन बोली—तूने देश और खजानेकी सुधि ही भुल दी ॥ २३ ॥

करसि पान सोवसि दिनु राती । सुधि नहिं तव सिर पर आराती ॥

राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा । हरिहि समर्थ बिनु सतकर्मा ॥ २४ ॥

विद्या बिनु विवेक उपजाएँ । श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ ॥

संग तें जती कुमंत्र ते राजा । मान ते ग्यान पान तें लाजा ॥ २५ ॥

शराव पी लेता है और दिन-रात पड़ा सोता रहता है । तुझे खबर नहीं है कि शत्रु तेरे सिरपर खड़ा है । नीतिके बिना राज्य और धर्मके बिना धन प्राप्त करनेसे, भगवान्को समर्पण किये बिना उत्तम कर्म करनेसे, और विवेक उत्पन्न किये बिना विद्या पढ़नेसे परिणाममें श्रम ही हाथ लगता है । विषय-संगसे संन्यासी, बुरी सलाहसे राजा, मानसे ज्ञान, मदिरापानसे लज्जा, ॥ २४-२५ ॥

प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी । नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥ २६ ॥

नम्रताके बिना (नम्रता न होनेसे) प्रीति और मद (अहंकार) से गुणवान् शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, ऐसी नीति मैंने सुनी है ॥ २६ ॥

सो०—रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि ।

अस कहि विविध विलाप करि लागी रोदन करन ॥ २१ (क) ॥

शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्पको छोटा करके नहीं समझना चाहिये । ऐसा कहकर शूर्पणखा अनेक प्रकारसे विलाप करके रोने लगी ॥ २१ (क) ॥

दो०—समा माझ परि व्याकुल बहु प्रकार कह रोइ ।

तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ ॥ २१ (ख) ॥

रावणकी सभाके बीच वह व्याकुल होकर पड़ी हुई बहुत प्रकारसे रो-रोकर कह रही है कि अरे दशग्रीव ! तेरे जीते-जी मेरी क्या ऐसी दशा होनी चाहिये ? ॥ २१ (ख) ॥

चौ०—सुनत सभासद उठे अकुलाई । समुझाई गहि बाँह उठाई ॥

कह लकेस कहसि निज बाता । केई तब नासा कान निपाता ॥ १ ॥

शूर्पणखाके वचन सुनते ही सभासद अकुल उठे । उन्होंने शूर्पणखाकी बाँह पकड़कर उसे उठाया और समझाया । लङ्कापति रावणने कहा—अपनी बात तो बता, किसने तेरे नाक-कान काट लिये ? ॥ १ ॥

अवध नृपति दसरथ के जाए । पुरुषसिंघ वन खेलन आए ॥

समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी । रहित निसाचर करिहहिं घरनी ॥ २ ॥

[वह बोली—] अवधनरेश दशरथके पुत्र, जो पुरुषोंमें सिंहके समान हैं, वनमें शिकार खेलने आये हैं । मुझे उनको करनी ऐसी समझ पड़ी है कि, वे पृथ्वीको राक्षसोंसे रहित कर देंगे ॥ २ ॥

जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन । अभय भए बिचरत मुनि कानन ॥

देखत बालक काल समाना । परम धीर घन्वी गुन नाना ॥ ३ ॥

जिनकी भुजाओंका बल पाकर हे दशमुख ! मुनिगण वनमें निर्भय होकर विचरने लगे हैं । वे देखनेमें तो बालक हैं, पर हैं कालके समान । वे परम धीर, श्रेष्ठ धनुर्वर और अनेकों गुणोंसे युक्त हैं ॥ ३ ॥

अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता । खल बध रत सुर मुनि सुखदाता ॥

सोभाधाम राम अस नामा । तिन्ह के संग नारि एक स्यामा ॥ ४ ॥

दोनों भाइयोंका बल और प्रताप अतुलनीय है । वे दुष्टोंके वध करनेमें लगे हैं और देवता तथा मुनियोंको सुख देनेवाले हैं । वे शोभाके धाम हैं, 'राम' ऐसा उनका नाम है । उनके साथ एक तरुणी सुन्दरी स्त्री है ॥ ४ ॥

रूपरासि बिधि नारि सँवारी । रति सतकोटि तासु बलिहारी ॥

तासु अनुज कांठ श्रुति नासा । सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा ॥ ५ ॥

बिधाताने उस स्त्रीको ऐसी रूपकी राशि बनाया है कि सौ करोड़ रति (कामदेवकी स्त्री) भी उसपर निछावर हैं । उन्हींके छोटे भाईने मेरे नाक-कान काट डाले । मैं तेरी बहिन हूँ, यह सुनकर वे मेरी मजाक उड़ाने लगे ॥ ५ ॥

खर दूषन सुनि लगे पुकारा । छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा ॥

खर दूषन तिसिरा कर घाता । सुनि दससीस जरे सब गाता ॥ ६ ॥

मेरी पुकार सुनकर खर-दूषण सहायता करने आये । पर उन्होंने क्षण भरमें सारी सेनाको मार डाला । खर, दूषण और विशिराका वध सुनकर रावणके सारे अंग जल उठे ॥ ६ ॥

दो०—सपनखहि समुझाई करि बल बोलेसि बहु भाँति ।

गयउ भवन अति सोचबस नीद परइ नहिं राति ॥ २२ ॥

उसने शूर्पणखाको समझाकर बहुत प्रकारसे अपने बलका बखान किया । किन्तु [मनमें] वह अत्यन्त चिन्तावश होकर अपने महलमें गया । उसे रातभर नींद नहीं पड़ी ॥ २२ ॥

चौ०—सुर नर असुर नाग खग माहीं । मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं ॥

खर दूषण मोहि सम बलवंता । तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता ॥ १ ॥

[वह मन-ही-मन विचार करने लगा—] देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियोंमें कोई ऐसा नहीं जो मेरे सेवककी भी बराबरीका हो । खर-दूषण तो मेरे ही समान बलवान् थे, उन्हें भगवान्‌के सिवा और कौन मार सकता है ! ॥ १ ॥

सुर रंजन भंजन महिभारा । जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ॥

तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ । प्रभु सर प्रान तजै भव तरऊँ ॥ २ ॥

देवताओंको आनन्द देनेवाले और पृथ्वीका भार हरण करनेवाले भगवान्‌ने यदि अवतार लिया है तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभुके बाण [के आघात] से प्राण छोड़कर भवसागरसे तर जाऊँगा ॥ २ ॥

होइहि भजनु न तामस देहा । मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ पहा ॥

जौं नररूप भूपसुत कोऊ । हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ॥ ३ ॥

इस तामस शरीरसे भजन तो होगा नहीं; अतएव मन, वचन और कर्मसे यही दृढ़ निश्चय है । और यदि वे मनुष्यरूप कोई राजकुमार होंगे तो उन दोनोंको रणमें जीतकर स्त्रीको हर लूँगा ॥ ३ ॥

चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ । बस मारीच सिंधुतट जहवाँ ॥

इहाँ राम जसि जुगुति बनाई । सुनहु उमा सो कथा सुहाई ॥ ४ ॥

[यों विचारकर] रावण रथपर चढ़कर अकेला ही वहाँ चला जहाँ समुद्रके तटपर मारीच रहता था । [शिवजी कहते हैं कि—] हे पार्वती ! यहाँ श्रीरामचन्द्रजीने जैसी युक्ति रची, वह सुन्दर कथा सुनो ॥ ४ ॥

दो०—लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कंद ।

जनकसुता सन बोले बिहसि कृपा सुख बृंद ॥ २३ ॥

लक्ष्मणजी जब कन्द-मूल-फल लेनेके लिये वनमें गये, तब [अकेलेमें] कृपा और सुखके समूह श्रीरामचन्द्रजी हँसकर जानकीजीसे बोले—॥ २३ ॥

चौ०—सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला । मैं कछु करबि ललित नरलीला ॥

तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा । जौं लगि करौ निसाचर नासा ॥ १ ॥

हे प्रिये ! हे सुन्दर पातिव्रत धर्मका पालन करनेवाली सुशीले ! सुनो । मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य-लीला करूँगा । इसलिये जबतक मैं राक्षसोंका नाश करूँ, तबतक तुम अग्निमें निवास करो ॥ १ ॥

जबहिं राम सब कहा बखानी । प्रभुपद धरि दियँ अनल समानी ॥

निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता । तैसइ सील रूप सुबिनीता ॥ २ ॥

श्रीरामजीने ज्यों ही सब समझाकर कहा, त्यों ही श्रीसीताजी प्रभुके चरणोंको हृदयमें धरकर अग्निमें समा गयीं । सीताजीने अपनी ही छायामूर्ति वहाँ रख दी, जो उनके-जैसे ही शील-स्वभाव और रूपवाली तथा वैसे ही विनम्र थी ॥ २ ॥

कल्याण

(१) मारीचके पास रावण



होहु कपटमृग तुम्ह छलकारी ।
जेहि बिधि हरि आनों नृपनारी ॥
[पृष्ठ ५७३]

(२) स्वर्णमृगके पीछे



प्रगटन दुरत करत छल भूरी ।
एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी ॥
[पृष्ठ ५७५]

(३) सीताविलाप



रा ! जग एक दीग खुगया ।
केहिं आपगव विमारेहु दाया ॥
[पृष्ठ ५७७]

(४) रामका प्रेम



प्रकल चले लका तक पौनी ।
[पृष्ठ ५७९]

लछिमनहूँ यह मरसु न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ॥

दसमुख गयउ जहाँ मारीचा । नाह माथ स्वारथ रत नीचा ॥ ३ ॥

भगवान् ने जो कुछ लीला रची, इस रहस्यको लक्ष्मणजीने भी नहीं जाना । स्वार्थपरायण और नीच रावण वहाँ गया जहाँ मारीच था, और उसको सिर नवाया ॥ ३ ॥

नयनि नीच कै भति दुखदाई । जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ॥

भयदायक बाल कै प्रिय बानी । जिमि अकाल के कुसुम भवानी ॥ ४ ॥

नीचका झुकना (नम्रता) भी अत्यन्त दुःखदायी होता है । जैसे अंकुश, धनुष, सों और बिलोका झुकना । हे भवानी ! दुष्टकी मीठी वाणी भी भय देनेवाली होती है, जैसे बिना ऋतुके फूल ! ॥ ४ ॥

दो०—करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात ।

कवन हेतु मन व्यग्र अति अकसर आयहु तात ॥ २४ ॥

तब मारीचने उसकी पूजा करके आदरपूर्वक बात पूछी—हे तात ! आपका मन किस कारण इतना अधिक व्यग्र है और आप अकेले आये हैं ? ॥ २४ ॥

चो०—दसमुख सकल कथा तेहि आरें । कही सहित अभिमान अभागें ॥

होहु कपटमृग तुम्ह छलकारी । जेहि बिधि हरि आनौ नृपनारी ॥ १ ॥

भाग्यहीन रावणने सारी कथा अभिमानसहित उसके सामने कही [और फिर कहा—] तुम छल करनेवाले कपटमृग बनो, जिस उपायसे मैं उस राजव्यूहको हर लाऊँ ॥ १ ॥

तेहिं पुनि कहा सुनहु दससांसा । ते नररूप चराचर ईसा ॥

तासों ताल बयरु नहिं कीजै । मारें मरिअ जिआएँ जीजै ॥ २ ॥

तब मारीचने कहा—हे दशशेखर ! सुनिये । वे मनुष्यरूपमें चराचरके ईश्वर हैं । हे तात ! उनसे बैर न कीजिये । उन्हींके मारनेसे मरना और उनके जिघ्रसे जीना होना है (सबका जीवन-मरण उन्हींके अवान है) ॥ २ ॥

मुनिमख राखन गयउ कुमारा । बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा ॥

सत जोजन आयउँ छन माहीं । तिन्ह सन बयरु किएँ भल नाहीं ॥ ३ ॥

यही राजकुमार मुनि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाके लिये गये थे । उस समय श्रीरघुनाथजीने बिना फलका बाण मुझे मारा था, जिससे मैं क्षणभरमें सो योजनपर आ गिरा । उनसे बैर करनेमें भलाई नहीं है ॥ ३ ॥

भइ मम कोट भृंग की नाई । जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई ॥

जौ नर तात तदपि अति सूरा । तिन्हहि विरोधि न आहहि पूरा ॥ ४ ॥

मेरी दशा तो भृंगीके कीड़ेकी-सी हो गयी है । अब मैं जहाँ-तहाँ श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंको ही देखता हूँ । और हे तात ! यदि वे मनुष्य हैं, तो भी बड़े शूवीर हैं; उनसे विरोध करनेमें पूरा न पड़ेगा (सफलता नहीं मिलेगी) ॥ ४ ॥

दो०—जेहि ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड ।

खर दूधन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंद ॥ २५ ॥

जिसने ताड़का और सुबाहुको मारकर शिवजीका धनुष तोड़ दिया और खर, दूषण और त्रिशिराका वध कर डाला, ऐसा प्रचण्ड बली भी कहीं मनुष्य हो सकता है ! ॥२५॥

चौ०—जाहु भवन कुल कुसल बिचारो । सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी ॥

गुरु जमि मूढ़ करसि मम बोधा । कहु जग मोहि समान को जोधा ॥ १ ॥

अतः अपने कुलकी कुशल विचारकर आप लोट जाइये । यह सुनकर रावण जल उठा और उसने बहुत-सी गालियाँ दीं (दुर्वचन कहे) । [कहा—] भरे मूर्ख ! तू गुरुकी तरह मुझे ज्ञान सिखाता है ! बता तो, संसारमें मेरे समान योद्धा कौन है ! ॥ १ ॥

तब मारीच हृदय अनुमाना । नवहि विरोधें नहिं कल्याणा ॥

सखी मर्मी प्रभु सठ धनी । वैद बंदि कवि भानसगुनी ॥ २ ॥

तब मारीचने हृदयमें अनुमान किया कि शत्रु (शत्रुधारी), मर्मी (भेद जाननेवाला), समर्थ स्वामी, मूर्ख, धनवान्, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया, इन नौ व्यक्तियोंसे विरोध (वैर) करनेमें कल्याण (कुशल) नहीं होता ॥ २ ॥

उभय भाँति देखा निज मरना । तब ताकिसि रघुनाथक सरना ॥

उतर देत मोहि बधब अभागें । कस न मरां रघुपति सर लागें ॥ ३ ॥

जब मारीचने दोनों प्रकारसे अपना मरण देखा, तब उसने श्रीरघुनाथजीकी शरण तकी (अर्थात् उनकी शरण जानेमें ही कल्याण समझा) । [सोचा कि] उतर देते ही (नहीं करते ही) यह अभागा मुझे मार डालेगा, फिर श्रीरघुनाथजीके बाण लगानेसे ही क्यों न मरूँ ! ॥ ३ ॥

अस जियँ जानि दसानन संग । चला राम पद प्रेम अमंगा ॥

मन अति हरय जनाव न तेही । आहु देखिहउँ परम सनेहो ॥ ४ ॥

हृदयमें ऐसा समझकर वह रावणक साथ चला । श्रीरामजीके चरणोंमें उसका अखण्ड प्रेम है । उसके मनमें इस बातका अत्यन्त हर्ष है कि आज मैं अपने परम स्नेहा श्रीरामजीका देखूँगा; किन्तु उसने यह हर्ष रावणको नहीं जनाया ॥ ४ ॥

छं०—निज परम प्रीतम देखि लोचन सुकुल करि सुख पाइहों ।

श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहों ॥

निर्बान दायक क्रोध जाकर भगति अवसहि बसकरी ।

निज पानि लर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी ॥

[वह मन-ही-मन सोचने लगा—] अपने परम प्रियतमको देखकर नेत्रोंको सकुञ्च करके मुल पाऊँगा । जानकीजीसहित और छोटे भाई लक्ष्मणजीसमेत कृपानिवान श्रीरामजीके चरणोंमें मन लगाऊँगा । जिनका क्रोध भी मोक्ष देनेवाला है, और जिनकी भक्ति उन अवश (किंशक वशमें न होनेवाले, स्वतन्त्र भगवान्) को भी वशमें करनेवाली है, अहा ! वे ही आनन्दके समुद्र भीहरि अपने हाथोंसे बाण सन्धानकर मेरा वध करेंगे ।

दो०—मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान ।

फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन ॥२६॥

धनुष-बाण धारण किये मेरे पीछे-पीछे पृथ्वीपर [पकड़नेके लिये] दौड़ते हुए प्रभुको मैं फिर-फिरकर देखूँगा । मेरे समान अन्य दूसरा कोई नहीं है ॥२६॥

कल्याण

स्वर्णमृग



सुनहु देव रघुवीर छुपाला । पहि सग कर अति सुंदर छाला ॥
सत्यसेध प्रभु बधि करि पही । आनहु जर्म कहति बेदेही ॥

बो—तेहि बन निकट दसानन गयऊ । तब मारीच कपटमृग भयऊ ॥

अति विचित्र कछु बरनि न आई । बनक देह मनिरचित बनाई ॥ १ ॥

जब रावण उस बनके (जिस वनमें श्रीरघुनाथजी रहते थे) निकट पहुँचा, तब मारीच कपटमृग बन गया । वह अत्यन्त ही विचित्र था, कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता । सोनेका शरीर मणियोंसे जड़कर बनाया था ॥ १ ॥

सीताँ परम रुखिर मृग देखा । अंग अंग सुमनोहर बेपा ॥

सुनहु देव रघुवीर कृपाला । एहि मृग कर अति सुंदर छाला ॥ २ ॥

सीताजीने उस परम सुन्दर हिरनको देखा, जिसके अंग-अंगकी छटा अत्यन्त मनोहर थी । [वे कहने लगीं—] हे देव ! हे कृपालु रघुवीर ! सुनिये । इस मृगकी छाल बहुत सुन्दर है ॥ २ ॥

सत्यसंघ प्रभु बधि करि एही । आनहु चर्म कहति वैदेही ॥

तब रघुपति जानत सब कारन । उठे हरषि सुरकाजु सँवारन ॥ ३ ॥

आनकीजीने कहा—हे सत्यप्रतिष्ठ प्रभो ! इसको मारकर इसका चमड़ा ला दीजिये । तब भीरघुनाथजी, मारीचके कपट मृग बननेका सब कारण जानते हुए भी, देवताओंका कार्य बनानेके लिये हर्षित होकर उठे ॥ ३ ॥

मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा । करतल चाप रुखिर सर साँघा ॥

प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई । फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई ॥ ४ ॥

हिरनको देखकर श्रीरामजीने कमरमें फेंटा बाँधा और हाथमें धनुष लेकर उसपर सुन्दर (दिव्य) बाण चढ़ाया । फिर प्रभुने लक्ष्मणजीको समझाकर कहा—हे भाई ! वनमें बहुत-से राक्षस फिरते हैं ॥ ४ ॥

सीता केरि करेहु रखवारी । बुधि बिबेक बल समय बिचारी ॥

प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी । घाय रामु सरासन साजी ॥ ५ ॥

तुम बुद्धि और विवेकके द्वारा बल और समयका विचार करके सीताकी रखवाली करना । प्रभुको देखकर मृग भाग चला । श्रीरामचन्द्रजी भी धनुष चढ़ाकर उसके पीछे दौड़े ॥ ५ ॥

निगम नेति सिध ध्यान न पावा । मायामृग पाछें सो धावा ॥

कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई । कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छपाई ॥ ६ ॥

वेद-जिनके विषयमें 'नेति-नेति' कहकर रह जाते हैं और शिवजी भी जिन्हें ध्यानमें नहीं पाते (अर्थात् जो मन और वाणीसे नितान्त परे हैं), वे ही भीरगमजी मायासे बने हुए मृगके पीछे दौड़ रहे हैं ! वह कभी निकट आ जाता है और फिर दूर भाग जाता है । कभी तो प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है ॥ ६ ॥

प्रगटत दुरत करन छल भूरी । एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी ॥

तब तकि राम कठिन सर मारा । घरनि परेउ करि घोर पुकारा ॥ ७ ॥

इस प्रकार प्रकट होता और छिपता हुआ तथा बहुतेरे छल करता हुआ वह प्रभुको दूर ले गया । तब श्रीरामचन्द्रजीने तककर (निशाना साधकर) कठोर बाण मारा, जिसके लगते ही वह घोर शब्द करके पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ७ ॥

लछिमन कर प्रथमहि लै नामा । पाछें सुमिरेसि मन महुँ रामा ॥

प्राण तजत प्रगटेसि निज देहा । सुमिरेसि रामु समेत सनेहा ॥ ८ ॥

पहले लक्ष्मणजीका नाम लेकर उसने पीछे मनमें श्रीरामजीका स्मरण किया । प्राणत्याग करते समय उसने अपना राक्षसी शरीर प्रकट किया और प्रेमसहित श्रीरामजीका स्मरण किया ॥ ८ ॥

अंतर प्रेम तासु पहिचाना । मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना ॥ ९ ॥

सुजान (सर्वज्ञ) श्रीरामजीने उसके हृदयके प्रेमको पहचानकर उसे वह गति (अपना परमपद) दी जो मुनियोंको भी दुर्लभ है ॥ ९ ॥

दो०—बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुनगाथ ।

निज पद दीन्ह असुर कहूँ दीनबंधु रघुनाथ ॥ २७ ॥

देवता बहुत-से फूल बरसा रहे हैं और प्रभुके गुणोंकी गाथाएँ (स्तुतियाँ) गा रहे हैं [कि] श्रीरघुनाथजी ऐसे दीनबन्धु हैं कि उन्होंने असुरको भी अपना परमपद दे दिया ॥ २७ ॥

चौ०—खल बधि तुरत फिरे रघुवीरा । सोइ चाप कर कटि सूनीरा ॥

आरत गिरा सुनो जब सीता । कह लछिमन सन परम समीता ॥ १ ॥

दुष्ट मारीचको मारकर श्रीरघुवीर तुरंत लौट पड़े । हाथमें धनुष और कमरमें तरकस शोभा दे रहा है । इधर जब सीताजीने दुःखमयी बाणी (मरते समय मारीचकी 'हा लक्ष्मण' की आवाज) सुनी तो वे बहुत ही भयभीत होकर लक्ष्मणजीसे कहने लगीं—॥ १ ॥

आहु बेगि संकट अति भ्राता । लछिमन बिहसि कहा सुनु माता ॥

भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई । सपनेहुँ संकट परइ कि सोई ॥ २ ॥

तुम शीघ्र जाओ, तुम्हारे भाई बड़े संकटमें हैं । लक्ष्मणजीने हँसकर कहा—हे माता ! सुनो, जिनके भृकुटिविलास (भौंके इशारे) मात्रसे सारी सृष्टिका लय (प्रलय) हो जाता है, वे श्रीरामजी क्या कभी स्वप्नमें भी संकटमें पड़ सकते हैं ? ॥ २ ॥

मरम वचन जब सीता बाला । हरिप्रेरित लछिमन मन डोला ॥

वन दिसि देव सौपि सब काहू । चले जहाँ रावन ससि राहू ॥ ३ ॥

इसपर जब सीताजी कुछ मर्म-वचन (हृदयमें चुभनेवाले वचन) कहने लगीं, तब भगवान्की प्रेरणासे लक्ष्मणजीका मन भी चञ्चल हो उठा । वे श्रीसीताजीको वन और दिशाओं आदिके देवताओंको सौंपकर वहाँ चले जहाँ रावणरूपी चन्द्रमाके लिये राहुरूप श्रीरामजी थे ॥ ३ ॥

सून बीच दसकंधर देखा । आवा निकट जती कैं बेषा ॥

जाकैं डर सुर असुर डेराहीं । निसि न नीद दिन अन्न न खाहीं ॥ ४ ॥

रावण सूना मौका देखकर यति (संन्यासी) के वेशमें श्रीसीताजीके समीप आया । जिसके डरसे देवता और दैत्यतक इतना डरते हैं कि रातको नींद नहीं आती और दिनमें भ्रष्ट अन्न नहीं खाते—॥ ४ ॥

सो दससीस खान की नाई । इत उत चितइ चला भड़िहाई ॥

इमि कुपंथ पग देत खगेसा । रह न तेज तन बुधि बल लेसा ॥ ५ ॥

वहा दस सिरवाला रावण कुत्तेकी तरह इधर-उधर ताकता हुआ भड़िहाई * (चोरी) के लिये चला । हे गरुड़जी ! इस प्रकार कुमार्गपर पैर रखते ही शरीरमें तेज तथा बुद्धि एवं बलका लेश भी नहीं रह जाता ॥ ५ ॥

* सूना पाकर कुत्ता चुपके-से बर्तन-भाँड़ोंमें मुँह डालकर कुछ चुरा ले जाता है उसे 'भड़िहाई' कहते हैं ।

नाना बिधि करि कथा सुहाई । राजनीति भय प्रीति देखाई ॥

कह सीता सुनु जती गोसाई । बोलैहु बचन दुष्ट की नाई ॥ ६ ॥

रावणने अनेकों प्रकारकी सुहावनी कथाएँ रचकर सीताजीको राजनीति, भय और प्रेम दिखलवाया । सीताजीने कहा—हे यति गोसाई ! तुमने तो दुष्टकी तरह वचन कहे ॥ ६ ॥



क्रोधवन्तं तव गवत लीन्द्रिमि रथ वेडाड । चला गगतपथ आतुर मयं रथ हाकि न जाइ ॥

तब रावन निज रूप देखावा । भई सभय जब नाम सुनावा ॥

कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा । आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा ॥ ७ ॥

तब रावणने अपना असली रूप दिखलाया, और जब नाम सुनाया तब तो सीताजी भयभीत हो गयीं । उन्होंने गहरा धीरज धरकर कहा—अरे दुष्ट ! खड़ा तो रह, प्रभु आ गये ॥ ७ ॥

जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा । भयसि कालवस निसिचर नाहा ॥

सुनत बचन दससीस रिसाना । मन महुँ चरन बंदि सुख माना ॥ ८ ॥

जैसे सिंहकी स्त्रीको तुच्छ खरगोश चाहे, वैसे ही अरे राक्षसराज ! तू [मेरी चाह करके] कालके वश हुआ है । ये वचन सुनते ही रावणको क्रोध आ गया । परन्तु मनमें उसने सीताजीके चरणोंकी वन्दना करके सुख माना ॥ ८ ॥

दो०—क्रोधवन्त तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ ।

चला गगनपथ आतुर मयँ रथ हाँकि न जाइ ॥ २८ ॥

फिर क्रोधमें भरकर रावणने सीताजीको रथपर बैठा लिया और वह बड़ी उतावलीके साथ आकाशमार्गसे चला । किन्तु डरके मारे उससे रथ हाँका नहीं जाता था ॥ २८ ॥

चौ०—हा जग एक बीर रघुराया । केहिं अपराध बिसारेहु दायी ॥

आरति हरन सरन सुखदायक । हा रघुकुल सरोज दिननायक ॥ २ ॥

[सीताजी विलाप कर रही थी—] हा जगत्के अद्वितीय बीर श्रीरघुनाथजी ! आपने किस अपराधसे मुझपर दया भुल दी । हे दुःखोंके हरनेवाले, हे शरणागतको सुख देनेवाले, हा रघुकुलरूपी कमलके सूर्य ! ॥ १ ॥

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा । सो फलु पायउँ कीन्हैउँ रोसा ॥

बिविध बिलाप करति बैदेही । भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही ॥ २ ॥

हा लक्ष्मण ! तुम्हारा दोष नहीं है । मैंने क्रोध किया, उसका फल पाया । श्रीजानकीजी बहुत प्रकारसे विलाप कर रही हैं—हा ! प्रभुकी कृपा तो बहुत है, परन्तु वे स्नेही प्रभु बहुत दूर रह गये हैं ॥ २ ॥

बिपत्ति मोरि को प्रभुहि सुनावा । पुरोडास बह रासभ खावा ॥

सीता कै बिलाप सुनि भारी । भय चराचर जीव दुखारी ॥ ३ ॥

प्रभुको मेरी यह विपत्ति कौन सुनावे ? उसके अन्नको गदहा खाना चाहता है ! सीताजीका भारी विलाप सुनकर जड़-चेतन सभी जीव दुखी हो गये ॥ ३ ॥

गोधराज सुनि आरत बानी । रघुकुल तिलक नारि पहिचानी ॥

अधम निसाचर लीन्हें जाई । जिमि मलेच्छ बस कपिला गाई ॥ ४ ॥

गोधराज जटायुने सीताजीकी दुःखभरी वाणी सुनकर पहिचान लिया कि ये रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी हैं । [उसने देखा कि] नीच राक्षस इनको [बुरी तरह] लिये जा रहा है, जैसे कपिला गाय मलेच्छके पाले पड़ गयी हो ॥ ४ ॥

सीते पुत्रि करसि जनि आसा । करिहउँ जातुधान कर नासा ॥

घावा क्रोधवन्त खग कैसैं । छूटइ पवि परबत कहूँ जैसैं ॥ ५ ॥

[वह बोला—] हे सीते पुत्री ! भय मत कर । मैं इस राक्षसका नाश करूँगा । [यह कहकर] वह पक्षी क्रोधमें भरकर कैसे दौड़ा, जैसे पर्वतकी ओर वज्र छूटता हो ॥ ५ ॥

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही । निर्भय चलेसि न जानेहि मोही ॥

आवत देखि कृतांत समाना । फिरि दसकंधर कर अनुमाना ॥ ६ ॥

[उसने ललकारकर कहा—] रे-रे दुष्ट ! खड़ा क्यों नहीं होता ? निडर होकर चल दिया ! मुझे तूने नहीं जाना ? उसको यमराजके समान आता हुआ देखकर रावण घूमकर मनमें अनुमान करने लगा— ॥ ६ ॥

की मैनाक कि खगपति होई । मम बल जान सहित पति सोई ॥

जाना जरठ जटायू पहा । मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा ॥ ७ ॥

यह या तो मैनाक पर्वत है, या पक्षियोंका स्वामी गरुड़ ! पर वह (गरुड़) तो अपने स्वामी विष्णुसहित मेरे बलको जानता है ! [कुछ पास आनेपर] रावणने उसे पहचान लिया [और बोला—] यह तो बूढ़ा जटायु है ! यह मेरे हाथरूपी तीर्थमें शरीर छोड़ेगा ॥ ७ ॥

सुनत गीध क्रोधातुर धावा । कह सुनु रावन मोर सिखावा ॥

तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू । नाहिं त अस होइहि बहुबाहू ॥ ८ ॥

यह सुनते ही गीध क्रोधमें भरकर बड़े वेगसे दौड़ा और बोला—रावण ! मेरी सिखावन सुन । जानकीजीको छोड़कर कुशलपूर्वक अपने घर चला जा । नहीं तो हे बहुत भुजाओंवाले ! ऐसा होगा कि— ॥ ८ ॥

राम रोप पावक अति घोरा । होइहि सकल सलभ कुल तोरा ॥

उतर न देत दसानन जोधा । तबहिं गीध धावा करि क्रोधा ॥ ९ ॥

श्रीरामजीके क्रोधरूपी अत्यन्त भयानक अग्निमें तेरा सारा वंश पतिंगा होकर भस्म हो जायगा । योद्धा रावण कुछ उत्तर नहीं देता । तब गीध क्रोध करके दौड़ा ॥ ९ ॥

घरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा । सीतहि राखि गीध पुनि फिरा ॥

चोचन्ह मारि बिदारेसि देही । दंड एक भइ मुरुछा तेही ॥ १० ॥

उसने रावणके बाल पकड़कर उसे रथके नीचे उतार लिया । रावण पृथ्वीपर गिर पड़ा । गीध सीताजीको एक ओर बैठाकर फिर लौटा और चोंचोंसे मार-मारकर रावणके शरीरको विदीर्ण कर डाला । इससे उसे एक घड़ीके लिये मूर्च्छा हो गयी ॥ १० ॥

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना । काड़ेसि परम कराल कृपाना ॥

काटेसि पंख परा खग घरनी । सुमिरि राम करि अदभुत करनी ॥ ११ ॥

तब खिसियाये हुए रावणने क्रोधयुक्त होकर अत्यन्त भयानक कटार निकाली और उससे जटायुके पंख काट डाले । पक्षी (जटायु) श्रीरामजीकी अद्भुत लीलाका स्मरण करके पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ११ ॥

सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी । चला उताइल आस न धोरी ॥

करति विलाप जाति नभ सीता । व्याध बिबस जनु मृगी समीता ॥ १२ ॥

सीताजीको फिर रथपर चढ़ाकर रावण बड़ी उतावलीके साथ चला । उसे भय कम न था ! सीताजी आकाशमें विलाप करती हुई जा रही हैं । मानो व्याधके बशमें पड़ी हुई कोई भयभीत हिरनी हो ! ॥ १२ ॥

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी । कहि हरिनाम दीन्ह पट डारी ॥
एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ । बन असोक महुँ राखत भयऊ ॥१३॥

पर्वतपर बैठे हुए बंदरोंको देखकर सीताजीने हरिनाम लेकर वस्त्र डाल दिया । इस प्रकार वह सीताजीको ले गया और उन्हें अशोकवनमें जा रक्खा ॥ १३ ॥

दो०—हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ ।

तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ ॥२९ (क) ॥

सीताजीको बहुत प्रकारसे भय और प्रीति दिखलाकर जब वह दुष्ट हार गया, तब उन्हें यत्न कराके (सब व्यवस्था ठीक कराके) अशोक वृक्षके नीचे रख दिया ॥ २९ (क) ॥

नवाह्न पारायण छठा विश्राम

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम ।

सो छवि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम ॥ २९ (ख) ॥

जिस प्रकार कपटमृगके साथ श्रीरामजी दौड़ चले थे, उसी छविकी हृदयमें रखकर वे हरिनाम (रामनाम) रटती रहती हैं ॥ २९ (ख) ॥

चौ०—रघुपति अनुजहि आवत देखी । बाह्रिज चिंता कीन्हि बिसेयी ॥

जनकसुता परिहरिहु अकेली । आयहु तात वचन मम पेली ॥ १ ॥

इधर श्रीरघुनाथजीने छोटे भाई लक्ष्मणजीको आते देखकर बाह्यरूपमें बहुत चिन्ता की और कहा—हे भाई ! तुमने जानकीको अकेली छोड़ दिया और मेरा वचन टालकर यहाँ चले आये ! ॥ १ ॥

निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं । मम मन सीता आश्रम नाहीं ॥

गहि पद कमल अनुज कर जोरी । कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी ॥ २ ॥

राक्षसोंके झुंड वनमें फिरते रहते हैं । मेरे मनमें ऐसा आता है कि सीता आश्रममें नहीं है । छोटे भाई लक्ष्मणजीने श्रीरामजीके चरणकमलोंको पकड़कर हाथ जोड़कर कहा—हे नाथ ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है ॥ २ ॥

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ । गोदावरि तट आश्रम जहवाँ ॥

आश्रम देखि जानकी हीना । भय बिकल जस प्राकृत दीना ॥ ३ ॥

लक्ष्मणजीसहित प्रभु श्रीरामजी वहाँ गये जहाँ गोदावरीके तटपर उनका आश्रम था । आश्रमको जानकीजीसे रहित देखकर श्रीरामजी साधारण मनुष्यकी भाँति व्याकुल और दीन (दुखी) हो गये ॥ ३ ॥

हा गुनखानि जानकी सीता । रूप सील व्रत नेम पुनीता ॥

लछिमन समुझाय बहु भाँती । पूछत चले लता तरु पाँती ॥ ४ ॥

[वे विलाप करने लगे—] हा गुणोंकी खानि जानकी ! हा रूप, शील, व्रत और नियमोंमें पवित्र सीते ! लक्ष्मणजीने बहुत प्रकारसे समझाया, तब श्रीरामजी लताओं और वृक्षोंकी पंक्तियोंसे पूछते हुए चले—॥ ४ ॥

हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी । तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥

खंजन सुक कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिला प्रवीना ॥ ५ ॥

कुंद कली दाहिम दामिनी । कमल सरद ससि अहिभामिनी ॥

बरुन पास मनोज घनु हंसा । गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥ ६ ॥

हे पक्षियो ! हे पशुओ ! हे भौरोंकी पंक्तियो ! तुमने कही मृगनयनी सीताको देखा है ! खंजन, तोता, कबूतर, हिरन, मछली, भौरोंका समूह, प्रवीण कोयल, कुन्दकली, अनार, बिजली, कमल, शरदका चन्द्रमा और नागिनी, वरुणका पाश, कामदेवका घनुष, हंस, गज और सिंह, ये सब आज अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं ॥ ५-६ ॥

श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं । नेकु न संक सकुच मन माहीं ॥

सुनु जानकी तोहि बिनु आजू । हरषे सकल पाइ जुनु राजू ॥ ७ ॥

बेल, सुवर्ण और केला हर्षित हो रहे हैं । इनके मनमें जरा भी शङ्का और संकोच नहीं है । हे जानकी ! सुनो, तुम्हारे बिना ये सब आज ऐसे हर्षित हैं मानो राज पा गये हों । (अर्थात् तुम्हारे अंगोंके सामने ये सब तुच्छ, अपमानित और लज्जित थे । आज तुम्हें न देखकर ये अपनी शोभाके अभिमानमें फूल रहे हैं) ॥ ७ ॥

किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं । प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं ॥

एहि बिधि खोजत विलपत स्वामी । मनहुँ महा बिरही अति कामी ॥ ८ ॥

तुमसे यह अनख (स्पर्धा) कैसे सही जाती है ? हे प्रिये ! तुम शीघ्र ही प्रकट क्यों नहीं होती ? इस प्रकार [अनन्त ब्रह्माण्डोंके अथवा महामहिमामयी स्वरूपाशक्ति श्रीसीताजीके] स्वामी श्रीरामजी सीताजीको खोजते हुए ऐसा विलाप करते हैं जैसे कोई महाविरही और अत्यन्त कामी पुरुष हो ॥ ८ ॥

पूरन काम राम सुखरासी । मनुज चरित कर अज अविनासी ॥

आगें परा गीघपति देखा । सुमिरत रामचरन जिन्ह रेखा ॥ ९ ॥

पूर्णकाम, आनन्दकी राशि, अजन्मा और अविनाशी श्रीरामजी मनुष्योंकेसे चरित्र कर रहे हैं । आगे जानेपर उन्होंने गृध्रपति जटायुको पड़ा देखा । वह श्रीरामजीके चरणोंका स्मरण कर रहा था, जिनमें ध्वजा-कुलिश आदिकी रेखाएँ (चिह्न) हैं ॥ ९ ॥

दो०—कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर ।

निरखि राम छविधाम मुख बिगत भई सब पीर ॥ ३० ॥

कृपासागर श्रीरघुवीरने अपने कर-कमलसे उसके सिरका स्पर्श किया (उसके सिरपर कर-कमल फेर दिया) । शोभाधाम श्रीरामजीका [परम सुन्दर] मुख देखकर उसकी सब पीड़ा जाती रही ॥ ३० ॥

चौ०—तब कह गीघ वचन धरि धीरा । सुनहु राम भंजन भवभीरा ॥

नाथ दसानन यह गति कीन्ही । तेहिं खल जनकसुता हरि लीन्ही ॥ १ ॥

तब धीरज धरकर गीघने यह वचन कहा—हे भव (जन्म-मृत्यु) के भयका नाश करनेवाले श्रीराम-जी ! सुनिये । हे नाथ ! रावणने मेरी यह दशा की है । उसी दुष्टने जानकीजीको हर लिया है ॥ १ ॥

लै दल्लिन दिसि गयउ गोसाईं । बिलपनि अति कुररी की नाई ॥

दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राणा । चलन चाहत अब कृपानिधाना ॥ २ ॥

हे गोसाईं ! वह उन्हें लेकर दक्षिण दिशाको गया है । सीताजी कुररी (कुर्ज) की तरह अत्यन्त विलाप कर रही थीं । हे प्रभो ! मैंने आपके दर्शनोंके लिये ही प्राण रोक रखे थे । हे कृपानिधान ! अब ये चलना चाहते हैं ॥ २ ॥

राम कहा तनु राखहु ताता । मुख मुसुकाइ कही तेहिं बाता ॥

जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे तात ! शरीरको बनाये रखिये । तब उसने मुस्कराते हुए मुँह यह बात कही—मरते समय जिनका नाम मुखमें आ जानेसे अधम (महान् पापी) भी मुक्त हो जाता है, ऐसा वेद गाते हैं—॥ ३ ॥

कल्याण

जटाधुर प्रेम



जल भरि नयन कहहिं रघुनाई । तात करम निज तें गति पाई ॥

सो मम लोचन गोचर आगें । राखौ देह नाथ केहि खाँगें ॥

जल भरि नयन कहहिं रघुराई । तात कर्म निज तें गति पाई ॥ ४ ॥

वही (आप) मेरे नेत्रोंके विषय होकर सामने खड़े हैं । हे नाथ ! अब मैं किस कमीकी पूर्तिके लिये देहको रक्खूँ ? नेत्रोंमें जल भरकर श्रीरघुनाथजी कहने लगे—हे तात ! आपने अपने श्रेष्ठ कर्मोंसे दुर्लभ गति पायी है ॥ ४ ॥

परहित बस जिन्ह के मन माहीं । तिन्ह कहूँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

तनु तजि तात जाहु मम धामा । देउँ काह तुम्ह पूरन कामा ॥ ५ ॥

जिनके मनमें दूसरेका हित बसता है (समाया रहता है), उनके लिये जगत्में कुछ भी (कोई भी गति) दुर्लभ नहीं है । हे तात ! शरीर छोड़कर आप मेरे परम धाममें जाइये । मैं आपको क्या दूँ ? आप तो पूर्णकाम हैं (सब कुछ पा चुके हैं) ॥ ५ ॥

दो०—सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ ।

जौ मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ ॥ ३१ ॥

हे तात ! सीताहरणकी बात आप जाकर पिताजीसे न कहियेगा । यदि मैं राम हूँ तो दशमुख रावण कुटुम्बसहित वहाँ आकर स्वयं ही कहेगा ॥ ३१ ॥

चो०—गीध देह तजि धरि हरिरूपा । भूषन बहु पट पीत अनूपा ॥

श्याम गात विसाल भुज चारी । अस्तुति करत नयन भरि बारी ॥ १ ॥

जटायुने गीधकी देह त्यागकर हरिकारूप धारण किया और बहुतसे अनुपम (दिव्य) आभूषण और [दिव्य] पीताम्बर पहन लिये । श्याम शरीर है, विशाल चार भुजाएँ हैं और नेत्रोंमें [प्रेम तथा आनन्दके आँसुओंका] जल भरकर वह स्तुति कर रहा है—॥ १ ॥

छंद—जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही ।

दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही ॥

पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं ।

नित नौमि राम कृपाल बाहु विसाल भव भय मोचनं ॥ १ ॥

हे रामजी ! आपकी जय हो ! आपका रूप अनुपम है; आप निर्गुन हैं, सगुण हैं और सत्य ही गुणोंके (मायाके) प्रेरक हैं । इस सिरवाले रावणकी प्रचण्ड भुजाओंको खण्ड-खण्ड करनेके लिये प्रचण्ड बाण धारण करनेवाले, पृथ्वीको सुशोभित करनेवाले, जलयुक्त मेघके समान श्याम शरीरवाले, कमलके समान मुख और [लाल] कमलके समान विशाल नेत्रोंवाले, विशाल भुजाओंवाले और भव-भयसे छुड़ानेवाले कृपाल श्रीरामजीको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचरं ।

गोविंद गोपर द्वंद्वहर विग्यानघन धरनीधरं ॥

जे राममंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं ।

नित नौमि राम अकामप्रिय कामादि खलदल गंजनं ॥ २ ॥

आप अपरिमित बलवाले हैं; अनादि, अजन्मा, अव्यक्त (निराकार), एक, अगोचर (अलक्ष्य), गोविन्द (वेदवाक्योंद्वारा जानने योग्य), इन्द्रियोसे अतीत, जन्म-मरण, सुख-दुःख, हर्ष-शोकादि द्वन्द्वोंको

हरनेवाले, विज्ञानकी घन मूर्ति और पृथ्वीके आधार हैं। तथा जो संत राम-मन्त्रको जपते हैं, उन अनन्त सेवकोंके मनको आनन्द देनेवाले हैं। उन निष्कामप्रिय (निष्काम जनोंके प्रेमी अथवा उन्हें प्रिय) तथा काम आदि दुष्टों (दुष्ट वृत्तियों) के दलका दलन करनेवाले श्रीरामजीको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म व्यापक बिरज अज कहि गावहीं ।

करि ध्यान ग्यान बिराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं ॥

सो प्रगट करुनाकंद सोभाबुंद अग जग मोहई ।

मम हृदय पंकज भुंग अंग अनंग बहु छवि सोहई ॥ ३ ॥

जिनको श्रुतियाँ निरञ्जन (मायासे परे), ब्रह्म, व्यापक, निर्विकार और जन्मरहित कहकर गान करती हैं। मुनि जिन्हें ध्यान, ज्ञान, वैराग्य और योग आदि अनेक साधन करके पाते हैं। वे ही करुणाकन्द, शोभाके समूह [स्वयं श्रीभगवान्] प्रकट होकर जड़ चेतन समस्त जगत्को मोहित कर रहे हैं। मेरे हृदय-कमलके भ्रमर-रूप उनके अंग-अंगमें बहुत-से कामदेवोंकी छवि शोभा पा रही है ॥ ३ ॥

जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा ।

पस्यंति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा ॥

सो राम रमानिवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी ।

मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी ॥ ४ ॥

जो अगम और सुगम हैं, निर्मलस्वभाव हैं, विषम और सम हैं, और सदा शीतल (शान्त) हैं। मन और इन्द्रियोंको सदा वशमें करते हुए योगी बहुत साधन करनेपर जिन्हें देख पाते हैं। वे तीनों लोकोंके स्वामी, रमानिवास श्रीरामजी निरन्तर अपने दासोंके वशमें रहते हैं। वे ही मेरे हृदयमें निवास करें, जिनकी पवित्र कीर्ति आवागमनको मिटानेवाली है ॥ ४ ॥

दो०—अविरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम ।

तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम ॥ ३२ ॥

अखण्ड भक्तिका बर माँगकर गृध्रराज जटायु श्रीहरिके परमधामको चला गया। श्रीरामचन्द्रजीने उसकी दाहकर्म आदि सारी क्रियाएँ यथायोग्य अपने हाथोंसे कीं ॥ ३२ ॥

चौ०—कोमलचित्त अति दीनदयाला । कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ॥

गीध अधम खग आमिषभोगी । गति दीन्ही जो जाचत जोगी ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजी अत्यन्त कोमल चित्तवाले, दीनदयालु और बिना ही कारण कृपालु हैं। गीध पक्षियोंमें भी अधम पक्षी और मांसाहारी था, उसको भी वह दुर्लभ गति दी जिसे योगीजन माँगते रहते हैं ॥ १ ॥

सुनहु उमा ते लोग अभागी । हरि तजि होहिं विषय अनुरागी ॥

पुनि सीतहि खोजत छौ भाई । चले बिलोकत बन बहुतारै ॥ २ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती ! मुनो, वे लग्न अभागे हैं जो भगवान्को छोड़कर विषयोंसे अनुराग करते हैं ! फिर दोनों भाई सीताजीको खोजते हुए आगे चले। वे वनकी सखनता देखते जाते हैं ॥ २ ॥

संकुल लता बिटप घन कानन । बहु खग मृग तहँ गज पंचानन ॥

आवत पंथ कबंध निपाता । तेहिं सब कही साप के बाता ॥ ३ ॥

वह सघन वन लताओं और वृक्षोंसे भरा है; उसमें बहुत-से पक्षी, मृग, हाथी और सिंह रहते हैं। श्रीरामजीने रास्तेमें आते हुए कबंध राक्षसको मारा। उसने शापकी सब बात कही ॥ ३ ॥

दुरबासा मोहि दीन्ही सापा। प्रभुपद पेखि मिटा सो पापा ॥

सुनु गंधर्व कहउँ मैं तोही। मोहि न सोहार ब्रह्मकुल द्रोही ॥ ४ ॥

[वह बोला—] दुर्वासाजीने मुझे शाप दिया था। अब प्रभुके चरणोंको देखनेसे वह पाप मिट गया। [श्रीरामजीने कहा—] हे गन्धर्व! सुनो, मैं तुम्हें कहता हूँ, ब्राह्मणकुलसे द्रोह करनेवाला मुझे नहीं सुशता ॥ ४ ॥

दो०—मन क्रम वचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।

मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव ॥ ३३ ॥

मन, कर्म और वचनसे कपट छोड़कर जो भूदेवों (ब्राह्मणों) की सेवा करता है, मुझसमेत ब्रह्मा, शिव आदि सब देवता उसके वशमें हो जाते हैं ॥ ३३ ॥

चौ०—सापत ताड़ित परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता ॥

पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सुद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना ॥ १ ॥

शाप देता हुआ, मारता हुआ और कठोर वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूज्य है, ऐसा संत कहते हैं। शील और गुणसे हीन भी ब्राह्मण पूजनीय है। और गुणगणोंसे युक्त और ज्ञानमें निपुण भी सुद्र पूजनीय नहीं है ॥ १ ॥

कहि निज धर्म ताहि समुझावा। निज पद प्रीति देखि मन भावा ॥

रघुपति चरन कमल सिरु नाई। गयउ गगन आपनि गति पाई ॥ २ ॥

श्रीरामजीने अपना धर्म (भागवतधर्म) कहकर उसे समझाया। अपने चरणोंमें प्रेम देखकर वह उनके मनको भाया। तदनन्तर श्रीरघुनाथजीके चरण-कमलोंमें सिर नवाकर वह अपनी गति (गन्धर्वका स्वरूप) पाकर आकाशमें चला गया ॥ २ ॥

ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी कै आश्रम पगु धारा ॥

सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के वचन समुझि जिय भाष ॥ ३ ॥

उदार श्रीरामजी उसे गति देकर शबरीजीके आश्रममें पधारे। शबरीजीने श्रीरामचन्द्रजीको घरमें आये देखा। तब मुनि मतङ्गजीके वचनोंको याद करके उनका मन प्रसन्न हो गया ॥ ३ ॥

सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला ॥

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई ॥ ४ ॥

कमलसदृश नेत्र और विशाल भुजावाले, सिरपर जटाओंका मुकुट और हृदयपर वनमाला धारण किये हुए सुन्दर सौंवेले और गोरे दोनों भाइयोंके चरणोंमें शबरीजी लिपट पड़ी ॥ ४ ॥

प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा ॥

सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे ॥ ५ ॥

वे प्रेममें मग्न हो गयीं, मुखसे वचन नहीं निकलता। बार-बार चरण-कमलोंमें सिर नवा रही हैं। फिर उन्होंने जल लेकर आदरपूर्वक दोनों भाइयोंके चरण धोये और फिर उन्हें सुन्दर आसनोंपर बैठाया ॥ ५ ॥

दो०—कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहूँ आनि ।

प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि ॥ ३४ ॥

उन्होंने अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्द, मूल और फल लाकर श्रीरामजीको दिये । प्रभुने बार-बार प्रशंसा करके उन्हें प्रेमसहित खाया ॥ ३४ ॥

चौ०—पानि जोरि भागै भइ ठाढ़ी । प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी ॥

केहि बिधि अस्तुति करौ तुम्हारी । अधम जाति मैं जड़मति भारी ॥ १ ॥

फिर वे हाथ जोड़कर आगे खड़ी हो गयीं । प्रभुको देखकर उनका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया । [उन्होंने कहा—] मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ ? मैं नीच जातिकी और अत्यन्त मूढ़बुद्धि हूँ ॥ १ ॥

अधम ते अधम अधम अति नारी । तिन्ह महुँ मैं मतिमंद अघारी ॥

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानउँ एक भगति कर नाता ॥ २ ॥

जो अधमसे भी अधम हैं, स्त्रियाँ उनमें भी अत्यन्त अधम हैं; और उनमें भी हे पापनाशन ! मैं मन्दबुद्धि हूँ । श्रीरघुनाथजीने कहा—हे भामिनि ! मेरी बात सुन । मैं तो केवल एक भक्तिहीनका सम्बन्ध मानता हूँ ॥ २ ॥

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ॥

भगतिहीन नर सोहइ कैसा । बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥ ३ ॥

जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता, इन सबके होनेपर भी भक्तिसे रहित मनुष्य कैसा लगता है, जैसे जलहीन बादल शोभाहीन दिखायी पड़ता है ॥ ३ ॥

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं । सावधान सुनु घर मन माहीं ॥

प्रथम भगति संतन्ह कर संग । दूसरि रति मम कथाप्रसंग ॥ ४ ॥

मैं तुझसे अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ । तू सावधान होकर सुन और मनमें धारण कर । पहली भक्ति है संतोंका सत्संग । दूसरी भक्ति है मेरे कथाप्रसंगमें प्रेम ॥ ४ ॥

दो०—गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान ।

चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान ॥ ३५ ॥

तीसरी भक्ति है अभिमानरहित होकर गुरुके चरणकमलोंकी सेवा । और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुणसमूहोंका गान करे ॥ ३५ ॥

चौ०—मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकासा ॥

छठ दम सील त्रिरति बहु कग्गा । निरन निरंतर सज्जन घरमा ॥ १ ॥

मेरे (राम) मन्त्रका जाप और मुझमें दृढ़ विश्वास—यह पाँचवीं भक्ति है, जो वेदोंमें प्रसिद्ध है । छठी भक्ति है इन्द्रियोंका निग्रह, सील (अच्छा स्वभाव या चरित्र), बहुत कार्योंसे वैराग्य और निरन्तर संतपुरुषोंके धर्म (आचरण) में लगे रहना ॥ १ ॥

सातवँ सम मोहिमय जग देखा । मोतैं संत अधिक करि लेखा ॥

आठवँ जगलाम संतोया । सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ॥ २ ॥

सातवीं भक्ति है जगत्भरको समभावसे मुझमें ओतप्रोत (राममय) देखना और संतोंको मुझसे

भी अधिक करके मानना । आठवीं भक्ति है जो कुछ मिल जाय उसीमें संतोष करना और स्वप्नमें भी पराये दोषोंको न देखना ॥ २ ॥

नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस दियँ हरप न दीना ॥

नव महुँ एकउ जिन्ह के होई । नारि पुरुष सबराखर कोई ॥ ३ ॥

नवीं भक्ति है सरलता और सबके साथ कपटरहित बर्ताव करना, हृदयमें मेरा भरोसा रखना, और किसी भी अवस्थामें हर्ष आर दैन्य (विषाद) का न होना । इन नवींमेंसे जिनके एक भी होती है, वह स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन, कोई भी हो—॥ ३ ॥

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ॥

जोगिबुंद दुरलभ गति जोई । तो कहूँ आजु सुलभ भइ सोई ॥ ४ ॥

हे भामिनि ! मुझे वहाँ अत्यन्त प्रिय है । फिर तुझमें तो सभी प्रकारकी भक्ति दृढ़ है । अतएव जो गति योगियोंको भी दुर्लभ है, वही आज तेरे लिये सुलभ हो गयी है ॥ ४ ॥

मम दरसन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज सरूपा ॥

जनकसुता कह सुधि भामिनी । जानहि कहु करियर गामिनी ॥ ५ ॥

मेरे दर्शनका परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूपको प्राप्त हो जाता है । हे भामिनि ! अब यदि तू गजगामिनी जानकीकी कुछ खबर जानती हो, तो बता ॥ ५ ॥

पंपा सरहि जाहु रघुराई । तहँ होइहि सुग्रीव मितारै ॥

सो सब कहिहि देव रघुबीरा । जानतहुँ पूछहु मतिधीरा ॥ ६ ॥

[शकीने कहा—] हे रघुनाथजी ! आप पंपा नामक सरोवरको जाइये । वहाँ आपकी सुग्रीवसे मित्रता होगी । हे देव ! हे रघुवीर ! वह सब हाल बतावेगा । हे धीरबुद्धि ! आप सब जानते हुए भी मुझसे पूछते हैं ॥ ६ ॥

बार बार प्रभुपद सिरु नारै । प्रेम सहित सब कथा सुनारै ॥ ७ ॥

बार-बार प्रभुके चरणोंमें विर नवाकर, प्रेमसहित उसने सब कथा सुनायी ॥ ७ ॥

छ०—कहि कथा सकल बिलोकि हरिमुख हृदय पद पंकज घरे ।

तजि जोग पावक वेह हरिपद लीन भइ जहँ नहिं फिरे ॥

नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत लोकप्रद सब त्यागह ॥

बिस्वास करि कह दास तुलसी रामपद अनुरागह ॥

सब कथा कहकर भगवान्‌के मुखके दर्शन कर, हृदयमें उनके चरणकमलोंको धारण कर लिया और योगमिसे देहको त्यागकर (जलकर) वह उस दुर्लभ हरिपदमें लीन हो गयी, जहाँसे लौटना नहीं होता । तुलसीदासजी कहते हैं कि अनेकों प्रकारके कर्म, अधर्म और बहुत-से मत, ये सब लोकप्रद हैं; हे मनुष्यो ! इनका त्याग कर दो, और विश्वास करके श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम करो ।

दो०—जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि ।

महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥ ३६ ॥

जो नीच जातिकी और पापोंकी जन्मभूमि थी, ऐसी स्त्रीको भी जिन्होंने मुक्त कर दिया, अरे महादुर्बुद्धि मन ! तू ऐसे प्रभुको भूलकर सुख चाहता है ? ॥ ३६ ॥

चौ०—खले राम त्यागा बन सोऊ । अतुलित बल नर केहरि दोऊ ॥

बिरही इव प्रभु करत विषादा । कहत कथा अनेक संबादा ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने उस वनको भी छोड़ दिया और वे आगे चले । दोनों भाई अतुलनीय बलवान् और मनुष्योंमें सिंहके समान हैं । प्रभु विरहीकी तरह विषाद करते हुए अनेकों कथाएँ और संवाद कहते हैं—॥ १ ॥

लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा । देखत केहि कर मन नहिं छोभा ॥

नारि सहित सब खग मृग वृंदा । मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा ॥ २ ॥

हे लक्ष्मण ! जरा वनकी शोभा तो देखो; इसे देखकर किसका मन कुम्भ नहीं होगा ! पक्षी और पशुओंके समूह सभी स्त्रोसहित हैं । मानो वे मेरी निन्दा कर रहे हैं ॥ २ ॥

हमहि देखि मृग निकर पराहीं । मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं ॥

तुम्ह आनंद करहु मृग जाप । कंचन मृग खोजन ए आप ॥ ३ ॥

हमें देखकर [जब डरके मारे] हिरनोंके झुट भागने लगते हैं, तब हिरनियाँ उनसे कहती हैं—तुमको भय नहीं है । तुम तो साधारण हिरनोंसे पैदा हुए हो, अतः तुम आनन्द करो । ये तो सोनेका हिरन खोजने आये हैं ॥ ३ ॥

संग लाइ करिनों करि लेहीं । मानहुँ मोहि सिखावतु देहीं ॥

साख सुविंतित पुनि पुनि देखिअ । भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ ॥ ४ ॥

हाथी हथिनियोंको साथ लगा लेते हैं । वे मानो मुझे शिक्षा देते हैं [कि स्त्रीको कभी अकेली नहीं छोड़ना चाहिये] । मलीमाँति चिन्तन किये हुए शाखको भी बार-बार देखते रहना चाहिये । अच्छी तरह सेवा किये हुए भी राजाको वशमें नहीं समझना चाहिये ॥ ४ ॥

राखिअ नारि जदपि उर माहीं । जुवती साख नृपति बस नाहीं ॥

देखहु तात वसंत सुहावा । प्रिया हीन मोहि भय उपजावा ॥ ५ ॥

और स्त्रीको चाहे हृदयमें ही क्यों न रक्खा जाय; परन्तु युवती स्त्री, शाख और राजा किसीके वशमें नहीं रहते । हे तात ! इस सुन्दर वसन्तको तो देखो, प्रियाके बिना मुझको यह भय उत्पन्न कर रहा है ॥ ५ ॥

दो०—बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल ।

सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल ॥ ३७ (क) ॥

मुझे बिरहसे व्याकुल, बलहीन और बिल्कुल अकेला जानकर कामदेवने वन, मैरों और पक्षियोंको साथ लेकर मुझपर धावा बोल दिया ॥ ३७ (क) ॥

देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात ।

डरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटकु हटकि मनजात ॥ ३७ (ख) ॥

परन्तु जब उसका दूत यह देख गया कि मैं भाईके साथ हूँ (अकेला नहीं हूँ), तब उसकी बात सुनकर कामदेवने मानो सेनाको रोककर डरा डाल दिया है ॥ ३७ (ख) ॥

चौ०—बिटप बिसाल लता अरुझानी । विविध बितान दिए जनु तानी ॥

कदलि ताल बर धुजा पताका । देखि न मोह धीर मन जाका ॥ १ ॥

विशाल वृक्षोंमें लताएँ उलझी हुई ऐसी मादम होती हैं मानो नाना प्रकारके तंबू तान दिये गये हैं । केला और ताड़ सुन्दर ध्वजा-पताकाके समान हैं । इन्हें देखकर वही नहीं मोहित होता जिसका मन धीर है ॥ १ ॥

बिबिध भाँति फूले तरु नाना । जनु बानैत बने बहु बाना ॥

कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुढाप । जनु भट बिलग बिलग होइ छाप ॥ २ ॥

अनेकों वृक्ष नाना प्रकारसे फूले हुए हैं । मानो अलग-अलग बाना (वर्दी) धारण किये हुए बहुत-से तीरंदाज हों । कहीं-कहीं सुन्दर वृक्ष शोभा दे रहे हैं । मानो थोड़ा लोग अलग-अलग होकर छावनी डाले हों ॥ २ ॥

कूजत पिक मानहुँ गज माते । टेक महोख ऊँट विसराते ॥

मोर चकोर कीर बर बाजी । पारावत मराल सब ताजी ॥ ३ ॥

कोयलें कूज रही हैं, वही मानो मतवाले हाथी चिम्पाइ रहे हैं । टेक और महोख पक्षी मानो ऊँट और खच्चर हैं । मोर, चकोर, तोते, कबूतर और हंस मानो सब सुन्दर ताजी (अरबी) घोड़े हैं ॥ ३ ॥

तीतिर लावक पदचर जूथा । वरनि न जाइ मनोज वरूथा ॥

रथ गिरिसिला दुंदुभी झरना । चातक बंदी गुन गन बरना ॥ ४ ॥

तीतर और बटेर पैदल विपाहियोंके झुंड हैं । कामदेवकी सेनाका वर्णन नहीं हो सकता । पर्वतोंकी शिलाएँ रथ, और जलके झरने नगाड़े हैं । पर्पट भाट हैं, जो गुणसमूहका (विरदावलीका) वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

मधुकर मुखर भेरि सहनाई । त्रिविध वयारि बसीटी आई ॥

चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें । बिचरत सबहि चुनौती दीन्हें ॥ ५ ॥

भौरोंकी गुंजार भेरी और सहनाई है । शीतल, मन्द और सुगन्धित हवा मानो दूतका काम लेकर आयी है । इस प्रकार चतुरङ्गिणी सेना साथ लिये कामदेव मानो सबको चुनौती देता हुआ बिचर रहा है ॥ ५ ॥

लछिमन देखत काम बनीका । रहहिं धीर तिन्ह के जग लीका ॥

एहि के एक परम बल नारी । तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी ॥ ६ ॥

हे लक्ष्मण ! कामदेवकी इस सेनाको देखकर जो धीर बने रहते हैं, जगतमें उन्हींकी वीरोंमें प्रतिष्ठा होती है । इस कामदेवके एक स्त्रीका बड़ा भारी बल है । उसमें जो बच जाय, वही श्रेष्ठ योद्धा है ॥ ६ ॥

दो०—तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ ।

मुनि विग्यानधाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ॥ ३८ (क) ॥

हे तात ! काम, क्रोध और लोभ, ये तीन अत्यन्त प्रबल दुष्ट हैं । ये विज्ञानके धाम मुनियोंके भी मनोको पलभरमें क्षुब्ध कर देते हैं ॥ ३८ (क) ॥

लोभ के इच्छा दंभ बल काम के केवल नारि ।

क्रोध के परुष वचन बल मुनिवर कहहिं बिचारि ॥ ३८ (ख) ॥

लोभको इच्छा और दम्भका बल है, कामको केवल स्त्रीका बल है और क्रोधको कठोर वचनोंका बल है; श्रेष्ठ मुनि विचारकर ऐसा कहते हैं ॥ ३८ (ख) ॥

चौ०—गुनातीत सचराचर स्वामी । राम उमा सब अंतरजामी ॥

कामिन्ह के दीनता देखाई । धीरन्ह के मन बिरति दढ़ाई ॥ १ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती ! श्रीरामचन्द्रजी गुणातीत (तीनों गुणोंसे परे), चराचर जगत्के स्वामी और सबके अन्तरकी जाननेवाले हैं । [उपर्युक्त बातें कहकर] उन्होंने कामी लोगोंकी दीनता (बेवसी) दिखलायी है और धीर (विवेकी) पुरुषोंके मनमें वैराग्यको दृढ़ किया है ॥ १ ॥

क्रोध मनोज लोभ मद माया । छूटहिं सकल राम कीं दायी ॥

सो नर इंद्रजाल नहिं भूला । जापर होइ सो नट अनुकूला ॥ २ ॥

क्रोध, काम, लोभ, मद और माया, ये सभी श्रीरामजीकी दयासे छूट जाते हैं । वह नट (नटराज भगवान्) जिसपर प्रसन्न होता है, वह मनुष्य इन्द्रजाल (माया)में नहीं भूलता ॥ २ ॥

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना । सत हरिभजनु जगत सब सपना ॥

पुनि प्रभु गए सरोवर तीरा । पंपा नाम सुभग गंभीरा ॥ ३ ॥

हे उमा ! मैं तुम्हें अपना अनुभव कहता हूँ—हरिका भजन ही सत्य है, यह सारा जगत् तो स्वप्न की भाँति असत् है । फिर प्रभु श्रीरामजी पंपा नामक सुन्दर और गहरे सरोवरके तीरपर गये ॥ ३ ॥

संत हृदय जस निर्मल बारी । बाँधे घाट मनोहर चारी ॥

जहँ तहँ पिअहिं बिबिध मृग नीरा । जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥ ४ ॥

उसका जल संतोंके हृदय-जैसा निर्मल है । मनको हरनेवाले सुन्दर चार घाट बँधे हुए हैं । भाँति-भाँतिके पशु जहाँ-तहाँ जल पी रहे हैं । मानो उदार दानी पुरुषोंके घर याचकोंकी भीड़ लगी हो ! ॥ ४ ॥

दो०—पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म ।

मायालभ न देखिऐ जैसैं निर्गुन ब्रह्म ॥ ३९ (क) ॥

घनी पुरइनों (कमलके पत्तों) की आड़में जलका जल्दी पता नहीं मिलता । जैसे मायासे दके रहनेके कारण निर्गुण ब्रह्म नहीं दीखता ॥ ३९ (क) ॥

सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं ।

जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं ॥ ३९ (ख) ॥

उस सरोवरके अत्यन्त अथाह जलमें सब मछलियों सदा एकरस (एक समान) सुखी रहती हैं । जैसे धर्म-शील पुरुषोंके सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं ॥ ३९ (ख) ॥

चौ०—बिकसे सरसिज नाना रंगा । मधुर सुखर गुंजत बहु भुंगा ॥

बोलत जलकुक्कुट कलहंसा । प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥ १ ॥

उसमें रंग-बिरंगे कमल खिले हुए हैं । बहुत-से भौरे मधुर स्वरसे गुंजार कर रहे हैं । जलके मुँगें और राजहंस बोल रहे हैं । मानो प्रभुको देखकर उनकी प्रशंसा कर रहे हों ॥ १ ॥

चक्रवाक बक खग समुदाई । देखत बनइ बरनि नहिं जाई ॥

सुंदर खगगन गिरा सुहाई । जात पथिक जनु लेत बोलाई ॥ २ ॥

चक्रवाक, बगुले आदि पक्षियोंका समुदाय देखते ही बनता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । सुन्दर पक्षियोंकी बौली बड़ी सुहावनी लगती है, मानो रास्तेमें जाते हुए पथिकको बुलाये लेती हो ॥ २ ॥

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए । चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाए ॥

चंपक बकुल कदंब तमाला । पाटल पनस परास रसाला ॥ ३ ॥

उस झील (पंपासरोवर) के समीप मुनियोंने आश्रम बना रखे हैं । उसके चारों ओर वनके सुन्दर वृक्ष हैं । चम्पा, मौलिविरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, दाक और आम आदि— ॥ ३ ॥

नव पल्लव कुसुमित तरु नाना । चंचरीक पटली कर गाना ॥

सीतल मंद सुगंध सुभाऊ । संतत बहइ मनोहर बाऊ ॥ ४ ॥

बहुत प्रकारके वृक्ष नये-नये पत्तों और [सुगन्धित] पुष्पोंसे युक्त हैं, जिनपर भौरोंके समूह गुंजार कर रहे हैं । स्वभावसे ही शीतल, मन्द, सुगन्धित एवं मनको हरनेवाली हवा सदा बहती रहती है ॥ ४ ॥

कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं । मुनि रच सरस ध्यान मुनि टरहीं ॥ ५ ॥

कोयलें 'कुहू', 'कुहू' ध्वनि कर रही हैं । उनकी रसीली बोली सुनकर मुनियोंका भी ध्यान टूट जाता है ॥ ५ ॥

दो०—फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ ।

पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ ॥ ४० ॥

फलके बोझसे झुककर सारे वृक्ष पृथ्वीके पाम आ लगे हैं । जैसे परोपकारी पुरुष बड़ी सम्पत्ति पाकर विनयसे झुक जाते हैं ॥ ४० ॥

चौ०—देखि राम अति रुचिर तलावा । मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा ॥

देखी सुंदर तरुवर छाया । बैठे अनुज सहित रघुराया ॥ १ ॥

श्रीरामजीने अत्यन्त सुन्दर तालाब देखकर स्नान किया और परम सुख पाया । एक सुन्दर उत्तम वृक्षकी छाया देखकर श्रीरघुनाथजी छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित बैठ गये ॥ १ ॥

तहँ पुनि सकल देव मुनि आए । अस्तुति करि निज धाम सिधाए ॥

बैठे परम प्रसन्न कृपाला । कहत अनुज सन कथा रसाला ॥ २ ॥

फिर वहाँ सब देवता और मुनि आये और स्तुति करके अपने-अपने धामको चले गये । कृपालु श्रीरामजी परम प्रसन्न बैठे हुए छोटे भाई लक्ष्मणजीसे रसीली कथाएँ कह रहे हैं ॥ २ ॥

विरहवन्त भगवन्तहि देखी । नारद मन भा सोच विसेषी ॥

मोर साप करि अंगीकारा । सहत राम नाना दुख भारा ॥ ३ ॥

भगवान्को विरहयुक्त देखकर नारदजीके मनमें विशेषरूपसे सोच हुआ । [उन्होंने विचार किया कि] मेरे ही शापको स्वीकार करके श्रीरामजी नाना प्रकारके दुःखोंका भार सह रहे हैं (दुःख उठा रहे हैं) ॥ ३ ॥

ऐसे प्रभुहि विलोकउँ जाई । पुनि न वनिहि अस अवसर आई ॥

यह विचारि नारद कर बीना । गए जहाँ प्रभु सुख आसीना ॥ ४ ॥

ऐसे (भक्तवत्सल) प्रभुको जाकर देखूँ । फिर ऐसा अवसर न बन आवेगा । यह विचारकर नारदजी हायमें बीणा लिये हुए वहाँ गये जहाँ प्रभु सुखपूर्वक बैठे हुए थे ॥ ४ ॥

गावत रामचरित मृदु बानी । प्रेम सहित बहु भाँति बखानी ॥

करत दंडवत लिए उठाई । राखे बहुत बार उर लाई ॥ ५ ॥

वे कोमल वाणीसे प्रेमके साथ बहुत प्रकारसे बखान-बखानकर रामचरित्रका गान करते हुए चले आ रहे थे । दण्डवत् करते देखकर श्रीरामचन्द्रजीने नारदजीको उठा लिया और बहुत देरतक हृदयसे लगाये रक्खा ॥ ५ ॥

स्वागत पूँछि निकट बैठारे । लछिमन सादर चरन पखारे ॥ ६ ॥

फिर स्वागत (कुशल) पूछकर पास बैठा लिया । लक्ष्मणजीने आदरके साथ उनके चरण धोये ॥ ६ ॥

दो०—नाना विधि बिनती करि प्रभु प्रसन्न जियँ जानि ।

नारद बोले बचन तब जोरि सरोरुह पानि ॥ ४१ ॥

बहुत प्रकारसे बिनती करके और प्रभुको मनमें प्रसन्न जानकर तब नारदजी कमलसदृश हाथोंको जोड़कर बचन बोले—॥ ४१ ॥

चौ०—सुनहु उदार सहज रघुनाथक । सुन्दर अगम सुगम वर दायक ॥

देहु एक वर मागउँ स्वामी । जद्यपि जानत अंतरजामी ॥ १ ॥

हे स्वभावसे ही उदार श्रीरघुनाथजी ! सुनिये । आप सुन्दर अगम और सुगम वरके देनेवाले हैं । हे स्वामी ! मैं एक वर माँगता हूँ, वह मुझे दीजिये, यद्यपि आप अन्तर्यामी होनेके नाते सब जानते ही हैं ॥ १ ॥

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ । जन सन कवहुँ कि करउँ दुराऊ ॥

कवन वस्तु असि प्रिय मोहि लागी । जो मुनिवर न सकहु तुम्ह मागी ॥ २ ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे मुनि ! तुम मेरा स्वभाव जानने ही हो । क्या मैं अपने भक्तोंसे कभी कुछ छिपाव करता हूँ ? मुझे ऐसी कौन-सी वस्तु प्रिय लगती है जिसे हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम नहीं माँग सकते ? ॥ २ ॥

जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें । अस विस्वास तजहु जनि मोरें ॥

तब नारद बोले हरषाई । अस वर मागउँ करउँ ठिठाई ॥ ३ ॥

मुझे भक्तके लिये कुछ भी अदेय नहीं है । ऐसा विश्वास भूलकर भी मत छोड़ो । तब नारदजी हर्षित होकर बोले—मैं ऐसा वर माँगता हूँ, यह धृष्टता करता हूँ—॥ ३ ॥

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका । श्रुति कह अधिक एक तँ एका ॥

राम सकल नामन्ह ते अधिका । होउ नाथ अघ खग गन वधिका ॥ ४ ॥

यद्यपि प्रभुके अनेकों नाम हैं, और वेद कहते हैं कि वे सब एक-से-एक बढ़कर हैं, तो भी हे नाथ ! रामनाम सब नामोंसे बढ़कर हो, और पापरूपी पक्षियोंके समूहके लिये यह अधिकके समान हो ॥ ४ ॥

दो०—राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम ।

अपर नाम उडगन विमल बसहुँ भगत उर व्योम ॥ ४२ (क) ॥

आपकी भक्ति पूर्णमासी की रात्रि है; उसमें 'राम' नाम यही पूर्ण चन्द्रमा होकर और अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तोंके हृदयरूपी निर्मल आकाशमें निवास करें ॥ ४२ (क) ॥

एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ ।

तब नारद मन हरष अति प्रभुपद नायउ माथ ॥ ४२ (ख) ॥

कृपासागर श्रीरघुनाथजीने मुनिसे 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा । तब नारदजीने मनमें अत्यन्त हर्षित होकर प्रभुके चरणोंमें मस्तक नवाया ॥ ४२ (ख) ॥

चौ०—अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी । पुनि नारद बोले सुदु बानी ॥

राम जबहिं प्रेरेउ निज माया । मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजीको अत्यन्त प्रसन्न जानकर नारदजी फिर कोमल वाणी बोले—हे रामजी ! हे रघुनाथजी ! सुनिये, जब आपने अपनी मायाको प्रेरित करके मुझे मोहित किया था, ॥ १ ॥

तब बिबाह में चाहउँ कीन्हा । प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा ॥

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा । भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥ २ ॥

तब मैं विवाह करना चाहता था । हे प्रभु ! आपने मुझे किस कारण विवाह नहीं करने दिया ? [प्रभु बोले —] हे मुनि ! सुनो, मैं तुम्हें हर्षके साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा-भरोसा छोड़कर केवल मुझको ही भजते हैं, ॥ २ ॥

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी । जिमि बालक राखइ महतारी ॥

गह सिखु बच्छ अनल अहि धाई । तहँ राखइ जननी अरगाई ॥ ३ ॥

मैं सदा उनकी वैसे ही रखवाली करता हूँ जैसे माता बालककी रक्षा करती है । छोटा बच्चा जब आग और साँपको पकड़ने दोड़ता है, तो वहाँ माता उसे [अपने हाथों] अलग करके बचा लेती है ॥ ३ ॥

प्रौढ़ भयँ तेहि सुत पर माता । प्रीति करइ नहिं पाछिलि वाता ॥

मोरें प्रौढ़ तनय सम ग्यानी । बालक सुत सम दास अमानी ॥ ४ ॥

किन्तु वह जब सयाना हो जाता है तब उस पुत्रपर माता प्रेम तो करती है, परन्तु पिछली बात नहीं रहती । (अर्थात् मातृपरायण शिशुकी तरह फिर उसको बचानेकी चिन्ता नहीं करती, क्योंकि वह मातापर निर्भर न कर अपनी रक्षा आप करने लगता है ।) शानी मेरे प्रौढ़ (सयाने) पुत्रके समान है और [तुम्हारे-जैसा] अपने बलका मान न करनेवाला सेवक मेरे शिशु पुत्रके समान है ॥ ४ ॥

जनहि मोर बल निज बल ताही । दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही ॥

यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं । पापहुँ ग्यान भगति महिं तजहीं ॥ ५ ॥

मेरे सेवकको केवल मेरा ही बल रहता है और उसे (शानीको) अपना बल होता है । पर काम-क्रोधरूपी शत्रु तो दोनोंके लिये हैं । [भक्तके शत्रुओंको मारनेकी जिम्मेवारी मुझपर रहती है, क्योंकि वह मेरे परायण होकर मेरा ही बल मानता है; परन्तु अपने बलको माननेवाले शानीके शत्रुओंका नाश करनेकी जिम्मेवारी मुझपर नहीं है ।] ऐसा विचारकर पण्डितजन (बुद्धिमान् लोग) मुझको ही भजते हैं । वे शान प्राप्त होनेपर भी भक्तिको नहीं छोड़ते ॥ ५ ॥

दो०—काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि ।

तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ॥ ४३ ॥

काम, क्रोध, लोभ और मद आदि मोह (अज्ञान) की प्रबल सेना है । इनमें मायारूपिणी (मायाकी साक्षात् मूर्ति) स्त्री तो अत्यन्त दारुण दुःख देनेवाली है ॥ ४३ ॥

चौ०—सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता । मोह विपिन कहँ नारि वसंता ॥

जप तप नेम जलाश्रय झारी । होइ ग्रीष्म सोषइ सब नारी ॥ १ ॥

हे मुनि ! सुनो, पुराण, वेद और संत कहते हैं कि मोहरूपी वनको विकसित करनेके लिये स्त्री वसन्तऋतु-के समान है । जप, तप, नियमरूपी सम्पूर्ण जलके स्थानोंको स्त्री ग्रीष्मरूप होकर सर्वथा खोल लेती है ॥ १ ॥

काम क्रोध मद मत्सर भेका । इन्हि हरषप्रद वरषा एका ॥

दुर्बासना कुमुद समुदाई । तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ॥ २ ॥

काम, क्रोध, मद और मत्सर (डाह) आदि भेदक हैं । इनको वर्षाकृतु होकर हर्ष प्रदान करनेवाली एकमात्र यही (स्त्री) है । बुरी वासनाएँ कुमुदोंके समूह हैं । उनको सदैव सुख देनेवाली यह शरदकृतु है ॥ २ ॥

धर्म सकल सरसीरुह बृन्दा । होइ हिम तिन्हहि दहर सुख मंदा ॥

पुनि ममता जवास बहुताई । पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ॥ ३ ॥

समस्त धर्म कमलोंके छुंड हैं । यह नीच (विषयजन्य) सुख देनेवाली स्त्री हिमकृतु होकर उन्हें जला डालती है । फिर ममतारूपी जवासका समूह (वन) स्त्रीरूपी शिशिरकृतुको पाकर हरा-भरा हो जाता है ॥ ३ ॥

पाप उलूक निकर सुखकारी । नारि निबिड़ रजनी अंधिआरी ॥

बुधि बल सील सत्य सष मीना । बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ॥ ४ ॥

पापरूपी उल्लुओंके समूहके लिये यह स्त्री सुख देनेवाली घोर अन्धकारमयी रात्रि है । बुद्धि, बल, शील और सत्य, ये सब मछलियाँ हैं । और उनको फँसनेके लिये स्त्री बंसीके समान है, चतुर पुरुष ऐसा कहते हैं ॥ ४ ॥

दो०—अवगुन मूल छलप्रद प्रमदा सब दुख खानि ।

ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि ॥ ४४ ॥

युवती स्त्री अवगुणोंकी मूल, पीड़ा देनेवाली और सब दुःखोंकी खान है । इसलिये हे मुनि ! मैंने जीमें ऐसा जानकर तुमको विवाह करनेसे रोका था ॥ ४४ ॥

चो०—सुनि रघुपति के वचन सुहाए । मुनि तन पुलक नयन भरि आए ॥

कहहु कवन प्रभु कै असि रीती । सेवक पर ममता अरु प्रीती ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजीके सुन्दर वचन सुनकर मुनिका शरीर पुलकित हो गया और नेत्र [प्रेमाश्रुओंके जलसे] भर आये । [वे मन-ही-मन कहने लगे—] कहो तो किस प्रभुकी ऐसी रीति है, जिसका सेवकपर इतना ममत्व और प्रेम हो ॥ १ ॥

जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी । ग्यान रंक नर मंद अभागी ॥

पुनि सादर बोले मुनि नारद । सुनहु राम विग्यान बिसारद ॥ २ ॥

जो मनुष्य भ्रमको त्यागकर ऐसे प्रभुको नहीं भजते, वे ज्ञानके कंगाल, दुर्बुद्धि और अभागे हैं । फिर नारद मुनि आदरसहित बोले—हे विज्ञानविशारद श्रीरामजी ! सुनिये—॥ २ ॥

संतन्ह के लच्छन रघुबीरा । कहहु नाथ भव भंजन भीरा ॥

सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ । जिन्ह ते मैं उन्ह के बस रहऊँ ॥ ३ ॥

हे रघुवीर ! हे भव-भयका नाश करनेवाले मेरे नाथ ! अब कृपा कर संतोंके लक्षण कहिये । [श्रीरामजीने कहा—] हे मुनि ! सुनो, मैं संतोंके गुणोंको कहता हूँ, जिनके कारण मैं उनके वशमें रहता हूँ ॥ ३ ॥

पट विकार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ॥

अमितबोध अनीह मितभोगी । सत्यसार कवि कोबिद जोगी ॥ ४ ॥

वे संत काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन छः विकारों (दोषों) को जीते हुए, पापरहित,

कामनारहित, निश्चल (स्थिरबुद्धि), अकिञ्चन (सर्वत्यागी), बाहर-भीतरसे पवित्र, सुखके घाम, असीम ज्ञानवान्, इच्छारहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ, कवि, विद्वान्, योगी, ॥ ४ ॥

सावधान मानद मदहीना । धीर धर्मगति परम प्रवीना ॥ ५ ॥

सावधान, दूसरोंको मान देनेवाले, अभिमानरहित, धैर्यवान्, धर्मके ज्ञान और आचरणमें अत्यन्त निपुण, ॥ ५ ॥

दो०—गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह ।

तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहूँ देह न गेह ॥ ४५ ॥

गुणोंके घर, संसारके दुःखोंसे रहित और सन्देहोंसे सर्वथा छूटे हुए होते हैं । मेरे चरणकमलोंको छोड़कर उनको न देह ही प्रिय होती है, न घर ही ॥ ४५ ॥

चौ०—निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं । पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं ॥

सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती । सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती ॥ १ ॥

कानोंसे अपने गुण सुननेमें सकुचाते हैं, दूसरोंके गुण सुननेसे विशेष हर्षित होते हैं । सम और सीतल है, न्यायका कभी त्याग नहीं करते । सरलस्वभाव होते हैं और सभीसे प्रेम रखते हैं ॥ १ ॥

जप तप व्रत दम संजम नेमा । गुरु गोविंद बिप्र पद प्रेमा ॥

श्रद्धा छमा मयत्री दाया । मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥ २ ॥

वे जप, तप, व्रत, दम, संयम और नियममें रत रहते हैं । और गुरु, गोविन्द तथा ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रेम रखते हैं । उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, मुदिता (प्रसन्नता) और मेरे चरणोंमें निष्कपट प्रेम होता है, ॥ २ ॥

विरति विवेक विनय विग्याना । बोध जथारथ वेद पुराना ॥

दंभ मान मद करहिं न काऊ । भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥ ३ ॥

तथा वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान (परमात्माके तत्त्वका ज्ञान) और वेद-पुराणका यथार्थ ज्ञान रहता है । वे दम्भ, अभिमान और मद कभी नहीं करते और भूलकर भी कुमारग पर पैर नहीं रखते ॥ ३ ॥

गावहिं सुनहिं सदा मम लीला । हेतु रहित पर हित रत सीला ॥

मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते । कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते ॥ ४ ॥

सदा मेरी लीलाओंको गाते-सुनते हैं और बिना ही कारण दूसरोंके हितमें लगे रहनेवाले होते हैं । हे मुनि ! सुनो, संतोंके जितने गुण हैं उनको सरस्वती और वेद भी नहीं कह सकते ॥ ४ ॥

छं०—कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे ।

अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे ॥

सिरु नाह बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए ।

ते घन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँग ॥

‘शेष और शारदा भी नहीं कह सकते’ यह सुनते ही नारदजीने श्रीरामजीके चरणकमल पकड़ लिये । दीनबन्धु कृपाल प्रभुने इस प्रकार अपने श्रीमुखसे अपने भक्तोंके गुण कहे । भगवान्‌के चरणोंमें बार-बार सिर नवाकर नारदजी ब्रह्मलोकको चले गये । तुलसीदासजी कहते हैं कि वे पुरुष घन्य है जो सब आशा छोड़कर केवल श्रीहरिके रंगमें रँग गये हैं ।

दो०—रावनाहि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग ।

रामभगति दृढ़ पावहिं बिनु विराग जप जोग ॥ ४६ (क) ॥

जो लोग रावणके शत्रु श्रीरामजीका पवित्र यश गावेंगे और सुनेंगे, वे वैराग्य, जप और योगके बिना ही श्रीरामजीकी दृढ़ भक्ति पावेंगे ॥ ४६ (क) ॥

दीपसिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग ।

भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग ॥ ४६ (ख) ॥

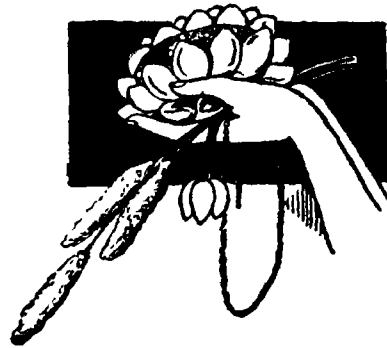
युवती न्नियोंका शरीर दीपककी लौके समान है; हे मन ! तू उसका पतिंगा न बन । काम और मदको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीका भजन कर और सदा सतसंग कर ॥ ४६ (ख) ॥

मासपारायण बाईसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकालिकलुपविध्वंसने तृतीयः सोपानः समाप्तः ।

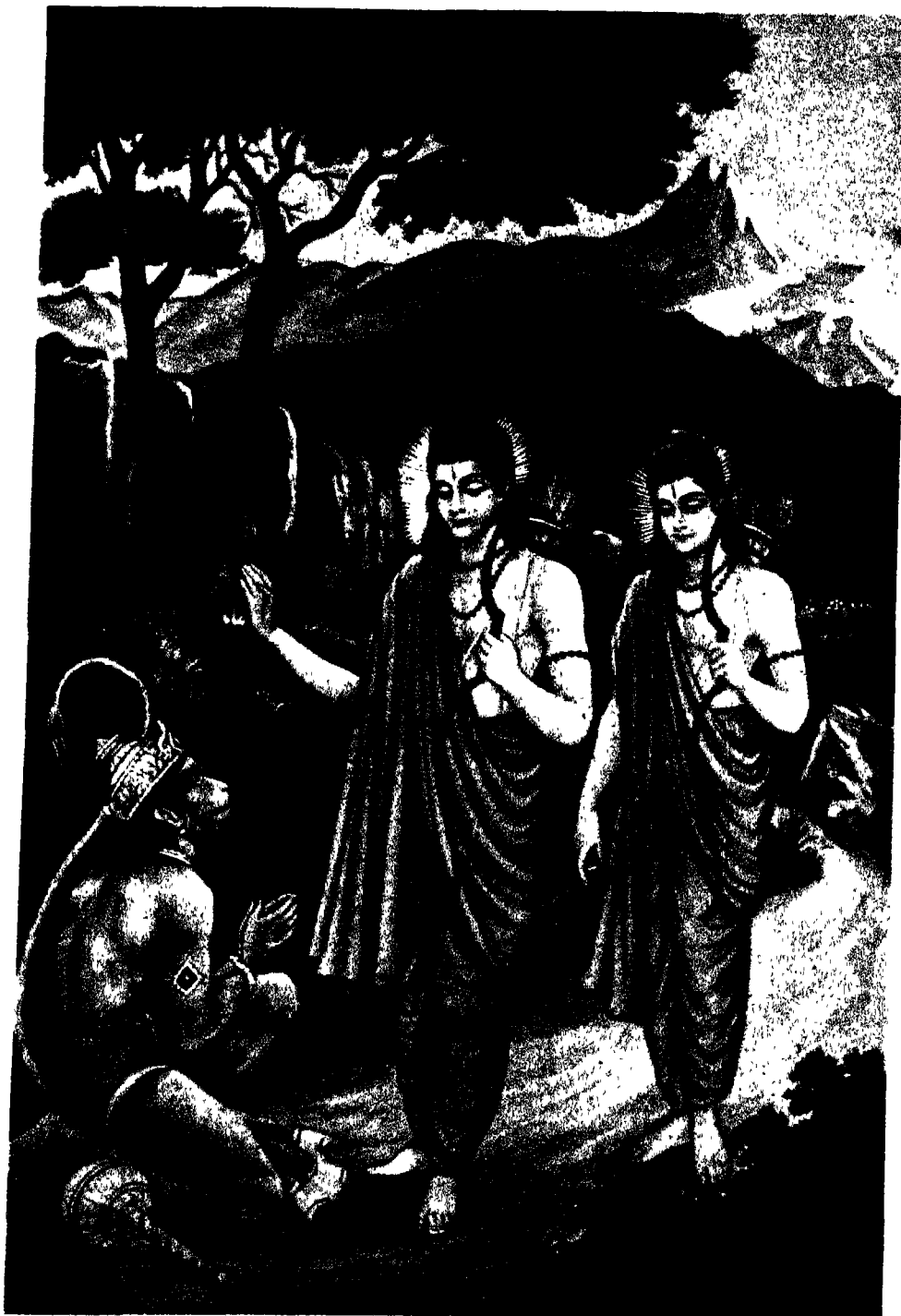
कलियुगके सम्पूर्ण पापोंको विध्वंस करनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह तीसरा सोपान समाप्त हुआ ॥

(अरण्यकाण्ड समाप्त)



कल्याण

हनुमान्जोकी प्रार्थना



एकु मंद मै मोहवस कुटिलहृदय अग्यान ।
पुनि प्रभु माहि विसारेहु दीनबंधु भगवान ॥

श्रागणेशाय नमः

श्रीजानकीबलभो विजयने

श्रीरामचरितमानस

चतुर्थ सोपान

(किष्किन्धाकाण्ड)

श्लोक

कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विशानधामाबुभौ
शोभासम्पन्न श्रेष्ठ धनुर्धर, वैदोंके द्वारा बन्दिन, गो-ब्राह्मणोंके समूहके प्रिय [अथवा प्रेमी], मायासे मनुष्यरूप
धारण किये हुए, श्रेष्ठ धर्मके लिये कवचस्वरूप, सबके हितकारी, श्रीसीताजीकी खोजमें लगे हुए, पथिकरूप
रघुकुलके श्रेष्ठ श्रीरामजी और श्रीलक्ष्मणजी दोनों माई निश्चय ही हमें भक्तिप्रद हों ॥ १ ॥

कुन्दपुष्प और नील कमलके समान सुन्दर गौर एवं श्यामवर्ण, अत्यन्त बलवान्, विशानके धाम,
शोभासम्पन्न, श्रेष्ठ धनुर्धर, वैदोंके द्वारा बन्दिन, गो-ब्राह्मणोंके समूहके प्रिय [अथवा प्रेमी], मायासे मनुष्यरूप
धारण किये हुए, श्रेष्ठ धर्मके लिये कवचस्वरूप, सबके हितकारी, श्रीसीताजीकी खोजमें लगे हुए, पथिकरूप
रघुकुलके श्रेष्ठ श्रीरामजी और श्रीलक्ष्मणजी दोनों माई निश्चय ही हमें भक्तिप्रद हों ॥ १ ॥

ब्रह्माम्भोधिसमुद्रवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा ।
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् ॥ २ ॥

वे सुकृती (पुण्यात्मा पुरुष) धन्य हैं जो वेदरूपी समुद्रके मथनेसे उत्पन्न हुए, कलियुगके मलको सर्वथा नष्ट
कर देनेवाले, अविनाशी, भगवान् श्रीशम्भुके सुन्दर और श्रेष्ठ मुखरूपी चन्द्रमामे सदा शोभायमान, भव-रोगके औषध,
सबको सुख देनेवाले और जानकीजीके जीवनस्वरूप श्रीरामनामरूपी अमृतका निरन्तर पान करते रहते हैं ॥ २ ॥

सो०—मुक्ति जन्ममहि जानि ग्यान खानि अघ हानिकर ।
जहँ बस संछु भवानि सो कासी सेइअ कस न ॥

जहाँ श्रीशिव-पार्वती बसते हैं, उस काशीको मुक्तिकी जन्मभूमि, ज्ञानकी खान और पापोंका नाश करनेवाली
जानकर उसका सेवन क्यों न किया जाय ?

जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय ।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस ॥

जिस भीषण हलाहल विषसे सब देवतागण जल रहे थे उसको जिन्होंने स्वयं पान कर लिया, रेमन्द मन !
तू उन शंकरजीको क्यों नहीं भजता ? उनके समान कृपालु कौन है ?

चौ०—भागों चले बहुरि रघुराया । रिष्यमूक पर्वत निभराया ॥

तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा । आवत देखि अतुल बल सीवा ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजी फिर आगे चले । ऋष्यमूक पर्वत निकट आ गया । वहाँ (ऋष्यमूक पर्वतपर)
मन्त्रियोंसहित सुग्रीव रहते थे । अतुलनीय बलकी सीमा श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीको आते देखकर—॥ १ ॥

अति समीत कह सुनु हनुमाना । पुरुष जुगल बल रूप निधाना ॥

धरि बटु रूप देखु तैं जाई । कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई ॥ २ ॥

सुग्रीव अत्यन्त भयभीत होकर बोले—हे हनुमान् ! सुनो, ये दोनों पुरुष बल और रूपके निधान हैं ।
तुम ब्रह्मचारीका रूप धारण करके जाकर देखो । अपने हृदयमें उनकी यथार्थ बात जानकर मुझे इशारेसे
[समझाकर] कह देना ॥ २ ॥

पठप बालि होहिं मन मैला । भागौं तुरत तजौं यह सैला ॥

विप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ । माथ नाइ पूछत अस भयऊ ॥ ३ ॥

यदि वे मनके मलिन बाँझके भेजे हुए हों, तो मैं तुरंत ही भाग जाऊँ, इस पर्वतका छोड़ दूँ ।
ब्राह्मणका रूप धरकर हनुमान्जी वहाँ गये और मस्तक नवाकर इस प्रकार पूछने लगे—॥ ३ ॥

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा । छत्री रूप फिरहु बन वीरा ॥

कठिन भूमि कोमल पद गामी । कवन हेतु विचरहु बन स्वामी ॥ ४ ॥

हे वीर ! साँवले और गोरे शरीरवाले आप कौन हैं, जो क्षत्रियके रूपमें वनमें फिर रहे हैं ? हे स्वामी !
कठोर भूमिपर कोमल चरणोंसे चलनेवाले आप किस कारण वनमें विचर रहे हैं ? ॥ ४ ॥

मृदुल मनोहर सुंदर गाता । सहत दुसह बन आतप बाता ॥

की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ । नर नारायन की तुम्ह दोऊ ॥ ५ ॥

मनको हरण करनेवाले आपके सुन्दर, कोमल अंग हैं, और आप वनके दुःमह धूप और वायुको सह
रहे हैं ! क्या आप ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीन देवताओंमेंसे कोई हैं, या आप दोनों नर और
नारायण हैं ? ॥ ५ ॥

दो०—जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार ।

की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार ॥ १ ॥

अथवा आप जगत्के मूल कारण और सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी स्वयं भगवान् हैं, जिन्होंने लोगोंको
भवसागरसे पार उतारने तथा पृथ्वीका भाग नष्ट करनेके लिये मनुष्यरूपमें अवतार लिया है ? ॥ १ ॥

चौ०—कोसलेस दसरथ के जाए । हम पितु बचन मानि बन आए ॥

नाम राम लछिमन दोड भाई । संग नारि सुकुमारि सुहाई ॥ १ ॥

[श्रीरामचन्द्रजीने कहा—] हम कोसलराज दशरथजीके पुत्र हैं और पिताका वचन मानकर वन आये
हैं । हमारे राम-लक्ष्मण नाम हैं, हम दोनों भाई हैं । हमारे साथ सुन्दर सुकुमारी स्त्री थी ॥ १ ॥

इहाँ हरी निसिचर बैदेही । बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही ॥

आपन चरित कहा हम गार्ह । कहहु विप्र निज कथा बुझाई ॥ २ ॥

यहाँ (वनमें) राक्षसने [मेरी पत्नी] जानकीको हर लिया । हे ब्राह्मण ! हम उसे ही खोजते फिरते हैं । हमने तो अपना चरित्र कह सुनाया । अब हे ब्राह्मण ! अपनी कथा समझाकर कहिये ॥ २ ॥

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना । सो सुख उमा जाइ नहिं बरना ॥

पुलकित तन मुख आव न बचना । देखत रुचिर वेष कै रचना ॥ ३ ॥

प्रभुको पहचानकर हनुमान्जी उनके चरण पकड़कर पृथ्वीपर गिर पड़े (उन्होंने साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम किया) । [शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती ! वह सुख वर्णन नहीं किया जा सकता । शरीर पुलकित है, मुखसे वचन नहीं निकलता । वे प्रभुके सुन्दर वेषकी रचना देख रहे हैं ! ॥ ३ ॥

पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही । हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही ॥

मोर न्याउ मैं पूछा साई । तुम्ह पूछहु कस नर की नाई ॥ ४ ॥

फिर धीरज धरकर स्तुति की । अपने नाथको पहचान लेनेसे हृदयमें हर्ष हो रहा है । [फिर हनुमान्जीने कहा—] हे स्वामी ! मैंने जो पूछा वह मेरा पूछना तो न्याय था । [वर्षोंके बाद आपको देखा, वह भी तपस्वीके वेषमें और मेरी वानरी बुद्धि; इससे मैं तो आपको पहचान न सका और अपनी परिस्थितिके अनुसार मैंने आपसे पूछा] । परन्तु आप मनुष्यकी तरह कैसे पूछ रहे हैं ? ॥ ४ ॥

तव माया बस फिरउं भुलाना । ता ते मैं नहिं प्रभु पहिचाना ॥ ५ ॥

मैं तो आपकी मायाके वश भूल फिरता हूँ; इसीसे मैंने अपने स्वामीको नहीं पहचाना ॥ ५ ॥

दो०—एकु मैं मंद मोहबस कुटिलहृदय अग्यान ।

पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान ॥ २ ॥

एक तो मैं यों ही मन्द हूँ, दूसरे मोहके वशमें हूँ, तीसरे हृदयका कुटिल और अज्ञान हूँ । फिर हे दीनबन्धु भगवान् ! प्रभुने (आपने) भी मुझे भुल दिया ! ॥ २ ॥

चो०—जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें । सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें ॥

नाथ जीव तव मायाँ मोहा । सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा ॥ १ ॥

हे नाथ ! यद्यपि मुझमें बहुतसे अवगुण हैं, तथापि सेवक स्वामीकी विस्मृतिमें न पड़े (आप उसे न भूल जायें) । हे नाथ ! जीव आपकी मायासे मोहित है । वह आपकी ही कृपासे निस्तार पा सकता है ॥ १ ॥

तापर मैं रघुवीर दोहाई । जानउँ नहिं कछु भजन उपाई ॥

सेवक सुत पति मातु भरोसैं । रहइ असोच वनइ प्रभु पोसैं ॥ २ ॥

उसपर हे रघुवीर ! मैं आपकी दुहाई (शपथ) करके कहता हूँ कि मैं भजन-साधन कुछ नहीं जानता । सेवक स्वामीके, और पुत्र माताके भरोसे निश्चिन्त रहता हूँ; प्रभुको सेवकका पालन-पोषण करते ही बनता है (करना ही पड़ता है) ॥ २ ॥

अस कहि परेउ चरन अकुलाई । निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥

तब रघुपति उठाइ उर लावा । निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ॥ ३ ॥

ऐसा कहकर हनुमान्जी अकुलकर प्रभुके चरणोंपर गिर पड़े, उन्होंने अपना असली शरीर प्रकट कर दिया ।

उनके हृदयमें प्रेम छा गया ! तब श्रीरघुनाथजीने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया और अपने नेत्रोंके जलसे सींचकर शीतल किया ॥ ३ ॥

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना । तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना ॥

समदरसी मोहि कह सब कोऊ । सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ ॥ ४ ॥

[फिर कहा—] हे कपि ! सुनो, मनमें न्यूनता मत मानना (मन छोटा न करना) । तुम मुझे लक्ष्मणसे भी दूने प्रिय हो । सब कोई मुझे समदर्शी कहते हैं (मेरे लिये न कोई प्रिय है, न अप्रिय) । पर मुझको सेवक प्रिय है, क्योंकि वह अनन्यगति होता है (मुझे छोड़कर उसको कोई दूसरा सहारा नहीं होता) ॥ ४ ॥

दो०—सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत ।

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥ ३ ॥

और हे हनुमान् ! अनन्य वही है जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टलती कि मैं सेवक हूँ और यह चराचर (जड़-चेतन) जगत् मेरे स्वामी भगवान्का रूप है ॥ ३ ॥

चौ०—देखि पवनसुत पति अनुकूला । हृदयँ हरष बीती सब सूला ॥

नाथ सैल पर कपिपति रहई । सो सुग्रीव दास तब अहई ॥ १ ॥

स्वामीको अनुकूल (प्रसन्न) देखकर पवनकुमार हनुमान्जीके हृदयमें हर्ष छा गया और उनके सब दुःख जाते रहे । [उन्होंने कहा—] हे नाथ ! इस पर्वतपर वानरराज सुग्रीव रहता है, वह आपका दास है ॥ १ ॥

तेहि सन नाथ मयत्री कीजे । दीन जानि तेहि अभय करीजे ॥

सो सीता कर खोज कराइहि । जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि ॥ २ ॥

हे नाथ ! उससे मित्रता कीजिये और उसे दीन जानकर निर्भय कर दीजिये । वह सीताजीकी खोज करावेगा और जहाँ-तहाँ करोड़ों वानरोंको भेजेगा ॥ २ ॥

एहि विधि सकल कथा समुझाई । लिप दुऔ जन पीठि चढ़ाई ॥

जब सुग्रीवँ राम कहँ देखा । अतिसय जन्म धन्य करि लेखा ॥ ३ ॥

इस प्रकार सब बातें समझाकर हनुमान्जीने (भीराम-लक्ष्मण) दोनों जनोको पीठपर चढ़ा लिया । जब सुग्रीवने भीरामचन्द्रजीको देखा तो अपने जन्मको अत्यन्त धन्य समझा ॥ ३ ॥

सादर मिलेउ नाइ पद माथा । भेंटउ अनुज सहित रघुनाथा ॥

कपि कर मन बिचार एहि रीती । करिहहिं विधि मो सन ए प्रीती ॥ ४ ॥

सुग्रीव चरणोंमें मस्तक नवाकर आदरसहित मिले । श्रीरघुनाथजी भी छोटे भाईसहित उनमें गले लगाकर मिले । सुग्रीव मनमें इस प्रकार सोच रहे हैं कि हे विधाता ! क्या ये मुझसे प्रीति करेंगे ? ॥ ४ ॥

दो०—तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ ।

पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति ददाइ ॥ ४ ॥

तब हनुमान्जीने दोनों ओरकी सब कथा सुनाकर अश्विको साक्षी देकर परस्पर दृढ़ करके प्रीति जोड़ दी (अर्थात् अश्विकी साक्षी देकर प्रतिज्ञापूर्वक उनकी मैत्री करवा दी) ॥ ४ ॥

चौ०—कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा । लछिमन रामचरित सब भाषा ॥

कह सुग्रीव नयन भरि बारी । मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी ॥ १ ॥

दोनोंने हृदयसे प्रीति की, कुछ भी अन्तर नहीं रक्खा । तब लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीका सारा इतिहास कहा । सुग्रीवने नेत्रोंमें जल भरकर कहा—हे नाथ ! मिथिलेशकुमारी जानकीजी मिल जायँगी ॥ १ ॥

मन्त्रिन्ह सहित इहाँ एक वारा । बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा ॥

गगन पंथ देखी मैं जाता । परबस परी बहुत विलपाता ॥ २ ॥

मैं एक बार यहाँ मन्त्रियोंके साथ बैठा हुआ कुछ विचार कर रहा था । तब मैंने पराये (शत्रुके) वशमें पड़ी बहुत विलाप करती हुई सीताजीको आकाशमार्गसे जाते देखा था ॥ २ ॥

राम राम हा राम पुकारी । हमहि देखि दीन्हैउ पट डारी ॥

मागा राम तुरत तेहिं दीन्हा । पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ॥ ३ ॥

हमें देखकर उन्होंने 'राम ! राम ! हा राम !' पुकारकर वस्त्र गिरा दिया था । श्रीरामजीने उसे माँगा, तब सुग्रीवने तुरंत ही दे दिया । वस्त्रको हृदयसे लगाकर रामचन्द्रजीने बहुत ही सोच किया ॥ ३ ॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा । तजहु सोच मन आनहु धीरा ॥

सब प्रकार करिहउँ सेवकाई । जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई ॥ ४ ॥

सुग्रीवने कहा—हे रघुवीर ! सुनिये । सोच छोड़ दीजिये और मनमें धीरज लाइये । मैं सब प्रकारसे आपकी सेवा करूँगा, जिस उपायसे जानकीजी आकर आपका मिलें ॥ ४ ॥

दो०—सखा वचन सुनि हरषे कृपासिंधु बलसीव ।

कारन कवन बसहु वन मोहि कहहु सुग्रीव ॥ ५ ॥

कृपाके समुद्र और बलकी सीमा श्रीरामजी सखा सुग्रीवके वचन सुनकर हर्षित हुए । [और बोले—] हे सुग्रीव ! मुझे बताओ, तुम वनमें किस कारण रहते हो ? ॥ ५ ॥

चौ०—नाथ बालि अरु मैं द्यौ भाई । प्रीति रही कछु बरनि न जाई ॥

मयसुत मायावी तेहि नाऊँ । आवा सो प्रभु हमरें गाऊँ ॥ १ ॥

[सुग्रीवने कहा—] हे नाथ ! बालि और मैं दो भाई हैं । हम दोनोंमें ऐसी प्रीति थी कि वर्णन नहीं की जा सकती । हे प्रभो ! मय दानवका एक पुत्र था, उसका नाम मायावी था । एक बार वह हमारे गाँवमें आया ॥ १ ॥

अर्ध राति पुर द्वार पुकारा । बाली रिपु बल सहै न पारा ॥

धावा बालि देखि सो भागा । मैं पुनि गयउँ बंधु संग लागा ॥ २ ॥

उसने आधीरातको नगरके फाटकपर आकर पुकारा (ललकारा) । बालि शत्रुके बल (ललकार) को सह नहीं सका । वह दौड़ा, उसे देखकर मायावी भागा । मैं भी भाईके संग लगा चला गया ॥ २ ॥

गिरिवर गुहाँ पैठ सो जाई । तब बाली मोहि कहा बुझाई ॥

परिवेसु मोहि एक पखवारा । नहिं आवौं तब जानेसु मारा ॥ ३ ॥

वह मायावी एक पर्वतकी गुफामें जा घुसा । तब बालिने मुझे समझाकर कहा—तुम एक पखवाड़े (पन्द्रह दिन) तक मेरी बाट देखना । यदि मैं उतने दिनोंमें न आऊँ तो जान लेना कि मैं मारा गया ॥ ३ ॥

मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी । निसरी रुधिर धार तहँ भारी ॥

बालि हतेसि मोहि मारिहि आई । सिला देइ तहँ चलेउँ पराई ॥ ४ ॥

हे खरारि ! मैं वहाँ महीनेभर तक रहा । वहाँ (उस गुफामेंसे) रक्तकी बड़ी भारी धारा निकली ।
[तब मैंने समझा कि] उसने बालिको मार डाला, अब आकर मुझे मारेगा । इसलिये मैं वहाँ (गुफाके द्वारपर)
एक शिला लगाकर भाग आया ॥ ४ ॥

मन्त्रिन्ह पुर देखा बिनु सारै । दीन्हैउ मोहि राज बरिमाई ॥
बाली ताहि मारि गृह आवा । देखि मोहि जियँ भेद बढ़ावा ॥ ५ ॥

मन्त्रियोंने नगरको बिना, स्वामी (राजा) का देखा, तो मुझको जबर्दस्ती राज्य दे दिया । बालि उसे मारकर घर आ गया । मुझे राजसिंहासनपर देखकर उसने जीमें भेद बढ़ाया (बहुत ही विरोध माना) ।
[उसने समझा कि यह राज्यके लोभसे ही गुफाके द्वारपर शिला दे आया था, जिसमें मैं बाहर न निकल सकूँ;
और यहाँ आकर राजा बन बैठा] ॥ ५ ॥

रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी । हरि लीन्हैसि सर्वसु अरु नारी ॥
तामैं भय रघुवीर कृपाला । सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला ॥ ६ ॥
उसने मुझे शत्रुके समान बहुत अधिक मारा, और मेरा सर्वस्व तथा मेरी स्त्रीको भी छीन लिया ।
हे कृपालु रघुवीर ! मैं उसके भयसे समस्त लोकोंमें बेहाल होकर फिरता रहा ॥ ६ ॥

इहाँ साप बस आवत नाहीं । तदपि सभोत रहउँ मन माहीं ॥
सुनि सेवक दुख दीनदयाला । फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला ॥ ७ ॥

वह सापके कारण यहाँ नहीं आता । तो भी मैं मनमें भयभीत रहता हूँ । सेवकका दुःख सुनकर
दीनोपर दया करनेवाले श्रीरघुनाथजीकी दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं ॥ ७ ॥

दो०—सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं वान ।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गाँ न उवरिहिं प्राण ॥ ६ ॥

[उन्होंने कहा—] हे सुग्रीव ! सुनो, मैं एक ही वानसे बालिको मार डालूँगा । ब्रह्मा और
रुद्रकी शरणमें जानेपर भी उसके प्राण न बचेंगे ॥ ६ ॥

चौ०—जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहि विलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्र क दुख रज मेरु समाना ॥ १ ॥
जो लोग मित्रके दुःखसे दुखी नहीं होते, उन्हें देखनेसे भारी पाप लगाना है । अपने पर्वतके समान
दुःखको धूलके समान और मित्रके धूलके समान दुःखको सुमेरु (बड़े भारी पर्वत) के समान जाने ॥ १ ॥

जिन्ह के असि मति सहज न आई । ते सट कत हठि करत मितार्ई ॥
कुपथ निवारि सुपथ चलावा । गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा ॥ २ ॥
जिन्हें स्वभावसे ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है, वे मूर्ख हट करके क्यो किसीसे मित्रता करते हैं ? मित्रका
धर्म है कि वह मित्रको बुरे मार्गसे रोककर अच्छे मार्गपर चलावे । उसके गुण प्रकट करे और अवगुणोंको
छिपावे ॥ २ ॥

देत लेत मन संक न धरई । बल अनुमान सदा हित करई ॥
विपति काल कर सतगुन नेहा । श्रुति कहु संत मित्र गुन एहा ॥ ३ ॥
देनेलेनेमें मनमें शंका न रखे । अपने बलके अनुसार सदा हित ही करता रहे । विपत्तिके समयमें तो
सदासे सौगुना खेह करे । वेद कहते हैं कि संत (श्रेष्ठ) मित्रके गुण (लक्षण) ये हैं ॥ ३ ॥

भागों कह मृदु बचन बनाई । पाछें अनहित मन कुटिलाई ॥

जाकर चित अहिगति सम भाई । अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई ॥ ४ ॥

जो सामने तो बना-बनाकर कौमल बचन कहता है और पीठ पीछे बुराई करता है तथा मनमें कुटिलता रखता है—हे भाई ! [इस तरह] जिसका मन साँपकी चालके समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्रको तो त्यागनेमें ही भलाई है ॥ ४ ॥

सेवक सठ नृप कृपन कुनारी । कपटी मित्र सुल सम चारी ॥

सखा सोच त्यागहु बल मोरें । सब विधि घटव काज मैं तोरें ॥ ५ ॥

मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, कुलटा स्त्री और कपटी मित्र, ये चारों शूलके समान पीड़ा देनेवाले हैं ! हे सखा ! मेरे बलपर अब तुम चिन्ता छोड़ दो । मैं सब प्रकारसे तुम्हारे काम आऊँगा (तुम्हारी सहायता करूँगा) ॥ ५ ॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा । बालि महाबल अति रणवीरा ॥

दुन्दुभि अस्थि ताल देखराय । बिनु प्रयास रघुनाथ दहाय ॥ ६ ॥

सुग्रीवने कहा—हे रघुवीर ! सुनिये, बालि महान् बलवान् और अत्यन्त रणवीर है । फिर सुग्रीवने श्रीरामजीको दुन्दुभि राक्षसकी हड्डियों और तालके वृक्ष दिखलाये । भीरुघुनाथजीने उन्हें बिना ही परिश्रमके (आसानीसे) दहा दिया ॥ ६ ॥

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती । बालि बधब इन्ह भइ परतीती ॥

बार बार नावइ पद सीसा । प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा ॥ ७ ॥

श्रीरामजीका अपरिमित बल देखकर सुग्रीवकी प्रीति बढ़ गयी और उन्हें विश्वास हो गया कि ये बालिका बध अवश्य करेंगे । वे बार-बार चरणोंमें सिर नवाने लगे । प्रभुको पहचानकर सुग्रीव मनमें हर्षित हो रहे थे ॥ ७ ॥

उपजा ग्यान बचन तब बोला । नाथकृपाँ मन भयउ अलोला ॥

मुख संपत्ति परिवार बढ़ाई । सब परिहरि करिहउँ सेवकाई ॥ ८ ॥

जब ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब वे ये वचन बोले कि हे नाथ ! आपकी कृपासे अब मेरा मन स्थिर हो गया । मुख, सम्पत्ति, परिवार और बढ़ाई (बड़प्पन) सबको त्यागकर मैं आपकी सेवा ही करूँगा ॥ ८ ॥

ए सब रामभगति के बाधक । कहहिं संत तब पद अवराधक ॥

सशु मित्र सुख दुख जग माहीं । मायारुत परमार्थ नाहीं ॥ ९ ॥

क्योंकि आपके चरणोंकी आराधना करनेवाले संत कहते हैं कि ये सब (मुख, सम्पत्ति आदि) रामभक्तिके विरोधी हैं । जगत्में जितने भी शत्रु-मित्र और सुख-दुःख आदि द्वन्द्व हैं, सब के सब मायारचित हैं, परमार्थतः (वास्तवमें) नहीं हैं ॥ ९ ॥

बालि परम हित जासु प्रसादा । मिलेहु राम तुम्ह समन विषादा ॥

सपनें जेहि सन होइ लराई । जागे समुझत मन सकुचाई ॥ १० ॥

हे श्रीरामजी ! बालि तो मेरा परम हितकारी है, जिसकी कृपासे [जन्म-मरणके] दुःखका नाश करनेवाले आप मुझे मिले । जिसके साथ अब स्वप्नमें भी लड़ाई हो तो जागनेपर उसे समझकर मनमें संकोच होगा [कि स्वप्नमें भी मैं उससे क्यों लड़ा] ॥ १० ॥

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती । सब तजि भजनु करौं दिन राती ॥

सुनि बिराग संजुत कपिबानी । बोले बिहँसि रामु धनुपानी ॥ ११ ॥

हे प्रभो ! अब तो इस प्रकार कृपा कीजिये कि सब छोड़कर दिन-रात मैं आपका भजन ही करूँ ।

सुग्रीवकी वैराग्ययुक्त वाणी सुनकर (उसके क्षणिक वैराग्यको देखकर) हाथमें धनुष धारण करनेवाले भीरामजी मुस्कराकर बोले—॥ ११ ॥

जो कुछ कहेहु सत्य सब सोई । सखा वचन मम मृग न होई ॥

नट मरकट इव सबहि नचावत । रामु जगोस बेद अस गावत ॥१२॥

तुमने जो कुछ कहा है, वह सभी सत्य है; परन्तु हे सखा ! मेरा वचन मिथ्या नहीं होता (अर्थात् बालि मारा जायगा और तुम्हें राज्य मिलेगा) । [काकभृगुण्डिजी कहते हैं कि—] हे पक्षियोंकि राजा गरुड ! नट (मदारी) के बन्दरकी तरह भीरामजी सबको नचाते हैं, वेद ऐसा कहते हैं ॥ १२ ॥

लै सुग्रीव संग रघुनाथ । चले चाप सायक गहि हाथा ॥

तब रघुपति सुग्रीव पठावा । गर्जेसि जाइ निकट बल पावा ॥१३॥

तदनन्तर सुग्रीवको साथ लेकर और हाथोंमें धनुष-बाण धारण करके भीरघुनाथजी चले । तब भीरघुनाथजीने सुग्रीवको बालिके पास भेजा । वह भीरामजीका बल पाकर बालिके निकट जाकर गरजा ॥ १३ ॥

सुनत बालि क्रोधानुर धावा । गहि कर चरन नारि समुझावा ॥

सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा । ते द्वौ बंधु तेज बल सीवा ॥१४॥

बालि सुनते ही क्रोधमें भरकर वेगसे दौड़ा । उसकी स्त्री ताराने चरण पकड़कर उसे समझाया कि हे पति ! सुनिये, सुग्रीव जिनसे मिले हैं वे दोनों भाई तेज और बलकी सीमा हैं ॥ १४ ॥

कोसलेस सुत लछिमन रामा । कालहु जीति सकहिं संग्रामा ॥१५॥

वे कोसलाधीश दशरथजीके पुत्र राम और लक्ष्मण संग्राममें कालको भी जीत सकते हैं ॥ १५ ॥

दो०—कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ ।

जौं कदाचि मोहि मारहिं तां पुनि होउँ सनाथ ॥ ७ ॥

बालिने कहा—हे भीरु (डरपोक) प्रिये ! सुनो, भीरघुनाथजी समदर्शी हैं । जो कदाचित् वे मुझे मारेंहीगे तो मैं सनाथ हो जाऊँगा (परमपद पा जाऊँगा) ॥ ७ ॥

चौ०—अस कहि चला महा अभिमानी । तन समान सुग्रीवहि जानी ॥

भिरे उभौ बालो अति तर्जा । मुठिका मारि महाधुनि गर्जा ॥ १ ॥

ऐसा कहकर वह महा अभिमानी बालि सुग्रीवको तिनकेके समान जानकर चला । दोनों भिड़ गये । बालिने सुग्रीवको बहुत धमकाया और धूँसा मारकर बड़े जोरसे गरजा ॥ १ ॥

तब सुग्रीव बिकल होइ भागा । मुष्टिप्रहार बज्र सम लागा ॥

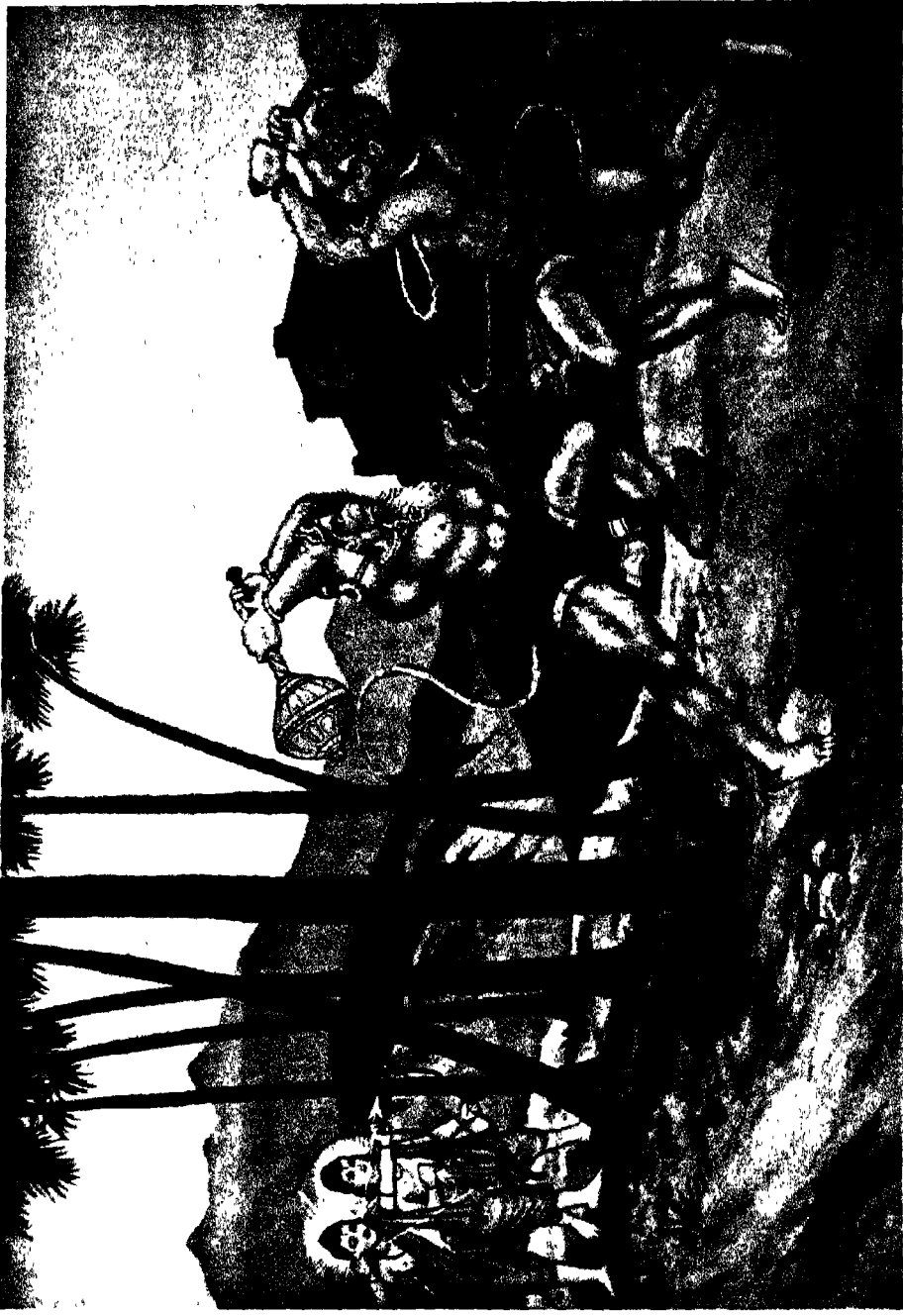
मैं जो कहा रघुवीर कृपाला । बंधु न होइ मार यह काला ॥ २ ॥

तब सुग्रीव व्याकुल होकर भागा । घूँसेकी चोट उसे बज्रके समान लगी । [सुग्रीवने आकर कहा—] हे कृपाल रघुवीर ! मैंने आपसे पहले ही कहा था कि बालि मेरा भाई नहीं है, काल है ॥ २ ॥

एकरूप तुम्ह भ्राता दोऊ । तेहि भ्रम तैं नहिं मारेउँ सोऊ ॥

कर परसा सुग्रीव सर्रीरा । तनु भा कुलिस गई सब पीरा ॥ ३ ॥

[भीरामजीने कहा—] तुम दोनों भाइयोंका एक-सा ही रूप है । इसी भ्रमसे मैंने उसको नहीं मारा ।



बहु छल बल सुग्रीव क्रु हियै हाग भय मालि । माग बालि गम तव हृदय माझ सर तानि ॥

फिर श्रीरामजीने सुग्रीवके शरीरको हाथसे स्पर्श किया, जिससे उसका शरीर वज्रके समान हो गया और सारी पीड़ा जाती रही ॥ ३ ॥

मेली कंठ सुमन कै माला । पठवा पुनि बल देइ बिसाला ॥
पुनि नानाविधि भई लराई । बिटप ओट देखहिं रघुराई ॥ ४ ॥

तब श्रीरामजीने सुग्रीवके गलेमें फूलोंकी माला डाल दी और फिर उसे बड़ा भारी बल देकर भेजा । दोनोंमें पुनः अनेक प्रकारसे युद्ध हुआ । श्रीरघुनाथजी वृक्षकी आड़से देख रहे थे ॥ ४ ॥

दो०—बहु छल बल सुग्रीव कर हियँ हारा भय मानि ।

मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि ॥ ८ ॥

सुग्रीवने बहुतसे छल-बल किये, किन्तु अन्तमें भय मानकर हृदयसे हार गया । तब श्रीरामजीने तानकर बालिके हृदयमें बाण मारा ॥ ८ ॥

चौ०—परा बिकल महि सर के लागें । पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगें ॥
स्याम गात सिर जटा बनाएँ । अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ ॥ १ ॥

बाणके लगते ही बालि व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा । किन्तु प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको आगे देखकर वह फिर उठ बैठा । भगवान्का श्याम शरीर है, सिरपर जटा बनाये हैं, लाल नेत्र हैं, बाण लिये हैं और धनुष चढ़ाये हैं ॥ १ ॥

पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा । सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा ॥
हृदयँ प्रीति मुख बचन कठोरा । बोला बितइ राम की ओरा ॥ २ ॥

बालिने बार-बार भगवान्की ओर देखकर चित्तको उनके चरणोंमें लगा दिया । प्रभुको पहचानकर उसने अपना जन्म सफल माना । उसके हृदयमें प्रीति थी, पर मुखमें कठोर वचन थे । वह श्रीरामजीकी ओर देखकर बोला—॥ २ ॥

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं । मारेहु मोहि व्याध की नाई ॥
मैं वैरी सुग्रीव पिआरा । अवगुन कवन नाथ मोहि मारा ॥ ३ ॥

हे गोसाईं ! आपने धर्मकी रक्षाके लिये अवतार लिया है और मुझे व्याधकी तरह (छिपकर) मारा ! मैं वैरी और सुग्रीव प्यारा ! हे नाथ ! किस दोषसे आपने मुझे मारा ! ॥ ३ ॥

अनुजवधू भगिनी सुतनारी । सुनु सठ कन्या सम प चारी ॥
इन्हहि कुट्टि बिलोकइ जोई । ताहि बधैं कछु पाप न होई ॥ ४ ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे मूर्ख ! मुन, छोटे भाईकी स्त्री, बहिन, पुत्रकी स्त्री और कन्या, ये चारों समान हैं । इनको जो कोई बुरी दृष्टिसे देखता है, उसे मारनेमें कुछ भी पाप नहीं होता ॥ ४ ॥

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना । नारि सिखावन करसि न काना ॥
मम भुजबल आश्रित तेहि जानी । मारा चहसि अधम अभिमानी ॥ ५ ॥

हे मूढ़ ! तुझे अत्यन्त अभिमान है । तूने अपनी स्त्रीकी सीखपर भी कान (ध्यान) नहीं दिया । सुग्रीवकी मेरी भुजाओंके बलका आश्रित जानकर भी अरे अधम अभिमानी ! तूने उसको मारना चाहा ! ॥ ५ ॥

दो०—सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि ।

प्रभु अजहँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि ॥ ९ ॥

[बालिने कहा—] हे श्रीरामजी ! सुनिये, स्वामी (आप) से मेरी चतुराई नहीं चल सकती । हे प्रभो ! अन्तकालमें आपकी गति (शरण) पाकर मैं अब भी पापी ही रहा ? ॥ ९ ॥

चौ०—सुनत राम अति कोमल बानी । बालि सीस परसेउ निज पानी ॥
अचल करौ तनु राखहु प्राणा । बालि कहा सुनु कृपानिधाना ॥ १ ॥

बालिकी अत्यन्त कोमल वाणी सुनकर श्रीरामजीने उसके सिरको अपने हाथसे स्पर्श किया [और कहा—] मैं तुम्हारे शरीरको अचल कर दूँ, तुम प्राणोंको रक्खो ! बालिने कहा—हे कृपानिधान ! सुनिये—॥ १ ॥

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं । अंत राम कहि आवत नाहीं ॥

जासु नाम बल संकर कासी । देत सबहि सम गति अबिनासी ॥ २ ॥

मुनिगण जन्म-जन्ममें (प्रत्येक जन्ममें) अनेकों प्रकारका साधन करते रहते हैं । फिर भी अन्तकालमें उन्हें 'राम' नहीं कह आता (उनके मुखसे 'राम' नाम नहीं निकलता) । जिनके नामके बलसे शंकरजी काशीमें सबको समानरूपसे अबिनाशिनी गति (मुक्ति) देते हैं ॥ २ ॥

मम लोचन गोचर सोइ आवा । बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा ॥ ३ ॥

वही श्रीराम स्वयं मेरे नेत्रोंके सामने आ गये हैं । हे प्रभो ! ऐसा संयोग क्या फिर कभी बन पड़ेगा ? ॥ ३ ॥

छं०—सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं ।

जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं ॥

मोहि जानि अति अभिमान बस प्रभु कहेउ राखु सरीरही ।

अस कवन सठ हठि काटि सुरतह बारि करिहि बबूरही ॥ १ ॥

श्रुतियाँ 'नेति-नेति' कहकर निरन्तर जिनका गुणगान करती रहती हैं, तथा प्राण और मनको जीतकर एवं इन्द्रियोंको विषयोंके रससे सर्वथा नीरस बनाकर (छुड़ाकर) मुनिगण ध्यानमें जिनकी कभी बचित् ही शलक पाते हैं, वे ही प्रभु (आप) साक्षात् मेरे सामने प्रकट है । आपने मुझे अत्यन्त अभिमानवश जानकर यह कहा कि तुम शरीर रख लो । परन्तु ऐसा मूर्ख कौन होगा जो हठपूर्वक कल्पवृक्षको काटकर उससे बबूरके बाढ़ लगावेगा (अर्थात् पूर्णकाम बना देनेवाले आपको छोड़कर आपसे इस नश्वर शरीरकी रक्षा चाहेगा ?) ॥ १ ॥

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ ।

जेहिं जोनि जन्माँ कर्म बस तहँ रामपद अनुरागऊँ ॥

यह तनय मम सम बिनय बल कल्याणप्रद प्रभु लीजिये ।

गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिये ॥ २ ॥

हे नाथ ! अब मुझपर दयादृष्टि कीजिये, और मैं जो वर माँगता हूँ उसे दीजिये । मैं कर्मवश जिस योनिमें जन्म लूँ, वहाँ श्रीरामजी (आप) के चरणोंमें प्रेम करूँ । हे कल्याणप्रद प्रभो ! यह मेरा पुत्र अंगद विनय और बलमें मेरे ही समान है, इसे स्वीकार कीजिये । और हे देवता और मनुष्योंके नाथ ! बाँह पकड़कर इसे अपना दास बनाइये ॥ २ ॥

दो०—राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग ।

सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग ॥ १० ॥

श्रीरामजीके चरणोंमें दृढ़ प्रीति करके बालिने शरीरको वैद्ये ही (आसानीसे) त्याग दिया जैसे हाथी अपने गलेसे फूलोंकी मालाका गिरना न जाने ॥ १० ॥

चौ०—राम बालि निज धाम पठावा । नगर लोग सब व्याकुल धावा ॥
नाना बिधि बिलाप कर तारा । छूटे केस न देह सँभारा ॥ १ ॥
श्रीरामचन्द्रजीने बालिको अपने परमधाम भेज दिया । नगरके सब लोग व्याकुल होकर दौड़े । बालिकी स्त्री तारा अनेकों प्रकारसे बिलाप करने लगी । उसके बाल बिखरे हुए हैं और देहकी सँभाल नहीं है ॥ १ ॥

तारा बिकल देखि रघुराया । दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया ॥
छिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित अति अधम सरीरा ॥ २ ॥
ताराको व्याकुल देखकर श्रीरघुनाथजीने उसे ज्ञान दिया और उसकी माया (अज्ञान) हर ली । [उन्होंने कहा—] पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु, इन पञ्चतत्त्वोंसे यह अत्यन्त अधम शरीर रचा गया है ॥ २ ॥
प्रगट सो तनु तब आगें सोवा । जीव नित्य केहि लागि तुम्ह रोवा ॥
उपजा ग्यान चरन तब लागी । लीन्हेसि परम भगति बर मागी ॥ ३ ॥
वह शरीर तो प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने सोया हुआ है, और जीव नित्य है फिर तुम किसके लिये रो रही हो ! जब ज्ञान उत्पन्न हो गया, तब वह भगवान्‌के चरणों लगी और उसने परम भक्तिका वर माँग लिया ॥ ३ ॥
उमा दारु जोषित की नाई । सबहि नचावत रामु गोसाई ॥
तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा । मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा ॥ ४ ॥
[शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! स्वामी श्रीरामजी सबको कठपुतलीकी तरह नचाते हैं । तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवको आज्ञा दी और सुग्रीवने विधिपूर्वक बालिका सब मृतक-कर्म किया ॥ ४ ॥

राम कहा अनुजहि समुझाई । राज देहु सुग्रीवहि जाई ॥
रघुपति चरन नाइ करि माथा । चले सकल प्रेरित रघुनाथा ॥ ५ ॥
तब श्रीरामचन्द्रजीने छोटे भाई लक्ष्मणको समझाकर कहा कि तुम जाकर सुग्रीवको राज्य दे दो । श्रीरघुनाथजीकी प्रेरणा (आज्ञा) से सब लोग श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें मस्तक नवाकर चले ॥ ५ ॥

दो०—लल्लिमन तुरत बोलाए पुरजन चिप्र समाज ।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज ॥ ११ ॥
लक्ष्मणजीने तुरंत ही सब नगरनिवासियोंको और ब्राह्मणोंके समाजको बुला लिया और [उनके सामने] सुग्रीवको राज्य और अंगदको युवराजपद दिया ॥ ११ ॥

चौ०—उमा राम सम हित जग माहीं । गुर पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं ॥
सुर नर मुनि सब कै यह रीती । स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥ १ ॥
हे पार्वती ! जगत्‌में श्रीरामजीके समान हित करनेवाला गुरु, पिता, माता, बन्धु और स्वामी कोई नहीं है । देवता, मनुष्य और मुनि सबकी यह रीति है कि स्वार्थके लिये ही सब प्रीति करते हैं ॥ १ ॥

बालि त्रास व्याकुल दिन राती । तन बहु ब्रन चिंताँ जर छाती ॥
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपिराज । अति कृपाल रघुबीर सुभाज ॥ २ ॥
जो सुग्रीव दिन-रात बालिके भयसे व्याकुल रहता था, जिसके शरीरमें बहुत-से घाव हो गये थे और जिसकी छाती चिन्ताके मारे जल करती थी, उसी सुग्रीवको उन्होंने वानरोंका राजा बना दिया । श्रीरघुबीरजीका स्वभाव अत्यन्त ही कृपालु है ॥ २ ॥

जानतहूँ अस प्रभु परिहरहों । काहे न बिपति जाल नर परहों ॥

पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई । बहु प्रकार नृपनीति सिखाई ॥ ३ ॥

जो लोग जानते हुए भी ऐसे प्रभुको त्याग देते हैं, वे क्यों न विपत्तिके जालमें फँसें ! फिर श्रीरामजीने सुग्रीवको बुला लिया और बहुत प्रकारसे उन्हें राजनीतिकी शिक्षा दी ॥ ३ ॥

कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा । पुर न जाउँ दस चारि बरीसा ॥

गत ग्रीष्म बरषा रितु आई । रहिहउँ निकट सैल पर छाई ॥ ४ ॥

फिर प्रभुने कहा—हे वानरपति सुग्रीव ! सुनो, मैं चौदह वर्षतक गाँव (बस्ती) में नहीं जाऊँगा । ग्रीष्मऋतु बीतकर वर्षाऋतु आ गयी । अतः मैं यहाँ पास ही पर्वतपर टिक रहूँगा ॥ ४ ॥

अंगद सहित करहु तुम्ह राजू । संतत हृदयँ धरेहु मम काजू ॥

जब सुग्रीव भवन फिरि आए । रामु प्रवरपन गिरि पर छाप ॥ ५ ॥

तुम अंगदसहित राज्य करो । मेरे कामका हृदयमें सदा ध्यान रखना । तदनन्तर जब सुग्रीवजी घर लौट आये, तब श्रीरामजी प्रवर्षण पर्वतपर जा टिके ॥ ५ ॥

दा०—प्रथमहिं देवन्ह गिरिगुहा राखेउ रुचिर बनाइ ।

राम कृपानिधि कछु दिन बास करहिंगे आइ ॥ १२ ॥

देवताओंने पहलेसे ही उस पर्वतकी एक गुफाको सुन्दर बना (सजा) रक्खा था । उन्होंने सोच रक्खा था कि कृपाकी खान श्रीरामजी कुछ दिन यहाँ आकर निवास करेंगे ॥ १२ ॥

चौ०—सुंदर बन कुसुमांत अति सोभा । गुंजत मधुप निकर मधु लोभा ॥

कंद मूल फल पत्र सुहाए । भय बहुत जब ते प्रभु आए ॥ १ ॥

सुन्दर वन फूला हुआ अत्यन्त सुशोभित है । मधुके लोभसे भौरोंके समूह गुंजार कर रहे हैं । जबसे प्रभु आये, तबसे वनमें सुन्दर कन्द, मूल, फल और पत्तोंकी बहुतायत हो गयी ॥ १ ॥

देखि मनोहर सैल अनूपा । रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा ॥

मधुकर खग मृग तनु धरि देवा । करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा ॥ २ ॥

मनोहर और अनुपम पर्वतको देखकर देवताओंके सम्राट् श्रीरामजी छोटे भाईसहित वहाँ रह गये । देवता, सिद्ध और मुनि भौरों, पक्षियों और पशुओंके शरीर धारण करके प्रभुकी सेवा करने लगे ॥ २ ॥

मंगलरूप भयउ बन तव ते । कीन्ह निवास रमापति जय ते ॥

फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई । सुख आसीन तहाँ द्रौ भाई ॥ ३ ॥

जबसे रमापति श्रीरामजीने वहाँ निवास किया तबसे वन मङ्गलस्वरूप हो गया । सुन्दर स्फटिकमणिकी एक अत्यन्त उज्ज्वल शिला है, उसपर दोनों भाई सुखपूर्वक विराजमान हैं ॥ ३ ॥

कहत अनुज सन कथा अनेका । भगति बिरति नृपनीति बिबेका ॥

बरषा काल मेघ नभ छाप । गरजत लागत परम सुहाए ॥ ४ ॥

श्रीरामजी छोटे भाई लक्ष्मणजीसे भक्ति, वैराग्य, राजनीति और ज्ञानकी अनेकों कथाएँ कहते हैं । वर्षाकालमें आकाशमें छाये हुए बादल गरजते हुए बहुत ही सुहावने लगते हैं ॥ ४ ॥

कल्याण

लक्ष्मणको उपदेश



फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई । सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई ॥
कहत अनुज सन कथा अनेका । भगति बिरति नृपनीति बिबेका ॥

दो०—लल्लिमन देखु मोरगन नाचत नारिद पेखि ।

गृही बिरति रत हरष जस बिष्णुभगत कहूँ देखि ॥ १३ ॥

[भीरामजी कहने लगे—] हे लक्ष्मण ! देखो, मोरोंके छुंड बादलोंको देखकर नाच रहे हैं । जैसे गृहस्थ वैराग्यमें अनुरक्त किसी विष्णुभक्तको देखकर हर्षित होते हैं ॥ १३ ॥

चो०—घन घमंड नभ गरजत घोरा । प्रियाहीन डरपत मन मोरा ॥

दामिनि दमक रह न घन माहीं । खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ॥ १ ॥

आकाशमें बादल घुमड़-घुमड़कर घोर गर्जना कर रहे हैं । प्रियाविहीन (सीताजीके बिना) मेरा मन डर रहा है । बिजलीकी चमक बादलोंमें ठहरती नहीं, जैसे दुष्टकी प्रीति स्थिर नहीं रहती ॥ १ ॥

बरषहिं जलद भूमि निभरायँ । जथा नवहिं बुध बिद्या पायँ ॥

बूँद अघात सहहिं गिरि कैसेँ । खल के वचन संत सह जैसेँ ॥ २ ॥

बादल पृथ्वीके समीप आकर (नीचे उतरकर) बरस रहे हैं, जैसे विद्या पाकर विद्वान् नम्र हो जाते हैं । बूँदोंकी चोट पर्वत कैसे सहते हैं, जैसे दुष्टोंके वचन संत सहते हैं ॥ २ ॥

शुद्ध नदीं भरि चलीं तोराई । जस थोरैहुँ घन खल इतराई ॥

भूमि परत भा ढाबर पानी । जनु जीवहि माया लपटानी ॥ ३ ॥

छोटी नदियाँ भरकर [किनारोंको] तुड़ाती हुई चलीं, जैसे थोड़े ही धनसे दुष्ट इतरा जाते हैं (सर्वादाका त्याग कर देते हैं) । पृथ्वीपर पड़ते ही पानी गँदला हो गया है, जैसे शुद्ध जीवके माया लिपट गयी हो ॥ ३ ॥

समिति समिति जल भरहिं तलाबा । जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा ॥

सरिता जल जलनिधि महुँ जाई । होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ॥ ४ ॥

जल एकत्र हो-होकर तालाबोंमें भर रहा है, जैसे सद्गुण [एक-एककर] सज्जनके पास चले आते हैं । नदीका जल समुद्रमें जाकर वैसे ही स्थिर हो जाता है, जैसे जीव श्रीहरिको पाकर अचल (आवागमनसे मुक्त) हो जाता है ॥ ४ ॥

दो०—हरित भूमि तन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ ।

जिमि पारखंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ ॥ १४ ॥

पृथ्वी घाससे परिपूर्ण होकर हरी हो गयी है, जिससे रास्ते समझ नहीं पड़ते । जैसे पाखण्ड मतके प्रचारसे सद्ग्रन्थ गुप्त (छुप्त) हो जाते हैं ॥ १४ ॥

चो०—दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई । वेद पढ़हिं जनु बट्ट समुदाई ॥

नव बल्लव भय बिटप अनेका । साधक मन जस मिलें बिबेका ॥ १ ॥

चारो दिशाओंमें मेढकोंकी ध्वनि ऐसी सुहावनी लगती है, मानो विद्यार्थियोंके समुदाय वेद पढ़ रहे हों । अनेकों वृक्षोंमें नये पत्ते आ गये हैं, जिससे वे ऐसे हरे-भरे एवं सुशोभित हो गये हैं । जैसे साधकका मन विवेक (ज्ञान) प्राप्त होनेपर हो जाता है ॥ १ ॥

अर्क जवास पात विनु भयऊ । जस सुराज खल उद्यम गयऊ ॥

खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी । करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी ॥ २ ॥

मदार और जवासा बिना पत्तेके हो गये (उनके पत्ते शड़ गये) । जैसे श्रेष्ठ राज्यमें दुष्टोंका उद्यम जाता

रहा (उनकी एक भी नहीं चलती) । धूल कहीं खोजनेपर भी नहीं मिलती, जैसे क्रोध धर्मको दूर कर देता है (अर्थात् क्रोधका आवेश होनेपर धर्मका ज्ञान नहीं रह जाता) ॥ २ ॥

ससि संपन्न सोह महि कैसी । उपकारी के संपत्ति जैसी ॥

निसि तम घन खद्योत विराजा । जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा ॥ ३ ॥

अन्नसे युक्त (लहलहाती हुई खेतीसे हरी-भरी) पृथ्वी कैसी शोभित हो रही है, जैसे उपकारी पुरुषकी सम्पत्ति । रातके घने अन्धकारमें जुगनू शोभा पा रहे हैं, मानो दम्भियोंका समाज आ जुटा हो ॥ ३ ॥

महावृष्टि चलिं फूटि कियारीं । जिमि सुतंत्र भएँ विगरहिं नारीं ॥

कृषी निरावहिं चतुर किसाना । जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ॥ ४ ॥

भारी वर्षासे खेतोंकी क्यारियाँ फूट चली हैं, जैसे स्वतन्त्र होनेसे स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं । चतुर किसान खेतोंको निरा रहे हैं (उनमेंसे घास आदिको निकालकर फेंक रहे हैं) । जैसे विद्वान् लोग मोह, मद और मानका त्याग कर देते हैं ॥ ४ ॥

देखिअत चक्रवाक खग नाही । कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं ॥

ऊपर बरषइ तन नहिं जामा । जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा ॥ ५ ॥

चक्रवाक पक्षी त्रिवायी नहीं दे रहे हैं, जैसे कलियुगको पाकर धर्म भाग जाते हैं । ऊपरमें वर्षा होती है, पर वहाँ घास नहीं उगती । जैसे हरिभक्तके हृदयमें काम नहीं उत्पन्न होता ॥ ५ ॥

बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा । प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ॥

जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना । जिमि इन्द्रिय गन उपजें ग्याना ॥ ६ ॥

पृथ्वी अनेक तरहके जीवोंसे भरी हुई उसी तरह शोभायमान है, जैसे सुराज्य पाकर प्रजाकी वृद्धि होती है । जहाँ-तहाँ अनेक पथिक थककर ठहरे हुए हैं जैसे ज्ञान उत्पन्न होनेपर इन्द्रियाँ शिथिल होकर विषयोंकी ओर जाना छोड़ देती हैं ॥ ६ ॥

दा०—कबहुँ प्रबल वह मारुत जहँ तहँ मेघ विलाहिं ।

जिमि कपूत के उपजें कुल सदर्म नसाहिं ॥ १५ (क) ॥

कभी-कभी वायु बड़े जोरसे चलने लगती है, जिससे बादल जहाँ-तहाँ गायब हो जाते हैं । जैसे कुपुत्रके उत्पन्न होनेसे कुलके उत्तम धर्म (श्रेष्ठ आचरण) नष्ट हो जाते हैं ॥ १५ (क) ॥

कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग ।

बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग ॥ १५ (ख) ॥

कभी [बादलोंके कारण] दिनमें घोर अन्धकार छा जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाते हैं । जैसे कुसंग पाकर ज्ञान नष्ट हो जाता है और सुसंग पाकर उत्पन्न हो जाता है ॥ १५ (ख) ॥

चौ०—बरषा बिगत सरद रितु आई । लछिमन देखहु परम सुहाई ॥

फूले कास सकल महि छाई । जनु बरषा कृत प्रगट बुढ़ाई ॥ १ ॥

हे लक्ष्मण ! देखो, वर्षा बीत गयी और परम सुन्दर शरदऋतु आ गयी । फूले हुए काससे सारी पृथ्वी छा गयी । मानो वर्षाऋतुने [कासरूपी सफेद बालोंके रूपमें] अपना बुढ़ापा प्रकट किया है ॥ १ ॥

उदित अगस्ति पंथ जल सोपा । जिमि लोभहि सोषइ संतोषा ॥

सरिता सर निर्मल जल सोहा । संत हृदय जस गत मद मोहा ॥ २ ॥

अगस्त्यके तारेने उदय होकर मार्गके जलको सोख लिया, जैसे संतोष लोभको सोख लेता है । नदियों और तालाबोंका निर्मल जल ऐसा शोभा पा रहा है जैसे मद और मोहसे रहित संतोंका हृदय ॥ २॥

रस रस सूख सरित सर पानी । ममता त्याग करहिं जिमि न्यानी ॥

जानि सरद रितु खंजन आप । पाइ समय जिमि सुकृत सुहाय ॥ ३ ॥

नदी और तालाबोंका जल धीरे-धीरे सूख रहा है । जैसे शानी पुरुष ममताका त्याग करते हैं । शरद्-ऋतु जानकर खंजन पक्षी आ गये । जैसे समय पाकर सुन्दर सुकृत आ जाते हैं (पुण्य प्रकट हो जाते हैं) ॥ ३ ॥

पंक न रेनु सोह असि धरनी । नीति निपुन नृप कै जसि करनी ॥

जल संकोच बिकल भई मीना । अबुध कुटुंबी जिमि घनहीना ॥ ४ ॥

न कीचड़ है न धूल; इससे धरती [निर्मल होकर] ऐसी शोभा दे रही है जैसे नीतिनिपुण राजाकी करनी ! जलके कम हो जानेसे मछलियाँ व्याकुल हो रही हैं, जैसे मूर्ख (विवेकशून्य) कुटुम्बी (गृहस्थ) धनके बिना व्याकुल होता है ॥ ४ ॥

बिनु घन निर्मल सोह अकासा । हरिजन इव परिहरि सब आसा ॥

कहुँ कहुँ शृष्टि सारदी थोरी । कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी ॥ ५ ॥

बिना बादलोंका निर्मल आकाश ऐसा शोभित हो रहा है जैसे भगवद्भक्त सब आशाओंको छोड़कर सुशोभित होते हैं । कहीं-कहीं (विरले ही स्थानोंमें) शरद्ऋतुकी थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही है । जैसे कोई विरले ही मेरी भक्ति पाते हैं ॥ ५ ॥

दो०—चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि ।

जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि ॥ १६ ॥

[शरद्ऋतु पाकर] राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिखारी [क्रमशः विजय, तप, व्यापार और भिक्षाके लिये] इर्षित होकर नगर छोड़कर चले । जैसे श्रीहरिकी भक्ति पाकर चारों आश्रमवाले [नाना प्रकारके साधनरूपी] भक्तोंको त्याग देते हैं ॥ १६ ॥

चौ०—सुखी मीन जे नीर अगाधा । जिमि हरि सरन न एकउ बाधा ॥

फूलें कमल सोह सर कैसा । निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा ॥ १ ॥

जो मछलियाँ अयाह जलमें हैं, वे सुखी हैं, जैसे श्रीहरिकी शरणमें चले जानेपर एक भी बाधा नहीं रहती । कमलोंके फूलनेसे तालाब कैसा शोभा दे रहा है, जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण होनेपर शोभित होता है ॥ १ ॥

गुंजत मधुकर मुखर अनूपा । सुंदर खग रव नाना रूपा ॥

चक्रबाक मन दुख निसि पेखी । जिमि दुर्जन पर संपति देखी ॥ २ ॥

भौरे अनुपम शब्द करते हुए गुंज रहे हैं, तथा पक्षियोंके नाना प्रकारके सुन्दर शब्द हो रहे हैं । रात्रि देखकर चक्रवर्क मनमें वैसे ही दुःख हो रहा है, जैसे दूसरेकी सम्पत्ति देखकर दुष्टको होता है ॥ २ ॥

चातक रटत तृषा अति ओही । जिमि सुख लहइ न संकरद्रोही ॥

सरदातप निसि ससि अपहरई । संत दरस जिमि पातक टरई ॥ ३ ॥

पपीहा रट लगाये है, उसको बड़ी प्यास है, जैसे श्रीशंकरजीका द्रोही सुख नहीं पाता । (सुखके लिये सीखता रहता है) शरद्ऋतुके तापको रातके समय चन्द्रमा हर लेता है, जैसे संतोंके दर्शनसे पाप दूर हो जाते हैं ॥ ३ ॥

देखि इंदु चकोर समुदाई । चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई ॥

मसक दंस बीते हिम आसा । जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा ॥ ४ ॥

चकोरोंके समुदाय चन्द्रमाको इस प्रकार चावसे देख रहे हैं जैसे भगवद्भक्त भगवान्को पाकर उनके दर्शन करते हैं। मन्थर और डाँस जाड़ेके डरसे इस प्रकार नष्ट हो गये जैसे ब्राह्मणके साथ वैर करनेसे कुलका नाश हो जाता है ॥ ४ ॥

दो०—भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ ।

सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ ॥ १७ ॥

[वर्षाऋतुके कारण] पृथ्वीपर जो जीव भर गये थे, वे शरदऋतुको पाकर वैसे ही नष्ट हो गये जैसे सदगुरुके मिल जानेपर सन्देह और भ्रमके समूह नष्ट हो जाते हैं ॥ १७ ॥

चो०—बरषा गत निर्मल रितु आई । सुधि न तात सीता कै पाई ॥

एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं । कालहु जीति निमिष महुँ आनौं ॥ १ ॥

वर्षा बीत गयी, निर्मल शरदऋतु आ गयी। परन्तु हे तात ! सीताकी कोई खबर नहीं मिली। एक बार कैसे भी पता पाऊँ तो कालको भी जीतकर पलभरमें जानकीको ले आऊँ ॥ १ ॥

कतहुँ रहउ जाँ जीवति होई । तात जतन करि आनौं सोई ॥

सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी । पावा राज कोस पुर नारी ॥ २ ॥

कहीं भी रहे, यदि जीती होगी तो हे तात ! यत्न करके मैं उसे अवश्य लाऊँगा। राज्य, खजाना, नगर और स्त्री पा गया, इसलिये सुग्रीवने भी मेरी सुघ भुला दी ॥ २ ॥

जेहिं सायक मारा मैं बाली । तेहिं सर हतउँ मूढ़ कहँ काली ॥

जासु कृपाँ छूटहिं मद मोहा । ता कहँ उमा कि सपनेहुँ कोहा ॥ ३ ॥

जिस बाणसे मैंने बालिको मारा था, उसी बाणसे कल उस मूढ़को मारूँ ! [शिवजी कहते हैं] हे उमा ! जिनकी कृपासे मद और मोह छूट जाते हैं उनको कहीं स्वप्नमें भी क्रोध हो सकता है ! [यह तो लीलामात्र है] ॥ ३ ॥

जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी । जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी ॥

लछिमन क्रोधवन्त प्रभु जाना । धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना ॥ ४ ॥

ज्ञानी मुनि जिन्होंने श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें प्रीति मान ली है (जोड़ ली है) वे ही इस चरित्रको (लीलारहस्यको) जानते हैं। लक्ष्मणजीने जब प्रभुको क्रोधयुक्त जाना, तब उन्होंने धनुष चढ़ाकर बाण हाथमें ले लिये ॥ ४ ॥

दो०—तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुनासीव ।

भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव ॥ १८ ॥

तब दयाकी सीमा श्रीरघुनाथजीने छोटे भाई लक्ष्मणजीको समझाया कि हे तात ! सखा सुग्रीवको केवल भय दिखलाकर ले आओ [उसे मारनेकी बात नहीं है] ॥ १८ ॥

चो०—इहाँ पवनसुत हृदयँ बिचारा । रामकाजु सुग्रीवँ बिसारा ॥

निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा । चारिहुँ बिधि तेहि कहि समुझावा ॥ १ ॥

यहाँ (किष्किन्धा नगरीमें) पवनकुमार श्रीहनुमान्जीने विचार किया कि सुग्रीवने रामकार्यको भुला दिया। उन्होंने सुग्रीवके पास जाकर चरणोंमें सिर नवाया तथा [साम, दान, दण्ड, भेद] चारों प्रकारकी नीति कहकर उन्हें समझाया ॥ १ ॥

कल्याण

लक्ष्मणका मुग्रीवपर कोप



तारा सहित जाइ हनुमाना । चरण वंदि प्रभु सुजस बखाना ॥

सुनि सुग्रीवँ परम भय माना । विषयँ मोर हरि लीन्हेउ ग्याना ॥

अब मावतसुत दूतसमूहा । पठवहु जहँ तहँ वानरजूहा ॥ २ ॥

हनुमान्जीके वचन सुनकर सुग्रीवने बहुत ही भय माना । [और कहा—] विषयोंने मेरे शानको हर लिया । अब हे पवनसुत ! जहाँ-तहाँ वानरोंके यूथ रहते हैं; वहाँ दूतोंके समूहोंको भेजो ॥ २ ॥

कहहु पाख महुँ आव न जोई । मोरँ कर ताकर बध होई ॥

तब हनुमंत बोलाए दूता । सब कर करि सनमान बहूता ॥ ३ ॥

और कहल दो कि एक पखवाहेमें (पन्द्रह दिनोंमें) जो न आ जायगा; उसका मेरे हाथों बध होगा । तब हनुमान्जीने दूतोंको बुलाया और सबका बहुत सम्मान करके—॥ ३ ॥

भय अरु प्रीति नीति देखराई । चले सकल चरनन्हि सिर नाई ॥

एहि अवसर लछिमन पुर आए । क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए ॥ ४ ॥

सबको भय, प्रीति और नीति दिखलयी । सब बंदर चरणोंमें सिर नवाकर चले । इसी समय लक्ष्मण-जी नगरमें आये । उनका क्रोध देखकर बंदर जहाँ-तहाँ भागे ॥ ४ ॥

दो०—धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करउँ पुर छार ।

व्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार ॥ १९ ॥

तदनन्तर लक्ष्मणजीने धनुष चढ़ाकर कहा कि नगरको जलाकर अभी राख कर दूंगा । तब नगर-भरको व्याकुल देखकर बालिपुत्र अंगदजी उनके पास आये ॥ १९ ॥

चौ०—चरन नाइ सिरु विनती कीन्ही । लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही ॥

क्रोधवत लछिमन सुनि काना । कह कपीस अति भयँ अकुलाना ॥ १ ॥

अंगदने उनके चरणोंमें सिर नवाकर विनती की (क्षमायाचना की) । तब लक्ष्मणजीने उनको अभय बाँह दी (भुजा उठाकर कहा कि डरो मत) । सुग्रीवने अपने कानोंसे लक्ष्मणजीको क्रोधयुक्त सुनकर भयसे अत्यन्त व्याकुल होकर कहा—॥ १ ॥

सुनु हनुमंत संग लै तारा । करि विनती समुझाउ कुमार ॥

तारा सहित जाइ हनुमाना । चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना ॥ २ ॥

हे हनुमान् ! तुम ताराको साथ ले जाकर विनती करके राजकुमारको समझाओ (समझा-बुझाकर शान्त करो) । हनुमान्जीने तारासहित जाकर लक्ष्मणजीके चरणोंकी वन्दना की और प्रभुके सुन्दर यशका बखान किया ॥ २ ॥

करि विनती मंदिर लै आए । चरन पखारि पलँग बैठाए ॥

तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा । गहि भुज लछिमन कंठ लगावा ॥ ३ ॥

वे विनती करके उन्हें महलमें ले आये तथा चरणोंको धोकर उन्हें पलँगपर बैठाया । तब वानरराज सुग्रीवने उनके चरणोंमें सिर नवाया और लक्ष्मणजीने हाथ पकड़कर उनको गलेसे लगा लिया ॥ ३ ॥

नाथ विषय सम मद कछु नाहीं । मुनि मन मोह करइ छन माहीं ॥

सुनत विनीत बचन सुख पावा । लछिमन तेहि बहुविधि समुझावा ॥ ४ ॥

[सुग्रीवने कहा—] हे नाथ ! विषयके समान और कोई मद नहीं है । यह मुनियोंके मनमें भी क्षणमात्रमें मोह उत्पन्न कर देता है [फिर मैं तो विषयी जीव ही ठहरा] । सुग्रीवके विनययुक्त वचन सुनकर लक्ष्मणजीने सुख पाया और उनको बहुत प्रकारसे समझाया ॥ ४ ॥

पवन तनय सब कथा सुनाई । जेहि बिधि गए दूत समुदाई ॥ ५ ॥

तब पवनसुत हनुमान्जीने जिस प्रकार सब दिशाओंमें दूतोंके समूह गये थे वह सब हाल सुनाया ॥ ५ ॥

दो०—हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ ।

रामानुज आगे करि आए जहँ रघुनाथ ॥ २० ॥

तब अंगद आदि वानरोंको साथ लेकर और श्रीरामजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीको आगे करके (अर्थात् उनके पीछे-पीछे) सुग्रीव हर्षित होकर चले, और जहाँ श्रीरघुनाथजी थे वहाँ आये ॥ २० ॥

चौ०—नाह चरन सिद्ध कह कर जोरी । नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी ॥

अतिसय प्रबल देव तब माया । छूटइ राम करहु जौ दाया ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें सिर नवाकर हाथ जोड़कर सुग्रीवने कहा—हे नाथ ! मुझे कुछ भी दोष नहीं है । हे देव ! आपकी माया अत्यन्त ही प्रबल है । आप जब दया करते हैं, हे राम ! तभी यह छूटती है ॥ १ ॥

बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी । मैं पावँर पशु कपि अति कामी ॥

नारि नयन सर जाहि न लागा । घोर क्रोध तम निसि जो जागा ॥ २ ॥

हे स्वामी ! देवता, मनुष्य और मुनि सभी विषयोंके वशमें हैं । फिर मैं तो पामर पशु और पशुओंमें भी अत्यन्त कामी बंदर हूँ । स्त्रीका नयन-बाण जिसको नहीं लगा, जो भयङ्कर क्रोधरूपी अँधेरी रातमें भी जागता रहता है (क्रोधान्ध नहीं होता) ॥ २ ॥

लोभ पाँस जेहिं गर न बँधायो । सो नर तुम्ह समान रघुराया ॥

यह गुन साधन तँ नहिं होई । तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई ॥ ३ ॥

और लोभकी फाँसीसे जिसने अपना गला नहीं बँधायो, हे श्रीरघुनाथजी ! वह मनुष्य आपहीके समान है । ये गुण साधनसे नहीं प्राप्त होते । आपकी कृपासे ही कोई-कोई इन्हें पाते हैं ॥ ३ ॥

तब रघुपति बोले मुसुकाई । तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई ॥

अब सोइ जतनु करहु मन लाई । जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई ॥ ४ ॥

तब श्रीरघुनाथजी मुस्कराकर बोले—हे भाई ! तुम मुझे भरतके समान प्यारे हो । अब मन लगाकर वही उपाय करो जिस उपायसे सीताकी खबर मिले ॥ ४ ॥

दो०—एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूय ।

नाना बरन सकल दिसि देरिअ कीस बरूय ॥ २१ ॥

इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि वानरोंके यूय (छुंड) आ गये । अनेक रंगोंके वानरोंके दल सब दिशाओंमें दिखायी देने लगे ॥ २१ ॥

चौ०—बानर कटक उमा में देखा । सो मूरुख जो करन चह लेखा ॥

आइ रामपद नावहिं माथा । निरखि बदन सब होहिं सनाथा ॥ १ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! वानरोंकी वह सेना मैंने देखी थी । उसकी जो गिनती करना चाहे वह महान् मूर्ख है । सब वानर आ-आकर श्रीरामजीके चरणोंमें मस्तक नवाते हैं और [सौन्दर्य-माधुर्यनिधि] श्रीमुखके दर्शन करके कृतार्थ होते हैं ॥ १ ॥

अस कपि एक न सेना माहीं । राम कुसल जेहि पूछी नाहीं ॥

यह कछु नहिं प्रभु कह अधिकारि । विस्वरूप व्यापक रघुपारि ॥ २ ॥

सेनामें एक भी वानर ऐसा नहीं था जिससे श्रीरामजीने कुशल न पूछी हो । प्रभुके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है । क्योंकि श्रीरघुनाथजी विश्वरूप तथा सर्वव्यापक हैं (सारे रूपों और सब स्थानोंमें हैं) ॥ २ ॥

ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पारि । कह सुग्रीव सबहि समझारि ॥

रामकाजु अरु मोर निहोरा । बानरजूथ जाहु चहुँ ओरा ॥ ३ ॥

आशा पाकर सब जहाँ-तहाँ खड़े हो गये । तब सुग्रीवने सबको समझाकर कहा कि हे वानरोंके समूहो ! यह श्रीरामचन्द्रजीका कार्य है, और मेरा निहोरा (अनुरोध) है; तुम चारों ओर जाओ ॥ ३ ॥

जनकसुता कहँ खोजहु जारि । मास दिवस महँ आपहु भारि ॥

अवधि मेदि जो बिनु सुधि पाएँ । आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ ॥ ४ ॥

और जाकर जानकीजीको खोजो । हे भारि ! महीनेभरमें वापस आ जाना । जो महीनेभरकी अवधि बिताकर बिना पता लगाये ही लोट आवेगा उसे मेरेद्वारा मरवाते ही बनेगा (अर्थात् मुझे उसका वध करवाना ही पड़ेगा) ॥ ४ ॥

दो०—बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरंत ।

तब सुग्रीवँ बोलाए अंगद नल हनुमंत ॥ २२ ॥

सुग्रीवके वचन सुनते ही सब वानर तुरंत जहाँ-तहाँ (भिन्न-भिन्न दिशाओंमें) चल दिये । तब सुग्रीवने अंगद, नल, हनुमान् आदि प्रधान-प्रधान योद्धाओंको बुलाया [और कहा—] ॥ २२ ॥

चौ०—सुनहु नील अंगद हनुमाना । जामवंत मतिधीर सुजाना ॥

सकल सुभट मिलि दृच्छिन जाहु । सीता सुधि पूछेहु सब काहु ॥ १ ॥

हे धीरबुद्धि और चतुर नील, अंगद, जाम्भवान् और हनुमान् ! तुम सब श्रेष्ठ योद्धा मिलकर दक्षिण दिशाको जाओ और सब किसीसे सीताजीका पता पूछना ॥ १ ॥

मन कम बचन सो जतन विचारेहु । रामचंद्र कर काजु सँवारेहु ॥

भाजु पीठि सेइअ उर आगी । स्वामिहि सर्वभाव छल त्यागी ॥ २ ॥

मन, वचन तथा कर्मसे उसीका (सीताजीका पता लगानेका) उपाय सोचना । श्रीरामचन्द्रजीका कार्य सफल करना । सूर्यको पीठसे और अग्निको हृदयसे (सामनेसे) सेवन करना चाहिये । परन्तु स्वामीकी सेवा तो छल छोड़कर सर्वभावसे (मन, वचन, कर्मसे) करनी चाहिये ॥ २ ॥

तजि माया सेइअ परलोका । मिटहिँ सकल भवसंभव सोका ॥

देह घरे कर यह फलु भारि । भजिअ राम सब काम विहारि ॥ ३ ॥

माया (विषयोंकी ममता आसक्ति) को छोड़कर परलोकका सेवन (भगवान्के दिव्य धामकी प्राप्तिके लिये भगवत्सेवारूप साधन) करना चाहिये, जिससे भव (जन्म-मरण) से उत्पन्न सारे शोक मिट जायँ । हे भारि ! देह धारण करनेका यही फल है कि सब कामोंको (कामनाओंको) छोड़कर श्रीरामजीका भजन ही किया जाय ॥ ३ ॥

सोइ गुनग्य सोई बड़भागी । जो रघुवीर चरन अनुरागी ॥

आयसु मागि चरन सिरु नारि । चले हरषि सुमिरत रघुपारि ॥ ४ ॥

सदुणोंको पहचाननेवाला (गुणवान्) तथा बड़भागी वही है जो श्रीरघुनाथजीके चरणोंका प्रेमी है। आशा माँगकर और चरणोंमें सिर नवाकर श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हुए सब हर्षित होकर चले ॥ ४ ॥

पाछे पवन तनय सिर नाचा । जानि काज प्रभु निकट बोलावा ॥

परसा सीस सरोरुह पानी । करमुद्रिका दीन्हि जन जानी ॥ ५ ॥

सबके पीछे पवनसुत श्रीहनुमान्जीने सिर नवाया । कार्यका विचार करके प्रभुने उन्हें अपने पास बुलाया । उन्होंने अपने कर-कमलसे उनके सिरका स्पर्श किया तथा अपना सेवक जानकर उन्हें अपने हाथकी अँगूठी उतारकर दी ॥ ५ ॥

बहु प्रकार सीतहि समझाएहु । कहि बल विरह बेगि तुम्ह आएहु ॥

हनुमत जन्म सुफल करि माना । चलेउ हृदयँ धरि कृपानिधाना ॥ ६ ॥

[और कहा—] बहुत प्रकारसे सीताको समझाना और मेरा बल तथा विरह (प्रेम) कहकर तुम शीघ्र लौट आना । हनुमान्जीने अपना जन्म सफल समझा और कृपानिधान प्रभुको हृदयमें धारण करके वे चले ॥ ६ ॥

जद्यपि प्रभु जानत सब बाता । राजनीति राखत सुरप्राता ॥ ७ ॥

यद्यपि देवताओंकी रक्षा करनेवाले प्रभु सब बात जानते हैं, तो भी वे राजनीतिकी रक्षा कर रहे हैं (नीतिकी मर्यादा रखनेके लिये सीताजीका पता लगानेको जहाँ-तहाँ वानरोंको भेज रहे हैं) ॥ ७ ॥

दो०—चले सकल वन खोजत सरिता सर गिरि खोह ।

रामकाज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह ॥ २३ ॥

सब वानर वन, नदी, तालाब, पर्वत और पर्वतोंकी कन्दराओंमें खोजते हुए चले जा रहे हैं । मन श्रीरामजीके कार्यमें लवलीन है । शरीरका प्रेम (ममत्व) भूल गया है ॥ २३ ॥

चौ०—कतहुँ होइ निसिचर सैं भेटा । प्रान लेहिं एक एक चपेटा ॥

बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं । कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं ॥ १ ॥

कहीं किसी राक्षससे भेंट हो जाती है, तो एक-एक चपतमें ही उसके प्राण ले लेते हैं । पर्वतों और वनों-को बहुत प्रकारसे खोज रहे हैं । कोई मुनि मिल जाता है तो पता पूछनेके लिये उसे सब घेर लेते हैं ॥ १ ॥

लागि तृषा अतिसय अकुलाने । मिलइ न जल घन गहन भुलाने ॥

मन हनुमान कीन्ह अनुमाना । मरन चाहत सब बिनु जलपाना ॥ २ ॥

इतनेमें ही सबको प्यास लगी । जिससे सब अत्यन्त ही व्याकुल हो गये, किन्तु जल कहीं नहीं मिला । घने जंगलमें सब भुला गये । हनुमान्जीने मनमें अनुमान किया कि जल पिये बिना सब लोग मरना ही चाहते हैं ॥ २ ॥

चढ़ि गिरि सिखर चहुँ दिसि देखा । भूमि बिबर एक कौतुक पेखा ॥

चक्रवाक बक हंस उड़ाहीं । बहुतक खग प्रविसहिं तेहि माहीं ॥ ३ ॥

उन्होंने पहाड़की चोटीपर चढ़कर चारों ओर देखा तो पृथ्वीके अंदर एक गुफामें उन्हें एक कौतुक (आश्चर्य) दिखायी दिया । उसके ऊपर चक्रवे, बगुले और हंस उड़ रहे हैं, और बहुत-से पक्षी उसमें प्रवेश कर रहे हैं ॥ ३ ॥

गिरि ते उतरि पवनसुत आषा । सब कहूँ लै सोइ बिबर देखावा ॥

आगें कै हनुमंतहि लीन्हा । पैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा ॥ ४ ॥

पवनकुमार हनुमान्जी पर्वतसे उतर आये और सबको ले जाकर उन्होंने वह गुफा दिखलायी । सबने हनुमान्जीको आगे कर लिया और वे गुफामें घुस गये; देर नहीं की ॥ ४ ॥

दो०—दीख जाइ उपवन बर सर बिगसित बहु कंज ।

मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तपपुंज ॥ २४ ॥

अंदर जाकर उन्होंने एक उत्तम उपवन (बगीचा) और तालाब देखा, जिसमें बहुतसे कमल खिले हुए हैं । वहीं एक सुन्दर मन्दिर है, जिसमें एक तपोमूर्ति स्त्री बैठी है ॥ २४ ॥

चौ०—दूरि ते ताहि सबन्हि सिरु नावा । पूछें निज वृत्तान्त सुनावा ॥

तैहि तब कहा करहु जलपाना । खाहु सुरस सुंदर फल नाना ॥ १ ॥

दूरसे ही सबने उसे सिर नवाया और पूछनेपर अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया । तब उसने कहा— जलपान करो और भौँति-भौँतिके रसीले सुन्दर फल खाओ ॥ १ ॥

मञ्जु कीन्ह मधुर फल खाए । तासु निकट पुनि सब चलि आए ॥

तेहिं सब आपनि कथा सुनाई । मैं अब जाव जहाँ रघुराई ॥ २ ॥

[आशा पाकर] सबने खान किया, मीठे फल खाये और फिर सब उसके पास चले आये । तब उसने अपनी सब कथा कह सुनायी [और कहा—] मैं अब वहाँ जाऊँगी जहाँ श्रीरघुनाथजी हैं ॥ २ ॥

मूँदहु नयन बिबर तजि जाहु । पैदहु सीतहि जनि पछिताहु ॥

नयन मूँदि पुनि देखहिं बीरा । ठाढ़े सकल सिंधु कें तीरा ॥ ३ ॥

तुम लोग आँखें मूँद लो और गुफाको छोड़कर बाहर जाओ । तुम सीताजीको पा जाओगे, पछताओ नहीं (निराश न होओ) । आँखें मूँदकर फिर जब आँखें खोली तो सब वीर क्या देखते हैं कि सब समुद्रके तीरपर खड़े हैं ॥ ३ ॥

सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा । जाइ कमल पद नापसि माथा ॥

नाना भौँति बिनय तेहिं कीन्ही । अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही ॥ ४ ॥

और वह स्वयं वहाँ गयी जहाँ श्रीरघुनाथजी थे । उसने जाकर प्रभुके चरणकमलोंमें मस्तक नवाया और बहुत प्रकारसे बिनती की । प्रभुने उसे अपनी अनपायिनी (अवल) भक्ति दी ॥ ४ ॥

दो०—बदरीवन कहूँ सो गई प्रभु अग्या धरि सोस ।

उर धरि राम चरन जुग जे बंदत अज ईस ॥ २५ ॥

प्रभुकी आज्ञा सिरपर धारणकर और श्रीरामजीके युगल चरणोंको, जिनकी ब्रह्मा और महेश भी वन्दना करते हैं, हृदयमें धारणकर वह स्वयंप्रभा बदरिकाश्रमको चली गयी ॥ २५ ॥

चौ०—इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं । बीती अवधि काज कछु नाहीं ॥

सब मिलि कहहिं परस्पर बाता । बिनु सुधि लएँ करव का भ्राता ॥ १ ॥

यहाँ वानरगण मनमें विचार कर रहे हैं कि अवधि तो बीत गयी, पर काम कुछ न हुआ । सब मिलकर

आपसमें बात करने लगे कि हे भाई ! अब तो सीताजीकी खबर लिये विना लौटकर भी क्या करेंगे ? ॥ १ ॥

कह अंगद लोचन भरि वारो । दुहुँ प्रकार भई मृत्यु हमारी ॥
इहाँ न सुधि सीता के पाई । उहाँ गएँ मारिहि कपिराई ॥ २ ॥

अंगदने नेत्रोंमें जल भरकर कहा कि दोनों ही प्रकारसे हमारी मृत्यु हुई । यहाँ तो सीताजीकी सुध नहीं मिली और वहाँ जानेपर वानरराज सुग्रीव मार डालेंगे ॥ २ ॥

पिता बधे पर मारत मोही । राखा राम निहोर न ओही ॥
पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं । मरन भयउ कछु संसय नाहीं ॥ ३ ॥

वे तो पिताके वध होनेपर ही मुझे मार डालते । श्रीरामजीने ही मेरी रक्षा की, इसमें सुग्रीवका कोई एहसान नहीं है । अंगद बार-बार सबसे कह रहे हैं कि अब मरण हुआ, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥

अंगद बचन सुनत कपि बीरा । बोलि न सकहिं नयन वह नीरा ॥
छन एक सोच मगन होइ रहे । पुनि अस बचन कहत सब भय ॥ ४ ॥

वानर वीर अंगदके वचन सुनते हैं । किन्तु कुछ बोल नहीं सकते । उनके नेत्रोंसे जल बह रहा है । एक क्षणके लिये सब सोचमें मग्न हो रहे । फिर सब ऐसा वचन कहने लगे— ॥ ४ ॥

हम सीता के सुधि लीन्हें विना । नहिं जैहें जुबराज प्रवीना ॥
अस कहि लवनसिंधु लट जाई । बैठे कपि सब दर्भ डसाई ॥ ५ ॥

हे सुयोग्य युवराज ! हम लोग सीताजीकी खोज लिये विना नहीं लौटेंगे । ऐसा कहकर लवणसागरके तटपर जाकर सब वानर कुदा बिछाकर बैठ गये ॥ ५ ॥

जामवंत अंगद दुख देखी । कहीं कथा उपदेस विसेषी ॥
तात राम कहूँ नर जनि मानहु । निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ॥ ६ ॥

जाम्बवान्ने अंगदका दुःख देखकर विशेष उपदेशकी कथाएँ कहीं । [वे बोले—] हे तात ! श्रीरामजीको मनुष्य न मानो । उन्हें निर्गुण ब्रह्म, अजेय और अजन्मा समझो ॥ ६ ॥

हम सब सेवक अति बड़भागी । संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी ॥ ७ ॥

हम सब सेवक अत्यन्त बड़भागी हैं, जो निरन्तर सगुण ब्रह्म (श्रीरामजी) में प्रीति रखते हैं ॥ ७ ॥

दो०—निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि ।

सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि ॥ २६ ॥

देवता, पृथ्वी, गौ और ब्राह्मणोंके लिये प्रभु अपनी इच्छासे [किसी कर्मबन्धनसे नहीं] अवतार लेते हैं । वहाँ सगुणोपासक भक्तगण सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ध और सायुज्य सब प्रकारके मोक्षोंको त्यागकर उनकी सेवामें साथ रहते हैं ॥ २६ ॥

चौ०—एहि बिधि कथा कहहिं बहु भाँती । गिरिकंदराँ सुनी संपाती ॥

बाहेर होइ देखि बहु कीसा । मोहि अहार दीन्ह जगदीसा ॥ १ ॥

इस प्रकार जाम्बवान् बहुत प्रकारसे कथाएँ कह रहे हैं । इनकी बातें पर्वतकी कन्दरामें सम्पातीने सुनीं । बाहर निकलकर उसने बहुतसे वानर देखे । [तब वह बोले—] जगदीश्वरने मुझको घर बैठे बहुतसा आहार भेज दिया ! ॥ १ ॥

कल्याण

(१) वानर गुफामें



दीग्व जाइ उपवन धर मर विगमिन बहु कंज ।
मंदिर एक रुचिर तहें बैठि नाग तपपुंज ॥
[पृष्ठ ६१५]

(२) समुद्रतटपर



अस कहि लवनमिधु तट जाई ।
बैठे कपि सब दर्भ डसाई ॥
[पृष्ठ ६१६]

(३) संपत्तीका विचार



बाहेर होइ भोज्य बहु कीया ।
भोदि विचार दील जगदीया ॥
[पृष्ठ ६१६]

(४) हनुमानजीका प्रयाण



निमि अमोघ रघुपति तर वाना ।
एही भाति चलेउ हनुमाना ॥
[पृष्ठ ६२२]

आजु सयहि कहँ भच्छन करऊँ । दिन बहु चले अहार बिनु मरऊँ ॥
कषहूँ न मिल भरि उदर अहारा । आजु दीन्ह बिधि एकहिँ बारा ॥ २ ॥

आज इन सबको खा जाऊँगा । बहुत दिन बीत गये, भोजनके बिना मर रहा था । पेटभर भोजन कभी नहीं मिलता । आज विधाताने एक ही बारमें बहुत-सा भोजन दे दिया ॥ २ ॥

हरये गीध बचन सुनि काना । अब भा मरन सत्य हम जाना ॥
कपि सब उठे गीध कहँ देखी । जामवंत मन सोच बिसेषी ॥ ३ ॥

गीधके बचन कानोंसे सुनते ही सब डर गये कि अब निश्चय ही मरना हो गया, यह हमने जान लिया । फिर उस गीध (सम्पाती) को देखकर सब वानर उठ खड़े हुए । जाम्बवान्के मनमें विशेष सोच हुआ ॥ ३ ॥

कह अंगद बिचारि मन माहीं । धन्य जटायू सम कोउ नाहीं ॥
रामकाज कारन तनु त्यागी । हरिपुर गयउ परम बड़भागी ॥ ४ ॥

अंगदने मनमें विचारकर कहा—अहा ! जटायुके समान धन्य कोई नहीं है ! श्रीरामजीके कार्यके लिये शरीर छोड़कर वह परम बड़भागी भगवान्के परमधामको चला गया ॥ ४ ॥

सुनि खग हरष सोक जुत बानी । आवा निकट कपिन्ह भय मानी ॥
तिन्हहि अभय करि पूछेसि जाई । कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई ॥ ५ ॥

हर्ष और शोकसे युक्त वाणी (समाचार) सुनकर वह पक्षी (सम्पाती) वानरोंके पास आया । वानर डर गये । उनको अभय करके (अभय-वचन देकर) उसने पास जाकर जटायुका वृत्तान्त पूछा, तब उन्होंने सारी कथा उसको कह सुनायी ॥ ५ ॥

सुनि संपाति बंधु कै करनी । रघुपति महिमा बहुबिधि बरनी ॥ ६ ॥

भाई जटायुकी करनी सुनकर सम्पातीने बहुत प्रकारसे श्रीरघुनाथजीकी महिमा वर्णन की ॥ ६ ॥

दो०—मोहि लै जाहु सिंधुतट देउँ तिलांजलि ताहि ।

बचन सहाइ करबि मैं पैहहु खोजहु जाहि ॥ २७ ॥

[उसने कहा—] मुझे समुद्रके किनारे ले चलो, मैं जटायुको तिलांजलि दे दूँ । इस सेवाके बदले मैं तुम्हारी वचनसे सहायता करूँगा (अर्थात् सीताजी कहाँ हैं सो बतला दूँगा) । जिसे तुम खोज रहे हो उसे पा जाओगे ॥ २७ ॥

चौ०—अनुज क्रिया करि सागर तीरा । कहि निज कथा सुनहु कपि वीरा ॥

हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई । गगन गए रवि निकट उड़ाई ॥ १ ॥

समुद्रके तीरपर छोटे भाई जटायुकी क्रिया (श्राद्ध आदि) करके सम्पाती अपनी कथा कहने लगा—हे वीर वानरो ! सुनो, हम दोनों भाई उठती जवानीमें एक बार आकाशमें उड़कर सूर्यके निकट चले गये ॥ १ ॥

तेज न सहि सक सो फिरि आवा । मैं अभिमानी रवि निबरावा ॥

जरे पंख अति तेज अपारा । परेउँ भूमि करि घोर चिकारा ॥ २ ॥

वह (जटायु) तेज नहीं सह सका, इससे लौट आया । (किन्तु) मैं अभिमानी था, इसलिये सूर्यके पास चला गया । अत्यन्त अपार तेजसे मेरे पंख जल गये । मैं बड़े जोरसे चीख मारकर जमीनपर गिर पड़ा ॥ २ ॥

मुनि एक नाम चंद्रमा ओही । लागी दया देखि करि मोही ॥

बहु प्रकार तेहिं ग्यान सुनावा । देहजनित अभिमान छड़ावा ॥ ३ ॥

वहाँ चन्द्रमा नामके एक मुनि थे। मुझे देखकर उन्हें बड़ी दया लगी। उन्होंने बहुत प्रकारसे मुझे ज्ञान सुनाया और मेरे देहजनित (देहसम्बन्धी) अभिमानको छुड़ा दिया ॥ ३ ॥

ब्रेताँ ब्रह्म मनुजतनु धरिही । तासु नारि निसिचर पति हरिही ॥
तासु खोज पठइहि प्रभु दूता । तिन्हहि मिलैं तैं होब पुनीता ॥ ४ ॥

[उन्होंने कहा था—] ब्रेतायुगमें साक्षात् परब्रह्म मनुष्यशरीर धारण करेंगे। उनकी स्त्रीको राक्षसोंका राजा हर ले जायगा। उसकी खोजमें प्रभु दूत भेजेंगे। उनसे मिलनेपर तू पवित्र हो जायगा, ॥ ४ ॥

जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता । तिन्हहि देखाइ देहेसु तैं सीता ॥
मुनि कह गिरा सत्य भइ आजू । सुनि मम वचन करहु प्रभुकाजू ॥ ५ ॥

और तेरे पंख उग आयेंगे; चिन्ता न कर। उन्हें तू सीताजीको दिखा देना। मुनिकी वह वाणी आज सत्य हुई। अब मेरे वचन सुनकर तुम प्रभुका कार्य करो ॥ ५ ॥

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका । तहँ रह रावन सहज असंका ॥
तहँ असोक उपवन जहँ रहई । सीता बैठि सोचरत भरई ॥ ६ ॥

त्रिकूट पर्वतपर लङ्का बसी हुई है। वहाँ स्वभावहीसे निडर रावण रहता है। वहाँ अशोक नामक उपवन (बगीचा) है, जहाँ सीताजी रहती हैं। [इस समय भी] वे सोचमें मग्न बैठी हैं ॥ ६ ॥

दो०—मैं देखउँ तुम्ह नहीं गीधहि दृष्टि अपार ।

बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कलुक सहाय तुम्हार ॥ २८ ॥

मैं उन्हें देख रहा हूँ, तुम नहीं देख सकते; क्योंकि गीधकी दृष्टि अपार होती है (बहुत दूरतक जाती है)। क्या कल्ले ? मैं बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुम्हारी कुछ तो सहायता अवश्य करता ॥ २८ ॥

चौ०—जो नाघइ सत जोजन सागर । करइ सो रामकाज मति आगर ॥

मोहि विलोकि धरहु मन धीरा । रामकृपाँ कस भयउ सरीरा ॥ १ ॥

जो सौ योजन (चार सौ कोस) समुद्र लाँघ सकेगा और बुद्धिनिधान होगा वही श्रीगमजीका कार्य कर सकेगा। [निराश होकर घबराओ मत] मुझे दंग्वकर मनमें धीरज धरो। देखो, श्रीगमजीकी कृपासे [देखते-ही-देखते] मेरा शरीर कैसा हो गया (बिना पाँखका वेहाल था, पाँख उगानेसे सुन्दर हो गया) ! ॥ १ ॥

पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं । अति अपार भवसागर तरहीं ॥

तासु दूत तुम्ह तजि कदराई । राम हृदयँ धरि करहु उपाई ॥ २ ॥

पापों भी जिनका नाम स्मरण करके अत्यन्त अपार भवसागरसे तर जाते हैं, तुम उनके दूत हो; अतः कायरता छोड़कर श्रीरामजीको हृदयमें धारण करके उपाय करो ॥ २ ॥

अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ । तिन्ह केँ मन अति विसमय भयऊ ॥

निज निज बल सथ काहूँ भाषा । पार जाइ कर संसय राखा ॥ ३ ॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़जी ! इस प्रकार कहकर जब गीध चला गया, तब वानरोंकी मनमें अत्यन्त विसंय हुआ। सब किसीने अपना-अपना बल कहा। पर समुद्रके पार जानेमें सभीने सन्देह प्रकट किया ॥ ३ ॥

जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा । नहिं तन रहा प्रथम बल लेसा ॥

जबहिं त्रिविक्रम भए खरारी । तब मैं तरुन रहउँ बल भारी ॥ ४ ॥

कल्याण

जाम्बवान् और हनुमान्जी



कहइ गीछपति सुनु हनुमाना । का चुप साधि गहेहु बलवाना ॥
कवन सो काज कहिन जग माहीं । जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं ॥

ऋक्षराज जाम्बवान् कहने लगे—मैं अब बूढ़ा हो गया। शरीरमें पहलेवाले बलका लेश भी नहीं रहा। जब खरारि (खरके शत्रु श्रीराम) वामन बने थे, तब मैं जवान था और मुझमें बड़ा बल था ॥ ४ ॥

दो०—बालि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ ।

उमय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ ॥ २९ ॥

बालिके बाँधते समय प्रभु इतने बड़े कि उस शरीरका वर्णन नहीं हो सकता। किन्तु मैंने दो ही घड़ीमें दौड़कर [उस शरीरकी] सात प्रदक्षिणाएँ कर लीं ॥ २९ ॥

नौ०—अंगद कहइ जाउँ मैं पारा । जियँ संसय कछु फिरती बारा ॥

जामवंत कह तुम्ह सय लायक । पठइअ किमि सबही कर नायक ॥ १ ॥

अंगदने कहा—मैं पार तो चला जाऊँगा। परन्तु लौटते समयके लिये हृदयमें कुछ सन्देह है। जाम्बवान्ने कहा—तुम सब प्रकारसे योग्य हो। परन्तु तुम सबके नेता हो, तुम्हें कैसे भेजा जाय ? ॥ १ ॥

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना । का चुप साधि रहेहु बलवाना ॥

पवन तनय बल पवन समाना । बुधि विवेक विग्यान निधाना ॥ २ ॥

ऋक्षराज जाम्बवान्ने श्रीहनुमानजीसे कहा—हे हनुमान् ! हे बलवान् ! सुनो, तुमने यह क्या चुप साथ रक्खा है ? तुम पवनके पुत्र हो, और बलमें पवनके समान हो। तुम बुद्धि, विवेक और विज्ञानकी खान हो ॥ २ ॥

कवन सो काज कठिन जग माहीं । जां नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं ॥

राम काज लगि तव अवतारा । सुनतहिं भयउ पर्वताकारा ॥ ३ ॥

जगत्में कौन-सा ऐसा कठिन काम है जो हे तात ! तुमसे न हो सके। श्रीरामजीके कार्यके लिये ही तो तुम्हारा अवतार हुआ है। यह सुनते ही हनुमानजी पर्वतके आकारके (अत्यन्त विशालकाय) हो गये ॥ ३ ॥

कनक वरन तन तेज विराजा । मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा ॥

सिंहनाद करि बारहिं बारा । लीलहिं नाघउँ जलनिधि सारा ॥ ४ ॥

उनका सोनेका-सा रंग है, शरीरपर तेज सुशोभित है; मानो दूसरा पर्वतोंका राजा सुमेरु हो। हनुमानजीने बार-बार सिंहनाद करके कहा—मैं इस खारे समुद्रको ग्वेल्में ही लौंच सकता हूँ, ॥ ४ ॥

सहित सहाय रावनहि मारी । आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी ॥

जामवंत मैं पूँछउँ तोही । उचित सिखावनु दीजहु मोही ॥ ५ ॥

और सहायकोंसहित रावणको मारकर, त्रिकूट पर्वतको उखाड़कर यहाँ ला सकता हूँ। हे जाम्बवान ! मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम मुझे उचित सीख देना [कि मुझे क्या करना चाहिये] ॥ ५ ॥

पतना करहु तात तुम्ह जाई । सीतहि देखि कहहु सुधि आई ॥

तव निज भुज बल राजिव नैना । कौतुक लागि संग कपि सैना ॥ ६ ॥

[जाम्बवान्ने कहा—] हे तात ! तुम जाकर इतना ही करो कि सीताजीको देखकर लौट आओ और उनकी खबर कह दो। फिर कमलनयन श्रीरामजी अपने बाहुबलसे [ही राक्षसोंका संहारकर सीताजीको ले आयेंगे, केषल] खेलके लिये ही वे वानरोंकी सेना साथ लेंगे ॥ ६ ॥

छं०—कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि मानिहैं ।

ब्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं ॥

जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई ।

रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई ॥

वानरोंकी सेना साथ लेकर राक्षसोंका संहार करके श्रीरामजी सीताजीको ले आयेंगे । तब देवता और नारदादि मुनि भगवान्‌के तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाले सुन्दर यशका बखान करेंगे, जिसे सुनने, गाने, कहने और समझनेसे मनुष्य परमपद पाते हैं और जिसे श्रीरघुवीरके चरणकमलका मधुकर (भ्रमर) तुलसीदास गाता है ।

दो०—भव मेषज रघुनाथ जसु सुनिहिं जे नर अरु नारि ।

तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि ॥ ३० (क) ॥

श्रीरघुवीरका यश भवरोगकी अचूक दवा है । जो पुरुष और स्त्री इसे सुनैंगे, त्रिशिराके शत्रु श्रीरामजी उनके सब मनोरथोंको सिद्ध करेंगे ॥ ३० (क) ॥

सो०—नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक ।

सुनिअ तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ खग बधिक ॥ ३० (ख) ॥

जिनका नीले कमलके समान श्याम शरीर है, जिनकी शोभा करोड़ों कामदेवोंसे भी अधिक है, और जिनका नाम पापरूपी पक्षियोंके मारनेके लिये बधिक (व्याधा) के समान है, उन श्रीरामके गुणोंके समूहको (लीलाको) अवश्य सुनना चाहिये ॥ ३० (ख) ॥

मासपारायण तेईसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने चतुर्थः सोपानः समाप्तः ।

कलियुगके समस्त पापोंके नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह चौथा सोपान समाप्त हुआ ॥

(किष्किन्धाकाण्ड समाप्त)





प्रनम्यै पवनकुमार गल्ल बन पावक ग्यानघन ।

आसु हृदय आगाध वसतिं राम सर न्याय धर ॥

[पृष्ठ ८२३]

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

पञ्चम सोपान

(सुन्दरकाण्ड)

श्लोक

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम् ।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम् ॥ १ ॥

शान्त, सनातन, अप्रमेय, निष्पाप, मोक्षरूप परम शान्ति देनेवाले, ब्रह्मा, शम्भु और शेषजीसे निरन्तर सेवित, वेदान्तके द्वारा जानने योग्य, सर्वव्यापक, देवताओंमें सबसे बड़े, मायासे मनुष्यरूपमें दीखनेवाले, समस्त पापोंको हरनेवाले, करुणाकी खान, रघुकुलमें श्रेष्ठ तथा राजाओंके शिरोमणि, राम कहलानेवाले जगदीश्वरकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।

भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥ २ ॥

हे रघुनाथजी ! मैं सत्य कहता हूँ, और फिर आप सबके अन्तरात्मा ही हैं (सब जानते ही हैं), कि मेरे हृदयमें दूसरी कोई इच्छा नहीं है । हे रघुकुलश्रेष्ठ ! मुझे अपनी निर्भरा (पूर्ण) भक्ति दीजिये और मेरे मनको काम आदि दोषोंसे रहित कीजिये ॥ २ ॥

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं दनुजघनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।

सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥ ३ ॥

अतुल बलके धाम, सोनेके पर्वत (सुमेरु) के समान कान्तियुक्त शरीरवाले, दैत्यरूपी वनको ध्वंस करनेके लिये अग्निरूप, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणोंके निधान, वानरोंके स्वामी, श्रीरघुनाथजीके प्रिय भक्त पवनपुत्र श्रीहनुमान्जीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥

चौ०—जामवंत के बचन सुहाए । सुनि हनुमंत हृदयँ अति भाए ॥

तब लगि मोहि परिलेहु तुम्ह भाई । सहि दुख कंद मूल फल खाई ॥ १ ॥

जामवान्के सुन्दर वचन सुनकर हनुमान्जी हृदयमें बहुत प्रसन्न हुए । [वे बोले—] हे भाई ! तुमलोग दुःख सहकर, कन्द-मूल-फल खाकर तबतक मेरी राह देखना, ॥ १ ॥

जब लगि आवौ सीतहि देखी । होइहि काजु मोहि हरष विसेषी ॥

यह कहि नाइ सबन्हि कहूँ माथा । चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा ॥ २ ॥

जबतक मैं सीताजीको देखकर लौट न आऊँ । काम अवश्य होगा, क्योंकि मुझे बहुत हर्ष हो रहा है । यह कहकर और सबको मस्तक नवाकर तथा हृदयमें श्रीरघुनाथजीको धारण करके हनुमान्जी हर्षित होकर चले ॥ २ ॥

सिंधु तीर एक भूषर सुंदर । कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर ॥

बार बार रघुबीर सँभारी । तरकेउ पवनतनय बल भारी ॥ ३ ॥

समुद्रके तीरपर एक सुन्दर पर्वत था । हनुमान्जी खेलसे ही (अनायास ही) कूदकर उसके ऊपर जा चढ़े । और बार-बार श्रीरघुवीरका स्मरण करके अत्यन्त बलवान् हनुमान्जी उसपरसे बड़े वेगसे उछले ॥ ३ ॥

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता । चलेउ सो गा पाताल तुरंता ॥

जिमि अमोघ रघुपति कर बाना । पही भौंति चलेउ हनुमाना ॥ ४ ॥

जिस पर्वतपर हनुमान्जी पैर रखकर चले (जिसपरसे वे उछले) वह तुरंत ही पातालमें धँस गया । जैसे श्रीरघुनाथजीका अमोघ बाण चलता है, उसी तरह हनुमान्जी चले ॥ ४ ॥

जलनिधि रघुपति दूत विचारी । तैं मैनाक होहि श्रमहारी ॥ ५ ॥

समुद्रने उन्हें श्रीरघुनाथजीका दूत समझकर मैनाक पर्वतमें कहा कि हे मैनाक ! तू इनकी थकावट दूर करनेवाला हो (अर्थात् अपने ऊपर इन्हें विश्राम दे) ॥ ५ ॥

दो०—हनुमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम ।

रामकाजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम ॥ १ ॥

हनुमान्जीने उसे हाथसे हृदय दिया, फिर प्रणाम करके कहा—माई, श्रीरामचन्द्रजीका काम किये बिना मुझे विश्राम कहाँ ? ॥ १ ॥

चौ०—जात पवनसुत देवन्ह देखा । जानें कहूँ बल बुद्धि बिनैया ॥

सुरसा नाम अहिन कै माता । पठइन्हि आई कही तेहिं बाना ॥ १ ॥

देवताओंने पवनपुत्र हनुमान्जीको जाते हुए देखा । उनकी विशेष बल-बुद्धि को जाननेके लिये (परीक्षार्थ) उन्होंने सुरसा नामक सर्पकी माताको भेजा । उसने आकर हनुमान्जीसे यह बात कही— ॥ १ ॥

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा । सुनत बचन कह पवनकुमारा ॥

रामकाजु करि फिरि मैं आवौ । सीता कह सुधि प्रभुहि सुनावौ ॥ २ ॥

आज देवताओंने मुझे भोजन दिया है । यह वचन सुनकर पवनकुमार हनुमान्जीने कहा—श्रीरामजीका कार्य करके मैं लौट आऊँ और सीताजीकी खबर प्रभुको सुना दूँ, ॥ २ ॥

तब तुम वदन पड़िहउँ आई । सत्य कहउँ मोहि जान दे माई ॥

कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना । प्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना ॥ ३ ॥

तब मैं आकर तुम्हारे मुँहमें घुस जाऊँगा [तुम मुझे खा लेना] । हे माता ! मैं सत्य कहता हूँ, अभी मुझे जाने दे । जब किसी भी उपायसे उसने जाने नहीं दिया, तब हनुमान्जीने कहा—तो फिर मुझे खाने ले ॥ ३ ॥

सुरसाके मुखमें हनुमान्जो



सत जोजन तेहि आनन कीन्हा । अतिलघु रूप पवनसुत लीन्हा ॥
बदन पैठि पुनि बाहेर आवा । ॥

जोजन भरि तेहिं वदनु पसारा । कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा ॥

सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ । तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ ॥ ४ ॥

उसने योजनभर (चार कोसमें) मुँह फैलाया । तब हनुमान्जीने अपने शरीरको उससे दूना बढ़ा लिया । उसने सोलह योजनका मुख किया । हनुमान्जी तुरंत ही बत्तीस योजनके हो गये ॥ ४ ॥

जस जस सुरसा बदन बढ़ावा । तासु दून कपि रूप देखावा ॥

सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा । अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा ॥ ५ ॥

जैसे-जैसे सुरसा मुखका विस्तार बढ़ाती थी, हनुमान्जी उसका दूना रूप दिखलते थे । उसने सौ योजन (चार सौ कोस) का मुख किया । तब हनुमान्जीने बहुत ही छोटा रूप धारण कर लिया ॥ ५ ॥

बदन पइठि पुनि बाहर आवा । मागा विदा ताहि सिर नावा ॥

मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा । बुधि बल मरमु तोर मैं पावा ॥ ६ ॥

और वे उसके मुखमें घुसकर तुरन्त फिर बाहर निकल आये और उसे सिर नवाकर विदा माँगने लगे । [उसने कहा—] मैंने तुम्हारे बुद्धि-बलका भेद पा लिया, जिसके लिये देवताओंने मुझे भेजा था ॥ ६ ॥

दो०—रामकाजु सबु करिहु तुम्ह बल बुद्धि निधान ।

आसिष देइ गई सो इरषि चलेउ हनुमान ॥ २ ॥

तुम श्रीरामचन्द्रजीका सब कार्य करोगे, क्योंकि तुम बल-बुद्धिके भण्डार हो, यह आशीर्वाद देकर वह चली गयी । तब हनुमान्जी हर्षित होकर चले ॥ २ ॥

चो०—निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई । करि माया नभु के खग गहई ॥

जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं । जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं ॥ १ ॥

समुद्रमें एक राक्षसी रहती थी । वह माया करके आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंको पकड़ लेती थी । आकाशमें जो जीव-जन्तु उड़ा करते थे, वह जलमें उनकी परछाई देखकर, ॥ १ ॥

गहई छाहँ सक सो न उड़ाई । एहि विधि सदा गगनचर खाई ॥

सोइ छल हनुमान कहँ कीन्हा । तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा ॥ २ ॥

उस परछाईको पकड़ लेती थी, जिसमें वे उड़ नहीं सकते थे [और जलमें गिर पड़ते थे] । इस प्रकार वह सदा आकाशमें उड़नेवाले जीवोंको खाया करती थी । उसने वही छल हनुमान्जीमें भी किया । हनुमान्जीने तुरंत ही उसका कपट पहचान लिया ॥ २ ॥

ताहि मारि मारुतसुत बीरा । बारिधि पार गयउ मतिधीरा ॥

तहाँ जाइ देखी बनसोभा । गुंजत चंचरीक मधुखोभा ॥ ३ ॥

पवनपुत्र धीरबुद्धि वीर भीहनुमान्जी उसको मारकर समुद्रके पार गये । वहाँ जाकर उन्होंने वनकी शोभा देखी । मधु (पुष्परस) के लोभसे भौंरे गुंजार कर रहे थे ॥ ३ ॥

नाना तरु फल फूल सुहाए । खग मृग बृंद देखि मन भाए ॥

सैल विताल देखि एक आगें । तापर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें ॥ ४ ॥

अनेकों प्रकारके वृक्ष फल-फूलसे शोभित हैं, पक्षी और पशुओंके समूहको देखकर वे मनमें प्रसन्न हुए । सामने एक विशाल पर्वत देखकर हनुमान्जी भय त्यागकर उसपर दौड़कर जा चढ़े ॥ ४ ॥

उमा न कुछ कपि कै अधिकारै । प्रभुप्रताप जो कालहि खारै ॥

गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी । कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी ॥ ५ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! इसमें वानर हनुमान्की कुछ बढ़ाई नहीं है । यह प्रभुका प्रताप है, जो कालको भी खा जाता है । पर्वतपर चढ़कर उन्होंने लंका देखी । बहुत ही बड़ा किला है, कुछ कहा नहीं जाता ॥ ५ ॥

अति उत्तंग जलनिधि चहुँ पासा । कनक कोट कर परम प्रकासा ॥ ६ ॥

वह अत्यन्त ऊँचा है । उसके चारों ओर समुद्र है । सोनेके परकोटे (चहारदिवारी) का परम प्रकाश हो रहा है ॥ ६ ॥

छं०—कनक कोट विचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना ।

चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहुबिधि बना ॥

गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ वरूयन्हि को गनै ।

बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै ॥ १ ॥

विचित्र मणियोंसे जड़ा हुआ सोनेका परकोटा है । उसके अंदर बहुत-से सुन्दर-सुन्दर घर हैं । चौराहे, बाजार, सुन्दर मार्ग और गलियाँ हैं । सुन्दर नगर बहुत प्रकारसे सजा हुआ है । हाथी, घोड़े, खच्चरोंके समूह, पैदल और रथोंके समूहोंको कौन गिन सकता है ? अनेक रूपोंके राक्षसोंके दल हैं, उनकी अत्यन्त बलवती सेना वर्णन करते नहीं बनती ॥ १ ॥

वन वाग उपवन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं ।

नर नाग सुर गंधर्व कन्या रूप मुनिमन मोहहीं ॥

कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं ।

नाना मखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं ॥ २ ॥

वन, बाग, उपवन (बगीचे), फुलवाड़ी, तालाब, कुएँ और बावलियाँ सुशोभित हैं । मनुष्य, नाग, देवताओं और गन्धर्वोंकी कन्याएँ अपने सौन्दर्यसे मुनियोंके भी मनोंको मोह लेती हैं । कहीं पर्वतके समान विशाल शरीरवाले बड़े ही बलवान् मछ (पहलवान) गरज रहे हैं । वे अनेकों अत्ताड़ोंमें बहुत प्रकारसे भिड़ते और एक-दूसरेको ललकारते हैं ॥ २ ॥

करि जतन भट कोटिन्ह विकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं ।

कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं ॥

एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कलुएक है कही ।

रघुवीर सर तीरथ सरीरन्ह त्यागि गति पैहहिं सही ॥ ३ ॥

भयंकर शरीरवाले करोड़ों योद्धा यत्न करके (बड़ी सावधानीसे) नगरकी चारों दिशाओंमें (सब ओरसे) रखवाली करते हैं । कहीं दुष्ट राक्षस मेंसों, मनुष्यों, गायों, गदहों और बकरोंको खा रहे हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि इसीलिये इनकी कथा कुछ थोड़ी-सी कही है कि ये निश्चय ही रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीके बाणरूपी तीर्थमें शरीरोंको त्यागकर परमगति पावेंगे ॥ ३ ॥

दो०—पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार ।

अतिलघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार ॥ ३ ॥

कल्याण

(१) मैनाकका सम्मान



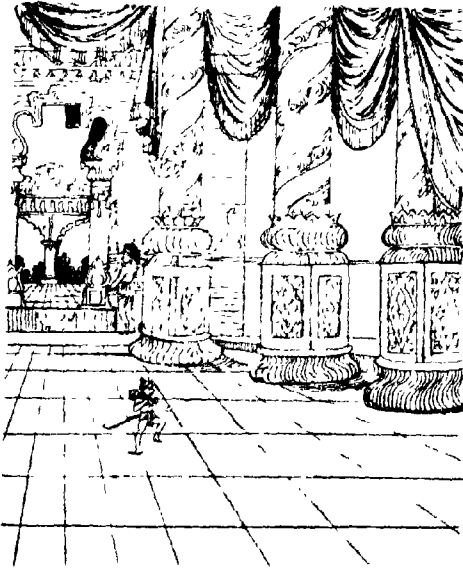
हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम ।
रामकाजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम ॥
[पृष्ठ ६२२]

(२) सुरसाकी प्रसन्नता



रामकाजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान ।
आसिप देह गई सो हरपि चलेउ हनुमान ॥
[पृष्ठ ६२३]

(३) हनुमान्जीका लघु रूप



अतिलघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार ।
[पृष्ठ ६२४]

(४) लंकिनीका उद्धार



मुटिका एक महाकपि हनी । कथिर बमत धरनीं दनमनी ॥
[पृष्ठ ६२५]

नगरके बहुसंख्यक रखवालोंको देखकर हनुमान्जीने मनमें विचार किया कि अत्यन्त छोटा रूप धरूँ और रातके समय नगरमें प्रवेश करूँ ॥ ३ ॥

चौ०—मसक समान रूप कपि धरी । लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी ॥

नाम लंकिनी एक निसिचरी । सो कह चलेसि मोहि निंदरी ॥ १ ॥

हनुमान्जी मच्छड़के समान (छोटा-सा) रूप धारणकर नररूपसे लीला करनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके लंकाको चले । लंकाके द्वारपर लंकिनी नामकी एक राक्षसी रहती थी । वह बोली—मेरा निरादर करके (विना मुझसे पूछे) कहाँ चला जा रहा है ? ॥ १ ॥

जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा । मोर अहार जहाँ लगि चोरा ॥

मुठिका एक मद्दा कपि हनी । रुधिर वमत धरनीं ढनमनी ॥ २ ॥

रे मूर्ख ! तूने मेरा भेद नहीं जाना । जहाँतक (जितने) चोर हैं, वे सब मेरे आहार हैं । महाकपि हनुमान्जीने उसे एक घूँसा मारा, जिससे वह खूनकी उलटी करती हुई पृथ्वीपर लड़क पड़ी ॥ २ ॥

पुनि संभारि उठी सो लंका । जोरि पानि कर विनय ससंका ॥

जय रावनहि ब्रह्म वर दीन्हा । चलत विरंचि कहा मोहि चीन्हा ॥ ३ ॥

वह लंकिनी फिर अपनेको सँभालकर उठी और ढरके मारे हाथ जोड़कर विनती करने लगी । [वह बोली—] रावणको जय ब्रह्माजीने वर दिया था, तब चलते समय उन्होंने मुझे राक्षसोंके विनाशकी यह पहचान बता दी थी कि— ॥ ३ ॥

विकल होसि तैं कपि कै मारे । तव जानेसु निसिचर संधारे ॥

तात मोर अति पुन्य बहूता । देखेउँ नयन राम कर दूता ॥ ४ ॥

जब तू बदरके मारनेसे व्याकुल हो जाय, तब तू राक्षसोंका संहार हुआ जान लेना । हे तात ! यह मेरे बड़े पुण्य हैं जो मैं श्रीरामचन्द्रजीके दूत (आप) को नेत्रोंसे देख पायी ॥ ४ ॥

दो०—तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग ।

तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥ ४ ॥

हे तात ! स्वर्ग और भोक्षके सब सुखोंको तराजूके एक पलड़ेमें रक्खा जाय, तो भी वे सब मिलकर [दूसरे पलड़ेपर रक्खे हुए] उस सुखके बराबर नहीं हो सकते जो लव (क्षण) मात्रके सत्संगसे होता है ॥ ४ ॥

चौ०—प्रबिसि नगर कीजे सब काजा । हृदयँ राखि कोसलपुर राजा ॥

गरल सुधा रिपु कराहिं मितार्ई । गोपद सिंधु अनल सितलार्ई ॥ १ ॥

अयोध्यापुरीके राजा श्रीरघुनाथजीको हृदयमें रक्खे हुए नगरमें प्रवेश करके सब काम कीजिये । उसके लिये विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्रता करने लगते हैं, समुद्र गायके खुरके बराबर हो जाता है, अग्निमें शीतलता आ जाती है, ॥ १ ॥

गरुड सुमेरु रेनुसम ताही । राम कृपा करि चितवा जाही ॥

अति लघु रूप धरेउ हनुमाना । पैठा नगर सुमिरि भगवाना ॥ २ ॥

और हे गरुडजी ! सुमेरु पर्वत उसके लिये रजके समान हो जाता है, जिसे श्रीरामचन्द्रजीने एक बार कृपा

करके देख लिया। तब हनुमान्जीने बहुत ही छोटा रूप धारण किया और भगवान्का स्मरण करके नगरमें प्रवेश किया ॥ २ ॥

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा ॥

गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति विचित्र कहि जात सो नाहीं ॥ ३ ॥

उन्होंने एक-एक (प्रत्येक) महलकी खोज की। जहाँ-तहाँ असंख्य योद्धा देखे। फिर वे रावणके महलमें गये। वह अत्यन्त विचित्र था, जिसका वर्णन नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

सयन किएँ देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीखि बैदेही ॥

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरिमंदिर तहँ भिन्न बनावा ॥ ४ ॥

हनुमान्जीने उसको (रावणको) शयन किये देखा। परन्तु महलमें जानकीजी नहीं दिखायी दी। फिर एक सुन्दर महल दिखायी दिया। वहाँ (उसमें) भगवान्का एक अलगा मन्दिर बना हुआ था ॥ ४ ॥

दो०—रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।

नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ ॥ ५ ॥

वह महल श्रीरामजीके आयुध (घनुष-बाण) के चिह्नोंसे अंकित था, उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। वहाँ नवीन-नवीन तुलसीके वृक्षसमूहोंको देखकर कपिराज श्रीहनुमान्जी हर्षित हुए ॥ ५ ॥

चौ०—लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा ॥

मन महुँ तरक करै कपि लागा। तेहीं समय विभीषणु जागा ॥ १ ॥

लंका तो राक्षसोंके समूहका निवासस्थान है। यहाँ सज्जन (साधु पुरुष) का निवास कहाँ! हनुमान्जी मनमें इस प्रकार तर्क करने लगे। उसी समय विभीषणजी जागे ॥ १ ॥

राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा ॥

एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी ॥ २ ॥

उन्होंने (विभीषणने) रामनामका स्मरण (उच्चारण) किया। हनुमान्जीने उन्हें सज्जन जाना और हृदयमें हर्षित हुए। [हनुमान्जीने विचार किया कि] इनसे हठ करके (अपनी ओरसे ही) परिचय करूँगा, क्योंकि साधुसे कार्यकी हानि नहीं होती [प्रत्युत लाभ ही होता है] ॥ २ ॥

विप्ररूप धरि बचन सुनाए। सुनत विभीषण उठि तहँ आए ॥

करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। विप्र कहहु निज कथा बुझाई ॥ ३ ॥

ब्राह्मणका रूप धरकर हनुमान्जीने उन्हें बचन सुनाये (पुकारा)। सुनते ही विभीषणजी उठकर वहाँ आये। प्रणाम करके कुशल पूछी [और कहा कि] हे ब्राह्मणदेव! अपनी कथा समझाकर कहिये ॥ ३ ॥

की तुम्ह हरिदासन्ह महुँ कोई। मोरे हृदयँ प्रीति अति होई ॥

की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी ॥ ४ ॥

क्या आप हरिभक्तोंमेंसे कोई हैं? क्योंकि आपको देखकर मेरे हृदयमें अत्यन्त प्रेम उमड़ रहा है। अथवा क्या आप दीनोंसे प्रेम करनेवाले स्वयं श्रीरामजी हैं जो मुझे बड़भागी बनाने (घर-बैठे दर्शन देकर कृतार्थ करने) आये हैं? ॥ ४ ॥

दो०—तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।

सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुनग्राम ॥ ६ ॥

तब हनुमानजीने श्रीरामचन्द्रजीकी सारी कथा कहकर अपना नाम बताया। सुनते ही दोनोंके शरीर पुलकित हो गये। और श्रीरामजीके गुणसमूहोंका स्मरण करके दोनोंके मन प्रेम और आनन्दमें मग्न हो गये ॥ ६ ॥

चौ०—सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी ॥

तात कवहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा ॥ १ ॥

[विभीषणजीने कहा—] हे पवनपुत्र ! मेरी रहनी सुनो। मैं यहाँ वैसे ही रहता हूँ जैसे दाँतोंके बीचमें बेचारी जीभ ! हे तात ! मुझे अनाथ जानकर सूर्यकुलके नाथ श्रीरामचन्द्रजी क्या कभी मुझपर कृपा करेंगे ! ॥ १ ॥

तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं ॥

अब मोहि भा भरोस हनुमंता। विनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता ॥ २ ॥

मेरा तामसी (राक्षस) शरीर होनेसे साधन तो कुछ बनता नहीं। और न मनमें श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें प्रेम ही है। परन्तु हे हनुमान ! अब मुझे विश्वास हो गया कि श्रीरामजीकी मुझपर कृपा है, क्योंकि हरिकृपाके बिना संत नहीं मिलते ॥ २ ॥

जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा ॥

सुनहु विभीषन प्रभु कह रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥ ३ ॥

जब श्रीरघुबीरने कृपा की है, तभी तो आपने मुझे हट करके (अपनी ओरसे) दर्शन दिये हैं। [हनुमानजीने कहा—] हे विभीषणजी ! सुनिये, प्रभुकी यही रीति है कि वे सेवकपर सदा ही प्रेम किया करते हैं ॥ ३ ॥

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं विधि हीना ॥

प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलइ अहारा ॥ ४ ॥

भला कहिये, मैं ही कौन बड़ा कुलीन हूँ ! जातिका चञ्चल वानर हूँ और सब प्रकारसे नीच हूँ। प्रातःकाल जो हम बंदरोंका नाम ले ले तो उस दिन उसे भोजन न मिले ॥ ४ ॥

दो०—अस मैं अधम सखा सुनु मोह पर रघुबीर।

कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर ॥ ७ ॥

हे सखा ! सुनिये, मैं ऐसा अधम हूँ; पर रघुबीर श्रीरामचन्द्रजीने तो मुझपर भी कृपा ही की है। भगवान्के गुणोंका स्मरण करके हनुमानजीके दोनों नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया ॥ ७ ॥

चौ०—जानतहुँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी ॥

एहि विधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्वाच्य विश्रामा ॥ १ ॥

जो जानते हुए भी ऐसे स्वामी (श्रीरघुनाथजी) को भुलाकर विषयोंके पीछे भटकते फिरते हैं, वे दुखी क्यों न हों ? इस प्रकार श्रीरामजीके गुणसमूहोंको कहते हुए उन्होंने अनिर्वचनीय (परम) शान्ति प्राप्त की ॥ १ ॥

पुनि सय कथा विभीषन कही। जेहि विधि जनकसुता तहँ रही ॥

तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहुँ जानकी माता ॥ २ ॥

फिर विभीषणजीने श्रीजानकीजी जिस प्रकार वहाँ (लङ्कामें) रहती थीं, वह सब कथा कही। तब हनुमानजीने कहा—हे भाई ! सुनो, मैं जानकी माताको देखना चाहता हूँ ॥ २ ॥

जुगुति विभीषन सकल सुनई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई ॥

करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ ॥ ३ ॥

विभीषणजीने माताके दर्शनकी सब युक्तियाँ (उपाय) कह सुनायीं। तब हनुमान्जी बिदा लेकर चले। फिर वही (पहलेका) मशक सरीखा रूप धरकर वहाँ गये जहाँ अशोकवनमें (वनके जिस भागमें) सीताजी रहती थीं ॥ ३ ॥

देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा । बैठेहिं बीति जात निसि जामा ॥

कस तनु सीस जटा एक वेनी । जपति हृदयँ रघुपति गुन भेनी ॥ ४ ॥

सीताजीको देखकर हनुमान्जीने उन्हें मनहींमें प्रणाम किया। उन्हें बैठे-ही-बैठे रात्रिके चारों पहर बीत जाते हैं। शरीर दुबला हो गया है। सिरपर जटाओंकी एक वेणी (लट) है। हृदयमें श्रीरघुनाथजीके गुणसमूहोंका जाप (स्मरण) करती रहती हैं ॥ ४ ॥

दो०—निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन ।

परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन ॥ ८ ॥

श्रीजानकीजी नेत्रोंको अपने चरणोंमें लगाये हुए हैं (नीचेकी ओर देख रही हैं), और मन श्रीरामजीके चरणकमलोंमें लीन है। जानकीजीको दीन (दुखी) देखकर पवनपुत्र हनुमान्जी बहुत ही दुखी हुए ॥ ८ ॥

चौ०—तरुपल्लव महुँ रहा लुकाई । करइ बिचार करौं का भाई ॥

तेहि अवसर रावनु तहँ आवा । संग नारि बहु किएँ बनावा ॥ १ ॥

हनुमान्जी वृक्षके पत्तोंमें छिप रहे, और विचार करने लगे कि हे भाई ! क्या करूँ (इनका दुःख कैसे दूर करूँ) ? उसी समय बहुत-सी स्त्रियोंको साथ लिये सज-धजकर रावण वहाँ आया ॥ १ ॥

बहुविधि खल सीतहि समझावा । साम दान भय भेद देखावा ॥

कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी । मन्दोदरी आदि सब रानी ॥ २ ॥

उस दुष्टने सीताजीको बहुत प्रकारसे समझाया। साम, दान, भय और भेद दिखलाया। रावणने कहा— हे सुमुखि ! हे सयानी ! सुनो। मन्दोदरी आदि सब रानियोंको— ॥ २ ॥

तव अनुचरौं करउँ पन मोरा । एक बार बिलोकु मम ओरा ॥

तून धरि ओट कहति वैदेही । सुमिरि अवघपति परम सनेही ॥ ३ ॥

मैं तुम्हारी दासी बना दूँगा, यह मेरा प्रण है। तुम एक बार मेरी ओर देखो तो ! अपने परम स्नेही कोसलाधीश श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके जानकीजी तिनकेकी आइ (परदा) करके कहने लगीं— ॥ ३ ॥

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा । कवहुँ कि नलिनी करइ बिकास ॥

अस मन समुद्र कहति जानकी । खल सुधि नहिं रघुवीर वान की ॥ ४ ॥

हे दशमुख ! मुन, जगन्के प्रकाशमें कभी कमलिनी मिल सकती है ! जानकीजी फिर कहती हैं— तू [अपने लिये भी] ऐसा ही मनमें समझ ले। रे दुष्ट ! तुझे श्रीरघुवीरके बाणकी खबर नहीं है ॥ ४ ॥

सठ सूँ हरि आनहि मोही । अधम निलज्ज लाज नहिं तोही ॥ ५ ॥

रे पापी ! तू मुझे सूनेमें हर लया है ! रे अधम ! निर्लज्ज ! तुझे लजा नहीं आती ! ॥ ५ ॥

दो०—आपुहि सुनि खद्योतसम रामहि मानु समान ।

परुष वचन सुनि काढ़ि अति बोला अति खिसिआन ॥ ९ ॥

अपनेजो जगन्के समान और रामचन्द्रजीको सूर्यके समान मुनकर और सीताजीके कटोर वचनोंको सुनकर रावण तलवार निकालकर बड़े गुस्सेमें आकर बोला— ॥ ९ ॥

चौ०—सीता तैं मम कृत अपमाना । कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना ॥

नाहिं त सपदि मानु मम बानी । सुमुखि होति न त जीवन हानी ॥ १ ॥

सीता ! तूने मेरा अपमान किया है । मैं तेरा सिर इस कठोर कृपाणसे काट डारूँगा । नहीं तो [अब भी] जल्दी मेरी बात मान ले । हे सुमुखि ! नहीं तो जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा ॥ १ ॥

स्थाम सरोज दाम सम सुंदर । प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर ॥

सो भुज कंठ कि तव असि घोरा । सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा ॥ २ ॥

[सीताजीने कहा—] हे दशग्रीव ! प्रभुकी भुजा जो श्याम कमलकी मालाके समान सुन्दर और हाथीकी सूँडके समान पुष्ट तथा विशाल है, या तो वह भुजा ही मेरे कण्ठमें पड़ेगी या तेरी भयानक तलवार ही । रे शठ ! सुन, यही मेरा सच्चा प्रण है ॥ २ ॥

चंद्रहास हर मम परितापं । रघुपति विरह अनल संजातं ॥

सीतल निसित बहसि वर धारा । कह सीता हर मम दुख भारा ॥ ३ ॥

सीताजी कहती हैं—हे चन्द्रहास (तलवार) ! श्रीरघुनाथजीके विरहकी अग्निसे उत्पन्न मेरी बड़ी भारी जलनको तू हर ले । हे तलवार ! तू सीतल, तीव्र और श्रेष्ठ धारा बहाती है (अर्थात् तेरी धार ठंडी और तेज है) तू मेरे दुःखके बोझको हर ले ॥ ३ ॥

सुनत बचन पुनि मारन धावा । मयतनयाँ कहि नीति बुझावा ॥

कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई । सीतहि बहु विधि त्रासहु जाई ॥ ४ ॥

सीताजीके ये वचन सुनते ही वह मारने दौड़ा । तब मय दानवकी पुत्री मन्दोदरीने नीति कहकर उसे समझाया । तब रावणने सब राक्षसियोंको बुलाकर कहा कि जाकर सीताको बहुत प्रकारसे भय दिखलाओ ॥ ४ ॥

मास दिवस महुँ कहा न माना । तौ मैं मारवि काढ़ि कृपाना ॥ ५ ॥

यदि महीनेभरमें यह कहा न माने तो मैं इसे तलवार निकालकर मार डारूँगा ॥ ५ ॥

दो०—भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद ।

सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद ॥ १० ॥

यों कहकर रावण घर चला गया । यहाँ राक्षसियोंके समूह बहुतसे बुरे रूप धरकर सीताजीको भय दिखलाने लगे ॥ १० ॥

चौ०—त्रिजटा नाम राच्छसी एका । राम चरन रति निपुन विवेका ॥

सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना । सीतहि सेइ करहु हित अपना ॥ १ ॥

उनमें एक त्रिजटा नामकी राक्षसी थी । उसकी श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रीति थी और वह विवेक (ज्ञान) में निपुण थी; उसने सबोंको बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया और कहा—सीताजीकी सेवा करके अपना कल्याण कर लो ॥ १ ॥

सपनें बानर लंका जारी । जातुधान सेना स्व मारी ॥

खर आरूढ़ नगन दससीसा । मुंडित सिर खंडित भुज बीसा ॥ २ ॥

स्वप्नमें मैंने देखा कि एक बंदरने लङ्का जला दी । राक्षसोंकी सारी सेना मार डाली गयी । रावण नंगा है और गद्देपर सवार है । उसके सिर मुँड़े हुए हैं, बीसों भुजाएँ कटी हुई हैं ॥ २ ॥

पहि विधि सो दच्छिन दिसि आई । लंका मनहुँ विभीषन पाई ॥

नगर फिरी रघुबीर दोहाई । तव प्रभु सीता बोलि पठाई ॥ ३ ॥

इस प्रकारसे वह दक्षिण (यमपुरीकी) दिशाको जा रहा है और मानो लङ्का विभीषणने पायी है । नगरमें रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीकी दुहाई फिर गयी । तब प्रभुने सीताजीको बुला भेजा ॥ ३ ॥

यह सपना मैं कहउँ पुकारी । होइहि सत्य गएँ दिन चारी ॥

तासु बचन सुनि ते सब डरीं । जनकसुता के चरनहि परीं ॥ ४ ॥

मैं पुकारकर (निश्चयके साथ) कहती हूँ कि यह स्वप्न चार (कुछ ही) दिनों बाद सत्य होकर रहेगा । उसके वचन सुनकर वे सब राक्षसियाँ डर गयीं और जानकीजीके चरणोंपर गिर पड़ीं ॥ ४ ॥

दो०—जहँ तहँ गई सकल तब सीता कर मन सोच ।

मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर पोच ॥ ११ ॥

तब (इसके बाद) वे सब जहाँ-तहाँ चली गयी । सीताजी मनमें सोच करने लगीं कि एक महीना बीत जानेपर नीच राक्षस रावण मुझे मारेगा ॥ ११ ॥

चो०—त्रिजटा सन बोली कर जोरी । मातु विपति संगिनि तैं मोरी ॥

तजौं देह कर बेगि उपाई । दुसह विरह अव नहिं सहि जाई ॥ १ ॥

सीताजी हाथ जोड़कर त्रिजटासे बोली—हे माता ! तू मेरी विपत्तिकी संगिनी है । जल्दी कोई ऐसा उपाय कर जिससे मैं शरीर छोड़ सकूँ । विरह असह्य हो चला है, अब यह सह्य नहीं जाता ॥ १ ॥

आनि काठ रचु चिता बनाई । मातु अनल पुनि देहि लगाई ॥

सत्य करहि मम प्रीति सयानी । सुनै को श्रवन सूल सम बानी ॥ २ ॥

काठ लाकर चिता बनाकर सजा दे । हे माता ! फिर उसमें आग लगा दे । हे सयानी ! तू मेरी प्रीतिको सत्य कर दे । रावणकी शूलके समान दुःख देनेवाली वाणी कानोंसे कौन सुने ? ॥ २ ॥

सुनत बचन पद गहि समुद्रापसि । प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनापसि ॥

निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी । अस कहि सो निज भवन सिधारी ॥ ३ ॥

सीताजीके वचन सुनकर त्रिजटाने चरण पकड़कर उन्हें समझाया और प्रभुका प्रताप, बल और सुयश सुनाया । [उसने कहा—] हे सुकुमारी ! सुनो, रात्रिके समय आग नहीं मिलेगी । ऐसा कहकर वह अपने घर चली गयी ॥ ३ ॥

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला । मिलिहि न पावक मिटिहि न सुला ॥

देखिमत प्रगट गगन अंगारा । अचनि न आवत एकउ तारा ॥ ४ ॥

सीताजी [मन-ही-मन] कहने लगीं—[क्या करूँ] विधाता ही विपरीत हो गया । न आग मिलेगी न पीड़ा मिटेगी । आकाशमें अंगारे प्रकट दिखायी दे रहे हैं, पर पृथ्वीपर एक भी तारा नहीं आता ॥ ४ ॥

पावकमय ससि छवत न आगी । मानहुँ मोहि जानि हतभागी ॥

सुनहि बिनय मम विटप असोका । सत्य नाम कर हर मम सोका ॥ ५ ॥

चन्द्रमा अग्निमय है, किन्तु वह भी मानो मुझे हतभागिनी जानकर आग नहीं बरसाता ! हे अशोकवृक्ष ! मेरी विनती सुन । मेरा शोक हर ले और अपना [अशोक] नाम सत्य कर ॥ ५ ॥

नूतन किसलय अनल समाना । देहि अग्नि जनि करहि निदाना ॥

देखि परम विरहाकुल सीता । सो छन कपिहि कलय सम बीता ॥ ६ ॥

कल्याण

श्रीसीताजो ओर त्रिजटा



तजौं देह करु बेगि उपाई । दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई ॥
आनि काठ रचु चिता बनाई । मातु अनल पुनि देहि लग्गाई ॥

तेरे नये-नये कोमल पसे अग्निके समान है। अग्नि दे, विरह-रोगका अन्त मत कर (अर्थात् विरह-रोगको बढ़ाकर सीमातक न पहुँचा)। सीताजीको विरहसे परम व्याकुल देखकर वह क्षण हनुमान्जीको कल्पके समान बीता ॥६॥

सो०—कपि करि हृदय विचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब ।

जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥ १२ ॥

तब हनुमान्जीने हृदयमें विचारकर [सीताजीके सामने] अँगूठी डाल दी, मानो अशोकने अंगारा दे दिया। [यह समझकर] सीताजीने हर्षित होकर उठकर उसे हाथमें ले लिया ॥ १२ ॥

चौ०—तब देखी मुद्रिका मनोहर । राम नाम अंकित अति सुन्दर ॥

चकित चितव मुदरी पहिचानी । हरष विषाद हृदय अकुलानी ॥ १ ॥

तब उन्होंने रामनामसे अंकित अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहर अँगूठी देखी। अँगूठीको पहचानकर सीताजी आश्चर्यचकित होकर उसे देखने लगी, और हर्ष तथा विषादसे हृदयमें अकुल उठी ॥ १ ॥

जीति को सकइ अजय रघुराई । माया तैं असि रचि नहिं जाई ॥

सीता मन विचार कर नाना । मधुर बचन बोलेउ हनुमाना ॥ २ ॥

[वे सोचने लगीं—] श्रीरघुनाथजी तो सर्वथा अजेय हैं, उन्हें कौन जीत सकता है ? और मायासे ऐसी (मायाके उपादानसे सर्वथा रहित दिव्य, चिन्मय) अँगूठी बनायी नहीं जा सकती। सीताजी मनमें अनेक प्रकारके विचार कर रही थीं। इसी समय हनुमान्जी मधुर वचन बोले—॥ २ ॥

रामचंद्र गुन वरनै लागा । सुनतहिं सीता कर दुख भागा ॥

लागीं सुनै श्रवन मन लाई । आदिहु तैं सब कथा सुनाई ॥ ३ ॥

वे श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका वर्णन करने लगे, जिनके सुनते ही सीताजीका दुःख भाग गया। वे कान और मन लगाकर उन्हें सुनने लगीं। हनुमान्जीने आदिसे लेकर सारी कथा कह सुनायी ॥ ३ ॥

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई । कही सो प्रगट होत किन भाई ॥

तब हनुमंत निकट चलि गयऊ । फिरि बैठी मन बिसमय भयऊ ॥ ४ ॥

[सीताजी बोली—] जिसने कानोंके लिये अमृतरूप यह सुन्दर कथा कही, वह हे भाई ! प्रकट क्यों नहीं होता ? तब हनुमान्जी पास चले गये। उन्हें देखकर सीताजी फिरकर (मुख फेरकर) बैठ गयीं; उनके मनमें आश्चर्य हुआ ॥ ४ ॥

रामदूत मैं मातु जानकी । सत्य सपथ करुणानिधान की ॥

यह मुद्रिका मातु मैं आनो । दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी ॥ ५ ॥

[हनुमान्जीने कहा—] हे माता जानकी ! मैं श्रीरामजीका दूत हूँ। करुणानिधानकी सच्ची शपथ करता हूँ। हे माता ! यह अँगूठी मैं ही लाया हूँ। श्रीरामजीने मुझे आपके लिये यह सहिदानी (निशानी या पहिचान) दी है ॥ ५ ॥

नर वानरहि संग कहु कैसें । कही कथा भइ संगति जैसें ॥ ६ ॥

[सीताजीने पूछा—] नर और वानरका संग कहो कैसे हुआ ? तब हनुमान्जीने जैसे संग हुआ था, वह सब कथा कही ॥ ६ ॥

दो०—कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास ।

जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास ॥ १३ ॥

हनुमान्जीके प्रेमयुक्त वचन सुनकर सीताजीके मनमें विश्वास उत्पन्न हुआ। उन्होंने जान लिया कि यह मन, वचन और कर्मसे कृपासागर श्रीरामचन्द्रजीका दास है ॥ १३ ॥

चो०—हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी ॥

वृद्ध विरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहँ जलजाना ॥ १ ॥

भगवान्का जन (सेवक) जानकर अत्यन्त गाढ़ी प्रीति हो गयी। नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया और शरीर अत्यन्त पुलकित हो गया। [सीताजीने कहा—] हे तात हनुमान् ! विरहसागरमें डूबती हुई मुझको तुम जहाज हुए ॥ १ ॥

अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुखभवन खरारी ॥

कोमलचित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥ २ ॥

मैं बलिहारी जाती हूँ, अब छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित सुखधाम खरारि प्रभुका कुशल-मंगल कहो। श्रीरघुनाथजी तो कोमलहृदय और कृपाल हैं। फिर हे हनुमान् ! उन्होंने किस कारण यह निष्ठुरता धारण कर ली है ? ॥ २ ॥

सहज बानि सेवक सुखदायक। कबहुँक सुरति करत रघुनाथक ॥

कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता ॥ ३ ॥

सेवकको सुख देना उनकी स्वाभाविक बान है। वे श्रीरघुनाथजी क्या कभी मेरी भी याद करते हैं ? हे तात ! क्या कभी उनके कोमल साँवले अंगोंको देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे ? ॥ ३ ॥

बचनु न आव नयन भरे वारी। अहह नाथ हौं निपट विसारी ॥

देखि परम विरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु वचन विनीता ॥ ४ ॥

मुँहसे वचन नहीं निकलता। नेत्रोंमें [विरहके आँसुओंका] जल भर आया। [बड़े दुःखसे वे बोलीं—] हा नाथ ! आपने मुझे बिल्कुल ही भुला दिया ! सीताजीको विरहसे परम व्याकुल देखकर हनुमान्जी कोमल और विनीत वचन बोले— ॥ ४ ॥

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तब दुख दुखी सुकृपा निकेता ॥

जनि जननी मानहु जियँ ऊना। तुम्ह ते प्रेमु राम कै दूना ॥ ५ ॥

हे माता ! सुन्दर कृपाके बाम प्रभु छोटे भाईसहित शरीरसे कुशल हैं, परन्तु आपके दुःखसे दुखी हैं। हे माता ! मनमें न्यूनता न मानिये (मन छोटा करके दुःख न कीजिये)। श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें आपसे दूना प्रेम है ॥ ५ ॥

दो०—रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।

अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर ॥ १४ ॥

हे माता ! अब धीरज धरकर श्रीरघुनाथजीका सन्देश सुनिये। ऐसा कहकर हनुमान्जी प्रेमसे गदगद हो गये। उनके नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया ॥ १४ ॥

चो०—कहेउ राम वियोग तब सीता। मो कहँ सकल भय विपरीता ॥

नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू ॥ १ ॥

[हनुमान्जी बोले—] श्रीरामचन्द्रजीने कहा है कि हे सीते ! तुम्हारे वियोगमें मेरे लिये सभी पदार्थ

प्रतिकूल हो गये हैं। वृक्षोंके नये-नये कोमल पत्ते मानो अग्निके समान, रात्रि कालरात्रिके समान, चन्द्रमा सूर्यके समान, ॥ १ ॥

कुबलय बिपिन कुंतलवन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा ॥

जे हित रहे करत तेह पीरा। उरग स्वास सम त्रिविध समीरा ॥ २ ॥

और कमलोंके वन भालोंके वनके समान हो गये हैं। मेघ मानो खोलता हुआ तेल बरसाते हैं। जो हित करनेवाले ये वे ही अब पीड़ा देने लगे हैं। त्रिविध (शीतल, मन्द, सुगन्ध) पवन साँपके श्वासके समान (जहरीली और गरम) हो गयी है ॥ २ ॥

कहेहू तैं कछु दुख घटि होई। काहि कहौ यह जान न कोई ॥

तत्त्व प्रेम कर मम भर तोरा। जानत प्रिया एक मनु मोरा ॥ ३ ॥

मनका दुःख कह डालनेसे भी कुछ घट जाता है, पर कहे किससे? यह दुःख कोई जानता नहीं। हे प्रिये! मेरे और तेरे प्रेमका तत्त्व एक मेरा मन ही जानता है, ॥ ३ ॥

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीतिरसु एतनेहि माहीं ॥

प्रभु सन्देशु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही ॥ ४ ॥

और वह मन सदा तेरे ही पास रहता है! बस, मेरे प्रेमका सार इतनेमें ही समझ ले। प्रभुका सन्देश सुनते ही जानकीजी प्रेममें मग्न हो गयीं। उन्हें शरीरकी सुष नहीं रही ॥ ४ ॥

कह कपि हृदय धीर धरु माता। सुमिर राम सेवक सुख दाता ॥

उर आनहु रघुपति प्रभुतार्। सुनि मम वचन तजहु कदरार् ॥ ५ ॥

हनुमान्जीने कहा—हे माता! हृदयमें धैर्य धारण करो, और सेवकोंकी सुख देनेवाले श्रीरामजीका स्मरण करो। श्रीरघुनाथजीकी प्रभुताकी हृदयमें लाओ और मेरे वचन सुनकर कायरता छोड़ दो ॥ ५ ॥

दो०—निसिचर निकर पतंगसम रघुपति बान कृसानु।

जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु ॥ १५ ॥

राक्षसोंके समूह पतंगोंके समान और श्रीरघुनाथजीके बाण अग्निके समान हैं। हे माता! हृदयमें धैर्य धारण करो, और राक्षसोंको जला ही समझो ॥ १५ ॥

चौ०—जौ रघुवीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई ॥

राम बान रबि उएँ जानकी। तम बरुथ कहँ जातुधान की ॥ १ ॥

रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीने यदि खबर पायी होती तो वे विलम्ब नहीं करते। हे जानकीजी! रामबाणरूपी सूर्यके उदय होनेपर राक्षसोंकी सेनारूपी अन्धकार कहाँ रह सकता है? ॥ १ ॥

अबहिं मातु मैं जाउँ लेवार्। प्रभु आयसु नहिं राम दोहार् ॥

कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुवीरा ॥ २ ॥

हे माता! मैं आपको अभी यहाँसे लिवा जाऊँ; पर श्रीरामचन्द्रजीकी शपथ है, मुझे प्रभु (उन) की आज्ञा नहीं है। हे माता! कुछ दिन और धीरज धरो। रघुवीर श्रीरामचन्द्रजी वानरोंसहित यहाँ आवेंगे, ॥ २ ॥

निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं ॥

हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना ॥ ३ ॥

और राक्षसोंको मारकर आपको ले जायेंगे । नारद आदि ऋषि-मुनि तीनों लोकोंमें यश गावेंगे । [सीताजीने कहा—] हे पुत्र ! सब वानर तुम्हारे ही समान (नन्दे-नन्दे-से) होंगे, राक्षस तो बड़े बलवान् योद्धा हैं ॥ ३ ॥

मोरे हृदय परम संदेहा । सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा ॥
कनक भूषराकार सरीरा । समर भयंकर अतिबल बीरा ॥ ४ ॥

अतः मेरे हृदयमें बड़ा भारी सन्देह होता है [कि तुम-जैसे बंदर राक्षसोंको कैसे जीतेंगे] । यह सुनकर हनुमान्जीने अपना शरीर प्रकट किया । सोनेके पर्वत (सुमेरु) के आकारका (अत्यन्त विशाल) शरीर था जो युद्धमें शत्रुओंके हृदयमें भय उत्पन्न करनेवाला, अत्यन्त बलवान् और वीर था ॥ ४ ॥

सीता मन भरोस तब भयऊ । पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ ॥ ५ ॥

तब (उसे देखकर) सीताजीके मनमें विश्वास हुआ । हनुमान्जीने फिर छोटा रूप धारण कर लिया ॥ ५ ॥

दो०—सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल ।

प्रभुप्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु न्याल ॥ १६ ॥

हे माता ! सुनो, वानरोंमें बहुत बल-बुद्धि नहीं होती । परन्तु प्रभुके प्रतापसे बहुत छोटा सर्प भी गरुड़को खा सकता है (अत्यन्त निर्बल भी महान् बलवान्को मार सकता है) ॥ १६ ॥

चौ०—मन संतोष सुनत कपिवानी । भगति प्रताप तेज बल सानी ॥

आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना । होहु तात बल सील निधाना ॥ १ ॥

भक्ति, प्रताप, तेज और बलसे सनी हुई हनुमान्जीकी वाणी सुनकर सीताजीके मनमें सन्तोष हुआ । उन्होंने श्रीरामजीके प्रिय जानकर हनुमान्जीको आशीर्वाद दिया कि हे तात ! तुम बल और शीलके निधान होओ ॥ १ ॥

अजर अमर गुननिधि सुत होइ । करहुँ बहुत रघुनाथक छोइ ॥

करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना । निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ॥ २ ॥

हे पुत्र ! तुम अजर (बुढ़ापेसे रहित), अमर और गुणोंके खजाने होओ; श्रीरघुनाथजी तुमपर बहुत कृपा करें । 'प्रभु कृपा करें' ऐसा कानोसे सुनते ही हनुमान्जी पूर्ण प्रेममें मग्न हो गये ॥ २ ॥

बार बार नाएसि पद सीसा । बोला बचन जोरि कर कीसा ॥

अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता । आसिष तब अमोघ बिख्याता ॥ ३ ॥

हनुमान्जीने बार-बार सीताजीके चरणोंमें सिर नवाया और फिर हाथ जोड़कर कहा—हे माता ! अब मैं कृतार्थ हो गया । आपका आशीर्वाद अमोघ (अचूक) है, यह बात प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा । लागि देखि सुंदर फल रुखा ॥

सुनु सुत करहिं विपिन रखवारी । परम सुभट रजनीचर भारी ॥ ४ ॥

हे माता ! सुनो, सुन्दर फलवाले वृक्षोंको देखकर मुझे बड़ी ही भूख लग आयी है । सीताजीने कहा—हे बेटा ! सुनो, बड़े भारी योद्धा राक्षस इस वनकी रखवाली करते हैं ॥ ४ ॥

तिन्ह कर भय माता मोहि नहिं । जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं ॥ ५ ॥

[हनुमान्जीने कहा—] हे माता ! यदि आप मनमें सुख मानें (प्रसन्न होकर आशा दें) तो मुझे उनका भय तो बिल्कुल नहीं है ॥ ५ ॥

दो०—देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु ।

रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु ॥ १७ ॥

कल्याण

अशोकवाटिका-ध्वंस



सब रजनीचर कपि संघारे । गण पुकारत कछु अधमारे ॥ •

हनुमान्जीको बुद्धि और बलमें निपुण देखकर जानकीजीने कहा—जाओ । हे तात ! श्रीरघुनाथजीके चरणोंको हृदयमें धारण करके मीठे फल खाओ ॥ १७ ॥

चौ०—चलेउ नाइ सिरु पैटेउ बागा । फल खाएसि तरु तोरैं लागा ॥

रहे तहाँ बहु भट रखवारे । कछु मारेमि कछु जाइ पुकारे ॥ १ ॥

वे सीताजीको सिर नवाकर चले और बागमें घुस गये । फल खाये और वृक्षोंको तोड़ने लगे । वहाँ बहुत-से योद्धा रखवाले थे । उनमेंसे कुछको मार डाला और कुछने जाकर रावणसे पुकार की—॥ १ ॥

नाथ एक आवा कपि भारी । तेहिं असोक वाटिका उजारी ॥

खाएसि फल अरु बिटप उपारे । रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे ॥ २ ॥

[और कहा—] हे नाथ ! एक बड़ा भारी बंदर आया है । उसने अशोकवाटिका उजाड़ डाली । फल खाये, वृक्षोंको उखाड़ डाला और रखवालोंको मसल-मसलकर जमीनपर डाल दिया ॥ २ ॥

सुनि रावन पठए भट नाना । तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना ॥

सब रजनीचर कपि संघारे । गप पुकारत कछु अधमारे ॥ ३ ॥

यह सुनकर रावणने बहुत-से योद्धा भेजे । उन्हें देखकर हनुमान्जीने गर्जना की । हनुमान्जीने सब राक्षसोंको मार डाला । कुछ जो अधमरे थे चिल्लाते हुए गये ॥ ३ ॥

पुनि पठयउ तेहिं अछकुमारा । चला संग लै सुभट अपारा ॥

आवत देखि विटप गहि तर्जा । ताहि निपानि महाधुनि गर्जा ॥ ४ ॥

फिर रावणने अक्षयकुमारको भेजा । वह असंख्य श्रेष्ठ योद्धाओंको साथ लेकर चला । उसे आते देखकर हनुमान्जीने एक वृक्ष [हाथमें] लेकर ललकाया और उसे मारकर महाध्वनिसे (बड़े जोरसे) गर्जना की ॥ ४ ॥

दो०—कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि ।

कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि ॥ १८ ॥

उन्होंने सेनामेंसे कुछको मार डाला, कुछको मसल डाला और कुछको पकड़-पकड़कर धूलमें मिला दिया । कुछने फिर जाकर पुकार की कि हे प्रभु ! बंदर बहुत ही बलवान् है ॥ १८ ॥

चौ०—सुनि सुतबध लंकेस रिसाना । पठएसि मेघनाद बलवाना ॥

मारसि जनि सुत बांधेसु ताही । देखिअ कपिहि कहाँ कर आही ॥ १ ॥

पुत्रका वध सुनकर रावण क्रोधित हो उठा और उसने बलवान् मेघनादको भेजा । [उसे कहा कि—] हे पुत्र ! मारना नही, उसे बांध लाना । उस बंदरको देखा जाय कि कहाँका है ॥ १ ॥

चला इंद्रजित अतुलित जोधा । बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा ॥

कपि देखा दारुन भट आवा । कटकटाइ गर्जा अरु घावा ॥ २ ॥

इन्द्रको जीतनेवाला अतुलनीय योद्धा मेघनाद चला । भाईका मारा जाना सुन उसे क्रोध उत्पन्न हो आया । हनुमान्जीने देखा कि अबकी भयानक योद्धा आया है । तब वे कटकटाकर गर्जे और दौड़े ॥ २ ॥

अति बिसाल तरु एक उपारा । बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा ॥

रहे महाभट ताके संगी । गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगी ॥ ३ ॥

उन्होंने एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया और उसके प्रहारसे लंकेश्वर रावणके पुत्र मेघनादको बिना रथका कर दिया (रथको तोड़कर उसे नीचे पटक दिया) । उसके साथ जो बड़े-बड़े योद्धा थे, उनको पकड़-पकड़कर हनुमान्जी अपने शरीरसे मसलने लगे ॥ ३ ॥

तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा । भिरे जुगल मानहुँ गजराजा ॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई । ताहि एक छन मुरुछा आई ॥ ४ ॥

उन सबको मारकर फिर मेघनादसे लड़ने लगे । [लड़ते हुए वे ऐसे मालूम होते थे] मानो दो गजराज (श्रेष्ठ हाथी) भिड़ गये हों । हनुमान्जी उसे एक घूसा मारकर वृक्षपर जा चढ़े । उसको क्षणभरकी मूर्च्छा आ गयी ॥ ४ ॥

उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया । जीति न जाइ प्रभंजन जाया ॥ ५ ॥
फिर उठकर उसने बहुत माया रची । परन्तु पवनके पुत्र उससे जीते नहीं जाते ॥ ५ ॥

दो०—ब्रह्म अस्त्र तेहिं साँधा कपि मन कीन्ह बिचार ।

जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार ॥ १९ ॥

अन्तमें उसने ब्रह्मास्त्रका सन्धान (प्रयोग) किया । तब हनुमान्जीने मनमें विचार किया कि यदि ब्रह्मास्त्रको नहीं मानता हूँ तो उसकी अपार महिमा मिट जायगी ॥ १९ ॥

चो०—ब्रह्मवान कपि कहूँ तेहिं मारा । परतिहुँ बार कटकु संधारा ॥
तेहिं देखा कपि मुरुछित भयऊ । नागपास बाँधेसि लै गयऊ ॥ १ ॥

उसने हनुमान्जीको ब्रह्मबाण मारा, जिसके लगते ही वे वृक्षसे नीचे गिर पड़े । परन्तु गिरते समय भी उन्होंने बहुत-सी सेना मार डाली । जब उसने देखा कि हनुमान्जी मूर्च्छित हो गये हैं, तब वह उनको नागपाशसे बाँधकर ले गया ॥ १ ॥

जासु नाम जपि सुनहु भवानी । भवबंधन काटहिं नर ग्यानी ॥
तासु दूत कि बंध तर आवा । प्रभु कारज लागि कपिहिं बंधावा ॥ २ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे भवानी ! सुनो, जिनका नाम जपकर शानी (विवेकी) मनुष्य संसार (जन्म-मरण) के बन्धनको काट डालते हैं, उनका दूत कहीं बन्धनमें आ सकता है ! किन्तु प्रभुके कार्यके लिये हनुमान्जीने स्वयं अपनेको बंधा लिया ॥ २ ॥

कपि बंधन सुनि निसिचर घाप । कौतुक लागि सभाँ सब आए ॥
दसमुख सभा दीखि कपि जाई । कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई ॥ ३ ॥

बन्दरका बाँधा जाना सुनकर राक्षस दौड़े और कौतुकके लिये (तमाशा देखनेके लिये) सब सभामें आये । हनुमान्जीने जाकर रावणकी सभा देखी । उसकी अत्यन्त प्रभुता (ऐश्वर्य) कुछ कही नहीं जाती ॥ ३ ॥

कर जोरें सुर दिसिप बिनीता । श्रुति बिलोकत सकल समीता ॥
देखि प्रताप न कपि मन संका । जिमि अहिगन महुँ गरुड असंका ॥ ४ ॥

देवता और दिक्पाल हाथ जोड़े बड़ी नम्रताके साथ भयभीत हुए सब रावणकी भौं तक रहे हैं (उसका रुख देख रहे हैं) । उसका ऐसा प्रताप देखकर हनुमान्जीके मनमें जरा भी डर नहीं हुआ । वे ऐसे निःशङ्क खड़े रहे जैसे सर्पोंके समूहमें गरुड निःशंक (निर्भय) रहते हैं ॥ ४ ॥

दो०—कपिहि बिलोकि दसानन बिहसा कहि दुर्वाद ।

सुतबध सुरति कीन्ह पुनि उपजा हृदयँ बिषाद ॥ २० ॥

कल्याण

(१) रावणके दरबारमें



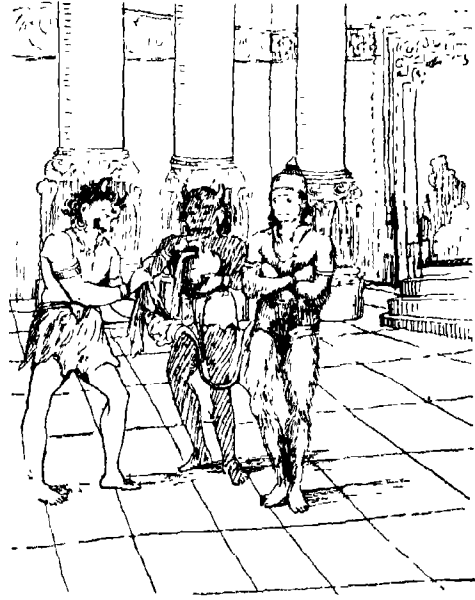
कपिहि बिलोकि दसानन बिहसा कहि दुर्वाद ।
सुतबध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदय विपाद ॥
[पृष्ठ ६३६]

(३) पूँछमें आग लगाना



नगर भेरि पुनि पूँछ प्रजारी ॥
[पृष्ठ ६४०]

(२) पूँछपर तेल-घी



रहा न नगर बसन घृत तेल ।
बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला ॥
[पृष्ठ ६४०]

(४) लंकादहन



अट्टहास करि गर्जा कपि बढि लग अकास ॥
[पृष्ठ ६४०]

हनुमान्जीको देखकर रावण दुर्बचन कहता हुआ खूब हँसा । फिर पुत्रवधका स्मरण किया तो उसके हृदयमें विषाद उत्पन्न हो गया ॥ २० ॥

चो०—कह लंकेस कवन तैं कीसा । केहि कै बल घालेहि बन खीसा ॥
की धौं श्रवण सुनेहि नहिं मोही । देखउँ अति असंक सठ तोही ॥ १ ॥
लंकापति रावणने कहा—रे वानर ! तू कौन है ? किसके बलपर तूने वनको उजाड़कर नष्ट कर डाला ? क्या तूने कभी मुझे (मेरा नाम और यश) कानोंसे नहीं सुना ? रे शठ ! मैं तुझे अत्यन्त निःशंक देख रहा हूँ ॥ १ ॥

मारे निसिचर केहिं अपराधा । कहु सठ तोहि न प्रान कह बाधा ॥
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया । पाइ जासु बल विरचति माया ॥ २ ॥
तूने किस अपराधसे राक्षसोंको मारा ? रे मूर्ख ! बता, क्या तुझे प्राण जानेका भय नहीं है ? [हनुमान्जीने कहा—] हे रावण ! सुन, जिनका बल पाकर माया सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी समूहोंकी रचना करती है; ॥ २ ॥
जाकें बल विरंचि हरि ईसा । पालत सृजन हरन दससीसा ॥
जा बल सीस धरत सहस्रानन । अंडकोस समेत गिरि कानन ॥ ३ ॥

जिनके बलसे हे दसशीश ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश क्रमशः सृष्टिका सृजन, पालन और संहार करते हैं; जिनके बलसे सहस्र मुख (फणों) वाले शेषजी पर्वत और वनमहित समस्त ब्रह्माण्डको सिरपर धारण करते हैं; ॥ ३ ॥

घरर जो बिबिध देह सुरवाता । तुम्ह से सठन्ह सिखावतु दाता ॥
हर कोदंड कठिन जेहिं अंजा । तेहि समंत नृपदल मद गंजा ॥ ४ ॥
जो देवताओंकी रक्षाके लिये नाना प्रकारकी देह धारण करते हैं, और जो तुम्हारे-जैसे मूर्खोंको शिक्षा देनेवाले हैं; जिन्होंने शिवजीके कठोर भनुषको तोड़ डाला और उसीके माथे राजाओंके समूहका गर्व चूर्ण कर दिया ॥ ४ ॥

खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली । बंध सकल अतुलिन बलसाली ॥ ५ ॥
जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा और बालिकोंको मार डाला, जो सबके-सब अनुलनीय बलवान् थे; ॥ ५ ॥

दो०—जाके बल लवलेस तैं जितेहु चराचर झारि ।
तासु दूत में जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि ॥ २१ ॥

जिनके लेशमात्र बलसे तुमने समस्त चराचर जगत्को जीत लिया, और जिनकी प्रिय पत्नीको तुम [चोरीसे] हर लाये हो; मैं उन्हींका दूत हूँ ॥ २१ ॥

चो०—जानउँ मैं तुम्हारी प्रभुताई । सहस्रबाहु सन परी लराई ॥
समर बालि सन करि जसु पावा । सुनि कपि बचन बिहँसि बहरावा ॥ १ ॥
मैं तुम्हारी प्रभुताको खूब जानता हूँ । सहस्रबाहुसे तुम्हारी लड़ाई हुई थी और बालिसे युद्ध करके तुमने यश प्राप्त किया था । हनुमान्जीके [मार्मिक] वचन सुनकर रावणने हँसकर बात टाल दी ॥ १ ॥
झायउँ फल प्रभु लागी भूखा । कपि सुभाष ते तोरेउँ रूखा ॥
सब कै देह परम प्रिय स्वामी । मारहिं मोहि कुमारग गामी ॥ २ ॥

हे [राक्षसोंके] स्वामी ! मुझे भूख लगी थी, इसलिये मैंने फल खाये, और बानर-स्वभावके कारण वृक्ष तोड़े। हे [निशाचरोंके] मालिक ! देह सबको परम प्रिय है। कुमार्गपर चलनेवाले (दुष्ट) राक्षस जब मुझे मारने लगे, ॥२॥

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधउँ तनयँ तुम्हारे ॥

मोहि न कछु बाँध कह लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा ॥ ३ ॥

तब जिन्होंने मुझे मारा, उनको मैंने भी मारा। उसपर तुम्हारे पुत्रने मुझको बाँध लिया। मुझे अपने बाँध जानेकी कुछ भी लजा नहीं है। मैं तो अपने प्रभुका कार्य किया चाहता हूँ ॥ ३ ॥

बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन ॥

देखहु तुम्ह निज कुलहि विचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भयहारी ॥ ४ ॥

हे रावण ! मैं हाथ जोड़कर तुमसे विनती करता हूँ, तुम अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो। तुम अपने पवित्र कुलका विचार करके देखो और भ्रमको छोड़कर भक्त-भयहारी भगवान्को भजो ॥ ४ ॥

जाकैं डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई ॥

तासों बयर कबहुँ नहिं कीजे। मारे कहैं जानकी दीजे ॥ ५ ॥

जो देवता, राक्षस और समस्त चराचरको खा जाता है; वह काल भी जिनके डरसे अत्यन्त डरता है, उनसे कदापि वैर न करो और मेरे कहनेसे जानकीजाँको दे दो ॥ ५ ॥

दो०—प्रनतपाल रघुनायक करुनासिंधु खरारि।

गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि ॥२२॥

खरके शत्रु श्रीरघुनाथजी शरणागतोंके रक्षक और दयाके समुद्र हैं; शरण जानेपर प्रभु तुम्हारा अपराध भुलकर तुम्हें अपनी शरणमें रख लेंगे ॥ २२ ॥

चौ०—राम चरन पंकज उर धरहु। लंका अचल राजु तुम्ह करहु ॥

रिषि पुलस्ति जसु विमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका ॥ १ ॥

तुम श्रीरामजीके चरणकमलोंको हृदयमें धारण करो और लंकाका अचल राज्य करो। ऋषि पुलस्त्यजीका यश निर्मल चन्द्रमय समान है। उस चन्द्रमामें तुम कलक न बनो ॥ १ ॥

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देवु विचारि त्यागि मद मोहा ॥

बसन हीन नहिं सोह मुरारी। सब भूपन भूषित बर नारी ॥ २ ॥

रामनामके बिना वाणी शोभा नहीं पाती, मद-मोहको छोड़, विचारकर देखो। हे देवताओंके शत्रु ! सब गहनोंसे सजी हुई सुन्दरी श्री भी कपड़ोंके बिना (नंगी) शोभा नहीं पाती ॥ २ ॥

राम विमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई ॥

सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं ॥ ३ ॥

रामविमुख पुरुषकी सम्पत्ति और प्रभुता रही हुई भी चली जाती है, और उसका पाना न पानेके समान है। जिन नदियोंके मूलमें कोई जलस्रोत नहीं है (अर्थात् जिन्हें केवल बरसातका ही आसरा है) वे वर्षा बीत जानेपर फिर तुरंत ही सूख जाती है ॥ ३ ॥

सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। विमुख राम ज्ञाता नहिं कोपी ॥

संकर सहस विष्णु अज नोही। सकहिं न राखि राम कर दोही ॥ ४ ॥

हे रावण ! सुनो, मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि रामविमुखकी रक्षा करनेवाला कोई भी नहीं है । हजारों शंकर, विष्णु और ब्रह्मा भी श्रीरामजीके साथ द्रोह करनेवाले तुमको नहीं बचा सकते ! ॥ ४ ॥

दो०—मोहमूल बहु खल प्रद त्यागदु तम अभिमान ।

मजहु राम रघुनायक कृपासिंधु भगवान् ॥२३॥

मोह ही जिसका मूल है ऐसे (अज्ञानजनित), बहुत पीड़ा देनेवाले, तमरूप अभिमानका त्याग कर दो और रघुकुलके स्वामी, कृपाके समुद्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो ॥ २३ ॥

चौ०—जद्यपि कही कपि अति हित वानी । भगति विवेक बिरति नय सानी ॥

बोला बिहसि महा अभिमानी । मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी ॥ १ ॥

यद्यपि हनुमान्जीने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीतिसे सनी हुई बहुत ही हितकी वाणी कही, तो भी वह महा अभिमानी रावण बहुत हँसकर (व्यंगसे) बोला कि हमें यह बन्दर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला ! ॥ १ ॥

मृत्यु निकट आई खल तोही । लागेसि अघम सिखावन मोही ॥

उलट्टा होइहि कह हनुमाना । मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना ॥ २ ॥

२े दुष्ट ! तेरी मृत्यु निकट आ गयी है । अघम मुझे शिक्षा देने चला है ! हनुमान्जीने कहा—इससे उलटा ही होगा (अर्थात् मृत्यु तुम्हारी निकट आ गयी है मेरी नहीं) । यह तेरा मतिभ्रम है, मैंने प्रत्यक्ष जान लिया है ॥ २ ॥

सुनि कपि वचन बहुत खिसिआना । बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राणा ॥

सुनत निसाचर मारन धाप । सचिवन्ह सहित बिभीषणुआए ॥ ३ ॥

हनुमान्जीके वचन सुनकर वह बहुत ही कुपित हो गया [और बोला—] अरे ! इस मूर्खका प्राण शीघ्र ही क्यों नहीं हरण कर लेते ? सुनते ही रात्रस उन्हें मारने दौड़े । उसी समय मन्त्रियोंके साथ बिभीषणजी वहाँ आ पहुँचे ॥ ३ ॥

नाइ सीस करि विनय बहुता । नीति बिरोध न मारिय दूता ॥

आन दंड कछु करिय गोसाई । सवहीं कहा मंत्र भल भाई ॥ ४ ॥

उन्होंने सिर नवाकर और बहुत विनय करके रावणसे कहा कि दूतको मारना नहीं चाहिये, यह नीतिके विरुद्ध है । हे गोसाई ! कोई दूसरा दण्ड दिया जाय । सबने कहा—भाई ! यह सत्यह उत्तम है ॥ ४ ॥

सुनत बिहसि बोला दसकंधर । अंगभंग करि पठइअ बंदर ॥ ५ ॥

यह सुनकर रावण हँसकर बोला—अच्छा तो, बंदरको अंग-भंग करके भेज (लौटा) दिया जाय ॥ ५ ॥

दो०—कपि केँ ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ ।

तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ ॥२४॥

मैं सबको समझाकर कहता हूँ कि बंदरकी ममता पूँछपर होती है । अतः तेलमें कपड़ा डुबोकर उसे इसकी पूँछमें बाँधकर फिर आग लगा दो ॥ २४ ॥

चौ०—पूँछहीन बानर तहँ जाइहि । तब सठ निज नाथहि लै आइहि ॥

जिन्ह केँ कीन्हिसि बहुत बड़ाई । देखउँ मैं तिन्ह केँ प्रभुताई ॥ १ ॥

जब बिना पूँछका यह बंदर वहाँ (अपने स्वामीके पास) जायगा, तब यह मूर्ख अपने मालिकको साथ ले आयेगा । जिसकी इसने बहुत बड़ाई की है, मैं जरा उनकी प्रसुता तो देखूँ ! ॥ १ ॥

बचन सुनत कपि मन मुसुकाना । भइ सहाय सारद मैं जाना ॥
जातुधान सुनि रावन बचना । लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना ॥ २ ॥

यह वचन सुनते ही हनुमान्जी मनमें मुस्कराये [और मन-ही-मन बोले कि] मैं जान गया, सरस्वतीजी सहायक हुई हैं । रावणके वचन सुनकर मूर्ख राक्षस वही (पूँछमें आग लगानेकी) रचना रचने लगे (आयोजन करने लगे) ॥ २ ॥

रहा न नगर बसन घृत तेला । बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि बेला ॥
कौतुक कहँ आप पुरवासी । मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी ॥ ३ ॥

[पूँछके लपेटनेमें इतना कपड़ा और घी-तेल लगा कि] नगरमें कपड़ा, घी और तेल नहीं रह गया । हनुमान्जीने ऐसा खेल किया कि पूँछ बढ़ गयी (लंबी हो गयी) । नगरवासी लोग तमाशा देखने आये । वे हनुमान्जीको पैरसे ठोकर मारते हैं और उनकी बहुत हँसी करते हैं ॥ ३ ॥

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी । नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारो ॥
पावक जरत देखि हनुमंता । भयउ परम लघुरूप तुरंता ॥ ४ ॥

ढोल बजते हैं, सबलोग तालियाँ पीटते हैं । हनुमान्जीको नगरमें फिराकर फिर पूँछमें आग लगा दी । अमिको जलते हुए देखकर हनुमान्जी तुरंत ही बहुत छोटे रूपमें हो गये ॥ ४ ॥

निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं । भइ समीत निसाचर नारीं ॥ ५ ॥
बन्धनसे निकलकर वे सोनेकी अटारियोंपर जा चढ़े । उनको देखकर राक्षसोंकी स्त्रियाँ भयभीत हो गयीं ॥ ५ ॥

दो०—हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास ।

अट्टहास करि गर्जा कपि बढि लाग अकास ॥ २५ ॥

उस समय भगवान्की प्रेरणासे उनचासो पवन चलने लगे । हनुमान्जी अट्टहास करके गजें और बढ़कर आकाशसे जा लगे ॥ २५ ॥

चौ०—देह बिसाल परम हरुआई । मंदिर तें मंदिर चढ़ पाई ॥

जरइ नगर भा लोग विहाला । झपट लपट बहु कोटि कराला ॥ १ ॥

देह बड़ी विशाल, परन्तु बहुत ही हलकी (फुत्तारी) है ! वे दौड़कर एक महलसे दूसरे महलपर चढ़ जाते हैं । नगर जल रहा है, लोग बंहाल हो गये हैं । आगकी करोड़ों भयंकर लपटें झपट रही हैं ॥ १ ॥

तात मातु हा सुनिअ पुकारा । एहिं अवसर को हमहि उबारा ॥

हम जो कहा यह कपि नहिं होई । वानर रूप घरेँ सुर कोई ॥ २ ॥

हाय बप्पा ! हाय मैया ! इस अवसरपर हमें कौन बचावेगा ? चारों ओर यही पुकार सुनायी पड़ रही है । हमने तो पहले ही कहा था कि यह वानर नहीं हैं, वानरका रूप घरे कोई देवता है ! ॥ २ ॥

साधु अबग्या कर फलु ऐसा । जरइ नगर अनाथ कर जैसा ॥

जारा नगर निमिष एक माहीं । एक विभीषन कर गृह नाहीं ॥ ३ ॥

साधुके अपमानका यह फल है कि नगर अनाथके नगरकी तरह जल रहा है । हनुमान्जीने एक ही निमेषमें सारा नगर जला डाला । एक विभीषणका घर नहीं जलया ॥ ३ ॥

लंकादहन



हरि प्रेरित तेहि अवसर नले मरुत उनचास । भट्टहास करि गर्जा कपि बढि लाग अकास ॥

ता कर दूत बनल जेहिं सिरिजा । जरा न सो तेहि कारन गिरिजा ॥

उलटि पलटि लंका सब जारी । कूदि परा पुनि सिंधु मझारी ॥ ४ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती ! जिन्होंने अग्निको बनाया, हनुमान्जी उन्हींके दूत हैं; इसी कारण वे अग्निसे नहीं जले । हनुमान्जीने उलट-पलटकर सारी लंका जला दी । फिर वे समुद्रमें कूद पड़े ॥ ४ ॥

दो०—पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि ।

जनकसुता के आगेँ ठाढ़ भयउ कर जोरि ॥ २६ ॥

पूँछ बुझाकर, थकावट दूर करके और फिर छोटा-सा रूप धारणकर श्रीजानकीजीके सामने हाथ जोड़कर जा खड़े हुए ॥ २६ ॥

चो०—मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा । जैसैं रघुनायक मोहि दीन्हा ॥

चूड़ामणि उतारि तब दयऊ । हरष समेत पवनसुत लयऊ ॥ १ ॥

[हनुमान्जीने कहा—] हे माता ! मुझे कोई चिह्न (पहचान) दीजिये, जैसे श्रीरघुनाथजीने मुझे दिया था । तब सीताजीने चूड़ामणि उतारकर दी । हनुमान्जीने उसको हर्षपूर्वक ले लिया ॥ १ ॥

कहेहु तात अस मोर प्रनामा । सब प्रकार प्रभु पूरनकामा ॥

दीनदयाल बिरिदु संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ॥ २ ॥

[जानकीजीने कहा—] हे तात ! मेरा प्रणाम निवेदन करना और इस प्रकार कहना—हे प्रभु ! यद्यपि आप सब प्रकारसे पूर्णकाम हैं (आपको किसी प्रकारकी कामना नहीं है), तथापि दीनों (दुस्वियों) पर दया करना आपका विरद है [और मैं दीन हूँ,] अतः उस विरदको याद करके, हे नाथ ! मेरे भारी संकटको दूर कीजिये ॥ २ ॥

तात सकसुत कथा सुनाएहु । बाण प्रताप प्रभुहि समुझाएहु ॥

मास दिवस महुँ नाथु न आवा । तौ पुनि मोहि जियत नहिं पावा ॥ ३ ॥

हे तात ! इन्द्रपुत्र जयन्तकी कथा (घटना) सुनाना और प्रभुको उनके बाणका प्रताप समझाना (स्मरण कराना) । यदि महीनेभरमें नाथ न आये तो फिर मुझे जीवित न पायेंगे ॥ ३ ॥

कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राणा । तुम्हहु तात कहत अब जाना ॥

तोहि देखि सीतलि भइ छाती । पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सो राती ॥ ४ ॥

हे हनुमान् ! कहो, मैं किस प्रकार प्राण रक्खूँ । हे तात ! तुम भी अब जानेको कह रहे हो ! तुमको देखकर छाती टंडी हुई थी । फिर मुझे वही दिन और वही रात ! ॥ ४ ॥

दो०—जनकसुतहि समुझाइ करि बहुबिधि धीरजु दीन्ह ।

चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह ॥ २७ ॥

हनुमान्जीने जानकीजीको समझाकर बहुत प्रकारसे धीरज दिया, और उनके चरणकमलोंमें सिर नवाकर श्रीरामजीके पास गमन किया ॥ २७ ॥

चो०—चलत महाधुनि गर्जैसि भारी । गर्भ स्रवहिं सुनि निसिबर नारी ॥

नाधि सिंधु एहि पारहि आवा । सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा ॥ १ ॥

चलते समय उन्होंने महाध्वनिसे भारी गर्जन किया, जिसे सुनकर राक्षसोंकी स्त्रियोंके गर्भ गिरने लगे । समुद्र लौंघकर वे इस पार आये, और उन्होंने वानरोंको किलिकिला-शब्द (हर्ष-ध्वनि) सुनाया ॥ १ ॥

हरषे सब बिलोकि हनुमाना । नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना ॥

मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा । कीन्हैसि रामचंद्र कर काजा ॥ २ ॥

हनुमान्जीको देखकर सब हर्षित हो गये, और तब वानरोंने अपना नया जन्म समझा । हनुमान्जीका मुख प्रसन्न है और शरीरमें तेज विराजमान है, जिससे उन्होंने समझ लिया कि ये श्रीरामचन्द्रजीका कार्य कर आये हैं ॥ २ ॥

मिले सकल अति भय सुखारी । तलफत मीन पाव जिमि बारी ॥

चले हरषि रघुनायक पासा । पूँछत कहत नवल इतिहासा ॥ ३ ॥

सब हनुमान्जीसे मिले और बहुत ही सुखी हुए । जैसे तड़पती हुई मछलीको जल मिल गया हो । सब हर्षित होकर नये-नये इतिहास (वृत्तान्त) पूछते-कहते हुए श्रीरघुनाथजीके पास चले ॥ ३ ॥

तब मधुबन भीतर सब आए । अंगद संमत मधुफल खाए ॥

रखवारे जब बरजन लागे । मुष्टि प्रहार हनत सब भांगे ॥ ४ ॥

तदनन्तर सब मधुवनके भीतर आये, और अंगदकी सम्मतिसे सबने मधुर फल [या मधु और फल] खाये । जब रखवाले बरजने लगे, तब घूँसोंकी मार मारते ही सब रखवाले भाग छूटे ॥ ४ ॥

दो०—जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुवराज ।

सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभुकाज ॥ २८ ॥

उन सबने जाकर पुकारा कि युवराज अंगद बन उजाड़ रहे हैं । यह सुनकर सुग्रीव हर्षित हुए कि वानर प्रभुका कार्य कर आये हैं ॥ २८ ॥

चौ०—जौं न होति सीता सुधि पाई । मधुबन के फल सकहिं कि खाई ॥

एहि विधि मन बिचारि कर राजा । आइ गए कपि सहित समाजा ॥ १ ॥

यदि सीताजीकी खबर न पायी होती तो क्या वे मधुवनके फल खा सकते थे ? इस प्रकार राजा सुग्रीव मनमें विचार कर ही रहे थे कि समाजसहित वानर आ गये ॥ १ ॥

आइ सबन्हि नावा पद सीसा । मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा ॥

पूँछी कुसल कुसल पद देखी । रामरुपाँ भा काजु विमंयी ॥ २ ॥

सबने आकर सुग्रीवके चरणोंमें सिर नवाया । कपिराज सुग्रीव सभीसे बड़े प्रेमके साथ मिले । उन्होंने कुशल पूछी, [तब वानरोंने उत्तर दिया—] आपके चरणोंके दर्शनसे सब कुशल है । श्रीरामजीकी कृपासे विशेष कार्य हुआ (कार्यमें विशेष सफलता हुई है) ॥ २ ॥

नाथ काजु कीन्हैउ हनुमाना । राखे सकल कपिन्ह के प्राणा ॥

सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ । कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ ॥ ३ ॥

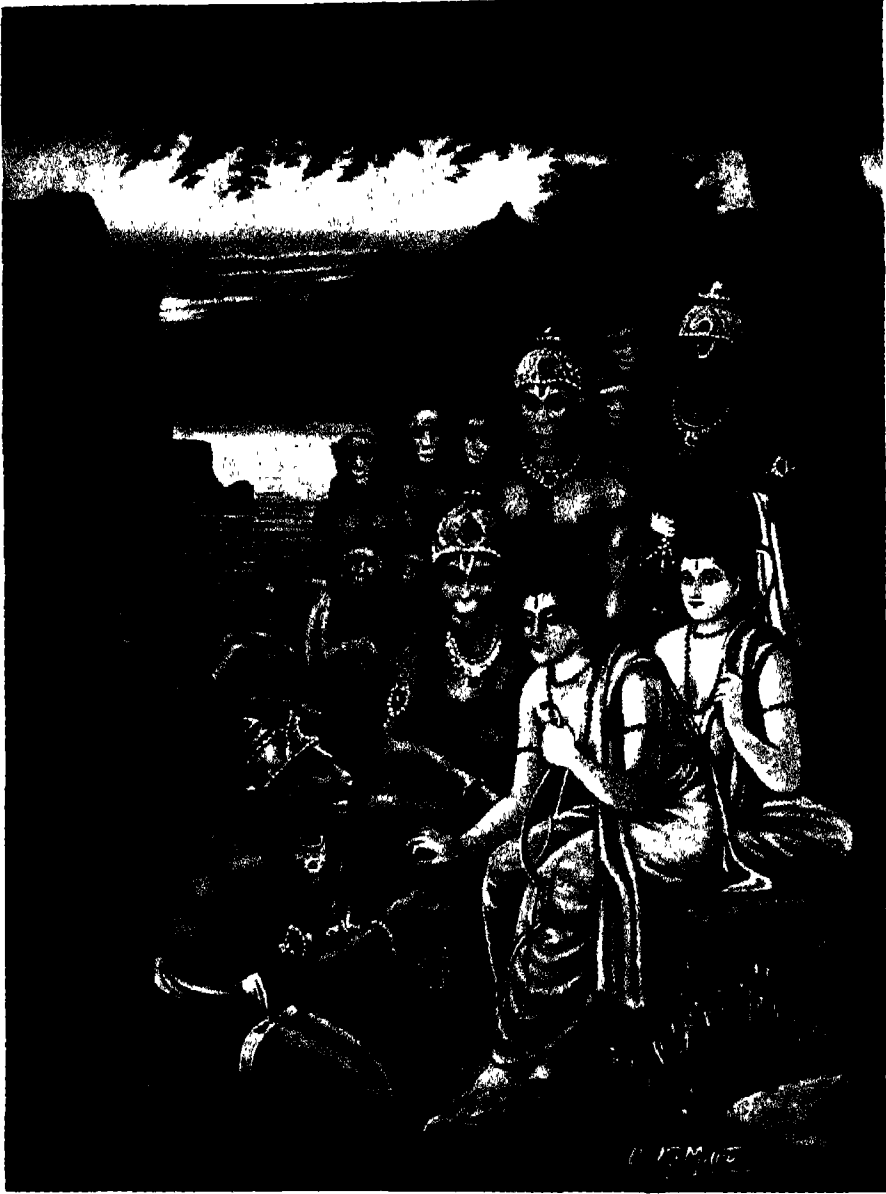
हे नाथ ! हनुमान्ने ही सब कार्य किया और सब वानरोंके प्राण बचा लिये । यह सुनकर सुग्रीवजी हनुमान्जीसे फिर मिले और सब वानरोंसमेत श्रीरघुनाथजीके पास चले ॥ ३ ॥

राम कपिन्ह जब आवत देखा । किऐ काजु मन हरष बिसेषा ॥

फटिकसिला बैठे द्वी भाई । परे सकल कपि चरनन्हि जाई ॥ ४ ॥

श्रीरामजीने जब वानरोंको कार्य किये हुए आते देखा तब उनके मनमें विशेष हर्ष हुआ । दोनों भाई स्फटिक शिलापर बैठे थे । सब वानर जाकर उनके चरणोंपर गिर पड़े ॥ ४ ॥

कल्याण



चलत मोढि चूडामानि दीन्ही । रघुपति हृदय लाइ सोइ लीन्ही ॥

दो०—प्रीति सहित सब भेंटे रघुपति करुणापुंज ।

पूछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पदकंज ॥ २९ ॥

दयाकी राशि श्रीरघुनाथजी सबसे प्रेमसहित गले लाकर मिले और कुशल पूछी । [वानरोंने कहा—]
हे नाथ ! आपके चरणकमलोंके दर्शन पानेसे अब कुशल है ॥ २९ ॥

चो०—जामवंत कह सुनु रघुराया । जापर नाथ करहु तुम्ह दया ॥

ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर । सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर ॥ १ ॥

जाम्बवानने कहा—हे श्रीरघुनाथजी ! सुनिये । हे नाथ ! जिसपर आप दया करते हैं, उसे सदा कल्याण और निरन्तर कुशल है । देवता, मनुष्य और मुनि सभी उसपर प्रसन्न रहते हैं ॥ १ ॥

सोइ बिजई बिनई गुनसागर । तासु सुजसु त्रैलोक उजागर ॥

प्रभु की कृपाँ भयउ सबु काजु । जन्म हमार सुफल भा आजू ॥ २ ॥

वही विजयी है, वही विनयी है और वही गुणोंका समुद्र बन जाता है । उसीका सुन्दर यश तीनों लोकोंमें प्रकाशित होता है । प्रभुकी कृपासे सब कार्य हुआ । आज हमारा जन्म सफल हो गया ॥ २ ॥

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी । सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी ॥

पवनतनय के चरित सुहाए । जामवंत रघुपतिहि सुनाए ॥ ३ ॥

हे नाथ ! पवनपुत्र हनुमानने जो करनी की उसका हजार मुखोंसे भी वर्णन नहीं किया जा सकता । तब जाम्बवानने हनुमानजीके सुन्दर चरित्र (कार्य) श्रीरघुनाथजीको सुनाये ॥ ३ ॥

सुनत कृपानिधि मन अति भाए । पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए ॥

कहहु तात केहि भाँति जानकी । रहति करति रच्छा स्वप्नान की ॥ ४ ॥

सुनते ही कृपानिधि श्रीगमचन्द्रजी मनमें बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने हर्षित होकर हनुमानजीको फिर हृदयसे लगा लिया और कहा—हे तात ! कहो, सीता किस प्रकार रहती और अपने प्राणोंकी रक्षा करती है ? ॥ ४ ॥

दो०—नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।

लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ॥ ३० ॥

[हनुमानजीने कहा—] आपका नाम रात-दिन पहरा देनेवाला है, आपका ध्यान ही किंवाड़ है । नेत्रोंको अपने चरणोंमें लगाये रहती हैं, यही ताल लगा है; फिर प्राण जाये तो किस मार्गसे ? ॥ ३० ॥

चो०—चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही । रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही ॥

नाथ जुगल लोचन भरि बारी । बचन कहं कछु जनककुमारी ॥ १ ॥

चलते समय उन्होंने मुझे चूड़ामणि [उतारकर] दी । श्रीरघुनाथजीने उसे लेकर हृदयसे लगा लिया ! [हनुमानजीने फिर कहा—] हे नाथ ! दोनों नेत्रोंमें जल भरकर जानकीजीने मुझसे कुछ वचन कहे— ॥ १ ॥

अनुज समेत गहेहु प्रभुचरना । दीनबंधु प्रनतारति हरना ॥

मन क्रम वचन चरन अनुरागी । केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी ॥ २ ॥

छोटे भाईसमेत प्रभुके चरण पकड़ना और कहना कि आप दीनबन्धु हैं, शरणागतके दुःखोंको हरनेवाले हैं । और मैं मन, वचन और कर्मसे आपके चरणोंकी अनुरागी हूँ । फिर स्वामी (आप) ने मुझे किस अपराधसे त्याग दिया ? ॥ २ ॥

अवशुन एक मोर मैं माना । बिछुरत प्राण न कीन्ह पयाना ॥
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा । निसरत प्राण करहिं हठि बाधा ॥ ३ ॥

एक दोष मैं अपना अवश्य मानती हूँ कि आपका वियोग होते ही मेरे प्राण नहीं चले गये । किन्तु हे नाथ ! यह तो नेत्रोंका अपराध है जो प्राणोंके निकलनेमें हठपूर्वक बाधा देते हैं ॥ ३ ॥

बिरह अग्नि तनु तूल समीरा । स्वास जरह छन माहिं सरीरा ॥
नयन झवहिं जलु निज हित लागी । जरै न पाव देह बिरहागी ॥ ४ ॥

बिरह अग्नि है, शरीर रूई है और स्वास पवन है; इस प्रकार अग्नि और पवनका संयोग होनेसे यह शरीर क्षणमात्रमें जल सकता है । परन्तु नेत्र अपने हितके लिये (प्रभुका स्वरूप देखकर सुखी होनेके लिये) जल (आँसू) बरसाते हैं, जिससे बिरहकी आगसे भी देह जलने नहीं पाती ॥ ४ ॥

सीता कै अति बिपति बिसाला । बिनहिं कहैं भलि दीनदयाला ॥ ५ ॥

सीताजीकी विपत्ति बहुत बड़ी है । हे दीनदयाल ! वह बिना कही ही अच्छी है (कहनेसे आपको बड़ा क्लेश होगा) ॥ ५ ॥

दो०—निमिष निमिष करुनार्निध जाहिं कलप सम बीति ।

बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुजबल खलदल जोति ॥ ३१ ॥

हे करुणानिधान ! उनका एक-एक पल कल्पके समान बीतता है । अतः हे प्रभु ! तुरंत चलिये और अपनी भुजाओंके बलसे दुष्टोंके दलको जीतकर सीताजीको ले आइये ॥ ३१ ॥

चौ०—सुनि सीतादुख प्रभु सुख अयना । भरि आए जल राजिव नयना ॥
बचन कायँ मन मम गति जाही । सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही ॥ १ ॥

सीताजीका दुःख सुनकर सुखके घाम प्रभुके कमलनेत्रोंमें जल भर आया [ओर वे बोले—] मन, वचन और शरीरसे जिसे मेरी ही गति (मेरा ही आश्रय) है, उसे क्या स्वप्नमें भी विपत्ति हो सकती है ? ॥ १ ॥

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई । जब तब सुमिरन भजन न होई ॥
केतिक बात प्रभु जातुघान की । रिपुहि जीति आनिबी जानकी ॥ २ ॥

हनुमानजीने कहा—हे प्रभु ! विपत्ति तो वही (तभी) है जब आपका भजन-स्मरण न हो । हे प्रभो ! राक्षसोंकी बात ही कितनी है ! आप शत्रुको जीतकर जानकीजीको ले आवेंगे ॥ २ ॥

सुनु कपि तोहि समान उपकारी । नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ॥
प्रति उपकार करौ का तोरा । सन्मुख होइ न सकत मन मोरा ॥ ३ ॥

[भगवान् कहने लगे—] हे हनुमान् ! सुन; तेरे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है । मैं तेरा प्रत्युपकार (बदलेमें उपकार) तो क्या करूँ, मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं । देखेउँ करि बिचार मन माहीं ॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता । लोचन नीर पुलक अति गाता ॥ ४ ॥

हे पुत्र ! सुन; मैंने मनमें खूब विचार करके देख लिया कि मैं तुझसे उद्धार नहीं हो सकता ! देवताओंके रक्षक प्रभु बार-बार हनुमानजीको देख रहे हैं । नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंका जल भरा है और शरीर अत्यन्त पुलकित है ॥ ४ ॥

दो०—सुनि प्रभुबचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत ।

चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत ॥ ३२ ॥

प्रभुके वचन सुनकर और उनका प्रसन्न मुख तथा पुलकित शरीर देखकर हनुमान्जी हर्षित हो गये । और प्रेममें विकल होकर 'हे भगवान् ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' कहते हुए श्रीरामजीके चरणोंमें गिर पड़े ॥ ३२ ॥

चौ०—बार बार प्रभु चहइ उठावा । प्रेम मगन तेहि उठव न भावा ॥

प्रभु कर पंकज कपि कै सीसा । सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ॥ १ ॥

प्रभु उनको बार-बार उठाना चाहते हैं । परन्तु प्रेममें डूबे हुए हनुमान्जीको चरणोंसे उठना सुहाता नहीं ! प्रभुका कर-कमल हनुमान्जीके सिरपर है । उस स्थितिका स्मरण करके शिवजी प्रेममग्न हो गये ॥ १ ॥

सावधान मन करि पुनि संकर । लागे कहन कथा अति सुंदर ॥

कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा । कर गहि परम निकट बैठावा ॥ २ ॥

फिर मनको सावधान करके शंकरजी अत्यन्त सुन्दर कथा कहने लगे—हनुमान्जीको उठाकर प्रभुने हृदयसे लगाया और हाथ पकड़कर अत्यन्त निकट बैठा लिया ॥ २ ॥

कहु कपि रावन पालित लंका । केहि विधि दहेहु दुर्ग अति बंका ॥

प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना । बोला वचन बिगत अभिमाना ॥ ३ ॥

हे हनुमान् ! बताओ तो, रावणके द्वारा सुरक्षित लंका और उसके बड़े बाँके किलेको तुमने किस तरह जलाया ! हनुमान्जीने प्रभुको प्रसन्न जाना, और वे अभिमानरहित वचन बोले— ॥ ३ ॥

साखामृग कै बड़ि मनुसाई । साखा तें साखा पर जाई ॥

नाथि सिंधु हाटकपुर जारा । निसिचर गन वधि विपिन उजारा ॥ ४ ॥

बंदरका बस, यही बड़ा पुरुषार्थ है कि वह एक डालसे दूसरी डालपर चला जाता है । मैंने जो समुद्र लौंघकर सोनेका नगर जलाया और राक्षसगणको मारकर अशोकवनको उजाड़ डाला, ॥ ४ ॥

सो सब तब प्रताप रघुराई । नाथ न कछु मोरि प्रभुताई ॥ ५ ॥

यह सब तो हे श्रीरघुनाथजी ! आपहीका प्रताप है । हे नाथ ! इसमें मेरी प्रभुता (बड़ाई) कुछ भी नहीं है ॥ ५ ॥

दो०—ता कहूँ प्रभु कछु अगम नहिं जापर तुम्ह अनुकूल ।

तब प्रभावँ बड़वानलहिं जारि सकइ खलु तूल ॥ ३३ ॥

हे प्रभु ! जिसपर आप प्रसन्न हों, उसके लिये कुछ भी कठिन नहीं है । आपके प्रभावसे रूई [जो स्वयं बहुत जल्दी जल जानेवाली वस्तु है] बड़वानलको निश्चय ही जला सकती है (अर्थात् असम्भव भी सम्भव हो सकता है) ॥ ३३ ॥

चौ०—नाथ भगति अति सुखदायनी । देहु कृपा करि अनपायनी ॥

सुनि प्रभु परम सरल कपिबानी । एवमस्तु तब कहेउ भवानी ॥ १ ॥

हे नाथ ! मुझे अत्यन्त सुख देनेवाली अपनी निश्चल भक्ति कृपा करके दीजिये । हनुमान्जीकी अत्यन्त सरल वाणी सुनकर, हे भवानी ! तब प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा ॥ १ ॥

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना । ताहि भजनु तजि भाव न आना ॥

यह संवाद जासु उर आवा । रघुपति चरन भगति सोइ पावा ॥ २ ॥

हे उमा ! जिसने श्रीरामजीका स्वभाव जान लिया, उसे भजन छोड़कर दूसरी बात ही नहीं सुहाती ! यह स्वामी-सेवकका संवाद जिसके हृदयमें आ गया, वही श्रीरघुनाथजीके चरणोंकी भक्ति पा गया ॥ २ ॥

सुनि प्रभु बचन कहहिं कपिवृन्दा । जय जय जय कृपाल सुखकंदा ॥

तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा । कहा चलै कर करहु बनावा ॥ ३ ॥

प्रभुके बचन सुनकर वानरगण कहने लगे—कृपाल आनन्दकन्द श्रीरामजीकी जय हो, जय हो, जय हो ! तब श्रीरघुनाथजीने कपिराज सुग्रीवको बुलाया और कहा—चलनेकी तैयारी करो ॥ ३ ॥

अब बिलंबु केहि कारन कीजे । तुरत कपिन्ह कहूँ आयसु दीजे ॥

कौतुक देखि सुमन बहु वरषी । नभ तें भवन चले सुर हरषी ॥ ४ ॥

अब विलम्ब किस कारण किया जाय ? वानरोंकी तुरंत आज्ञा दो । भगवान्की यह लीला (रावणवधका उपक्रम) देखकर, बहुत-से फूल बरसाकर और हर्षित होकर देवता आकाशसे अपने-अपने लोकको चले ॥ ४ ॥

दो०—कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ ।

नाना वरन अतुल बल वानर भालु बरूथ ॥ ३४ ॥

वानरराज सुग्रीवने शीघ्र ही वानरोंकी बुलाया । सेनापतियोंके समूह आ गये । वानर-भालुओंके झुंड अनेक रंगोंके हैं और उनमें अतुलनीय बल है ॥ ३४ ॥

चौ०—प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा । गर्जहिं भालु महाबल कीसा ॥

देखी राम सकल कपिसैना । चितह कृपा करि राजिवनैना ॥ १ ॥

वे प्रभुके चरणकमलोंमें सिर नवाते हैं । महान् बलवान् रीछ और वानर गरज रहे हैं । श्रीरामजीने वानरोंकी सारी सेना देखी । तब कमलनेत्रोंसे कृपापूर्वक उनकी ओर दृष्टि डाली ॥ १ ॥

राम कृपा बल पाइ कपिन्दा । भए पच्छजुत मनहुँ गिरिन्दा ॥

हरषि राम तब कीन्ह पयाना । सगुन भए सुंदर सुभ नाना ॥ २ ॥

रामकृपाका बल पाकर श्रेष्ठ वानर मानो पंखवाले बड़े पर्वत हो गये । तब श्रीरामजीने हर्षित होकर प्रस्थान (कूच) किया । अनेक सुन्दर और शुभ शकुन हुए ॥ २ ॥

जासु सकल मंगलमय कीती । तासु पयान सगुन यह नीती ॥

प्रभु पयान जाना वैदेहीं । फरकि वाम अँग जनु कहि देहीं ॥ ३ ॥

जिनकी कीर्ति सब मङ्गलोसे ओतप्रोत है, उनके प्रस्थानके समय शकुन होना, यह नीति है (लीलाकी मर्यादा है) । प्रभुका प्रस्थान जानकीजीने भी जान लिया । उनके बायें अंग फड़क-फड़ककर मानो कहे देते थे कि श्रीरामजी आ रहे हैं ॥ ३ ॥

जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई । असगुन भयउ रावनहि सोई ॥

चला कटकु को वरनै पारा । गर्जहिं वानर भालु अपारा ॥ ४ ॥

जानकीजीको जो-जो शकुन हुए, वही-वही रावणके लिये अपशकुन हुए । सेना चली । उसका वर्णन कौन कर सकता है ? असंख्य वानर और भान्द्र अपार गर्जना कर रहे हैं ॥ ४ ॥

नख आयुध गिरि पादपधारी । चले गगन महि इच्छाचारी ॥

केहरिनाद भालु कपि करहीं । डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं ॥ ५ ॥

नख ही जिनके शस्त्र हैं, वे इच्छानुसार चलनेवाले रीछ-वानर पर्वतों और वृक्षोंको धारण किये कोई आकाशमार्गसे और कोई पृथ्वीपर चले जा रहे हैं । वे सिंहके समान गर्जना कर रहे हैं । उनके चलने और गर्जनेसे दिशाओंके हाथी विचलित होकर चिगाड़ रहे हैं ॥ ५ ॥

छं०—चिकरहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे ।

मन हरष सभ गन्धर्व सुर मुनि नाग किन्नर दुख टरे ॥

कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं ।

जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं ॥ १ ॥

दिशाओंके हाथी चिंगाड़ने लगे, पृथ्वी डोलने लगी, पर्वत चञ्चल हो गये (काँपने लगे) और समुद्र खलबला उठे । गन्धर्व, देवता, मुनि, नाग, किन्नर, सबके मनमें हर्ष हुआ कि अब हमारे दुःख टल गये । अनेकों करोड़ भयानक वानर योद्धा कटकटा रहे हैं, और करोड़ों ही दौड़ रहे हैं । 'प्रबलप्रताप कोसलनाथ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो' ऐसा पुकारते हुए वे उनके गुणसमूहोंको गा रहे हैं ॥ १ ॥

सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई ।

गह दसन पुनि पुनि कमठपृष्ठ कठोर सो किमि सोहई ॥

रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी ।

जनु कमठ सर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी ॥ २ ॥

उदार (परम श्रेष्ठ एवं महान्) सर्पराज शेषजी भी सेनाका बोझ सह नहीं सकते, वे बार-बार मोहित हो जाते (धवड़ा जाते) हैं और पुनः-पुनः कच्छपकी कठोर पीठको दाँतोंसे पकड़ते हैं । ऐसा करते हुए वे कैसे शोभा दे रहे हैं मानो रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीकी सुन्दर प्रस्थानयात्राको परम सुहावनी जानकर उसकी अचल पवित्र कथाको सर्पराज शेषजी कच्छपकी पीठपर लिख रहे हों ॥ २ ॥

दो०—एहि बिधि जाह कृपानिधि उतरे सागर तीर ।

जहँ तहँ लागे खान फल भालु विपुल कपि बीर ॥ ३५ ॥

इस प्रकार कृपानिधान श्रीरामजी समुद्रतटपर जा उतरे । अनेकों रीछ-वानर वीर जहाँ-तहाँ फल खाने लगे ॥ ३५ ॥

चो०—उहाँ निसाचर रहहिं ससंका । जब तँ जारि गयउ कपि लंका ॥

निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा । नहिं निसिचर कुल केर उवारा ॥ १ ॥

वहाँ (लंकामें) जबसे हनुमान्जी लंकाको जलकर गये, तबसे राक्षस भयभीत रहने लगे । अपने-अपने घरोंमें सब विचार करते हैं कि अब राक्षसकुलका बचाव नहीं है ॥ १ ॥

जासु दूत बल बरनि न जाई । तेहि आएँ पुर कवन भलाई ॥

दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी । मंदोदरी अधिक अकुलानी ॥ २ ॥

जिसके दूतका बल वर्णन नहीं किया जा सकता, उसके स्वयं नगरमें आनेपर कौन भलाई है ? (हम लोगोंकी बड़ी बुरी दशा होगी) । दूतियोंसे नगरनिवासियोंके वचन सुनकर मन्दोदरी बहुत व्याकुल हो गयी ॥ २ ॥

रहसि जोरि कर पति पग लागी । बोली बचन नीतिरस पागी ॥

कंत करष हरि सन परिहरइ । मोर कहा अति हित हियँ धरइ ॥ ३ ॥

वह एकान्तमें हाथ जोड़कर पति (रावण) के चरणों लगी और नीतिरसमें पगी हुई वाणी बोली— हे प्रियतम ! श्रीहरिसे विरोध छोड़ दीजिये । मेरे कहनेको अत्यन्त ही हितकर जानकर हृदयमें धारण कीजिये ॥ ३ ॥

समुझत जासु दूत कह करनी । सबहिं गर्भ रजनीचर घरनी ॥

तासु नारि निज सचिव बोलाई । पठवहु कंत जो चहहु भलाई ॥ ४ ॥

जिनके दूतकी करनीका विचार करते ही (स्मरण आते ही) राक्षसोंकी स्त्रियोंके गर्भ गिर जाते हैं, हे प्यारे स्वामी ! यदि भला चाहते हैं, तो अपने मन्त्रीको बुलाकर उसके साथ उनकी स्त्रीको भेज दीजिये ॥ ४ ॥

तब कुल कमल बिपिन दुखदाई । सीता सीत निसा सम आई ॥

सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें । हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें ॥ ५ ॥

सीता आपके कुलरूपी कमलोंके वनको दुःख देनेवाली जाड़ेकी रात्रिके समान आयी है । हे नाथ ! सुनिये, सीताको दिये (लौटाये) बिना शम्भु और ब्रह्माके किये भी आपका भला नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

दो०—रामवान अहिगन सरिस निकर निसाचर मेक ।

जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक ॥ ३६ ॥

भीरामजीके बाण सपोंके समूहके समान हैं और राक्षसोंके समूह मेढकके समान । जबतक वे इन्हें ग्रस नहीं लेते (निगल नहीं जाते) तबतक हठ छोड़कर उपाय कर लीजिये ॥ ३६ ॥

चौ०—ध्रुवन सुनी सठ ता करि वानी । बिहसा जगत बिदित अभिमानी ॥

सभय सुभाउ नारि कर साँचा । मंगल महुँ भय मन अति काँचा ॥ १ ॥

मूर्ख और जगत्प्रसिद्ध अभिमानी रावण कानोंसे उसकी वाणी सुनकर खूब हँसा [और बोला—] सचमुच ही स्त्रियोंका स्वभाव बहुत डरपोक होता है । मङ्गलमें भी भय करती हो ! तुम्हारा मन (हृदय) बहुत ही कच्चा (कमजोर) है ॥ १ ॥

जौ आवै मर्कट कटकाई । जिअहिं बिचारे निसिचर लाई ॥

कंपहिं लोकप जासी प्रासा । तासु नारि समीत बड़ि हासा ॥ २ ॥

यदि वानरोंकी सेना आवेगी तो बेचारे राक्षस उसे खाकर अपना जीवननिर्वाह करेंगे । लोकपाल भी जिसके डरसे काँपते हैं, उसकी स्त्री डरती हो, यह बड़ी हँसीकी बात है ॥ २ ॥

अस कहि बिहँसि ताहि उर लाई । चलेउ सभौ ममता अधिकारी ॥

मंदोदरी हृदय कर चिंता । भयउ कंत पर बिधि बिपरीता ॥ ३ ॥

रावणने ऐसा कहकर हँसकर उसे हृदयमें लगा लिया और ममता (स्नेह) बढ़ाकर वह सभामें चला गया । मन्दोदरी हृदयमें चिन्ता करने लगी कि पतिपर विधाता प्रतिकूल हो गये ॥ ३ ॥

बैठेउ सभौ खबरि असि पाई । सिंधु पार सेना सब आई ॥

बूझेसि सचिव उचित मत कहहु । ने सब हँसे मष्ट करि रहहु ॥ ४ ॥

ज्यों ही वह सभामें जाकर बैठा, उसने ऐसी खबर पायी कि शत्रुकी सारी सेना समुद्रके उस पार आ गयी है । उसने मन्त्रियोंसे पूछा कि उचित सलाह कहिये [अब क्या करना चाहिये] । तब वे सब हँसे और बोले कि चुप किये रहिये (इसमें सलाहकी कौन-सी बात है ?) ॥ ४ ॥

जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं । नर वानर केहि लेखे माहीं ॥ ५ ॥

आपने देवताओं और राक्षसोंको जीत लिया, तब तो कुछ श्रम ही नहीं हुआ । फिर मनुष्य और वानर किस गिनतीमें हैं ? ॥ ५ ॥

दो०—सचिव बैद गुर तीनि जों प्रिय बोलहिं भय आस ।

राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास ॥ ३७ ॥

मन्त्री, वैद्य और गुरु, ये तीन यदि अप्रसन्नताके भय या लाभकी आशासे, हितकी बात न कहकर, प्रिय बोलते हैं (ठकुरसुहाती कहने लगते हैं), तो क्रमशः राज्य, शरीर और धर्म, इन तीनोंका शीघ्र ही नाश हो जाता है ॥ ३७ ॥

चौ०—सोइ रावन कहूँ बनी सहाई । अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई ॥

अवसर जानि विभीषनु आवा । भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा ॥ १ ॥

रावणको भी वही सहायता (संयोग) आ मिली है । मन्त्री उसे सुना-सुनाकर (मुँहपर) स्तुति करते हैं । इसी समय अवसर जानकर विभीषणजी आये । उन्होंने बड़े भाईके चरणोंमें सिर नवाया ॥ १ ॥

पुनि सिद्ध नाइ बैठ निज आसन । बोला वचन पाइ अनुसासन ॥

जौ कृपाल पूँछिहु मोहि बाता । मति अनुरूप कहउँ हित ताता ॥ २ ॥

फिर वे सिर नवाकर आसनपर बैठ गये और आज्ञा पाकर वचन बोले—हे कृपाल ! जब आपने मुझसे बात (राय) पूछी ही है, तो हे तात ! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार आपके हितकी बात कहता हूँ—॥ २ ॥

जो आपन चाहै कल्याणा । सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ॥

सो परनारि लिलारु गोसाई । तजउ चउधि के चंद कि नाई ॥ ३ ॥

जो मनुष्य अपना कल्याण, सुन्दर यश, सुबुद्धि, शुभ गति और नाना प्रकारके सुख चाहता हो, वह हे स्वामी ! परन्त्रीके ललाटको चौथके चन्द्रमाकी तरह त्याग दे (अर्थात् जैसे लोग चौथके चन्द्रमाको नहीं देखते, उसी प्रकार परन्त्रीका मुग्न ही न देखे) ॥ ३ ॥

चौदह भुवन एक पति होई । भूतद्रोह तिष्ठ नहिं सोई ॥

गुनसागर नागर नर जोऊ । अलप लोभ भल कहइ न कोऊ ॥ ४ ॥

चौदहो भुवनोंका एक ही स्वामी हो, वह भी जीवोंसे वैर करके ठहर नहीं सकता, (नष्ट हो जाता है) । जो मनुष्य गुणोंका समुद्र और चतुर हो, उसको भी चाहे अल्प लोभ ही क्यों न हो, तो भी कोई भला नहीं कहता ॥ ४ ॥

दो०—काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ ।

सब परिहरि रघुवीरहि भजहु भजहिं जेहि संत ॥ ३८ ॥

हे नाथ ! काम, क्रोध, मद और लोभ ये सब नरकके रास्ते हैं । इन सबको छोड़कर श्रीरघुवीरजी-को भजिये, जिन्हें संत (सत्पुरुष) भजते हैं ॥ ३८ ॥

चौ०—तात राम नहिं नर भूपाला । भुवनेस्वर कालहु कर काला ॥

ब्रह्म अनामय अज भगवंता । व्यापक अजित अनादि अनंता ॥ १ ॥

हे तात ! राम मनुष्योंके राजा नहीं है । वे समस्त लोकोंके स्वामी और कालके भी काल हैं । वे [सम्पूर्ण ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, वैराग्य एवं ज्ञानके भण्डार] भगवान् हैं; वे निरामय (विकाररहित), अजन्मा, व्यापक, अजेय, अनादि और अनन्त ब्रह्म हैं ॥ १ ॥

गो द्विज धेनु देव हितकारी । कृपासिंधु मानुष तनुधारी ॥

जन रंजन भंजन बल बाता । वेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता ॥ २ ॥

उन कृपाके समुद्र भगवान्ने पृथ्वी, ब्राह्मण, गो और देवताओंका हित करनेके लिये ही मनुष्य-

शरीर धारण किया है। हे भाई ! सुनिये, वे सेवकोंको आनन्द देनेवाले, दुष्टोंके समूहका नाश करनेवाले और वेद तथा धर्मकी रक्षा करनेवाले हैं ॥ २ ॥

ताहि बयरु तजि नाइअ माथा । प्रनतारति भंजन रघुनाथा ॥

देहु नाथ प्रभु कहूँ बैदेही । भजहु राम बिलु हेतु सनेही ॥ ३ ॥

वैर त्यागकर उन्हें मस्तक नवाइये । वे श्रीरघुनाथजी शरणागतका दुःख नाश करनेवाले हैं । हे नाथ ! प्रभुका जानकीजी दे दीजिये और विना ही कारण स्नेह करनेवाले श्रीरामजीको भजिये ॥ ३ ॥

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा । बिखद्रोह कृत अध जेहि लागा ॥

जासु नाम त्रयताप नसावन । सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन ॥ ४ ॥

जिसे सम्पूर्ण जगत्से द्रोह करनेका पाप लगा है, शरण जानेपर प्रभु उसका भी त्याग नहीं करते । जिनका नाम तीनों पापोंका नाश करनेवाला है, वे ही प्रभु (भगवान्) मनुष्यरूपमें प्रकट हुए हैं । हे रावण ! हृदयमें यह समझ लीजिये ॥ ४ ॥

दो०—बार बार पद लागउँ विनय करउँ दससीस ।

परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस ॥ ३९ (क) ॥

हे दशशीश ! मैं बार-बार आपके चरणों लमाता हूँ और विनती करता हूँ कि मान, मोह और मदको त्यागकर आप कोसलपति श्रीरामजीका भजन कीजिये ॥ ३९ (क) ॥

मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात ।

तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ सुअवसर तात ॥ ३९ (ख) ॥

मुनि पुलस्त्यजीने अपने सिष्यके हाथ यह बात कहल्य भेजी है । हे तात ! सुन्दर अवसर पाकर मैंने तुरन्त ही वह बात प्रभु (आप) से कही है ॥ ३९ (ख) ॥

चौ०—माल्यवंत अति सचिव सयाना । तासु वचन सुनि अति सुख माना ॥

तात अनुज तव नीतिविभूषण । सो उर धरहु जो कहत विभीषण ॥ १ ॥

माल्यवान् नामका एक बहुत ही बुद्धिमान् मन्त्री था । उसने उनके (विभीषणके) वचन सुनकर बहुत सुख माना [और कहा—] हे तात ! आपके छोटे भाई नीतिविभूषण (नीतिको भूषणरूपमें धारण करनेवाले अर्थात् नीतिवान्) हैं । विभीषण जो कुछ कह रहे हैं उसे हृदयमें धारण कर लीजिये ॥ १ ॥

रिपु उतकरय कहत सठ दोऊ । दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ ॥

माल्यवंत गृह गयउ बहोरी । कहइ विभीषण पुनि कर जोरी ॥ २ ॥

[रावणने कहा—] ये दोनों मूर्ख शत्रुकी महिमा बखान रहे हैं । यहाँ कोई है ? इन्हें दूर करा न ! तब माल्यवान् तो घर लौट गया । और विभीषणजी हाथ जोड़कर फिर कहने लगे— ॥ २ ॥

सुमति कुमति सब कैं उर रहहीं । नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥

जहाँ सुमति तहाँ संपति नाना । जहाँ कुमति तहाँ विपति निदाना ॥ ३ ॥

हे नाथ ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि (अच्छी बुद्धि) और कुबुद्धि (खोटी बुद्धि) सबके हृदयमें रहती हैं । जहाँ सुबुद्धि है, वहाँ नाना प्रकारकी सम्पदाएँ (सुखकी स्थिति) रहती हैं और जहाँ कुबुद्धि है वहाँ परिणाममें विपति (दुःख) रहती है ॥ ३ ॥

तव उर कुमति बसी बिपरीता । हित अनहित मानहु रिपु प्रीता ॥

कालराति निसिचर कुल केरी । तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ॥ ४ ॥

आपके हृदयमें उलटी बुद्धि आ बसी है । इसीसे आप हितको अहित और शत्रुको मित्र मान रहे हैं । जो राक्षसकुलके लिये कालरात्रि है, उन सीतापर आपकी बड़ी प्रीति है ॥ ४ ॥

दो०—तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार ।

सीता देहु राम कहूँ अहित न होइ तुम्हार ॥ ४० ॥

हे तात ! मैं चरण पकड़कर आपसे भोख माँगता हूँ (विनती करता हूँ) कि आप मेरा दुलार रखिये (मुझ बालकके आप्रहृको स्नेहपूर्वक स्वीकार कीजिये) । श्रीरामजीको सीताजी दे दीजिये, जिसमें आपका अहित न हो ॥ ४० ॥

चौ०—बुध पुरान श्रुति संमत बानी । कही बिभीषन नीति बखानी ॥

सुनत दसानन उठा रिसाई । खल तोहि निकट मृत्यु अब आई ॥ १ ॥

बिभीषणने पण्डितों, पुराणों और वेदोंद्वारा सम्मत (अनुमोदित) वाणीसे नीति बखानकर कही । पर उसे सुनते ही रावण क्रोधित होकर उठा और बोला कि रे दुष्ट ! अब मृत्यु तेरे निकट आ गयी है ! ॥ १ ॥

जिबसि सदा सठ मोर जिआवा । रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा ॥

कहसि न खल अस को जग माहीं । भुजबल जाहि जिता मैं नाहीं ॥ २ ॥

अरे मूर्ख ! तू जीता तो है सदा मेरा जिलाया हुआ (अर्थात् मेरे ही अन्नसे पल रहा है), पर हे मूढ़ ! पक्ष तुझे शत्रुका ही अच्छा लगता है ! अरे दुष्ट ! बता न, जगत्में ऐसा कौन है जिसे मैंने अपनी भुजाओंके बलसे न जीता हो ? ॥ २ ॥

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती । सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती ॥

अस कहि कीन्हसि चरन प्रहारा । अनुज गहे पद बारहिं बारा ॥ ३ ॥

मेरे नगरमें रहकर प्रेम करता है तपस्वियोंपर ! मूर्ख ! उन्हींसे जा मिल और उन्हींको नीति बता ! ऐसा कहकर रावणने उन्हें लात मारी । परन्तु छोटे भाई बिभीषणने मारनेपर भी बार-बार उसके चरण ही पकड़े ॥ ३ ॥

उमा संत कहइ इहइ बढ़ाई । मंद करत जो करइ भलाई ॥

तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा । रामु भजें हित नाथ तुम्हारा ॥ ४ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! संतकी यही बढ़ाई (महिमा) है जो बुराई करनेपर भी बुराई करनेवालेकी भलाई ही करते हैं । [बिभीषणजीने कहा—] आप मेरे पिताके समान हैं, मुझे मारा सो तो अच्छा ही किया । परन्तु हे नाथ ! आपका भला श्रीरामजीको भजनेमें ही है ॥ ४ ॥

सच्चिव संग लै नभपथ गयऊ । सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ ॥ ५ ॥

[इतना कहकर] बिभीषण अपने मन्त्रियोंको साथ लेकर आकाशमार्गमें गये और सबको सुनाकर वे ऐसा कहने लगे— ॥ ५ ॥

दो०—रामु सत्य संकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि ।

मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि ॥ ४१ ॥

श्रीरामजी सत्यसंकल्प एवं सर्वसमर्थ प्रभु हैं और हे रावण ! तुम्हारी सभा कालके बश है । अतः मैं अब भीरघुवीरकी शरण जाता हूँ, मुझे दोष न देना ॥ ४१ ॥

चौ०—अस कहि चला बिभीषनु जबहीं । आयूहीन भए सब तबहीं ॥

साधु भवग्या तुरत भवानी । कर कल्याण अखिल कै हानी ॥ १ ॥

ऐसा कहकर बिभीषणजी ज्यों ही चले, त्यों ही सब राक्षस आयुहीन हो गये (उनकी मृत्यु निश्चित हो गयी) । [शिवजी कहते हैं—] हे भवानी ! साधुका अपमान तुरंत ही सम्पूर्ण कल्याणकी हानि (नाश) कर देता है ॥ १ ॥

रावन जबहिं बिभीषन त्यागा । भयउ बिभव विनु तबहिं अभागा ॥

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं । करत मनोरथ बहु मन माहीं ॥ २ ॥

रावणको जिस क्षण बिभीषणने त्यागा उसी क्षण वह अभागा वैभव (ऐश्वर्य) से हीन हो गया । बिभीषणजी हर्षित होकर मनमें अनेकों मनोरथ करते हुए भीरघुनाथजीके पास चले ॥ २ ॥

देखिहउँ जाइ चरन जलजाता । भरुन मृदुल सेवक सुखदाता ॥

जे पद परसि तरी रिषिनारी । बंडक कानन पावनकारी ॥ ३ ॥

[वे सोचते जाते थे—] मैं जाकर भगवान्‌के कोमल और लाल वर्णके मुन्दर चरणकमलोंके दर्शन करूँगा, जो सेवकोंको सुख देनेवाले हैं, जिन चरणोंका स्पर्श करके ऋषिपत्नी अहल्या तर गयीं और जो दण्डकवनको पवित्र करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

जे पद जनकसुताँ उर लाए । कपट कुरंग संग घर घाए ॥

हर उर सर सरोज पद जेई । अहो भाग्य मैं देखिहउँ तेई ॥ ४ ॥

जिन चरणोंको जानकीजीने हृदयमें धारण कर रक्खा है, जो कपटमृगके साथ पृथ्वीपर [उसे पकड़नेको] दौड़े थे और जो चरणकमल साक्षात् शिवजीके हृदयरूपी सरोवरमें विराजते हैं, मेरा अहोभाग्य है कि उन्हींको आज मैं देखूँगा ! ॥ ४ ॥

दो०—जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ ।

ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ ॥ ४२ ॥

जिन चरणोंकी पादुकाओंमें भरतजीने अपना मन लगा रक्खा है, अहा ! आज मैं उन्हीं चरणोंको अभी जाकर इन नेत्रोंसे देखूँगा ! ॥ ४२ ॥

चौ०—एहि बिधि करत सप्रेम विचारा । आयउ सपदि सिंधु पहिं पारा ॥

कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा । जाना कोउ रिपुदूत बिसेषा ॥ १ ॥

इस प्रकार प्रेमसहित विचार करते हुए वे शीघ्र ही समुद्रके इस पार (जिधर श्रीरामचन्द्रजीकी सेना थी) आ गये । वानरोंने बिभीषणको आते देखा, तो उन्होंने जाना कि शत्रुका कोई खास दूत है ॥ १ ॥

ताहि राखि कपीस पहिं आए । समाचार सब ताहि सुनाए ॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई । भावा मिलन दसानन भाई ॥ २ ॥

उन्हें [पहेपर] ठहराकर वे सुग्रीवके पास आये और उनको सब समाचार कह सुनाया । सुग्रीवने [श्रीरामजीके पास जाकर] कहा—हे रघुनाथजी ! सुनिये, रावणका भाई आपसे मिलने आया है ॥ २ ॥

कह प्रभु सखा वृक्षिण काहा । कहइ कपीस सुनहु नरनाहा ॥

जानि न जाइ निसावर माया । कामरूप केहि कारन आया ॥ ३ ॥

कल्याण

(१) बिभीषणपर चरणप्रहार



अस कहि कीन्हैसि चरन प्रहारा ।
अनुज गहे पद बारहिं बारा ॥
[पृष्ठ ६५१]

(२) बिभीषणका लंका-त्याग



चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं ।
करत मनोरथ बहु मन माहीं ॥
[पृष्ठ ६५२]

(३) शिविरद्वारपर बिभीषण



कपिन्ह बिभीषणु आवत देखा ।
जाना कोउ रिपुदूत भिसेपा ॥
[पृष्ठ ६५९]

(४) शरणागत बिभीषण



श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भवभीर ।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुवीर ॥
[पृष्ठ ६५४]

प्रभु श्रीरामजीने कहा—हे मित्र ! तुम्हारी क्या राय है ? वानरराज सुग्रीवने कहा—हे महाराज ! सुनिये, राक्षसकी माया जानी नहीं जाती । यह इच्छानुसार रूप बदलनेवाला (छली) न जाने किस कारण आया है ॥ ३ ॥

भेद हमार लेन सठ आवा । राक्षस बाँधि मोहि अस भावा ॥

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी । मम पन सरनागत भयहारी ॥ ४ ॥

यह मूर्ख हमारा भेद लेने आया है । देखलिये मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे बाँध रक्खा जाय । श्रीरामजीने कहा—हे मित्र ! तुमने नीति तो अच्छी विचारी । परन्तु मेरा प्रण तो है शरणागतके भयको हर लेना ! ॥ ४ ॥

सुनि प्रभुवचन हरप हनुमाना । सरनागत बच्छल भगवाना ॥ ५ ॥

प्रभुके वचन सुनकर हनुमानजी हर्षित हुए [और मनही-मन कहने लगे कि] भगवान् कैसे शरणागत-वत्सल (शरणमें आये हुएपर पिताकी भाँति प्रेम करनेवाले) हैं ! ॥ ५ ॥

दो०—सरनागत कहूँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि ।

ते नर पावर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि ॥ ४३ ॥

[श्रीरामजी फिर बोले—] जो मनुष्य अपने अहितका अनुमान करके शरणमें आये हुएका त्याग कर देते हैं, वे पामर (क्षुद्र) हैं, पापमय हैं; उन्हें देखनेमें भी हानि है (पाप लगता है) ॥ ४३ ॥

नो०—कोटि बिप्रबध लागहिं जाह । आपँ सरन तजउँ नहिं ताह ॥

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥ १ ॥

जिसे करोड़ों ब्राह्मणोंकी हत्या लगी हो, शरणमें आनेपर मैं उसे भी नहीं त्यागता । जीव ज्यों ही मेरे सम्मुख होता है, त्यों ही उसके करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

पापवंत कर सहज सुभाऊ । भजन मोर तेहि भाव न काऊ ॥

जौ पै दुष्टद्वय सोइ होई । मोरें सनमुख आव कि सोई ॥ २ ॥

पापीका यह सहज स्वभाव होता है कि मेरा भजन उसे कभी नहीं सुहाता । यदि वह (रावणका भाई) निश्चय ही दुष्ट द्वयवाला होता तो क्या वह मेरे सम्मुख आ सकता था ? ॥ २ ॥

निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥

भेद लेन पठवा दससीसा । तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा ॥ ३ ॥

जो मनुष्य निर्मल मनका होता है, वही मुझे पाता है । मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते । यदि उसे रावणने भेद लेनेको भेजा है, तब भी हे सुग्रीव ! अपनेको कुछ भी भय या हानि नहीं है ॥ ३ ॥

जग महुँ सखा निसाचर जेते । लछिमनु हनइ निमिय महुँ तेते ॥

जौ सभीत आवा सरनाई । रखिहउँ ताहि प्रान की नाई ॥ ४ ॥

क्योंकि हे सखे ! जगत्में जितने भी राक्षस हैं, लक्ष्मण क्षणभरमें उन सबको मार सकते हैं । और यदि वह भयभीत होकर मेरे शरण आया है तो मैं उसे प्राणोंकी तरह रक्खूँगा ॥ ४ ॥

दो०—उभय भाँति तेहि आनहुँ हँसि कह कृपानिकेत ।

जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनु समेत ॥ ४४ ॥

कृपाके धाम श्रीरामजीने हँसकर कहा—दोनों ही स्थितियोंमें उसे ले आओ । तब अंगद और हनुमान् सहित वानरगण 'कृपालु श्रीरामकी जय हो' कहते हुए चले ॥ ४४ ॥

चौ०—सादर तेहि आगेँ करि बानर । चले जहाँ रघुपति करुनाकर ॥

दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता । नयनानंद दान के दाता ॥ १ ॥

बिभीषणजीको आदरसहित आगे करके बानर फिर वहाँ चले जहाँ कृष्णाकी खान श्रीरघुनाथजी थे । नेत्रोंको आनन्दका दान देनेवाले (अत्यन्त सुखद) दोनों भाइयोंको बिभीषणजीने दूरहीसे देखा ॥ १ ॥

बहुरि राम छाबिधाम बिलोकी । रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी ॥

भुज प्रलंब कंजारुन लोचन । स्यामल गात प्रनत भय मोचन ॥ २ ॥

फिर शोभाके धाम श्रीरामजीको देखकर वे पलक [मारना] रोककर ठिठककर (स्तब्ध होकर) एकटक देखते ही रह गये । भगवान्की विशाल भुजाएँ हैं, लाल कमलके समान नेत्र हैं, और शरणागतके भयका नाश करनेवाला साँवला शरीर है ॥ २ ॥

सिंघ कंध आयत उर सोहा । आनन अमित मदन मन मोहा ॥

नयन नीर पुलकित अति गाता । मन धरि धीर कही मृदु बाता ॥ ३ ॥

सिंहकेसे कंधे हैं । विशाल वक्षःस्थल (चौड़ी छाती) अत्यन्त शोभा दे रहा है । अमंख्य कामदेवोंके मनको मोहित करनेवाला मुख है । भगवानके स्वरूपको देखकर बिभीषणजीके नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंका जल भर आया और शरीर अत्यन्त पुलकित हो गया । फिर मनमें धीरज धरकर उन्होंने कोमल वचन कहे— ॥ ३ ॥

नाथ दसानन कर मैं भ्राता । निसिचर बंस जन्म सुरप्राता ॥

सहज पापप्रिय तामस देहा । जथा उलूकहि तम पर नेहा ॥ ४ ॥

हे नाथ ! मैं दशमुख रावणका भाई हूँ । हे देवताओंके रक्षक ! मेरा जन्म राक्षसकुलमें हुआ है । मेरा तामसी शरीर है, स्वभावसे ही मुझे पाप प्रिय हैं, जैसे उल्लूको अन्धकारपर सहज स्नेह होता है ॥ ४ ॥

दो०—श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भवमीर ।

त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुवीर ॥ ४५ ॥

मैं कानोंसे आपका सुयश सुनकर आया हूँ कि प्रभु भव-भयका नाश करनेवाले हैं । हे दुस्त्रियोंके दुःख दूर करनेवाले और शरणागतको सुख देनेवाले श्रीरघुवीरजी ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ४५ ॥

चौ०—अस कहि करत दंडवत देखा । नुरत उठे प्रभु हरष विशेषा ॥

दीन वचन सुनि प्रभु मन भावा । भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा ॥ १ ॥

प्रभुने उन्हें ऐसा कहकर दण्डवत् करते देखा तो वे अतिशय हर्षित होकर नुरत उठे । बिभीषणजीके दीन वचन सुनकर प्रभु मनमें बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने अपनी विशाल भुजाओंमें पकड़कर उनको हृदयसे लगा लिया ॥ १ ॥

अनुज सहित मिलि दिग बैठारी । बोलें वचन भगत भयहारी ॥

कहु लंकेश सहित परिवारा । कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ॥ २ ॥

छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित गले मिलकर उनको अपने पास बैठाकर श्रीरामजी भक्तोंके भयको हरण करनेवाले वचन बोले—हे लंकेश ! परिवारसहित अपनी कुशल कहो । तुम्हारा निवास सुरी जगह-पर है ॥ २ ॥

बलमंडली बसहु विनु राती । सखा धरम निबहइ केहि भाँती ॥

मैं जानउँ तुम्हारी सब रीती । अति नयनिपुन न भाव अनीती ॥ ३ ॥

दिनरात दुष्टोंकी मण्डलीमें बसते हो । हे सखे ! तुम्हारा धर्म किस प्रकार निभता है ? मैं तुम्हारी सब रीति (आचार-व्यवहार) जानता हूँ । तुम अत्यन्त नीतिनिपुण हो, तुम्हें अनीति नहीं सुहाती ॥ ३ ॥

बरु भल बास नरक कर ताता । दुष्टसंग जनि देइ विधाता ॥

अब पद देखि कुसल रघुराया । जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दायी ॥ ४ ॥

हे तात ! नरकमें निवास करना बरं अच्छा है, परन्तु विधाता दुष्टका संग न दे । [विभीषणजीने कहा—] हे रघुनाथजी ! अब आपके चरणोंका दर्शन कर कुशलसे हूँ, जो आपने अपना सेवक जानकर मुझपर दया की है ॥ ४ ॥

दो०—तब लगि कुसल न जीव कहूँ सपनेहुँ मन विश्राम ।

जब लगि भजत न राम कहूँ सोकधाम तजि काम ॥ ४६ ॥

तबतक जीवकी कुशल नहीं और न स्वप्नमें भी उसके मनको शान्ति है, जबतक वह शोकके घर काम (विषय-कामना) को छोड़कर श्रीरामजीको नहीं भजता ॥ ४६ ॥

चौ०—तब लगि हृदयँ बसत खल नाना । लोभ मोह मच्छर मद माना ॥

जब लगि उर न यसत रघुनाथा । घरें चाप सायक कटि भाथा ॥ १ ॥

लोभ, मोह, मत्सर (डाह), मद और मान आदि अनेकों दुष्ट तभीतक हृदयमें बसते हैं, जबतक कि धनुष-बाण और कमरमें तरकस धारण किये हुए श्रीरघुनाथजी हृदयमें नहीं बसते ॥ १ ॥

ममता तरुन तमी अँधिआरी । राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥

तब लगि बसति जीव मन माहीं । जब लगि प्रभुप्रताप रवि नाहीं ॥ २ ॥

ममता पूर्ण अँधेरी रात्रि है, जो राग-द्वेषरूपी उल्लुओंको सुख देनेवाली है । वह (ममतारूपी रात्रि) तभीतक जीवके मनमें बसती है, जबतक प्रभुप्रतापरूपी सूर्य उदय नहीं होता ॥ २ ॥

अब मैं कुसल मिटे भय भारे । देखि राम पदकमल तुम्हारे ॥

तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला । ताहि न व्याप त्रिविध भवसूला ॥ ३ ॥

हे श्रीरामजी ! आपके चरणारविन्दके दर्शन कर अब मैं कुशलसे हूँ; मेरे भारी भय मिट गये । हे कृपाल ! आप जिसपर अनुकूल होते हैं, उसे तीनों प्रकारके भवशूल (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप) नहीं व्यापते ॥ ३ ॥

मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ । सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ ॥

जासु रूप मुनि ध्यान न आवा । तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा ॥ ४ ॥

मैं अत्यन्त नीच स्वभावका राक्षस हूँ । मैंने कभी शुभ आचरण नहीं किया । जिनका रूप मुनियोंकि भी ध्यानमें नहीं आता, उन प्रभुने स्वयं हर्षित होकर मुझे हृदयसे लगा लिया ॥ ४ ॥

दो०—अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज ।

देखेउँ नयन विरंचि सिव सेव्य जुगल पदकंज ॥ ४७ ॥

हे कृपा और सुखके पुञ्ज श्रीरामजी ! मेरा अत्यन्त असीम सौभाग्य है, जो मैंने ब्रह्मा और शिवजीके सेवनीय युगल चरणकमलोंको अपने नेत्रोंसे देखा ॥ ४७ ॥

चौ०—सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ । जान भुसुंड़ि संभु गिरिजाऊ ॥

जौ नर होइ चराचर द्रोही । आवै सभय सरन तकि मोही ॥ १ ॥

[भीरामजीने कहा—] हे सखा ! सुनो, मैं तुम्हें अपना स्वभाव कहता हूँ, जिसे काकभुशुण्डि, शिवजी और पार्वतीजी भी जानती हैं । कोई मनुष्य सम्पूर्ण जड़-चेतन जगत्का द्रोही हो, यदि वह भी भयभीत होकर मेरी शरण तककर आ जाय, ॥ १ ॥

तजि मद मोह कपट छल नाना । करउँ सद्य तेहि साधु समाना ॥

जननी जनक बंधु सुत दारा । तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ॥ २ ॥

और मद, मोह और नाना प्रकारके छल-कपट त्याग दे, तो मैं उसे बहुत शीघ्र साधुके समान कर देता हूँ । माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र और परिवार ॥ २ ॥

सब कै ममता ताग बटोरी । मम पद मनहि बाँध बरि डोरी ॥

समदरसी इच्छा कहु नाहीं । हरप सोक भय नहिं मन माहीं ॥ ३ ॥

इन सबके ममत्वरूपी तागोंको बटोर कर और उन सबकी एक डोरी बटकर उसके द्वारा जो अपने मनको मेरे चरणोंमें बाँध देता है (सारे सांसारिक सम्बन्धोंका केन्द्र मुझे बना लेता है), जो समदर्शी है, जिसे कुछ इच्छा नहीं है और जिसके मनमें हर्ष, शोक और भय नहीं है, ॥ ३ ॥

अस सज्जन मम उर बस कैसें । लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें ॥

तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें । घरउँ देह नहिं आन निहोरें ॥ ४ ॥

ऐसा सज्जन मेरे हृदयमें कैसे बसता है, जैसे लोभीके हृदयमें धन बसा करता है ! तुम-सरीखे संत ही मुझे प्रिय हैं । मैं और किसीके निहारे (प्रार्थना) से कृतशतावश देह धारण नहीं करता ॥ ४ ॥

दो०—सगुन उपासक पर हित निरत नीति दृढ़ नेम ।

ते नर प्रान समान मम जिन्ह कैं द्विजपद प्रेम ॥ ४८ ॥

जो सगुण (साकार) भगवान्के उपासक है, दूसरेके हितमें लगे रहते हैं, नीति और नियमोंमें दृढ़ हैं, और जिन्हें ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रेम है, वे मनुष्य मेरे प्राणोंके समान हैं ॥ ४८ ॥

चौ०—सुनु लंकैस सकल गुन तोरें । तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें ।

राम बचन सुनि वानरजुया । सकल कहहिं जय कृपाबरुया ॥ १ ॥

हे लंकापति ! सुनो, तुम्हारे अंदर उपर्युक्त सब गुण हैं; इसमें तुम मुझे अत्यन्त ही प्रिय हो । भीरामजीके वचन सुनकर सब वानरोंके समूह कहने लगे—कृपाके समूह भीरामजीकी जय हो ! ॥ १ ॥

सुनत बिभीषनु प्रभु कै वानी । नहिं अघात श्रवनामृत जानी ॥

पद अंबुज गहि बारहिं बारा । हृदयँ समात न प्रेमु अपारा ॥ २ ॥

प्रभुकी वाणी सुनते हैं और उसे कानोंके लिये अमृत जानकर बिभीषणजी अघाते नहीं हैं । वे बार-बार भीरामजीके चरणकमलोंको पकड़ते हैं । अपार प्रेम है, हृदयमें समाता नहीं है ॥ २ ॥

सुनहु देव सचराचर स्वामी । प्रनतपाल उर अंतरजामी ॥

उर कछु प्रथम बासना रही । प्रभुपद प्रीति सरित सो बही ॥ ३ ॥

[बिभीषणजीने कहा—] हे देव ! हे चराचर जगत्के स्वामी ! हे शरणागतके रक्षक ! हे सबके हृदयके भीतरकी जाननेवाले ! सुनिये, मेरे हृदयमें पहले कुछ वासना थी । वह प्रभुके चरणोंकी प्रीतिरूपी नदीमें बह गयी ॥ ३ ॥

अब कृपाल निज भगति पावनी । देहु सदा सिव मन भावनी ॥

एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा । मागा तुरत सिंधु कर नीरा ॥ ४ ॥

अब तो हे कृपाल ! शिवजीके मनको सदैव प्रिय लगानेवाली अपनी पवित्र भक्ति मुझे दीजिये । 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर रणधीर प्रभु श्रीरामजीने तुरंत ही समुद्रका जल माँगा ॥ ४ ॥

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं । मोर दरसु अमोघ जग माहीं ॥

अस कहि राम तिलक तेहि सारा । सुमनस्यष्टि नभ भई अपारा ॥ ५ ॥

[और कहा—] हे सखा ! यद्यपि तुम्हारी इच्छा नहीं है, पर जगत्में मेरा दर्शन अमोघ है (वह निष्फल नहीं जाता) । ऐसा कहकर श्रीरामजीने उनको राजतिलक कर दिया । आकाशसे पुष्पोंकी अपार वृष्टि हुई ॥ ५ ॥

दो०—रावन क्रोध अनल निज खास समीर प्रचंड ।

जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड ॥ ४९ (क) ॥

श्रीरामजीने रावणके क्रोधरूपी अग्निमें, जो अपनी (बिभीषणकी) श्वासरूपी पवनसे प्रचण्ड हो रही थी, जलते हुए बिभीषणको बचा लिया और उसे अखण्ड राज्य दिया ॥ ४९ (क) ॥

जो संपत्ति सिव रावनहि दीन्हि दिऐ दस माथ ।

सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥ ४९ (ख) ॥

शिवजीने जो सम्पत्ति रावणको दसों सिरोंको बलि देनेपर दी थी, वही सम्पत्ति श्रीरघुनाथजीने बिभीषणको बहुत सकुचते हुए दी ॥ ४९ (ख) ॥

चौ०—अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना । ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना ॥

निज जन जानि ताहि अपनावा । प्रभु सुभाव कपिकुल मन भावा ॥ १ ॥

ऐसे परम कृपाल प्रभुको छोड़कर जो मनुष्य दूसरेको भजते हैं, वे बिना सींग-पूँछके पशु हैं । अपना सेवक जानकर बिभीषणको श्रीरामजीने अपना लिया । प्रभुका स्वभाव वानरकुलके मनको बहुत भाया ॥ १ ॥

पुनि सर्वग्य सर्व उर वासी । सर्वरूप सब रहित उदासी ॥

बोले वचन नीति प्रतिपालक । कारन मनुज दनुज कुल घालक ॥ २ ॥

फिर सब कुल जाननेवाले, सबके हृदयमें बसनेवाले, सर्वरूप (सब रूपोंमें प्रकट), सबसे रहित, उदासीन, कारणसे (भक्तोंपर कृपा करनेके लिये) मनुष्य बने हुए तथा राक्षसोंके कुल्का नाश करनेवाले श्रीरामजी नीतिकी रक्षा करनेवाले वचन बोले—॥ २ ॥

सुनु कपीस लंकापति बीरा । केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा ॥

संकुल मकर उरग झष जाती । अति अगाध दुस्तर सब भाँती ॥ ३ ॥

हे वीर वानरराज सुग्रीव और लंकापति बिभीषण ! सुनो, इस गहरे समुद्रको किस प्रकार पार किया जाय ? अनेक जातिके मगर, साँप और मछलियोंसे भरा हुआ यह अत्यन्त अथाह समुद्र पार करनेमें सब प्रकारसे कठिन है ॥ ३ ॥

कह लंकैस सुनहु रघुनायक । कोटि सिंधु सोषक तव सायक ॥

जद्यपि तदपि नीति असि गाई । बिनय करिअ सागर सन जाई ॥ ४ ॥

बिभीषणजीने कहा—हे श्रीरघुनाथजी ! सुनिये, यद्यपि आपका एक बाण ही करोड़ों समुद्रोंको सोखनेवाला है (सोख सकता है), तथापि नीति ऐसी कही गयी है (उचित यह होगा) कि पहले जाकर समुद्रसे प्रार्थना की जाय ॥ ४ ॥

दो०—प्रभु तुम्हारे कुलगुरु जलधि कहिहि उपाय विचारि ।

विनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि ॥ ५० ॥

हे प्रभु ! समुद्र आपका कुलगुरु (पूर्वज) है, वह विचारकर उपाय बतला देगा । तब रीछ और वानरोंकी सारी सेना बिना ही परिश्रमके समुद्रके पार उत्तर जायगी ॥ ५० ॥

चौ०—सखा कही तुम्ह नीकि उपाई । करिअ दैव जौ होइ सहाई ॥

मंत्र न यह लछिमन मन भावा । राम बचन सुनि अति दुख पावा ॥ १ ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे सखा ! तुमने अच्छा उपाय बताया । यही किया जाय, यदि दैव सहायक हों । यह सलाह लक्ष्मणजीके मनको अच्छी नहीं लगी । श्रीरामजीके वचन सुनकर तो उन्होंने बहुत ही दुःख पाया ॥ १ ॥

नाथ दैव कर कवन भरोसा । सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा ॥

कादर मन कहँ एक अधारा । दैव दैव आलसी पुकारा ॥ २ ॥

[लक्ष्मणजीने कहा—] हे नाथ ! दैवका कौन भरोसा ! मनमें क्रोध कीजिये (ले आइये) और समुद्रको सुला डालिये । यह दैव तो कायरके मनका एक आधार (तसल्ली देनेका उपाय) है । आलसी लोग ही दैव-दैव पुकारा करते हैं ॥ २ ॥

सुनत विहँसि बोले रघुवीरा । ऐसेहिं करव धरहु मन धीरा ॥

अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई । सिंधु समीप गए रघुराई ॥ ३ ॥

यह सुनकर श्रीरघुवीर हँसकर बोले—ऐसे ही करेंगे, मनमें धीरज रखो । ऐसा कहकर छोटे भाईको समझाकर श्रीरघुनाथजी समुद्रके समीप गये ॥ ३ ॥

प्रथम प्रनामु कीन्ह सिरु नाई । बैठे पुनि तट दर्भ उसाई ॥

जबहिं बिभीषनु प्रभु पहिं आए । पाछें रावन दूत पठाए ॥ ४ ॥

उन्होंने पहले सिर नवाकर प्रणाम किया । फिर किनारेपर कुछ बिछाकर बैठ गये । इधर ज्यों ही बिभीषणजी प्रभुके पास आये थे, त्यों ही रावणने उनके पीछे दूत भेजे थे ॥ ४ ॥

दो०—सकल चरित तिन्ह देखे धरें कपट कपिदेह ।

प्रभुगुन हृदयँ सराहिं सरनागत पर नेह ॥ ५१ ॥

कपटसे वानरका शरीर धारणकर उन्होंने सब ढीलाएँ देखीं । वे अपने हृदयमें प्रभुके गुणोंकी ओर शरणागतपर उनके स्नेहकी सराहना करने लगे ॥ ५१ ॥

चौ०—प्रगट वखानहिं राम सुभाऊ । अति मंग्रम गा विसरि दुराऊ ॥

रिपु के दूत कपिन्ह तव जाने । सकल बाँधि कपीस पहिं आने ॥ १ ॥

फिर वे प्रकटरूपमें भी अत्यन्त प्रेमके साथ श्रीरामजीके स्वभावकी बड़ाई करने लगे, उन्हें दुराव (कपट देश) भूल गया । तब वानरोंने जाना कि ये शत्रुके दूत हैं और वे उन सबको बाँधकर सुग्रीवके पास ले आये ॥ १ ॥

कह सुग्रीव सुनहु सब वानर । अंगभंग करि पठवहु निसिचर ॥

सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए । बाँधि कटक चहुँ पास फिराए ॥ २ ॥

सुग्रीवने कहा—सब वानरो ! सुनो, राक्षसोंके अंग-भंग करके भेज दो। सुग्रीवके वचन सुनकर वानर दौड़े। दूतोंको बाँधकर उन्होंने सेनाके चारों ओर घुमाया ॥ १ ॥

यहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे ॥

जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीस कै आना ॥ ३ ॥

वानर उन्हें बहुत तरहसे मारने लगे। वे दीन होकर पुकारते थे, फिर भी वानरोंने उन्हें नहीं छोड़ा। [तब दूतोंने पुकारकर कहा—] जो हमारे नाक-कान काटेगा, उसे कोसलाधीश श्रीरामजीकी सौगन्ध है ॥ ३ ॥

सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए ॥

रावन कर दीजहु यह पानी। लछिमन बचन वाचु कुलघाती ॥ ४ ॥

यह सुनकर लक्ष्मणजीने सबको निकट बुलाया। उन्हें बड़ी दया लगी, इससे हँसकर उन्होंने राक्षसोंको तुरन्त ही छोड़ दिया। [और उनसे कहा—] रावणके हाथमें यह चिन्ही देना [और कहना]—दे कुलघातक ! लक्ष्मणके शब्दों (सँदेसे) को बाँचो ॥ ४ ॥

दो०—कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम सँदेसु उदार।

सीता देइ मिलहु न त आवा काल तुम्हार ॥ ५२ ॥

फिर उस मूर्खसे जबानी मेरा यह उदार (कुगलसे भगा हुआ) सन्देश कहना कि सीताजीको देकर उनसे (श्रीरामजीसे) मिलो, नहीं तो तुम्हारा काल आ गया समझो ॥ ५२ ॥

चौ०—तुरत नाह लछिमन पद माथा। चले दूत वरनत गुनगाथा ॥

कहत रामजसु लंकाँ आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए ॥ १ ॥

तुरन्त ही लक्ष्मणजीके चरणोंमें मस्तक नवाकर, श्रीरामजीके गुणोंकी कथा वर्णन करते हुए दूत तुरन्त ही चल दिये। श्रीरामजीका यश कहने हुए वे लंकामें आये और उन्होंने रावणके चरणोंमें सिर नवाये ॥ १ ॥

विहसि दसानन पूँछी वाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता ॥

पुनि कहु खबरि विभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी ॥ २ ॥

दशमुख रावणने हँसकर बात पूछी—अरे शुक ! अपनी कुशल क्यों नहीं कहता ? फिर उस विभीषणका समाचार सुना, मृत्यु जिनके अत्यन्त निकट आ गयी है ॥ २ ॥

करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी ॥

पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई ॥ ३ ॥

मूर्खने राज्य करते हुए लंकाका त्याग दिया। अभागा अब जौका कीड़ा (धुन) बनेगा। (जौके साथ जैसे धुन भी पिस जाता है, वैसे ही नर-वानरोंके साथ वह भी मारा जायगा)। फिर भालु और वानरोंकी सेनाका हाल कह, जो कठिन कालकी प्रेरणासे यहाँ चली आयी है, ॥ ३ ॥

जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा ॥

कहु तपसिन्ह के वान बहोरी। जिन्ह के हृदयँ त्रास अति मोरी ॥ ४ ॥

और जिनके जीवनका रक्षक कोमल चित्तकला वेचारा समुद्र बन गया है। (अर्थात् समुद्र उन्हें रास्ता दे देता तो अबतक राक्षस उन्हें मारकर खा गये होते)। फिर उन तपस्वियोंकी बात बता, जिनके हृदयमें मेरा बड़ा डर है ॥ ४ ॥

दो०—की मह भेंट कि फिरि गए श्रवन सुजसु सुनि मोर ।

कहसि न रिपुदल तेज बल बहुत चकित चित तोर ॥ ५३ ॥

उनसे तेरी भेंट हुई, या वे कानोंसे मेरा सुयश सुनकर ही लौट गये ? शत्रुसेनाका तेज और बल बताता क्यों नहीं ! तेरा चित्त बहुत ही चकित (भौंचक्का-सा) हो रहा है ॥ ५३ ॥

चो०—नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसेँ । मानहु कहा क्रोध तजि तैसेँ ॥

मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा । जातहिं राम तिलक तेहि सारा ॥ १ ॥

दूतने कहा—हे नाथ ! आपने जैसे कृपा करके पूछा है, वैसे ही क्रोध छोड़कर मेरा कहना [सत्य] मानिये । जब आपका छोटा भाई श्रीरामजीसे जाकर मिला, तब उसके पहुँचते ही श्रीरामजीने उसको राजतिलक कर दिया ॥ १ ॥

रावन दूत हमहि सुनि काना । कपिन्ह बाँधि दीन्हें दुख नाना ॥

श्रवन नासिका काटै लागे । राम सपथ दीन्हें हम त्यागे ॥ २ ॥

हम रावणके दूत हैं, यह कानोंसे सुनकर वानरोंने हमें बाँधकर बहुत कष्ट दिये, यहाँतक कि वे हमारे नाक-कान काटने लगे । श्रीरामजीकी शपथ दिलानेपर कहीं उन्होंने हमको छोड़ा ॥ २ ॥

पूँछिहु नाथ राम कटकाई । बदन कोटि सत बरनि न जाई ॥

नाना बरन भालु कपि धारी । बिकटानन विसाल भयकारी ॥ ३ ॥

हे नाथ ! आपने श्रीरामजीकी सेना पूछी सी वह तो सौ करोड़ मुखोंसे भी वर्णन नहीं की जा सकती । अनेकों रंगोंके भालु और वानरोंकी सेना है, जो भयंकर मुखवाले, विशाल शरीरवाले और भयानक हैं ॥ ३ ॥

जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा । सकल कपिन्ह मह तेहि बलु थोरा ॥

अमित नाम भट कठिन कराला । अमित नाग बल विपुल विसाला ॥ ४ ॥

जिसने नगरको जलाया और आपके पुत्रको मारा, उसका बल तो सब वानरोंमें थोड़ा है । असंख्य नामोंवाले बड़े ही कठोर और भयंकर योद्धा हैं । उनमें असंख्य हाथियोंका बल है और वे बड़े ही विशाल हैं ॥ ४ ॥

दो०—द्विविद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि ।

दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि ॥ ५४ ॥

द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, गद, बिकटाम्य, दधिमुख, केसरी, निशठ, शठ और जाम्बवान; ये सभी बलकी राशि हैं ॥ ५४ ॥

चो०—ए कपि सब सुग्रीव समाना । इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना ॥

रामकृपाँ अतुलित बल निनहीं । नृन समान त्रैलोकहि गनहीं ॥ १ ॥

ये सब वानर बलमें सुग्रीवके समान हैं और इनके जैसे एक-दो नहीं, करोड़ों हैं । उन बहुत-सोंको गिन ही कौन सकता है ? श्रीरामजीकी कृपासे उनमें अतुलनीय बल है । वे तीनों लोकोंको नृणके समान तुच्छ समझते हैं ॥ १ ॥

अस में सुना श्रवन दसकंधर । पदुम अठारह जूथप बंदर ॥

नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं । जो न तुम्हहि जीतै रन माहीं ॥ २ ॥

हे दशग्रीव ! मैंने कानोंसे ऐसा सुना है कि अठारह पद्म तो अकेले वानरोंकी सेनापति हैं ! हे नाथ ! उस सेनामें ऐसा कोई वानर नहीं है जो आपको रणमें न जीत सके ॥ २ ॥

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा ॥

सोषहिं सिंधु सहित सख ब्याला। पूरहिं न त भरि कुघर बिसाला ॥ ३ ॥

सब-के-सब अत्यन्त क्रोधसे हाथ मीजते हैं, पर श्रीरघुनाथजी उन्हें आश नहीं देते। 'हम मछलियों और साँपोंसहित समुद्रको सोख लेंगे। नहीं तो, बड़े-बड़े पर्वतोंसे उसे भरकर पूर (पाट) देंगे', ॥ ३ ॥

मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ वचन कहहिं सब कीसा ॥

गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका ॥ ४ ॥

और रावणकी मसलकर धूलमें मिला देंगे। सब वानर ऐसे ही वचन कह रहे हैं। सब सहज ही निहर हैं; इस प्रकार गरजते और डपटते हैं मानो लंकाको निगल ही जाना चाहते हैं ॥ ४ ॥

दो०—सहज सूर कापि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम ।

रावन काल कोटि कहूँ जीति सकहिं संग्राम ॥ ५५ ॥

सब वानर-भालू सहज ही शूरवीर हैं, फिर उनके सिरपर प्रभु (सर्वेश्वर) श्रीरामजी हैं। हे रावण ! वे संग्राममें करोड़ों कालोंको जीत सकते हैं ॥ ५५ ॥

चो०—राम तेज बल बुधि विपुलाई। सेव सहस सत सकहिं न गार्ई ॥

सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहि पूँछेउ नयनागर ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके तेज (सामर्थ्य), बल और बुद्धिकी अधिकताको लाखों शेष भी नहीं गा सकते। वे एक ही बाणसे मैकड़ों समुद्रोंको सोख सकते हैं, परन्तु नीतिनिपुण श्रीरामजीने [नीतिकी रक्षाके लिये] आपके भाईसे उपाय पूछा ॥ १ ॥

तासु वचन सुनि सागर पार्हीं। मागत पंथ कृपा मन माहीं ॥

सुनत वचन बिहँसा दससीसा। जौ असि मति सहाय कृत कीसा ॥ २ ॥

उनके (आपके भाईके) वचन सुनकर वे (श्रीरामजी) समुद्रसे राह माँग रहे हैं, उनके मनमें कृपा भरी है [इसलिये वे उसे सोखते नहीं]। दूतके ये वचन सुनते ही रावण खूब हँसा [और बोला—] जब ऐसी बुद्धि है, तभी तो वानरोंको सहायक बनाया है ! ॥ २ ॥

सहज भीरु कर वचन दड़ाई। सागर सन ठानी मचलाई ॥

मूढ़ मृगा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पार्ई ॥ ३ ॥

स्वाभाविक ही डरपोक विभीषणके वचनको प्रमाण करके उन्होंने समुद्रसे मचलना (बालहठ) ठाना है ! अरे मूर्ख ! झूठी बड़ाई क्या करता है ! बस, मैंने शत्रु (राम) के बल और बुद्धिकी थाह पा ली ॥ ३ ॥

सचिव समीत विभीषनु जाकँ। विजय विभूति कहाँ जग ताकँ ॥

सुनि खल वचन दूत रिस बाढ़ी। समय विचारि पत्रिका काढ़ी ॥ ४ ॥

जिसके विभीषण-जैसा डरपोक मन्त्री हो, उसे जगत्में विजय और विभूति (ऐश्वर्य) कहाँ ! दुष्ट रावणके वचन सुनकर दूतको क्रोध बढ़ आया। उसने माँका समझकर पत्रिका निकाली ॥ ४ ॥

रामानुज दीन्ही यह पाती। नाथ बँचाइ जुड़ावहु छाती ॥

बिहँसि बाम कर लीन्ही रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन ॥ ५ ॥

[और कहा—] श्रीरामजीके छोटे भाई लक्ष्मणने यह पत्रिका दी है। हे नाथ ! इसे बँचाकर छाती ठंडी कीजिये। रावणने हँसकर उसे बायें हाथसे लिया और मन्त्रीको बुलवाकर वह मूर्ख उसे बँचाने लगा ॥ ५ ॥

दो०—बातन मनहि रिझाह सठ जनि घालसि कुल खीस ।

राम बिरोध न उबरसि सरन बिण्नु अज ईस ॥ ५६ (क) ॥

[पत्रिकामें लिखा था—] अरे मूर्ख ! केवल बातोंसे ही मनको रिझाकर अपने कुलको नष्ट-भ्रष्ट न कर ! श्रीरामजीसे विरोध करके तू विष्णु, ब्रह्मा और महेशकी शरण जानेपर भी नहीं बचेगा ॥ ५६ (क) ॥

की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग ।

होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग ॥ ५६ (ख) ॥

या तो अभिमान छोड़कर अपने छोटे भाई विभीषणकी भाँति प्रभुके चरण-कमलोंका भ्रमर बन जा । नहीं तो, रे दुष्ट ! श्रीरामजीके बाणरूपी अग्निमें परिवारसहित पतंगा हो जायगा ॥ ५६ (ख) ॥

चौ०—सुनत सभय मन मुख मुसुकाई । कहत दसानन सबहि सुनाई ॥

भूमि परा कर गहत अकासा । लघु तापस कर बाग बिलासा ॥ १ ॥

पत्रिका सुनते ही रावण मनमें भयभीत हो गया, परन्तु मुखसे (ऊपरसे) मुस्कुराता हुआ वह सबको सुनाकर कहने लगा—जैसे कोई पृथ्वीपर पड़ा हुआ आकाशको पकड़नेकी चेष्टा करता हो, वैसे ही यह छोटा तपस्वी (लक्ष्मण) वाग्बिलास करता है (डींग हाँकता है) ॥ १ ॥

कह सुक नाथ सत्य सब वानी । समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी ॥

सुनहु वचन मम परिहरि क्रोधा । नाथ राम सन तजहु विरोधा ॥ २ ॥

शुक (दूत) ने कहा—हे नाथ ! अभिमानी स्वभावको छोड़कर [इस पत्रमें लिखी] सब बातोंको सत्य समझिये । क्रोध छोड़कर मेरा वचन सुनिये । हे नाथ ! श्रीरामजीसे वैर त्याग दीजिये ॥ २ ॥

अति कोमल रघुवीर सुभाऊ । जद्यपि अखिल लोक कर राऊ ॥

मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही । उर अपराध न एकउ धरिही ॥ ३ ॥

यद्यपि श्रीरघुवीर समस्त लोकोंके स्वामी हैं, पर उनका स्वभाव अत्यन्त ही कोमल है । मिलते ही प्रभु आपपर कृपा करेंगे और आपका एक भी अपराध वे हृदयमें नहीं रक्खेंगे ॥ ३ ॥

जनकसुता रघुनाथहि दीजे । पतना कहा मोर प्रभु कीजे ॥

जब तेहिं कहा देन वैदेही । चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही ॥ ४ ॥

जानकीजी श्रीरघुनाथजीको दे दीजिये । हे प्रभु ! इतना कहना मेरा कीजिये । जब उसने (दूतने) जानकीजीको देनेके लिये कहा, तब दुष्ट रावणने उसको लान मारी ॥ ४ ॥

नाह चरन सिरु चला सो तहाँ । कृपासिंधु रघुनाथक जहाँ ॥

करि प्रनामु निज कथा सुनाई । रामकृपा आपनि गति पाई ॥ ५ ॥

वह भी [विभीषणकी भाँति] चरणोंमें सिर नवाकर वही चला जहाँ कृपासागर श्रीरघुनाथजी थे । प्रणाम करके उसने अपनी कथा सुनायी और श्रीरामजीकी कृपासे अपनी गति (मुनिका स्वरूप) पायी ॥ ५ ॥

रिषि अगस्ति की साप भवानी । राखस भयउ रहा मुनि ग्यानी ॥

बंदि रामपद वारहिं वारा । मुनि निज आश्रम कहुं पगु धारा ॥ ६ ॥

[शिवजी कहते हैं —] हे भवानी ! वह शानी मुनि था, अगस्त्य ऋषिके शापसे राखस हो गया था । बार-बार श्रीरामजीके चरणोंकी वन्दना करके वह मुनि अपने आश्रमको चला गया ॥ ६ ॥

दो०—बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति ।

बोले रामु सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति ॥ ५७ ॥

इधर तीन दिन बीत गये, किन्तु जड़ समुद्र बिनय नहीं मानता । तब श्रीरामजी क्रोधसहित बोले—बिना भयके प्रीति नहीं होती ! ॥ ५७ ॥

चो०—लछिमन वान सरासन आनू । सोपौ बारिधि विसिख कसानू ॥

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपन सन सुंदर नीती ॥ १ ॥

हे लक्ष्मण ! धनुष-बाण लाओ, मैं अग्निबाणसे समुद्रको सोख डालूँ । मूर्खसे बिनय, कुटिलके साथ प्रीति, स्वाभाविक ही कंजुससे सुन्दर नीति (उदारताका उपदेश), ॥ १ ॥

ममता रत सन ग्यान कहानी । अति लोभी सन विरति बखानी ॥

क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा । ऊसर बीज बण फल जथा ॥ २ ॥

ममतामें फँसे हुए मनुष्यसे ज्ञानकी कथा, अत्यन्त लोभीसे वैराग्यका वर्णन, क्रोधीसे शम (शान्ति) की बात और कामीसे भगवान् की कथा, इनका फल वैसा ही होता है, जैसा ऊसरमें बीज बोनेका होता है (अर्थात् ऊसरमें बीज बोनेकी भाँति यह सब व्यर्थ जाता है) ॥ २ ॥

अस कहि रघुपति चाप चढ़ाया । यह मत लछिमन के मन भाषा ॥

संधानेउ प्रभु विसिख कराला । उठी उदधि उर अंतर ज्वाला ॥ ३ ॥

ऐसा कहकर भीरघुनाथजीने धनुष चढ़ाया । यह मत लक्ष्मणजीके मनको बहुत अच्छा लगा । प्रभुने भयानक अग्निबाण सन्धान किया, जिससे समुद्रके हृदयके अन्दर अग्निकी ज्वाला उठी ॥ ३ ॥

मकर उरग ह्य गन अकुलाने । जरत जंतु जलनिधि जब जाने ॥

कनकधार भरि मनिगन नाना । विप्ररूप आयउ तजि माना ॥ ४ ॥

मगर, साँप तथा मछलियोंके समूह व्याकुल हो गये । जब समुद्रने जीवोंको जलते जाना, तब सोनेके थालमें अनेक मणियों (रत्नों) को भरकर अभिमान छोड़कर वह ब्राह्मणके रूपमें आया ॥ ४ ॥

दो०—काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच ।

बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच ॥ ५८ ॥

[काकमुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़जी ! सुनिये, चाहे कोई करोड़ों उपाय करके सींचे, पर केला तो काटनेपर ही फलता है । नीच बिनयसे नहीं मानता, वह डाँटनेपर ही झुकता है (रास्तेपर आता है) ॥ ५८ ॥

चो०—सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे । छमहु नाथ सब अवगुन मेरे ॥

गगन समीर अनल जल धरनी । इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी ॥ १ ॥

समुद्रने भयभीत होकर प्रभुके चरण पकड़कर कहा—हे नाथ ! मेरे सब अवगुण (दोष) क्षमा कीजिये । हे नाथ ! आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन सबकी करनी स्वभावसे ही जड़ है ॥ १ ॥

तब प्रेरित मायाँ उपजाए । सृष्टि हेतु सब ग्रंथनिह गाए ॥

प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई । सो तेहि भाँति रहें सुख लहई ॥ २ ॥

आपकी प्रेरणासे मायाने इन्हें सृष्टिके लिये उत्पन्न किया है, सब ग्रन्थोंने यही गाया है। जिसके लिये स्वामीकी जैसी आशा है, वह उसी प्रकारसे रहनेमें सुख पाता है ॥ २ ॥

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही । मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही ॥

ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी । सकल ताड़ना के अधिकारी ॥ ३ ॥

प्रभुने अच्छा किया जो मुझे शिक्षा (दण्ड) दी। किन्तु मर्यादा (जीवोंका स्वभाव) भी आपकी ही बनायी हुई है। ढोल, गँवार, सूद्र, पशु और स्त्री, ये सब दण्डके अधिकारी हैं ॥ ३ ॥

प्रभु प्रताप मैं जाव सुखाई । उतरहि कटक न मोरि बड़ाई ॥

प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई । करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई ॥ ४ ॥

प्रभुके प्रतापसे मैं सुख जाऊँगा और सेना पार उतर जायगी, इसमे मेरी बड़ाई नहीं है (मेरी मर्यादा नहीं रहेगी)। तथापि प्रभुकी आज्ञा अपेल है (अर्थात् आपकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं हो सकता) ऐसा वेद गाते हैं। अब आपको जो अच्छा लगे, मैं तुरंत वही करूँ ॥ ४ ॥

दो०—सुनत विनीत वचन अति कह कृपाल सुसुकाइ ।

जेहि विधि उतरै कपिकटकु तात सो कहहु उपाइ ॥ ५९ ॥

समुद्रके अत्यन्त विनीत वचन सुनकर कृपालु भीरामजीने मुस्कराकर कहा—हे तात ! जिस प्रकार वानरोंकी सेना पार उतर जाय, वह उपाय बताओ ॥ ५९ ॥

चौ०—नाथ नील नल कपि द्वौ भाई । लरिकाईं रिषि आसिष पाई ॥

तिन्ह के परस किएँ गिरि भारे । तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ॥ १ ॥

[समुद्रने कहा—] हे नाथ ! नील और नल दो वानर भाई हैं। उन्होंने लङ्कपनम ऋषिसे आशीर्वाद पाया था। उनके स्पर्श कर लेनेसे ही भारी-भारी पहाड़ भी आपके प्रतापसे समुद्रपर तैर जायेंगे ॥ १ ॥

मैं पुनि उर घरि प्रभु प्रभुताई । करिहउँ बल अनुमान सहाई ॥

एहि विधि नाथ पयोधि बँधाइअ । जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ ॥ २ ॥

मैं भी प्रभुकी प्रभुताको हृदयमें धारणकर अपने बलके अनुसार (जहाँतक मुझसे बन पड़ेगा) सहायता करूँगा। हे नाथ ! इस प्रकार समुद्रको बँधाइये, जिससे तीनों लोकोंमें आपका सुन्दर यश गाया जाय ॥ २ ॥

एहिं सर मम उत्तर तट वासी । हतहु नाथ खल नर अघरासी ॥

सुनि कृपाल सागर मन पीरा । तुरतहिं हरी राम रनधीरा ॥ ३ ॥

इस बाणसे मेरे उत्तर तटपर रहनेवाले पापके राशि दुष्ट मनुष्योंका वध कीजिये। कृपालु और रणधीर भीरामजीने समुद्रके मनकी पीड़ा सुनकर उसे तुरंत ही हर लिया (अर्थात् बाणसे उन दुष्टोंका वध कर दिया) ॥ ३ ॥

देखि राम बल पौरुष भारी । हरि पयोनिधि भयउ सुखारी ॥

सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा । चरन बंदि पाथोधि सिधावा ॥ ४ ॥

भीरामजीका भारी बल और पौरुष देखकर समुद्र द्रुषित होकर सुखी हो गया। उसने उन दुष्टोंका सारा चरित्र प्रभुको कह सुनाया। फिर चरणोंकी वन्दना करके समुद्र चला गया ॥ ४ ॥

छं०—निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ ।

यह चरित कलिमलहर जयामति दास तुलसी गायऊ ॥

सुखभवन संसय समन दवन विषाद रघुपति गुन गना ।

तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना ॥

समुद्र अपने घर चला गया । भीरघुनाथजीको यह मत (उसकी सलाह) अच्छा लगा । यह चरित्र कलियुगके पापोंको हरनेवाला है, इसे तुलसीदासने अपनी बुद्धिके अनुसार गाया है । भीरघुनाथजीके गुणसमूह सुखके घाम, सन्देहका नाश करनेवाले और विषादका दमन करनेवाले हैं । अरे मूर्ख मन ! तू संसारका सब आशा-भरोसा त्यागकर निरन्तर इन्हें गा और सुन ।

दो०—सकल सुमंगल दायक रघुनाथक गुन गान ।

सादर सुनहिं ते तरहिं भवसिंधु बिना जलजान ॥ ६० ॥

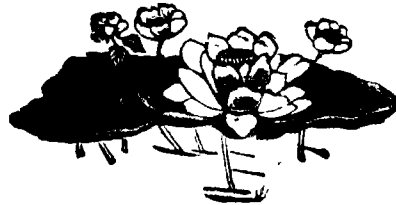
भीरघुनाथजीका गुणगान सम्पूर्ण सुन्दर मङ्गलोंका देनेवाला है । जो इसे आदरसहित सुनेंगे, वे बिना किसी जहाजके ही भवसागरको तर जायेंगे ॥ ६० ॥

मासपारायण चौबीसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुपविध्वंसने पञ्चमः सोपानः समाप्तः ।

कलियुगके समस्त पापोंका नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह पाँचवाँ सोपान समाप्त हुआ ॥

(सुन्दरकाण्ड समाप्त)



भाग्येशाय नमः

भाजानकीवलभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

षष्ठ सोपान

(लंकाकाण्ड)

श्लोक

रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम् ।
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं
वन्दे कन्दावदानं सरसिजनयनं देवमुखीशरूपम् ॥ १ ॥

कामदेवके शत्रु शिवजीके सेव्य, भव (जन्म-मृत्यु) के भयको हरनेवाले, कालरूपी मतवाले हाथीके लिये सिंहके समान, योगियोंके स्वामी (योगीश्वर), ज्ञानके द्वारा जानने योग्य, गुणोंकी निधि, अजेय, निर्गुण, निर्विकार, मायासे परे, देवताओंके स्वामी, दुष्टोंके वधमें तत्पर, ब्राह्मणवृन्दके एकमात्र देवता (रक्षक), जलवाले मेघके समान सुन्दर श्याम, कमलकेसे नेत्रवाले, पृथ्वीपति (राजा) के रूपमें परमदेव श्रीरामजीकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

शङ्खेन्द्राभमतीवसुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं
कालव्यालकरालभूषणधरं गङ्गाशशाङ्कप्रियम् ।
काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शङ्करम् ॥ २ ॥

शंख और चन्द्रमाकीसी कान्तिके अत्यन्त सुन्दर शरीरवाले, शार्दूल (व्याघ्र) चर्मके वस्त्रवाले, कालके समान भयानक सर्पोंका भूषण धारण करनेवाले, गङ्गा और चन्द्रमाके प्रेमी, काशीपति, कलियुगके पाप-समूहका नाश करनेवाले, कल्याणके कल्पवृक्ष, गुणनिधि और कामदेवको भस्म करनेवाले पार्वतोपति वन्दनीय श्रीशंकरजीकी मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

यो वदाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम् ।
खलानां दण्डकृद्योऽसौ शङ्करः शं तनोतु मे ॥ ३ ॥

जो शंभुजी सत्पुरुषोंको अत्यन्त दुर्लभ कैवल्यमुक्ति तक दे डालते हैं और जो दुष्टोंको दण्ड देनेवाले हैं, वे शंकर मेरे कल्याणका विस्तार करें ॥ ३ ॥

कल्याण

परात्पर ब्रह्म राम



राम ब्रह्म चिन्मय अबिनासी । सर्व रहित सब उर पुर बासी ॥

दो०—लव निमेष परमानु जुग वरष कल्प सर चंद ।

मजसि न मन तेहि राम कहँ कालु जासु कोदंड ॥

लव, निमेष, परमाणु, युग, वर्ष और कल्प जिनके प्रचण्ड बाण हैं, और काल जिनका धनुष है, हे मन ! तू उन श्रीरामजीको क्यों नहीं भजता !

सो०—सिंधु बचन सुनि राम सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ ।

अब बिलंबु केहिं काम करहु सेतु उतरै कटक ॥

समुद्रके बचन सुनकर प्रभु श्रीरामजीने मन्त्रियोंको बुलाकर ऐसा कहा—अब विलम्बका क्या प्रयोजन है ! सेतु तैयार करो, जिसमें सेना उतरे ॥

सुनहु भानु कुल केतु जामवंत कर जोरि कह ।

नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भवसागर तरहिं ॥

जाम्बवानने हाथ जोड़कर कहा—हे सूर्यकुलके ध्वजा श्रीरामजी ! सुनिये । हे नाथ ! सबसे बड़ा सेतु तो आपका नाम ही है, जिसपर चढ़कर मनुष्य भवसागरसे पार हो जाते हैं ॥

चो०—यह लघु जलधि तरत कति बारा । अस सुनि पुनि कह पवनकुमारा ॥

प्रभु प्रताप बड़वानल भारी । सोषेउ प्रथम पयोनिधि बारी ॥ १ ॥

फिर यह छोटा-सा समुद्र पार करनेमें कितनी देर लगेगी ! ऐसा सुनकर फिर पवनकुमार भीहनुमानजीने कहा—प्रभुका प्रताप भारी (महान्) बड़वानल (समुद्रकी आग) के समान है । इसने पहले समुद्रके जलको सोख लिया था ॥ १ ॥

तव रिपु नारि रुदम जल धारा । भरेउ बहोरि भयउ तेहिं खारा ॥

सुनि अति उकुति पवनसुत केरी । हरषे कपि रघुपति तन हेरी ॥ २ ॥

परन्तु आपके शत्रुओंकी म्त्रियोंके रोनेकी जलधारासे यह फिर भर गया और उसीसे खारा भी हो गया । हनुमानजीकी यह अत्युक्ति (अलंकारपूर्ण युक्ति) सुनकर बानर श्रीरघुनाथजीकी ओर देखकर हर्षित हो गये ॥ २ ॥

जामवंत बोले दोउ भाई । नल नीलहि सब कथा सुनाई ॥

राम प्रताप सुमिरि मन माहीं । करहु सेतु प्रयास कहु नाहीं ॥ ३ ॥

जाम्बवन्तने नल-नील दोनों भाइयोंको बुलाकर उन्हें सारी कथा कह सुनायी । और कहा—[मनमें] श्रीरामजीका प्रताप स्मरण करके सेतु तैयार करो, रामप्रतापसे कुछ भी परिश्रम नहीं होगा ॥ ३ ॥

बोलि लिए कपि निकर बहोरी । सकल सुनहु विनती कहु मोरी ॥

राम चरन पंकज उर धरहु । कौतुक एक भालु कपि करहु ॥ ४ ॥

फिर बानरोंके समूहको बुला लिया [और कहा—] आप सब मेरी कुछ विनती सुनिये । अपने हृदयमें श्रीरामजीके चरणकमलोंको धारण कर लीजिये और सब भालू और बानर एक खेल कीजिये ॥ ४ ॥

घावहु मर्कट विकट बरुथा । आनहु बिटप गिरिन्ह के जूया ॥

सुनि कपि भालु चले करि इहा । जय रघुबीर प्रताप समूहा ॥ ५ ॥

विकट बानरोंके समूह (आप) दौड़ जाइये और वृक्षों तथा पर्वतोंके समूहोंको उखाड़ लाइये । यह सुनकर बानर और भालू हूह (हुंकार) करके और श्रीरघुनाथजीके प्रतापसमूहकी जय पुकारते हुए चले ॥ ५ ॥

दो०—अति उत्तंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ ।

आनि देहिं नल नीलहि रचहिं ते सेतु बनाइ ॥ १ ॥

बहुत ऊँचे-ऊँचे पर्वतों और वृक्षोंको खेलकी तरह ही उखाड़कर उठा लेते हैं और ला-लाकर नल-नील को देते हैं । वे अच्छी तरह गढ़कर सुन्दर सेतु बनाते हैं ॥ १ ॥

चो०—सैल बिसाल आनि कपि देहीं । कंदुक इष नल नील ते लेहीं ॥

देखि सेतु अति सुंदर रचना । बिहसि कृपानिधि बोले बचना ॥ १ ॥

वानर बड़े-बड़े पहाड़ ला-लाकर देते हैं, और नल-नील उन्हें गंदकी तरह ले लेते हैं । सेतुकी अत्यन्त सुन्दर रचना देखकर कृपानिधु श्रीरामजी हँसकर बचन बोले—॥ १ ॥

परम रम्य उत्तम यह धरनी । महिमा अमित जाइ नहिं बरनी ॥

करिहुँ इहाँ संभु थापना । मोरे हृदय परम कल्पना ॥ २ ॥

यह (यहाँकी) पृथ्वी परम रमणीय और उत्तम है । इसकी असीम महिमा वर्णन नहीं की जा सकती । मैं यहाँ शिवजीकी स्थापना करूँगा । मेरे हृदयमें यह महान् संकल्प है ॥ २ ॥

सुनि कपीस बहु दूत पठाए । मुनिवर सकल बोलि लै आए ॥

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा । सिव समान प्रिय मोहि न दूजा ॥ ३ ॥

श्रीरामजीके बचन सुनकर वानरराज मुग्रीवने बहुत-से दूत भेजे, जो सब श्रेष्ठ मुनियोंको बुलकर ले आये । शिवलिंगकी स्थापना करके विधिपूर्वक उसका पूजन किया । [फिर भगवान् बोले—] शिवजीके समान मुझको दूसरा कोई प्रिय नहीं है ॥ ३ ॥

सिव द्रोही मम भगत कहावा । सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ॥

संकर विमुख भगति चह मोरी । सो नारकी मूढ़ मति थोरी ॥ ४ ॥

जो शिवसे द्रोह रखता है और मेरा भक्त कहलाता है, वह मनुष्य स्वप्नमें भी मुझे नहीं पाता । शङ्करजीसे विमुख होकर (विरोध करके) जो मेरी भक्ति चाहता है, वह नरकगामी, मूर्ख और अल्पबुद्धि है ॥ ४ ॥

दो०—संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास ।

ते नर करहिं कल्प भरि घोर नरक महुँ बास ॥ २ ॥

जिनको शङ्करजी प्रिय हैं परन्तु जो मेरे द्रोही हैं, एवं जो शिवजीके द्रोही हैं और मेरे दास [बनना चाहते] हैं । वे मनुष्य कल्पभर घोर नरकमें निवास करते हैं ॥ २ ॥

चो०—जे रामस्वर दरसन करिहहिं । ते तनु तजि मम लोक सिचरिहहिं ॥

जो गंगाजल आनि चढ़ाइहि । सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि ॥ १ ॥

जो मनुष्य मेरे स्थापित किये हुए इन रामेश्वरजीका दर्शन करेंगे, वे शरीर छोड़कर मेरे लोककी जायेंगे । और जो गङ्गाजल लाकर इनपर चढ़ावेगा, वह मनुष्य सायुज्य मुक्ति पावेगा (अर्थात् मेरे साथ एक हो जायगा) ॥ १ ॥

होइ अकाम जो छल तजि नेइहि । भगति मोरि तेहि संकर देइहि ॥

मम कृत सेतु जो दरसन करिही । सो बिनु श्रम भवसागर तरिही ॥ २ ॥

जो छल छोड़कर और निष्काम होकर रामेश्वरजीकी सेवा करेंगे, उन्हें शङ्करजी मेरी भक्ति देंगे । और जो मेरे बनाये सेतुका दर्शन करेगा, वह बिना ही परिश्रम भवसागरसे तर जायगा ॥ २ ॥

राम बचन सब के जियँ भाए । मुनिबर निज निज आश्रम आए ॥

गिरिजा रघुपति कै यह रीती । संतत करहिं प्रनत पर प्रीती ॥ ३ ॥

श्रीरामजीके बचन सबके मनको अच्छे लगे । तदनन्तर वे श्रेष्ठ मुनि अपने-अपने आश्रमोंको लौट आये ।
[शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती ! श्रीरघुनाथजीकी यह रीति है कि वे शरणागतपर सदा प्रीति करते हैं ॥ ३ ॥

बाँधा सेतु नील नल नागर । रामकृपाँ जसु भयउ उजागर ॥

बूझहिं आनहिं बोरहिं जेई । भए उपल बोहित सम तेई ॥ ४ ॥

चतुर नल और नीलने सेतु बाँधा । श्रीरामजीकी कृपासे उनका यह उज्ज्वल यश सर्वत्र फैल गया । जो पत्थर आप हूबते हैं और दूसरोंको हुवा देते हैं, वे ही जहाजके समान हो गये ॥ ४ ॥

महिमा यह न जलधि कह्यरनी । पाहन गुन न कपिन्ह कह्यरनी ॥ ५ ॥

यह न तो समुद्रकी महिमा वर्णन की गयी है, न पत्थरोंका गुण है और न वानरोंकी ही कोई करामत है ॥ ५ ॥

दो०—श्री रघुवीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषाण ।

ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन ॥ ३ ॥

श्रीरघुवीरजीके प्रतापसे पत्थर भी समुद्रपर तैर गये । ऐसे श्रीरामजीको छोड़कर जो किसी दूसरे स्वामीको जाकर भजते हैं वे मन्दबुद्धि हैं ॥ ३ ॥

चौ०—बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा । देखि कृपानिधि के मन भावा ॥

चली सेन कन्हु बरनि न जाई । गर्जहिं मर्कट भट समुदाई ॥ १ ॥

नल-नीलने सेतु बाँधकर उसे बहुत मजबूत बनाया ! देखनेपर वह कृपानिधि श्रीरामजीके मनको बहुत अच्छा लगा । सेना चली, जिसका कुल वर्णन नहीं हो सकता । थोड़ा वानरोंके समुदाय गरज रहे हैं ॥ १ ॥

सेतुबंध ढिग चढ़ि रघुराई । चितव कृपाल सिंधु बहुताई ॥

देखन कहूँ प्रभु करुना कंदा । प्रगट भए सब जलचर बृंदा ॥ २ ॥

कृपाल श्रीरघुनाथजी सेतुबन्धके तटपर चढ़कर समुद्रका विस्तार देखने लगे । करुणाकन्द प्रभुके दर्शनके लिये सब जलचरोंके समूह प्रकट हो गये (जलके ऊपर निकल आये) ॥ २ ॥

मकर नक नाना श्लष व्याला । सत जोजन तन परम विसाला ॥

अइसेउ एक तिन्हहि जे खाहीं । एकन्ह के डर तेपि डेराहीं ॥ ३ ॥

बहुत तरहके मगर, नाक, मच्छ और सर्प थे, जिनके सौ-सौ योजनके बहुत बड़े विशाल शरीर थे । कुछ ऐसे भी जन्तु थे जो उनको भी खा जायँ । किसी-किसीके डरसे तो वे भी डर रहे थे ॥ ३ ॥

प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे । मन हरपित सब भए सुखारे ॥

तिन्ह की ओट न देखिअ चारी । मगन भए हरि रूप निहारी ॥ ४ ॥

वे सब [वैर-विरोध भूलकर] प्रभुके दर्शन कर रहे हैं, हटानेसे भी नहीं हटते । सबके मन हरित हैं । सब मुन्ही हो गये । उनकी आँइके कारण जल नहीं दिखायी पड़ता । वे सब भगवान्का रूप देखकर मग्न हो गये ॥ ४ ॥

चला कटकु प्रभु आयसु पाई । को कहि सक कपि दल विपुलाई ॥ ५ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी आशा पाकर सेना चली । वानर-सेनाकी विपुलता (अत्यधिक संख्या) को कौन कह सकता है ? ॥ ५ ॥

दो०—सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं ।

अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं ॥ ४ ॥

सेतुबन्धपर बहुत ही भीड़ हो गयी, इससे कुछ वानर आकाशमार्गसे उड़ने लगे । और दूसरे कितने ही जलचरोंपर चढ़-चढ़कर पार जा रहे हैं ॥ ४ ॥

चौ०—अस कौतुक बिलोकि द्वौ भाई । बिहंसि चले कृपाल रघुराई ॥

सेन सहित उतरे रघुवीरा । कहि न जाइ कपि जूथप भीरा ॥ १ ॥

कृपाल रघुनाथजी दोनों भाई ऐसा कौतुक देखकर हँसते हुए चले । श्रीरघुवीरजी सेनासहित समुद्रके पार उतरे । वानरों और उनके सेनापतियोंकी भीड़ कहीं नहीं जा सकती ॥ १ ॥

सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा । सकल कपिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा ॥

खाहु जाइ फल मूल सुहाए । सुनत भालु कपि जहँ तहँ घाए ॥ २ ॥

प्रभुने समुद्रके पार डेरा डाला और सब वानरोंको आशा दी कि तुम जाकर सुन्दर फल-मूल खाओ । यह सुनते ही रीछ-वानर जहाँ-तहाँ दौड़ पड़े ॥ २ ॥

सब तरु फरे राम हित लागी । रितु अरु कुरितु कालगति त्यागी ॥

ब्राहिं मधुर फल बिटप हलावहिं । लंका सन्मुख सिखर चलावहिं ॥ ३ ॥

श्रीरामजीके हित (सेवा) के लिये सब वृक्ष ऋतु-कुऋतु—समयकी गतिको छोड़कर फल उटे । वानर-भालू मीठे-मीठे फल खा रहे हैं, वृक्षोंको हिला रहे हैं, और पर्वतोंके शिखरोंको लङ्काकी ओर फेंक रहे हैं ॥ ३ ॥

जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं । घेरि सकल बहु नाच नचावहिं ॥

दसनन्हि काटि नासिका काना । कहि प्रभु सुजसु देहिं तब जाना ॥ ४ ॥

घूमते-फिरते जहाँ कहीं किसी राक्षसको पा जाते हैं तो सब उसे घेरकर गूब नाच नचाते हैं । और दाँतोंसे उसके नाक-कान काटकर, प्रभुका सुयश कहकर [अथवा कहलकर] तब उसे जाने देते हैं ॥ ४ ॥

जिन्ह कर नासा कान निपाता । तिन्ह रावनहि कही सब बाता ॥

सुनत श्रवन बारिधि बंधाना । दसमुख बोलि उठा अकुलाना ॥ ५ ॥

जिन राक्षसोंके नाक और कान काट डाले गये, उन्होंने रावणसे सब बातें कहीं । समुद्र [पर सेन] का बाँधा जाना कानोंसे सुनकर रावण धबराकर दसों मुखोंसे बोल उठा—॥ ५ ॥

दो०—बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु वारीस ।

सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस ॥ ५ ॥

बननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिंधु, वारीस, तोयनिधि, कंपति, उदधि, पयोधि, नदीशको क्या सबमुच ही बाँध लिया ? ॥ ५ ॥

चौ०—निज बिकलता बिचारि बहोरी । बिहंसि गयउ गृह करि भय भोरी ॥

मंदोदरी सुन्यौ प्रभु आयो । कौतुकहाँ पायोधि बँधायो ॥ १ ॥

फिर अपनी व्याकुलताको समझकर, ऊपरसे हँसता हुआ, भयको भुलाकर, रावण महलको गया । जब मन्दोदरीने सुना कि प्रभु श्रीरामजी आ गये हैं और उन्होंने खेलमें ही समुद्रको बँधवा लिया है, ॥ १ ॥

कर गहि पतिहि भवन निज आनी । बोली परम मनोहर बानी ॥

चरन नाइ सिर अंबलु रोपा । सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा ॥ २ ॥

तब वह हाथ पकड़कर, पतिको अपने महलमें लेकर परम मनोहर वाणी बोली । चरणोंमें सिर नवाकर उसने अपना आँचल पसारा और कहा—हे प्रियतम ! क्रोध त्यागकर मेरा वचन सुनिये ॥ २ ॥

नाथ बयर कीजे ताही सों । बुधि बल सकिअ जीति जाही सों ॥

तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा । खलु खद्योत दिनकरहि जैसा ॥ ३ ॥

हे नाथ ! वैर उसीके साथ करना चाहिये जिससे बुद्धि और बलके द्वारा जीत सकें । आपमें और श्रीरघुनाथजीमें निश्चय ही कैसा अन्तर है, जैसा जुगनू और सूर्यमें ! ॥ ३ ॥

अतिबल मधु कैटभ जेहिं मारे । महाबीर दितिसुत संधारे ॥

जेहिं बलि बाँधि सहस्रभुज मारा । सोइ अवतरेउ हरन महि भारा ॥ ४ ॥

जिन्होंने विष्णुरूपसे अत्यन्त बलवान् मधु और कैटभ दैत्य मारे, और वाराह और नृसिंहरूपसे महान् शूरावीर दितिके पुत्रों (हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु) का संहार किया; जिन्होंने वामनरूपसे बलिको बाँधा और परशुरामरूपसे सहस्रबाहुको मारा, वे ही भगवान् पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये रामरूपमें अवतीर्ण (प्रकट) हुए हैं ॥ ४ ॥

तासु विरोध न कीजिय नाथा । काल करम जिव जाकें हाथा ॥ ५ ॥

हे नाथ ! उनका विरोध न कीजिये जिनके हाथमें काल, कर्म और जीव सभी हैं ॥ ५ ॥

दो०—रामहि सांपि जानकी नाइ कमल पद माथ ।

सुत कहूँ राज समर्पि बन जाइ मजिअ रघुनाथ ॥ ६ ॥

श्रीरामजीके चरणकमलोंमें सिर नवाकर (उनको शरणमें जाकर) उनको जानकीजी सौंप दीजिये और आप पुत्रको राज्य देकर वनमें जाकर श्रीरघुनाथजीका भजन कीजिये ॥ ६ ॥

चौ०—नाथ दीनदयाल रघुराई । बाघउ सनमुख गएँ न खाई ॥

चाहिअ करन सो सब करि बीते । तुम्ह सुर असुर चराचर जीते ॥ १ ॥

हे नाथ ! श्रीरघुनाथजी तो दीनदयालु हैं । सम्मुख (शरण) जानेपर तो बाघ भी नहीं खाता । आपको जो कुछ करना चाहिये था, आप वह सब कर चुके । आपने देवता, राक्षस तथा चर-अचर सभीको जीत लिया ॥ १ ॥

संत कहहिं असि नीति दसानन । चौथेंपन जाइहि नृप कानन ॥

तासु भजनु कीजिय तहँ भर्ता । जो कर्ता पालक संहर्ता ॥ २ ॥

हे दशमुख ! संतजन ऐसी नीति कहते हैं कि चौथेपनमें (बुढ़ापेमें) राजाको वनमें चला जाना चाहिये । हे भर्ता ! वहाँ (वनमें) आप उनका भजन कीजिये जो सृष्टिके रचनेवाले, पालनेवाले और संहार करनेवाले हैं ॥ २ ॥

सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी । भजहु नाथ ममता सब त्यागी ॥

मुनिबर जतनु करहिं जेहिं लागी । भूप राजु तजि होहिं बिरागी ॥ ३ ॥

हे नाथ ! आप विषयोंकी सारी ममता छोड़कर उन्हीं शरणागतपर प्रेम करनेवाले भगवान्का भजन कीजिये । जिनके लिये श्रेष्ठ मुनि साधन करते हैं, और राजा राज्य छोड़कर बैरागी हो जाते हैं—॥ ३ ॥

सोइ कोसलाधीश रघुराया । आयउ करन तोहि पर दाया ॥

जौं पिय मानहु मोर सिखावन । सुजसु होइ तिहुँ पुर अति पावन ॥ ४ ॥

वही कोसलाधीश श्रीरघुनाथजी आपपर दया करने आये हैं । हे प्रियतम ! यदि आप मेरी सीख मान लेंगे, तो आपका अत्यन्त पवित्र और सुन्दर यश तीनों लोकोंमें फैल जायगा ॥ ४ ॥

दो०—अस कहि नयन नीर भरि गहि पद कंपित गात ।

नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात ॥ ७ ॥

ऐसा कहकर, नेत्रोंमें [कण्ठका] जल भरकर और पतिके चरण पकड़कर, काँपते हुए शरीरसे मन्दोदरीने कहा—हे नाथ ! श्रीरघुनाथजीका भजन कीजिये, जिससे मेरा सुहाग अचल हो जाय ॥ ७ ॥

चौ०—तब रावन मयसुता उठाई । कहै लाग खल निज प्रभुताई ॥

सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना । जग जोधा को मोहि समाना ॥ १ ॥

तब रावणने मन्दोदरीको उठाया और वह दुष्ट उससे अपनी प्रभुता कहने लगा—हे प्रिये ! सुन, तू व्यर्थ ही भय मान रही है । बता तो जगत्में मेरे समान याँदा है कौन ? ॥ १ ॥

वहन कुबेर पवन जम काला । भुजवल जितेउँ सकल दिगपाला ॥

देव दनुज नर सब वस मोरें । कवन हेतु उपजा भय तोरें ॥ २ ॥

वहण, कुबेर, पवन, यमराज, आदि सभी दिक्पालोंको तथा काँक्री भी मैंने अपनी भुजाओंके बलसे जीत लिया । देवता, दानव और मनुष्य सभी मेरे वशमें हैं । फिर तुझको यह भय किस कारण उत्पन्न हो गया ? ॥ २ ॥

नाना विधि तेहिं कहेसि वृद्धाई । सभाँ वहोरि बैठ सो जाई ॥

मंदोदरीं हृदयँ अस जाना । कालवस्य उपजा अभिमाना ॥ ३ ॥

उसने बहुत तरहसे उसे समझाकर कहा और फिर वह सभामें जाकर बैठ गया । मन्दोदरीने हृदयमें ऐसा जान लिया कि कालके वश होनेसे पतिको अभिमान उत्पन्न हो गया है ॥ ३ ॥

सभाँ आइ मंत्रिन्ह तेहिं वृद्धा । करव कवन विधि रिपु सैं जूझा ॥

कहहिं सचिव सुनु निसिचरनाहा । बार बार प्रभु पूछहु काहा ॥ ४ ॥

सभामें आकर उसने मन्त्रियोंसे पूछा कि शत्रुके साथ किस प्रकारसे युद्ध करना होगा ? मन्त्री कहने लगे—हे राक्षसोंके नाथ ! हे प्रभु ! सुनिये । आप बार-बार क्या पूछते हैं ? ॥ ४ ॥

कहहु कवन भय करिअ बिचारा । नर कपि भालु अहार हमारा ॥ ५ ॥

कहिये तो, कौन-से बड़ा भयका विचार किया जाय ? (भयकी बात ही क्या है ?) मनुष्य और वानर-भालू तो हमारे आहार हैं ॥ ५ ॥

दो०—सब के बचन श्रवन सुनि कह प्रहस्त कर जोरि ।

नीति बिरोध न करिअ प्रभु मंत्रिन्ह मति अति थोरि ॥ ८ ॥

कानोंमें सबके वचन सुनकर रावणका पुत्र प्रहस्त हाथ जोड़कर कहने लगा—हे प्रभु ! नीतिके प्रतिकूल कुछ भी नहीं करना चाहिये मन्त्रियोंमें बहुत ही थोड़ी बुद्धि है ॥ ८ ॥

चौ०—कहहिं सचिव सठ ठकुरसोहाती । नाथ न पूर आव यहि भाँती ॥

बारिधि नाधि एक कपि आवा । तासु चरित मन महुँ सबु गावा ॥ १ ॥

ये सभी मूर्ख (खुशामदी) मन्त्री ठकुरसोहाती (मुँहदेखी) कह रहे हैं । हे नाथ ! इस प्रकारकी बातोंसे पूरा नहीं पड़ेगा । एक ही बंदर समुद्र लौंघकर आया था । उसका चरित्र सब लोग अब भी मन-ही-मन गाया करते हैं (स्मरण किया करते हैं) ॥ १ ॥

बुधा न रही तुम्हहि तब काहु । जारत नगर कस न धरि बाहु ॥

सुनत नीक भागें दुख पावा । सचिवन अस मत प्रभुहि सुनावा ॥ २ ॥

उस समय तुम लोगोंमेंसे किसीको भूल न थी ! [बंदर तो तुम्हारा आहार ही है, फिर] नगर जलते समय उसे पकड़कर क्यों नहीं खा लिया ! इन मन्त्रियोंने स्वामी (आप) को ऐसी सम्मति सुनायी है जो सुननेमें अच्छी है पर जिससे आगे चलकर दुःख पाना होगा ॥ २ ॥

जेहि बारीस बँधायउ हेलौ । उतरेउ सेन समेत सुबेलौ ॥

सो भनु मनुज आव हम भाई । बचन कहहिं सब गाल फुलाई ॥ ३ ॥

जिसने खेल-ही-खेलमें समुद्र बँधा लिया और जो सेनासहित सुबेल पर्वतपर आ उतरा ! हे भाई ! उसे कहते हो, मनुष्य है, हम खा लेंगे ! सब गाल फुल-फुलकर (पागलोंकी तरह) वचन कह रहे हैं ॥ ३ ॥

तात बचन मम सुनु अति आदर । जनि मन गुनहु मोहि करि कादर ॥

प्रिय बानी जे सुनिहिं जे कहहीं । ऐसे नर निकाय जग अहहीं ॥ ४ ॥

हे तात ! मेरे वचनोंको बहुत आदरसे (बड़े गौरसे) सुनिये । मुझे मनमें कायर न समझ लीजियेगा । जगत्में ऐसे मनुष्य बहुत अधिक हैं, जो प्यारी (मुँहपर मीठी लगानेवाली) बात ही सुनते और कहते हैं ॥ ४ ॥

बचन परम हित सुनत कठोरे । सुनिहिं जे कहहिं ते नर प्रभु धोरे ॥

प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती । सीता देख करहु पुनि प्रीती ॥ ५ ॥

हे प्रभो ! सुननेमें कठोर परन्तु परिणाममें परम हितकारी वचन जो सुनते और कहते हैं, वे मनुष्य बहुत ही थोड़े हैं । नीति सुनिये, पहले दूत भेजिये, और फिर सीताको देकर श्रीरामजीसे प्रीति (मेल) कर लीजिये ॥ ५ ॥

दो०—नारि पाइ फिरि जाहिं जौ तौ न बड़ाइअ रारि ।

नाहिं त सन्मुख समर महि तात करिअ हठि मारि ॥ ९ ॥

यदि वे स्त्री पाकर लौट जायँ, तब व्यर्थ झगड़ा न बढ़ाइये । नहीं तो (यदि न फिरें तो) हे तात ! सम्मुख युद्धभूमिमें उनसे हठपूर्वक (डटकर) मार-काट कीजिये ॥ ९ ॥

चौ०—यह मत जौ मानहु प्रभु मोरा । उभय प्रकार सुजसु जग तोरा ॥

सुत सन कह दसकंठ रिसाई । असि मति सठ केहिं तोहि सिखाई ॥ १ ॥

हे प्रभो ! यदि आप मेरी यह सम्मति मानेंगे, तो जगत्में दोनों ही प्रकारसे आपका सुयश होगा । रावणने गुस्तेमें भरकर पुत्रसे कहा—अरे मूर्ख ! तुझे ऐसी बुद्धि किसने सिखायी ! ॥ १ ॥

अबहीं ते उर संसय होई । बेनुमूल सुत भयहु घमोई ॥

सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा । चला भवन कहि बचन कठोरा ॥ २ ॥

अभीसे हृदयमें सन्देह (भय) हो रहा है ! हे पुत्र ! तू तो बाँसकी जड़में घमोई हुआ (तू मेरे वंशके अनुकूल या अनुरूप नहीं हुआ) ! पिताकी अत्यन्त घोर और कठोर वाणी सुनकर प्रहस्त ये कड़े वचन कहकर घरको चला गया ॥ २ ॥

हित मत तोहि न लागत कैसें । काल यिबस कहूँ भेषज जैसे ॥
संध्या समय जानि दससीसा । भवन चलेउ निरखत भुज बीसा ॥ ३ ॥

हितकी सलाह आपको कैसे नहीं लगती (आपपर कैसे असर नहीं करती), जैसे मृत्युके वश हुए रोगीको दवा नहीं लगती । सन्ध्याका समय जानकर रावण अपनी बीसों भुजाओंको देखता हुआ महलको चला ॥ ३ ॥

लंका सिखर उपर आगारा । अति विचित्र तहँ होइ अखारा ॥
बैठ जाइ तेहिं मंदिर रावन । लागे किंनर गुन गन गावन ॥ ४ ॥

लंकाकी चोटीपर एक अत्यन्त विचित्र महल था । वहाँ नाच-गानका अखाड़ा जमता था । रावण उस महलमें जाकर बैठ गया । किन्नर उसके गुणसमूहोंको गाने लगे ॥ ४ ॥

बाजहिं ताल पखाउज वीना । नृत्य करहिं अपल्लरा प्रवीणा ॥ ५ ॥
ताल (करताल), पखावज (मृदंग) और वीणा बज रहे हैं । नृत्यमें प्रवीण अप्सराएँ नाच रही हैं ॥ ५ ॥

दो०—सुनासीर सत सरिस सो संतत करइ बिलास ।

परम प्रबल रिपु सीस पर तद्यपि सोच न त्रास ॥ १० ॥

वह निरन्तर सैकड़ों इन्द्रोंके समान भोग-विलास करता रहता है । यद्यपि [श्रीरामजीके समान] अत्यन्त प्रबल शत्रु सिरपर है, तथापि उसको न तो चिन्ता है और न डर ही है ॥ १० ॥

चौ०—इहाँ सुबेल सैल रघुवीरा । उतरे सेन सहित अति भीरा ॥
सिखर एक उतंग अति देखी । परम रम्य सम सुभ्र बिसेषी ॥ १ ॥

यहाँ भीरुवीर सुबेल पर्वतपर सेनाकी बड़ी भीड़ (बड़े समूह) के साथ उतरे । पर्वतका एक बहुत ऊँचा, परम रमणीय, समतल और विशेषरूपसे उज्ज्वल शिखर देखकर—॥ १ ॥

तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए । लछिमन रचि निज हाथ डसाए ॥
तापर रुचिर मृदुल मृगछाला । तेहिं आसन आसीन कृपाला ॥ २ ॥

वहाँ लक्ष्मणजीने वृक्षोंके कोमल पत्ते और सुन्दर फूल अपने हाथोंसे सजाकर बिछा दिये । उसपर सुन्दर और कोमल मृगछाल बिछा दी । उसी आसनपर कृपालु श्रीरामजी विराजमान थे ॥ २ ॥

प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा । वाम दहिन दिसि चाप निपंगा ॥
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना । कह लंकेस मंत्र लगि काना ॥ ३ ॥

प्रभु श्रीरामजी वानरराज सुग्रीवकी गोदमें अपना सिर रखे हैं । उनके बायीं ओर धनुष तथा दाहिनी ओर तरकस है । वे अपने दोनों कर-कमलोंसे बाण सुधार रहे हैं । विभीषणजी कानोंसे लगाकर सलाह कर रहे हैं ॥ ३ ॥

बकुभागी अंगद हनुमाना । चरन कमल चापत विधि नाना ॥
प्रभु पाछें लछिमन बीरासन । कटि निषंग कर बान सरासन ॥ ४ ॥

परम भाग्यशाली अंगद और हनुमान् अनेकों प्रकारसे प्रभुके चरणकमलोंको दबा रहे हैं । लक्ष्मणजी कमरमें तरकस कसे और हाथोंमें धनुष-बाण लिये बीरासनसे प्रभुके पीछे सुशोभित हैं ॥ ४ ॥

दो०—एहि विधि कृपा रूप गुन धाम रामु आसीन ।

धन्य ते नर एहिं ध्यान जे रहत सदा लयलीन ॥ ११ (क) ॥

इस प्रकार कृपा, रूप (सौन्दर्य) और गुणोंके धाम श्रीरामजी विराजमान हैं। वे मनुष्य धन्य हैं जो सदा इस ध्यानमें लौ लगाये रहते हैं ॥ ११ (क) ॥

पूरब दिसा विलोकि प्रभु देखा उदित मयंक ।

कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक ॥ ११ (ख) ॥

पूर्व दिशाकी ओर देखकर प्रभु श्रीरामजीने चन्द्रमाको उदय हुआ देखा। तब वे सबसे कहने लगे—चन्द्रमाको तो देखो। कैसा सिंहके समान निबर है ! ॥ ११ (ख) ॥

चौ०—पूरब दिसि गिरिगुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी ॥

मत्त नाग तम कुंभ बिहारी। ससि केसरी गगन बन चारी ॥ १ ॥

पूर्व दिशारूपी पर्वतकी गुफामें रहनेवाला, अत्यन्त प्रताप, तेज और बलकी राशि यह चन्द्रमारूपी सिंह अन्धकाररूपी मतवाले हाथीके मस्तकको विदीर्ण करके आकाशरूपी वनमें निर्भय विचर रहा है ॥ १ ॥

बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुंदरी केर सिंगारा ॥

कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई ॥ २ ॥

आकाशमें बिखरे हुए तारे भोतियोंके समान हैं, जो रात्रिरूपी सुन्दर स्त्रीके शृङ्गार हैं। प्रभुने कहा—भाइयो ! चन्द्रमामें जो कालापन है वह क्या है ? अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार कहो ॥ २ ॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई ॥

मारेउ राहु ससिहि कह कोई। उर महुँ परी स्यामता सोई ॥ ३ ॥

सुग्रीवने कहा—हे रघुनाथजी ! सुनिये। चन्द्रमामें पृथ्वीकी छाया प्रकट हो रही है (दिखायी दे रही है)। किसीने कहा—चन्द्रमाको राहुने मारा था। वही चोटका काला दाग हृदयपर पड़ा हुआ है ॥ ३ ॥

कोउ कह जब विधि रति मुख कीन्हा। सार भाग ससि कर हरि लीन्हा ॥

छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं। तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं ॥ ४ ॥

कोई कहता है—जब ब्रह्माने कामदेवकी स्त्री रतिका मुख बनाया, तब उसने चन्द्रमाका सार भाग निकाल लिया [जिससे रतिका मुख तो परम सुन्दर बन गया परन्तु चन्द्रमाके हृदयमें छेद हो गया] वही छेद चन्द्रमाके हृदयमें वर्तमान है, जिसकी राहसे आकाशकी काली छाया उसमें दिखायी पड़ती है ॥ ४ ॥

प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा ॥

विष संजुत कर निकर पसारी। जारत विरहवंत नर नारी ॥ ५ ॥

प्रभु श्रीरामजीने कहा—विष चन्द्रमाका बहुत प्यारा भाई है। इसीसे उसने विषको अपने हृदयमें स्थान दे रक्खा है। विषयुक्त बहुत-सी किरणोंको फैलाकर वह विरहपीड़ित नर-नारियोंको जलाता रहता है ॥ ५ ॥

दो०—कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास ।

तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास ॥ १२ (क) ॥

हनुमान्जीने कहा—हे प्रभो ! सुनिये, चन्द्रमा आपका प्रिय दास है । आपकी सुन्दर श्याम मूर्ति चन्द्रमाके हृदयमें बसती है । वही श्यामताकी झलक चन्द्रमामें है ॥ १२ (क) ॥

नवाह्नपारायण सातवाँ विश्राम

पवनतनय के वचन सुनि बिहँसे राघु सुजान ।

दक्षिण दिसि अवलोकि प्रभु बोले कृपानिधान ॥ १२ (ख) ॥

पवनपुत्र हनुमान्जीके वचन सुनकर सुजान श्रीरामजी हँसे । फिर दक्षिणकी ओर देखकर कृपानिधान प्रभु बोले—॥ १२ (ख) ॥

चौ०—देखु बिभीषण दक्षिण आसा । घन घमंड दामिनी बिलासा ॥

मधुर मधुर गरजइ घन घोरा । होइ वृष्टि जनि उपल कठोरा ॥ १ ॥

हे बिभीषण ! दक्षिण दिशाकी ओर देखो, बादल कैसा घुमड़ रहा है, और बिजली चमक रही है ! भयानक बादल मीठे-मीठे (हल्के-हल्के) स्वरसे गरज रहा है । कहीं वर्षा होकर कठोर ओले न गिरें ! ॥ १ ॥

कहत बिभीषण सुनहु कृपाला । होइ न तड़ित न बारिद माला ॥

लंका सिखर उपर आगारा । तहँ दसकंधर देख अखारा ॥ २ ॥

बिभीषण बोले—हे कृपाल ! सुनिये । यह न तो बिजली है, न बादलोंकी घटा । लंकाकी चोटीपर एक महल है । दशग्रीव रावण वहाँ नाच-गानका अखाड़ा देख रहा है ॥ २ ॥

छत्र मेघडंबर सिर घारी । सोइ जनु जलद घटा अति कारी ॥

मंदोदरी श्रवन ताटंका । सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका ॥ ३ ॥

रावणने सिरपर मेघडंबर (बादलोंके डंबर-जैसा विशाल और काला) छत्र धारण कर रक्खा है । वही मानो बादलोंकी अत्यन्त काली घटा है । मन्दोदरीके कानोंमें जो कर्णफूल हिल रहे हैं, हे प्रभो ! वही मानो बिजली चमक रही है ॥ ३ ॥

बाजहिं ताल मृदंग बनूपा । सोइ रघु मधुर सुनहु सुरभूपा ॥

प्रभु मुसुकान समुद्रि अभिमाना । चाप चढ़ाइ बान संधाना ॥ ४ ॥

हे देवताओंके सम्राट् ! सुनिये, अनुपम ताल और मृदंग बज रहे हैं । वही मधुर गर्जन ध्वनि है । रावणका अभिमान समझकर प्रभु मुस्कुराये । उन्होंने धनुष चढ़ाकर उसपर बाणका सन्धान किया, ॥ ४ ॥

दो०—छत्र मुकुट ताटंक तब हते एकहीं बान ।

सब के देखत महिं परे मरघु न कोऊ जान ॥ १३ (क) ॥

और एक ही बाणसे रावणके छत्र-मुकुट और मन्दोदरीके कर्णफूल काट गिराये । सबके देखते-देखते वे जमीनपर आ पड़े, पर इसका भेद (कारण) किसीने नहीं जाना ॥ १३ (क) ॥

अस कौतुक करि राम सर प्रविसेउ आइ निषंग ।

रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग ॥ १३ (ख) ॥

ऐसा चमत्कार करके श्रीरामजीका बाण वापस आकर फिर तरकसमें प्रविष्ट हो गया । यह महान् रस-भंग (रंगमें भंग) देखकर रावणकी सारी सभा भयभीत हो गयी ॥ १३ (ख) ॥

चौ०—कंप न भूमि न मरुत विलेखा । अस्त्र सस्त्र कलु नयन न देखा ॥
सोवहिं सब निज हृदय मझारी । असगुन भयउ भयंकर भारी ॥ १ ॥
न भूकम्प हुआ, न बहुत जोरकी हवा (आँधी) चली, न कोई अस्त्र-शस्त्र ही नेत्रोंसे देखे
[फिर ये छत्र, मुकुट और कर्णफूल कैसे कटकर गिर पड़े ?] सभी अपने-अपने हृदयमें सोच रहे हैं कि यह
बड़ा भयङ्कर अपशकुन हुआ ! ॥ १ ॥

दसमुक्क देखि सभा भय पाई । बिहसि बचन कह जुगुति बनाई ॥
सिरउ गिरे संतत सुभ जाही । मुकुट परे कस असगुन ताही ॥ २ ॥
सभाको भयभीत देखकर रावणने हँसकर मुक्ति रचकर ये वचन कहे—सिरोंका गिरना भी जिसके लिये
निरन्तर शुभ होता रहा है, उसके लिये मुकुटके गिरनेमें अपशकुन कैसा ? ॥ २ ॥
सयन करहु निज निज गृह जाई । गवने भवन सकल सिर नाई ॥
मन्दोदरी सोच उर बसेऊ । जब ते श्रवनपूर महि खसेऊ ॥ ३ ॥
अपने-अपने घर जाकर सो रहो [डरनेकी कोई बात नहीं है] । तब सब लोग सिर नवाकर घर गये ।
जबसे कर्णफूल पृथ्वीपर गिरा, तबसे मन्दोदरीके हृदयमें सोच बस गया ॥ ३ ॥

सजल नयन कह जुग कर जोरी । सुनहु प्राणपति बिनती मोरी ॥
कंत राम विरोध परिहरहु । जानि मनुज अनि हठ मन धरहु ॥ ४ ॥
नेत्रोंमें जल भरकर, दोनों हाथ जोड़कर वह रावणसे कहने लगी—हे प्राणनाथ ! मेरी बिनती सुनिये ।
हे कान्त ! श्रीरामसे विरोध छोड़ दीजिये । उन्हें मनुष्य जानकर मनमें हठ न पकड़े रहिये ॥ ४ ॥

दो०—विस्वरूप रघुवंसमनि करहु बचन बिस्वासु ।

लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु ॥ १४ ॥

मेरे इन वचनोंपर विश्वास कीजिये कि वे रघुकुलके शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी विश्वरूप हैं । (यह सारा
विश्व उन्हीका रूप है) वेद जिनके अंग-अंगमें लोकोंकी कल्पना करते हैं— ॥ १४ ॥

चौ०—पद पाताल सीस अज घामा । अपर लोक अंग अंग विश्रामा ॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घनमाला ॥ १ ॥
पाताल जिन विश्वरूप भगवान्का चरण है, ब्रह्मलोक सिर है, अन्य (बीचके सब) लोकोंका विश्राम (स्थिति)
जिनके अन्य भिन्न-भिन्न अंगोंपर है । भयङ्कर काल जिनका भृकुटिसंचालन है । सूर्य नेत्र है, मेघमाला
बाल है ॥ १ ॥

जासु घान अस्विनीकुमारा । निसि अरु दिवस निमेष अपारा ॥
श्रवण दिसा दस बेद बखानी । मावत खास निगम निज बानी ॥ २ ॥
अश्विनीकुमार जिनकी नासिका है, रात और दिन जिनके अपार निमेष (पलक मारना और खोलना)
हैं । दसों दिशाएँ कान हैं । वेद ऐसा कहते हैं । वायु श्वास है और वेद जिनकी अपनी वाणी है ॥ २ ॥
अधर लोभ जम दसन कराला । माया हास बाहु दिगपाला ॥
आनन अनल अंबुपति जीहा । उतपति पालन प्रलय समीहा ॥ ३ ॥
लोभ जिनका अधर (होठ) है, यमराज भयानक दाँत है, माया हँसी है, दिक्पाल सुजाएँ हैं, अग्नि
मुख है, वर्षण जीभ है, उत्पत्ति-पालन और प्रलय जिनकी चेष्टा (क्रिया) है ॥ ३ ॥

रोमराजि अष्टादस भारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ॥
उदर उद्धि अधगो जातना । जगमय प्रभु का बहु कल्पना ॥ ४ ॥

अठारह प्रकारको असंख्य वनस्पतियाँ जिनकी रोमावली हैं, पर्वत अस्थियाँ हैं, नदियाँ नसोंका जाल हैं, समुद्र पेट है, और नरक जिनकी नीचेकी इन्द्रियाँ हैं । इस प्रकार प्रभु विश्वमय हैं, अधिक कल्पना (ऊहापोह) क्या की जाय ? ॥ ४ ॥

दो०—अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान ।

मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान् ॥ १५ (क) ॥

शिव जिनका अहंकार हैं, ब्रह्मा बुद्धि हैं, चन्द्रमा मन है और महान् (विष्णु) ही चित्त हैं । उन्हीं चराचररूप भगवान् श्रीरामजीने मनुष्यरूपमें निवास किया है ॥ १५ (क) ॥

अम बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु मन बयरु बिहाइ ।

प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ ॥ १५ (ख) ॥

हे प्राणपति ! सुनिये, ऐसा विचारकर प्रभुसे वैर छोड़कर श्रीरघुबीरके चरणोंमें प्रेम कीजिये, जिससे मेरा सुहाग न जाय ॥ १५ (ख) ॥

चौ०—बिहँसा नारि वचन सुनि काना । अहो मोह महिमा बलवाना ॥

नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं । अवगुन आठ सदा उर रहहीं ॥ १ ॥

पत्नीके वचन कानोंसे सुनकर रावण खूब हँसा [और बोला—] अहो ! मोह (अज्ञान) की महिमा बड़ी बलवान् है ! स्त्रीका स्वभाव, सब सत्य ही कहते हैं कि उसके हृदयमें आठ अवगुण सदा रहते हैं— ॥ १ ॥

साहस अनृत चपलता माया । भय अबिबेक असौच अदाया ॥

रिपु कर रूप सकल तैं गावा । अति बिसाल भय मोहि सुनावा ॥ २ ॥

साहस, झूठ, चञ्चलता, माया (छल), भय (डरपोकपन), अविवेक (मूर्खता), अपवित्रता और निर्दयता । तूने शत्रुका समग्र (विगट्) रूप गाया और मुझे उसका बड़ा भारी भय सुनाया ॥ २ ॥

सो सब प्रिया सहज बस मोरें । समुझि परा प्रसाद भव तोरें ॥

जानिउँ प्रिया तोरि चतुराई । एहि बिधि कहहु मोरि प्रभुताई ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! वह सब (यह चराचर विश्व तो) स्वभावसे ही मेरे वशमें है । तेरी कृपासे मुझे यह अब समझ पड़ा । हे प्रिये ! तेरी चतुराई मैं जान गया । तू इस प्रकार (इसी बहाने) मेरी प्रभुताका बखान कर रही है ॥ ३ ॥

तब बतकही गूढ़ मृगलोचनि । समुझत सुखद सुनत भय मोचनि ॥

मंदोदरि मन महुँ अस ठयऊ । पियहि कालबस मतिभ्रम भयऊ ॥ ४ ॥

हे मृगनयनी ! तेरी बातें बड़ी गूढ़ (रहस्यमयी) हैं, समझनेपर सुग्य देनेवाली ओर सुननेसे भय छुड़ानेवाली हैं । मन्दोदरीने मनमें ऐसा निश्चय कर लिया कि पतिको कालवश मतिभ्रम हो गया है ॥ ४ ॥

दो०—एहि बिधि करत बिनोद बहु प्रात प्रगट दसकंध ।

सहज असंक लंकपति सभाँ गयउ मद अंध ॥ १६ (क) ॥

इस प्रकार (अज्ञानवश) बहुत-से मजाक करते हुए रावणको सवेरा हो गया । तब स्वभावसे ही निद्रा और धमंडमें अंधा लङ्कापति सभामें गया ॥ १६ (क) ॥

सो०—फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद ।

मूलख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम ॥ १६ (ख) ॥

यद्यपि बादल अमृत-सा जल बरसाते हैं, तो भी बेत फूलता-फलता नहीं। इसी प्रकार चाहे ब्रह्माके समान भी ज्ञानी गुरु मिलें, तो भी मूलखके हृदयमें चेत (ज्ञान) नहीं होता ॥ १६ (ख) ॥

चो०—इहाँ प्रात जागे रघुराई । पूछा मत सब सचिव बोलाई ॥

कहहु बेगि का करिअ उपाई । जामवंत कह पद सिरु नाई ॥ १ ॥

यहाँ (सुबेल पर्वतर) प्रातःकाल श्रीरघुनाथजी जागे और उन्होंने सब मन्त्रियोंको बुलाकर सलाह पूछी कि बताइये, अब शीघ्र क्या उपाय करना चाहिये ? जाम्बवान्ने श्रीरामजीके चरणोंमें सिर नवाकर कहा—॥ १ ॥

सुनु सर्वग्य सकल उर बासी । बुधि बल तेज धर्म गुन रासी ॥

मंत्र कहउँ निज मति अनुसारा । दूत पठाइअ बालिकुमारा ॥ २ ॥

हे सर्वज्ञ (सब कुछ जाननेवाले) ! हे सबके हृदयमें बसनेवाले ! हे बुद्धि, बल, तेज, धर्म और गुणोंकी राशि ! सुनिये । मैं अपनी बुद्धिके अनुसार सलाह देता हूँ कि बालिकुमार अंगदको दूत बनाकर भेजा जाय ! ॥ २ ॥

नीक मंत्र सब के मन माना । अंगद सन कह कृपानिधाना ॥

बालितनय बुधि बल गुन धामा । लंका जाहु तात मम कामा ॥ ३ ॥

यह अच्छी सलाह सबके मन भायी । कृपाके निधान श्रीरामजीने अंगदसे कहा—हे बल, बुद्धि और गुणोंके धाम बालिपुत्र ! हे तात ! तुम मेरे कामके लिये लङ्का जाओ ॥ ३ ॥

बहुन बुझाह तुम्हहि का कहउँ । परम चतुर मैं जानत अहउँ ॥

काजु हमार तासु हिन होई । रिपु सन करेहु वतकही सोई ॥ ४ ॥

तुमको बहुत समझाकर क्या कहूँ ? मैं जानता हूँ, तुम परम चतुर हो । शत्रुसे वही बात-चीत करना, जिससे हमारा काम हो और उसका कल्याण हो ॥ ४ ॥

सो०—प्रभु अग्या धरि सीस चरन बंदि अंगद उठेउ ।

सोइ गुनसागर ईस राम कृपा जापर करहु ॥ १७ (क) ॥

प्रभुकी आज्ञा सिर चढ़ाकर और उनके चरणोंकी वन्दना करके अंगदजी उठे । [और बोले—] हे भगवान् श्रीरामजी ! आप जिसपर कृपा करें, वही गुणोंका समुद्र हो जाता है ॥ १७ (क) ॥

स्वयंसिद्ध सब काज नाथ मोहि आदरु दियउ ।

अस बिचारि जुवराज तन पुलकित हरषित हियउ ॥ १७ (ख) ॥

स्वामीके सब कार्य स्वयंसिद्ध हैं, यह तो प्रभुने मुझको आदर दिया है । [जो मुझे अपने कार्यपर भेज रहे हैं] ऐसा बिचारकर युवराज अंगदका हृदय हर्षित और शरीर पुलकित हो गया ॥ १७ (ख) ॥

चो०—बंदि चरन उर धरि प्रभुताई । अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई ॥

प्रभु प्रताप उर सहज असंका । रन बाँकुरा बालिसुत वंका ॥ १ ॥

चरणोंमें वन्दना करके और भगवान्की प्रभुता हृदयमें धरकर अंगद सबको सिर नवाकर चले । प्रभुके प्रतापको हृदयमें धारण किये हुए रणबाँकुरे वीर बालिपुत्र स्वाभाविक ही निर्भय हैं ॥ १ ॥

पुर पैठत रावन कर बेटा । खेलत रहा सो होइ नै भेडा ॥

बातहिं बात करष बढ़ि भाई । जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई ॥ २ ॥

लङ्कामें प्रवेश करते ही रावणके पुत्रसे भेंट हो गयी, जो वहाँ खेल रहा था । बातों-ही-बातोंमें दोनोंमें झगड़ा बढ़ गया । क्योंकि दोनों ही अतुलनीय बलवान् थे, और फिर दोनोंकी युवावस्था थी ॥ २ ॥

तेहिं अंगद कहूँ लात उठाई । गहि पद पटकेउ भूमि भर्वाई ॥

निसिचर निकर देखि भट भारी । जहँ तहँ चले न सकहिं पुकारी ॥ ३ ॥

उसने अंगदपर लात उठायी । अंगदने वही पैर पकड़कर उसे घुमाकर जमीनपर पटक दिया (मार मिराया) । राक्षसके समूह भारी योद्धा देखकर जहाँ-तहाँ भाग चले । वे डरके मारे पुकार भी न मचा सके ॥ ३ ॥

एक एक सन मरमु न कहहीं । समुझि तासु बध चुप करि रहहीं ॥

भयउ कोलाहल नगर मझारी । आघा कपि लंका जेहिं जारी ॥ ४ ॥

एक दूसरेको मर्म (असली बात) नहीं बतलाते, उसका (रावणके पुत्रका) वध समझकर सब चुप मारकर रह जाते हैं । [रावण-पुत्रकी मृत्यु जानकर और राक्षसोंको भयके मारे भागते देखकर] नगरभरमें कोलाहल मच गया कि जिसने लङ्का जलायी थी, वही वानर फिर आ गया है ॥ ४ ॥

अब धौँ कहा करिहि करतारा । अति समीत सब करहिं बिचारा ॥

बिनु पूछें मगु देहिं दिखाई । जेहि बिलोकि सोइ जाइ सुखाई ॥ ५ ॥

सब अत्यन्त भयभीत होकर विचार करने लगे कि विधाता अब न जाने क्या करेगा । वे बिना पूछे ही अंगदको [रावणके दरबारकी] राह बता देते हैं । जिसे ही वे देखते हैं वही डरके मारे सुख जाता है ॥ ५ ॥

दो०—गयउ सभा दरबार तब सुमिरि राम पद कंज ।

सिंह ठवनि इत उत चितव धीर बीर बलपुंज ॥ १८ ॥

श्रीरामजीके चरणकमलोंका स्मरण करके अंगद रावणकी सभाके द्वारपर गये । और वे धीर, बीर और बलकी राशि अंगद सिंहकी-सी पेंड़ (शान) से इधर-उधर देखने लगे ॥ १८ ॥

चौ०—तुरत निसाचर एक पठावा । समाचार रावनहि जनावा ॥

सुनत बिहँसि बोला दससीसा । आनहु बोलि कहाँ कर कीसा ॥ १ ॥

तुरंत ही उन्होंने एक राक्षसको भेजा और रावणको अपने आनेका समाचार सूचित किया । सुनते ही रावण हँसकर बोला—बुला लाओ, देखें कहाँका बंदर है ॥ १ ॥

आयसु पाइ दूत बहु धाय । कपिकुंजरहि बोलि लै आय ॥

अंगद दीख दसानन बैसैं । सहित प्राण कज्जलगिरि जैसैं ॥ २ ॥

आशा पाकर बहुत-से दूत दौड़े और वानरश्रेष्ठ अंगदको बुला लाये । अंगदने रावणको ऐसे बैठे हुए देखा जैसे कोई प्राणयुक्त (सजीव) काजलका पहाड़ हो ॥ २ ॥

भुजा बिटप सिर छंग समाना । रोमावली लता जनु नाना ॥

मुख नासिका नयन अरु काना । गिरि कंदरा ओह अनुमाना ॥ ३ ॥

भुजाएँ वृक्षोंके और सिर पर्वतोंके शिखरोंके समान हैं । रोमावली मानो बहुत-सी कताएँ हैं । मुँह, नाक, नेत्र और कान पर्वतकी कन्दराओं और खोहोंके बराबर हैं ॥ ३ ॥

गयउ समौ मन नेहु न मुरा । बालितनय अतिबल बाँकुरा ॥
उठे सभासद कपि कहूँ देखी । रावन उर भा क्रोध बिसेषी ॥ ४ ॥

अत्यन्त बलवान् बाँके वीर बालिपुत्र अंगद सभामें गये । वे मनमें जरा भी नहीं शिझके । अंगदको देखते ही सब सभासद उठ खड़े हुए । यह देखकर रावणके हृदयमें बड़ा क्रोध हुआ ॥ ४ ॥

दो०—जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ ।

राम प्रताप सुमिरि मन बैठ समौ सिरु नाइ ॥ १९ ॥

जैसे मतवाले हाथियोंके झुंडमें सिंह निःशंक होकर चला जाता है, वैसे ही रामजीके प्रतापका हृदयमें स्मरण करके वे निर्भय सभामें सिर नवाकर बैठ गये ॥ १९ ॥

चौ०—कह वसकंठ कवन तैं बंदर । मैं रघुवीर दूत वसकंधर ॥
मम जनकहि तोहि रही मितार्ई । तब हित कारन आयउँ भाई ॥ १ ॥

रावणने कहा—अरे बंदर ! तू कौन है ? [अंगदने कहा—] हे दशग्रीव ! मैं श्रीरघुवीरका दूत हूँ । मेरे पितासे और तुमसे मित्रता थी । इसलिये हे भाई ! मैं तुम्हारी भलाईके लिये ही आया हूँ ॥ १ ॥

उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती । सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती ॥
बर पायहु कीन्हेहु सब काजा । जीतेहु लोकपाल सब राजा ॥ २ ॥

तुम्हारा उत्तम कुल है, तुम पुलस्त्य ऋषिके पौत्र हो । शिवजी और ब्रह्माजीकी तुमने बहुत प्रकारसे पूजा की है । उनसे वर पाये हैं और सब काम सिद्ध किये हैं । लोकपालों और सब राजाओंको जीत लिया है ॥ २ ॥

नृप अभिमान मोह बस किंवा । हरि आनिहु सीता जगदंबा ॥
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा । सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा ॥ ३ ॥

राजमदसे या मोहवश तुम जगज्जननी सीताजीको हर लये हो । अब तुम मेरे शुभ वचन (मेरी हितभरी सलाह) सुनो । [उसके अनुसार चलनेसे] प्रभु श्रीरामजी तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर देंगे ॥ ३ ॥

वसन गहहु तन कंठ कुठारी । परिजन सहित संग निज नारी ॥
सादर जनकसुता करि आगैं । एहि विधि चलहु सकल भय त्यागैं ॥ ४ ॥

दाँतोंमें तिनका दबाओ, गलेमें कुल्हाड़ी डालो और कुटुम्बियोंसहित अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर, आदर-पूर्वक जानकीजीको आगे करके, इस प्रकार सब भय छोड़कर चलो—॥ ४ ॥

दो० —प्रनतपाल रघुवंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि ।

आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि ॥ २० ॥

और 'हे शरणागतके पालन करनेवाले रघुवंशशिरोमणि श्रीरामजी ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ।' इस प्रकार आर्त प्रार्थना करो । आर्त पुकार सुनते ही प्रभु तुमको निर्भय कर देंगे ॥ २० ॥

चौ०—रे कपिपोत बोलु संभारी । मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी ॥
कहु निज नाम जनक कर भाई । केहि नातैं मानिय मितार्ई ॥ १ ॥

[रावणने कहा—] अरे बंदरके बच्चे ! सँभालकर बोल । मूर्ख ! मुझ देवताओंके शत्रुको तूने जाना नहीं ? अरे भाई ! अपना और अपने बापका नाम तो बता । किस नातेसे मित्रता मानता है ? ॥ १ ॥

अंगद नाम बालि कर बेटा । तासों कबहुँ भई ही भेटा ॥

अंगद बचन सुनत सकुचाना । रहा बालि वानर मैं जाना ॥ २ ॥

[अंगदने कहा—] मेरा नाम अंगद है, मैं बालिका पुत्र हूँ। उनसे कभी तुम्हारी भेंट हुई थी ! अंगदका बचन सुनते ही रावण कुछ सकुचा गया, [और बोला—] हाँ, मैं जान गया, (याद आया) बालि नामका एक बंदर था ॥ २ ॥

अंगद तर्ही बालि कर बालक । उपजेहु बंस अनल कुल घालक ॥

गर्भ न गयहु व्यर्थ तुम्ह जायहु । निज मुख तापस दूत कहायहु ॥ ३ ॥

अरे अङ्गद ! तू ही बालिका लड़का है ? अरे कुलनाशक ! तू तो अपने कुलरूपी बाँसके लिये अग्निरूप ही पैदा हुआ ! गर्भमें ही क्यों नहीं नष्ट हो गया ! तू व्यर्थ ही पैदा हुआ जो अपने ही मुँहसे तपस्वियोंका दूत कहलया ॥ ३ ॥

अब कहु कुसल बालि कहँ अहई । बिहँसि बचन तब अंगद कहई ॥

दिन दस गएँ बालि पहिँ जाई । बूझेहु कुसल सखा उर लाई ॥ ४ ॥

अब बालिकी कुशल तो बता, वह [आजकल] कहाँ है ? तब अङ्गदने हँसकर कहा—दस (कुछ) दिन बीतनेपर स्वयं ही बालिके पास जाकर, अपने मित्रको हृदयसे लगाकर, उसीसे कुशल पूछ लेना ॥ ४ ॥

राम विरोध कुसल जसि होई । सो सब तोहि सुनाइहि सोई ॥

सुनु सठ भेद होइ मन ताकै । श्रीरघुवीर हृदय नहिँ जाकै ॥ ५ ॥

श्रीरामजीसे विरोध करनेपर जैसी कुशल होती है, वह सब तुमको वे सुनावेंगे । हे मूर्ख ! सुन, भेद उसीके मनमें पड़ सकता है, जिसके हृदयमें श्रीरघुवीर न हों ॥ ५ ॥

दो०—हम कुलघालक सत्य तुम्ह कुलपालक दससीस ।

अंधउ बधिर न अस कहहिं नयन कान तब बीस ॥ २१ ॥

सच है, मैं तो कुलका नाश करनेवाला हूँ और हे रावण ! तुम कुलके रक्षक हो (तुम्हारी भेदनीति यहाँ काम नहीं कर सकती) अंधे-बहरे भी ऐसी बात नहीं कहते, तुम्हारे तो बीस नेत्र और बीस कान हैं ॥ २१ ॥

चौ०—सिब विरंचि सुर मुनि समुदाई । चाहत जासु चरन सेवकाई ॥

तासु दूत होइ हम कुल वोरा । अइसिहुँ मति उर बिहर न तोरा ॥ १ ॥

शिव, ब्रह्मा, देवता और मुनियोंके समुदाय जिनके चरणोंकी सेवा करना चाहते हैं, उनका दूत होकर मैंने कुलको डुबा दिया ! अरे ऐसी बुद्धि होनेपर भी तुम्हारा हृदय विदीर्ण नहीं हो जाता ! ॥ १ ॥

सुनि कठोर बानी कपि केरी । कहत दसानन नयन तरेरी ॥

खल तब कठिन बचन सब सहऊँ । नीति धर्म मैं जानत अहऊँ ॥ २ ॥

वानर (अङ्गद) की कठोर वाणी सुनकर रावण आँवें तरेरकर बोला—अरे दुष्ट ! मैं तेरे सब कठोर बचन इसीलिये सह रहा हूँ, कि मैं नीति और धर्मको जानता हूँ (उन्हींकी रक्षा कर रहा हूँ) ॥ २ ॥

कह कपि धर्मसीलता तोरी । हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी ॥

देखी नयन दूत रक्षचारी । बूढ़ि न मरहु धर्म व्रत घारी ॥ ३ ॥

अङ्गदने कहा—तुम्हारी धर्मशीलता मैंने भी सुनी है कि तुमने परायी स्त्रीकी चोरी की है ! और दूतकी रक्षाकी बात तो अपनी आँखोंसे देख ली । ऐसे धर्मव्रतको धारण करनेवाले तुम डूबकर मर नहीं जाते ॥ ३ ॥

कान नाक बिनु भगिनि निहारी । छमा कीन्हि तुम्ह धर्म बिचारी ॥

धर्मसीलता तब जग जागी । पावा दरसु हमहुँ बड़भागी ॥ ४ ॥

नाक-कानसे रहित बहिनको देखकर तुमने धर्म विचार कर ही तो क्षमा कर दिया था ! तुम्हारी धर्म-शीलता जग-जाहिर है ! मैं भी बड़ा भाग्यवान् हूँ, जो मैंने तुम्हारा दर्शन पाया ! ॥ ४ ॥

दो०—जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु ।

लोकपाल बल बिपुल ससि प्रसन हेतु सब राहु ॥ २२ (क) ॥

[रावणने कहा—] अरे जड़ जन्तु वानर ! व्यर्थ बक-बक न कर । अरे मूर्ख ! मेरी भुजाएँ तो देख । ये सब लोकपालोंके विशाल बलरूपी चन्द्रमाओंको प्रसन्नेके लिये राहु हैं ॥ २२ (क) ॥

पुनि नम सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास ।

सोमत मयउ मराल इव संभु सहित कैलास ॥ २२ (ख) ॥

फिर [तूने सुना ही होगा कि] आकाशरूपी तालाबमें मेरे भुजाओंरूपी कमलोंपर बस करके शिवजी-सहित कैलास इसके समान सुशोभित हुआ था ! ॥ २२ (ख) ॥

चौ०—तुम्हारे कटक माझ सुनु अंगद । मोसन भिरहि कवन जोधा बद ।

तव प्रभु नारि बिरहँ बलहीना । अनुज तासु दुख दुखी मलीना ॥ १ ॥

अरे अङ्गद ! सुन; तेरी सेनामें बता, ऐसा कौन योद्धा है जो मुझसे भिड़ेगा ! तेरा मालिक तो लीके बिरहमें बलहीन हो रहा है । और उसका छोटा भाई उसीके दुःखसे दुखी और उदास है ॥ १ ॥

तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ । अनुज हमार भीरु अति सोऊ ।

जामवंत मंत्री अति बूढ़ा । सो कि होइ अब समरारूढ़ा ॥ २ ॥

तुम और सुग्रीव, दोनों नदीतटके वृक्ष हो । रहा मेरा छोटा भाई बिभीषण, सो वह भी बड़ा डरपोक है । मन्त्री जाम्बवान् बहुत बूढ़ा है । वह अब लड़ाईमें क्या चढ़ (उद्यत हो) सकता है ? ॥ २ ॥

सिल्पिकर्म जानहिं नल नीला । हैं कपि एक महा बलसीला ।

आवा प्रथम नगर जेहिं जारा । सुनत बचन कह बालिकुमारा ॥ ३ ॥

नल-नील तो शिल्प-कर्म जानते हैं (वे लड़ना क्या जानें ?) । हाँ, एक वानर जरूर महान् बलवान् है, जो पहले आया था, और जिसने लड़का जलायी थी । यह वचन सुनते ही बालिपुत्र अङ्गदने कहा— ॥ ३ ॥

सत्य बचन कहु निसिबर नाहा । साँचेहुँ कीस कीन्ह पुर दाहा ।

रावन नगर अरु कपि दहई । सुनि अस बचन सत्य को कहई ॥ ४ ॥

हे राक्षसराज ! सच्ची बात कहो । क्या उस वानरने सचमुच तुम्हारा नगर जला दिया ? रावण [जैसे जगद्विजयी योद्धा] का नगर एक छोटे-से वानरने जला दिया । ऐसे वचन सुनकर उन्हें सत्य कौन कहेगा ? ॥ ४ ॥

जो अति सुभट सराहेहु रावन । सो सुग्रीव केर लघु धावन ।

चलइ बहुत सो वीर न होई । पठवा खबरि लेन हम सोई ॥ ५ ॥

हे रावण ! जिसको तुमने बहुत बड़ा योद्धा कहकर सराहा है, वह तो सुग्रीवका एक छोटा-सा दौड़कर चलनेवाला हरकारा है । जो बहुत चलता है, वह वीर नहीं होता । उसको तो हमने केवल खबर लेनेके लिये भेजा था ॥ ५ ॥

दो०—सत्य नगर कपि जारेउ बिनु प्रभु आयसु पाइ ।

फिर न गयउ सुग्रीव पहिं तेहिं भय रहा लुकाइ ॥ २३ (क) ॥

क्या सचमुच ही उस वानरने प्रभुकी आज्ञा पाये बिना ही तुम्हारा नगर जला डाला ? मालूम होता है इसी डरसे वह लौटकर सुग्रीवके पास नहीं गया । और कहो छिप रहा ! ॥ २३ (क) ॥

सत्य कहहि दसकंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह ।

कोउ न हमारें कटक अस तो सन लरत जो सोह ॥ २३ (ख) ॥

हे रावण ! तुम सब सत्य ही कहते हो, मुझे सुनकर कुछ भी क्रोध नहीं है । सचमुच हमारी सेनामें कोई भी ऐसा नहीं है जो तुमसे लड़नेमें शोभा पाये ॥ २३ (ख) ॥

प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि ।

जौ मृगपति बध मेडुकन्हि मल कि कहइ कोउ ताहि ॥ २३ (ग) ॥

प्रीति और बेर बराबरीवालेसे ही करना चाहिये । नीति ऐसी ही है । सिंह यदि मेढकोंको मारे तो क्या उसे कोई भला कहेगा ! ॥ २३ (ग) ॥

जद्यपि लघुता राम कहूँ तोहि बधे बड़ दोष ।

तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्र जाति कर रोष ॥ २३ (घ) ॥

यद्यपि तुम्हें मारनेमें श्रीरामजीकी लघुता है और बड़ा दोष भी है, तथापि हे रावण ! सुनो, क्षत्रिय-जातिका क्रोध बड़ा कठिन होता है ॥ २३ (घ) ॥

बक्र उक्ति धनु बचन सर हृदय दहेउ रिपु कीम ।

प्रतिउत्तर सङ्गमिन्ह मनहुँ काढ़त भट दससीस ॥ २३ (ङ) ॥

वक्रोक्तिरूपी धनुषसे वचनरूपी बाण मारकर अंगदने शत्रुका हृदय जला दिया । वीर रावण उन बाणोंको मानो प्रत्युत्तररूपी सँढ़सियोंसे निकाल रहा है ॥ २३ (ङ) ॥

हँसि बोलेउ दसमालि तव कपि कर बड़ गुन एक ।

जो प्रतिपालइ तासु हित करइ उपाय अनेक ॥ २३ (च) ॥

तब रावण हँसकर बोला—बंदरमें यह एक बड़ा गुण है कि जो उसे पालता है, उसका वह अनेकों उपायोंसे भला करनेकी चेष्टा करता है ॥ २३ (च) ॥

चौ०—धन्य कीस जो निज प्रभु काजा । जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा ॥

नाचि कूदि करि लोग रिझाई । पति हिन करइ धर्म निपुनाई ॥ १ ॥

बंदरको धन्य है, जो अपने मालिकके कार्यके लिये लाज छोड़कर जहाँ-तहाँ नाचता है । नाच-कूदकर, लोगोंको रिझाकर, मालिकका हित करता है । यह उसके धर्मकी निपुणता है ॥ १ ॥

अंगद स्वामिभक्त तव जानी । प्रभुगुन कस न कहसि पहि भौंती ॥

मैं गुनगाहक परम सुजाना । तव कटु रटनि करउँ नहिं काना ॥ २ ॥

हे अंगद ! तेरी जाति स्वामिभक्त है । फिर भला, तू अपने मालिकका गुण इस प्रकार कैसे न कहे ! मैं गुणगाहक और परम सुजान हूँ, इसीसे तेरी जली-कटी बक-बकपर कान (ध्यान) नहीं देता ॥ २ ॥

कइ कपि तव गुन गाहकताई । सत्य पवनसुत मोहि सुनाई ॥

बन विधंसि सुत बधि पुर जारा । तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा ॥ ३ ॥

अंगदने कहा—तुम्हारी सच्ची गुणग्राहकता तो मुझे हनुमान्ने सुनायी थी। उसने अशोकवनको विध्वंस करके, तुम्हारे पुत्रको मारकर नगरको जला दिया था। तो भी तुमने [अपनी गुणग्राहकताके कारण] यही समझा कि उसने तुम्हारा कुछ भी अपकार नहीं किया ॥ ३ ॥

सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई । दसकंधर में कीन्हि दिठाई ॥
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा । तुम्हरेँ लाज न रोष न माखा ॥ ४ ॥

तुम्हारा वही सुन्दर स्वभाव विचारकर, हे दशग्रीव ! मैंने कुछ घृष्टता की है। हनुमान्ने जो कुछ कहा था, उसे आकर मैंने प्रत्यक्ष देख लिया कि तुम्हें न लजा है, न कोष है और न चिढ़ है ॥ ४ ॥

जौँ असि मति पितु खाए कीसा । कहि अस बचन हँसा दससीसा ॥
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही । अबहीं समुझि परा कछु मोही ॥ ५ ॥

[रावण बोला—] अरे वानर ! जब तेरी ऐसी बुद्धि है तभी तो तू बापको खा गया ! ऐसा बचन कहकर रावण हँसा । अंगदने कहा—पिताको खाकर फिर तुमको भी खा डालता; परन्तु अभी तुरंत कुछ और ही बात मेरी समझमें आ गयी ! ॥ ५ ॥

बालि बिमल जस भाजन जानी । हतउँ न तोहि अधम अभिमानी ॥
कछु रावन रावन जग केते । मैं निज श्रवन सुने सुनु जेते ॥ ६ ॥

अरे नीच अभिमानी ! बालिके निर्मल यशका पात्र (कारण) जानकर तुम्हें मैं नहीं मारता । रावण ! यह तो बता कि जगत्में कितने रावण हैं ! मैंने जितने रावण अपने कानोंसे सुन रखे हैं, उन्हें सुन— ॥ ६ ॥

बलिहि जितन एक गयउ पनाला । राखेउ बाँधि सिसुन्ड हयसाला ॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई । दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई ॥ ७ ॥

एक रावण तो बालिको जीतने पातालमें गया था। तब बच्चोंने उसे घुड़सालमें बाँध रक्खा। बालक खेलते थे और जा जाकर उसे मारते थे। बालिको दया लगी, तब उन्होंने उसे छोड़ा दिया ॥ ७ ॥

एक बहोरि सहसभुज देखा । धाइ घरा जिमि जंतु विसेषा ॥
कौतुक लागि भवन लै आवा । सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा ॥ ८ ॥

फिर एक रावणको सहस्रबाहुने देखा, और उसने दौड़कर उसको एक विशेष प्रकारके (विचित्र) जन्तुकी तरह [समझकर] पकड़ लिया। तमाशेके लिये वह उसे घर ले आया। तब पुलस्त्य मुनिने जाकर उसे छोड़ाया ॥ ८ ॥

दो०—एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि कीं काँख ।

इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदाहि तजि माख ॥ २४ ॥

एक रावणकी बात कहनेमें तो मुझे बड़ा संकोच हो रहा है। वह बहुत दिनोंतक बालिकी काँखमें रहा था। इनसेसे तुम कौन-से रावण हा ? खीझना छोड़कर सच-सच बताओ ॥ २४ ॥

चौ०—सुनु सठ सोइ रावन बलसीला । हरगिरि जान जासु भुजलीला ॥
जान उमापति जासु सुराई । पूजेउँ जेहि सिर सुमन बढ़ाई ॥ १ ॥

[रावणने कहा—] अरे मूर्ख ! सुन, मैं वही बलवान् रावण हूँ जिसके भुजाओंकी लीला (करामात) कैलाश पर्वत जानता है। जिसकी शूरता उमापति महादेवजी जानते हैं, जिन्हें अपने सिररूपी पुष्प चढ़ा-चढ़ाकर मैंने पूजा था ॥ १ ॥

सिर सरोज निज करन्हि उतारी । पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी ॥

भुज बिक्रम जानहिं दिगपाला । सठ अजहँ जिन्ह केँ उर साला ॥ २ ॥

सिररूपी कमलेंको अपने हाथोंसे उतार-उतारकर मैंने अगणित बार त्रिपुरारि शिवजीकी पूजा की है। अरे मूर्ख ! मेरी भुजाओंका पराक्रम दिक्पाल जानते हैं, जिनके हृदयमें वह आज भी चुभ रहा है ॥ २ ॥

जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरउँ जाइ बरिआई ॥

जिन्ह के दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव दूटे ॥ ३ ॥

दिग्गज (दिशाओंके हाथी) मेरी छातीकी कठोरताको जानते हैं, जिनके भयानक दाँत, जब-जब जाकर मैं उनसे जबरदस्ती भिड़ा, मेरी छातीमें कभी नहीं फूटे (अपना चिह्न भी नहीं बना सके), बल्कि मेरी छातीसे लगते ही वे मूलीकी तरह टूट गये ! ॥ ३ ॥

जासु चलत डोलति इमि धरनी। चढ़त मत्तगज जिमि लघु तरनी ॥

सोइ रावन जग बिदित प्रतापी। सुनेहि न श्रवण अलीक प्रलापी ॥ ४ ॥

जिसके चलते समय पृथ्वी इस प्रकार हिलती है, जैसे मतवाले हाथीके चढ़ते समय छोटी नाव ! मैं वही जगत्प्रसिद्ध प्रतापी रावण हूँ। अरे झूठी बकवाद करनेवाले ! क्या तूने मुझको कानोंसे कभी नहीं सुना ! ॥ ४ ॥

दो०—तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान।

रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ग्यान ॥ २५ ॥

उस (महान् प्रतापी और जगत्प्रसिद्ध) रावणको (मुझे) तू छोटा कहता है और मनुष्यकी बड़ाई करता है ! अरे दुष्ट, असभ्य, तुच्छ बंदर ! अब मैंने तेरा ज्ञान जान लिया ॥ २५ ॥

चौ०—सुनि अंगद सकोप कह बानी। बोलु सँभारि अधम अभिमानी ॥

सहसबाहु भुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा ॥ १ ॥

रावणके ये वचन सुनकर अङ्गद क्रोधसहित वचन बोले—अरे नीच अभिमानी सँभालकर (सोच-समझकर) बोल। जिनका फरसा सहस्रबाहुकी भुजाओंरूपी अपार वनको जलानेके लिये अधिक समान था, ॥ १ ॥

जासु परसु सागर खर धारा। बूड़े नृप अगनित बहु बारा ॥

तासु गर्ब जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दससीस अभागा ॥ २ ॥

जिसके फरसारूपी समुद्रकी तीव्र धारामें अगणित राजा अनेकों बार डूब गये, उन परशुरामजीका गर्व जिन्हें देखते ही भाग गया, अरे अभागे दशशीश ! वे मनुष्य क्योंकर हैं ! ॥ २ ॥

राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा ॥

पसु सुरधेनु कल्पतरु रुखा। अन्न दान अरु रस पीयूषा ॥ ३ ॥

क्यों रे मूर्ख उहण्ड ! श्रीरामचन्द्रजी मनुष्य हैं ! कामदेव भी क्या धनुर्धारी है ! और गङ्गाजी क्या नदी हैं ! कामधेनु क्या पशु है ! और कल्पवृक्ष क्या पेड़ है ! अन्न भी क्या दान है ! और अमृत क्या रस है ! ॥ ३ ॥

बैनतेय खग अहि सहसानन। चिंतामनि पुनि उपल दसानन ॥

सुनु मतिमंद लोक बैकुण्ठा। लाभ कि रघुपति भगति अकुण्ठा ॥ ४ ॥

गङ्गाजी क्या पक्षी हैं ! शेषजी क्या सर्प हैं ! अरे रावण ! चिन्तामणि क्या पत्थर है ! अरे ओ मूर्ख ! सुन, बैकुण्ठ भी क्या लोक है ! और श्रीरघुनाथजीकी अखण्ड भक्ति क्या और लाभों-जैसा ही लाभ है ! ॥ ४ ॥

दो०—सेन सहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि।

कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि ॥ २६ ॥

सेनासमेत तेरा मान मयकर, अशोकवनको उजाड़कर, नगरको बलाकर और तेरे पुत्रको मारकर जो लोट गये, [तू उनका कुछ भी न बिगाड़ सका] क्यों रे दुष्ट ! वे हनुमान्जी क्या वानर हैं ? ॥ २६ ॥

चौ०—सुनु राघव परिहरि चतुरार्ह । भजसि न कृपासिंधु रघुपार्ह ॥

जौं बल भयसि राम कर द्रोही । ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही ॥ १ ॥

अरे राघव ! चतुरार्ह (कपट) छोड़कर सुन । कृपाके समुद्र श्रीरघुनाथजीका तू भजन क्यों नहीं करता ? अरे दुष्ट ! यदि तू श्रीरामजीका वैरी हुआ तो तूसे ब्रह्मा और रुद्र भी नहीं बचा सकेंगे ॥ १ ॥

मूढ़ बूधा जनि मारसि गाला । राम बयर अस होइहि हाला ॥

तब सिर निकर कपिन्ह के आगे । परिहहिं घरनि राम सर लागे ॥ २ ॥

हे मूढ़ ! व्यर्थ गाल न मार (डोंग न हॉक) । श्रीरामजीसे वैर करनेपर तेरा ऐसा हाल होगा कि तेरे सिर-समूह श्रीरामजीके बाण लगते ही वानरोंके आगे पृथ्वीपर पड़ेंगे, ॥ २ ॥

ते तब सिर कंदुक सम नाना । खेलिहहिं भालु कीस चौगाना ॥

जबहिं समर कोपिहि रघुनायक । लुटिहहिं अति कराल बहु सायक ॥ ३ ॥

और रीछ-वानर तेरे उन गेंदके समान अनेकों सिरोंसे चौगान खेलेंगे । जब श्रीरघुनाथजी युद्धमें कोप करेंगे और उनके अत्यन्त तीक्ष्ण बहुत-से बाण छूटेंगे, ॥ ३ ॥

तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा । अस बिचारि भजु राम उदारा ॥

सुनत बचन राघव परजरा । जरत महानल जनु घृत परा ॥ ४ ॥

तब क्या तेरा ऐसा गाल चलेगा ? ऐसा विचारकर उदार (कृपालु) श्रीरामजीको भज । अङ्गदेके ये वचन सुनकर राघव बहुत अधिक जल उठा । मानो जलती हुई प्रचण्ड अग्निमें घी पड़ गया हो ॥ ४ ॥

दो०—कुंभकरन अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि ।

मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेउं चराचर शारि ॥ २७ ॥

[वह बोला—] अरे मूर्ख ! कुम्भकर्ण-ऐसा मेरा भाई है, इन्द्रका शत्रु सुप्रसिद्ध मेघनाद मेरा पुत्र है । और मेरा पराक्रम तो तूने सुना ही नहीं कि मैंने सम्पूर्ण जड़-चेतन जगत्को जीत लिया है ? ॥ २७ ॥

चौ०—सठ साखामृग जोरि सहार्ह । बाँधा सिंधु इहइ प्रभुतार्ह ॥

नाघहिं बग अनेक बारीसा । सुर न होहिं ते सुनु सब कीसा ॥ १ ॥

रे दुष्ट ! वानरोंकी सहायता जोड़कर रामने समुद्र बाँध लिया, बस यही उसकी प्रभुता है ! समुद्रको तो अनेकों पक्षी भी लॉघ जाते हैं । पर इसीसे वे सभी शूरवीर नहीं हो जाते । अरे मूर्ख बंदर ! सुन—॥ १ ॥

मम भुज सागर बल जल पूरा । जहँ बूढ़े बहु सुर नर स्रा ॥

बीस पयोधि अगाध अपारा । को अस बीर जो पाइहि पारा ॥ २ ॥

मेरी एक-एक भुजारूपी समुद्र बलरूपी जलसे पूर्ण है, जिसमें बहुत-से शूरवीर देवता और मनुष्य डूब चुके हैं । बता, कौन ऐसा शूरवीर है जो मेरे इन अयाह और अपार बीस समुद्रोंका पार पा जायगा ॥ २ ॥

विगपालन्ह में नीर भरावा । भूप सुजस बल मोहि सुनावा ॥

जौं पै समर सुभट तब नाथा । पुनि पुनि कहसि जासु गुनगाथा ॥ ३ ॥

अरे दुष्ट ! मैंने दिक्पालोंतकसे जल भरवाया, और तू एक राजाका मुझे सुयश सुनाता है ! यदि तेरा मालिक, जिसकी गुणगाथा तू बार-बार कह रहा है, संग्राममें लड़नेवाला योद्धा है—॥ ३ ॥

तौ बसीठ पठवत केहि काजा । रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा ॥

हरगिरि मथन निरखु मम वाह । पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराह ॥ ४ ॥

तो फिर वह दूत किस लिये भेजता है ? शत्रुसे प्रीति (सन्धि) करते उसे लाज नहीं आती ! पहले कैलासका मथन करनेवाली मेरी भुजाओंको देख । फिर अरे मूर्ख वानर ! अपने मालिककी सराहना करना ॥ ४ ॥

दो०—सूर कवन रावन सरिस स्वर काटि जेहिं सीस ।

हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस ॥ २८ ॥

रावणके समान शूरवीर कौन है ? जिसने अपने ही हाथोंसे सिर काट-काटकर अत्यन्त हर्षके साथ बहुत बार उन्हें अग्निमें होम दिया ! स्वयं गौरीपति शिवजी इस बातके साक्षी हैं ॥ २८ ॥

चौ०—जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला । बिधि के लिखे अंक निज भाला ॥

नर कैं कर आपन बध बाँची । हसेउँ जानि बिधिगिरा असौँची ॥ १ ॥

मस्तकोंके जलते समय जब मैंने अपने ललाटोंपर लिखे हुए विधाताके अक्षर देखे, तब मनुष्यके हाथसे अपनी मृत्यु होना बाँचकर, विधाताकी वाणी (लेखको) असत्य जानकर मैं हँसा ॥ १ ॥

सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरें । लिखा विरंचि जरठ मति भोरें ॥

आन बीर बल सठ मम आगें । पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागें ॥ २ ॥

उस बातको समझकर (स्मरण करके) भी मेरे मनमें डर नहीं है । क्योंकि मैं समझता हूँ कि बड़े ब्रह्मने बुद्धिभ्रमसे ऐसा लिख दिया है । अरे मूर्ख ! तू लज्जा और मर्यादा छोड़कर मेरे आगे बार-बार दूसरे वीरका बल कहता है ! ॥ २ ॥

कह अंगद सलज्ज जग माहीं । रावन तोहि समान कोउ नाहीं ॥

लाजवंत तब सहज सुभाऊ । निज मुख निज गुन कहसि न काऊ ॥ ३ ॥

अङ्गदने कहा—अरे रावण ! तेरे समान लज्जावान् जगत्में कोई नहीं है । लज्जाशीलता तो तेरा सहज स्वभाव ही है ! तू अपने मुँहसे अपना गुण कभी नहीं कहता ॥ ३ ॥

सिर अरु सैल कथा चित रही । ताते बार बीस तें कही ॥

सो भुजबल राखेहु उर घाली । जतिहु सहसबाहु बलि बाली ॥ ४ ॥

सिर काटने और कैलास उठानेकी कथा चित्तमें चढ़ी हुई थी, इससे तूने उसे बीसों बार कहा । भुजाओंके उस बलको तो तूने हृदयमें ही डाल (छिपा) रक्खा है, जिससे तूने सहस्रबाहु, बलि और बालिको जीता था ॥ ४ ॥

सुनु मतिमंद दोह अव पूरा । काटें सीस कि होइअ सूर ॥

इंद्रजालि कहूँ कहिअ न वीरा । काटइ निज कर सकल सरीरा ॥ ५ ॥

अरे मन्दबुद्धि ! सुन, अब उत्तर दे कि सिर काटनेसे भी क्या कोई शूरवीर हो जाता है ? इंद्रजालि रचनेवालेको वीर नहीं कहा जाता, यद्यपि वह अपने ही हाथों अपना सारा शरीर काट डालता है ! ॥ ५ ॥

दो०—जरहिं पतंग मोह बस भार बहहिं खरबुंद ।

ते नहिं सूर कहावहिं समुझि देखु मतिमंद ॥ २९ ॥

अरे मन्दबुद्धि ! समझकर देख । पतंगे मोहवश आगमें जल मरते हैं, गदहोंके छुंड बोझ लादकर चलते हैं; पर इस कारण वे शूरवीर नहीं कहलाते ॥ २९ ॥

चौ०—अब जनि बतबढ़ाव खल करही । सुनु मम वचन मान परिहरही ॥

दसमुख में न वसीठीं आयउँ । अस विचारि रघुवीर पठायउँ ॥ १ ॥

अरे दुष्ट ! अब बत-बढ़ाव मत कर; मेरा वचन सुन और अभिमान त्याग दे । हे दशमुख ! मैं दूतकी तरह सन्धि करने नहीं आया हूँ । श्रीरघुवीरने ऐसा विचारकर मुझे भेजा है—॥ १ ॥

बार बार अस कहइ कृपाला । नहिं गजारि जसु बधैं सकाला ॥

मन महुँ समुझि वचन प्रभु केरे । सहेउँ कठोर वचन सठ तेरे ॥ २ ॥

कृपाल श्रीरामजी बार-बार ऐसा कहते हैं कि स्यारके मारनेसे सिंहको यश नहीं मिलता । अरे मूर्ख ! प्रभुके वचनोंको मनमें समझकर (याद करके) ही मैंने तेरे कठोर वचन सहे हैं ॥ २ ॥

नाहिं त करि मुख भंजन तोरा । लै जातेउँ सीतहि बरजोरा ॥

जानेउँ तव बल अधम सुरारी । सूनै हरि आनिहि परनारी ॥ ३ ॥

नहीं तो, तेरे मुँह तोड़कर मैं सीतार्जाकी जबरदस्ती ले जाता । अरे अधम ! देवताओंके शत्रु ! तेरा बल तो मैंने तभी जान लिया जब तू सूनै परायी स्त्रीको हर (चुरा) लाया ॥ ३ ॥

तैं निसिचर पति गर्व बहूता । मैं रघुपति सेवक कर दूता ॥

जौ न राम अपमानहि डरउँ । तोहि देखत अस कौतुक करउँ ॥ ४ ॥

तू राक्षसोंका राजा और बड़ा अभिमानी है । परन्तु मैं तो श्रीरघुनाथजीके सेवक (मुग्रीव) का दूत (सेवकका भी सेवक) हूँ । यदि मैं श्रीरामजीके अपमानसे न डरूँ तो तेरे देखते-देखते ऐसा तमाशा करूँ कि—॥ ४ ॥

दो०—तोहि पटक महि सेन हति चौपट करि तव गाउँ ।

तव जुबतिन्ह समेत सठ जनकसुतहि लै जाउँ ॥ ३० ॥

तुझे जमीनपर पटककर, तेरी सेनाका संहार कर और तेरे गाँवको चौपट करके, अरे मूर्ख ! तेरी युवती स्त्रियोंसहित जानकीजीको ले जाऊँ ॥ ३० ॥

चौ०—जौ अस करौ तदपि न बड़ाई । मुणहि बघैं नहिं कछु मनुसाई ॥

कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा । अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ॥ १ ॥

यदि ऐसा करूँ, तो भी इसमें कोई बड़ाई नहीं है । मेरे हुएको मारनेमे कुछ भी पुरुषत्व (बहादुरी) नहीं है । वाममार्गी, कामी, कंजूस, अत्यन्त मूढ़, अति दरिद्र, बदनाम, बहुत बूढ़ा, ॥ १ ॥

सदा रोगबस संतन क्रोधी । विष्णु विमुख श्रुति संत विरोधी ॥

तनु पोषक निंदक अघखानी । जीवत सव सम चौदह प्राणी ॥ २ ॥

नित्यका रोगी, निरन्तर क्रोधयुक्त रहनेवाला, भगवान् विष्णुसे विमुख, वेद और संतोंका विरोधी, अपना ही शरीर पोषण करनेवाला, परायी निन्दा करनेवाला और पापकी खान (महान् पापी), ये चौदह प्राणी जीते ही मुरदेके समान हैं ॥ २ ॥

अस बिचारि खल बघउँ न तोही । अब जनि रिस उपजावसि मोही ॥

सुनि सकोप कह निसिचर नाथा । अधर दसन दसि मीजत हाथा ॥ ३ ॥

अरे दुष्ट ! ऐसा विचारकर मैं तुझे नहीं मारता । अब तू मुझमें क्रोध न पैदा कर (मुझे गुस्सा न दिला) । अङ्गदके वचन सुनकर राक्षसराज रावण दाँतोंसे आँठ काटकर, क्रोधित होकर हाथ मलता हुआ बोला—॥ ३ ॥

रे कपि अधम मरन अब चहसी । छोटे बदन बात बड़ि कहसी ॥

कट्टु जल्पसि जड़ कपि बल जाकै । बल प्रताप बुधि तेज न ताकै ॥ ४ ॥

अरे नीच बंदर ! अब तू मरना ही चाहता है ! इसीसे छोटे मुँह बड़ी बात कहता है । अरे मूर्ख बंदर ! तू जिसके बलपर कड़ुए वचन बक रहा है, उसमें बल, प्रताप, बुद्धि अथवा तेज कुछ भी नहीं है ॥ ४ ॥

दो०—अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनवास ।

सो दुख अरु जुबती विरह पुनि निसिदिन मम त्रास ॥ ३१ (क) ॥

उसे गुणहीन और मानहीन समझकर ही तो पिताने बनवास दे दिया । उसे एक तो वह (उसका) दुःख, उसपर युवती स्त्रीका विरह, और फिर रात-दिन मेरा डर रहता है ! ॥ ३१ (क) ॥

जिन्ह के बल कर गर्ब तोहि अइसे मनुज अनेक ।

खाहिं निसाचर दिवस निसि मूढ़ समुझ तजि टेक ॥ ३१ (ख) ॥

जिनके बलका तुझे गर्व है, ऐसे अनेको मनुष्योंको तो राक्षस रात-दिन खाया करते हैं । अरे मूढ़ ! जिह छोड़कर समझ (विचार कर) ॥ ३१ (ख) ॥

चौ०—जब तेहिं कीन्हि राम कै निंदा । क्रोधचंत अति भयउ कपिंदा ॥

हरि हर निंदा सुनइ जो काना । होइ पाप गोघात समाना ॥ १ ॥

जब उसने श्रीरामजीकी निन्दा की, तब तो कपिश्रेष्ठ अङ्गद अत्यन्त क्रोधित हुए । क्योंकि [शस्त्र ऐसा कहते हैं कि] जो अपने कानोंसे भगवान् विष्णु और शिवकी निन्दा सुनता है, उसे गोवधके समान पाप होता है ॥ १ ॥

कटकटान कपिकुंजर भारी । दुहु भुजदंड तमकि महि मारी ॥

डोलत धरनि सभासद खसे । चल भाजि भय मारुत ग्रसे ॥ २ ॥

वानरश्रेष्ठ अङ्गद बहुत जोरसे कटकटाये (शब्द किया) और उन्होंने तमककर (जोरसे) अपने दोनों भुजदण्डोंको पृथ्वीपर दे मारा । पृथ्वी हिलने लगी, जिससे घँटे हुए सभासद गिर पड़े, और भयरूपी पवन (भूत) से ग्रस्त होकर भाग चले ॥ २ ॥

गिरत सँभारि उठा दसकंधर । भूतल परे मुकुट अति सुंदर ॥

कछु तेहिं लै निज सिरनिह सँवारे । कछु अंगद प्रभु पास पवारे ॥ ३ ॥

रावण गिरते-गिरते सँभलकर उठा । उसके अत्यन्त सुन्दर मुकुट पृथ्वीपर गिर पड़े । कुछको तो उसने उठाकर अपने सिरोंपर सुधारकर रख लिया और कुछ अङ्गदने उठाकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके पास फेंक दिये ॥ ३ ॥

आवत मुकुट देखि कपि भागे । दिनहीं लूक परन बिधि लागे ॥

की रावन करि कोप चलाए । कुलिस चारि आवत अति धाए ॥ ४ ॥

मुकुटोंको आते देखकर वानर भागे । [सोचने लगे] विधाता ! क्या दिनमें ही उन्कापात होने (तारे टूटकर गिरने) लगे ! अथवा क्या रावणने क्रोध करके चार वज्र चलाये हैं, जो बड़े धायेके साथ (वेगसे) आ रहे हैं ! ॥ ४ ॥

कह प्रभु हँसि जनि हृदयँ डेराहू । लूक न असनि केतु नहिं राहू ॥

ए किरोट दसकंधर केरे । आवत बालितनय के प्रेरे ॥ ५ ॥

प्रभुने उनसे हँसकर कहा—मनमें डरो नहीं । ये न उल्का हैं, न वज्र हैं और न केतु या राहु ही हैं । अरे भाई ! ये तो रावणके मुकुट हैं, जो बालिपुत्र अङ्गदके फेंके हुए आ रहे हैं ॥ ५ ॥

दो०—तरकि पवनसुत कर गहे आनि धरे प्रभु पास ।

कौतुक देखहिं भालु कपि दिनकर सरिस प्रकास ॥ ३२ (क) ॥

पवनपुत्र श्रीहनुमानजीने उछलकर उनको हाथसे पकड़ लिया और लाकर प्रभुके पास रख दिया । रीछ और वानर तमाशा देखने लगे । उनका प्रकाश सूर्यके समान था ॥ ३२ (क) ॥

उहाँ सकोप दसानन सब सन कहत रिसाइ ।

धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ ॥ ३२ (ख) ॥

वहाँ (सभामें) क्रोधयुक्त रावण सबसे क्रोधित होकर कहने लगा कि—बंदरको पकड़ लो और पकड़कर मार डालो । अंगद यह सुनकर मुस्कुराने लगे ॥ ३२ (ख) ॥

चौ०—एहि बधि बेगि सुभट सब धावहु । खाहु भालु कपि जहँ जहँ पावहु ॥

मर्कटहीन करहु महि जाई । जितत धरहु तापस द्यौ भाई ॥ १ ॥

[रावण फिर बोला—] इसे मारकर सब योद्धा तुरंत दौड़ो और जहाँ-कहीं रीछ-वानरोंको पाओ, वहीं खा डालो । पृथ्वीको बंदरोंसे रहित कर दो और जाकर दोनों तपस्वी भाइयों (गम-लक्ष्मण) को जीते-जी पकड़ लो ॥ १ ॥

पुनि सकोप योलैउ जुवराजा । गाल बजावत तोहि न लाजा ॥

मरु गर काटि निलज कुलघाती । बल बिलोकि बिहरति नहिं छाती ॥ २ ॥

[रावणके ये कोपभरे वचन सुनकर] तब युवराज अङ्गद क्रोधित होकर बोले—तुझे गाल बजाते लाज नहीं आती ? अरे निलज ! अरे कुलनाशक ! गाल काटकर (आत्म-हत्या करके) मर जा ! मेरा बल देखकर भी क्या तेरी छाती नहीं फटती ? ॥ २ ॥

रे त्रियचोर कुमारग गामी । खल मलरासि मंदमति कामी ॥

सन्यपात जल्पसि दुर्यादा । भयसि कालवस खल मनुजादा ॥ ३ ॥

अरे लूके चोर ! अरे कुमार्गपर चलनेवाले ! अरे दुष्ट, पापराशि, मन्दबुद्धि और कामी ! तू सन्निपातमें क्या दुर्वचन बक रहा है ? अरे दुष्ट राक्षस ! तू कालके वश हो गया है ! ॥ ३ ॥

याको फलु पावहिगो आगें । वानर भालु चपेटन्हि लागें ॥

रामु मनुज बोलत असि बानी । गिरहिं न तव रसना अभिमानी ॥ ४ ॥

इसका फल तू आगे वानर और भालुओंके चपेटे लगनेपर पावेगा । राम मनुष्य हैं, ऐसा वचन बोलते ही, अरे अभिमानी ! तेरी जीभें नहीं गिर पड़ती ? ॥ ४ ॥

गिरिहहिं रसना संसय नाहीं । सिरन्हि समेत समर महि माहीं ॥ ५ ॥

इसमे सन्देह नहीं है कि तेरी जीभें अकेले नहीं वरं सिरोंके साथ रणभूमिमें गिरेंगी ॥ ५ ॥

सो०—सो नर क्यों दसकंध बालि बध्यों जेहिं एक सर ।

बीसहुँ लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़ ॥ ३३ (क) ॥

क्यों रे दशकन्ध ! जिसने एक ही बाणसे बालिको मार डाला वह मनुष्य है ! अरे कुजाति, अरे जड़ ! बीस आँखें होनेपर भी तू अंधा है । तेरे जन्मको धिक्कार है ॥ ३३ (क) ॥

तव सोनित कों प्यास तृषित राम सायक निकर ।

तजउँ तोहि तेहि त्रास कटुजल्पक निसिचर अधम ॥ ३३ (ख) ॥

श्रीरामचन्द्रजीके बाणसमूह तेरे रक्तकी प्याससे प्यासे हैं । [वे प्यासे ही रह जायेंगे] इस डरसे, अरे कड़वी बकवाद करनेवाले नीच राक्षस ! मैं तुझे छोड़ता हूँ ॥ ३३ (ख) ॥

चौ०—मैं तव दसन तोरिबे लायक । आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक ॥

असि रिस होति दसउ मुख तोरों । लंका गहि समुद्र महुँ बोरों ॥ १ ॥

मैं तेरे दाँत तोड़नेमें समर्थ हूँ । पर क्या करूँ ? श्रीरघुनाथजीने मुझे आज्ञा नहीं दी । ऐसा क्रोध आता है कि तेरे दसों मुँह तोड़ डालूँ और लङ्काको पकड़कर समुद्रमें डुबा दूँ ॥ १ ॥

गूलरि फल समान तव लंका । बसहु मध्य तुम्ह जंतु असंका ॥

मैं बानर फल खात न बारा । आयसु दीन्ह न राम उदारा ॥ २ ॥

तेरी लङ्का गूलरके फलके समान है । तुम सब कीड़े उसके भीतर अज्ञानवश निडर होकर बस रहे हो । मैं बंदर हूँ, मुझे इस फलको खाने क्या देर थी ? पर उदार (कृपालु) श्रीरामचन्द्रजीने वैसी आज्ञा नहीं दी ॥ २ ॥

जुगुति सुनत रावन मुसुकाई । मूढ़ सिखिहि कहँ बहुत झुठाई ॥

बालि न कबहुँ गाल अस मारा । मिलि तपसिन्ह तैं भयसि लबारा ॥ ३ ॥

अङ्गदकी युक्ति सुनकर रावण मुस्कराया [और बोला—] अरे मूर्ख ! बहुत झूठ बोलना तूने कहाँ सीखा ? बालिने तो कभी ऐसा गाल नहीं मारा । जान पड़ता है तू तपस्वियोसे मिलकर लबार हो गया है ! ॥ ३ ॥

साँचेहुँ मैं लवार भुजबीहा । जौ न उपारिउँ तव दस जीहा ॥

समुझि रामप्रताप कपि कोपा । सभा माझ पन करि पद रोपा ॥ ४ ॥

[अङ्गदने कहा—] अरे बीस भुजावाले ! यदि तेरी दसों जीमें मैंने नहीं उखाड़ ली तो सचमुच मैं लवार ही हूँ ! श्रीरामचन्द्रजीके प्रतापको समझकर (स्मरण करके) अङ्गद क्रोधित हो उठे और उन्होंने रावणकी सभामें प्रण करके (दृढ़ताके साथ) पैर रोप दिया ॥ ४ ॥

जौ मम चरन सकसि सठ टारी । फिरहिं रामु सीता मैं हारी ॥

सुनहु सुभट सब कह दससीसा । पद गहि धरनि पछारहु कीसा ॥ ५ ॥

[और कहा—] अरे मूर्ख ! यदि तू मेरा चरण हटा सके तो श्रीराम लौट जायेंगे, मैं सीताजीको हार गया । रावणने कहा—हे सब वीरो ! सुनो । पैर पकड़कर बंदरको पृथ्वीपर पछाड़ दो ॥ ५ ॥

इंद्रजीत आदिक बलवाना । हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना ॥

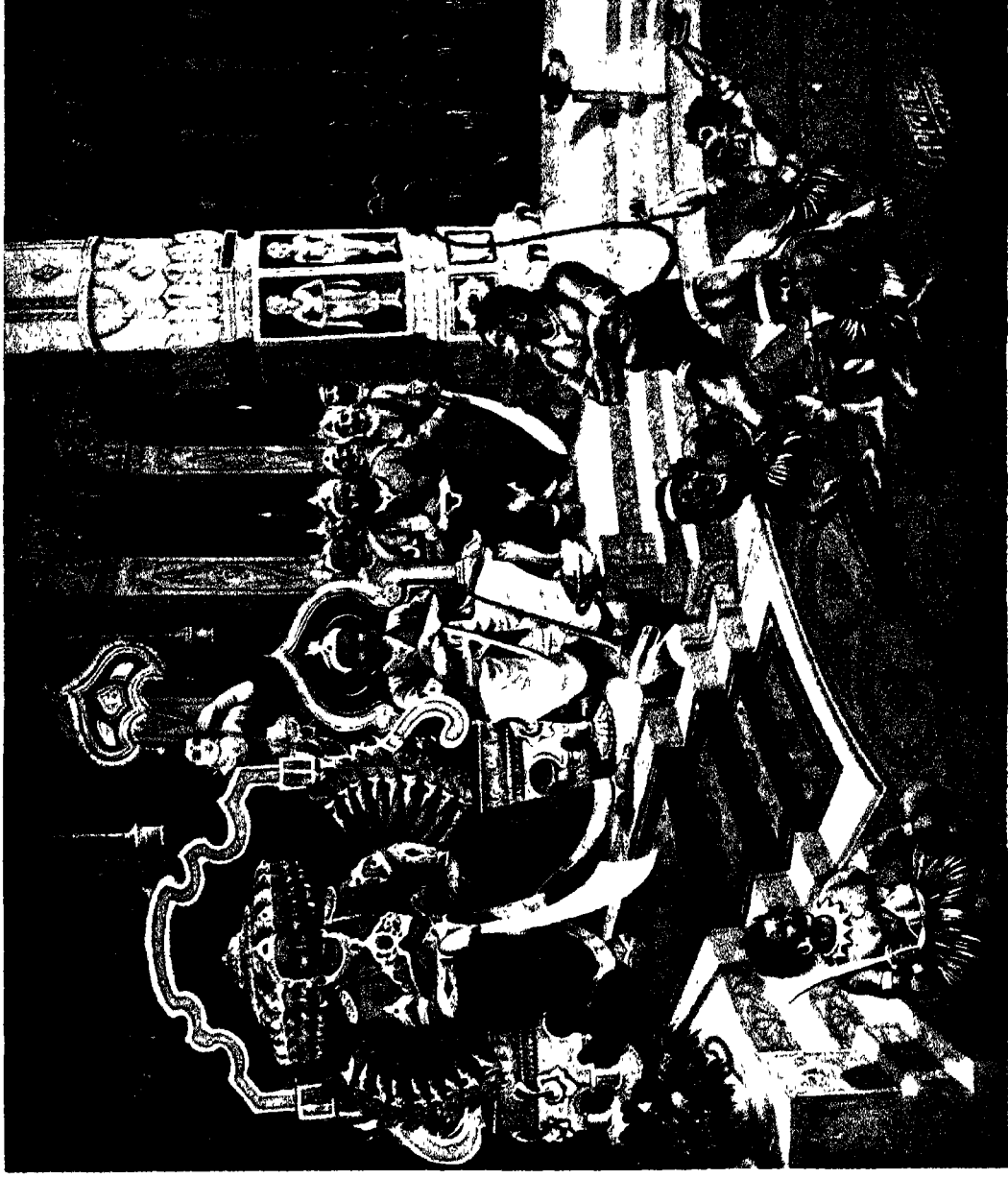
झपटहिं करि बल विपुल उपाई । पद न टरइ बैठहिं सिर नाई ॥ ६ ॥

इन्द्रजीत (मेघनाद) आदि अनेकों बलवान् योद्धा जहाँ-तहाँसे हर्षित होकर उठे । वे पूरे बलसे, बहुत-से उपाय करके झपटते हैं । पर पैर टलता नहीं, तब सिर नीचा करके फिर अपने-अपने स्थानपर जा बैठ जाते हैं ॥ ६ ॥

पुनि उठि झपटहिं सुर आराती । टरइ न कीस चरन पहिं भाँती ॥

पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी । मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी ॥ ७ ॥

रवणकी सभामें अंगद



भूमि न छाहृत कपिचरन देखत गिणु मद् भाग । कोटि बिघ्न ते संत कर मन जिमि नीति न त्याग ॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं] वे देवताओंके शत्रु (राक्षस) फिर उठकर झपटते हैं । परन्तु हे सपोंके शत्रु गरुडजी ! अङ्गदका चरण उनसे वैसे ही नहीं टलता जैसे कुयोगी पुरुष मोहरूपी वृक्षको नहीं उखाड़ सकते ॥ ७ ॥

दो०—कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाह ।

झपटहिं टरै न कपि चरन पुनि बैठहिं सिर नाह ॥ ३४ (क) ॥

करोड़ों वीर योद्धा जो बलमें मेघनादके समान थे, हर्षित होकर उठे । वे बार-बार झपटते हैं, पर वानरका चरण नहीं उठता, तब लज्जाके मारे सिर नवाकर बैठ जाते हैं ॥ ३४ (क) ॥

भूमि न छाँड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग ।

कोटि बिघ्न ते संत कर मन जिमि नीति न त्याग ॥ ३४ (ख) ॥

जैसे करोड़ों विघ्न आनेपर भी संतका मन नीतिको नहीं छोड़ता, वैसे ही वानर (अंगद) का चरण पृथ्वीको नहीं छोड़ता । यह देखकर शत्रु (रावण) का मद दूर हो गया ! ॥ ३४ (ख) ॥

चौ०—कपिवल देखि सकल हियँ हारे । उठा आपु कपि कै परचारे ॥

गहत चरन कह वालिकुमारा । मम पद गहँ न तोर उबारा ॥ १ ॥

अङ्गदका बल देखकर सब हृदयमें हार गये । तब अङ्गदके ललकारनेपर रावण स्वयं उठा । जब वह अङ्गदका चरण पकड़ने लगा तब बालिकुमार अङ्गदने कहा—मेरा चरण पकड़नेसे तेरा बचाव नहीं होगा ! ॥ १ ॥

गहसि न राम चरन सठ जाई । सुनत फिरा मन अति सकुचाई ॥

भयउ तेजहत श्री सब गई । मध्यदिवस जिमि ससि सोहई ॥ २ ॥

अरे मूर्ख ! तू जाकर श्रीरामजीके चरण क्यों नहीं पकड़ता ? यह सुनकर वह मनमें बहुत ही सकुचाकर लौट गया । उसकी सारी श्री जाती रही ! वह ऐसा तेजहीन हो गया जैसे मध्याह्नमें चन्द्रमा दिखायी देता है ॥ २ ॥

सिंघासन बैठउ सिर नाई । मानहुँ संपत्ति सकल गँवाई ॥

जगदातमा प्रानपति रामा । तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा ॥ ३ ॥

वह सिर नीचा करके सिंहासनपर जा बैठा । मानो सारी सम्पत्ति गँवाकर बैठा हो । श्रीरामचन्द्रजी जगत्भरके आत्मा हैं, और प्राणोंके स्वामी हैं । उनसे विमुख रहनेवाला कैसे शान्ति पा सकता है ! ॥ ३ ॥

उमा राम कीं भृकुटि बिलासा । होइ विस्व पुनि पावइ नासा ॥

तुन ते कुलिस कुलिस तुन करई । तासु दूत पन कहु किमि टरई ॥ ४ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! जिन श्रीरामचन्द्रजीके भ्रूविलससे विश्व उत्पन्न होता है और फिर नाशको प्राप्त होता है; जो तृणको वज्र और वज्रको तृण बना देते हैं, उनके दूतका प्रण कहो, कैसे टल सकता है ! ॥ ४ ॥

पुनि कपि कही नीति विधि नाना । मान न ताहि कालु निभराना ॥

रिपुमद मथि प्रभु सुजसु सुनायो । यह कहि चल्यो बालिनृप जायो ॥ ५ ॥

फिर अंगदने अनेकों प्रकारसे नीति कही । पर रावणने नहीं माना, क्योंकि उसका काल निकट आ गया था । शत्रुके गर्वको चूर करके अंगदने उसको प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका सुयश सुनाया और फिर वह राजा बालिका पुत्र यह कहकर चल दिया— ॥ ५ ॥

हतौ न खेत खेलाइ खेलाई । तोहि अबहिं का करौ बड़ाई ॥

प्रथमहिं तासु तनय कपि मारा । सो सुनि रावन भयउ दुखारा ॥ ६ ॥

रणभूमिमें तुझे खेला-खेलाकर न मारूँ, तबतक अभी पहलेसे क्या बड़ाई करूँ। अंगदने पहले ही (सभामें आनेसे पूर्व ही) उसके पुत्रको मार डाला था। वह संवाद सुनकर रावण दुखी हो गया ॥ ६ ॥

जातुधान अंगद पन देखी । भय व्याकुल सब भए बिसेषी ॥ ७ ॥

अंगदका प्रण सफल देखकर सब राक्षस भयसे बहुत ही व्याकुल हो गये ॥ ७ ॥

दो०—रिपुबल धरषि हरषि कपि बालितनय बलपुंज ।

पुलक सरीर नयन जल गहे राम पदकंज ॥ ३५ (क) ॥

शत्रुके बलका मर्दन कर, बलकी राशि बालिपुत्र अंगदजीने हर्षित होकर आकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमल पकड़ लिये। उनका शरीर पुलकित है और नेत्रोंमें [आनन्दाश्रुओंका] जल भरा है ॥ ३५ (क) ॥

साँझ जानि दसकंधर भवन गयउ बिलखाइ ।

मंदोदरीं रावनहि बहुरि कहा समुझाइ ॥ ३५ (ख) ॥

सन्ध्या हो गयी जानकर दशग्रीव बिलखता हुआ (उदास होकर) महलमें गया। मन्दोदरीने रावणको समझाकर फिर कहा—॥ ३५ (ख) ॥

नौ०—कंत समुझि मन तजहु कुमतिही । सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही ॥

रामानुज लघु रेख खचाई । सोउ नहिं नायेहु असि मनुसाई ॥ १ ॥

हे कान्त ! मनमें समझकर (विचारकर) कुबुद्धिको छोड़ दो। आपसे और श्रीरघुनाथजीसे युद्ध शोभा नहीं देता। उनके छोटे भाईने एक जरा-सी रेखा नौच दी थी, उसे भी आप नहीं लाँच सके, ऐसा तो आपका पुरुषत्व है ॥ १ ॥

प्रिय तुम्ह ताहि जितव संग्रामा । जाके दूत केर यह कामा ॥

कौतुक सिंधु नाघि तव लंका । आयउ कपि केहरी असंका ॥ २ ॥

हे प्रियतम ! आप उन्हें संग्राममें जीत पायेंगे, जिनके दूतका ऐसा काम है ? खेल्से ही समुद्र लाँघकर वह वानरोंमें सिंह (हनुमान्) आपकी लंकामें निर्भय आ गया ! ॥ २ ॥

रखवारे हति विपिन उजारा । देखत तोहि अच्छ तेहिं मारा ॥

जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा । कहाँ रहा बलगर्व तुम्हारा ॥ ३ ॥

रखवालोंको मारकर उसने अशोकवन उजाड़ डाला; आपकें देखते-देखते उसने अक्षयकुमारको मार डाला, और सम्पूर्ण नगरको जलकर राख कर दिया ! उस समय आपके बलका गर्व कहाँ था ? ॥ ३ ॥

अब पति मृषा गाल जनि मारहु । मोर कहा कलु हृदय विचारहु ॥

पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु । अग जग नाथ अतुलबल जानहु ॥ ४ ॥

अब हे स्वामी ! झूठ (व्यर्थ) गाल न मारिये (डाँग न हँकिये)। मेरे कहनेपर हृदयमें कुछ विचार कीजिये। हे पति ! आप श्रीरघुपतिको राजा ही मत समझिये, बल्कि अग-जगनाथ (चराचरके स्वामी) और अतुलनीय बलवान् जानिये ॥ ४ ॥

कल्याण

रावण-मन्दोदरी



अहह कंत कृत राम विरोधा । काल विवस्स मन उपज न बोधा ॥

बान प्रताप जान मारीचा । तासु कहा नहिं मानेहि नीचा ॥

जनक सभाँ अगणित भूपाला । रहे तुम्हउ बल अतुल विसाला ॥ ५ ॥

श्रीरामजीके बाणका प्रताप तो नीच मारीच भी जानता था । परन्तु आपने उसका कहना भी नहीं माना ! जनककी सभामें अगणित राजागण थे । वहाँ विशाल और अतुलनीय बलवाले आप भी थे ॥ ५ ॥

भंजि धनुष जानकी विआही । तब संग्राम जितेहु किन ताही ॥

सुरपति सुत जानइ बल थोरा । राखा जितत आँखि गहि फोरा ॥ ६ ॥

वहाँ शिवजीका धनुष तोड़कर श्रीरामजीने जानकीको ब्याहा, तब आपने उनको संग्राममें क्यों नहीं जीता ? इन्द्रपुत्र जयन्त उनके बलको कुछ-कुछ जानता है । श्रीरामजीने पकड़कर, केवल उसकी एक आँख ही फोड़ दी और उसे जीवित ही छोड़ दिया ! ॥ ६ ॥

सूपनखा कै गति तुम्ह देखी । तदपि हृदयै नहिं लाज विसेषी ॥ ७ ॥

शूर्पणखाकी दशा तो आपने देख ही ली, तो भी आपके हृदयमें [उनसे लड़नेकी बात सोचते] विशेष (कुछ भी) लजा नहीं आती ! ॥ ७ ॥

दो०—बधि विराध खर दूपनहि लीलाँ हत्यो कबंध ।

बालि एक सर मारयो तेहि जानहु दसकंध ॥ ३६ ॥

जिन्होंने विराध और खर-दूषणको मारकर लीलासे ही कबन्धको भी मार डाला । और जिन्होंने बालिको एक ही बाणसे मार दिया, हे दसकन्ध ! आप उन्हें (उनके महत्त्वको) समझिये ! ॥ ३६ ॥

चौ०—जेहिं जलनाथ बँधायउ हेल। उतरे प्रभु दल सहित सुबेला ॥

कारुनीक दिनकर कुल केतू । दूत पठाएउ तब हिन हेतू ॥ १ ॥

जिन्होंने खेलसे ही समुद्रको बँधा लिया और जो प्रभु सेनासहित सुबेल पर्यंतपर उतर पड़े, उन सूर्यकुलके ध्वजास्वरूप करणामय भगवान्ने आपके हितके लिये दूत भेजा ॥ १ ॥

सभा माझ जेहिं तब बल मथा । करिचरुथ महुँ मृगपति जथा ॥

अंगद हनुमत अनुचर जाके । रनयाँकुरे वीर अति बाँके ॥ २ ॥

जिसने बीचसभामें आकर आपके बलको उसी प्रकार मथ डाला जैसे हाथियोंके झुंडमें आकर सिंह [उसे छिन्न-भिन्न कर डालता है] । रणमें बाँके अत्यन्त विकट वीर अंगद और हनुमान् जिनके सेवक हैं, ॥ २ ॥

तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहइ । मुधा मान ममता मद बहइ ॥

अहह कंत कृत रामबिरोधा । कालविबस मन उपज न बोधा ॥ ३ ॥

हे पति ! उन्हें आप बार-बार मनुष्य कहते हैं । आप व्यर्थ ही मान, ममता और मदका बोझा ढो रहे हैं । हा कान्त ! आपने श्रीरामजीसे विरोध कर लिया ! और कालके विशेष वश होनेसे आपके मनमें अब भी ज्ञान नहीं उत्पन्न होता ॥ ३ ॥

काल दंड गहि काहु न मारा । हरि धर्म बल बुद्धि बिचारा ॥

निकट काल जेहि आवत साई । तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाई ॥ ४ ॥

काल दण्ड (लाठी) लेकर किसीको नहीं मारता । वह धर्म, बल, बुद्धि और विचारको हर लेता है । हे स्वामी ! जिसका काल (मरण-समय) निकट आ जाता है, उसे आपकी ही तरह भ्रम हो जाता है ॥ ४ ॥

दो०—दुइ सुत मरे दहेउ पुर अजहुँ पूर पिय देहु ।

कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जसु लेहु ॥ ३७ ॥

आपके दो पुत्र मारे गये और नगर जल गया । [जो हुआ सो हुआ ।] हे प्रियतम ! अब भी [इस भूलकी] पूर्ति (समाप्ति) कर दीजिये (श्रीरामजीसे बैर त्याग दीजिये) और हे नाथ ! कृपाके समुद्र श्रीरघुनाथजीको भजकर निर्मल यश लीजिये ॥ ३७ ॥

चो०—नारि बचन सुनि विसिख समाना । सभाँ गयउ उठि होत बिहाना ॥

बैठ जाइ सिंघासन फूली । अति अभिमान त्रास सब भूली ॥ १ ॥

लौके बाणके समान वचन सुनकर वह सबेरा होते ही उठकर सभामें चला गया, और सारा भय भुलाकर अत्यन्त अभिमानमें फूलकर सिंहासनपर जा बैठा ॥ १ ॥

इहाँ राम अंगदहि बोलावा । आइ चरन पंकज सिर नावा ॥

अति आदर समीप बैठारी । बोले विहँसि कृपाल खरारी ॥ २ ॥

यहाँ (सुबेल पर्वतपर) श्रीरामजीने अंगदको बुलाया । उन्होंने आकर चरणकमलोंमें सिर नवाया । बड़े आदरसे उन्हें पास बैठकर कृपाल खरारि श्रीरामजी हँसकर बोले—॥ २ ॥

बालितनय कौतुक अति मोही । तात सत्य कहू पछउँ तोही ॥

रावनु जातुधान कुल टीका । भुजबल अतुल जासु जग लीका ॥ ३ ॥

हे बालिके पुत्र ! मुझे बड़ा कौतूहल है । हे तात ! इसीसे मैं तुमसे पूछता हूँ, सत्य कहना । जो रावण राक्षसोंके कुलका तिलक है, और जिसके अतुलनीय बाहुबलकी जगत् भरमें धाक है ; ॥ ३ ॥

तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए । कहहु तात कवनी विधि पाए ॥

सुनु सर्वग्य प्रनत सुखकारी । मुकुट न होहिं भूप गुन चारी ॥ ४ ॥

उसके चार मुकुट तुमने फेंके, हे तात ! बताओ, तुमने उनको किस प्रकारसे पाया ? [अङ्गदने कहा—] हे सर्वज्ञ ! हे शरणागतको सुख देनेवाले ! सुनिये । वे मुकुट नहीं हैं, वे तो राजाके चार गुण हैं ॥ ४ ॥

साम दान अरु दंड बिभेदा । नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा ॥

नीति धर्मके चरन सुहाए । अस जियँ जानि नाथ पहिं आए ॥ ५ ॥

हे नाथ ! वेद कहते हैं कि साम, दान, दण्ड और भेद, ये चारों राजाके हृदयमें बसते हैं । ये नीति-धर्मके चार सुन्दर चरण हैं । [किन्तु रावणमें धर्मका अभाव है] ऐसा जीमें जानकर ये नाथके पास आ गये हैं ॥ ५ ॥

दो०—धर्महीन प्रभुपद विमुख काल विवस दससीस ।

तेहि परिहरि गुन आए सुनहु कोसलाधीस ॥ ३८ (क) ॥

दशशीश रावण धर्महीन, प्रभुके पदसे विमुख और कालके वशमें है । इसलिये हे कोसलराज ! सुनिये, वे गुण रावणको छोड़कर आपके पास आ गये हैं ॥ ३८ (क) ॥

परम चतुरता श्रवन सुनि विहँसे राम उदार ।

समाचार पुनि सब कहे गढ़ के बालिकुमार ॥ ३८ (ख) ॥

अङ्गदकी परम चतुरतापूर्ण उक्ति कानोंसे सुनकर उदार श्रीरामचन्द्रजी हँसने लगे । फिर बालिपुत्रने किलेके (लङ्काके) सब समाचार कहे ॥ ३८ (ख) ॥

चौ०—रिपु के समाचार जब पाए । राम सचिव सब निकट बोलाए ॥

लंका बाँके चारि दुआरा । केहि बिधि लागिअ करहु बिचारा ॥ १ ॥

जब शत्रुके समाचार प्राप्त हो गये, तब श्रीरामचन्द्रजीने सब मन्त्रियोंको पास बुलाया [और कहा—] लङ्काके चार बड़े विकट दरवाजे हैं, उनपर किस तरह आक्रमण किया जाय, इसपर विचार करो ॥ १ ॥

तब कपीस रिच्छेस विभीषण । सुमिरि हृदयँ दिनकर कुल भूषण ॥

करि बिचार तिन्ह मंत्र दढ़ावा । चारि अनी कपि कटकु बनावा ॥ २ ॥

तब वानरराज सुग्रीव, ऋक्षपति जाम्बवान और विभीषणने हृदयमें सूर्यकुलके भूषण श्रीरघुनाथजीका स्मरण किया और विचार करके उन्होंने कर्तव्य निश्चित किया । वानरोंकी सेनाके चार दल बनाये ॥ २ ॥

जथाजोग सेनापति कीन्हें । जूथप सकल बोलि तब लीन्हें ॥

प्रभु प्रताप कहि सब समुझाए । सुनि कपि सिंघनाद करि धाए ॥ ३ ॥

और उनके लिये यथायोग्य (जैसे चाहिये वैसे) सेनापति नियुक्त किये । फिर सब यूथपतियोंको बुला लिया और प्रभुका प्रताप कहकर सबको समझाया, जिसे सुनकर वानर सिंहके समान गर्जन करके दौड़े ॥ ३ ॥

हरषित राम चरन सिर नावहिं । गहि गिरि सिखर वीर सब धावहिं ॥

गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीसा । जय रघुवीर कोसलाधीसा ॥ ४ ॥

वे हर्षित होकर श्रीरामजीके चरणोंमें सिर नवाते हैं और पर्वतोंके शिखर ले-लेकर सब वीर दौड़ते हैं । 'कोसलराज रघुवीरकी जय हो,' पुकारते हुए भालू और वानर गरजते और ललकारते हैं ॥ ४ ॥

जानत परम दुर्ग अति लंका । प्रभु प्रताप कपि चले असंका ॥

घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी । मुखहिं निसान वजावहिं भेरी ॥ ५ ॥

लङ्काको अत्यन्त श्रेष्ठ (अजेय) किला जानते हुए भी वानर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके प्रतापसे निडर होकर चले । चारों ओरसे घेरी हुई बादलोंकी घटाकी तरह लङ्काको चारों दिशाओंसे घेरकर वे मुँहसे ही ढंके और भेरी बजाने लगे ॥ ५ ॥

दो०—जयति राम जय लछिमन जय कपीस सुग्रीव ।

गर्जहिं सिंघनाद कपि भालु महा बलसीव ॥ ३९ ॥

महान् बलकी सीमा वे वानर-भालू सिंहके समान ऊँचे स्वरसे 'श्रीरामजीकी जय,' 'लक्ष्मणजीकी जय,' 'वानरराज सुग्रीवकी जय' ऐसी गर्जना करने लगे ॥ ३९ ॥

चौ०—लंकाँ भयउ कोलाहल भारी । सुना दसानन अति अहंकारी ॥

देखहु वनरन्ह केरि ढिठाई । विहँसि निसाचर सेन बोलाई ॥ १ ॥

लङ्कामें बड़ा भारी कोलाहल (कोहराम) मच गया । अत्यन्त अहङ्कारी रावणने उसे सुनकर कहा— वानरोंकी ढिठाई तो देखो ! यह कहते हुए हँसकर उसने राक्षसोंकी सेना बुलायी ॥ १ ॥

आए कीस काल के प्रेरे । छुधावत सब निसिचर मेरे ॥

अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा । गृह बैठे अहार बिधि दीन्हा ॥ २ ॥

बंदर कालकी प्रेरणासे चले आये हैं। मेरे राक्षस सभी भूखे हैं। विधातने इन्हें घर बैठे भोजन भेज दिया। ऐसा कहकर उस मूर्खने अट्टहास किया (वह बड़े जोरसे खिलखिलाकर हँसा) ॥ २ ॥

सुभट सकल चारिहुँ दिसि जाहू। धरि धरि भालु कीस सब खाहू ॥

उमा रावनहि बस अभिमाना। जिमि टिटिभ खग सूत उताना ॥ ३ ॥

[और बोला—] हे वीरो ! सब लोग चारों दिशाओंमें जाओ और रीछ-वानर सबको पकड़-पकड़कर खाओ। [शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! रावणको ऐसा अभिमान था जैसे टिटिहिरी पक्षी पैर ऊपरकी ओर करके सोता है [मानो आकाशको थाम लेगा] ॥ ३ ॥

चले निसाचर आयसु मागी। गहि कर भिंडि पाल बर साँगी ॥

तोमर मुद्गर परसु प्रचंडा। सूल कृपान परिघ गिरिखंडा ॥ ४ ॥

आज्ञा माँगकर और हाथोंमें उत्तम भिंडिपाल, साँगी (बरछी), तोमर, मुद्गर, प्रचण्ड फरसे, सूल, दुभारी तलवार, परिघ और पहाड़ोंके टुकड़े लेकर राक्षस चले ॥ ४ ॥

जिमि अरुनोपल निकर निहारी। घावहिं सठ खग मांस अहारी ॥

चोंच भंग दुख तिन्हहि न सूझा। तिमि घाप मनुजाद अबूझा ॥ ५ ॥

जैसे मूर्ख मांसाहारी पक्षी लाल पत्थरोंका समूह देखकर उसपर दूटते हैं, पत्थरोंपर लगनेसे चोंच टूटनेका दुःख उन्हें नहीं सूझता, वैसे ही ये वेममज्ञ राक्षस दौड़े ॥ ५ ॥

दो०—नानायुध सर चाप धर जातुधान बलवीर।

कोट कँगूरन्हि चढ़ि गए कोटि कोटि रनधीर ॥ ४० ॥

अनेकों प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और धनुष-बाण धारण किये करोड़ों बलवान् और रणधीर राक्षस परकोटेके कँगूरोंपर चढ़ गये ॥ ४० ॥

चौ०—कोट कँगूरन्हि सोहहिं कैसे। मेरु के संगनि जनु घन बैसे ॥

बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होइ भटन्हि मन चाऊ ॥ १ ॥

वे परकोटेके कँगूरोंपर कैसे शोभित हो रहे हैं, मानो मुमेरके शिखरोंपर बादल बैठे हों। जुझाऊ ढोल और डंके आदि बज रहे हैं, जिनकी ध्वनि सुनकर योद्धाओंके मनमें लड़नेका चाव होता है ॥ १ ॥

बाजहिं भेरि नफ़ेरि अपारा। सुनि कादर उर जाहिं दरारा ॥

देखिन्ह जाइ कपिन्ह के ठट्टा। अति विसाल तनु भालु सुभट्टा ॥ २ ॥

अगणित नफीरी और भेरी बज रही हैं, जिन्हें सुनकर कायरोंके हृदयमें दरारें पड़ जाती हैं। उन्होंने जाकर अत्यन्त विशाल शरीरवाले महान् योद्धा वानर और भालुओंके ठट्ट (समूह) देखे ॥ २ ॥

घावहिं गनहिं न अवघट घाटा। पर्वत फोरि करहिं गहि बाटा ॥

कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं। दसन ओठ फाटहिं अति तर्जहिं ॥ ३ ॥

[देखा कि] वे रीछ-वानर दौड़ते हैं; घाट-कुघाट [ऊँची-नीची, विकट या सीधी जगह] कुछ नहीं गिनते। पकड़कर पहाड़ोंको फोड़कर रास्ता बना लेते हैं। करोड़ों योद्धा कटकटाते और गर्जते हैं, दाँतोंसे ओंठ काटते और खूब डपटते हैं ॥ ३ ॥

उत रावन इत राम दोहाई। जयति जयति जय परी लराई ॥

निसिचर सिखर समूह ढहावहिं। कूदि धरहिं कपि फेरि खलावहिं ॥ ४ ॥

उपर रावणकी और इधर श्रीरामजीकी दोहाई बोली जा रही है। 'जय' 'जय' 'जय' की ध्वनि होते ही लड़ाई छिड़ गयी। राक्षस पहाड़ोंके ढेर-के-ढेर शिखरोंको फेंकते हैं। वानर क्रूढ़कर उन्हें पकड़ लेते हैं और वापस मारते हैं ॥ ४ ॥

छं०—घरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं।

झपटहिं चरन गहि पटक महि भजि चलत बहुरि पचारहीं ॥

अति तरल तरुन प्रताप तरपहिं तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गए।

कपि भालु चढ़ि मंदिरन्ह जहँ तहँ रामजसु गावत भए ॥

प्रचण्ड वानर और भाव् पर्वतोंके टुकड़े ले-लेकर किलेपर डालते हैं। वे झपटते हैं, और राक्षसोंके पैर पकड़कर उन्हें पृथ्वीपर पटककर भाग चलते हैं और फिर ललकारते हैं। बहुत ही चञ्चल और बड़े तेजस्वी वानर-भाव् बड़ी कुर्तसे उछलकर किलेपर चढ़-चढ़कर गये और जहाँ-तहाँ महलोंमें धुसकर श्रीरामजीका यश गाने लगे।

दो०—एकु एकु निसिचर गहि पुनि कपि चले पराइ।

ऊपर आपु हेठ भट गिरहिं धरनि पर आइ ॥ ४१ ॥

फिर एक-एक राक्षसको पकड़कर वे वानर भाग चले। ऊपर आप और नीचे राक्षस योद्धा—इस प्रकार वे किलेपरसे धरतीपर आ गिरते हैं ॥ ४१ ॥

चौ०—राम प्रताप प्रबल कपिजुथा। मर्दहिं निसिचर सुभट बरुथा ॥

चढ़े दुर्ग पुनि जहँ तहँ वानर। जय रघुवीर प्रताप दिवाकर ॥ १ ॥

श्रीरामजीके प्रतापसे प्रबल वानरोंके झुंड राक्षस योद्धाओंके समूह-के-समूह योद्धाओंको मसल रहे हैं। वानर फिर जहाँ-तहाँ किलेपर चढ़ गये। और प्रतापमें सूर्यके समान श्रीरघुवीरकी जय बोलने लगे ॥ १ ॥

चले निसाचर निकर पराई। प्रबल पवन जिमि धन समुदाई ॥

हाहाकार भयउ पुर भारी। रोवहिं बालक आतुर नारी ॥ २ ॥

राक्षसोंके झुंड वैसे ही भाग चले, जैसे जोरकी हवा चलनेपर बादलोंके समूह तितर-बितर हो जाते हैं। लङ्का नगरीमें बड़ा भारी हाहाकार मच गया। बालक, बियाँ और रोगी [असमर्थताके कारण] रोने लगे ॥ २ ॥

सब मिलि देहिं रावणहि गारी। राज करत एहिं मृत्यु हँकारी ॥

निज दल विचल सुनी तेहिं काना। फेरि सुभट लंकेस रिसाना ॥ ३ ॥

सब मिलकर रावणको गालियाँ देने लगे कि राज्य करते हुए हमने मृत्युको बुला लिया। रावणने जब अपनी सेनाका विचलित होना कानोंसे सुना, तब भागते हुए योद्धाओंको लौटाकर वह क्रोधित होकर बोला— ॥ ३ ॥

जो रन विमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना ॥

सर्वसु खाइ भोग करि नाना। समरभूमि भए बहुभ प्राणा ॥ ४ ॥

मैं जिसे रणसे पीठ देकर भागा हुआ अपने कानों सुनूँगा, उसे स्वयं भयानक दुधारी तलवारसे मारूँगा। मेरा सब कुछ खाया, भौँति-भौँतिके भोग किये और अब रणभूमिमें प्राण प्यारे हो गये ? ॥ ४ ॥

उग्र बचन सुनि सकल डेराने। चले क्रोध करि सुभट लज्जाने ॥

सन्मुख मरन बीर कै सोभा। तब तिन्ह तजा प्राण कर लोभा ॥ ५ ॥

रावणके उग्र (कठोर) वचन सुनकर सब वीर डर गये और लजित होकर क्रोध करके युद्धके लिये लौट चले। रणमें सम्मुख मरनेमें ही वीरकी शोभा है। यह सोचकर तब उन्होंने प्राणोंका लोभ छोड़ दिया ॥ ५ ॥

दो०—बहु आयुध धर सुभट सब भिरहिं पचारि पचारि ।

व्याकुल किए भालु कपि परिष त्रिखलन्ह मारि ॥ ४२ ॥

बहुतसे अस्त्र-शस्त्र धारण किये सब वीर ललकार-ललकारकर भिड़ने लगे। उन्होंने परिघों और त्रिशूलोंसे मार-मारकर सब रीछ-वानरोंको व्याकुल कर दिया ॥ ४२ ॥

चौ०—भय आतुर कपि भागन लागे। जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे ॥

कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता। कहँ नल नील दुविद बलवंता ॥ १ ॥

[शिवजी कहते हैं—] वानर भयातुर होकर भागने लगे, यद्यपि हे उमा ! आगे चलकर वे ही जीतेंगे। कोई कहता है—अङ्गद-हनुमान् कहाँ हैं ? बलवान् नल, नील और द्विविद कहाँ है ? ॥ १ ॥

निज दल बिकल सुना हनुमाना। पच्छिम द्वार रहा बलवाना ॥

मेघनाद तहँ करइ लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई ॥ २ ॥

हनुमान्जीने जब अपने दलको बिकल (भयभीत) हुआ सुना, उस समय वे बलवान् पश्चिम द्वारपर थे। वहाँ उनसे मेघनाद युद्ध कर रहा था। वह द्वार टूटता न था, बड़ी भारी कठिनाई हो रही थी ॥ २ ॥

पवनतनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रबल कालसम जोधा ॥

कूदि लंकगढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहँ धावा ॥ ३ ॥

तब पवनपुत्र हनुमान्जीके मनमें बड़ा भारी क्रोध हुआ। वे कालके समान योद्धा बड़े जोरसे गरजे और कूदकर लङ्काके किलेपर आ गये और पहाड़ लेकर मेघनादकी ओर दौड़े ॥ ३ ॥

भंजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता ॥

दुसरें सूत बिकल तेहि जाना। स्यंदन घालि तुरत गृह आना ॥ ४ ॥

रथ तोड़ डाला। सारथीको मार गिराया और मेघनादकी छातीमें लात मारी। दूसरा सारथी मेघनादको व्याकुल जानकर, उसे रथमें डालकर, तुरंत घर ले आया ॥ ४ ॥

दो०—अंगद सुना पवनसुत गढ़ पर गयउ अकेल ।

रन बाँकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपि खेल ॥ ४३ ॥

इधर अङ्गदने सुना कि पवनपुत्र हनुमान् किलेपर अकेले ही गये हैं, तो रणमें बाँके वीर बालिपुत्र अङ्गद वानरके खेलकी तरह उछलकर किलेपर चढ़ गये ॥ ४३ ॥

चौ०—जुद्ध विरुद्ध क्रुद्ध द्वौ वंदर। राम प्रताप सुमिरि उर अंतर ॥

रावन भवन चढ़े द्वौ धाई। करहिं कोसलाधीस दोहाई ॥ १ ॥

युद्धमें शत्रुओंके विरुद्ध दोनों वानर क्रुद्ध हो गये। हृदयमें श्रीरामजीके प्रतापका स्मरण करके दोनों दौड़कर रावणके महलपर जा चढ़े और कोसलराज श्रीरामजीकी दुहाई बोलने लगे ॥ १ ॥

कलस सहित गहि भवनु दहावा। देखि निसावरपति भय पावा ॥

नारिबुंद कर पीटहिं छाती। अब दुइ कपि आप उतपाती ॥ २ ॥

उन्होंने कलशसहित महलको पकड़कर ढहा दिया। यह देखकर राक्षसराज रावण डर गया। सब स्त्रियाँ हाथोंसे छाती पीटने लगीं [और कहने लगीं—] अबकी बार दो उत्पाती वानर [एक साथ] आ गये ॥ २ ॥

कपिलोला करि तिन्हहि डेरावहिं । रामचंद्र कर सुजसु सुनावहिं ॥

पुन कर गहि कंचन के खंभा । कहेन्हि करिअ उत्तपात अरंभा ॥ ३ ॥

वानरलीला करके (घुड़की देकर) दोनों उनको डराते हैं, और श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर यश सुनाते हैं। फिर सौनेके खंभोंको हाथोंसे पकड़कर उन्होंने परस्पर कहा कि अब उत्पात आरम्भ करें ॥ ३ ॥

गर्जि परे रिपु कटक मझारी । ढागे मद भुजबल भारी ॥

काहुहि लात चपेटन्हि केहू । भजहु न रामहि सो फल लेहू ॥ ४ ॥

वे गर्जकर शत्रुकी सेनाके बीचमें कूद पड़े और अपने भारी भुजबलसे उसका मर्दन करने लगे। किसीकी लात मारी, किसीको घापड़ मारे और कहा कि तुम श्रीरामजीको नहीं भजते, उसका यह फल ले ॥ ४ ॥

दो०—एक एक सों मर्दहिं तोरि चलावहिं मुंड ।

रावन आगे परहिं ते जुनु फूटहिं दधिकुंड ॥ ४४ ॥

एकको दूसरेसे रगड़कर मसल डालते हैं और सिरोंको तोड़ फेंकते हैं। वे सिर जाकर रावणके सामने गिरते हैं और ऐसे फूटते हैं मानो दहीके कूड़े फूट रहे हों ॥ ४४ ॥

चौ०—महा महा मुखिया जे पावहिं । ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं ॥

कहइ विभीषनु तिन्ह के नामा । देहिं राम तिन्हहु निज घामा ॥ १ ॥

जिन बड़े-बड़े मुखियों (प्रधान सेनापतियों) को पकड़ पाते हैं उनके पैर पकड़कर उन्हें प्रभुके पास फेंक देते हैं। विभीषणजी उनके नाम बतलाते हैं, और श्रीरामजी उन्हें भी अपना (परम पद) धाम देते हैं ॥ १ ॥

खल मनुजाद द्विजामिष भोगी । पावहिं गति जो जाचत जोगी ॥

उमा राम मृदुचित करुनाकर । बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर ॥ २ ॥

ब्राह्मणोंका मांस खानेवाले वे नरभोजी दुष्ट राक्षस भी वह परम गति पाते हैं जिसकी योगी भी याचना किया करते हैं। [शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! श्रीरामजी बड़े ही कोमलहृदय और करुणाकी खान हैं। वे सोचते हैं कि राक्षस मुझे वैरभावसे ही सही, स्मरण तो करते ही हैं ॥ २ ॥

देहिं परमगति सो जिय जानी । अस कृपाल को कहहु भवानी ॥

अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी । नर मतिमंद ते परम अभागी ॥ ३ ॥

ऐसा हृदयमें जानकर वे उन्हें परमगति देते हैं। हे भवानी ! कहो तो ऐसे कृपालु और कौन हैं ! यह सुनकर भी जो मनुष्य भ्रम त्यागकर ऐसे शत्रुओंको भी परमगति देनेवाले कोमलहृदय दयामय प्रभुका भजन नहीं करते, वे अत्यन्त मन्दबुद्धि और परम भाग्यहीन हैं ॥ ३ ॥

अंगद अरु हनुमंत प्रवेसा । कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेसा ॥

लंकाँ द्वी कपि सोहहिं कैसैं । मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसैं ॥ ४ ॥

श्रीरामजीने कहा कि अङ्गद और हनुमान् किलेमें घुस गये हैं। दोनों वानर लङ्कामें विध्वंस करते कैसे सुशोभित हैं, जैसे दो मन्दराचल समुद्रको मथ रहे हों ॥ ४ ॥

दो०—भुजबल रिपुदल दलमलि देखि दिवस कर अंत ।

कूदे जुगल विगत भ्रम आए जहँ भगवंत ॥ ४५ ॥

भुजाओंके बलसे शत्रुकी सेनाको कुचलकर और मसलकर, फिर दिनका अन्त होता देखकर हनुमान् और अङ्गद दोनों कूद पड़े, और भ्रम (थकावट) रहित होकर वहाँ आ गये जहाँ भगवान् श्रीरामजी थे ॥ ४५ ॥

चौ०—प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाए । देखि सुभट रघुपति मन भाए ॥

राम कृपा करि जुगल निहारे । भए विगतभ्रम परम सुखारे ॥ १ ॥

उन्होंने प्रभुके चरणकमलोंमें सिर नवाये । उत्तम योद्धाओंको देखकर श्रीरघुनाथजी मनमें बहुत प्रसन्न हुए । श्रीरामजीने कृपा करके दोनोंको देखा, जिससे वे भ्रमरहित और परम सुखी हो गये ॥ १ ॥

गए जानि अंगद हनुमाना । फिरे भालु मर्कट भट नाना ॥

जातुधान प्रदोष बल पाई । धाए करि दससीस दोहाई ॥ २ ॥

अङ्गद और हनुमान्को गये जानकर भालू और वानर वीर लौट पड़े । राक्षस प्रदोषकाल (रात्रि) का बल पाकर रावणकी दुहाई देते हुए वानरोंपर दौड़े ॥ २ ॥

निसिचर अनी देखि कपि फिरे । जहँ तहँ कटकटाइ भट भिरे ॥

द्वौ दल प्रबल पचारि पचारी । लरत सुभट नहिं मानहिं हारी ॥ ३ ॥

राक्षसोंकी सेना आती देखकर वानर लौट पड़े और वे योद्धा जहाँ-तहाँ कटकटाकर भिड़ गये । दोनों ही दल बड़े बलवान् हैं । योद्धा ललकार-ललकारकर लड़ते हैं, कोई हार नहीं मानते ॥ ३ ॥

महावीर निसिचर सबं कारे । नाना बरन बलीमुख भारे ॥

सबल जुगल दल समबल जोधा । कौतुक करत लरत करि क्रोधा ॥ ४ ॥

सभी राक्षस महान् वीर और अत्यन्त काले हैं और वानर विशालकाय अनेकों रंगोंके हैं । दोनों ही दल बलवान् हैं और समान बलवाले योधा हैं । वे क्रोध करके लड़ते हैं और खेल करते (वीरता दिखलाते) हैं ॥ ४ ॥

प्राविट सरद पयोद घनेरे । लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे ॥

अनिप अकंपन अरु अतिकाया । विचलत सेन कीन्हि इन्ह माया ॥ ५ ॥

[राक्षस और वानर युद्ध करते हुए ऐसे जान पड़ते हैं] मानो क्रमशः वर्षा और शरदऋतुके बहुत-से बादल पवनसे प्रेरित होकर लड़ रहे हों । अकंपन और अतिकाय, इन सेनापतियोंने अपनी सेनाको विचलित होते देखकर माया की ॥ ५ ॥

भयउ निमिप महँ अति अँधिआरा । वृष्टि होइ रुधिरोपल छारा ॥ ६ ॥

पलभरमें अत्यन्त अन्धकार हो गया । न्यून, पत्थर और राखकी वर्षा होने लगी ॥ ६ ॥

दो०—देखि निबिड़ तम दसहुँ दिसि कपिदल भयउ स्वभार ।

एकहि एक न देखई जहँ तहँ करहिं पुकार ॥ ४६ ॥

दसों दिशाओंमें अत्यन्त घना अन्धकार देखकर वानरोंकी सेनामें खलबली पड़ गयी । एकको एक (दूसरा) नहीं देख सकता और सब जहाँ-तहाँ पुकार कर रहे हैं ॥ ४६ ॥

चौ०—सकल मरमु रघुनायक जाना । लिए बोलि अंगद हनुमाना ॥

समाचार सब कहि समुझाए । सुनत कोपि कपिकुंजर धाए ॥ १ ॥

भीरघुनाथजी सब रहस्य जान गये । उन्होंने अङ्गद और हनुमान्‌को बुला लिया और सब समाचार कहकर समझाया । सुनते ही वे दोनों कपिश्रेष्ठ क्रोध करके दौड़े ॥ १ ॥

पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा । पावक सायक सपदि चलावा ॥

भयउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं । ग्यान उदयँ जिमि संसय जाहीं ॥ २ ॥

फिर कृपाल श्रीरामजीने हँसकर धनुष चढ़ाया और तुरंत ही अग्निबाण चलाया, जिससे प्रकाश हो गया, कहीं अँधेरा नहीं रह गया । जैसे शानके उदय होनेपर संशय चले जाते हैं ॥ २ ॥

भालु बलीमुख पाइ प्रकासा । घाप हरप विगत श्रम प्राप्ता ॥

हनुमान अंगद रन गाजे । हाँक सुनत रजनीचर भाजे ॥ ३ ॥

भालू और वानर प्रकाश पाकर श्रम और भयसे रहित तथा प्रसन्न होकर क्रोध करके दौड़े । हनुमान् और अङ्गद रणमें गरज उठे । उनकी हाँक सुनते ही राक्षस भाग छूटे ॥ ३ ॥

भागत भट पटकहिं धरि धरनी । करहिं भालु कपि अद्भुत करनी ॥

गहि पद डारहिं सागर माहीं । मकर उरग झप धरि धरि खाहीं ॥ ४ ॥

भागते हुए राक्षस योद्धाओंको वानर और भालू पकड़कर पृथ्वीपर पटकते हैं और अद्भुत (आश्चर्यजनक) करनी करते हैं । पैर पकड़कर उन्हें समुद्रमें डाल देते हैं । वहाँ मगर, साँप और मच्छ उन्हें पकड़कर खा डालते हैं ॥ ४ ॥

दो०—कछु मारे कछु घायल कछु गढ़ चढ़े पराइ ।

गर्जहिं भालु बलीमुख रिपुदल बल बिचलाइ ॥ ४७ ॥

कुछ मारे गये, कुछ घायल हुए, कुछ भागकर गढ़पर चढ़ गये । अपने बलसे शत्रुदलको विचलित करके रीछ और वानर वीर गरज रहे हैं ॥ ४७ ॥

चो०—निसा जानि कपि चारिउ अनी । आप जहाँ कोसलाधनी ॥

राम कृपा करि चितवा सवही । भय विगतश्रम वानर तबही ॥ १ ॥

रात हुई जानकर वानरोंकी चारों सेनाएँ (टुकड़ियाँ) वहाँ आयी, जहाँ कोसलपति श्रीरामजी थे । श्रीरामजीने ज्यों ही सबको कृपा करके देखा, त्यों ही वे वानर श्रमरहित हो गये ॥ १ ॥

उहाँ दसानन सचिव हँकारे । सब सन कहेसि सुभट जे मारे ॥

आघा कटकु कपिन्ह संघारा । कहहु वेगि का करिअ विचारा ॥ २ ॥

वहाँ लङ्कामें रावणने मन्त्रियोंको बुलाया, और जो योद्धा मारे गये थे उन सबको सबसे बताया । [उसने कहा—] वानरोंने आधी सेनाका संहार कर दिया । अब शीघ्र बताओ, क्या विचार (उपाय) करना चाहिये ? ॥ २ ॥

माल्यवंत अति जरठ निसाचर । रावन मातु पिता मंत्री वर ॥

बोला बचन नीति अति पावन । सुनहु तात कछु मोर सिखावन ॥ ३ ॥

माल्यवंत अत्यन्त बूढ़ा राक्षस था । वह रावणकी माताका पिता अर्थात् उसका नाना और श्रेष्ठ मन्त्री था । वह अत्यन्त पवित्र नीतिके वचन बोला—हे तात ! कुछ मेरी सीख भी सुनो—॥ ३ ॥

जब ते तुम्ह सीता हरि आनी । असगुन होहिं न जाहिं बखानी ॥

वेद पुरान जासु जसु गायो । राम बिमुख काहुँ न सुख पायो ॥ ४ ॥

जबसे तुम सीताको हर लाये हो, तबसे इतने अपशकुन हो रहे हैं कि जो वर्णन नहीं किये जा सकते ।
वेद-पुराणोंने जिनका यश गाया है, उन रामसे विमुख होकर किसीने सुख नहीं पाया ॥ ४ ॥

दो०—हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान् ।

जेहि मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान् ॥ ४८ (क) ॥

भाई हिरण्यकशिपुसहित हिरण्याक्षको और बलवान् मधु-कैटभको जिन्होंने मारा था, वे ही कृपाके समुद्र
भगवान् अवतरित हुए हैं ॥ ४८ (क) ॥

मासपारायण पचीसवाँ विश्राम

कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध ।

सिब बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध ॥ ४८ (ख) ॥

जो कालस्वरूप हैं, दुष्टरूपी बनके भस्म करनेवाले अग्नि हैं, गुणधाम और ज्ञानघन हैं, एवं शिवजी
और ब्रह्माजी जिनकी सेवा करते हैं, उनसे वैर कैसा ? ॥ ४८ (ख) ॥

चौ०—परिहरि बयरु देहु वैदेही । भजहु कृपानिधि परम सनेही ॥

ताके बचन वान सम लागे । करिआ मुह करि जाहि अभाग ॥ १ ॥

अतः वैर छोड़कर उन्हें जानकीजीकी दे दो और कृपानिधान परम स्नेही श्रीरामजीका भजन करो ।
रावणको उसके वचन बाणके समान लगे । [वह बोले—] अरे अभाग ! मुँह काल करके निकल जा ॥ १ ॥

बूढ़ भणसि न त मरतेउँ तोही । अब जनि नयन देखावसि मोही ॥

तेहिं अपने मन अस अनुमाना । बध्यो चहत पहि कृपानिधाना ॥ २ ॥

तू बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुझे मार ही डालता ! अब मेरी आँखोंको अपना मुँह न दिखला । रावणके
वे वचन सुनकर उसने (मातृवान्ते) अपने मनमें ऐसा अनुमान किया कि इसे कृपानिधान श्रीरामजी
अब मारना ही चाहते हैं ॥ २ ॥

सो उठि गयउ कहत दुर्वादा । तब सकोप बोलेउ घननादा ॥

कौतुक प्रात देखिअहु मोरा । करिहउँ बहुत कहौं का थोरा ॥ ३ ॥

वह रावणको दुर्बचन कहता हुआ उठकर चला गया । तब मेघनाद क्रोधपूर्वक बोले—सवेरे मेरा
चमत्कार देखना । मैं बहुत कुछ करूँगा; थोड़ा क्या कहूँ ? (जो कुछ वर्णन करूँगा थोड़ा ही होगा) ॥ ३ ॥

सुनि सुत बचन भरोसा आवा । प्रीति समेत अंक बैठावा ॥

करत विचार भयउ भिनुसारा । लागे कपि पुनि चहँ दुआरा ॥ ४ ॥

पुत्रके वचन सुनकर रावणको भरोसा आ गया । उसने प्रेमके साथ उसे गोदमें बैठा लिया । विचार
करते-करते ही सवेरा हो गया । वानर फिर चारों दवाँजोंपर जा लगे ॥ ४ ॥

कोपि कपिन्ह दुर्घट गदु घेरा । नगर कोलाहलु भयउ घनेरा ॥

बिबिधायुध घर निसिचर घाप । गदु ते पर्वत सिखर दहाय ॥ ५ ॥

वानरोंने क्रोध करके दुर्गम किलेको घेर लिया । नगरमें बहुत ही कोलाहल (शोर) मच गया । राक्षस बहुत
तरहके अस्त्र-शस्त्र धारण करके दौड़े और उन्होंने किलेपरसे पहाड़ोंके शिखर दहाये ॥ ५ ॥

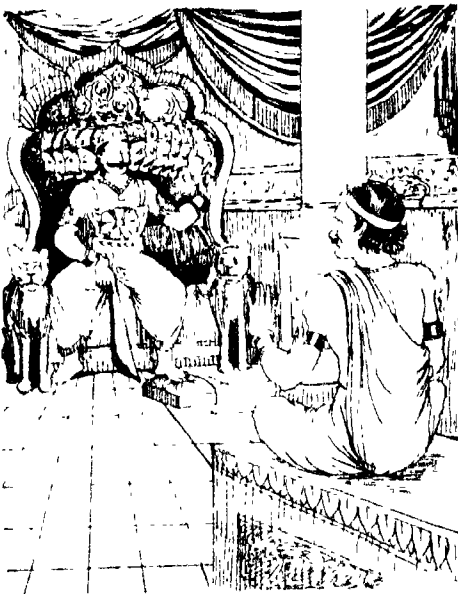
कल्याण

(१) वानर और राक्षसोंका युद्ध



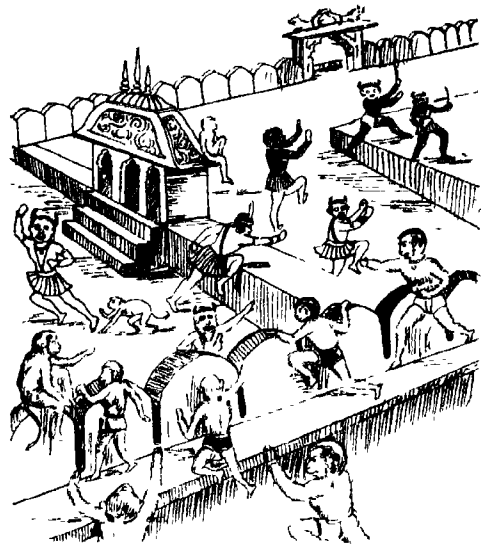
धावहिं गनहिं न अवपट घाटा ।
पर्वत फोरि करहिं गहि बाटा ॥
[पृष्ठ ६९८]

(३) माल्यवान्पर रावणका कोप



ताके बचन वान सम लागे ।
करिआ मुह करि जाहि अभागे ॥
[पृष्ठ ७०४]

(२) वानरोंकी चढ़ाई



चढ़े दुर्ग पुनि जहँ तहँ वानर ।
जय रघुवीर प्रताप दिवाकर ॥
[पृष्ठ ६९९]

(४) मेघनादपर पर्वतप्रहार



महासैल एक तुरत उपारा ।
अति रिस मेघनाद पर डारा ॥
[पृष्ठ ७०६]

छं०—ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले ।

घहरात जिमि पविपात गर्जत जुनु प्रलय के बादले ॥

मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए ।

गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहिं जहँ सो तहँ निसिचर हए ॥

उन्होंने पर्वतोंके करोड़ों शिखर दहाये । अनेक प्रकारसे गोले चलने लगे । वे गोले ऐसा घहराते हैं जैसे वज्रपात हुआ हो (बिजली गिरी हो), और योद्धा ऐसे गरजते हैं मानो प्रलयकालके बादल हों । बिकट वानर योद्धा भिड़ते हैं, कट जाते हैं (घायल हो जाते हैं), उनके शरीर जर्जर हो जाते हैं, तब भी वे लड़ाते नहीं (हिम्मत नहीं हारते) । वे पहाड़ उठाकर उसे किलेपर फेंकते हैं । राक्षस जहाँ-के-तहाँ (जो जहाँ हाँते हैं वही) मारे जाते हैं ।

दो०—मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ पुनि छंका आइ ।

उतरयो वीर दुर्ग तें सन्मुख चलयो बजाइ ॥ ४९ ॥

मेघनादने कानोंसे ऐसा सुना कि वानरोंने आकर फिर किलेकी घेर लिया है । तब वह वीर किलेसे उतरा और डंका बजाकर उनके सामने चला ॥ ४९ ॥

चौ०—कहँ कोसलाधीस द्रौ भ्राता । धन्वी सकल लोक बिख्याता ॥

कहँ नल नील दुविद सुग्रीवा । अंगद हनुमंत बल सींवा ॥ १ ॥

[मेघनादने पुकारकर कहा—] समस्त लोकोंमें प्रसिद्ध धनुर्धर कोसलाधीश दोनों भाई कहाँ हैं ? नल, नील, द्विविद, सुग्रीव और बलकी सीमा अङ्गद और हनुमान् कहाँ हैं ? ॥ १ ॥

कहाँ बिभीषनु भ्राता द्रोही । आजु सबहि हठि मारउँ ओही ॥

अस कहि कटिन बान संधाने । अतिसय क्रोध श्रवन लगि ताने ॥ २ ॥

(भाईसे द्रोह करनेवाला) बिभीषण कहाँ है ? आज मैं सबको और उस दुष्टको तो हठपूर्वक (अवश्य ही) मारूँगा । ऐसा कहकर उसने धनुषपर कटिन बाणोंका सन्धान किया और अत्यन्त क्रोध करके उसे कानतक खींचा ॥ २ ॥

सर समूह सो छाहै लागा । जुनु सपच्छ घावहिं बहु नागा ॥

जहँ तहँ परत देखिअहिं बानर । सन्मुख होइ न सके तेहि अवसर ॥ ३ ॥

वह बाणोंके समूह छोड़ने लगा । मानो बहुत-से पंखवाले साँप दौड़े जा रहे हों । जहाँ-तहाँ वानर गिरते दिखायी पड़ने लगे । उस समय कोई भी उसके सामने न हो सके ॥ ३ ॥

जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा । बिसरी सबहि जुद्ध कै ईछा ॥

सो कपि भालु न रन महँ देखा । कीन्हैसि जेहि न प्रान अवसेषा ॥ ४ ॥

रीछ-वानर जहाँ-तहाँ भाग चले । सबको युद्धकी इच्छा भूल गयी । रणभूमिमें ऐसा एक भी वानर या भालू नहीं दिखायी पड़ा जिसको उसने प्राणमात्र अवशेष न कर दिया हो (अर्थात् जिसके केवल प्राणमात्र ही न बचे हों; बल, पुरुषार्थ सारा जाता न रहा हो) ॥ ४ ॥

दो०—दस दस सर सब मारेसि परे भूमि कपि वीर ।

सिंहनाद करि गर्जा मेघनाद बल धोर ॥ ५० ॥

फिर उसने सबको दस-दस बाण मारे । वीर वानर पृथ्वीपर गिर पड़े । बलवान् और धीरे मेघनाद सिंहके समान नाद करके गरजने लगा ॥ ५० ॥

चौ०—देखि पवनसुत कटक विहाला। क्रोधवन्त जनु धायउ काला ॥

महासैल एक तुरत उपारा। अति रिस मेघनाद पर डारा ॥ १ ॥

सारी सेनाको बेहल देखकर पवनपुत्र हनुमान क्रोध करके ऐसे दौड़े मानो स्वयं काल दौड़ा आता हो। उन्होंने तुरंत एक बड़ा भारी पहाड़ उखाड़ लिया और बड़े ही क्रोधके साथ उसे मेघनादपर डाल दिया ॥ १ ॥

आवत देखि गयउ नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई ॥

बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना ॥ २ ॥

पहाड़ आते देखकर वह आकाशमें चला गया। रथ, सारथी और घोड़े सब नष्ट हो गये। हनुमानजी उसे बार-बार ललकारते हैं। पर वह निकट नहीं आता, क्योंकि वह उनके बलका मर्म जानता था ॥ २ ॥

रघुपति निकट गयउ धननादा। नाना भौंति करेसि दुर्बादा ॥

अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुकहीं प्रभु काटि निवारै ॥ ३ ॥

तब मेघनाद रघुनाथजीके पास गया और उसने उन्हें अनेकों प्रकारके दुर्वचनोंका प्रयोग किया। उसने फिर उनपर अस्त्र-शस्त्र तथा और सब हथियार चलाये। प्रभुने खेलमें ही सबको काटकर निवारण कर दिया ॥ ३ ॥

देखि प्रताप मूढ़ खिसिआना। करै लाग माया विधि नाना ॥

जिमि कोउ करै गरुड़ सैं खेला। डरपावै गहि स्वल्प सपेला ॥ ४ ॥

श्रीरामजीका प्रताप (सामर्थ्य) देखकर वह मूर्ख लजित हो गया और अनेकों प्रकारकी माया करने लगा। जैसे कोई व्यक्ति छोटा-सा साँपका बच्चा हाथमें लेकर गरुड़को डरावे और उससे खेल करे ॥ ४ ॥

दो०—जासु प्रबल माया बस सिव बिरंचि बड़ छोट।

ताहि दिखावइ निसिचर निज माया मति खोट ॥ ५१ ॥

शिवजी और ब्रह्माजीतक बड़े और छोटे सभी जिनकी अत्यन्त बलवान् मायाके वशमें हैं, नीचबुद्धि निशाचर उनको अपनी माया दिखलाता है ॥ ५१ ॥

चौ०—नभ चढ़ि वरष विपुल अंगारा। महि ते प्रगट होहिं जलधारा ॥

नाना भौंति पिसाच पिसाची। मारु काटु धुनि बोलहिं नाची ॥ १ ॥

आकाशमें ऊँचे चढ़कर वह बहुत-से अंगारे बरसाने लगा। पृथ्वीमें जलकी धाराएँ प्रकट होने लगीं। अनेक प्रकारके पिशाच-पिशाचिनियों नाच-नाचकर 'मारो, काटो' की आवाज करने लगीं ॥ १ ॥

विष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। वरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा ॥

वरषि धूरि कीन्हंसि अँघिआरा। मूझ न आपन हाथ पसारा ॥ २ ॥

वह कभी तो विष्टा, पीयूष, खून, बाल और हड्डियाँ बरसाता था, और कभी बहुत-से पत्थर फेंक देता था। फिर उसने धूल बरसाकर ऐसा अँधेरा कर दिया कि अपना ही पसारा हुआ हाथ नहीं सूझता था ॥ २ ॥

कपि अकुलाने माया देखें। सब कर मरन बना एहि लेखें ॥

कौतुक देखि राम मुसुकाने। भए समीत सकल कपि जाने ॥ ३ ॥

माया देखकर वानर अकुला उठे। वे सोचने लगे कि इस हिमावसे (इसी तरह रहा) तो सबका मरण आ बना। यह कौतुक देखकर श्रीरामजी मुस्कराये। उन्होंने जान लिया कि सब वानर भयभीत हो गये हैं ॥ ३ ॥

एक बान काटी सब माया । जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया ॥

रूपा दृष्टि कपि भालु बिलोके । भय प्रबल रन रहहिं न रोके ॥ ४ ॥

तब श्रीरामजीने एक ही बाणसे सारी माया काट डाली, जैसे सूर्य अन्धकारके समूहको हर लेता है । तदनन्तर उन्होंने वानर-भालुओंको कृपादृष्टिसे देखा, जिससे वे ऐसे प्रबल हो गये कि रणमें रोकनेपर भी नहीं रुकते थे ॥ ४ ॥

दो०—आयसु मागि राम पहिं अंगदादि कपि साथ ।

लछिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ ॥ ५२ ॥

श्रीरामजीसे आज्ञा माँगकर, अङ्गद आदि वानरोंके साथ हाथोंमें धनुष-बाण लिये हुए भीष्ममणजी क्रुद्ध होकर चले ॥ ५२ ॥

चौ०—छतज नयन उर बाहु विसाला । हिमगिरि निभ तनु कलु एक लाला ॥

इहाँ दसानन सुभट पठाए । नाना अस्त्र सस्त्र गहि धाप ॥ १ ॥

उनके लाल नेत्र हैं, चौड़ी छाती और विशाल भुजाएँ हैं । हिमाचल पर्वतके समान उज्ज्वल (गौरवर्ण) शरीर कुछ ललाई लिये हुए है ! इधर रावणने भी बड़े-बड़े योद्धा भेजे, जो अनेकों अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़े ॥ १ ॥

भूधर नख विटपायुध धारी । धाप कपि जय राम पुकारी ॥

भिरे सकल जोरिहि सन जोरी । इत उत जय इच्छा नहिं धोरी ॥ २ ॥

पर्वत, नख और वृक्षोंके हथियार धारण किये हुए वानर 'श्रीरामचन्द्रजीकी जय' पुकारकर दौड़े । वानर और राक्षस सब जोड़ी-से-जोड़ी भिड़ गये । इधर और उधर दोनों ओर जयकी इच्छा कम न थी (अर्थात् प्रबल थी) ॥ २ ॥

मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं । कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं ॥

मारु मारु धरु धरु धरु मारु । सीस तोरि गहि भुजा उपारु ॥ ३ ॥

वानर उनको घूँसों और लातोंसे मारते हैं, दाँतोंसे काटते हैं; विजयशील वानर उन्हें मारकर फिर डाँटते भी हैं । 'मारो, मारो, पकड़ो, पकड़ो, पकड़कर मार दो, सिर तोड़ दो, और भुजाएँ पकड़कर उखाड़ लो' ॥ ३ ॥

असि रव पूरि रही नव खंडा । धावहिं जहँ तहँ रुंड प्रचंडा ॥

देखहिं कौतुक नभ सुर वृंदा । कबहुँक बिसमय कबहुँ अनंदा ॥ ४ ॥

नवो खण्डोंमें ऐसी आवाज भर रही है । प्रचण्ड रुण्ड (धड़) जहाँ-तहाँ दौड़ रहे हैं । आकाशमें देवतागण यह कौतुक देख रहे हैं । उन्हें कभी खेद होता है और कभी आनन्द ॥ ४ ॥

दो०—रुधिर गाढ़ भरि भरि जम्प्यो ऊपर धूरि उड़ाइ ।

जनु अंगार रासिन्ह पर मृतक धूम रह्यो छाड़ ॥ ५३ ॥

खून गड्ढोंमें भर-भरकर जम गया है, और उसपर धूल उड़कर पड़ रही है । वह दृश्य ऐसा है मानो अंगारोंके ढेरपर राख छा रही हो ॥ ५३ ॥

चौ०—घायल बीर बिराजहिं कैसे । कुसुमित किंसुक के तरु जैसे ॥

लछिमन मेघनाद द्वौ जोघा । भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा ॥ १ ॥

घायल वीर कैसे शोभित हैं, जैसे फूले हुए पलासके पेड़ । लक्ष्मण और मेघनाद दोनों योद्धा अत्यन्त क्रोध करके एक दूसरेसे भिड़ते हैं ॥ १ ॥

एकहि एक सकइ नहिं जीतो । निसिचर छल बल करइ अनीती ॥

क्रोधवन्त तब भयउ अनन्ता । भंजेउ रथ सारथी तुरन्ता ॥ २ ॥

एक दूसरेको (कोई किसीको) जीत नहीं सकता । राक्षस छल-बल (माया) और अनीति (अधर्म) करता है । तब भगवान् अनन्तजी (लक्ष्मणजी) क्रोधित हुए और उन्होंने उसके रथ और सारथीको तुरन्त टुकड़े-टुकड़े कर डाला ! ॥ २ ॥

नाना बिधि प्रहार कर सेया । राच्छस भयउ प्राण अवसेषा ॥

रावनसुत निज मन अनुमाना । संकठ भयउ हरिहि मम प्राणा ॥ ३ ॥

शेषजी (लक्ष्मणजी) उसपर अनेक प्रकारसे प्रहार करने लगे । राक्षस प्राणमात्र शेष रह गया । रावणपुत्र मेघनादने मनमें अनुमान किया कि अब तो प्राणसंकट हो गया, ये मेरे प्राण हर लेंगे ॥ ३ ॥

बीरघातिनी छाड़िसि साँगी । तेजपुंज लछिमन उर लागी ॥

मुखड़ा भई सक्ति के लागें । तब चलि गयउ निकट भय त्यागें ॥ ४ ॥

तब उसने वीरघातिनी शक्ति चलायी । वह तेजपूर्ण शक्ति लक्ष्मणजीकी छातीमें लगी । शक्तिके लगनेसे उन्हें मूर्च्छा आ गयी । तब मेघनाद भय छोड़कर उनके पास चला गया ॥ ४ ॥

दो०—मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ ।

जगदाधार शेष किमि उठे चले खिसिआइ ॥ ५४ ॥

मेघनादके समान सौ करोड़ (अगणित) योद्धा उन्हें उठा रहे हैं । परन्तु जगत्के आधार श्रीशेषजी (लक्ष्मणजी) उनसे कैसे उठ सकते ? तब वे लजाकर चले गये ॥ ५४ ॥

चौ०—सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू । जारइ भुवन चारिदस आसू ॥

सक संग्राम जीति को ताही । सेवहिं सुर नर अग जग जाही ॥ १ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे गिरिजे ! सुनो, जिनके क्रोधकी अग्नि चौदहों भुवनोंको तुरन्त ही जल्ला डालती है और देवता, मनुष्य तथा समस्त चराचर जिनकी सेवा करते हैं, उनको संग्राममें कौन जीत सकता है ? ॥ १ ॥

यह कौतूहल जानइ सोई । जा पर कृपा राम कै होई ॥

सन्ध्या भइ फिरि द्वौ वाहनी । लगे सँभारन निज निज अनी ॥ २ ॥

इस लीलाको वही जान सकता है जिसपर श्रीरामजीकी कृपा हो । सन्ध्या होनेपर दोनों ओरकी सेनाएँ लौट पड़ीं; सेनापति अपनी-अपनी सेनाएँ सँभालने लगे ॥ २ ॥

व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर । लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर ॥

तब लगि लै आयउ हनुमाना । अनुज देखि प्रभु अति दुख माना ॥ ३ ॥

व्यापक, ब्रह्म, अजेय, सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके ईश्वर और कर्णकी खान भीरामचन्द्रजीने पूछा—लक्ष्मण कहाँ हैं ? इतनेमें ही हनुमान् उन्हें ले आये । छोटे भाईको इस दशामें देखकर प्रभुने बहुत ही दुःख माना ॥ ३ ॥

कल्याण

हनुमान् संजीवनी लाने चले

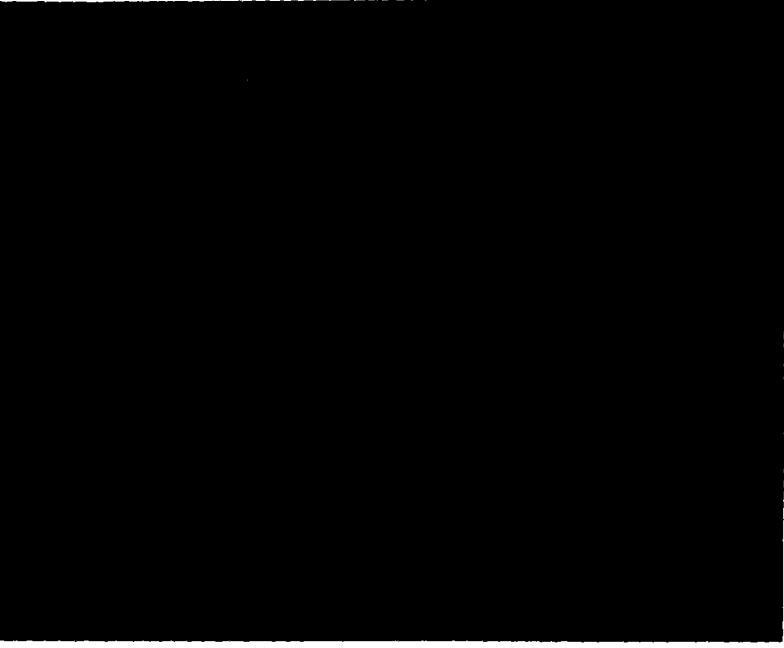
मरतने बाण मारा



राम चरण सरसिज उर राखी ।

बला प्रभंजनसुत बल भाषी ॥

[पृष्ठ ७००]



देखा भरत बिसाह अति निसिचर मन अनुमानि ।
बिनु फर साथक मारेउ बाप भवन लागि तानि ॥

पृष्ठ ७११

जामवंत कह बैद सुषेना । लंकाँ रहइ को पठई लेना ॥

घरि लघुरूप गयउ हनुमंता । आनेउ भवन समेत तुरंता ॥ ४ ॥

जाम्बवान्ने कहा—लङ्कामें सुषेण वैद्य रहता है, उसे ले आनेके लिये किसको भेजा जाय ? हनुमान्जी छोटा रूप धरकर गये और सुषेणको उसके घरसमेत तुरन्त ही उठा लाये ॥ ४ ॥

दो०—राम पदारविंद सिर नायउ आइ सुषेन ।

कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन ॥ ५५ ॥

सुषेणने आकर श्रीरामजीके चरणारविन्दमें सिर नवाया । उसने पर्वत और औषधका नाम बतावा, और कहा कि हे पवनपुत्र ! औषधि लेने जाओ ॥ ५५ ॥

चो०—राम चरन सरसिज उर राखी । चला प्रभंजनसुत बल भाषी ॥

उहाँ दूत एक मरमु जनावा । रावनु कालनेमि गृह आवा ॥ १ ॥

श्रीरामजीके चरणकमलोंको हृदयमें रखकर पवनपुत्र हनुमान्जी अपना बल बखानकर (अर्थात् मैं अभी लिये आता हूँ, ऐसा कहकर) चले ! उधर एक गुप्तचरने रावणको इस रहस्यकी खबर दी ! तब रावण कालनेमिके घर आया ॥ १ ॥

दसमुख कहा मरमु तेहिं सुना । पुनि पुनि कालनेमि सिर धुना ॥

देखत तुम्हहि नगरु जेहिं जारा । तासु पंथ को रोकन पारा ॥ २ ॥

रावणने उसको सब मर्म बतलाया । कालनेमिने सुना और बार-बार सिर पीटा । [उसने कहा—] तुम्हारे देखते-देखते जिसने नगर जला डाला, उसका मार्ग कौन रोक सकता है ? ॥ २ ॥

भजि रघुपति करु हित आपना । छाँड़ु नाथ मृषा जल्पना ॥

नीलकंज तनु सुंदर स्यामा । हृदय राखु लोचनाभिरामा ॥ ३ ॥

श्रीरघुनाथजीका भजन करके तुम अपना कल्याण करो । हे नाथ ! झूठी बकवाद छोड़ दो । नेत्रोंको आनन्द देनेवाले नीलकमलके समान सुन्दर श्याम शरीरको अपने हृदयमें रखो ॥ ३ ॥

मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू । महा मोह निसि सूतत जागू ॥

काल ब्याल कर भच्छक जोई । सपनेहुँ समर कि जीतिअ सोई ॥ ४ ॥

मैं-तू (भेद-भाव) और ममत्तारूपी मूढ़ताको त्याग दो । महामोह (अज्ञान) रूपी रात्रिमें सो रहे हो, सो जाग उठो ! जो कालरूपी सर्पका भी भक्षक है, कहीं स्वप्नमें भी वह रणमें जीता जा सकता है ? ॥ ४ ॥

दो०—सुनि दसकंठ रिसान अति तेहिं मन कीन्ह बिचार ।

रामदूत कर मरौं बरु यह खल रत मल भार ॥ ५६ ॥

उसकी ये बातें सुनकर रावण बहुत ही क्रोधित हुआ । तब कालनेमिने मनमें विचार किया कि इसकी अपेक्षा श्रीरामके दूतके हाथसे ही मरूँ तो अच्छा है । यह दुष्ट तो पापसमूहमें रत हुआ है ॥ ५६ ॥

चो०—अस कहि चला रचिसि मग माया । सर मंदिर बर बाग बनाया ॥

मारुतसुत देखा सुभ आश्रम । मुनिहि बूझि जल पियौं जाइ श्रम ॥ १ ॥

वह मन-ही-मन ऐसा कहकर चला और उसने मार्गमें माया रची । तालाब, मन्दिर और सुन्दर बाग बनाया । हनुमान्जीने सुन्दर आश्रम देखकर सोचा कि मुनिसे पूछकर जल पी लूँ, जिससे थकावट दूर हो जाय ॥ १ ॥

राच्छस कपट वेष तहँ सोहा । मायापति दूतहि चह मोहा ॥

जाइ पवनसुत नायउ माया । लाग सो कहै राम गुन गाथा ॥ २ ॥

राक्षस वहाँ कपटसे मुनिवेषमें विराजमान था । वह मूर्ख अपनी मायासे मायापतिके दूतको मोहित करना चाहता था । मारुतिने उसके पास जाकर मस्तक नवाया । वह श्रीरामजीके गुणोंकी कथा कहने लगा ॥ २ ॥

होत महा रन रावन रामहिं । जितिहहिं राम न संसय या महिं ॥

इहाँ भएँ मैं देखउँ भाई । ग्यानदृष्टि बल मोहि अधिकारै ॥ ३ ॥

[वह बोला—] रावण और राममें महान् युद्ध हो रहा है । रामजी जीतेंगे, इसमें शन्देह नहीं है । हे भाई ! मैं यहाँ रहता हुआ ही सब देख रहा हूँ । मुझे शानदृष्टिका बहुत बड़ा बल है ॥ ३ ॥

मागा जल तेहिं दीन्ह कमंडल । कह कपि नहिं अघाउँ थोरें जल ॥

सर मज्जन करि आतुर आवहु । दिच्छा देउँ ग्यान जेहिं पावहु ॥ ४ ॥

हनुमान्जीने उससे जल माँगा, तो उसने कमण्डल दे दिया । हनुमान्जीने कहा—थोड़े जलसे मैं नहीं अघाऊँगा (तृप्त होऊँगा) । तब वह बोला—तालाबमें स्नान करके तुरंत लौट आओ तो मैं तुम्हें दीक्षा दूँ, जिससे तुम शान प्राप्त करो ॥ ४ ॥

शे०—सर पैठत कपिपद गहा मकरिं तब अकुलान ।

मागी सो धरि दिव्य तनु चली गगन चढ़ि जान ॥ ५७ ॥

तालाबमें प्रवेश करते ही एक मगरीने अकुलाकर उम्मी समय हनुमान्जीका पैर पकड़ लिया । हनुमान्जीने उसे मार डाला । तब वह दिव्य देह धारण करके विमानपर चढ़कर आकाशको चली ॥ ५७ ॥

चौ०—कपि तब दरस भइउँ निष्पापा । मिटा नात मुनिघर कर सापा ॥

मुनि न होइ यह निसिचर घोरा । मानहु सत्य वचन कपि मोरा ॥ १ ॥

[उसने कहा—] हे बानर ! मैं तुम्हारे दर्शनसे पापराहित हो गयी । हे नात ! श्रेष्ठ मुनिका शाप मिट गया । हे कपि ! यह मुनि नहीं है, घोर निशाचर है । मेरा वचन सत्य मानो ॥ १ ॥

अस कहि गई अपछरा जबहीं । निसिचर निकट गयउ कपि तबहीं ॥

कह कपि मुनि गुरुदक्षिणा लेह । पाछें हमहि मंत्र तुम्ह देह ॥ २ ॥

ऐसा कहकर ज्यों ही वह अप्सरा गयी, त्यों ही हनुमान्जी निशाचरके पास गये । हनुमान्जीने कहा—हे मुनि ! पहले गुरुदक्षिणा ले लीजिये । पीछे आप मुझे मन्त्र दीजियेगा ॥ २ ॥

सिर लंगूर लपेटि पछारा । निज तनु प्रगटेसि मरती बारा ॥

राम राम कहि छाड़ैसि प्राता । सुनि मन हरपि चलेउ हनुमाना ॥ ३ ॥

हनुमान्जीने उसके सिरको पूँछमें लपेटकर उसे पछाड़ दिया । मरते समय उसने अपना राक्षसी शरीर प्रकट किया । उसने राम-राम कहकर प्राण छोड़े । यह सुनकर हनुमान्जी मनमें हर्षित होकर चले ॥ ३ ॥

कल्याण

मकरी-उद्धार



सर पैठत कपिपद् गहा मकरी तब अकुलान ।
मारी सो धरि दिव्य तनु चली गगन चढ़ि जान ॥

देखा सैल न औषध चीन्हा । सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा ॥

गहि गिरि निसि नभ घावत भयऊ । अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ ॥ ४ ॥

उन्होंने पर्वतको देखा, पर औषध न पहचान सके । तब हनुमान्जीने एकदमसे पर्वतको ही उखाड़ लिया । पर्वत लेकर हनुमान्जी रातहीमें आकाशमार्गसे दौड़ चले और अयोध्यापुरीके ऊपर पहुँच गये ॥ ४ ॥

दो०—देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि ।

बिनु कर सायक मारेउ चाप श्रवन लागि तानि ॥ ५८ ॥

भरतजीने आकाशमें अत्यन्त विशाल स्वरूप देखा तब मनमें अनुमान किया कि यह कोई राक्षस है । उन्होंने कानतक धनुषको खींचकर बिना फलका एक बाण मारा ॥ ५८ ॥

चौ०—परेउ मुहछि महि लागत सायक । सुमिरत राम राम रघुनायक ॥

सुनि प्रिय वचन भरत तब घाप । कपि समीप अति आतुर आप ॥ १ ॥

बाण लगते ही हनुमान्जी 'राम, राम, रघुपति' का उच्चारण करते हुए मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े । प्रिय वचन (रामनाम) सुनकर भरतजी उठकर दौड़े और बड़ी उतावलीसे हनुमान्जीके पास आये ॥ १ ॥

बिकल त्रिलोकि कीस उर लावा । जागत नहिं बहु भाँति जगावा ॥

मुख मलीन मन भए दुखारी । कहत वचन भरि लोचन वारी ॥ २ ॥

हनुमान्जीको व्याकुल देखकर उन्होंने हृदयसे लगा लिया । बहुत तरहसे जगाया, पर वे जागते न थे ! तब भरतजीका मुख उदास हो गया, वे मनमें बड़े दुखी हुए, और नेत्रोंमें [विषादके आँसुओंका] जल भरकर ये वचन बोले—॥ २ ॥

जेहिं विधि राम विमुख मोहि कीन्हा । तेहिं पुनि यह दारुन दुख दीन्हा ॥

जाँ मोरें मन वच अरु काया । प्रीति राम पद कमल अमाया ॥ ३ ॥

जिस विधातने मुझे श्रीरामसे विमुख किया, उसीने फिर यह भयानक दुःख भी दिया । यदि मन, वचन और शरीरसे श्रीरामजीके चरणकमलोंमें मेरा निष्कपट प्रेम हो, ॥ ३ ॥

तौ कपि होउ विगत श्रम सूला । जाँ मोपर रघुपति अनुकूला ॥

सुनत वचन उठि बैठ कपीसा । कहि जय जयति कोसलाधीसा ॥ ४ ॥

और यदि श्रीरघुनाथजी मुझपर प्रसन्न हों तो यह वानर थकावट और पीड़ासे रहित हो जाय ! यह वचन सुनते ही कपिराज हनुमान्जी 'कोसलपति श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो, जय हो' कहते हुए उठ बैठे ॥ ४ ॥

सो०—लीन्ह कपिहि उर लाह पुलकित तनु लोचन सजल ।

प्रीति न हृदयँ समाइ सुमिरि गम रघुकुल तिलक ॥ ५९ ॥

भरतजीने वानर (हनुमान्जी) को हृदयसे लगा लिया, उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमें [आनन्द तथा प्रेमके आँसुओंका] जल भर आया । रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके भरतजीके हृदयमें प्रीति नहीं समाती थी ॥ ५९ ॥

चौ०—तात कुसल कहु सुखनिधान की । सहित अनुज अरु मातु जानकी ॥

कपि सब चरित समास बखाने । भए दुखी मन महुँ पछिताने ॥ १ ॥

[भरतजी बोले—] हे तात ! छोटे भाई लक्ष्मण तथा माता जानकीसहित सुखनिधान श्रीरामजीका कुशल कहो । वानर (हनुमान्जी) ने संक्षेपमें सब कथा कही । सुनकर भरतजी दुखी हुए और मनमें पछताने लगे ॥ १ ॥

अहह दैव मैं कत जग जायउँ । प्रभु के एकहुँ काज न आयउँ ॥

जानि कुअवसर मन धरि धीरा । पुनि कपि सन बोले बलबीरा ॥ २ ॥

हा दैव ! मैं जगत्में क्यों जन्मा ? प्रभुके एक भी काम न आया । फिर कुअवसर (विपरीत समय) जानकर मनमें धीरज धरकर बलवीर भरतजी हनुमान्जीसे बोले— ॥ २ ॥

तात गहर होइहि तोहि जाता । काजु नसाइहि होत प्रभाता ॥

चहु मम सायक सैल समेता । पठवौं तोहि जहँ रूपानिकेता ॥ ३ ॥

हे तात ! तुमको जानेमें देर होगी । और सवेरा होते ही काम बिगड़ जायगा । अतः तुम पर्वतसहित मेरे बाणपर चढ़ जाओ, मैं तुमको वहाँ भेज दूँ जहाँ कृपाके धाम श्रीरामजी हैं ॥ ३ ॥

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना । मोरें भार चलिहि किमि बाना ॥

राम प्रभाव बिचारि बहोरी । बंदि चरन कह कपि कर जोरी ॥ ४ ॥

भरतजीकी यह बात सुनकर एक बार तो हनुमान्जीके मनमें अभिमान उत्पन्न हुआ कि मेरे बोझसे बाण कैसे चलेगा ? किन्तु फिर श्रीरामचन्द्रजीके प्रभावका विचार करके वे भरतजीके चरणोंकी वन्दना करके हाथ जोड़कर बोले— ॥ ४ ॥

दो०—तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरंत ।

अस कहि आयसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत ॥ ६० (क) ॥

हे नाथ ! हे प्रभो ! मैं आपका प्रताप हृदयमें रखकर तुरन्त चला जाऊँगा । ऐसा कहकर आशा पाकर और भरतजीके चरणोंकी वन्दना करके हनुमान्जी चले ॥ ६० (क) ॥

भरत बाहुबल शील गुण प्रभु पद प्रीति अपार ।

मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवनकुमार ॥ ६० (ख) ॥

भरतजीके बाहुबल, शील, गुण और प्रभुके चरणोंमें अपार प्रेमकी मन-ही-मन बारंबार सराहना करते हुए मार्गति श्रीहनुमान्जी चले जा रहे हैं ॥ ६० (ख) ॥

चौ०—उहाँ राम लछिमनहि निहारो । बोले वचन मनुज अनुसारी ॥

अर्धराति गइ कपि नहिं आयउ । राम उठाइ अनुज उर लायउ ॥ १ ॥

वहाँ लक्ष्मणजीको देखकर श्रीरामजी साधारण मनुष्योंके अनुसार वचन बोले—आधीरात बीत चुकी, हनुमान् नहीं आये । यह कहकर श्रीरामजीने छोटे भाई लक्ष्मणजीको उठाकर हृदयसे लगा लिया ॥ १ ॥

सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ । बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ ॥

मम हित लागि तजेहु पितु माता । सहेहु बिपिन हिम आतप वाता ॥ २ ॥

[और बोले—] हे भाई ! तुम मुझे कभी दुखी नहीं देख सकते थे । तुम्हारा स्वभाव सदासे ही कोमल था । मेरे हितके लिये तुमने माता-पिताको भी छोड़ दिया और वनमें जाड़ा, गरमी और हवा सब सहन किया ॥ २ ॥

भरत-हनुमान्-मिलन



खीन्व कपिहि उर त्वाए पुलकित तनु लोचन सजल ।
प्रीति न हृदयै समाए सुभिरि राम रघुकुल तिलक ॥
[पृष्ठ ७११]

हनुमान्का लौटना



प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भये बानर निकर ।
आए गयउ हनुमान भिमि करुना भई कीर रस ॥
[पृष्ठ ७१२]

सो अनुराग कहाँ अब भाई । उठहु न सुनि मम बच बिकलाई ॥

जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोह । पिता बचन मनतेउँ नहिं ओह ॥ ३ ॥

हे भाई ! वह प्रेम अब कहाँ है ! मेरे व्याकुल वचन सुनकर क्यों नहीं उठते ? यदि मैं जानता कि वनमें भाईका बिछोह होगा तो मैं पिताके उस वचनको भी न मानता [जिसका मानना मेरा परम कर्तव्य था] ॥ ३ ॥

सुत बित नारि भवन परिवारा । होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ॥

अस बिचारि जिये जागहु ताता । मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ॥ ४ ॥

पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार, ये जगत्में बार-बार होते और जाते हैं । परन्तु जगत्में सहोदर भाई बार-बार नहीं मिलता । हृदयमें ऐसा विचारकर हे तात ! जागो ॥ ४ ॥

जथा पंख बिनु जग अति दीना । मनि बिनु फनि करिबर कर हीना ॥

अस मम जिवन बंधु बिनु तोही । जां जइ दैव जिभावे मोही ॥ ५ ॥

जैसे पंख बिना पक्षी, मणि बिना सर्प और सूँड़ बिना श्रेष्ठ हाथी अत्यन्त दीन हो जाते हैं, हे भाई ! यदि कहीं जइ दैव मुझे जीवित रखे तो तुम्हारे बिना मेरा जीवन भी ऐसा ही होगा ॥ ५ ॥

जैहउँ अवध कौन मुहु लाई । नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई ॥

बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं । नारि हानि बिसेष छति नाहीं ॥ ६ ॥

स्त्रीके दिये प्यारे भाईको खोकर, मैं कौन सा मुँह लेकर अवध जाऊँगा ? मैं जगत्में अपयश भले ही सहता (कि राममें कुछ भी वीरता नहीं है जो स्त्रीको खो बैठे) । स्त्रीका हानिसँ इस हानिको देखते कोई विशेष क्षति नहीं थी ॥ ६ ॥

अब अपलोकु सांकु सुत तोरा । सहिहि निधुर कठोर उर मोरा ॥

निज जननी के एक कुमारा । तात तासु तुम्ह प्राण अधारा ॥ ७ ॥

अब तो हे पुत्र ! मेरा निधुर और कठोर हृदय यह अपयश और तुम्हारा शोक दोनों ही सहन करेगा । हे तात ! तुम अपनी माताके एक ही पुत्र और उसके प्राणाधार हो ॥ ७ ॥

सौंपास मोहि तुम्हहि गहि पानी । सब बिधि सुखद परम हित जानी ॥

उतर काह दैहउँ तेहि जाई । उठि किन मोहि सिखावहु भाई ॥ ८ ॥

मम प्रकारसे सुख देनेवाला और परम हितकारी जानकर उन्होंने तुम्हें हाथ पकड़कर मुझे सौंपा था । मैं अब जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा ? हे भाई ! तुम उठकर मुझे सिखाते (बताते) क्यों नहीं ? ॥ ८ ॥

बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन । खवत सलिल राजिवदल लोचन ॥

उमा एक अखंड रघुराई । नर गति भगत रूपाल देखाई ॥ ९ ॥

सोचसे कुड़ानेवाले श्रीरामजी बहुत प्रकारसे सोच कर रहे हैं । उनके कमलदलके समान नेत्रोंसे [विपादके आँसुओंका] जल बह रहा है । [शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! श्रीरघुनाथजी एक (अद्वितीय) और अखण्ड (वियोगरहित) हैं । भक्तोंपर कृपा करनेवाले भगवान्ने लीला करके मनुष्यकी दशा दिखलायी है ॥ ९ ॥

सो—प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भये वानर निकर ।

आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महु वीर रस ॥ ६१ ॥

प्रभुके [लीलाके लिये किये गये] प्रलापको कानोंसे सुनकर वानरोंके समूह व्याकुल हो गये ।
इतनेमें ही हनुमान्जी आ गये, जैसे करुणरसमें वीररस आ गया हो ॥ ६१ ॥

चौ०—हरषि राम भेटेउ हनुमाना । अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना ॥
तुरत वैद तब कीन्हि उपाई । उठि बैठे लछिमन हरषाई ॥ १ ॥

श्रीरामजी हर्षित होकर हनुमान्जीसे गले लगाकर मिले । प्रभु परम सुजान (चतुर) और अत्यन्त ही कृतज्ञ हैं । तब वैद्यने तुरन्त उपाय किया, जिससे लक्ष्मणजी हर्षित होकर उठ बैठे ॥ १ ॥

हृदयँ लाइ प्रभु भेटेउ भ्राता । हरषे सकल भालु कपि ब्राता ॥
कपि पुनि वैद तहाँ पहुँचावा । जेहि बिधि तबहिं ताहि लइ आवा ॥ २ ॥

प्रभु भाईको हृदयसे लगाकर मिले । भालू और वानरोंके समूह सब हर्षित हो गये । फिर हनुमान्जीने वैद्यको उसी प्रकार वहाँ पहुँचा दिया जिस प्रकार वे पहले उसे लाये थे ॥ २ ॥

यह वृत्तान्त दसानन सुनेऊ । अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ ॥
व्याकुल कुम्भकरन पहिं आवा । बिबिध जतन करि ताहि जगावा ॥ ३ ॥

यह समाचार जब रावणने सुना, तब उसने अत्यन्त विषादसे बार-बार सिर पीटा । वह व्याकुल होकर कुम्भकर्णके पास गया, और बहुत-से उपाय करके उसने उसको जगाया ॥ ३ ॥

जागा निसिचर देखिअ कैसा । मानहुँ कालु देह धरि बैसा ॥
कुम्भकरन वृक्षा कहु भाई । काहे तब मुख रहे सुखाई ॥ ४ ॥

कुम्भकर्ण जगा (उठ बैठा) । वह कैसा दिखायी देता है मानो स्वयं काल ही शरीर धारण करके बैठा हो । कुम्भकर्णने पूछा—हे भाई ! कहो तो, तुम्हारे मुख सूख क्यों रहे हैं ? ॥ ४ ॥

कथा कही सब तेहिं अभिमानी । जेहि प्रकार सीता हरि आनी ॥
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे । महा महा जोधा संघारे ॥ ५ ॥

उस अभिमानी (रावण) ने उससे, जिस प्रकारसे वह सीताको हर लया था [तबसे अबतककी] सारी कथा कही । [फिर कहा—] हे तात ! वानरोंने सब राक्षस मार डाले । बड़े-बड़े योद्धाओंका भी संहार कर डाला ॥ ५ ॥

दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी । भट अतिकाय अकंपन भारी ॥
अपर महोदर आदिक बीरा । परे समर महि सब रनधीरा ॥ ६ ॥

दुर्मुख, देवशत्रु (देवान्तक), मनुष्यभक्षक (नरान्तक), भारी योद्धा अतिकाय और अकम्पन, तथा महोदर आदि दूसरे सभी रणधीर वीर रणभूमिमें मारे गये ॥ ६ ॥

दो०—सुनि दसकंधर वचन तब कुम्भकरन बिलखान ।
जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्याण ॥ ६२ ॥

तब रावणके वचन सुनकर कुम्भकर्ण विलखकर (दुखी होकर) बोला—अरे मूर्ख ! जगज्जननीको हर लाकर अब तू कल्याण चाहता है ? ॥ ६२ ॥

चौ०—भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा । अब मोहि आइ जगाएहि काहा ॥
अजहुँ तात त्यागि अभिमाना । भजहु राम होइहि कल्याणा ॥ १ ॥

हे राक्षसराज ! तूने अच्छा नहीं किया । अब आकर मुझे क्या जगाया ? हे तात ! अब भी अभिमान छोड़कर श्रीरामजीको भजो तो कल्याण होगा ॥ १ ॥

हैं दससीस मनुज रघुनाथक । जा के हनुमान से पायक ॥

अहह बंधु तैं कीन्हि खोटाई । प्रथमहिं मोहि न सुनाएहि आई ॥ २ ॥

हे रावण ! जिनके हनुमान्-सरीखे सेवक हैं, वे श्रीरघुनाथजी क्या मनुष्य हैं ! हाय भाई ! तूने बुरा किया, जो पहले ही आकर मुझे यह हाल नहीं सुनाया ॥ २ ॥

कीन्हहु प्रभु बिरोध तेहि देवक । सिव बिरंचि सुर जाके सेवक ॥

नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा । कहतेउँ तोहि समय निरबहा ॥ ३ ॥

हे स्वामी ! तुमने उस परम देवताका विरोध किया, जिसके शिव, ब्रह्मा आदि देवता सेवक हैं । नारद मुनिने मुझे जो ज्ञान कहा था, वह मैं तुझसे कहता; पर अब तो समय जाता रहा ॥ ३ ॥

अब भरि अंक भेंदु मोहि भाई । लोचन सुफल करौं मैं जाई ॥

स्याम गात सरसीरुह लोचन । देखौं जाइ तापत्रय मोचन ॥ ४ ॥

हे भाई ! अब तो अन्तिम बार अँकवार भरकर मुझसे मिल ले, मैं जाकर अपने नेत्र सफल करूँ । तीनों तापोंको कुड़ानेवाले श्यामशरीर, कमलनेत्र श्रीरामजीके जाकर दर्शन करूँ ॥ ४ ॥

दो०—राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक ।

रावन मागेउ कोटि घट मद अरु महिष अनेक ॥ ६३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके रूप और गुणोंको स्मरण करके वह एक क्षणके लिये प्रेममें मग्न हो गया । फिर रावणसे करोड़ों घड़े मदिरा और अनेकों भैंसे मँगवाये ॥ ६३ ॥

चो०—महिष खाइ करि मदिरापाना । गर्जा बज्राघात समाना ॥

कुंभकरन दुर्मद रन रंगा । चला दुर्ग तजि सेन न संगी ॥ १ ॥

भैंसे खाकर और मदिरा पीकर वह वज्राघात (बिजली गिरने) के समान गरजा । मदसे चूर (रणके उत्साहसे पूर्ण) कुम्भकर्ण किला छोड़कर चला । सेना भी साथ नहीं ली ॥ १ ॥

देखि बिभीषनु आगें आयउ । परेउ चरन निज नाम सुनायउ ॥

अनुज उठाइ हृदय तेहि लायो । रघुपति भगत जानि मन भायो ॥ २ ॥

उसे देखकर बिभीषण आगे आये और उसके चरणोंपर गिरकर अपना नाम सुनाया । छोटे भाईको उठाकर उसने हृदयसे लगा लिया । ओर श्रीरघुनाथजीका भक्त जानकर वे उसके मनको प्रिय लगे ॥ २ ॥

तात लात रावन मोहि मारा । कहत परम हित मंत्र बिचारा ॥

तेहिं गलानि रघुपति पहिं आयउँ । देखि दीन प्रभु के मन भायउँ ॥ ३ ॥

[बिभीषणने कहा—] हे तात ! परम हित करनेवाली सलाहकी बात कहनेपर रावणने मुझे लात मारी । उसी गलानिके मारे मैं श्रीरघुनाथजीके पास चला आया । दीन देखकर प्रभुके मनमें मैं बहुत प्रिय लगा ॥ ३ ॥

सुनु सुत भयउ कालवस रावन । सो कि मान अब परम सिखावन ॥

धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन । भयहु तात निसिचर कुल भूषन ॥ ४ ॥

[कुम्भकर्णने कहा—] हे पुत्र ! सुन, रावण तो कालवश हो गया है । वह भल अब उत्तम शिक्षा मान सकता है ? हे विभीषण ! तू धन्य है, धन्य है, धन्य है । हे तात ! तू राक्षसकुलका भूषण हुआ ॥ ४ ॥

बंधु बंस ते' कीन्ह उजागर । भजेहु राम सोभा सुख सागर ॥ ५ ॥

हे भाई ! तूने कुलको प्रकाशित कर दिया, जो शोभा और सुखके समुद्र श्रीरामजीको भजा ॥ ५ ॥

दो०—वचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर ।

जाहु न निज पर स्रज मोहि मयउँ कालवस वीर ॥ ६४ ॥

मन, वचन और कर्मसे कपट छोड़कर श्रीरामजीका भजन करना । हे भाई ! मैं कालवश हो गया हूँ, मुझे अपना-पराया नहीं सूझता; इसलिये अब तुम जाओ ॥ ६४ ॥

चौ०—बंधु वचन सुनि चला विभीषण । आयउ जहँ त्रैलोक विभूषण ॥

नाथ भूधराकार सरीरा । कुम्भकरन आवत रनधीरा ॥ १ ॥

भाईके वचन सुनकर विभीषण लौट गये और वहाँ आये जहाँ त्रैलोक्यके आभूषण श्रीरामजी थे । [विभीषणने कहा—] हे नाथ ! पर्वतके समान देहवाला रणधीर कुम्भकर्ण आ रहा है ॥ १ ॥

एतना कपिन्ह सुना जब काना । किलकिलाइ घाय बलवाना ॥

लिप उठाइ बिटप अरु भूधर । कटकटाइ डारहिं ता ऊपर ॥ २ ॥

वानरोंने जब कानोंसे इतना सुना, तब वे बलवान् किलकिलकर दौड़े । वृक्ष और पर्वत उग्राड़ लिये और क्रोधसे दाँत कटकटाकर उन्हें उसके ऊपर ढालने लगे ॥ २ ॥

कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा । करहिं भालु कपि एक एक बारा ॥

मुरथो न मनु तनु टरथो न टारथो । जिमि गज अर्क फलनि को मारथो ॥ ३ ॥

रीछ-वानर एक एक बारमें ही करोड़ों पहाड़ोंके शिखरोंसे उसपर प्रहार करते हैं । परन्तु इससे न तो उसका मन ही भुड़ा (विचलित हुआ) और न शरीर ही टाले टला, जैसे भदार्कके फलवृक्ष मारमे हाथीपर कुछ असर नहीं होता ! ॥ ३ ॥

तब मारत सुत मुठिका हन्यो । परथो धरनि व्याकुल सिर धुन्यो ॥

पुनि उठि तेहिं मारेउ हनुमंता । घुर्मित भूतल परेउ तुरंता ॥ ४ ॥

तब हनुमान्जीने उसे एक धूँसा मारा, जिससे वह व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और सिर पीटने लगा । फिर उसने उठकर हनुमान्जीको मारा । हनुमान्जी चक्कर व्याकर तुरंत ही पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४ ॥

पुनि नल नीलहि अवनि पछारेसि । जहँ तहँ पटक पटक भट डारेसि ॥

चली वलीमुख सेन पराई । अति भय त्रसित न कांउ समुहाई ॥ ५ ॥

फिर उसने नल नीलको पृथ्वीपर पछाड़ दिया । और दूसरे योद्धाओंको भी जहाँ-तहाँ पटक-पटक ढाल दिया । वानरसेना भाग चली । सब अत्यन्त भयभीत हो गये, कोई सामने नहीं आता ॥ ५ ॥

दो०—अंगदादि कपि मुरुछित करि समेत सुग्रीव ।

काँख दाबि कपिराज कहूँ चला अमित बल सीव ॥ ६५ ॥

सुग्रीवसमेत अङ्गदादि वानरोंको मूर्च्छित करके फिर वह अपरिमित बलकी सीमा कुम्भकर्ण वानरराज सुग्रीवको काँखमें दाबकर चला ॥ ६५ ॥

चौ०—उमा करत रघुपति नरलीला । खेल गरुड़ जिमि अहिगन मीला ॥

भृकुटि मंग जो कालहि खाई । ताहि कि सोहर पेसि लराई ॥ १ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! भीरघुनाथजी वैसे ही नरलीला कर रहे हैं, जैसे गरुड़ सर्पोंके समूहमें मिलकर खेलता हो । जो केवल भ्रूंगसे (विना परिभ्रमके) कालको भी खा जाता है, उसे कहीं ऐसी लड़ाई शोभा देती है ? ॥ १ ॥

जग पावनि कीरति बिस्तरिहहिं । गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं ॥

मुखछा गइ मारुतसुत जागा । सुग्रीवहि तब खोजन लागा ॥ २ ॥

भगवान् इसके द्वारा जगत्को पवित्र करनेवाली वह कीर्ति फैलायेंगे जिसे गा-गाकर मनुष्य भवमागरसे तर जायेंगे । मूर्च्छा जाती रही, तब मारुति हनुमान्जी जागे और फिर वे सुग्रीवको खोजने लगे ॥ २ ॥

सुग्रीवहु कै मुखछा बीती । निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती ॥

काटेसि दसन नासिका काना । गरजि अकास चलेउ तेहिं जाना ॥ ३ ॥

सुग्रीवकी भी मूर्च्छा दूर हुई तब वे [मुर्दे-से होकर] खिसक गये (काँखसे नीचे गिर पड़े) । कुम्भकर्णने उनको मृतक जाना । उन्होंने कुम्भकर्णके नाक-कान दाँतोंसे काट लिये और फिर गरजकर आकाशकी ओर चले, तब कुम्भकर्णने जाना ॥ ३ ॥

गहेउ चरन गहि भूमि पछारा । अति लाघव उठि पुनि तेहि मारा ॥

पुनि आयउ प्रभु पहिं बलवाना । जयति जयति जय कृपानिधाना ॥ ४ ॥

उसने सुग्रीवका पैर पकड़कर उनको पृथ्वीपर पछाड़ दिया । फिर सुग्रीवने बड़ी फुर्तसे उठकर उसको मारा । और तब बलवान् सुग्रीव प्रभुके पास आये और बोले—कृपानिधान प्रभुकी जय हो, जय हो, जय हो ॥ ४ ॥

नाक कान काटे जियँ जानी । फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी ॥

सहज भीम पुनि बिनु श्रुति नासा । देखत कपिदल उपजी त्रासा ॥ ५ ॥

नाक-कान काटे गये, ऐसा मनमें जानकर बड़ी ग्लानि हुई, और वह क्रोध करके लौटा । एक तो वह स्वभावसे ही भयङ्कर था और फिर विना नाक-कानका होनेसे और भी भयानक हो गया । उसे देखते ही वानरोंकी सेनामें भय उत्पन्न हो गया ॥ ५ ॥

दो०—जय जय जय रघुवंसमनि धाए कपि दै हूह ।

एकहि बार तासु पर छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह ॥ ६६ ॥

‘रघुवंशमणिकी जय हो, जय हो, जय हो,’ ऐसा पुकारकर वानर हूह करके दौड़े और सबने एक ही साथ उसपर पहाड़ और वृक्षोंके समूह छोड़े ॥ ६६ ॥

चौ०—कुम्भकरन रन रंग बिरुद्धा । सन्मुख चला काल जनु वृद्धा ॥

कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई । जनु टीड़ी गिरि गुहाँ समाई ॥ १ ॥

रणके उत्साहमें कुम्भकर्ण विरुद्ध होकर उनके सामने ऐसा चला मानो क्रोधित होकर काल ही आ रहा हो । वह करोड़-करोड़ वानरोंको एक साथ पकड़-पकड़कर खाने लगा । वे उसके मुखमें इस तरह घुसने लगे मानो पर्वतकी गुफामें टिड्डियाँ समा रही हों ॥ १ ॥

कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा । कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा ॥

मुख नासा श्रवनन्हि कीं बाटा । निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा ॥ २ ॥

करोड़ों (वानरों) को पकड़कर उसने शरीरसे मसल डाला । करोड़ोंको हाथोंसे मलकर पृथ्वीकी धूलमें मिला दिया । पेटमें गये हुए भालू और वानरोंके ठट्ठे-ठट्ठे उसके मुख, नाक और कानोंकी राहसे निकल-निकलकर भाग रहे हैं ॥ २ ॥

रत्न मदमत्त निसाचर दर्पा । विश्व प्रसिद्धि जनु यहि बिधि अर्पा ॥

सुरे सुभट सब फिरहिं न फेरे । सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे ॥ ३ ॥

रणके मदमें मत्त राक्षस कुम्भकर्ण इस प्रकार गर्वित हुआ, मानो विधाताने उसको सारा विश्व अर्पण कर दिया हो, और उसे वह ग्रास कर जायगा । सब योद्धा भाग खड़े हुए, वे लौटाये भी नहीं लौटते । आँखोंसे सूझ नहीं पड़ता और पुकारनेसे सुनते नहीं ! ॥ ३ ॥

कुम्भकरन कपि फौज बिडारो । सुनि धाई रजनीचर धारी ॥

देखी राम बिकल कटकाई । रिपु अनीक नाना बिधि आई ॥ ४ ॥

कुम्भकर्णने वानरसेनाको तितर-बितर कर दिया । यह सुनकर निशाचर-सेना भी दौड़ी । श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि अपनी सेना व्याकुल है और शत्रुकी नाना प्रकारकी सेना आ गयी है ॥ ४ ॥

दो०—सुनु सुग्रीव बिभीषण अनुज सँभारेहु सैन ।

मैं देखउँ खल बल दलहि बोलें राजिवनैन ॥ ६७ ॥

तब कमलनयन श्रीरामजी बोले—हे सुग्रीव ! हे बिभीषण ! और हे लक्ष्मण ! सुनो, तुम सेनाको सँभालना । मैं इस दुष्टके बल और दलको देखता हूँ ॥ ६७ ॥

चौ०—कर सारंग साजि कटि भाथा । अरिदल दलन चले रघुनाथा ॥

प्रथम कीन्हि प्रभु धनुष टँकोरा । रिपुदल बधिर भयउ सुनि सोरा ॥ १ ॥

हाथमें शार्ङ्गधनुष और कमरमें तरकस सजकर श्रीरघुनाथजी शत्रुके दलका दलन करने चले । प्रभुने पहले तो धनुषका टँकार किया, जिसकी भयानक आवाज सुनते ही शत्रुदल बहरा हो गया ॥ १ ॥

सत्यसंध छाँड़ें सर लच्छा । कालसर्प जनु चले सपच्छा ॥

जहँ तहँ चले विपुल नाराचा । लगे कटन भट विकट पिसाचा ॥ २ ॥

फिर सत्यप्रतिज्ञ श्रीरामजीने एक लाख बाण छोड़े । वे ऐसे चले मानो पंखवाले काल-सर्प चले हो । जहाँ-तहाँ बहुत-से बाण चले, जिनसे विकट राक्षस योद्धा कटने लगे ॥ २ ॥

कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा । बहुतक वीर होहिं सतखंडा ॥

घुमिं घुमिं घायल महि परहीं । उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं ॥ ३ ॥

उनके चरण, छाती, सिर और भुजदण्ड कट रहे हैं । बहुत-से वीरोंके सौ सौ टुकड़े हो जाते हैं । घायल चक्कर खा-खाकर पृथ्वीपर पड़ रहे हैं । उत्तम योद्धा फिर सँभलकर उठते और लड़ते हैं ॥ ३ ॥

लागत वान अलद जिमि गाजहिं । बहुतक देखि कठिन सर भाजहिं ॥

रंड प्रचंड मुंड विनु धावहिं । घर घर मार मार धुनि गावहिं ॥ ४ ॥

बाण लगते ही वे मेघकी तरह गरजते हैं । बहुतसे तो कठिन बाणको देखकर ही भाग जाते हैं । बिना मुण्ड (सिर) के प्रचण्ड रण्ड (धड़) दौड़ रहे हैं और भयानक ध्वनिके साथ 'पकड़ो, पकड़ो, मारो, मारो' गा (पुकार) रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—छन महुँ प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच ।

पुनि रघुबीर निषंग महुँ प्रबिसे सब नाराच ॥ ६८ ॥

प्रभुके बाणोंने क्षणमात्रमें भयानक राक्षसीको काट डाला । फिर वे सब बाण लौटकर श्रीरघुनाथजीके तरकसमें प्रवेश कर गये ॥ ६८ ॥

चौ०—कुम्भकर्ण मन दीक्ष विचारी । इति छन माझ निसाचर धारी ॥

भा भति बुद्ध महाबल वीरा । कियो मृगनायक नाइ गँभीरा ॥ १ ॥

कुम्भकर्णने मनमें विचारकर देखा कि श्रीरामजीने क्षणमात्रमें राक्षसी सेनाको मार डाला । तब वह महान् बलयुक्त वीर अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने गम्भीर सिंहनाद किया ॥ १ ॥

कोपि महीधर लेइ उपारी । डारइ जहँ मर्कट भट भारी ॥

आवत देखि सैल प्रभु भारे । सरन्हि काटि रज सम करि डारे ॥ २ ॥

वह क्रोध करके पर्वत उखाड़ लेता है और जहाँ भारी-भारी वानर योद्धा होते हैं, वहाँ डाल देता है । बड़े-बड़े पर्वतोंको आते देखकर प्रभुने उनको बाणोंसे काटकर धूलके समान कर डाला ॥ २ ॥

पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक । छाँड़े अति कराल बहु सायक ॥

तनु महुँ प्रबिसि निसरि सर जाहों । जिमि दामिनि घन माझ समाहीं ॥ ३ ॥

फिर श्रीरघुनाथजीने क्रोध करके धनुषको तानकर बहुत-से अत्यन्त भयानक बाण छोड़े । वे बाण कुम्भकर्णके शरीरमें घुसकर निकल जाते हैं, जैसे बिजलियाँ बादलमें समा जाती हैं ॥ ३ ॥

सोनित स्रवत सोह तन कारे । जनु कज्जलगिरि गेह पनारे ॥

बिकल बिलोकि भालु कपि धाए । बिहँसा जबहिं निकट कपि आए ॥ ४ ॥

उसके काले शरीरसे रुधिर बहता हुआ ऐसा शोभा देता है, मानो काजलके पर्वतसे गेरूके पनाले बह रहे हो । उसे व्याकुल देखकर रीछ-वानर दौड़े । वे ज्यों ही निकट आये, त्यों ही वह हँसा, ॥ ४ ॥

दो०—महानाद करि गर्जा कोटि कोटि गहि कोस ।

महि पटकइ गजराज इव सपथ करइ दससीस ॥ ६९ ॥

और बड़ा घोर शब्द करके गरजा । तथा करोड़-करोड़ वानरोंको पकड़कर वह गजराजकी तरह उन्हें पृथ्वीपर पटकने लगा और रावणकी दुहाई देने लगा ॥ ६९ ॥

चौ०—भागे भालु बलीमुख जूथा । बृकु बिलोकि जिमि मेष बरूथा ॥

चले भागि कपि भालु भवानी । बिकल पुकारत आरत बानी ॥ १ ॥

यह देखकर रीछ-वानरोंके झुंड ऐसे भागे जैसे भेड़ियेको देखकर भेड़ोंके झुंड ! [शिवजी कहते हैं—] हे भवानी ! वानर-भालू व्याकुल होकर आर्तवाणीसे पुकारते हुए भाग चले ॥ १ ॥

यह निसिचर दुकाल सम अहई । कपिकुल देस परन अब चहई ॥

कृपा वारिधर राम खरारी । पाहि पाहि प्रनतारति हारी ॥ २ ॥

[वे कहने लगे—] यह राक्षस दुर्भिक्षके समान है, जो अब वानरकुलरूपी देशमें पड़ना चाहता है । हे कृपारूपी जल धारण करनेवाले मेघरूप राम ! हे खरके शत्रु ! हे शरणागतके दुःख हर्नेवाले ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ! ॥ २ ॥

सकरुन वचन सुनत भगवाना । चले सुधारि सरासन बाना ॥

राम सेन निज पाछें घाली । चले सकोप महा बलसाली ॥ ३ ॥

करुणाभरे वचन सुनते ही भगवान् धनुष-बाण सुधारकर चले । महाबलशाली श्रीरामजीने सेनाको अपने पीछे कर लिया । और वे अकेले क्रोधपूर्वक चले ॥ ३ ॥

खैंचि धनुष सर सत संधाने । छूटे तीर सरीर समाने ॥

लागत सर धावा रिस भरा । कुघर डगमगत डोलति घरा ॥ ४ ॥

उन्होंने धनुषको खींचकर सौ बाण सन्धान किये । बाण छूटे और उसके शरीरमें समा गये ! बाणोंके लगते ही वह क्रोधमें भरकर दौड़ा । उसके दौड़नेसे पर्वत डगमगाने लगे और पृथ्वी हिलने लगी ॥ ४ ॥

लीन्ह एक तेहिं सैल उपाटी । रघुकुलतिलक भुजा सोह काटी ॥

धावा बाम बाहु गिरि घारी । प्रभु सोड भुजा काटि महि पारी ॥ ५ ॥

उसने एक पर्वत उखाड़ लिया । रघुकुलतिलक श्रीरामजीने उसकी वह भुजा ही काट दी । तब वह बाये हाथमें पर्वतको लेकर दौड़ा । प्रभुने उसकी वह भुजा भी काटकर पृथ्वीपर गिरा दी ॥ ५ ॥

काटें भुजा सोह खल कैसा । पच्छहीन मंदर गिरि जैसा ॥

उग्र विलोकनि प्रभुहि बिलोका । प्रसन चहत मानहुँ त्रैलोका ॥ ६ ॥

भुजाओंके कट जानेपर वह दुष्ट कैसा शोभा पाने लगा, जैसे विना पौखका मन्दराचल पहाड़ हो ! उसने उग्र दृष्टिसे प्रभुको देखा । मानो तीनों लोकोंको निगल जाना चाहता हो ॥ ६ ॥

दो०—करि चिकार घोर अति धावा बदनु पसारि ।

गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हा हेति पुकारि ॥ ७ ॥

वह बड़े जोरसे चिन्हाड़ करके मुँह फैलकर दौड़ा । आकाशमें सिद्ध और देवता डरकर हा ! हा ! हा ! इस प्रकार पुकार करने लगे ॥ ७ ॥

चो०—सभय देव करुनानिधि जान्यो । श्रवण प्रजंत सरासनु तान्यो ॥

विसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ । तदपि महाबल भूमि न परेऊ ॥ १ ॥

करुणानिधान भगवान् ने देवताओंको भयभीत जाना । तब उन्होंने धनुषको कानतक तानकर राक्षसोंके मुखको बाणोंके समूहसे भर दिया ! तो भी वह महाबली पृथ्वीपर न गिरा ! ॥ १ ॥

सरन्हि भरा मुख सन्मुख धावा । काल ज्ञोन सजीव जनु आवा ॥

तब प्रभु कोपि तीव्र सर लीन्हा । धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा ॥ २ ॥

मुखमें बाण भरे हुए वह प्रभुके सामने दौड़ा । मानो कालरूपी सजीव तरकस ही आ रहा हो । तब प्रभुने क्रोध करके तीक्ष्ण बाण लिया और उसके सिरका धड़से अलग कर दिया ॥ २ ॥

सो सिर परेउ दसानन आगें । बिकल भयउ जिमि फनि मनि त्यागें ॥

घरनि धसइ धर धाव प्रचंडा । तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा ॥ ३ ॥

वह सिर रावणके आगे जा गिरा । उसे देखकर रावण ऐसा व्याकुल हुआ जैसे मणिके छूट जानेपर सर्प । कुम्भकर्णका प्रचण्ड धड़ दौड़ा, जिससे पृथ्वी धँसी जाती थी । तब प्रभुने काटकर उसके दो टुकड़े कर दिये ॥ ३ ॥

परे भूमि जिमि नभ तँ भूधर । हेठ दाबि कपि भालु निसाचर ॥

तासु तेज प्रभु बदन समाना । सुर मुनि सबहिं अचंभव माना ॥ ४ ॥

वानर-भालू और निशाचरोंको अपने नीचे दबाते हुए वे दोनों टुकड़े पृथ्वीपर ऐसे पड़े जैसे आकाशसे दो पहाड़ गिरे हों । उसका तेज प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके मुखमें समा गया । [यह देखकर] देवता और मुनि सभीने आश्चर्य माना ॥ ४ ॥

सुर दुंदुभी बनावहिं हरषहिं । अस्तुति करहिं सुमन बहु बरषहिं ॥

करि विनती सुर सकल सिधाए । तेही समय देवरिषि आए ॥ ५ ॥

देवता नगाड़े बजाते, हर्षित होते और स्तुति करते हुए बहुत-से फूल बरसा रहे हैं । विनती करके सब देवता चले गये । उसी समय देवर्षि नारद आये ॥ ५ ॥

गगनोपरि हरि गुन गन गाए । रुखिर बीररस प्रभु मन भाए ॥

बेगि हतहु बल कहि मुनि गए । राम समर महि सोभत भए ॥ ६ ॥

आकाशके ऊपरसे उन्होंने भीहरिके सुन्दर वीररसयुक्त गुणसमूहका गान किया, जो प्रभुके मनको बहुत ही भाया । मुनि यह कहकर चले गये कि अब दुष्ट (रावण) को शीघ्र मारिये । तब श्रीरामचन्द्रजी रणभूमिमें आकर शोभित हुए ॥ ६ ॥

छं०—संग्रामभूमि विराज रघुपति अतुलबल कोसलघनी ।

श्रमबिंदु मुख राजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी ॥

भुज जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहुँ दिसि बने ।

कह दास तुलसी कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने ॥

अतुलनीय बलवाले कोसलपति श्रीरघुनाथजी रणभूमिमें सुशोभित हैं । मुखपर पसीनेकी बूँदें हैं । कमलके समान नेत्र कुछ लाल हो रहे हैं । शरीरपर रक्तके कण हैं, दोनों हाथोंसे धनुष-बाण फिरा रहे हैं । चारों ओर रोछ-वानर सुशोभित हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभुकी इस छविका वर्णन शेषजी भी नहीं कर सकते जिनके बहुत-से (हजार) मुख हैं ।

दो०—निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम ।

गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहिं श्रीराम ॥ ७१ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे गिरिजे ! कुम्भकर्ण जो नीच राक्षस और पापकी खान था, उसे भी श्रीरामजीने अपना परमधाम दे दिया ! अतः वे मनुष्य निश्चय ही मन्दबुद्धि हैं जो उन श्रीरामजीको नहीं भजते ॥ ७१ ॥

चो०—दिन कै अंत फिरौ छौ अनी । समर भाई सुभटन्ह श्रम घनी ॥

रामरूपौ कपिदल बल बाढ़ा । जिमि तन पाइ लाग अति डाढ़ा ॥ १ ॥

दिनका अन्त होनेपर दोनों सेनाएँ लौट पड़ीं । आजके युद्धमें योद्धाओंको बड़ी थकावट हुई । परन्तु श्रीरामजीकी कृपासे वानरसेनाका बल उसी प्रकार बढ़ गया जैसे घास पाकर अग्नि बहुत बढ़ जाती है ॥ १ ॥

छीजहिं निसिचर दिनु अरु राती । निज मुख कहै सुकृत जेहि भाँती ॥

बहु बिलाप दसकंधर करई । बंधु सीस पुनि पुनि उर धरई ॥ २ ॥

उधर राक्षस इस प्रकार घटते जा रहे हैं जैसे अपने ही मुखसे कहनेपर पुण्य घट जाते हैं । रावण बहुत विलाप कर रहा है । बार-बार भाई (कुम्भकर्ण) का सिर छातीपर रखता है ॥ २ ॥

रोवहिं नारि हृदय हति पानी । तासु तेज बल बिपुल बखानी ॥
मेघनाद तेहि अवसर आयउ । कहि बहु कथा पिता समुझायउ ॥ ३ ॥

झियाँ उसके बड़े भारी तेज और बलको बखान करके हाथोंसे छाती पीट-पीटकर रो रही हैं । उसी समय मेघनाद आया और उसने बहुत-सी कथाएँ कहकर पिताको समझाया ॥ ३ ॥

देखेहु कालि मोरि मनुसाई । अबहिं बहुत का करौ बड़ाई ॥
इष्टदेव सैं बल रथ पायउँ । सो बल तात न तोहि देखायउँ ॥ ४ ॥

[और कहा—] कल मेरा पुरुषार्थ देखियेगा । अभी बहुत बड़ाई क्या करूँ ? हे तात ! मैंने इष्टदेवसे जो बल और रथ पाया था, वह बल [और रथ] अबतक आपको नहीं दिखलाया था ॥ ४ ॥

एहि बिधि जल्पत भयउ बिहाना । चहुँ दुम्भार लागे कपि नाना ॥
इत कपि भालु काल सम बीरा । उत रजनीचर अति रनघीरा ॥ ५ ॥

इस प्रकार डींग मारते हुए सबेरा हो गया । लङ्काके चारों दरवाजोंपर बहुत-से वानर आ डटे । इधर कालके समान वीर वानर-भालू हैं और उधर अत्यन्त रणवीर राक्षस ॥ ५ ॥

लरहिं सुभट निज निज जय हेतू । बरनि न जाइ समर खगकेतू ॥ ६ ॥

दोनों ओरके योद्धा अपनी-अपनी जयके लिये लड़ रहे हैं । हे गरुड़ ! उनके युद्धका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ६ ॥

दो०—मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गयउ अकास ।

गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास ॥ ७२ ॥

मेघनाद उसी (पूर्वोक्त) मायामय रथपर चढ़कर आकाशमें चला गया और अट्टहास करके गरजा, जिससे वानरोंकी सेनामें भय छा गया ॥ ७२ ॥

चौ०—सक्ति शूल तरवारि कृपाना । अख सख कुलिसायुध नाना ॥

डारइ परसु परिघ पाषाणा । लागेउ वृष्टि करै बहु बाना ॥ १ ॥

वह शक्ति, शूल, तलवार, कृपाण आदि अस्त्र, शस्त्र, वज्र आदि बहुत-से आयुध चलाने तथा फरसे, परिघ, पत्थर आदि डालने और बहुत-से बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ १ ॥

दस दिसि रहै बान नभ छाई । मानहुँ मघा मेघ झरि लाई ॥

घरु घरु मारु सुनिअ धुनि काना । जो मारइ तेहि कोउ न जाना ॥ २ ॥

आकाशमें दसो दिशाओंमें बाण छा गये, मानो मघा नक्षत्रके बादलोंने सड़ी लगा दी हो । पकड़ो, पकड़ो, मारो ये शब्द कानोंसे सुनायी पड़ते हैं । पर जो मार रहा है उसे कोई नहीं जान पाता ॥ २ ॥

गहि गिरि तरु अकास कपि धावहिं । देखहिं तेहि न दुखित फिरि आवहिं ॥

अवघट घाट बाट गिरि कंदर । मायाबल कीन्हैसि सर पंजर ॥ ३ ॥

पर्वत और वृक्षांको लेकर वानर आकाशमें दौड़कर जाते हैं । पर उसे देख नहीं पाते, इससे दुखी होकर लौट आते हैं । मेघनादने मायाके बलसे अटपटी घाटियों, रास्तों और पर्वतकन्दराओंको बाणोंके पिंजरे बना दिये (बाणोंसे छा दिया) ॥ ३ ॥

जाहिं कहाँ व्याकुल भए बंदर । सुरपति बंदि परे जनु मंदर ॥

मारुतसुत अंगद नल नीला । कीन्हैसि बिकल सकल बलसीला ॥ ४ ॥

अब कहाँ जायँ, यह सोचकर (रास्ता न पाकर) बानर व्याकुल हो गये, मानो पर्वत इन्द्रकी कैदमें पड़े हों।
मेघनादने मावति हनुमान्, अङ्गद, नल और नील आदि सभी बलवानोंको व्याकुल कर दिया ॥ ४ ॥

पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषण । सरान्ह मारि कीन्हंसि जर्जर तन ॥

पुनि रघुपति सैं जूझै लागा । सर छाँड़ि होइ लागहिं नागा ॥ ५ ॥

फिर उसने लक्ष्मणजी, सुग्रीव और बिभीषणको बाणोंसे मारकर उनके शरीरोंको चलनी कर दिया।
फिर वह श्रीरघुनाथजीसे लड़ने लगा। वह जो बाण छोड़ता है, वे साँप होकर लगते हैं ॥ ५ ॥

ब्याल पास बस भए खरारी । स्ववस अनंत एक अधिकारी ॥

नट इष कपट चरित कर नाना । सदा स्वतंत्र एक भगवाना ॥ ६ ॥

जो स्वतन्त्र, अनन्त, एक (अखण्ड) और निर्विकार है, वे खरारि श्रीरामजी लीलासे नागपाशके वशमें हो गये। श्रीरामचन्द्रजी सदा स्वतन्त्र, एक (अद्वितीय) भगवान् हैं। वे नटकी तरह अनेकों प्रकारके दिखावटी चरित्र करते हैं ॥ ६ ॥

रन सोभा लागि प्रभुहिं बँधायो । नागपास देवन्ह भय पायो ॥ ७ ॥

रणकों शोभाके लिये प्रभुने अपनेको नागपाशमें बँधा लिया। किन्तु उससे देवताओंको बड़ा भय हुआ ॥ ७ ॥

दो०—गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भव पास ।

सो कि बंध तर आवइ व्यापक बिस्व निवास ॥ ७३ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे गिरिजे ! जिनका नाम जपकर मुनि भव (जन्म-मृत्यु) का बन्धन काट डालते हैं, वे सर्वव्यापक और विश्वनिवास (विश्वके आधार) प्रभु कहीं बन्धनमें आ सकते हैं ? ॥ ७३ ॥

चौ०—चरित राम के सगुन भवानी । तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी ॥

अस बिचारि जे तय्य विरागी । रामहिं भजहिं तर्क सब त्यागी ॥ १ ॥

हे भवानी ! श्रीरामजीकी इन सगुण लीलाओंके विषयमें बुद्धि और वाणीके बलसे तर्क (निर्णय) नहीं किया जा सकता। ऐसा विचारकर जो तत्त्वज्ञानी और विरक्त पुरुष है वे सब तर्क (शंका) छोड़कर श्रीरामजीको भजते हैं ॥ १ ॥

व्याकुल कटकु कीन्ह घननादा । पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा ॥

जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा । सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा ॥ २ ॥

मेघनादने सेनाको व्याकुल कर दिया। फिर वह प्रकट हो गया और दुर्वचन कहने लगा। इसपर जाम्बवान्ने कहा—अरे दुष्ट ! खड़ा तो रह। यह सुनकर उसे बड़ा क्रोध बढ़ा ॥ २ ॥

बूढ़ जानि सठ छाँड़ै तोही । लागंसि अधम पचारै मोही ॥

अस कहि तरल त्रिसूल चलायो । जामवंत कर गहि सोइ घायो ॥ ३ ॥

अरे मूर्ख ! मैंने बूढ़ा जानकर तुझको छोड़ दिया था। अरे अधम ! अब तू मुझे ललकारने लगा है ! ऐसा कहकर उसने चमकता हुआ त्रिशूल चलाया। जाम्बवान् उसी त्रिशूलको हाथसे पकड़कर दौड़ा, ॥ ३ ॥

मारिसि मेघनाद कै छाती । परा भूमि घुर्मित सुरघाती ॥

पुनि रिसान गहि चरन फिरायो । महि पछारि निज बल देखरायो ॥ ४ ॥

और उसे मेघनादकी छातीमें मारा। वह देवताओंका शत्रु चक्र खींचकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। जाम्बवान्ने फिर क्रोधमें भरकर पैर पकड़कर उसको घुमाया और पृथ्वीपर पटककर उसे अपना बल दिखला दिया ॥ ४ ॥

बर प्रसाद सो मरइ न मारा । तब गहि पद लंका पर डारा ॥

इहाँ देवरिधि गरुड पठायो । राम समीप सपदि सो आयो ॥ ५ ॥

वरदानके प्रतापसे वह मारे नहीं मरता, तब जाम्बवान्ने उसका पैर पकड़कर उसे लङ्कापर फेंक दिया ।
इधर देवर्षि नारदजीने गरुडको भेजा । वे तुरंत ही श्रीरामजीके पास आ पहुँचे ॥ ५ ॥

दो०—खगपति सब धरि खाए माया नाग बरुथ ।

माया बिगत भए सब हरषे वानर जूथ ॥ ७४ (क) ॥

पक्षिराज गरुडजी सब माया-सर्पोंके समूहोंको पकड़कर खा गये । तब सब वानरोंके छुंड मायासे रहित
होकर हर्षित हुए ॥ ७४ (क) ॥

गहि गिरि पादप उपल नख धाए कीस रिसाइ ।

चले तमीचर बिकलतर गढ़ पर चढ़े पराइ ॥ ७४ (ख) ॥

पर्वत, वृक्ष, पत्थर और नख धारण किये वानर क्रोधित होकर दौड़े । निशाचर विशेष व्याकुल
होकर भाग चले और भागकर किलेपर चढ़ गये ॥ ७४ (ख) ॥

चो०—मेघनाद कै मुरछा जागी । पितहि बिलोकि लाज अति लागी ॥

तुरत गयउ गिरिवर कंदरा । करौ अजय मख अस मन घरा ॥ १ ॥

मेघनादकी मूर्च्छा छूटी, तब पिताको देखकर उसे बड़ी लजा लगी । वह अजय (अजेय होनेको) यश
करनेका मनमें निश्चय करके तुरंत श्रेष्ठ पर्वतकी गुफामें चला गया ॥ १ ॥

इहाँ बिभीषन मंत्र विचारा । सुनहु नाथ बल अतुल उदारा ॥

मेघनाद मख करइ अपावन । खल मायावी देव सतावन ॥ २ ॥

यहाँ बिभीषणने यह सलाह विचारी [और श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—] हे अतुलनीय बलवान् उदार प्रभो !
देवताओंको सतानेवाला मूर्ख, मायावी मेघनाद अपवित्र यश कर रहा है ॥ २ ॥

जौ प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि । नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि ॥

सुनि रघुपति अतिसय सुख माना । बोले अंगदादि कपि नाना ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! यदि वह यश सिद्ध हो पायेगा, तो हे नाथ ! फिर मेघनाद शीघ्र जीत न जा सकेगा ।
यह सुनकर श्रीरघुनाथजीने बहुत सुख माना और अङ्गदादि बहुत-से वानरोंको बुलाया [और कहा—] ॥ ३ ॥

लछिमन संग जाहु सब भाई । करहु बिघंस जग्य कर जाई ॥

तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही । देखि सभय सुर दुख अति मोही ॥ ४ ॥

हे भाइयो ! सब लोग लक्ष्मणके साथ जाओ, और जाकर यशको विध्वंस करो । हे लक्ष्मण ! तुम
संग्राममें उसे मारना । देवताओंको भयभीत देखकर मुझे बड़ा दुःख है ॥ ४ ॥

मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई । जेहिं छीजै निसिचर सुनु भाई ॥

जामवंत सुग्रीव बिभीषन । सेन समेत रहेहु तीनिउ जन ॥ ५ ॥

हे भाई ! सुनो, उसको ऐसे बल और बुद्धिके उपायसे मारना, जिससे निशाचरका नाश हो । हे
जाम्बवान्, सुग्रीव और बिभीषण ! तुम तीनों जने सेनासमेत साथ रहना ॥ ५ ॥



जाइ कपिन्ह सो देखा वैसा । आहुति देत रुधिर अरु भैंसा ॥
कीन्ह कपिन्ह सव जग्य विधेसा । जव न उठइ तब कगहि प्रसंसा ॥

जब रघुवीर दीन्हि अनुसासन । कटि निषंग कसि साजि सरासन ॥

प्रभु प्रताप उर धरि रन घीरा । बोले घन इव गिरा गँभीरा ॥ ६ ॥

जब श्रीरघुवीरने आज्ञा दी, तब कमरमें तरकस कसकर और धनुष सजाकर (चढ़ाकर) रणधीर श्रीलक्ष्मणजी प्रभुके प्रतापको हृदयमें धारण करके मेघके समान गम्भीर बाणी बोले—॥ ६ ॥

जौं तेहि आजु बधैं बिनु आवौं । तौ रघुपति सेवक न कहावौं ॥

जौं सत संकर करहिं सहाई । तदपि हतउँ रघुवीर दोहाई ॥ ७ ॥

यदि मैं आज उसे मारे बिना आऊँ, तो श्रीरघुनाथजीका सेवक न कहलाऊँ । यदि सैकड़ों शंकर भी उसकी सहायता करें, तो भी श्रीरघुवीरकी दुहाई है, आज मैं उसे मार डालूँगा ॥ ७ ॥

दो०—रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरंत अनंत ।

अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत ॥ ७५ ॥

श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें सिर नवाकर शोषावतार श्रीलक्ष्मणजी तुरंत चले । उनके साथ अङ्गद, नील, मयंद, नल और हनुमान् आदि उत्तम योद्धा थे ॥ ७५ ॥

चौ०—जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा । आहुति देत रुधिर अरु भैंसा ॥

कीन्ह कपिन्ह सब जग्य बिधंसा । जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा ॥ १ ॥

वानरोंने जाकर देखा कि वह थैटा हुआ खून और भैंसेकी आहुति दे रहा है । वानरोंने सब यश विध्वंस कर दिया । फिर भी जब वह नहीं उठा, तब वे उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ १ ॥

तदपि न उठइ घरेन्हि कच जाई । लातन्हि हति हति चले पराई ॥

लै त्रिशूल धावा कपि भागे । आप जहँ रामानुज आगे ॥ २ ॥

इतनेपर भी वह न उठा, तब उन्होंने जाकर उसके बाल पकड़े और लातोसे मार-मारकर वे भाग चले । वह त्रिशूल लेकर दौड़ा, तब वानर भागे और वहाँ आ गये जहाँ आगे लक्ष्मणजी खड़े थे ॥ २ ॥

आवा परम क्रोध कर मारा । गर्ज घोर रव वारहिं बारा ॥

कोपि मरुतसुत अंगद धाप । हति त्रिशूल उर धरनि गिराए ॥ ३ ॥

वह अत्यन्त क्रोधका मारा हुआ आया और बार-बार भयङ्कर शब्द करके गरजने लगा । मारुति (हनुमान्) और अङ्गद क्रोध करके दौड़े । उसने छातीमें त्रिशूल मारकर दोनोंको धरतीपर गिरा दिया ॥ ३ ॥

प्रभु कहँ छाँड़ैसि सूल प्रचंडा । सर हति कृत अनंत जुग खंडा ॥

उठि बहोरि मारुति जुबराजा । हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा ॥ ४ ॥

फिर उसने प्रभु श्रीलक्ष्मणजीपर प्रचण्ड त्रिशूल छोड़ा । अनन्त (श्रीलक्ष्मणजी) ने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिये । हनुमान्जी और युवराज अङ्गद फिर उठकर क्रोध करके उसे मारने लगे, पर उसे चोट नहीं लगी ॥ ४ ॥

फिरे बीर रिपु मरइ न मारा । तब धावा करि घोर चिकारा ॥

आवत देखि क्रुद्ध जनु काला । लछिमन छाड़े बिसिख कराला ॥ ५ ॥

शत्रु (मेघनाद) मारे नहीं मरता, यह देखकर जब वीर लौटे, तब वह घोर चिन्हाड़ करके दौड़ा ।
उसे क्रुद्ध कालकी तरह आता देखकर लक्ष्मणजीने भयानक बाण छोड़े ॥ ५ ॥

देखेसि आवत पविसम जाना । तुरत भयउ खल अंतरधाना ॥
बिबिध बेध धरि करइ लराई । कबहुँक प्रगट कबहुँ तुरि जाई ॥ ६ ॥

वज्रके समान बाणोंको आते देखकर वह दुष्ट तुरंत अन्तर्धान हो गया और फिर भाँति-भाँतिके रूप धारण करके युद्ध करने लगा । वह कभी प्रकट होता था और कभी छिप जाता था ॥ ६ ॥

देखि अजय रिपु डरपे कीसा । परम क्रुद्ध तब भयउ महीसा ॥
लछिमन मन अस मंत्र दढ़ावा । एहि पापिहि में बहुत खेलावा ॥ ७ ॥

शत्रुको पराजित न होता देखकर वानर डरे । तब सर्पराज शेषजी (लक्ष्मणजी) बहुत ही मोहित हुए ।
लक्ष्मणजीने मनमें यह विचार दढ़ किया कि इस पापीको मैंने बहुत खेलाया [अब मारना चाहिये] ॥ ७ ॥

सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा । सर संधान कीन्ह करि दापा ॥
छाड़ा वान माझ उर लागा । मरती बार कपटु सब त्यागा ॥ ८ ॥

कोसलपति श्रीरामजीके प्रतापका स्मरण करके लक्ष्मणजीने वीरोचित दर्प करके बाणका सन्धान किया । बाण छोड़ते ही उसकी छातीके बीचमें लगा । मरते समय उसने सब कपट त्याग दिया ॥ ८ ॥

दो०—रामानुज कहँ रामु कहँ अस कहि छाँड़ेसि प्रान ।

धन्य धन्य तव जननी कह अंगद हनुमान ॥ ७६ ॥

रामका छोटा भाई लक्ष्मण कहाँ है ? राम कहाँ हैं ? ऐसा कहकर उसने प्राण छोड़ दिये । अङ्गद और हनुमान् कहने लगे—तेरी माता धन्य है, धन्य है [जो तू लक्ष्मणजीके हाथों मरा और मरते समय श्रीराम-लक्ष्मणको स्मरण करके तूने उनके नामोंका उच्चारण किया] ॥ ७६ ॥

चौ०—बिनु प्रयास हनुमान उठायो । लंकाद्वार राखि पुनि आयो ॥

तासु मरन सुनि सुर गंधर्वा । चढ़ि बिमान आप नभ सर्वा ॥ १ ॥

हनुमानजीने उसको बिना ही परिश्रमके उठा लिया और लङ्काके दरवाजेपर रखकर वे लौट आये ।
उसका मरना सुनकर देवता और गन्धर्व आदि सब विमानोंपर चढ़कर आकाशमें आये ॥ १ ॥

बरषि सुमन दुंदुभी बजावहिं । श्रीरघुनाथ बिमल जसु गावहिं ॥

जय अनंत जय जगदाधारा । तुम्ह प्रभु सब देवन्हि निस्तारा ॥ २ ॥

वे फूल बरसाकर नगाड़े बजाते हैं और श्रीरघुनाथजीका निर्मल यश गाते हैं । हे अनन्त ! आपकी जय हो, हे जगदाधार ! आपकी जय हो । हे प्रभो ! आपने सब देवताओंका उद्धार किया ॥ २ ॥

अस्तुति करि सुर सिद्ध सिधाप । लछिमन कृपासिंधु पढ़िं आप ॥

सुत बध सुना दसानन जबहीं । मुरुछित भयउ परेउ महि तबहीं ॥ ३ ॥

देवता और सिद्ध स्तुति करके चले गये, तब लक्ष्मणजी कृपाके समुद्र श्रीरामजीके पास आये ।
रावणने ज्यों ही पुत्रवधका समाचार सुना, त्यों ही वह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३ ॥

मंदोदरी रुदन कर भारी । उर ताड़न बहु भाँति पुकारी ॥

नगर लोग सब व्याकुल सोचा । सकल कहहिं दसकंधर पोखा ॥ ४ ॥

मन्दोदरी छाती पीट-पीटकर और बहुत प्रकारसे पुकार-पुकारकर बड़ा भारी विलाप करने लगी । नगरके सब लोग शोकसे व्याकुल हो गये । सभी रावणको नीच कहने लगे ॥ ४ ॥

दो०—तब दसकंठ विविधि विधि ममुझाई सब नारि ।

नखर रूप जगत सब देखहु हृदयँ विचारि ॥ ७७ ॥

तब रावणने सब स्त्रियोंको अनेकों प्रकारसे समझाया कि समस्त जगत्का यह (दृश्य) रूप नाशवान् है, हृदयमें विचार करके देखो ॥ ७७ ॥

चौ०—तिन्हहि ग्यान उपदेसा रावन । आपुन मंद कथा सुभ पावन ॥

पर उपदेस कुसल बहुतेरे । जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥ १ ॥

रावणने उनको ज्ञानका उपदेश किया । वह स्वयं तो नीच है, पर उसकी कथा (बातें) शुभ और पवित्र है । दूसरोंको उपदेश देनेमें तो बहुत लोग निपुण होते हैं । पर ऐसे लोग अधिक नहीं हैं जो उपदेशके अनुसार आचरण भी करते हैं ॥ १ ॥

जिसा सिरानि भयउ भिनुसारा । लगे भालु कपि चारिहुं द्वारा ॥

सुभट बोलाइ दसानन बोला । रन सन्मुख जाकर मन डोला ॥ २ ॥

रात बीती, सबेरा हुआ । रीछ-वानर फिर चारों दरवाजोंपर जा डटे । योद्धाओंको बुलाकर दशमुख रावणने कहा—लड़ाईमें शत्रुके सम्मुख जिसका मन डँवाडोल हो, ॥ २ ॥

सो अबहाँ बरु जाउ पराई । संजुग विमुख भएँ न भलाई ॥

निज भुजबल मैं बयर बढ़ावा । देहउँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा ॥ ३ ॥

अच्छा है वह अभी भाग जाय । युद्धमें जाकर विमुख होनेमें (भागनेमें) भलाई नहीं है । मैंने अपनी भुजाओंके बलपर वीर बढ़ाया है । जो शत्रु चढ़ आया है, उसको मैं अपने ही उत्तर दे दूँगा ॥ ३ ॥

अस कहि मरुत बेग रथ साजा । बाजे सकल जुझाऊ बाजा ॥

चले वीर सब अतुलित बली । जनु कज्जल कै आँधी चली ॥ ४ ॥

ऐसा कहकर उसने पवनके समान तेज चलनेवाला रथ सजाया । सारे जुझाऊ (लड़ाईके) बाजे बजने लगे । सब अतुलनीय बलवान् वीर ऐसे चले मानो काजलकी आँधी चली हो ॥ ४ ॥

असगुन अमित होहिं तेहि काला । गनइ न भुजबल गर्व विसाला ॥ ५ ॥

उस समय असंख्य अशकुन होने लगे । पर अपनी भुजाओंके बलका बड़ा गर्व होनेसे रावण उन्हें गिनता नहीं है ॥ ५ ॥

छं०—अति गर्व गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते ।

भट गिरत रथ ते बाजि गज चिक्करत भाजहिं साथ ते ॥

गोमाय गीघ कराल खर रव खान बोलहिं अति घने ।

जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने ॥

अत्यन्त गर्वके कारण वह शकुन-अशकुनका विचार नहीं करता । हथियार हाथोंसे गिर रहे हैं । योद्धा रथसे गिर पड़ते हैं । घोड़े, हाथी साथ छोड़कर चिन्घाड़ते हुए भाग जाते हैं । स्यार, गीघ, कौए और गदहे शब्द कर रहे हैं । बहुत अधिक कुत्ते बोल रहे हैं । उल्लू ऐसे अत्यन्त भयानक शब्द कर रहे हैं, मानो कालके दूत हों (मृत्युका संदेश सुना रहे हों) ।

दो०—ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिभ्राम ।

भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम ॥ ७८ ॥

जो जीवोंके द्रोहमें रत है, मोहवश है, रामबिमुख है और कामासक्त है, क्या उसको कभी स्वप्नमें भी सम्पत्ति, शुभ शकुन और चित्तकी शान्ति हो सकती है ? ॥ ७८ ॥

चौ०—चलेउ निसाचर कटक अपारा । चतुरंगिनी अनी बहु धारा ॥

बिबिध भौंति बाहन रथ जाना । बिपुल बरन पताक ध्वज नाना ॥ १ ॥

राक्षसोंकी अपार सेना चली । चतुरंगिणी सेनाकी बहुत-सी टुकड़ियाँ हैं । अनेकों प्रकारके वाहन, रथ और सवारियाँ हैं तथा बहुत-से रंगोंकी अनेकों पताकाएँ और ध्वजाएँ हैं ॥ १ ॥

चले मत्त गज जूथ घनेरे । प्राबिट जलद मरुत जनु प्रेरे ॥

बरन बरन बिरदैत निकाया । समर सूर जानहिं बहु माया ॥ २ ॥

मतवाले हाथियोंके बहुत-से झुंड चले । मानो पवनसे प्रेरित हुए वर्षाकालके बादल हों । रंगबिरंगे बाना धारण करनेवाले वीरोंके समूह है, जो युद्धमें बड़े शूरवीर हैं और बहुत प्रकाशकी माया जानते हैं ॥ २ ॥

अति बिचित्र बाहिनी बिराजी । वीर बसंत सेन जनु साजी ॥

चलत कटक दिगसिंधुर डगहों । छुभित पयोधि कुधर डगमगहों ॥ ३ ॥

अत्यन्त विचित्र फौज शोभित है । मानो वीर वसन्तने सेना सजायी हो । सेनाके चलनेसे दिशाओंके हाथी डिगने लगे, समुद्र धुभित हो गये और पर्वत डगमगाने लगे ॥ ३ ॥

उठी रेनु रवि गयउ छपाई । मरुत थकित बसुधा अकुलाई ॥

पनव निसान घोर रव वाजहिं । प्रलय समय के घन जनु गाजहिं ॥ ४ ॥

इतनी धूल उड़ी कि सूर्य छिप गये । फिर सहसा पवन रुक गया और पृथ्वी अकुला उठी । ढोल और नगाड़े भीषण ध्वनिसे बज रहे हैं, जैसे प्रलयकालके बादल गरज रहे हों ॥ ४ ॥

भेरि नफीरि वाज सहनाई । मारू राग सुभट सुखदाई ॥

केहरि नाद वीर सब करहीं । निज निज बल पौरुष उच्चरहों ॥ ५ ॥

भेरी, नफीरी (तुरही) और सहनाईमें योद्धाओंको सुख देनेवाला मारू राग बज रहा है । सब वीर सिंहनाद करते हैं और अपने-अपने बल-पौरुषका बखान कर रहे हैं ॥ ५ ॥

कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा । मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा ॥

हौं मारिहउँ भूप द्रो भाई । अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई ॥ ६ ॥

रावणने कहा—हे उत्तम योद्धाओ ! सुनो । तुम रीछ-वानरोंके ठट्टको मसल डालो । और मैं दोनों राजकुमार भाइयोंको मारूँगा । ऐसा कहकर उसने अपनी सेना सामने चलायी ॥ ६ ॥

यह सुधि सकल कपिन्ह जव पाई । घाय करि रघुवीर दोहाई ॥ ७ ॥

जब सब वानरोंने यह खबर पायी, तब वे श्रीरघुवीरजीकी दुहाई देते हुए दौड़े ॥ ७ ॥

छं०—घाय विसाल कराल मर्कट भालु काल समान ते ।

मानहुँ सपच्छ उड़ाहिं भूधर बृंद नाना बान ते ॥

नख दसन सैल महा दुमायुध सखल संक न मानहों ।

जय राम रावन मत्तगज मृगराज सुजसु बखानहीं ॥

वे विशाल और कालके समान कराल बानर-भाल् दौड़े । मानो पंखवाले पर्वतोंके समूह उड़ रहे हों । वे अनेक वणोंके हैं । नख, दाँत, पर्वत और बड़े-बड़े वृक्ष ही उनके हथियार हैं । वे बड़े बलवान् हैं और किसीका भी डर नहीं मानते । रावणरूपी मतवाले हाथीके लिये सिंहरूप श्रीरामजीका जय-जयकार करके वे उनके सुन्दर यशका बखान करते हैं ।

दो०—**दुहुँ दिसि जय जयकार करि निज निज जोरी जानि ।**

भिरे बीर इत रामहि उत रावनहि बखानि ॥ ७९ ॥

दोनों ओरके योद्धा जय-जयकार करके अपनी-अपनी जोड़ी जान (चुन) कर इधर श्रीरघुनाथजीका और उधर रावणका बखान करके परस्पर भिड़ गये ॥ ७९ ॥

चौ०—**रावनु रथी बिरथ रघुबीरा । देखि विभीषण भयउ अधीरा ॥**

अधिक प्रीति मन भा सदेहा । बंदि चरन कह सहित सनेहा ॥ १ ॥

रावणको रथपर और श्रीरघुवीरजीको बिना रथके देखकर विभीषण अधीर हो गये । प्रेम अधिक होनेसे उनके मनमें सन्देह हो गया । वे रामजीके चरणोंकी वन्दना करके स्नेहपूर्वक कहने लगे ॥ १ ॥

नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना । केहि विधि जितय बीर बलवाना ॥

सुनहु सखा कह कृपानिधाना । जेहिं जय होइ सो म्यंदन आना ॥ २ ॥

हे नाथ ! आपके न रथ है, न तनकी रक्षा करनेवाला कवच है और न जूते ही हैं । उस बलवान् वीर रावणको किस प्रकार जीतियेगा ! कृपानिधान श्रीरामजीने कहा—हे सखे ! सुनो, जिससे जय होती है, वह रथ दूसरा ही है ॥ २ ॥

सौरज धीरज तेहि रथ चाका । सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥

बल विवेक दम परहित घोरे । छमा कृपा समता रजु जोरे ॥ ३ ॥

उस रथके पहिये शौर्य और धैर्य हैं । सत्य और शील उसकी मजबूत ध्वजा और पताका हैं । बल, विवेक, दम (इन्द्रियोंका वशमें होना) और परोपकार, ये चार उसके घोड़े हैं, जो क्षमा, दया और समतारूपी डोरीसे रथमें जोड़े हुए हैं ॥ ३ ॥

ईस भजनु सारथी सुजाना । बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥

दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा । बर विग्यान कठिन कोदंडा ॥ ४ ॥

ईश्वरका भजन चतुर सारथी है । वैराग्य ढाल है और संतोष तलवार है । दान परसा है, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन घनुप है ॥ ४ ॥

अमल अचल मन त्रोन समाना । सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥

कवच अभेद बिप्र गुर पूजा । एहि सम विजय उपाय न दूजा ॥ ५ ॥

निर्मल और अचल मन तरकसके समान है । शम (मनका वशमें होना), यम और नियम, ये बहुत-से बाण हैं । ब्राह्मणों और गुरुका पूजन अभेद्य कवच है । इसके समान विजयका दूसरा उपाय नहीं है ॥ ५ ॥

सखा धर्ममय अस रथ जाकैं । जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकैं ॥ ६ ॥

हे सखे ! ऐसा धर्ममय रथ जिसके हो उसके लिये जीतनेको कहीं शत्रु ही नहीं है ॥ ६ ॥

दो०—**महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर ।**

जाकैं अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर ॥ ८० (क) ॥

हे धीर बुद्धिवाले सखा ! सुनो, जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो, वह वीर संसार (जन्ममृत्यु) रूपी महान् दुर्जय शत्रुको भी जीत सकता है [रावणकी तो बात ही क्या है !] ॥ ८० (क) ॥

सुनि प्रभु बचन बिभीषण हरषि गहे पदकंज ।

एहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपा सुख पुंज ॥ ८० (ख) ॥

प्रभुके वचन सुनकर बिभीषणजीने हर्षित होकर उनके चरणकमल पकड़ लिये और कहा—हे कृपा और सुखके समूह श्रीरामजी ! आपने इसी बहाने मुझे महान् उपदेश दिया ॥ ८० (ख) ॥

उत पचार दसकंधर इत अंगद हनुमान ।

लरत निसाचर भालु कपि करि निज निज प्रभु आन ॥ ८० (ग) ॥

उधरसे रावण ललकार रहा है, और इधरसे अङ्गद और हनुमान् । राक्षस और रीछ-वानर अपने-अपने स्वामीकी दुहाई देकर लड़ रहे हैं ॥ ८० (ग) ॥

चौ०—सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना । देखत रन नभ चढ़े विमाना ॥

हमहु उमा रहे तेहिं संग । देखत राम खरित रन रंगा ॥ १ ॥

ब्रह्मा आदि देवता और अनेकों सिद्ध तथा मुनि विमानोंपर चढ़े हुए युद्ध देख रहे हैं ! [शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! मैं भी उस समाजमें था और श्रीरामजीके रण-रंगकी लीला देख रहा था ॥ १ ॥

सुभट समर रस दुहु दिसि माते । कपि जयसील राम बल ताते ॥

एक एक सन भिरहिं पचारहिं । एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं ॥ २ ॥

दोनों ओरके योद्धा रण-रसमें मतवाले हो रहे हैं । वानरोंकी भीरामजीका बल है, इससे वे जयशील हैं । एक दूसरेसे भिड़ते और ललकारते हैं और एक दूसरेको मसल-मसलकर पृथ्वीपर डाल देते हैं ॥ २ ॥

मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं । सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं ॥

उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं । गहि पद अवनि पटक भट डारहिं ॥ ३ ॥

वे मारते, काटते, पकड़ते और पछाड़ देते हैं, और सिर तोड़कर उन्हीं सिरोंसे दूसरोंको मारते हैं । पेट फाड़ते हैं, भुजाएँ उखाड़ते हैं और योद्धाओंको पैर पकड़कर पृथ्वीपर पटक देते हैं ॥ ३ ॥

निसिचर भट महि गाढ़हिं भालू । ऊपर ढारि देहिं बहु बालू ॥

बोर बलीमुख जुद्ध विरुद्धे । देखिभत विपुल काल जनु कुद्धे ॥ ४ ॥

राक्षस योद्धाओंको भालू पृथ्वीमें गाड़ देते हैं और ऊपरसे बहुत-सी बालू डाल देते हैं । युद्धमें शत्रुओंसे विरुद्ध हुए वीर वानर ऐसे दिखायी पड़ते हैं मानो बहुत-से क्रोधित काल हों ॥ ४ ॥

छं०—कुद्धे कृतांत समान कपि तन स्रवत सोनित राजर्ही ।

मर्दहिं निसाचर कटक भट बलवंत घन जिमि गाजरही ॥

मारहिं चपेटन्ह डाटि दाँतन्ह काटि लातन्ह मीजरही ।

चिक्करहिं मर्कट भालु छल बल करहिं जेहिं खल छीजरही ॥ १ ॥

क्रोधित हुए कालके समान वे वानर खून बहते हुए शरीरोंसे शोभित हो रहे हैं । वे बलवान् वीर राक्षसोंकी सेनाके योद्धाओंको मसलते और मेघकी तरह गरजते हैं । डाँटकर चपेटोंसे मारते, दाँतोंसे काटकर लातोंसे पीस डालते हैं । वानर-भालू चिन्हाड़ते और ऐसा छल-बल करते हैं जिससे दुष्ट राक्षसोंका नाश हो जाय ॥ १ ॥

घरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलहीं ।
प्रह्लादपति जनु बिबिध तनु घरि समर अंगन खेलहीं ॥
धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही ।
जय राम जो तन ते कुलिस कर कुलिस ते कर तन सही ॥ २ ॥

वे राक्षसोंके गाल पकड़कर फाड़ डालते हैं, छाती चीर डालते हैं, और उनकी अँतड़ियाँ निकालकर गलेमें पहन लेते हैं । वे वानर ऐसे देख पड़ते हैं मानो प्रह्लादके स्वामी श्रीगुरुसिंह भगवान् अनेकों शरीर धारण करके रणके आँगनमें क्रीड़ा कर रहे हों । पकड़ों, मारो, काटो, पछाड़ो आदि घोर शब्द आकाश और पृथ्वीमें भर रहे हैं । श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो, जो सचमुच तृणसे वज्र और वज्रसे तृण कर देते हैं ॥ २ ॥

दो०—निज दल बिचलत देखेसि बीस भुजाँ दस चाप ।

रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप ॥ ८१ ॥

अपनी सेनाको विचलित होते हुए देखा तब बीस भुजाओंमें दस धनुष लेकर रावण रथपर चढ़कर गर्व करके 'बौटो, लौटो' कहता हुआ चला ॥ ८१ ॥

चौ०—घायउ परम क्रुद्ध दसकंधर । सन्मुख चले हूह दै बंदर ॥

गहि कर पादप उपल पहारा । डारेन्हि तापर एकहिं बारा ॥ १ ॥

रावण अत्यन्त क्रोधित होकर दौड़ा । वानर हूह करते हुए लड़नेके लिये उसके सामने चले । उन्होंने हाथोंमें वृक्ष, पत्थर और पहाड़ लेकर रावणपर एक ही साथ डाले ॥ १ ॥

लागहिं सैल बज्र तन तासू । खंड खंड होइ फूटहिं बासू ॥

चला न अचल रहा रथ रोपी । रन दुर्मद रावन अति कोपी ॥ २ ॥

पर्वत उसके वज्र-शरीरमें लगते ही तुरंत टुकड़े-टुकड़े होकर फूट जाते हैं । अत्यन्त क्रोधी रावणन्यत्र रावण रथ रोककर अचल खड़ा रहा, जरा भी नहीं हटा ॥ २ ॥

इत उत झपटि दपटि कपि जोधा । मदैँ लाग भयउ अति क्रोधा ॥

चले पराइ भालु कपि नाना । जाहि जाहि अंगद हनुमाना ॥ ३ ॥

उसे बहुत ही क्रोध हुआ । वह इधर-उधर झपटकर और डपटकर वानर योद्धाओंको मसलने लगा । अनेकों वानर-भालू 'हे अङ्गद ! हे हनुमान् ! रक्षा करो, रक्षा करो', पुकारते हुए भाग चले ॥ ३ ॥

पाहि पाहि रघुवीर गोसाईँ । यह खल खाइ काल की नाईँ ॥

तेहिं देखे कपि सकल पराने । दसहुँ चाप सायक संधाने ॥ ४ ॥

हे रघुवीर ! हे गोसाईँ ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । यह दुष्ट कालकी भाँति हमें खा रहा है । उसने देखा कि सब वानर भाग छूटे । तब दसों धनुषोंपर बाण सन्धान किये ॥ ४ ॥

छं०—संधानि घनु सर निकर छाड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं ।

रहे पूरि सर घरनी गगन दिसि धिदिसि कहँ कपि भागहीं ॥

भयो अति कोलाहल बिकल कपि दल भालु बोलहिं आतुरे ।

रघुवीर कहनासिंधु भारतबंधु जनरच्छक हरे ॥

उसने धनुषपर सन्धान करके बाणोंके समूह छोड़े। वे बाण सर्पकी तरह उड़कर जा लगते थे। पृथ्वी-आकाश और दिशा-विदिशा सर्वत्र बाण भर रहे हैं। वानर भागें तो कहाँ! अत्यन्त कोलाहल मच गया! वानर-भालुओंकी सेना व्याकुल होकर आर्त पुकार करने लगी—हे रघुवीर! हे कण्ठासागर! हे पीड़ितोंके बन्धु! हे सेवकोंकी रक्षा करके उनके दुःख हरनेवाले हरि!

दो०—निज दल बिकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ ।

लछिमन चले क्रुद्ध होइ नाइ रामपद माथ ॥ ८२ ॥

अपनी सेनाको व्याकुल देखकर कमरमें तरकस कसकर और हाथमें धनुष लेकर श्रीरघुनाथजीके चरणोंपर मस्तक नवाकर लक्ष्मणजी क्रोधित होकर चले ॥ ८२ ॥

चौ०—रे खल का मारसि कपि भालू । मोहि विलोकु तोर मैं कालू ॥

खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती । आजु निपाति जुड़ावउँ छाती ॥ १ ॥

[लक्ष्मणजीने पास जाकर कहा—] अरे दुष्ट! वानर-भालुओंको क्या मार रहा है? मुझे देख, मैं तेरा काल हूँ। [रावणने कहा—] अरे मेरे पुत्रके घातक! मैं तुझको ही ढूँढ़ रहा था। आज तुझे मारकर छाती टंडी करूँगा ॥ १ ॥

अस कहि छाड़ेसि वान प्रचंडा । लछिमन किए सकल सतखंडा ॥

कोटिन्ह आयुध रावन डारे । तिल प्रवान करि काटि निवारे ॥ २ ॥

ऐसा कहकर उसने प्रचंड बाण छोड़े। लक्ष्मणजीने सबके सैकड़ों टुकड़े कर डाले। रावणने करोड़ों अस्त्र-शस्त्र चलाये। लक्ष्मणजीने उनको तिलके बराबर करके काटकर हटा दिया ॥ २ ॥

पुनि निज वानन्ह कीन्ह प्रहारा । स्यंदनु भंजि सारथी मारा ॥

सत सत सर मारे दस भाला । गिरि खंगन्ह जनु प्रबिसहिं व्याला ॥ ३ ॥

फिर अपने बाणोंसे प्रहार किया और उसके रथको तोड़कर सारथीको मार डाला। रावणके दसों मस्तकोंमें सौ-सौ बाण मारे। वे सिरोंमें ऐसे पैठ गये मानो पहाड़के शिखरोंमें सर्प प्रवेश कर रहे हों ॥ ३ ॥

पुनि सत सर मारा उर माहीं । परेउ घरनितल सुधि कछु नाहीं ॥

उठा प्रबल पुनि मुखछा जागी । छाड़िसि ब्रह्म दीन्ह जो साँगी ॥ ४ ॥

फिर सौ बाण उमकी छातीमें मारे। वह पृथ्वीपर गिर पड़ा, उसे कुछ भी होश न रहा। फिर मूर्च्छा दृष्टनेपर वह प्रबल रावण उठा और उसने वह शक्ति चलायी जो ब्रह्माजीने उसे दी थी ॥ ४ ॥

छं०—सो ब्रह्मदत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही ।

पथ्यो वीर विकल उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही ॥

ब्रह्मांड भवन विराज जाकैं एक सिर जिमि रज कनी ।

तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुवन घनी ॥

वह ब्रह्माकी दी हुई प्रचण्ड शक्ति लक्ष्मणजीकी ठीक छातीमें लगी। वीर लक्ष्मणजी व्याकुल होकर गिर पड़े। रावण उन्हें उठाने लगा। पर उसके अतुलित बलकी महिमा यों ही रह गयी (व्यर्थ हो गयी, वह उन्हें उठाने न सका) जिनके एक ही सिरपर ब्रह्माण्डरूपी भवन धूलके एक कणके समान विराजता है, उन्हें मूर्ख रावण उठाना चाहता है! वह तीनों भुवनोंके स्वामी लक्ष्मणजीको नहीं जानता।

दो०—देखि पवनसुत धायउ बोलत बचन कठोर ।

आवत कपिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर ॥ ८३ ॥

यह देखकर पवनपुत्र हनुमान्जी कठोर बचन बोलते हुए दौड़े । हनुमान्जीके आते ही रावणने उनपर अत्यन्त भयङ्कर घुँसेका प्रहार किया ॥ ८३ ॥

चौ०—जानु टेकि कपि भूमि न गिरा । उठा सँभारि बहुत रिस भरा ॥

मुठिका एक ताहि कपि मारा । परेउ सैल जनु वज्र प्रहारा ॥ १ ॥

हनुमान्जी घुटने टेककर रह गये, पृथ्वीपर गिरे नहीं । और फिर क्रोधसे भरे हुए सँभालकर उठे । हनुमान्जीने रावणको एक घुँसा मारा । वह ऐसा गिर पड़ा जैसे वज्रकी मारसे पर्वत गिरा हो ॥ १ ॥

मुरुछा गै बहोरि सो जागा । कपि बल विपुल सराहन लागा ॥

धिग धिग मम पौरुष धिग मोही । जौं तैं जियत रहेसि सुरद्रोही ॥ २ ॥

मूर्च्छा भंग होनेपर फिर वह जगा और हनुमान्जीके बड़े भारी बलको सराहने लगा । [हनुमान्जीने कहा—] मेरे पौरुषको धिक्कार है, धिक्कार है और मुझे भी धिक्कार है, जो हे देवद्रोही ! तू अब भी जीता रह गया ॥ २ ॥

अस कहि लछिमन कहूँ कपि ल्यायो । देखि दसानन बिसमय पायो ॥

कह रघुवीर समुझु जियँ भ्राता । तुम्ह कृतांत भच्छक सुरत्राता ॥ ३ ॥

ऐसा कहकर और लक्ष्मणजीको उठाकर हनुमान्जी श्रीरघुनाथजीके पास ले आये । यह देखकर रावणको आश्चर्य हुआ । श्रीरघुवीरने लक्ष्मणजीसे कहा—हे भाई ! हृदयमें समझो, तुम कालके भी भक्षक और देवताओंके रक्षक हो ॥ ३ ॥

सुनत बचन उठि बैठ कृपाला । गई गगन सो सकति कराला ॥

पुनि कोदंड बान गहि धाय । रिपु सन्मुख अति आतुर आप ॥ ४ ॥

ये बचन सुनते ही कृपालु लक्ष्मणजी उठ बैठे । वह कराल शक्ति आकाशको चली गयी । लक्ष्मणजी फिर धनुष-बाण लेकर दौड़े और बड़ी शीघ्रतासे शत्रुके सामने आ पहुँचे ॥ ४ ॥

छं०—आतुर बहोरि विभंजि स्यंदन सूत हति व्याकुल कियो ।

गिरथो धरनि दसकंधर विकलतर बान सत बेच्यो हियो ॥

सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो ।

रघुवीर बंधु प्रतापपुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो ॥

फिर उन्होंने बड़ी ही शीघ्रतासे रावणके रथको चूर-चूरकर और सारथीको मारकर उसे (रावणको) व्याकुल कर दिया । सौ बाणोंसे उसका हृदय वेध दिया । जिससे रावण अत्यन्त व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा । तब दूसरा सारथी उसे रथमें डालकर तुरंत ही लङ्काको ले गया । प्रतापके समूह श्रीरघुवीरके भाईने फिर आकर प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया ।

दो०—उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जग्य ।

राम विरोध बिजय चह सठ हठ बस अति अग्य ॥ ८४ ॥

वहाँ (लङ्कामें) रावण मूर्च्छासे जागकर कुछ यत्न करने लगा । वह दुष्ट और अत्यन्त अज्ञानी है जो हठवश श्रीरघुनाथजीसे विरोध करके विजय चाहता है ॥ ८४ ॥

चौ०—इहाँ बिभीषण सब सुधि पाई । सपदि जाइ रघुपतिहि सुनारै ॥

नाथ करइ रावन एक जागा । सिद्ध भएँ नहिं मरिहि अभागा ॥ १ ॥

यहाँ बिभीषणजीने सब खबर पायी और शीघ्र ही जाकर श्रीरघुनाथजीको कह सुनायी कि हे नाथ ! रावण एक यज्ञ कर रहा है । उसके सिद्ध होनेपर वह अभागा सहज ही नहीं मरेगा ॥ १ ॥

पठवहु नाथ बेगि भट बंदर । करहिं बिधंस आव दसकंधर ॥

प्रात होत प्रभु सुभट पठाए । हनुमदादि अंगद सब घाए ॥ २ ॥

हे देव ! तुरंत वानर योद्धाओंको भेजिये, जो यज्ञका विध्वंस करें, जिससे रावण युद्धमें आवे । प्रातःकाल होते ही प्रभुने वीर योद्धाओंको भेजा । हनुमान् और अङ्गद आदि सब प्रधान वीर दौड़े ॥ २ ॥

कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका । पैंठे रावन भवन असंका ॥

जग्य करत जवहीं सो देखा । सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेषा ॥ ३ ॥

वानर खेलसे ही कूदकर लङ्कापर जा चढ़े और निर्भय रावणके महलमें घुस गये । ज्यों ही उसको यज्ञ करते देखा, त्यों ही सब वानरोंको बहुत क्रोध हुआ ॥ ३ ॥

रन ते निलज भाजि गृह आवा । इहाँ आइ बकध्यान लगावा ॥

अस कहि अंगद मारा लाता । चितव न सठ स्वारथ मन राता ॥ ४ ॥

[उन्होंने कहा—] अरे ओ निर्लज ! रणभूमिसे घर भाग आया और यहाँ आकर बगलेका-सा ध्यान लगाकर बैठा है ! ऐसा कहकर अङ्गदने लात मारी । पर उसने इनकी ओर देखा भी नहीं, उस मूर्खका मन स्वार्थमें अनुरक्त था ॥ ४ ॥

छं०—नहिं चितव जब करि कोप कपि गहि दसन लातन्ह मारहीं ।

धरि केस नारि निकारि बाहेर तेतिदीन पुकारहीं ॥

तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन वानर डारई ।

पहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मन महुँ हारई ॥

जब उसने नहीं देखा, तब वानर क्रोध करके उसे दाँतोंसे पकड़कर काटने और लातोंसे मारने लगे । रावणकी स्त्रियोंको बाल पकड़कर घरसे बाहर धसीट लाये । वे अत्यन्त ही दीन होकर पुकारने लगीं । तब रावण कालके समान क्रोधित होकर उठा और वानरोंको पैर पकड़कर पटकने लगा । इसी बीचमें वानरोंने यज्ञ विध्वंस कर डाला देखकर वह मनमें हारने लगा ।

दो०—जग्य बिधंसि कुसल कपि आए रघुपति पास ।

चलेउ निसावर क्रुद्ध होइ त्यागि जिवन के आस ॥ ८५ ॥

यज्ञ विध्वंस करके सब चतुर वानर रघुनाथजीके पास आ गये । तब रावण जीनेकी आशा छोड़कर क्रोधित होकर चला ॥ ८५ ॥

चौ०—बलत होहिं अति असुम भयंकर । बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर ॥

भयउ कालबस काहु न माना । कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना ॥ १ ॥

चलते समय अत्यन्त भयङ्कर अपशकुन (अपशकुन) होने लगे । गीध उड़-उड़कर उसके किरोंपर बैठने लगे । किन्तु वह कालके वश था, इससे किसी भी अपशकुनको नहीं मानता था । उसने कहा—युद्धका डंका बजाओ ॥ १ ॥

खली तमीचर अनी अपारा । बहु गज रथ पदाति असवारा ॥
प्रभु सन्मुख धाय खल कैसें । सलभ समूह अनल कहँ जैसें ॥ २ ॥

निशाचरोंकी अपार सेना चली । उसमें बहुत-से हाथी, रथ, घुड़सवार और पैदल हैं । वे दुष्ट प्रभुके सामने कैसे दौड़े, जैसे पतंगोंके समूह अमिकी ओर जलनेके लिये दौड़ते हैं ॥ २ ॥

इहाँ देवतन्ह अस्तुति कीन्ही । दारुन विपति हमहि एहिं दीन्ही ॥
अब जनि राम खेलावहु एही । अतिसय दुखित होति बेदेही ॥ ३ ॥

इधर देवताओंने स्तुति की कि हे श्रीरामजी ! इसने हमको दारुण दुःख दिये हैं । अब आप इसे खेलाइये नहीं । जानकीजी बहुत ही दुखी हो रही हैं ॥ ३ ॥

देवबचन सुनि प्रभु मुसुकाना । उठि रघुवीर सुधारे बाना ॥
जटाजूट दृढ़ बाँधे माथें । सोहहिं सुमन बीच बिच गार्थें ॥ ४ ॥

देवताओंके वचन सुनकर प्रभु मुस्कराये । फिर श्रीरघुवीरने उठकर बाण सुधारे । मस्तकपर जटाओंके जूँटोंको कसकर बाँधे हुए हैं, उसके बीच-बीचमें पुष्प गुँथे हुए शोभित हो रहे हैं ॥ ४ ॥

अरुन नयन बारिद तनु स्यामा । अखिल लोक लोचनाभिरामा ॥
कटितट परिकर कस्यो निषंगा । कर कोदंड कठिन सारंगा ॥ ५ ॥

लाल नेत्र और मेघके समान श्याम शरीरवाले और सम्पूर्ण लोकोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले हैं । प्रभुने कमरमें फौटा तथा तरकस कस लिया और हाथोंमें कठोर शार्ङ्गधनुष ले लिया ॥ ५ ॥

छं०—सारंग कर सुंदर निषंग सिलीमुखाकर कटि कस्यो ।
भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो ॥
कह दास तुलसी जवहिं प्रभु सर चाप कर फेरन लगे ।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे ॥

प्रभुने हाथमें शार्ङ्गधनुष लेकर कमरमें बाणोंकी खान (अक्षय) सुन्दर तरकस कस लिया । उनके भुजदण्ड पुष्ट हैं और मनोहर चौड़ी छातीपर ब्राह्मण (भृगुजी) के चरणका चिह्न शोभित है । तुलसीदासजी कहते हैं, ज्यों ही प्रभु धनुष-बाण हाथमें लेकर फिराने लगे, त्यों ही ब्रह्माण्ड, दिशाओंके हाथी, कच्छप, शेषजी, पृथ्वी, समुद्र और पर्वत सभी डगमगा उठे ।

दो०—सोभा देखि हरषि सुर वरषहिं सुमन अपार ।

जय जय जय करुनानिधि छवि बल गुन आगार ॥ ८६ ॥

भगवान्की शोभा देखकर देवता हर्षित होकर फूलोंकी अपार वर्षा करने लगे । और शोभा, शक्ति और गुणोंके घाम करुणानिधान प्रभुकी जय हो, जय हो, जय हो [ऐसा पुकारने लगे] ॥ ८६ ॥

चौ०—एहीं बीच निसाचर अनी । कसमसात आई अति घनी ॥
देखि चले सन्मुख कपि भट्टा । प्रलयकाल के जनु घन घट्टा ॥ १ ॥

इसी बीचमें निशाचरोंकी अत्यन्त घनी सेना कसमसाती हुई (आपसमें टकराती हुई) आयी । उसे देखकर वानर योद्धा इस प्रकार उसके सामने चले जैसे प्रलयकालके बादलोंके समूह हों ॥ १ ॥

बहु रुपान तरवार चमंकहिं । जनु दहँ विसि दामिनी दमंकहिं ॥
गज रथ तुरग चिकार कठोरा । गर्जहिं मनहुँ बलाहक घोरा ॥ २ ॥

बहुत-से कृपाण और तलवारें चमक रही हैं। मानो दसों दिशाओंमें बिजलियाँ चमक रही हों। हाथी, रथ और घोड़ोंका कठोर चिंगाड़ ऐसा लगता है मानो बादल भयङ्कर गर्जन कर रहे हों ॥ २ ॥

कपि लंगूर बिपुल नभ छाए। मनहुँ इंद्रधनु उप सुहाए ॥

उठइ धूरि मानहुँ जलधारा। बान बुंद भै वृष्टि अपारा ॥ ३ ॥

वानरोंकी बहुत-सी पूँछें आकाशमें छापी हुई हैं, मानो सुन्दर इन्द्रधनुष उदय हुए हों। धूल ऐसी उठ रही है मानो जलकी धारा हो। बाणरूपी बूँदोंकी अपार वृष्टि हुई ॥ ३ ॥

दुहुँ दिसि पर्वत करहिं प्रहारा। वज्रपात जनु बारहिं बारा ॥

रघुपति कोपि बान झरि लाई। घायल भै निसिचर समुदाई ॥ ४ ॥

दोनों ओरसे योद्धा पर्वतोंका प्रहार करते हैं। मानो बारंबार वज्रपात हो रहा हो। श्रीरघुनाथजीने क्रोध करके बाणोंकी झड़ी लगा दी, जिससे राक्षसोंकी सेना घायल हो गयी ॥ ४ ॥

लागत बान बीर चिकरहीं। घुर्मि घुर्मि जहँ तहँ महि परहीं ॥

झवहिं सैल जनु निर्झर भारी। सोनित सरि कादर भयकारी ॥ ५ ॥

बाण लगते ही वीर चीत्कार कर उठते हैं और चक्कर खा-खाकर जहाँ-तहाँ पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं। उनके शरीरोंसे ऐसे खून बह रहा है मानो पर्वतके भारी झरनोंसे जल बह रहा हो। इस प्रकार डरपोकोंको डरानेवाली रुधिरकी नदी बह चली ॥ ५ ॥

छं०—कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी।

दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त बहति भयावनी ॥

जलजंतु गज पदचर तुरग खर विविध बाहन को गने।

सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने ॥

डरपोकोंको भय उपजानेवाली अत्यन्त अपवित्र रक्तकी नदी बह चली। दोनों दल उसके दोनों किनारे हैं। रथ रेत है और पहिये भँवर हैं। वह नदी बहुत भयावनी बह रही है। हाथी, पैदल, घोड़े, गदहे, तथा अनेकों सवारियाँ ही, जिनकी गिनती कौन करे, नदीके जलजन्तु हैं। बाण, शक्ति और तोमर सर्प हैं; धनुष तरंगें हैं और ढाल बहुत-से कछुये हैं।

दो०—वीर परहिं जनु तीर तरु मज्जा बहु बह फेन।

कादर देखि डरहिं तहँ सुभटन्ह के मन चैन ॥ ८७ ॥

वीर पृथ्वीपर इस तरह गिर रहे हैं, मानो नदी-किनारेके वृक्ष ढह रहे हों। बहुत-सी मज्जा बह रही है, वही फेन है। डरपोक जहाँ इसे देखकर डरते हैं, वहाँ उत्तम योद्धाओंके मनमें सुख होता है ॥ ८७ ॥

चौ०—मज्जहिं भूत पिशाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला ॥

काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक लै खाहीं ॥ १ ॥

भूत, पिशाच और बैताल, बड़े-बड़े झोंटोंवाले महान् भयङ्कर झोटिंग और प्रमथ (शिवगण) उस नदीमें स्नान करते हैं। कौए और चील भुजाएँ लेकर उड़ते हैं और एक दूसरेसे छीनकर खा जाते हैं ॥ १ ॥

एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई। सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई ॥

कहँरत भट घायल तट गिरे। जहँ तहँ मनहुँ अर्धजल परे ॥ २ ॥

कल्याण

(१) नागपाश-बन्धन-लीला



ब्याल पास बस भए खरारी ।
स्वयस अनंत एक अविकारी ॥
[पृष्ठ ७२३]

(२) मेघनादपर विशूलप्रहार



मारिसि मेघनाद कै छाती ।
परा भूमि घुर्मित मुरघाती ॥
[पृष्ठ ७२३]

(३) रावणपर मुष्टि-प्रहार



मुठिका एक ताहि कपि मारा ।
परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा ॥
[पृष्ठ ७३३]

(४) रणभूमि



सैचहि गोध आँत तट भए ।
जनु बंसी खेलत चित दए ॥
[पृष्ठ ७३७]

एक (कोई) कहते हैं, अरे मूर्खों ! ऐसी सस्ती (बहुतायत) है, फिर भी तुम्हारी दरिद्रता नहीं जाती ! पायल योद्धा तटपर पड़े कराह रहे हैं, मानो जहाँ-तहाँ अर्धजल (वे व्यक्ति जो मरनेके समय आधे जलमें रक्खे जाते हैं) पड़े हों ॥ २ ॥

खेंचहिं गीघ आँत तट भए । जनु बंसी खेलत चित दए ॥

बहु भट वहहिं चढ़े खग जाहीं । जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं ॥ ३ ॥

गीघ आँते खींच रहे हैं, मानो मछलीमार नदी-तटपरसे चित्त लगाये हुए (ध्यानस्थ होकर) बंसी खेल रहे हों (बंसीसे मछली पकड़ रहे हों) । बहुत-से योद्धा बड़े जा रहे हैं और पक्षी उनपर चढ़े चले जा रहे हैं । मानो वे नदीमें नावरि (नौकाक्रीड़ा) खेल रहे हों ॥ ३ ॥

जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं । भूत पिशाच बधू नभ नंचहिं ॥

भट कपाल करताल बजावहिं । चामुंडा नाना विधि गावहिं ॥ ४ ॥

योगिनिघाँ खप्परोमें भर-भरकर खून जमा कर रही हैं । भूत-पिशाचोंकी खियाँ आकाशमें नाच रही हैं । चामुण्डाएँ योद्धाओंकी खोपड़ियोंका करताल बजा रही हैं और नाना प्रकारसे गा रही हैं ॥ ४ ॥

जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं । खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं ॥

कोटिन्ह रुंड मुंड विनु डोलहिं । सीस परे महि जय जय बोलहिं ॥ ५ ॥

गीदड़ोंके समूह कट-कट शब्द करते हुए मुरदोंको काटते, खाते, हुआँ-हुआँ करते और एक दूसरेको डौटते हैं । करोड़ों धड़ विना सिरके घूम रहे हैं । और सिर पृथ्वीपर पड़े जय-जय बोल रहे हैं ॥ ५ ॥

छं०—बोलहिं जो जय जय मुंड रुंड प्रवंड सिर विनु घावहीं ।

खप्परिन्ह खग अलुज्झ जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं ॥

वानर निसाचर निकर मर्दहिं राम बल दर्पित भए ।

संग्राम अंगन सुभट सोवहिं राम सर निकरिन्ह हए ॥

मुण्ड (कटे सिर) जय-जय बोलते हैं, और प्रचण्ड रुण्ड (धड़) विना सिरके दौड़ते हैं । पक्षी खोपड़ियोंमें उलझ-उलझकर परस्पर लड़े मरते हैं । उत्तम योद्धा दूसरे योद्धाओंको ढहा रहे हैं । श्रीराम-चन्द्रजीके बलसे दर्पित हुए वानर निशाचरसमूहको मसले डालते हैं । श्रीरामजीके बाण-समूहोंसे मरे योद्धा रणाङ्गणमें सो रह रहे हैं ।

दो०—रावन हृदयं विचारा भा निसिचर संघार ।

मैं अकेल कपि भालु बहु माया करों अपार ॥ ८८ ॥

रावणने हृदयमें विचारा कि राक्षसोंका नाश हो गया है । मैं अकेला हूँ और वानर-भालू बहुत हैं, इसलिये मैं अब अपार माया रचूँ ॥ ८८ ॥

चो०—देवन्ह प्रभुहि पयादें देखा । उपजा उर अति छोभ विसेषा ॥

सुरपति निज रथ तुरत पठावा । हरष सहित मातलि लै आवा ॥ १ ॥

देवताओंने प्रभुको पैदल देखा, तो उनके हृदयमें बड़ा भारी क्षोभ उत्पन्न हुआ । इन्द्रने तुरंत अपना रथ भेजा । मातलि हर्षके साथ उसे ले आया ॥ १ ॥

तेजपुंज रथ दिव्य अनूपा । हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा ॥

चंचल तुरग मनोहर चारी । अजर अमर मन सम गतिकारी ॥ २ ॥

उस दिव्य, अनुपम और तेजके पुञ्ज (तेजोमय) रथपर कोसलपुर (अयोध्या) के राजा श्रीरामचन्द्रजी हर्षित होकर चढ़े । उसमें चार चञ्चल, मनोहर, अजर, अमर और मनकी गतिके समान शीघ्र चलनेवाले (देवलोकके) घोड़े जुते थे ॥ २ ॥

रथारूढ़ रघुनाथहि देखी । धाय कपि बलु पाइ बिसेषी ॥

सही न जाइ कपिन्ह कै मारी । तब रावन माया बिस्तारी ॥ ३ ॥

श्रीरघुनाथजीको रथपर चढ़े देखकर वानर विशेष बल पाकर दौड़े । वानरोंकी मार सही नहीं जाती । तब रावणने माया फैलायी ॥ ३ ॥

सो माया रघुवीरहि बाँची । लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची ॥

देखी कपिन्ह निसाचर अनी । अनुज सहित बहु कोसलधनी ॥ ४ ॥

एक श्रीरघुवीरके ही वह माया नहीं लगी । सब वानरोंने और लक्ष्मणजीने भी उस मायाको सच मान लिया । वानरोंने राक्षसी सेनामें भाई लक्ष्मणजीसहित बहुत-से रामोंको देखा ॥ ४ ॥

छं०—बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे ।

जनु चित्रलिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे ॥

निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसलधनी ।

माया हरी हरि निमिष महुँ हरणी सकल मर्कट अनी ॥

बहुत-से राम-लक्ष्मण देखकर वानर-भालू मनमें मिथ्या डरसे बहुत ही डर गये । लक्ष्मणजीसहित वे मानो चित्रलिखे-से जहाँ-के-तहाँ खड़े देखने लगे । अपनी सेनाको आश्चर्यचकित देखकर कोसलपति भगवान् हरि (दुःखोंके हरनेवाले श्रीरामजी) ने हँसकर धनुषपर बाण चढ़ाकर, पलभरमें सारी माया हर ली । वानरोंकी सारी सेना हर्षित हो गयी ।

दो०—बहुरि राम सब तन चितइ बोले वचन गंभीर ।

द्वंद्व जुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति वीर ॥ ८९ ॥

फिर श्रीरामजी सबकी ओर देखकर गम्भीर वचन बोले—हे वीरो ! तुम सब बहुत ही थक गये हो, इसलिये अब मेरा और रावणका द्वन्द्वयुद्ध देखो ॥ ८९ ॥

चौ०—अस कहि रथ रघुनाथ चलावा । विप्र चरन पंकज सिर नावा ॥

तब लंकेस क्रोध उर छावा । गर्जत तर्जत सन्मुख धावा ॥ १ ॥

ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजीने ब्राह्मणोंके चरणकमलोंमें सिर नवाया और फिर रथ चलाया । तब रावणके हृदयमें क्रोध छा गया और वह गरजता तथा ललकारता हुआ सामने दौड़ा ॥ १ ॥

जीतेहु जे भट संजुग माहीं । सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं ॥

रावन नाम जगत जस जाना । लोकप जाकैं बंदीखाना ॥ २ ॥

[उसने कहा—] अरे तपस्वी ! सुनो, तुमने युद्धमें जिन योद्धाओंको जीता है, मैं उनके समान नहीं हूँ । मेरा नाम रावण है, मेरा यश सारा जगत् जानता है, जिसके कैदखानेमें लोकपालतक पड़े हैं ॥ २ ॥

खर दूपन बिराध तुम्ह मारा । बधेहु व्याध इव बालि बिचारा ॥

निसिचर निकर सुभट संघारेहु । कुंभकरन घननावहि मारेहु ॥ ३ ॥

तुमने खर, दूषण और विराधको मारा। बेचारे बालिका व्याधकी तरह वध किया, बड़े बड़े राक्षस योद्धाओंके समूहका संहार किया। और कुम्भकर्ण तथा मेघनादको भी मारा ॥ ३ ॥

आजु बयरु सबु लेउँ निवाही। जौ रन भूप भाजि नहिं जाही ॥

आजु करउँ खलु काल हवाले। परेहु कठिन रावन के पाले ॥ ४ ॥

अरे राजा ! यदि तुम रणसे भाग न गये तो आज मैं वह सारा वैर निकाल लूँगा। आज मैं तुम्हें निश्चय ही कालके हवाले कर दूँगा। तुम कठिन रावणके पाले पड़े हो ॥ ४ ॥

सुनि दुर्वचन कालवस जाना। विहँसि बचन कह कृपानिधाना ॥

सत्य सत्य सब तब प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई ॥ ५ ॥

रावणके दुर्वचन सुनकर और उसे कालवश जान कृपानिधान श्रीरामजीने हँसकर यह वचन कहा—तुम्हारी सारी प्रभुता, जैसा तुम कहते हो, बिल्कुल सच है। पर अब व्यर्थ बकवाद न करो, अपना पुरुषार्थ दिखलाओ ॥ ५ ॥

छं०—जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।

संसार महुँ पुरुष त्रिविध पाटल रसाल पनस समा ॥

एक सुमन प्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।

एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न वागहीं ॥

व्यर्थ बकवाद करके अपने सुन्दर यशका नाश न करो। क्षमा करना, तुम्हें नीति सुनाता हूँ, सुनो। संसारमें तीन प्रकारके पुरुष होते हैं—पाटल, आम और कटहलके समान। एक (पाटल) फूल देते हैं, एक (आम) फूल और फल दोनों देते हैं। और एक (कटहल) में केवल फल ही लगते हैं। इसी प्रकार पुरुषोंमें एक कहते हैं, करते नहीं; दूसरे कहते और करते भी हैं, और एक (तीसरे) केवल करते हैं, पर वाणीसे कहते नहीं।

दो०—रामबचन सुनि बिहँसा मोहि सिखावत ग्यान।

बयरु करत नहिं तब डरे अब लागे प्रिय प्रान ॥ ९० ॥

श्रीरामजीके वचन सुनकर वह हँसा [और बोला—] मुझे ज्ञान सिखाते हो ? उस समय वैर करते तो नहीं डरे, अब प्राण प्यारे लग रहे हैं ॥ ९० ॥

चौ०—कहि दुर्वचन ब्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छाँड़े सर ॥

नानाकार सिलीमुख घाण। दिसि अरु विदिसि गगन महि छाण ॥ १ ॥

दुर्वचन कहकर रावण क्रुद्ध होकर वज्रके समान बाण छोड़ने लगा। अनेकों आकारके बाण दौड़े और दिशा, विदिशा तथा आकाश और पृथ्वीमें, सब जगह छा गये ॥ १ ॥

पावक सर छाँड़ेउ रघुवीरा। छन महुँ जरे निसावर तीरा ॥

छाड़िसि तीव्र सक्ति खिसिआई। वान संग प्रभु फेरि चलाई ॥ २ ॥

श्रीरघुवीरने अग्निबाण छोड़ा, जिससे रावणके सब बाण क्षणभरमें भस्म हो गये। तब उसने खिसियाकर तीक्ष्ण शक्ति छोड़ी। किन्तु श्रीरामचन्द्रजीने उसको बाणके साथ वापस भेज दिया ॥ २ ॥

कोटिन्ह चक्र त्रिसुल पवारै। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारै ॥

निफल होहिं रावन सर कैसैं। खल के सकल मनोरथ जैसैं ॥ ३ ॥

वह करोड़ों चक्र और त्रिशूल चलाता है, परन्तु प्रभु उन्हें विना ही परिश्रम काटकर हटा देते हैं। रावणके बाण किस प्रकार निष्फल होते हैं, जैसे दुष्ट मनुष्यके सब मनोरथ ! ॥ ३ ॥

तब सत वान सारथी मारेसि । परेउ भूमि जय राम पुकारेसि ॥

राम कृपा करि सूत उठावा । तब प्रभु परम क्रोध कहूँ पावा ॥ ४ ॥

तब उसने श्रीरामजीके सारथीको सौ बाण मारे; वह श्रीरामजीकी जय पुकारकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। रामजीने कृपा करके सारथीको उठाया। तब प्रभु अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हुए ॥ ४ ॥

छं०—भय कुछ जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे ।

कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे ॥

मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर ग्रसे ।

चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे ॥

युद्धमें शत्रुके विरुद्ध श्रीरघुनाथजी क्रोधित हुए, तब तरकसमें बाण कसमसाने लगे (बाहर निकलनेको आतुर होने लगे)। उनके धनुषका अत्यन्त प्रचण्ड शब्द (टङ्कार) सुनकर मनुष्यभक्षी सब राक्षस वातग्रस्त हो गये (अत्यन्त भयभीत हो गये)। मन्दोदरीका हृदय काँप उठा। समुद्र, कच्छप, पृथ्वी और पर्वत डर गये। दिशाओंके हाथी पृथ्वीकी दाँतोंसे पकड़कर चिग्याइने लगे। यह कौतुक देखकर देवता हँसे।

दो०—तानेउ चाप श्रवन लागि छाँड़े बिसिख कराल ।

राम मारगन गन चले लहलहात जनु ग्याल ॥ ९१ ॥

धनुषको कानतक तानकर श्रीरामचन्द्रजीने भयानक बाण छोड़े। श्रीरामजीके बाणसमूह ऐसे चले मानो सर्प लहलहाते (लहराते) हुए जा रहे हों ॥ ९१ ॥

चो०—चले वान सपच्छ जनु उरगा । प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा ॥

रथ विभंजि हति केतु पताका । गर्जा अति अंतर बल थाका ॥ १ ॥

बाण ऐसे चले मानो खवाले सर्प उड़ रहे हों। उन्होंने पहले सारथी और घोड़ोंको मार डाला। फिर रथको चूर-चूर करके ध्वजा और पताकाओंको गिरा दिया। तब रावण बड़े जोरसे गरजा; पर भीतरसे उसका बल थक गया था ॥ १ ॥

तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना । अस्त्र सस्त्र छाँड़ेसि बिधि नाना ॥

बिफल होहिं सब उद्यम ताके । जिमि परद्रोह निरत मनसा के ॥ २ ॥

तुरंत दूधरे रथपर चढ़कर खिसियाकर उसने नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र छोड़े। उसके सब उद्योग वैसे ही निष्फल हो रहे हैं जैसे परद्रोहमें लगे हुए चित्तवाले मनुष्यके होते हैं ॥ २ ॥

तब रावण दस सूल चलावा । बाजि चारि महि मारि गिरावा ॥

तुरग उठाइ कोपि रघुनाथक । बैचि सरासन छाँड़े सायक ॥ ३ ॥

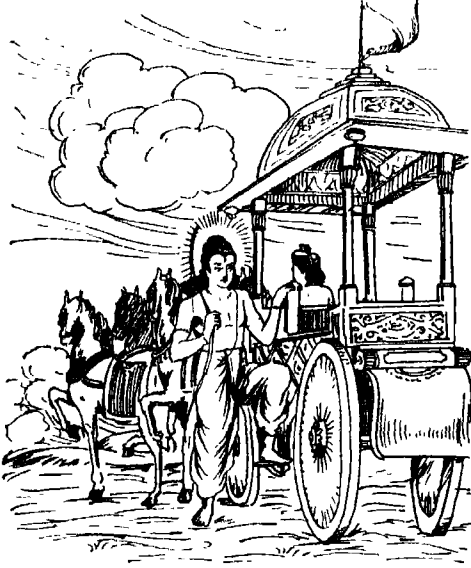
तब रावणने दस त्रिशूल चलाये और श्रीरामजीके चारों घोड़ोंको मारकर पृथ्वीपर गिरा दिया। घोड़ोंको उठाकर श्रीरघुनाथजीने क्रोध करके धनुष खींचकर बाण छोड़े ॥ ३ ॥

रावण सिर सरोज बनचारी । बलि रघुबीर सिलीमुख धारी ॥

दस दस वान भाल दस मारे । निसरि गए चले रुधिर पनारे ॥ ४ ॥

कल्याण

(१) रामके लिये देव-रथ



तेजपुंज रथ दिव्य अनूपा ।
हरषि चंदे कोसलपुर भूपा ॥
[पृष्ठ ७३७]

(२) रावणकी माया



बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे ।
[पृष्ठ ७३८]

(३) आकाशमें मुण्ड और बाहु



रहे छाह नभ सिर अरु बाहु ।
मानहुँ अमित केतु अरु राहु ॥
[पृष्ठ ७४१]

(४) शरणागतवत्सलता



तुरत बिभीषन पाछे मेल ।
सन्मुख राम सहेउ सोइ सेल ॥
[पृष्ठ ७४२]

रावणके सिररूपी कमलवनमें विचरण करनेवाले श्रीरघुवीरके बाणरूपी भ्रमरोंकी पंक्ति चली । श्रीरामचन्द्रजीने उसके दसों सिरोंमें दस-दस बाण मारे, जो आरपार हो गये और सिरोंसे रक्तके पनाले बह चले ॥ ४ ॥

स्रवत रुधिर धायउ बलवाना । प्रभु पुनि कृत धनु सर संधाना ॥

तीस तीर रघुवीर पबारे । भुजन्हि समेत सीस माहि पारे ॥ ५ ॥

रुधिर बहते हुए ही बलवान् रावण दौड़ा । प्रभुने फिर धनुषपर बाण संधान किया । श्रीरघुवीरने तीस बाण मारे और बीसों भुजाओंसमेत दसों सिर काटकर पृथ्वीपर गिरा दिये ॥ ५ ॥

काटतहीं पुनि भय नवीने । राम बहोरि भुजा सिर छीने ॥

प्रभु बहु वार बाहु सिर हय । कटत झटिति पुनि नूतन भय ॥ ६ ॥

सिर और हाथ काटते ही वे फिर नये हो गये । श्रीरामजीने फिर भुजाओं और सिरोंको काट गिराया । इस तरह प्रभुने बहुत वार भुजाएँ और सिर काटे । परन्तु कटते ही वे तुरंत फिर नये हो गये ॥ ६ ॥

पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा । अति कौतुकी कोसलाधीसा ॥

रहे छाह नभ सिर अरु बाहु । मानहुँ अमित केतु अरु राहु ॥ ७ ॥

प्रभु बार-बार उसके भुजा और सिरोंको काट रहे हैं । क्योंकि कोसलपति श्रीरामजी बड़े कौतुकी हैं । आकाशमें सिर और बाहु ऐसे छा गये हैं मानो असंख्य केतु और राहु हों ॥ ७ ॥

छं०—जनु राहु केतु अनेक नभपथ स्रवत सोनित धावहीं ।

रघुवीर तीर प्रचंड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं ॥

एक एक सर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं ।

जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ विधुंतुद पोहहीं ॥

मानो अनेकों राहु और केतु रुधिर बहाते हुए आकाशमार्गमें दौड़ रहे हों । श्रीरघुवीरके प्रचण्ड बाणोंके बार-बार लगानेसे वे पृथ्वीपर गिरने नहीं पाते । एक-एक बाणसे समूह-के-समूह सिर छिदे हुए आकाशमें उड़ते ऐसे शोभित हो रहे हैं मानो सूर्यकी किरणें क्रोध करके जहाँ-तहाँ राहुओंको पिरो रही हों ।

दो०—जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि तिमि होहिं अपार ।

सेवत बिषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार ॥ ९२ ॥

जैसे-जैसे प्रभु उसके सिरोंको काटते हैं, वैसे-ही-वैसे वे अपार होते जाते हैं । जैसे विषयोंका सेवन करनेसे काम (उन्हें भोगनेकी इच्छा) दिन-प्रति-दिन नया-नया बढ़ता जाता है ॥ ९२ ॥

चौ०—दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी । बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी ॥

गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी । धायउ दसहु सरासन तानी ॥ १ ॥

सिरोंकी बाढ़ देखकर रावणको अपना मरण बिसर गया और बड़ा गहरा क्रोध हुआ । वह महान् अभिमानी मूर्ख गरजा और दसों धनुषोंको तानकर दौड़ा ॥ १ ॥

समरभूमि दसकंधर कोप्यो । बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो ॥

दंड एक रथ देखि न परेऊ । जनु निहार महुँ दिनकर दुरेऊ ॥ २ ॥

रणभूमिमें रावणने क्रोध किया और बाण बरसाकर भीरधुनायजीके रथको ढक दिया। एक दण्ड-तक रथ दिखलायी न पड़ा, मानो कुहरेमें सूर्य छिप गया हो ॥ २ ॥

हाहाकार सुरन्ह जय कीन्हा। तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा ॥

सर निवारि रिपु के सिर काटे। ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे ॥ ३ ॥

जब देवताओंने हाहाकार किया, तब प्रभुने क्रोध करके धनुष उठाया। और शत्रुके बाणोंको हटाकर उन्होंने शत्रुके सिर काटे और उनसे दिशा-विदिशा, आकाश और पृथ्वी, सबको पाट दिया ॥ ३ ॥

काटे सिर नभ मारग धावहिं। जय जय धुनि करि भय उपजावहिं ॥

कहँ लछिमन सुग्रीव कपीसा। कहँ रघुबीर कोसलाधीसा ॥ ४ ॥

काटे हुए सिर आकाशमार्गसे दौड़ते हैं और जय-जयकी ध्वनि करके भय उत्पन्न करते हैं। 'लक्ष्मण और वानरराज सुग्रीव कहाँ हैं? कोसलपति रघुवीर कहाँ हैं?' ॥ ४ ॥

छं०—कहँ रामु कहि सिर निकर धाय देखि मर्कट भजि चले।

संधानि धनु रघुबंसमनि हँसि सरन्हि सिर बेधे भले ॥

सिर मालिका कर कालिका गहि बृंद बृंदन्हि बहु मिलीं।

करि रुधिर सरि मज्जनु मनहुँ संग्राम बट पूजन चलीं ॥

'राम कहाँ हैं?' यह कहकर सिरोंके समूह दौड़े। उन्हें देखकर वानर भाग चले। तब धनुष सन्धान करके रघुकुलमणि श्रीरामजीने हँसकर बाणोंसे उन सिरोंको भलीभाँति बेध डाला। हाथोंमें मुण्डोंकी मालाएँ लेकर बहुत-सी कालिकाएँ बृन्द-की-बृन्द मिलकर इकट्ठी हुई और वे रुधिरकी नदीमें स्नान करके चलीं, मानो संग्रामरूपी वटवृक्षकी पूजा करने जा रही हों।

दो०—पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ छाँड़ी सक्ति प्रचंड।

चली विभीषन सन्मुख मनहुँ काल कर दंड ॥ ९३ ॥

फिर रावणने क्रोधित होकर प्रचण्ड शक्ति छोड़ी। वह विभीषणके सामने ऐसी चली जैसे कालका दण्ड हो ॥ ९३ ॥

चौ०—आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा ॥

तुरत विभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ मेला ॥ १ ॥

अत्यन्त भयानक शक्तिकी आती देख, और यह विचारकर कि मेरा प्रण शरणागतके दुःखका नाश करना है, श्रीरामजीने तुरंत ही विभीषणको पीछे कर लिया और सामने होकर वह शक्ति स्वयं सह ली ॥ १ ॥

लागि सक्ति मुरुछा कलु भई। प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई ॥

देखि विभीषन प्रभु श्रम पायो। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ घायो ॥ २ ॥

शक्ति लगानेसे उन्हें कुछ मूर्च्छा हुई। प्रभुने तो यह लीला की, पर देवताओंको व्याकुलता हुई। प्रभुको श्रम प्राप्त हुआ देखकर विभीषण क्रोधित होकर हाथमें गदा लेकर दौड़े ॥ २ ॥

रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे। तैं सुर नर मुनि नाग विरुद्धे ॥

सादर सिव कहँ सीस चढ़ाय। एक एक के कोटिन्ह पाय ॥ ३ ॥

[और बोले—] अरे अभागो, मूर्ख, नीच, दुर्बुद्धि ! तूने देवता, मनुष्य, मुनि, नाग सभीसे विरोध किया । तूने आदरसहित शिवजीको सिर चढ़ाये ये, इसीसे एक-एकके बदलेमें करोड़ों पाये ॥ ३ ॥

तेहि कारन खल अब लगि बाँच्यो । अब तव कालु सीस पर नाच्यो ॥

राम विमुख सठ चहसि संपदा । अस कहि हनेसि माझ उर गदा ॥ ४ ॥

उसी कारणसे अरे दुष्ट ! तू अबतक बचा है । अब काल तेरे सिरपर नाच रहा है । अरे मूर्ख ! तू रामविमुख होकर सम्पत्ति (सुख) चाहता है ? ऐसा कहकर विभीषणने रावणकी छातीके बीचोबीच गदा मारी ॥ ४ ॥

छं०—उर माझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि पर्यो ।

दस बदन सोनित झवत पुनि संभारि धायो रिस भर्यो ॥

द्वौ भिरे अति बल मल्लजुद्ध विरुद्ध पकु एकहि हनै ।

रघुवीर बल दर्पित विभीषणु घालि नहिं ताकहुँ गनै ॥

बीच छातीमें कठोर गदाकी घोर और कठिन चोट लगते ही वह पृथ्वीपर गिर पड़ा । उसके दसों मुखोंसे रुधिर बहने लगा । वह अपनेको फिर संभालकर क्रोधमें भरा हुआ दौड़ा । दोनों अत्यन्त बलवान् योद्धा भिड़ गये, और मल्लजुद्धमें एक दूसरेके विरुद्ध होकर मारने लगे । श्रीरघुवीरके बलसे गर्वित विभीषण उसको पासंगके बराबर भी नहीं समझते ।

दो०—उमा विभीषणु रावनहि सन्मुख चितव कि काउ ।

सो अब भिरत काल ज्यों श्रीरघुवीर प्रभाउ ॥ ९४ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! विभीषण क्या कभी रावणके सामने आँख उठाकर भी देख सकता था ? परन्तु अब वही कालके समान उमसे भिड़ रहा है । यह श्रीरघुवीरका ही प्रभाव है ॥ ९४ ॥

चौ०—देखा श्रमित विभीषणु भारी । घायउ हनूमान गिरिधारी ॥

रथ तुरंग सारथी निपाता । हृदय माझ तेहि मारेसि लाता ॥ १ ॥

विभीषणको बहुत ही थका हुआ देखकर हनुमान्जी पर्वत धारण किये हुए दौड़े । उन्होंने उस पर्वतसे रावणके रथ, घोड़े और सारथीका संहार कर डाला और उसके सीनेपर लात मारी ॥ १ ॥

ठाढ़ रहा अति कंपित गाता । गयउ विभीषणु जहँ जनत्राता ॥

पुनि रावन कपि हतेउ पचारी । चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी ॥ २ ॥

रावण खड़ा रहा, पर उसका शरीर अत्यन्त काँपने लगा । विभीषण वहाँ गये जहाँ सेवकोंके रक्षक श्रीरामजी थे । फिर रावणने ललकारकर हनुमान्जीको मारा । वे पूँछ फैलाकर आकाशमें चले गये ॥ २ ॥

गहिसि पूँछ कपि सहित उड़ाना । पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना ॥

लरत अकास जुगल सम जोधा । एकहि पकु हनत करि क्रोधा ॥ ३ ॥

रावणने पूँछ पकड़ ली, हनुमान्जी उसको साथ लिये हुए ऊपर उड़े । फिर लौटकर महा बलवान् हनुमान्जी उससे भिड़ गये । दोनों समान योद्धा आकाशमें लड़ते हुए एक दूसरेको क्रोध करके मारने लगे ॥ ३ ॥

सोहहिं नभ छल बल बहु करहीं । कज्जलगिरि सुमेरु जनु लरहीं ॥

बुधि बल निसिचर परइ न पार्यो । तव मारुतसुत प्रभु संभार्यो ॥ ४ ॥

दोनों बहुत-से छल-बल करते हुए आकाशमें ऐसे शोभित हो रहे हैं, जैसे कजलगिरि और सुमेरु पर्वत लड़ रहे हों। जब बुद्धि और बलसे राक्षस गिसये न गिरा, तब मारुति श्रीहनुमान्जीने प्रसुको स्मरण किया ॥ ४ ॥

छं०—संभारि श्रीरघुवीर धीर पचारि कपि रावनु हन्यो ।
महि परत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहूँ जय जय भन्यो ॥
हनुमंत संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले ।
रनमत्त रावन सकल सुभट प्रचंड भुजबल दलमले ॥

श्रीरघुवीरजीका स्मरण करके धीर हनुमान्जीने ललकारकर रावणको मारा। वे दोनों पृथ्वीपर गिरते और फिर उठकर लड़ते हैं। देवताओंने दोनोंकी 'जय-जय' पुकारी। हनुमान्जीपर सङ्कट देखकर वानर-भाटू क्रोधातुर होकर दौड़े। किन्तु रण-मद-माते रावणने सब योद्धाओंको अपने प्रचण्ड भुजाओंके बलसे कुचल और मसल डाला।

दो०—तब रघुवीर पचारे धाए कीस प्रचंड ।
कपि बल प्रबल देखि तेहिं कीन्ह प्रगट पाषंड ॥ ९५ ॥

तब श्रीरघुवीरके ललकारनेपर प्रचण्ड वीर वानर दौड़े। वानरोंके प्रबल दलको देखकर रावणने माया प्रकट की ॥ ९५ ॥

चौ०—अंतरधान भयउ छन एका । पुनि प्रगटे खल रूप अनेका ॥
रघुपति कटक भालु कपि जेते । जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते ॥ १ ॥

क्षणभरके लिये वह अदृश्य हो गया। फिर उस दुष्टने अनेकों रूप प्रकट किये। श्रीरघुनाथजीकी सेनामें जितने रीछ-वानर थे, उतने ही रावण जहाँ-तहाँ (चारों ओर) प्रकट हो गये ॥ १ ॥

देखे कपिन्ह अमित दससीसा । जहँ तहँ भजे भालु अरु कीसा ॥
भागो वानर धरहिं न धीरा । ब्राहि ब्राहि लछिमन रघुवीरा ॥ २ ॥

वानरोंने अपरिमित रावण देखे। भाटू और वानर सब जहाँ-तहाँ (इधर-उधर) भाग चले। वानर धीरज नहीं धरते। हे लक्ष्मणजी ! हे रघुवीर ! बचाइये, बचाइये, यों पुकारते हुए वे भागे जा रहे हैं ॥ २ ॥

दहँ दिसि धावहिं कोटिन्ह रावन । गर्जहिं घोर कठोर भयावन ॥
डरे सकल सुर चले पराई । जय कै आस तजहु अब भाई ॥ ३ ॥

दसों दिशाओंमें करोड़ों रावण दौड़ते हैं, और घोर, कठोर भयानक गर्जन कर रहे हैं। सब देवता डर गये और ऐसा कहते हुए भाग चले कि—हे भाई ! अब जयकी आशा छोड़ दो ! ॥ ३ ॥

सब सुर जिते एक दसकंधर । अब बहु भय तकहु गिरिकंदर ॥
रहे विरंचि संभु मुनि ग्यानी । जिन्ह जिन्ह प्रभुमहिमा कछु जानी ॥ ४ ॥

एक ही रावणने सब देवताओंको जीत लिया था। अब तो बहुत-से रावण हो गये हैं। इससे अब पहाड़की गुफाओंका आश्रय लो (अर्थात् उनमें छिप रही)। वहाँ ब्रह्मा, शम्भु और शानी मुनि ही डटे रहे, जिन्होंने प्रसुकी कुछ महिमा जानी थी ॥ ४ ॥

छं०—जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन्ह रिपु माने फुरे ।
चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे ॥
हनुमंत अंगद नील नल अति बल लरत रनबाँकुरे ।
मर्दहिं दसानन कोटि कोटिन्ह कपट भू भट अंकुरे ॥

जो प्रभुका प्रताप जानते थे, वे निर्भय डटे रहे। वानरोंने शत्रुओं (बहुत-से रावणों) को सच्चा ही मान लिया। इससे सब वानर-भालू विचलित होकर 'हे कृपालु! रक्षा कीजिये,' यों पुकारते हुए भयसे व्याकुल होकर भाग चले। अत्यन्त बलवान् रणबाँकुरे हनुमान्जी, अङ्गद, नील और नल लड़ते हैं और कपट-रूपी भूमिसे अंकुरकी भाँति उपजे हुए कोटि-कोटि योद्धा रावणोंको मसलते हैं।

दो०—सुर वानर देखे बिकल हँस्यो कोसलाधीस ।
सजि सारंग एक सर हते सकल दससीस ॥ ९६ ॥

देवताओं और वानरोंको बिकल देखकर कोसलपति श्रीरामजी हँसे, और शार्ङ्गधनुषपर एक बाण चढ़ाकर मायाके बने हुए सब रावणोंको मार डाला ॥ ९६ ॥

चौ०—प्रभु छन महुँ माया सब काटी । जिमि रबि उएँ जाहिं तम फाटी ॥
रावनु एकु देखि सुर हरये । फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरये ॥ १ ॥
प्रभुने क्षणभरमें सब माया काट डाली, जैसे सूर्यके उदय होते ही अन्धकार फट जाता है (नष्ट हो जाता है)। अब एक ही रावणको देखकर देवता हर्षित हुए और उन्होंने लौटकर प्रभुपर बहुत-से पुष्प बरसाये ॥ १ ॥

भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे । फिरे एक एकन्ह तब टेरे ॥
प्रभुबलु पाइ भालु कपि धाय । तरल तमकि संजुग महि आय ॥ २ ॥
श्रीरघुनाथजीने भुजा उठाकर सब वानरोंको लौटाया। तब वे एक दूसरेको पुकार-पुकारकर लौट आये। प्रभुका बल पाकर रीछ-वानर दौड़ पड़े। जल्दीसे तमककर वे रणभूमिमें आ गये ॥ २ ॥

अस्तुति करत देवतन्हि देखे । भयउँ एक मैं इन्ह कैं लेखे ॥
सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल । अस कहि कोपि गगन पर धायल ॥ ३ ॥

देवताओंको श्रीरामजीकी स्तुति करते देखकर रावणने सोचा, मैं इनकी समझमें एक हो गया। परन्तु इन्हें यह पता नहीं कि इनके लिये मैं एक ही बहुत हूँ [और कहा—] अरे मूर्खों! तुम तो सदा ही मेरे मरेल (मेरी मार खानेवाले) हो। ऐसा कहकर वह क्रोध करके आकाशपर देवताओंकी ओर दौड़ा ॥ ३ ॥

हाहाकार करत सुर भागे । खलहु जाहु कहँ मोरें आगे ॥
देखि बिकल सुर अंगद धायो । कूदि चरन गहि भूमि गिरायो ॥ ४ ॥

देवता हाहाकार करते हुए भागे। [रावणने कहा—] दुष्टो! मेरे आगेसे कहाँ जा सकोगे? देवताओंको व्याकुल देखकर अङ्गद दौड़े और उछलकर रावणका पैर पकड़कर उन्होंने उसको पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ४ ॥

छं०—गहि भूमि पारथो लात मारथो बालिसुत प्रभु पहिं गयो ।
संभारि उठि दसकंठ घोर कठोर रव गर्जत भयो ॥

करि दाप चाप चढ़ाइ दस संधानि सर बहु बरषई ।

किए सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरषई ॥

उसे पकड़कर पृथ्वीपर गिराकर लात मारकर बालिपुत्र अङ्गद प्रभुके पास चले गये । रावण सँभलकर उठा और बड़े भयङ्कर कठोर शब्दसे गरजने लगा । वह दर्प करके दसों धनुष चढ़ाकर उनपर बहुत-से बाण सन्धान करके बरसाने लगा । उसने सब योद्धाओंको घायल और भयसे व्याकुल कर दिया, और अपना बल देखकर वह हर्षित होने लगा !

दो०—तब रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप ।

काटे बहुत बड़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप ॥ ९७ ॥

तब भीरघुनाथजीने रावणके सिर, भुजाएँ, बाण और धनुष काट बाले । पर वे फिर बहुत बढ़ गये, जैसे तीर्थमें किये हुए पाप बढ़ जाते हैं ! ॥ ९७ ॥

चौ०—सिर भुज बाढ़ि देखि रिपु केरी । भालु कपिन्ह रिस भई घनेरी ॥

मरत न मूढ़ कटेहुँ भुज सीसा । घाय कोपि भालु भट कीसा ॥ १ ॥

शत्रुके सिर और भुजाओंकी बढ़ती देखकर रीछ-वानरोंको बहुत ही क्रोध हुआ । यह मूर्ख भुजाओंके और सिरोंके कटनेपर भी नहीं मरता, ऐसा कहते हुए भालू और वानर योद्धा क्रोध करके दौड़े ॥ १ ॥

बालितनय मारुति नल नीला । वानरराज दुबिद बलसीला ॥

बिटप महोदर करहिं प्रहारा । सोइ गिरि तरु गहि कपिन्ह सो मारा ॥ २ ॥

बालिपुत्र अङ्गद, मारुति हनुमानजी, नल, नील, वानरराज सुग्रीव और द्विविद आदि बलवान् उसपर वृक्ष और पर्वतोंका प्रहार करते हैं । वह उन्हीं पर्वतों और वृक्षोंको पकड़कर वानरोंको मारता है ॥ २ ॥

एक नखन्हि रिपु वपुष बिदारी । भागि चलहिं एक लातन्ह मारी ॥

तब नल नील सिरन्हि चढ़ि गयऊ । नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ ॥ ३ ॥

कोई एक वानर नखोंसे शत्रुके शरीरको फाड़कर भाग जाते हैं; तो कोई उसे लातोंसे मारकर ! तब नल और नील रावणके सिरोंपर चढ़ गये और नखोंसे उसके ललाटको फाड़ने लगे ॥ ३ ॥

रुधिर देखि बिषाद उर भारी । तिन्हहि घरेन कहूँ भुजा पसारी ॥

गहे न जाहिं करन्हि पर फिरहीं । जनु जुग मधुप कमलवन चरहीं ॥ ४ ॥

खून देखकर उसे हृदयमें बड़ा विषाद हुआ । उसने उनको पकड़नेके लिये हाथ फैलाये, पर वे पकड़में नहीं आते, हाथोंके ऊपर-ऊपर ही फिरते हैं । मानो दो भौरे कमलोंके वनमें विचरण कर रहे हों ॥ ४ ॥

कोपि कूवि द्यौ घरेसि बहोरी । महि पटकत भजे भुजा मरोरी ॥

पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हे । सरन्हि मारि घायल कपि कीन्हे ॥ ५ ॥

तब उसने क्रोध करके उछलकर दोनोंको पकड़ लिया । पृथ्वीपर पटकते समय वे उसकी भुजाओंको मरोड़कर भाग छूटे । फिर उसने क्रोध करके हाथोंमें दसों धनुष लिये और वानरोंको बाणोंसे मारकर घायल कर दिया ॥ ५ ॥

हनुमदादि मुखछित करि बंदर । पाइ प्रदोष हरष दसकंधर ॥

मुखछित देखि सकल कपि वीरा । जामवंत घायल रत्नवीरा ॥ ६ ॥

हनुमान्जी आदि सब वानरोंको मूर्छित करके और सन्ध्याका समय पाकर रावण हर्षित हुआ । समस्त वीर वानर योद्धाओंको मूर्छित देखकर रणधीर जाम्बवान् दौड़े ॥ ६ ॥

संग भालु भूधर तरु घारी । मारन लगे पचारि पचारी ॥

भयउ कुद्ध रावन बलवाना । गहि पद महि पटकइ भट नाना ॥ ७ ॥

जाम्बवान्के साथ जो भालू थे, वे पर्वत और वृक्ष धारण किये रावणको ललकार-ललकारकर मारने लगे । बलवान् रावण क्रोधित हुआ और पैर पकड़-पकड़कर वह अनेकों योद्धाओंको पृथ्वीपर पटकने लगा ॥ ७ ॥

देखि भालुपति निज दल घाता । कोपि मास उर मारेसि लाता ॥ ८ ॥

जाम्बवान्ने अपने दलको धायल देखकर क्रोध करके रावणकी छातीमें लात मारी ॥ ८ ॥

छं०—उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ ते महि परा ।

गहि भालु बीसहुँ कर मनहुँ कमलन्हि बसे निसि मधुकरा ॥

मुखछित बिलोकि बहोरि पद हति भालुपति प्रभु पहिं गयो ।

निसि जानि स्यंदन घालि तेहि तब सूत जतनु करत भयो ॥

छातीमें लातका प्रचण्ड आघात लगते ही रावण व्याकुल होकर रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा । उसने बीसों हाथोंमें भालुओंको पकड़ रक्खा था । ऐसा जान पड़ता था मानो रात्रिके समय भौंरे कमलोंमें बसे हुए हों । उसे मूर्च्छित देखकर, फिर लात मारकर जाम्बवान् प्रभुके पास चले गये । रात्रि जानकर सारथी रावणको रथमें डालकर उसे होशमें लानेका उपाय करने लगा ।

दो०—मुखछा बिगत भालु कपि सब आए प्रभु पास ।

निसिचर सकल रावनहि घेरि रहे अति त्रास ॥ ९८ ॥

मूर्च्छा दूर होनेपर सब रीछ-वानर प्रभुके पास आये । उधर सब गक्षसोंने बहुत ही भयभीत होकर रावणको घेर लिया ॥ ९८ ॥

मासपारायण छब्बीसवाँ विश्राम

चौ०—तेही निसि सीता पहिं जाई । त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई ॥

सिर भुज वाढ़ि सुनत रिपु केरी । सीता उर भइ त्रास घनेरी ॥ १ ॥

उसी रात त्रिजटाने सीताजीके पास जाकर उन्हें सब कथा कह सुनायी । शत्रुके सिर और भुजाओंकी बढ़तीका संवाद सुनकर सीताजीके हृदयमें बड़ा डर हुआ ॥ १ ॥

मुख मलीन उपजी मन चिंता । त्रिजटा सन बोली तब सीता ॥

होइहि कहा कहसि किन माता । केहि बिधि मरिहि बिख दुखदाता ॥ २ ॥

मुख उदास हो गया, मनमें चिन्ता उत्पन्न हो गयी । तब सीताजी त्रिजटासे बोलीं—हे माता ! बताती क्यों नहीं ? क्या होगा ! सम्पूर्ण विश्वको दुःख देनेवाला यह किस प्रकार मरेगा ? ॥ २ ॥

रघुपति सर सिर कटेहुँ न मरई । बिधि विपरीत चरित सब करई ॥

मोर अभाग्य जिआवत ओही । जेहिं हौं हरि पद कमल बिछोही ॥ ३ ॥

श्रीरघुनाथजीके बाणोंसे सिर कटनेपर भी नहीं मरता । विधाता सारे चरित्र विपरीत (उलटे)

ही कर रहा है। मेरा दुर्भाग्य ही उसे जिला रहा है, जिसने मुझे भगवान्‌के चरणकमलोंसे वियुक्त (अलग) कर दिया है ॥ ३ ॥

जेहिं कृत कपट कनक मृग झूठा । अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा ॥

जेहिं बिधि मोहि दुख दुसह सहाय । लछिमन कहूँ कटु बचन कहाय ॥ ४ ॥

जिसने कपटका झूठा स्वर्णमृग बनाया था, वही दैव अब भी मुझपर रूठा हुआ है। जिस विधाताने मुझसे दुःसह दुःख सहन कराये, और लक्ष्मणको कटु वचन कहलाये, ॥ ४ ॥

रघुपति विरह सखि सर भारी । तकि तकि मार बार बहु मारी ॥

ऐसेहुँ दुख जो राख मम प्राना । सोइ बिधि ताहि जिआव न आना ॥ ५ ॥

जो श्रीरघुनाथजीके विरहरूपी बड़े विषैले बाणोंसे तक-तककर मुझे बहुत बार मारकर, अब भी मार रहा है, और ऐसे दुःखमें भी जो मेरे प्राणोंको रख रहा है, वही विधाता उस (रावण) को जिला रहा है, दूसरा कोई नहीं ॥ ५ ॥

बहु बिधि कर विलाप जानकी । करि करि सुरति कृपानिधान की ॥

कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी । उर सर लागत मरइ सुरारी ॥ ६ ॥

कृपानिधान श्रीरामजीकी याद कर-करके जानकीजी बहुत प्रकारसे विलाप कर रही हैं। त्रिजटाने कहा—हे राजकुमारी ! सुनो। देवताओंका शत्रु रावण हृदयमें बाण लगाते ही मर जायगा ॥ ६ ॥

प्रभु ताते उर हतइ न तेही । एहि के हृदयँ बसति बैदेही ॥ ७ ॥

परन्तु प्रभु उसके हृदयमें बाण इसलिये नहीं मारते कि इसके हृदयमें जानकीजी (आप) बसती हैं ॥ ७ ॥

ॐ—एहि के हृदयँ बस जानकी जानकी उर मम बास है ।

मम उदर भुवन अनेक लागत बान सब कर नास है ॥

सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटाँ कहा ।

अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहि सुंवरि तजहि संसय महा ॥

[वे यही सोचकर रह जाते हैं कि] इसके हृदयमें जानकीका निवास है, जानकीके हृदयमें मेरा निवास है और मेरे उदरमें अनेकों भुवन हैं। अतः रावणके हृदयमें बाण लगते ही सब भुवनोंका नाश हो जायगा। यह वचन सुनकर, सीताजीके मनमें अत्यन्त हर्ष और विषाद हुआ देखकर त्रिजटाने फिर कहा—हे सुन्दरी ! महान् सन्देहका त्याग कर दो; अब सुनो, शत्रु इस प्रकार मरेगा—

दो०—काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान ।

तब रावनहि हृदय महुँ मरिहहिं रामु सुजान ॥ ९९ ॥

सिरोंके बार-बार काटे जानेसे जब वह व्याकुल हो जायगा, और उसके हृदयसे तुम्हारा ध्यान छूट जायगा, तब सुजान (अन्तर्यामी) श्रीरामजी रावणके हृदयमें बाण मारेंगे ॥ ९९ ॥

चो०—अस कहि बहुत भाँति समुझाई । पुनि त्रिजटा निज भवन सिघाई ॥

राम सुभाउ सुमिरि बैदेही । उपजी विरह विधा अति तेही ॥ १ ॥

ऐसा कहकर और सीताजीको बहुत प्रकारसे समझाकर फिर त्रिजटा अपने घर चली गयी। श्रीरामचन्द्रजीके स्वभावका स्मरण करके जानकीजीको अत्यन्त विरहव्यथा उत्पन्न हुई ॥ १ ॥

निसिंहि ससिंहि निंदति बहु भौंती । जुग सम भई सिराति न राती ॥

करति विलाप मनहिं मन भारी । राम बिरहँ जानकी दुखारी ॥ २ ॥

वे रात्रिकी और चन्द्रमाकी बहुत प्रकारसे निन्दा कर रही हैं [और कह रही हैं—] रात युगके समान बड़ी हो गयी, वह बीतती ही नहीं । जानकीजी श्रीरामजीके बिरहमें दुखी होकर मन-ही-मन भारी विलाप कर रही हैं ॥ २ ॥

जब अति भयउ बिरह उर दाह । फरकेउ याम नयन अरु बाह ॥

सगुन बिचारि घरी मन धीरा । अब मिलिहहिं कृपाल रघुवीरा ॥ ३ ॥

जब बिरहके मारे हृदयमें दारुण दाह हो गया, तब उनका बायाँ नेत्र और बाहु फड़क उठे । शकुन समझकर उन्होंने मनमें धैर्य धारण किया कि अब कृपालु श्रीरघुवीर अवश्य मिलेंगे ॥ ३ ॥

इहाँ अर्धनिसि रावनु जागा । निज सारथि सन स्त्रीसन लागा ॥

सठ रन भूमि छड़ाइसि मोही । धिग धिग अधम मंदमति तोही ॥ ४ ॥

यहाँ आधी रातको रावण मूर्च्छासे जगा और अपने सारथीपर रुष्ट होकर कहने लगा—अरे मूर्ख ! तूने मुझे रणभूमिसे अलग कर दिया । अरे अधम ! अरे मन्दबुद्धि ! तूझे धिक्कार है, धिक्कार है ! ॥ ४ ॥

तेहिं पद गहि बहुविधि समुझावा । भोरु भएँ रथ चढ़ि पुनि धावा ॥

सुनि आगवनु दसानन केरा । कपि दल खरभर भयउ घनेरा ॥ ५ ॥

सारथीने चरण पकड़कर रावणको बहुत प्रकारसे समझाया । सबेरा होते ही वह रथपर चढ़कर फिर दौड़ा । रावणका आना सुनकर वानरोंकी सेनामें बड़ी खलबली मच गयी ॥ ५ ॥

जहँ तहँ भूधर बिटप उपारी । घाए कटकटाइ भट भारी ॥ ६ ॥

वे भारी योद्धा जहाँ-तहाँसे पर्वत और वृक्ष उखाड़कर क्रोधसे दाँत कटकटाकर दौड़े ॥ ६ ॥

छं०—घाए जो मर्कट बिकट भालु कराल कर भूधर घरा ।

अति कोप करहिं प्रहार मारत भजि चले रजनीचरा ॥

बिचलाइ दल बलवंत कीसन्ह घेरि पुनि रावनु लियो ।

चहुँ दिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि विदारि तनु व्याकुल कियो ॥

बिकट और विकराल वानर-भालू हाथोंमें पर्वत लिये दौड़े । वे अत्यन्त क्रोध करके प्रहार करते हैं । उनके मारनेसे राक्षस भाग चले । बलवान् वानरोंने शत्रुकी सेनाको विचलित करके फिर रावणको घेर लिया । चारों ओरसे चपेटे मारकर, और नखोंसे शरीर विदीर्णकर वानरोंने उसको व्याकुल कर दिया ॥

दो०—देखि महा मर्कट प्रबल रावन कीन्ह बिचार ।

अंतरहित होइ निमिष महुँ कृत माया बिस्तार ॥ १०० ॥

वानरोंको बड़ा ही प्रबल देखकर रावणने विचार किया और अन्तर्धान होकर क्षणभरमें उसने माया फैलायी ॥ १०० ॥

छं०—जब कीन्ह तेहि पाषंड । भए प्रगट जंतु प्रचंड ॥

बेताल भूत पिसाच । कर धरें घनु नाराच ॥ १ ॥

जब उसने पाषण्ड (माया) रचा, तब भयङ्कर जीव प्रकट हो गये । बेताल, भूत और पिसाच हाथोंमें घनुष-बाण लिये प्रकट हुए ! ॥ १ ॥

जोगिनि गहँ करबाल । एक हाथ मनुज कपाल ॥

करि सद्य सोनित पान । नाचहिं करहिं बहु गान ॥ २ ॥

योगिनियाँ एक हाथमें तलवार और दूसरे हाथमें मनुष्यकी खोपड़ी लिये ताजा खून पीकर नाचने और बहुत तरहके गीत गाने लग्याँ ॥ २ ॥

धरु मारु बोलहिं घोर । रहि पूरि धुनि चहुँ ओर ॥

मुख बाह्र धावहिं खान । तब लगे कीस परान ॥ ३ ॥

वे 'पकड़ो, मारो' आदि घोर शब्द बोल रही हैं। चारों ओर (तब दिशाओंमें) यह ध्वनि भर गयी। वे मुख फैलाकर खाने दौड़ती हैं। तब वानर भागने लगे ॥ ३ ॥

जहँ जाहिं मर्कट भागि । तहँ भरत देखहिं आगि ॥

भय बिकल वानर भालु । पुनि लाग बरषै बालु ॥ ४ ॥

वानर भागकर जहाँ भी जाते हैं, वहीं आग जलती देखते हैं। वानर-भाद व्याकुल हो गये। फिर रावण बालू बरसाने लगा ॥ ४ ॥

जहँ तहँ थकित करि कीस । गर्जेउ बहुरि दससीस ॥

लछिमन कपीस समेत । भय सकल वीर अचेत ॥ ५ ॥

वानरोंको जहाँ-तहाँ थकित (शिथिल) कर फिर रावण गरजा। लक्ष्मणजी और सुग्रीवसहित सभी वीर अचेत हो गये ॥ ५ ॥

हा राम हा रघुनाथ । कहि सुभट मीजहिं हाथ ॥

एहि बिधि सकल बल तोरि । तेहिं कीन्ह कपट बहोरि ॥ ६ ॥

हा राम ! हा रघुनाथ ! पुकारते हुए श्रेष्ठ योद्धा अपने हाथ मलते (पछताते) हैं। इस प्रकार सबका बल तौड़कर रावणने फिर दूसरी माया रची ॥ ६ ॥

प्रगटेसि बिपुल हनुमान । धाय गहे पाषाण ॥

तिन्ह रामु घेरे जाइ । चहुँ दिसि बरूथ बनाइ ॥ ७ ॥

उसने बहुत-से हनुमान् प्रकट किये, जो पत्थर लिये दौड़े। उन्होंने चारों ओर दल बनाकर श्रीरामचन्द्र-जीको जा घेरा ॥ ७ ॥

मारहु धरहु जनि जाइ । कटकटहिं पूँछ उठाइ ॥

दहँ दिसि लंगूर विराज । तेहिं मध्य कोसलराज ॥ ८ ॥

वे पूँछ उठाकर कटकटाते हुए पुकारने लगे मारो, पकड़ो, जाने न पावे। उनके लंगूर (पूँछ) दसों दिशाओंमें शोभा दे रहे हैं, और उनके बीचमें कोसलराज श्रीरामजी हैं ॥ ८ ॥

छं०—तेहिं मध्य कोसलराज सुंदर श्याम तन सोभा लही ।

जनु इंद्रधनुष अनेक की बर बारि तुंग तमालही ॥

प्रभु देखि हरष विषाद उर सुर बदत जय जय जय करी ।

रघुवीर एकहिं तीर कोपि निमेष महुँ माया हरी ॥ १ ॥

उनके बीचमें कोसलराजका सुन्दर श्याम शरीर ऐसी शोभा पा रहा है, मानो ऊँचे तमाल वृक्षके लिये अनेक इंद्र-धनुषोंकी श्रेष्ठ बाड़ (पेरा) बनायी गयी हो। प्रभुको देखकर देवता हर्ष और विषादयुक्त हृदयसे जय, जय, जय, ऐसा बोलने लगे। तब श्रीरघुवीरने क्रोध करके एक ही बाणसे, निमेषमात्रमें रावणकी सारी माया हर ली ॥ १ ॥

माया विगत कपि भालु हरषे विटप गिरि गहि सब फिरे ।

सर निकर छाड़े राम रावन बाहु सिर पुनि महि गिरे ॥

श्रीराम रावण समर चरित अनेक कल्प जो गावहीं ।

सत सेष सारद निगम कबि तेउ तदपि पार न पावहीं ॥ २ ॥

माया दूर हो जानेपर वानर-भालू हर्षित हुए और वृक्ष तथा पर्वत ले-लेकर सब लौट पड़े । श्रीरामजीने बाणोंके समूह छोड़े, जिनसे रावणके हाथ और सिर फिर कट-कटकर पृथ्वीपर गिर पड़े । श्रीरामजी और रावणके युद्धका चरित्र यदि सैकड़ों शेष, सरस्वती, वेद और कवि अनेक कल्पोंतक गाते रहें, तो भी वे उसका पार नहीं पा सकते ॥ २ ॥

दो०—ताके गुनगन कछु कहे जड़मति तुलसीदास ।

जिमि निज बल अनुरूप ते माछी उड़इ अकास ॥ १०१ (क) ॥

उसी चरित्रके कुछ गुणगण मन्दबुद्धि तुलसीदासने कहे हैं, जैसे मक्खी भी अपने पुरुषार्थके अनुसार आकाशमें उड़ती है ॥ १०१ (क) ॥

काटे सिर भुज बार बहु मरत न मट लंकेस ।

प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध मुनि व्याकुल देखि कलेस ॥ १०१ (ख) ॥

सिर और भुजाएँ बहुत बार काटी गयीं, फिर भी वीर रावण मरता नहीं । प्रभु तो खेल कर रहे हैं, परन्तु मुनि, सिद्ध और देवता उस क्लेशको देखकर (प्रभुको क्लेश पाते समझकर) व्याकुल हैं ॥ १०१ (ख) ॥

चौ०—काटत बढ़हिं सीस समुदाई । जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकई ॥

मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेष । राम बिभीषन तन तब देखा ॥ १ ॥

काटते ही सिरोंका समूह बढ़ जाता है । जैसे प्रत्येक लाभपर लोभ बढ़ता है । शत्रु मरता नहीं और परिश्रम बहुत हुआ । तब श्रीरामचन्द्रजीने बिभीषणकी ओर देखा ॥ १ ॥

उमा काल मर जाकीं ईछा । सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा ॥

सुनु सरबग्य चराचर नायक । प्रनतपाल सुर मुनि सुखदायक ॥ २ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! जिसकी इच्छामात्रसे काल भी मर जाता है, वही प्रभु सेवककी प्रीतिकी परीक्षा ले रहे हैं । [बिभीषणजीने कहा—] हे सर्वश ! हे चराचरके स्वामी ! हे शरणागतके पालन करनेवाले ! हे देवता और मुनियोंको सुख देनेवाले ! सुनिये— ॥ २ ॥

नाभिकुंड पियूष बस याकै । नाथ जिअत रावनु बल ताकै ॥

सुनत बिभीषन वचन कृपाला । हरषि गहे कर बान कराला ॥ ३ ॥

इसके नाभिकुण्डमे अमृतका निवास है । हे नाथ ! रावण उसीके बलपर जीता है । बिभीषणके वचन सुनते ही कृपाशु श्रीरघुनाथजीने हर्षित होकर हाथमें विकराल बाण लिये ॥ ३ ॥

असुभ होन लागे तब नाना । रोवहिं सर सुकाल बहु खाना ॥

बोलहिं खग जग भारति हेतू । प्रगट भय नभ जहँ तहँ केतू ॥ ४ ॥

उस समय नाना प्रकारके अशकुन होने लगे । बहुत-से गदहे, स्यार और कुत्ते रोने लगे । जगत्के दुःख (अशुभ) को सूचित करनेके लिये पक्षी बोलने लगे । आकाशमें जहाँ-तहाँ केतु (पुच्छल तारे) प्रकट हो गये ॥ ४ ॥

वस दिसि दाह होन अति लागा । भयउ परब बिनु रवि उपरागा ॥

मंदोदरि उर कंपति भारी । प्रतिमा स्रबहिं नयन मग बारी ॥ ५ ॥

दसों दिशाओंमें अत्यन्त दाह होने लगा (आग लगने लगी) । विना ही पर्व (योग) के सूर्यग्रहण होने लगा । मन्दोदरीका हृदय बहुत काँपने लगा । मूर्तियाँ नेत्रमार्गसे जल बहाने लगीं ॥ ५ ॥

छं०—प्रतिमा रुद्धिं पविपात नभ अति बात बह डोलति मही ।
वरषहिं बलाहक रुधिर कच रज असुभ अति सक को कही ॥
उतपात अमित विलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जय ।
सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भय ॥

मूर्तियाँ रोने लगीं, आकाशसे वज्रपात होने लगे, अत्यन्त प्रचण्ड वायु बहने लगी, पृथ्वी हिलने लगी, बादल रक्त, बाल और धूलिकी वर्षा करने लगे । इस प्रकार इतने अधिक अमङ्गल होने लगे कि उनको कौन कह सकता है ? अपरिमित उत्पात देखकर आकाशमे देवता व्याकुल होकर जय-जय पुकार उठे । देवताओंको भयभीत जानकर कृपालु श्रीरघुनाथजी घनुषपर बाण सन्धान करने लगे ॥

दो०—खैंचि सरासन श्रवन लगी छाड़े सर एकतीस ।

रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस ॥ १०२ ॥

कानोंतक घनुषको खैंचकर श्रीरघुनाथजीने इकतीस बाण छोड़े । वे श्रीरामचन्द्रजीके बाण ऐसे चले मानों कालसर्प हों ॥ १०२ ॥

चौ०—सायक एक नाभि सर सोषा । अपर लगे भुज सिर करि रोषा ॥

लै सिर बाहु चले नाराचा । सिर भुज हीन रुंड महि नाचा ॥ १ ॥

एक बाणने नाभिके अमृतकुण्डको सोख लिया । दूसरे तीस बाण कोप करके उसके सिरों और भुजाओंमें लगे । बाण सिरों और भुजाओंको लेकर चले । सिरों और भुजाओंसे रहित रुण्ड (धड़) पृथ्वीपर नाचने लगा ॥ १ ॥

घरनि धसइ घर धाव प्रचंडा । तब सर हति प्रभु रुत दुइ खंडा ॥

गर्जेउ मरत घोर रव भारी । कहाँ रामु रन हतौ पचारी ॥ २ ॥

षड् प्रचण्ड वेगसे दौड़ता है, जिससे धरती धँसने लगी । तब प्रभुने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिये । मरते समय रावण बड़े घोर शब्दसे गरजकर बोला—राम कहाँ हैं ! मैं ललकारकर आपको युद्धमें मारूँ ! ॥ २ ॥

डोली भूमि गिरत दसकंधर । छुमित सिंधु सरि दिग्गज भूधर ॥

घरनि परेउ द्वौ खंड बढ़ाई । चापि भालु मर्कट समुदाई ॥ ३ ॥

रावणके गिरते ही पृथ्वी हिल गयी । समुद्र, नदियाँ, दिशाओंके हाथी और पर्वत क्षुब्ध हों उठे । रावण धड़के दोनों टुकड़ोंको फैलाकर भालू और वानरोंके समुदायको दबाता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३ ॥

मंदोदरि आगे भुज सीसा । धरि सर चले जहाँ जगदीसा ॥

प्रविसे सब निषंग महुँ जाई । देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई ॥ ४ ॥

रावणकी भुजाओं और सिरोंको मन्दोदरीके सामने रखकर राम-बाण वहाँ चले जहाँ जगदीश्वर श्रीरामजी थे । सब बाण जाकर तरकसमें प्रवेश कर गये । यह देखकर देवताओंने नगाड़े बजाये ॥ ४ ॥

तासु तेज समान प्रभु आनन । हरषे देखि संभु चतुरानन ॥

जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा । जय रघुवीर प्रबल भुजदंडा ॥ ५ ॥

रावणका तेज प्रभुके मुखमें समा गया । यह देखकर शिवजी और ब्रह्माजी हर्षित हो गये । ब्रह्माण्ड-भरमें जय-जयकी ध्वनि भर गयी । प्रबल भुजदण्डोंवाले श्रीरघुवीरकी जय हो ॥ ५ ॥

कल्याण

(१) रावणका पाखंड



देखे कपिन्ह अमित दससीसा ।
जहँ तहँ भजे भालु अरु कीसा ॥
[पृष्ठ ७४४]

(२) पाखंडनाश



प्रभु छन महुँ माया सब काटी ।
जिमि रवि उएँ जाहिं तम फाटी ॥
[पृष्ठ ७४५]

(३) जोगिनियोंका भानन्द



जोगिनि गहँ करबाल ।
एक हाथ मनुज कपाल ॥
[पृष्ठ ७५०]

(४) रावणवध



खैचि सरासन श्रवन लगि छाड़े सर एकतीस ।
रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस ॥
[पृष्ठ ७५२]

बरषहिं सुमन देव मुनि बृन्दा । जय कृपाल जय जयति मुकुन्दा ॥ ६ ॥

देवता और मुनियोंके समूह फूल बरसाते हैं और कहते हैं—कृपालकी जय हो, मुकुन्दकी जय हो, जय हो ! ॥ ६ ॥

छं०—जय कृपाकन्द मुकुन्द ब्रह्म हरन सरन सुखप्रद प्रभो ।

खल दल विदारन परम कारन कारुणीक सदा बिभो ॥

सुर सुमन बरषहिं हरष संकुल बाज दुंदुभि गहगही ।

संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु सोभा लही ॥ १ ॥

हे कृपाके कन्द ! हे मोक्षदाता मुकुन्द ! हे द्वन्द्व (राग-द्वेष, हर्ष-शोक, जन्म-मृत्यु आदि) के हरनेवाले ! हे शरणागतको सुख देनेवाले प्रभो ! हे दुष्ट-दलको विदीर्ण करनेवाले ! हे कारणोंके भी परम कारण ! हे सदा करुणा करनेवाले ! हे सर्वव्यापक बिभो ! आपकी जय हो । देवता हर्षमें भरे हुए पुष्प बरसाते हैं, घमाघम नगाड़े बज रहे हैं । रणभूमिमें श्रीरामचन्द्रजीके अङ्गोंने बहुत-से कामदेवोंकी शोभा प्राप्त की ॥ १ ॥

सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजही ।

जनु नील गिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजही ॥

भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने ।

जनु रायमुनी तमाल पर बैठी बिपुल सुख आपने ॥ २ ॥

सिरपर जटाओंका मुकुट है, जिसके बीच-बीचमें अत्यन्त मनोहर पुष्प शोभा दे रहे हैं । मानो नीले पर्वतपर बिजलीके समूहसहित नक्षत्र सुशोभित हो रहे हों । श्रीरामजी अपने भुजदण्डोंसे बाण और धनुष फिरा रहे हैं । शरीरपर रुधिरके कण अत्यन्त सुन्दर लगते हैं । मानो तमालके वृक्षपर बहुत-सी लल्लुमुनियाँ चिड़ियाँ अपने महान् सुखमें मग्न हुई निश्चल बैठी हों ॥ २ ॥

दो०—कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु अमय किए सुरबृन्द ।

भालू कीस सब हरषे जय सुखधाम मुकुन्द ॥ १०३ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने कृपादृष्टिकी वृष्टि करके देवसमूहको निर्भय कर दिया । वानर-भालू सब हर्षित हुए, और सुखधाम मुकुन्दकी जय हो, ऐसा पुकारने लगे ॥ १०३ ॥

चौ०—पति सिर देखत मन्दोदरी । मुखछित बिकल धरनि खसि परी ॥

जुबतिबृन्द रोवत उठि धाई । तेहि उठाइ रावन पहिं आई ॥ १ ॥

पतिके सिर देखते ही मन्दोदरी व्याकुल और मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ी । स्त्रियाँ रोती हुई उठ दीड़ी और उसको (मन्दोदरीको) उठाकर रावणके पास आयी ॥ १ ॥

पति गति देखि ते करहिं पुकारा । छूटे कच नहिं बपुष सँभारा ॥

उर ताड़ना करहिं बिधि नाना । रोवत करहिं प्रताप बखाना ॥ २ ॥

पतिकी दशा देखकर वे पुकार-पुकारकर रोने लगीं । उनके बाल खुल गये, देहकी सँभाल नहीं रही । वे अनेकों प्रकारसे छाती पीटती हैं और रोती हुई रावणके प्रतापका बखान करती हैं ॥ २ ॥

तब थल नाथ डोल नित धरनी । तेजहीन पावक ससि तरनी ॥

सेष कमठ सहि सकहिं न भारा । सो तनु भूमि परेउ भरि छारा ॥ ३ ॥

[वे कहती हैं—] हे नाथ ! तुम्हारे बलसे पृथ्वी सदा काँपती रहती थी । अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य तुम्हारे सामने तेजहीन थे । शेष और कच्छप भी जिसका भार नहीं सह सकते थे, वही तुम्हारा शरीर आज धूलमें भरा हुआ पृथ्वीपर पड़ा है ॥ ३ ॥

बरुन कुबेर सुरेस समीरा । रन सम्मुख धरि काहुँ न धीरा ॥
भुजबल जितेहु काल जम साई । आजु परेहु अनाथ की नाई ॥ ४ ॥
वरुण, कुबेर, इन्द्र और वायु, इनमेंसे किसीने भी रणमें तुम्हारे सामने धैर्य धारण नहीं किया । हे स्वामी ! तुमने अपने भुजबलसे काल और यमराजको भी जीत लिया था । वही तुम आज अनाथकी तरह पड़े हो ॥ ४ ॥

जगत विदित तुम्हारि प्रभुतारि । सुत परिजन बल बरनि न जारि ॥
राम विमुख अस हाल तुम्हारा । रहा न कोउ कुल रोषनिहारा ॥ ५ ॥
तुम्हारी प्रभुता जगत्भरमें प्रसिद्ध है । तुम्हारे पुत्रों और कुटुम्बियोंके बलका हाथ ! वर्णन ही नहीं हो सकता । श्रीरामचन्द्रजीके विमुख होनेसे ही तुम्हारी ऐसी दुर्दशा हुई कि आज कुलमें कोई रोनेवाला भी न रह गया ॥ ५ ॥

तव बस बिधि प्रपंच सब नाथा । सभय दिसिप नित नावहिं माथा ॥
अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं । राम विमुख यह अनुचित नाहीं ॥ ६ ॥
हे नाथ ! विधाताकी सारी सृष्टि तुम्हारे वशमें थी । लोकपाल सदा डरके साथ तुमको मस्तक नवाते थे । किन्तु हाथ ! अब तुम्हारे सिर और भुजाओंको गीदड़ खा रहे हैं ! रामविमुखके लिये ऐसा होना अनुचित भी नहीं है (अर्थात् उचित ही है) ॥ ६ ॥

काल बिबस पति कहा न माना । अग जग नाथु मनुज करि जाना ॥ ७ ॥
हे पति ! कालके पूर्ण वशमें होनेसे तुमने किसीका कहना नहीं माना और चराचरके नाथ परमात्माको मनुष्य करके जाना ॥ ७ ॥

ॐ—जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं ।

जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करुनामयं ॥

आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं ।

तुमहु दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं ॥

दैत्यरूपी वनको जलनेके लिये अग्निस्वरूप साक्षात् भीहरिको तुमने मनुष्य करके जाना ! शिव और ब्रह्मा आदि देवता जिनको नमस्कार करते हैं, उन करुणामय भगवान्को हे प्यारे ! तुमने नहीं भजा ! तुम्हारा यह शरीर जन्मसे ही दूसरोंसे द्रोह करनेमें निरत तथा पापसमूहमय रहा ! इतनेपर भी जिन निर्विकार ब्रह्म श्रीरामजीने तुमको अपना धाम दिया, उनको मैं नमस्कार करती हूँ ।

दो०—अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन ।

जोगिबृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान ॥ १०४ ॥

अहह ! नाथ ! श्रीरघुनाथजीके समान कृपाका समुद्र दूसरा कोई नहीं है, जिन भगवान्ने तुमको वह गति दी जो यागिसमाजको भी दुर्लभ है ॥ १०४ ॥

चौ०—मंदोदरी बचन सुनि काना । सुर मुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना ॥

अज महेस नारद सनकादी । जे मुनिवर परमारथ बादी ॥ १ ॥

कल्याण

मन्दोदरीका विलाप



जगत विदित तुम्हाणि प्रभुताई । सुत परिजन बल वग्नि न जाई ॥
राम विमुख अस हाल तुम्हारा । गद्दा न कोउ कुल रोवनिहारा ॥

मन्दोदरीके बचन कानोंसे सुनकर देवता, मुनि और सिद्ध सभीने सुख माना । ब्रह्मा, महादेव, नारद और सनकादि, तथा और भी जो परमार्थवादी (परमात्माके तत्त्वको जानने और कहनेवाले) भेष्ट मुनि थे ॥ १ ॥

भरि लोचन रघुपतिहि निहारी । प्रेम मगन सब भय सुखारी ॥

रुदन करत देखीं सब नारी । गयउ बिभीषनु मन दुख भारी ॥ २ ॥

वे सभी श्रीरघुनाथजीको नेत्र भरकर निरखकर प्रेममग्न हो गये और अत्यन्त सुखी हुए । अपने घरकी सब स्त्रियोंको रोती हुई देखकर बिभीषणजीके मनमें बड़ा भारी दुःख हुआ और वे उनके पास गये ॥ २ ॥

बन्धुदसा बिलोकि दुख कीन्हा । तब प्रभु अनुजहि आयसु दीन्हा ॥

लछिमन तेहि बहुबिधि समुझायो । बहुरि बिभीषन प्रभु पहिं आयो ॥ ३ ॥

उन्होंने भाईकी दशा देखकर दुःख किया । तब प्रभु श्रीरामजीने छोटे भाईको आशा दी कि जाकर बिभीषणको धैर्य बँधाओ । लक्ष्मणजीने उन्हें बहुत प्रकारसे समझाया । तब बिभीषण प्रभुके पास लौट आये ॥ ३ ॥

कृपादृष्टि प्रभु ताहि बिलोका । करहु किया परिहरि सब सोका ॥

कीन्हि किया प्रभु आयसु मानी । बिधिवत देस काल जियँ जानी ॥ ४ ॥

प्रभुने उनको कृपापूर्ण दृष्टिसे देखा [और कहा—] सब शोक त्यागकर रावणकी अन्त्येष्टि किया करो । प्रभुकी आशा मानकर और हृदयमें देश और कालका विचार करके बिभीषणजीने विधिपूर्वक सब किया की ॥ ४ ॥

दो०—मंदोदरी आदि सब देह तिलाञ्जलि ताहि ।

भवन गई रघुपति गुन गन बरनत मन माहि ॥ १०५ ॥

मन्दोदरी आदि सब स्त्रियाँ उसे (रावणको) तिलाञ्जलि देकर मन-ही-मन श्रीरघुनाथजीके गुणसमूहोंका वर्णन करती हुई महलको गयीं ॥ १०५ ॥

चौ०—आइ बिभीषन पुनि सिर नायो । कृपासिंधु तब अनुज बोलायो ॥

तुम्ह कपीस अंगद नल नील । जाम्बवंत मारुति नयसील ॥ १ ॥

सब मिलि जाहु बिभीषन साथ । सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथ ॥

पिता बचन मैं नगर न आवौ । आपु सरिस कपि अनुज पठावौ ॥ २ ॥

सब किया-कर्म करनेके बाद बिभीषणने आकर पुनः सिर नवाया । तब कृपाके समुद्र श्रीरामजीने छोटे भाई लक्ष्मणजीको बुलाया । श्रीरघुनाथजीने कहा कि तुम, वानरराज सुग्रीव, अंगद, नल, नील, जाम्बवान और मारुति सब नीतिनिपुण लोग मिलकर बिभीषणके साथ जाओ और उन्हें राजतिलक कर दो । पिताजीके वचनोंके कारण मैं नगरमें नहीं आ सकता । पर अपने ही समान वानर और छोटे भाईको भेजता हूँ ॥ १-२ ॥

तुरत चले कपि सुनि प्रभुबचना । कीन्ही जाइ तिलक की रचना ॥

सादर सिंहासन बैठारी । तिलक सारि अस्तुति अनुसारी ॥ ३ ॥

प्रभुके वचन सुनकर वानर तुरंत चले और उन्होंने जाकर राजतिलककी सारी व्यवस्था की । आदरके साथ बिभीषणको सिंहासनपर बैठाकर राजतिलक किया और स्तुति की ॥ ३ ॥

जोरि पानि सबहीं सिर नाए । सहित बिभीषन प्रभु पहिं आए ॥

तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हे । कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हे ॥ ४ ॥

समीने हाथ जोड़कर उनको सिर नवाये । तदनन्तर विभीषणजीसहित सब प्रभुके पास आये । तब श्रीरघुवीरने वानरोंको बुला लिया और प्रिय वचन कहकर सबको सुखी किया ॥ ४ ॥

छं०—किय सुखी कहि बानी सुधासम बल तुम्हारे रिपु हयो ।

पायो विभीषण राज तिहुँ पुर जसु तुम्हारो नित नयो ॥

मोहि सहित सुम कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहैं ।

संसार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं ॥

भगवान्ने अमृतके समान यह वाणी कहकर सबको सुखी किया कि तुम्हारे ही बलसे यह प्रबल शत्रु मारा गया और विभीषणने राज्य पाया । इसके कारण तुम्हारा यश तीनों लोकोंमें नित्य नया बना रहेगा । जो लोग मेरे-सहित तुम्हारी शुभ कीर्तिको परम प्रेमके साथ गावेंगे वे बिना ही परिभ्रम इस अपार संसारसागरका पार पा जायेंगे ।

दो०—प्रभु के वचन श्रवन सुनि नहिं अघाहिं कपिपुंज ।

बार बार सिर नावहिं गहहिं सकल पदकंज ॥ १०६ ॥

प्रभुके वचन कानोंसे सुनकर वानर-समूह तृप्त नहीं होते । वे सब बार-बार सिर नवाते हैं और चरणकमलोंको पकड़ते हैं ॥ १०६ ॥

चौ०—पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना । लंका जाहु कहेउ भगवाना ॥

समाचार जानकिहि सुनावहु । तासु कुसल लै तुम्ह नलि आवहु ॥ १ ॥

फिर प्रभुने हनुमान्जीको बुला लिया । भगवान्ने कहा—तुम लट्का जाओ । जानकीको सब समाचार सुनाओ और उसका कुशल-समाचार लेकर तुम चले आओ ॥ १ ॥

तब हनुमंत नगर महुँ आए । सुनि निसिचरी निसाचर घाए ॥

बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही । जनकसुता देखाइ पुनि दीन्ही ॥ २ ॥

तब हनुमान्जी नगरमें आये । यह सुनकर राक्षस-राक्षसी उनके सत्कारके लिये दौड़े । उन्होंने बहुत प्रकारसे हनुमान्जीकी पूजा की और फिर भीजानकीजीको दिखला दिया ॥ २ ॥

दूरिहि ते प्रनाम कपि कीन्हा । रघुपति दूत जानकीं चीन्हा ॥

कहहु तात प्रभु कृपानिकेता । कुसल अनुज कपि सेन समेता ॥ ३ ॥

हनुमान्जीने दूरसे ही प्रणाम किया । जानकीजीने पहचान लिया कि यह वही श्रीरघुनाथजीका दूत है । [और पूछा—] हे तात ! कहो, कृपानिवास मेरे प्रभु छोटे भाई और वानरोंकी सेनासहित कुशलसे तो हैं ? ॥ ३ ॥

सब बिधि कुसल कोसलाधीसा । मातु समर जीत्यो दससोसा ॥

अबिचल राजु विभीषण पायो । सुनि कपिबचन हरष उर छायो ॥ ४ ॥

[हनुमान्जीने कहा—] हे माता ! कोसलपति श्रीरामजी सब प्रकारसे सकुशल हैं । उन्होंने संग्राममें दस सिरवाले रावणको जीत लिया है और विभीषणने अचल राज्य प्राप्त किया है । हनुमान्जीके वचन सुनकर सीताजीके हृदयमें हर्ष छा गया ॥ ४ ॥

छं०—अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा ।

का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा ॥

सुनु मातु मैं पायो अबिल जग राजु आजु न संसयं ।

रन जीति रिपुदल बंधुजुत पस्यामि राममनामयं ॥

श्रीजानकीजीके हृदयमें अत्यन्त हर्ष हुआ। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमें [आनन्दाश्रुओं-का] जल छा गया। वे बार-बार कहती हैं—हे हनुमान् ! मैं तुझे क्या दूँ ? इस वाणी (समाचार) के समान तीनों लोकोंमें और कुछ भी नहीं है ! [हनुमान्जीने कहा—] हे माता ! सुनिये, मैंने आज निःसन्देह सारे जगत्का राज्य पा लिया, जो मैं रणमें शत्रुसेनाको जीतकर भाईसहित निर्विकार श्रीरामजीको देख रहा हूँ।

दो०—सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयें बसहुँ हनुमंत ।

सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत ॥१०७॥

[जानकीजीने कहा—] हे पुत्र ! सुन, समस्त सद्गुण तेरे हृदयमें बसें और हे हनुमान् ! शेष (लक्ष्मणजी) सहित कोसलपति प्रभु सदा तुझपर प्रसन्न रहें ॥ १०७ ॥

चौ०—अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता । देखौ नयन स्याम मृदु गाता ॥

तब हनुमान राम पहिं जाई । जनकसुता कै कुसल सुनाई ॥ १ ॥

हे तात ! अब तुम वही उपाय करो, जिससे मैं इन नेत्रोंसे प्रभुके कोमल श्याम शरीरके दर्शन करूँ। तब श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर हनुमान्जीने जानकीजीका कुशल-सन्देश सुनाया ॥ १ ॥

सुनि संदेशु भानुकुल भूषन । बोलि लिए जुबराज बिभीषन ॥

मारुतसुत के संग सिंघावहु । सादर जनकसुतहि लै आवहु ॥ २ ॥

सूर्यकुलभूषण श्रीरामजीने सन्देश सुनकर युवराज अङ्गद और बिभीषणको बुल लिया। [और कहा—] पवनपुत्र हनुमान्के साथ जाओ और जानकीको आदरके साथ ले आओ ॥ २ ॥

तुरतहिं सकल गए जहँ सीता । सेवहिं सब निसिचरीं विनीता ॥

बेगि बिभीषन तिन्हहि सिंखायो । तिन्ह बहुविधि मज्जन करवायो ॥ ३ ॥

वे सब तुरंत ही वहाँ गये जहाँ राक्षसियाँ नम्रतापूर्वक सीताजीकी सेवा कर रही थीं। बिभीषणजीने शीघ्र ही उन लोगोंको समझा दिया। उन्होंने बहुत प्रकारसे सीताजीको स्नान कराया, ॥ ३ ॥

बहु प्रकार भूषन पहिराय । सिबिका रुचिर साजि पुनि ल्याए ॥

ता पर हरषि चढ़ी बैदेही । सुमिरि राम सुखधाम सनेही ॥ ४ ॥

बहुत प्रकारके गहने पहनाये, और फिर वे एक सुन्दर पालकी सजाकर ले आये। सीताजी प्रसन्न होकर सुखके धाम प्रियतम श्रीरामजीका स्मरण करके उसपर हर्षके साथ चढ़ीं ॥ ४ ॥

बेतपानि रच्छक चहुँ पासा । चले सकल मन परम हुलासा ॥

देखन भालु कीस सब आए । रच्छक कोपि निवारन धाए ॥ ५ ॥

चारों ओर हाथोंमें छड़ी लिये रक्षक चले। सबके मनमें परम उत्साह (उमंग) है। रीछ-वानर सब दर्शन करनेके लिये आये, सब रक्षक क्रोध करके उनको रोकने दौड़े ॥ ५ ॥

कह रघुवीर कहा मम मानहु । सीतहि सखा पयादें आनहु ॥

देखहुँ कपि जननी की नाई । बिहसि कहा रघुनाथ गोसाई ॥ ६ ॥

श्रीरघुवीरने कहा—हे मित्र ! मेरा कहना मानो और सीताको पैदल ले आओ, जिससे वानर उनको माताकी तरह देखें। गोसाई श्रीरामजीने हँसकर ऐसा कहा ॥ ६ ॥

सुनि प्रभुबचन भालु कपि हरषे । नभ ते सुरन्ह सुमन बहु बरषे ॥

सीता प्रथम अनल महुँ राखी । प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी ॥ ७ ॥

प्रभुके वचन सुनकर रीछ-वानर हर्षित हो गये । आकाशसे देवताओंने बहुत-से फूल बरसाये । सीताजीके असली स्वरूपको पहले अग्निमें रक्खा था । अब भीतरके साक्षी भगवान् उनको प्रकट करना चाहते हैं ॥ ७ ॥

दो०—तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद ।

सुनत जातुधानी सब लागीं करै विषाद ॥१०८॥

इसी कारण कृष्णाके भण्डार श्रीरामजीने लीलासे कुछ कहे वचन कहे, जिन्हें सुनकर सब राक्षसियाँ विषाद करने लगीं ॥ १०८ ॥

चौ०—प्रभु के वचन सीस धरि सीता । बोली मन कम वचन पुनीता ॥

लछिमन होहु धरम के नेगी । पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी ॥ १ ॥

प्रभुके वचनोंको सिर चढ़ाकर मन, वचन और कर्मसे पवित्र श्रीसीताजी बोलीं—हे लक्ष्मण ! तुम मेरे धर्मके नेगी (धर्माचरणमें सहायक) बनो और तुरंत आग तैयार करो ॥ १ ॥

सुनि लछिमन सीता कै बानी । बिरह बिबेक धरम निति सानी ॥

लोचन सजल जोरि कर दोऊ । प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ ॥ २ ॥

श्रीसीताजीकी विरह, विवेक, धर्म और नीतिसे सनी हुई बाणी सुनकर लक्ष्मणजीके नेत्रोंमें [विषादके आँसुओंका] जल भर आया । वे दोनों हाथ जोड़े खड़े रहे । वे भी प्रभुसे कुछ कह नहीं सकते ॥ २ ॥

देखि राम रुख लछिमन धाय । पावक प्रगटि काठ यहु लाय ॥

पावक प्रबल देखि बैदेहो । हृदयँ हरष नहिं भय कछु तेही ॥ ३ ॥

फिर श्रीरामजीका रुख देखकर लक्ष्मणजी दौड़े और आग तैयार करके बहुत-सी लकड़ी ले आये । अग्निको खूब बढ़ी हुई देखकर जानकीजीके हृदयमें हर्ष हुआ । उन्हें भय कुछ भी नहीं हुआ ॥ ३ ॥

जौं मन वच क्रम मम उर माहीं । तजि रघुवीर भान गति नाहीं ॥

तौ कसानु सब कै गति जाना । मो कहूँ होउ श्रीखंड समाना ॥ ४ ॥

[सीताजीने लीलासे कहा—] यदि मन, वचन और कर्मसे मेरे हृदयमें श्रीरघुवीरजीको छोड़कर दूसरी गति (अन्य किसीका भरोसा) नहीं है, तो अग्निदेव जो सबके मनकी गति जानते हैं, मेरे भी मनकी गति जानकर मेरे लिये चन्दनके समान शीतल हो जायें ॥ ४ ॥

छं०—श्रीखंड सम पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिलों ।

जय कोसलेस महेस बंदित चरन रति अति निर्मली ॥

प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे ।

प्रभुचरित काहुँ न लखे नम सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे ॥ १ ॥

प्रभु श्रीरामजीका स्मरण करके, और जिनके चरण महादेवजीके द्वारा बन्दित हैं तथा जिनमें सीताजीकी अत्यन्त विशुद्ध प्रीति है, उन कोसलपतिजी जय बोल्कर जानकीजीने चन्दनके समान शीतल हुई अग्निमें प्रवेश किया । प्रतिबिम्ब (सीताजीकी छायामूर्ति) और उनका लौकिक कलङ्क प्रचण्ड अग्निमें जल गये । प्रभुके इन चरित्रोंको किसीने नहीं जाना । देवता, सिद्ध और मुनि सब आकाशमें खड़े देखते हैं ! ॥ १ ॥

धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग विदित जो ।

जिमि छीर सागर इंदिरा रामहि समर्पी भानि सो ॥

कल्याण

श्रीसीताजीका अग्रिप्रवेश



श्रीखंड सम पावक प्रवेश कियो सुमिरि प्रभु मैथिली ।
जय कोसलस महेस बंदित चरन गति अति निर्मली ॥

सो राम वाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली ।

नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली ॥ २ ॥

तब अग्निने शरीर धारण करके वेदोंमें और जगत्में प्रसिद्ध वास्तविक श्री (सीताजी) का हाथ पकड़ उन्हें श्रीरामजीको वैसे ही समर्पित किया, जैसे क्षीरसागरने विष्णुभगवान्को लक्ष्मी समर्पित की थीं । वे सीताजी श्रीरामचन्द्रजीके वाम भागमें विराजित हुईं । उनकी उत्तम शोभा अत्यन्त ही सुन्दर है । मानो नये खिले हुए नीले कमलके पास सोनेके कमलकी कली सुशोभित हो ॥ २ ॥

दो०—बरषहिं सुमन हरषि सुर बाजहिं गगन निसान ।

गावहिं किंनर सुरबधूँ नाचहिं चढ़ीं बिमान ॥ १०९ (क) ॥

देवता हर्षित होकर फूल बरसाने लगे । आकाशमें ढंके बजने लगे । किन्नर गाने लगे । विमानोंपर चढ़ी अप्सराएँ नाचने लगीं ॥ १०९ (क) ॥

जनकसुता समेत प्रभु सोमा अमित अपार ।

देखि मालु कपि हरषे जय रघुपति सुखसार ॥ १०९ (ख) ॥

श्रीजानकीजोसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी अपरिमित और अपार शोभा देखकर रीछ-वानर हर्षित हो गये और सुखके सार श्रीरघुनाथजीकी जय बोलने लगे ॥ १०९ (ख) ॥

चो०—तब रघुपति अनुसासन पाई । मातलि चलेउ चरन सिर नारै ॥

आप देव सदा स्वारथी । बचन कहहिं जनु परमारथी ॥ १ ॥

तब श्रीरघुनाथजीको आज्ञा पाकर इन्द्रका सारथी मातलि चरणोंमें सिर नवाकर रख लेकर चला गया । तदनन्तर सदाके स्वार्थी देवता आये । वे ऐसे वचन कह रहे हैं मानो बड़े परमार्थी हों ॥ १ ॥

दीनबन्धु दयाल रघुराया । देव कीन्दि देवन्ह पर दया ॥

बिखद्रोह रत यह खल कामी । निज अघ गयउ कुमारगगामी ॥ २ ॥

हे दीनबन्धु ! हे दयालु रघुराज ! हे परमदेव ! आपने देवताओंपर बड़ी दया की । विश्वके द्रोहमें तत्पर यह दुष्ट, कामी और कुमार्गपर चलनेवाला रावण अपने ही पापसे नष्ट हो गया ॥ २ ॥

तुम्ह समरूप ब्रह्म अविनासी । सदा एकरस सहज उदासी ॥

अकल अगुन अज अनघ अनामय । अजित अमोघ सक्ति करुनामय ॥ ३ ॥

आप समरूप, ब्रह्म, अविनाशी, नित्य, एकरस, स्वभावसे ही उदासीन (शत्रु-मित्रभावरहित), अखण्ड, निर्गुण (मायिक गुणोंसे रहित), अजन्मा, निष्पाप, निर्विकार, अजेय, अमोघशक्ति (जिनकी शक्ति कभी व्यर्थ नहीं होती) और दयामय हैं ॥ ३ ॥

मीन कमठ सूकर नरहरी । वामन परसुराम यपु धरी ॥

जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो । नाना तनु धरि तुम्है नसायो ॥ ४ ॥

आपने ही मत्स्य, कच्छप, बाराह, नृसिंह, वामन और परशुरामके शरीर धारण किये । हे नाथ ! जब-जब देवताओंने दुःख पाया, तब-तब अनेकों शरीर धारण करके आपने ही उनका दुःख नाश किया ॥ ४ ॥

यह खल मलिन सदा सुरद्रोही । काम लोभ मद रत अति कोही ॥

अधम सिरोमनि तब पद पावा । यह हमरें मन बिसमय आवा ॥ ५ ॥

यह दुष्ट, मलिनहृदय, देवताओंका नित्य शत्रु, काम, लोभ और मदके परायण तथा अत्यन्त क्रोधी था। ऐसे अधमोंके शिरोमणिने भी आपका परमपद पा लिया। इस बातका हमारे मनमें आश्चर्य हुआ ॥ ५ ॥

हम देवता परम अधिकारी। स्वार्थरत प्रभु भगति बिसारी ॥
भव प्रवाहँ संतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे ॥ ६ ॥

हम देवता श्रेष्ठ अधिकारी होकर भी स्वार्थपरायण हो आपकी भक्तिको भुलाकर निरन्तर भव-सागरके प्रवाहमें (जन्म-मृत्युके चक्रमें) पड़े हैं। अब हे प्रभो! हम आपकी शरणमें आ गये हैं, हमारी रक्षा कीजिये ॥ ६ ॥

दो०—करि बिनती सुर सिद्ध सब रहे जहँ तहँ कर जोरि।

अति सप्रेम तन पुलकि बिधि अस्तुति करत बहोरि ॥ ११० ॥

बिनती करके देवता और सिद्ध सब जहाँ-कहाँ हाथ जोड़े खड़े रहे। तब अत्यन्त प्रेमसे पुलकित-शरीर होकर ब्रह्माजी स्तुति करने लगे—॥ ११० ॥

छ०—जय राम सदा सुखधाम हरे। रघुनायक सायक चाप धरे ॥

भव बारन दारन सिंह प्रभो। गुनसागर नागर नाथ बिभो ॥ १ ॥

हे नित्य सुखधाम और दुःखोंको हरनेवाले हरि! हे धनुष-बाण धारण किये हुए रघुनाथजी! आपको जय हो। हे प्रभो! आप भवरूपी हाथीको विदीर्ण करनेके लिये सिंहके समान हैं। हे नाथ! हे सर्वव्यापक बिभो! आप गुणोंके समुद्र और परम चतुर हैं ॥ १ ॥

तन काम अनेक अनूप छबि। गुन गावत सिद्ध मुनींद्र कबी ॥

जसु पावन रावन नाग महा। खगनाथ जथा करि कोप गहा ॥ २ ॥

आपके शरीरकी अनेकों कामदेवोंके समान, परन्तु अनुपम छवि है। सिद्ध, मुनीश्वर और कवि आपके गुण गाते रहते हैं! आपका यश पवित्र है। आपने रावणरूपी महावर्षको गड़ड़की तरह क्रोध करके पकड़ लिया ॥ २ ॥

जनरंजन भंजन सोक भयं। गतक्रोध सदा प्रभु बांधमयं ॥

अवतार उदार अपार गुनं। महिभार बिभंजन ग्यानघनं ॥ ३ ॥

हे प्रभो! आप सेवकोंको आनन्द देनेवाले, शोक और भयका नाश करनेवाले, सदा क्रोधरहित और नित्य ज्ञानस्वरूप हैं। आपका अवतार श्रेष्ठ, अपार दिव्य गुणोंवाला, पृथ्वीका भार उतारनेवाला और ज्ञानका समूह है ॥ ३ ॥

अज व्यापकमेकमनादि सदा। कवनाकर राम नमामि मुदा ॥

रघुवंस बिभूषन दूषन हा। कृत भूष बिभीषन दीन रहा ॥ ४ ॥

किन्तु अवतार लेनेपर भी आप नित्य, अजन्मा, व्यापक, एक (अद्वितीय) और अनादि हैं। हे कृष्णाकी खान भीरामजी! मैं आपको बड़े ही हर्षके साथ नमस्कार करता हूँ। हे रघुकुलके आभूषण! हे दूषण राक्षसको मारनेवाले तथा समस्त दोषोंको धरनेवाले! बिभीषण दीन था, आपने उसको राजा बना दिया ॥ ४ ॥

गुण ग्यान निधान अमान अजं । नित राम नमामि विभुं विरजं ॥

भुजदंड प्रचंड प्रताप बलं । खल बृंद निकंद महा कुसलं ॥ ५ ॥

हे गुण और ज्ञानके भण्डार ! हे मानरहित ! हे अजन्मा, व्यापक और मायिक विकारोंसे रहित श्रीराम ! मैं आपको नित्य नमस्कार करता हूँ । आपके भुजदण्डोंका प्रताप और बल प्रवण्ड है । दुष्टसमूहके नाश करनेमें आप परम निपुण हैं ॥ ५ ॥

यिनु कारन दीन दयाल हितं । छविधाम नमामि रमा सहितं ॥

भव तारन कारन काज परं । मन संभव दारुन दोष हरं ॥ ६ ॥

हे विना ही कारण दीनोंपर दया तथा उनका हित करनेवाले और शोभाके धाम ! मैं श्रीजानकीजीसहित आपको नमस्कार करता हूँ । आप भवसागरसे तारनेवाले हैं, कारणरूपा प्रकृति और कार्यरूप जगत् दोनोंसे परे हैं और मनसे उत्पन्न होनेवाले कठिन दोषोंको हरनेवाले हैं ॥ ६ ॥

सर चाप मनोहर त्रोन धरं । जलजारुन लोचन भूप वरं ॥

सुखमंदिर सुंदर श्रीरमनं । मद मार मुधा ममता समनं ॥ ७ ॥

आप मनाहर बाण, धनुष और तरकस धारण करनेवाले हैं । लाल कमलके समान आपके नेत्र हैं । आप राजाओंमें श्रेष्ठ, सुखके मन्दिर, सुन्दर, श्री (लक्ष्मीजी) के वल्लभ तथा मद (अहंकार), काम और श्रुटी ममताके नाश करनेवाले हैं ॥ ७ ॥

अनवद्य अखंड न गोचर गो । सबरूप सदा सब होइ न गो ॥

इति वेद ब्रदंति न दंतकथा । रवि आतप भिन्नमभिन्न जथा ॥ ८ ॥

आप अनिन्ध या दीपारहित हैं, अखण्ड हैं, इन्द्रियोंके विषय नहीं हैं । सदा सर्वरूप होते हुए भी आप वह सब कभी हुए ही नहीं ऐसा वेद कहते हैं, कोई दन्तकथा (कोरी कल्पना) नहीं है । जैसे सूर्य और सूर्यका प्रकाश अलग-अलग हैं और अलग नहीं भी हैं, वैसे ही आप भी संसारसे भिन्न तथा अभिन्न दोनों ही हैं ॥ ८ ॥

कृतकृत्य विभो सब वानर ए । निरखंति तवानन सादर ए ॥

धिग जीवन देवसरीर हरं । तत्र भक्ति विना भव भूलि परे ॥ ९ ॥

हे विभो ! ये सब वानर कृतार्थरूप हैं, जो आदरपूर्वक ये आपका मुख देख रहे हैं । हे हरे ! हमारे अमर जीवन और देव- (दिव्य-) शरीरको धिक्कार है, जो हम आपकी भक्तिसे रहित हुए ससारमें (सांसारिक विषयोंमें) भूले पड़े हैं ॥ ९ ॥

अब दीनदयाल दया करिए । मति मोरि बिभेदकरी हरिए ॥

जेहि ते विपरीत क्रिया करिए । दुख सो सुख मानि सुखी चरिए ॥ १० ॥

हे दीनदयाल ! अब दया कीजिये और मेरी उस विभेद उत्पन्न करनेवाली बुद्धिको हर लीजिये, जिससे मैं विपरीत कर्म करता हूँ और जो दुःख है, उसे सुख मानकर आनन्दसे विचरता हूँ ॥ १० ॥

खल खंडन मंडन रम्य छमा । पद पंकज सेवित संभु उमा ॥

नृप नायक दे वरदानमिदं । चरनांबुज प्रेमु सदा सुभदं ॥ ११ ॥

आप दुष्टोंका खण्डन करनेवाले और पृथ्वीके रमणीय आभूषण हैं । आपके चरणकमल श्रीशिवपार्वती-जीद्वारा सेवित हैं । हे राजाओंके महाराज ! मुझे यह वरदान दीजिये कि आपके चरणकमलोंमें मेरा कल्याण-दायक अनन्य प्रेम हो ॥ ११ ॥

दो०—बिनय कीन्हि चतुरानन प्रेम पुलक अति गात ।

सोभासिंधु बिलोकत लोचन नहीं अघात ॥१११॥

इस प्रकार ब्रह्माजीने अत्यन्त प्रेम-पुलकित शरीरसे विनती की । शोभाके समुद्र श्रीरामजीके दर्शन करते-करते उनके नेत्र तृप्त नहीं होते थे ॥ १११ ॥

चौ०—तेहि अवसर दसरथ तहँ आए । तनय बिलोकि नयन जल छाए ॥

अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा । आसिरबाद पिताँ तब दीन्हा ॥ १ ॥

उसी समय दशरथजी वहाँ आये । पुत्र (श्रीरामजी) को देखकर उनके नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओका] जल छा गया । छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित प्रभुने उनकी वन्दना की और पिताने उनको आशीर्वाद दिया ॥ १ ॥

तात सकल तब पुन्य प्रभाऊ । जीत्यों अजय निसाचर राऊ ॥

सुनि सुत वचन प्रीति अति वाढ़ी । नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी ॥ २ ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे तात ! यह सब आपके पुण्योका प्रभाव है, जो मैंने अजेय राक्षसराजको जीत लिया । पुत्रके वचन सुनकर उनकी प्रीति अत्यन्त बढ़ गयी । नेत्रोंमें जल छा गया और रोमावली खड़ी हो गयी ॥ २ ॥

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना । चितइ पितहि दीन्हेंउ दढ़ ग्याना ॥

ताते उमा मोच्छ नहिं पायो । दसरथ भेद भगति मन लायो ॥ ३ ॥

श्रीरघुनाथजीने पहलेके (जीवितकालके) प्रेमको विचारकर, पिताकी ओर देखकर उन्हें अपने स्वरूपका दढ़ ज्ञान करा दिया । हे उमा ! दशरथजीने भेद-भक्तिमें अपना मन लगाया था, इसीसे उन्होंने कैवल्यमोक्ष नहीं पाया ॥ ३ ॥

सगुनोपासक मोच्छ न लेहो । तिन्ह कहँ राम भगति निज देहो ॥

वार वार करि प्रभुहि प्रनामा । दसरथ हरपि गण सुरधामा ॥ ४ ॥

[मायारहित सच्चिदानन्दमय स्वरूपभूत दिव्यगुणयुक्त] सगुणस्वरूपकी उपासना करनेवाले भक्त इस प्रकारका मोक्ष लेते भी नहीं । उनको श्रीरामजी अपनी भक्ति देते हैं । प्रभुको दृष्टिर्वादिमें बार-बार प्रणाम करके दशरथजी हर्षित होकर देवलोकको चले गये ॥ ४ ॥

दो०—अनुज जानकी महित प्रभु कुसल कोसलाधीस ।

सोभा देखि हरपि मन अस्तुति कर सुर ईस ॥११२॥

छोटे भाई लक्ष्मणजी और जानकीजीसहित परम कुशल प्रभु श्रीकोमल्यधीशकी शोभा देखकर मुरपाति इन्द्र मनमें हर्षित होकर स्तुति करने लगे—॥ ११२ ॥

छं०—जय राम सोभा धाम । दायक प्रनत विश्राम ॥

धृत त्रोन वर सर चाप । भुजदंड प्रबल प्रताप ॥ १ ॥

शोभाके धाम, शरणागतको विश्राम देनेवाले, श्रेष्ठ तरकम, धनुष और बाण धारण किये हुए, प्रबल प्रतापी भुजदण्डोंवाले श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो ! ॥ १ ॥

जय दूषनारि खरारि । मर्दन निसाचर धारि ॥

यह दुष्ट मारेउ नाथ । भए देव सकल सनाथ ॥ २ ॥

हे खर और दूषणके शत्रु और गन्धसोंकी सेनाके मर्दन करनेवाले ! आपकी जय हो ! हे नाथ ! आपने इस दुष्टको मारा, जिससे सब देवता सनाथ (सुरक्षित) हो गये ॥ २ ॥

जय हरन धरनी भार । महिमा उदार अपार ॥

जय रावनारि कृपाल । किए जातुधान बिहाल ॥ ३ ॥

हे भूमिका भार हरनेवाले ! हे अपार श्रेष्ठ महिमावाले ! आपकी जय हो ! हे रावणके शत्रु ! हे कृपाल ! आपकी जय हो ! आपने राक्षसोंको बेहाल (तहस-नहस) कर दिया ॥ ३ ॥

लंकेश अति बल गर्व । किए बस्य सुर गंधर्व ॥

मुनि सिद्ध नर खग नाग । हठि पंथ सब कं लाग ॥ ४ ॥

लङ्कापति रावणको अपने बलका बहुत घमंड था । उसने देवता और गन्धर्व सभीको अपने वशमें कर लिया था । और वह मुनि, सिद्ध, मनुष्य, पक्षी और नाग आदि सभीके हठपूर्वक (हाथ धोकर) पीछे पड़ गया था ॥ ४ ॥

परद्रोहरत अति दुष्ट । पायो सो फल पापिष्ट ॥

अब सुनहु दीनदयाल । राजीव नयन विमाल ॥ ५ ॥

वह परद्रोहपरायण और अत्यन्त दुष्ट था । उस पापीने वैसा ही फल पाया । अब, हे दीनोंर दया करनेवाले ! हे कमलके समान विशाल नेत्रोंवाले ! सुनिये ॥ ५ ॥

मोहि रहा अति अभिमान । नहिं कोउ मोहि समान ॥

अब देखि प्रभु पद कंज । गत मान प्रद दुखपुंज ॥ ६ ॥

मुझे अत्यन्त अभिमान था कि मेरे समान कोई नहीं है । पर अब प्रभु (आप) के चरणकमलोंके दर्शन करनेसे दुःखसमूहका देनेवाला मेरा वह अभिमान जाता रहा ॥ ६ ॥

कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव । अव्यक्त जेहि श्रुति गाव ॥

मोहि भाव कोसलभूष । श्रीराम सगुन सरूप ॥ ७ ॥

कोई उन निर्गुण ब्रह्मका ध्यान करते हैं जिन्हें वेद अव्यक्त कहते हैं । परन्तु हे श्रीरामजी ! मुझे तो आपका यह सगुण कोसलगज स्वरूप ही प्रिय लगता है ॥ ७ ॥

वैदेहि अनुज समेत । मम हृदयं करहु निकेत ॥

मोहि जानिए निज दास । हे भक्ति रमानिवास ॥ ८ ॥

श्रीजानकीजी और छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित मेरे हृदयमें अपना घर बनाइये । हे रमानिवास ! मुझे अपना दाम समझिये और अपनी भक्ति दीजिये ॥ ८ ॥

लं०—हे भक्ति रमानिवास त्रास हरन सरन सुखदायक ।

सुखधाम राम नमामि काम अनेक छवि रघुनायक ॥

सुरबृंद रंजन इंद्र भंजन मनुजतनु अतुलितबल ॥

ब्रह्मादि संकर सेव्य राम नमामि करुना कोमल ॥

हे रमानिवास ! हे शरणागतके भयको हरनेवाले और उसे सब प्रकारका सुख देनेवाले ! मुझे अपनी भक्ति दीजिये । हे सुखके धाम ! हे अनेकों कामदेवोंकी छविवाले रघुकुलके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे देवसमूहको आनन्द देनेवाले, जन्म-मृत्यु, हर्ष-विपाद, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंके नाश करनेवाले, मनुष्यशरीरधारी, अतुलनीय बलवाले, ब्रह्मा और शिव आदिसे सेवनीय, करुणासे कोमल श्रीरामजी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।

दो०—अब करि कृपा बिलोकि मोहि आयसु देहु कृपाल ।

काह करों सुनि प्रिय बचन बोले दीनदयाल ॥ ११३ ॥

हे कृपालु ! अब मेरी ओर कृपा करके (कृपादृष्टिसे) देखकर आज्ञा दीजिये कि मैं क्या सेवा करूँ ! इन्द्रके ये प्रिय वचन सुनकर दीनदयाल श्रीरामजी बोले—॥ ११३ ॥

चौ०—सुनु सुरपति कपि भालु हमारे । परे भूमि निसिबरन्हि जे मारे ॥

मम हित लागि तजे इन्ह प्राना । सकल जिआउ सुरेस सुजाना ॥ १ ॥

हे देवराज ! सुनो, हमारे वानर-भालू, जिन्हें निशाचरोंने मार डाला है, पृथ्वीपर पड़े हैं । इन्होंने मेरे हितके लिये अपने प्राण त्याग दिये । हे सुजान देवराज ! इन सबको जिला दो ॥ १ ॥

सुनु खगेस प्रभु कै यह वानी । अति अगाध जानहिं मुनि ग्यानी ॥

प्रभु सक त्रिभुवन मारि जिआई । केवल सकहि दीन्हि बड़ाई ॥ २ ॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़ ! सुनिये । प्रभुके ये वचन अत्यन्त गहन (गूढ़) हैं । शानी मुनि ही इन्हें जान सकते हैं । प्रभु श्रीरामजी त्रिलोकीको मारकर जिला सकते हैं । यहाँ तो उन्होंने केवल इन्द्रको बड़ाई दी है ॥ २ ॥

सुधा वरषि कपि भालु जिआए । हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए ॥

सुधावृष्टि भै दुहु दल ऊपर । जिए भालु कपि नहिं रजनीचर ॥ ३ ॥

इन्द्रने अमृत बरसाकर वानर-भालुओंको जिला दिया । सब हर्षित होकर उठे और प्रभुके पास आये । अमृतकी वर्षा दोनों ही दक्षोंपर हुई । पर रीछ-वानर ही जीवित हुए, राक्षस नहीं ! ॥ ३ ॥

रामाकार भए तिन्ह के मन । मुक्त भए छूटे भवबंधन ॥

सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा । जिए सकल रघुपति की ईछा ॥ ४ ॥

क्योंकि राक्षसोंके मन तो मरते समय रामाकार हो गये थे । अतः वे मुक्त हो गये, उनके भव-बन्धन छूट गये । किन्तु वानर और भालू तो सब देवांश (भगवान्की लीलाके परिकर) थे । इसलिये वे सब श्रीरघुनाथजीकी इच्छासे जीवित हो गये ॥ ४ ॥

राम सरिस को दीन हितकारी । कीन्हे मुकुत निसाचर झारी ॥

खल मलधाम कामरत रावन । गाँत पाई जो मुनिबर पाव न ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके समान दीनोंका हित करनेवाला कौन है ? जिन्होंने सारे राक्षसोंको मुक्त कर दिया । दुष्ट, पापोंके घर और कामी रावणने भी वह गति पायी जिसे श्रेष्ठ मुनि भी नहीं पाते ॥ ५ ॥

दो०—सुमन वरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर विमान ।

देखि सुअवसर प्रभु पहिं आयउ संभु सुजान ॥ ११४ (क) ॥

फूलोंकी वर्षा करके सब देवता सुन्दर विमानोंपर चढ़-चढ़कर चले । तब सुअवसर जानकर सुजान शिवजी प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके पास आये—॥ ११४ (क) ॥

परम प्रीति कर जोरि जुग नलिन नयन भरि बारि ।

पुलकित तन गदगद गिराँ बिनय करत त्रिपुरारि ॥ ११४ (ख) ॥

और परम प्रेमसे दोनों हाथ जोड़कर, कमलके समान नेत्रोंमें जल भरकर, पुलकित शरीर और गदगद वाणीसे त्रिपुरारि शिवजी बिनती करने लगे—॥ ११४ (ख) ॥

छं०—मामभिरक्षय रघुकुल नायक । धृत बर चाप रुचिर कर सायक ॥

मोह महा घन पटल प्रभंजन । संसय विपिन अनल सुर रंजन ॥ १ ॥

हे रघुकुलके स्वामी ! सुन्दर हाथोंमें श्रेष्ठ धनुष और सुन्दर बाण धारण किये हुए आप मेरी रक्षा कीजिये । आप महामोहरूपी मेघसमूहके उड़ानेके लिये प्रवण्ड पवन हैं, संशयरूपी वनके भस्म करनेके लिये अग्नि हैं, और देवताओंको आनन्द देनेवाले हैं ॥ १ ॥

अगुन सगुन गुनमंदिर सुंदर । भ्रम तम प्रबल प्रताप दिवाकर ॥

काम क्रोध मद गज पंचानन । बसहु निरंतर जन मन कानन ॥ २ ॥

आप निर्गुण, सगुण, दिव्य गुणोंके धाम और परम सुन्दर हैं । भ्रमरूपी अन्धकारके नाशके लिये प्रबल प्रतापी सूर्य हैं । काम, क्रोध और मदरूपी हाथियोंके वधके लिये सिंहके समान आप इस सेवकके मन्तरूपी वनमें निरन्तर निवास कीजिये ॥ २ ॥

विषय मनोरथ पुंज कंज बन । प्रबल तुषार उदार पार मन ॥

भव बारिधि मंदर परमं दर । वारय तारय संसृति दुस्तर ॥ ३ ॥

विषयकामनाओंके समूहरूपी कमलवनके नाशके लिये आप प्रबल पाला हैं, आप उदार और मनसे परे हैं । भवसागरको मथनेके लिये आप मन्दराचल पर्वत हैं । आप हमारे परम भयको दूर कीजिये और हमें दुस्तर संसारसागरसे पार कीजिये ॥ ३ ॥

स्याम गात राजीव बिलोचन । दीनबंधु प्रनतारति मोचन ॥

अनुज जानकी सहित निरंतर । बसहु राम नृप मम उर अंतर ॥ ४ ॥

मुनि रंजन महि मंडल मंडन । तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन ॥ ५ ॥

हे स्यामसुन्दर-शरीर ! हे कमलनयन ! हे दीनबन्धु ! हे शरणागतके दुःखसे छुड़ानेवाले ! हे राजा रामचन्द्रजी ! आप छोटे भाई लक्ष्मण और जानकीजीसहित निरन्तर मेरे हृदयके अन्दर निवास कीजिये । आप मुनियोंको आनन्द देनेवाले, पृथ्वीमण्डलके भूषण, तुलसीदासके प्रभु और भयका नाश करनेवाले हैं ॥ ४-५ ॥

दो०—नाथ जबहिं कोसलपुरीं होइहि तिलक तुम्हार ।

कृपासिंधु मैं आउब देखन चरित उदार ॥ ११५ ॥

हे नाथ ! जब अयोध्यापुरीमें आपका राजतिलक होगा, तब हे कृपासागर ! मैं आपकी उदार लीला देखने आऊंगा ॥ ११५ ॥

चो०—करि विनती जब संभु सिधाए । तब प्रभु निकट विभीषणु आए ॥

नाइ चरन सिरु कह मृदु बानी । विनय सुनहु प्रभु सारंगपानी ॥ १ ॥

जब शिवजी विनती करके चले गये, तब विभीषणजी प्रभुके पास आये, और चरणोंमें सिर नवाकर कोमल वाणीसे बोले—हे शार्ङ्गधनुषके धारण करनेवाले प्रभो ! मेरी विनती सुनिये—॥ १ ॥

सकुल सदल प्रभु रावन मारयो । पावन जस त्रिभुवन विस्तारयो ॥

दीन मलीन हीन मति जाती । मोपर कृपा कीन्हि बहु भाँती ॥ २ ॥

आपने कुल और सेनासहित रावणका वध किया, त्रिभुवनमें अपना पवित्र यश फैलाया और मुझ दीन, पापी, बुद्धिहीन और जातिहीनपर बहुत प्रकारसे कृपा की ॥ २ ॥

अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे । मज्जन करिअ समर भ्रम छोड़े ॥

देखि कोस मंदिर संपदा । देहु कृपाल कपिन्ह कहूँ मुदा ॥ ३ ॥

अब हे प्रभु ! इस दासके घरको पवित्र कीजिये और वहाँ चलकर स्नान कीजिये, जिससे युद्धकी थकावट दूर हो जाय । हे कृपालु ! खजाना, महल और सम्पत्तिको देखकर प्रसन्नतापूर्वक वानरोंको दीजिये ॥ ३ ॥

सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ । पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइअ ॥

सुनत बचन मृदु दीनदयाला । सजल भए झौ नयन बिसाला ॥ ४ ॥

हे नाथ ! मुझे सब प्रकारसे अपना लीजिये और फिर हे प्रभो ! मुझे साथ लेकर अयोध्यापुरीको पधारिये । विभीषणजीके कोमल वचन सुनते ही दीनदयालु प्रभुके दोनों विशाल नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया ॥ ४ ॥

दो०—तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात ।

भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात ॥ ११६ (क) ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे भाई ! सुनो, तुम्हारा खजाना और घर सब मेरा ही है, यह बात सच है । पर भग्नकी दशा याद करके मुझे एक-एक पल कल्पके समान बीत रहा है ॥ ११६ (क) ॥

तापस बेप गात कृस जपत निरंतर मोहि ।

देखों बेगि सो जतनु करु सखा निहोरउँ तोहि ॥ ११६ (ख) ॥

तपस्वीके वेशमें कृश (दुबले) शरीरसे निरन्तर मेरा नाम जप कर रहे है । हे सखा ! वही उपाय करो जिसमें मैं जल्दी-से-जल्दी उन्हें देख सकूँ । मैं तुमसे निहारा करता हूँ ॥ ११६ (ख) ॥

बीतें अवधि जाउँ जाँ जिअत न पावों वीर ।

सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर ॥ ११६ (ग) ॥

यदि अवधि बीत जानेपर जाऊँगा, तो भाईको जीता न पाऊँगा । छोटे भाई भग्नजीकी प्रीतिको स्मरण करके प्रभुका शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है ॥ ११६ (ग) ॥

करेहु कल्प भरि राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं ।

पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं ॥ ११६ (घ) ॥

[श्रीरामजीने फिर कहा—] हे विभीषण ! तुम कल्पभर राज्य करना; मनमें मेरा निरन्तर स्मरण करने रहना । फिर तुम मेरे उस धामको पा जाओगे जहाँ सब संत सब जाते हैं ॥ ११६ (घ) ॥

चौ०—सुनत विभीषन बचन राम के । हरषि गहे पद कृपाधाम के ॥

वानर भालु सकल हरषाने । गहि प्रभु पद गुन विमल बखाने ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनते ही विभीषणजीने हर्षित होकर कृपाके धाम श्रीरामजीके चरण पकड़ लिये । सभी वानर-भालू हर्षित हो गये और प्रभुके चरण पकड़कर उनके निर्मल गुणोंका बखान करने लगे ॥ १ ॥

बहुरि विभीषन भवन सिधायो । मनिगन बसन विमान भरायो ॥

लै पुष्पक प्रभु आगे राखा । हँसि करि कृपासिंधु तब भाषा ॥ २ ॥

फिर विभीषणजी महलको गये और उन्होंने मणियोंके समूहों (रत्नों) से और वस्त्रोंसे विमानको भर लिया । फिर उस पुष्पक विमानको लाकर प्रभुके सामने रक्खा । तब कृपासागर श्रीरामजीने हँसकर कहा—॥ २ ॥

चढ़ि विमान सुनु सखा विभीषन । गगन जाइ बरषहु पट भूषन ॥

नभ पर जाइ विभीषन तबही । बरषि दिए मनि अंबर सबही ॥ ३ ॥

कल्याण

निर्भीषणढाग वस्त्राभूषणोंकी वर्षा



तभ पर जाइ विभीषन तबही । बरषि दिण मनि अंवर सबही ॥
जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं । मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं ॥

हे सखा विभीषण ! सुनो, विमानपर चढ़कर आकाशमें जाकर वस्त्रों और गहनोंको बरसा दो । तब (आज्ञा सुनते) ही विभीषणजीने आकाशमें जाकर सब मणियों और वस्त्रोंको बरसा दिया ॥ ३ ॥

जोड़ जोड़ मन भावइ सोइ लेहीं । मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं ॥

हैंसे रामु श्री अनुज समेता । परम कौतुकी कृपानिकेता ॥ ४ ॥

जिसके मनको जो अच्छा लगता है, वह वही ले लेता है । मणियोंको मुँहमें लेकर वानर फिर उन्हें खानेकी चीज न समझकर उगल देते हैं । यह तमाशा देखकर परम विनोदी और कृपाके धाम श्रीरामजी सीताजी और लक्ष्मणजीसहित हँसने लगे ॥ ४ ॥

दा०—सुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह बेद ।

कृपासिंधु सोइ कपिन्ह सन करत अनेक विनोद ॥ ११७ (क) ॥

जिनको सुनि ध्यानमें भी नहीं पाने, जिन्हें वेद नेति-नेति कहते हैं, वे ही कृपाके समुद्र श्रीरामजी वानरोंके साथ अनेकों प्रकारके विनोद कर रहे हैं ॥ ११७ (क) ॥

उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम ।

राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम ॥ ११७ (ख) ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! अनेकों प्रकारके योग, जप, दान, तप, यज्ञ, व्रत और नियम करनेपर भी श्रीरामचन्द्रजी वैषी कृपा नहीं करते जैसी अनन्य प्रेम होनेपर करते हैं ॥ ११७ (ख) ॥

चौ०—भालु कपिन्ह पट भूषन पाप । पहिरि पहिरि रघुपति पहिं आप ॥

नाना जिनस देखि सब कीसा । पुनि पुनि हैंसत कोसलाचीसा ॥ १ ॥

भालुओं और वानरोंने कपड़े-गहने पाये और उन्हें पहन-पहनकर वे श्रीरघुनाथजीके पास आये । अनेकों जातियोंके वानरोंको देखकर कोसलपति श्रीरामजी बार-बार हँस रहे हैं ॥ १ ॥

चितइ सबन्हि पर कीन्ही दायी । बोले मृदुल वचन रघुरायी ॥

तुम्हरे बल मैं रावनु मारथो । तिलक विभीषन कहँ पुनि सारथो ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजीने कृपादृष्टिसे देखकर सबपर दया की । फिर वे कोमल वचन बोले—हे भाइयो ! तुम्हारे ही बलसे मैंने रावणको मारा और फिर विभीषणका राजतिलक किया ॥ २ ॥

निज निज गृह अब तुम्ह सब जाह । सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काह ॥

सुनत बचन प्रमाकुल वानर । जोरि पानि बोले सब सादर ॥ ३ ॥

अब तुम सब अपने-अपने घर जाओ । मेरा स्मरण करते रहना और किसीसे डरना नहीं । ये वचन सुनते ही सब वानर प्रेममें विह्वल होकर हाथ जोड़कर आदरपूर्वक बोले—॥ ३ ॥

प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा । हमरें होत वचन सुनि मोहा ॥

दीन जानि कपि किए सनाथा । तुम्ह त्रैलोक ईस रघुनाथा ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! आप जो कुछ भी कहें, आपको सब सोहता है । पर आपके वचन सुनकर हमको मोह होता है । हे श्रीरघुनाथजी ! आप तीनों लोकोंके ईश्वर हैं । हम वानरोंको दीन जानकर ही आपने सनाथ (कृतार्थ) किया है ॥ ४ ॥

सुनि प्रभुबचन लाज हम मरहीं । मसक कहँ खगपति हित करहीं ॥

देखि राम रख वानर रीछा । प्रेम मगन नहिं गृह कै ईछा ॥ ५ ॥

प्रभुके ऐसे वचन सुनकर हम लाजके मारे मरे जा रहे हैं। कहीं मच्छर भी गरुड़का हित कर सकते हैं ? श्रीरामजीका रुख देखकर रीछ-वानर प्रेममें मग्न हो गये। उनकी घर जानेकी इच्छा नहीं है ॥ ५ ॥

दो०—प्रभु प्रेरित कपि भालु सब राम रूप उर राखि ।

हरष विषाद सहित चले विनय विविध विधि भाषि ॥११८ (क)॥

परन्तु प्रभुकी प्रेरणा (आशा) से सब वानर-भालू श्रीरामजीके रूपको हृदयमें रखकर और अनेकों प्रकारसे विनती करके हर्ष और विषादसहित घरको चले ॥ ११८ (क) ॥

कपिपति नील रीछपति अंगद नल हनुमान ।

सहित विभीषण अपर जे जूथप कपि बलवान ॥११८ (ख)॥

वानरराज सुग्रीव, नील, ऋक्षराज जाम्बवान्, अङ्गद, नल और हनुमान् तथा विभीषणसहित और जो बलवान् वानर सेनापति हैं, ॥ ११८ (ख) ॥

कहि न सकाहिं कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि ।

सन्मुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निवारि ॥११८ (ग)॥

वे कुछ कह नहीं सकते; प्रेमवश नेत्रोंमें जल भर-भरकर, नेत्रोंका पलक मारना छोड़कर (टकटकी लगाये) सम्मुख होकर श्रीरामजीकी ओर देख रहे हैं ॥ ११८ (ग) ॥

चौ०—अतिशय प्रीति देखि रघुराई । लीन्ह सकल विमान चढ़ाई ॥

मन महुँ विप्रचरन सिर नायो । उत्तर दिसिहि विमान चलायो ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजीने उनका अतिशय प्रेम देखकर सबको विमानपर चढ़ा लिया। तदनन्तर मन-ही-मन विप्रचरणोंमें सिर नवाकर उत्तर दिशाकी ओर विमान चलाया ॥ १ ॥

चलत विमान कोलाहल होई । जय रघुवीर कहइ सबु कोई ॥

सिंहासन अति उच्च मनोहर । श्री समेत प्रभु बैठे तापर ॥ २ ॥

विमानके चलते समय बड़ा शोर हो रहा है। सब कोई श्रीरघुवीरकी जय कह रहे हैं। विमानमें एक अत्यन्त ऊँचा मनोहर सिंहासन है। उसपर सीताजीसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी बैठे ॥ २ ॥

राजत रामु सहित भाभिनी । मेरु खंग जनु घन दामिनी ॥

रुचिर विमानु चलेउ अति आतुर । कान्ही सुमनवृष्टि हरये सुर ॥ ३ ॥

पत्नीसहित श्रीरामजी ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो सुमेरुके शिखरपर बिजलीसहित श्याम मेष हो। सुन्दर विमान बड़ी शीघ्रतासे चला। देवता हर्षित हुए और उन्होंने फूलोंकी वर्षा की ॥ ३ ॥

परम सुखद चलि त्रिविध वयारी । सागर सर सरि निर्मल वारी ॥

सगुन होहिं सुंदर चहुँ पासा । मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा ॥ ४ ॥

अत्यन्त सुख देनेवाली तीन प्रकारकी (शीतल, मन्द, सुगन्धित) वायु चलने लगी। समुद्र, तालाब और नदियोंका जल निर्मल हो गया। चारों ओर सुन्दर शकुन हॉने लगे। सबके मन प्रसन्न हैं, आकाश और दिशाएँ निर्मल हैं ॥ ४ ॥

कह रघुवीर देखु रन सीता । लछिमन इहाँ हत्यो ईंद्रजीता ॥

हनुमान अंगद के मारे । रन माहि परे निसाचर भारे ॥ ५ ॥

श्रीरघुवीरने कहा—दे सीते ! रणभूमि देखो। लक्ष्मणने यहाँ इन्द्रको जीतनेवाले मेषनादको मारा था। हनुमान और अङ्गदके मारे हुए ये भारी-भारी निशाचर रणभूमिमें पड़े हैं ॥ ५ ॥

कुंभकरन रावन द्यौ भार्य । इहाँ हते सुर मुनि दुखदार्थ ॥ ६ ॥

देवताओं और मुनियोंको दुःख देनेवाले कुम्भकर्ण और रावण यहाँ मारे गये ॥ ६ ॥

दो०—इहाँ सेतु बाँध्यों अरु थापेउँ सिव सुखधाम ।

सीता सहित कृपानिधि संशुद्धि कीन्ह प्रनाम ॥ ११९ (क) ॥

मैंने यहाँ पुल बाँधा (बँधवाया) और सुखधाम श्रीशिवजीकी स्थापना की । तदनन्तर कृपानिधान भीरामजीने सीताजीसहित श्रीरामेश्वर महादेवको प्रणाम किया ॥ ११९ (क) ॥

जहँ जहँ कृपासिंधु बन कीन्ह बास विश्राम ।

सकल देखाए जानकिहि कहे सबन्हि के नाम ॥ ११९ (ख) ॥

बनमें जहाँ-जहाँ करुणासागर श्रीरामचन्द्रजीने निवास और विश्राम किया था, वे सब स्थान प्रभुने जानकीजीको दिखलाये और सबके नाम बतलाये ॥ ११९ (ख) ॥

चौ०—तुरत विमान तहाँ चलि आवा । दंडक बन जहँ परम सुहावा ॥

कुंभजादि मुनिनायक नाना । गए रामु सब कँ अस्थाना ॥ १ ॥

विमान शीघ्र ही वहाँ चला आया जहाँ परम सुन्दर दण्डकवन था, और अगस्त्य आदि बहुत-से मुनिराज रहते थे । श्रीरामजी इन सबके स्थानोंमें गये ॥ १ ॥

सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा । चित्रकूट आए जगदीसा ॥

तहँ करि मुनिन्ह केर संतोषा । चला विमानु तहाँ ते चोखा ॥ २ ॥

सम्पूर्ण ऋषियोंसे आशीर्वाद पाकर जगदीश्वर श्रीरामजी चित्रकूट आये । वहाँ मुनियोंको सन्तुष्ट किया । विमान वहाँसे आगे तेजीके साथ चला ॥ २ ॥

बहुरि राम जानकिहि देखाई । जमुना कलि मल हरनि सुहाई ॥

पुनि देखी सुरसरी पुनीता । राम कहा प्रनाम करु सीता ॥ ३ ॥

फिर श्रीरामजीने जानकीजीको कलियुगके पापोंका हरण करनेवाली यमुनाजीके दर्शन कराये । फिर पवित्र गङ्गाजीके दर्शन किये । श्रीरामजीने कहा—हे सीते ! प्रणाम करो ॥ ३ ॥

तीर्थपति पुनि देखु प्रयागा । निरखत जन्म कोटि अघ भागा ॥

देखु परम पावनि पुनि बेनी । हरनि सोक हरिलोक निसेनी ॥ ४ ॥

पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि । त्रिविध ताप भवरोग नसावनि ॥ ५ ॥

फिर तीर्थराज प्रयागको देखो, जिसके दर्शनसे ही करोड़ों जन्मोंके पाप भाग जाते हैं । फिर परम पवित्र त्रिवेणीजीके दर्शन करो, जो शोकोंको हरनेवाली और श्रीहरिके परमधाम पहुँचनेके लिये सीढ़ीके समान है । फिर अत्यन्त पवित्र अयोध्यापुरीके दर्शन करो, जो तीनों प्रकारके तापों और भवरोगका नाश करनेवाली है ॥ ४-५ ॥

दो०—सीता सहित अवध कहँ कीन्ह कृपाल प्रनाम ।

सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम ॥ १२० (क) ॥

यों कहकर कृपाश्रु श्रीरामजीने सीताजीसहित अवधपुरीको प्रणाम किया। सजलनेत्र और पुलकितशरीर होकर श्रीरामजी बार-बार हर्षित हो रहे हैं ॥ १२० (क) ॥

पुनि प्रभु आइ त्रिवेनीं हरषित मञ्जु कीन्ह ।

कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहूँ दान विविध बिधि दीन्ह ॥ १२० (ख) ॥

फिर त्रिवेणीमें आकर प्रभुने हर्षित होकर स्नान किया और वानरोंसहित ब्राह्मणोंको अनेकों प्रकारके दान दिये ॥ १२० (ख) ॥

चौ०—प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई । धरि बडुरूप अवधपुर जाई ॥

भरतहि कुशल हमारि सुनाएहु । समाचार लै तुम्ह चलि आएहु ॥ १ ॥

तदनन्तर प्रभुने हनुमानजीको समझाकर कहा—तुम ब्रह्मचारीका रूप धरकर अवधपुरीको जाओ। भरतको हमारा कुशल सुनाना और उनका समाचार लेकर चले आना ॥ १ ॥

तुरत पवनसुत गवनत भयऊ । तब प्रभु भरद्वाज पहिं गयऊ ॥

नाना बिधि मुनि पूजा कीन्ही । अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही ॥ २ ॥

पवनपुत्र हनुमानजी तुरंत ही चल दिये। तब प्रभु भरद्वाजजीके पास गये। मुनिने शृङ्खुद्विसे उनकी अनेकों प्रकारसे पूजा की और स्तुति की, और फिर लीलाकी दृष्टिसे आशीर्वाद दिया ॥ २ ॥

मुनिपद बंदि जुगल कर जोरी । चढ़ि विमान प्रभु चले बहोरी ॥

इहाँ निषाद सुना प्रभु आए । नाव नाव कहूँ लोग बोलाए ॥ ३ ॥

दोनों हाथ जोड़कर तथा मुनिके चरणोंकी वन्दना करके प्रभु विमानपर चढ़कर फिर चले। यहाँ जब निषादराजने सुना कि प्रभु आ गये, तब उसने 'नाव कहाँ है? नाव कहाँ है?' पुकारते हुए लोगोंको बुलाया ॥ ३ ॥

सुरसरि नाधि जान तब आयो । उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो ॥

तब सीताँ पूजी सुरसरी । बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी ॥ ४ ॥

इतनेमें ही विमान गङ्गाजीको लॉघकर इस पार आ गया और प्रभुकी आज्ञा पाकर वह किनारेपर उतरा। तब सीताजी बहुत प्रकारसे गङ्गाजीकी पूजा करके फिर उनके चरणोंपर गिरी ॥ ४ ॥

दीन्ह असीस हरषि मन गंगा । सुंदरि तब अहिवात अभंगा ॥

सुनत गुहा धायउ प्रेमाकुल । आयउ निकट परम सुख संकुल ॥ ५ ॥

गङ्गाजीने मनमें हर्षित होकर आशीर्वाद दिया—हे सुन्दरी! तुम्हारा सुहाग अखण्ड हो। भगवान्‌के तटपर उतरनेकी बात सुनने ही निषादराज गुह प्रेममें विह्वल होकर दौड़ा। परम सुखसे परिपूर्ण होकर वह प्रभुके समीप आया, ॥ ५ ॥

प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही । परेउ अवनि तन सुधि नहिं तेही ॥

प्रीति परम बिलोकि रघुराई । हरषि उठाइ लियो उर लाई ॥ ६ ॥

और प्रभुको श्रीजानकीजीसहित देखकर वह आनन्द-समाधिमें मग्न होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा, उसे शरीरकी सुधि नहीं रही। श्रीरघुनाथजीने उसका परम प्रेम देखकर उसे उठाकर हर्षके साथ हृदयसे लगा लिया ॥ ६ ॥

छं०—लियो हृदयँ लाइ कृपानिधान सुजान रायँ रमापती ।
बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर वीनती ॥
अब कुसल पद पंकज बिलोकि बिरंचि संकर सेव्य जे ।
सुखधाम पूरनकाम राम नमामि राम नमामि ते ॥ १ ॥

सुजानोंके राजा (शिरोमणि), लक्ष्मीकान्त, कृपानिधान भगवान् ने उसको हृदयसे लगा लिया और अत्यन्त निकट बैठकर कुशल पूछा । वह विनती करने लगा—आपके जो चरणकमल ब्रह्मानी और शङ्करजीसे सेवित हैं, उनके दर्शन करके मैं अब सकुशल हूँ । हे सुखधाम ! हे पूर्णकाम श्रीरामजी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो ।
मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोह बस बिसराइयो ॥
यह रावनारि चरित्र पावन रामपद रतिप्रद सदा ।
कामादिहर विग्यानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा ॥ २ ॥

सब प्रकारसे नीच उस निषादको भगवान् ने भरतजीकी भाँति हृदयसे लगा लिया । तुलसीदासजी कहते हैं—इस मन्दबुद्धिने (मैंने) मोहवश उस प्रभुको भुला दिया ! रावणके शत्रुका यह पवित्र करनेवाला परमपवित्र चरित्र सदा ही श्रीरामजीके चरणोंमें प्रीति देनेवाला है । यह कामादि विकारोंका हरनेवाला और भगवान् के स्वरूपका विशेष ज्ञान उत्पन्न करनेवाला है । देवता, सिद्ध और मुनि आनन्दित होकर इसे गाते हैं ॥ २ ॥

दो०—समर विजय रघुवीर के चरित जे सुनहिं सुजान ।

त्रिजय विवेक विभूति नित तिन्हहि देहिं भगवान ॥ १२१ (क) ॥

जो सुजान लोग श्रीरघुवीरकी समरविजयसम्बन्धी लीलाको सुनते हैं, उनको भगवान् नित्य विजय, विवेक और विभूति (ऐश्वर्य) देते हैं ॥ १२१ (क) ॥

यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु विचार ।

श्रीरघुनाथ नाम तजि नाहिंन आन अधार ॥ १२१ (ख) ॥

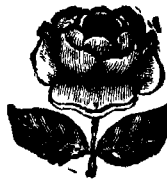
अरे मन ! विचार करके देख ! यह कलिकाल पापोंका घर है । इसमें श्रीरघुनाथजीके नामको छोड़कर पापोंसे बचनेके लिये दूसरा कोई आधार नहीं है ॥ १२१ (ख) ॥

मासपारायण सत्ताईसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने पष्ठः सोपानः समाप्तः ।

कलिके समस्त पापोंका नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह छठा सोपान समाप्त हुआ ।

(लङ्काकाण्ड समाप्त)



श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

सप्तम सोपान

(उत्तरकाण्ड)

श्लोक

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम् ।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीढ्यं जानकीशं रघुधरमनिशं पुष्पकारुढरामम् ॥ १ ॥

मोरके कण्ठकी आभाके समान (हरिताभ) नीलवर्ण, देवताओंमें श्रेष्ठ, ब्राह्मण (भृगुजी) के चरणकमलके चिह्नसे सुशोभित, शोभासे पूर्ण, पीताम्बरधारी, कमलनेत्र, सदा परम प्रसन्न, हाथोंमें बाण और धनुष धारण किये हुए, वानरसमूहसे युक्त, भाई लक्ष्मणजीसे सेवित, स्तुति किये जाने योग्य, श्रीजानकीजीके पति, रघुकुलश्रेष्ठ, पुष्पकविमानपर सवार श्रीरामचन्द्रजीको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

कोसलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ ॥ २ ॥

कोसलपुरीके श्रेष्ठ स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर और कोमल दोनों चरणकमल ब्रह्माजी और शिवजीके द्वारा वन्दित हैं, श्रीजानकीजीके करकमलोंसे दुलराये हुए हैं और चिन्तन करनेवालेके मनरूपी भौरेके नित्य संगी हैं अर्थात् चिन्तन करनेवालोंका मनरूपी भ्रमर सदा उन चरणकमलोंमें लगा रहता है ॥ २ ॥

कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम् ।
कारुणीककलकञ्जलोचनं नौमि शङ्करमनङ्गमोचनम् ॥ ३ ॥

कुन्दके फूल, चन्द्रमा और शंखके समान सुन्दर गौरवर्ण, जगज्जननी श्रीपार्वतीजीके पति, वाञ्छित फलके देनेवाले, दुखियोंपर सदा दया करनेवाले, सुन्दर कमलके समान नेत्रवाले, कामदेवसे छुड़ानेवाले, कल्याणकारी श्रीशङ्करजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

दो०—रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग ।

जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृततन रामवियोग ॥

श्रीरामजीके लौटनेकी अवधिका एक ही दिन बाकी रह गया है, अतएव नगरके लोग बहुत आतुर (अधीर) हो रहे हैं । रामके वियोगमें दुबले हुए स्त्री-पुरुष जहाँ-तहाँ सोच (विचार) कर रहे हैं [कि क्या बात है, श्रीरामजी क्यों नहीं आये] ॥

॥ राम शिव विष्णु अविनाशि । सर्वं रक्षितं सर्व उरु परं वासि ॥



॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

— श्री गुरुभ्यो नमः

सगुन होहिं सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर ।

प्रभु आगवन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर ॥

इतनेमें ही सब सुन्दर शकुन होने लगे, यह देखकर सबके मन प्रसन्न हो गये । नगर चारों ओरसे रमणीक हो गया । मानो ये सब-के-सब चिह्न प्रभुके आगमनको जना रहे हैं ॥

कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ ।

आयउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोइ ॥

कौसल्या आदि सब माताओंके मनमें ऐसा आनन्द हो रहा है, जैसे अभी कोई कहना ही चाहता है कि सीताजी और लक्ष्मणजीसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी आ गये ॥

भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार ।

जानि सगुन मन हरष अति लागे करन विचार ॥

भरतजीकी दाहिनी आँख और दाहिनी भुजा बार-बार फड़क रही हैं । इसे शुभ शकुन जानकर उनके मनमें अत्यन्त हर्ष हुआ और वे विचार करने लगे—॥

चौ०—रहेउ एक दिन अवधि अधारा । समुझत मन दुख भयउ अपारा ॥

कारन कवन नाथ नहिं आयउ । जानि कुटिल किछौ मोहि बिसरायउ ॥ १ ॥

प्राणोंकी आधाररूप अवधिका एक ही दिन शेष रह गया । यह समझकर भरतजीके मनमें अपार दुःख हुआ । किस कारणसे नाथ नहीं आये ? प्रभुने मुझे कुटिल जानकर कहीं भुला तो नहीं दिया ? ॥ १ ॥

अहह धन्य लछिमन बड़भागी । राम पदारविंदु अनुरागी ॥

कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा । ताते नाथ संग नहिं लीन्हा ॥ २ ॥

अहाहा ! लक्ष्मण बड़े धन्य एवं बड़भागी हैं, जो श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दके प्रेमी हैं (अर्थात् उनसे अलग नहीं हुए) मुझे तो प्रभुने कपटी और कुटिल पहचान लिया, इसीसे नाथने मुझे साथ नहीं लिया ! ॥ २ ॥

जौ करनी समुझै प्रभु मोरी । नहिं निस्तार कलप सत कोरी ॥

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ । दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ ॥ ३ ॥

बात भी ठीक ही है, क्योंकि यदि प्रभु मेरी करनीपर ध्यान दें, तो सौ करोड़ (असंख्य) कल्पोंतक भी मेरा निस्तार (छुटकारा) नहीं हो सकता । परन्तु आशा इतनी ही है कि प्रभु सेवकका अवगुण कभी नहीं मानते । वे दीनबन्धु हैं और अत्यन्त ही कोमल स्वभावके हैं ॥ ३ ॥

मोरे जियँ भरोस दड़ सोई । मिलिदहिं राम सगुन सुभ होई ॥

बीतै अवधि रहहिं जौ प्राणा । अधम कवन जग मोहि समाना ॥ ४ ॥

अतएव मेरे हृदयमें ऐसा पक्का भरोसा है कि श्रीरामजी अवश्य मिलेंगे, क्योंकि मुझे शकुन बड़े शुभ हो रहे हैं । किन्तु अवधि बीत जानेपर यदि मेरे प्राण रह गये, तो जगत्में मेरे समान नीच कौन होगा ? ॥ ४ ॥

दो०—राम बिरह सागर महुँ भरत मगन मन होत ।

विप्ररूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत ॥ १ (क) ॥

श्रीरामजीके विरह-समुद्रमें भरतजीका मन डूब रहा था, उसी समय पवनपुत्र हनुमान्जी ब्राह्मणका रूप धरकर आ गये, मानो डूबते हुएको बचानेके लिये नाव आ गयी हो ॥ १ (क) ॥

बैठे देखि कुसासन जटामुकुट कृसगात ।

राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात ॥ १ (ख) ॥

हनुमान्जीने दुर्बलशरीर भरतजीको जटाओंका मुकुट बनाये, राम ! राम ! रघुपति ! जपते, और कमलके समान नेत्रोंसे [प्रेमाश्रुओंका] जल बहाते कुशके आसनपर बैठे देखा ॥ १ (ख) ॥

चौ०—देखत हनुमान अति हरषेउ । पुलक गात लोचन जल बरषेउ ॥

मन महीं बहुत भाँति सुख मानी । बोलेउ भवन सुधा सम बानी ॥ १ ॥

उन्हें देखते ही हनुमान्जी अत्यन्त हर्षित हुए । उनका शरीर पुलकित हो गया, नेत्रोंसे [प्रेमाश्रुओंका] जल बरसने लगा । मनमें बहुत प्रकारसे सुख मानकर वे कानोंके लिये अमृतके समान वाणी बोले—॥ १ ॥

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती । रटहु निरन्तर गुन गन पाँती ॥

रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता । मायउ कुसल देव मुनि ज्ञाता ॥ २ ॥

जिनके विरहमें आप दिन-रात सोच करते (धुलते) रहते हैं, और जिनके गुणसमूहोंकी प्रशंशायोंको आप निरन्तर रटते रहते हैं, वे ही रघुकुलके तिलक, सजनोंको सुख देनेवाले और देवताओं तथा मुनियोंके रक्षक भीरामजी सकुशल आ गये ॥ २ ॥

रिपु रन जोति सुजस सुर गावत । सीता सहित अनुज प्रभु आवत ॥

सुनत वचन बिसरे सब दूखा । तृषावंत जिमि पाइ पियूषा ॥ ३ ॥

शत्रुको रणमें जीतकर सीताजी और लक्ष्मणजीसहित प्रभु आ रहे हैं; देवता उनका सुन्दर यश गा रहे हैं । ये वचन सुनते ही भरतजीके सारे दुःख भूल गये; जैसे प्यासा आदमी अमृत पाकर प्यासके दुःखको भूल जाय ॥ ३ ॥

को तुम्ह तात कहाँ ते आप । मोहि परमप्रिय वचन सुनाए ॥

मारुतसुत मैं कपि हनुमाना । नामु मोर सुनु कृपानिधाना ॥ ४ ॥

[भरतजीने पूछा—] हे तात ! तुम कौन हो ? और कहाँसे आये हो ? तुमने मुझको परम प्रिय (अत्यन्त आनन्द देनेवाले) वचन सुनाये हैं । हनुमान्जीने कहा—हे कृपानिधान ! सुनिये, मैं पवनका पुत्र और जातिका वानर हूँ । मेरा नाम हनुमान् है ॥ ४ ॥

दीनबन्धु रघुपति कर किंकर । सुनत भरत भेंटउ उठि सादर ॥

मिलत प्रेम नहिं हृदयँ समाता । नयन स्रवत जल पुलकित गाता ॥ ५ ॥

मैं दीनबन्धु श्रीरघुनाथजीका दास हूँ । यह सुनते ही भरतजी उठकर आदरपूर्वक हनुमान्जीसे गले लगाकर मिले । मिलते समय प्रेम हृदयमें नहीं समाता । नेत्रोंसे [आनन्द और प्रेमके आँसुओंका] जल बहने लगा । और शरीर पुलकित हो गया ॥ ५ ॥

कपि तव दरस सकल दुख बीते । मिले आजु मोहि राम पिरिते ॥

बार बार वृष्टी कुसलाता । तो कहूँ देउँ काह सुनु भ्राता ॥ ६ ॥

[भरतजीने कहा—] हे हनुमान् ! तुम्हारे दर्शनसे मेरे समस्त दुःख समाप्त हो गये (दुःखोंका अन्त हो गया) । तुम्हारे रूपमें आज मुझको प्यारे रामजी ही मिल गये । भरतजीने बार-बार कुशल पूछी । [और कहा—] हे भाई ! इस शुभ अवसरके बदलेमें क्या दूँ ? ॥ ६ ॥

पहि संदेस सरिस जग माहीं । करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं ॥

नाहिन तात उरिन मैं तोही । अब प्रभु चरित सुनावहु मोही ॥ ७ ॥

इस सन्देशके समान (इसके बदलेमें देनेलायक पदार्थ) जगत्में कुछ भी नहीं है, मैंने यह विचारकर देख लिया है। इसलिये हे तात ! मैं तुमसे किसी प्रकार भी उक्कण नहीं हो सकता। अब मुझे प्रभुका चरित्र (वृत्तान्त) सुनाओ ॥ ७ ॥

तब हनुमंत नाह पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा ॥

कहु कपि कबहुँ कृपाल गोसाईं। सुमिरहिं मोहि दास की नाई ॥ ८ ॥

तब हनुमान्जीने भरतजीके चरणोंमें मस्तक नवाकर श्रीरघुनाथजीकी सारी गुण-गाथा कही। [भरतजीने पूछा—] हे हनुमान् ! कहो, कृपाल स्वामी कभी मुझे अपने दासकी तरह याद भी करते हैं ? ॥ ८ ॥

छं०—निज दास ज्यों रघुवंसभूषण कबहुँ मम सुमिरन करयो।

सुनि भरत वचन बिनीत अति कपि पुलकि तन चरनन्हि पश्यो ॥

रघुबीर निज मुख जासु गुनगन कहत अग जग नाथ जो।

काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन सिंधु सो ॥

रघुवंशके भूषण श्रीरामजीने क्या कभी अपने दासकी भाँति मेरा स्मरण किया था ? भरतजीके अत्यन्त नम्र वचन सुनकर हनुमान्जी पुलकितशरीर होकर उनके चरणोंपर गिर पड़े। [और मनमें विचारने लगे कि] जो चराचरके स्वामी हैं वे रघुनाथजी अपने श्रीमुखसे जिनके गुणसमूहोंका वर्णन करते हैं, वे भरतजी ऐसे बिनम्र, परम पवित्र और सद्गुणोंके समुद्र क्यों न हों ? ॥

दो०—राम प्रानप्रिय नाथ तुम्ह सत्य वचन मम तात।

पुनि पुनि मिलत भरत सुनि हरष न हृदयँ समात ॥ २ (क) ॥

[हनुमान्जीने कहा—] हे नाथ ! आप श्रीरामजीको प्राणोंके समान प्रिय हैं। हे तात ! मेरा वचन सत्य है। यह सुनकर भरतजी बार बार मिलते हैं, हृदयमें हर्ष समाता नहीं ॥ २ (क) ॥

सो०—भरत चरन सिरु नाइ तुरित गयउ कपि राम पहिं।

कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि ॥ २ (ख) ॥

फिर भरतजीके चरणोंमें सिर नवाकर हनुमान्जी तुरन्त ही श्रीरामजीके पास गये। और जाकर उन्होंने सब कुशल कही। तब प्रभु हर्षित होकर विमानपर चढ़कर चले ॥ २ (ख) ॥

चौ०—हरषि भरत कोसलपुर आप। समाचार सब गुरहि सुनाए ॥

पुनि मंदिर महुँ वात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई ॥ १ ॥

इधर भरतजी भी हर्षित होकर अयोध्यापुरीमें आये। और उन्होंने गुरुजीको सब समाचार सुनाया। फिर राजमहलमें खबर जनायी कि श्रीरघुनाथजी कुशलपूर्वक नगरको आ रहे हैं ॥ १ ॥

सुनत सकल जननीं उठि धाई। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाई ॥

समाचार पुरवासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए ॥ २ ॥

खबर सुनते ही सब माताएँ उठ दौड़ीं। भरतजीने प्रभुकी कुशल कहकर सबको समझाया। नगर-निवासियोंने यह समाचार पाये, तो स्त्री-पुरुष सभी हर्षित होकर दौड़े ॥ २ ॥

दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मंगल मूला ॥

भरि भरि हेमथार भामिनी। गावत चलिं सिंधुर गामिनी ॥ ३ ॥

श्रीरामजीके स्वागतके लिये दही, दूध, गोरोचन, फल, फूल और मङ्गलके मूल नवीन तुलसीदल आदि वस्तुएँ सोनेके थालोंमें भर-भरकर हथिनोकी-सी चालवाली सौभाग्यवती स्त्रियाँ उन्हें लेकर गाती हुई चलीं ॥ ३ ॥

जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं । बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं ॥

एक एकन्ह कहँ बृद्धहिं भाई । तुम्ह देखे दयाल रघुराई ॥ ४ ॥

जो जैसे हैं (जहाँ जिस दशमें हैं) वे वैसे ही (वहींसे उसी दशमें) उठ दौड़ते हैं । [देर हो जानेके डरसे] बालकों और बूढ़ोंको कोई साथ नहीं लाते । एक दूसरेसे पूछते हैं—भाई ! तुमने दयालु श्रीरघुनाथजीको देखा है ? ॥ ४ ॥

अवधपुरी प्रभु आवत जानी । भाई सकल सोभा कै खानी ॥

बहइ सुहावन त्रिविध समोरा । भर सरज अति निर्मल नीरा ॥ ५ ॥

प्रभुको आते जानकर अवधपुरी सम्पूर्ण शोभाओंकी खान हो गयी । तीनों प्रकारकी सुन्दर वायु बहने लगी । सरयूजी अति निर्मल जलवाली हो गयीं (अर्थात् सरयूजीका जल अत्यन्त निर्मल हो गया) ॥ ५ ॥

दो०—हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृन्द समेत ।

चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपानिकेत ॥ ३ (क) ॥

गुरु वशिष्ठजी, कुटुम्बी, छोटे भाई शत्रुघ्न तथा ब्राह्मणोंके समूहके साथ हर्षित होकर भरतजी अत्यन्त प्रेमपूर्ण मनसे कृपाधाम श्रीरामजीके सामने (अर्थात् उनकी अगवानीके लिये) चले ॥ ३ (क) ॥

बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान ।

देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान ॥ ३ (ख) ॥

बहुत-सी स्त्रियाँ अटारियोंपर चढ़ीं आकाशमें विमान देख रही हैं । और उसे देखकर हर्षित होकर मीठे स्वरसे सुन्दर मङ्गलगीत गा रही हैं ॥ ३ (ख) ॥

राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान ।

बढ़यो कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान ॥ ३ (ग) ॥

श्रीरघुनाथजी पूर्णिमाके चन्द्रमा हैं, तथा अवधपुर समुद्र है, जो उस पूर्णचन्द्रको देखकर हर्षित हो रहा है और शोर करता हुआ बढ़ रहा है । इधर-उधर दौड़ती हुई स्त्रियाँ उसकी तरंगोंके समान लगाती हैं ॥ ३ (ग) ॥

चौ०—इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर । कपिन्ह देखावत नगर मनोहर ॥

सुनु कपीस अंगद लंकेसा । पावन पुरी रुचिर यह देसा ॥ १ ॥

यहाँ (विमानपरसे) सूर्यकुलरूपी कमलके प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य श्रीरामजी वानरोंको मनोहर नगर दिखला रहे हैं । वे कहते हैं—हे सुग्रीव ! हे अङ्गद ! हे लङ्कापति बिभीषण ! सुनो । यह पुरी पवित्र है और यह देश सुन्दर है ॥ १ ॥

जद्यपि सद्य बैकुण्ठ बखाना । वेद पुरान बिदित जगु जाना ॥

अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ । यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ॥ २ ॥

यद्यपि सबने वैकुण्ठकी बड़ाई की है, यह वेद-पुराणोंमें प्रसिद्ध है और जगत् जानता है । परन्तु अवधपुरीके समान सुखे वह भी प्रिय नहीं है । यह बात (भेद) कोई-कोई (विरले ही) जानते हैं ॥ २ ॥

कल्याण

(१) अयोध्यामें उत्साह



जो जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं ।
बाल वृद्ध कहैं संग न लावहिं ॥

[पृष्ठ ७७६]

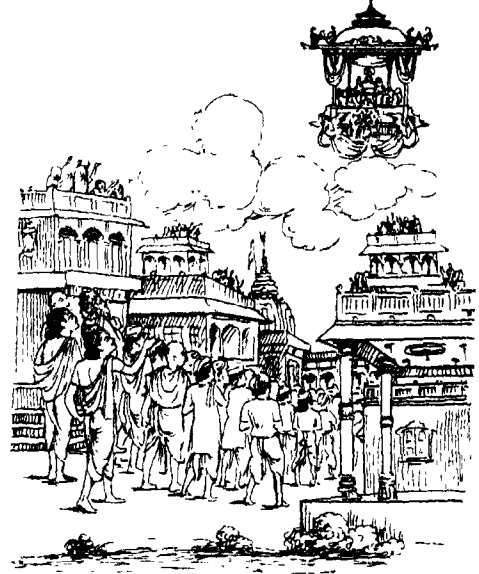
(३) गुरु-वन्दन



घाइ धरे गुर चरन सरोरुह ।
अनुज सहित अति पुलक तनोरुह ॥

[पृष्ठ ७७७]

(२) आनन्दकी बाढ़



बहुतक चढ़ी अटारिन्ह निरखहिं गगन विमान ।
देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान ॥

[पृष्ठ ७७६]

(४) प्रभुका ऐश्वर्य



अमित रूप प्रगटे तेहि काल ।
जथाजोग मिले सबहि कृपाल ॥

[पृष्ठ ७७९]

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि । उत्तर दिसि बह सरज पावनि ॥

जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा । मम समीप नर पावहिं बासा ॥ ३ ॥

यह सुहावनी पुरी मेरी जन्मभूमि है । इसके उत्तर दिशामें जीवोंको पवित्र करनेवाली सरयू नदी बहती है, जिसमें स्नान करनेसे मनुष्य विना ही परिश्रम मेरे समीप निवास (सामीप्य मुक्ति) पा जाते हैं ॥ ३ ॥

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी । मम धामदा पुरी सुखरासी ॥

हरषे सब कपि सुनि प्रभुवानी । धन्य अवध जो राम वखानी ॥ ४ ॥

यहाँके निवासी मुझे बहुत ही प्रिय हैं । यह पुरी सुखकी राशि और मेरे परमधामको देनेवाली है । प्रभुकी वाणी सुनकर सब वानर हर्षित हुए [और कहने लगे] कि जिस अवधकी स्वयं श्रीरामजीने बड़ाई की, वह अवश्य ही धन्य है ॥ ४ ॥

दो०—आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान ।

नगर निकट प्रभु प्रेरैउ उतरेउ भूमि विमान ॥ ४ (क) ॥

कृपासागर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने सब लोगोंको आते देखा, तो प्रभुने विमानको नगरके समीप उतरनेकी प्रेरणा की । तब वह पृथ्वीपर उतरा ॥ ४ (क) ॥

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु ।

प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु ॥ ४ (ख) ॥

विमानसे उतरकर प्रभुने पुष्पक विमानसे कहा कि तुम अब कुबेरके पास जाओ । श्रीरामजीकी प्रेरणासे वह चला; उसे [अपने स्वामीके पास जानेका] हर्ष है, और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीसे अलग होनेका अत्यन्त दुःख भी ॥ ४ (ख) ॥

चो०—आए भरत संग सब लोग । कृततन श्रीरघुवीर वियोगा ॥

वामदेव बसिष्ट मुनि नायक । देखे प्रभु महि धरि धनु सायक ॥ १ ॥

भरतजीके साथ सब लोग आये । श्रीरघुवीरके वियोगसे सबके शरीर दुबले हो रहे हैं । प्रभुने वामदेव, वशिष्ठ आदि मुनिश्रेष्ठोंको देखा, तो उन्होंने धनुष-बाण पृथ्वीपर रखकर—॥ १ ॥

धाइ धरे गुर चरन सरोरुह । अनुज सहित अति पुलक तनोरुह ॥

भेंटि कुसल बूझी मुनिराया । हमरें कुसल तुम्हारिहिं दायी ॥ २ ॥

छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित दौड़कर गुरुजीके चरणकमल पकड़ लिये ! उनके रोम-रोम अत्यन्त पुलकित हो रहे हैं । मुनिराज वशिष्ठजीने उठाकर उन्हें गले लगाकर कुशल पूछी । प्रभुने कहा—आपहीकी दयामें हमारी कुशल है ॥ २ ॥

सकल द्विजन्ह मिलि नाथउ माथा । धर्म धुरंधर रघुकुल नाथा ॥

गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज । नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज ॥ ३ ॥

धर्मकी धुरी धारण करनेवाले रघुवंशनाथ श्रीरामजीने सब ब्राह्मणोंसे मिलकर उन्हें मस्तक नवाया । फिर भरतजीने प्रभुके वे चरणकमल पकड़े, जिन्हें देवता, मुनि, शङ्करजी और ब्रह्माजी भी नमस्कार करते हैं ॥ ३ ॥

परे भूमि नहिं उठत उठाए । बर करि कृपासिंधु उर लाए ॥

स्यामल गात रोम भए ठाढ़े । नव राजीव नयन जल बाढ़े ॥ ४ ॥

भरतजी पृथ्वीपर पड़े हैं, उठाये उठते नहीं! तब कृपासिन्धु श्रीरामजीने उन्हें जबर्दस्ती उठाकर हृदयसे लगा लिया। सँवले शरीरपर रोएँ खड़े हो गये। नवीन कमलके समान नेत्रोंमें [प्रेमाभुओंके] जलकी बाढ़ आ गयी ॥ ४ ॥

छं०—राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी ।
अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुवन धनी ॥
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही ।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुपमा लही ॥ १ ॥

कमलके समान नेत्रोंसे जल बह रहा है। सुन्दर शरीरमें सुन्दर पुलकावली छा रही है। त्रिलोकीके स्वामी प्रभु श्रीरामजी छोटे भाई भरतजीको अत्यन्त प्रेमसे हृदयसे लगाकर मिले। भाईसे मिलते समय प्रभु जैसे शोभित हो रहे हैं उसकी उपमा मुझसे कही नहीं जाती। मानो प्रेम और शृंगार शरीर धारण करके मिले और श्रेष्ठ शोभाको प्राप्त हुए ॥ १ ॥

बृहत् कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई ।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई ॥
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो ।
बृहत् बिरह वारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो ॥ २ ॥

कृपानिधान श्रीरामजी भरतजीसे कुशल पूछते हैं, परन्तु आनन्दवश भरतजीके मुखसे वचन शीघ्र नहीं निकलते। [शिवजीने कहा—] हे पार्वती! सुनो, वह सुख (जो उस समय भरतजीको मिल रहा था) वचन और मनसे परे है। उसे वही जानता है जो उसे पाता है। [भरतजीने कहा—] हे कौसलनाथ! आपने आर्त्त (दुखी) जानकर दासको दर्शन दिये, इसमें अब कुशल है। विग्रहसमुद्रमें डूबते हुए मुझको कृपानिधानने हाथ पकड़कर बचा लिया! ॥ २ ॥

दो०—पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदयँ लगाइ ।
लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दाउ भाइ ॥ ५ ॥

फिर प्रभु हर्षित होकर शत्रुघ्नजीको हृदयसे लगाकर उनमें मिले। तब लक्ष्मणजी और भरतजी दोनों भाई परम प्रेमसे मिले ॥ ५ ॥

चौ०—भरतानुज लछिमन पुनि भेंट । दुसह बिरह संभव दुख भेटे ॥
सीता चरन भरत सिर नावा । अनुज समेत परम सुख पावा ॥ १ ॥

फिर लक्ष्मणजी शत्रुघ्नजी गले लगाकर मिले और इस प्रकार विग्रहमें उत्पन्न दुःख दुःखका नाश किया। फिर भाई शत्रुघ्नजीसहित भरतजीने सीताजीके चरणोंमें सिर नवाया और परम सुख प्राप्त किया ॥ १ ॥

प्रभु बिलोकि हरपे पुरवाम्नी । जनित वियोग त्रिपति सब नासी ॥
प्रेमातुर सब लोग निहारी । कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी ॥ २ ॥

प्रभुको देखकर अयोध्यावासी सब हर्षित हुए। वियोगमें उत्पन्न सब दुःख नष्ट हो गये। सब लोगोंको प्रेमविह्वल [और मिलनेके लिये अत्यन्त आतुर] देखकर, स्वयंके शत्रु कृपाल श्रीरामजीने एक चमत्कार किया ॥ २ ॥

अमित रूप प्रगटे तेहि काला । जथाजोग मिले सयहि कृपाला ॥

कृपादृष्टि रघुवीर बिलोकी । किए सकल नर नारि बिसोकी ॥ ३ ॥

उसी समय कृपालु भीरामजी असंख्य रूपोंमें प्रकट हो गये और सबसे एक ही साथ यथायोग्य मिले । भीरुवीरने कृपादृष्टिसे देखकर सब नर-नारियोंको शोकसे रहित कर दिया ॥ ३ ॥

छन महिं सयहि मिले भगवाना । उमा मरम यह काहुँ न जाना ॥

एहि बिधि सयहि सुखी करि रामा । आगे चले सील गुन धामा ॥ ४ ॥

भगवान् क्षणमात्रमें सबसे मिल लिये । हे उमा ! यह रहस्य किसीने नहीं जाना । इस प्रकार शील और गुणोंके धाम श्रीरामजी सबको सुखी करके आगे चले ॥ ४ ॥

कौसल्यादि मातु सब धाई । निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई ॥ ५ ॥

कौसल्या आदि माताएँ ऐसे दौड़ीं मानो नयी न्यायी हुई गोएँ अपने बछड़ांको देखकर दौड़ी हों ॥ ५ ॥

छं०—जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन वन परवस गई ।

दिन अंत पुर रुख स्रवत धन हुंकार करि धावत भई ॥

अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटी वचन मृदु बहुबिधि कहे ।

गइ बिषम विपति बियोगभव तिन्ह हरप सुख अगणित लहे ॥

मानो नयी न्यायी हुई गोएँ अपने छोटे बछड़ांको वरपर छोड़ परवस होकर वनमें चरने गयी हो, और दिनके अन्त होनेपर बछड़ांसे मिलनेके लिये हुंकार करके धनसे दूध गिराती हुई नगरीकी ओर दौड़ी हों । प्रभुने अत्यन्त प्रेमसे सब माताओंसे मिलकर उनसे बहुत प्रकारसे कोमल वचन कहे । वियोगसे उत्पन्न भयानक विपत्ति दूर हो गयी और सबने भगवान्से मिलकर और उनके वचन सुनकर अगणित सुख और हर्ष प्राप्त किये ।

दो०—मेरेउ तनय मुमित्राँ राम चान रति जानि ।

रामहि मिलत कैकई हृदयँ बहुत सकुचानि ॥ ६ (क) ॥

मुमित्राजी अपने पुत्र लक्ष्मणजीकी श्रीरामजीके चरणोंमें प्रीति जानकर उनसे मिली । श्रीरामजीसे मिलते समय कैकेयीजी हृदयमें बहुत सकुचायी ॥ ६ (क) ॥

लल्लिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आपिष पाइ ।

कैकई कहँ पुनि पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ ॥ ६ (ख) ॥

लक्ष्मणजी भी सब माताओंसे मिलकर और आशावादी पाकर हर्षित हुए । वे कैकेयीजीसे बार-बार मिले, परन्तु उनके मनका शोभ नहीं जाता ॥ ६ (ख) ॥

चो०—सामुन्ह सयनि मिली बैदेही । चरनन्हि लागि हरषु अति तेही ॥

देहि असीस बूझि कुसलाता । होइ अचल तुम्हार अहिवाता ॥ १ ॥

जानकीजी सब सामुओंसे मिली । और उनके चरणों लगकर उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ । सामुएँ कुशल पूछकर आशिष दे रही हैं कि तुम्हारा सुहाग अचल हो ॥ १ ॥

सब रघुपति मुखकमल बिलोकहिं । मंगल जानि नयनजल रोकहिं ॥

कनकथार आरती उतारहिं । बार बार प्रभुगात निहारहिं ॥ २ ॥

सब माताएँ श्रीरघुनाथजीका मुखकमल देख रही हैं। नेत्रोंसे प्रेमके आँसू उमड़ आते हैं, परन्तु मङ्गलका समय जानकर वे आँसुओंके जलको नेत्रोंमें ही रोक रखती हैं। सोनेके थालसे आरती उतारती हैं और बार-बार प्रभुके श्रीअंगोंकी ओर देखती हैं ॥ २ ॥

नाना भाँति निछावरि करहीं। परमानंद हरष उर भरहीं ॥

कौसल्या पुनि पुनि रघुवीरहि। चितवति कृपासिंधु रनधीरहि ॥ ३ ॥

अनेकों प्रकारसे निछावरें करती हैं और हृदयमें परमानन्द तथा हर्ष भर रही हैं। कौसल्याजी बार-बार कृपाके समुद्र और रणधीर श्रीरघुवीरको देख रही हैं ॥ ३ ॥

हृदयँ विचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा ॥

अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे ॥ ४ ॥

वे बार-बार हृदयमें विचारती हैं कि इन्होंने लङ्कापति रावणको कैसे मारा ! मेरे ये दोनो बच्चे बड़े ही सुकुमार हैं, और राक्षस तो बड़े भारी योद्धा और महान् बली थे ॥ ४ ॥

दो०—लङ्घिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकति मातु ।

परमानंद मगन मन पुनि पुनि पुलकित गातु ॥ ७ ॥

लक्ष्मणजी और सीताजीसहित प्रभु भीरामचन्द्रजीको माता देख रही हैं ! उनका मन परमानन्दमें मग्न है, और शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है ॥ ७ ॥

चौ०—लंकापति कपीस नल नीला। जामवंत अंगद सुभसीला ॥

हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा ॥ १ ॥

लङ्कापति बिभीषण, बानरराज सुग्रीव, नल, नील, जाम्बवान् और अङ्गद तथा हनुमान्जी आदि सभी उत्तम स्वभाववाले वीर बानरोंने मनुष्योंके मनोहर शरीर धारण कर लिये ॥ १ ॥

भरत सनेह सील व्रत नेमा। सादर सब वरनहिं अनि प्रेमा ॥

देखि नगर वासिन्ह कै रीती। सकल सराहहिं प्रभु पद प्रीती ॥ २ ॥

वे सब भरतजीके स्नेह, शील, व्रत और नियमोंको अत्यन्त प्रेम्मे आदरपूर्वक बढ़ाई कर रहे हैं। और नगरनिवासियोंकी प्रेम, शील और विनयसे पूर्ण रीति देखकर वे सब प्रभुके चरणोंमें उनके प्रेमकी सराहना कर रहे हैं ॥ २ ॥

पुनि रघुपति सब सखा बोलाए। मुनिपद लागहु सकल सिखाए ॥

गुर वसिष्ठ कुल पूज्य हमारे। इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे ॥ ३ ॥

फिर श्रीरघुनाथजीने सब सखाओंको बुलाया और सबको सिखाया कि मुनिके चरणोंमें लामो। ये गुरु वशिष्ठजी हमारे कुलभरके पूज्य हैं। इन्हींकी कृपासे रणमें राक्षस मारे गये हैं ॥ ३ ॥

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भय समर सागर कहँ बेरे ॥

मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे ॥ ४ ॥

[फिर गुरुजीसे कहा—] हे मुनि ! सुनिये। ये सब मेरे सखा हैं। ये संग्रामरूपी समुद्रमें मेरे लिये वेड़ा (जहाज) रूप हुए ! मेरे हितके लिये इन्होंने अपने जन्मतक हार दिये (अपने जीवनतक न्योछावर कर दिये) ये मुझे भरतसे भी अधिक प्रिय हैं ॥ ४ ॥

कल्याण

(१) माताओंकी वन्दना



अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटौं बचन मृदु बहुविधि कहे ।
[पृष्ठ ७७९]

(२) मंगल-कामना



कनकधार भारती उतारहिं ।
बार बार प्रभुगात निहारहिं ॥
[पृष्ठ ७७९]

(३) राम-सखाओंका गुरु-वन्दन



पुनि रघुपति सब सखा बोलाए ।
मुनिपद लागहु सकल सिखाए ॥
[पृष्ठ ७८०]

(४) रामसखाओंका मातृ-वन्दन



कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नायउ माथ ।
आसिष दीन्ह हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ ॥
[पृष्ठ ७८१]

सुनि प्रभुवचन मगन सथ भय । निमिष निमिष उपजत सुख नय ॥ ५ ॥

प्रभुके वचन सुनकर सब प्रेम और आनन्दमें मग्न हो गये । इस प्रकार पल-पलमें उन्हें नये-नये सुख उत्पन्न हो रहे हैं ॥ ५ ॥

दो०—कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नायउ माथ ।

आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ ॥ ८ (क) ॥

फिर उन लोगोंने कौसल्याजीके चरणोंमें मस्तक नवाये । कौसल्याजीने हर्षित होकर आशिषें दीं [और कहा—] तुम मुझे रघुनाथके समान प्यारे हो ॥ ८ (क) ॥

सुमनवृष्टि नभ संकुल भवन चले सुखकंद ।

चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नगर नारि नर बृंद ॥ ८ (ख) ॥

आनन्दकन्द श्रीरामजी अपने महलको चले । आकाश फूलोंकी वृष्टिसे छा गया । नगरके स्त्री-पुरुषोंके समूह अटारियोंपर चढ़कर उनके दर्शन कर रहे हैं ॥ ८ (ख) ॥

चौ०—कंचन कलस बिचित्र सँवारे । सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे ॥

बंदनवार पताका केतू । सबन्हि बनाए मंगल हेतू ॥ १ ॥

सोनेके कलशोंको विचित्र रीतिसे मणिरत्नादिसे अलंकृत कर और सजाकर सब लोगोंने अपने-अपने दरवाजोंपर रख लिया । सब लोगोंने मङ्गलके लिये बंदनवार, ध्वजा और पताकाएँ लगायीं ॥ १ ॥

बीधी सकल सुगंध सिंचाई । गजमनि रचि बहु चौक पुराई ॥

नाना भाँति सुमंगल साजे । हरषि नगर निसान बहु बाजे ॥ २ ॥

सारी गलियाँ सुगन्धित द्रव्योंसे सिंचायी गयीं । गजमुक्ताओंसे रचकर बहुत-सी चौकें पुरायी गयीं । अनेकों प्रकारके सुन्दर मङ्गल-साज सजाये गये, और हर्षपूर्वक नगरमें बहुत-से ढंके बजने लगे ॥ २ ॥

जहँ तहँ नारि निछावरि करही । देखिं असीस हरष उर भरही ॥

कंचनथार आरती नाना । जुबती सजें करहिं सुभ गाना ॥ ३ ॥

स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ निछावर कर रही हैं, और हृदयमें हर्षित होकर आशीर्वाद देती हैं । बहुत-सी युवती [सौभाग्यवती] स्त्रियाँ सोनेके थालोंमें अनेकों प्रकारकी आरती सजकर मङ्गलगान कर रही हैं ॥ ३ ॥

करहिं आरती आरतिहर कैं । रघुकुल कमल विपिन दिनकर कैं ॥

पुर सोभा संपति कल्याणा । निगम सेष सारदा बखाना ॥ ४ ॥

वे आर्तिहर (दुःखोंको हरनेवाले), और सूर्यकुलरूपी कमलवनके प्रफुल्लित करनेवाले मूर्त्य श्रीरामजीकी आरती कर रही हैं ! नगरकी शोभा, सम्पत्ति और कल्याणका वेद, शेषजी और सरस्वतीजी वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

तेउ यह चरित देखि ठगि रहही । उमा तासु गुन नर किमि कहही ॥ ५ ॥

परन्तु वे भी यह चरित्र देखकर ठगे-से रह जाते हैं । [शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! तब भला मनुष्य उनके गुणोंको कैसे कह सकते हैं ? ॥ ५ ॥

दो०—नारि कुमुदिनी अवध सर रघुपति विरह दिनेष ।

अस्त भएँ बिगसत भई निरखि राम राकेस ॥ ९ (क) ॥

स्त्रियाँ कुमुदिनी हैं, अयोध्या सरोवर है और श्रीरघुनाथजीका विरह सूर्य है [इस विरह-सूर्यके तापसे

वे मुरझा गयी थीं] । अब उस विरहरूपी सूर्यके अस्त होनेपर श्रीरामरूपी पूर्णचन्द्रको निरखकर वे खिल उठी ॥ ९ (क) ॥

होहिं सगुन सुभ बिबिधि बिधि बाजहिं गगन निसान ।

पुर नर नारि सनाथ करि भवन चले भगवान ॥ ९ (ख) ॥

अनेक प्रकारके शुभ शकुन हो रहे हैं; आकाशमें नगाड़े बज रहे हैं । नगरके पुरुषों और स्त्रियोंको सनाथ (कृतार्थ) करके भगवान श्रीरामचन्द्रजी महलको चले ॥ ९ (ख) ॥

चौ०—प्रभु जानी कैकई लजानी । प्रथम तासु गृह गए भवानी ॥

ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा । पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा ॥ १ ॥

[शिवजी कहते हैं] हे भवानी ! प्रभुने जान लिया कि माता कैकेयी लजित हो गयी हैं, इसलिये वे पहले उन्हींको महलको गये और उन्हें ममझा बुझाकर बहुत सुख दिया । फिर श्रीहरिने अपने महलको गमन किया ॥ १ ॥

कृपासिंधु जब मंदिर गए । पुर नर नारि सुखी सब भए ॥

गुर वसिष्ठ द्विज लिए बुलाई । आजु सुघरी सुदिन समुदाई ॥ २ ॥

कृपाके समुद्र श्रीरामजी जब अपने महलको गये, तब नगरके स्त्री-पुरुष सब सुखी हुए । गुरु वशिष्ठजीने ब्राह्मणोंको बुला लिया [और कहा—] आज शुभ घड़ी, सुन्दर दिन आदि सभी शुभ योग हैं ॥ २ ॥

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन । रामचंद्र बैठहिं सिंघासन ॥

मुनि वसिष्ठ के वचन सुहाए । सुनत सकल विप्रन्ह आन भाए ॥ ३ ॥

आप सब ब्राह्मण हर्षित होकर आज्ञा दीजिये, जिसमें श्रीरामचन्द्रजी सिंहासनपर विराजमान हों । वशिष्ठ मुनिके सुहावने वचन सुनते ही सब ब्राह्मणोंको बहुत ही अच्छे लगे ॥ ३ ॥

कहहिं वचन मृदु विप्र अंतका । जग अभिराम राम अभिपेका ॥

अब मुनिवर विलंब नहिं कीजै । महाराज कहँ निलक करीजै ॥ ४ ॥

वे सब अनेकों ब्राह्मण कोमल वचन कहने लगे कि श्रीरामजीका राज्याभिषेक सम्पूर्ण जगत्को आनन्द देनेवाला है । हे मुनिश्रेष्ठ ! अब विरुद्ध न कीजिये और महाराजका निलक शीघ्र कीजिये ॥ ४ ॥

दो०—तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन मुनत चलेउ हरषाड ।

रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ ॥ १० (क) ॥

तब मुनिने सुमन्त्रजीमें कहा, वे मुनते ही हर्षित होकर चले । उन्होंने तुरंत ही जाकर अनेकों रथ, घोड़े और हाथी मगाये ॥ १० (क) ॥

जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रव्य मगाइ ।

हरष समेत बसिष्ट पद पुनि मिरु नायउ आइ ॥ १० (ख) ॥

और जहाँ-तहाँ [सूचना देनेवाले] दूतोंको भेजकर मातृलक वस्तुएँ मँगाकर फिर हर्षके साथ आकर वशिष्ठजीके चरणोंमें सिर नवाया ॥ १० (ख) ॥

नवाह्नपारायण आठवाँ विश्राम

चौ०—अवधपुरी अति रुचिर बनाई । देवन्ह सुमनवृष्टि झरि लाई ॥

राम कहा मेवकन्ह बुलाई । प्रथम सखन्ह अम्हवावहु जाई ॥ १ ॥

अवधपुरी बहुत ही सुन्दर सजायी गयी । देवताओंने पुष्पोंकी वर्षाकी झड़ी लगा दी । श्रीरामचन्द्रजीने सेवकोंको बुलाकर कहा कि तुमलोग जाकर पहले मेरे सखाओंको खान कराओ ॥ १ ॥

सुनत यचन जहँ तहँ जन घाप । सुग्रीवादि तुरत अन्हवाप ॥

पुनि करुनानिधि भरत हँकारे । निज कर राम जटा निरुआरे ॥ २ ॥

भगवान्के वचन सुनते ही सेवक जहाँ-तहाँ दौड़े और तुरत ही सुग्रीवादिको उन्होंने खान कराया । फिर करुनानिधान श्रीरामजीने भरतजीको बुलाया और उनकी जटाओंको अपने हाथोंसे सुलझाया ॥ २ ॥

अन्हवाप प्रभु तीनउ भाई । भगत बछल कृपाल रघुराई ॥

भरत भाग्य प्रभु कोमलताई । सेप कोटि सत सकहिं न गाई ॥ ३ ॥

तदनन्तर भक्तवत्सल कृपालु प्रभु श्रीरघुनाथजीने तीनों भाइयोंको खान कराया । भरतजीका भाग्य और प्रभुकी कोमलताका वर्णन अरवां शेषजी भी नहीं कर सकते ॥ ३ ॥

पुनि निज जटा राम विवराए । गुर अनुसासन मागि नहाए ॥

करि मज्जन प्रभु भूपन साजे । अंग अनंग देखि सत लाजे ॥ ४ ॥

फिर श्रीरामजीने अपनी जटाएँ खोलीं और गुरुजीकी आज्ञा माँगकर खान किया । खान करके प्रभुने आभूषण धारण किये । उनके सुशोभित अंगोंको देखकर मैकड़ों (असंख्य) कामदेव लजा गये ॥ ४ ॥

दो०—सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जन तुरत कराइ ।

दिव्य वसन वर भूपन अँग अँग सजे बनाइ ॥ ११ (क) ॥

इधर सासुओंने जानकीजीको आदरके साथ तुरत ही खान कराके उनके अंग अंगमें दिव्य वस्त्र और श्रेष्ठ आभूषण भलीभाँति मजा दिये (पहना दिये) ॥ ११ (क) ॥

राम वाम दिसि सोमति रमा रूप गुन खानि ।

देखि मातु सब हरषों जन्म सुफल निज जानि ॥ ११ (ख) ॥

श्रीरामके बायीं ओर रूप और गुणोंकी खान रमा (श्रीजानकीजी) शोभित हो रही हैं । उन्हें देखकर सब माताएँ अपना-अपना जन्म (जीवन) सफल समझकर हर्षित हुई ॥ ११ (ख) ॥

सुनु खगेम तेहि अवसर ब्रह्मा सिव मुनिवृन्द ।

चढ़ि विमान आए सब सुर देखन सुखकंद ॥ ११ (ग) ॥

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे पक्षिराज गरुड़जी ! मुनिये; उस समय ब्रह्माजी, शिवजी और मुनियोंके समूह, और विमानोंपर चढ़कर सब देवता आनन्दकन्द भगवान्के दर्शन करनेके लिये आये ॥ ११ (ग) ॥

चौ०—प्रभु विलोकि मुनि मन अनुरागा । तुरत दिव्य सिंघासन मागा ॥

रवि सम तेज सो बरनि न जाई । बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई ॥ १ ॥

प्रभुको देखकर मुनि वशिष्ठजीके मनमें प्रेम भर आया । उन्होंने तुरत ही दिव्य सिंहासन माँगाया, जिसका तेज सूर्यके समान था । उसका सौन्दर्य वर्णन नहीं किया जा सकता । ब्राह्मणोंको सिर नवाकर श्रीरामचन्द्रजी उमपर विराजे ॥ १ ॥

जनकसुता समेत रघुराई । पेखि प्रहरये मुनि समुदाई ॥

बेदमंत्र तब द्विजन्ह उचारे । नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे ॥ २ ॥

श्रीजानकीजीके सहित श्रीरघुनाथजीको देखकर मुनियोंका समुदाय अत्यन्त ही हर्षित हुआ। तब ब्राह्मणोंने वेदमन्त्रोंका उच्चारण किया। आकाशमें देवता और मुनि 'जय हो, जय हो' ऐसी पुकार करने लगे ॥ २ ॥

प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कौन्हा। पुनि सब विप्रन्ह आयसु दीन्हा ॥
सुत बिलोकि हरषी महतारी। बार बार आरती उतारी ॥ ३ ॥

सबसे पहले मुनि वशिष्ठजीने तिलक किया। फिर उन्होंने सब ब्राह्मणोंको तिलक करनेकी आशा दी। पुत्रको राजसिंहासनपर देखकर माताएँ हर्षित हुई और उन्होंने बार-बार आरती उतारी ॥ ३ ॥

विप्रन्ह दान बिबिधि विधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे ॥
सिंघासन पर विभुवन साईं। देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई ॥ ४ ॥

उन्होंने ब्राह्मणोंको अनेकों प्रकारके दान दिये, और सम्पूर्ण याचकोंको अयाचक बना दिया। (मालामाल कर दिया) विभुवनके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको सिंहासनपर विराजित देखकर देवताओंने नगाड़े बजाये ॥ ४ ॥

छं०—नभ दुंदुभी बाजहिं विपुल गंधर्व किंनर गावहीं।

नाचहिं अपछरा वृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं ॥

भरतादि अनुज विभीषणांगद हनुमदादि समेत ते।

गहें छत्र चामर व्यजन धनु असि चर्म सक्ति विराजते ॥ १ ॥

आकाशमें बहुत-से नगाड़े बज रहे हैं। गन्धर्व और किन्नर गा रहे हैं। अप्सराओंके झुंड-के-झुंड नाच रहे हैं। देवता और मुनि परमानन्द प्राप्त कर रहे हैं। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी विभीषण, अङ्गद, हनुमान और सुग्रीव आदिसहित क्रमशः छत्र, चँवर, पंखा, धनुष, तलवार, दाल और शक्ति लिये हुए सुशोभित हैं ॥ १ ॥

श्री सहित दिनकर वंस भूषन काम बहु छवि सोहई।

नव अंबुधर वर गात अंबर पीत सुर मन मोहई ॥

मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्धि प्रति सजे।

अंभोज नयन विसाल उर भुज घन्य नर निरखंति जे ॥ २ ॥

श्रीसीताजीसहित सूर्यवंशके विभूषण श्रीरामजीके शरीरमें अनेको कामदेवोंकी छवि शोभा दे रही है। नवीन जलधुक्त मेघोंके समान सुन्दर श्याम शरीरपर पीताम्बर देवताओंके मनको भी मोहित कर रहा है। मुकुट, बाजूबंद आदि विचित्र आभूषण अंग-अंगमें सजे हुए हैं। कमलके समान नेत्र हैं, चौड़ी छाती है और लंबी भुजाएँ हैं; जो उनके दर्शन करते हैं वे मनुष्य धन्य हैं ॥ २ ॥

दो०—वह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगोस।

बरनहिं सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस ॥ १२ (क) ॥

हे पक्षिराज गरुड़जी! वह शोभा, वह समाज और वह सुख मुझमें कहते नहीं बनता। सरस्वतीजी, शेषजी और वेद निरन्तर उसका वर्णन करते हैं; और उसका रस (आनन्द) महादेवजी ही जानते हैं ॥ १२ (क) ॥

भिन्न भिन्न अस्तुति करि गए मुर निज निज धाम।

बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्रीराम ॥ १२ (ख) ॥



प्रथम तिलक वसिष्ठ मुनि कीन्हा ।

[पृष्ठ ७८४]

सब देवता अलग-अलग स्तुति करके अपने-अपने लोकको चले गये। तब भाटोंका रूप धारण करके चारों वेद वहाँ आये जहाँ भीरामजी थे ॥ १२ (ख) ॥

प्रभु सर्वग्य कीन्ह अति आदर कृपानिधान ।

लखेउ न काहूँ मरम कछु लगे करन गुणगान ॥ १२ (ग) ॥

कृपानिधान सर्वश प्रभुने उन्हें पहचानकर उनका बहुत ही आदर किया। इसका भेद किसीने कुछ भी नहीं जाना। वेद गुणगान करने लगे ॥ १२ (ग) ॥

छं०—जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने ।

दसकंधरादि प्रचंड निसिखर प्रबल बल भुजबल हने ॥

अवतार नर संसार भार विभंजि दारुन दुख दहे ।

जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे ॥ १ ॥

हे सगुण और निर्गुणरूप ! हे अनुपम रूप-लक्षणयुक्त ! हे राजाओंके शिरोमणि ! आपकी जय हो। आपने रावण आदि प्रचण्ड, प्रबल और दुष्ट निशाचरोंको अपने भुजबलसे मार डाला। आपने मनुष्य-अवतार लेकर संसारके भारको नष्ट करके अत्यन्त कठोर दुःखोंको भस्म कर दिया। हे दयालु ! हे शरणागतकी रक्षा करनेवाले प्रभो ! आपकी जय हो। मैं शक्ति (सीताजी) सहित शक्तिमान् आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

तव विषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे ।

भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे ॥

जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिविधि दुख ते निबैहे ।

भव छेद छेदन दच्छ हम काहूँ रच्छ राम नमामहे ॥ २ ॥

हे हरे ! देवता, राक्षस, नाग, मनुष्य और चर, अचर सभी काल, कर्म और गुणोंसे भरे हुए (उनके वशीभूत हुए) दिन-रात अनन्त भवके मार्गमें भटक रहे हैं। हे नाथ ! इनमेंसे जिनको आपने कृपा करके (कृपादृष्टिसे) देखलिया, वे मायाजनित तीनों प्रकारके दुःखोंसे छूट गये। हे जन्म-मरणके भ्रमको काटनेमें कुशल भीरामजी ! हमारी रक्षा कीजिये। हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ २ ॥

जे ग्यान मान बिमत्त तव भवहरनि भक्ति न आदरी ।

ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ॥

बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे ।

जपि नाम तव बिनु भ्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे ॥ ३ ॥

जिन्होंने मिथ्या ज्ञानके अभिमानमें विशेषरूपसे मतवाले होकर भव-भय-हारिणी आपकी भक्तिका आदर नहीं किया, हे हरि ! उन्हें देवदुर्लभ (देवताओंको भी बड़ी कठिनतासे प्राप्त होनेवाले) पदको पाकर भी हम उस पदसे नीचे गिरते देखते हैं। परन्तु जो सब आशाओंको छोड़कर, आपपर विश्वास करके आपके दास हो रहते हैं, वे केवल आपका नाम ही जपकर बिना ही परिभ्रम भवसागरसे तर जाते हैं। हे नाथ ! ऐसे आपका हम स्मरण करते हैं ॥ ३ ॥

जे चरन सिख अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी ।

नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी ॥

ध्वज कुलस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे ।

पदकंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे ॥ ४ ॥

जो चरण शिवजी और ब्रह्माजीके द्वारा पूज्य हैं; तथा जिन चरणोंकी कल्याणमयी रजका स्पर्श पाकर शिला बनी हुई गौतममुनिकी पत्नी अहल्या तर गयी; जिन चरणोंके नखसे मुनियोंद्वारा बन्धित, त्रैलोक्यको पवित्र करनेवाली देवनदी गङ्गाजी निकली और ध्वजा, वज्र, अङ्कुश और कमल, इन चिह्नोंसे युक्त जिन चरणोंमें वनमें फिरते समय कौंटे चुम जानेसे घटे पड़ गये हैं; हे मुकुन्द ! हे राम ! हे रमापति ! हम आपके उन्हीं दोनों चरण-कमलोंको नित्य भजते रहते हैं ॥ ४ ॥

अव्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने ।

षट्कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने ॥

फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे ।

पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे ॥ ५ ॥

वेद-शास्त्रोंने कहा है कि जिसका मूल अव्यक्त (प्रकृति) है; जो प्रवाहरूपसे अनादि है; जिसके चार त्वचाएँ, छः तने, पचीस शाखाएँ और अनेकों पत्ते और बहुत-से फूल हैं; जिसमें कड़वे और मीठे दो प्रकारके फल लगे हैं; जिसपर एक ही बेल है, जो उसीके आश्रित रहती है; जिसमें नित्य नये पत्ते और फूल निकलते रहते हैं; ऐसे संसारवृक्षस्वरूप (विश्वरूपमें प्रकट) आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं ।

ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं ॥

करुनायतन प्रभु सवगुनाकर देव यह वर मागहीं ।

मन बचन कर्म विकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं ॥ ६ ॥

ब्रह्म अजन्मा है; अद्वैत है, केवल अनुभवसे ही जाना जाता है और मनसे परे है; जो इस प्रकार कहकर उस ब्रह्मका ध्यान करते हैं, वे ऐसा कहा करें और जाना करें किन्तु हम तो नित्य आपका सगुण यश ही गाते हैं । हे करुणाके धाम ! हे सद्गुणोंकी खान ! हे देव ! हम यह वर माँगते हैं कि मन, वचन और कर्मसे विकारोंको त्यागकर आपके चरणोंमें ही प्रेम करें ॥ ६ ॥

दो०—सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार ।

अंतर्धान मए पुनि गए ब्रह्म आगार ॥ १३ (क) ॥

वेदोंने सबके देखते यह श्रेष्ठ बिनती की । फिर वे अन्तर्धान हो गये और ब्रह्मलोकको चले गये ॥ १३ (क) ॥

बैनतेय सुनु संशु तब आए जहँ रघुबीर ।

बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर ॥ १३ (ख) ॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़जी ! सुनिये, तब शिवजी वहाँ आये, जहाँ भीरुघुबीर थे । और वे गद्गद वाणीसे स्तुति करने लगे । उनका शरीर पुलकावलीसे पूर्ण हो गया—॥ १३ (ख) ॥

छं०—जय राम रमारमनं समनं । भवताप भयाकुल पाहि जनं ॥

अवधेस भुरेस रमेस बिभो । सरमागत मागत पाहि प्रभो ॥ १ ॥

हे राम ! हे रमारमण (लक्ष्मीकान्त) ! हे भव-तापका नाश करनेवाले ! आपकी जय हो । भव-भयसे व्याकुल सेवककी रक्षा कीजिये । हे अवधपति ! हे देवताओंकी स्वामी ! हे रमापति ! हे विभो ! मैं शरणागत आपसे यही माँगता हूँ कि हे प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ १ ॥

दससौस बिनासन बीस भुजा । कृत दूरि महा महि भूरि रुजा ॥

रजनीचर बृन्द पतंग रहे । सर पावक तेज प्रचंड दहे ॥ २ ॥

हे दस सिर और बीस भुजाओंवाले रावणका विनाश करके पृथ्वीके सब महान् रोगों (कष्टों) को दूर करनेवाले श्रीरामजी ! राक्षससमूहकी जो पतंगें ये, वे सब आपके बाणरूपी अग्निके प्रचण्ड तेजसे भस्म हो गये ॥ २ ॥

महिमंडल मंडन चारुतरं । धृत सायक चाप निषंगवरं ॥

मद मोह महा ममता रजनी । तमपुंज विवाकर तेज अनी ॥ ३ ॥

आप पृथ्वी-मण्डलके अत्यन्त सुन्दर आभूषण हैं; आप श्रेष्ठ बाण, धनुष और तरकस धारण किये हुए हैं । महान् मद, मोह और ममत्तारूपी रात्रिके अन्धकारसमूहके नाश करनेके लिये आप सूर्यके तेजोमय किरणसमूह हैं ॥ ३ ॥

मनजात किरात निपात किए । मृग लोग कुभोग सरेन हिए ॥

इति नाथ अनाथनि पाहि हरे । विषया बन पावैर भूलि परे ॥ ४ ॥

कामदेवरूपी भीलने मनुष्यरूपी हिरनंकी हृदयमें कुभोगरूपी बाण मारकर उन्हें गिरा दिया है । हे नाथ ! हे पाप-तापका हरण करनेवाले हरे ! उसे मारकर विषयरूपी वनमें भूले पड़े हुए इन पामर अनाथ जीवोंकी रक्षा कीजिये ॥ ४ ॥

बहु रोग वियोगनिह लोग हुए । भवदंघ्रि निरादर के फल ए ॥

भवसिंधु अगाध परे नर ते । पद पंकज प्रेम न जे करते ॥ ५ ॥

लोग बहुत-से रोगों और वियोगों (दुःखों) से मारे हुए हैं । ये सब आपके चरणोंके निरादरके फल हैं । जो मनुष्य आपके चरणकमलोंमें प्रेम नहीं करते, वे अथाह भवसागरमें पड़े हैं ॥ ५ ॥

अति दीन मलीन दुखी नितहीं । जिन्हें कैं पद पंकज प्रीति नहीं ॥

अवलंब भवत कथा जिन्हें कैं । प्रिय संत अनंत सदा तिन्हें कैं ॥ ६ ॥

जिन्हें आपके चरणकमलोंमें प्रीति नहीं है वे नित्य ही अत्यन्त दीन, मलिन और दुखी रहते हैं । और जिन्हें आपकी लीला-कथाका आधार है, उनको संत और भगवान् सदा प्रिय लगने लगते हैं ॥ ६ ॥

नहिं राग न लोभ न मान मदा । तिन्हें कैं सम बैभव वा विपदा ॥

पहि ते तब सेवक होत मुदा । मुनि त्यागत जोग भरोस सदा ॥ ७ ॥

उनमें न राग (आसक्ति) है, न लोभ; न मान है, न मद । उनको सम्पत्ति और विपत्ति समान है । इसीसे मुनिलोग योग (साधन) का भरोसा सदाके लिये त्याग देते हैं और प्रसन्नताके साथ आपके सेवक बन जाते हैं ॥ ७ ॥

करि प्रेम निरंतर नेम लिए । पद पंकज सेवत सुख दिए ॥

सम मानि निरादर आदरही । सब संत सुखी विचरंति मही ॥ ८ ॥

वे प्रेमपूर्वक नियम लेकर निरन्तर शुद्ध हृदयसे आपके चरणकमलोंकी सेवा करते हैं, और निरादर और आदरको समान मानकर वे सब संत सुखी होकर पृथ्वीपर विचरते हैं ॥ ८ ॥

मुनि मानस पंकज भृंग भजे । रघुबीर महा रघुवीर अजे ॥

तब नाम जपामि नमामि हरी । भव रोग महागद मान अरी ॥ ९ ॥

हे मुनिर्षोकि मनरूपी कमलके भ्रमर ! हे महान् रणधीर एवं अजेय भीरुवीर ! मैं आपको भजता हूँ । हे हरि ! आपका नाम जपता हूँ और आपको नमस्कार करता हूँ । आप भवरोगकी महान् औषध और अभिमानके शत्रु हैं ॥ ९ ॥

गुण सील कृपा परमायतनं । प्रनमामि निरन्तर श्रीरमनं ॥
रघुनन्द निकन्द्य द्रुघनं । महिपाल बिलोक्य दीनजनं ॥ १० ॥

आप गुण, शील और कृपाके परम स्थान हैं । आप लक्ष्मीपति हैं, मैं आपको निरन्तर प्रणाम करता हूँ । हे रघुनन्दन ! आप जन्म-मरण, सुख-दुःख, राग-द्वेषादि द्वन्द्वसमूहोंका नाश कीजिये । हे पृथ्वीकी पालना करनेवाले ! इस दीन जनकी ओर देखिये ॥ १० ॥

दो०—बार बार वर मागुँ हरषि देहु श्रीरंग ।

पदसरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग ॥ १४ (क) ॥

मैं आपसे बार-बार यही वरदान माँगता हूँ कि मुझे आपके चरणकमलोंकी अनन्य भक्ति और आपके भक्तोंका सत्संग सदा प्राप्त हो । हे श्रीपते ! हर्षित होकर मुझे यही दीजिये ॥ १४ (क) ॥

वरनि उमापति रामगुन हरषि गए कैलास ।

तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास ॥ १४ (ख) ॥

श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका वर्णन करके उमापति महादेवजी हर्षित होकर कैलासको गये । तब प्रभुने वानरोंको सब प्रकारसे सुख देनेवाले निवासस्थान दिलाये ॥ १४ (ख) ॥

चौ०—सुनु खगपति यह कथा पावनी । त्रिविध ताप भव भय दावनी ॥

महाराज कर सुभ अभिषेका । सुनत लहहिं नर विरति बिबेका ॥ १ ॥

हे गरुड़जी ! सुनिये, यह कथा सबको पवित्र करनेवाली है, तीनों प्रकारके तापोंका और भव-(जन्म-मृत्युके) भयका नाश करनेवाली है । महाराज श्रीरामचन्द्रजीका कल्याणमय राज्याभिषेक निष्कामभावसे सुनकर मनुष्य वैराग्य और ज्ञान प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं । सुख संपति नावाबिधि पावहिं ॥

सुरदुर्लभ सुख करि जग माहीं । अंतकाल रघुपति पुर जाहीं ॥ २ ॥

और जो मनुष्य सकामभावसे सुनते और जो गाते हैं, वे अनेकों प्रकारके सुख और सम्पत्ति पाते हैं । वे जगत्में देवदुर्लभ सुखोंको भोगकर अन्तकालमें श्रीरघुनाथजीके परमधामको जाते हैं ॥ २ ॥

सुनहिं बिमुक्त बिरत अठ बिषई । लहहिं भगति गति संपति नई ॥

खगपति रामकथा में बरनी । स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी ॥ ३ ॥

इसे जो जीवन्मुक्त, विरक्त और विषयी सुनते हैं, वे क्रमशः भक्ति, मुक्ति और नवीन सम्पत्ति (नित्य नये भोग) पाते हैं । हे पशिराज गरुड़जी ! मैंने अपनी बुद्धिके विकास अनुसार रामकथा वर्णन की है, जो भय और दुःखको हरनेवाली है ॥ ३ ॥

बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी । मोह नवी कइ सुंदर तरनी ॥

नित नव मंगल कौसलपुरी । हरषित रहहिं लोग सब कुरी ॥ ४ ॥

यह वैराग्य, बिबेक और भक्तिकी दृढ़ करनेवाली है और मोहरूपी नदीके पार करनेके लिये सुन्दर नाव है । अवधपुरीमें नित-नये मङ्गलोत्सव होते हैं । सभी वर्गोंके लोग हर्षित रहते हैं ॥ ४ ॥

नित नर प्रीति राम पद पंकज । सब कैं जिन्हहि नमत सिव मुनि भज ॥

मंगन बहु प्रकार पहिराय । द्विजन्ह दान नानाबिधि पाय ॥ ५ ॥

श्रीरामजीके चरणकमलोंमें—जिन्हें श्रीशिवजी, मुनिगण और ब्रह्माजी नमस्कार करते हैं—सबकी नित्य नवीन प्रीति है । भिक्षुकोंको बहुत प्रकारके वस्त्राभूषण पहनाये गये और ब्राह्मणोंने नाना प्रकारके दान पाये ॥ ५ ॥

दो०—ब्रह्मानंद मगन कपि सब कैं प्रभु पद प्रीति ।

जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास षट बोति ॥ १५ ॥

वानर सब ब्रह्मानन्दमें मग्न हैं । प्रभुके चरणोंमें सबका प्रेम है । उन्होंने दिन जाते जाने ही नहीं; और छः महीने बीत गये ॥ १५ ॥

चौ०—बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं । जिमि परद्रोह संत मन माहीं ॥

तब रघुपति सब सखा बोलाय । आइ सबन्हि सावर सिद्ध नाय ॥ १ ॥

उन लोगोंको अपने घर भूल ही गये । जाग्रतकी तो बात ही क्या, उन्हें स्वप्नमें भी घरकी सुष (याद) नहीं आती, जैसे संतोंके मनमें परद्रोह कभी नहीं आता । तब श्रीरघुनाथजीने सब सखाओंको बुलाया । सबने आकर आदरसहित खिर नवाया ॥ १ ॥

परम प्रीति समीप बैठारे । भगत सुखद मृदु वचन उचारे ॥

तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई । सुख पर केहि बिधि करौ बढाई ॥ २ ॥

बड़े ही प्रेमसे श्रीरामजीने उनको अपने पास बैठाया और भक्तोंको सुख देनेवाले कोमल वचन कहे—तुम लोगोंने मेरी बड़ी सेवा की है । मुँहपर किस प्रकार तुम्हारी बढाई करूँ ? ॥ २ ॥

ताते मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे । मम हित लागि भवन सुख त्यागे ॥

अनुज राज संपति बैदेही । देह गेह परिवार सनेही ॥ ३ ॥

मेरे हितके लिये तुम लोगोंने घरोंके सुख छोड़ दिये । इससे तुम मुझे अत्यन्त ही प्रिय लग रहे हो । छोटे भाई, राज्य, सम्पत्ति, जानकी, अपना शरीर, घर, कुटुम्ब और मित्र—॥ ३ ॥

सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना । मृषा न कहउँ मोर यह बाना ॥

सब कैं प्रिय सेवक यह नीती । मोरें अधिक दास पर प्रीती ॥ ४ ॥

ये सब मुझे प्रिय हैं, परन्तु तुम्हारे समान नहीं ! मैं झूठ नहीं कहता, यह मेरा स्वभाव है । सेवक सभीको प्यारे लगते हैं, यह नीति (नियम) है । पर मेरा तो दासपर स्वाभाविक ही अधिक प्रेम है ॥ ४ ॥

दो०—अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम ।

सदा सर्वगत सर्वहित जानि करेहु अति प्रेम ॥ १६ ॥

हे सखागण ! अब सब लोग घर जाओ; वहाँ दृढ़ नियमसे मुझे भजते रहना । मुझे सदा सर्वव्यापक और सबका हित करनेवाला जानकर अत्यन्त प्रेम करना ॥ १६ ॥

चौ०—सुनि प्रभुवचन मगन सब भय । को हम कहाँ बिसरि तन गए ॥

एकटक रहे जोरि कर आगे । सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे ॥ १ ॥

प्रभुके वचन सुनकर सब-के-सब प्रेममग्न हो गये । हम कौन हैं ? कहाँ हैं ? यह देहकी सुष भी भूल गयी । वे प्रभुके सामने हाथ जोड़कर टकटकी लगाये देखते ही रह गये । अत्यन्त प्रेमके कारण कुछ कह नहीं सकते ॥ १ ॥

परम प्रेम तिन्ह कर प्रभु देखा । कहा बिबिधि बिधि ग्यान बिसेषा ॥

प्रभु सम्मुख कछु कइन न पारहिं । पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं ॥ २ ॥

प्रभुने उनका अत्यन्त प्रेम देखा, तब उन्हें अनेकों प्रकारसे विशेष ज्ञानका उपदेश दिया । प्रभुके सम्मुख वे कुछ कह नहीं सकते । बार-बार प्रभुके चरणकमलोंको देखते हैं ॥ २ ॥

तब प्रभु भूषन बसन मगाए । नाना रंग अनूप सुहाए ॥

सुग्रीवहिं प्रथमहिं पहिराए । बसन भरत निज हाथ बनाए ॥ ३ ॥

तब प्रभुने अनेक रंगोंके अनुपम और सुन्दर गहने-कपड़े मँगवाये । सबसे पहले भरतजीने अपने हाथसे सँवारकर सुग्रीवको वस्त्राभूषण पहनाये ॥ ३ ॥

प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए । लंकापति रघुपति मन भाए ॥

अंगद बैठ रहा नहिं डोला । प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला ॥ ४ ॥

फिर प्रभुकी प्रेरणासे लक्ष्मणजीने विभीषणजीको गहने-कपड़े पहनाये, जो श्रीरघुनाथजीके मनको बहुत ही अच्छे लगे । अङ्गद बैठे ही रहे । वे अपनी जगहसे हिले-डुलेतक नहीं । उनका उत्कट प्रेम देखकर प्रभुने उनको नहीं बुलाया ॥ ४ ॥

दो०—जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ ।

हियँ धरि रामरूप सब चले नाइ पद माथ ॥ १७ (क) ॥

जाम्बवान् और नील आदि सबको श्रीरघुनाथजीने स्वयं भूषण-वस्त्र पहनाये । वे सब अपने हृदयोंमें श्रीरामचन्द्रजीके रूपको धारण करके उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर चले ॥ १७ (क) ॥

तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि ।

अति बिनीत बोलेउ बचन मनहुँ प्रेमरस बोरि ॥ १७ (ख) ॥

तब अङ्गद उठकर सिर नवाकर, नेत्रोंमें जल भरकर और हाथ जोड़कर तथा अत्यन्त विनम्र मानो प्रेमके रसमें डुबोये हुए (मधुर) वचन बोले ॥ १७ (ख) ॥

चौ०—सुनु सर्वग्य कृपा सुख सिंधो । दीन दयाकर आरत बंधो ॥

मरती बेर नाथ मोहि वाली । गयउ तुम्हारेहि कौलें घाली ॥ १ ॥

हे सर्वज्ञ ! हे कृपा और सुखके समुद्र ! हे दीनोंके लिये दयाकी खान ! हे आतोंके बन्धु ! सुनिये । हे नाथ ! मरते समय मेरा पिता वालि मुझे आपकी ही गोदमें डाल गया था ॥ १ ॥

असरन सरन विरदु संभारी । मोहि जनि तजहु भगत हितकारी ॥

मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता । जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता ॥ २ ॥

अतः हे भक्तोंके हितकारी ! अपना अशरण-शरण विरद (बाना) याद करके मुझे त्यागिये नहीं । मेरे तो स्वामी, गुरु, पिता और माता, सब कुछ आप ही हैं । आपके चरणकमलोंको छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ ॥ २ ॥

तुम्हहि विचारि कहहु मरनाहा । प्रभु तजि भवन काज मम काहा ॥

बालक ग्यान बुद्धि बल हीना । राखहु सरन नाथ जन दीना ॥ ३ ॥

हे महाराज ! आप ही विचारकर कहिये, प्रभु (आप) को छोड़कर घरमें मेरा क्या काम है ! हे नाथ ! इस ज्ञान, बुद्धि और बलसे हीन बालकको दीन सेवक जानकर शरणमें रखिये ॥ ३ ॥

नोचि टहल गृह कै सब करिहउँ । पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ ॥

अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही । अब जनि नाथ कहहु गृह जाही ॥ ४ ॥

मैं घरकी सब नीची-से-नीची सेवा करूँगा और आपके चरणकमलोंको देख-देखकर भवसागरसे तर जाऊँगा । ऐसा कहकर वे श्रीरामजीके चरणोंमें गिर पड़े [और बोले—] हे प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिये । हे नाथ ! अब यह न कहिये कि तू घर जा ॥ ४ ॥

दो०—अंगद वचन विनीत सुनि रघुपति करुना साँव ।

प्रभु उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव ॥ १८ (क) ॥

अङ्गदके विनम्र वचन सुनकर करुणाकी सीमा प्रभु भीरघुनाथजीने उनको उठाकर हृदयसे लगा लिया । प्रभुके नेत्रकमलोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया ॥ १८ (क) ॥

निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ ।

विदा कोन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ ॥ १८ (ख) ॥

तब भगवान्ने अपने हृदयकी माला, वस्त्र और मणि-रत्नोंके आभूषण बालि-पुत्र अङ्गदको पहनाकर और बहुत प्रकारसे समझाकर उनकी विदाई की ॥ १८ (ख) ॥

चौ०—भरत अनुज सौमित्रि समेता । पठवन चले भगत कृत चेता ॥

अंगद हृदयै प्रेम नहिं थोरा । फिरि फिरि चितव राम कीं भोरा ॥ १ ॥

भक्तकी करनीको याद करके भरतजी छोटे भाई शत्रुघ्नजी, और लक्ष्मणजीसहित उनको पहुँचाने चले । अङ्गदके हृदयमें थोड़ा प्रेम नहीं है (अर्थात् बहुत अधिक प्रेम है) । वे फिर-फिरकर श्रीरामजीकी ओर देखते हैं, ॥ १ ॥

बार बार कर दंड प्रनामा । मन अस रहन कहहिं मोहि रामा ॥

राम बिलोकनि बोलनि चलनी । सुमिरि सुमिरि सोचत हँसिमिलनी ॥ २ ॥

और बार-बार दण्डवत् प्रणाम करते हैं । मनमें ऐसा आता है कि श्रीरामजी मुझे रहनेको कह दें । वे श्रीरामजीके देखनेकी, बोलनेकी, चलनेकी तथा हँसकर मिलनेकी रीतिको याद कर-करके सोचते हैं (दुखी होते हैं) ॥ २ ॥

प्रभु हस देखि विनय बहु भाषी । चलेउ हृदयै पद पंकज राखी ॥

अति आदर सब कपि पहुँचाए । भाइन्ह सहित भरत पुनि आए ॥ ३ ॥

किन्तु प्रभुका रुख देखकर, बहुत-से विनय वचन कहकर, तथा हृदयमें चरणकमलोंको रखकर वे चले । अत्यन्त आदरके साथ सब वानरोंको पहुँचाकर भाइयोंसहित भरतजी लौट आये ॥ ३ ॥

तब सुग्रीव चरन गहि नाना । भौंति विनय कीन्हे हनुमाना ॥

दिन दस करि रघुपति पद सेवा । पुनि तब चरन देखिहउँ देवा ॥ ४ ॥

तब हनुमान्जीने सुग्रीवके चरण पकड़कर अनेक प्रकारसे विनती की और कहा—हे देव ! दस (कुल) दिन भीरघुनाथजीकी चरणसेवा करके फिर मैं आकर आपके चरणोंकी दर्शन करूँगा ॥ ४ ॥

पुन्यपुंज तुम्ह पवनकुमारा । सेवहु जाइ कृपा आगारा ॥

अस कहि कपि सब चले तुरंता । अंगद कहइ सुनहु हनुमंता ॥ ५ ॥

[सुग्रीवने कहा] हे पवनकुमार ! तुम पुण्यकी राशि हो, [जो भगवान् ने तुमको अपनी सेवामें रख लिया] जाकर कृपाधाम श्रीरामजीकी सेवा करो । सब वानर ऐसा कहकर तुरंत चल पड़े । अङ्गदने कहा—हे हनुमान् ! सुनो—॥ ५ ॥

दो०—कहेहु दंडवत् प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि ।

बार बार रघुनाथकहि सुरति कराएहु मोरि ॥ १९ (क) ॥

मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ, प्रभुसे मेरी दण्डवत् कहना और श्रीरघुनाथजीको बार-बार मेरी याद कराते रहना ॥ १९ (क) ॥

अस कहि चलेउ बालिसुत फिरि आयउ हनुमंत ।

तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत ॥ १९ (ख) ॥

ऐसा कहकर बालिपुत्र अङ्गद चले, तब हनुमान्जी लौट आये और आकर प्रभुसे उनका प्रेम वर्णन किया । उसे सुनकर भगवान् प्रेममग्न हो गये ॥ १९ (ख) ॥

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि ।

चित्त खगेस राम कर समुझि परह कहु काहि ॥ १९ (ग) ॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़जी ! श्रीरामजीका चित्त वज्रकी अपेक्षा अत्यन्त कठोर और फूलसे भी अत्यन्त कोमल है । तब कहिये, वह किसकी समझमें आ सकता है ! ॥ १९ (ग) ॥

चौ०—पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा । दीन्हे भूषण बसन प्रसादा ॥

जाहु भवन मम सुमिरन करेहु । मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहु ॥ १ ॥

फिर कृपालु श्रीरामजीने निषादराजको बुला लिया और उसे भूषण, वस्त्र प्रसादमें दिये । [फिर कहा—] अब तुम भी घर जाओ; वहाँ मेरा स्मरण करते रहना । और मन, वचन तथा कर्मसे धर्मके अनुसार चलना ॥ १ ॥

तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता । सदा रहेहु पुर आवत जाता ॥

बचन सुनत उपजा सुख भारी । परेउ चरन भरि लोचन बारी ॥ २ ॥

तुम मेरे मित्र हो और भरतके समान भाई हो । अयोध्यामें सदा आते-जाते रहना । यह वचन सुनते ही उसको भारी सुख उत्पन्न हुआ । नेत्रोंमें [आनन्द और प्रेमके आँसुओंका] जल भरकर वह चरणोंमें गिर पड़ा ॥ २ ॥

चरन नलिन उर धरि गृह आवा । प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा ॥

रघुपति चरित देखि पुरबासी । पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी ॥ ३ ॥

फिर भगवान् के चरणकमलोंको हृदयमें रखकर वह घर आया और आकर अपने कुटुम्बियोंको उसने प्रभुका स्वभाव सुनाया । श्रीरघुनाथजीका यह चरित्र देख-देखकर अवधपुरवासी बार-बार कहते हैं कि सुखकी राशि श्रीरामचन्द्रजी धन्य हैं ॥ ३ ॥

राम राज बैठे त्रैलोका । हरषित भए गए सब सोका ॥

बयद न कर काहु सन कोई । राम प्रताप विषमता छोई ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके राज्यपर प्रतिष्ठित होनेपर तीनों लोक हर्षित हो गये, उनके सारे शोक जाते रहे । कोई किसीसे वैर नहीं करता । श्रीरामचन्द्रजीके प्रतापसे सबकी विषमता (आन्तरिक भेदभाव) मिट गयी ॥ ४ ॥

दो०—बरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग ।

चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग ॥ २० ॥

सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रमके अनुकूल धर्ममें तत्पर हुए वेदमार्गपर चलते हैं और सुख पाते हैं। उन्हें न किसी बातका भय है, न शोक है और न कोई रोग ही सताता है ॥ २० ॥

चो०—दैहिक दैविक भौतिक तापा । रामराज नहिं काहुहि व्यापा ॥

सब नर करहिं परस्पर प्रीती । चलहिं स्वधर्म निरत श्रुतिनीती ॥ १ ॥

‘राम-राज्य’ में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसीको नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं, और वेदोंमें बतायी हुई नीति (मर्यादा) के अनुसार अपने धर्ममें लगे रहकर उसका आचरण करते हैं ॥ १ ॥

चारिउ चरन धर्म जग माहीं । पूरि रहा सपनेहुं अघ नाहीं ॥

रामभगति रत नर अरु नारी । सकल परमगति के अधिकारी ॥ २ ॥

धर्म अपने चारों चरणों (सत्य, शौच, दया और दान) से जगत्में परिपूर्ण हो रहा है। स्वप्नमें भी कहीं पाप नहीं है। पुरुष और स्त्री सभी रामभक्तिके परायण हैं और सभी परमगति (मोक्ष) के अधिकारी हैं ॥ २ ॥

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा । सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ॥

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना ॥ ३ ॥

छोटी अवस्थामें मृत्यु नहीं होती, न किसीको कोई पीड़ा होती है। सभीके शरीर सुन्दर और निरोग हैं। न कोई दरिद्र है, न दुखी है और न दीन ही है। न कोई मूर्ख है और न शुभ लक्षणोंसे हीन ही है ॥ ३ ॥

सब निर्दभ धर्मरत पुनी । नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥

सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी । सब कृतग्य नहिं कपट सयानी ॥ ४ ॥

सभी दम्भरहित हैं, धर्मपरायण हैं और पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री सभी चतुर और गुणवान् हैं। सभी गुणोंका आदर करनेवाले और पण्डित हैं, तथा सभी ज्ञानी हैं। सभी कृतज्ञ (दूसरेके किये हुए उपकारको माननेवाले) हैं। कपट-चतुराई (धूर्तता) किसीमें नहीं है ॥ ४ ॥

दो०—राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं ।

काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं ॥ २१ ॥

[काकमुष्ण्डिजी कहते हैं—] हे पक्षिराज गरुड़जी! सुनिये! श्रीरामके राज्यमें जड़-चेतन सारे जगत्में काल, कर्म, स्वभाव और गुणोंसे उत्पन्न हुए दुःख किसीको भी नहीं होते (अर्थात् इनके बन्धनमें कोई नहीं है) ॥ २१ ॥

चो०—भूमि सत सागर मेखला । एक भूप रघुपति कोसला ॥

भुवन अनेक रोम प्रति जास् । यह प्रभुता कछु बहुत न तास् ॥ १ ॥

अयोध्यामें भीरघुनाथजी सात समुद्रोंकी मेखला (करधनी) वाली पृथ्वीके एकमात्र राजा हैं। जिनके एक-एक रोममें अनेकों ब्रह्माण्ड हैं, उनके लिये सात द्वीपोंकी यह प्रभुता कुछ अधिक नहीं है ॥ १ ॥

सो महिमा समुझत प्रभु केरी । यह वरनत हीनता घनेरी ॥

सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी । फिरि एहिं चरित तिन्हहुं रति मानी ॥ २ ॥

बल्कि प्रभुकी उस महिमाको समझ लेनेपर तो यह कहनेमें [कि वे सात समुद्रोंसे घिरी हुई सप्तदीपमयी पृथ्वीके एकच्छत्र सम्राट् हैं] उनकी बड़ी हीनता होती है। परन्तु हे गरुड़जी ! जिन्होंने वह महिमा जान भी ली है, वे भी फिर इस लीलामें बड़ा प्रेम मानते हैं ॥ २ ॥

सोउ जाने कर फल यह लीला । कहहिं महा मुनिवर दमसीला ॥

रामराज कर सुख संपदा । बरनि न सकइ फनीस सारदा ॥ ३ ॥

क्योंकि उस महिमाके जाननेका ही फल यह लीला ही है, इन्द्रियोंका दमन करनेवाले श्रेष्ठ महामुनि ऐसा कहते हैं। रामराज्यकी सुख-सम्पत्तिका वर्णन शेषजी और सरस्वतीजी भी नहीं कर सकते ॥ ३ ॥

सब उदार सब पर उपकारी । विप्र चरन सेवक नर नारी ॥

एकनारि व्रत रत सब झारी । ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥ ४ ॥

सभी नर-नारी उदार हैं, सभी परोपकारी हैं और सभी ब्राह्मणोंके चरणोंके सेवक हैं। सभी पुरुषमात्र एकपत्नीव्रती हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी मन, वचन और कर्मसे पतिका हित करनेवाली हैं ॥ ४ ॥

। दो०—दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।

जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र के राज ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें दण्ड केवल संन्यासियोंके हाथोंमें है और भेद नाचनेवालोंके नृत्यसमाजमें है। और 'जीतो' शब्द केवल मनके जीतनेके लिये ही सुनायी पड़ता है। [अर्थात् राजनीतिमें शत्रुओंको जीतने तथा चोर-डाकुओं आदिको दमन करनेके लिये साम, दान, दण्ड और भेद, ये चार उपाय किये जाते हैं। राम-राज्यमें कोई शत्रु है ही नहीं, इसलिये 'जीतो' शब्द केवल मनके जीतनेके लिये ही कहा जाता है। कोई अपराध करता ही नहीं, इसलिये दण्ड किसीको नहीं होता। 'दण्ड' शब्द केवल संन्यासियोंके हाथमें रहनेवाले दण्डके लिये ही रह गया है। सभी अनुकूल होनेके कारण भेदनीतिकी आवश्यकता ही नहीं रह गयी। 'भेद' शब्द केवल मुर-तालके भेदके लिये ही काममें आता है।] ॥ २२ ॥

चौ०—फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन । रहहिं एक संग गज पंचानन ॥

खग मृग सहज बयर बिसराई । सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई ॥ १ ॥

वनमें वृक्ष सदा फूलते और फलते हैं। हाथी और सिंह वरै भूलकर एक साथ रहते हैं। पक्षी और पशु सभीने स्वाभाविक बरै भुलकर आपसमें प्रेम बढ़ा लिया है ॥ १ ॥

कूजहिं खग मृग नाना बुंदा । अभय चरहिं बन करहिं अनंदा ॥

सीतल सुरभि पवन बह मंदा । गुंजत अलि लै चलि मकरंदा ॥ २ ॥

पक्षी कूजते (मीठी बोली बोलते) हैं, भाँति-भाँतिके पशुओंके समूह वनमें निर्भय विचरते और आनन्द करते हैं। शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन चलता रहता है। भौंगे पुष्पोंका रस लेकर गुंजार करते चलते हैं ॥ २ ॥

लता बिटप माग मधु चवहीं । मनभावतो धेनु पय स्रवहीं ॥

ससि संपन्न सदा रह घरनी । त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी ॥ ३ ॥

वेल और वृक्ष माँगनेसे मधु (मकरन्द) टपका देते हैं। गौएँ मनचाहा दूध देती हैं। धरती सदा खेतोंसे भरी रहती है। त्रेतामें सत्ययुगकी करनी (स्थिति) हो गयी ॥ ३ ॥

प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनिखानी । जगदातमा भूप जग जानी ॥

सरिता सकल बहहिं बर बारी । सीतल अमल स्वाद सुखकारी ॥ ४ ॥

समस्त जगत्के आत्मा भगवान्को जगत्का राजा जानकर पर्वतोंने अनेक प्रकारकी भणियोंकी खानें प्रकट कर दीं । सब नदियाँ श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल और सुखप्रद स्वादिष्ट जल बहने लगीं ॥ ४ ॥

सागर निज मरजादों रहहीं । डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं ॥

सरसिज संकुल सकल तड़ागा । अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा ॥ ५ ॥

समुद्र अपनी मर्यादामें रहते हैं । वे लहरोंके द्वारा किनारोंपर रत्न डाल देते हैं, जिन्हें मनुष्य पा जाते हैं । सब तालाब कमलोंसे परिपूर्ण हैं । दसों दिशाओंके विभाग (अर्थात् सभी प्रदेश) अत्यन्त प्रसन्न हैं ॥ ५ ॥

दो०—विष्णु महि पूर मयूखन्हि रवि तप जेतनेहि काज ।

मार्गे बारिद देहिं जल रामचंद्र के राज ॥ २३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें चन्द्रमा अपनी अमृतमयी किरणोंसे पृथिवीको पूर्ण कर देते हैं । सूर्य उतना ही तपते हैं जितनेकी आवश्यकता होती है । और मेघ माँगनेसे जब जहाँ जितना चाहिये, उतना ही जल देते हैं ॥ २३ ॥

चौ०—कोटिन्ह बाजिमेघ प्रभु कीन्हे । दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे ॥

श्रुतिपथ पालक धर्म धुरंधर । गुनातीत अरु भोग पुरंदर ॥ १ ॥

प्रभु श्रीरामजीने करोड़ों अश्वमेघ यज्ञ किये और ब्राह्मणोंको अनेकों दान दिये । श्रीरामचन्द्रजी वेदमार्गके पालनेवाले; धर्मकी धुरीकी धारण करनेवाले; प्रकृतिजन्य सत्त्व, रज और तम—तीनों गुणोंसे अतीत, और भोगों (ऐश्वर्य) में इन्द्रके समान हैं ॥ १ ॥

पति अनुकूल सदा रह सीता । सोभा खानि सुसील बिनोता ॥

जानति कृपासिंधु प्रभुताई । सेवति चरन कमल मन लाई ॥ २ ॥

वे शोभाकी खान, सुशील और विनम्र सीताजी सदा पतिके अनुकूल रहती हैं । वे कृपासागर श्रीरामजीकी प्रभुता (महिमा) को जानती हैं और मन लगाकर उनके चरणकमलोंकी सेवा करती हैं ॥ २ ॥

जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी । बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी ॥

निज कर गृह परिचरजा करई । रामचंद्र आयसु अनुसरई ॥ ३ ॥

यद्यपि घरमें बहुत-से (अपार) दास और दासियाँ हैं, और वे सभी सेवाकी विधिमें कुशल हैं, तथापि स्वामीकी सेवाका महत्त्व जाननेवाली श्रीसीताजी घरकी सब सेवा अपने ही हाथोंसे करती हैं और श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका अनुसरण करती हैं ॥ ३ ॥

जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ । सोइ कर श्री सेवाबिधि जानइ ॥

कौसल्यादि सासु गृह माहीं । सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं ॥ ४ ॥

कृपासागर श्रीरामचन्द्रजी जिस प्रकारसे सुख मानते हैं, श्रीजी वही करती हैं; क्योंकि वे सेवाकी विधिको जाननेवाली हैं । घरमें कौसल्या आदि सभी सासुओंकी सीताजी सेवा करती हैं । उन्हें किसी बातका अभिमान और मद नहीं है ॥ ४ ॥

उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता । जगदंबा संततमनिंदिता ॥ ५ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! जगज्जननी रमा (सीताजी) ब्रह्मा आदि देवताओंसे वन्दित और सदा अनिन्दित (सर्वगुणसम्पन्न) हैं ॥ ५ ॥

दो०—जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ ।

राम पदारविंद रति करति सुभावहि खोइ ॥ २४ ॥

देवता जिनका कृपाकटाक्ष चाहते हैं, परन्तु वे उनकी ओर देखतीं भी नहीं, वे ही जानकीजी अपने महामहिम स्वभावको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दमें प्रीति करती हैं ॥ २४ ॥

चौ०—सेवहिं सानकूल सब भाई । रामचरन रति अति अधिकारि ॥

प्रभु सुखकमल विलोकत रहहीं । कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहहीं ॥ १ ॥

सब भाई अनुकूल रहकर उनकी सेवा करते हैं । श्रीरामजीके चरणोंमें उनकी अत्यन्त अधिक प्रीति है । वे सदा प्रभुका मुखारविन्द ही देखते रहते हैं कि कृपालु श्रीरामजी कभी हमें कुछ सेवा करनेको कहें ॥ १ ॥

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती । नाना भाँति सिखावहिं नीती ॥

हरषित रहहिं नगर के लोग । करहिं सकल सुरदुर्लभ भोगा ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजी भी भाइयोंपर प्रेम करते हैं और उन्हें नाना प्रकारकी नीतियाँ सिखलाते हैं । नगरके लोग हर्षित रहते हैं और सब प्रकारके देवदुर्लभ (देवताओंको भी कठिनतासे प्राप्त होने योग्य) भोग भोगते हैं ॥ २ ॥

अह्निसि बिधिहि मनावत रहहीं । श्रीरघुवीर चरन रति चहहीं ॥

दुइ सुत सुंदर सीताँ जाए । लव कुस बेद पुरानन्ह गाए ॥ ३ ॥

वे दिन-रात ब्रह्माजीको मनाते रहते हैं और उनसे श्रीरघुवीरके चरणोंमें प्रीति चाहते हैं । सीताजीके लव और कुश—ये दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनका वेद-पुराणोंने वर्णन किया है ॥ ३ ॥

दोउ बिजई बिनई गुनमंदिर । हरि प्रतिबिंब मनहुँ अति सुंदर ॥

दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे । भए रूप गुन सील घनेरे ॥ ४ ॥

वे दोनों ही विजयी, विनयशील और गुणोंके धाम हैं; और अत्यन्त सुन्दर हैं, मानो श्रीहरिके प्रतिबिम्ब ही हो । दो-दो पुत्र सभी भाइयोंके हुए, जो बड़े ही सुन्दर, गुणवान् और सुशील थे ॥ ४ ॥

दो०—ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार ।

सोइ सच्चिदानंद धन कर नर चरित उदार ॥ २५ ॥

जो [बौद्धिक] ज्ञान, वाणी और इन्द्रियोंसे परे और अजन्मा हैं; तथा माया, मन और गुणोंसे पार है, वही सच्चिदानन्दधन भगवान् श्रेष्ठ नरलीला करते हैं ॥ २५ ॥

चौ०—प्रातकाल सरऊ करि मज्जन । बैठहिं सर्भा संग द्विज सज्जन ॥

बेद पुरान वसिष्ठ बखानहिं । सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं ॥ १ ॥

प्रातःकाल सरयूजीमें स्नान करके ब्राह्मणों और सज्जनोंके साथ सभामें बैठते हैं । वशिष्ठजी वेद और पुराणोंकी कथाएँ वर्णन करते हैं और श्रीरामजी सुनते हैं, यद्यपि वे सब जानते हैं ॥ १ ॥

अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं । देखि सकल जननीं सुख भरहीं ॥

भरत शत्रुहन दोनउ भाई । सहित पवनसुत उपवन जाई ॥ २ ॥

वे भाइयोंको साथ लेकर भोजन करते हैं । उन्हें देखकर सभी माताएँ आनन्दसे भर जाती हैं । भरतजी और शत्रुघ्नजी दोनों भाई हनुमान्जीसहित उपवनमें जाकर, ॥ २ ॥

बृहद्दिं बैठि राम गुन गाहा । कह हनुमान सुमति अवगाहा ॥

सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं । बहुरि बहुरि करि विनय कहावहिं ॥ ३ ॥

वहाँ बैठकर श्रीरामजीके गुणोंकी कथाएँ पूछते हैं । और हनुमानजी अपनी सुन्दर बुद्धिसे उन गुणोंमें गोता लगाकर उनका वर्णन करते हैं । श्रीरामचन्द्रजीके निर्मल गुणोंको सुनकर दोनों भाई अत्यन्त सुख पाते हैं और विनय करके बार-बार कहलवाते हैं ॥ ३ ॥

सब कैं गृह गृह होहिं पुराना । रामचरित पावन विधि नाना ॥

नर अरु नारि राम गुन गानहिं । कहहिं दिवस निसि जात न जानहिं ॥ ४ ॥

सबके यहाँ घर-घरमें पुराण और अनेक प्रकारके पवित्र रामचरित्र होते हैं । पुरुष और स्त्री सभी श्रीरामचन्द्रजीका गुणगान करते हैं, और इस आनन्दमें दिन-रातका बीतना भी नहीं जान पाते ॥ ४ ॥

दो०—अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज ।

सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम विराज ॥ २६ ॥

जहाँ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी स्वयं राजा होकर विराजमान हैं, उस अवधपुरीके निवाधियोंके सुख-सम्पत्तिके समुदायका वर्णन हजारों शेषजी भी नहीं कर सकते ॥ २६ ॥

चौ०—नारदादि सनकादि मुनीसा । दरसन लागि कोसलाधीसा ॥

दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं । देखि नगर विरागु बिसरावहिं ॥ १ ॥

नारद आदि और सनक आदि मुनीश्वर सब कोसलराज श्रीरामजीके दर्शनके लिये प्रतिदिन अजोध्या आते हैं और उस दिव्य नगरको देखकर वैराग्य भुल देते हैं ॥ १ ॥

जातरूप मनि रचित अटारी । नाना रंग रचिर गच ढारी ॥

पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर । रचे कँगूरा रंग रंग घर ॥ २ ॥

दिव्य स्वर्ण और रत्नोंसे बनी हुई अटारियाँ हैं । उनमें [मणि-रत्नोंकी] अनेक रंगोंकी सुन्दर ढली हुई फर्शें हैं । नगरके चारों ओर अत्यन्त सुन्दर परकोटा बना है, जिसपर सुन्दर रंग-बिरंगे कँगूरे बने हैं ॥ २ ॥

नवग्रह निकर अनीक बनाई । जनु घेरी अमरावति आई ॥

महि बहुरंग रचित गच काँचा । जो बिलोकि मुनिघर मन नाचा ॥ ३ ॥

मानो नवग्रहोंने बड़ी भारी सेना बनाकर अमरावतीको आकर घेर लिया हो । पृथ्वी (सड़कों) पर अनेकों रंगोंके काँचों (रत्नों) की गच बनायी (ढाली) गयी है । जिसे देखकर श्रेष्ठ मुनियोंके भी मन नाच उठते हैं ॥ ३ ॥

धवल धाम ऊपर नभ चुंबत । कलस मनहुँ रवि ससि दुति निंदत ॥

बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं । गृह गृह प्रति मनिदीप विराजहिं ॥ ४ ॥

उज्ज्वल महल ऊपर आकाशको चूम रहे हैं । महलोंपरके कलश [अग्ने प्रकाशते] मानो सूर्य, चन्द्रमाकी श्रुतिकी निन्दा करते हैं । महलोंमें बहुत-सी मणियोंसे रचे हुए झरोखे सुशोभित हैं । और घर-घरमें मणियोंके दीपक शोभा पा रहे हैं ॥ ४ ॥

छं०—मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिदुम रचीं ।

मनिखंभ भीति बिरंचि बिरचीं कनक मनि भरकत खचीं ॥

सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे ।

प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रनिह खचे ॥

घरोंमें मणियोंके दीपक शोभा दे रहे हैं। मूँगोंकी बनी हुई देहलियाँ चमक रही हैं। मणियों (रत्नों) के खम्भे हैं। मरकतमणियोंसे जड़ी हुई सोनेकी दीवारें ऐसी सुन्दर हैं मानो ब्रह्माने खास तौरसे बनायी हों। महल सुन्दर, मनोहर और विशाल हैं। उनमें सुन्दर स्फटिकके आँगन बने हैं। प्रत्येक द्वारपर बहुत-से खरादे हुए हीरोंसे जड़े हुए सोनेके किंवाड़ हैं ॥

दो०—चारु चित्रशाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ ।

रामचरित जे निरख मुनि ते मन लेहि चोराइ ॥ २७ ॥

घर-घरमें सुन्दर चित्रशालाएँ हैं, जिनमें श्रीरामजीके चरित्र बड़ी सुन्दरताके साथ सँवारकर अंकित किये हुए हैं। जिन्हें मुनि देखते हैं, तो वे उनके भी चित्तको चुरा लेते हैं ॥ २७ ॥

चौ०—सुमन बाटिका सबहिं लगाई । बिबिध भाँति करि जतन बनाई ॥

लता ललित बहुजाति सुहाई । फूलहिं सदा वसंत कि नाई ॥ १ ॥

सभी लोगोंने विविध प्रकारकी पुष्पोंकी बाटिकाएँ यत्न करके लगा रक्की हैं, जिनमें बहुत जातियोंकी सुन्दर और ललित लताएँ सदा वसंतकी तरह फूलती रहती हैं ॥ १ ॥

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर । मारुत त्रिविधि सदा वह सुंदर ॥

नाना खग बालकनिह जिवाप । बोलत मधुर उड़ात सुहाप ॥ २ ॥

अमर मनोहर स्वरसे गुंजार करते हैं। सदा तीनों प्रकारकी सुंदर वायु बहती रहती है। बालकोंने बहुत-से पक्षी पाल रक्खे हैं, जो मधुर बोली बोलते हैं और उड़नेमें सुन्दर लगते हैं ॥ २ ॥

मोर हंस सारस पारावत । मधननि पर सोभा अति पावत ॥

जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं । बहुबिधि कूजहिं नृत्य कराहीं ॥ ३ ॥

मोर, हंस, सारस और कबूतर घरोंके ऊपर बड़ी ही शोभा पाते हैं। वे पक्षी मणियोंकी दीवारोंमें और छतमें जहाँ-तहाँ अपनी परछाईं देखकर वहाँ दूसरे पक्षी समझकर बहुत प्रकारसे मधुर बोली बोलते और नृत्य करते हैं ॥ ३ ॥

सुक सारिका पढ़ावहिं बालक । कहहु राम रघुपति जनपालक ॥

राज दुआर सकल बिधि चारु । बोर्यी चौहट रुचिर बजारु ॥ ४ ॥

बालक तोना-मैनाको पढ़ाते हैं कि कहो—‘राम’ ‘रघुपति’ ‘जनपालक’। राजद्वार सब प्रकारसे सुन्दर है। गलियों, चौराहे और बाजार सभी सुन्दर हैं ॥ ४ ॥

छं०—बाजार रुचिर न यनइ वरनत वस्तु बिनु गद्य पाइए ।

जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए ॥

बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते ।

सब सुखी सब सबरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे ॥

सुन्दर बाजार है, जो वर्णन करते नहीं बनता; वहाँ वस्तुएँ विना ही मूल्य मिलती हैं। जहाँ स्वयं लक्ष्मीपति राजा

हों, वहाँकी सम्पत्तिका वर्णन कैसे किया जाय ? बजाज, शराफ आदि वणिक् (व्यापारी) बैठे हुए ऐसे जान पड़ते हैं, मानो अनेक कुत्ते हों। स्त्री, पुरुष, बच्चे और बूढ़े जो भी हैं, सभी सुखी, सदाचारी और सुन्दर हैं।

दो०—उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर।

बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर ॥ २८ ॥

नगरके उत्तर दिशामें सरयूजी बह रही हैं, जिनका निर्मल और गहरा जल है। मनोहर घाट बाँधे हुए हैं, किनारेपर जरा भी कीचड़ नहीं है ॥ २८ ॥

चौ०—दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिबहिं बाजि गज ठाटा ॥

पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना ॥ १ ॥

कुछ दूरीपर अलग वह सुन्दर घाट है, जहाँ घोड़ों और हाथियोंके ठट्ठके-ठट्ठ जल पिया करते हैं। पानी भरनेके लिये बहुत-से जनाने घाट हैं, जो बड़े ही मनोहर हैं। वहाँ पुरुष स्नान नहीं करते ॥ १ ॥

राजघाट सब विधि सुंदर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर ॥

तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुँ दिसि तिन्ह के उपवन सुंदर ॥ २ ॥

राजघाट सब प्रकारसे सुन्दर और श्रेष्ठ है, जहाँ चारों वर्णोंके पुरुष स्नान करते हैं। सरयूजीके किनारे-किनारे देवताओंके मन्दिर हैं, जिनके चारों ओर सुन्दर उपवन (बगीचे) हैं ॥ २ ॥

कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहिं ग्यान रत मुनि संन्यासी ॥

तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई ॥ ३ ॥

नदीके किनारे कहीं-कहीं विरक्त और शानपरायण, मुनि और संन्यासी निवास करते हैं। सरयूजीके किनारे-किनारे सुन्दर तुलसीजीके छुंड-के-छुंड बहुत-से पेड़ मुनियोंने लगा रखे हैं ॥ ३ ॥

पुरसोभा कहु बरनि न जाई। बाहेर नगर परम रुचिराई ॥

देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपवन बापिका तड़ागा ॥ ४ ॥

नगरकी शोभा तो कुछ कही नहीं जाती। नगरके बाहर भी परम सुन्दरता है। श्रीअयोध्यापुरीके दर्शन करते ही सम्पूर्ण पाप भाग जाते हैं। वन, उपवन, बावली और तालाब शोभित हैं ॥ ४ ॥

छं०—बापीं तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।

सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं ॥

बहुरंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।

आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं ॥

अनुपम बावलियाँ, तालाब और मनोहर तथा विशाल कुएँ शोभा दे रहे हैं। जिनकी सुन्दर [रत्नोंकी] सीढ़ियाँ और निर्मल जल देखकर देवता और मुनितक मोहित हो जाते हैं। [तालाबोंमें] बहुत गोंके कमल खिल रहे हैं। अनेकों पक्षी कूज रहे हैं और भौरे गुंजार कर रहे हैं। परम रमणीय बगीचे कोकिल आदि पक्षियोंकी सुन्दर बोलीसे मानो राह चलनेवालोंको बुला रहे हैं ॥

दो०—रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।

अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ ॥ २९ ॥

स्वयं रमापति भगवान् जहाँ राजा हों, उस नगरका कहीं वर्णन किया जा सकता है ! अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ, और समस्त सुख-सम्पत्तियाँ अयोध्याभरमें छा रही हैं ॥ २९ ॥

चौ०—जहाँ तहाँ नर रघुपति गुन गावहिं । बैठि परसपर इहर सिखावहिं ॥

भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि । सोभा सील रूप गुन धामहि ॥ १ ॥

लोग जहाँ-तहाँ श्रीरघुनाथजीके गुण गाते हैं और बैठकर एक दूसरेको यही सीख देते हैं कि शरणागतका पालन करनेवाले श्रीरामजीको भजो; शोभा, शील, रूप और गुणोंके धाम श्रीरामजीको भजो ॥ १ ॥

जलज बिलोचन स्यामल गातहि । पलक नयन इव सेवक त्रातहि ॥

धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि । संत कंज बन रबि रनधीरहि ॥ २ ॥

कमलनयन और साँवले शरीरवालेको भजो । पलक जिस प्रकार नेत्रोंकी रक्षा करते हैं उसी प्रकार अपने सेवकोंकी रक्षा करनेवालेको भजो । सुन्दर बाण, धनुष और तरकस धारण करनेवालेको भजो । संतरूपी कमलबनके खिलनेके लिये सूर्यरूप रणधीर श्रीरामजीको भजो ॥ २ ॥

काल कराल व्याल खगराजहि । नमत राम अकाम ममता जहि ॥

लोभ मोह मृगजूथ किरातहि । मनसिज करि हरि जन सुखदातहि ॥ ३ ॥

कालरूपी भयानक सर्पके भक्षण करनेवाले श्रीरामरूप गरुड़जीको भजो । निष्काम भावसे प्रणाम करते ही ममताका नाश कर देनेवाले रामजीको भजो । लोभ-मोहरूपी हरिनोंके समूहके नाश करनेवाले श्रीरामरूप किरातकी भजो । कामदेवरूपी हाथीके लिये सिंहरूप, तथा सेवकोंको सुख देनेवाले हरि श्रीरामको भजो ॥ ३ ॥

संसय सोक निविड़ तम भानुहि । दनुज गहन घन दहन कृसानुहि ॥

जनकसुता समेत रघुवीरहि । कस न भजहु भंजन भव भीरहि ॥ ४ ॥

संशय और शोकरूपी अत्यन्त घने अन्धकारके नाश करनेवाले श्रीरामरूप सूर्यको भजो । राक्षसरूपी घने वनको जलानेवाले श्रीरामरूप अग्निको भजो । भवभयको नाश करनेवाले श्रीजानकीजीसमेत श्रीरघुवीरको क्यों नहीं भजते ? ॥ ४ ॥

बहु वासना मसक हिमरासिहि । सदा एकरस अज अविनासिहि ॥

मुनि रंजन भंजन महिभारहि । तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि ॥ ५ ॥

बहुत-सी वासनाओंरूपी मच्छरोंको नाश करनेवाले श्रीरामरूप पालेको भजो । नित्य एकरस, अजन्मा और अविनाशी रामजीको भजो । मुनियोंको आनन्द देनेवाले, पृथ्वीका भार उतारनेवाले और तुलसीदासके उदार (दयालु) स्वामी श्रीरामजीको भजो ॥ ५ ॥

दो०—एहि विधि नगर नारि नर करहिं राम गुन गान ।

सानुकूल सब पर रहहिं संतत कृपानिधान ॥ ३० ॥

इस प्रकार नगरके स्त्री-पुरुष श्रीरामजीका गुण-गान करते हैं और कृपानिधान श्रीरामजी सदा सबपर अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं ॥ ३० ॥

चौ०—जब ते रामप्रताप खगेसा । उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा ॥

पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका । बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका ॥ १ ॥

[काकभुशुंडिजी कहते हैं—] हे पक्षिराज गरुड़जी ! जबसे रामप्रतापरूपी अत्यन्त प्रचण्ड सूर्य उदित हुआ, तबसे तीनों लोकोंमें पूर्ण प्रकाश भर रहा है । इससे बहुतोंको सुख और बहुतोंके मनमें शोक हुआ ॥ १ ॥

जिन्हहि सोक ते कहउँ बखानी । प्रथम अबिद्या निसा नसानी ॥

अथ उलूक जहँ तहाँ लुकाने । काम क्रोध कैरव सकुचाने ॥ २ ॥

जिन्हें-जिन्हें शोक हुआ, उन्हें मैं बखानकर कहता हूँ । सर्वत्र प्रकाश छा जानेसे पहले तो अविद्यारूपी रात्रि नष्ट हो गयी । अज्ञानरूपी रात्रि न रहनेसे पापरूपी उलूक जहाँ-तहाँ छिप गये और काम-क्रोधरूपी कुमुद संकुचित हो गये ॥ २ ॥

विबिध कर्म गुण काल सुभाऊ । ए चकोर सुख लहहि न काऊ ॥

मत्सर मान मोह मद चोरा । इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा ॥ ३ ॥

भौंति-भौतिके [बन्धनकारक] कर्म, गुण, काल और स्वभाव—ये चकोर हैं जो अज्ञानरूपी रात्रिके अभावमें कभी सुख नहीं पाते । मत्सर (डाढ़), मान, मोह और मदरूपी चोरोंका हुनर (कला) भी किसी ओर नहीं चल पाता ॥ ३ ॥

धरम तड़ाग ग्यान विग्याना । ए पंकज विकसे विधि नाना ॥

सुख संतोष विराग विवेका । बिगत सोक ए कोक अनेका ॥ ४ ॥

धर्मरूपी तालाबमें ज्ञान, विज्ञान ये अनेकों प्रकारके कमल खिल उठे । सुख, संतोष, वैराग्य और विवेक, ये अनेकों चकवे शोकरहित हो गये ॥ ४ ॥

दो०—यह प्रताप रवि जाकें उर जब करइ प्रकास ।

पछिले बाहहिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास ॥ ३१ ॥

यह श्रीरामप्रतापरूपी सूर्य जिसके हृदयमें जब प्रकाश करता है; तब जिनका वर्णन पीछेसे किया गया है वे (धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सुख, संतोष, वैराग्य और विवेक) बढ़ जाते हैं और जिनका वर्णन पहले किया गया है, वे (अविद्या, पाप, काम, क्रोध, कर्म, काल, गुण, स्वभाव आदि) नाशको प्राप्त होते हैं (नष्ट हो जाते हैं) ॥ ३१ ॥

चो०—भ्रातन्ह सहित रामु एक वारा । संग परम प्रिय पवनकुमारा ॥

सुंदर उपवन देखन गए । सब तरु कुसुमित पल्लव नए ॥ १ ॥

एक बार भाइयोंसहित श्रीरामचन्द्रजी परम प्रिय हनुमान्जीको साथ लेकर सुन्दर उपवन देखने गये । वहाँके सब वृक्ष फूले हुए और नये पत्तोंसे युक्त थे ॥ १ ॥

जानि समय सनकादिक आए । तेज पुंज गुन सील सुहाए ॥

ब्रह्मानंद सदा लय लीना । देखत बालक बहु कालीना ॥ २ ॥

सुअवसर जानकर सनकादि मुनि आये, जो तेजके पुंज, सुन्दर गुण और शीलसे युक्त तथा सदा ब्रह्मानन्दमें लवलीन रहते हैं । देखनेमें तो वे बालक लगते हैं; परन्तु हैं बहुत समयके ॥ २ ॥

रूप धरें जनु चारिउ बेदा । समदरसी मुनि विगत बिभेदा ॥

आसा बसन व्यसन यह तिन्हहीं । रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं ॥ ३ ॥

मानो चारों वेद ही बालकरूप धारण किये हुए हों । वे मुनि समदर्शी और भेदरहित हैं । दिशाएँ ही उनके बख हैं । उनके एक यही व्यसन है कि जहाँ श्रीरघुनाथजीकी चरित्र-कथा होती है वहाँ जाकर वे उसे अवश्य सुनते हैं ॥ ३ ॥

तहाँ रहे सनकादि भवानी । जहँ घटसंभव मुनिवर ग्यानी ॥

रामकथा मुनिवर बहु बरनी । ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी ॥ ४ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे भवानी ! सनकादि मुनि वहाँ थे (वहीसे आये थे) जहाँ शानी मुनिश्रेष्ठ श्रीभगवन् रहते थे । श्रेष्ठ मुनिने श्रीरामजीकी बहुत-सी कथाएँ वर्णन की थीं, जो वैसे ही ज्ञान उत्पन्न करनेवाली हैं, जैसे अरणि लकड़ीसे अग्नि उत्पन्न होती है ॥ ४ ॥

दो०—देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह ।

स्वागत पूँछि पीतपट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह ॥ ३२ ॥

सनकादि मुनियोंको आते देखकर श्रीरामचन्द्रजीने हर्षित होकर दण्डवत् की और उनका स्वागत पूछकर प्रभुने उनके बैठनेके लिये अपना पीताम्बर बिछा दिया ॥ ३२ ॥

चौ०—कीन्ह दंडवत तनिउँ भाई । सहित पवनसुत सुख अधिकाई ॥

मुनि रघुपति छवि अतुल बिलोकी । भए मगन मन सके न रोकी ॥ १ ॥

फिर हनुमान्जीसहित तीनों भाइयोंने दण्डवत् की; सबको बड़ा सुख हुआ । मुनि श्रीरघुनाथजीकी अतुलनीय छवि देखकर उसीमें मग्न हो गये । वे मनको रोक न सके ॥ १ ॥

स्यामल गात सरोरुह लोचन । सुंदरता मंदिर भव मोचन ॥

एकटक रहे निमेष न लावहिं । प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं ॥ २ ॥

वे भव (जन्म-मृत्युके चक्र) से छुड़ानेवाले, श्यामशरीर, कमलनयन, सुन्दरताके धाम श्रीरामजीको एकटकी लगाये देखते ही रह गये, पलक नहीं मारते । और प्रभु हाथ जोड़े सिर नवा रहे हैं ॥ २ ॥

तिन्ह कै दसा देखि रघुबीरा । स्रवत नयन जल पुलक सरीरा ॥

कर गहि प्रभु मुनिवर बैठारे । परम मनोहर वचन उचारे ॥ ३ ॥

उनकी प्रेमविह्वल दशा देखकर उन्हींकी भाँति श्रीरघुनाथजीके नेत्रोंसे भी [प्रेमाश्रुओंका] जल बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया । तदनन्तर प्रभुने हाथ पकड़कर श्रेष्ठ मुनियोंको बैठाया और परम मनोहर वचन कहे— ॥ ३ ॥

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा । तुम्हें दरस जाहिं अब खीसा ॥

बड़े भाग पाइब सतसंगा । विनहिं प्रयास होहिं भयभंगा ॥ ४ ॥

हे मुनीश्वरो ! मुनिये, आज मैं धन्य हूँ । आपके दर्शनोंहीसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं । बड़े ही भाग्यसे सत्संग प्राप्त होता है, जिससे विना ही परिश्रम जन्म-मृत्युका चक्र नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

दो०—संत संग अपवर्ग कर कामी भव कर पंथ ।

कहहिं संत कवि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ ॥ ३३ ॥

संतका संग मोक्ष (भव-बन्धनसे छूटने) का और कामीका संग भवबन्धनमें पड़नेका मार्ग है । संत, कवि और पण्डित, तथा वेद पुराण आदि सभी सद्ग्रन्थ ऐसा कहते हैं ॥ ३३ ॥

चौ०—सुनि प्रभुवचन हरषि मुनि चारी । पुलकित तन अस्तुनि अनुसारी ॥

जय भगवंत अनंत अनामय । अनघ अनेक एक करुणामय ॥ १ ॥

प्रभुके वचन सुनकर चारों मुनि हर्षित होकर, पुलकित शरीरसे स्तुति करने लगे—हे भगवंत ! आपकी जय हो । आप अन्तरहित, विकाररहित, पापरहित, अनेक (सब रूपोंमें प्रकट), एक (अद्वितीय) और करुणामय हैं ॥ १ ॥

जय निर्गुन जय जय गुनसागर । सुखमंदिर सुंदर अति नागर ॥

जय इंदिरा रमन जय भूधर । अनुपम अज अनादि सोभाकर ॥ २ ॥

हे निर्गुण ! आपकी जय हो । हे गुणसागर ! आपकी जय हो, जय हो । आप सुखके धाम, अत्यन्त सुन्दर और अति चतुर हैं । हे लक्ष्मीपति ! आपकी जय हो । हे पृथ्वीके धारण करनेवाले ! आपकी जय हो । आप उपमारहित, अजन्मा, अनादि और शोभाकी खान हैं ॥ २ ॥

ग्यान निधान अमान मानप्रद । पावन सुजस पुरान बेद बद ॥
तग्य कृतग्य अग्यता भंजन । नाम अनेक अनाम निरंजन ॥ ३ ॥

आप ज्ञानके भण्डार, स्वयं मानरहित और दूसरोंको मान देनेवाले हैं । वेद और पुराण आपका पावन सुन्दर यश गाते हैं । आप तत्त्वके जाननेवाले, उपकार माननेवाले और अज्ञानका नाश करनेवाले हैं । हे निरञ्जन (मायारहित) ! आपके अनेकों (अनन्त) नाम हैं, और कोई नाम नहीं है अर्थात् (आप सब नामोंके परे हैं) ॥ ३ ॥

सर्व सर्वगत सर्व उरालय । बससि सदा हम कहुँ परिपालय ॥
हृद बिपति भव फंद बिभंजय । हृदि बसि राम काम मद गंजय ॥ ४ ॥

आप सर्वरूप हैं, सबमें व्याप्त हैं और सबके हृदयरूपी घरमें सदा निवास करते हैं; अतः आप हमारा परिपालन कीजिये । राग-द्वेष, अनुकूलता-प्रतिकूलता, जन्म-मृत्यु आदि द्वन्द्व, विपत्ति और भवके जालको काट दीजिये । हे श्रीरामजी ! हमारे हृदयमें बसकर काम और मदका नाश कीजिये ॥ ४ ॥

दो०—परमानन्द कृपायतन मन परिपूरन काम ।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम ॥ ३४ ॥

आप परमानन्दस्वरूप, कृपाके धाम और मनकी कामनाओंको परिपूर्ण करनेवाले हैं । हे श्रीरामजी ! हमको अपनी अविचल प्रेमा-भक्ति दीजिये ॥ ३४ ॥

चो०—देहु भगति रघुपति अति पावनि । त्रिबिचि ताप भव दाप नसावनि ॥

प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु । होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बर ॥ १ ॥

हे रघुनाथजी ! आप हमें अपनी अत्यन्त पवित्र करनेवाली और तीनों प्रकारके तापों और जन्म-मरणके क्लेशोंका नाश करनेवाली भक्ति दीजिये ! हे शरणागतोंकी कामना पूर्ण करनेके लिये कामधेनु और कल्पवृक्षरूप प्रभो ! प्रसन्न होकर हमें यही वर दीजिये ॥ १ ॥

भव बारिचि कुंभज रघुनायक । सेवत सुलभ सकल सुख दायक ॥
मन संभव दारुन दुख दारय । दीनबंधु समता विस्तारय ॥ २ ॥

हे रघुनाथजी ! आप भवसागरको सोखनेके लिये अगस्त्य हैं । आप सेवा करनेमें सुलभ हैं, तथा सब सुखोंके देनेवाले हैं । हे दीनबन्धु ! मनसे उत्पन्न दारुण दुःखोंका नाश कीजिये और [हममें] समदृष्टिका विस्तार कीजिये ॥ २ ॥

आस त्रास हरिषादि निवारक । विनय विवेक विरति विस्तारक ॥
भूष मौलि मनि मंडन धरनी । देहि भगति संसृति सार तरनी ॥ ३ ॥

आप आशा, भय और ईर्ष्या आदिके निवारण करनेवाले हैं । विनय, विवेक और वैराग्यके विस्तार करनेवाले हैं । हे राजाओंके शिरोमणि एवं पृथ्वीके भूषण श्रीरामजी ! संसृति (जन्म-मृत्युके प्रवाह) रूपी नदीके लिये नौकास्व अपनी भक्ति प्रदान कीजिये ॥ ३ ॥

मुनि मन मानस हंस निरंतर । चरन कमल बंदित अज संकर ॥
रघुकुल केतु सेतु श्रुति रच्छक । काल करम सुभाउ गुन भच्छक ॥ ४ ॥

हे मुनियोंके मनरूपी मानसरोवरमें निरन्तर निवास करनेवाले हंस ! आपके चरणकमल ब्रह्माजी और शिवजीके द्वारा वन्दित हैं । आप रघुकुलके केतु, वेदमर्यादाके रक्षक, और काल, कर्म, स्वभाव तथा गुणरूप बन्धनोंके भक्षक (नाशक) हैं ॥ ४ ॥

तारन तरन हरन सब दूषन । तुलसीदास प्रभु त्रिभुवन भूषन ॥ ५ ॥

आप तरन-तारन (स्वयं तरे हुए और दूसरोंको तारनेवाले) तथा सब दोषोंको हरनेवाले हैं । तीनों लोकोंके विभूषण आप ही तुलसीदासके स्वामी हैं ॥ ५ ॥

दो०—बार बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिर नाइ ।

ब्रह्मभवन सनकादि ने अति अभीष्ट वर पाइ ॥ ३५ ॥

प्रेमसहित बार-बार स्तुति करके और सिर नवाकर तथा अत्यन्त मनवाञ्छित वर पाकर सनकादि मुनि ब्रह्मलोकको गये ॥ ३५ ॥

चौ०—सनकादिक विधि लोक सिधाए । भ्रातन्ह राम चरन सिर नाए ॥

पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं । चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं ॥ १ ॥

सनकादि मुनि ब्रह्मलोकको चले गये । तब भाइयोंने श्रीरामजीके चरणोंमें सिर नवाया । सब भाई प्रभुसे पूछते सकुचाते हैं । इसलिये सब हनुमान्जीकी ओर देख रहे हैं ॥ १ ॥

सुनी चहहिं प्रभु मुख कै बानी । जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी ॥

अंतरजामी प्रभु सभ जाना । बूझत कहहु काह हनुमाना ॥ २ ॥

वे प्रभुके श्रीमुखकी वाणी सुनना चाहते हैं, जिसे सुनकर सारे भ्रमोंका नाश हो जाता है । अन्तर्यामी प्रभु सब जान गये, और पूछने लगे—कहो, हनुमान् ! क्या बात है ? ॥ २ ॥

जोरि पानि कह तब हनुमंता । सुनहु दीनदयाल भगवंता ॥

नाथ भरत कह्यु पूँछन चहहीं । प्रश्न करत मन सकुचन अहहीं ॥ ३ ॥

तब हनुमान्जी हाथ जोड़कर बोले—हे दीनदयाल भगवान् ! मुनिये । हे नाथ ! भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं । पर प्रश्न करते मनमें सकुचा रहे हैं ॥ ३ ॥

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ । भरतहि मोहि कह्यु अंतर काऊ ॥

सुनि प्रभु वचन भरत गहे चरना । सुनहु नाथ प्रन्तारति हरना ॥ ४ ॥

[भगवान्ने कहा—] हनुमान् ! तुम तो मेरा स्वभाव जानते ही हो । भरतके और मेरे बीचमें कभी भी कोई अन्तर (भेद) है ? प्रभुके वचन सुनकर भरतजीने उनके चरण पकड़ लिये [और कहा—] हे नाथ ! हे शरणागतके दुःखोंको हरनेवाले ! मुनिये ॥ ४ ॥

दो०—नाथ न मोहि संदेह कह्यु सपनेहुँ सोक न मोह ।

केवल कृपाँ तुम्हारिहि कृपानंद संदोह ॥ ३६ ॥

हे नाथ ! न तो मुझे कुछ सन्देह है, और न स्वप्नमें भी शोक और माह है । हे कृपा और आनन्दके समूह ! यह केवल आपकी ही कृपाका फल है ॥ ३६ ॥

चौ०—करउँ कृपानिधि एक दिठाई । मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई ॥

संतन्ह के महिमा रघुराई । बहुविधि बेद पुरानन्ह गाई ॥ १ ॥

तथापि हे कृपानिधान ! मैं आपसे एक धृष्टता करता हूँ । मैं सेवक हूँ और आप सेवकको सुख देनेवाले हैं । [इससे मेरी धृष्टताको क्षमा कीजिये और मेरे प्रश्नका उत्तर देकर सुख दीजिये] । हे रघुनाथजी ! वेद-पुराणोंनि संतोंकी महिमा बहुत प्रकारसे गायी है ॥ १ ॥

श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि बड़ाई । तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकारि ॥

सुना चहउँ प्रभु तिन्ह कर लच्छन । कृपासिंधु गुन ग्यान विचच्छन ॥ २ ॥

आपने भी अपने श्रीमुखसे उनकी बड़ाई की है । और उनपर प्रभु (आप) का प्रेम भी बहुत है । हे प्रभो ! मैं उनके लक्षण सुनना चाहता हूँ । आप कृपाके समुद्र हैं और गुण और ज्ञानमें अत्यन्त निपुण हैं ॥ २ ॥

संत असंत भेद बिलगारि । प्रनतपाल मोहि कहहु बुझारि ॥

संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता । अगनित श्रुति पुरान बिख्याता ॥ ३ ॥

हे शरणागतका पालन करनेवाले ! संत और असंतके भेद अलग-अलग करके मुझको समझाकर कहिये । [श्रीरामजीने कहा—] हे भाई ! संतोंके लक्षण (गुण) असंख्य हैं, जो वेद और पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं ॥ ३ ॥

संत असंतन्हि कै असि करनी । जिमि कुठार चंदन आचरनी ॥

काटइ परसु मलय सुनु भाई । निज गुन देइ सुगंध बसारि ॥ ४ ॥

संत और असंतोंकी करनी ऐसी है जैसे कुल्हाड़ी और चन्दनका आचरण होता है । हे भाई ! सुनो, कुल्हाड़ी चन्दनको काटती है, [क्योंकि उसका स्वभाव या काम ही वृक्षोंको काटना है] और चन्दन [अपने स्वभाववश] अपना गुण देकर उसे (काटनेवाली कुल्हाड़ीको) सुगन्धसे सुवासित कर देता है ॥ ४ ॥

दो०—ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड ।

अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड ॥ ३७ ॥

इसी गुणके कारण चन्दन देवताओंके सिरोंपर चढ़ता है और जगत्का प्रिय हो रहा है । और कुल्हाड़ीके मुक्कको यह दण्ड मिलता है कि उसको आगमें जलकर फिर घनसे पीटते हैं ॥ ३७ ॥

चो०—विषय अलंपट सील गुनाकर । पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ॥

सम अभूतरिपु बिमद विरागी । लोभामरष हरष भय त्यागी ॥ १ ॥

संत विषयोंमें लम्पट (लिप्त) नहीं होते, शील और सदगुणोंकी खान होते हैं । उन्हें पराया दुःख देखकर दुःख और सुख देखकर सुख होता है । वे सबमें, सर्वत्र, सब समय समता रखते हैं, उनके मन कोई उनका शत्रु नहीं है, वे मदसे रहित और वैराग्यवान् होते हैं तथा लोभ, क्रोध, हर्ष और भयका त्याग किये हुए रहते हैं ॥ १ ॥

कोमलचित दीनन्ह पर दाया । मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥

सबहि मानप्रद आपु अमानी । भरत प्रानसम मम ते प्राणी ॥ २ ॥

उनका चित्त बड़ा कोमल होता है । वे दीनोंपर दया करते हैं, मन, वचन और कर्मसे मेरी निष्कपट (विशुद्ध) भक्ति करते हैं । सबको सम्मान देते हैं, पर स्वयं मानरहित होते हैं । हे भरत ! वे प्राणी (संतजन) मेरे प्राणोंके समान हैं ॥ २ ॥

विगत काम मम नाम परायन । सांति बिरति बिनती मुदितायन ॥

सीतलता सरलता मयत्री । द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ॥ ३ ॥

उनको कोई कामना नहीं होती । वे मेरे नामके परायण होते हैं । शान्ति, वैराग्य, विनम्रता और

प्रसन्नताके घर होते हैं। उनमें शीतलता, सरलता, सबके प्रति मित्रभाव और ब्राह्मणके चरणोंमें प्रीति होती है, जो घमोंको उत्पन्न करनेवाली है ॥ ३ ॥

ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत पुर ॥

सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहुँ नहिं बोलहिं ॥ ४ ॥

हे तात ! ये सब लक्षण जिसके हृदयमें बसते हों, उसको सदा सच्चा संत जानना। जो शम, दम, नियम और नीतिसे कभी विचलित नहीं होते और मुग्धसे कभी कठोर वचन नहीं बोलते; ॥ ४ ॥

दो०—निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पदकंज ।

ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुनमंदिर सुखपुंज ॥ ३८ ॥

जिन्हें निंदा और स्तुति (बड़ाई) दोनों समान हैं और मेरे चरणकमलोंमें जिनकी ममता है, वे गुणोंके धाम और मुग्धकी राशि संतजन मुझे प्राणोंके समान प्रिय हैं ॥ ३८ ॥

चो०—सुनहु असंतनह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ ॥

तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि बालइ हरहाई ॥ १ ॥

अब असंतोका (दुष्टोका) स्वभाव सुनो। कभी भूलकर भी उनकी संगति नहीं करनी चाहिये। उनका संग सदा दुःख देनेवाला होता है। जैसे हरहाई (बुरी जातिकी) गाय कपिल (सीधी और दुधार) गायको अपने मंगसे नष्ट कर डालती है ॥ १ ॥

खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपत्ति देखी ॥

जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई ॥ २ ॥

दुष्टोंके हृदयमें बहुत अधिक संताप रहता है। वे परायी सम्पत्ति देखकर सदा जलते रहते हैं। वे जहाँ कहीं दूसरेकी निंदा सुन पाते हैं, वहाँ ऐसे हर्षित होते हैं मानो गस्तेमें पड़ी निधि पा ली हो ॥ २ ॥

काम क्रोध मद लोभ परायण। निर्दय कपटी कुटिल मलायण ॥

बयक अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों ॥ ३ ॥

वे काम, क्रोध, मद और लोभके परायण; तथा निर्दयी, कपटी, कुटिल और पापोंके घर होते हैं। वे बिना ही कारण सब किराये वर किया करते हैं। जो भलाई करता है उसके साथ भी बुराई करते हैं ॥ ३ ॥

झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना ॥

बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा ॥ ४ ॥

उनका झूठा ही लेना और झूठा ही देना होता है। झूठा ही भोजन होता है और झूठा ही चबेना होता है। (अर्थात् वे लेने-देनेके व्यवहारमें झूठका आश्रय लेकर दूसरोंका हक मार लेते हैं अथवा झूठी डाँग हाँका करते हैं कि हमने लाखों रुपये ले लिये, करोड़ोंका दान कर दिया। इसी प्रकार कहते हैं कि आज खूब माल खाकर आये; चबेना चबाकर रह जाते हैं, हमें बढ़िया भोजनसे वैराग्य है, इत्यादि। मतलब यह कि वे सभी बातोंमें झूठ ही बोला करते हैं।) जैसे मोर बहुत मीठा बोलता है परन्तु उसका हृदय ऐसा कठोर होता है कि वह महान् विषैले साँपोंको भी खा जाता है। वैसे ही वे भी ऊपरसे मीठे वचन बोलते हैं [परन्तु हृदयके बड़े ही निर्दयी होते हैं] ॥ ४ ॥

दो०—परद्रोही पर दार रत परधन पर अपवाद ।

ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद ॥ ३९ ॥

वे दूसरोंसे द्रोह करते हैं; परायी स्त्री, पराये धन और परायी निन्दामें आसक्त रहते हैं। वे पामर और पापमय मनुष्य नर-शरीर धारण किये हुए राक्षस ही हैं ॥ ३९ ॥

चौ०—लोभइ ओढ़न लोभइ डासन । सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न ॥

काह की जाँ सुनहिं बढ़ाई । खास लेहिं जनु जूझी आई ॥ १ ॥

लोभ ही उनका ओढ़ना और लोभ ही बिछौना होता है। वे पशुओंके समान आहार और मैथुनके परायण होते हैं। उन्हें यमपुरका भय नहीं लगता। यदि किसीकी बढ़ाई सुन पाते हैं, तो वे ऐसी साँस लेते हैं मानो जूझी आ गयी हो ॥ १ ॥

जब काह के देखहिं बिपती । सुखी भए मानहुँ जग नृपती ॥

स्वार्थ रत परिवार विरोधी । लंपट काम लोभ अति क्रोधी ॥ २ ॥

और जब किसीकी विपत्ति देखते हैं, तब ऐसे सुखी होते हैं मानो जगत्भरके राजा हो गये हों। वे स्वार्थपरायण, परिवारवालोंके विरोधी, काम और लोभके कारण लम्पट, और अत्यन्त क्रोधी होते हैं ॥ २ ॥

मातु पिता गुरु बिप्र न मानहिं । आपु गए अरु घालहिं आनहिं ॥

करहिं मोह बस द्रोह परावा । संतसंग हरिकथा न भावा ॥ ३ ॥

वे माता, पिता, गुरु और ब्राह्मण किसीको नहीं मानते। आप तो नष्ट हुए ही रहते हैं, अपने संगसे दूसरोंको भी नष्ट करते हैं। मोहवशा दूसरोंसे द्रोह करते हैं। उन्हें न संतोंका संग अच्छा लगता है, न भगवान्की कथा ही सुहाती है ॥ ३ ॥

अवगुन सिंधु मंदमति कामी । वेद विदूषक परधन स्वामी ॥

बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसंघा । दंभ कपट जियँ धरें सुबेरा ॥ ४ ॥

वे अवगुणोंके समुद्र, मन्दबुद्धि, कामी (रागयुक्त), वेदोंके निन्दक और जबर्दस्ता पराये धनके स्वामी (लूटनेवाले) होते हैं। वे दूसरोंसे द्रोह तो करते ही हैं परन्तु ब्राह्मण-द्रोह विशेषतासे करते हैं। उनके हृदयमें दम्भ और कपट भरा रहता है, परन्तु वे ऊपरसे सुन्दर वेष धारण किये रहते हैं ॥ ४ ॥

दो०—ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्राताँ नाहिं ।

द्रापर कलुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं ॥ ४० ॥

ऐसे नीच और दुष्ट मनुष्य सतयुग और त्रेतामें नहीं होते। द्रापरमें थोड़े-से होंगे, और कलियुगमें तो इनके झुंड-के-झुंड होंगे ॥ ४० ॥

चौ०—परहित सरिस धर्म नहिं भाई । परपीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

निर्णय सकल पुरान वेद कर । कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर ॥ १ ॥

हे भाई ! परोपकारके समान कोई धर्म नहीं है और दूसरोंको दुःख पहुँचानेके समान कोई नीचता (पाप) नहीं है। हे तात ! समस्त पुराणों और वेदोंका यह निर्णय (निश्चित सिद्धान्त) मैंने तुमसे कहा है, इस बातको पण्डितलोग जानते हैं ॥ १ ॥

नर सरीर धरि जे परपीरा । करहिं ते सहहिं महा भवभीरा ॥

करहिं मोह बस नर अघ नाना । स्वारथ रत परलोक नसाना ॥ २ ॥

मनुष्यका शरीर धारण करके जो लोग दूसरोंको दुःख पहुँचाते हैं, उनको भवके महान् संकट सहने पड़ते हैं । मनुष्य मोहवश स्वार्थपरायण होकर अनेकों पाप करते हैं । इसीसे उनका परलोक नष्ट हुआ रहता है ॥ २ ॥

कालरूप तिन्ह कहैं में भ्राता । सुभ अरु असुभ कर्मफल दाता ॥

अस बिचारि जे परम सयाने । भजहिं मोहि संसृत दुख जाने ॥ ३ ॥

हे भाई ! मैं उनके लिये कालरूप (भयंकर) हूँ, और उनके अच्छे और बुरे कर्मोंका यथायोग्य फल देनेवाला हूँ । ऐसा विचारकर जो लोग परम चतुर हैं, वे संसृति (संसार) को दुःखरूप जानकर मुझे ही भजते हैं ॥ ३ ॥

त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक । भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक ॥

संत असंतन्ह के गुन भाषे । ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे ॥ ४ ॥

इसीसे वे शुभ और अशुभ फल देनेवाले कर्मोंको त्यागकर देवता, मनुष्य और मुनियोंके नायक मुझको भजते हैं । मैंने संतो और असंतोंके गुण कहे । जिन लोगोंने इन गुणोंको समझ रक्खा है, वे भव (जन्म-मरणके चक्र) में नहीं पड़ते ॥ ४ ॥

दो०—सुनहु तात मायाकृत गुन अरु दोष अनेक ।

गुन यह उमय न देखिअहिं देखिअ सो अविवेक ॥ ४१ ॥

हे तात ! सुनो, मायाके रचे हुए ही अनेक (सब) गुण और दोष हैं (इनकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है) । गुण (विवेक) इसीमें है कि दोनो ही न देखे जायें; इन्हें देखना यही अविवेक है ॥ ४१ ॥

चौ०—श्रीमुख बचन सुनत सब भाई । हरये प्रेम न हृदयँ समाई ॥

करहिं चिनय अति बारहिं बारा । हनुमान हियँ हरय अपारा ॥ १ ॥

भगवान्‌के श्रीमुखसे ये वचन सुनकर सब भाई हर्षित हो गये । प्रेम उनके हृदयोंमें समाता नहीं । वे बार-बार बड़ी चिन्तनी करते हैं । विशेषकर हनुमानजीके हृदयमें अपार हर्ष है ॥ १ ॥

पुनि रघुपति निज मंदिर गए । एहि बिधि चरित करत नित नप ॥

बार बार नारद मुनि आवहिं । चरित पुनीत राम के गावहिं ॥ २ ॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी अपने महलको गये । इस प्रकार वे नित्य नयी लीला करते हैं । नारदमुनि अयोध्यामें बार-बार आते हैं, और आकर श्रीरामजीके पवित्र चरित्र गाते हैं ॥ २ ॥

नित नव चरित देखि मुनि जाहीं । ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं ॥

सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं । पुनि पुनि तात करहु गुनगानहिं ॥ ३ ॥

मुनि यहाँसे नित्य नये-नये चरित्र देखकर जाते हैं और ब्रह्मलोकमें जाकर सब कथा कहते हैं । ब्रह्माजी सुनकर अत्यन्त सुख मानते हैं और कहते हैं—हे तात ! बार-बार श्रीरामजीके गुणोंका गान करो ॥ ३ ॥

सनकादिक नारदहिं सराहहिं । जयपि ब्रह्मनिरत मुनि आवहिं ॥

पुनि गुनगान समाधि बिसारी । सादर सुनहिं परम अधिकारी ॥ ४ ॥

सनकादि मुनि नारदजीकी सराहना करते हैं। यद्यपि वे (सनकादि) मुनि ब्रह्मनिष्ठ हैं, परन्तु श्रीरामजीका गुणगान सुनकर वे भी अपनी ब्रह्मसमाधिको भूल जाते हैं और आदरपूर्वक उसे सुनते हैं। वे रामकथा सुननेके अधिकारी हैं ॥ ४ ॥

दो०—जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान ।

जे हरिकथाँ न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषाण ॥ ४२ ॥

सनकादि मुनि-जैसे जीवनमुक्त और ब्रह्मनिष्ठ पुरुष भी ध्यान (ब्रह्म-समाधि) छोड़कर श्रीरामजीके चरित्र सुनते हैं। यह जानकर भी जो श्रीहरिकी कथासे प्रेम नहीं करते, उनके हृदय सचमुच ही फथरके समान हैं ॥ ४२ ॥

चौ०—एक बार रघुनाथ बोलाए। गुर द्विज पुरबासी सब आए ॥

बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन ॥ १ ॥

एक बार श्रीरघुनाथजीके बुलाये हुए गुरु वशिष्ठजी, ब्राह्मण और नगरनिवासी सब सभामें आये। जब गुरु, मुनि, ब्राह्मण तथा अन्य सब सज्जन यथायोग्य बैठ गये, तब भक्तोंके जन्म-मरणको मिटानेवाले श्रीरामजी वचन बोले— ॥ १ ॥

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी ॥

नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुतार्। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहार् ॥ २ ॥

हे समस्त नगरनिवासियो ! मेरी बात सुनिये। मैं हृदयमें कुछ ममता लाकर नहीं कहता हूँ। न अनीतिकी बात कहता हूँ और न इसमें कुछ प्रभुता ही है। (अर्थात् न तो मैं इस ममत्वके भावसे कहता हूँ कि ये मेरे हैं, मैं कहूँगा सो मान ही लेंगे; या न इस वाणीमें ही मेरी कोई ममता है जिसके न माननेसे मुझे खेद होगा। न राजाकी हैसियतसे कहता हूँ कि मेरी राजाशा माननी ही पड़ेगी; और न अन्यायकी ही बात कहता हूँ।) इसलिये [संकोच और भय छोड़कर, ध्यान देकर] मेरी बातोंको सुन लो और यदि तुम्हें अच्छी लगे, तो उसके अनुसार करो ! ॥ २ ॥

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानइ जोई ॥

जौ अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि वरजहु भय बिसरार् ॥ ३ ॥

वही मेरा सेवक है, और वही प्रियतम है, जो मेरी आज्ञा माने ! हे भाई ! यदि मैं कुछ अनीतिकी बात कहूँ तो भय भुलाकर (बेखटके) मुझे रोक देना ॥ ३ ॥

बड़ै भाग मानुष तनु पावा। सुरदुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥

साधनधाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ॥ ४ ॥

बड़े भाग्यसे यह मनुष्यशरीर मिला है। सब ग्रन्थोंने यही कहा है कि यह शरीर देवताओंको भी दुर्लभ है। यह साधनका धाम और मोक्षका दरवाजा है। इसे पाकर भी जिसने परलोक न बना लिया, ॥ ४ ॥

दो०—सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ ।

कालहि कर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोस लगाइ ॥ ४३ ॥

वह परलोकमें दुःख पाता है, सिर पीट-पीटकर पछताता है तथा [अपना दोष न समझकर] कालपर, कर्मपर और ईश्वरपर मिथ्या दोष लगाता है ॥ ४३ ॥

चौ०—एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदार् ॥

नरतनु पाइ बिषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं ॥ १ ॥

हे भाई ! इस शरीरके प्राप्त होनेका फल विषयभोग नहीं है । [इस जगत्के भोगोंकी तो बात ही क्या,] स्वर्गका भोग भी बहुत थोड़ा है और अन्तमें दुःख देनेवाला है । अतः जो लोग मनुष्यशरीर पाकर विषयोंमें मन लगा देते हैं, वे मूर्ख अमृतको बदलकर विष ले लेते हैं ॥ १ ॥

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई । गुंजा ग्रहइ परस मनि कोई ॥

आकर चारि लच्छ चौरासी । जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी ॥ २ ॥

जो पारस मणिको खोकर बदलेमें छुपची ग्रहण कर लेता है, उसको कभी कोई भला (बुद्धिमान्) नहीं कहता । यह अविनाशी जीव चार (अण्डज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज) खानों और चौरासी लाख योनियोंमें चक्कर लगाता रहता है ॥ २ ॥

फिरत सदा माया कर प्रेर । काल कर्म सुभाव गुन घेरा ॥

कबहुँक करि करुना नरदेही । देत ईस बिनु हेतु सनेही ॥ ३ ॥

मायाकी प्रेरणासे काल, कर्म, स्वभाव और गुणसे घिरा हुआ (इनके वशमें हुआ) यह सदा भटकता रहता है । बिना ही कारण स्नेह करनेवाले ईश्वर कभी बिरले ही दया करके इसे मनुष्यका शरीर दे देते हैं ॥ ३ ॥

नरतनु भव बारिधि कहुँ बेरो । सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥

करनधार सदगुर दढ़ नावा । दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥ ४ ॥

यह मनुष्यका शरीर भवसागरसे तारनेके लिये बेड़ा (जहाज) है । मेरी कृपा ही अनुकूल वायु है । सद्गुरु इस मजबूत जहाजके कर्णधार (खेनेवाले) हैं । इस प्रकार दुर्लभ (कठिनातासे मिलनेवाले) साधन सुलभ होकर (भगवत्कृपासे सहज ही) उसे प्राप्त हो गये हैं, ॥ ४ ॥

दो०—जो न तै भवसागर नर समाज अस पाइ ।

सो कृतनिंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य ऐसे साधन पाकर भी भवसागरसे न तरे, वह कृतघ्न और मन्दबुद्धि है, और आत्महत्या करनेवालेकी गतिको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

चौ०—जौ परलोक इहाँ सुख चहइ । सुनि मम वचन हृदयँ दढ़ गहइ ॥

सुलभ सुखद मारग यह भाई । भगति मोरि पुरान श्रुति गाई ॥ १ ॥

यदि परलोकमें और यहाँ दोनों जगह सुख चाहते हो, तो मेरे वचन सुनकर उन्हें हृदयमें दढ़तासे पकड़ रक्खो । हे भाई ! यह मेरी भक्तिका मार्ग सुलभ और सुखदायक है, पुराणों और वेदोंने इसे गाया है ॥ १ ॥

ग्यान अगम प्रत्युह अनेका । साधन कठिन न मन कहुँ टेका ॥

करत कष्ट बहु पावइ कोऊ । भक्तिहीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ ॥ २ ॥

ज्ञान अगम (दुर्गम) है, उसकी प्राप्तिमें अनेकों विघ्न हैं । उसका साधन कठिन है और उसमें मनके लिये कोई आधार नहीं है । बहुत कष्ट करनेपर कोई उसे पा भी लेता है, तो वह भी भक्तिरहित होनेसे मुझको प्रिय नहीं होता ॥ २ ॥

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी । बिनु सतसंग न पावहिं प्राणी ॥

पुण्यपुंज बिनु मिलहिं न संता । सतसंगति संसृति कर अंता ॥ ३ ॥

भक्ति स्वतन्त्र है, और सब सुखोंकी खान है । परन्तु सत्संगके (संतोंके संग) बिना प्राणी इमे नहीं पा सकते । और पुण्यसमूहके बिना संत नहीं मिलते । सत्संगति ही संसृतिका (जन्म-मरणके चक्रका) अन्त करती है ॥ ३ ॥

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा । मन कम बचन बिप्र पद पूजा ॥

सानुकूल तेहि पर मुनि देवा । जो तजि कपटु करइ द्विजसेवा ॥ ४ ॥

जगत्में पुण्य एक ही है, [उसके समान] दूसरा नहीं । वह है—मन, कर्म और बचनसे ब्राह्मणोंके चरणोंकी पूजा करना । जो कपटका त्याग करके ब्राह्मणोंकी सेवा करता है उसपर मुनि और देवता प्रसन्न रहते हैं ॥ ४ ॥

दो०—औरउ एक गुप्त मत सबहि कहउँ कर जोरि ।

संकर मजन बिना नर भगति न पावइ मोरि ॥ ४५ ॥

और भी एक गुप्त मत है, मैं उसे सबसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि शङ्करजीके भजन बिना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं पाता ॥ ४५ ॥

चौ०—कहहु भगति पथ कवन प्रयासा । जोग न मख जप तप उपवासा ॥

सरल सुभाव न मन कुटिलाई । जथा लाभ संतोष सदाई ॥ १ ॥

कहो तो, भक्तिमार्गमें कौन-सा परिश्रम है ? इसमें न योगकी आवश्यकता है, न यज्ञ, जप, तप और उपवासकी ! यहाँ इतना ही आवश्यक है कि सरल स्वभाव हो, मनमें कुटिलता न हो, और जो कुछ मिले उसीमें सदा संतोष रक्खे ॥ १ ॥

मेर दास कहाइ नर आसा । करइ तौ कहहु कहा बिखासा ॥

बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई । एहि आचरन बस्य मैं भाई ॥ २ ॥

मेरा दास कहलाकर यदि कोई मनुष्योंकी आज्ञा करे, तो तुम्हीं कहो, उसका क्या विश्वास है ? (अर्थात् उसकी मुझपर आज्ञा बहुत ही निर्बल है ।) बहुत बात बढ़ाकर क्या कहूँ ? हे भाइयो ! मैं तो इसी आचरणके वशमें हूँ ॥ २ ॥

पैर न विग्रह आस न त्रासा । सुखमय ताहि सदा सब आसा ॥

अनारंभ अनिकेत अमानी । अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी ॥ ३ ॥

न किसीमें पैर करे, न लड़ाई-झगड़ा करे; न आशा रक्खे, न भय ही करे । उसके लिये सभी दिशाएँ सदा सुखमयी हैं । जो कोई भी आरम्भ (आसक्तिपूर्वक कर्म) नहीं करता, जिसका कोई अपना घर नहीं है (घरमें ममता नहीं है) ; जो मानहीन, पापहीन और क्रोधहीन है, जो [भक्ति करनेमें] निपुण और विज्ञानवान् है, ॥ ३ ॥

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा । तन सम बिपय स्वर्ग अपवर्गा ॥

भगति पछ हट नहिं सठतारै । दुष्ट तर्क सब दूरि बहाराई ॥ ४ ॥

संतजनोंके संग (संसर्ग) से जिसे सदा प्रेम है, जिसके मनमें सब विषय यहाँतक कि स्वर्ग और मुक्तिवत्क [भक्तिके सामने] तृणके समान हैं, जो भक्तिके पक्षमें हट करता है, पर मूर्खता नहीं करता तथा जिसने सब कुतर्कोंको दूर बटा दिया है, ॥ ४ ॥

दो०—मम गुनग्राम नाम रत गत ममता मद मोह ।

ताकर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह ॥ ४६ ॥

जो मेरे गुणसमूहोंके और मेरे नामके परायण है, एवं ममता, मद और मोहसे रहित है, उसका सुख वही जानता है, जो परमात्मारूप परानन्द राशिको प्राप्त है ॥ ४६ ॥

चौ०—सुनत सुधासम बचन राम के । गहे सबनि पद कृपाधाम के ॥

जननि जनक गुर बंधु हमारे । कृपानिधान प्राण ते प्यारे ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके अमृतके समान वचन सुनकर सबने कृपाधामके चरण पकड़ लिये । [और कहा—]
हे कृपानिधान ! आप हमारे माता, पिता, गुरु, भाई सब कुछ हैं, और प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं ॥ १ ॥

तनु घनु धाम राम हितकारी । सब बिधि तुम्ह प्रनतारति हारी ॥

असि सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ । मातु पिता स्वारथ रत ओऊ ॥ २ ॥

और हे शरणागतके दुःख हरनेवाले रामजी ! आप ही हमारे तन, धन, धाम और सभी प्रकारसे हित करनेवाले हैं । ऐसी शिक्षा आपके अतिरिक्त कोई नहीं दे सकता । माता-पिता हितैषी हैं और शिक्षा भी देते हैं, परन्तु वे भी स्वार्थपरायण हैं । [इसलिये ऐसी परम हित करनेवाली शिक्षा नहीं देते] ॥ २ ॥

हेतु रहित जग जुग उपकारी । तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी ॥

स्वारथ मीत सकल जग माहीं । सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं ॥ ३ ॥

हे असुरोंके शत्रु ! जगत्में बिना हेतुके (निःस्वार्थ) उपकार करनेवाले तो दो ही हैं—एक आप, दूसरे आपके सेवक । जगत्में शेष सभी स्वार्थके मित्र हैं । हे प्रभो ! उनमें स्वप्नमें भी परमार्थका भाव नहीं है ॥ ३ ॥

सब के वचन प्रेम रस साने । सुनि रघुनाथ हृदयँ हरपाने ॥

निज निज गृह गए आयसु पाई । बरनत प्रभु बतकही सुहाई ॥ ४ ॥

सबके प्रेमरसमें सने हुए वचन सुनकर श्रीरघुनाथजी हृदयमें हर्षित हुए । फिर आज्ञा पाकर सब प्रभुकी सुन्दर बातचीतका वर्णन करते हुए अपने-अपने घर गये ॥ ४ ॥

दो०—उमा अवधवासी नर नारि कृतार्थ रूप ।

ब्रह्म सच्चिदानन्द धन रघुनाथक जहँ भूप ॥ ४७ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! अयोध्यामें रहनेवाले पुरुष और स्त्री सभी कृतार्थस्वरूप हैं; जहाँ स्वयं सच्चिदानन्दधन ब्रह्म श्रीरघुनाथजी राजा हैं ॥ ४७ ॥

चौ०—एक बार बसिष्ठ मुनि आए । जहाँ राम सुखधाम सुहाए ॥

अति आदर रघुनाथक कीन्हा । पद पखारि पादोदक लीन्हा ॥ १ ॥

एक बार मुनि वशिष्ठजी वहाँ आये जहाँ सुन्दर मुनिके धाम श्रीरामजी थे । श्रीरघुनाथजीने उनका बहुत ही आदर-सत्कार किया और उनके चरण धोकर चरणामृत लिया ॥ १ ॥

राम सुनहु मुनि कह कर जोरी । कृपासिंधु विनती कछु मोरी ॥

देखि देखि आचरन तुम्हारा । होत मोह मम हृदयँ अपारा ॥ २ ॥

मुनिने हाथ जोड़कर कहा—हे कृपासागर श्रीरामजी ! मेरी कुछ विनती सुनिये । आपके आचरणों (मनुष्योचित चरित्रों) को देख-देखकर मेरे हृदयमें अपार मोह होता है ॥ २ ॥

महिमा अमिति बेद नहिं जाना । मैं केहि भाँति कहों भगवाना ॥

उपरोहित्य कर्म अति मंदा । बेद पुरान स्मृति कर निंदा ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! आपकी महिमाकी सीमा नहीं है, उसे वेद भी नहीं जानते । फिर मैं किस प्रकार कह सकता हूँ ? पुरोहितीका कर्म (पेशा) बहुत ही नीचा है । वेद, पुराण और स्मृति सभी इसकी निन्दा करते हैं ॥ ३ ॥

जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही । कहा लाभ आगेँ सुत तोही ॥

परमात्मा ब्रह्म नर रूपा । होइहि रघुकुल भूषन भूपा ॥ ४ ॥

जब मैं उसे (सूर्यवंशकी पुरोहितीका काम) नहीं लेता था, तब ब्रह्माजीने मुझे कहा था—हे पुत्र ! इससे तुमको आगे चलकर बहुत लाभ होगा। स्वयं ब्रह्म परमात्मा मनुष्यरूप धारणकर रघुकुलके भूषण राजा होंगे ॥ ४ ॥

दो०—तब मैं हृदय विचारा जोग जग्य व्रत दान ।

जा कहूँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन ॥ ४८ ॥

तब मैंने हृदयमें विचार किया कि जिसके लिये योग, यज्ञ, व्रत और दान किये जाते हैं, उसे मैं इसी कर्मसे पा जाऊँगा; तब तो इसके समान दूसरा कोई धर्म ही नहीं है ॥ ४८ ॥

चौ०—जप तप नियम जोग निज धर्मा । श्रुतिसंभव नाना सुभ कर्मा ॥

ग्यान दया दम तीरथ मज्जन । जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन ॥ १ ॥

जप, तप, नियम, योग, अपने-अपने वर्णाश्रमके धर्म, श्रुतियांसे उत्पन्न (वेदविहित) बहुत-से शुभ कर्म, शान, दया, दम (इन्द्रियनिग्रह) तीर्थस्नान आदि जहाँतक वेद और संतजनोंने धर्म कहे हैं [उनके करनेका]—॥ १ ॥

आगम निगम पुरान अनेका । पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ॥

तब पद पंकज प्रीति निरंतर । सब साधन कर यह फल सुंदर ॥ २ ॥

हे प्रभो ! अनेक तन्त्र, वेद और पुराणोंके पढ़ने और सुननेका सर्वोत्तम फल एक ही है। और सब साधनोंका भी यही एक सुन्दर फल है, कि आपके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रेम हो ॥ २ ॥

छूटइ मल कि मलहि के धोएँ । घृत कि पाव कोइ वारि विलोएँ ॥

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई । अभिअंतर मल कबहुँ न जाई ॥ ३ ॥

मैलसे धोनेसे क्या मैल छूटता है ? जलके मथनेसे क्या कोई धी पा सकता है ? [उसी प्रकार] हे रघु-नाथजी ! प्रेम-भक्तिरूपी निर्मल जलके बिना अन्तःकरणका मल कभी नहीं जाता ॥ ३ ॥

सोइ सर्वग्य तग्य सोइ पंडित । सोइ गुनगृह विग्यान अखंडित ॥

दच्छ सकल लच्छन जुत सोई । जाकें पद सरोज रति होई ॥ ४ ॥

वही सर्वज्ञ है, वही तत्त्वज्ञ और पण्डित है, वही गुणोंका घर और अखण्ड विज्ञानवान् है; वही चतुर और सब सुलक्ष्णोंसे युक्त है, जिसका आपके चरणकमलोंमें प्रेम है ॥ ४ ॥

दो०—नाथ एक वर मागउँ राम कृपा करि देहु ।

जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटे जनि नेहु ॥ ४९ ॥

हे नाथ ! हे श्रीरामजी ! मैं आपसे एक वर माँगता हूँ, कृपा करके दीजिये। प्रभु (आप) के चरण-कमलोंमें मेरा प्रेम जन्म-जन्मान्तरमें भी कभी न घटे ॥ ४९ ॥

चौ०—अस कहि मुनि बसिष्ट गृह आप । कृपासिंधु के मन अति भाए ॥

हनुमान भरतादिक भ्राता । संग लिए सेवक सुखदाता ॥ १ ॥

ऐसा कहकर मुनि वशिष्ठजी घर आये। वे कृपासागर श्रीरामजीके मनको बहुत ही अच्छे लगे। तदनन्तर सेवकोंको सुख देनेवाले श्रीरामजीने हनुमानजी तथा भरतजी आदि भाइयोंको साथ लिया, ॥ १ ॥

पुनि कृपाल पुर बाहेर गए । गज रथ तुरग मगावत भए ॥

देखि कृपा करि सकल सराहे । दिए उचित जिन्ह जिन्ह तेइ चाहे ॥ २ ॥

और फिर कृपालु श्रीरामजी नगरके बाहर गये और वहाँ उन्होंने हाथी, रथ और घोड़े मँगावाये। उन्हें देखकर, कृपा करके प्रभुने सबकी सराहना की और उनको जिस-जिसने चाहा, उस-उसको उचित जानकर दिया ॥ २ ॥

हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पारै । गए जहाँ शीतल अर्चवाई ॥

भरत दीन्ह निज बसन डसाई । बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई ॥ ३ ॥

संसारके सभी श्रमोंको हरनेवाले प्रभुने [हाथी, घोड़े आदि बाँटनेमें] श्रमका अनुभव किया, और श्रम मिटानेको वहाँ गये जहाँ शीतल अमराई (आमोंका बगीचा) थी। वहाँ भरतजीने अपना वस्त्र बिछा दिया। प्रभु उसपर बैठ गये और सब भाई उनकी सेवा करने लगे ॥ ३ ॥

मारुतसुत तब मारुत करई । पुलक वपुष लोचन जल भरई ॥

हनुमान सम नहिं बड़भागी । नहिं कोउ राम चरन अनुरागी ॥ ४ ॥

गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई । बार बार प्रभु निज मुख गार्ई ॥ ५ ॥

उस समय पवनपुत्र हनुमानजी पवन (पंखा) करने लगे। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओका] जल भर आया। हे गिरिजे ! हनुमानजीके समान न तो कोई बड़भागी है और न कोई श्रीरामजीके चरणोंका प्रेमी ही है जिनके प्रेम और सेवाकी स्वयं प्रभुने अपने श्रीमुखसे बार-बार बड़ाई की है ॥ ४-५ ॥

दो०—तेहिं अवसर मुनि नारद आए करतल बीन ।

गावन लगे राम कल कीरति सदा नवीन ॥ ५० ॥

उसी अवसरपर नारदमुनि हाथमें बीणा लिये हुए, आये। वे श्रीरामजीकी सुन्दर और नित्य नवीन रहनेवाली कीर्ति गाने लगे ॥ ५० ॥

चौ०—मामवलोकय पंकज लोचन । कृपा विलोकनि सोच विमोचन ॥

नील तामरस स्याम काम अरि । हृदय कंज मकरन्द मधुप हरि ॥ १ ॥

कृपादृष्टिसे शोकके छुड़नेवाले हे कमलनयन ! मेरी ओर देखिये (मुखपर भी कृपादृष्टि कीजिये)। हे हरि ! आप नील कमलके समान दयामवर्ण और कामदेवके शत्रु महादेवजीके हृदयकमलके मकरन्द (प्रेम-रस) के पान करनेवाले भ्रमर हैं ॥ १ ॥

जातुधान वरूथ बल भंजन । मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन ॥

भूसुर ससि नव वृन्द बलाहक । असरन सरन दीन जन गाहक ॥ २ ॥

आप राक्षसोंकी सेनाके बलको तोड़नेवाले हैं। मुनियों और संतजनोंको आनन्द देनेवाले और पापोंके नाश करनेवाले हैं। ब्राह्मणरूपी खेतीके लिये आप नये मेषसमूह हैं और शरणहीनोंको शरण देनेवाले तथा दीन जनोंको अपने आश्रयमें ग्रहण करनेवाले हैं ॥ २ ॥

भुजवल विपुल भार महि खंडित । खर दूषन विराध वध पंडित ॥

रावनारि सुखरूप भूप वर । जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर ॥ ३ ॥

अपने बाहुबलसे पृथ्वीके बड़े भारी बोझको नष्ट करनेवाले, खर-दूषण और विराधके वध करनेमें कुशल, रावणके शत्रु, आनन्दस्वरूप, राजाओंमें श्रेष्ठ और दशरथके कुलरूपी कुमुदिनीके चन्द्रमा श्रीरामजी ! आपकी जय हो ॥ ३ ॥

सुजस पुरान बिदित निगमागम । गावत सुर मुनि संत समागम ॥
कादनीक व्यलीक मद खंडन । सब बिधि कुसल कोसला मंडन ॥ ४ ॥

आपका सुन्दर यश पुराणों, वेदों और तन्त्रादि शास्त्रोंमें प्रकट है । देवता, मुनि और संतोंके समुदाय उसे गाते हैं । आप करुणा करनेवाले और झूठे मदका नाश करनेवाले, सब प्रकारसे कुशल (निपुण) और श्रीअयोध्याजीके भूषण ही हैं ॥ ४ ॥

कलिमल मथन नाम ममताहन । तुलसीदास प्रभु पाहि प्रनत जन ॥ ५ ॥

आपका नाम कलियुगके पापोंको मथ डालनेवाला और ममताको मारनेवाला है । हे तुलसीदासके प्रभु ! शरणागतकी रक्षा कीजिये ॥ ५ ॥

दो०—प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम ।

सोभा सिंधु हृदय धरि गए जहाँ बिधि धाम ॥ ५१ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके गुणसमूहोंका प्रेमपूर्वक वर्णन करके मुनि नारदजी शोभाके समुद्र प्रभुको हृदयमें धरकर जहाँ ब्रह्मलोक है वहाँ चले गये ॥ ५१ ॥

चौ०—गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा । मैं सब कही मोरि मति जथा ॥

रामवरित सत कोटि अपारा । श्रुति सारदा न बरनै पारा ॥ १ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे गिरिजे ! सुनो, मैंने यह उज्ज्वल कथा, जैसी मेरी बुद्धि थी, वेसी पूरी कह डाली । श्रीरामजीके चरित्र सौ करोड़ [अथवा] अपार हैं । श्रुति और शारदा भी उनका वर्णन नहीं कर सकते ॥ १ ॥

राम अनंत अनंत गुनानी । जन्म कर्म अनंत नामानी ॥

जल सीकर महि रज गनि जाहीं । रघुपति चरित न बरनि सिराहीं ॥ २ ॥

भगवान् श्रीराम अनन्त हैं; उनके गुण अनन्त हैं; जन्म, कर्म और नाम भी अनन्त हैं । जलकी बूँदें, और पृथ्वीके रज-कण चाहे गिने जा सकते हों । पर श्रीरघुनाथजीके चरित्र वर्णन करनेसे नहीं चुकते ॥ २ ॥

बिमल कथा हरि पद दायनी । भगति होइ सुनि अनपायनी ॥

उमा कहिउँ सब कथा सुहाई । जो भुसुंड़ि खगपतिहि सुनाई ॥ ३ ॥

यह पवित्र कथा भगवान्के परम पदको देनेवाली है । इसके सुननेसे अविचल भक्ति प्राप्त होती है । हे उमा ! मैंने वह सब सुन्दर कथा कही, जो काकमुशुण्डिजीने गरुड़जीको सुनायी थी ॥ ३ ॥

कलुक रामगुन कहेउँ बखानी । अब का कहौ सो कहहु भवानी ॥

सुनि सुभ कथा उमा हरषानी । बोली अति विनीत मृदु बानी ॥ ४ ॥

मैंने श्रीरामजीके कुछ थोड़े-से गुण बखानकर कहे हैं । हे भवानी ! सो कहो, अब और क्या कहूँ ? श्रीरामजीकी मङ्गलमयी कथा सुनकर पार्वतीजी हर्षित हुई, और अत्यन्त विनम्र तथा कोमल वाणी बोली—॥ ४ ॥

धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी । सुनेउँ रामगुन भवभय हारी ॥ ५ ॥

हे त्रिपुरारि ! मैं धन्य हूँ, धन्य-धन्य हूँ, जो मैंने भवभयको हरण करनेवाले श्रीरामजीके चरित्र सुने ॥ ५ ॥

दो०—तुम्हरी कृपा कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह ।

जानेउँ राम प्रताप प्रभु चिदानंद संदोह ॥ ५२ (क) ॥

हे कृपाधाम ! अब आपकी कृपासे मैं कृतकृत्य हो गयी ! अब मुझे मोह नहीं रह गया । हे प्रभु ! मैं खच्चिदानन्दधन प्रभु श्रीरामजीके प्रतापको जान गयी ॥ ५२ (क) ॥

नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुवीर ।

श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मतिधीर ॥ ५२ (ख) ॥

हे नाथ ! आपका मुखरूपी चन्द्रमा भीरघुवीरकी कथारूपी अमृत बरसाता है । हे मतिधीर ! मेरा मन कर्जपुटोंसे उसे पीकर तृप्त नहीं होता ॥ ५२ (ख) ॥

चौ०—रामचरित जे सुनत अघाहीं । रस विसेष जाना तिन्ह नाहीं ॥

जीवनमुक्त महामुनि जेऊ । हरिगुन सुनहिं निरंतर तेऊ ॥ १ ॥

श्रीरामजीके चरित्र सुनते-सुनते जो तृप्त हो जाते हैं (बस कर देते हैं), उन्होंने तो उसके विशेष रस जाना ही नहीं । जो जीवनमुक्त महामुनि हैं, वे भी भगवान्‌के गुण निरन्तर सुनते रहते हैं ॥ १ ॥

भवसागर चह पार जो पावा । रामकथा ता कहँ दृढ़ नावा ॥

विषह्न्ह कहँ पुनि हरि गुनप्रामा । श्रवन सुखद भर मन अभिरामा ॥ २ ॥

जो भवसागरका पार पाना चाहता है उसके लिये तो श्रीरामजीकी कथा दृढ़ नौकाके समान है । श्रीहरिके गुणभूम्ह तो विषयी लोगोंके लिये भी कानोंको सुख देनेवाले और मनको आनन्द देनेवाले हैं ॥ २ ॥

श्रवनचंत अस को जग माहीं । जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं ॥

ते जड़ जीव निजात्मक घाती । जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती ॥ ३ ॥

जगत्‌में कान्वाला ऐसा कौन है, जिसे श्रीरघुनाथजीके चरित्र न सुहाते हो । जिन्हें श्रीरघुनाथजीकी कथा नहीं सुहाती, वे मूर्ख जीव तो अपनी आत्माकी हत्या करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

हरिचरित्र मानस तुम्ह गावा । सुनि मैं नाथ अमिति सुख पावा ॥

तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई । कागभसुंड़ि गरुड़ प्रति गाई ॥ ४ ॥

हे नाथ ! आपने श्रीरामचरितमानसका गान किया, उसे सुनकर मैंने अपार सुख पाया । आपने जो यह कहा कि यह सुन्दर कथा काकभुशुण्डिजीने गरुड़जीसे कही थी—॥ ४ ॥

दो०—बिरति ग्यान बिग्यान दृढ़ रामचरन अति नेह ।

बायस तन रघुपति भगति मोहि परम संदेह ॥ ५३ ॥

सो कौएका शरीर पाकर भी काकभुशुण्डि वैराग्य, ज्ञान और विज्ञानमें दृढ़ हैं, उनका श्रीरामजीके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम है और उन्हें श्रीरघुनाथजीकी भक्ति भी प्राप्त है, इस बातका मुझे परम संदेह हो रहा है ॥ ५३ ॥

चौ०—नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी । कोउ एक होइ धर्म व्रत धारी ॥

धर्मसील कोटिक महँ कोई । विषय विमुख विराग रत होई ॥ १ ॥

हे त्रिपुरारि ! सुनिये, हजारों मनुष्योंमें कोई एक धर्मव्रतका धारण करनेवाला हाता है और करोड़ों धर्मात्माओंमें कोई एक विषयसे विमुख (विषयोंका त्यागी) और वैराग्यपरायण होता है ॥ १ ॥

कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई । सम्यक ग्यान सकृत् कोउ लहई ॥

ग्यानचंत कोटिक महँ कोऊ । जीवनमुक्त सहस्र जग सोऊ ॥ २ ॥

श्रुति कहती है कि करोड़ों विरक्तोंमें कोई एक सम्यक् (यथार्थ) ज्ञानको प्राप्त करता है । और करोड़ों ज्ञानियोंमें कोई एक ही जीवनमुक्त होता है । जगत्‌में कोई विरला ही ऐसा (जीवनमुक्त) होगा ॥ २ ॥

तिन्ह सहस्र महुँ सब सुख जानी । दुर्लभ ब्रह्मलीन बिग्यानी ॥

धर्मसील बिरक्त अरु ग्यानी । जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्राणी ॥ ३ ॥

इज्जतों जीवन्मुक्तोंमें भी सब सुखोंकी खान, ब्रह्ममें लीन विशानवान् पुरुष और भी दुर्लभ है ।
बर्मात्मा, वैराग्यवान्, शानी, जीवन्मुक्त और ब्रह्मलीन, ॥ ३ ॥

सब ते सो दुर्लभ सुरराया । राम भगति रत गत मद माथा ॥

सो हरि भगति काग किमि पाई । बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई ॥ ४ ॥

इन सबमें भी हे देवाधिदेव महादेवजी ! वह प्राणी अत्यन्त दुर्लभ है, जो मद-मायारहित होकर
रामभक्तिके परायण हो । हे विश्वनाथ ! ऐसी दुर्लभ हरिभक्तिको कौआ कैसे पा गया, मुझे समझाकर कहिये ॥ ४ ॥

दो०—राम परायण ग्यान रत गुनागार मति धीर ।

नाथ कहहु केहि कारन पायउ काक सरीर ॥ ५४ ॥

हे नाथ ! कहिये, [ऐसे] भीरामपरायण, ज्ञाननिरत, गुणधाम और धीरबुद्धि भुशुण्डिजीने
कौएका शरीर किस कारण पाया ? ॥ ५४ ॥

चौ०—यह प्रभु चरित पवित्र सुहावा । कहहु कृपाल काग कहँ पावा ॥

तुम्ह केहि भाँति सुना मदनारी । कहहु मोहि अति कौतुक भारी ॥ १ ॥

हे कृपाळ ! बताइये, उस कौएने प्रभुका यह पवित्र और सुन्दर चरित्र कहाँ पाया ? और हे कामदेवके
शत्रु ! यह भी बताइये, आपने इसे किस प्रकार सुना ? मुझे बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है ॥ १ ॥

गरुड़ महाग्यानी गुनरासी । हरि सेवक अति निकट निवासी ॥

तेहिं केहि हेतु काग सन जाई । सुनी कथा मुनि निकर बिहारी ॥ २ ॥

गरुड़जी तो महान् शानी, सद्गुणोंकी राशि, भीहरिके सेवक और उनके अत्यन्त निकट रहनेवाले (उनके
वाहन ही) हैं; उन्होंने मुनियोंके समूहको छोड़कर, कौएसे जाकर हरिकथा किस कारण सुनी ? ॥ २ ॥

कहहु कवन बिधि भा संवादा । दोउ हरिभगत काग उरगादा ॥

गौरिगिरा सुनि सरल सुहाई । बोले सिव सादर सुख पाई ॥ ३ ॥

कहिये, काकभुशुण्डि और गरुड़ इन दोनों हरिभक्तोंकी बातचीत किस प्रकार हुई ? पार्वतीजीकी सरल,
सुन्दर वाणी सुनकर शिवजी मुख पाकर आदरके साथ बोले—॥ ३ ॥

धन्य सती पावन मति तोरी । रघुपति चरन प्रीति नहिं थोरी ॥

सुनहु परम पुनीत इतिहासा । जो सुनि सकल लोक भ्रम नासा ॥ ४ ॥

हे सती ! तुम धन्य हो; तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त पवित्र है । श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें तुम्हारा कम प्रेम नहीं है
(अत्यधिक प्रेम है) । अब वह परम पवित्र इतिहास सुनो, जिसे सुननेसे सारे लोकके भ्रमका नाश हो जाता है ॥ ४ ॥

उपजइ राम चरन बिश्वासा । भवनिधि तर नर बिनहिं प्रयासा ॥ ५ ॥

तथा भीरामजीके चरणोंमें विश्वास उत्पन्न होता है, और मनुष्य विना ही परिश्रम भवसागरसे तर
जाता है ॥ ५ ॥

दो०—ऐसिअ प्रसन्न बिहंगपति कीन्हि काग सन जाइ ।

सो सब सादर कहिहुँ सुनहु उमा मन लाइ ॥ ५५ ॥

पक्षिराज गरुड़जीने भी जाकर काकभुशुण्डिजीसे प्रार्थनः ऐसे ही प्रभु किये थे। हे उमा ! मैं वह सब आदरसहित कहूँगा, तुम मन लगाकर सुनो ॥ ५५ ॥

चो०—मैं जिमि कथा सुनी भवमोचनि । सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि ॥

प्रथम दृच्छ गृह तव अवतारा । सती नाम तब रहा तुम्हारा ॥ १ ॥

मैंने जिस प्रकार वह भव (जन्म-मृत्यु) से छुड़ानेवाली कथा सुनी, हे सुमुखी ! हे सुलोचनी ! वह प्रसंग सुनो । पहले तुम्हारा अवतार दक्षके घर हुआ था । तब तुम्हारा नाम सती था ॥ १ ॥

दृच्छजग्य तव भा अपमाना । तुम्ह अति क्रोध तजे तब प्राणा ॥

मम अनुचरन्ह कीन्ह मखभंगा । जानहु तुम्ह सो सकल प्रसंगा ॥ २ ॥

दक्षके यज्ञमें तुम्हारा अपमान हुआ । तब तुमने अत्यन्त क्रोध करके प्राण त्याग दिये थे । और फिर मेरे सेवकोंने यज्ञ विध्वंस कर दिया था । वह सारा प्रसंग तुम जानती ही हो ॥ २ ॥

तब अति सोच भयउ मन मोरें । दुखी भयउँ बियोग प्रिय तोरें ॥

सुंदर बन गिरि सरित तड़ागा । कौतुक देखत फिरउँ बेरामा ॥ ३ ॥

तब मेरे मनमें बड़ा सोच हुआ । और हे प्रिये ! मैं तुम्हारे वियोगसे दुखी हो गया । मैं विरक्तभावसे सुन्दर वन, पर्वत, नदी और तालाबोंका कौतुक (दृश्य) देखता फिरता था ॥ ३ ॥

गिरि सुमेर उत्तर दिसि दूरी । नील सैल एक सुंदर भूरी ॥

तासु कनकमय सिखर सुहाय । चारि चारु मोरें मन भाय ॥ ४ ॥

सुमेरु पर्वतकी उत्तर दिशामें, और भी दूर, एक बहुत ही सुन्दर नील पर्वत है । उसके सुन्दर स्वर्णमय शिखर हैं, उनमेंसे चार सुन्दर शिखर मेरे मनको बहुत ही अच्छे लगे ॥ ४ ॥

तिन्ह पर एक एक बिटप बिसाला । बट पीपर पाकरी रसाला ॥

सैलोपरि सर सुंदर सोहा । मनि सोपान देखि मन मोहा ॥ ५ ॥

उन शिखरोंमें एक-एकपर बरगद, पीपल, पाकर और आमका एक-एक विशाल वृक्ष है । पर्वतके ऊपर एक सुन्दर तालाब शोभित है । जिसकी मणियोंकी सीढ़ियाँ देखकर मन मोहित हो जाता है ॥ ५ ॥

दो०—सीतल अमल मधुर जल जलज बिपुल बहुरंग ।

कूजत कलरव हंस गन गुंजत मंजुल भृंग ॥ ५६ ॥

उसका जल शीतल, निर्मल और मीठा है, उसमें रंगबिरंगे बहुत-से कमल खिले हुए हैं, हंसगण मधुर स्वरसे बोल रहे हैं, और भैंरें सुन्दर गुंजार कर रहे हैं ॥ ५६ ॥

चो०—तेहिं गिरि रुचिर बसइ खग सोई । तासु नास कल्पांत न होई ॥

मायाकृत गुन दोष अनेका । मोह मनोज आदि अबिबेका ॥ १ ॥

उस सुन्दर पर्वतपर वही पक्षी (काकभुशुण्डि) बसता है । उसका नाश कल्पके अन्तमें भी नहीं होता । मायावचित अनेकों गुण-दोष, मोह, काम आदि अविवेक, ॥ १ ॥

रहे व्यापि समस्त जग माहीं । तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं ॥

तहँ बसि हरिहि भजइ जिमि कागा । सो सुनु उमा सहित अनुरागा ॥ २ ॥

काकभुंड़ीजीकी कथा



वगैरे कह हरिकथा प्रसंगा । आर्याहि सुनहि अनेक विहंगा ॥

जो सारे जगत्में छा रहे हैं, उस पर्वतके पास भी कभी नहीं फटकते । वहाँ बसकर जिस प्रकार वह काक हरिको भजता है, हे उमा ! उसे प्रेमसहित सुनो ॥ २ ॥

पीपर तर तर ध्यान सो घरई । जाप जग्य पाकरि तर करई ॥

आँख छाँह कर मानस पूजा । तजि हरि भजनु काजु नहिं दूजा ॥ ३ ॥

वह पीपल-वृक्षके नीचे ध्यान घरता है । पाकरके नीचे जपयज्ञ करता है । आमकी छायामें मानसिक पूजा करता है । हरिभजनको छोड़कर उसे दूसरा कोई काम नहीं है ॥ ३ ॥

बर तर कह हरि कथा प्रसंगा । आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा ॥

रामचरित बिचित्र बिधि नाना । प्रेम सहित कर सादर गाना ॥ ४ ॥

बरगदके नीचे वह हरि-कथाका प्रसङ्ग कहता है । वहाँ अनेकों पक्षी आते और कथा सुनते हैं । वह विचित्र रामचरित्रको अनेकों प्रकारसे प्रेमसहित आदरपूर्वक गान करता है ॥ ४ ॥

सुनहिं सकल मति बिमल मराला । बसहिं निरंतर जे तेहिं ताला ॥

जब मैं जाइ सो कौतुक देखा । उर उपजा आनंद बिसेषा ॥ ५ ॥

सब निर्मल बुद्धिवाले हंस, जो सदा उस तालाबपर बसते हैं उसे सुनते हैं । जब मैंने वहाँ जाकर यह कौतुक देखा, तब मेरे हृदयमें विशेष आनन्द उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥

दो०—तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास ।

सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास ॥ ५७ ॥

तब मैंने हंसका शरीर धारणकर कुछ समय वहाँ निवास किया और श्रीरघुनाथजीके गुणोंको आदर-सहित सुनकर फिर कैलाशको लौट आया ॥ ५७ ॥

चौ०—गिरिजा कहेउँ सो सब इतिहासा । मैं जेहि समय गयउँ खग पासा ॥

अथ सो कथा सुनहु जेहि हेतू । गयउ काग पहिं खग कुल केतू ॥ १ ॥

हे गिरिजे ! मैंने वह सब इतिहास कहा, कि जिस समय मैं काकमुगुण्डिके पास गया था । अब वह कथा सुनो, जिस कारणसे पक्षिकुलके ध्वजा गरुड़जी उस काकके पास गये थे ॥ १ ॥

जब रघुनाथ कीन्ह रन कीड़ा । समुझत चरित होति मोहि ब्रीड़ा ॥

इंद्रजीत कर आपु बँधायो । तब नारद मुनि गरुड़ पढायो ॥ २ ॥

जब श्रीरघुनाथजीने ऐसी रणलीला की, कि जिस लीलाके समझनेसे (स्मरण करनेसे) मुझे लज्जा होती है—मेघनादके हाथों अपनेको बँधा लिया—तब नारदमुनिने गरुड़को भेजा ॥ २ ॥

बंधन काटि गयो उरगादा । उपजा हृदय प्रचंड विषादा ॥

प्रभु बंधन समुझत बहु भाँती । करन बिचार उरग आराती ॥ ३ ॥

सपोंके शत्रु गरुड़जी बन्धन काटकर गये, तब उनके हृदयमें बड़ा भारी विषाद उत्पन्न हुआ । प्रभुके बन्धनको स्मरण करके सपोंके शत्रु गरुड़जी बहुत प्रकारसे विचार करने लगे—॥ ३ ॥

व्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा । माया मोह पार परमीसा ॥

सो अवतार सुनेउँ जग माहीं । देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं ॥ ४ ॥

जो व्यापक, विकाररहित, बाणीके पति और माया-मोहसे परे ब्रह्म परमेश्वर हैं, मैंने सुना था कि जगत्में वही अवतीर्ण हुए हैं। पर मैंने वह (अवतारका) प्रभाव कुछ भी नहीं देखा ॥ ४ ॥

दो०—भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम ।

स्वर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोह राम ॥ ५८ ॥

जिनका नाम जपकर मनुष्य संसारके बन्धनसे छूट जाते हैं, उन्हीं रामको एक तुच्छ राक्षसने नागपाशसे बाँध लिया ॥ ५८ ॥

चौ०—नाना भाँति मनहि समुझावा । प्रगट न ग्यान हृदयें भ्रम छावा ॥

खेदखिन्न मन तर्क बढ़ाई । भयउ मोहबस तुम्हरिहिं नाई ॥ १ ॥

गरुड़जीने अनेकों प्रकारसे अपने मनको समझाया । पर उन्हें ज्ञान नहीं हुआ, हृदयमें भ्रम और भी अधिक छा गया । सन्देहजनित दुःखसे दुखी होकर, मनमें कुतर्क बढ़ाकर वे तुम्हारी ही भाँति मोहबध हो गये ॥ १ ॥

व्याकुल गयउ देवरिषि पाहीं । कहेसि जो संसय निज मन माहीं ॥

सुनि नारदहि लागि अति दाया । सुनु खग प्रबल राम कै माया ॥ २ ॥

व्याकुल होकर वे देवर्षि नारदजीके पास गये और मनमें जो सन्देह था, वह उनसे कहा । उसे सुनकर नारदको अत्यन्त दया आयी । [उन्होंने कहा—] हे गरुड़ ! सुनिये ! श्रीरामजीकी माया बड़ी ही बलवती है ॥ २ ॥

जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई । बरिआई बिमोह मन करई ॥

जेहिं बहु बार नचावा मोही । सोह व्यापी बिहंगपति तोही ॥ ३ ॥

जो ज्ञानियोंके चित्तको भी भलीभाँति हरण कर लेती है और उनके मनमें जबर्दस्ती बड़ा भारी मोह उत्पन्न कर देती है, जिसने मुझको भी बहुत बार नचाया है । हे पक्षिराज ! वही माया आपको भी व्याप गयी है ॥ ३ ॥

महामोह उपजा उर तोरें । मिटिहि न बेगि कहें खग मोरें ॥

चतुरानन पहिं जाहु खगेसा । सोह करेहु जेहि होइ निदेसा ॥ ४ ॥

हे गरुड़ ! आपके हृदयमें महामोह उत्पन्न हो गया है यह मेरे समझानेसे दुरंत नहीं मिटेगा । अतः हे पक्षिराज ! आप ब्रह्माजीके पास जाइये और वहाँ जो आदेश मिले, वही कीजियेगा ॥ ४ ॥

दो०—अस कहि चले देवरिषि करत राम गुणगान ।

हरिमाया बल बरनत पुनि पुनि परम सुजान ॥ ५९ ॥

ऐसा कहकर परम सुजान देवर्षि नारदजी श्रीरामजीका गुणगान करते हुए और बारंबार भीहरिकी मायाका बल वर्णन करते हुए चले ॥ ५९ ॥

चौ०—तब खगपति बिरंचि पहिं गयऊ । निज संदेह सुनावत भयऊ ॥

सुनि बिरंचि रामहि सिरु नावा । समुझि प्रताप प्रेम अति छावा ॥ १ ॥

तब पक्षिराज गरुड़ ब्रह्माजीके पास गये और अपना सन्देह उन्हें कह सुनाया । उसे सुनकर ब्रह्माजीने श्रीरामचन्द्रजीको सिर नवाया, और उनके प्रतापको समझ करके (स्मरण करके) उनके अत्यन्त प्रेम छा गया ॥ १ ॥

मन महुँ करइ बिचार बिधाता । मायाबस कवि कोविद ग्याता ॥

हरिमाया कर अमिति प्रभावा । बिपुल बार जेहिं मोहि नचावा ॥ २ ॥

ब्रह्माजी मनमें बिचार करने लगे कि कवि, कोविद और शानी, सभी मायाके वश हैं । भगवान्‌की मायाका प्रभाव असीम है, जिसने मुझको अनेकों बार नचाया है ॥ २ ॥

अग जगमय जग मम उपराजा । नहिं आचरज मोह खगराजा ॥

तब बोले बिधि गिरा सुहाई । जान महेस राम प्रभुताई ॥ ३ ॥

यह सारा चराचर जगत् तो मेरा रचा हुआ है । जब मैं ही मायावश नाचने लगता हूँ तब पक्षिराज गरुड़को मोह होनेमें कोई आश्चर्य नहीं है । तदनन्तर ब्रह्माजी सुन्दर वाणी बोले—श्रीरामजीकी महिमाको महादेवजी जानते हैं ॥ ३ ॥

बैनतेय संकर पहिं जाइ । तात अनत पूछहु जनि काइ ॥

तहँ होइहि तब संसय हानी । चलेउ बिहंग सुनत विचिबानी ॥ ४ ॥

हे गरुड़ ! तुम शंकरजीके पास जाओ । हे तात ! और कहीं किसीसे न पूछना । तुम्हारे सन्देहका नाश वहीं होगा । ब्रह्माजीका बचन सुनते ही गरुड़ चल दिये ॥ ४ ॥

दो०—परमातुर बिहंगपति आयउ तब मो पास ।

जात रहेउँ कुबेर गृह रहिहु उमा कैलास ॥ ६० ॥

तब बड़ी आतुरतासे पक्षिराज गरुड़ मेरे पास आये । हे उमा ! उस समय मैं कुबेरके घर जा रहा था, और तुम कैलासपर थीं ॥ ६० ॥

चो०—तेहिं मम पद सादर सिर नावा । पुनि आपन संदेह सुनावा ॥

सुनि ताकरि विनती मृदुबानी । प्रेम सहित मैं कहेउँ भवानी ॥ १ ॥

गरुड़ने आदरपूर्वक मेरे चरणोंमें सिर नवाया और फिर मुझको अपना सन्देह सुनाया । हे भवानी ! उनकी विनती और कोमल वाणी सुनकर मैंने प्रेमसहित उनसे कहा—॥ १ ॥

मिलेउ गरुड़ मारग महुँ मोही । कवन भौंति समझावौं तोही ॥

तबहिं होइ सब संसय भंगा । जब बहुकाल करिअ सतसंगा ॥ २ ॥

हे गरुड़ ! तुम मुझे रास्तेमें मिले हो । राह चलते मैं तुम्हें किस प्रकार समझाऊँ ? सब सन्देहोंका तो तभी नाश हो, जब दीर्घ कालतक सत्संग किया जाय ॥ २ ॥

सुनिअ तहाँ हरिकथा सुहाई । नाना भौंति मुनिन्ह जो गार्ई ॥

जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना । प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ॥ ३ ॥

और वहाँ (सत्संगमें) सुन्दर हरिकथा सुनी जाय, जिसे मुनियोंने अनेकों प्रकारसे गाया है और जिसके आदि, मध्य और अन्तमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही प्रतिपाद्य प्रभु हैं ॥ ३ ॥

नित हरिकथा होत जहँ भाई । पठवउँ तहाँ सुनहु तुम्ह जाई ॥

जाइहि सुनत सकल संदेहा । राम चरन होइहि अति नेहा ॥ ४ ॥

हे भाई ! जहाँ प्रतिदिन हरिकथा होती है, तुमको मैं वहीं भेजता हूँ, तुम जाकर उसे सुनो । उसे सुनते ही तुम्हारा सब सन्देह दूर हो जायगा और तुम्हें श्रीरामजीके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम होगा ॥ ४ ॥

दो०—बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग ।

मोह गएँ बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग ॥ ६१ ॥

सत्संगके बिना हरिकी कथा सुननेको नहीं मिलती । हरिकथा सुने बिना मोह नहीं भागता, और मोहके गये बिना श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें दृढ़ (अचल) प्रेम नहीं होता ॥ ६१ ॥

चौ०—मिलहिं न रघुपति बिनु अनुराग । किएँ जोग तप ग्यान बिरागा ॥

उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला । तहँ रह काकभुसुंड़ि सुसीला ॥ १ ॥

बिना प्रेमके केवल योग, तप, ज्ञान और वैराग्यादिके करनेसे श्रीरघुनाथजी मिलते नहीं । [अतएव तुम सत्संगके लिये वहाँ जाओ जहाँ] उत्तर दिशामें एक सुन्दर नील पर्वत है । वहाँ परम सुशील काकभुसुंड़िजी रहते हैं ॥ १ ॥

राम भगति पथ परम प्रवीणा । ग्यानी गुन गृह बहु कालीना ॥

राम कथा सो कहइ निरंतर । सादर सुनहिं बिबिध विहंग बर ॥ २ ॥

वे रामभक्तिके मार्गमें परम प्रवीण हैं, ज्ञानी हैं, गुणोंके धाम हैं और बहुत कालके हैं । वे निरन्तर श्रीरामचन्द्रजीकी कथा कहते रहते हैं, जिसे भौतिक-भौतिके श्रेष्ठ पक्षी आदरसहित सुनते हैं ॥ २ ॥

जाइ सुनहु तहँ हरिगुन भूरी । होइहि मोहजनित दुख दूरी ॥

मैं जब तेहि सब कहइ बुझाई । चलेउ हरषि मम पद सिख नाई ॥ ३ ॥

वहाँ जाकर श्रीहरिके गुणसमूहको सुनो । उनके सुननेसे मोहसे उत्पन्न दुःख द्वारा दुःख दूर हो जायगा । मैंने उसे जब सब समझाकर कहा, तब वह मेरे चरणोंमें सिर नवाकर हर्षित होकर चला गया ॥ ३ ॥

ताते उमा न मैं समझावा । रघुपति कृपाँ मरमु मैं पावा ॥

होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना । सो खोवै चह कृपानिधाना ॥ ४ ॥

हे उमा ! मैंने उसको इसीलिये नहीं समझाया कि मैं श्रीरघुनाथजीकी कृपासे उसका मर्म (भेद) पा गया था । उसने कभी अभिमान किया होगा, जिसको कृपानिधान श्रीरामजी नष्ट करना चाहते हैं ॥ ४ ॥

कछु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा । समझइ खग खगही कै भाषा ॥

प्रभु माया बलवंत भवानी । जाहि न मोह कवन अस ग्यानी ॥ ५ ॥

फिर कुछ इस कारण भी मैंने उसको अपने पास नहीं रखा कि पक्षी पक्षीकी बोली ही समझते हैं । हे भवानी ! प्रभुकी माया बड़ी ही बलवती है, ऐसा कौन ज्ञानी है । जिसे वह न मोह ले ! ॥ ५ ॥

दो०—ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवनपति कर जान ।

ताहि मोह माया नर पावँ करहिं गुमान ॥ ६२ (क) ॥

जो ज्ञानियोंमें और भक्तोंमें शिरोमणि हैं एवं त्रिभुवनपति भगवान्‌के वाहन हैं, उन गरुड़को भी मायाने मोह लिया ! फिर भी नीच मनुष्य मूर्खतावश घमंड किया करते हैं ॥ ६२ (क) ॥

मासपारायण अट्टाईसवाँ विश्राम

सिव, विरंचि कहुँ मोहइ को हँ बपुरा आन ।

अस जियँ जानि मजहिं मुनि मायापति भगवान ॥ ६२ (ख) ॥

यह माया जब शिवजी और ब्रह्माजीको भी मोह लेती है, तब दूसरा बेचारा क्या चीज़ है ? जीमें ऐसा जानकर ही मुनिलोग उस मायाके स्वामी भगवानका भजन करते हैं ॥ ६२ (ख) ॥

चौ०—गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुखुंडा । मति अकुंठ हरिभगति अखंडा ॥

देखि सैल प्रसन्न मन भयऊ । माया मोह सोच सब गयऊ ॥ १ ॥

गरुड़जी वहाँ गये, जहाँ निर्बाध बुद्धि और पूर्ण भक्तिवाले काकभुशुण्डि बसते थे । उस पर्वतका देखकर उनका मन प्रसन्न हो गया और सब माया, मोह तथा सोच जाता रहा ॥ १ ॥

करि तड़ाग मज्जन जलपाना । बट तर गयउ हृदयँ हरषाना ॥

बृद्ध बृद्ध बिहंग तहँ आप । सुनै राम के चरित सुहाए ॥ २ ॥

तालाबमें स्नान और जलपान करके वे प्रसन्न चित्तसे बटवृक्षके नीचे गये । वहाँ श्रीरामजीके सुन्दर चरित्र सुननेके लिये बूढ़े-बूढ़े पक्षी आये हुए थे ॥ २ ॥

कथा अरंभ करै सोइ चाहा । तेही समय गयउ खगनाहा ॥

आवत देखि सकल खगराजा । हरपेउ वायस सहित समाजा ॥ ३ ॥

भुशुण्डिजी कथा आरम्भ करना ही चाहते थे कि उसी समय पक्षिराज गरुड़जी वहाँ जा पहुँचे । पक्षियोंके राजा गरुड़जीको आते देखकर सारे पक्षिसमाजसहित काकभुशुण्डिजी हर्षित हुए ॥ ३ ॥

अति आदर खगपति कर कीन्हा । स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा ॥

करि पूजा समेत अनुरागा । मधुर वचन तब बोलेउ कागा ॥ ४ ॥

उन्होंने पक्षिराज गरुड़जीका बहुत ही आदर-सत्कार किया और स्वागत (कुशल) पूछकर बैठनेके लिये सुन्दर आसन दिया । फिर प्रेमसहित पूजा करके काकभुशुण्डिजी मधुर वचन बोले—॥ ४ ॥

दो०—नाथ कृतार्थ भयउँ मैं तव दरसन खगराज ।

आयसु देहु सो करों अब प्रभु आयहु केहि काज ॥ ६३ (क) ॥

हे नाथ ! हे पक्षिराज ! आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गया । आप जो आशा दें, मैं अब वही करूँ । हे प्रभो ! आप किस कार्यके लिये आये हैं ? ॥ ६३ (क) ॥

सदा कृतार्थ रूप तुम्ह कह मृदु वचन खगेस ।

जेहि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्हि महेस ॥ ६३ (ख) ॥

पक्षिराज गरुड़जीने कोमल वचन कहे—आप तो सदा ही कृतार्थरूप हैं, जिनकी बड़ाई स्वयं महादेवजीने आदरपूर्वक अपने श्रोमुखसे की है ॥ ६३ (ख) ॥

चौ०—सुनहु तात जेहि कारन आयउँ । सो सब भयउ दरस तव पायउँ ॥

देखि परम पावन तव आश्रम । गयउ मोह संसय नाना भ्रम ॥ १ ॥

हे तात ! सुनिये, मैं जिस कारणसे आया था, वह सब कार्य तो यहाँ आते ही पूरा हो गया । फिर आपके दर्शन भी प्राप्त हो गये । आपका परम पवित्र आश्रम देखकर ही मेरा मोह, सन्देह और अनेक प्रकारके भ्रम सब जाते रहे ॥ १ ॥

अब श्रीरामकथा अति पावनि । सदा सुखद दुखपुंज नसावनि ॥

सादर तात सुनावहु मोही । बार बार बिनवउँ प्रभु तोही ॥ २ ॥

अब हे तात ! आप मुझे श्रीरामजीकी अत्यन्त पवित्र करनेवाली, सदा सुख देनेवाली और दुःखसमूहका नाश करनेवाली कथा आदरसहित सुनाइये । हे प्रभो ! मैं बार-बार आपसे यही विनती करता हूँ ॥ २ ॥

सुनत गरुड़ कै गिरा विनीता । सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता ॥
मयउ तासु मन परम उछाहा । लाग कहै रघुपति गुन गाहा ॥ ३ ॥

गरुड़जीकी विनम्र, सरल, सुन्दर प्रेमयुक्त, सुखप्रद और अत्यन्त पवित्र वाणी सुनते ही भुशुण्डिजीके मनमें परम उत्साह हुआ और वे श्रीरघुनाथजीके गुणोंकी कथा कहने लगे ॥ ३ ॥

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी । रामचरित सर कहेसि बखानी ॥
पुनि नारद कर मोह अपारा । कहेसि बहुरि रावन अवतारा ॥ ४ ॥

हे भवानी ! पहले तो उन्होंने बड़े ही प्रेमसे रामचरितमानस सरोवरका रूपक समझाकर कहा । फिर नारदजीका अपार मोह और फिर रावणका अवतार कहा ॥ ४ ॥

प्रभु अवतार कथा पुनि गाई । तब सिसु चरित कहेसि मन लाई ॥ ५ ॥
फिर प्रभुके अवतारकी कथा वर्णन की । तदनन्तर मन लगाकर श्रीरामजीकी शिशुलीलाएँ कहीं ॥ ५ ॥

दो०—बालचरित कहि विविधि विधि मन महुँ परम उछाह ।

रिषि आगवन कहेसि पुनि श्रीरघुवीर विबाह ॥ ६४ ॥

मनमें परम उत्साह भरकर अनेकों प्रकारकी बाललीलाएँ कहकर, फिर ऋषि विश्वामित्रजीका अयोध्या आना और श्रीरघुवीरजीका विवाह वर्णन किया ॥ ६४ ॥

चौ०—बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा । पुनि नृप बचन राज रस भंगा ॥
पुरबासिन्ह कर विरह विषादा । कहेसि राम लछिमन संवादा ॥ १ ॥

फिर श्रीरामजीके राज्याभिषेकका प्रसंग, फिर राजा दशरथजीके वचनसे राज-रस (राज्याभिषेकके आनन्द) में भङ्ग पड़ना, फिर नगरनिवासियोंका विरह, विषाद और श्रीराम-लक्ष्मण-संवाद कहा ॥ १ ॥

विपिन गवन केवट अनुरागा । सुरसरि उतरि निवास प्रयागा ॥
बालमीक प्रभु मिलन बखाना । चित्रकूट जिमि बसे भगवाना ॥ २ ॥

श्रीरामका वनगमन, केवटका प्रेम, गङ्गाजीसे पार उतरकर प्रयागमें निवास, वाल्मीकिजी और प्रभु श्रीराम-जीका मिलन, और जैसे भगवान् चित्रकूटमें बसे, वह सब कहा ॥ २ ॥

सचिवागवन नगर नृप मरना । भरतागवन प्रेम बहु बरना ॥
करि नृपक्रिया संग पुरबासी । भरत गए जहुँ प्रभु सुख रासी ॥ ३ ॥

फिर मन्त्री सुमन्त्रजीका नगरमें लौटना, राजा दशरथजीका मरण, भरतजीका ननिहालसे अयोध्यामें आना और उनके प्रेमका बहुत वर्णन किया । राजाकी अन्त्येष्टि क्रिया करके नगरनिवासियोंको साथ लेकर भरतजी वहाँ गये, जहाँ सुखकी राशि प्रभु श्रीरामचन्द्रजी थे ॥ ३ ॥

पुनि रघुपति बहुविधि समुझाए । लै पादुका अवधपुर आय ॥
भरत रहनि सुरपति सुत करनी । प्रभु अरु अत्रि भेंट पुनि बरनी ॥ ४ ॥

फिर श्रीरघुनाथजीने उनको बहुत प्रकारसे समझाया, जिससे वे खड़ाऊँ लेकर अयोध्यापुरी लौट आये, यह सब कथा कही । भरतजीकी नन्दिग्राममें रहनेकी रीति, इन्द्रपुत्र जयन्तकी नीच करनी और फिर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी और अत्रिजीका मिलाप वर्णन किया ॥ ४ ॥

दो०—कहि विराध बध जेहि बिधि देह तजी सरमंग ।

बरनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभु अगस्ति सतसंग ॥ ६५ ॥

जिस प्रकार विराधका बध हुआ और शरभङ्गजीने शरीर त्याग किया, वह प्रसंग कहकर, फिर सुतीक्ष्णजी-का प्रेम वर्णन करके प्रभु और अगस्त्यजीका सत्संग-वृत्तान्त कहा ॥ ६५ ॥

चो०—कहि दंडक बन पावनतारै । गीघ मझी पुनि तेहिं गाई ॥

पुनि प्रभु पंचवटी कृत बासा । भंजी सकल मुनिन्ह की प्रासा ॥ १ ॥

दण्डकवनका पवित्र करना कहकर फिर भुशुण्डिजीने गृध्रराजके साथ मित्रताका वर्णन किया । फिर जिस प्रकार प्रभुने पञ्चवटीमें निवास किया और सब मुनियोंके भयका नाश किया, ॥ १ ॥

पुनि लछिमन उपदेस अनूपा । सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा ॥

खर दूषन बध यहुरि बखाना । जिमि सय मरमु दसानन जाना ॥ २ ॥

और फिर जैसे लक्ष्मणजीको अनुपम उपदेश दिया, और शूर्पणखाको कुरूप किया, वह सब वर्णन किया । फिर खर-दूषणबध और जिस प्रकार रावणने सब समाचार जाना, वह बखानकर कहा, ॥ २ ॥

दसकंधर मारीच बतकही । जेहि बिधि भई सो सब तेहिं कही ॥

पुनि माया सीता कर हरना । श्रीरघुवीर विरह कहु बरना ॥ ३ ॥

तथा जिस प्रकार रावण और मारीचकी बातचीत हुई, वह सब उन्होंने कही । फिर माया-सीताका हरण और श्रीरघुवीरके विरहका कुछ वर्णन किया ॥ ३ ॥

पुनि प्रभु गीघ किया जिमि कीन्हि । बधि कबंध सबरिहि गति दीन्हि ॥

बहुरि विरह बरनत रघुवीरा । जेहि बिधि गए सरोवर तीरा ॥ ४ ॥

फिर प्रभुने गिद्ध जटायुकी जिस प्रकार क्रिया की, कवचका बध करके शबरीको परम गति दी, और फिर जिस प्रकार विरह वर्णन करते हुए श्रीरघुवीरजी पंपासरके तीरपर गये, वह सब कहा ॥ ४ ॥

दो०—प्रभु नारद संवाद कहि मारुति मिलन प्रसंग ।

पुनि सुग्रीव मितारै बालि प्रान कर भंग ॥ ६६ (क) ॥

प्रभु और नारदजीका संवाद और मारुतिके मिलनेका प्रसंग कहकर फिर सुग्रीवसे मित्रता और बालिके प्राणनाशका वर्णन किया ॥ ६६ (क) ॥

कपिहि तिलक करि प्रभु कृत सैल प्रवरधन बास ।

बरनन बर्षा सरद अरु राम रोष कपि त्रास ॥ ६६ (ख) ॥

सुग्रीवका राजतिलक करके प्रभुने प्रवर्षण पर्वतपर निवास किया, वह तथा वर्षा और शरदका वर्णन, श्रीरामजीका सुग्रीवपर रोष और सुग्रीवका भय आदि प्रसंग कहे ॥ ६६ (ख) ॥

चो०—जेहि बिधि कपिपति कीस पठाए । सीता खोज सकल दिसि घाए ॥

बिबर प्रवेश कीन्ह जेहि भाँती । कापन्ह बहोरि मिला संपाती ॥ १ ॥

जिस प्रकार वानरराज सुग्रीवने वानरोंको भेजा और वे सीताजीकी खोजमें जिस प्रकार सब दिशाओंमें गये, जिस प्रकार उन्होंने बिलमें प्रवेश किया, और फिर जैसे वानरोंकी सम्पाती मिला, वह कथा कही ॥ १ ॥

सुनि सब कथा समीरकुमारा । नाघत भयउ पयोधि अपारा ॥

लंकाँ कपि प्रवेश जिमि कीन्हा । पुनि सीतहि धीरजु जिमि दीन्हा ॥ २ ॥

संपातीसे सब कथा सुनकर पवनपुत्र हनुमान्जी जिस तरह अपार समुद्रको लौंघ गये, फिर हनुमान्जीने जैसे लङ्कामें प्रवेश किया और फिर जैसे सीताजीको धीरज दिया, सो सब कहा ॥ २ ॥

बन उजारि रावनहि प्रवोधी । पुर दहि नाघेउ बहुरि पयोधी ॥

आए कपि सब जहँ रघुवाई । वंदेही की कुसल सुनाई ॥ ३ ॥

फिर अशोकवनको उजाड़कर, रावणको समझाकर, लङ्कापुरीको जलकर फिर जैसे उन्होंने समुद्रको लौंघा, और जिस प्रकार सब वानर वहाँ आये जहाँ श्रीरघुनाथजी थे और आकर श्रीजानकीजीकी कुशल सुनायी, ॥ ३ ॥

सेन समेति जथा रघुवीरा । उत्तरे जाइ वारिनिधि तीरा ॥

मिला विभीषन जेहि बिधि आई । सागर निग्रह कथा सुनाई ॥ ४ ॥

फिर जिस प्रकार सेनासहित श्रीरघुवीरजी जाकर समुद्रके तटपर उतरे और जिस प्रकार विभीषणजी आकर उनसे मिले, वह सब और समुद्रके बाँधनेकी कथा उसने सुनायी ॥ ४ ॥

दो०—सेतु बाँधि कपिसेन जिमि उतरी सागर पार ।

गयउ बसीठी वीरवर जेहि बिधि बालिकुमार ॥ ६७ (क) ॥

पुल बाँधकर जिस प्रकार वानरोंकी सेना समुद्रके पार उतरी; और जिस प्रकार वीरश्रेष्ठ बालिपुत्र अङ्गद दूत बनकर गये, वह सब कहा ॥ ६७ (क) ॥

निसिचर कोस लराई वरनिसि विविधि प्रकार ।

कुंभकरन धननाद कर बल पौरुष संधार ॥ ६७ (ख) ॥

फिर राक्षसों और वानरोंके युद्धका अनेकों प्रकारसे वर्णन किया । फिर कुम्भकर्ण और मेघनादके बल, पुरुषार्थ और संहारकी कथा कही ॥ ६७ (ख) ॥

चौ०—निसिचर निकर मरन बिधि नाना । रघुपति रावन समर बखाना ॥

रावन बध मंदोदरि सोका । राज विभीषन देव मसोका ॥ १ ॥

नाना प्रकारके राक्षसमूहोंके मरण और श्रीरघुनाथजी और रावणके अनेक प्रकारके युद्धका वर्णन किया । रावणवध, मन्दोदरीका शोक, विभीषणको राज्याभिषेक और देवताओंका शोकरहित होना कहकर, ॥ १ ॥

सीता रघुपति मिलन बहोरी । सुरन्ह कीन्हि अस्तुति कर जोरी ॥

पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता । अवध चले प्रभु कृपानिकेता ॥ २ ॥

फिर सीताजी और श्रीरघुनाथजीका मिलाप कहा । जिस प्रकार देवताओंने हाथ जोड़कर स्तुति की, और फिर जैसे वानरोंसमेत पुष्पकविमानपर चढ़कर कृपाधाम प्रभु अवधपुरीको चले वह कहा ॥ २ ॥

जेहि बिधि राम नगर निज आए । बायस बिसद चरित सय गाए ॥

कहेसि बहोरि राम अभियेका । पुर बरनत नृपनीति अनेका ॥ ३ ॥

जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी अपने नगरमें आये, वे सब उज्ज्वल चरित्र काकभुशुण्डिजीने विस्तारपूर्वक वर्णन किये । फिर उन्होंने श्रीरामजीका राज्याभिषेक कहा । [शिवजी कहते हैं—] अयोध्यापुरीका और अनेक प्रकारकी राजनीतिका वर्णन करते हुए— ॥ ३ ॥

कथा समस्त भुसुंड बखानी । जो मैं तुम्ह सन कही भवानी ॥

सुनि सब रामकथा खगनाहा । कहत वचन मन परम उछाहा ॥ ४ ॥

भुशुण्डजीने वह सब कथा कही जो हे भवानी ! मैंने तुमसे कही । सारी रामकथा सुनकर पक्षिराज गरुड़जी मनमें बहुत उत्साहित (आनन्दित) होकर वचन कहने लगे—॥ ४ ॥

सो०—गयउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित ।

भयउ रामपद नेह तव प्रसाद बायस तिलक ॥ ६८ (क) ॥

श्रीरघुनाथजीके सब चरित्र मैंने सुने, जिससे मेरा सन्देह जाता रहा । हे काकशिरोमणि ! आपके प्रसाद (अनुग्रह) से श्रीरामजीके चरणोंमें मेरा प्रेम हो गया ॥ ६८ (क) ॥

मोहि भयउ अति मोह प्रभु बंधन रन महुँ निरखि ।

चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन ॥ ६८ (ख) ॥

युद्धमें प्रभुका नागपाशसे बन्धन देखकर मुझे अत्यन्त मोह हो गया था कि श्रीरामजी तो सच्चिदानन्दधन हैं, वे किस कारण व्याकुल हैं ॥ ६८ (ख) ॥

चौ०—देखि चरित अति नर अनुसारी । भयउ हृदयँ मम संसय भारी ॥

सोइ भ्रम अव हित करि मैं माना । कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना ॥ १ ॥

बिल्कुल ही लौकिक मनुष्योंका-सा चरित्र देखकर मेरे हृदयमें भारी सन्देह हो गया । मैं अब उस भ्रम (सन्देह) को अपने लिये हित करके समझता हूँ । कृपानिधानने मुझपर यह बड़ा अनुग्रह किया ॥ १ ॥

जो अति आतप व्याकुल होई । तरु छाया सुख जानइ सोई ॥

जौ नहिं होत मोह अति मोही । मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही ॥ २ ॥

जो धूपसे अत्यन्त व्याकुल होता है, वही वृक्षकी छायाका सुख जानता है । हे तात ! मुझे अत्यन्त मोह न होता, तो मैं आपसे किस प्रकार मिलना ? ॥ २ ॥

सुनतेउँ किमि हरिकथा सुहाई । अति बिचित्र बहुविधि तुम्ह गाई ॥

निगमागम पुरान मत पहा । कहहिं सिद्ध मुनि नहिं संदेहा ॥ ३ ॥

और कैसे अत्यन्त विचित्र यह सुन्दर हरिकथा सुनता, जो आपने बहुत प्रकारसे गायी है ? वेद, शास्त्र और पुराणोंका यही मत है; सिद्ध और मुनि भी यही कहते हैं, इसमें सन्देह नहीं है कि ॥ ३ ॥

संत विसुद्ध मिलहिं परि तेही । चितवहिं राम कृपा करि जेही ॥

राम कृपाँ तव दरसन भयऊ । तव प्रसाद सब संसय गयऊ ॥ ४ ॥

सच्चे शुद्ध संत उसे अवश्य मिलते हैं, जिसे श्रीरामजी कृपा करके देखते हैं । श्रीरामजीकी कृपासे मुझे आपके दर्शन हुए और आपकी कृपासे मेरा सन्देह चला गया ॥ ४ ॥

दो०—सुनि बिहंगपति बानी सहित विनय अनुराग ।

पुलक गात लोचन सजल मन हरपेउ अति काग ॥ ६९ (क) ॥

पक्षिराज गरुड़जीकी विनय और प्रेमयुक्त वाणी सुनकर काकभुशुण्डजीका शरीर पुलकित हो गया, उनके नेत्रोंमें जल भर आया और वे मनमें अत्यन्त हर्षित हुए ॥ ६९ (क) ॥

श्रोता सुमति सुसील सुवि कथारसिक हरिदास ।

पाह उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास ॥ ६९ (ख) ॥

हे उमा ! सुन्दर बुद्धिवाले, सुशील, पवित्र कथारसिक और हरिके सेवक श्रोताको पाकर सज्जन अत्यन्त गोपनीय (सबके सामने प्रकट न करनेयोग्य) रहस्यको भी प्रकट कर देते हैं ॥ ६९ (ख) ॥

चौ०—बोलेउ काकभसुंड बहोरी । नभगनाथ पर प्रीति न थोरी ॥

सब बिधि नाथ पूज्य तुम्ह मेरे । कृपापात्र रघुनाथक केरे ॥ १ ॥

काकभुशुण्डिजीने फिर कहा—पक्षिराजपर उनका प्रेम कम न था (अर्थात् बहुत था)—हे नाथ ! आप सब प्रकारसे मेरे पूज्य हैं, और श्रीरघुनाथजीके कृपापात्र हैं ॥ १ ॥

तुम्हहि न संसय मोह न माया । मोपर नाथ कीन्हि तुम्ह दायी ॥

पठइ मोह मिस खगपति तोही । रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही ॥ २ ॥

आपको न सन्देह है, और न मोह-माया ही है । हे नाथ ! आपने तो मुझपर दया की है । हे पक्षिराज ! मोहके बहाने श्रीरघुनाथजीने आपको यहाँ भेजकर मुझे बड़ाई दी है ॥ २ ॥

तुम्ह निज मोह कही खग साई । सो नहिं कछु आचरज गोसाई ॥

नारद भव बिरंचि सनकादी । जे मुनि नायक आतमवादी ॥ ३ ॥

हे पक्षियोंके स्वामी ! आपने अपना मोह कहा, सो हे गोसाई ! यह कुछ आश्चर्य नहीं है । नारदजी, शिवजी, ब्रह्माजी और सनकादि जो आत्मतत्त्वके मर्मज्ञ और उसका उपदेश करनेवाले श्रेष्ठ मुनि हैं ॥ ३ ॥

मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ॥

तुझो केहि न कीन्ह बौराहा । केहि कर हृदय कोष नहिं दाहा ॥ ४ ॥

उनमेंसे भी किस-किसको मोहने अन्धा नहीं किया ? जगत्में ऐसा कौन है, जिसे कामने न नचाया हो ? तृष्णाने किसको पागल नहीं किया ? क्रोधने किसका हृदय नहीं जलाया ? ॥ ४ ॥

दो०—ग्यानी तापस सर कवि कोविद गुन आगार ।

केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार ॥ ७० (क) ॥

शानी, तपस्वी, शूरवीर, कवि, कोविद और गुणोंका धाम इस संसारमें ऐसा कौन है, जिसकी लोभने विडम्बना (मिथी परीक्षा) न की हो ॥ ७० (क) ॥

श्रीमद बक्र न कीन्हि केहि प्रभुता बधिर न काहि ।

मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि ॥ ७० (ख) ॥

लक्ष्मीके मदने किसको टेढ़ा और प्रभुताने किसको बहरा नहीं कर दिया ? ऐसा कौन है, जिसे मृगनयनी (युवती स्त्री) के नेत्र-बाण न लगे हो ? ॥ ७० (ख) ॥

चौ०—गुन कृत सन्यपात नहिं केही । कोउ न मान मद तजेउ निबेही ॥

जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा । ममता केहि कर जस न नसावा ॥ १ ॥

रज, तम आदि गुणोंका किया हुआ सन्निपात किसे नहीं हुआ ? ऐसा कोई नहीं है जिसे मान और मदने अलूता छोड़ा हो । यौवनके ज्वरने किसे आपसे बाहर नहीं किया ? ममत्ताने किसके यशका नाश नहीं किया ? ॥ १ ॥

मच्छर काहि कलंक न लावा । काहि न सोक समीर डोलावा ॥

चिंता साँपिनि को नहिं खाया । को जग जाहि न व्यापी माया ॥ २ ॥

मत्सर (डाह) ने किसको कलङ्क नहीं लगाया ? शोकरूपी पवनने किसे नहीं हिला दिया ? चिन्ता साँपिनने किसे नहीं खा लिया ? जगत्में ऐसा कौन है, जिसे माया न व्यापी हो ? ॥ २ ॥

कीट मनोरथ दारु सरीरा । जेहि न लग घुन को अस घीरा ॥

सुत बित लोक ईपना तीनी । केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी ॥ ३ ॥

मनोरथ कीड़ा है, शरीर लकड़ी है । ऐसा धैर्यवान् कौन है, जिसके शरीरमें यह कीड़ा न लगा हो ? पुत्र, धन और लोकप्रतिष्ठाकी इन तीन प्रबल इच्छाओंने किसकी बुद्धि मलिन नहीं कर दी ? ॥ ३ ॥

यह सब माया कर परिचारा । प्रबल अमिति को बरनै पारा ॥

सिब चतुरानन जाहि डेराहीं । अपर जीव केहि लेखे माहीं ॥ ४ ॥

यह सब मायाका बड़ा बलवान् परिवार है । यह अपार है, इसका वर्णन कौन कर सकता है ? शिवजी और ब्रह्माजी भी जिससे डरते हैं, तो दूसरे जीव किस गिनतीमें हैं ? ॥ ४ ॥

दो०—व्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड ।

सेनापति कामादि भट दंभ कपट पापंड ॥ ७१ (क) ॥

मायाकी प्रचण्ड सेना संसारभरमें छापी हुई है । कामादि (काम, क्रोध और लोभ) उसके सेनापति हैं और दंभ, कपट और पाखण्ड उसके योद्धा हैं ॥ ७१ (क) ॥

सो दासी रघुवीर कै समुझें मिथ्या सोपि ।

छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि ॥ ७१ (ख) ॥

वह माया श्रीरघुवीरजीकी दासी है । यद्यपि समझ लेनेपर वह मिथ्या ही है, किन्तु वह श्रीरामजीकी कृपाके बिना छूटती नहीं । हे नाथ ! यह मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ ॥ ७१ (ख) ॥

चो०—जो माया सब जगहि नचावा । जासु चरित लखि काहुँ न पावा ॥

सोह प्रभु भृषिलास खगराजा । नाच नटी इव सहित समाजा ॥ १ ॥

जो माया सारे जगत्को नचाती है और जिसका चरित्र किसीने नहीं खूब पाया, हे खगराज गरुड़जी ! वही माया प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके भ्रुकुटीके इशारेपर अपने समाजसहित नटीकी तरह नाचती है ॥ १ ॥

सोह सच्चिदानंद धन रामा । अज विग्यान रूप बल धामा ॥

व्यापक व्याप्य अखंड अनंता । अखिल अमोघ सक्ति भगवंता ॥ २ ॥

श्रीरामजी वही सच्चिदानन्दधन हैं जो अजन्मा, विशानस्वरूप, रूप और बलके धाम, सर्वव्यापक एवं व्याप्य (सर्वरूप), अखण्ड, अनन्त, सम्पूर्ण, अमोघशक्ति और छः ऐश्वर्योंसे युक्त भगवान् हैं ॥ २ ॥

अगुन अदभ्र गिरा गोतीता । सबद्वरसी अनबध अजीता ॥

निर्मम निराकार निरमोहा । नित्य निरंजन सुख संदोहा ॥ ३ ॥

वे निर्गुण (मायाके गुणोंसे रहित), महान्, वाणी और इन्द्रियोंसे परे, सब कुछ देखनेवाले, निर्दोष, अजेय, ममता-रहित, निराकार (मायिक आकारसे रहित), मोह-रहित, नित्य, माया-रहित, सुखकी राशि, ॥ ३ ॥

प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी । ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ॥

इहाँ मोह कर कारन नाहीं । रवि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं ॥ ४ ॥

प्रकृतिसे परे, प्रभु (सर्वसमर्थ), सदा सबके हृदयमें बसनेवाले, इच्छा-रहित, विकार-रहित, अविनाशी ब्रह्म हैं । यहाँ (श्रीराममें) मोहका कारण ही नहीं है । क्या अन्धकार भी कभी सूर्यके सामने जा सकता है ? ॥ ४ ॥

दो०—भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप ।

किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ॥ ७२ (क) ॥

भगवान् प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने भक्तोंके लिये नृप-शरीर धारण किया । और साधारण मनुष्योंके अनुसार उन्होंने अनेकों परम पावन चरित्र किये ॥ ७२ (क) ॥

जथा अनेक वेष धरि नृत्य करै नट कोइ ।

सोइ सोइ भाव देखावै आपुन होइ न सोइ ॥ ७२ (ख) ॥

जैसे कोई नट अनेक वेष धारण करके नृत्य करता है, और वही-वही (जैसा वेष होता है, उसीके अनुकूल) भाव दिखलाता है, पर स्वयं वह उनमेंसे कोई हो नहीं जाता, ॥ ७२ (ख) ॥

चौ०—असि रघुपति लीला उरगारी । दनुज विमोहनि जन सुखकारी ॥

जे मति मलिन विषयबस कामी । प्रभु पर मोह घरहिं इमि स्वामी ॥ १ ॥

हे गरुड़जी ! ऐसी ही श्रीरघुनाथजीकी यह लीला है, जो राक्षसोंको विशेष मोहित करनेवाली और भक्तोंको सुख देनेवाली है । हे स्वामी ! जो मनुष्य मलिनबुद्धि, विषयोंके वश और कामी हैं, वे ही प्रभुपर इस प्रकार मोहका आरोप करते हैं ॥ १ ॥

नयन दोष जा कह जब होई । पीत वरन ससि कहूँ कह सोई ॥

जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा । सो कह पच्छिम उयउ दिनेसा ॥ २ ॥

जब जिसको कवैल आदि नेत्रदोष होता है, तब वह चन्द्रमाको पीले रंगका कहता है । हे पक्षिराज ! जब जिसे दिशाभ्रम होता है, तब वह कहता है कि सूर्य पश्चिममें उदय हुआ है ॥ २ ॥

नौकारूढ़ चलत जग देखा । अचल मोह बस आपुहि लेखा ॥

बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी । कहहिं परस्पर मिथ्यावादी ॥ ३ ॥

नौकापर चढ़ा हुआ मनुष्य जगत्को चलता हुआ देखता है और मोहवश अपनेको अचल समझता है । बालक घूमते (चक्राकार दौड़ते) हैं, घर आदि नहीं घूमते । पर वे आपसमें एक दूसरेको झूठा कहते हैं ॥ ३ ॥

हरि विषइक अस मोह बिहंगा । सपनेहुँ नहिं अग्यान प्रसंगा ॥

मायावस मतिमंद अभागी । हृदयँ जमनिका बहुबिधि लागी ॥ ४ ॥

हे गरुड़जी ! भीहरिके विषयमें मोहकी कल्पना भी ऐसी ही है । भगवान्में तो स्वप्नमें भी अज्ञानका प्रसंग नहीं है । किन्तु जो मायाके वश, मंदबुद्धि और भाग्यहीन हैं, और जिनके हृदयपर अनेकों प्रकारके परदे पड़े हैं, ॥ ४ ॥

ते सठ हठबस संसय करहीं । निज अग्यान राम पर धरहीं ॥ ५ ॥

वे मूर्ख हठके वश होकर सन्देह करते हैं और अपना अज्ञान श्रीरामजीपर आरोपित करते हैं ॥ ५ ॥

दो०—काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप ।

ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तमकूप ॥ ७३ (क) ॥

जो काम, क्रोध, मद और लोभमें रत हैं, और दुःखरूप घरमें आसक्त हैं, वे श्रीरघुनाथजीको कैसे जान सकते हैं ? वे मूर्ख तो अंधकाररूपी कूर्पमें पड़े हुए हैं ॥ ७३ (क) ॥

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ ।

सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ ॥ ७३ (ख) ॥

निर्गुण रूप अत्यन्त सुलभ है, परन्तु [गुणातीत दिव्य] सगुण रूपको कोई नहीं जानता । इसलिये उन सगुण भगवान्‌के अनेक प्रकारके सुगम और अगम चरित्रोंको सुनकर मुनियोंके भी मनको भ्रम हो जाता है ॥ ७३ (ख) ॥

चो०—सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई । कहउँ जयामति कथा सुहाई ॥

जेहि विधि मोह भयउ प्रभु मोही । सोउ सब कथा सुनावउँ तोही ॥ १ ॥

हे पक्षिराज गरुड़जी ! श्रीरघुनाथजीकी प्रभुता सुनिये । मैं अपनी बुद्धिके अनुसार वह सुहावनी कथा कहता हूँ । हे प्रभो ! मुझे जिस प्रकार मोह हुआ, वह सब कथा भी आपको सुनाता हूँ ॥ १ ॥

राम कृपा भाजन तुम्ह ताता । हरिगुन प्रीति मोहि सुखदाता ॥

ताते नहिं कछु तुम्हहि दुरावउँ । परम रहस्य मनोहर गावउँ ॥ २ ॥

हे तात ! आप श्रीरामजीके कृपापात्र हैं । श्रीहरिके गुणोंमें आपकी प्रीति है, इसीलिये आप मुझे सुख देनेवाले हैं । इसीसे मैं आपसे कुछ भी नहीं छिपाता और अत्यन्त रहस्यकी बातें आपको गाकर सुनाता हूँ ॥ २ ॥

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ । जन अभिमान न राखहिं काऊ ॥

संस्त मूल मूलप्रद नाना । सकल सोक दायक अभिमाना ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका सहज स्वभाव सुनिये । वे भक्तमें अभिमान कभी नहीं रहने देते । क्योंकि अभिमान जन्म-मरणरूप संसारका मूल है और अनेक प्रकारके क्लेशों तथा समस्त शोकोंका देनेवाला है ॥ ३ ॥

ताते करहिं कृपानिधि दूरी । सेवक पर ममता अति भूरी ॥

जिमि सिसु तन बन होइ गोसाई । मातु विराव कठिन की नाई ॥ ४ ॥

इसीलिये कृपानिधि उसे दूर कर देते हैं । क्योंकि सेवकपर उनकी बहुत ही अधिक ममता है । हे गोसाई ! जैसे बच्चेके शरीरमें फोड़ा होता है, तो माता उसे कटोर हृदयकी भाँति चिरा डालती है ॥ ४ ॥

दो०—जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर ।

न्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर ॥ ७४ (क) ॥

यद्यपि बच्चा पहले (फोड़ा चिराते समय) दुःख पाता है और अधीर होकर रोता है, तो भी रोगके नाशके लिये माता बच्चेकी उस पीड़ाको कुछ भी नहीं गिनती (उसकी परवा नहीं करती) ॥ ७४ (क) ॥

तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि ।

तुलसीदास ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि ॥ ७४ (ख) ॥

उसी प्रकार श्रीरघुनाथजी अपने दासका अभिमान उसके हितके लिये हर लेते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसे प्रभुको भ्रम त्यागकर क्यों नहीं भजते ॥ ७४ (ख) ॥

चो०—राम कृपा आपनि जड़ताई । कहउँ खगेस सुनहु मन लाई ॥

जब जय राम मनुज तनु घरहीं । भक्त हेतु लीला बहु करहीं ॥ १ ॥

हे पक्षिराज गरुड़जी ! श्रीरामजीकी कृपा और अपनी जड़ताकी बात कहता हूँ, मन लगाकर सुनिये । जब-जब श्रीरामचन्द्रजी मनुष्यशरीर धारण करते हैं और भक्तोंके लिये बहुत-सी लीलाएँ करते हैं, ॥ १ ॥

तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ । बालचरित बिलोकि हरषाऊँ ॥

जन्म महोत्सव देखउँ जाई । बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई ॥ २ ॥

तब-तब मैं अयोध्यापुरी जाता हूँ और उनकी बाललीला देखकर हर्षित होता हूँ । वहाँ जाकर मैं जन्ममहोत्सव देखता हूँ और भगवान्की शिशुलीलामें लुभाकर पाँच वर्षतक वहीं रहता हूँ ॥ २ ॥

इष्टदेव मम बालक रामा । सोभा वपुष कोटि सत कामा ॥

निज प्रभु बदन निहारि निहारी । लोचन सुफल करउँ उरगारी ॥ ३ ॥

बालकरूप श्रीरामचन्द्रजी मेरे इष्टदेव हैं, जिनके शरीरमें अरबों कामदेवोंकी शोभा है । हे गरुड़जी ! अपने प्रभुका मुख देख-देखकर मैं नेत्रोंको सफल करता हूँ ॥ ३ ॥

लघु बायस वपु धरि हरि संगी । देखउँ बालचरित बहु रंगी ॥ ४ ॥

छोटे-से कौएका शरीर धरकर भगवान्के साथ-साथ फिरकर मैं उनके भौति-भौतिके बालचरित्रोंको देखा करता हूँ ॥ ४ ॥

दो०—लरिकाई जहँ जहँ फिरहिं तहँ तहँ संग उड़ाउँ ।

जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ करि खाउँ ॥ ७५ (क) ॥

लड़कपनमें वे जहाँ-जहाँ फिरते हैं, वहाँ-वहाँ मैं साथ-साथ उड़ता हूँ । और आँगनमें उनकी जो जूठन पड़ती है, वही उठाकर खाता हूँ ॥ ७५ (क) ॥

एक बार अतिसय सब चरित किए रघुवीर ।

सुमिरत प्रभुलीला सोइ पुलकित भयउ सरीर ॥ ७५ (ख) ॥

एक बार श्रीरघुवीरने सब चरित्र बहुत अधिकतासे किये । प्रभुकी उस लीलाका स्मरण करते ही काकभुशुण्डिजीका शरीर प्रेमानन्दवश पुलकित हो गया ॥ ७५ (ख) ॥

चो०—कहइ भसुंड सुनहु खगनायक । रामचरित सेवक सुखदायक ॥

नृपमंदिर सुंदर सब भाँती । खचित कनक मनि नाना जाती ॥ १ ॥

भुशुण्डिजी कहने लगे—हे पक्षिराज ! सुनिये । श्रीरामजीका चरित्र सेवकोंको सुख देनेवाला है । अयोध्याका राजमहल सब प्रकारसे सुन्दर है । सोनेके महलमें नाना प्रकारके रत्न जड़े हुए हैं ॥ १ ॥

बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई । जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई ॥

बाल विनोद करत रघुराई । बिचरत अजिर जननि सुखदाई ॥ २ ॥

सुन्दर आँगनका वर्णन नहीं किया जा सकता, जहाँ चारों भाई नित्य खेलते हैं। माताको सुख देनेवाले बालविनोद करते हुए श्रीछुनाथजी आँगनमें विचर रहे हैं ॥ २ ॥

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा । अंग अंग प्रति छबि बहु कामा ॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना । पद्म रुचिर नख ससिदुति हरना ॥ ३ ॥

मरकत मणिके समान हरिताभ श्याम और कोमल शरीर है। अंग-अंगमें बहुत-से कामदेवोंकी शोभा छापी हुई है। नवीन लाल कमलके समान लाल-लाल कोमल चरण हैं। सुन्दर अँगुलियाँ हैं और नख अपनी ज्योतिसे चन्द्रमाकी कान्तिको हरनेवाले हैं ॥ ३ ॥

ललित अंक कुलिसादिक चारी । नूपुर चार मधुर रवकारी ॥
चार पुरट मनि रचित बनाई । कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई ॥ ४ ॥

तलवेमें वज्रादि (वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल) के चार सुन्दर चिह्न हैं। चरणोंमें मधुर शब्द करनेवाले सुन्दर नूपुर हैं। मणियोंसे (रत्नोंसे) जड़ी हुई, सोनेकी बनी हुई सुन्दर करधनीका शब्द सुहावना लग रहा है ॥ ४ ॥

दो०—रेखा त्रय सुंदर उदर नामी रुचिर गंभीर ।

उर आयत भ्राजत विविधि बाल विभूषन चीर ॥ ७६ ॥

उदरपर सुन्दर तीन रेखाएँ (त्रिवली) हैं। नाभि सुन्दर और गहरी है। विशाल वक्षःस्थलपर अनेकों प्रकारके बच्चोंके आभूषण और वस्त्र सुशोभित हैं ॥ ७६ ॥

चौ०—अरुन पानि नख करज मनोहर । बाहु बिसाल विभूषन सुंदर ॥

कंध बाल केहरि दर प्रीवा । चार चिबुक आनन छबिसींवा ॥ १ ॥

लाल हथेलियाँ, नख और अँगुलियाँ मनको हरनेवाले हैं और विशाल भुजाओंपर सुन्दर आभूषण है। बालसिंहके-से कंधे और शंखके समान (तीन रेखाओंसे युक्त) गला है। सुन्दर ठुड़ी है और मुख तो छबिकी सीमा ही है ॥ १ ॥

कल बल बचन अधर अरुनारे । दुइ दुइ दसन बिसद बर बारे ॥

ललित कपोल मनोहर नासा । सकल सुखद ससिकर सम हासा ॥ २ ॥

कलबल (तोतले) वचन हैं, लाल ओंठ हैं। उज्ज्वल, सुन्दर और छोटी-छोटी [ऊपर और नीचे] दो-दो दँतुलियाँ हैं। सुन्दर गाल, मनोहर नासिका और सब मुखोंको देनेवाली चन्द्रमाकी [अथवा सुखोंको देनेवाली समस्त कलाओंसे पूर्ण चन्द्रमाकी] किरणोंके समान मधुर मुस्कान है ॥ २ ॥

नील कंज लोचन भवमोचन । भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥

बिकट भृकुटि सम श्रवन सुहाए । कुंचित कच मेचक छबि छाप ॥ ३ ॥

नीले कमलके समान नेत्र भव (जन्म-मृत्यु) से छुड़ानेवाले हैं। ललाटपर गोरोचनका तिलक सुशोभित है। भाँहें टेढ़ी हैं, कान सम और सुन्दर हैं, काले और धुंधले केशोंकी छबि छा रही है ॥ ३ ॥

पीत झीनि झगुली तन सोही । किलकनि चितवनि भावति मोही ॥

रूपरासि नृप अजिर बिहारी । नाचहिं निज प्रतिविम्ब निहारी ॥ ४ ॥

पीली और महीन झगुली शरीरपर शोभा दे रही है। उनकी किलकारी और चितवन मुझे बहुत ही प्रिय लगती है। राजा दशरथजीके आँगनमें विहार करनेवाले, रूपकी राशि भीरामचन्द्रजी अपनी परछाईं देखकर नाचते हैं ॥ ४ ॥

मोहि सन करहिं बिबिधि बिधि क्रीड़ा । बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा ॥

किलकत मोहि घरन जब घावहिं । चलउँ भागि तब पूष देखावहिं ॥ ५ ॥

और मुझसे बहुत प्रकारसे खेल करते हैं । जिन चरित्रोंका वर्णन करते मुझे लज्जा आती है । किलकारी मारते हुए जब वे मुझे पकड़ने दौड़ते और मैं भाग चलता, तब मुझे पूछा दिखलते थे ॥ ५ ॥

दो०—आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं ।

जाउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितह पराहिं ॥ ७७ (क) ॥

मेरे निकट आनेपर प्रभु हँसते हैं, और भाग जानेपर वे रोते हैं । और जब मैं उनका चरण-स्पर्श करनेके लिये पास जाता हूँ तब वे पीछे फिर-फिरकर मेरी ओर देखते हुए भाग जाते हैं ॥ ७७ (क) ॥

प्राकृत सिसु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह ।

कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद संदोह ॥ ७७ (ख) ॥

साधारण बच्चों-जैसी लीला देखकर मुझे मोह (शंका) हुआ कि सच्चिदानन्दधन प्रभु यह कौन चरित्र कर रहे हैं ॥ ७७ (ख) ॥

चौ०—एतना मन आनत खगराया । रघुपति प्रेरित व्यापी माया ॥

सो माया न दुखद मोहि काहीं । आन जीव इव संसृत नाहीं ॥ १ ॥

हे पक्षिराज ! मनमें इतनी [शंका] लते ही श्रीरघुनाथजीके द्वारा प्रेरित माया मुझपर छा गयी । परन्तु वह माया न तो मुझे दुःख देनेवाली हुई और न दूसरे जीवोंकी भाँति संसारमें डालनेवाली हुई ॥ १ ॥

नाथ इहाँ कलु कारन आना । सुनहु सो सावधान हरिजाना ॥

ग्यान अखंड एक सीताबर । माया बस्य जीव सचराचर ॥ २ ॥

हे नाथ ! यहाँ कुछ दूसरा ही कारण है । हे भगवान्‌के वाहन गरुड़जी ! उसे सावधान होकर सुनिये । एक सीतापति भीरामजी ही अखण्ड ज्ञानस्वरूप हैं और जड़-चेतन सभी जीव मायाके वश हैं ॥ २ ॥

जों सब कैं रह ग्यान एकरस । ईश्वर जीवहि भेद कहहु कस ॥

माया बस्य जीव अभिमानी । ईस बस्य माया गुनखानी ॥ ३ ॥

यदि जीवोंको एकरस (अखण्ड) ज्ञान रहे, तो कहिये, फिर ईश्वर और जीवमें भेद ही कैसा ? अभिमानी जीव मायाके वश है और वह सत्त्व, रज और तम, इन तीनों गुणोंकी खान माया ईश्वरके वशमें है ॥ ३ ॥

परबस जीव स्वयस भगवंता । जीव अनेक एक श्रीकंता ॥

मुधा भेद जद्यपि कृत माया । बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ॥ ४ ॥

जीव परतन्त्र है, भगवान् स्वतन्त्र हैं । जीव अनेक हैं, श्रीपति भगवान् एक हैं । यद्यपि मायाका किया हुआ यह भेद असत् है, तथापि वह भगवान्‌के भजन विना करोड़ों उपाय करनेपर भी नहीं जा सकता ॥ ४ ॥

दो०—रामचंद्रके भजन बिनु जो चह पद निर्बान ।

ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ विषान ॥ ७८ (क) ॥

श्रीरामचन्द्रजीके भजन विना जो मोक्षपद चाहता है, वह मनुष्य ज्ञानवान् होनेपर भी बिना पूँछ और सींगका पशु है ॥ ७८ (क) ॥

राकापति षोडस उअहिं तारागन समुदाइ ।

सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ ॥ ७८ (ख) ॥

सभी तारागणोंके साथ सोलह कलाओंसे पूर्ण चन्द्रमा उदय हो, और जितने पर्वत हैं उन सबमें दावाग्नि लगा दी जाय, तो भी सूर्यके उदय हुए बिना रात्रि नहीं जा सकती ॥ ७८ (ख) ॥

चौ०—येसेहिं हरि बिनु भजन खगेसा । मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा ॥

हरिसेवकहि न व्याप अबिद्या । प्रभु प्रेरित व्यापइ तेहि बिद्या ॥ १ ॥

हे पक्षिराज ! इसी प्रकार श्रीहरिके भजन बिना जीवोंका क्लेश नहीं मिटता । श्रीहरिके सेवकोंको अबिद्या नहीं व्यापती । प्रभुकी प्रेरणासे उसे बिद्या व्यापती है ॥ १ ॥

ताते नास न होइ दास कर । भेद भगति बाढ़इ बिहंग बर ॥

भ्रम तें चकित राम मोहि देखा । बिहँसे सो सुनु चरित बिसेषा ॥ २ ॥

हे पक्षिश्रेष्ठ ! इसीसे दासका नाश नहीं होता और भेद-भक्ति बढ़ती है । श्रीरामजीने मुझे जब भ्रमसे चकित देखा, तब वे हँसे । वह विशेष चरित्र सुनिये ॥ २ ॥

तेहि कौतुक कर मरमु न काहँ । जाना अनुज न मातु पिताहँ ॥

जानु पानि घाप मोहि घरना । स्यामल गात अरुन कर चरना ॥ ३ ॥

उस खेलका मर्म किसीने नहीं जाना, न छोटे भाइयोंने और न माता-पिताने ही । वे श्याम शरीर और लाल-लाल हथेली और चरणतलवाले बालरूप श्रीरामजी घुटने और हाथोंके बल मुझे पकड़नेको दौड़े ॥ ३ ॥

तय मैं भागि चलेउँ उरगारी । राम गहन कहँ भुजा पसारी ॥

जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा । तहँ भुज हरि देखउँ निज पासा ॥ ४ ॥

हे सपोंके शत्रु गरुड़जी ! तब मैं भाग चला । श्रीरामजीने मुझे पकड़नेके लिये भुजा फैलायी । मैं जैसे-जैसे आकाशमें दूर उड़ता जैसे-वैसे ही वहाँ श्रीहरिकी भुजाको अपने पास देखता था ॥ ४ ॥

दो० — ब्रह्मलोक लागि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात ।

जुग अंगुल कर बीच सब रामभुजहि मोहि तात ॥ ७९ (क) ॥

मैं ब्रह्मलोकगत गया, और जब उड़ते हुए मैंने पीछेकी ओर देखा, तो हे तात ! श्रीरामजीकी भुजामें ओर मुझमें केवल दो ही अंगुलका बीच था ॥ ७९ (क) ॥

सप्तावरन भेद करि जहाँ लगे गति मोरि ।

गयउँ तहाँ प्रभुभुज निरखि व्याकुल भयउँ बहोरि ॥ ७९ (ख) ॥

सातों आवरणोंको भेदकर जहाँतक मेरी गति थी, वहाँतक मैं गया । पर वहाँ भी प्रभुकी भुजाको [अपने पीछे] देखकर मैं व्याकुल हो गया ॥ ७९ (ख) ॥

चौ०—मूदेउँ नयन त्रसित जब भयऊँ । पुनि खितवत कोसलपुर गयऊँ ॥

मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं । बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं ॥ १ ॥

जब मैं भयभीत हो गया, तब मैंने आँखें मूँद लीं । फिर आँखें खोलकर देखते ही अवधपुरीमें पहुँच गया ! मुझे देखकर श्रीरामजी मुस्कुराने लगे । उनके हँसते ही मैं तुरंत उनके मुखमें प्रवेश कर गया ॥ १ ॥

उदर माझ सुनु अंडज राया । देखेऊँ बहु ब्रह्मांड निकाया ॥

अति विचित्र तहँ लोक अनेका । रचना अधिक एक ते एका ॥ २ ॥

हे पक्षिराज ! सुनिये, मैंने उनके पेटमें बहुत-से ब्रह्माण्डोंके समूह देखे । वहाँ (उन ब्रह्माण्डोंमें) अनेकों विचित्र लोक थे जिनकी रचना एक-से-एककी बढ़कर थी ॥ २ ॥

कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा । अगनित उडगन रवि रजनीसा ॥

अगनित लोकपाल जम काला । अगनित भूधर भूमि बिसाला ॥ ३ ॥

करोड़ों ब्रह्माजी और शिवजी, अनगिनत तारागण, सूर्य और चन्द्रमा, अनगिनत लोकपाल, यम और काल, अनगिनत विशाल पर्वत और भूमि, ॥ ३ ॥

सागर सरि सर बिपिन अपारा । नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा ॥

सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर । चारि प्रकार जीव सचराचर ॥ ४ ॥

असंख्य समुद्र, नदी, तालाब और वन, तथा और भी नाना प्रकारकी सृष्टिका विस्तार देखा । देवता, मुनि, सिद्ध, नाग, मनुष्य, किन्नर तथा चारों प्रकारके जड़ और चेतन जीव देखे ॥ ४ ॥

दो०—जो नहिँ देखा नहिँ सुना जो मनहूँ न समाइ ।

सो सब अद्भुत देखेऊँ बरनि कवनि बिधि जाइ ॥ ८० (क) ॥

जो कभी न देखा था, न सुना था और मनमें भी नहीं समा सकता था, अर्थात् जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, वही सब अद्भुत सृष्टि मैंने देखी । तब उसका किस प्रकार वर्णन किया जाय ! ॥ ८० (क) ॥

एक एक ब्रह्मांड महुँ रहँ बरष सत एक ।

एहि बिधि देखत फिरँ मैं अंड कटाह अनेक ॥ ८० (ख) ॥

मैं एक-एक ब्रह्माण्डमें एक-एक सौ वर्षतक रहता । इस प्रकार मैं अनेक ब्रह्माण्ड देखता फिरा ॥ ८० (ख) ॥

चौ०—लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता । भिन्न बिन्नु सिव मनु दिसिजाता ॥

नर गंधर्व भूत बेताला । किंनर निसिचर पमु खग व्याला ॥ १ ॥

प्रत्येक लोकमें भिन्न-भिन्न ब्रह्मा, भिन्न-भिन्न विष्णु, शिव, मनु, दिक्पाल, मनुष्य, गन्धर्व, भूत, वैताल, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, सर्प, ॥ १ ॥

देव दनुज गन नाना जाती । सकल जीव तहँ आनहि भाँती ॥

महि सरि सागर सर गिरि नाना । सब प्रपंच तहँ आनइ आना ॥ २ ॥

तथा नाना जातिके देवता एवं दैत्यगण थे । सभी जीव वहाँ दूसरे ही प्रकारके थे । अनेक पृथ्वी, नदी, समुद्र, तालाब तथा सब सृष्टि वहाँ दूसरी-ही-दूसरी प्रकारकी थी ॥ २ ॥

अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा । देखेऊँ जिनस अनेक अनूपा ॥

अवधपुरी प्रति भुवन निनारी । सरऊ भिन्न भिन्न नर नारी ॥ ३ ॥

प्रत्येक ब्रह्माण्ड-ब्रह्माण्डमें मैंने अपना रूप देखा तथा अनेकों अनुपम वस्तुएँ देखीं । प्रत्येक भुवनमें न्यारी ही अवधपुरी, भिन्न ही सरयूजी और भिन्न प्रकारके ही नर-नारी थे ॥ ३ ॥

दसरथ कौसल्या सुनु ताता । बिबिध रूप भरतादिक भ्रता ॥

प्रति ब्रह्मांड राम अबतारा । देखेँ बाल बिनोद अपारा ॥ ४ ॥

हे तात ! मुनिये, दशरथजी, कौसल्याजी, और भरतजी आदि भाई भी भिन्न-भिन्न रूपोंके थे । मैं प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रामावतार और उनकी अपार बाललीलाएँ देखता फिरता ॥ ४ ॥

दो०—भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति बिचित्र हरि जान ।

अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन ॥ ८१ (क) ॥

हे हरिवाहन ! मैंने सभी कुछ भिन्न-भिन्न और अत्यन्त विचित्र देखा । मैं अनगिनत ब्रह्माण्डोंमें फिरा, पर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको मैंने दूसरी तरफका नहीं देखा ॥ ८१ (क) ॥

सोइ सिसुपन सोइ सोभा सोइ कृपाल रघुवीर ।

भुवन भुवन देखत फिरउँ प्रेरित मोह समीर ॥ ८१ (ख) ॥

सर्वत्र वही शिशुपन, वही शोभा और वही कृपाल श्रीरघुवीर ! इस प्रकार मोहरूपी पवनकी प्रेरणासे मैं भुवन-भुवनमें देखता फिरता था ॥ ८१ (ख) ॥

चो०—भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका । बीते मनहुँ कल्प सत एका ॥

फिरत फिरत निज आश्रम आयउँ । तहँ पुनि रहि कलु काल गवाँयउँ ॥ १ ॥

अनेक ब्रह्माण्डोंमें भटकते मुझे मानो एक सौ कल्प बीत गये । फिरता-फिरता मैं अपने आश्रममें आया, और कुछ काल वहाँ रहकर बिताया ॥ १ ॥

निज प्रभु जन्म अवध सुनि पायउँ । निर्भर प्रेम हरषि उठि घायउँ ॥

देखउँ जन्म महोत्सव जाई । जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई ॥ २ ॥

फिर जब अपने प्रभुका अवधपुरीमें जन्म (अवतार) सुन पाया, तब प्रेमसे परिपूर्ण होकर मैं हर्षपूर्वक उठ दौड़ा । जाकर मैंने जन्म-महोत्सव देखा, जिस प्रकार मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ ॥ २ ॥

राम उदर देखेउँ जग नाना । देखत बनइ न जाइ बखाना ॥

तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना । मायापति कृपाल भगवाना ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके पेटमें मैंने बहुत-से जगत् देखे, जो देखते ही बनते थे, वर्णन नहीं किये जा सकते । वहाँ फिर मैंने सुजान, मायापति, कृपाल भगवान् श्रीरामको देखा ॥ ३ ॥

करउँ बिचार बहोरि बहोरी । मोह कलिल व्यापित मति मोरी ॥

उभय घरी महँ मैं सब देखा । भयउँ भ्रमित मन मोह विसेषा ॥ ४ ॥

मैं बार-बार विचार करता था । मेरी बुद्धि मोहरूपी कीचड़से व्याप्त थी । यह सब मैंने दो ही घड़ीमें देखा । मनमें विशेष मोह होनेसे मैं थक गया ॥ ४ ॥

दो०—देखि कृपाल बिकल मोहि बिहँसे तव रघुवीर ।

बिहँसत हीं मुख बाहेर आयउँ सुनु मतिधीर ॥ ८२ (क) ॥

मुझे व्याकुल देखकर तब कृपाल श्रीरघुवीरजी हँस दिये । हे धीरबुद्धि गरुड़जी ! मुनिये ! उनके हँसते ही मैं मुँहसे बाहर आ गया ॥ ८२ (क) ॥

सोइ लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम ।

कोटि भाँति समुझावउँ मनु न लहइ विश्राम ॥ ८२ (ख) ॥

श्रीरामचन्द्रजी मेरे साथ फिर वही लड़कपन करने लगे । मैं करोड़ों (असंख्य) प्रकारसे मनको समझाता था, पर वह शान्ति नहीं पाता था ॥ ८२ (ख) ॥

चौ०—देखि चरित यह सो प्रभुताई । समुझत देह दसा बिसराई ॥

घरनि परेउँ मुख आव न बाता । जाहि जाहि आरत जन आता ॥ १ ॥

यह बालचरित्र देखकर और [पेटके अंदर देखी हुई] वह प्रभुता समझकर (स्मरणकर) 'हे आर्तजनोंके रक्षक ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये' पुकारता हुआ मैं पृथ्वीपर गिर पड़ा । मुखसे बात नहीं निकलती थी ! ॥ १ ॥

प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी । निज माया प्रभुता तब रोकी ॥

कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ । दीनदयाल सकल दुख हरेऊ ॥ २ ॥

तदनन्तर प्रभुने मुझे प्रेमविह्वल देखकर अपनी मायाकी प्रभुताको रोक लिया । प्रभुने अपना कर-कमल मेरे सिरपर रक्खा । दीनदयालने मेरा सम्पूर्ण दुःख हर लिया ॥ २ ॥

कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा । सेवक सुखद कृपा संदोहा ॥

प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी । मन महुँ होइ हरष अति भारी ॥ ३ ॥

सेवकोंको सुख देनेवाले कृपामय श्रीरामजीने मुझे मोहसे सर्वथा रहित कर दिया । उनकी पहलेवाली प्रभुता विचार-विचारकर मेरे मनमें बड़ा भारी हर्ष हुआ ॥ ३ ॥

भगत बछलता प्रभु कै देखी । उपजी मम उर प्रीति विसेयी ॥

सजल नयन पुलकित कर जोरी । कीन्हउँ बहुबिधि विनय बहोरी ॥ ४ ॥

प्रभुकी भक्तवत्सलता देखकर मेरे हृदयमें बहुत ही प्रेम उत्पन्न हुआ । फिर मैंने [आनन्दसे] नेत्रोंमें जल भरकर, पुलकित होकर और हाथ जोड़कर बहुत प्रकारसे विनती की ॥ ४ ॥

दो०—सुनि सप्रेम मम बानी देखि दीन निज दास ।

वचन सुखद गंभीर मृदु बोले रमानिवास ॥ ८३ (क) ॥

मेरी प्रेमयुक्त वाणी सुनकर और अपने दासको दीन देखकर रमानिवास श्रीरामजी सुखदायक, गंभीर और कोमल वचन बोले—॥ ८३ (क) ॥

काकभसुंढि मागु वर अति प्रसन्न मोहि जानि ।

अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल मुख खानि ॥ ८३ (ख) ॥

हे काकभसुंढि ! तू मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर वर माँग । अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ, दूसरी ऋद्धियाँ तथा सम्पूर्ण सुखोंकी खान मोक्ष, ॥ ८३ (ख) ॥

चौ०—ग्यान विषेक थिरति विग्याना । मुनिदुर्लभ गुन जे जग नाना ॥

आजु देउँ सब संसय नाही । मागु जो तोहि भाव मन माहीं ॥ १ ॥

ज्ञान, विवेक, वैराग्य, विज्ञान और ये अनेकों गुण जो जगत्में मुनियोंके लिये भी दुर्लभ हैं, ये सब मैं आज तुझे दूँगा, इसमें सन्देह नहीं । जो तेरे मन भावे, सो माँग ले ॥ १ ॥

सुनि प्रभुबचन अधिक अनुरागेउँ । मन अनुमान करन तब लागेउँ ॥

प्रभु कह देन सकल सुख सही । भगति आपनी देन न कही ॥ २ ॥

प्रभुके वचन सुनकर मैं बहुत ही प्रेममें भर गया । तब मनमें अनुमान करने लगा कि प्रभुने सब सुखोंके देनेकी बात कही, यह तो सत्य है; पर अपनी भक्ति देनेकी बात नहीं कही ॥ २ ॥

भगतिहीन गुन सब सुख ऐसे । लवन बिना बहु बिंजन जैसे ॥

भजनहीन सुख कवने काजा । अस बिचारि बोलेउँ खगराजा ॥ ३ ॥

भक्तिसे रहित सब गुण और सब सुख कैसे फीके हैं, जैसे नमकके बिना बहुत प्रकारके भोजनके पदार्थ ! भजनसे रहित सुख किस कामके ? हे पक्षिराज ! ऐसा विचारकर मैं बोला—॥ ३ ॥

जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर वेह । मोपर करहु कृपा अरु नेह ॥

मन भावत बर मागउँ स्वामी । तुम्ह उदार उर अंतरजामी ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे बर देते हैं और मुझपर कृपा और स्नेह करते हैं, तो हे स्वामी ! मैं अपना मन-भाया बर माँगता हूँ । आप उदार हैं और हृदयके भीतरकी जाननेवाले हैं ॥ ४ ॥

दो०—अविरल भगति विसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव ।

जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव ॥ ८४ (क) ॥

आपको जिस अविरल (प्रगाढ़ एवं) विशुद्ध (अनन्य, निष्काम) भक्तिको श्रुति और पुराण गाते हैं, जिसे योगीश्वर मुनि खोजते हैं और प्रभुकी कृपासे कोई किरला ही जिसे पाता है, ॥ ८४ (क) ॥

भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपासिंधु सुखधाम ।

सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम ॥ ८४ (ख) ॥

हे भक्तोंके मन-इच्छित फल देनेवाले कल्पवृक्ष ! शरणागतके हितकारी ! हे कृपासागर ! हे सुखधाम श्रीरामजी ! दया करके मुझे अपनी वही भक्ति दीजिये ॥ ८४ (ख) ॥

चौ०—एवमस्तु कहि रघुकुलनायक । बोले वचन परम सुखदायक ॥

सुनु बायस तैं सहज सयाना । काहे न मागसि अस बरदाना ॥ १ ॥

‘एवमस्तु’ (ऐसा ही हो) कहकर रघुवंशके स्वामी परम सुख देनेवाले वचन बोले—हे काक ! सुन, तू स्वभावसे ही बुद्धिमान् है । ऐसा बरदान कैसे न माँगता ? ॥ १ ॥

सब सुख खानि भगति तैं मागी । नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी ॥

जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं । जे जप जोग अनल तन दहहीं ॥ २ ॥

तूने सब सुखोंकी खान भक्ति माँग ली । जगत्में तेरे समान बड़भागी कोई नहीं है । वे मुनि जो जप और योगकी अग्निसे शरीर जलाते रहते हैं, करोड़ों यज्ञ करके भी जिसको (जिस भक्तिको) नहीं पाते ॥ २ ॥

रीझेऊं देखि तोरि चतुराई । मागेहु भगति मोहि अति भाई ॥

सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरें । सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरें ॥ ३ ॥

वही भक्ति तूने माँगी । तेरी चतुरता देखकर मैं रीझ गया । यह चतुरता मुझे बहुत ही अच्छी लगी । हे पक्षी ! सुन, मेरी कृपासे अब समस्त शुभ गुण तेरे हृदयमें बसेंगे ॥ ३ ॥

भगति ग्यान बिग्यान बिरागा । जोग चरित्र रहस्य बिभागा ॥

जानब तैं सबही कर भेदा । मम प्रसाद नहिं साधन खेदा ॥ ४ ॥

भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग, मेरी लीलाएँ और उनके रहस्य तथा विभाग; इन सबके भेदको तू मेरी कृपासे ही जान जायगा; तुझे साधनका कष्ट नहीं होगा ॥ ४ ॥

दो०—माया संभव भ्रम सब अब न व्यापिहहिं तोहि ।

जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि ॥ ८५ (क) ॥

मायासे उत्पन्न सब भ्रम अब तुझको न व्यापेंगे । मुझे अनादि, अजन्मा, अगुण (प्रकृतिके गुणोंसे रहित) और [गुणातीत दिव्य] गुणोंकी खान ब्रह्म जानना ॥ ८५ (क) ॥

मोहि भगत प्रिय संतत अस बिचारि सुनु काग ।

कायँ वचन मन मम पद करेसु अचल अनुराग ॥ ८५ (ख) ॥

हे काक ! सुन, मुझे भक्त निरन्तर प्रिय है; ऐसा विचारकर शरीर, वचन और मनसे मेरे चरणोंमें अटल प्रेम करना ॥ ८५ (ख) ॥

चौ०—अब सुनु परम बिमल मम बानी । सत्य सुगम निगमादि बखानी ॥

निज सिद्धांत सुनावउँ तोही । सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही ॥ १ ॥

अब मेरी सत्य, सुगम, वेदादिके द्वारा वर्णित परम निर्मल वाणी सुन । मैं तुझको यह 'निजसिद्धान्त' सुनाता हूँ । सुनकर मनमें धारण कर और सब तजकर मेरा भजन कर ॥ १ ॥

मम माया संभव संसारा । जीव चराचर बिबिधि प्रकारा ॥

सब मम प्रिय सब मम उपजाए । सब ते अधिक मनुज मोहि भाए ॥ २ ॥

यह सारा संसार मेरी मायासे उत्पन्न है । इसमें अनेकों प्रकारके चराचर जीव हैं । वे सभी मुझे प्रिय हैं क्योंकि सभी मेरे उत्पन्न किये हुए हैं । इनमें मुझको मनुष्य सबसे अधिक अच्छे लगते हैं ॥ २ ॥

तिन्ह महुँ द्विज द्विज महुँ श्रुतिधारी । तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी ॥

तिन्ह महुँ प्रिय विरक्त पुनि ग्यानी । ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी ॥ ३ ॥

उन मनुष्योंमें भी द्विज, द्विजोंमें भी वेदोंको धारण करनेवाले, उन में भी वेदोक्त धर्मपर चलनेवाले, उनमें भी विरक्त (वैराग्यवान्) मुझे प्रिय हैं । वैराग्यवानोंमें फिर ज्ञानी और ज्ञानियोंसे भी अत्यन्त प्रिय विज्ञानी हैं ॥ ३ ॥

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा । जेहि गति मोरि न दूसरि आसा ॥

पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं । मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं ॥ ४ ॥

विज्ञानियोंसे भी प्रिय मुझे अपना दास है, जिसे मेरी ही गति है, कोई दूसरी आशा नहीं है । मैं तुझसे बार-बार सत्य ('निज सिद्धान्त') कहता हूँ कि मुझे अपने सेवकके समान प्रिय कोई भी नहीं है ॥ ४ ॥

भगतिहीन बिरंखि किन होई । सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई ॥

भगतिबंत अति नीचउ प्राणी । मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी ॥ ५ ॥

भक्तिहीन ब्रह्मा ही क्यों न हो, वह मुझे सब जीवोंके समान ही प्रिय है । परन्तु भक्तिमान् अत्यन्त नीच भी प्राणी मुझे प्राणोंके समान प्रिय है, यह मेरी घोषणा है ॥ ५ ॥

दो०—सुचि सुशील सेवक सुमति प्रिय कहू काहि न लाग ।

श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग ॥ ८६ ॥

पवित्र, सुशील और सुन्दर बुद्धिवाला सेवक भला बता, किसको प्यारा नहीं लगता ! वेद और पुराण ऐसी ही नीति कहते हैं । हे काक ! सावधान होकर सुन ॥ ८६ ॥

चौ०—एक पिता के बिपुल कुमार । होहिं पृथक् गुन सील अचारा ॥

कोउ पंडित कोउ तापस न्याता । कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ॥ १ ॥

एक पिताके बहुत-से पुत्र पृथक्-पृथक् गुण, शील और आचरणवाले होते हैं । कोई पण्डित होता है, कोई तपस्वी, कोई शानी, कोई धनी, कोई शूरवीर, कोई दानी, ॥ १ ॥

कोउ सर्वग्य धर्मरत कोई । सब पर पितहि प्रीति सम होई ॥

कोउ पितु भगत वचन मन कर्मा । सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा ॥ २ ॥

कोई सर्वज्ञ और कोई धर्मपरायण होता है । पिताका प्रेम इन सभीपर समान होता है । परन्तु इनमेंसे यदि कोई मन, वचन और कर्मसे पिताका ही भक्त होता है, स्वप्नमें भी दूसरा धर्म नहीं जानता, ॥ २ ॥

सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना । जद्यपि सो सब भौंति अयाना ॥

एहि विधि जीव चराचर जेते । त्रिजग देव नर असुर समेते ॥ ३ ॥

वह पुत्र पिताको प्राणोंके समान प्रिय होता है, यद्यपि (चाहे) वह सब प्रकारसे अज्ञान (मूर्ख) ही हो । इसी प्रकार तिर्यक् (पशु पक्षी), देव, मनुष्य और असुरोंसमेत जितने भी चेतन और जड़ जीव हैं ॥ ३ ॥

अखिल बिख यह मोर उपाया । सब पर मोहि बराबर दाया ॥

तिन्ह महुँ जो परिहरि मद माया । भजै मोहि मन बच अरु काया ॥ ४ ॥

उन्से भरा हुआ यह सम्पूर्ण विश्व मेरा ही पैदा किया हुआ है, अतः सबपर मेरी बराबर दया है । परन्तु इनमेंसे जो मद और माया छोड़कर मन, वचन और शरीरसे मुझको भजता है, ॥ ४ ॥

दो०—पुरुष नपुंसक नारि वा जोव चराचर कोइ ।

सर्वभाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ॥ ८७ (क) ॥

वह पुरुष ही, नपुंसक हो, स्त्री हो, अथवा चर-अचर कोई भी जीव हो, कपट छोड़कर जो भी सर्व-भावसे मुझे भजता है वही मुझे परम प्रिय है ॥ ८७ (क) ॥

सो०—सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय ।

अस बिचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब ॥ ८७ (ख) ॥

हे पक्षी ! मैं तुझसे सत्य कहता हूँ, पवित्र (अनन्य एवं निष्काम) सेवक मुझे प्राणप्रिय है । ऐसा विचारकर सब आशा-भरोसा छोड़कर मुझको ही भज ॥ ८७ (ख) ॥

चौ०—कबहुँ काल न व्यापहि तोही । सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही ॥

प्रभु वचनामृत मुनि न अघाऊँ । तनु पुलकित मन अति हरषाऊँ ॥ १ ॥

तुझे काल कभी नहीं व्यापेगा । निरन्तर मेरा स्मरण और भजन करत रहना । प्रभुके वचनामृत सुनकर मैं तृप्त नहीं होता था । मेरा शरीर पुलकित था और मनमें मैं अत्यन्त ही हर्षित था ॥ १ ॥

सो सुख जानइ मन अरु काना । नहिं रसना पहिं जाइ बखाना ॥

प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना । कहि किमि सकहिं तिन्हहि नहिं बयना ॥ २ ॥

वह सुख मन और कान ही जानते हैं । जीभसे उसका बखान नहीं किया जा सकता । प्रभुकी शोभाका वह सुख नेत्र ही जानते हैं । पर वे कह कैसे सकते हैं ! उनके वाणी तो है नहीं ॥ २ ॥

बहुविधि मोहि प्रबोधि सुख देई । लगे करन सिसु कौतुक तेई ॥

सजल नयन कछु सुख करि रुखा । खितइ मातु लागी अति भूखा ॥ ३ ॥

मुझे बहुत प्रकारसे भलीभाँति समझाकर और सुख देकर प्रभु फिर वही बालकके खेल करने लगे । नेत्रोंमें जल भरकर और मुखको कुछ रुखा-सा बनाकर उन्होंने माताकी ओर देखा—[और मुखाकृति तथा चितवनसे माताको समझा दिया कि] बहुत भूख लगी है ॥ ३ ॥

देखि मातु आतुर उठि धाई । कहि मृदु बचन लिए डर लाई ॥

गोद राखि कराव पय पाना । रघुपति चरित ललित कर गाना ॥ ४ ॥

यह देखकर माता तुरंत उठ दौड़ी और कोमल बचन कहकर उन्होंने श्रीरामजीको छातीसे लगा लिया । वे गोदमें लेकर उन्हें दूध पिलाने लगीं और श्रीरघुनाथजी (उन्हीं) की ललित लीलाएँ गाने लगीं ॥ ४ ॥

सो—जेहि सुख लागि पुरारि असुम बेष कृत सिव सुखद ।

अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन ॥ ८८ (क) ॥

जिस सुखके लिये सबको सुख देनेवाले कल्याणरूप त्रिपुरारि शिवजीने अशुभ बेष धारण किया, उस सुखमें अवधपुरीके नर-नारी निरन्तर निमग्न रहते हैं ॥ ८८ (क) ॥

सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ ।

ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहि सज्जन सुमति ॥ ८८ (ख) ॥

उस सुखका लवलेसमात्र जिन्होंने एक बार स्वप्नमें भी प्राप्त कर लिया, हे पक्षिराज ! वे सुन्दर बुद्धिवाले सज्जन पुरुष उसके सामने ब्रह्मसुखको भी कुछ नहीं गिनते ॥ ८८ (ख) ॥

चौ—मैं पुनि अवध रहेउँ कछु काला । देखेउँ बाल बिनोद रसाला ॥

राम प्रसाद भगति बर पायउ । प्रभु पद बंदि निजाश्रम आयउ ॥ १ ॥

मैं और कुछ समयतक अवधपुरीमें रहा और मैंने श्रीरामजीकी रसीली बाललीलाएँ देखीं । श्रीरामजीकी कृपासे मैंने भक्तिका वरदान पाया । तदनन्तर प्रभुके चरणोंकी वन्दना करके मैं अपने आश्रमपर आया ॥ १ ॥

तब ते मोहि न व्यापी माया । जब ते रघुनाथक अपनाया ॥

यह सब गुप्त चरित मैं गावा । हरिमार्या जिमि मोहि नचावा ॥ २ ॥

इस प्रकार जबसे श्रीरघुनाथजीने मुझको अपनाया, तबसे मुझे माया कभी नहीं व्यापी । श्रीहरिकी मायाने मुझे जैसे नचाया, वह सब गुप्त चरित्र मैंने कहा ॥ २ ॥

निज अनुभव अथ कहउँ खगेसा । बिनु हरिभजन न जाहिं कलेसा ॥

रामकृपा बिनु सुनु खगराई । जानि न जाइ राम प्रभुताई ॥ ३ ॥

हे पक्षिराज गरुड़ ! अब मैं आपसे अपना निजी अनुभव कहता हूँ । वह यह है कि—भगवान्‌के भजन विना क्लेश दूर नहीं होते । हे पक्षिराज ! सुनिये, श्रीरामजीकी कृपा विना श्रीरामजीकी प्रभुता नहीं जानी जाती; ॥ ३ ॥

जाने बिनु न होइ परतीती । बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥

प्रीति बिना नहिं भगति दिक्कई । जिमि खगपति जल कै चिकनई ॥ ४ ॥

प्रभुता जाने बिना उनपर विश्वास नहीं जमता; विश्वासके बिना प्रीति नहीं होती और प्रीति बिना भक्ति वैसे हो दृढ़ नहीं होती, जैसे हे पक्षिराज ! जल्की चिकनई नहीं ठहरती ॥ ४ ॥

सो०—बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु ।

गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरिभगति बिनु ॥ ८९ (क) ॥

गुरुके बिना कहीं ज्ञान हो सकता है ? और वैराग्यके बिना कहीं ज्ञान हो सकता है ? इसी तरह वेद और पुराण कहते हैं कि श्रीहरिकी भक्तिके बिना क्या कोई सुख प्राप्त कर सकता है ? ॥ ८९ (क) ॥

कोउ बिश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु ।

चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥ ८९ (ख) ॥

हे तात ! स्वभाविक संतोषके बिना क्या कोई शान्ति पा सकता है ? चाहे करोड़ों उपाय करके, पच पच मरिये फिर भी क्या कभी जलके बिना नाव चल सकती है ? ॥ ८९ (ख) ॥

चो०—बिनु संतोष न काम नसाहीं । काम अछन सुख सपनेहुँ नाहीं ॥

रामभजन बिनु मिटहिं कि कामा । थल विहीन तरु कबहुँ कि जामा ॥ १ ॥

संतोषके बिना कामनाका नाश नहीं होता और कामनाओंके रहते स्वप्नमें भी सुख नहीं हो सकता । और श्रीरामके भजन बिना कामनाएँ कहीं मिट सकती हैं ? बिना धरतीके भी कहीं पेड़ उग सकता है ? ॥ १ ॥

बिनु बिग्यान कि समता आवइ । कोउ अवकास कि नम बिनु पावइ ॥

अद्वा बिना धर्म नहिं होई । बिनु महि गंध कि पावइ कोई ॥ २ ॥

विज्ञानके बिना क्या समभाव आ सकता है ? आकाशके बिना क्या कोई अवकाश पा सकता है ? भद्राके बिना धर्मका आचरण नहीं होता । क्या पृथ्वीतत्त्वके बिना कोई गन्ध पा सकता है ? ॥ २ ॥

बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा । जल बिनु रस कि होइ संसारा ॥

सील कि मिल बिनु बुध मेवकाई । जिमि बिनु तेज न रूप गोसाईं ॥ ३ ॥

तपके बिना क्या तेज फैल सकता है ? जल-तत्त्वके बिना संसारमें क्या रस हो सकता है ? पण्डित-जनोंकी सेवा बिना क्या शील प्राप्त हो सकता है ? हे गोसाईं ! जैसे बिना तेज (अग्नि-तत्त्व) के रूप नहीं मिलता ॥ ३ ॥

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा । परस कि होइ बिहीन समीरा ॥

कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा । बिनु हरि भजन न भव भय नासा ॥ ४ ॥

निज-सुख (आत्मानन्द) के बिना क्या मन स्थिर हो सकता है ? वायु-तत्त्वके बिना क्या स्पर्श हो सकता है ? क्या विश्वासके बिना कोई भी सिद्धि हो सकती है ? इसी प्रकार श्रीहरिके भजन बिना भव-भयका नाश नहीं होता ॥ ४ ॥

दो०—बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु ।

राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु ॥ ९० (क) ॥

विना विश्वासके भक्ति नहीं होती; भक्तिके विना श्रीरामजी द्रवीभूत नहीं होते (दरते नहीं) और श्रीरामजीकी कृपाके विना जीव स्वप्नमें भी शान्ति नहीं पाता ॥ ९० (क) ॥

सो०—अस विचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल ।

भजहु राम रघुवीर करुनाकर सुंदर सुखद ॥ ९० (ख) ॥

हे धीरबुद्धि ! ऐसा विचारकर सम्पूर्ण कुतर्कों और सन्देहोंको छोड़कर करुणाकी खान, सुन्दर और सुख देनेवाले श्रीरघुवीरका भजन कीजिये ॥ ९० (ख) ॥

चौ०—निज मति सरिस नथ मैं गाई । प्रभु प्रताप महिमा खगराई ॥

कहेउँ न कछु करि जुगुति बिसेषी । यह सब मैं निज नयनन्हि देखी ॥ १ ॥

हे पक्षिराज ! हे नाथ ! मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार प्रभुके प्रताप और महिमाका गान किया । मैंने इसमें कोई बात विशेष युक्तिके बड़ाकर नहीं कही है । यह सब अपनी आँखों देखी कही है ॥ १ ॥

महिमा नाम रूप गुन गाथा । सकल अमित अनंत रघुनाथा ॥

निज निज मति मुनि हरिगुन गावहिं । निगम सेष सिव पार न पावहिं ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजीकी महिमा, नाम, रूप और गुणोंकी कथा सभी अपार एवं अनन्त हैं; तथा श्रीरघुनाथजी स्वयं भी अनन्त हैं । मुनिगण अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार श्रीहरिके गुण गाते हैं । वेद, शेष और शिवजी भी उनका पार नहीं पाते ॥ २ ॥

तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता । नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता ॥

तिमि रघुपति महिमा अवगाहा । तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा ॥ ३ ॥

आपसे लेकर मच्छरपर्यन्त सभी छोटो-बड़े जीव आकाशमें उड़ते हैं; किन्तु आकाशका अन्त कोई नहीं पाते । इसी प्रकार हे तात ! श्रीरघुनाथजीकी महिमा भी अथाह है, क्या कभी कोई उसकी याह पा सकता है ? ॥ ३ ॥

रामु काम सत कोटि सुभग तन । दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन ॥

सक कोटि सत सरिस बिलासा । नभ सत कोटि अमित अवकासा ॥ ४ ॥

श्रीरामजीका अरबों कामदेवोंके समान सुन्दर शरीर है । वे अनन्त कोटि दुर्गाओंके समान शत्रुनाशक हैं । अरबों इन्द्रोंके समान उनका विनाश (ऐश्वर्य) है । अरबों आकाशोंके समान उनमें अनन्त अवकाश है ॥ ४ ॥

दो०—मरुत कोटि सत विपुल बल रवि सत कोटि प्रकास ।

ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास ॥ ९१ (क) ॥

अरबों पवनके समान उनमें महान् बल है, अरबों सूर्योंके समान प्रकाश है । अरबों चन्द्रमाओंके समान वे शीतल और संसारके समस्त भयोंका नाश करनेवाले हैं ॥ ९१ (क) ॥

काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत ।

धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत ॥ ९१ (ख) ॥

अरबों कालोंके समान वे अत्यन्त दुस्तर, दुर्गम और दुरन्त हैं ! वे भगवान् अरबों धूमकेतुओंके समान अत्यन्त प्रबल हैं ॥ ९१ (ख) ॥

चौ०—प्रभु अगाध सत कोटि पताला । समन कोटि सत सरिस कराला ॥

तीरथ अमित कोटि सम पावन । नाम अखिल अघ पूग नसावन ॥ १ ॥

अरबों पातालोंके समान प्रभु अथाह हैं। अरबों यमराजोंके समान भयानक हैं। अनन्तकोटि तीर्थोंके समान वे पवित्र करनेवाले हैं। उनका नाम सम्पूर्ण पापसमूहका नाश करनेवाला है ॥ १ ॥

हिमगिरि कोटि अचल रघुवीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा ॥
कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना ॥ २ ॥

श्रीरघुवीर करोड़ों हिमालयोंके समान अचल (स्थिर) हैं और अरबों समुद्रोंके समान गहरे हैं। भगवान् अरबों कामधेनुओंके समान सब कामनाओंके देनेवाले हैं ॥ २ ॥

सारद कोटि अमित चतुरार्ह। विधि सत कोटि सृष्टि निपुनार्ह ॥
विष्णु कोटि सम पालन कर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता ॥ ३ ॥

उनमें अनन्तकोटि सरस्वतियोंके समान चतुरता है। अरबों ब्रह्माओंके समान सृष्टिरचनाकी निपुणता है। वे अरबों विष्णुओंके समान पालन करनेवाले और अरबों रुद्रोंके समान संहार करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना ॥
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निराम प्रभु जगदीसा ॥ ४ ॥

वे अरबों कुबेरोंके समान धनवान् और करोड़ों मायाओंके समान सृष्टिके खजाने हैं। बांझ उठानेमें वे अरबों शेषोंके समान हैं। अधिक क्या जगदीश्वर प्रभु श्रीरामजी सभी बातोंमें सीमारहित और उपमारहित हैं ॥ ४ ॥

छं०—निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै ॥
एहि भाँति निज निज मति बिलास मुनोस हरिहि बखानहीं।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल संप्रम सुनि सुख मानहीं ॥

श्रीरामजी उपमारहित हैं; उनकी कोई दूसरी उपमा है ही नहीं। श्रीरामके समान श्रीराम ही हैं, ऐसा वेद कहते हैं। जैसे अरबों जुगनुओंके समान कहनेसे सूर्य प्रशंसाको नहीं, वरं अत्यन्त लघुताको ही प्राप्त होता है। इसी प्रकार अपनी बुद्धिके विकासके अनुसार मुनीश्वर आहंरिका वर्णन करते हैं। किन्तु प्रभु भक्तोंके भावमात्रको ग्रहण करनेवाले और अत्यन्त कृपालु हैं। वे उस वर्णनको प्रेमसहित सुनकर सुख मानते हैं ॥

दो०—रामु अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ।
संतन्ह जन जस कियु सुनेउँ तुम्हहि सुनायउँ सोइ ॥ ९२ (क) ॥

श्रीरामजी अपार गुणोंके समुद्र हैं। क्या उनकी कोई थाह पा सकता है? संनोसे मैंने जैसा कुछ सुना था, वही आपको सुनाया ॥ ९२ (क) ॥

सो०—भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन ॥ ९२ (ख) ॥

सुखके भण्डार, करुणाधाम भगवान् भाव (प्रेम) के वश हैं। अतएव ममता, मद और मानको छोड़कर सदा भोजनकीनाथजीका ही भजन करना चाहिये ॥ ९२ (ख) ॥

चौ०—सुनि भुसुंइ के बचन सुहाए। हरषित खगपति पंख फुलाए ॥
नयन नीर मन अति हरषाना। श्रीरघुपति प्रताप उर आना ॥ १ ॥

भुशुण्डिजीके सुन्दर वचन सुनकर पक्षिराजने हर्षित होकर अपने पंख फुला लिये । उनके नेत्रोंमें [प्रेमानन्द-
के आँसुओंका] जल आ गया और मन अत्यन्त हर्षित हो गया । उन्होंने श्रीरघुनाथजीका प्रताप हृदयमें धारण
किया ॥ १ ॥

पाण्डिल मोह समुद्रि पण्डिताना । ब्रह्म अनादि मनुज करि माना ॥

पुनि पुनि काग चरन सिह नावा । जानि राम सम प्रेम बढ़ावा ॥ २ ॥

वे अपने पिछले मोहको समझकर (याद करके) कि मैंने अनादि ब्रह्मको मनुष्य करके माना ।
गरुड़जीने बार-बार काकभुशुण्डिजीके चरणोंपर सिर नवाया और उन्हें श्रीरामजीके ही समान जानकर प्रेम बढ़ाया ॥ २ ॥

गुर बिनु भवनिधि तरइ न कोई । जौं बिरंचि संकर सम होई ॥

संसय सर्प प्रसेउ मोहि ताता । दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता ॥ ३ ॥

गुरुके बिना कोई भवसागर नहीं तर सकता, चारों वह प्रजाजी और शंकरजीके समान ही क्यों न हो ।
गरुड़जीने कहा—हे तात ! मुझे सन्देहरूपी सर्पने डस लिया था । [और साँपके डसनेपर जैसे विष चढ़नेसे
लहरें आती हैं, वैसे ही] बहुत-सी कुतर्करूपी दुःख देनेवाली लहरें आ रही थीं ॥ ३ ॥

तब सरूप गारुड़ि रघुनाथक । मोहि जिआयउ जन सुखदायक ॥

तब प्रसाद मम मोह नसाना । राम रहस्य अनूपम जाना ॥ ४ ॥

आपके स्वरूपरूपी गारुड़मन्त्रसे भक्तोंकी मुक्ति देनेवाले गारुड़ श्रीरघुनाथजीने मुझे जिला लिया ।
आपकी कृपासे मेरा मोह नाश हो गया और मैंने श्रीरामजीका अनुपम रहस्य जाना ॥ ४ ॥

दो०—ताहि प्रसंसि विविधि विधि सोस नाइ कर जोरि ।

वचन विनीत सप्रम मृदु बोलेउ गरुड़ बहोरि ॥ ९३ (क) ॥

उनकी (भुशुण्डिजीकी) बहुत प्रकारसे प्रशंसा करके, सिर नवाकर और हाथ जोड़कर, फिर गरुड़जी
प्रेमपूर्वक विनम्र और कोमल वचन बोले—॥ ९३ (क) ॥

प्रभु अपने अविबेक ते बूझउँ स्वामी तोहि ।

कृपासिंधु सादर कहहु जानि दास निज मोहि ॥ ९३ (ख) ॥

हे प्रभो ! हे स्वामी ! मैं अपने अविबेकके कारण आपसे पूछता हूँ । हे कृपाके समुद्र ! मुझे अपना 'निज
दास' जानकर आदरपूर्वक मेरे प्रश्नका उत्तर कहिये ॥ ९३ (ख) ॥

चो०—तुम्ह सर्वग्य तग्य तम पारा । मुमति सुशील सरल आचारा ॥

ग्यान विरति विग्यान निशसा । रघुनाथक के तुम्ह प्रिय दासा ॥ १ ॥

आप सर्वज्ञ हैं, तत्त्वके ज्ञाता हैं, अन्धकार (माया) से परे, उत्तम बुद्धिसे युक्त, सुशील, सरल आचरणवाले,
ज्ञान, वराग्य और विज्ञानके धाम और श्रीरघुनाथजीके प्रिय दास हैं ॥ १ ॥

कारन कवन देह यह पाई । तात सकल मोहि कहहु बुझाई ॥

राम चरित सर सुंदर स्वामी । पायहु कहाँ कहहु नमगामी ॥ २ ॥

आपने यह काकशरीर किस कारणसे पाया ? हे तात ! सब समझाकर मुझसे कहिये । हे स्वामी !
हे आकाशगामी ! यह सुन्दर रामचरितमानस आपने कहाँ पाया ! सो कहिये ॥ २ ॥

नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं । महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं ॥

मुधा वचन नहिं ईस्वर कहाई । सोउ मोरें मन संसय अहई ॥ ३ ॥

हे नाथ ! मैंने शिवजीसे ऐसा सुना है कि महाप्रलयमें भी आपका नाश नहीं होता । ईश्वर (शिवजी) कभी मिथ्या वचन नहीं कहते, वह भी मेरे मनमें सन्देह है ॥ ३ ॥

अग जग जीव नाग नर देवा । नाथ सकल जगु काल कलेवा ॥

अंड कटाह अमित लय कारी । कालु सदा दुरतिक्रम भारी ॥ ४ ॥

क्योंकि हे नाथ ! जगत्में नाग, मनुष्य, देवता आदि चर-अचर सभी जीव कालके कलेवा हैं । असंख्य ब्रह्माण्डोंका नाश करनेवाला काल सदा बड़ा ही अनिवार्य है ॥ ४ ॥

सो०—तुम्हहि न व्यापत काल अति कराल कारन कवन ।

मोहि सो कहहु कृपाल ग्यान प्रभाव कि जोग बल ॥ ९४ (क) ॥

[ऐसा वह] अत्यन्त भयङ्कर काल आपको नहीं व्यापता, इसका क्या कारण है ? हे कृपाळु ! मुझे कहिये, यह ज्ञानका प्रभाव है या योगका बल है ? ॥ ९४ (क) ॥

दो०—प्रभु तव आश्रम आएँ मोर मोह भ्रम भाग ।

कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग ॥ ९४ (ख) ॥

हे प्रभो ! आपके आश्रममें आते ही मेरा मोह और भ्रम भाग गया । इसका क्या कारण है ? हे नाथ ! यह सब प्रेमसहित कहिये ॥ ९४ (ख) ॥

चो०—गरुड गिरा सुनि हरपेउ कागा । बोलेउ उमा परम अनुरागा ॥

धन्य धन्य तव मति उरगारी । प्रसन्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी ॥ १ ॥

हे उमा ! गरुडजीकी वाणी सुनकर धाकभुशुण्डिजी हर्षित हुए और परम प्रेमसे बोले—हे सर्वोक्ति शत्रु ! आपकी बुद्धिको धन्य है ! धन्य है ! आपके प्रश्न मुझे बहुत ही प्यारे लगे ॥ १ ॥

सुनि तव प्रसन्न सप्रेम सुहाई । बहुत जनम कै सुधि मोहि आई ॥

सब निज कथा कहउँ मैं गाई । तात सुनहु सादर मन लाई ॥ २ ॥

आपके प्रेमयुक्त सुन्दर प्रश्न सुनकर मुझे अपने बहुत जन्मोंकी याद आ गयी । मैं अपनी सब कथा विस्तारसे कहता हूँ । हे तात ! आदरसहित मन लगाकर सुनिये ॥ २ ॥

जप तप मख सम दम व्रत दाना । बिरति बिबेक जोग बिग्याना ॥

सब कर फल रघुपात पद प्रेमा । तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा ॥ ३ ॥

अनेक जप, तप, यज्ञ, शम, दम, व्रत, दान, वैराग्य, विवेक, योग, विज्ञान आदि सबका फल भीरघुनाथ-जीके चरणोंमें प्रेम होना है । इसके बिना कोई कल्याण नहीं पा सकता ॥ ३ ॥

एहिं तन रामभगति में पाई । ताते मोहि ममता अधिकारी ॥

जोहि तैं कह्यु निज स्वारथ होई । तेहि पर ममता कर सब कोई ॥ ४ ॥

मैंने इसी शरीरसे श्रीरामजीकी भक्ति प्राप्त की है, इसीसे इसपर मेरी ममता अधिक है । जिससे अपना कुछ स्वार्थ होता है, उसपर सभी कोई प्रेम करते हैं ॥ ४ ॥

सो०—पद्मगारि असि नीति श्रुति संमत सज्जन कहाहिं ।

अति नोचहु सन प्रीति करिअ जानि निज परम हित ॥ ९५ (क) ॥

हे गरुडजी ! ऐसी श्रुतिसम्मत नीति है, और सज्जन भी कहते हैं कि अपना परम हित जानकर अत्यन्त नीचसे भी प्रेम करना चाहिये ॥ ९५ (क) ॥

पाट कीट तैं होइ तेहि तैं पाटंबर रुचिर ।

कृमि पालइ सखु कोइ परम अपावन प्रान सम ॥ ९५ (ख) ॥

रेशम कीड़ेसे होता है । उससे सुन्दर रेशमी वस्त्र बनते हैं । इसीसे उस परम अपवित्र कीड़ेको भी सब कोई प्राणोंके समान पालते हैं ॥ ९५ (ख) ॥

चौ०—स्वार्थ साँच जीव कहूँ पहा । मन क्रम बचन राम पद नेहा ॥

सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा । जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा ॥ १ ॥

जीवके लिये सच्चा स्वार्थ यही है कि मन, वचन और कर्मसे श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम हो । वही शरीर पवित्र और सुन्दर है, जिस शरीरको पाकर श्रीरघुवीरजीका भजन किया जाय ॥ १ ॥

राम विमुख लहि बिधि सम देही । कवि कोबिद न प्रसंसहिं तेही ॥

रामभगति एहिं तन उर जामी । ताते मोहि परम प्रिय स्वामी ॥ २ ॥

जो श्रीरामजीके विमुख है वह यदि ब्रह्माजीके समान शरीर पा जाय तो भी कवि और पण्डित उसकी प्रशंसा नहीं करते । इसी शरीरसे मेरे हृदयमें रामभक्ति उत्पन्न हुई । इसीसे हे स्वामी ! यह मुझे परम प्रिय है ॥ २ ॥

तजउं न तन निज इच्छा मरना । तन बिनु बेद भजन नहिं बरना ॥

प्रथम मोहँ मोहि बहुत बिगोवा । राम विमुख सुख कबहुँ न सोवा ॥ ३ ॥

मेरा मरण अपनी इच्छापर है, परन्तु फिर भी मैं यह शरीर नहीं छोड़ता । क्योंकि वेदोंने वर्णन किया है कि शरीरके बिना भजन नहीं होता । पहले मोहने मेरी बड़ी दुर्दशा की । पर श्रीरामजीके विमुख होकर मैं कभी सुखसे नहीं सोया ॥ ३ ॥

नाना जनम कर्म पुनि नाना । किए जोग जप तप मख दाना ॥

कवन जोनि जनमउं जहँ नाहीं । मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं ॥ ४ ॥

अनेकों जन्मोंमें मैंने अनेकों प्रकारके योग, जप, तप, यज्ञ और दान आदि कर्म किये । हे गरुड़जी ! जगत्में ऐसी कौन योनि है, जिसमें मैंने बार-बार धूम-फिरकर जन्म न लिया हो ॥ ४ ॥

देखेउं करि सब करम गोसाईं । सुखी न भयउं अबहिं की नाई ॥

सुधि मोहि नाथ जन्म बहु केरी । सिव प्रसाद मति मोहँ न घेरी ॥ ५ ॥

हे गुसाईं ! मैंने सब कर्म करके देख लिये, पर अब (इस जन्म) की तरह मैं कभी सुखी नहीं हुआ । हे नाथ ! मुझे बहुत-से जन्मोंकी याद है । क्योंकि श्रीशिवजीकी कृपासे मेरी बुद्धिको मोहने नहीं बेरा ॥ ५ ॥

दो०—प्रथम जन्म के चरित अब कहउं मुनहु बिहगेस ।

सुनि प्रभु पद रति उपजइ जातें मिटहिं कलेस ॥ ९६ (क) ॥

हे पक्षिराज ! सुनिये, अब मैं अपने प्रथम जन्मके चरित्र कहता हूँ, जिन्हें सुनकर प्रभुके चरणोंमें प्रीति उत्पन्न होती है, जिससे सब क्लेश मिट जाते हैं ॥ ९६ (क) ॥

पूरुब कल्प एक प्रभु जुग कलिजुग मल मूल ।

नर अरु नारि अधर्म रत सकल निगम प्रतिकूल ॥ ९६ (ख) ॥

पूर्वके एक कल्पमें पापोंका मूल युग कलियुग था, जिसमें पुरुष और स्त्री सभी अधर्मपरायण और वेदके विरोधी थे ॥ ९६ (ख) ॥

चौ०—तेहिं कलियुग कोसलपुर जाई । जन्मत भयउँ सूद्र तनु पाई ॥

सिव सेवक मन क्रम अरु बानी । आन देव निंदक अभिमानी ॥ १ ॥

उस कलियुगमें मैं अयोध्यापुरीमें जाकर शूद्रका शरीर पाकर जन्मा । मैं मन, वचन और कर्मसे शिवजी-का सेवक और दूसरे देवताओंकी निन्दा करनेवाला अभिमानी था ॥ १ ॥

धन मद मत्त परम बाचाला । उग्रबुद्धि उर दंभ विसाला ॥

जद्यपि रहेउँ रघुपति रजधानी । तद्यपि न कछु महिमा तब जानी ॥ २ ॥

मैं धनके मदसे मतवाला, बहुत ही बकवादी और उग्र बुद्धिवाला था; मेरे हृदयमें बड़ा भारी दम्भ था । यद्यपि मैं श्रीरघुनाथजीकी राजधानीमें रहता था तथापि मैंने उस समय उसकी महिमा कुछ भी नहीं जानी ॥ २ ॥

अब जाना मैं अवध प्रभावा । निगमागम पुरान अस गावा ॥

कवनेहुँ जन्म अवध बस जोई । राम परायन सो परि होई ॥ ३ ॥

अब मैंने अवधका प्रभाव जाना । वेद, शास्त्र और पुराणोंने ऐसा गाया है कि किसी भी जन्ममें जो कोई भी अयोध्यामें बस जाता है वह अवश्य ही श्रीरामजीके परायण हो जायगा ॥ ३ ॥

अवध प्रभाव जान तब प्रानी । जब उर बसहिं रामु धनुपानी ॥

सो कलिकाल कठिन उरगारी । पाप परायन सब नर नारी ॥ ४ ॥

अवधका प्रभाव जीव तभी जानता है, जब हाथमें धनुष धारण करनेवाले श्रीरामजी उसके हृदयमें निवास करते हैं । हे गरुड़जी ! वह कलिकाल बड़ा कठिन था । उसमें सभी नर-नारी पाप-परायण (पापमें लिस) थे ॥ ४ ॥

दो०—कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ ।

दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ ॥ ९७ (क) ॥

कलियुगके पापोंने सब धर्मोंको ग्रस लिया, सद्ग्रन्थ लुप्त हो गये, दंभियोंने अपनी बुद्धिसे कल्पना कर-करके बहुत-से पंथ प्रकट कर दिये ॥ ९७ (क) ॥

भए लोग सब मोह बस लोभ ग्रसे सुभ कर्म ।

सुनु हरिजान ग्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म ॥ ९७ (ख) ॥

सभी लोग मोहके वश हो गये । शुभ कर्मोंको लोभने हड़प लिया । हे शानके भण्डार ! हे श्रीहरिके वाहन ! सुनिये, अब मैं कलिके कुछ धर्म कहता हूँ ॥ ९७ (ख) ॥

चौ०—वरन धर्म नहिं आश्रम चारी । श्रुति विरोध रत सब नर नारी ॥

द्विज श्रुति बेवक भूप प्रजासन । कोउ नहिं मान निगम अनुसासन ॥ १ ॥

कलियुगमें न वर्णधर्म रहता है, न चारों आश्रम रहते हैं । सब पुरुष-स्त्री वेदके विरोधमें लगे रहते हैं । ब्राह्मण वेदोंके बेचनेवाले और राजा प्रजाको खा डालनेवाले होते हैं । वेदकी आज्ञा कोई नहीं मानता ॥ १ ॥

मारग सोइ जा कहूँ जोइ भावा । पंडित सोइ जो गाल बजावा ॥

मिथ्यारंभ दंभ रत जोई । ता कहूँ संत कहइ सब कोई ॥ २ ॥

जिसको जो अच्छा लग जाय, वही मार्ग है । जो डींग मारता है, वही पण्डित है । जो मिथ्या आरम्भ करता (आडम्बर रचता) है और जो दम्भमें रत है, उसीको सब कोई संत कहते हैं ॥ २ ॥

सोइ सयान जो परधन हारी । जो कर दंभ सो बड़ आचारी ॥

जो कह झूठ मसखरी जाना । कलियुग सोइ गुनवंत बखाना ॥ ३ ॥

जो जिस किसी प्रकारसे दूसरेका धन हरण कर ले, वही बुद्धिमान् है । जो दम्भ करता है वही बड़ा आचारी है । जो झूठ बोलता है और हँसी-दिल्लीगी करना जानता है, कलियुगमें वही गुणवान् कहा जाता है ॥ ३ ॥

निराचार जो श्रुतिपथ त्यागी । कलियुग सोइ ग्यानी सो बिरागी ॥

जाकें नख अरु जटा बिसाला । सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥ ४ ॥

जो आचारहीन है और वेदमार्गको छोड़े हुए है, कलियुगमें वही ज्ञानी और वही वैराग्यवान् है । जिसके बड़े-बड़े नख और लंबी-लंबी जटाएँ हैं, वही कलियुगमें प्रसिद्ध तपस्वी है ॥ ४ ॥

दो०—असुभ वेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं ।

तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलियुग माहिं ॥ ९८ (क) ॥

जो अमङ्गल वेष और अमङ्गल भूषण धारण करते हैं, और भक्ष्य-अभक्ष्य (खाने योग्य और न खाने योग्य) सब कुछ खा लेते हैं, वे ही योगी है, वे ही सिद्ध है और वे ही मनुष्य कलियुगमें पूज्य हैं ॥ ९८ (क) ॥

सो०—जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ ।

मन क्रम वचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ ॥ ९८ (ख) ॥

जिनके आचरण दूसरोंका अपकार (अहित) करनेवाले हैं, उन्हींका बड़ा गौरव होता है और वे ही सम्मानके योग्य होते हैं । जो मन, वचन और कर्मसे लबार (झूठ बकनेवाले) हैं वे ही कलियुगमें वक्ता माने जाते हैं ॥ ९८ (ख) ॥

चो०—नारि बिबस नर सकल गोसाईं । नाचहिं नट मर्कट की नाईं ॥

सुद्र छिजन्ह उपदेसहिं ग्याना । मलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥ १ ॥

हे गोसाईं ! सभी मनुष्य स्त्रियोंके विशेष वशमें हैं और बाजीगरके बंदरकी तरह उनके नचाये नाचते हैं । ब्राह्मणोंको सुद्र ज्ञानोपदेश करते हैं और गलेमें जनेऊ डालकर कुत्सित दान लेते हैं ॥ १ ॥

सब नर काम लोभ रत क्रोधी । देव विप्र श्रुति संत विरोधी ॥

गुनमंदिर सुंदर पति त्यागी । भजहिं नारि पर पुरुष अभागी ॥ २ ॥

सभी पुरुष काम और लोभके तत्पर और क्रोधी होते हैं; देवता, ब्राह्मण, वेद और संतोंके विरोधी होते हैं । अभागिनी स्त्रियाँ गुणोंके धाम सुन्दर पतिर्को छोड़कर परपुरुषका सेवन करती हैं ॥ २ ॥

सौभागिनी बिभूषन हीना । बिधवन्ह के सिंगार नवीना ॥

गुर सिप बधिर अंध का लेखा । एक न सुनइ एक नहिं देखा ॥ ३ ॥

सुहागिनी स्त्रियाँ तो आभूषणों से रहित होती हैं, पर विधवाओं के नित्य नये शृङ्गार होते हैं। शिष्य और गुरु में बहरे और अंधेका-सा हिसाब होता है। एक (शिष्य) गुरु के उपदेश को सुनता नहीं, एक (गुरु) देखता नहीं (उसे ज्ञानदृष्टि प्राप्त नहीं है) ॥ ३ ॥

हरइ सिष्य धन सोक न हरई । सो गुर घोर नरक महुँ परई ॥

मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं । उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं ॥ ४ ॥

जो गुरु शिष्यका धन हरण करता है, पर शोक नहीं हरण करता, वह घोर नरकमें पड़ता है। माता-पिता बालकों को बुलाकर वही धर्म सिखलाते हैं जिससे पेट भरे ॥ ४ ॥

दो०—ब्रह्मग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात ।

कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात ॥ ९९ (क) ॥

स्त्री-पुरुष ब्रह्मज्ञान के सिवा दूसरी बात नहीं करते; पर वे लोभवश कौड़ियों के (बहुत थोड़े लाभ के) लिये ब्राह्मण और गुरु की हत्या कर डालते हैं ॥ ९९ (क) ॥

बादहिं सुद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि ।

जानइ ब्रह्म सो बिप्रवर आँखि देखावहिं ढाटि ॥ ९९ (ख) ॥

सूद्र द्विजों से विवाद करते हैं कि हम क्या तुमसे कुछ कम हैं? जो ब्रह्म को जानता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है, ऐसा कहकर वे उन्हें डाँटकर आँखें दिखलाते हैं ॥ ९९ (ख) ॥

चौ०—पर त्रिय लंपट कपट सयाने । मोह द्रोह ममता लपटाने ॥

तेइ अभेदवादी ग्यानी नर । देखा मैं चरित्र कलियुग कर ॥ १ ॥

जो परायी स्त्री में आसक्त, कपट करने में चतुर और मोह, द्रोह और ममता में लिपटे हुए हैं, वे ही मनुष्य अभेदवादी (ब्रह्म और जीव को एक बताने वाले) शानी हैं। मैंने उस कलियुगका यह चरित्र देखा ॥ १ ॥

आपु गए अरु तिन्हह घालहिं । जे कहूँ सत मारग प्रतिपालहिं ॥

कल्प कल्प भरि एक एक नरका । परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका ॥ २ ॥

वे स्वयं तो नष्ट हुए ही रहते हैं; जो कहीं सन्मार्गका प्रतिपालन करते हैं, उनको भी वे नष्ट कर देते हैं। जो तर्क करके वेदकी निन्दा करते हैं, वे लोग कल्प-कल्पभर एक-एक नरकमें पड़े रहते हैं ॥ २ ॥

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा । स्वपच किरात कोल कलवारा ॥

नारि मुई गृह संपति नासी । मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी ॥ ३ ॥

तेली, कुम्हार, चाण्डाल, भील, कोल और कलवार आदि जो वर्ण में नीचे हैं, स्त्री के मरने पर अथवा घरकी सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर तिर मुँड़ाकर संन्यासी हो जाते हैं ॥ ३ ॥

ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं । उभय लोक निज हाथ नसावहिं ॥

बिप्र निरच्छर लोलुप कामी । निराचार सठ बृषली स्वामी ॥ ४ ॥

वे अपनेको ब्राह्मणों से पुजवाते हैं और अपने ही हाथों दोनों लोक नष्ट करते हैं। ब्राह्मण अनपढ़, लोभी, कामी, आचारहीन, मूर्ख और नीची जातिकी व्यभिचारिणी स्त्रियों के स्वामी होते हैं ॥ ४ ॥

सुद्र करहिं जप तप ब्रत नाना । बैठि बरासन कहहिं पुराना ॥

सब नर कल्पित करहिं मचारा । जाइ न बरनि अनीति अपारा ॥ ५ ॥

शुद्ध नाना प्रकारके जप, तप और व्रत करते हैं, तथा ऊँचे आसन (व्यासगद्दी) पर बैठकर पुराण कहते हैं। सब मनुष्य मनमाना आचरण करते हैं। अपार अनीतिका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ५ ॥

दो०—भए बरन संकर कलि भिन्न सेतु सब लोग ।

करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग ॥ १०० (क) ॥

कलियुगमें सब लोग वर्णसंकर और मर्यादासे च्युत हो गये ! वे पाप करते हैं और उनके फलस्वरूप दुःख, भय, रोग, शोक और प्रिय वस्तुका वियोग पाते हैं ॥ १०० (क) ॥

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति विवेक ।

तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक ॥ १०० (ख) ॥

वेदसम्मत तथा वैराग्य और ज्ञानसे युक्त जो हरिभक्तिका मार्ग है, मोहवश मनुष्य उसपर नहीं चलते और अनेकों नये-नये पन्थोंकी कल्पना करते हैं ॥ १०० (ख) ॥

बहु दाम सँवारहिं धाम जती । बिषया हरि लीन्हि न रहि बिरती ॥

तपसी धनवंत दरिद्र गृही । कलि कौतुक तात न जात कही ॥ १ ॥

संन्यासी बहुत धन लगाकर घर सजाते हैं। उनमें वैराग्य नहीं रहा; उसे विषयोंने हर लिया। तपस्वी धनवान् हो गये और गृहस्थ दरिद्र। हे तात ! कलियुगकी लीला कुछ कही नहीं जाती ॥ १ ॥

कुलवंति निकारहिं नारि सती । गृह आनहिं चेरि निवेरि गती ॥

सुत मानहिं मातु पिता तय लौ । अवलानन दीख नहीं जब लौ ॥ २ ॥

कुलवती और सती स्त्रीको पुरुष घरसे निकाल देते हैं और अच्छी चालको छोड़कर घरमें दासीको बा रखते हैं। पुत्र अपने माता-पिताको तभीतक मानते हैं, जबतक स्त्रीका मुख नहीं दिखाया पड़ा ॥ २ ॥

ससुरारि पिआरि लगी जब तैं । रिपु रूप कुटुंब भए तब तैं ॥

नृप पाप परायन धर्म नहीं । करि दंड चिडंब प्रजा नितहीं ॥ ३ ॥

जबसे ससुराल प्यारी लगने लगी, तबसे कुटुम्बी शत्रुरूप हो गये। राजा लोग पापपरायण हो गये, उनमें धर्म नहीं रहा। वे प्रजाको नित्य ही [बिना अपराध] दण्ड देकर उसकी विडम्बना (दुर्दशा) किया करते हैं ॥ ३ ॥

धनवंत कुलीन मलीन अपी । द्विज चिन्ह जनेउ उधार तपी ॥

नहिं मान पुरान न बेदहि जो । हरि सेवक संत सही कलि सो ॥ ४ ॥

धनी लोग मलिन (पापी) होनेपर भी कुलीन माने जाते हैं। द्विजका चिह्न जनेऊमात्र रह गया और नंगे बदन रहना तपस्वीका। जो वेदों और पुराणोंको नहीं मानते, कलियुगमें वे ही हरिभक्त और सच्चे संत कहलाते हैं ॥ ४ ॥

कवि बृंद उदार दुनी न सुनी । गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी ॥

कलि बारहिं बार दुकाल परै । विनु अन्न दुखी सब लोग मरै ॥ ५ ॥

कवियोंकी तो झुंड हो गये, पर दुनियाँमें उदार (दाता) सुनायी नहीं पड़ता। गुणमें दोष लगानेवाले बहुत हैं, पर गुणी कोई भी नहीं है। कलियुगमें बार-बार अकाल पड़ते हैं, अन्नके बिना सब लोग दुखी होकर मरते हैं ॥ ५ ॥

दो०—सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड ।

मान मोह मारादि मद व्यापि रहे ब्रह्मंड ॥ १०१ (क) ॥

हे पक्षिराज गरुड़जी ! सुनिये, कलियुगमें कपट, हठ, दम्भ, द्वेष, पाषण्ड, मान, मोह और काम आदि (अर्थात् काम, क्रोध और लोभ) और मद ब्रह्माण्डमरमें व्याप्त हो गये (छा गये) ॥ १०१ (क) ॥

दो०—तामस धर्म करहिं नर जप तप व्रत मख दान ।

देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान ॥ १०१ (ख) ॥

मनुष्य जप, तप, यज्ञ, व्रत और दान आदि धर्म तामसी भावसे करने लगे । देवता (इन्द्र) पृथ्वीपर जल नहीं बरसाते, और बोया हुआ अन्न उगता नहीं ॥ १०१ (ख) ॥

छं०—अबला कच भूषन भूरि लुधा । धनहीन दुखी ममता बहुधा ॥

सुख चाहहिं मूढ़ न धर्मरता । मति थोरि कठोरि न कोमलता ॥ १ ॥

स्त्रियोंके बाल ही भूषण हैं (उनके शरीरपर कोई आभूषण नहीं है), और उनको भूख बहुत लगती है, (अर्थात् वे सदा अतृप्त ही रहती हैं); वे धनहीन और बहुत प्रकारकी ममता होनेके कारण दुखी रहती हैं । वे मूर्ख सुख चाहती हैं, पर धर्ममें उनका प्रेम नहीं है । बुद्धि थोड़ी है, और कठोर है; उनमें कोमलता नहीं है ॥ १ ॥

नर पीड़ित रोग न भोग कहीं । अभिमान विरोध अकारनहीं ॥

लघु जीवन संवतु पंच दसा । कलपांत न नास गुमानु असा ॥ २ ॥

मनुष्य रोगोंसे पीड़ित हैं, भोग (सुख) कहीं नहीं है । बिना ही कारण अभिमान और विरोध करते हैं । दस-पाँच वर्षका थोड़ा-सा जीवन है, परन्तु घमंड ऐसा है मानो कल्यान्त होनेपर भी उनका नाश नहीं होगा ॥ २ ॥

कलिकाल विहाल किए मनुजा । नहिं मानत कौ अनुजा तनुजा ॥

नहिं तोष विचार न सीतलता । सब जाति कुजाति भय मगता ॥ ३ ॥

कलिकालने मनुष्योंको बेहाल (अस्त-व्यस्त) कर डाला । कोई बहन-बेटीका भी विचार नहीं करता । न सन्तोष है, न विवेक है और न शीतलता है । जाति, कुजाति सभी लोग भीख माँगनेवाले हो गये ॥ ३ ॥

इरिषा परुषाच्छर लोलुपता । भरि पूरि रही समता बिगता ॥

सब लोग बियोग बिसोक हए । बरनाश्रम धर्म अचार गए ॥ ४ ॥

ईर्ष्या (डाह), कड़वे वचन और लालच भरपूर हो रहे हैं, समता चली गयी । सब लोग बियोग और विशेष शोकसे मरे पड़े हैं, वर्णाश्रम-धर्मके आचरण नष्ट हो गये ॥ ४ ॥

दम दान दया नहिं जानपनी । जड़ता परबंचनताति घनी ॥

तनु पोषक नारि नरा सगरे । परनिंदक जे जग मो बगरे ॥ ५ ॥

इन्द्रियोंका दमन, दान, दया और समझदारी किसीमें नहीं रही । मूर्खता और दूसरोंको ठगना, यह बहुत अधिक बढ़ गया । स्त्री-पुरुष सभी शरीरके ही पालन-पोषणमें लगे रहते हैं । जो परायी निन्दा करनेवाले हैं जगत्में वे ही फैले हैं ॥ ५ ॥

दो०—सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार ।

गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार ॥ १०२ (क) ॥

हे सपोंके शत्रु गरुडजी ! सुनिये ! कलिकाल पाप और अवगुणोंका घर है । किन्तु कलियुगमें एक गुण भी बड़ा है कि उसमें बिना ही परिश्रम भवबन्धनसे छुटकारा मिल जाता है ॥ १०२ (क) ॥

कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग ।

जो गति होइ सो कलि हरिनाम ते पावहिं लोग ॥ १०२ (ख) ॥

सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें जो गति पूजा, यज्ञ और योगसे प्राप्त होती है, वही गति कलियुगमें लोग केवल भगवान्‌के नामसे पा जाते हैं ॥ १०२ (ख) ॥

चौ०—कृतजुग सब जोगी बिग्यानी । करि हरिध्यान तरहिं भव प्राणी ॥

त्रेताँ बिबिध जग्य नर करहीं । प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं ॥ १ ॥

सत्ययुगमें सब योगी और विज्ञानी होते हैं । हरिका ध्यान करके सब प्राणी भवसागरसे तर जाते हैं । त्रेतामें मनुष्य अनेक प्रकारके यज्ञ करते हैं और सब कर्मोंको प्रभुके समर्पण करके भवसागरसे पार हो जाते हैं ॥ १ ॥

द्वापर करि रघुपति पद पूजा । नर भव तरहिं उपाय न दूजा ॥

कलियुग केवल हरि गुन गाहा । गावत नर पावहिं भव थाहा ॥ २ ॥

द्वापरमें श्रीरघुनाथजीके चरणोंकी पूजा करके मनुष्य भवसे तर जाते हैं, दूसरा कोई उपाय नहीं है । और कलियुगमें तो केवल श्रीहरिकी गुणगाथाओंका गान करनेसे ही मनुष्य भवसागरकी याह पा जाते हैं ॥ २ ॥

कलियुग जोग न जग्य न ग्याना । एक अधार राम गुन गाना ॥

सब भरोस तजि जो भज रामहि । प्रेम समेत गाव गुनप्राप्तहि ॥ ३ ॥

कलियुगमें न तो योग और यज्ञ है और न ज्ञान ही है । श्रीरामजीका गुणगान ही एकमात्र आधार है । अतएव सारे भरोसे त्यागकर जो श्रीरामजीको भजता है और प्रेमसहित उनके गुणसमूहोंको गाता है, ॥ ३ ॥

सोइ भव तर कछु संसय नाहीं । नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं ॥

कलि कर एक पुनीत प्रतापा । मानस पुन्य होहिं नहिं पापा ॥ ४ ॥

वही भवसागरसे तर जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं । नामका प्रताप कलियुगमें प्रत्यक्ष है । कलियुगका एक पवित्र प्रताप है कि मानसिक पुण्य तो होते हैं, पर मानसिक पाप नहीं होते ॥ ४ ॥

दो०—कलियुग सम जुग आन नहिं जाँ नर कर बिस्वास ।

गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ॥ १०३ (क) ॥

यदि मनुष्य विश्वास करे, तो कलियुगके समान दूसरा युग नहीं, क्योंकि इस युगमें श्रीरामजीके निर्मल गुणसमूहोंको गा-गाकर मनुष्य बिना ही परिश्रम भवसे तर जाता है ॥ १०३ (क) ॥

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान ।

जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्याण ॥ १०३ (ख) ॥

धर्मके चार चरण प्रसिद्ध हैं, जिनमेंसे कलिमें एक दानरूपी चरण ही प्रधान है, क्योंकि जिस किसी प्रकारसे भी दिये जानेपर दान कल्याण ही करता है ॥ १०३ (ख) ॥

चौ०—नित जुग धर्म होहिं सब करे । इद्वय राम माया के प्रेरे ॥

सुख सत्व समता बिग्याना । कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना ॥ १ ॥

श्रीरामजीकी मायासे प्रेरित होकर सबके हृदयोंमें सभी युगोंके धर्म नित्य होते रहते हैं। शुद्ध सत्त्वगुण, समता, विज्ञान और मनका प्रवृत्त होना, इसे सत्ययुगका प्रभाव जाने ॥ १ ॥

सत्त्व बहुत रज कुछ रति कर्मा । सब विधि सुख त्रेता कर धर्मा ॥

बहु रज स्वल्प सत्त्व कुछ तामस । द्वापर धर्म हरष भय मानस ॥ २ ॥

सत्त्वगुण अधिक हो, कुछ रजोगुण हो, कर्मोंमें प्रीति हो, सब प्रकारसे सुख हो, यह त्रेताका धर्म है । रजोगुण बहुत हो, सत्त्वगुण बहुत ही थोड़ा हो, कुछ तमोगुण हो, मनमें हर्ष और भय हों, यह द्वापरका धर्म है ॥ २ ॥

तामस बहुत रजोगुण थोरा । कलि प्रभाव विरोध चहुँ ओरा ॥

बुध जुग धर्म जानि मन माहीं । तजि अधर्म रति धर्म कराहीं ॥ ३ ॥

तमोगुण बहुत हो, रजोगुण थोड़ा हो, चारों ओर वैर-विरोध हो, यह कलियुगका प्रभाव है । पण्डित लोग युगोंके धर्मको मनमें जान (पहिचान) कर, अधर्म छोड़कर, धर्ममें प्रीति करते हैं ॥ ३ ॥

कालधर्म नहिं व्यापहिं ताही । रघुपति चरन प्रीति अति जाही ॥

नटकृत विकट कपट खगराया । नट सेवकहि न व्यापइ माया ॥ ४ ॥

जिसका श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम है, उसको कालधर्म नहीं व्यापते । हे पक्षिराज ! नट (बाजीगर) का किया हुआ कपट-चरित्र (इन्द्रजाल) देखनेवालोंके लिये बड़ा विकट होता है, पर नटके सेवक (जंभूरे) को उसकी माया नहीं व्यापती ॥ ४ ॥

दो०—हरिमाया कृत दोष गुण बिनु हरिभजन न जाहिं ।

भजिअ राम तजि काम सब अस विचारि मन माहिं ॥ १०४ (क) ॥

श्रीहरिकी मायाके द्वारा रचे हुए दोष और गुण श्रीहरिके भजन बिना नहीं जाते, मनमें ऐसा विचारकर सब कामनाओंको छोड़कर (निष्कामभावसे) श्रीरामजीका भजन करना चाहिये ॥ १०४ (क) ॥

तेहिं कलिकाल वरष बहु बसेउँ अवध बिहंगस ।

परेउ दुकाल बिपति बस तब मैं गयउँ बिदेस ॥ १०४ (ख) ॥

हे पक्षिराज ! उस कलिकालमें मैं बहुत वर्षोंतक अयोध्यामें रहा । एक बार वहाँ अकाल पड़ा, तब मैं विपत्तिका मारा विदेश चला गया ॥ १०४ (ख) ॥

चौ०—गयउँ उजेनी सुनु उरगारी । दीन मलीन दरिद्र दुखारी ॥

गएँ काल कुछ संपति पाई । तहँ पुनि करउँ संभु सेवकाई ॥ १ ॥

हे गरुड़जी ! सुनिये ! मैं दीन, मलिन (उदास), दरिद्र और दुखी होकर उज्जैन गया । कुछ काल बीतनेपर कुछ सम्पत्ति पाकर फिर मैं वहीं भगवान् शंकरकी आराधना करने लगा ॥ १ ॥

बिप्र एक बैदिक सिवपूजा । करइ सदा तेहि काजु न दूजा ॥

परम साधु परमारथ बिंदक । संभु उपासक नहिं हरिनिंदक ॥ २ ॥

एक ब्राह्मण वेदविधिसे सदा शिवजीकी पूजा करते, उन्हें दूसरा कोई काम न था । वे परम साधु और परमार्थके शता थे । ये शम्भुके उपासक थे, पर श्रीहरिकी निन्दा करनेवाले न थे ॥ २ ॥

तेहि सेवउँ मैं कपट समेता । मित्र दयाल अति नीति निकेता ॥

बाहिज नम्र देखि मोहि सारै । बिप्र पढ़ाव पुत्र की नारै ॥ ३ ॥

मैं कपट-पूर्वक उनकी सेवा करता । ब्राह्मण बड़े ही दयालु और नीतिके घर थे । हे स्वामी ! बाहरसे नम्र देखकर ब्राह्मण मुझे पुत्रकी भाँति मानकर पढ़ाते थे ॥ ३ ॥

संभुमंत्र मोहि द्विजवर दीन्हा । सुभ उपदेस बिबिध बिधि कीन्हा ॥

जपउँ मंत्र सिवमंदिर जाई । हृदयँ दंभ अहमिति अधिकारै ॥ ४ ॥

उन ब्राह्मणश्रेष्ठने मुझको शिवजीका मन्त्र दिया और अनेकों प्रकारके शुभ उपदेश किये । मैं शिवजीके मन्दिरमें जाकर मन्त्र जपता । मेरे हृदयमें दम्भ और अहंकार बढ़ गया ॥ ४ ॥

दो०—मैं खल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह ।

हरिजन द्विज देखें जरउँ करउँ बिष्णु कर द्रोह ॥ १०५ (क) ॥

मैं दुष्ट, नीच जाति और पापमयी मलिन बुद्धिवाला मोहवश श्रीहरिके भक्तों और द्विजोंको देखते ही जल उठता और विष्णुभगवान्से द्रोह करता था ॥ १०५ (क) ॥

सो०—गुर नित मोहि प्रबोध दुखित देखि आचरन मम ।

मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति कि भावई ॥ १०५ (ख) ॥

गुरुजी मेरे आचरण देखकर दुखित थे, वे मुझे नित्य ही भलीभाँति समझाते, पर [मैं कुछ भी नहीं समझता, उलटे] मुझे अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होता । दंभीको कभी नीति अच्छी लगती है ? ॥ १०५ (ख) ॥

चौ०—एक बार गुर लीन्ह बोलाई । मोहि नीति बहु भाँति सिखाई ॥

सिव सेवा कर फल सुत सोई । अबिरल भगति राम पद होई ॥ १ ॥

एक बार गुरुजीने मुझे बुला लिया और बहुत प्रकारसे [परमार्थ-] नीतिकी शिक्षा दी कि हे पुत्र ! शिवजीकी सेवाका फल यही है कि श्रीरामजीके चरणोंमें प्रगाढ़ भक्ति हो ॥ १ ॥

रामहि भजहिं तात सिव घाता । नर पावँर कै केतिक बाता ॥

जासु चरन अज सिव अनुरागी । तासु द्रोहँ सुख चहसि अभागी ॥ २ ॥

हे तात ! शिवजी और ब्रह्माजी भी श्रीरामजीको भजते हैं । फिर नीच मनुष्यकी तो बात ही कितनी है ? ब्रह्माजी और शिवजी जिनके चरणोंके प्रेमी हैं, अरे अभागे ! उनसे द्रोह करके तू सुख चाहता है ? ॥ २ ॥

हर कहँ हरिसेवक गुर कहेऊ । सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ ॥

अधम जाति मैं बिद्या पाएँ । भयउँ जथा अहि दूध पिआएँ ॥ ३ ॥

गुरुजीने शिवजीको हरिका सेवक कहा । यह सुनकर हे पक्षिराज ! मेरा हृदय जल उठा । नीच जाति-का मैं विद्या पाकर ऐसा हो गया, जैसे दूध पिलानेसे साँप ॥ ३ ॥

मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती । गुर कर द्रोह करउँ दिनु राती ॥

अति दयाल गुर स्वल्प न क्रोधा । पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा ॥ ४ ॥

अभिमानी, कुटिल, दुर्भाग्य और कुजाति मैं दिन-रात गुरुजीसे द्रोह करता । गुरुजी अत्यन्त दयालु थे । उनको थोड़ा-सा भी क्रोध नहीं आता । [मेरे द्रोह करनेपर भी] वे बार-बार मुझे उत्तम ज्ञानकी शिक्षा देते थे ॥ ४ ॥

जेहि ते नीच बड़ाई पावा । सो प्रथमहिं हति ताहि नसावा ॥

धूम अनल संभव सुनु भाई । तेहि बुझाव घन पदवी पाई ॥ ५ ॥

नीच मनुष्य जिससे बड़ाई पाता है, वह सबसे पहले उसीको मारकर उसीका नाश करता है । हे भार्गव ! सुनिये, धुआँ आगसे उत्पन्न होता है; पर वही मेघकी पदवी पाकर उस अग्निको बुझा देता है ॥ ५ ॥

रज मग परी निरादर रहई । सख कर पद प्रहार नित सहई ॥

मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई । पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई ॥ ६ ॥

धूल रास्तेमें निरादरसे पड़ी रहती है और सदा सब राह चलनेवालोंके लातोंको मार सहती है । पर जब पवन उसे उड़ाता (ऊँचा उठाता) है, तो सबसे पहले वह उसी (पवन) को भर देती है; फिर राजाओंके नेत्रों और किरीटों (मुकुटों) पर पड़ती है ॥ ६ ॥

सुनु खगपति अस समुक्षि प्रसंगा । बुध नहिं करहिं अधम कर संगी ॥

कवि कोविद गावहिं असि नीती । खल सन कलह न भल नहिं प्रीती ॥ ७ ॥

हे पक्षिराज गरुड़जी ! सुनिये, ऐसी बात समझकर बुद्धिमान् लोग अधम (नीच) का संग नहीं करते । कवि और पण्डित ऐसी नीति कहते हैं कि दुष्टसे न कलह ही अच्छा है, न प्रेम ही ॥ ७ ॥

उदासीन नित रहिअ गोसाई । खल परिहरिअ स्वान की नाई ॥

मैं खल हृदय कपट कुटिलाई । गुर. हित कहइ न मोहि सोहाई ॥ ८ ॥

हे गोसाई ! उससे तो सदा उदासीन ही रहना चाहिये । दुष्टको कुत्तेकी तरह दूरसे ही त्याग देना चाहिये । मैं दुष्ट था, हृदयमें कपट और कुटिलता भरी थी । इसीलिये यद्यपि गुरुजी हितकी बात कहते थे, पर मुझे वह सुहाती न थी ॥ ८ ॥

दो०—एक बार हर मंदिर जपत रहेउँ सिवनाम ।

गुर आयउ अभिमान तैं उठि नहिं कीन्ह प्रनाम ॥ १०६ (क) ॥

एक दिन मैं शिवजीके मन्दिरमें शिवनाम जप रहा था । उसी समय गुरुजी वहाँ आये, पर अभिमानके मारे मैंने उठकर उनको प्रणाम नहीं किया ॥ १०६ (क) ॥

सो दयाल नहिं कहेउ कलु उर न रोष लवलेस ।

अति अध गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस ॥ १०६ (ख) ॥

गुरुजी दयालु थे, [मेरा दोष देखकर भी] उन्होंने कुछ नहीं कहा; उनके हृदयमें लेशमात्र भी क्रोध नहीं हुआ । पर गुरुका अपमान बहुत बड़ा पाप है, अतः महादेवजी उसे नहीं सह सके ॥ १०६ (ख) ॥

चौ०—मंदिर माझ भई नभबानी । रे हतभाग्य अग्य अभिमानी ॥

जद्यपि तब गुर कै नहिं क्रोधा । अति कृपाल चित सम्यक बोधा ॥ १ ॥

मन्दिरमें आकाशवाणी हुई कि—अरे हतभाग्य ! मूर्ख ! अभिमानी ! यद्यपि तेरे गुरुको क्रोध नहीं है, वे अत्यन्त कृपालु चित्तके हैं और उन्हें पूर्ण तथा यथार्थ ज्ञान है, ॥ १ ॥

तदपि साप सठ दैहउँ तोही । नीति विरोध सोहाइ न मोही ॥

जौ नहिं दंड करौ खल तोरा । भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा ॥ २ ॥

तो भी हे मूर्ख ! तुझको मैं शाप दूँगा । क्योंकि नीतिका विरोध मुझे नहीं सुहाता । अरे दुष्ट ! यदि मैं तुझे दण्ड न दूँ, तो मेरा वेदमार्ग ही भ्रष्ट हो जाय ॥ २ ॥

जे सठ गुर सन इरिषा करहीं । रौरव नरक कोटि जुग परहीं ॥

त्रिजग जोनि पुनि घरहिं सरीरा । अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा ॥ ३ ॥

जो मूर्ख गुरुसे ईर्ष्या करते हैं, वे करोड़ों युगोंतक रौरव नरकमें पड़े रहते हैं। फिर (वहाँसे निकलकर) वे तिर्यक् योनियोंमें शरीर धारण करते हैं और दस हजार जन्मोंतक दुःख पाते रहते हैं ॥ ३ ॥

बैठ रहेसि अजगर इव पापी । सर्प होहि खल मल मति व्यापी ॥

महा विष्टप कोटर महुँ जाई । रहु अधमाधम अधगति पाई ॥ ४ ॥

अरे पापी ! तू गुरुके सामने अजगरकी भाँति बैठा रहा ! रे दुष्ट ! तेरी बुद्धि पापसे ढक गयी है, अतः तू सर्प हो जा । और, अरे अधमसे भी अधम ! इस अधोगति (सर्पकी नीची योनि) को पाकर किसी बड़े भारी पेड़के खोखलेमें जाकर रह ॥ ४ ॥

दो०—हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप ।

कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप ॥ १०७ (क) ॥

शिवजीका भयानक श्राप सुनकर गुरुजीने हाहाकार किया । सुझे काँपता हुआ देखकर उनके हृदयमें बड़ा सन्ताप उत्पन्न हुआ ॥ १०७ (क) ॥

करि दंडवत सप्रेम द्विज सिव सन्मुख कर जोरि ।

बिनय करत गदगद स्वर समुझि धोर गति मोरि ॥ १०७ (ख) ॥

प्रेमसहित दण्डवत् करके वे ब्राह्मण श्रीशिवजीके सामने हाथ जोड़कर मेरी भयङ्कर गति समझकर गदगद वाणीसे विनती करने लगे—॥ १०७ (ख) ॥

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं । विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ॥

निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं । चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ॥ १ ॥

हे मोक्षस्वरूप, विभु, व्यापक, ब्रह्म और वेदस्वरूप, ईशान दिशाके ईश्वर तथा सबके स्वामी श्रीशिवजी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । निजस्वरूप (अर्थात् मायादिरहित), मायिक गुणोंसे रहित, निर्विकल्प, इच्छारहित, चेतन आकाशरूप एवं आकाशको ही वस्त्ररूपमें धारण करनेवाले [अथवा आकाशको भी आच्छादित करनेवाले] आपको मैं भजता हूँ ॥ १ ॥

निराकारमोकारमूलं तुरीयं । गिरा ज्ञान गोतीतमीशं गिरीशं ॥

करालं महाकाल कालं कृपालं । गुणागार संसार पारं नतोऽहं ॥ २ ॥

निराकार, ओङ्कारके मूल, तुरीय, वाणी, ज्ञान और इन्द्रियोंसे परे, (तीनों गुणोंसे अतीत), कैलासपति, विकराल, महाकालके भो काल, कृपालु, गुणोंके धाम, संसारसे परे आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं । मनोभूत कोटि प्रभाध्री शरीरं ॥

स्फुरन्मौलि कलोलिनी चारु गंगा । लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा ॥ ३ ॥

जो हिमाचलके समान गौर वर्ण तथा गम्भीर हैं, जिनके शरीरमें करोड़ों कामदेवोंकी ज्योति एवं शोभा है, जिनके मिरपर सुन्दर नदी गङ्गाजी हैं, जिनके ललाटपर बाल (द्वितीयाका) चन्द्रमा और गलेमें सर्प सुशोभित हैं ॥ ३ ॥

चलकुण्डलं भ्र सुनेत्रं विशालं । प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालं ॥

मृगाधीश चर्माम्बरं मुण्डमालं । प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि ॥ ४ ॥

जिनके कानोंमें कुण्डल हिल रहे हैं; सुन्दर भ्रकुटी और विशाल नेत्र हैं; जो प्रसन्नमुख, नीलकण्ठ और दयालु हैं; सिंहचर्मका वस्त्र धारण किये और मुण्डमाला पहने हैं; उन सबके प्यारे और सबके नाथ, कल्याण करनेवाले श्रीशंकरजीको मैं भजता हूँ ॥ ४ ॥

प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं । अखंडं अजं भानु कोटि प्रकाशं ॥

त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिम् । भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं ॥ ५ ॥

प्रचण्ड, श्रेष्ठ, तेजस्वी, परमेश्वर, अखण्ड, अजन्मा, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशवाले, तीनों प्रकार के शूल (दुःखों) को निर्मूल करनेवाले, हाथमें त्रिशूल धारण किये, भावके द्वारा प्राप्त होनेवाले भवानीपतिको मैं भजता हूँ ॥ ५ ॥

कलातीत कल्याणकल्यान्तकारी । सदा सज्जनानन्द दाता पुरारी ॥

चिदानन्द सन्दोह मोहापहारी । प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ॥ ६ ॥

कलाओंसे परे, कल्याणस्वरूप, कल्पका अन्त (प्रलय) करनेवाले, सज्जनोंको सदा आनन्द देनेवाले, त्रिपुरके शत्रु, सच्चिदानन्दघन, मोहको हरनेवाले, मनको मथ डालनेवाले कामदेवके शत्रु, हे प्रभो ! प्रसन्न हूजिये, प्रसन्न हूजिये ॥ ६ ॥

न यावद् उमानाथ पादारविन्दं । भजंतीह लोके परे वा नराणां ॥

न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं । प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं ॥ ७ ॥

जबतक पार्वतीके पति आपके चरणकमलोंको मनुष्य नहीं भजते, तबतक उन्हें न तो इहलोक और परलोकमें सुख-शान्ति मिलती है और न उनके तापोंका नाश होता है अतः हे समस्त जीवोंके अन्दर निवास करनेवाले प्रभो ! प्रसन्न हूजिये ॥ ७ ॥

न जानामि योगं जपं नैव पूजां । नतोऽहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यं ॥

जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं । प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो ॥ ८ ॥

मैं न तो योग जानता हूँ, न जप और न पूजा ही । हे शम्भो ! मैं तो सदा-सर्वदा आपको ही नमस्कार करता हूँ । हे प्रभो ! बुढ़ापा तथा जन्म-मृत्यु के दुःखसमूहोंसे जलते हुए मुझ दुखीकी दुःखसे रक्षा कीजिये । हे ईश्वर ! हे शम्भो ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥

श्लोक—रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये ।

ये पठन्ति नरा मत्तया तेषां शम्भुः प्रसीदति ॥ ९ ॥

भगवान् रुद्रकी स्तुतिका यह अष्टक उन शंकरजीकी तुष्टि (प्रसन्नता) के लिये ब्राह्मणद्वारा कहा गया । जो मनुष्य इसे भक्तिपूर्वक पढ़ते हैं, उनपर भगवान् शम्भु प्रसन्न होते हैं ॥ ९ ॥

दो०—सुनि विनती सर्वग्य सिव देखि विप्र अनुरागु ।

पुनि मंदिर नभ बानी भइ द्विजवर वर मागु ॥ १०८ (क) ॥

सर्वज्ञ शिवजीने विनती सुनी और ब्राह्मणका प्रेम देखा । तब मन्दिरमें आकाशवाणी हुई कि हे द्विज-श्रेष्ठ ! वर माँगो ॥ १०८ (क) ॥

जौं प्रसन्न प्रभु मोपर नाथ दीन पर नेहु ।

निज पद भगति देइ प्रभु पुनि दूसर वर देहु ॥ १०८ (ख) ॥

[ब्राह्मणने कहा—] हे प्रभो ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और हे नाथ ! यदि इस दीनपर आपका स्नेह है, तो पहले अपने चरणोंकी भक्ति देकर फिर दूसरा वर दीजिये ॥ १०८ (ख) ॥

तव माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान ।

तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपासिंधु भगवान ॥ १०८ (ग) ॥

हे प्रभो ! यह अज्ञानी जीव आपकी मायाके बश होकर निरन्तर भूल फिरता है । हे कृपाके समुद्र भगवान् !
उसपर क्रोध न कीजिये ॥ १०८ (ग) ॥

संकर दीनदयाल अब एहि पर होहु कृपाल ।

साप अनुग्रह होइ जेहि नाथ थोरेहीं काल ॥ १०८ (घ) ॥

हे दीनोपर दया करनेवाले कल्याणकारी शंकर ! अब इसपर कृपाल होइये, (कृपा कीजिये) जिससे हे
नाथ ! थोड़े ही समयमें इसपर शापके बाद अनुग्रह (शापसे मुक्ति) हो जाय ॥ १०८ (घ) ॥

चौ०—एहि कर होइ परम कल्याणा । सोइ करहु अब कृपानिधाना ॥

विप्रगिरा सुनि परहित सानी । एवमस्तु इति भइ नभवानी ॥ १ ॥

हे कृपानिधान ! अब वही कीजिये, जिससे इसका परम कल्याण हो । दूसरेके हितसे मनी हुई ब्राह्मणकी
वाणी सुनकर, फिर आकाशवाणी हुई—‘एवमस्तु’ (ऐसा ही हो) ॥ १ ॥

जदपि कीन्ह एहिं दारुन पापा । मैं पुनि दीन्हि कोप करि सापा ॥

तदपि तुम्हारि साधुता देखी । करिहउँ एहि पर कृपा विलेखी ॥ २ ॥

यद्यपि इसने भयानक पाप किया है और मैंने भी इसे क्रोध करके शाप दिया है, तो भी तुम्हारी साधुता
देखकर मैं इसपर विशेष कृपा करूँगा ॥ २ ॥

छमासील जे पर उपकारी । तेहि द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी ॥

मोर श्राप द्विज व्यर्थ न जाइहि । जन्म सहस अवश्य यह पाइहि ॥ ३ ॥

हे द्विज ! जो क्षमाशील एवं परोपकारी होते हैं, वे मुझे वैसे ही प्रिय हैं जैसे खरारि श्रीरामचन्द्रजी । हे
द्विज ! मेरा शाप व्यर्थ नहीं जायगा । यह हजार जन्म अवश्य पावेगा ॥ ३ ॥

जनमत मरत दुसह दुख होई । एहि स्वल्पउ नहिं व्यापिहि सोई ॥

कचनेउँ जन्म मिटिहि नहिं ग्याना । सुनहि सूद्र मम वचन प्रवाना ॥ ४ ॥

परन्तु जन्मने और मरनेमें जो दुःसह दुःख होता है, इसको वह दुःख जरा भी न व्यापेगा ।
और किसी भी जन्ममें इसका ज्ञान नहीं मिलेगा । हे सूद्र ! मेरा प्रामाणिक (सत्य) वचन सुन ॥ ४ ॥

रघुपति पुरीं जन्म तब भयऊ । पुनि तैं मम सेवाँ मन दयऊ ॥

पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरें । राम भगति उपजिहि उर तोरें ॥ ५ ॥

प्रथम तो तेरा जन्म श्रीरघुनाथजीकी पुरीमें हुआ । फिर तूने मेरी सेवामें मन लगाया । पुरीके
प्रभाव और मेरी कृपासे तेरे हृदयमें रामभक्ति उत्पन्न होगी ॥ ५ ॥

सुनु मम वचन सत्य अब भाई । हरितोषन ब्रत द्विज सेवकाई ॥

अब जनि करहि विप्र अपमाना । जानेसु संत अनंत समाना ॥ ६ ॥

हे भाई ! अब मेरा सत्य वचन सुन । द्विजोंकी सेवा ही भगवान्को प्रसन्न करनेवाला ब्रत है । अब
कभी ब्राह्मणका अपमान न करना । संतोंको अनन्त श्रीभगवान्की समान जानना ॥ ६ ॥

इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला । कालदंड हरिचक्र कराला ॥

जो इन्ह कर मारा नहिं मरई । विप्रद्रोह पावक सो जरई ॥ ७ ॥

इन्द्रके वज्र, मेरे विशाल त्रिशूल, कालके दण्ड और भीहरिके विकराल चक्रके मारे भी जो नहीं मरता, वह भी विप्रद्रोहरूपी अग्निसे भस्म हो जाता है ॥ ७ ॥

अस विवेक राखेहु मन माहीं । तुम्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

औरउ एक आसिषा मोरी । अप्रतिद्वत गति होइहि तोरी ॥ ८ ॥

ऐसा विवेक मनमें रखना । फिर तुम्हारे लिये जगत्में कुछ भी दुर्लभ न होगा । मेरा एक और भी आशीर्वाद है कि तुम्हारी सर्वत्र अबाध गति होगी (अर्थात् तुम जहाँ जाना चाहोगे, वहीं जा सकोगे) ॥ ८ ॥

दो०—सुनि सिव वचन हरषि गुर एवमस्तु इति भाषि ।

मोहि प्रबोधि गयउ गृह संभु चरन उर राखि ॥१०९(क)॥

[आकाशवाणीके द्वारा] शिवजीके वचन सुनकर, गुरुजी हर्षित होकर 'ऐसा ही हो' यह कहकर, मुझे बहुत समझाकर और शिवजीके चरणोंको हृदयमें रखकर अपने घर गये ॥ १०९ (क) ॥

प्रेरित काल बिंदिगिरि जाइ भयउँ मैं ब्याल ।

पुनि प्रयास बिनु सो तनु तजेउँ गएँ कछु काल ॥१०९(ख)॥

कालकी प्रेरणासे मैं विन्याचलमें जाकर सर्प हुआ । फिर कुछ काल बीतनेपर बिना ही परिश्रम (कष्ट) के मैंने वह शरीर त्याग दिया ॥ १०९ (ख) ॥

जोइ तनु धरउँ तजेउँ पुनि अनायास हरिजान ।

जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान ॥१०९(ग)॥

हे हरिवाहन ! मैं जो भी शरीर धारण करता, उसे बिना ही परिश्रम वैसे ही सुखपूर्वक त्याग देता था जैसे मनुष्य पुराना वस्त्र त्याग देता है और नया पहिन लेता है ॥ १०९ (ग) ॥

सिव राखी श्रुति नीति अरु मैं नहिं पावा क्लेश ।

एहि बिधि धरेउँ बिबिधि तनु ग्यान न गयउ खगेस ॥१०९(घ)॥

शिवजीने वेदकी मर्यादाकी रक्षा की, और मैंने क्लेश भी नहीं पाया । इस प्रकार हे पक्षिराज ! मैंने बहुत-से शरीर धारण किये, पर मेरा शान नहीं गया ॥ १०९ (घ) ॥

चौ०—त्रिजग देव नर जोइ तनु धरउँ । तहँ तहँ रामभजन अनुसरउँ ॥

एक सुल मोहि बिसर न काऊ । गुर कर कोमल सील सुभाऊ ॥ १ ॥

तिर्यक् योनि (पशु-पक्षी), देवता या मनुष्यका, जो भी शरीर धारण करता, वहाँ-वहाँ (उस-उस शरीरमें) भीराम-भजन जारी रखता । [इस प्रकार मैं सुखी हो गया] परन्तु एक शूल मुझे बना रहा । गुरुजीका कोमल, सुशील स्वभाव मुझे कभी नहीं भूलता (अर्थात् मैंने ऐसे कोमलस्वभाव दयालु गुरुका अपमान किया, यह दुःख मुझे सदा बना रहा) ॥ १ ॥

चरम देह द्विज कै मैं पाई । सुरदुर्लभ पुरान श्रुति गार्ह ॥

खेलउँ तहँ बालकन्ह मीला । करउँ सकल रघुनायक लीला ॥ २ ॥

मैंने अन्तिम शरीर ब्राह्मणका पाया, जिसे पुराण और वेद देवदुर्लभ बताते हैं । मैं वहाँ (ब्राह्मण-शरीरमें) बालकोंमें मिलकर खेलता तो श्रीरघुनाथजीकी ही सब लीलाएँ किया करता ॥ २ ॥

प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा । समझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा ॥

मन ते सकल बासना भागी । केवल रामचरन लय लागी ॥ ३ ॥

बड़ा होनेपर पिताजी मुझे पढ़ाने लगे । मैं समझता, सुनता और विचारता, पर मुझे पढ़ना अच्छा नहीं लगता था । मेरे मनसे सारी वासनाएँ भाग गयीं । केवल श्रीरामजीके चरणोंमें लौ लग गयी ॥ ३ ॥

कहु खगेस अस कवन अभागी । खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी ॥

प्रेम मगन मोहि कहु न सोहाई । हारेउ पिता पढ़ाई पढ़ाई ॥ ४ ॥

हे गरुड़जी ! कहिये, ऐसा कौन अभागा होगा जो कामधेनुको छोड़कर गदहीकी सेवा करेगा ! प्रेममें मग्न रहनेके कारण मुझे कुछ भी नहीं सुहाता । पिताजी पढ़ा-पढ़ाकर हार गये ॥ ४ ॥

भए कालवस जब पितु माता । मैं बन गयउँ भजन जनवाता ॥

जहँ जहँ बिपिन मुनीखर पावौ । आश्रम जाइ जाइ सिरु नावौ ॥ ५ ॥

जब पिता-माता कालवश हो गये (मर गये), तब मैं भक्तोंकी रक्षा करनेवाले श्रीरामजीका भजन करनेके लिये वनमें चला गया । वनमें जहाँ-जहाँ मुनीश्वरोंके आश्रम पाता, वहाँ-वहाँ जा-जाकर उन्हें तिर नवाता ॥ ५ ॥

बूझउँ तिन्हहि राम गुन गाहा । कहहिं सुनउँ हरषित खगनाहा ॥

सुनत फिरउँ हरि गुन अनुवादा । अब्याहत गति संभु प्रसादा ॥ ६ ॥

हे गरुड़जी ! उनसे मैं श्रीरामजीके गुणोंकी कथाएँ पूछता । वे कहते और मैं हर्षित होकर सुनता । इस प्रकार मैं सदा-सर्वदा श्रीहरिके गुणानुवाद सुनता फिरता । शिवजीकी कृपासे मेरी सर्वत्र अबाधित गति थी (अर्थात् मैं जहाँ चाहता वहीं जा सकता था) ॥ ६ ॥

छूटी त्रिविधि ईषना गाढ़ी । एक लालसा उर अति वाढ़ी ॥

राम चरन बारिज जब देखौ । तब निज जन्म सफल करि लेखौ ॥ ७ ॥

मेरी तीनों प्रकारकी (पुत्रकी, धनकी और मानकी) गहरी प्रबल वासनाएँ छूट गयीं । और हृदयमें एक यही लालसा अत्यन्त बढ़ गयी कि जब श्रीरामजीके चरणकमलोंके दर्शन करूँ तब अपना जन्म सफल हुआ समझूँ ॥ ७ ॥

जेहि पूँछउँ सोइ मुनि अस कहई । ईश्वर सर्व भूत मय अहई ॥

निर्गुन मत नहिं मोहि सोहाई । सगुन ब्रह्म रति उर अधिकारि ॥ ८ ॥

जिनसे पूछता, वे ही मुनि ऐसा कहते कि ईश्वर सर्वभूतमय है । यह निर्गुन मत मुझे नहीं सुहाता था । हृदयमें सगुण ब्रह्मपर प्रीति बढ़ रही थी ॥ ८ ॥

दो० — गुर के बचन सुरति करि राम चरन मनु लाग ।

रघुपति जस गावत फिरउँ छन छन नव अनुराग ॥ ११० (क) ॥

गुरुजीके वचनोंका स्मरण करके मेरा मन श्रीरामजीके चरणोंमें लग गया । मैं क्षण-क्षण नया-नया प्रेम प्राप्त करता हुआ श्रीरघुनाथजीका यश गाता फिरता था ॥ ११० (क) ॥

मेरु सिखर बट छायाँ मुनि लोमस आसीन ।

देखि चरन सिरु नाथउँ बचन कहेउँ अति दीन ॥ ११० (ख) ॥

सुमेरुपर्वतके शिखरपर बड़की छायामें लोमश मुनि बैठे थे । उन्हें देखकर मैंने उनके चरणोंमें सिर नवाया और अत्यन्त दीन वचन कहे ॥ ११० (ख) ॥

मुनि मम वचन विनीत मृदु मुनि कृपाल खगराज ।

मोहि सादर पूँछत भए द्विज आयहु केहि काज ॥११० (ग) ॥

हे पक्षिराज ! मेरे अत्यन्त नम्र और कोमल वचन सुनकर कृपाल मुनि मुझसे आदरके साथ पूछने लगे—हे ब्रह्मण ! आप किस कार्यसे यहाँ आये हैं ! ॥ ११० (ग) ॥

तब मैं कहा कृपानिधि तुम्ह सर्वग्य सुजान ।

सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान् ॥११० (घ) ॥

तब मैंने कहा—हे कृपानिधि ! आप सर्वज्ञ हैं और सुजान हैं । हे भगवन् ! मुझे सगुण ब्रह्मकी आराधनाकी प्रक्रिया कहिये ॥ ११० (घ) ॥

चौ०—तब मुनीस रघुपति गुन गाथा । कहे कछुक सादर खगनाथा ॥

ब्रह्मग्यान रत मुनि बिग्यानी । मोहि परम अधिकारी जानी ॥ १ ॥

तब हे पक्षिराज ! मुनीश्वरने श्रीरघुनाथजीके गुणोंकी कुछ कथाएँ आदरसहित कही । फिर वे ब्रह्मज्ञान-परायण विज्ञानवान् मुनि मुझे परम अधिकारी जानकर, ॥ १ ॥

लगे करन ब्रह्म उपदेसा । अज अद्वैत अगुन हृदयेसा ॥

अकल अनीह अनाम अरूपा । अनुभव गम्य अखंड अनूषा ॥ २ ॥

ब्रह्मका उपदेश करने लगे कि वह अजन्मा है, अद्वैत है, निर्गुण है और हृदयका स्वामी (अन्तर्दामी) है । उसे कोई बुद्धिके द्वारा माप नहीं सकता, वह इच्छारहित, नामरहित, रूपरहित, अनुभवसे जानने योग्य, अखण्ड और उपमारहित है, ॥ २ ॥

मन गोतीत अमल अविनासी । निर्विकार निरवधि सुखरासी ॥

सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा । बारि बीचि इव गावहिं वेदा ॥ ३ ॥

वह मन और इन्द्रियोंसे परे, निर्मल, विनाशरहित, निर्विकार, सीमारहित और सुखकी राशि है । वेद ऐसा गाते हैं कि वही तू है (तत्त्वमसि), जल और जलकी लहरकी भाँति उसमें और तुझमें कोई भेद नहीं है ॥ ३ ॥

विविधि भाँति मोहि मुनि समुझावा । निर्गुन मत मम हृदयँ न आवा ॥

पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा । सगुन उपासन कहहु मुनीसा ॥ ४ ॥

मुनिने मुझे अनेकों प्रकारसे समझाया । पर निर्गुन मत मेरे हृदयमें नहीं आया । मैंने फिर मुनिके चरणोंमें सिर नवाकर कहा—हे मुनीश्वर ! मुझे सगुण ब्रह्मकी उपासना कहिये ॥ ४ ॥

रामभगति जल मम मन मीना । किमि बिलगाइ मुनीस प्रवीना ॥

सोइ उपदेस कहहु करि दाया । निज नयनन्हि देखौं रघुराया ॥ ५ ॥

मेरा मन रामभक्तिरूपी जलमें मछली हो रहा है । हे चतुर मुनीश्वर ! ऐसी दशामें वह उससे अलग कैसे हो सकता है ! आप दया करके मुझे वही उपदेश कीजिये जिससे मैं श्रीरघुनाथजीको अपनी आँखोंसे देखूँ ॥ ५ ॥

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा । तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा ॥
मुनि पुनि कहि हरि कथा अनूपा । खंडि सगुन मत अगुन निरूपा ॥ ६ ॥

पहले नेत्र भरकर भीअयोध्यानाथको देखकर, तब निर्गुणका उपदेश सुनूँगा । मुनिने फिर अनुपम हरिकथा कहकर, सगुण मतका खण्डन करके निर्गुणका निरूपण किया ॥ ६ ॥

तब मैं निर्गुन मत कर दूरी । सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी ॥
उत्तर प्रतिउत्तर मैं कीन्हा । मुनि तन भए क्रोध के चीन्हा ॥ ७ ॥

तब मैं निर्गुण मतको हटाकर (काटकर) बहुत हठ करके सगुणका निरूपण करने लगा । मैंने उत्तर-प्रत्युत्तर किया, इससे मुनिके शरीरमें क्रोधके चिह्न उत्पन्न हो गये ॥ ७ ॥

सुनु प्रभु बहुत अवग्या किएँ । उपज क्रोध ग्यानिन्ह के हिएँ ॥
अति संघरषन जौ कर कोई । अनल प्रगट चंदन ते होई ॥ ८ ॥

हे प्रभो ! सुनिये, बहुत अपमान करनेपर शान्ति के भी हृदयमें क्रोध उत्पन्न हो जाता है । यदि कोई चन्दनकी लकड़ीको बहुत अधिक रगड़े, तो उससे भी अग्नि प्रकट हो जायगी ॥ ८ ॥

दो०—बारंबार सकोप मुनि करइ निरूपन ग्यान ।

मैं अपने मन बैठ तब करउँ बिबिधि अनुमान ॥१११ (क) ॥

मुनि बार-बार क्रोधसहित ज्ञानका निरूपण करने लगे । तब मैं बैठा-बैठा अपने मनमें अनेको प्रकारके अनुमान करने लगा—॥ १११ (क) ॥

क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान ।

मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान ॥१११ (ख) ॥

विना द्वैतबुद्धिके क्रोध कैसा ? और विना अज्ञानके क्या द्वैतबुद्धि हो सकती है ? मायाके वश रहनेवाला परिच्छिन्न जड़ जीव क्या ईश्वरके समान हो सकता है ? ॥ १११ (ख) ॥

चौ०—कबहुँ कि दुख सब कर हित तार्कें । तेहि कि दरिद्र परसमनि जाकें ॥

परद्रोही की होहिं निसंका । कामी पुनि कि रहहिं अकलंका ॥ १ ॥

सबका हित देखनेसे क्या कर्मा दुःख हो सकता है ? जिसके पास पारसमणि है, उसके पास क्या दारिद्र्य रह सकता है ? दूसरेसे द्रोह करनेवाले क्या निर्भय हो सकते हैं ? और कामी क्या कलङ्करहित रह सकते हैं ? ॥ १ ॥

बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हें । कर्म कि होहिं स्वरूपहि चीन्हें ॥

काहू सुमति कि खल सँग जामी । सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी ॥ २ ॥

ब्राह्मणका बुरा करनेसे क्या वंश रह सकता है ? स्वरूपकी पहिचान (आत्मज्ञान) होनेपर क्या आसक्तिपूर्वक कर्म हो सकते हैं ? दुष्टोंके संगसे क्या किसीमें सुबुद्धि उत्पन्न हुई है ? परस्त्रीगामी क्या उत्तम गति पा सकता है ? ॥ २ ॥

भव कि परहिं परमात्मा बिंदक । सुखी कि होहिं कबहुँ हरिनिंदक ॥

राजु कि रहइ नीति बिनु जानें । अघ कि रहहिं हरि चरित बखानें ॥ ३ ॥

परमात्माको जाननेवाले कहीं भववन्धनमें पड़ सकते हैं ? भगवान्की निन्दा करनेवाले कभी सुखी हो सकते हैं ? नीति बिना जाने क्या राज्य रह सकता है ? श्रीहरिके चरित्र वर्णन करनेपर क्या पाप रह सकते हैं ? ॥ ३ ॥

पावन जस कि पुन्य बिनु होई । बिनु अघ अजस कि पावइ कोई ॥
लाभु कि किछु हरिभगति समाना । जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना ॥ ४ ॥

बिना पुण्यके क्या पवित्र यश प्राप्त हो सकता है ? बिना पापके भी क्या कोई अपयश पा सकता है ? जिसे वेद, संत और पुराण गाते हैं उस हरिभक्तिके समान क्या कोई दूसरा लाभ भी है ? ॥ ४ ॥

हानि कि जग एहि सम किछु भाई । भजिअ न रामहि नरतनु पाई ॥
अघ कि पिसुनता सम कछु आना । धर्म कि दया सरिस हरिजाना ॥ ५ ॥

हे भाई ! जगत्में क्या इसके समान दूसरी भी कोई हानि है कि मनुष्यका शरीर पाकर भी श्रीरामजीका भजन न किया जाय ? चुगलखोरीके समान क्या कोई दूसरा पाप है ? और हे गरुड़जी ! दयाके समान क्या कोई दूसरा धर्म है ? ॥ ५ ॥

एहि विधि अमिति जुगुति मन गुनऊँ । मुनि उपदेस, न सादर सुनऊँ ॥
पुनि पुनि सगुन पच्छ में रोपा । तब मुनि बोलेउ बचन सकोपा ॥ ६ ॥

इस प्रकार मैं अनगिनत युक्तियाँ मनमें विचारता था और आदरके साथ मुनिका उपदेश नहीं सुनता था । जब मैंने बार-बार सगुणका पक्ष स्थापित किया, तब मुनि क्रोधयुक्त वचन बोले— ॥ ६ ॥

मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि । उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि ॥
सत्य वचन विस्वास न करही । वायस इव सबही ते डरही ॥ ७ ॥

अरे मूढ़ ! मैं तुझे सर्वोत्तम शिक्षा देता हूँ, तो भी तू उसे नहीं मानता और बहुतसे उत्तर-प्रत्युत्तर (दलीलें) लकर रखता है । मेरे सत्य वचनपर विश्वास नहीं करता । कौएकी भाँति सभीसे डरता है ॥ ७ ॥

सउ स्वपच्छ तव हृदयँ विसाला । सपदि होहि पच्छी चंडाला ॥
लीन्ह थाप में सीस चढ़ाई । नहिं कछु भय न दीनता आई ॥ ८ ॥

अरे मूर्ख ! तेरे हृदयमें अपने पक्षका बड़ा भारी हट है । अतः तू शीघ्र चाण्डाल पक्षी (कौआ) हो जा । मैंने आनन्दके साथ मुनिके शापका सिरपर चढ़ा लिया । उससे मुझे न कुछ भय हुआ, न दीनता ही आयी ॥ ८ ॥

दो०—तुरत भयउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ ।

सुमिरि राम रघुवंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ ॥ ११२ (क) ॥

तब मैं तुरंत ही कौआ हो गया । फिर मुनिके चरणोंमें सिर नवाकर और रघुकुलशिरोमणि श्रीरामजीका स्मरण करके मैं हर्षित होकर उड़ चला ॥ ११२ (क) ॥

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध ।

निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध ॥ ११२ (ख) ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! जो श्रीरामजीके चरणोंमें अनुरक्त हैं और काम, अभिमान और क्रोधसे रहित हैं, वे जगत्को अपने प्रभुसे भरा हुआ देखते हैं, फिर वे किससे वैर करें ? ॥ ११२ (ख) ॥

चौ०—सुनु खगेस नहिं कछु रिपि दूषन । उर प्रेरक रघुवंस बिभूषन ॥

कृपासिंधु मुनि मति करि भोरी । लीन्ही प्रेम परिच्छा मोरी ॥ १ ॥

[काकभुशुंडिजीने कहा—] हे पक्षिराज गरुड़जी ! सुनिये, इसमें ऋषिका कुछ भी दोष नहीं था । रघुवंशके विभूषण श्रीरामजी ही सबके हृदयमें प्रेरणा करनेवाले हैं । कृपासागर प्रभुने मुनिकी बुद्धिको भोली करके (भुलावा देकर) मेरे प्रेमकी परीक्षा ली ॥ १ ॥

मन बच क्रम मोहि निज जन जाना । मुनि मति पुनि फेरी भगवाना ॥

रिधि मम महत सीलता देखी । राम चरन विस्वास बिसेषी ॥ २ ॥

मन, वचन और कर्मसे जब प्रभुने मुझे अपना दास जान लिया, तब भगवान्ने मुनिकी बुद्धि फिर पलट दी । ऋषिने मेरा महान् पुरुषोंका सा स्वभाव (धैर्य, अक्रोध, विनय आदि) और श्रीरामजीके चरणोंमें विशेष विश्वास देखा ॥ २ ॥

अति विसमय पुनि पुनि पछितार्ई । सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई ॥

मम परितोष बिबिधि बिधि कीन्हा । हरषित राममंत्र तब दीन्हा ॥ ३ ॥

तब मुनिने बहुत दुःखके साथ बार-बार पछताकर मुझे आदरपूर्वक बुला लिया । और उन्होंने अनेकों प्रकारसे मेरा सन्तोष किया, फिर हर्षित होकर मुझे राममन्त्र दिया ॥ ३ ॥

बालकरूप राम कर ध्याना । कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना ॥

सुंदर सुखद मोहि अति भावा । सो प्रथमहिं मैं तुम्हहि सुनावा ॥ ४ ॥

कृपानिधान मुनिने मुझे बालकरूप श्रीरामजीका ध्यान (ध्यानकी विधि) बतलाया । सुन्दर और सुख देनेवाला यह ध्यान मुझे बहुत ही अच्छा लगा । वह ध्यान मैं आपको पहले ही सुना चुका हूँ ॥ ४ ॥

मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा । रामचरित मानस तब भाषा ॥

सादर मोहि यह कथा सुनार्ई । पुनि बोले मुनि गिरा सुहार्ई ॥ ५ ॥

मुनिने कुछ समयतक मुझको वहाँ (अपने पास) रक्खा । तब उन्होंने रामचरितमानस वर्णन किया । आदरपूर्वक मुझे यह कथा सुनाकर फिर मुनि मुझसे सुन्दर वाणी बोले—॥ ५ ॥

रामचरित सर गुप्त सुहावा । संभु प्रसाद तान मैं पावा ॥

तोहि निज भगत राम कर जानी । ताते मैं सब कहेउँ बखानी ॥ ६ ॥

हे तात ! यह सुन्दर और गुप्त रामचरितमानस मैंने शिवजीकी कृपासे पाया था । तुम्हें श्रीरामजीका 'निज भक्त' जाना, इसीसे मैंने तुमसे सब चरित्र विस्तारके साथ बखानकर कहा ॥ ६ ॥

रामभगति जिन्ह कै उर नाहीं । कवहुँ न तात कहिअ तिन्ह पाहीं ॥

मुनि मोहि बिबिधि भाँति समुझावा । मैं सप्रेम मुनिपद सिर नावा ॥ ७ ॥

हे तात ! जिनके हृदयमें श्रीरामजीकी भक्ति नहीं है, उनके सामने इसे कभी भी नहीं कहना चाहिये । मुनिने मुझे बहुत प्रकारसे समझाया । तब मैंने प्रेमके साथ मुनिके चरणोंमें मिग नवाया ॥ ७ ॥

निज कर कमल परसि मम सीसा । हरषित आसिष दीन्ह मुनीसा ॥

रामभगति अबिरल उर तोरें । बसिहि सदा प्रसाद अब मोरें ॥ ८ ॥

मुनीश्वरने अपने कर-कमलोंसे मेरा सिर स्पर्श करके हर्षित होकर आशीर्वाद दिया कि अब मेरी कृपासे तेरे हृदयमें सदा प्रगाढ़ रामभक्ति बसेगी ॥ ८ ॥

दो०—सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुम गुन भवन अमान ।

कामरूप इच्छामरन ग्यान विराग निधान ॥ ११३ (क) ॥

तुम सदा श्रीरामजीको प्रिय होओ और कल्याणरूप गुणोंके धाम, मानरहित, इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ, इच्छामृत्यु (जिसकी शरीर छोड़नेकी इच्छा करनेपर ही मृत्यु हो, बिना इच्छाके मृत्यु न हो), एवं ज्ञान और वैराग्यके भण्डार होओ ॥ ११३ (क) ॥

जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवंत ।

व्यापिहि तहँ न अविद्या जोजन एक प्रजंत ॥ ११३ (ख) ॥

इतना ही नहीं, श्रीभगवान्‌को स्मरण करते हुए तुम जिस आश्रममें निवास करोगे वहाँ एक योजन (चार कोस) तक अविद्या (माया-मोह) नहीं व्यापेगी ॥ ११३ (ख) ॥

चौ०—काल कर्म गुण दोष सुभाऊ । कछु दुख तुम्हहि न व्यापिहि काऊ ॥

राम रहस्य ललित बिधि नाना । गुप्त प्रगट इतिहास पुराना ॥ १ ॥

काल, कर्म, गुण, दोष और स्वभावसे उत्पन्न कुछ भी दुःख तुमको कभी नहीं व्यापेगा । अनेकों प्रकारके सुन्दर श्रीरामजीके रहस्य (गुप्त मर्मके चरित्र और गुण), जो इतिहास और पुराणोंमें गुप्त और प्रकट हैं (वर्णित और लक्षित हैं) ॥ १ ॥

बिनु भ्रम तुम्ह जानब सब सोऊ । नित नव नेह रामपद होऊ ॥

जो इच्छा करिहहु मन माहीं । हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं ॥ २ ॥

तुम उन सबको भी बिना ही परिश्रम जान जाओगे । श्रीरामजीके चरणोंमें तुम्हारा नित्य नया प्रेम हो । अपने मनमें तुम जो कुछ इच्छा करोगे, श्रीहरिकी कृपासे उसकी पूर्ति कुछ भी दुर्लभ नहीं होगी ॥ २ ॥

सुनि मुनि आसिय सुनु मतिधीरा । ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा ॥

एवमस्तु तव बच मुनि ग्यानी । यह मम भगत कर्म मन बानी ॥ ३ ॥

हे धीरबुद्धि गुरुजी ! सुनिये, मुनिका आशीर्वाद सुनकर आकाशमें गम्भीर ब्रह्मवाणी हुई कि हे ज्ञानी मुनि ! तुम्हारा वचन ऐसा ही (सत्य) हो । यह कर्म, मन और वचनसे मेरा भक्त है ! ॥ ३ ॥

सुनि नभगिरा हरष मोहि भयऊ । प्रेम भगन सब संसय गयऊ ॥

करि बिनती मुनि आयसु पाई । पद सरोज पुनि पुनि सिह नाई ॥ ४ ॥

आकाशवाणी सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ । मैं प्रेममें मग्न हो गया । और मेरा सब सन्देह जाता रहा । तदनन्तर मुनिकी बिनती करके, आज्ञा पाकर, और उनके चरणकमलोंमें बार-बार सिर नवाकर— ॥ ४ ॥

हरष सहित एहिं आश्रम आयउँ । प्रभु प्रसाद दुर्लभ बर पायउँ ॥

इहाँ बसत मोहि सुनु खग ईसा । बोलते कल्प सात अरु बीसा ॥ ५ ॥

मैं हर्षसहित इस आश्रममें आया । प्रभु श्रीरामजीकी कृपासे मैंने दुर्लभ वर पा लिया । हे पक्षिराज ! मुझे यहाँ निवास करते सत्ताईस कल्प बीत गये ॥ ५ ॥

करउँ सदा रघुपति गुन गाना । सादर सुनहिं बिहंग सुजाना ॥

जब जब अवधपुरी रघुबीरा । धरहिं भगत हित मनुज सरीरा ॥ ६ ॥

मैं यहाँ सदा श्रीरघुनाथजीके गुणोंका गान किया करता हूँ और चतुर पक्षी उसे आदरपूर्वक सुनते हैं । अयोध्यापुरीमें जब-जब श्रीरघुवीर भक्तोंके [हितके] लिये मनुष्यशरीर धारण करते हैं, ॥ ६ ॥

तब तब जाइ रामपुर रहऊँ । सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ ॥

पुनि उर राखि राम सिसुरूपा । निज आश्रम आवउँ खगभूपा ॥ ७ ॥

तब-तब मैं जाकर श्रीरामजीकी नगरीमें रहता हूँ और प्रभुकी शिशुलीला देखकर सुख प्राप्त करता हूँ । फिर हे पक्षिराज ! श्रीरामजीके शिशुरूपको हृदयमें रखकर, मैं अपने आश्रममें आ जाता हूँ ॥ ७ ॥

कथा सकल मैं तुम्हहि सुनाई । काग देह जेहिं कारन पाई ॥

कहिउँ तात सब प्रभु तुम्हारी । रामभगति महिमा अति भारी ॥ ८ ॥

जिस कारणसे मैंने कौएकी देह पायी, वह सारी कथा आपको सुना दी । हे तात ! मैंने आपके सब प्रश्नोंके उत्तर कहे । अहा ! रामभक्तिकी बड़ी भारी महिमा है ॥ ८ ॥

दो०—ताते यह तन मोहि प्रिय भयउ रामपद नेह ।

निज प्रभु दरसन पायउँ गए सकल संदेह ॥ ११४ (क) ॥

मुझे अपना यह काकशरीर इसीलिये प्रिय है कि इसमें मुझे श्रीरामजीके चरणोंका प्रेम प्राप्त हुआ । इसी शरीरसे मैंने अपने प्रभुके दर्शन पाये और मेरे सब सन्देह जाते रहे (दूर हुए) ॥ ११४ (क) ॥

मासपारायण उन्तीसवाँ विश्राम

भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषि साप ।

मुनि दुर्लभ वर पायउँ देखहु भजन प्रताप ॥ ११४ (ख) ॥

मैं हठ करके भक्तिपक्षपर अड़ा रहा, जिससे महर्षि लोमशने मुझे शाप दिया । परन्तु उसका फल यह हुआ कि जो मुनियोंको भी दुर्लभ है, वह वरदान मैंने पाया । भजनका प्रताप तो देखिये ! ॥ ११४ (ख) ॥

चौ०—जे असि भगति जानि परिहरहीं । केवल ग्यान हेतु भ्रम करहीं ॥

ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी । खोजत आकु फिरहिं पय लागी ॥ १ ॥

जो भक्तिकी ऐसी महिमा जानकर भी उसे छोड़ देते हैं और केवल ज्ञानके लिये भ्रम (साधन) करते हैं, वे मूर्ख धरपर खड़ी हुई कामधेनुको छोड़कर दूधके लिये मशरूके पेड़को खोजते फिरते हैं ॥ १ ॥

सुनु खगेस हरिभगति बिहाई । जे सुख चाहहिं आन उपाई ॥

ते सठ महासिंधु बिनु तरनी । पैरि पार चाहहिं जड़ करनी ॥ २ ॥

हे पक्षिराज ! मुनिये, जो लोग श्रीहरिकी भक्तिको छोड़कर दूसरे उपायोंसे सुख चाहते हैं, वे मूर्ख और जड़ करनीवाले (अभागे) बिना ही जहाजके तैरकर महासमुद्रके पार जाना चाहते हैं ॥ २ ॥

सुनि भसुंडि के बचन भवानी । बोलै गरुड़ हरिप मृदु बानी ॥

तब प्रसाद प्रभु मम उर माहीं । संसय सांक मोह भ्रम नाहीं ॥ ३ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे भवानी ! भुशुण्डिके वचन सुनकर गरुड़जी हर्षित होकर कोमल वाणीसे बोले— हे प्रभो ! आपके प्रसादसे मेरे हृदयमें अब सन्देह, शोक, मोह और भ्रम कुछ भी नहीं रह गया ॥ ३ ॥

सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा । तुम्हरी कृपाँ लहेउँ विश्रामा ॥

एक बात प्रभु पूँछउँ तोही । कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही ॥ ४ ॥

मैंने आपकी कृपासे श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र गुणसमूहोंको सुना और शान्ति प्राप्त की । हे प्रभो ! अब मैं आपसे एक बात और पूछता हूँ । हे कृपासागर ! मुझे समझाकर कहिये ॥ ४ ॥

कहहिं संत मुनि बेद पुराना । नहिं कहु दुर्लभ ग्यान समाना ॥

सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाई । नहिं आदरेहु भगति की नाई ॥ ५ ॥

संत, मुनि, वेद और पुराण यह कहते हैं कि ज्ञानके समान दुर्लभ कुछ भी नहीं है। हे गोसाईं ! वही ज्ञान मुनिने आपसे कहा। परन्तु आपने भक्तिके समान उसका आदर नहीं किया ॥ ५ ॥

ग्यानहि भगतिहि अंतर केता । सकल कहहु प्रभु कृपानिकेता ॥
सुनि उरगारि बचन सुख माना । सादर बोलेउ काग सुजाना ॥ ६ ॥

हे कृपाके धाम ! हे प्रभो ! ज्ञान और भक्तिमें कितना अन्तर है ? यह सब मुझसे कहिये । गरुड़जीके वचन सुनकर सुजान काकभुशुण्डजीने सुख माना और आदरके साथ कहा—॥ ६ ॥

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा । उभय हरहिं भव संभव खेदा ॥
नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर । सावधान सोउ सुनु बिहंगबर ॥ ७ ॥

भक्ति और ज्ञानमें कुछ भी भेद नहीं है । दोनों ही भव (संसार) से उत्पन्न क्लेशोंको हर लेते हैं । हे नाथ ! मुनीश्वर इनमें कुछ अन्तर बतलाते हैं । हे पक्षिश्रेष्ठ ! उसे सावधान होकर सुनिये ॥ ७ ॥

ग्यान विराग जोग विग्याना । ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना ॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती । अबला अबल सहज जड़ जाती ॥ ८ ॥

हे हरिवाहन ! सुनिये, ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान ये सब पुरुष हैं । पुरुषका प्रताप सब प्रकारसे प्रबल होता है । अबला (स्त्री) स्वाभाविक ही निर्बल और जाति (जन्म) से ही जड़ (मूर्ख) होती है ॥ ८ ॥

दो०—पुरुष त्यागि सक नारिहि जो विरक्त मति धीर ।

न तु कामी विषयावस विमुख जो पद रघुवीर ॥ ११५ (क) ॥

परन्तु जो वैराग्यवान् और धीरबुद्धि पुरुष है वही स्त्रीको त्याग सकते हैं, न कि वे कामी पुरुष, जो विषयोंके वश (उनके गुलाम) और श्रीरघुवीरके चरणोंसे विमुख हैं ॥ ११५ (क) ॥

सो०—सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी विधुमुख निरखि ।

बिबस हो हरिजान नारि बिष्णुमाया प्रगट ॥ ११५ (ख) ॥

वे ज्ञानके भण्डार मुनि भी मृगनयनी (युवती स्त्री) के चन्द्रमुखको देखकर विवश (उसके अधीन) हो जाते हैं । हे गरुड़जी ! साक्षात् भगवान् विष्णुको माया ही स्त्रीरूपसे प्रकट है ॥ ११५ (ख) ॥

चो०—इहाँ न पछपात कछु राखउँ । बेद पुरान संत मत भाषउँ ॥

मोह न नारि नारि कै रूपा । पन्नगारि यह रीति अनूपा ॥ १ ॥

यहाँ मैं कुछ पछपात नहीं रखता । वेद, पुराण और संतोंका मत (सिद्धान्त) ही कहता हूँ । हे गरुड़जी ! यह अनुपम (विलक्षण) रीति है कि एक स्त्रीके रूपपर दूसरी स्त्री मोहित नहीं होती ॥ १ ॥

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ । नारिबर्ग जानइ सब कोऊ ॥

पुनि रघुवीरहि भगति पिआरी । माया खलु नर्तकी बिचारी ॥ २ ॥

आप सुनिये, माया और भक्ति ये दोनों ही स्त्रीवर्ग हैं, यह सब कोई जानते हैं । फिर श्रीरघुवीरजीको भक्ति प्यारी है । माया बेचारी तो निश्चय ही नाचनेवाली (नटिनी मात्र) है ॥ २ ॥

भगतिहि सानुकूल रघुराया । ताते तेहि डरपति अति माया ॥

राम भगति निरुपम निरुपाधी । बसइ जासु उर सदा अबाधी ॥ ३ ॥

श्रीरघुनाथजी भक्तिके विशेष अनुकूल रहते हैं। इसीसे ज्ञाया उससे अत्यन्त डरती रहती है। जिसके हृदयमें उपमारहित और उपाधिरहित (विशुद्ध) रामभक्ति सदा विना किसी बाधा (रोक-टोक) के बसती है, ॥ ३ ॥

तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई ॥

अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाबहिं भगति सकल सुख खानी ॥ ४ ॥

उसे देखकर माया सकुचा जाती है। उसपर वह अपनी प्रभुता कुछ भी नहीं कर (चला) सकती। ऐसा विचारकर ही जो विज्ञानी मुनि हैं, वे भी सब सुखोंकी खान भक्तिकी ही याचना करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ।

जो जानइ रघुपति कृपाँ सपनेहुँ मोह न होइ ॥ ११६ (क) ॥

श्रीरघुनाथजीका यह रहस्य (गुप्त मर्म) जल्दी कोई भी नहीं जान पाता। श्रीरघुनाथजीकी कृपासे जो इसे जान जाता है, उसे स्वप्नमें भी मोह नहीं होता ॥ ११६ (क) ॥

औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन।

जो सुनि होइ रामपद प्रीति सदा अबिछीन ॥ ११६ (ख) ॥

हे सुचतुर गुरुजी ! ज्ञान और भक्तिका और भी भेद सुनिये। जिसके सुननेसे श्रीरामजीके चरणोंमें सदा अविच्छिन्न (एक तार) प्रेम हो जाता है ॥ ११६ (ख) ॥

चौ०—सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझन बनइ न जाइ बखानी ॥

ईश्वर अंस जीव भविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥ १ ॥

हे तात ! यह अकथनीय कहानी (वार्ता) सुनिये। यह समझते ही बनती है, कहीं नहीं जा सकती। जीव ईश्वरका अंश है; अतएव वह अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभावसे ही सुखकी राशि है ॥ १ ॥

सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाई ॥

जइ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥ २ ॥

हे गोसाईं ! यह मायाके वशीभूत होकर तोते और बानरकी भौंति अपने-आप ही बँध गया। इस प्रकार जइ और चेतनमें ग्रन्थि (गाँठ) पड़ गयी। यद्यपि वह ग्रन्थि मिथ्या ही है, तथापि उसके छूटनेमें कठिनाता है ॥ २ ॥

तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी ॥

धुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥ ३ ॥

तभीसे जीव संसारी (आवगमनशील) हो गया। अब न तो गाँठ छूटती है, और न वह सुखी होता है। वेदों और पुराणोंमें बहुत-से उपाय बतलाये हैं। पर वह (ग्रन्थि) छूटती नहीं, वरं अधिकाधिक उलझती ही जाती है ॥ ३ ॥

जीव हृदयँ तम मोह बिसंषी। ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी ॥

अस संजोग ईस जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुअरई ॥ ४ ॥

जीवके हृदयमें अज्ञानरूपी अन्धकार विशेषरूपसे छा रहा है, इससे गाँठ देख ही नहीं पड़ती, छूटते तो कैसे ! जब कभी ईश्वर ऐसा संयोग (जैसा आगे कहा जाता है) उपस्थित कर देते हैं तब भी कदाचित ही वह ग्रन्थि छूट पाती है ॥ ४ ॥

साखिक अछा धेनु सुहाई। जौ हरि कृपाँ हृदयँ बस आई ॥

जप तप व्रत जम नियम अपारा। जे धुनि कह सुभ धर्म अचारा ॥ ५ ॥

भीहरिकी कृपासे यदि सात्त्विकी भद्रारूपी गौ हृदयरूपी घरमें आकर बस जाय। असंख्यों जप, तप, व्रत, यम और नियमादि शुभ धर्म और आचार (आचरण) जो श्रुतियोंनि कहे हैं, ॥ ५ ॥

तेह तुन हरित चरै जब गाई । भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हारै ॥

नोह निवृत्ति पात्र बिखास्ता । निर्मल मन अहीर निज दास्ता ॥ ६ ॥

उन्हीं धर्माचाररूपी हरे तृणोंको (घासको) जब वह गौ चरे, और आस्तिक भावरूपी छोटे बछड़ेको पाकर वह पेन्हावे । निवृत्ति (सांसारिक विषयोंसे और प्रपञ्चसे हटना) नोह (गौके दूहते समय पिछले पैर बाँधनेकी रस्ती) है; विश्वास दूध दुहनेका बरतन है, निर्मल (निष्पाप) मन जो स्वयं अपना दास है (अपने वशमें है), दुहनेवाला अहीर है ॥ ६ ॥

परम धर्ममय पय दुहि भाई । अवटै अनल अकाम बनाई ॥

तोष मखत तब छमाँ जुड़ावै । धृति सम जावनु देह जमावै ॥ ७ ॥

हे भाई ! इस प्रकार [धर्माचारमें प्रवृत्त सात्त्विकी भद्रारूपी गौसे भाव, निवृत्ति और वशमें किये हुए निर्मल मनकी सहायतासे] परम धर्ममय दूध दुहकर उसे निष्काम भावरूपी अग्निपर भलीभाँति ओँटवै । फिर क्षमा और संतोखरूपी हवासे उसे ठंडा करे; और धृति (धैर्य) तथा शमरूपी जामन देकर उसे जमावे ॥ ७ ॥

मुदितौ मथै बिचार मथानी । दम अधार रजु सत्य सुबानी ॥

तब मथि काढ़ि लेह नवनीता । विमल बिराग सुभग सुपुनीता ॥ ८ ॥

तब मुदिता (प्रसन्नता) रूपी कमोरीमें, तत्त्वविचाररूपी मथानीसे दम (इन्द्रियदमन) के आधारपर (दमरूपी खंभे आदिके सहारे) मथ्य और सुन्दर वाणीरूपी रस्ती लगाकर उसे मथे और मथकर तब उसमेंसे निर्मल, सुन्दर और अत्यन्त पवित्र वैराग्यरूपी मक्खन निकाल ले ॥ ८ ॥

दो०—जोग अग्नि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ ।

बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ ॥ ११७ (क) ॥

तब योगरूपी अग्नि प्रकट करके उसमें समस्त शुभाशुभ कर्मरूपी ईंधन लगा दे (सब कर्मोंको योगरूपी अग्निमें भस्म कर दे) जब वैराग्यरूपी मक्खनका ममतारूपी मल जल जाय, तब बचे हुए ज्ञानरूपी घीको निश्चयात्मिका बुद्धिमें ठंडा करे ॥ ११७ (क) ॥

तब विग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ ।

चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ ॥ ११७ (ख) ॥

तब विज्ञानरूपिणी बुद्धि उस ज्ञानरूपी निर्मल घीको पाकर उससे चित्तरूपी दियेको भरकर, समताकी दीवट बनाकर, उसपर उसे दृढ़तापूर्वक (जमाकर) रखे ॥ ११७ (ख) ॥

तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि ।

तूल तुरीय सँवारि पुनि जाती करै सुगाढ़ि ॥ ११७ (ग) ॥

तीनों [जाग्रति, स्वप्न और सुषुप्ति] अवस्थाएँ और तीनों [सत्त्व, रज और तम] गुणरूपी कपाससे तुरीयावस्थारूपी रूईको निकालकर, और फिर उसे सँवारकर उसकी सुन्दर कढ़ी बत्ती बनावे ॥ ११७ (ग) ॥

सो०—एहि विधि लेसै दीप तेज रासि विग्यानमय ।

जातहिं जासु समोप जरहिं मदादिक सलम सब ॥ ११७ (घ) ॥

इस प्रकार तेजकी राशि विज्ञानमय दीपक जलावे, जिसके समीप जाते ही मद आदि सब पतंगे जल जायें ॥ ११७ (घ) ॥

चौ०—सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखंडा । दीपसिखा सोह परम प्रचंडा ॥

आत्मा अनुभव सुख सुप्रकाशा । तब भवमूल भेद भ्रम नासा ॥ १ ॥

‘सोऽहमस्मि’ (वह ब्रह्म मैं हूँ) यह जो अखण्ड (तैलधारावत् कभी न टूटनेवाली) वृत्ति है वही उस ज्ञानदीपककी परम प्रचण्ड दीपसिखा (ली) है । इस प्रकार जब आत्मानुभवके सुखका सुन्दर प्रकाश फैलता है तब जन्म-मृत्युरूप संसारके मूल भेद-भ्रमका नाश हो जाता है ॥ १ ॥

प्रबल अबिद्या कर परिवारा । मोह आदि तम मिटइ अपारा ॥

तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा । उर गृह बैठि ग्रंथि निरुआरा ॥ २ ॥

और महान् बलवती अबिद्याके परिवार मोह आदिका अपार अन्धकार मिट जाता है । तब वही (विज्ञान-रूपिणी) बुद्धि आत्मानुभवरूप प्रकाशको पाकर हृदयरूपी घरमें बैठकर उस जड़-चेतनकी गोंठको खोलती है ॥ २ ॥

छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई । तब यह जीव कृतार्थ होई ॥

छोरत ग्रंथि जानि खगराया । विघ्न अनेक करइ तब माया ॥ ३ ॥

यदि वह (विज्ञानरूपिणी बुद्धि) उस गोंठको खोलने पावे, तब यह जीव कृतार्थ हो । परन्तु हे पक्षिराज गरुड़जी ! गोंठ खोलते हुए जानकर माया फिर अनेकों विघ्न करती है ॥ ३ ॥

रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई । बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई ॥

कल बल छल करि जाहिं समीपा । अंचल वात बुझावहिं दीपा ॥ ४ ॥

हे भाई ! वह बहुत-सी ऋद्धि-सिद्धियोंको भेजती है, जो आकर बुद्धिको लोभ दिखाती हैं । और वे ऋद्धि-सिद्धियाँ कल (कला), बल और छल करके समीप जातीं और आँचलकी वायुसे उस ज्ञानरूपी दीपकको बुझा देती हैं ॥ ४ ॥

होइ बुद्धि जौं परम सयानी । तिन्ह तन चितव न अनहित जानी ॥

जौं तेहि विघ्न बुद्धि नहिं बाधी । तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी ॥ ५ ॥

यदि बुद्धि बहुत ही सयानी हुई, तो वह उनको (ऋद्धि-सिद्धियोंको) अहितकर समझकर उनकी ओर ताकती नहीं । इस प्रकार यदि मायाके विघ्नोंसे बुद्धिको बाधा न हुई, तो फिर देवता उपाधि (विघ्न) करते हैं ॥ ५ ॥

इंद्रौ द्वार शरोखा नाना । तहँ तहँ सुर बैठ करि थाना ॥

आवत देखहिं विषय बयारी । ते हठि देहिं कपाट उघारी ॥ ६ ॥

इन्द्रियोंके द्वार हृदयरूपी घरके अनेकों शरोखे हैं । वहाँ-वहाँ (प्रत्येक शरोखेपर) देवता थाना किये (अङ्गु जमाकर) बैठे हैं । ज्यों ही वे विषयरूपी हवाको आते देखते हैं त्यों ही हठपूर्वक किवाड़े खोल देते हैं ॥ ६ ॥

जब सो प्रभंजन उर गृहँ जाई । तबहिं दीप विग्यान बुझाई ॥

ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकाशा । बुद्धि विकल भइ विषय बतासा ॥ ७ ॥

ज्यों ही वह तेज हवा हृदयरूपी घरमें जाती है, त्यों ही वह विज्ञानरूपी दीपक बुझ जाता है । गोंठ भी नहीं छूटी और वह प्रकाश भी मिट गया । विषयरूपी हवासे बुद्धि व्याकुल हो गयी (सारा किया कराया चौपट हो गया) ॥ ७ ॥

इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई । विषयभोग पर प्रीति सदाई ॥

विषय समीर बुद्धि कृत भोरी । तेहि विधि दीप को बार बहोरी ॥ ८ ॥

इन्द्रियों और उनके देवताओंको तो ज्ञान स्वामाविक ही नहीं मुहता; क्योंकि उनकी विषय-भोगोंमें सदा ही प्रीति रहती है। और बुद्धिको भी विषयरूपी हवाने बावली बना दिया, तब फिर (दुबारा) उस ज्ञानदीपकको उसी प्रकारसे कौन जलवे ? ॥ ८ ॥

दो०—तब फिर जीव विविधि विधि पावइ संसृति क्लेश ।

हरिमाया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस ॥ ११८ (क) ॥

[इस प्रकार ज्ञानदीपकके बुझ जानेपर] तब फिर जीव अनेकों प्रकारसे संसृतिके (जन्म-मरणादिके) क्लेश पाता है। हे पक्षिराज ! हरिकी माया अत्यन्त दुस्तर है, वह सहजहीमें तरी नहीं जा सकती ॥ ११८ (क) ॥

कहत कठिन समुद्रत कठिन साधत कठिन बिबेक ।

होइ घुनाच्छर न्याय जां पुनि प्रत्यूह अनेक ॥ ११८ (ख) ॥

ज्ञान कहने (समझाने) में कठिन, समझनेमें कठिन और साधनेमें भी कठिन है। यदि घुणाक्षरन्यायसे (संयोगवश) कदाचित् यह ज्ञान हो भी जाय, तो फिर [उसे बचाये रखनेमें] अनेकों विघ्न हैं ॥ ११८ (ख) ॥

चौ०—ग्यान पंथ कृपान कै धारा । परत खगेस होइ नहिं धारा ॥

जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई । सो कैवल्य परमपद लहई ॥ १ ॥

ज्ञानका मार्ग कृपाण (दुबारी तलवार) की धारके समान है। हे पक्षिराज ! इस मार्गसे गिरते देर नहीं लगती। जो इस मार्गको निर्बिघ्न निबाह ले जाता है, वही कैवल्य (मोक्ष) रूप परमपदको प्राप्त करता है ॥ १ ॥

अति दुर्लभ कैवल्य परमपद । संत पुरान निगम आगम बद् ॥

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं । अनच्छित आवइ बरिआई ॥ २ ॥

संत, पुराण, वेद और तन्त्र आदि शास्त्र सब यह कहते हैं कि कैवल्यरूप परमपद अत्यन्त दुर्लभ है। किन्तु हे गोसाईं ! वही अत्यन्त दुर्लभ मुक्ति श्रीरामजीको भजनेसे विना इच्छा किये भी जबरदस्ती आ जाती है ॥ २ ॥

जिमि थल यिनु जल रहि न सकाई । कोटि भाँति कोउ करै उपाई ॥

तथा मोच्छसुख सुनु खगराई । रहि न सकाई हरिभगति बिहाई ॥ ३ ॥

जैसे स्थलके विना जल नहीं रह सकता, चाहे कोई करोड़ों प्रकारके उपाय क्यों न करे, वैसे ही, हे पक्षिराज ! मुनिये, मोक्षसुख भी श्रीहरिकी भक्तिको छोड़कर नहीं रह सकता ॥ ३ ॥

अस बिचारि हरिभगत सयाने । मुक्ति निरादर भगति लुभाने ॥

भगति करत यिनु जतन प्रयासा । संसृति मूल अविद्या नासा ॥ ४ ॥

ऐसा विचारकर बुद्धिमान् हरिभक्त भक्तिपर लुभाये रहकर मुक्तिका तिरस्कार कर देते हैं। भक्ति करनेसे संसृति (जन्म-मृत्युरूप संसार) की जड़ अविद्या विना ही यत्न और परिश्रमके (अपने आप) वैसे ही नष्ट हो जाती है, ॥ ४ ॥

भोजन करिअ तृपति हित लागी । जिमि सो असन पचवै जठरागी ॥

असि हरिभगति सुगम सुखदाई । को अस मूढ़ न जाहि सोहाई ॥ ५ ॥

जैसे भोजन किया तो जाता है तृप्तिके लिये और उस भोजनको जठराग्नि अपने आप (विना हमारी चेष्टाके) पचा डालती है, ऐसी सुगम और परम सुख देनेवाली हरिभक्ति जिसे न सुहावे, ऐसा मूढ़ कौन होगा ? ॥ ५ ॥

दो०—सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि ।

भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि ॥ ११९ (क) ॥

हे गरुड़जी ! मैं सेवक हूँ और भगवान् मेरे सेव्य (स्वामी) हैं, इस भावके बिना भवसागरसे तरना नहीं हो सकता । ऐसा सिद्धान्त विचारकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंका भजन कीजिये ॥ ११९ (क) ॥

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य ।

अस समर्थ रघुनाथकहि भजहिं जीव ते धन्य ॥ ११९ (ख) ॥

जो चेतनको जड़ कर देता है और जड़को चेतन कर देता है, ऐसे समर्थ श्रीरघुनाथजीको जो जीव भजते हैं, वे धन्य हैं ॥ ११९ (ख) ॥

चौ०—कहेउ ग्यान सिद्धांत बुझाई । सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई ॥

राम भगति चिंतामनि सुंदर । बसइ गरुड़ जाके उर अंतर ॥ १ ॥

मैंने ज्ञानका सिद्धान्त समझाकर कहा । अब भक्तिरूपी मणिकी प्रभुता (महिमा) सुनिये । श्रीरामजीकी भक्ति सुन्दर चिन्तामणि है । हे गरुड़जी ! यह जिसके हृदयके अंदर बसती है, ॥ १ ॥

परम प्रकास रूप दिन राती । नहिं कलु बहिअ दिआ घृत बाती ॥

मोह दरिद्र निकट नहिं आवा । लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ॥ २ ॥

वह दिनरात अपने-आप ही परम प्रकाशरूप रहता है । उसको दीपक, घी और बत्ती कुछ भी नहीं चाहिये । [इस प्रकार मणिका एक तो स्वाभाविक प्रकाश रहता है] फिर मोह, दरिद्रता समीप नहीं आती [क्योंकि मणि स्वयं धनरूप है]; और तीसरे लोभरूपी हवा उस मणिमय दीपको नहीं बुझाती, [क्योंकि मणि स्वयं प्रकाशरूप है, वह किसी दूसरेकी सहायतासे नहीं प्रकाश करती] ॥ २ ॥

प्रबल अविद्या तम मिटि जाई । हारहिं सकल सलभ समुदाई ॥

खल कामादि निकट नहिं जाहीं । बसइ भगति जाके उर माहीं ॥ ३ ॥

उसके प्रकाशसे अविद्याका प्रबल अन्धकार मिट जाता है । मदादि पतंगोंका सारा समूह हार जाता है । जिसके हृदयमें भक्ति बसती है, काम, क्रोध और लोभ आदि दुष्ट तो उसके पास भी नहीं जाते ॥ ३ ॥

गरल सुधासम अरि हित होई । तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ॥

व्यापहिं मानस रोग न भारी । जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ॥ ४ ॥

उसके लिये विष अमृतके समान और शत्रु मित्र हो जाता है । उस मणिके बिना कोई सुख नहीं पाता । बड़े-बड़े मानस रोग, जिनके वश होकर सब जीव दुखी हो रहे हैं, उसको नहीं व्यापते ॥ ४ ॥

रामभगति मनि उर बस जाकै । दुख लवलस न सपनेहुं ताकै ॥

चतुर शिरोमनि तेह जग माहीं । जे मनि लागि सुजतन कराहीं ॥ ५ ॥

श्रीरामभक्तिरूपी मणि जिसके हृदयमें बसती है, उसे स्वप्नमें भी लेशमात्र दुःख नहीं होता । जगत्में वे ही मनुष्य चतुरोंके शिरोमणि हैं जो उस भक्तिमणिके लिये भलीभाँति यत्न करते हैं ॥ ५ ॥

सो मनि जदपि प्रगट जग अहई । रामरूपा बिनु नहिं कोउ लहई ॥

सुगम उपाय पाइबे केरे । नर हतभाग्य देहिं भटभेरे ॥ ६ ॥

यद्यपि वह मणि जगत्में प्रकट (प्रत्यक्ष) है, पर बिना श्रीरामजीकी कृपाके उसे कोई पा नहीं सकता । उसके पानेके उपाय भी सुगम ही हैं, पर अभाग्य मनुष्य उन्हें ठुकरा देते हैं ॥ ६ ॥

पावन पर्वत बेद पुराना । राम कथा कविराकर नाना ॥

मर्मी सज्जन सुमति कुदारी । ग्यान बिराग नयन उरगारी ॥ ७ ॥

वेद-पुराण पवित्र पर्वत हैं । श्रीरामजीकी नाना प्रकारकी कथाएँ उन पर्वतोंमें सुन्दर खानें हैं । संत पुरुष उनकी इन खानोंके रहस्यको जाननेवाले मर्मी हैं और सुन्दर बुद्धि [खोदनेवाली] कुदाल है । हे गरुड़जी ! ज्ञान और वैराग्य ये दो उनके नेत्र हैं ॥ ७ ॥

भाव सहित खोजइ जो प्राणी । पाव भगति मनि सब सुख खानी ॥

मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा । राम ते अधिक राम कर दासा ॥ ८ ॥

जो प्राणी उसे प्रेमके साथ खोजता है, वह सब सुखोंकी खान इस भक्तिरूपी मणिकों पा जाता है । हे प्रभो ! मेरे मनमें तो ऐसा विश्वास है कि श्रीरामजीके दास श्रीरामजीसे भी बढ़कर हैं ॥ ८ ॥

राम सिंधु घन सज्जन धीरा । चंदन तरु हरि संत समीरा ॥

सब कर फल हरिभगति सुहाई । सो बिनु संत न काहूँ पाई ॥ ९ ॥

श्रीरामचन्द्रजी समुद्र हैं तो धीर संत पुरुष मेघ हैं । श्रीहरि चन्दनके वृक्ष हैं तो संत पवन हैं । सब साधनोंका फल सुन्दर हरिभक्ति ही है । उसे संतके बिना किसीने नहीं पाया ॥ ९ ॥

अस बिचारि जोइ कर सतसंगा । रामभगति तेहि सुलभ बिहंगा ॥ १० ॥

ऐसा विचारकर जो भी संतोंका संग करता है, हे गरुड़जी ! उसके लिये श्रीरामकी भक्ति सुलभ हो जाती है ॥ १० ॥

दो०—ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं ।

कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं ॥ १२० (क) ॥

ब्रह्म (वेद) समुद्र है, ज्ञान मन्दराचल है और संत देवता हैं, जो उस समुद्रको मथकर कथारूपी अमृत निकालते हैं, जिसमें भक्तिरूपी मधुरता बसी रहती है ॥ १२० (क) ॥

विरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि ।

जय पाइअ सो हरिभगति देखु खगेस बिचारि ॥ १२० (ख) ॥

वैराग्यरूपी ढालसे अपनेको बचाते हुए और ज्ञानरूपी तलवारसे मद, लोभ और मोहरूपी वैरियोंको मारकर जो विजय प्राप्त करती है, वह हरिभक्ति ही है । हे पक्षिराज ! इसे विचारकर देखिये ॥ १२० (ख) ॥

चौ०—पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ । जाँ कृपाल मोहि ऊपर भाऊ ॥

नाथ मोहि निज सेवक जानी । सत प्रसन्न मम कहहु बखानी ॥ १ ॥

पक्षिराज गरुड़जी फिर प्रेमसहित बोले—हे कृपाल ! यदि मुझपर आपका प्रेम है, तो हे नाथ ! मुझे अपना सेवक जानकर मेरे सात प्रश्नोंके उत्तर बखानकर कहिये ॥ १ ॥

प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा । सब ते दुर्लभ कवन सरीरा ॥

बड़ दुख कवन कवन सुख भारी । सोउ संछेपहिं कहहु विचारी ॥ २ ॥

हे नाथ ! हे धीरबुद्धि ! पहले तो यह बताइये कि सबसे दुर्लभ कौन-सा शरीर है ? फिर सबसे बड़ा दुःख कौन है और सबसे बड़ा सुख कौन है यह भी विचारकर संक्षेपमें ही कहिये ॥ २ ॥

संत असंत मरम तुम्ह जानहु । तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु ॥

कवन पुन्य श्रुति विदित बिसाला । कहहु कवन अघ परम कराला ॥ ३ ॥

संत और असंतका मर्म (भेद) आप जानते हैं। उनके सहज स्वभावका वर्णन कीजिये। फिर कहिये कि श्रुतियोंमें प्रसिद्ध सबसे महान् पुण्य कौन-सा है और सबसे महान् भयंकर पाप कौन है ? ॥ ३ ॥

मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकारी ॥

तात सुनहु सादर अति प्रीति। मैं संछेप कहउँ यह नीति ॥ ४ ॥

फिर मानस-रोगोंको समझाकर कहिये। आप सर्वज्ञ हैं, और मुझपर आपकी कृपा भी बहुत है। [काकमुशुण्डिजीने कहा—] हे तात ! अत्यन्त आदर और प्रेमके साथ सुनिये। मैं यह नीति संक्षेपसे कहता हूँ ॥ ४ ॥

नर तन सम नहिं कवनित देही। जीव चराचर जाचत तेही ॥

नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी ॥ ५ ॥

मनुष्यशरीरके समान कोई शरीर नहीं है। चर-अचर सभी जीव उसकी याचना करते हैं। यह मनुष्यशरीर नरक, स्वर्ग और मोक्षकी सीढ़ी है तथा कल्याणकारी ज्ञान, वैराग्य और भक्तिको देनेवाला है ॥ ५ ॥

सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं बिषय रत मंद मंद तर ॥

काँच फिरिच बदलें ते लेहीं। कर ते डारि परसमनि देहीं ॥ ६ ॥

ऐसे मनुष्यशरीरको धारण करके (प्राप्त करके) भी जो लोग श्रीहरिका भजन नहीं करते और नीचसे भी नीच विषयोंमें अनुरक्त रहते हैं। वे पारसमणिको हाथसे फेंक देते हैं और बदलेमें काँचके टुकड़े ले लेते हैं ॥ ६ ॥

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं ॥

पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया ॥ ७ ॥

जगत्में दरिद्रताके समान दुःख नहीं है, तथा संतोंके मिलनके समान जगत्में सुख नहीं है। और हे पक्षिराज ! मन, वचन और शरीरसे परोपकार करना यह संतोंका सहज स्वभाव है ॥ ७ ॥

संत सहहिं दुख परहित लागी। परदुख हेतु असंत अभागी ॥

भूर्ज तरु सम संत कृपाला। परहित निति सह विपति बिसाला ॥ ८ ॥

संत दूसरोंके हितके लिये दुःख सहते हैं और अभागे असंत दूसरोंके दुःख पहुँचानेके लिये ! कृपालु संत भोजके वृक्षके समान दूसरोंके हितके लिये भारी विपत्ति सहते हैं (अपनी खालतक उधड़वा लेते हैं) ॥ ८ ॥

सन इव खल पर बंधन करई। खाल कड़ाह विपति सहि मरई ॥

खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूपक इव सुनु उरगारी ॥ ९ ॥

किन्तु दुष्ट लोग सनकी भाँति दूसरोंको बाँधते हैं, और उन्हें बाँधनेके लिये अपनी खाल खिंचवाकर, विपत्ति सहकर मर जाते हैं। हे गरुड़जी ! सुनिये, दुष्ट विना किसी स्वार्थके साँप और चूहेके समान अकारण ही दूसरोंका अपकार करते हैं ॥ ९ ॥

पर संपदा बिनासि नसाहीं। जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं ॥

दुष्ट उदय जग आरति हेतु। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतु ॥ १० ॥

वे पराधी सम्पत्तिका नाश करके स्वयं नष्ट हो जाते हैं, जैसे खेतीका नाश करके ओले नष्ट हो जाते हैं। दुष्टका अम्युदय (उन्नति) प्रसिद्ध अधम ग्रह केतुके उदयकी भाँति जगत्के दुःखके लिये ही होता है ॥ १० ॥

संत उदय संतत सुखकारी । बिख सुखद जिमि इंदु तमारी ॥

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा । पर निंदा सम अघ न गरीसा ॥११॥

और संतोंका अम्युदय सदा ही सुखकर होता है, जैसे चन्द्रमा और सूर्यका उदय विश्वभरके लिये सुखदायक है । वेदोंमें अहिंसाको परम धर्म माना है । और परनिन्दाके समान भारी पाप नहीं है ॥ ११ ॥

हर गुर निंदक दादुर होई । जन्म सहस्र पाव तन सोई ॥

द्विजनिंदक बहु नरक भोग करि । जग जनमइ बायस सरीर धरि ॥१२॥

शंकरजी और गुरुकी निन्दा करनेवाला मनुष्य अगले जन्ममें मेढक होता है और वह हजार जन्मतक वही मेढकका शरीर पाता है । द्विजोंकी निन्दा करनेवाला व्यक्ति बहुत-से नरक भोगकर फिर जगत्में कौएका शरीर धारण करके जन्म लेता है ॥ १२ ॥

सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी । रौरव नरक परहिं ते प्राणी ॥

होहिं उलूक संत निंदा रत । मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत ॥१३॥

जो अभिमानी जीव देवताओं और वेदोंकी निन्दा करते हैं, वे रौरव नरकमें पड़ते हैं । संतोंकी निन्दामें लगे हुए लोग उलूक होते हैं, जिन्हें मोहरूपी रात्रि प्रिय होती है, और शानरूपी सूर्य जिनके लिये बीत गया (अस्त हो गया) रहता है ॥ १३ ॥

सब कै निंदा जे जड़ करहीं । ते चमगादुर होइ अवतरहीं ॥

सुनहु तात अब मानस रोगा । जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा ॥१४॥

जो मूर्ख मनुष्य सबकी निन्दा करते हैं, वे चमगादड़ होकर जन्म लेते हैं । हे तात ! अब मानस-रोग सुनिये, जिनसे सब लोग दुःख पाया करते हैं ॥ १४ ॥

मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला । तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥

काम बात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥१५॥

सब रोगोंकी जड़ मोह (अज्ञान) है । उन व्याधियोंसे फिर और बहुत-से शूल उत्पन्न होते हैं । काम बात है, लोभ अपार (बढ़ा हुआ) कफ है, और क्रोध पित्त है जो सदा छाती जलाता रहता है ॥ १५ ॥

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई । उपजइ सन्यपात दुखदाई ॥

विषय मनोरथ दुर्गम नाना । ते सब सूल नाम को जाना ॥१६॥

यदि कहीं ये तीनों भाई (वात, पित्त और कफ) प्रीति कर लें (मिल जायें), तो दुःखदायक सन्यपात रोग उत्पन्न होता है । कठिनतासे प्राप्त (पूर्ण) होनेवाले जो विषयोंके मनोरथ हैं, वे ही सब शूल (कष्टदायक रोग) हैं उनके नाम कौन जानता है (अर्थात् वे अपार हैं) ॥ १६ ॥

ममता दादु कंडु इरपार । हरप विषाद गरह बहुतार ॥

पर सुख देखि जरनि सोइ छरि । कुष्ट दुष्टता मन कुटिलरि ॥१७॥

ममता दाद है, ईर्ष्या (डाह) खुजली है, हर्ष-विषाद गलेके रोगोंकी अधिकता है (गलगंड, कण्ठमाला या घेषा आदि रोग हैं) । पराये सुखको देखकर जो जलन होती है, वही क्षयी है । दुष्टता और मनकी कुटिलता ही कोढ़ है ॥ १७ ॥

अहंकार अति दुखद डमदमा । दंभ कपट मद मान नेहदमा ॥

तृस्ना उदरवृद्धि अति भारी । त्रिविधि ईषना तरुन तिजारी ॥१८॥

अहंकार अत्यन्त दुःख देनेवाला डमरू (गौठका) रोग है; दम्भ, कपट, मद और मान नहरूआ (नलौ-का) रोग है; तृष्णा बड़ा भारी उदरवृद्धि (जलोदर) रोग है; तीन प्रकारकी (पुत्र, धन और मानकी) प्रबल इच्छाएँ प्रबल तिजारी हैं; ॥ १८ ॥

जुग बिधि ज्वर मत्सर अविबेका । कहँ लागि कहँ कुरोग अनेका ॥ १९ ॥

मत्सर और अविबेक दो प्रकारके ज्वर हैं । इस प्रकार अनेको बुरे रोग हैं जिन्हें कहाँतक कहँ ॥ १९ ॥

दो०—एक ब्याधि बस नर मरहिँ ए असाधि बहु ब्याधि ।

पीडहिँ संतत जीव कहँ सो किमि लहै समाधि ॥ १२१ (क) ॥

एक ही रोगके वश होकर मनुष्य मर जाते हैं, फिर ये तो बहुत-से असाध्य रोग हैं । ये जीवको निरन्तर कष्ट देते रहते हैं, ऐसी दशामें वह समाधिको (शान्तिको) कैसे प्राप्त करे ? ॥ १२१ (क) ॥

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान ।

भेषज पुनि कोटिन्ह नहिँ रोग जाहिँ हरिजान ॥ १२१ (ख) ॥

नियम, धर्म, आचार, तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान तथा और भी करोड़ों ओषधियाँ हैं, परन्तु हे गरुड़जी ! उनसे ये रोग नहीं जाते ॥ १२१ (ख) ॥

चो०—एहि बिधि सकल जीव जग रोगी । सोक हरष भय प्रीति बियोगी ॥

मानस रोग कछुक में गाए । हहिँ सब कै लखि बिरलेन्ह पाए ॥ १ ॥

इस प्रकार जगत्में समस्त जीव रोगी हैं, जो शोक-दर्प, भय, प्रीति और वियोगके दुःखसे और भी दुखी हो रहे हैं । मैंने ये थोड़े-से मानस-रोग कहे हैं । ये हैं तो सबको, परन्तु इन्हें जान पाये हे कोई बिरले ही ॥ १ ॥

जाने ते छीजहिँ कछु पापी । नास न पावहिँ जन परितापी ॥

बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे । मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे ॥ २ ॥

प्राणियोंको जलानेवाले ये पापी (रोग) जान लिये जानेसे कुछ क्षीण अवश्य हो जाते हैं; परन्तु नाशको नहीं प्राप्त होते । बिषयरूप कुपथ्य पाकर ये मुनियोंने हृदयोंमें भी अंकुरित हो उठते हैं, तब बेचारे साधारण मनुष्य तो क्या चीज है ॥ २ ॥

रामरूपौ नासहिँ सब रोगा । जौ एहि भौति यनै संजोगा ॥

सद्गुरु वैद वचन विस्वासा । संजम यह न बिषय कै आसा ॥ ३ ॥

यदि श्रीरामजीकी कृपासे इस प्रकारका संयोग बन जाय तो ये सब रोग नष्ट हो जायँ । सद्गुरूपी वैद्यके वचनमें विश्वास हो; बिषयोंकी आशा न करे, यही संयम (परहेज) हो; ॥ ३ ॥

रघुपति भगति सजीवन मूरी । अनूपान श्रद्धा मति पूरी ॥

एहि बिधि भलेहिँ सो रोग नसाही । नाहिँ त जतन कोटि नहिँ जाहीँ ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजीकी भक्ति संजीवनी जड़ी है । श्रद्धासे पूर्ण बुद्धि ही अनुपान (दवाके साथ लिया जानेवाला मधु आदि) है । इस प्रकारका संयोग हो तो वे रोग भले ही नष्ट हो जायँ, नहीं तो करोड़ों प्रयत्नोंसे भी नहीं जाते ॥ ४ ॥

जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई । जब उर यल बिराग अधिकारी ॥

सुमति कुधा बाढ़इ नित नई । बिषय आस दुर्बलता गई ॥ ५ ॥

हे गोसाई ! मनको नीरोग हुआ तब जानना चाहिये, जब हृदयमें वैराग्यका बल बढ़ जाय,—उत्तम बुद्धिरूपी भूख नित-नयी बढ़ती रहे और विषयोंकी आशारूपी दुर्बलता मिट जाय ॥ ५ ॥

बिमल ग्यान जल जब सो नहाई । तब रह रामभगति उर छाई ॥

सिव अज सुक सनकादिक नारद । जे मुनि ब्रह्म विचार बिसारद ॥ ६ ॥

इस प्रकार सब रोगोंसे छूटकर जब मनुष्य निर्मल ज्ञानरूपी जलमें स्नान कर लेता है, तब उसके हृदयमें रामभक्ति छा रहती है । शिवजी, ब्रह्माजी, शुकदेवजी, सनकादि और नारद आदि ब्रह्मविचारमें परम निपुण जो मुनि हैं,—॥ ६ ॥

सब कर मत खगनायक पहा । करिअ राम पद पंकज नेहा ॥

श्रुति पुरान सय ग्रंथ कहाहीं । रघुपति भगति बिना सुख नाहीं ॥ ७ ॥

हे पक्षिराज ! उन सबका मत यही है कि श्रीरामजीके चरण-कमलोंमें प्रेम करना चाहिये । श्रुति, पुराण और सभी ग्रन्थ कहते हैं कि श्रीरघुनाथजीकी भक्तिके बिना सुख नहीं है ॥ ७ ॥

कमठ पीठ जामहिं बरु बारा । बंध्यासुत बरु काहुहि मारा ॥

फूलहिं नभ बरु बहुविधि फूला । जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला ॥ ८ ॥

कछुएकी पीठपर भले ही बाल उग आवें, बाँझका पुत्र भले ही किसीको मार डाले, आकाशमें भले ही अनेकों प्रकारके फूल खिल उठें, परन्तु श्रीहरिसे विमुख होकर जीव सुख नहीं प्राप्त कर सकता ॥ ८ ॥

तृषा जाइ बरु मृगजल पाना । वरु जामहिं सस सीस बिषाना ॥

अंधकार बरु रविहि नसावै । राम बिमुख न जीव सुख पावै ॥ ९ ॥

मृगतृष्णाके जलको पीनेसे भले ही प्यास बुझ जाय, खरगोशके सिरपर भले ही सींग निकल आवें, अन्धकार भले ही सूर्यका नाश कर दे; परन्तु श्रीरामसे विमुख होकर जीव सुख नहीं पा सकता ॥ ९ ॥

हिम ते अनल प्रगट वरु होई । बिमुख राम सुख पाव न कोई ॥ १० ॥

बर्फसे भले ही अग्नि प्रकट हो जाय, (ये सब अनहोनी बातें चाहे हो जायें), परन्तु श्रीरामसे विमुख होकर कोई भी सुख नहीं पा सकता ॥ १० ॥

दो०—बारि मयें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल ।

बिनु हरिभजन न भव तरिअ यह सिद्धान्त अपेल ॥ १२२ (क) ॥

जलको मथनेसे भले ही घी उत्पन्न हो जाय, और बालूको पेरनेसे भले ही तेल निकल आवे; परन्तु श्रीहरिके भजन बिना भवसागरसे नहीं तरा जा सकता, यह सिद्धान्त अटल है ॥ १२२ (क) ॥

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन ।

अस विचारि तजि संसय रामहि भजहिं प्रवीन ॥ १२२ (ख) ॥

प्रभु मन्छरको ब्रह्मा कर सकते हैं और ब्रह्माको मन्छरसे भी तुच्छ बना सकते हैं । ऐसा विचारकर चतुर पुरुष सब सन्देह त्यागकर श्रीरामजीको ही भजते हैं ॥ १२२ (ख) ॥

श्लोक—विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे ।

हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते ॥ १२२ (ग) ॥

मैं आपसे भलीभाँति निश्चित किया हुआ सिद्धान्त कहता हूँ—मेरे वचन अन्यथा (मिथ्या) नहीं हैं—कि जो मनुष्य श्रीहरिका भजन करते हैं, वे अत्यन्त दुस्तर संसारसागरको सहज ही पार कर जाते हैं ॥ १२२ (ग) ॥

चो०—कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा । व्यास समास स्वमति अनुरूपा ॥

भुति सिद्धांत इह उरगारी । राम भजिअ सब काज बिसारी ॥ १ ॥

हे नाथ ! मैंने भीहरिका अनुपम चरित्र अपनी बुद्धिके अनुसार कहीं विस्तारसे और कहीं संक्षेपसे कहा । हे गरुड़जी ! भुतियोंका यही सिद्धान्त है कि सब काम भुलाकर (छोड़कर) श्रीरामजीका भजन करना चाहिये ॥ १ ॥

प्रभु रघुपति तजि सेइअ काही । मोहि से सठ पर ममता जाही ॥

तुम्ह बिग्यानरूप नहिं मोहा । नाथ कीन्ह मोपर अति छोहा ॥ २ ॥

प्रभु श्रीरघुनाथजीको छोड़कर और किसका सेवन (भजन) किया जाय, जिनका मुझ-जैसे मूर्खपर भी ममत्व (कोह) है । हे नाथ ! आप विज्ञानरूप हैं । आपको मोह नहीं है । आपने तो मुझपर बड़ी कृपा की है, ॥ २ ॥

पूँछिहु रामकथा अति पावनि । सुक सनकादि संभु मन भावनि ॥

सतसंगति दुर्लभ संसारा । निमिष दंड भरि एकउ धारा ॥ ३ ॥

जो आपने मुझसे शुकदेवजी, सनकादि और शिवजीके मनको प्रिय लगानेवाली अति पवित्र रामकथा पूछी । संसारमें घड़ीभरका, अथवा पलभरका एक बारका भी सत्संग दुर्लभ है ॥ ३ ॥

देखु गरुड़ निज हृदयँ बिचारी । मैं रघुवीर भजन अधिकारी ॥

सकुनाधम सब भाँति अपावन । प्रभु मोहि कीन्ह बिदित जग पावन ॥ ४ ॥

हे गरुड़जी ! अपने हृदयमें विचारकर देखिये, क्या मैं भी श्रीरामजीके भजनका अधिकारी हूँ ? पक्षियोंमें सबसे नीच और सब प्रकारसे अपवित्र हूँ । परन्तु ऐसा होनेपर भी प्रभुने मुझको सारे जगत्को पवित्र करनेवाला प्रसिद्ध कर दिया [अथवा प्रभुने मुझको जगत्प्रसिद्ध पावन कर दिया] ॥ ४ ॥

दो०—आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब धिधि हीन ।

निज जन जानि राम मोहि संत समागम दीन ॥ १२३ (क) ॥

यद्यपि मैं सब प्रकारसे हीन (नीच) हूँ, तो भी आज मैं धन्य हूँ, अत्यन्त धन्य हूँ, जो श्रीरामजीने मुझे अपना 'निजजन' जानकर संत-समागम दिया (आपसे मेरी भेंट करायी) ॥ १२३ (क) ॥

नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ ।

चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावइ कोइ ॥ १२३ (ख) ॥

हे नाथ ! मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार कहा, कुछ भी छिपा नहीं रखता । श्रीरघुवीरके चरित्र समुद्रके समान हैं, क्या उनकी कोई थाह पा सकता है ? ॥ १२३ (ख) ॥

चो०—सुमिरि राम के गुन गन नाना । पुनि पुनि हरष भुसुंछि सुजाना ॥

महिमा निगम नेति करि गार्ह । अतुलित बल प्रताप प्रभुतार्ह ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके बहुत-से गुणसमूहोंका स्मरण कर-करके सुजान भुसुंछिजी बार-बार हर्षित हो रहे हैं । जिनकी महिमा वेदोंने 'नेति-नेति' कहकर गायी है; जिनका बल, प्रताप और प्रभुत्व (सामर्थ्य) अतुलनीय है; ॥ १ ॥

सिख अज पूज्य चरन रघुरार्ह । मोपर कृपा परम मृदुलार्ह ॥

अस सुमाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ । केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ ॥ २ ॥

जिन श्रीरघुनाथजीके चरण शिवजी और ब्रह्माजीके द्वारा पूज्य हैं, उनकी मुझपर कृपा होनी उनकी परम कोमलता है। किसीका ऐसा स्वभाव कहीं न सुनता हूँ, न देखता हूँ। अतः हे गरुड़जी ! मैं श्रीरघुनाथजीके समान किसे गिऊँ (समझूँ) ? ॥ २ ॥

साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी । कवि कोविद कृतग्य संन्यासी ॥

जोगी सूर सुतापस ग्यानी । धर्म निरत पंडित विग्यानी ॥ ३ ॥

साधक, सिद्ध, जीवन्मुक्त, उदासीन (विरक्त), कवि, विद्वान्, कर्तव्यके शाला, संन्यासी, योगी, शूरवीर, बड़े तपस्वी, ज्ञानी, धर्मपरायण, पण्डित और विज्ञानी ॥ ३ ॥

तरहिं न बिनु सेए मम स्वामी । राम नमामि नमामि नमामी ॥

सरन गएँ मो से अघरासी । होहिं सुख नमामि अविनासी ॥ ४ ॥

ये कोई भी मेरे स्वामी श्रीरामजीका सेवन (भजन) किये बिना नहीं तर सकते। मैं उन्हीं श्रीरामजीको नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, बार-बार नमस्कार करता हूँ। जिनकी शरण जानेपर मुझ-जैसे पापराशि भी शुद्ध (पापरहित) हो जाते हैं, उन अविनाशी श्रीरामजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

दो०—जासु नाम भव मेषज हरन घोर त्रय मूल ।

सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल ॥ १२४ (क) ॥

जिनका नाम भवरोगकी ओषधि और तीनों भयंकर पीड़ाओं (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःखों) को हरनेवाला है, वे कृपालु श्रीरामजी मुझपर और आपपर सदा प्रसन्न रहें ॥ १२४ (क) ॥

सुनि भुसुंढि के बचन सुभ देखि राम पद नेह ।

बोलेउ प्रेम सहित गिरा गरुड़ विगत संदेह ॥ १२४ (ख) ॥

भुशुण्डिजीके मंगलमय वचन सुनकर और श्रीरामजीके चरणोंमें उनका अतिशय प्रेम देखकर सन्देहसे भलीभाँति छूटे हुए गरुड़जी प्रेमसहित वचन बोले—॥ १२४ (ख) ॥

चौ०—मैं कृतकृत्य भयउँ तव बानी । सुनि रघुवीर भगति रस सानी ॥

राम चरन नूतन रति भई । मायाजनित विपति सब गई ॥ १ ॥

श्रीरघुवीरके भक्ति-रसमें सनी हुई आपकी वाणी सुनकर मैं कृतकृत्य हो गया। श्रीरामजीके चरणोंमें मेरी नवीन प्रीति हो गयी और मायासे उत्पन्न सारी विपत्ति चली गयी ॥ १ ॥

मोह जलधि वोदित तुम्ह भए । मो कहँ नाथ विविध सुख दए ॥

मो पहिं होइ न प्रति उपकारा । बंदउँ तव पद बारहिं बारा ॥ २ ॥

मोहरूपी समुद्रमें डूबते हुए मेरे लिये आप जहाज हुए। हे नाथ ! आपने मुझे बहुत प्रकारके सुख दिये (परम सुखी कर दिया)। मुझसे इसका प्रत्युपकार (उपकारके बदलेमें उपकार) नहीं हो सकता। मैं तो आपके चरणोंकी बार-बार वन्दना ही करता हूँ ॥ २ ॥

पूरन काम राम अनुरागी । तुम्ह सम तात न कोउ बड़भागी ॥

संत बिटप सरिता गिरि धरनी । पर हित हेतु सखन्ह कै करनी ॥ ३ ॥

आप पूर्णकाम हैं और श्रीरामजीके प्रेमी हैं। हे तात ! आपके समान कोई बड़भागी नहीं है। संत, वृद्ध, नदी, पर्वत और पृथ्वी, इन सबकी क्रिया पराये हितके लिये ही होती है ॥ ३ ॥

संत हृदय नवनीत समाना । कहा कबिन्ह परि कहै न जाना ॥

निज परिताप द्रवह नवनीता । पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता ॥ ४ ॥

संतोंका हृदय मन्खनके समान होता है, ऐसा कवियोंने कहा है; परन्तु उन्होंने [असली बात] कहना नहीं जाना । क्योंकि मन्खन तो अपनेको ताप मिलनेसे पिघलता है और परम पवित्र संत दूसरोंके दुःखसे पिघल जाते हैं ॥ ४ ॥

जीवन जन्म सुफल मम भयउ । तब प्रसाद संसय सब गयउ ॥

जानेहु सदा मोहि निज किंकर । पुनि पुनि उमा कहइ बिहंगबर ॥ ५ ॥

मेरा जीवन और जन्म सफल हो गया । आपकी कृपासे सब सन्देह चला गया । मुझे सदा अपना दास ही जानियेगा । [शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! पक्षिश्रेष्ठ गरुड़जी बार-बार ऐसा कह रहे हैं ॥ ५ ॥

दो०—तासु चरन सिरु नाइ करि प्रेम सहित मतिधीर ।

गयउ गरुड़ बैकुंठ तब हृदयँ राखि रघुवीर ॥ १२५ (क) ॥

उनके (भुशुण्डिजीके) चरणोंमें प्रेमसहित सिर नवाकर और हृदयमें श्रीरघुवीरजीको धारण करके धीरबुद्धि गरुड़जी तब वैकुण्ठको चले गये ॥ १२५ (क) ॥

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन ।

बिनु हरिकृपा न होइ सो गावहिं वेद पुरान ॥ १२५ (ख) ॥

हे गिरिजे ! संत-समागमके समान दूसरा कोई लाभ नहीं है । पर वह (संत-समागम) श्रीहरिकी कृपाके बिना नहीं हो सकता, ऐसा वेद और पुराण गाते हैं ॥ १२५ (ख) ॥

चौ०—कहेउँ परम पुनीत इतिहासा । सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा ॥

प्रनत कल्पतरु करुना पुंजा । उपजइ प्रीति राम पदकंजा ॥ १ ॥

मैंने यह परम पवित्र इतिहास कहा, जिसे कानोंसे सुनते ही भवपाश (संसारके बन्धन) छूट जाते हैं, और शरणागतोंको (उनके इच्छानुसार फल देनेवाले) कल्पवृक्ष तथा दयाके समूह श्रीरामजीके चरणकमलोंमें प्रेम उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

मन कम वचन जनित अघ जाई । सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई ॥

तीर्याटन साधन समुदाई । जोग बिराग ग्यान निपुनाई ॥ २ ॥

जो कान और मन लगाकर इस कथाको सुनते हैं, उनके मन, वचन और कर्म (शरीर) से उत्पन्न सब पाप नष्ट हो जाते हैं । तीर्ययात्रा आदि बहुत-से साधन, योग, वैराग्य और ज्ञानमें निपुणता,—॥ २ ॥

नाना कर्म धर्म व्रत दाना । संजम दम जप तप मख नाना ॥

भूत दया द्विज गुर सेवकाई । विद्या विनय विवेक बढाई ॥ ३ ॥

अनेकों प्रकारके कर्म, धर्म, व्रत और दान; अनेकों संयम, दम, जप, तप और यश, प्राणियोंपर दया, ब्राह्मण और गुरुकी सेवा, विद्या, विनय और विवेककी बढाई;—॥ ३ ॥

जहँ लगि साधन बेद बखानी । सब कर फल हरिमगति भवानी ॥

सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई । रामकृपाँ काहँ एक पाई ॥ ४ ॥

(आदि) जहाँतक वेदोंने साधन बतलाये हैं, हे भवानी ! उन सबका फल भीहरिकी भक्ति ही है । किन्तु श्रुतियोंमें गायी हुई वह श्रीरघुनाथजीकी भक्ति श्रीरामजीकी कृपासे किसी एक (विरले) ने ही पायी है ॥ ४ ॥

दो०—मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास ।

जे यह कथा निरंतर सुनिहिं मानि बिस्वास ॥ १२६ ॥

किन्तु जो मनुष्य विश्वास मानकर यह कथा निरन्तर सुनते हैं, वे बिना ही परिश्रम उस मुनिदुर्लभ हरिभक्तिको प्राप्त कर लेते हैं ॥ १२६ ॥

चौ०—सोइ सर्वग्य गुनी सोइ न्याता । सोइ महि मंडित पंडित दाता ॥

धर्म परायण सोइ कुलप्राता । राम चरन जाकर मन राता ॥ १ ॥

जिसका मन श्रीरामजीके चरणोंमें अनुरक्त है, वही सर्वज्ञ है, वही गुणी है, वही ज्ञानी है, वही पृथ्वीका भूषण, पण्डित और दानी है । वही धर्मपरायण है और वही कुलका रक्षक है ॥ १ ॥

नीति निपुण सोइ परम सयाना । श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना ॥

सोइ कवि कोविद सोइ रणधीरा । जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा ॥ २ ॥

जो छल छोड़कर श्रीरघुवीरका भजन करता है, वही नीतिनिपुण है, वही परम बुद्धिमान् है, उसीने वेदोंके सिद्धान्तको भलीभाँति जाना है, वही कवि, वही विद्वान् तथा वही रणधीर है ॥ २ ॥

धन्य देस सो जहँ सुरसरी । धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी ॥

धन्य सो भूपु नीति जो करई । धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई ॥ ३ ॥

वह देश धन्य है जहाँ श्रीगंगाजी हैं, वह स्त्री धन्य है जो पतिव्रत-धर्मका पालन करती है, वह राजा धन्य है जो न्याय करता है और वह ब्राह्मण धन्य है जो अपने धर्मसे नहीं झिगता ॥ ३ ॥

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी । धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी ॥

धन्य घरी सोइ जब सतसंगा । धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा ॥ ४ ॥

वह धन धन्य है जिसकी पहली गति होती है (जो दान देनेमें व्यय होता है) । वही बुद्धि धन्य और परिपक्व है जो पुण्यमें लगी हुई है । वही धनी धन्य है जब सत्संग हो और वही जन्म धन्य है जिसमें ब्राह्मणकी अवलम्ब भक्ति हो ॥ ४ ॥

[धनकी तीन गतियाँ होती हैं—दान, भोग और नाश । दान उत्तम है, भोग मध्यम है और नाश नीच गति है । जो पुरुष न देता है, न भोगता है, उसके धनकी तीसरी गति होती है] ।

दो०—सो कुल धन्य उमा सुनु जगतपूज्य सुपुनीत ।

श्रीरघुबीर परायण जेहि नर उपज बिनीत ॥ १२७ ॥

हे उमा ! सुनो, वह कुल धन्य है, जगतपूज्य है और परम पवित्र है जिसमें श्रीरघुवीरपरायण (अनन्य रामभक्त) विनम्र पुरुष उत्पन्न हो ॥ १२७ ॥

चौ०—मति अनुरूप कथा मैं भाषी । यद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी ॥

तब मन प्रीति देखि अधिकारि । तब मैं रघुपति कथा सुनाई ॥ १ ॥

मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार यह कथा कही; यद्यपि पहले इसको छिपाकर रक्खा था । जब तुम्हारे मनमें प्रेमकी अधिकता देखी तब मैंने श्रीरघुनाथजीकी यह कथा तुमको सुनायी ॥ १ ॥

यह न कहिय सठही हठसीलहि । जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि ॥

कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि । जो न भजइ सचराचर स्वामिहि ॥ २ ॥

यह कथा उनसे न कहनी चाहिये जो शठ (धूर्त) हों, हठी स्वभावके हों और श्रीहरिकी लीलाको मन लगाकर न सुनते हों। लोभी, क्रोधी और कामीको, जो चराचरके स्वामी श्रीरामजीको नहीं भजते, यह कथा नहीं कहनी चाहिये ॥ २ ॥

द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहुँ । सुरपति सरिस होइ नृप जबहुँ ॥

रामकथा के तेइ अधिकारी । जिन्ह कैं सतसंगति अति प्यारी ॥ ३ ॥

ब्राह्मणोंके द्रोहीको, यदि वह देवराज (इन्द्र) के समान ऐश्वर्यवान् राजा भी हो, तब भी यह कथा कभी न सुनानी चाहिये। रामकथाके अधिकारी वे ही हैं, जिनको सत्संगति अत्यन्त प्रिय है ॥ ३ ॥

गुर पद प्रीति नीति रत जेई । द्विज सेवक अधिकारी तेई ॥

ता कहँ यह विसेष सुखदाई । जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई ॥ ४ ॥

जिनकी गुरुके चरणोंमें प्रीति है, जो नीतिपरायण हैं और ब्राह्मणोंके सेवक हैं, वे ही इसके अधिकारी हैं। और उसको तो यह कथा बहुत ही सुख देनेवाली है, जिसको श्रीरघुनाथजी प्राणप्रिय हैं ॥ ४ ॥

दो०—राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्बान ।

भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान ॥ १२८ ॥

जो श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम चाहता हो या मोक्षपद चाहता हो, वह इस कथारूपी अमृतको प्रेमपूर्वक अपने कानरूपी दोनेसे पिये ॥ १२८ ॥

चौ०—रामकथा गिरिजा में बरनी । कलिमल समनि मनोमल हरनी ॥

संस्तुति रोग सजीवन मूरी । रामकथा गावहिं श्रुति सूरि ॥ १ ॥

हे गिरिजे ! मैंने कलियुगके पापोंका नाश करनेवाली और मनके मलको दूर करनेवाली रामकथाका वर्णन किया। यह रामकथा 'मृति' (जन्म-मरण) रूपी रोगके नाशके लिये सजीवनी जड़ी है। वेद और विद्वान् पुरुष ऐसा कहते हैं ॥ १ ॥

एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना । रघुपति भगति केर पंथाना ॥

अति हरिकृपा जाहि पर होई । पाउँ देइ एहिं मारग सोई ॥ २ ॥

इसमें सात सुन्दर मीढ़ियाँ हैं, जो श्रीरघुनाथजीकी भक्तिको प्राप्त करनेके मार्ग हैं। जिसपर श्रीहरिकी अत्यन्त कृपा होती है, वही इस मार्गपर पैर रखता है ॥ २ ॥

मन कामना सिद्धि नर पावा । जे यह कथा कपट तजि गावा ॥

कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं । ते गोपद इव भवनिधि तरहीं ॥ ३ ॥

जो कपट छोड़कर यह कथा गाते हैं, वे मनुष्य अपनी मनःकामनाकी सिद्धि पा लेते हैं। जो इसे कहते-सुनते और अनुमोदन (प्रशंसा) करते हैं, वे भवसागरको गौके खुरके जलके समान पार कर जाते हैं ॥ ३ ॥

सुनि सब कथा हृदय अति भाई । गिरिजा बोली गिरा सुहाई ॥

नाथ कृपाँ मम गत संदेहा । राम चरन उपजेउ नव नेहा ॥ ४ ॥

[याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—] सब कथा सुनकर श्रीपार्वतीजीके हृदयको बहुत ही प्रिय लगी

और वे सुन्दर वाणी बोलें—स्वामीकी कृपासे मेरा सन्देह जाता रहा और श्रीरामजीके चरणोंमें नवीन प्रेम उत्पन्न हो गया ॥ ४ ॥

दो०—मैं कृतकृत्य भइँ अब तव प्रसाद बिसेस ।

उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस ॥ १२९ ॥

हे विश्वेश्वर ! आपकी कृपासे अब मैं कृतकृत्य हो गयी । मुझमें दृढ़ रामभक्ति उत्पन्न हो गयी और मेरे सम्पूर्ण क्लेश बीत गये (नष्ट हो गये) ॥ १२९ ॥

चौ०—यह सुभ संभु उमा संवादा । सुख संपादन समन बिषादा ॥

भव भंजन गंजन संवेदा । जन रंजन सज्जन प्रिय पदा ॥ १ ॥

शंभु-उमाका यह कल्याणकारी संवाद सुख उत्पन्न करनेवाला और विषादका नाश करनेवाला है । यह भवको भंग (जन्म-मरणका अंत) करनेवाला, सन्देहोंका नाश करनेवाला, भक्तोंको आनन्द देनेवाला और संत पुरुषोंका प्रिय है ॥ १ ॥

राम उपासक जे जग माहीं । एहि सम प्रिय तिन्ह कँ कछु नाहीं ॥

रघुपति कृपाँ जथामति गावा । मैं यह पावन चरित सुहावा ॥ २ ॥

जगत्में जो (जितने भी) रामोपासक हैं, उनको तो इस रामकथाके समान कुछ भी प्रिय नहीं है । श्रीरघुनाथजीकी कृपासे मैंने यह सुन्दर और पवित्र चरित्र अपनी बुद्धिके अनुसार गाया है ॥ २ ॥

एहिं कलिकाल न साधन दूजा । जोग जग्य जप तप व्रत पूजा ॥

रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि । संतत सुनिअ राम गुनग्रामहि ॥ ३ ॥

[तुलसीदासजी कहते हैं—] इस कलिकालमें योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत और पूजन आदि कोई दूसरा साधन नहीं है । बस, श्रीरामजीका ही स्मरण करना, श्रीरामजीका ही गुण गाना और निरन्तर श्रीरामजीके ही गुण-समूहोंको सुनना चाहिये ॥ ३ ॥

जासु पतित पावन बड़ बाना । गावहिं कवि श्रुति संत पुराना ॥

ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई । राम भजें गति केहिं नहिं पाई ॥ ४ ॥

पतितोंको पवित्र करना जिनका महान् (प्रसिद्ध) बाना है—ऐसा कवि, वेद, संत और पुराण गाते हैं; रे मन ! कुटिलता त्यागकर उन्हें ही भज ! श्रीरामको भजनेसे कितने परम गति नहीं पायी ! ॥ ४ ॥

छं०—पाई न केहिं गति पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना ।

गनिका अजामिल व्याध गीध गजादि खल तारे घना ॥

आभीर जमन किरात खस खपचादि अति अधरूप जे ।

कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते ॥ १ ॥

अरे मूर्ख मन ! सुन, पतितपावन श्रीरामको भजकर कितने परम गति नहीं पायी ! गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गज आदि बहुत-से दुष्टोंको उन्होंने तार दिया । आभीर, यवन, किरात, खस, श्वपच (चाण्डाल) आदि जो अत्यंत पापरूप ही हैं, वे भी केवल एक बार जिनका नाम लेकर पवित्र हो जाते हैं, उन श्रीरामजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

रघुवंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं ।

कलिमल मनामल छोड़ बिनु भ्रम राम धाम सिधावहीं ॥

सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरै ।

दारुन अविद्या पंच जनित बिकार श्री रघुवर हरै ॥ २ ॥

जो मनुष्य रघुवंश-विभूषण श्रीरामजीका यह चरित्र कहते हैं, सुनते हैं और गाते हैं, वे कलियुगके पाप और मनके मलको धोकर बिना ही परिश्रम श्रीरामजीके परम धामको चले जाते हैं। अधिक क्या, जो मनुष्य पाँच-सात चौपाइयोंको भी मनोहर जानकर हृदयमें धारण कर लेता है, उसके भी पाँच प्रकारकी अविद्याओंसे उत्पन्न विकारोंको श्रीरघुनाथजी हरण कर लेते हैं। (अर्थात् सारे रामचरित्रकी तो बात ही क्या है, जो पाँच-सात चौपाइयोंको भी समझकर उनका अर्थ हृदयमें धारण कर लेते हैं, उनके भी अविद्याजनित सारे क्लेश श्रीरामचन्द्रजी हर लेते हैं) ॥ २ ॥

सुंदर सुजान कृपानिधान अनाथ पर कर प्रीति जो ।

सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को ॥

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदास हैं ।

पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहैं ॥ ३ ॥

परम सुन्दर, सुजान और कृपानिधान, जो अनाथोंपर प्रेम करते हैं, ऐसे एक श्रीरामचन्द्रजी हैं। इनके समान निष्काम हित करनेवाला (सुहृद्) और मोक्ष देनेवाला दूसरा कौन है! जिनकी लेश-मात्र कृपासे मन्दबुद्धि तुलसीदासने भी परम शान्ति प्राप्त की, उन श्रीरामजीके समान प्रभु कहीं भी नहीं है ॥ ३ ॥

दो०—मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुवीर ।

अस बिचारि रघुवंसमनि हरहु बिषम भय भीर ॥ १३० (क) ॥

हे श्रीरघुवीर! मेरे समान कोई दीन नहीं है और आपके समान कोई दीनोंका हित करनेवाला नहीं है। ऐसा विचारकर हे रघुवंशमणि! मेरे भयानक भव-(जन्म-मरणके) दुःखका हरण कर लीजिये (जन्म-मरणके चक्रसे मुक्त कर दीजिये) ॥ १३० (क) ॥

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोमिहि प्रिय जिमि दाम ।

तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥ १३० (ख) ॥

जैसे कामीको स्त्री प्रिय लगती है और लोभीको जैसे धन प्यारा लगता है; वैसे ही हे श्रीरघुनाथजी! हे श्रीरामजी! आप निरन्तर मुझे प्रिय लगिये ॥ १३० (ख) ॥

श्लो०—यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं

श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्स्ये तु रामायणम् ।

मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये

भाषायद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ॥ १ ॥

प्रभु और भेष्ट कवि भगवान् श्रीशंकरजीने पहले जिस दुर्गम मानस-रामायणकी, श्रीरामजीके चरण-कमलोंमें नित्य निरंतर अनन्य भक्ति प्राप्त होनेके लिये, रचना की थी, उस मानस-रामायणको श्रीरघुनाथजीके नाममें निरत मानकर अपने अन्तःकरणके अन्धकारको मिटानेके लिये तुलसीदासने इस मानसके रूपमें भाषाबद्ध किया ॥ १ ॥

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम् ।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दहन्ति नो मानवाः ॥ २ ॥

यह श्रीरामचरितमानस पुण्यरूप, पापोंका हरण करनेवाला, सदा कल्याणकारी, विज्ञान और भक्तिको देनेवाला, माया, मोह और मलके नाश करनेवाला, परम निर्मल, प्रेमजलसे परिपूर्ण तथा मंगलमय है । जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस मानस-सरोवरमें गोता लगाते हैं, वे संसाररूपी सूर्यकी अति प्रखर किरणोंसे नहीं जलते ॥ २ ॥

मासपारायण तीसवाँ विश्राम ।

नवाङ्कपारायण नवाँ विश्राम ॥

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकटुपविध्वंसने सप्तमः सोपानः समाप्तः ।

कलियुगके समस्त पापोंका नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह सातवाँ सोपान समाप्त हुआ ।

(उत्तरकाण्ड समाप्त)



श्रीरामायणजीकी आरती



आरति श्रीरामायनजी की । कीरति कलित ललित सिय पी की ॥

गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद । बालमीक बिग्यान बिसारद ।

सुक सनकादि सेष अरु सारद । बरनि पवनसुत कीरति नीकी ॥ १ ॥

गावत वेद पुरान अष्टदस । छओ सास्त्र सब ग्रंथन को रस ।

मुनि जन धन संतन को सरबस । सार अंस संमत सबहो की ॥ २ ॥

गावत संतत संभु भवानी । अरु घटसंभव मुनि बिग्यानी ।

व्यास आदि कबिबर्ज बखानी । कागमुसुंडि गरुड के ही को ॥ ३ ॥

कलिमल हरनि बिषय रस फोकी । सुभग सिंगार मुक्ति जुबतो की ।

दलन रोग भव मूरि अमी की । तात मात सब बिधि तुलसो की ॥ ४ ॥



रामायण सर्वप्रिय पुस्तक है

(लेखक—श्रीयुत प्रो० श्यामाचरण दे, एम० ए०, प्रिंसिपल, काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय)

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि 'कल्याण' के आगामी विशेषाङ्कमें आप गो० तुलसीदास-कृत रामायणका एक प्रामाणिक शुद्ध पाठ, उसकी सरल टीका, तथा देश-विदेशके प्रख्यात पण्डितों और विद्वानोंके रामायणविषयक लेख दे रहे हैं। रामायण तो इन प्रान्तोंमें घर-घरकी सर्वप्रिय पोथी है। मेरा विश्वास है, आपका यह विशेषाङ्क सभीके लिये उपदेशपूर्ण, लाभप्रद तथा आनन्ददायक सिद्ध होगा। देशकी वर्तमान स्थितिमें ऐसे साहित्यके प्रचारकी बड़ी ही आवश्यकता है और निश्चय ही आपके इस विशेषाङ्कका सर्वत्र स्वागत होगा। मैं इस सत्प्रयत्नमें आपकी हृदयसे सफलता चाहता हूँ।

तुलसीदासजीका अमर काव्य

(लेखक—श्रीयुत सी० वार्ड० चिन्तामणि)

संस्कृतमें वाल्मीकि और हिन्दीमें गो० तुलसीदास अपने अमर महाकाव्योंकी रचनाद्वारा अमर हो गये हैं। उनका नाम तथा उनकी कीर्ति चिरकालतक रहेगी। रामायणकी सम्पूर्ण कथा मनुष्यके जीवनको उन्नत बनानेवाली है, नित-नूतन प्राणका सञ्चार करनेवाली है। रामकी पितृभक्ति तथा प्रजा-वत्सलता, सीताकी पतिपरायणता, लक्ष्मण और भरतकी भ्रातृसेवा, हनुमान्की भक्ति—ये कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें रामायण मानवमात्रको अनन्त कालतक सिखलाती रहेगी।

रामायण मानवमात्रको बाइबिल है

(लेखक—श्रीयुत वी० एन० मेहता, आई० सी० एस०)

भारतके देहातमें रहनेवालोंके लिये रामचरितमानस जीवनका आधार है और इस महान् ग्रन्थके अनमोल उपदेशोंको अधिकाधिक सुगम रीतिसे समझने-समझानेका जो सत्प्रयत्न हो रहा है उससे जीवनमें सत्यके आचरणमें सहायता मिलेगी और तभी हम लोकसेवाका यथार्थ मर्म भी समझ सकेंगे—वह चाहे जिस रूपमें हो—पिताके रूपमें, माताके रूपमें, पुत्रके रूपमें या पत्नीके रूपमें। सुप्रसिद्ध फ्रेंच लेखक शेटो ब्रांड (Chateau Briand) ने रामायणको 'मानवमात्रकी बाइबिल' कहा है और जबतक पाठक इसके उपदेशोंको ग्रहण करनेके लिये उत्सुक रहेंगे तबतक सदा ही इसका वही स्थान बना रहेगा।

रामायण बहुत प्रिय है

(लेखक—महाराजाधिराज सर बिजयचन्द महताब बहादुर, बर्दवान)

रामायण पूर्णतः मानवकथा है और इस कथाप्रबन्धमें आदिसे अन्ततक देव और दानवका जो संघर्ष चलता है उसे मैं बहुत चावसे पढ़ता हूँ और इसे बार-बार पढ़ते रहना मुझे बहुत प्रिय लगता है।

तुलसीदासजी के अमर वचन

(लेखक—श्रीकाका कालेलकरजी)

तुलसीदास के अमर वचन सब से प्रथम मैं ने मराठी में पढ़े । बाद में जब अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना हुई तब शाम की प्रार्थना के बाद स्वर्गस्थ मगनलाल भाओ गांधी तुलसी रामायण पढ़ कर सुनाते थे । श्रम-परिहार करने की तुलसी-वचन की शक्ति वहीं पर अनुभव में आयी । चित्त प्रसन्न और पवित्र करने के लिये तुलसी रामायण मानो हेमगर्भ की मात्रा है ।

बाद में स्वामी सत्यदेवजी रामायण पढ़ कर सुनाते थे । तब रामायण के साहित्यिक स्वरूप की तरफ ध्यान अधिक जाने लगा । शब्द-शक्ति को पहचानने वाले तुलसीदासजी थोड़े शब्दों में अधिक से अधिक भाव प्रकट कैसे कर सकते हैं, यह देख कर चित्त पुलकित हो उठता था । मैंने देख लिया कि तुलसी की वाणी में विभक्ति-प्रत्ययों का भी व्यवहार कम से कम है । वाक्य-रचना ऐसी खूबी से की जाती है कि प्रत्ययोंके बिना ही भाव का प्रत्यय स्पष्ट हो जाता है । ऐसी शैली के जो कवि सिद्ध-हस्त हैं उनके लिये सामासिक शब्दोंकी टकसाल खोलनी नहीं पड़ती है । श्रीतुलसीदास भारतके हृदय-सम्राट तो हैं ही, किन्तु साहित्य-सम्राट भी हैं ।

हिन्दुस्तान की जनता में सदाचार का प्रचार अधिक से अधिक जिन्होंने किया है उनका जब गणना की जायगी तब तुलसीदास का नाम सब से प्रथम याद आ जायगा ।

तुलसी रामायण और वाल्मीकी रामायण अेक ही चीज नहीं हैं । 'बुद्धिमतां वरिष्ठ', ब्रह्मचारी रामसेवक हनुमान ने तुलसीदास का रूप धारण करके रामायण लिखी—ऐसी कथा किसी हरिदास के मुँह से मैंने सुनी थी । भक्तों के लिये तुलसी रामायण अितनी प्रिय क्यों है ?—यही अपर की कथा व्यक्त करती है । जब तक तुलसी रामायण है तब तक हिन्दी भाषा का प्रचार भारत में अ-बाधित रहेगा ही ।

रामायणसे आध्यात्मिक उत्थान

(लेखक—श्रीयुत डा० श्री० पट्टाभि सीतारामय्या)

भारतभूमिमें अयोध्या एक आदर्श राजधानी थी और आजके राष्ट्रीय भारतके लिये भी राम-राज्य एक आदर्श राज्य है । भगवान् श्रीराम एक ऐसे महान् राजा थे जिनको केवल भारत ही अपना आदर्श नहीं मानता, अपितु सारे संसारके लोग उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति रखते हैं, उन्हें पूजते हैं और यही कारण है कि जिस राज्यमें उत्तम शासक होता है उसे अब भी 'रामराज' कहते हैं । भगवान् श्रीरामके चरित्रकी तीन विशेषताएँ थीं—हितवाक्, प्रियवाक् और मधुरवाक् । केवल न्यायशील और सत्यवादी होना ही पर्याप्त नहीं है । सत्य और न्यायके समर्थनमें जो कुछ कहा जाय उसे जहाँतक सम्भव हो प्रेम और मधुरताके साथ कहना चाहिये, जिससे सुननेवालेके लिये वह हितकारी हो, प्रिय हो और सुखद हो । गोस्वामी तुलसीदासकृत श्रीरामायण तथा तत्सम्बन्धी साहित्यके प्रचारसे बढ़कर आध्यात्मिक उत्थानके लिये कोई साधन है ही नहीं ।

मानस हिन्दी साहित्यका खजाना है

(लेखक—श्रीकिशोरलाल घ० मशरूवाला)

‘श्रीरामचरितमानस’ पर अधिकारपूर्वक लिखनेकी मुझमें योग्यता नहीं है। मेरा इस सरोवरमें इतना अवगाहन नहीं है कि उसके रत्नोंको निकाल-निकालकर वाचकोके आगे रख सकूँ। मैंने जिस तरह एक ही बार गंगादर्शन किया है, वैसे एक-दो बार ही मानस-तीर्थका आस्वाद लिया है।

आस्तिक हिन्दू हिन्दी-भाषीके लिये मानस एक पूरा धर्मग्रन्थ हो सकता है। मनुष्यको अपने उद्धारके लिये अनेक ग्रन्थोंकी आलोचना करना आवश्यक नहीं है। अगर कोई मुमुक्षु सिर्फ मानसका ही श्रवण-मनन-निदिध्यासन करता है, तो वह उसे आत्मकाम करनेके लिये पर्याप्त हो सकता है।

जिसमें धार्मिक प्रेरणा अधिक प्रमाणमें नहीं है, वैसे हिन्दुस्तानीके लिये भी मानसका अध्ययन वैसा ही महत्त्वका है, जैसा किसी अंग्रेजके लिये बाइबलका। बाइबलकी तरह मानस हिन्दीसाहित्यका खजाना है।

जो हिन्दुस्तानी बोलनेवाले प्रान्तोंके निवासी नहीं हैं, वे अगर इन प्रान्तनिवासियोंको ठीक समझना चाहें, तो उनके लिये ठीक होगा कि वे उसके पहले या साथ-साथ मानसका भी अध्ययन करें। बिहारकी यात्रामें मुझे अनुभव हुआ कि इन प्रान्तोंकी जनताकी बोलचाल, सभ्यता आदिपर रामचरित-मानसका अधिकमें अधिक प्रभाव है, अथवा तो रामचरितमानसमें जिस सभ्यता और जन-स्वभावका दर्शन होता है वह ठीक इन प्रान्तोंकी जनताका शब्द-चित्र है। बिहारके अनुभवके बाद मुझे रामचरित-मानसमें अधिक जीवन-सदृश चित्र दीखने लगा।

‘वीणामधुर’

(लेखक—श्रीगंगाधर बालकृष्ण देशपाण्डे)

महाभारतको ‘मेघगन्धर्व’ और रामायणको ‘वीणामधुर’ कहा जाता है।.....

रामचरितमानस पढ़नेसे और उसकी कई एक कथाओंके मननसे स्वार्थत्याग, इन्द्रियजय, मनका संयम, चित्तका पावित्र्य, करुणारसकी अत्युत्कटता, प्राणिमात्रके लिये नितान्त प्रेम, परदुःख मिटानेकी कोशिशमें अपनेको कुर्बान करनेकी निरन्तर तैयारी, कर्तव्यपरायणता, निष्कामना, अनासक्ति, निरहङ्कारता और गुरुजनोंकी सेवा आदि सद्गुणोंका गहरा असर वाचकोके दिलपर हुआ हो करता है।

रामचरितमानस पढ़कर उसमेंके नायकोंकी सिर्फ पूजा करना सोखनेसे काम नहीं चलेगा। बल्कि उन नायकोंकी जीवनीको इस प्रकार महत्ता क्यों और कैसे प्राप्त हुई, यह जाँचनेकी सामर्थ्य अपनेमें पैदा होनी चाहिये। इतना ही क्यों, उनके-जैसे होनेकी कोशिश करनेका हमारा स्वभाव बन जाना चाहिये। मुझे पूरी उम्मीद है कि ‘कल्याण’ मासिकके ‘मानस-अंक’ का उपयोग इस काबिल चीजको लोगोंके दिलपर प्रभावान्वित करानेमें होनेवाला है।

मानससे जीवन-रसका सञ्चार

(लेखक—डा० श्रीमंगलदेवजी शास्त्री, एम०, ए०, डी० फिल०, प्रिंसिपल, गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज, बनारस)

कौन नहीं जानता कि भारतीय साहित्यमें राजा-रंक, पण्डितापण्डित, बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सबकी धार्मिक पिपासाको शान्त कर एक समान सान्त्वना देनेवाला 'मानस' के समान दूसरा ग्रन्थ नहीं है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामके चरितके सदृश ही रामभक्त भारतीय प्रजाकी उदात्त भावनाओंको भी 'मानस' प्रतिफलित करता है। चारों ओरसे निराशाओंसे घिरे हुए भारतीय जीवनमें 'मानस' के द्वारा आशारूपी जीवन-रसका सञ्चार बराबर शताब्दियोंसे होता रहा है। आशा है, वर्तमान समयमें भी भारतीय जनता 'मानस' के द्वारा उसके नायक महासत्त्व, अतिगम्भीर, क्षमावान्, अनात्मश्लाघी, स्थिर, निगूढ़ाहंकार, दृढ़व्रत, धीर, वीर भगवान् रामके सद्गुणोंको ग्रहण करनेकी चेष्टा करेगी तथा धीर, वीर बनकर असार संसारको पार करनेके साथ-साथ, संसार संसारमें सच्चे अर्थोंमें स्वराज्य, साम्राज्य तथा आधिपत्यको प्राप्त करनेका दृढ़ प्रयत्न कर सकेगी। आपका 'मानस' विशेषाङ्क इस आदर्शकी प्राप्तिमें सहायक हो सके, यही हमारी भक्त-भावन भगवान्से प्रार्थना है।

मधुर संगीत-लहरी

(लेखक—श्रीनरसिंह चिन्तामणि केळकर)

गोस्वामी तुलसीदासजीका नाम महाराष्ट्रमें बहुत प्रसिद्ध है। मराठी संत-मालिकामें उनका नाम बहुत श्रद्धा-भक्तिसे लिया जाता है। हमारे हरिदास कथावाचकोंमें गोस्वामीजीके अनोखे जीवनका 'आख्यान' बहुत प्रचलित है और उनके सरल-सीधे दोहे बड़े ही प्रिय लगते हैं। मुझे स्मरण है, कई वर्ष पूर्व जब्बलपुरके सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीजामदार महोदयने मराठी-भाषा-भाषियोंके लिये तुलसीकृत रामायणका एक मराठी संस्करण निकाला था, जिसमें रामायणके मूल हिन्दी पाठके साथ उसका गद्यमें मराठी अनुवाद भी था, और पढ़े-लिखे विद्वानों तथा साधारण जनताने उसका बहुत हर्ष और उल्लाससे स्वागत किया, बड़े प्रेमसे अपनाया।

उपमा और रूपकपर तो गोस्वामीजीका अपूर्व अधिकार है और काव्यकारके नाते इस क्षेत्रमें वे अद्वितीय हैं। निश्चरकी कल-कल ध्वनिके समान उनके दोहोंमें एक ऐसी अपूर्व मधुर संगीत-लहरी है जिसे सुनकर हिन्दीसे सर्वथा अनभिज्ञ मराठे भी मुग्ध हो जाते हैं।

रामायण हमारा संजीवन अमृत है

(लेखक—श्रीयुत एस० सत्यमूर्ति, एम० एल० ए०)

भारतीय जीवन और साहित्यकी इससे बढ़कर कोई सेवा नहीं हो सकती। रामायणके महान् रचयिता महर्षि वाल्मीकिका यह स्वाभिमानपूर्ण किन्तु सत्य उद्गार पूरी तौरपर सिद्ध हो गया कि रामायण तबतक रहेगी जबतक पर्वत और महासागर रहेंगे। रामायण हमारा संजीवन अमृत है। इसने सदैव हमारा (हमारे राष्ट्रका) साथ दिया है और यह कभी हमारा साथ न छोड़ेगी। आपका विशेषाङ्क रामायणकी विराट् प्रसिद्धि और प्रचारको और भी बढ़ावे, यही मेरी कामना है।

मानस—राष्ट्रकी महानिधि

(लेखक—परमहंस बाबा श्रीराघवदासजी)

श्रीपूज्य गोस्वामीजी महाराजने श्रीरामचरितमानस तथा उसीके भावोंको प्रकट करनेवाले अन्य ग्रन्थोंको लिखकर न केवल भारतीय समाजकी किन्तु समस्त मानवसमाजकी रक्षाके लिये अमर साहित्य निर्माण किया है। मानसने जितनी भगवद्भक्ति, देशभक्ति और शीलके निर्माणमें सहायता की है उतनी इस युगमें लिखित दूसरे ग्रन्थोंने उसके आधे रूपमें भी शायद ही की हो। मानस तो हमारे राष्ट्रकी महानिधि है। उसका प्रचार शहरोंमें, ग्रामोंमें, कसबोंमें, सब जगह आवाल-वृद्धोंमें करना हम सबका एक कर्तव्य ही हो जाना चाहिये।

रामायणसे शान्ति

(लेखक—श्रीयुत जयरामदास दौलतराम)

सतरह वर्ष पूर्व मैंने जेलमें रामायण पढ़ी थी और उसका मेरे चित्तपर विविधरूपमें बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। मनको, हृदयको और आत्माको उसमें पर्याप्तरूपमें पौष्टिक आहार मिला और बड़ी शान्ति मिली। रामायण उन अमर महाकाव्योंमें सर्वशिरोमणि है जो एक साथ ही इतने प्रभावशाली ढंगसे इस लोक और परलोककी बातोंकी हृदयग्राही समीक्षा करते हैं।

मानसके प्रचारकी आवश्यकता

(लेखक—श्रीयुत सतीशचन्द्र दास गुप्त)

गोस्वामो तुलसीदासजी आजतक भारतवासियोंके हृदयमें अक्षुण्ण स्थान अधिकार किये हुए हैं। रामचरितमानसमें गोस्वामीजीका आशीर्वाद सजीवरूपमें विद्यमान है। जिस रामनामको वे जीवनके शेष मुहूर्त्तपर्यन्त रटते रहे और जिसे रटते-रटते उनका प्राणवायु बहिर्गत हुआ, वह अमूल्य रामनाम किसी दूसरे कविके निकट इतना मर्मस्पर्शी कभी हुआ कि नहीं, यह मैं नहीं जानता।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि तुलसी-रामचरितमानसका भक्तिके साथ अध्ययन और मनन करनेसे अवश्य लाभ होगा। मानसके प्रचारकी सोमा नहीं हो सकती। कल्याणकी इस शुभ चेष्टासे जनतामें मानसकी आलोचना बढ़ेगी और इससे अधिकतर जनहित होगा, ऐसी आशा पोषण कर रहा हूँ।

रामायणसे आर्यसंस्कृतिकी रक्षा

(लेखक—सेठ जुगलकिसोरजी बिड़ला)

तुलसीकृत रामायणके सम्बन्धमें सम्मति देनेकी मेरेमें योग्यता नहीं है। यह तो प्रत्यक्ष हो है कि तुलसीकृत रामायणसे आर्यसंस्कृतिकी बहुत ही रक्षा हुई है। आर्य (हिन्दी) भाषामें कोई अन्य ग्रन्थ ऐसा लोकप्रिय हो, ऐसा दिखायी नहीं देता। रामायणके प्रति भक्तिभावके साथ-साथ संत तुलसीदासजीका व्यक्तित्व और ग्रन्थकी रचनाकी श्रेष्ठता ही इसके सर्वप्रिय होनेमें हेतु है। फिर भी ग्रन्थमें कई स्थलोंपर विशेष रोचक, भयानक तथा अतिरञ्जित-से जो शब्द दिखायी पड़ते हैं, अथवा वाल्मीकि-रामायणमें वैसे कथाएँ नहीं हैं या कहीं-कहीं पूर्वापरका विरोध भी दिखायी पड़ता है, वे सभी स्थल तुलसीदासजीके लिखे हुए हों इसमें सन्देह है। उनके लिखे प्रमाणित होते हों तब भी यदि वैसे स्थलोंका संशोधन कर दिया जाय तो ग्रन्थ प्राचीन ऐतिहासिक दृष्टिसे अधिक प्रामाणिक बनकर साथ-साथ और भी विशेष लाभकारी बन सकता है।

मानस भक्तिभावका समुद्र ही है

(लेखक—बाबू श्रीशिवप्रसादजी गुप्त)

मुझै बहुत बचपनसे तुलसीकृत रामायणमें अनुराग है। मेरे एक पुराने मोलवी यादअली साहेब उस्ताद थे, वे मेरे ही मकानमें रहा करते थे। उन्हे रामायण और पद्मावतसे बड़ा प्रेम था। जब उन्हें अवकाश मिलता वे उसै पढ़ा करते थे। मेरे पालक-पोषक श्रीसर्जूसिंहजी भी रामायणके बड़े भक्त थे। वे भी रात्रिमें रामायण पढ़कर सुनाया करते थे। वे अयोध्याके बाबा बनादासके शिष्य थे। यह अखाड़ा अयोध्यामें बड़ा रामभक्त है। मुझै एक पद उक्त बाबाजीका अभीतक याद है—

बनादास तुलसी गोसाईं महाराज पद, कलिराज उदधि जहाज औतार है।

रास लियो जनश्रुत सकल पुरान बीज, ना तोड़बि जातो सकल मरिजाद है ॥

यह कितने महत्वका पद है और इसके रचैताको तुलसीदास महाराजमें कितनी भक्ति थी, यह इनके ग्रन्थोंसे, जो अमुद्रित हैं, जान पड़ सकती है।

अपने पूज्य पिताजीके परलोकवासके उपरान्त मै फैजाबादसे अपनी पूजनीया माताजीके साथ सम्बत् १९४८ में काशी चला आया और यहीं रहने लगा। उस समय मेरे पिताजीके सबसे छोटे चाचा-जी पूज्यपाद श्रीलक्ष्मीप्रसादजी जीवित थे, उन्हे रामायणका बड़ा प्रेम था। रोज रात्रिमें उन्है रामायण सुनाने अनन्तराम घाटिया आया करते थे। हमलोग भी उनके चारो ओर बैठकर रामायण तथा अन्य पुरान-की कथायें सुना करते थे। उसी समय एक दर्जी भी हमारे यहाँ काम करते थे। उनका नाम ही भगत था। ये सज्जन भी रात्रिमें अपना काम समाप्त करने पर रामायण पढ़ा करते थे और हम लोग बालगोपाल उनके चारो ओर बैठकर रामायणकी कथा सुना करते थे। मै जब सन् १९१४ में विलायत गया तब मैने पहिली बार रामचरित्रमानसका पाठ आद्योपान्त किया। उसके बाद पूरी रामायण पढ़नेका अवसर तो नहीं मिला, पर सुना उसको कई बार। और जितनी बार सुना या पढ़ा, उसमें नया ही रस मिला। यह एक ऐसा उत्तम और उत्कृष्ट हिन्दीमें ग्रन्थ है कि इसकी जोड़का दूसरा ग्रन्थ कम-से-कम मुझै तो अपने अल्प ज्ञान और अभ्यासमें नहीं मिला। इसके भीतर जितना अधिक पैठा जाय उतना ही अधिक अधिक ज्ञान मिलता है, जी नहीं ऊबता और तबीअत नहीं भरती। पर मै इसै ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं मानता, मेरे विचार तो ये भी हैं कि रामायणमें वर्णित कथानक कभी घटित भी हुवा या केवल कल्पनामात्र ही है। जो कुछ हो, हमें ऐतिहासिक दृष्टिसे उमै इस समय नहीं देखना है। भक्तिभावसे तो वह समुद्र ही है। जितना जो इसमें गहिरे उतरे उतने ही रस इसमेंमे पा सकता है।

इति शुभम्

श्रीराम जैति ।



मानसमें पुरुषोत्तम राम

(लेखक—स्वामी श्रीपुरुषोत्तमानन्दजी अवधूत)

भगवान् श्रीरामचन्द्र मर्यादापुरुषोत्तम हैं। आदिकवि महामुनि वाल्मीकिने उनकी जीवनकथाको अपनी अनुपम तुलिकासे चित्रित किया है। महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीने भी श्रीरामचरित्रको लिपिबद्ध किया है। परन्तु दोनोंके दृष्टिकोण (angle of vision) पृथक् हैं। वेदव्यासजीके श्रीरामचन्द्रजी पुरुषोत्तम हैं। जहाँ तत्त्व, जीवन और तत्त्वप्रचार अपूर्व रससे समन्वित हैं, वे ही पुरुषोत्तम हैं। पुरुषोत्तम अपने जीवनका आस्वादक और प्रचारक दोनों ही हैं। पुरुषोत्तम एक ऐसी दिव्य वस्तु है जिसके जीवनमें समन्वित है जीवनकी परिपूर्ण समस्त दिशाएँ, जीवनका सत्य व्याख्यानमय दार्शनिक विश्लेषण तथा आस्वादन, और विश्वजीवनमें उसकी योग्यता और प्रयोगकौशलको वितरण कर देनेयोग्य सामर्थ्य। श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

अनोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।

इसीलिये मैं लोक और वेदमें पुरुषोत्तमके नामसे प्रसिद्ध हूँ। वैदिक ब्रह्म-वस्तु जिस कौशलसे लौकिक वास्तव जगत्के सभी क्षेत्रोंके लिये उपयोगी लीलाका विस्तार करता है और उस लीलाको अपनाकर जीवनमें विकसित कर देनेवाला योग या कौशल जीवको सिखा देता है, इस प्रकारकी कुशलता जिसके अधीन है, वही लोकप्रथित और वेदप्रथित पुरुषोत्तम है। श्रीरामचन्द्रजी ऐसे ही पुरुषोत्तम हैं। रामायणके 'राम' जिस योगसे, जीवके समस्त स्तरोंमें प्राण-प्रियतरुपरसे अरने हो सकते हैं, उसी योगके द्वारा भागवतके 'राम' विश्वप्राण और प्राणाराम श्रीराम हैं। भक्तिवादके द्वारा ही रामायणके 'राम' भागवतके 'राम' हो गये हैं। 'रामभजन' भागवतका ही दान है। अवश्य ही रामलीलाका प्रचार वाल्मीकिका दान है, परन्तु जगत्के हृदयपर रामलीलाकी स्थापना करनेमें 'राम-भजन' ही समर्थ है। भागवतके इस आदर्शको हृदयमें रखकर ही परमभागवत गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने 'रामचरितमानस' रूप अपूर्व ग्रन्थकी रचना की। रामचरितमानस एक ही साथ दर्शनशास्त्र, लीला-रसशास्त्र और काव्य है। इसकी कहीं तुलना नहीं है। रामायणके 'राम' भावके भगवान् हैं, रामचरितमानसके 'राम' लीलारसनायक और भक्तके जीवन-धन हैं।

भक्तके 'राम' (ब्रह्म और परमात्मा होते हुए ही) 'मानुष' हैं। मानुष 'राम' ब्रह्म रामसे 'अधिक' हैं, परमात्मा रामसे भी अधिक हैं। दार्शनिक क्रमोन्नतिके प्रत्येक स्तरमें हमने सारे तत्त्वोंको लौपकर 'मानुष' के स्तरमें पहुँचनेपर टेढ़े-मेढ़े समग्र जीवनकी एक परिपूर्ण व्याख्या प्राप्त की है। भक्तिवाद एक ऐसी वस्तु है जिसके अंदर अतीतके समस्त वाद हजम हो गये हैं। 'मानुष' विश्वके सबसे आखिरी प्रश्नका मूर्तिमान् समाधान है। बंगालके वैष्णवकवि चण्डीदासने गाया है—

सबार ऊपर 'मानुष' सत्य इहा 'अधिक' नाई।

ब्रह्मतत्त्वमें विद्वकी समस्त घटनाओं (phenomena) की एक निषेधात्मक (negative) व्याख्या है, वहाँ कोई स्थापनात्मक (positive) व्याख्या नहीं मिलती। परमात्म-तत्त्वमें कुछ स्थापनात्मक व्याख्या मिलती है; परन्तु भक्तितत्त्वमें, पुरुषोत्तम वस्तुमें, मनुष्यमें प्राप्त हुई है विश्वकी परिपूर्ण (मोल्द आना) व्याख्या।

कृष्णर यंतक लीला, मर्त्तम नरलीला

नरवपु ताहारइ स्वरूप।

पुरुषोत्तमका मानुषी तनु सबकी अपेक्षा 'अधिक' है। गोपालतापनी श्रुतिने कहा है—

.....

मानुषीतनुर्विज्ञानघनसच्चिदानन्दैकरसे भक्तियोगे तिष्ठति।

पुरुषोत्तमका मानुषी तनु विज्ञानघनसच्चिदानन्दैकरसे भक्तियोगमें है। 'मानुष' ही विश्वका श्रेष्ठ स्रष्टा है। मानुषको शेष स्रष्टाके आसनपर बैठाकर जो विद्वव्याख्यान करनेका सामर्थ्य रखते हैं वे ही हैं भागवत; गोस्वामी तुलसीदासजी ऐसे ही एक भागवत हैं। और जिन एकके आश्रयसे समस्त विश्वकी व्याख्या हो सकती हो, वे ही हैं पुरुष—पुरुषोत्तम, 'मानुष'; ऐसे ही 'मानुष' हैं 'श्रीराम'।

इन पुरुषोत्तम 'मानुष' के जीवनमें कोष्ठक-विभाग (water-tight compartment) नहीं है। वे एक ही साथ कर्मों, ज्ञानी और भक्त हैं। सगुण-निर्गुण, संसारी-संन्यासी, भक्त-समाजसुधारक-राजनीतिज्ञ, पिता-पुत्र-सखा और प्रजा-

राजा हैं। ये भक्तिके विषय भी हैं और आश्रय भी। ये देव-असुर सब कुछ हैं; ये कलविद् (artist) हैं, दार्शनिक (Philosopher) हैं; ये इस संसारके हैं, और इस संसारके उस पारके भी हैं; ये ही समस्त क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ हैं। ऐसे ही एक पुरुषोत्तम 'मानुष' का आश्रय लेकर तुलसीदासजीने समस्त भारतवर्षको एक अखण्ड भागवत राज्यमें परिणत कर देनेके उद्देश्यसे 'श्रीरामचरितमानस' रूपी शक्तिकी अवतारणा की। 'राम' के जीवनके केवल तत्त्वज्ञान ही सत्य नहीं है, 'राम' के जीवनमें नाम भी सत्य है, वह निर्गुण-सगुण दोनोंकी अपेक्षा सत्य है—यही तुलसीदासजीका दान है। 'नाम' वस्तु सगुण-निर्गुण दोनोंसे 'अधिक' (Transcendental) है, इस प्रकार कहनेका साहस भक्तके सिवा और किसका हो सकता है ?

अनुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा । अकथ अगाथ अनादि अनूपा ॥
मोरे मत बड नाम दुहु ते । किय जेहिं जुग निज बस निज कृते ॥

मायावादने 'नाम-रूप'की व्याख्या न कर सकनेपर कह दिया—'नाम-रूप मिथ्या है।' भक्तिवादने इसका तीव्र प्रतिवाद करके कहा—'नाम ब्रह्मका ही स्वरूप है, बल्कि नाम नार्मीसे भी बड़ा है।' 'कहउँ नाम बड़ राम ते'। नाम रामसे भी बड़ा है, मैं यह कहता हूँ।

नाम-रूपात्मक इस जगत्को जो ब्रह्मकी तरह ही (ब्रह्मरूपसे ही) सत्य सिद्ध करनेके लिये जगत्में अवतीर्ण होते हैं वे ही हैं पुरुषोत्तम। पुरुषोत्तममें ब्रह्म सत्य है, जगत् भी सत्य है। मायावादमें 'ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है।' परन्तु मानुष 'गम' सर्वगुणसमन्वित निर्गुण है, सर्वविशेषयुक्त निर्विशेष है। ऐसे ही श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें भारतवर्षका निर्माण होगा। जो लोग नाम-रूपात्मिका प्रकृतिके भयमें भागकर प्रकृतिके उस पार कैवल्यके अंदर शान्तिप्राप्त करनेके लिये व्याकुल हैं, श्रीरामजीकी लीला मानो उनका मार्ग रोककर खड़ी है। प्रकृतिकी युद्धयोगणा (challenge) को स्वीकार करके जो एक पैँड भी विचलित न होकर अच्युत-रूपसे खड़े रहनेका साहस और सामर्थ्य रखते हैं, वे ही वीर हैं, वे ही पुरुष हैं। जो प्रकृतिके भयसे भीत हैं, प्रकृतिके नाम-रूपको लेकर रमण करते जिनका कण्ठजा काँपता है, वे 'राम-तत्त्व'को नहीं समझ सकते। 'राम-तत्त्व' उनके लिये नहीं है। जो 'रमण' करते हैं, वे ही राम हैं। प्रकृतिके समस्त स्तरोंमें, सम्पूर्ण अज्ञोंमें रमण करनेपर भी अनङ्ग जिनका

स्पर्श नहीं कर सकता, वे ही राम, सीताराम या श्रीराम हैं; और सीता परा प्रकृति हैं। प्रकृतिकी यह घोषणा थी—

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति ।

यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ॥

'जो मुझको संग्राममें जीत सकेगा, जो मेरा दर्प चूर्ण करेगा, जो मेरा प्रतिबलो होगा, वही मेरा भर्ता होगा।' विश्वके वक्षःस्थलपर ऐसे 'दो' ही 'पुरुष' हुए हैं जो प्रकृतिके सम्पूर्ण स्तरोंमें स्वच्छन्द विचरण करनेका अनन्त साहस रखते हैं और जिनके चरणतलोंपर स्वयं मदन मोहित है; वे हैं 'श्रीराम' और 'श्रीकृष्ण'। प्रकृतिके वक्षःस्थलपर रमण करनेका दुर्जय और अनन्त साहस 'श्रीराम' और 'श्रीकृष्ण' के अतिरिक्त और किसमें है ? श्रीराम ही वास्तव सत्य जगन्नाथ हैं, और श्रीकृष्ण ही पुरुषोत्तम भर्ता हैं। प्रकृतिके सारे तूफानोंमें, सम्पूर्ण युद्धोंमें वेदान्तमय जीवन बनाये रखनेका दृष्टान्त दिखाया है पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने। जगत्के, और उस पारके निर्मल वैकुण्ठधामके अद्वैतवादको जटिलतामय युद्धके वक्षःस्थलपर स्थापित करनेका सामर्थ्य रखनेवाले होनेसे ही 'श्रीराम' वीर हैं। जो ब्रह्मचर्य प्रकृतिके भयसे अपनेको बचानेमें ही व्यस्त है, श्रीराम वैसे ब्रह्मचारी नहीं हैं। हमें आवश्यकता है आज सच्चे ब्रह्मचारी श्रीरामके जीवनकी। जो ब्रह्मचर्य सामनेसे हटकर मायाका पाश कटाना चाहता है, जो ब्रह्मचर्य प्रकृतिके प्रति विद्रोहका पोषण करनेमें ही प्रवृत्त है, वह ब्रह्मचर्य भारतवर्षकी वर्तमान समस्याका समाधान करनेमें असमर्थ है। उमने तो केवल जीवनको दबाया ही है। उसकी सारी चेष्टा जीवनयन्त्रकी गतिकी धीमी करके स्थितिके बन्धनमें बाँध देनेकी ओर ही रही है। जीवनकी सम्पूर्ण दिशाएँ शक्तिके भरपूर होकर भी उच्छृङ्खल न हो सकें, श्रीरामके जीवनमें विश्वने इसी बातको प्रत्यक्ष देखा है। हजारों वर्षोंसे भारतवर्ष उस उपदेशको नहीं जानता जिसमें स्नायुयन्त्रको नहीं खूबने देकर संयमकी बात कही गयी है। बहुत दिनोंसे भारतवर्षको ब्रह्मचर्यका वह मार्ग नहीं मिला है जिसमें शक्तिके सन्तानको रोकनेकी आवश्यकता न हो। आज श्रीरामके जीवनमें विश्व उसीको देखेगा। धनुर्धरत्व और योगेश्वरत्वका समन्वयमें ही वीर्य स्थिर होनेकी सम्भावना है। धनु-हीन योग, और योगहीन धनुसे तो क्लेशकी ही सृष्टि होती है। आज प्राच्य धनुको खोकर 'योग' 'योग' करके

क़ीब हो रहा है और पाश्चात्य योगको न पाकर 'धनु' 'धनु' एक नूतन पुरुषोत्तम संस्कृतिकी सृष्टि करनेके लिये उपस्थित हैं।
करके क़ीब हो गया है। इन दोनों क़ीब जातियोंके सन्धिस्थलमें बोले, 'जय जगदीश हरे'। धन्य रामलीला और धन्य रामभक्त
खड़े होकर श्रीरामचन्द्र दोनोंको दोनोंके भीतर अनुप्राणित करके तुलसीदासजी !



रामसे विनती

(श्री) दशरथराज-कुमार राम ! जय अज अविनाशी ।

जय शिव सुन्दर सत्य दिव्य चिन्मय सुखराशी ॥

मोहन मंगलमूर्ति सदा सेवक-हितकारी ,

सुनो करुण विनती दासीकी, भवभयहारी !

कृपा करो, निज रूप-सुधाका पान करा दो !

तन-मन सब कर ग्रहण समर्पण पूर्ण बना दो !!

रसना लेती रहे स्वाद नित नाम-अभियक्षा ,

श्रवण पियें, वन मधुप, मधुर रस गुण सियपियक्षा !

नेत्र निरंतर निरख सुखी हो मूर्ति तुम्हारी —

सर्वकाल सर्वत्र, मोहिनी मुनि-मन-हारी ।

मन नित डूबा रहे तुम्हारे सुख-स्मरणमें ।

जीवनमें हो तुम्ही, तुम्ही बस रहो मरणमें ॥

बुद्धि तुम्हीमें रहे, रहो तुम ही नित मतिमें ।

प्राण-प्राण ! तुम बसे रहो प्राणोंकी गतिमें ॥

होवे परमानन्द निजात्मा तुमको पाकर—

आत्माको भी, राम ! तुम्हारे अंदर जाकर ॥

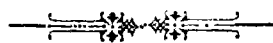
आत्मा-बुद्धि-प्राण-इन्द्रियाँ सभी सफल हों ,

तुम्हरी ही सेवा, बस सबका व्रत केवल हो ॥

हो जाऊँ कृतकृत्य तुम्हारा प्रेम प्राप्तकर—

हो तुम्हारे आधीन, मुक्ति-मुक्तीको तज कर ॥

—सुदर्शनदासी



श्रीरामार्चाविधि और माहात्म्य

पहले पवित्र स्थानपर स्वच्छ जल और मिट्टीसे लिपी-पुती परिमार्जित भूमिमें सुन्दर मण्डप बनाना चाहिये । उस मण्डपमें लाल चाँदनी, पताका और तोरण लगाने चाहिये एवं सुन्दर चार दरवाजे बनाने चाहिये । यह सब काम करनेमें भद्राका होना अत्यन्त आवश्यक है । दरवाजोंपर चावलके ऊपर जलसे भरे हुए ऐसे कलशोकी स्थापना करनी चाहिये जिनमें भगवान्‌के चित्र अंकित हों, पल्लव डाले हुए हों और जिनपर दीपक रखे हुए हों एवं जो वस्त्रसे ढके हुए हों । चारों कोनोंपर फलवाले केलोंके खंभे लगावे और मण्डपके बीचमें चौकोना उत्तम और चिकना पीठ बनावे । उस श्रेष्ठ और सुन्दर पीठको पीले वस्त्रसे ढक दे और नीले, पीले, सफेद एवं काले चावलके चूणोंसे उसपर इक्कीस कोष्ठका यन्त्र बनावे और बड़े आनन्दसे उस यन्त्रपर आवरण-देवताओंकी पूजा करे । इसके बाद संकल्प करे ।

ॐ आद्यपुराणपुरोक्तमाय ब्रह्मणे नमः ।

ओमश्च श्रीब्रह्मणो द्वितीयपराद्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितम कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्ते अमुकसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकतीर्थे अमुकस्थाने अमुकगोत्रः अमुकनामा सकलपापक्षयपूर्वकसर्वो-रिष्टपरिहारार्थं मनोऽभिवाञ्छितशुभफलप्राप्त्यर्थं च श्रीसीता-रामप्रीत्ये यथाशक्तिसत्पादितसामग्र्या आवरणदेवतापूजापूर्वकं श्रीरामार्चा तन्माहात्म्यकथाश्रवणं चाहं करिष्ये इति ।

अब क्रमसे आवरण-देवताओंके आवाहनपूर्वक पूजामन्त्र लिखे जाते हैं ।

संकल्पके पश्चात् साधकको चाहिये कि हाथमें यव, अक्षत और तिल लेकर सम्पूर्ण आवरण-देवताओंका आवाहन करे—

माहेश्वरि नमस्तुभ्यमिहागच्छ शिवप्रिये ।

पूर्वभागे समातिष्ठ गृह्यतां पूजनं मम ॥

ओं माहेश्वर्यै नमः ॥

गणाधिप नमस्तुभ्यमिहागच्छ गजानन ।

पूर्वभागे समातिष्ठ पूजनं गृह्यतामिदम् ॥

ओं गणाधिपाय नमः ॥

महाशक्ते नमस्तुभ्यमिहागच्छ शुभप्रदे ।

पूर्वभागे समातिष्ठ पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥

ओं महाशक्तये नमः ॥

महालक्ष्मि नमस्तुभ्यमिहागच्छ जगद्धिसे ।

याम्यभागे समातिष्ठ पूजनं स्वीकुरुष्व मे ॥

ओं महालक्ष्म्यै नमः ॥

महादुर्गे नमस्तुभ्यमिहागच्छ सुरार्चिते ।

पीठस्य पश्चिमे भागे तिष्ठ स्वीकुरु पूजनम् ॥

ओं महादुर्गायै नमः ॥

भो गायत्रि नमस्तुभ्यमिहागच्छ शुभप्रदे ।

तिष्ठ पीठोत्तरे भागे पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥

ओं गायत्र्यै नमः ॥

भो सावित्रि नमस्तुभ्यमिहागच्छ शुभप्रदे ।

तिष्ठ पीठोत्तरे भागे पूजनं स्वीकुरुष्व मे ॥

ओं सावित्र्यै नमः ॥

सरस्वति नमस्तुभ्यमिहागच्छ शुचिप्रदे ।

पीठकस्योत्तरे भागे तिष्ठ पूजा प्रगृह्यताम् ॥

ओं सरस्वत्यै नमः ॥

नमो वः सर्वमातृभ्य इहागच्छत तिष्ठत ।

पीठकस्योत्तरे भागे पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥

ओं सर्वमातृभ्यो नमः ॥

सिद्धे देवि नमस्तुभ्यमिहागच्छ सुखप्रदे ।

ईशाने त्वं समातिष्ठ पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥

ओं सिद्धिदेव्यै नमः ॥

बुद्धे नमोऽस्तु ते मातरिहागच्छ सुभाषिणि ।

ईशाने हि समातिष्ठ पूजनं स्वीकुरुष्व मे ॥

ओं बुद्धिदेव्यै नमः ॥

लोकमातर्नमस्तुभ्यमिहागच्छ शुभप्रदे ।

अग्निकोणे समातिष्ठ पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥

ओं लोकमात्रे नमः ॥

महादेवि नमस्तुभ्यमिहागच्छ वरानने ।

नैर्ऋत्ये तिष्ठ देवेशि पूजनं स्वीकुरुष्व मे ॥

ओं महादेव्यै नमः ॥

देवमातर्नमस्तुभ्यमिहागच्छ कृपाशुधे ।

वायव्ये देवि संतिष्ठ पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥

ओं देवमात्रे नमः ॥

नमो वो वास्तुदेवेभ्य इहागच्छत तिष्ठत ।

याम्यनैर्ऋत्ययोर्मध्ये पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥

ओं वास्तुदेवेभ्यो नमः ॥

नमो वो लोकपालेभ्य इहागच्छत तिष्ठत ।
 रक्षोवह्निगर्भोर्मध्ये पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥
 ॐ लोकपालेभ्यो नमः ॥
 भो मनो त्वमिहागच्छ नमस्तुभ्यं सुखप्रद ।
 पश्चिमे ह्युपविश्याथ पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥
 ॐ श्रीमनसे नमः ॥
 नमो वः श्रीवसिष्ठाद्या इहागच्छत तिष्ठत ।
 वायुवाह्णयोर्मध्ये पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥
 ॐ श्रीवसिष्ठादिभ्यो नमः ॥
 अधिप्रत्यधिदेवेभ्य इहागच्छत तिष्ठत ।
 माहृतोत्तरयोर्मध्ये पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥
 ॐ अधिप्रत्यधिदेवेभ्यो नमः ॥
 भो ब्रह्मस्त्वमिहागच्छ नमस्तुभ्यं सुराधिप ।
 उत्तरेक्षानयोर्मध्ये तिष्ठ गृह्णीष्व मेऽर्चनम् ॥
 ॐ ब्रह्मणे नमः ॥
 नमोऽस्तु वो नवग्रहा इहागच्छत तिष्ठत ।
 ईशानपूर्वयोर्मध्ये पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥
 ॐ नवग्रहेभ्यो नमः ॥
 नमो वो दशदिक्पाला इहागच्छत तिष्ठत ।
 पूर्वोष्णिकोणयोर्मध्ये पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥
 ॐ दशदिक्पालेभ्यो नमः ॥
 गौरीपते नमस्तुभ्यमिहागच्छ महेश्वर ।
 अग्निदक्षिणयोर्मध्ये तिष्ठ पूजां गृहाण मे ॥
 ॐ गौरीपतये नमः ॥
 श्रीकोसले नमस्तुभ्यमिहागच्छ सुखाम्बुधे ।
 मध्यभागे समातिष्ठ पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥
 ॐ श्रीअयोध्यायै नमः ॥
 श्रीसरस्वतीश्वराध्ये नमस्तुभ्यं जगद्धिते ।
 श्रीकोसलोत्तरे भागे तिष्ठ पूजां प्रगृह्यताम् ॥
 ॐ श्रीसरस्वतये नमः ॥
 गङ्गादेवि महाभागे इहागच्छ नमोऽस्तु ते ।
 पूर्वभागे समातिष्ठ पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥
 ॐ श्रीगङ्गादेव्यै नमः ॥
 भो भूशक्ते नमस्तुभ्यमिहागच्छ शुभप्रदे ।
 याम्यभागे समातिष्ठ पूजनं स्वीकुरु मे ॥
 ॐ भूशक्त्यै नमः ॥
 वह्निबीज नमस्तुभ्यमिहागच्छ सुरार्चित ।
 याम्यभागे समातिष्ठ पूजनं संगृहाण मे ॥
 ॐ वह्निबीजाय नमः ॥

भोः केशरिभ्यस्तुभ्यमिहागच्छ ह्युचिमत ।
 याम्यभागे समातिष्ठ पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥
 ॐ श्रीकेशरिणे नमः ॥
 भोः सुषेण नमस्तुभ्यमिहागच्छ शुभप्रद ।
 याम्यभागे समातिष्ठ पूजनं स्वीकुरु मे ॥
 ॐ सुषेणाय नमः ॥
 ऋक्षराज नमस्तुभ्यमिहागच्छ शुभप्रद ।
 याम्यभागे समातिष्ठ पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥
 ॐ ऋक्षराजाय नमः ॥
 भो अङ्गद नमस्तुभ्यमिहागच्छ दृढव्रत ।
 याम्यभागे समातिष्ठ संगृहाण ममार्चनम् ॥
 ॐ श्रीअङ्गदाय नमः ॥
 भोः सुग्रीव नमस्तुभ्यमिहागच्छ प्रभोः प्रिय ।
 दक्षिणे ह्युपविश्याथ गृह्यतामर्चनं मम ॥
 ॐ श्रीसुग्रीवाय नमः ॥
 श्रीविमलादिशक्तिभ्य इहागच्छत वो नमः ।
 पश्चिमे ह्युपविश्याथ पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥
 ॐ श्रीविमलादिशक्तिभ्यो नमः ॥
 बिभीषण नमस्तुभ्यमिहागच्छ प्रभोः प्रिय ।
 पीठकस्योत्तरे भागे पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥
 ॐ श्रीबिभीषणाय नमः ॥
 नमो वो मन्त्रिणश्चाष्टाविहागच्छत तिष्ठत ।
 पूर्वभागे मया दत्तं पूजनं प्रतिगृह्यताम् ॥
 ॐ अष्टमन्त्रिभ्यो नमः ॥
 श्रीमते चक्रवर्तीन्द्र इहागच्छ नमोऽस्तु ते ।
 पूर्वभागे समातिष्ठ श्रीकौसल्यादिभिः सह ॥
 ॐ सपत्नीकाय श्रीदशरथाय नमः ॥
 श्रीलक्ष्मण नमस्तुभ्यमिहागच्छ सहप्रियः ।
 याम्यभागे समातिष्ठ पूजनं संगृहाण मे ॥
 ॐ सपत्नीकाय श्रीलक्ष्मणाय नमः ॥
 श्रीभरत नमस्तुभ्यमिहागच्छ सहप्रियः ।
 पीठकस्योत्तरे भागे तिष्ठ पूजां गृहाण मे ॥
 ॐ सपत्नीकाय श्रीभरताय नमः ॥
 श्रीशत्रुघ्न नमस्तुभ्यमिहागच्छ सहप्रियः ।
 पीठस्य पश्चिमे भागे पूजनं स्वीकुरु मे ॥
 ॐ सपत्नीकाय श्रीशत्रुघ्नाय नमः ॥
 श्रीहनुमन्मस्तुभ्यमिहागच्छ कृपानिधे ।
 पूर्वभागे समातिष्ठ पूजनं स्वीकुरु प्रभो ॥
 ॐ श्रीहनुमते नमः ॥

इस प्रकार भद्रा-भक्तिपूर्वक सब देवताओंका आवाहन करके पृथक्-पृथक् कोष्ठोंमें उनके नाम-मन्त्रोंसे भगवान् श्रीरामकी प्रसन्नताके लिये परमभक्तिसे उनकी पूजा करनी चाहिये। ॐ माहेश्वर्यै नमः आदि नाम-मन्त्र जो प्रत्येक आवाहन-मन्त्रके साथ आये हैं, उन्हींसे षोडशोपनार पूजा करनी चाहिये और कहना चाहिये—

अत्र ये पूजिता देवा मया पूजोपचारकैः ।

सन्तुष्टाः संप्रयच्छन्तु ममाभीष्टफलं सदा ॥

‘इस पीठपर मैंने पूजाकी सामग्रियोंसे जिन देवताओंकी पूजा की है वे प्रसन्न होकर सर्वदा मेरे मनोरथ पूर्ण करते रहें।’

उपर्युक्त प्रार्थना करनेके पश्चात् सीतासहित पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी पूजा यथाशक्ति अत्यन्त श्रेष्ठ सामग्रियोंसे करनी चाहिये।

सर्वप्रथम हाथोंमें पुष्प लेकर अञ्जलि बाँधकर परम-पुरुष परमात्माका नीचे लिखे अनुसार ध्यान करना चाहिये—

अथ ध्यानम्

रक्ताम्भोजदलाभिरामनयनं पीताम्बरालङ्कृतं
श्यामाङ्गं द्विभुजं प्रसन्नवदनं श्रीसीतया शोभितम् ।
कारुण्यामृतसागरं प्रियगणैर्भ्रात्रादिभिर्भोवितं
वन्दे विष्णुशिवादिसेव्यमनिशं भक्तेष्टमिद्विप्रदम् ॥

‘जो भक्तोंकी अभिप्राया पूर्ण करनेवाले हैं; ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि निरन्तर जिनकी सेवा किया करते हैं; हनुमान्, सुग्रीव एवं भरत आदि भाई बड़े प्रेमसे जिनकी आराधनामें लगे रहते हैं; जो अहैतुक और अनन्त करुणारूपी अमृतके सागर हैं; जिनके साथ श्रीसीताजी शोभायमान हो रही हैं, उन श्यामसुन्दर, द्विभुज, पीताम्बरधारी, प्रसन्नमुख, लाल कमलके दलके समान सुन्दर नेत्रवाले भगवान् श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ।’

ध्यानके पश्चात् पुष्पाञ्जलि करके भगवान् श्रीरामका आवाहन करना चाहिये—

आराध्य जानकीनाथ जानक्या सह राघव ।

गृहाण मम पूजां च वायुपुत्रादिभिर्युतः ॥

—इत्यावाहनमन्त्रः ॥

फिर नीचे लिखे मन्त्रोंसे पूजा करनी चाहिये—

सुवर्णरचितं राम दिव्यास्त्ररक्षणशोभितम् ।

आसनं हि मया दत्तं गृहाण मणिचित्रितम् ॥

—इत्यासनसमर्पणमन्त्रः ॥

इदं पाद्यं मया दत्तं दिव्यं नरवरोत्तम ।

प्रसीद जानकीनाथ गृहाण सम्मुखो भव ॥

—इति पाद्यसमर्पणमन्त्रः ॥

दिव्यौषधिरसोपेतं दिव्यसौरभ्यसंयुतम् ।

तुलसीपुष्पदभौक्ष्यमर्घ्यं मे प्रतिगृह्यताम् ॥

—इत्यर्घ्यसमर्पणमन्त्रः ॥

सुगन्धवासितं दिव्यं निर्मलं सरयूदकम् ।

गृहाणाचमनं नाथ जानक्या सह राघव ॥

—इत्याचमनसमर्पणमन्त्रः ॥

नमो रामाय भद्राय तत्त्वज्ञानस्वरूपिणे ।

मधुपर्कं गृहाणेमं जानकीपतये नमः ॥

—इति मधुपर्कसमर्पणमन्त्रः ॥

पञ्चामृतं मयानीतं पयो दधि घृतं मधु ।

युतं शर्करया देव गृहाण जगतीपते ॥

—इति पञ्चामृतस्नानसमर्पणमन्त्रः ॥

दिव्यतीर्थाहृतैस्तोयैः सर्वौषधिसमन्वितैः ।

स्नपयामि ह्यहं भक्त्या गृह्यतां जानकीपते ॥

—इति शुद्धोदकस्नानसमर्पणमन्त्रः ॥

सन्तसकाञ्छनप्रख्यं पीताम्बरमिदं हरे ।

संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥

—इति वस्त्रसमर्पणमन्त्रः ॥

यज्ञोपवीतं सौवर्णं मया दत्तं रघूत्तम ।

गृहाण सुमुखो भूत्वा प्रसीद कल्याणिषे ॥

—इति यज्ञोपवीतसमर्पणमन्त्रः ॥

किरीटं कुण्डलं हारं कङ्कणाङ्गदनूपुरम् ।

नानारत्नमयं त्वङ्गे भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥

—इति भूषणसमर्पणमन्त्रः ॥

प्रधानदेवनीयश्च सर्वमङ्गलकर्मणि ।

प्रगृह्यतां दीनबन्धो गन्धोऽयं मङ्गलप्रद ॥

—इति गन्धसमर्पणमन्त्रः ॥

मलयाचलसम्भूतं शीतमानन्दवर्द्धनम् ।

काश्मीरघनसाराङ्गं चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥

—इति चन्दनसमर्पणमन्त्रः ॥

नमः श्रीरामचन्द्राय नमो मङ्गलमूर्तये ।

उत्तरीयमिदं वस्त्रं गृहाण कल्याणिषे ॥

—इत्युत्तरीयवस्त्रसमर्पणमन्त्रः ॥

कोमलानि सुगन्धीनि मञ्जरीसंयुतानि च ।

तुलस्याः सुदलान्येव गृहाण रघुवल्लभ ॥

—इति तुलसीसमर्पणमन्त्रः ॥

सौरभाणि सुमाह्वयानि सुपुष्परचितानि च ।

नानाविधानि पुष्पाणि गृह्यतां जानकीपते ॥

—इति पुष्पमालासमर्पणमन्त्रः ॥



सिंहा श्रवथ जल वीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न ।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय सिन्न ॥

दूर्वादलसमायुक्तं पत्रं पुष्पं सहाङ्कुरम् ।
यत् तिलं महाभाग गृह्यतां सीतया सह ॥

—इति दूर्वापत्रपुष्पाङ्कुरादिसमर्पणमन्त्रः ॥

नमः श्रीजानकीनाथ सौन्दर्यादिगुणाम्बुधे ।
पादगुल्फादिपद्मेषु ह्यङ्गपूजां गृहाण मे ॥

—इत्यङ्गपूजामन्त्रः ॥

वनस्पतिरसोत्पन्नं सुगन्धाढ्यं मनोहरम् ।
धूपं गृहाण देवेश जानक्या सह राघव ॥

—इति धूपसमर्पणमन्त्रः ॥

घृतवर्तिसमायुक्तं कर्पूरादिसमन्वितम् ।
दीपं गृहाण देवेश मम सिद्धिप्रदो भव ॥

—इति दीपसमर्पणमन्त्रः ॥

पूपमोदकसंयावपयःपक्वादिकं वरम् ।
निर्मितं बहुसंस्कारैर्नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

—इति नैवेद्यसमर्पणमन्त्रः ॥

शीतलं स्वादु शुद्धं च परतृप्तिकरं जलम् ।
समस्तदेवदेवेश प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

—इति जलसमर्पणमन्त्रः ॥

सर्वाङ्गधिरसोपेतं सौरभं सरयूजलम् ।
आचम्यं च मया दत्तं गृहाण करुणानिधे ॥

—इत्याचमनसमर्पणमन्त्रः ॥

इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव ।
तेन मे सकला प्राप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥

—इति फलसमर्पणमन्त्रः ॥

फिर आचमन कराना चाहिये, तदनन्तर पुनः नीचे
लिखे मन्त्रोंसे पूजाको सम्पूर्ण करना चाहिये—

ताम्बूलं पूगसंयुक्तं चूर्णखादिरसंयुतम् ।
लवङ्गादियुतं दिव्यं राघव प्रतिगृह्यताम् ॥

—इति ताम्बूलसमर्पणमन्त्रः ॥

आञ्जनेय महाभाग रामभक्तिमहोदधे ।
प्रसादं रामचन्द्रस्य संगृहाण प्रसीद मे ॥

—इति श्रीहनुमते प्रसादसमर्पणमन्त्रः ॥

भ्रातृसुग्रीवकादिभ्यो देवेभ्यश्च यथार्हतः ।
प्रसादो रामचन्द्रस्य देयस्तुष्यन्ति तेन वै ॥

—इति भ्रातृसुग्रीवादिभ्यः प्रसादसमर्पणमन्त्रः ॥

नृत्यगीतादिवाद्यादिपुराणपठनादिभिः ।
राजोपचारैरखिलैः सन्तुष्टो भव राघव ॥

—इति राजोपचारसमर्पणमन्त्रः ॥

कर्पूरवर्तिसंयुक्तं गोघृतेन सुपूरितम् ।
नीराजनं गृहाणेदं कृपया भक्तवत्सल ॥

—इति नीराजनसमर्पणमन्त्रः ॥

मणिसौवर्णमाल्यैश्च युक्तं पुष्पाञ्जलिं प्रभो ।

गृहाण जानकीनाथ कृपया भक्तवत्सल ॥

—इति पुष्पाञ्जलिसमर्पणमन्त्रः ॥

श्रीफलं स्वादु दिव्यं च सुधाधिकतरं प्रियम् ।

सदक्षिणं गृहाणेदं प्रणतार्तिहर प्रभो ॥

—इति सदक्षिणश्रीफलबलिसमर्पणमन्त्रः ॥

श्रीवल्लभानन्त जगन्निवास श्रीराम राजेन्द्र नमो नमस्ते ।

त्वया सनाथं कुरु मामनाथं नाथ प्रभो दीनदयालुमूर्ते ॥

—इति स्तुतिमन्त्रः ॥

समस्तैरुपचारैश्च या पूजा तु मया कृता ।

सा सर्वा पूर्णतां यातु ह्यपराधं क्षमस्व मे ॥

—इति अपराधक्षमापनमन्त्रः ॥

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।

तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे ॥

—इति प्रदक्षिणामन्त्रः ॥

राजेन्द्रपुत्राय परात्पराय स्वच्छाय सस्मेरशुभाननाय ।

श्यामाय रामाय सहप्रियाय नमः सदाभीष्टफलप्रदाय ॥

—इति नमस्कारमन्त्रः ॥

सहप्रियस्त्वं हृदये वस प्रभो मुखे यशोनामगुणानुवादनम् ।

प्रीत्यार्चनं ते करवाणि सन्ततं प्रदेहि मङ्गं कृपया कृपांभुधे ॥

दयाब्धे जानकीनाथ महाराजकुमारक ।

ममाभीष्टं कुरुन्वाद्य शरणागतवत्सल ॥

—इति प्रार्थनामन्त्रः ॥

उपर्युक्त मन्त्रोंसे पूजा करनेके पश्चात् भगवान्की शरण
ग्रहण करे—

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।

पूजां चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वर ॥

—इति शरणमन्त्रः ॥

‘हे परमेश्वर ! मुझे आवाहनका ज्ञान नहीं है, विसर्जनका
ज्ञान नहीं है और पूजाका भी ज्ञान नहीं है । मैंने एकमात्र
तुम्ही शरण हो, तुम्हीं आश्रय हो ।’

इति स्तुत्वा शुभं तस्य माहात्म्यं शृणुयाद्विधे ।

तस्याशु राघवः प्रीत्या दद्यात्सर्वैप्सितं महत् ॥

हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार स्तुति करके उनके मंगलमय
माहात्म्यका श्रवण करना चाहिये । जो साधक ऐसा करता है,
भगवान् श्रीराम प्रसन्न होकर शीघ्र ही उसकी बड़ी-से-बड़ी
अभिलाषा भी पूर्ण कर देते हैं ।

श्रीरामार्चामाहात्म्य

श्रीपार्वतीने शिवजीसे कहा—‘हे भगवन् ! आप सब धर्मोंके
ज्ञाता एवं सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशारद हैं । लोगोंके उपकारके लिये

आपने अनेकों उपाय बतलाये हैं। उन यज्ञोंमें बहुत-से तन्त्र हैं, यन्त्र हैं, मन्त्रोंके अनेकों भेद हैं, विविध प्रकारके स्तोत्र हैं और योग, यज्ञ एवं व्रत हैं। सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाले तप हैं एवं दान हैं। इतना सब होनेपर भी अनेक क्लेशोंसे युक्त होकर लोग दुखी हो रहे हैं। लोग धनहीन, पुत्रहीन एवं आधि-व्याधिसे व्याकुल हो रहे हैं। उनकी कोई क्रिया सिद्ध ही नहीं होती, वे उपाय करते-करते थक गये हैं। इसलिये हे सर्व-शक्तिमान् और सर्वश प्रभो! आप अच्छी तरह सोचकर ऐसा उपाय बतलावे जिससे सबको तुरंत विश्वास हो जाय और जो सम्पूर्ण अभिरूपित वस्तुओंकी प्राप्ति करा दे, जिससे निश्चय सिद्धि प्राप्त हो जाय।' श्रीमहादेवजी बोले—'हे देवि! हे पार्वति! तुम धन्य हो, तुम बड़ी पुण्यवती हो; और तो क्या कहूँ, तुम स्वयं पुण्यरूपा हो। क्योंकि तुम सर्वदा सब लोगोंका कल्याण चाहती रहती हो। हे देवि! प्रेमसे सुनो, मैं एक बड़ा ही अद्भुत उपाय बतलाना हूँ जिसके करनेसे दुर्लभ सिद्धि सहज ही प्राप्त हो जाती है। वह उपाय है भगवान् श्रीरामचन्द्रका यज्ञ। वह समस्त साधनोंको सिद्ध करनेवाला है; धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्राप्त करनेवाला है; मानसिक शान्ति, सन्तोष और शारीरिक पुष्टि अर्थात् स्वास्थ्य देनेवाला है। ब्रह्मा यज्ञसे ही विश्वकी सृष्टि करते हैं, विष्णु इस यज्ञसे ही विश्वकी रक्षा करते हैं और हे पार्वति! मैं रुद्ररूपसे इस यज्ञके प्रभावसे ही (प्रलयके समय) सारे जगत्का नाश करता हूँ। विना श्रीरामयज्ञके दूसरे कर्मोंसे सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती; यह श्रीरामयज्ञ पूजा, दान, जप, तपस्या सबको पूर्ण कर देता है। हे लोकोपकारके व्रतमें लगी हुई देवि पार्वति! यह यज्ञ किये विना लोगोंको सिद्धि नहीं मिल सकती, इसलिये तुम्हें बड़े-बड़े यज्ञोंसे भी उत्तम एवं सम्पूर्ण तपस्या और दानका फल देनेवाली रामार्चाका वर्णन करता हूँ। हे कल्याणि! सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि करनेवाली, सम्पूर्ण विघ्नोंको नष्ट करनेवाली, मङ्गलमयी रामार्चाका अनुष्ठान करके कोई मनुष्य दुःख नहीं पाता, अर्थात् वह सुखी हो जाता है। रामार्चासे बढ़कर कोई यज्ञ नहीं है; रामार्चासे बढ़कर कोई तप नहीं है, रामार्चासे बढ़कर कोई दान नहीं है, रामार्चासे बढ़कर कोई जप नहीं है। तीनों लोकोंमें रामार्चासे बढ़कर कोई उत्तम पुण्य नहीं है, इसलिये यह जीवोंको मुक्ति देनेवाली सर्वश्रेष्ठ केवल रामार्चा ही सेवन करना चाहिये। यह रामार्चन परम सिद्धिको प्रदान करनेवाला है, मङ्गलमय है, सम्पूर्ण वाञ्छित फलोंको देनेवाला है, सम्पूर्ण अनिष्टोंको नष्ट करनेवाला है, सम्पूर्ण उपद्रवोंको शान्त करनेवाला है एवं शोष ही सिद्ध होनेवाला है। शारीरिक और मानसिक क्लेशों—आधि-व्याधियोंको नष्ट करनेके लिये यह महान् शास्त्र है,

अभिलाषासे अधिक फल देनेवाला है। पुत्र-पौत्रादिरूप सांसारिक सुख देनेवाला है, आध्यात्मिक बल एवं शारीरिक शक्तिको बढ़ानेवाला है। जिनका राज्य नष्ट हो गया है उन्हें उनका राज्य देनेवाला है, जो धनहीन हैं उन्हें धन देनेवाला है। दुर्भिक्षमें वर्षा करनेवाला है एवं बड़े-बड़े उत्पातोंका निवारण करनेवाला है। यह लौकिक शत्रुओं अथवा काम, क्रोधादि आध्यात्मिक शत्रुओंका नाशक है; लौकिक मित्रों अथवा आध्यात्मिक मित्रों—दैवी सम्पत्ति आदिकोंका वर्धक है। जो महान् दरिद्रता और दुर्भाग्यसे दुखी हो रहे हैं उन्हें सुख देनेवाला है, सौभाग्य और सन्तति देनेवाला है, सब ऐश्वर्य एवं सुख देनेवाला है; क्षय, अपस्मार, कुष्ठ आदि महान् रोगोंकी पीड़ा मिटानेवाला है। ऋणके भारको नष्ट कर देनेवाला है, ग्रहोंके विग्रहको दूर कर देनेवाला है। क्रोध और मात्सर्यको हर लेनेवाला है, दोष और दुर्बुद्धिको नष्ट कर देनेवाला है। क्षमा, सुशीलता, सहृदयता आदि मनुष्योंको प्रकाशित करनेवाला है। षड्विकारोंको नष्ट करनेवाला है एवं भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालोंका ज्ञान पैदा करनेवाला है। जो मुक्ति चाहते हैं उन्हें मुक्ति देनेवाला है। जिन्हें किसीका सहारा नहीं है, जो किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे हैं, उन्हें सहारा देनेवाला है, सन्मार्ग दिखानेवाला है। जिनका चित्त बड़े-बड़े सङ्कटोंसे सन्तप्त हो रहा है उन्हें अत्यन्त सुख देनेवाला है। हे पार्वति! रामार्चनके अतिरिक्त सम्पूर्ण अभीष्टोंको पूर्ण करनेवाला कोई दूसरा साधन मैं नहीं देख रहा हूँ और हे देवि! मैंने कोई दूसरा साधन सुना भी नहीं है। सब कल्याण चाहनेवालोंके लिये यह रामार्चा ही सिद्धिरूप है, उन्हें इसे छोड़कर होम, मद्रवत, तीर्थ, तपस्या और यज्ञोंसे कोई प्रयोजन नहीं है। हे देवि! और दूसरी उग्र पूजाओंसे एवं बड़े परिश्रमसे सिद्ध होनेवाले साधनोंसे क्या लाभ है? केवल रामार्चनसे ही कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती अर्थात् सब मिल जाती हैं। हे देवि! साधक जिन-जिन वस्तुओंका चिन्तन करता है, उन वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है। इस संसारमें जो और बहुत-से साधन हैं वे रामार्चाके विना कदापि सिद्ध नहीं होते। जो रामार्चन न करके दूसरे व्रत आदि साधनोंको करता है वह बहुत लम्बे समयमें भी उनके फलका अधिकारी नहीं होता। जैसे ग्रहोंमें सूर्य सर्वश्रेष्ठ हैं, जैसे नक्षत्रोंमें चन्द्रमा सर्वश्रेष्ठ हैं, वैसे ही हे देवि! सब सत्कर्मोंमें रामार्चन सर्वश्रेष्ठ है। इस विषयमें मैं तुम्हें एक बहुत ही सुन्दर पौराणिक कथा सुनाता हूँ—

प्रलयके अन्तमें सृष्टिके प्रारम्भमें भगवान् महाविष्णुके नाभिकमलसे जगद्गुरु ब्रह्मा पैदा हुए, उस समय इस सारे विश्वको तमोगुण या अज्ञानमें लीन देखकर वे बड़े दुखी हुए। मैं इस

कमलपर अकेले रहकर क्या करें ? वे इस चिन्तामें पड़ गये । उस समय कमलसे पैदा हुए ब्रह्माको लक्ष्य करके यह आकाशवाणी हुई—‘हे ब्रह्मन् ! अपनी वृत्तियोंसे उत्पन्न एवं अनेक विषयोंसे भरी हुई महान् सृष्टि करो ।’ ब्रह्मा मन-ही-मन सृष्टिके लिये बहुत चिन्ता करने लगे । उस समय चिन्तासे व्याकुल होनेपर भी ब्रह्मा सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं हुए, तब उन्होंने परमपिता परमात्माका स्मरण किया—‘जिन्होंने मेरी उत्पत्ति की है, जिन्होंने आकाशवाणीसे मुझे समझाया है, वे ही सब कुछ करने-करानेवाले आज मेरी आँखोंके सामने प्रकट हों । मैं सर्वथा उन्हींकी शरणमें हूँ और बारंबार उन्हें नमस्कार करता हूँ ।’ हे देवि ! सनातन पुरुष महाविष्णु ब्रह्माके इस स्मरणसे उनके सामने प्रकट हुए । भगवान् विष्णुने आकर ब्रह्मासे कहा—‘हे ब्रह्मन् ! तुम रामार्चन करो ।’ ब्रह्मा उनकी बात सुनकर नमस्कार करके, स्तुति करके आदरके साथ बोले—‘हे देवाधिदेव ! मैं भगवान् रामकी पूजा कैसे करूँ, तो आप मुझे इस समय बतलावे ।’ भगवान् विष्णुने कहा—‘हे ब्रह्मन् ! एकप्रताके साथ सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाली रामार्चाका श्रवण करो । जिस रामार्चाके करनेसे सभी मनुष्य बड़े भाग्यवान् और पवित्र हो जाते हैं उसकी विधि मैं अच्छी तरह कहता हूँ, सावधान होकर श्रवण करो । श्रीरामजीके भक्तों, भाई-बन्धुओं, मित्रों और ब्राह्मणोंको बुलाकर हार्दिक भक्तिभावसे अपने सम्पूर्ण अभीष्टोंकी सिद्धिके लिये उन सबको प्रसन्न करे । बुद्धिमान् पुरुष अयन, सन्नान्ति, पञ्चमी, पूर्णिमा, द्वादशी, नवमी और अमावस्याके दिन अथवा जिस किसी भी दिन दोपहरको अथवा सायंकालको भगवान् रामकी पूजा करे । पहले तीर्थ आदि पवित्र स्थानोंमें स्वच्छ जल और मिट्टीसे लिपी-पुती परिमार्जित भूमिमें सुन्दर मण्डप बनावे । श्रद्धायुक्त होकर उस मण्डपको लाल चाँदनी, पताका, तोरण और मनको हरण करनेवाले चार दरवाजोंसे शोभायमान करे । चारों द्वारोंपर चावलके ऊपर सवख, सदीप, सपलव एवं सचित्र और जटसे भरे हुए कलशोंकी स्थापना करे । चारों कोनोंपर फलसहित केलोंके खंभे लगा दे । मण्डपके बीचमें चौकीना पीठ, जो कि बराबर, चिकना और सुन्दर हो, स्थापित करे । उस पीठपर पीला वस्त्र बिछा दे और नीले, पीले, सफेद एवं काले चावलके चूर्णोंसे सुन्दर-सुन्दर इक्कीस कोष्ठका यन्त्र बनावे; उसके बीचमें परिकरोंके साथ श्रीरामचन्द्रका भक्तिपूर्वक आवाहन करे और माहेश्वर्यादि आवरण देवताओंका भी आवाहन करे । हे ब्रह्मन् ! सामने स्थित गौरी-गणेश्वरकी पूजा करनी चाहिये और पूर्व भागमें विधिपूर्वक महाशक्तिकी पूजा करनी चाहिये । दक्षिणमें महालक्ष्मीका, पश्चिममें महादुर्गाका, एवं उत्तरमें गायत्री, सावित्री, वाणी एवं सव मातृकाओंका पूजन करे । ईशानकोणपरसिद्धि और बुद्धिकी, अग्निकोणपर लोकमाताकी, ऋत्युकोणपर महादेवीकी

और वायव्यकोणपर देवमाताकी पूजा करनी चाहिये । दक्षिण और नैऋत्यके बीचमें वास्तुदेवीकी, और नैऋत्य-पश्चिमके बीचमें आठ वीर लोकपतियोंकी पूजा करनी चाहिये । पश्चिममें मनुकी, पश्चिम और वायव्यके बीचमें वसिष्ठ आदिकी, वायव्य और उत्तरके बीचमें अधिदेवता और प्रत्यधिदेवताओंकी पूजा करनी चाहिये । उत्तर और ईशानके बीचमें ब्रह्माकी पूजा करनी चाहिये, ईशान और पूर्वके बीचमें ग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये । पूर्व और अग्निकोणके बीचमें दिक्पालोंकी, अग्निकोण और दक्षिणके बीचमें शिवकी, बीचमें अयोध्याकी और उत्तरमें सरयूकी पूजा करनी चाहिये । पूर्वमें गङ्गाकी, दक्षिणमें भृशक्तिकी और फिर दक्षिणमें नल, नील, केशरी एवं सुषेणकी पूजा करनी चाहिये । ऋक्षराज जाम्बवान्, अङ्गद और सुग्रीवकी पूजा भी दक्षिणमें ही करनी चाहिये । पश्चिममें विमलादि शक्तियोंकी और उत्तरमें पराभक्तिसे युक्त विभीषणकी नित्य पूजा करनी चाहिये । पूर्वमें सर्वशास्त्रविशारद आठ मन्त्रियोंकी और पूर्वमें ही कौसल्यादि रानियोंसे युक्त महाराज दशरथकी पूजा करनी चाहिये । दक्षिणमें सशक्ति लक्ष्मण, पश्चिममें सशक्ति शत्रुघ्न और उत्तरमें सशक्ति भरतकी पूजा करनी चाहिये । पूर्वमें हनुमान्की पूजा करनी चाहिये । कर्मशः इस प्रकार करके तब पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी पूजा करनी चाहिये ।

पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, पञ्चामृतादिके, स्नान, पीताम्बर, यज्ञोपवीत, चन्दन, तुलसीदल आदिके, यव, अक्षत, तिलोंसे, पुष्पोंसे, मालासे, दूबके सुन्दर और कोमल अङ्गुरोंसे, धूपसे, दीपसे, सुन्दर नैवेद्यसे, सुगन्धयुक्त ताम्बूलसे भगवान्की पूजा करना चाहिये । अनेकों प्रकारके सुन्दर पक्वान्तोंसे, स्वादिष्ट फलोंसे तथा मोदक आदिके युक्त पाँच सेरसे अधिक नैवेद्य श्रेष्ठ होता है । साधकको चाहिये कि नारियलकी बलि दे, उसके पश्चात् आरती करे, चार प्रदक्षिणा करके दण्डवत् प्रणाम करे और प्रभुसे प्रार्थना करे । भगवान् श्रीरामका प्रसाद हनुमान्को देना चाहिये, वायुनन्दन हनुमान् प्रसन्न होकर अपनी वाञ्छित वस्तु देने हैं । हे ब्रह्मन् ! इस प्रकारकी विधिसे भक्तिपूर्वक रामार्चा करनी चाहिये । अपने पास जैसी सम्पत्ति हो वैसा ही करना चाहिये । उसमें धनको कंजूसी नहीं करनी चाहिये । सुवर्णकी प्रतिमामें, शालग्रामकी शिआपर अथवा तिलोंकी राशिपर भगवान् श्रीरामकी पूजा करनी चाहिये ।

हे वत्स ! पहले कल्पमें बचपनमें तुमने सृष्टिके लिये मेरी आज्ञासे चित्रकूटमें मन्दाकिनीके तटपर श्रीरामार्चा की थी । हे महाभाग ! पूजाके अन्तमें भगवान् श्रीराम प्रकट हुए, उन्होंने तुम्हें वर दिया और फिर वे अन्तर्धान हो गये । उस

समय तुमने भर्त्ताको भगवान्का प्रसाद देकर फिर स्वयं पाया था; तुम्हारे मनमें जो-जो अभिलाषा थी, तुम्हारा जो अभीष्ट था, वह पूर्ण हो गया। जो प्रेमी पुरुष अपने भाई-बन्धुओंको बॉटकर रामार्चाका प्रसाद स्वयं प्राप्त करता है, उसकी मनोकामनाएँ अवश्य शीघ्र ही पूरी हो जाती हैं। हे ब्रह्मन् ! यदि कोई रामार्चाका प्रसाद नहीं खाता तो वह बड़े-बड़े दुःखोंसे दुःखित होकर नरकमें जाता है। मनसे, वाणीसे, कायसे, कर्मसे हुए, करोड़ों जन्मके किये ब्रह्महत्यादि बड़े-बड़े पाप भगवान् रामका प्रसाद पाते ही नष्ट हो जाते हैं। हे ब्रह्मन् ! जो इस प्रकार शास्त्रोक्त विधानसे रामार्चा करता है उसके मनकी अभिलाषाएँ शीघ्र ही पूरी हो जाती हैं।' हे पार्वति ! इतना कहकर विष्णु अन्तर्धान हो गये। लोकपति ब्रह्मने भगवान् श्रीरामकी पूजा की, उससे उनके सब अभीष्ट सिद्ध हो गये। ब्रह्मने जो-जो सोचा वह सब तुरंत प्राप्त हो गया। ब्रह्मलोकमें देवगण सर्वदा भगवान् श्रीरामकी पूजा किया करते हैं। रामार्चाके प्रभावसे वे सब परमानन्दसे युक्त रहते हैं और सबके लिये जो दुर्लभ हैं ऐसे विविध प्रकारके भोग भोगा करते हैं।'

श्रीपार्वतीने कहा—हे देव ! हे देवेश ! पहले किन-किन महात्माओंने रामार्चा की है, मैं वह सुनना चाहती हूँ। आप सर्वदा मुझे प्रसन्न रखते हैं, इसलिये मुझसे अब वह बात कहें। श्रीशिवने कहा—देवि, सुनो, मैं पूजामाहात्म्यसे संयुक्त पुण्यस्वरूप एवं पापोंसे छुड़ानेवाली तथा सब प्राणियोंका कल्याण करनेवाली उस कथाका वर्णन करता हूँ। मथुरा नगरमें एक बड़ा ही धर्मज्ञ ब्राह्मण रहता था। वह पृथुक नामसे प्रसिद्ध था और महारोगसे पीड़ित था। उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने अनेकों प्रकारके यत्न किये, परन्तु वह रोगकी बाधाओंसे मुक्त नहीं हो सका। इससे उसे बड़ी ग्लानि हुई। वह एकाएक घरसे निकल पड़ा और बहुत दुखी होकर व्याघ्र आदिसे संयुक्त वनमें भटकने लगा। वह मृत्युका निमित्त ढूँढ़ रहा था। हे देवि ! आत्महत्याके पापके भयसे उसने विप खाकर अपने शरीरका त्याग नहीं किया। वनमें भटकते-भटकते उस ब्राह्मणको भृगुपुत्र महर्षि ऋचीकके दर्शन हुए। उसने महाबाधासे पीड़ित और दुःखसे आर्त होकर ऋचीकके चरणोंमें प्रणाम किया और रोने लगा। ऋचीकने उस ब्राह्मणसे कहा—भाई ! तुम क्यों रो रहे हो ? कुछ कारण तो बताओ। ऋचीककी बात सुनकर पृथुकने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं ब्राह्मण हूँ और पृथुक नामसे प्रसिद्ध हूँ। हे विद्वन् ! मैं सब व्याधियोंसे युक्त और महारोगसे पीड़ित हूँ। जिस उपायसे मेरा दुःख नष्ट हो, हे कृपानिधे ! आप कृपा करके मुझे वही उपाय बतलावे। ब्राह्मणका

बात सुनकर ऋचीकको बड़ी दया आयी और उन्होंने ब्राह्मणसे कहा कि तुम रामार्चा करो। पृथुकने कहा—हे विद्वन् ! हे परंतप ! आप रामार्चाकी विधि बतावें। उसकी बात सुनकर ऋचीकने कहा—हे ब्राह्मण ! तुम मेरे वचन सुनो। कुशनाभके पुत्र गांधि मेरे श्वशुर हैं और बड़े धार्मिक हैं। उन्हें पहले कोई पुत्र नहीं था, इससे निरन्तर वे दुखी रहते थे। उनकी लड़की मेरी पत्नी है, उसने मुझे प्रसन्न किया। मैंने प्रसन्न होकर उससे कहा—‘हे सुन्दरि ! तुम वर माँगो। उसने कहा—हे प्रभो ! मैं यह वर माँगती हूँ कि मेरे भाई हो जाय। ‘हे महाभाग ! ऐसा ही हो’ इस प्रकार कहकर मैं भृगुके पास चला गया। और हे ब्राह्मण ! ब्रह्मवेत्ता भृगुको मैंने वह वृत्तान्त सुनाया। भृगुने मेरी बात सुनकर यह कहा कि हे पुत्र ! गांधिको पुत्र प्राप्त करानेके लिये उन दोनों स्त्री-पुरुषोंसे विधिपूर्वक प्रेमसे रामार्चा कराओ। रामार्चाके प्रसादसे शीघ्र ही उन्हे सत्पुत्र प्राप्त होगा। उसकी विधि सुनकर मैं अपने श्वशुर गांधिके पास आया और वह सब बातें कही। उन्होंने पत्नीके साथ विधिपूर्वक भगवान् श्रीरामकी पूजा की। उस समय भगवान् श्रीरामके प्रसादको पानेसे गांधिकी धर्मपत्नीने गर्भ धारण किया। उसके गर्भसे बड़ा ही धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह विश्वामित्रके नामसे प्रसिद्ध हुआ, जो क्षत्रियसे ब्राह्मण हो गया। मैंने पहले भृगुसे श्रीरामार्चा सुनी है। वह सौभाग्य एवं सन्ततिको देनेवाली है तथा सम्पूर्ण अभीष्टोंको पूर्ण करनेवाली है। इसलिये हे महाभाग ! तुम इस परम सुख देनेवाले महायज्ञका अनुष्ठान करो। ऋचीककी बात सुनकर वह ब्राह्मण अपने घर चला गया।

हे देवि ! उस ब्राह्मणने भगवान् श्रीरामकी पूजा की, नैवेद्य भोजन करनेसे उसका महारोग नष्ट हो गया और पृथुक ब्राह्मण अत्यन्त सुखी हो गया। उसे बहुत ही शीघ्र फल मिला, उसके बाद वह सर्वदा रामार्चामें ही रत रहने लगा। एक दिन पूर्णिमाको पृथुक रामपूजा कर रहा था। उस पूजामें उसके सब भाई-बन्धु एकत्र थे। वहाँ एक धीवर आया, वह सर्वदा हिंसामें लगा रहनेवाला और दुष्ट था। उसका नाम था बन्धुक। वहाँ उसने रामार्चा देखी और भगवान् रामके उत्तम प्रसादका भोजन किया। उसके पश्चात् वह निर्धन अत्यन्त लोभके कारण दूसरे देशमें चला गया। वह बड़ा पापी था, उसने बड़े-बड़े अघ किये थे। सौराष्ट्रदेशमें बाधके द्वारा वह मारा गया। बड़े क्रोधी और भयङ्कर यमदूत उसे लेनेके लिये आये। वे पाशोंसे बाँधकर ले ही जाना चाहते थे कि भगवान् श्रीरामके पार्षद वहाँ आ गये। उन्होंने यमदूतोंको पीड़ित करके कहा कि यह बड़ा शुद्ध और अच्छा धार्मिक है। इसे भला दण्ड कैसे

दिया जा सकता है ! यमराजके दूतोंने कहा—‘यह बड़ा पापी है; इसने गौ-ब्राह्मणोंकी हत्या की है, चोरी की है और सदा हिंसामें लगा रहा है ।’

पार्षदोंने कहा—हे पापियोंको पीड़ा देनेवाले यमदूतों ! जिसने एक बार भी रामार्चाका प्रसाद पा लिया है वह शुद्ध है; धर्म, अर्थ, काम तीनोंसे युक्त है और वह साकेतमें जाता है । इतना कहकर उसे पुष्पकमें बैठाकर वे भगवान् रामके पास चले गये । यमदूतोंने यमराजके पास जाकर वह वृत्तान्त सुनाया । यमराजने मन-ही-मन श्रीभगवान् रामके महान् प्रभावका चिन्तन किया ।

हे देवि ! तदनन्तर भगवान् श्रीरामको प्रणाम करके धर्मराजने अपने दूतोंसे कहा कि एक बारका किया हुआ रामकीर्तन, एक बारका किया हुआ रामपूजन सर्वश्रेष्ठ फल देनेवाला है । जो एक बार श्रीरामका प्रसाद पा ले, वह तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाला, सब पापोंसे मुक्त एवं देवता और दानवोंका पूजनीय हो जाता है । भगवान्के अनुग्रहका पात्र होनेके कारण वह सम्पूर्ण प्राणियोंमें उत्तम संत है । रामार्चाके प्रभावका पूर्णतः वर्णन कोई नहीं कर सकता । यह रामार्चा रामस्वरूप होनेके कारण सब प्राणियोंको सिद्धि देनेवाली है । जो रामार्चासे सिद्ध न हो जाय ऐसा कोई काम नहीं है । यमराज इस प्रकार अपने दूतोंको समझाकर भगवान् रामके भजनमें लग गये । इस प्रकार श्रीरामपूजाका प्रभाव सर्वथा अनिर्वचनीय है । हे देवि ! जो रामार्चा करते हैं वे ही श्रेष्ठ मनुष्य हैं । वे सम्पूर्ण महर्षियोंके पूजनीय, रामस्वरूप हो जाते हैं । दस लाख अश्वमेध और दस लाख राजसूय रामार्चाके प्रसादके सोलहवें हिस्सेके बराबर भी नहीं है ।

हे प्रिये ! श्रीरामकी पूजा करके श्रीरामका प्रसाद जो हनुमान्को देता है उसके सब अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं । प्रसन्न मनसे जो-जो वस्तु श्रीरामचन्द्रको अर्पण करे वह सब विशेषरूपसे श्रीवायुनन्दन हनुमान्जीको भी अर्पित करनी चाहिये । वायुनन्दन श्रीहनुमान्जी रामार्चासिद्धिके साक्षात् फलस्वरूप है, इसलिये पूरी शक्तिसे भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले हनुमान्जीको प्रसन्न करना चाहिये ।

श्रीपार्वतीजीने कहा—‘हे स्वामिन् ! हे कृपासिन्धो ! और किस-किसने संसारमें यह कल्याणप्रद रामार्चा की है ! आप कृपा करके कहें, क्योंकि मुझे सुननेसे बड़ा ही आनन्द होता है ।’

श्रीमहादेवजीने कहा—देवि ! पहले विशाला नगरीमें एक वैश्य रहता था, उसका नाम था सरम । वह बड़ा

धनी था और साथ ही असत्यवादी था । उसने देवताओंकी मानता मानी, ब्राह्मणोंको दान करनेका संकल्प किया; परन्तु न पूजा की, न दान दिया । हे देवि ! इस पापसे उसका सारा धन नष्ट हो गया । वह अत्यन्त दीन, मलीन, दुखी, भूखा, प्यासा और दरिद्र होकर इधर-उधर भटकने लगा । दुःख असह्य हो जानेके कारण उसने आत्महत्याका विचार किया । वह वैश्य हिमालयपर गया, जहाँ भगवान् नारायण रहते हैं । भगवान् नारायणने उस वैश्यको अत्यन्त दीनतासे युक्त देखकर उसपर कृपा की ।

ब्राह्मणका रूप धारण करके वे सरमके पास आये । भगवान्ने सरमसे कहा—‘तुम कौन हो और तुम क्यों इतने दुखी हो रहे हो ?’ उनकी बात सुनकर ब्राह्मणको प्रणाम करके सरमने कहा—‘हे महाभाग ! मैं वैश्य हूँ और मेरा नाम सरम है । मैं पहले बड़ा धनी और बड़ा सुखी था । साथ ही उद्धत भी था । न जाने किस पापसे मेरा सब धन नष्ट हो गया । इससे मैं बहुत दुःखित और दीन हो गया । अनेकों प्रकारके उपद्रवोंसे व्याकुल हो गया । प्रतिदिन भाइयोंसे झगड़ा होने लगा, खानोंको अन्न न रहा, पहननेको वस्त्र नहीं रहा । हे ब्राह्मण ! अब मैं भीख माँगकर खाता हूँ, मरनेके निकट पहुँच गया हूँ, अब कैसे जीवन धारण करूँ !’ हे देवि, वैश्यकी बात सुनकर दयालु ब्राह्मणने कहा ।

अत्यन्त कृपणतासे, लोभसे और असत्यसे धन और सुखका सर्वथा नाश हो जाता है तथा बहुत दुःख होता है । तुमने प्रतिज्ञा करके भी देवताओं और ब्राह्मणोंको दान नहीं किया है । हे दुर्बुद्धे ! यही कारण है कि तुम्हें इतना बड़ा दुःख भोगना पड़ रहा है ।

वैश्यने कहा—हे ब्राह्मण देवता ! सचमुच मैंने सबी बात तो कभी कहीं ही नहीं । देवता और ब्राह्मणोंको कहकर भी नहीं दिया । बिना कारणके ही मेरे सब ऐश्वर्य एवं भाई-बन्धु नष्ट हो गये । हे महाभाग ! अब ऐसा उपाय बताइये जिससे मैं सुखी हो जाऊँ ।

ब्राह्मणने कहा—हे वैश्य ! जो अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं करते, जो रामभक्तिसे पराङ्मुख हैं, उनके सब धर्म नष्ट हो जाते हैं और वे अपने वंशके साथ यमपुरीको जाते हैं । जो देवता और ब्राह्मणको देनेका वादा करके नहीं देता, यदि उसके दर्शन हो जाय तो उस पापको मिटानेके लिये चान्द्रायण व्रत करना चाहिये । असत्यसे बढ़कर कोई पाप नहीं है और सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है । इसलिये बुद्धिमान् पुरुष असत्यका

परित्याग करके सत्यका आश्रय लेते हैं। जो असत्यका आश्रय लेते हैं वे पापी पद-पदपर विघ्नसे पराजित होते हैं, दरिद्र हो जाते हैं, वंशहीन हो जाते हैं और उन्हें बड़े-बड़े रोग घेर लेते हैं। अनेकों जन्ममें भी उनका दुःख मिटना कठिन है। मनुष्य सच्चे मनसे जो कुछ करता है उसका फल बहुत ही शीघ्र प्राप्त करके वह देवताओं के साथ आनन्द-निहार करता है।

वैश्यने कहा—भगवन् ! आप सब धर्मों के ज्ञाता एवं परम दयालु हैं। मैंने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ी है, बड़े-बड़े पाप किये हैं, कृपणता की है; अब मैं अत्यन्त दीन हो रहा हूँ, आप मुझपर कृपा करें। हे महाभाग ! मुझपर कृपा करके आप वह उपाय बतावें जिससे सुगमतासे मेरे दुःख और पाप नष्ट हो जायें। ब्राह्मणने कहा—तुम यथाशक्ति विधिपूर्वक सावधानी के साथ रामार्चा करो। उसके करनेपर सब पापों का नाश हो ही जाता है, इसमें सन्देह नहीं। वैश्यने कहा—हे कृपासिन्धो ! आप विधि बतलाइये, मैं वह पूजा कैसे करूँ जिससे कि मेरी सब आपत्ति शीघ्र ही नष्ट हो जाय।

ब्राह्मणने कहा—केन्द्रे के स्तंभसे शोभायमान, तोरण, पताका एवं लाल-पीली चाँदनीसे युक्त मण्डपका निर्माण करे। उसके बीचमें अनेक दिव्य उपचारोंसे भगवान् श्रीरामकी पूजा करे। हे वैश्यवर्य ! रामपूजामें ब्राह्मण और साधुओं का भी स्तुकार करे। जो ऐसा करता है वह इस लोकमें सब सुख भोगकर श्रीरामके साथ आनन्दित होता है। जो मनुष्य रामार्चाका प्रसाद पाता है, उसे आयु, आरोग्य और ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। जो नीच मनुष्य रामार्चाका प्रसाद त्याग देते हैं, वे वंशहीन एवं दुखी होकर घोर नरकमें जाते हैं। जो मनुष्य रामार्चाका प्रसाद मित्रों और भाई-बन्धुओं को बाँटता नहीं, वह अवश्य दग्ध होता है। इसलिये रामभक्तों और मित्रों के साथ रामार्चा अवश्य करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला बहुत ही शीघ्र अपने दुर्लभ वाञ्छित फलको प्राप्त करता है। वह इस लोकमें सुख भोगकर मृत्युके पश्चात् मोक्ष प्राप्त करता है। अतः श्रद्धा के साथ रामार्चा करनी चाहिये, धन की कंजूसी नहीं करना चाहिये। हे महाभाग ! रामार्चा के हवन, पूजन, दानमें मनुष्य जो कुछ व्यय करते हैं उसका कोटि-कोटि गुना प्राप्त करते हैं। हे देवि ! इतना कहकर वह धर्मवेत्ता ब्राह्मण चुप हो गया।

सरमने कहा—हे ब्राह्मणदेव ! पहले किसने यह

पूजा की है अथवा अबतक किसीने नहीं की है ! हे महाभाग ! आप रामार्चाकी पवित्र कथा कहिये। ब्राह्मणने कहा कि—‘मधु-कैटभ दैत्यको मारनेके लिये मैंने संकल्प करके यह पूजा की थी। पहले सृष्टिके आदिमें नारद आदिके साथ ब्रह्माने भी की है।’ इतना कहते ही वैश्यने ब्राह्मणको पहचान लिया, उन्हें भगवान् समझकर अत्यन्त आनन्दयुक्त होकर वह पृथ्वीपर दण्डवत् गिर पड़ा और कहने लगा कि हे प्रभो ! मुझ पापीकी रक्षा करो। भगवान् नारायणने वैश्यको अत्यन्त प्रेमसे परिपूर्ण देखकर अपना स्वरूप प्रकट किया और उसे रामार्चाकी विधि बतलायी।

श्रीशिवजीने पार्वतीजीसे कहा—भगवान् इतिहासके साथ विधिका वर्णन करके अन्तर्धान हो गये। हे देवि ! सरम वैश्यने विधिपूर्वक रामार्चा की। पूजामें भगवान् श्रीरामका प्रसाद उसने वायुनन्दन हनुमान्को समर्पित किया। हनुमान्ने प्रसन्न होकर उसे सब ऐश्वर्य दे दिये। वह सब सुग्रीवसे सम्पन्न हो गया। उसे धन, पुत्र और पौत्र प्राप्त हो गये। इस लोकमें सुख भोगकर मृत्युके पश्चात् उसने मुक्ति प्राप्त की।

श्रीपार्वतीजीने कहा—हे भगवन् ! यह श्रेष्ठ एवं कल्याणमय यज्ञ—रामार्चा करनेका अधिकार किन वर्णोंको है ? अब्बा क्या इसको सब कर सकते हैं ? मो कृपा करके कहिये।

श्रीमहादेवजीने कहा—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य एवं सभी आश्रमियोंको रामार्चा करनी चाहिये। शूद्रोंकी रामार्चा ब्राह्मणोंके द्वारा होनी चाहिये, ऐसा कहा गया है। हे देवि ! बुद्धिमान् पुष्पको चाहिये कि उत्तम वस्तुओं, पुष्पों, पत्रों, यवाङ्गुरों, तिलों, पीताम्बरों, दूध, श्रीफल, चारुबीजक, दिव्यान्नके गूँथ चूर्ण, घृत, दिव्य सुन्दर वस्तुओं, शुद्ध चीनी, नाना प्रकारके सुन्दर फल, इलायची आदि सुगन्धित पदार्थोंसे भगवान् श्रीरामकी पूजा करे। इसके विषयमें तुमसे मैं एक प्राचीन इतिहास कहूँगा।

कलिंगदेशमें उत्पन्न एक विमद नामका ब्राह्मण था। वह बड़ा पापी और दुष्ट था, वह देशसे निकाल दिया गया। वह महाधूर्त भगकर गुजरातमें आया और वहाँ एक वैश्याके साथ पँस गया। दरिद्र तो था ही, रातमें राजाके बर्गोंके फूलोंकी चोरी करता। पुष्प लेकर वह वैश्याको प्रसन्न करनेके लिये दिया करता था। एक दिन रातमें चोरीसे फूल लेकर उसने दिये। हे पार्वति ! मार्गमें उसके हाथसे एक स्थलकमल गिर गया। संयोगकी बात है कि उसी समय धर्मदत्त

रामार्चाके लिये फूल लेने जा रहे थे। उन्होंने देखा कि मार्गमें बड़ा ही सुन्दर और नवीन पुष्प गिरा हुआ है, उन्होंने उसे उठाकर दोनोंमें रख लिया। उन ब्राह्मणने दूसरे वनसे और फूल लाकर भगवान् श्रीरामकी पूजा की। अब विमद बड़ा ढीठ हो गया था। उसने एक दिन किसी ब्राह्मणके पवित्र घरमें चोरी की। लोगोंने उसे देख लिया और इतना मारा कि वह मर गया। यमदूतने वह सब समाचार यमराजको सुनाया। यमराजने कहा कि यह महाकल्पभर नरकमें रहे। नरकमें गिराया जायगा, यह सुनकर हर्षित होकर वह दूत वहाँसे विदा हुआ। विमदने नरकके मार्गमें देखा कि एक बड़ा ही सुन्दर पुष्पका विमान खड़ा है। विमानपर रहनेवाले देवताने विमदसे कहा 'तुम छः महीनेतक इस विमानपर विश्राम करके फिर नरकमें जाओ।' पहले तुम्हारेद्वारा लाया हुआ पुष्प रामार्चाके काममें लग गया था। हे ब्राह्मणदेव! उसाँके फलस्वरूप यह विमान यहाँ आया हुआ है। वह देववाणी सुनकर विमदने बड़ी प्रसन्नतासे कहा—मेरा यह पुष्पविमान रामार्चाके लिये समर्पित है।

हे देवि! विमदके इतना कहते ही उसका पुण्य और भी बढ़ गया। उसके सारे पाप क्षीण हो गये और वह दिव्य रूपधारी हो गया। वह जलती हुई आगके समान तेजस्वी होकर भगवान्के लोकमें चला गया। उसके हाथसे भूलसे गिरा हुआ फूल रामार्चाके काममें आ गया था, जिसका फल यह हुआ कि योगियोंको भी दुर्लभ भगवान् श्रीरामकी उसे प्राप्ति हुई। फिर जो श्रद्धा-भक्तिसे धन आदि लाकर रामार्चामें समर्पित करता है वह शुद्धात्मा होकर भगवान्का पद प्राप्त करता है, इसमें तो कहना ही क्या है। हे देवि! और भी पापोंको नष्ट करनेवाली कथा सुनो।

हे देवेशि! जब तुम पूर्वजन्ममें सतीके नामसे रहती थीं तब एक बार ब्रह्माने यह कल्याणमयी रामार्चा की थी। उन्होंने रामार्चाका प्रसाद मेरे पास भेजा, नारद ले आये। मैंने वह सब खा लिया। उस समय तुम स्नान करनेके लिये जलशय्यपर गयी हुई थीं। स्नान करके आनेपर तुमने सुना कि प्रसाद आया था। तुमने कहा—'हे वृषभध्वज! मेरे हिस्सेका प्रसाद कहाँ है?' हे देवि! उस समय प्रसादको देखकर मैं प्रेममग्न हो गया था, इसलिये तुम्हारी याद नहीं आयी। हे कल्याणि! मैं सब प्रसाद खा गया, अब

तुम्हारा हिस्सा रहा नहीं। इतना कहनेपर तुम्हारी आँखें क्रोधसे लाल-लाल हो गयीं और हे देवि! तुमने मुझे शाप दे दिया। उस समय मैं लज्जित हो गया और फिर विधिपूर्वक भगवान् श्रीरामकी पूजा की। रामार्चाका प्रसाद तुम्हें और सबको दिया। प्रसाद बाँटकर मैंने सब लोगोंसे यह बात कही कि उत्सवमें आये हुए अभ्यागतों, माई-बन्धुओं और मित्रोंको प्रसाद न देकर जो स्वयं प्रसाद भोजन करते हैं, वे बड़े अधम हैं। भगवान् श्रीरामका प्रसाद बाँटनेसे अपने सब मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। इसलिये श्रद्धायुक्त होकर श्रीरामार्चा करनी चाहिये। और हे प्रिये! पूजाकी सामग्री वाचकको दे देनी चाहिये। भक्तिसे उसे भोजन कराना चाहिये। द्रव्य और दिव्य वस्त्रादिकोंसे उसे संतुष्ट करना चाहिये। हे देवि! संक्षेपसे मैंने मंगलमय रामार्चाका वर्णन किया। रामार्चनकी महिमाका वर्णन तो कोई भी नहीं कर सकता। जो रामार्चामें लगे हुए हैं, जो रामनामके परायण हैं उनके दर्शनसे ही सब सिद्धियाँ मिल जाती हैं, वे मनुष्य धन्य हैं। हे देवि! इस प्रकार तुम्हें रामार्चाकी कल्याणमयी कथा मैंने सुनायी।

जो इसको सुनते हैं और कहते हैं, उनके सब अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं। जो पापी और भाग्यहीन हैं उनका इसमें प्रेम नहीं होता।

भगवान् श्रीराम जिसको सब प्रकारका नित्य सुख देना चाहते हैं, भगवान्की पूजामें उनका परम प्रेम ही जाता है।

सद्धर्मनिरतो दान्तो रामार्चनपरायणः।

सर्वभूतहितः साधुः श्रीरामस्यातिबलुभः॥

यद्यचिन्तयते कामं तत्तदाप्नोति निश्चितम्॥

सद्धर्मपरायण, इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला, रामार्चा करनेवाला, सम्पूर्ण प्राणियोंका हित चाहनेवाला, परोपकारी पुरुष भगवान् श्रीरामको बहुत ही प्रिय होता है। वह जिस-जिस वस्तुका चिन्तन करता है, वह वह वस्तु निश्चितरूपसे प्राप्त करता है।

इहलोके सुखं भुक्त्वा प्राप्नुयाद्रामसन्निधिम्।

रामरूपामृतानन्दसिन्धौ मग्नो भवेद् ध्रुवम्॥

वह इस लोकमें सुख भोगकर भगवान् श्रीरामका सान्निध्य प्राप्त करता है और रामरूपी अमृत और आनन्दके समुद्रमें निश्चय ही मग्न हो जाता है। (श्रीशिवसंहिताके आधारपर)



मानसके प्राचीन टीकाकार

(लेखक—महात्मा श्रीअजनीनन्दनशरणजी)

हिन्दी साहित्य-संसारमें जो गौरव गोस्वामी तुलसीदासजीके साहित्यको प्राप्त हुआ है वह शायद ही किसीको प्राप्त हो। क्या राजा क्या रंक, क्या ऊँच क्या नीच, क्या ब्राह्मण क्या अन्त्यज, चमार, मेहतर, पासी, कोरी, कोल, भील, क्या साहूकार क्या चोर, क्या भक्त क्या कर्मकाण्डी, क्या शानी, क्या राजनैतिक क्या धार्मिक, सभी हिन्दुओंमें यह साहित्य वेदसे भी अधिक प्रमाण हो रहा है। आर्यसमाजी, ब्राह्मणसमाजी, जैन, सिख, यहाँतक कि ईसाई, मुसलमान आदि भी आज प्रमाणके लिये आपहीकी शरण जाते हुए देखे जा रहे हैं।

सबसे अधिक प्रचार आपके श्रीरामचरितमानसका हुआ। क्योंकि इसमें आदर्श मानव-जीवनका सच्चा और पूरा चित्र (photo) है। काशीके पं० शिवकुमारजी शास्त्री संस्कृत भाषाके धुरन्धर पण्डित थे, जिनकी लाइब्रेरी भी बड़ी भारी थी; उनकी भी बैठकके विस्तरेपर इसका एक गुटका देखनेपर जब उनसे प्रश्न किया गया कि 'अरे, शास्त्रीजी! यह गुटका भी आप रखते हैं?' तो उन्होंने उत्तर दिया कि 'सारा शास्त्र पढ़ डाला, सारा साहित्य छान डाला; पर शान्ति कहीं न मिली, शान्ति मिली तो इसीमें। कोई पोथी, पुराण, इतिहास आदिके ग्रन्थ ऐसे न देख पड़े जिसकी कथा आदिसे अन्ततक सब प्रकारकी जनताके सामने कही जा सके। यही एक ग्रन्थ ऐसा है जिसे बूढ़े-जवान-बच्चे, स्त्री-पुरुष, लड़का-लड़की, ऊँच-नीच, गृहस्थ-विरक्त, स्मार्त-वैष्णव, शैव-शाक्त, किसी भी मनुष्यके सामने कहनेमें किञ्चित् भी संकोच नहीं होता; अश्लीलता तो कहीं छू भी नहीं गयी।' अनेक भाषाओंमें इसका अनुवाद हो चुका और कौन कहें कितने ही संस्कृत अनुवाद हो गये। कतिपय पण्डितोंने तो इसका संस्कृत अनुवाद अक्षरशः करके यह दावा किया कि श्रीशिवजीरचित मानस-रामायण यही है, इसका अनुवाद तुलसीकृत रामचरितमानस है। पर उनकी कलई खुल गयी। पं० श्रीसुधाकर द्विवेदीकृत संस्कृत अनुवाद बहुत उत्तम हुआ है, चौपाईका अनुवाद चौपाईमें ही किया गया है।

इतना लिखनेका अभिप्राय यह दिखाना है कि ऐसे ही अनेक कारणोंसे इसको प्राचीन महात्माओंने अपनाकर लोक-कल्याणार्थ अपनी-अपनी मति तथा मतानुसार तिलक

लिखे और इसके शुद्ध पाठकी रक्षाका प्रयत्न किया। फिर भी अनेक पाठान्तर हो गये। आजकलके सभी रामायणी अपने पाठके शुद्ध होनेका दावा किया करते हैं। पहले तो संत इसका आनन्द लेते थे, सभी पाठोंके अर्थ भी कह दिया करते थे तथा अपना मत कह देते थे। वाद-विवाद करके आनन्दको नहीं खोने देते थे। कोई भी संसारभरको प्रसन्न नहीं कर सकता और न किसी एककी बात उसके वाद-विवादमात्रसे पत्थरकी लीक मानी जा सकती है। पाठान्तरोंका कारणविशेष जो दासकी क्षुद्र बुद्धिमें आता है, वह यह है कि संस्कृतके पण्डितोंका रुझान जब इस ओर हुआ तब जहाँ उनको अर्थ न समझ पड़ा वहाँ उन्होंने अपनी बुद्धिसे दूसरा शब्द रख दिया, समयके धुरन्धर वक्ता होनेसे उनके पाठका आदर भी हुआ। अथवा शुद्ध पाठकी खोजमें जीर्ण-शीर्ण पोथियोंसे नकल करनेके समय यदि कहीं कागज फटा हुआ मिला वा दीमक महाराजकी कृपासे कोई अक्षर या शब्द नहीं मिला तो वहाँ प्रत्येक सम्प्रदाय (School) के आचार्यने अपनी बुद्धिसे काम लिया—बस, जितने आचार्य हुए उनने ही पाठ हो गये।

प्राचीन पोथियोंमें अनेक स्थलोंपर हरताल देखनेमें आता है, हरताल किसने लगाया यह भी पता नहीं है। यदि हरताल लगानेवाले अथवा प्रतिलिपि उतारनेवाले यह भी नोट दे देते कि पूर्वका पाठ अमुक पोथीका यह है अथवा अक्षर दीमक खा गये इत्यादि, तो उनके समय तथा पीछेके साहित्यिकों तथा खोज करनेवालोंको विचार करनेका मौका मिलता, जो उनकी भूलसे हाथसे जाता रहा। वेंकटेश्वर स्टीमप्रेस, निर्णयसागर प्रेस आदिने तो सातके आठ काण्ड कर दिये, चौपाईयाँ बदल डाली; न जाने इसी तरह संस्कृत ग्रन्थोंके साथ भी क्या-क्या किया गया हो। नवलकिशोर प्रेसने भी करुणा-सिन्धुजीके तिलकमें अब आठवाँ काण्ड अपनी ओरसे बढ़ा दिया। इस तरह पढ़नेवालोंको भी प्रेसोंकी कृपासे धोखेमें पड़ जाना होता है और इधर संस्कृतके पण्डितोंने तो 'भनिति भदेस' को संस्कृतका जामा पहना दिया।

'मानसपीयूष' का उद्देश्य था कि प्राचीन समस्त उपलब्ध तिलक-टीका-टिप्पणकारोंके विशद भावोंका संग्रह कर दे,

जिससे व्यासों और उन जिज्ञासुओंको जो मानसका आलोचनात्मक (scholar-like) अध्ययन करना चाहें, तथा साहित्यज्ञोंको भी अपने लेखोंके लिये एक ही जगह पूरी सामग्री मिल जाय, और यथा-साध्य यही उसमें किया गया। भूमिकाका सब मसाला श्रीरामदास गौड़जीको प्राप्त करा दिया गया था, क्योंकि उन्होंने उसको बृहत् भूमिका स्वयं लिखकर 'मानसपीयूष' को समर्पण करने की इच्छा बारह वर्ष हुए प्रकट की थी; पर वह सब उन्हींके साथ रह गया। गनीमत है कि मूल गोसाईं-चरितपर कल्याणमें उनका लेख निकल गया है।

भूमिकामें समस्त रामायणी महात्माओंके जीवनचरित्र और उनके तिलक आदिका समय, विवेचन, तिलककी विशेषताएँ आदि भी आलोचनात्मक दृष्टिसे लिखी जानेकी थी, वे सब रह गयीं; चिन्तमें कुछ लिखने-पढ़नेकी तरफसे उदामीनता हो जानेसे समस्त पुस्तकें आदि यत्र-तत्र दे दी गयीं। इस समय एक भी पुस्तक मानससम्बन्धी पास नहीं है, तो भी सम्पादकजीकी आज्ञा, कि कोई लेख दिया जाय, शिरोधार्य कर प्राचीन कतिपय रामायणी महानुभावोंके जीवनका जो कुछ वृत्तान्त प्राप्त हो सका लिखा जा रहा है।

प्रत्येक तिलकमें कुछ ऐसे भी भाव और अर्थ हैं जो साधारणतः ठीक नहीं जँचते, पर यह होते हुए भी हम उन तिलकोंका निरादर भी नहीं कर सकते। उनमें बहुत उत्तम-उत्तम भाव भी हैं, बहुत-सी शंकाएँ और उनके समाधान हैं। बहुत ऐसे गूढ़ भाव हैं जिनतक हमारी बुद्धिका प्रवेश नहीं। उन महानुभावोंने विद्यार्थीकी तरह ग्रन्थका मनन किया है, हमारे लिये आगे छान-बीन करनेको मार्ग बना दिया है। आज ये तिलककार सामने न होते तो सम्भवतः हमें मानसके सुन्दर भावोंको खोज निकालनेका, उनपर विचार करनेका अवसर भी न प्राप्त होता।

वस्तुतः हम सबको उनका कृतज्ञ होना चाहिये और यही अपनी कृतज्ञता जनाने तथा अपने हाथों और हृदयको पवित्र करनेके लिये आज यह दास उनकी जीवनी लिखकर श्रीमानसाङ्गको अर्पण कर रहा है। भूल-चूक तो किसमें नहीं होती? क्या कोई ऐसी टीका है जो भूल-चूकसे रहित हो? क्या अपनी टीकाके सर्वथा शुद्ध होनेका दावा सत्य ही कोई कर सकता है? कदापि नहीं।

मानस-व्यास

मानसकी परम्परा तथा उसके तिलक और सम्प्रदायोंकी (स्कूलोंकी) परम्पराके विषयमें विशेष छान-बीन करनेका अवसर

इस समय दासको प्राप्त नहीं है। फिर भी थोड़ा-बहुत जो सतोसे सुना और जो दो-चार पुस्तकोंसे पता चला वह पाठकोंके भेंट कर रहा हूँ। संत और प्रेमीजन इसमें कुछ मसाला तो अवश्य ही आगे खोजके लिये पा जायेंगे, जो इसमें अशुद्धियाँ होंगी वे दासको कृपया बता देंगे, तथा और भी इस सम्बन्धमें जो उनको मालूम हो लिख भेजेंगे तो दास फिर कभी विस्तृत लेखोंके रूपमें उसे प्रकाशित होनेको भेज सकेगा।

मानस-व्यासकी परम्पराके विषयमें एक प्रश्नोत्तरी बाबा श्रीलक्ष्मणदासजी रामायणी और चक्रपाणिजी शास्त्रीकी इस प्रकार है—

* प्रश्न नं० १६—सर्वप्रथम मानस-व्यास कौन हुए ?

उत्तर १—संडीलेके स्वामी नन्दलालजी और २—मिथिलालजीके स्वामी रूपारुणजी। इन्हीं युगल स्वामियोंको श्रीतुलसीचौरा (श्रीअयोध्याजी) पर गोस्वामीजीसे रामचरितमानसका पाठ सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इनमेसे एकने यमुनातटपर श्रीवृन्दावनमें श्रीरसखानजीको तीन वर्षोंमें मानसकी कथा सुनायी और दूसरेने सभलसिंह भूमिहारको बागमतीके तटपर सुनायी।

३—मंदाकिनीतटपर चित्रकूटमें दूसरे तुलसीदासजी और ४—उनके शिष्य श्रीकिशोरीदासजीने संतमण्डलीके मध्यमें बारह वर्षोंमें सम्पूर्ण कथा मानसकी कहकर समाप्त की।

५—काशीजीमें गंगातटपर बाबा रघुनाथदासजीने सात वर्षोंमें और ६—गोदावरीतटपर पञ्चवटीक्षेत्रमें मोरेश्वरपंत कविजीने नौ वर्षोंमें मानसकी कथा सुनायी।

७—श्रीअयोध्याजीमें श्रीसरयूजीके तटपर मूलगोसाईं-चरित (सं० १६८७) के रचयिता बाबा वेणीमाधवदासजीने और ८—वाराहक्षेत्रसंगमपर उनके शिष्य केशवदासजीने क्रमशः दश वर्षोंमें यह कथा कहकर मानसप्रेमियोंको सुनायी।

९—सोरोमें गंगातटपर महात्मा तुलसीदास गुसाईं और उनके पुत्र जानकी गुसाईंने मिलकर यशानुष्ठानपूर्वक इसकी कथा पाँच वर्षोंमें सुनायी।

१०—ये सब निःस्पृही कथावाचक थे, जो कथामें चढ़ी हुई पूजामें और भी द्रव्य अपने पाससे मिलाकर उससे तुरंत ही साधु-संतोंका भंडारा कर दिया करते थे।

* यह प्रश्नोत्तरी पृष्ठमें है। मानस-व्यास-सम्बन्धी यह १६ वें प्रश्न है।

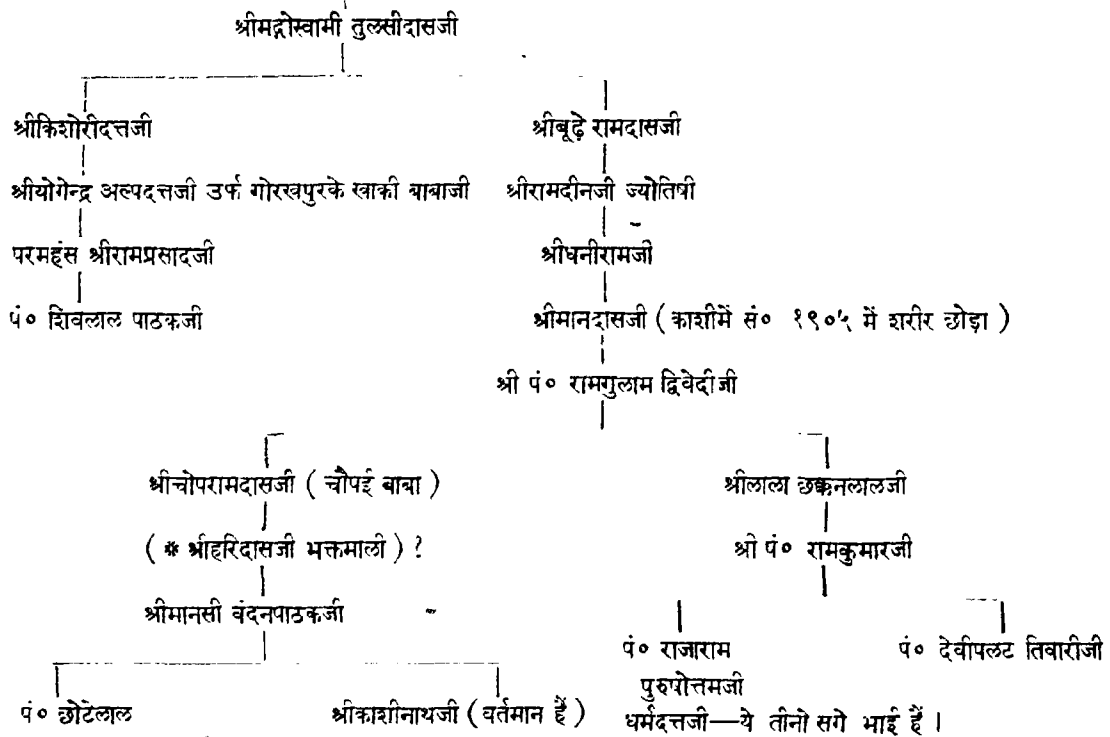
तुलसी-मानसी-शिष्य-परम्परा

दो उल्लेख इस सम्बन्धमें दासको प्राप्त हुए हैं, जिसमें दो सम्प्रदायोंके लोगोंने अपनी परम्परा गोस्वामीजीसे बतायी है। दोनों परम्पराएँ यहाँ एक साथ लिखी जा रही हैं—

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीकी मानस-गुरु-परम्परा तो लोग जानते ही हैं। मूलगोसाईचरित और रामचरितमानस स्वयं इसके प्रमाण हैं। दास उसको भी यहाँ साथ-ही-साथ दिये देता है—

भगवान् श्रीशङ्करजी श्रीनरहर्ष्यानन्दजीद्वारा—

‘वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम् ।’ शंकरजीने नरहर्ष्यानन्दजीको मानसी ज्ञान दिया और आज्ञा की कि जब यह (तुलसीदास) बड़ा हो तब इसको पढ़ा देना। श्रीनरहर्ष्यानन्दजी गोस्वामीजीके मन्त्रगुरु भी थे।



तीसरी परम्परा जो श्रीअयोध्याजीके रामायणियोंकी है, उसका पता दास अभी नहीं लगा सका। केवल बाबा जानकीदासजी, या श्रीकरुणासिन्धुजीतकका हाल मालूम था। वह बाबा श्रीजानकीदासजीकी जीवनीमें लिख दिया जायगा। श्रीदीनबन्धुजीके श्रीजानकीभाष्य (जो ब्रह्मसूत्रोंपर है) में भी कुछ लेख सुना जाता है, पर इस समय अवकाश इतना नहीं है कि खोज की जा सके। सर्वप्रथम मूलसहित समग्र टीका श्रीकरुणासिन्धुजीकी सुनी जाती है। एक परम्परा और भी होनी चाहिये, जिसमें श्रीसंतसिंहजी पंजाबी शानी हुए हैं। प्रेमी

रिसर्च स्कॉलर इसकी भी खोज करें, क्योंकि ये भी परमहंस रामप्रसादजीके समकालीन थे। पर इनकी टीका भी अपनी ही टीका है, ऐसी दासकी सम्मति और दृढ़ विश्वास है।

श्रीकिशोरीदत्तजी गोस्वामीजीके मन्त्र-शिष्य न थे। पर उस परम्परावाले उनको मानसके शिष्य अवश्य मानते हैं। कोई-कोई इनको दूसरे तुलसीदासजीके शिष्य कहते हैं। जो भी हो, जबतक प्राचीन कोई लेख न मिले हम इसका निर्णय करनेमें असमर्थ हैं। पर यह सुना जाता है कि आप मानसकी कथा कहा करते थे, परमहंस थे और निःस्पृही थे। आपने सात-

* इसमें सन्देह है। पाठकजीकी जीवनीमें देखिये

भाठ लेखकोंसे मानसकी कई प्रतिष्ठा लिखवायीं और जहाँ-तहाँ वितरण कीं। विशेष जानकारी इसकी दासको नहीं है। आपकी दो रचनाएँ सुनी जाती हैं—एक तो ‘मानससुबोधिनी टीका’, जो आजतक देखनेमें नहीं आयी और न यही सुना जाता है कि कहीं है और है तो कहाँ है। दूसरी ‘श्रीकिशोरीजीका नखशिखवर्णन’। यह पुस्तक दोहाबद्ध है, इसके दोहे विहारी-सतसईके जोड़के सुने जाते हैं। इसको देखनेपर आपके समयका सम्भवतः कुछ अनुमान किया जा सके।

योगेन्द्र साकीबाबा अल्पदत्तजी—आपका विस्तृत जीवन-चरित्र कल्याणके ‘योगांक’ में निकल चुका है। आपका मानस-सम्बन्धी ग्रन्थ ‘मानसकलोलिनी’ है, जो ५००० दोहोंमें है। वेदस्तुतिके १२ दोहे और १० दोहे पञ्चीकरण किष्किन्धाकाण्डके ‘मानसमयंक’ में छपे हैं। और कुछ उत्तर्गाण्डके ज्ञानदीपक-प्रकरणमें मानसपीयूषमें छपे हैं।

परमहंस रामप्रसाददासजी वैष्णव—आपका एक स्थान जाफराबादमें है और दूसरा श्रीजानकीघाट अयोध्याजीमें—आपका कुछ जीवनचरित्र महाराज श्रीजीवाराजजीने ‘रसिक-प्रकाश भक्तमाल’ में लिखा है, जो बहुत साल हुए छपा भी था। मानसपर आपकी ‘मानस-रम-विहारिणी’ नामक एक पुस्तक है। ५० शिवलाल पाठकजीका सिर आपके ही चरणोंपर नम्र हुआ और आपकी कृपासे वे संस्कृतको एकदम त्यागकर मानस-तत्त्वके पण्डित और परमानन्द श्रीरामोपासक हो गये।

५० शिवलाल पाठकजीके साथ ही उनकी शिष्यपरम्पराका उल्लेख आगे किया जायगा।

यह तो एक परम्परा हुई। दूसरी परम्पराके सम्बन्धमें दासके पास इस समय नामेंकि अतिरिक्त कोई विशेष सामग्री नहीं है जिससे दास श्रीबूढ़े रामदासजीसे लेकर श्रीमानदासजी-तक पर कुछ भी लिख सके। केवल श्रीपण्डित रामगुलाम द्विवेदी, लाला लक्ष्मणलाल, वन्दन पाठकजी और पण्डित रामकुमारजीका कुछ मानससम्बन्धी चरित्र जो सतासे सुना है लिखा जायगा।

५० श्रीशिवलाल पाठकजी और उनकी शिष्यपरम्परा

आपकी जीवनी ‘पण्डितप्रवीन’ के ‘शिवलालपञ्चक’ के तीन कवित्तोंका आधार लेकर बाबू इन्द्रदेवनारायणजीने ‘मानसमयंक’ (सटीक) में दी है।

आपका जन्म सोनहुला ग्राम, जिला गोरखपुरमें श्रीदेवीदत्त पाठकजीकी प्रथम भार्याके उदरसे फाल्गुन कृष्ण १४ सोमवार १८१३ वै० को हुआ। माता दस मास बाद ही स्वर्गको स्थिारी। नौ वर्षकी अवस्थामें विमाताके व्यंग्यवचन सुनकर

आप काशीजी चले आये। यहाँ ५० शिवलोचन मिश्रजीके छात्र होकर षट्शास्त्री हुए। भावप्रकाश नामक संस्कृतटीका आपकी वाल्मीकीय रामायणपर है, यह सं० १८७५ की लिखी हुई है। महाभारतके आप प्रसिद्ध वक्ता हुए। जैसा कि संस्कृतके प्रकाण्ड पण्डितोंका कायदा गोस्वामीजीके समयसे देखा-सुना चला जा रहा है, वही हान्ड इनका भी था। हिन्दी भाषाके शत्रु थे। तुलसीकृत रामायण कभी क्यों सुनते या पढ़ते। पर भगवान् को तो कुछ और ही मंजूर था—

मेरे मन कछु और है कर्ता के कछु और।

वही हुआ—संस्कृत एकदम छोड़ भाषाका परमभक्त होना पड़ा।

अपने समयके बड़े भारी रामायणी विरक्त महात्मा परमहंस रामप्रसादजीके चित्तमें एक बार आया कि मानस ‘नानापुराण-निगमगमसम्मत’ है, यदि इन ग्रन्थोंसे प्रमाणित कर कथा कही जाय तो अवश्य संस्कृतके अभिमानी पण्डित भाषाके प्रति घृणा छोड़कर श्रीगमचरितमानसके श्रद्धालु भक्त हो जायेंगे, जिससे सहज ही इसका प्रचार और उनका कल्याण होगा। अन्तु।

वे काशीमें आकर पाठकजीके विद्यार्थी बने। अनध्यायके दिन परमहंसजी अपने सहपाठियोंको किसी गुप्त स्थानमें मानसकी कथा सुनाया करते थे। एक दिन गुरुजी रामनगर गये हुए थे, वर्षा अधिक होनेसे उस दिन उनका लौटना असम्भव जानकर परमहंसजी पाठशालामें ही मानसकी कथा कहने लगे। ऐसी कथा जमी, ऐसा समा गटा कि सब छात्र प्रेमविभोर होकर कथामें निमग्न हो गये। सूर्यास्त होनेकी भी खबर न हुई। उधर गुरुजी भी लौट आये, सबको प्रेममें वेमुग्ध देख वे द्वारपर ही खड़े होकर सुनने और देखने लगे। थोड़ी देरमें कथा समाप्त हुई। जितना उन्होंने सुना, उतना ही उनके शुद्ध अन्तःकरणके सात्त्विक भावों और पूर्वसंज्ञित संस्कारको जगा देनेको पर्याप्त था। आज गुरुजी भक्तिरस पाकर प्रेममें चूर हैं। अश्रुकी धारा चल रही है।

कथा समाप्त हुई, सब घर जाने लगे। द्वारपर दीवारसे सटे खड़े हुए गुरुजीको देख सब श्रोता छात्र डरकर भागे कि आज गुरुजी जान गये, न जाने क्या शज़ब ढहा दे। पर परमहंसजी गुरुकी दशा देख कुछ और ही बात ताड़ गये। उन्होंने चरणोंपर पड़कर गुरुको प्रणाम किया और यह कहते हुए कि ‘कुछ प्रेमियोंके आग्रहसे भगवत्-चर्चा होने लगी, आप संकोचवश बाहर ही खड़े रहे; बड़ा अपराध हुआ, क्षमा करें! इत्यादि।’ इस विनम्र निवेदनको सुन गुरुजी तुरंत परमहंस-जीके चरणोंपर दण्डवत् गिर गये और उनके चरणोंको

प्रेमाश्रुसे सिञ्चन करते हुए उन्हें दोनों हाथोंसे पकड़े रहे, छुड़ाने और विनती करनेपर भी नहीं छोड़ते थे। 'जो सिर कभी किसीके आगे नम्र न हुआ वह आज आपके पदारविन्दका मधुकर बन रहा है, यह आपकी राम-रसायनकी वर्षाका फलस्वरूप है। अब इसे कर-कमलके स्पर्शसे कृतार्थ कीजिये' यह कहते हुए चरणोंपर पड़े रहे। परमहंसजीने उठाकर उन्हें छातीसे लगाया और उसी दिन पाठकजीके बहुत आग्रह करनेपर उन्हें श्री-मन्त्रराजका उपदेश किया। परमहंसजी भी अब वहीं रहने लगे—गुरु चेला हुए और चेला गुरु हुए।

गुरुदेवके आज्ञानुसार आपने १०८ नवाह्निक पाठ किये। तत्पश्चात् मानसके सार-तत्त्व आदिका बोध आपको कराया गया। बस, अब पण्डितजी बिल्कुल मानस और हिन्दी भाषाके पण्डित हो गये। संस्कृत पण्डितोंने इसका बहुत विरोध किया, परन्तु श्रीविश्वनाथजीके दरबारसे जीत पाठकजीकी ही हुई।

आप अनन्य रामोपासक थे। भगवान् श्रीरामका ध्यान श्रीसीतालक्ष्मण-हनुमान्जीसहित करते थे। रामचरितमानसको राम-तन, रामरूप मानकर नित्य उनकी पूजा करते थे। पर रा० प० प्र० के उत्तरकाण्डके ११६ वें दोहेपर, जहाँतक दासको

स्मरण है बाबा हरिहरप्रसादजीने लिखा है कि पाठकजी निम्बार्क-सम्प्रदायके थे। आपने मानसभावप्रकाशक कई ग्रन्थ रचे। मानस-अभिप्राय-दीपक, (जिसका बाल और अयोध्या-काण्ड टीकासहित बंबईमें छप चुका है), २ 'मानसमयंक' (जिसकी टीका इन्द्रदेवनारायणजीकृत, मूलसहित) खड्गविलास-प्रेसमें सन् १९२० ई० में प्रथम बार छपी। ३ 'मयूख'—यह भी मयङ्कके साथ प्रकाशित हो चुका है—और ४ 'मानस-भावप्रभाकर'। इतने ग्रन्थोंका पना दासको चला है। मयङ्कमें १९६८ दोहे हैं।

ये सब ग्रन्थ 'कूट' दोहोंमें रचे गये, जिससे उनके शिष्य-प्रशिष्य आदिको छोड़कर दूसरा कोई समझ ही न सके और शिष्य-प्रशिष्य भी अपनी योग्यताके अनुकूल ही तो ग्रहण कर सकते हैं। इस तरह वास्तविक जो भावार्थ वे समझते थे वे तो सम्भवतः उन्हींके साथ चले गये, लोकका कल्याण उनसे न हो सका।

कहा जाता है कि अपने कूटके दोहोंका अर्थ वे—वैदिक, यौगिक, तार्किक, तार्विक वा आध्यात्मिक और लौकिक—इन पाँच प्रकारसे करते थे। जो हो, पर वह उनके साथ गया।

आप गोस्वामीजीकी पाँचवीं पाँदोमें गिने जाते हैं। आपकी गुरुपरम्परा ऊपर 'गोस्वामीजीके मानसकी शिष्यपरम्परा' में दी गयी है और आगकी शिष्यपरम्परा इस प्रकार है—

पं० श्रीशिवलाल पाठकजी

श्रीशेषदत्तजी

ये सरयूपारी ब्राह्मण थे। पतिहिनकी पॉतिमें उस विप्रकुलमें इनका जन्म हुआ था। ये पाठकजीकी बहिनके लड़के थे। इन्हींके बोधके लिये मयंकके ३१९ दोहे प्रथम लिखे गये। अयोध्याकाण्डके अन्तमें यह बात पाठकजीने स्वयं लिखी है। कहा जाता है कि किष्किन्धाकाण्डकी टीका जो चण्डीसिंहके नामसे छपी है, वह इन्हींकी है। उसके असत्यी खरें कोदोरामजी और इन्द्रदेवनारायणजीके पास थे।

पं० जानकीप्रसादजी

(ये शेषदत्तजीके पुत्र हैं)

पं० महादेवदत्तजी

आपकी बहुत-सी शंकाबलियाँ और टिप्पण बड़ेहा (मुंगेर) में सुने जाते हैं।

गणेशप्रसादजी

(पटनाके थे)

रामलालशरण

कांतवाल, बलरामपुर।

कोदोगमजी

केमरिया(चम्पारन), जातिके कलवार। श्रीरामजीके अनन्य उपासक थे। आपके मानसका गुटका बड़ी और छोटी साइजोंमें बंबईमें छपा, पर संस्करणोंके साथ पाठ भी बदलता गया।

श्यामदामजी

(संत-अंकमें इनकी जीवनी निकल चुकी है।) 'अनेकार्थमंजरीकोश', 'राम-चरण-चिह्न-माहात्म्य' तथा 'कूटकर पद' आपने बनाये।

श्रीजानकीशरण स्नेहलताजी

भक्त लालचंद

‘श्रीरामनामकलाकोषमणिमंजूषा’ ग्रन्थ श्रीतुलसीदासजीका रचा हुआ है, यह इस परम्परावाले मानते हैं; पर आजतक और जिन-जिन महानुभावों, तुलसी-साहित्यके खोजकों, भर्मशों, विद्यार्थियों, सभाओं इत्यादिने छान-बीन की है वहाँतक उनका दृढ़ सम्मत यही है कि यह ग्रन्थ उनकी रचना कदापि नहीं हो सकता।

कुछकी सम्मतिमें यह दूसरे तुलसीदासजीका है और किसी-किसीकी सम्मति है कि यह रचना स्वयं श्रीपाठकजीकी है। पाठकजीके महाक्लिष्ट कूट दोहोंकी रचना तथा जहाँ-तहाँ दूसरोंको फटकार बतानेकी उनकी टेव जो मयंक, अभिप्रायदीपक आदिमें सर्वत्र देख पड़ती है, उससे वे यह नतीजा निकालते हैं कि यह ग्रन्थ भी उन्हींका विरचित है, क्योंकि यह बहुत क्लिष्ट है और अन्तमें दोहा ३९, ४० में कुछ कड़े वचन भी हैं—

पट्टि बिनु जाने नाम को जनिबो खर को मार ॥

पर को नाहीं दीजिये आन हमारे जोहि ॥

दास इस सम्बन्धमें अपनी कोई सम्मति अभी स्थिर नहीं कर सकता। सुननेमें आया है कि जिला मुंगेरके पुन्नरक नामक ग्राममें मानस-अभिप्राय-दीपक संवत् १८९७ का लिखा हुआ, रामनामकलाकोषमणिमंजूषाकी टिप्पणी, तुलसी-सतसई-पर तिलक, और मानसमयङ्ककी टिप्पणी शेषदत्तजी वा महादेवदत्तजी वा पं० जानकीप्रसादजी (इन्हींमेंसे किसी) की लिखी और लिखायी हुई एक वैष्णवकी ठाकुरवाड़ीमें सुरक्षित मौजूद है। श्रीस्नेहलताजीसे मात्तूम हुआ कि पुन्नरकमें उन्हें किसीसे यह समाचार मिला है कि वहाँ एक बड़े भारी गमायणी हो गये हैं, जो भक्तमालीजीके नामसे प्रसिद्ध थे और शृङ्गारी थे। उनके यहाँ बहुत-से मानससम्बन्धी और शृङ्गारोपासनासम्बन्धी ग्रन्थ तथा बद्धैयावाली मानसकी पोथीकी एक प्रतिलिपि सुरक्षित है। सम्भवतः इन ग्रन्थोंकी उपस्थितिके कारण कोई-कोई इनको शेषदत्तजीका विद्यार्थी समझते हैं।

पं० श्रीगणपति उपाध्यायजीके नामसे प्रकाशित एक ‘मानस-तत्त्व-प्रकाश-शंकावली’ नामक छपी हुई पुस्तक भी दासको तिलक-संग्रह करते समय प्राप्त हुई थी, पर वह सब प्रायः मयंककी ही नकल-सी है जो दूसरे शब्दोंमें लिखी गयी है। पुस्तक पास न होनेसे यह नहीं कह सकता कि वे महादेवदत्तजीके विद्यार्थी थे या किसके।

श्रीवैजनाथजी

श्रीवैजनाथजी डेहवा मानपुर, डा० घ० सतरख, जिला बाराबंकीके रहनेवाले थे। ये अवधिय कुर्मी कुलके थे। कुलीन मा० ११५—११६—

घरानेके थे, जर्मीदार और नंबरदार थे, साथ ही श्रीरघुकुल-वतंस श्रीरघुनाथजीके परम अनन्य उपासक और प्रसिद्ध संतसेवी महात्मा श्रीफकीररामजी (श्रीरामकोट, अयोध्याजी) के प्रिय गृहस्थ शिष्य थे। ये शृङ्गारी थे। हिन्दीसाहित्यके विलक्षण पण्डित थे। श्रीउपास्यदेवका नख-शिख-वर्णन आपने ८४ कवित्तोंमें किया है और ‘काव्यकल्पद्रुम सटीक’ आपका अद्वितीय अनुपम ग्रन्थ है, साहित्यज्ञ इसे उच्च कोटिका मानेंगे। सम्भवतः इसपर अभीतक साहित्यज्ञोंकी दृष्टि नहीं पड़ी है। सुना जाता है कि आपको महामहोपाध्यायकी पदवी प्राप्त थी। अध्यापनरामायणपर आपका तिलक है और वाल्मीकीय रामायणका तिलक सुन्दरकाण्डतकका आप कर पाये थे कि शरीरका अवसान हो गया। शेष काण्डोंके तिलककी पूर्ति उनके सुयोग्य पुत्र श्रीरामलालशरणजीने की। नख-शिखका तिलक भी उनके पुत्रहीने किया है।

श्रीमद्रोस्वामीजीके तो आप ऐसे प्रेमी थे कि आपने उनके समस्त ग्रन्थोंपर बृहत् टीकाएँ लिखकर जनताको अपना शृङ्गी बनाया है—कम-से-कम दास तो शृङ्गिया है ही, दूसरे हों वा न हों। मानस और विनयकी टीकाएँ देखनेका सौभाग्य दासको हुआ है। भाषा देशी देहाती होनेसे आजकलके स्कूल्य शिक्षा पाये हुआँके लिये समझनेमें कठिन है; पर ये टीकाएँ भाव, अलंकार, रस, नायक-नायिकाभेद और रूपकोंके अत्यन्त विस्तार, भगवद्गुणोंकी परिभाषा, श्रुति-पुराण-इतिहासादिकके प्रमाणोंसे अलंकृत हैं। दोष एक यह है कि पुनरुक्ति पृष्ठ-पृष्ठपर है, यदि ये पुनरुक्तियाँ निकाल डाली जायँ तो टीका तिहाईसे अधिक न रह जायगी। कथावाचक व्यासलोगोंके लिये तो यह दोष गुणरूप है, क्योंकि उन्हें बारंबार इधर-उधर पलटना नहीं पड़ता। आप ‘तुलसीदासजी’ पर इतने मुग्ध थे कि इस नामके जो भी ग्रन्थ आपको मात्तूम हुए सभीपर टीका लिख डाली, चाहे वे ‘रामचरितमानस’ के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास हों वा न हों। श्यामदासजी, कोदोरामजी, बाबा माधोदासजी रामायणी (श्रीअयोध्याजी), श्री पं० जानकीवर-शरणजी महाराज (लक्ष्मणकोट, श्रीअयोध्याजी), राजा रघु-राजसिंह (रीवाँ-नरेश) और संत उन्मनी मुंशी गुहसहाय-लालजीके आप समकालीन थे। इधर ५० वर्षके भीतर ही आपकी सकेतयात्रा हुई।

महन्त श्री १०८ रामचरणदास करुणासिन्धुजी

आप प्रतापगढ़ जिलेके एकौना नामक ग्राममें एक सरयूपारी ब्राह्मणकुलमें अवतरित हुए थे। उस कुलके लोग

अब भी मौजूद हैं। पूर्व व्यवस्थाका उल्लेख कहीं दासको नहीं मिला। आपकी टीकामें उत्तरकाण्डके आदि और अन्तमें कुछ इशारा मिलता है—

आगनी मैं पूर्व कहीं सौंह के निमूद रहौ,
हृदय में प्रेरणो परमेस्वर सरन जाइए।
आसों मैं पूछौं सो आपनो सिद्धांत करै,
और मत खंडन करै, मेरे मत आइए॥
तब मैं बिचारि के अनेक ग्रंथ देखे-सुने,
तरव तुलसीकृतमें जो औरमें न पाइये।
रामचरन पापी मन जानि कै रमावत हौं,
बार्तिक मैं अर्थ करौं मति के सरसाइये॥

आप भीअवधमें आकर महाराज रामप्रसादजी (बड़ी जगहके महंत और बैदीके आचार्य) उपनाम श्रीदीनबन्धुजीके शिष्य होनेको आये, पर वे दूसरेको महंतीकी गद्दी दे चुके थे। दीनबन्धुजीके बहुत समझानेपर उन्होंने नये महंतजीसे मन्त्र लिया। इस स्थानमें पूर्व अष्टाक्षरी मन्त्रकी प्रथा थी, पर आपने इट किया कि हम तो षडक्षर ब्रह्म तारक श्रीराममन्त्र ही लेंगे, अष्टाक्षरी नहीं। श्रीदीनबन्धुजीके सरकार श्रीधनुषधारीजीसे इस विषयमें आज्ञा ली गयी और उन्होंने षडक्षर मन्त्रकी दीक्षाकी आज्ञा दी। इस तरह मन्त्रगुरु तो नये महंतजी हुए, पर आप आठो प्रहर श्रीदीनबन्धुजीकी सेवामें रहते थे और चित्रकूटमें भी उनके साथ ही उनकी सुरधामयात्रा तक रहे! सम्बन्ध आपको श्रीदीनबन्धुजीसे प्राप्त हुआ। इन कारणोंसे आप श्रीदीनबन्धुजीके ही शिष्य प्रख्यात हैं।

आप शृङ्गारी थे। शृङ्गारियोंमें श्रीके नीचे 'बिन्दु' वा 'बैदी' के आचार्य सुने जाते हैं। आप श्रीकिशोरीजीके अनन्य उपासक थे। परम साधु थे। रीवाँनरेश श्रीमहाराज विश्वनाथसिंहजी-ऐसे भक्त आपके चरणोंपर मस्तक नवाते थे और आपको अपना सिद्धगुरु मानते थे। साधुता तो ऐसी थी कि स्थानके मालिक-महंत होकर भी आप माधुकरवृत्तिसे प्राप्त अन्नका ही भोग लगाकर उसीको पाते थे। स्थानमें जो भोग लगता वह अन्य सब संत पाते थे, आप थारमेंसे एक कणमात्र ले लेते थे तथा संतोंकी सीथ-प्रसादीका नित्य सेवन करते थे। एक कण जो टाकुरजीका प्रसाद लेते थे उसके बदलेमें स्थानमेंका एक टोकना (जिसमें सब संतोंके लिये दाल या चावल पकाया जाता है) अमनिया करते (अर्थात् मल देते) थे।

वैष्णवमात्रको आप श्रीरामरूप मानते थे। केवल वचनसे ही नहीं वरं मन और कर्त्तव्यसे। जिसको शिष्य करें उसका भी

चरणामृत लेते थे—धन्य है ! धन्य है ! इस भावकी बलिहारी ! जय जय !! आज दिन भी उनकी तिथिपर संतोंकी सीथ-प्रसादी उतारी जाती है अर्थात् उनसे उच्छिष्ट माँग लिया जाता है तथा उनका चरणामृत भी उतारकर इन दोनोंका भोग आपकी चरणपादुकाको लगाया जाता है, आपको समर्पण किया जाता है।

आप भारी विद्वान् भी थे। आपके ११ ग्रन्थ रचे हुए हैं—

१-रसमालिका। २-जयमालसंग्रह। ३-सतपंचांगिका। ४-दृष्टान्तबोधिका। ५-अमृतखण्ड। ६-दोहावली। ७-अष्टयाम। ८-तीर्थयात्रा। ९-राम-नवरत्न। १०-पदावली। और ११-रामानन्दलहरी नामक रामचरितमानसका तिलक। इस तिलकके बारेमें आप लिखते हैं—

रामचरितमानस बिमल बार्तिक तिलक तरंग।

भाव भ्रमर उमंग रस अर्थ अगाध प्रसंग॥

अर्थात् रामचरित 'मानस' है, उसकी टीका 'तरंग' है—टीकाका नाम 'आनन्दलहरी' है—भाव भ्रमर हैं, अर्थ अगाध हैं। इस तिलकमें प्रत्येक प्रकरणको एक-एक तरंग कहा है।

रामचरितमानसकी कथा श्रीजानकीघाटपर आप कहा करते थे। अनुमान होता है कि रीवाँनरेशकी प्रार्थनापर आपने मानसका तिलक लिखना-लिखाना प्रारम्भ किया। क्योंकि बराबर पुराने बथोवृद्ध संतोंसे यही सुननेमें आया है कि राजाकी ओरसे उनके स्वर्चसे १२ विद्वान् पण्डित लेखक महाराज करुणा-सिन्धुजीकी सहायतामें रहते थे। १२ वर्षमें यह तिलक सम्पूर्ण समाप्त हुआ और उसके पश्चात् तीन वर्षमें उसकी कथा आद्योपान्त श्रीजानकीघाटपर संतसमाजमें सुनायी गयी। आप मानसके गूढ़ भावोंके कैसे भारी मर्मज्ञ थे, यह उत्तरकाण्डके प्रारम्भमें दिये हुए घनाक्षरी छन्दोंसे विदित है। वहाँका प्रथम छन्द दास यहाँ उद्धृत करता है—

तुलसी दिखायो सब परोक्ष पुनि प्रत्यक्षरूप

भोग वैराग्य ज्ञान बिमल विज्ञान है।

स्वस्वरूप परस्वरूप भक्तिको अनूप रूप

लक्षण गुण भाव प्रेम संत जो सुजान है॥

द्वैताद्वैत भेद काल कर्म गुण स्वभाव

मायाबद्ध मोक्ष कार्य परम कारण स्थान है।

कर्मकाण्ड ज्ञान जो उपासना विशेष कछो

रामचरण अजे कछो वेदमें प्रमान है॥ १॥

ग्रन्थके अन्तका भी एक कवित्त यहाँ उद्धृत किया जाता है—

राम जो करें मोहि लोमश ते अधिक और
ब्रह्मसे सरस वेदवेत्ता बनाइये ।
शेष सम शास्त्री व्याकरणी करें शारद सम
कविता करें व्यास गुरु बाल्मीकि भाइये ॥
संख्यमें कपिल वेदान्त सनकादि शुक्र
विद्यागान नारद महेशपद पाइये ।
रामचरण पते गुण देहि श्रीराम मोहि
तुलसीदत्त अर्थ तबौ पार नहीं पाइये ॥ ६ ॥
यह तिलक भीसीतारामोपासनाप्रधान है—

‘एहि महँ आदि मध्य अवसाना । प्रमु प्रतिपाद्य राम मगवाना ॥’

और ‘रघुपति भगति केर पंथाना’ जो मानसमें कहा है
ठीक उसी सिद्धान्तका प्रतिपादन इसमें किया गया है ।

कम-से-कम इस संयुक्तप्रदेशमें तो यह तिलक ही मानसका
प्रथम तिलक हुआ । इस कारण तथा उपासनाप्रधान होनेसे
ही, अथ च उनके परम विद्वान् विरक्त प्रतिष्ठित संत होने-
से—दासकी समझमें—इस तिलकका संत और वैष्णव-
समाजमें बहुत आदर हुआ । भाषा भी देशी होते हुए भी
सरल है और समझमें आ जाती है । श्रीवैजनाथजीने, ऐसा
जान पड़ता है कि इसीकी छाया लेकर तिलक बनाया और
उसमें प्रमाण अधिक दिये हैं । श्रीकरुणासिन्धुजीने साधारण
सरल चौपाइयोंके अर्थ नहीं दिये हैं । वैजनाथजीने प्रत्येक
चौपाईका अर्थ दिया है, पर इनकी टीकाका उत्तना मान संतोंमें
नहीं हुआ । ‘श्रीरामानन्दलहरी’ तिलकके कम-से-कम
पाँच संस्करण मुं० नवलकिशोर प्रेससे निकल चुके । पत्राकार
और पुस्तककार दोनों मिलते रहे हैं ।

इसी स्थानपर यह बता देना भी ठीक जान पड़ता है
कि पं० श्रीरामगुलाम द्विवेदीजी मिर्जापुरी आपके मित्र थे,
जब-तब दर्शन-समागम भी होता था ।

किस संवत्में यह तिलक प्रारम्भ हुआ और कब समाप्त
हुआ—इसका लेखप्रमाण दासको अभी तक नहीं मिला,
सम्भवतः महाराजजीके स्थानमें हो । पर हमको यह निश्चय
मालूम है कि स्थानके बहुत-से उत्तम-उत्तम हस्तलिखित
ग्रन्थ श्रीरामतापनी उपनिषद्, श्रीरामस्तवराज, नामके दशपराध
आदिके उत्कट विद्वान् भाष्यकार श्रीबाबा हरिदासजी (जो
दीनबन्धुजीके घरानेके ही शिष्य थे और श्रीकरुणासिन्धुजीके
साधक शिष्य थे) के एकत्र एवं लिखे हुए दीमक और
श्रीसरयूजीको समर्पण हो गये । यदि वे महात्मा श्रीरामानुज-

सम्प्रदायके वैष्णव होते तो उनकी गणना आळवारीमें होती
और वे घर-घर पूजे जाते । इससे ऐसे लेखकी खोज और
प्राप्ति असम्भव-सी जान पड़ती है ।

किसीके साथ पक्षपात करनेका विचार न रखकर जीवनी-
का सच्चा हाल लिखना ही अपना उद्देश्य है । अतः विना
लेखप्रमाणके कुछ लिखना उचित न समझकर इस समय
तिलकके संवत्पर विचार प्रकट नहीं किया जाता ।

आप लगभग पूर्ण आयुको प्राप्त हुए । परमभ्रामयात्रा
लगभग संवत् १८८४ में हुई ।

बाबा श्रीजानकीदासजी महाराज

इनके कुलका परिचय दासको अभी नहीं मिल सका ।
केवल इतना मालूम हुआ है कि वे कायस्थकुलोद्भव, रामायण-
के बड़े भक्त, प्रेमी और विद्वान् थे । ‘मानसपरिचारिका’ से
जो कुछ पता चलता है वह यहाँ लिखा जाता है—

श्रीमत्परमाचार्य हैं तुलसीदास सुखसार ।
श्रीमद्भगवत्पदाजी विदित तासु अवतार ॥
तासु शिष्यके शिष्य हैं तासु शिष्य विख्यात ।
स्वामी हरिप्रसाद ज्यहि देखि गर्व छुटि जात ॥
तासु शिष्य लघु मैं भयो नाम जानकीदास ।
मानसकी परिचारिका करन चहौं सुखसार ॥

उपर्युक्त उद्धरणसे, जो उन्हींका रचना है, यह स्पष्ट है
कि वे बेंदीके आचार्य श्रीदीनबन्धुजीके प्रपौत्र शिष्य श्रीहरि-
उद्भवप्रसादजी (बड़ी जगह, श्रीअयोध्याजो) के शिष्य थे ।
कहा जाता है कि दीनबन्धुजी तथा करुणासिन्धुजीके आप
परम कृपापात्र थे । पर दीनबन्धुजीके समयमें आप थे या
नहीं इसका ठीक निर्णय विना दोनोंके ठीक कालके
जाने हुए नहीं किया जा सकता । करुणासिन्धुजीकी परधाम-
यात्रा १८८४ या उसके लगभग हुई और मानसपरिचारिका-
का आविर्भाव सं० १९३२ में अर्थात् उनके ४८ वर्ष पश्चात्
हुआ । मानसपरिचारिकाके अन्तका दोहा इसका प्रमाण है—

संबत दस नौ से गनौ और बसिसे जान ।
मानसकी परिचारिका जन्म लियो मतिमान ॥

श्रीहरिउद्भवप्रसादजीके समयका भी पता इस लेखकी
शीघ्रतामें नहीं लगाया जा सका । हो सकता है कि बाबा
श्रीजानकीदास भी पूर्ण आयुको प्राप्त हुए हों और इस तरह
श्रीकरुणासिन्धुजीके समयमें तथा उनके साथ रहे हों । इतना
निर्विवाद है कि वे श्रीजानकीदासपर श्रीकरुणासिन्धुजीके

स्थानमें ही विरक्त होनेपर आकर रहे और वहाँ रामचरित-मानसकी कथा संतसमाजको सुनाया करते थे।

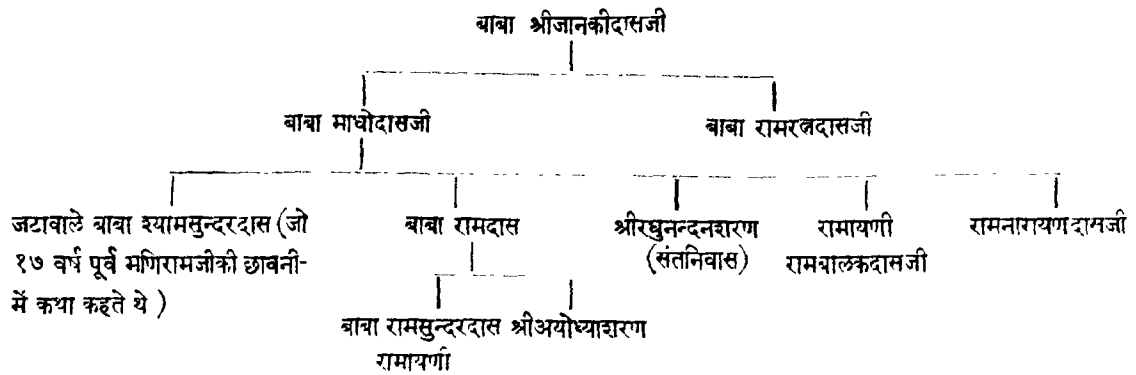
आपकी 'मानसपरिचारिका' नामक टीका श्रीरामचरित-मानसके बालकाण्डके प्रथम ४३ दोहों अर्थात् 'मानसप्रकरण' वा 'मानसमुखबंध' तककी टीका है, जो प्रथम बार मार्च सन् १८८५ ई० में नवलकिशोरप्रेस लखनऊमें छपी थी।

पुस्तकपर 'प्रचारिका' नाम छपा है, पर ग्रन्थकारके लेखमें 'परिचारिका' नाम स्पष्ट पाया जाता है। नाम यही है। अतएव उसमें मानसके प्रत्येक प्रकरणको 'कैकर्य' कहा है। यह 'परिचारिका' केवल ४३ दोहोंकी सेवा कर सकी। आदिसे—

मति अनुहारि सुगारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ।

—यहाँतक षोडश प्रकरण कहे गये हैं। प्रत्येक प्रकरणका कारण भी साथ-साथ पुष्टतापूर्वक लिखा है। कई संस्करण इसके छपे और साधु-संतों, मानसप्रेमियोंमें इसका बहुत मान हुआ है। हमें शोक है कि वे पूरे रामचरितमानसकी सेवा न कर सके, इतनी-सी सेवा होते ही प्रिया-प्रीतम सरकारने उनको अपने नित्यकैकर्यकी किंकरी बना लिया। इसका पता नहीं कि उनके टिप्पण भी कहीं हैं या नहीं। कथा तो वे इसी भौंति सम्पूर्ण मानसपर कहते ही थे और विद्यार्थियोंको पढ़ाया भी था।

श्रीअयोध्याजीमें जो रामायणपरम्परा है वह इन्हींकी है। यहाँके रामायणी माधोदासजी तथा रामरत्नदासजी इन्हींसे पढ़े थे।



एक बार ये पौष मासमें वाराहक्षेत्रमंगमपर कल्यवास करनेके लिये अपने प्रिय शिष्य माधोदासजीके साथ गये। वहाँ कल्यवासके समय कथा भी कहते और पढ़ाते भी थे। वहाँसे लौटनेपर श्रीजानकीदासजीके स्थानमें किसी कारण आपका निवास न हुआ। दोनों गुरु-चेला अपना आसन 'रामलालजीके मुकाम' बड़ी छावनीमें ले गये, जो 'मुकाम' प्रसिद्ध स्थान है, और उसी समयसे वहाँ रामचरितमानस तथा अन्य तुलसीग्रन्थोंकी कथा नियमपूर्वक संतसमाजको आप सुनाने लगे और विद्यार्थियोंको पढ़ाते थे। आपके शिष्योंमेंसे बाबा माधोदासजी प्रसिद्ध रामायणी हुए, जो बराबर अन्ततक आपकी सेवामें रहे और आपके देहावसानपर छावनीमें आपकी जगह कथा संतोंको सुनाने लगे।

बड़ी छावनीके महाराज परमहंस श्रीद्वारकादासजी मानसपरिचारिकाकी भूमिकामें लिखते हैं कि १९३२ संवत्में षोडश प्रकरणका तिलक लिख चुकनेके पश्चात् वे श्रीमिथिला-बी गये (प्रिय शिष्य माधोदासजी भी साथ गये थे) और

वही श्रोतृगल प्रिया-प्रियतमके नित्यकैकर्यको प्राप्त हुए। महाराज सीताशरणजी परमहंस तथा अन्य महात्माओंकी आज्ञा पाकर चैत्र कृ० १५ (अमावस्या) संवत् १९४० के अन्तिम दिन यह टीका परमहंसजीने छपनेका लखनऊ भेजी—इससे यह निश्चय होता है कि उनकी सांकृतयात्रा सं० १९३२ के बाद और सं० १९३८ के पूर्व हुई, क्योंकि यह टीका परमहंसजीको १९३८ में मिली और यहाँ आनेपर माधोदासजीको इसकी कथा कहते हुए उन्होंने पाया था।

यह तिथि १४७ पृष्ठोंमें है, अपने ढंगका एक ही है; न किसीकी नकल है न किसीकी छाया इसमें झलकती है। यह उन्हींके मस्तिष्कसे निकली हुई उन्हींके हृदयका उद्गार जान पड़ती है।

रामायणी श्रीमाधोदासजी

आप क्षत्रियकुलके थे, नये घाट (श्रीअयोध्याजी) के महात्मा तुलसीदासजीके स्थानके शिष्य थे, जो स्थान भगवान् नारायणद्वारेका है। श्रीअयोध्याजीमें आकर बाबा श्रीजानकीदासजीके मुखारविन्दसे मानसकी कथा सुनकर आप ऐसे मुग्ध

हुए कि उनसे मानस पढ़ा देनेके लिये बहुत ही विनीत प्रार्थना की। महात्माजी पढ़ानेकी राजी नहीं होते थे, कहते थे कि दो-चार महीना पढ़ोगे; फिर द्वारका, जगदीश आदिकी यात्रा सृष्टेगी, चल दोगे; हमारा पढ़ाया हुआ भी मिट्टीमें मिल जायगा। अतएव हम इस तरहकी पढ़ाई नहीं पढ़ा सकते। सत्य है, संतसमाजके नवयुवकोंमें आज भी यह बुरी प्रथा देखनेमें आती है, सम्भवतः उस समय भी रही हो। बाबा माधोदास-जीने प्रतिज्ञा की कि मैं जबतक पूर्णतः भावार्थसहित मानसका अध्ययन आपसे न कर लूंगा, जबतक आप स्वयं मुझे प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा न देंगे, अथवा आपके जीवनपर्यन्त (यदि वह मानस सम्पूर्ण अध्ययन होनेके पूर्व ही समाप्त हो गया) आपकी सेवामें रहकर पढ़ूंगा—तब आपने उनको पढ़ाना स्वीकार किया। बाबा माधोदासजी भी जानकीघाट स्थानमें अपने गुरुके पास रहने लगे। गुरु जहाँ जाते आप उनके साथ ही रहते। गुरुके देहावसान होनेपर उनकी जगहकी पूर्ति आपने की। कुछ वर्षोंके बाद किसी कारणसे आप छावनीको छोड़कर प्रमोदवन, शृंगारकुण्डमें फिर रामायणीजीकी कुटियामें आकर रहने लगे। आपके साधक शिष्योंमेंसे रामायणी रामबालकदास-जी सुयोग्य निकले। आप संवत् १९२५ के करीब साकेतको पधारे। कोदोरामजी आदिसे आप कभी न दवे, अपने भावोंके समर्थनमें पूरे थे। लीथोमें एक प्रति शुद्ध करके आपने छपवायी थी और बुकसेलरको तर्काद कर दी थी कि मूल्य १=) से अधिक न हो! साधुओंको १) में।

ज्ञानी श्रीसंतसिंह वेदी पंजाबीजी

एक पंजाबीकी लेखनीसे हिन्दीभाषाके ग्रन्थकी देव-नागरी लिपि और हिन्दीभाषाकी भावपूर्ण टीका कैसी अद्भुत बात है!

आप नानकशाही स्थान अमृतसरके महंत थे। आप लिखते हैं कि मैं हिन्दी नहीं जानता था। एक रात्रिको श्रीहनुमान्जीने मुझे स्वप्नमें आज्ञा दी कि तुलसीकृत रामायणपर तिलक करो, मैंने उत्तर दिया कि वह भाषा तो मैं जानता ही नहीं। उसपर आज्ञा हुई कि तुम उसके १०८ पाठ कर जाओ; इसीके प्रभावसे तुम्हें बहुत कुछ भाषाका ज्ञान होगा और मूलके भाव सृष्टेँगे, वही तुम तिलकके रूपमें लेखबद्ध करो। बस, आपने वैसा ही किया और उसका फलस्वरूप यह 'भावप्रकाश' नामक तिलक हुआ।

इस तिलककी भाषा किञ्चित् पंजाबी-मिश्रित-सी है, पर

समझमें आती है। भावोंके प्रकाशपर, शंका-समाधानपर तो यह तिलक अपने ढंगका अद्वितीय है; किसीकी छाया इसमें नहीं है। यह निकली तो पंजाबसे, पर छपी बिहार खड़किलस-प्रेसमें और वहीसे प्रकाशित हुई। पुरानी टीकाओंमें भावोंके विचारसे यह टीका बहुत अच्छी हुई है। श्लोक बहुत अशुद्ध हैं। एक-एक शंकापर अनेक समाधान हैं, जिनमेंमें बहुतसे खींचा-तानीके भाव हैं। अद्वैतपक्ष लिये हुए हैं। यह तिलक लगभग १८७८ संवत्के हुआ। इसके लंकाकाण्डको देखनेके समय दासका अनुमान यह हुआ था कि मयंककारने इस काण्डको देखकर लंकाकाण्डके भाव मयंकके कूट दोहोंमें रचे हैं, पर इसपर विस्तृत विचार किसी समय किया जायगा जब इसकी सामग्री पास होगी और हरि-इच्छा भी ऐसी होगी। प्रेमी पाठक इसपर विचार करें, साहित्यकी दृष्टिसे यह खोज (Research) के योग्य कार्य है।

यह निश्चय है कि करुणासिन्धु, पाठकजी और पंजाबीजी समकालीन थे।

बाबा श्रीरघुनाथदासजी षट्शास्त्री

आप सिंध देशके थे। काशीमें निवास करते थे। काष्ठ-जिह्वस्वामीके समकालीन थे। गयाजीके सुप्रसिद्ध धुरन्धर रामायणी बाबा लक्ष्मणदासजी, जो काशीजीमें पिनामहेश्वर स्थानमें रहते थे, आपके चेले थे। बाबा लक्ष्मणदासजीके चेले बाबा गंगादासजी हुए।

'मानसदीपिका' नामक लीथोकी छपी हुई टीका रामचरितमानसपर आपकी ही बनायी हुई है। इसमें मानसकोश, अलङ्कारपिङ्गल, चित्रालङ्कारका भी विशेष रीतिसे उल्लेख हुआ है। टीका संक्षिप्त भावसहित है। इससे ज्ञात होता है कि काव्यकलाके आप बड़े मर्मज्ञ थे।

संत उन्मनी मुं० गुरुसहायलालजी

पटना जिलेके नादिरा नामक ग्राममें एक अम्बष्ठ कायस्थ-कुलमें आपका जन्म हुआ था। आप उच्च कोटिके योगी और भक्त थे। उनकी चालदाल पुराने जमानेके रईस कायस्थोंकी-सी थी, जुल्फें रक्खे हुए थे। बड़े भारी रामायणी थे। आप छः मासमें ही संस्कृत भाषाके पूर्ण ज्ञाता हो गये थे। उनका तिलक इसका प्रमाण है कि वे संस्कृत-व्याकरण तथा श्रुति-शास्त्र-पुराणोंके कैसे भारी विद्वान् थे। कहा जाता है कि आपकी स्त्री एक गन्धर्विणी थी जो शापसे इस लोकमें आकर जन्मी थी। साधु भी आप उच्च दर्जेके सुने जाते हैं, कई चरित उनके काशीजीके प्रसिद्ध हैं। आपने श्रीरामचरितमानसपर

तिलक किया है, जो 'संतउन्मनीटीका' एवं 'मानसतत्त्व-विवरण' नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसका केवल बालकाण्ड खङ्ग-विलासप्रेस, पटनासे प्रकाशित हुआ। अन्य काण्ड अप्रकाशित सुने जाते हैं। टीका विशेषकर योगियोंके कामकी है, क्योंकि योगशास्त्रपर ही विशेषकर भाव घटाये गये हैं—यद्यपि साध-ही-साध साधारण भाव भी दिये हैं। लगभग ७० वर्षकी आयु प्राप्तकर आपने यह नश्वर शरीर (कोई ४० वर्ष हुए) छोड़ साकेतनाथको प्रस्थान किया।

श्रीसीतारामीय बाबा हरिहरप्रसादजी श्रीकाष्ठजिह्वास्वामी देवतीर्थजी

काशीनरेश श्रीईश्वरीप्रसादनारायणसिंहजी परम भक्त हुए हैं, रामायणके तो मानो नवरत्न आपके दरबारके सदस्य थे। सुना जाता है कि काष्ठजिह्वास्वामीजी आपके गुरु थे। श्रीहरिहरप्रसादजी आपके सम्बन्धी थे और परमविरक्त अवस्थामे जब वे काशीजी आये तब आपने उनको पहचानकर आग्रहपूर्वक वहीं रक्खा। इससे अधिक परिचय इस समय दास पाठकोंको देनेमे असमर्थ है।

श्रीकाष्ठजिह्वास्वामी तो बड़े भारी उत्कट विद्वान् और संत थे, उनके अनेक ग्रन्थ उनके साधु जीवन, परम वैराग्य, ज्ञान और भक्तिके जाज्वल्यमान प्रमाण हैं। वे सब संग्रहणीय हैं—शृङ्गार-प्रदीप, वैराग्यप्रदीप, सुधाबिंदु, अयोध्याबिंदु इत्यादि।

सुना जाता है कि एक बार बाहरसे कोई प्रतिभाशाली विद्वान् काशीमे दिग्विजयके लिये आये। लोगोंने उन्हें आपके पास भेज दिया। परास्त होकर उन्होंने आत्महत्या कर ली। इससे आपको दुःख हुआ और उसी समयसे काष्ठकी जिह्वा धारण कर ली, इसीसे काष्ठजिह्वा नामसे प्रसिद्ध हुए। इसे सिद्धान्त-पूर्वक निश्चय अभी नहीं कह सकता।

आपने रामचरितमानसपर 'रामायणपरिचर्या' नामक सूक्ष्म टिप्पण लिखे थे, जिसका परिशिष्ट काशीनरेशने लिखा और उसका नाम 'रामायणपरिचर्यापरिशिष्ट' रक्खा। ये दोनों टिप्पण बहुत दुरूह हैं, समझमे नहीं आते। अतएव इसपर 'रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश' नामसे श्रीबाबा हरिहर-प्रसादजीने कुछ विस्तृत टीका कर दी। ये तीनों टिप्पण एक ही पोथीमे प्रत्येक दोहें-चौपाईपर एकत्र लिखे जाकर खङ्ग-विलासप्रेससे छपकर प्रकाशित हुए थे। बाबा श्रीहरिहरप्रसाद-जीने इसमें पाठान्तर भी दिये हैं और करुणासिन्धुजी आदिकी टीकाओंके भाव भी, जो उस समय प्राप्त थे, यत्र-तत्र उसमें

देखे जाते हैं। आपने उसे सरल कर दिया था, परन्तु अयोध्या-काण्ड समाप्त न हो पाया था कि आप नश्वर देहको छोड़ श्रीयुगल प्रिया-प्रियतमके नित्यविहारमें अपनी लालसानुसार जा सम्मिलित हुए। अरण्यकाण्डसे लेकर ग्रन्थकी समाप्ति तककी टीका दुरूह है और यद्यपि उसमें रा० प० प० प्र० नामक टिप्पण दिये हैं पर उन्हें कोई भी पाठक पढ़कर निर्णय कर सकता है कि ये उनके नहीं हैं।

बाबा श्रीहरिहरप्रसादजी श्रीसीतारामजीके परमानन्द उपासक थे। यह उनके नामके पूर्वके 'श्रीसीतारामीय' शब्दोंसे ही आप जान सकते हैं। वे 'वैष्णव' न कहकर अपनेको 'सीतारामीय' कहते थे। आपके चार प्रसिद्ध शिष्य—श्रीटीकमदासजी, नवाहोके परमहंस श्रीरामशरणजी (सम्भवतः यही नाम था), जो ११८ वर्षकी आयु पूरी कर प्रियाप्रियतमके नित्यनिकुञ्जको पधारे, श्रीप्रमोदवनविहारीशरणजी, ऋणमोचन-घाट, अयोध्याजी (जो सन् १९२६-२७ के आसपास लगभग ११२ वर्षके होकर साकेतवासी हुए) और श्रीमहंत रामचरणदासजी, प्रमोदवन, श्रीअयोध्याजी—ये। ये सब विरक्त महात्मा हुए हैं। डिपुटी द्वारकाप्रसादजी (जो प्रमोदवनमें आकर अवधवासी हुए) को आपने गृहस्थ-जीवनका ही उपदेश किया था। कहा था कि यदि पूजा हो तो गृहस्थ-जीवन रक्खो और पुजानेकी इच्छा हो तो साधु वैरागी वेष धारण करो। आपका एक चित्र दासने राजघाटपर जगन्नाथ-प्रसादजीके मन्दिरमें देखा था।

आगे कभी इन महात्माओंका विशेष जीवनचरित्र यदि सरकारी मर्जी हुई तो लिखा जायगा।

श्रीकाष्ठजिह्वास्वामीजीके टिप्पण भी खास उन्हींके हैं। ये भाव अन्य ग्रन्थोंमें देखनेमें नहीं आये हैं।

पं० श्रीसुधाकर द्विवेदीजी

आपका नाम तो काशीजीमें ही नहीं, समग्र भारतवर्षमें तथा अन्य देशोंमें भी ज्योतिष (astronomy) के पण्डित होनेसे विख्यात ही है। आपने भारतवर्षके प्राचीन कालसे इस शास्त्रके आचार्य और पूर्ण पण्डित होनेका परिचय यूरोपीय विद्वानोंको इतनेहीसे दे दिया कि इस शास्त्रके बाहरके बड़े-से-बड़े अभिमानी पण्डित तीन-तीन दिनमें जिस प्रश्नको हल कर सके उसे आपने स्नानके बाद धोती छोटते-ही-छोटते जवानो ही हल कर दिया।

पर आप भक्त भी बड़े थे और तुलसीके प्रेमी भी थे।

भक्त और उपासक ऐसे कि भीअवधमें आकर कभी पादत्राण नहीं पहनते थे, नंगे पैरों ही यहाँ विचरा करते थे। मानस और विनयके ऐसे प्रेमी कि मानसका अनुवाद आपने संस्कृत भाषामें वैसी ही चौपाइयोंमें रच डाला, जिसमेंसे बालकाण्डके करीब ६० दोहेतक तो 'मानसपत्रिका' में निकल चुके हैं, शेष उनके एक पुत्रसे मालूम हुआ था कि घरपर उन लोगोके पास मौजूद हैं। विनयपत्रिकाकी भी इसी प्रकार संस्कृत टीका उनकी सुनी गयी है, पर वह दासके देखनेमें नहीं आयी और न उसकी खोजहीकी आवश्यकता हुई। 'मानसपत्रिका' एक मासिक पत्रिका थी जो आपके और साहित्याचार्य पं० सूर्यप्रसादजीके सम्पादकत्वमें संवत् १९६१ से निकलना प्रारम्भ हुई थी। इसमें द्विवेदीजी, सूर्यप्रसादजी, पं० रामकुमारजी और कहीं-कहीं वंदन पाठकजीके भी भाव अलग-अलग उनके नामोंसे दिये जाते थे। इसमें सूर्यप्रसादजीकी टिप्पणीमें प्राचीन कई टीकाकारोंके भावोंकी कड़ी समालोचनाएँ देखनेमें आयीं। सूर्यप्रसाद मिश्रजीके दर्शन दासको आठ-नौ वर्ष हुए कई बार हुए थे, सम्भवतः अब वे नहीं हैं।

द्विवेदीजीके भावोंमें उनकी श्रीरघुनाथजीमें अनन्यता झलक रही है। मानसपत्रिकाके आप ही प्रधान सम्पादक जान पड़ते हैं, क्योंकि आपकी साकेतयात्राके साथ ही वह पत्रिका बंद हो गयी, नही तो चलती रहती। जान पड़ता है कि सं० १९६१ के बाद यह बंद हो गयी थी, फिर १९६४ से दूसरे संस्करणसे प्रारम्भ हुई और संवत् १९६५ या ६६ में २३ वाँ या २४ वाँ अंक निकलनेपर सदाके लिये बंद हो गयी। सम्भवतः उसीके लगभग आप परमधामको गये।

श्रीरामबख्श पाण्डेयजी

पुस्तक पास न होनेसे आपके सम्बन्धमें कुछ भी परिचय इसके अतिरिक्त इस समय नहीं कराया जा सकता कि आप प्रयागराजमें बाँधपर या उसके करीब कहींपर नित्य मानसकी कथा कहा करते थे। तीन बजे रात कथा प्रारम्भ होती थी। रेत ही कथा-स्थानका फ़र्श था, कथाके श्रोता श्रीमारुतनन्दनजी, श्रीगंगाधरमुनाजी और तीर्थराजनिवासी थे। बड़ी भीड़ लग जाती थी। कथा बड़ी मधुर, रसीली, भावभरी होती थी। मुं० रोशनलालजीने आपके मानसपाठकी पोथी यत्र-तत्र चौपाइयोंपर श्रीपाण्डेयजीके भावोंसहित खट्टविलसप्रसंगमें छपायी थी। एक ही संस्करण हुआ। पोथी अब अप्राप्य है। अन्तमें मानसके शब्दोंका एक बृहत् कोश भी है। कई बड़े साहित्यज्ञ टीकाकारोंने

पुष्पवाटिका-प्रकरणमें आपकी टीकासे सब भाव चुराकर उसी सिलसिलेसे अपने शब्दोंमें उन्हें रख दिया है। सम्भवतः वे यह स्वप्नमें भी न समझते थे कि कोई इस बातको भाँप सकेगा। जो देखेगा यह समझेगा कि ये (चुराये हुए भाव) इन्हीं टीकाकार महाशयके हैं। टीकामें भाव बहुत कम हैं। पुष्पवाटिकाप्रकरणपर आपकी बृहत् टिप्पणी सद्गुरुसदन, श्रीअयोध्याजीमें है, जिससे अनुमान होता है कि पाण्डेयजी बड़े रँगिले रसिक थे।

पं० शुक्रदेवलालजी

इनकी एक टीका मूलसहित नवलकिशोरप्रेस लखनऊसे छपी हुई बड़ी प्रशंसाके साथ प्रकाशित हुई थी। दासके पास जो पोथी पत्राकार थी उसमें 'पाँचवीं बार' ऐसा छपा था। यह देखकर परम आश्चर्य हुआ था कि झूठी प्रशंसा होनेपर भी क्या पुस्तककी इतनी बिक्री हुई, आजतक कारण समझमें न आया। भूमिकासे पता चला था कि ये जातिके कायस्थ थे और श्रीवैष्णव थे। वह टीका गौड़जीके यहाँ गयी थी, लौटकर न आ सकी, इससे पूरा हाल नहीं लिख सकता। उसमें सारी रामायण अष्टपदी बना डाली गयी अर्थात् सर्वत्र आठ-आठ चौपाइयोंपर एक-एक दोहा या सौरठा रक्खा गया है, शेष चौपाइयाँ छोट डाली गयी हैं। हाँ, टीका अवश्य जितनी है अच्छी है, अक्षरार्थ अच्छा है। भूमिकामें भी कुछ बातें नोट लेनेलायक देख पड़ी थीं, पर स्मरण नहीं है। टीका भी लगभग चालीस वर्ष पुरानी छपी हुई होगी।

बाबा हरीदासजी

आप ज़िला रायबरेली, तहसील महाराजगंज, पुरा बबुरिहा, मज़रा सरपुर उर्फ बल्लामें क्षत्रियवंश अमेठिया श्रीमुखसाहिजीके पौत्र और श्रीलालसाहिजीके पुत्र थे। आप गुप्त भजन किया करते थे, बड़े नामानुराग और सत्संगी महात्मा थे। जब-तब श्रीअवध आया करते थे। रात्रिभर जागरण कर भजन करनेका आपका अन्यास था, ऐसी वृत्तिके महात्मा अब देखनेमें नहीं आते। आपने रामचरितमानसपर जो टीका की उसमें बड़े विलक्षण भाव जहाँ-तहाँ पढ़नेमें आये, जो आपके ही हृदयसे निकले हुए थे। कहीं किसी अन्य टीकामें वे भाव नहीं देखनेमें आये। मूल पाठ पूरे मानसका दिया है, पर टीका यत्र-तत्र ही—जहाँ औरोंसे विलक्षण भाव सूझा है वहाँकी—की है। इसीसे आप अपनी टीकाको 'शिला या शीला' कहते थे और शीलवृत्ति टीकाकार कहे जाते थे। आपने सौ वर्षकी आयु पूरी

कर सं० १९७४ चैत्र कृ० ३ रविवारको संतसमाजके मध्यमें मध्याह्न समय साकेतयात्रा की। आपकी टीकाका दूसरा संस्करण हालमें किसी प्रेमीने छपवाया है।

श्रीविनायकरविजी

एक टीका 'विनायकी टीका' नामसे आपने लिखी थी। इस टीकाका मान मध्यप्रदेश (C. P.) में अधिक सुना गया है। इधर भी जहाँ-तहाँ देखनेमें आयी है। यह टीका भी अच्छी है, प्राचीन कई टीकाकारोंके भाव प्रचलित भाषामें दिये हुए इसमें देखे जाते हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसमें अन्य कवियोंके पदोंका पुस्तकभरमें पाद-टिप्पणीमें संग्रह है। शब्दार्थ और अक्षरार्थ (paraphrase) भी है। विशेष परिचयके लिये सामग्री नहीं है।

पं० महावीरप्रसाद मालवीय 'वीरकवि'

आपने मानस और विनयपर टीका लिखी है। अक्षरार्थ और जहाँ-तहाँ भावार्थ भी दिये हैं। इस टीकामें विशेषतः प्रत्येक चौपाईपर अलंकारोंका विस्तृत वर्णन है। पाठान्तरपर भी जहाँ-तहाँ विचार है। पाठ अच्छा है। विनयपर अपना विचार दास नहीं प्रकट करता। आपका साकेतवास हो चुका है।

प्रसिद्ध श्रीबच्चूसूरजोंके गुरु कोई लाजा गार्डकी भी टीका है, जिसका कुछ ही अंश श्रीबच्चूसूरजीने छपवाया भी था।

पं० श्रीरामेश्वर भट्टजी और पं० श्रीज्वालाप्रसादजीकी टीकाएँ, जो निर्णयसागर प्रेस और बेंकटेश्वर स्टडीप्रेससे निकली और लाखों रुपये भी प्रेसोंने उनसे कमाया। इनसे अब मानसप्रेमी सभी असन्तुष्ट-से देखे जाते हैं। यदि पाठकी हत्या न हुई होती तो अक्षरार्थ अच्छा किया गया था।

छोटी-छोटी शंकावलियाँ कई महात्माओंने निकाली हैं। बाबू जंगबहादुरसिंह (बाबा जयरामदासजी) का शंकाभोजन है। श्रीअनन्यमाधवजीका 'मानसमकरन्द', श्रीरामगुलामजीका 'मानसप्रदीप', श्रीमधुसूदनाचार्यजीकी 'मानसनिरूपिणी', श्री-जहाँगीरअलीशाहजीकी 'तुलसीचौपाई', बाबा फ़करिरामजीका 'मूलतत्त्व', संत रेणसीजीकी 'मानसलहरी' और कविवर गोपालदासजीका 'तुलसीशब्दार्थप्रकाश' सुने जाते हैं; दासको देखनेमें नहीं आये।

जहाँतक स्मरण हो आया, मानसपर पुस्तकें लिखनेवालोंके नाम गिना दिये गये।

दूसरी परम्परा

इसमें सबसे अधिक पं० श्रीरामगुलाम द्विवेदीजी मिर्जापुरीका नाम परम प्रसिद्ध है। इनकी जीवनी भी कहीं

कुछ छपी है, पर दासको इस समय उसका पता नहीं मालूम है। ये श्रीकरुणासिन्धु, पं० श्रीशिवलालजी पाठक तथा श्रीपंजाबीजीके समकालीन थे। इन तीनोंमेंसे किसका तिलक, टीका वा टिप्पण पढ़ेका है इसका सूक्ष्म विचार भविष्यमें यदि श्रीसीतारामजीकी इच्छा हुई तो किया जायगा। ठीक निर्णय इन लेखोंमें किया जानेके लिये पर्याप्त समय अपने पास इस समय नहीं है।

यह तो समस्त मानसविशेषमें सुप्रसिद्ध है कि श्रीद्विवेदीजीको श्रीहनुमानजीका इष्ट था, उनकी बड़ी कृपा आपपर थी। रामचरितमानसकी कथा आपकी प्रसिद्ध थी और साथ-ही-साथ अनन्यता भी।

श्रीहनुमानजीसम्बन्धी कथा इस प्रकार सुनी जाती है कि आप तो मिर्जापुरके गणेशगंज महलमें रहते थे और नगरसे बाहर कोसभरपर नदीके उस पार एक हनुमानजीका मन्दिर था, वहाँ जानेका आपका नित्यका दृढ़ नियम था। एक बार आप दैवयोगसे दिनमें वहाँ जाना भूल गये, रात्रिमें स्मरण आने ही आप तुरंत उठकर चउ दिये। घोर वर्षा हो रही थी, गंगाजी खूब बढ़ी हुई थीं। कोई पार उतारनेवाला केवट वहाँ न था। आप साहस कर तैरकर पार जानेका विचारकर नदीमें कूद पड़े, आधी दूर पहुँचनेपर श्रीहनुमानजीने आपका हाथ पकड़ आपको दूबटेसे बचाया और वही दर्शन देकर आपको किनारे किया और आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी कथामें नवीन-नवीन भाव तुम्हारे मुँहसे निकलते रहेंगे इत्यादि *। जिस चकूतरेपर आप कथा कहते थे वह अभीतक मौजूद है। सुना गया है कि कोई शिष्य आपकी कथा कैथी भाषामें नित्य लिख लिया करते थे, मालूम हो जानेपर आपने शाप दे दिया कि जो इसे पढ़ेगा वह अंधा हो जायगा अथवा इसी प्रकारका कुछ शाप था। वह शापित ग्रन्थ पूर्व चौकापाठ-पर था, अब और कहीं काशीजीमें है। आपके शिष्योंके नाम परम्परामें हम दिखा आये हैं। इनमेंसे छकनलालजी मानसके बड़े ही मर्मज्ञ और सुबोध ज्ञाता हुए, जो जटिल काफियावाले,

* हालनाजी लिखते हैं कि "नदीमें उतरनेपर एक आदमा-ने उन्हें रोका और कहा—कहा जाते हैं, खतरनाक है। उन्होंने कहा महावीरजीके दर्शन करना है। तब उस व्यक्तिने अपनेको ही महावीर बताया और नित्यदर्शनवाली मूर्तिके रूपमें उनको वहाँ दर्शन देकर विश्वास दिलाकर आशा दी कि आज़से अब दर्शन-को न आना, घरपर ही एक मूर्ति स्थापित कर लो। वह मूर्ति अभीतक मौजूद है।" हनुमानजीका नाम लोहदी महावीर है।

बाग्विलासमात्रवाले, ऐँचातानीवाले भावोंको कभी पसंद नहीं करते थे। जो भाव कहते उन्हें मानसके पूर्वापरप्रसंग तथा प्रमाणाँसे पुष्ट करके कहा करते थे।

रीवाँनरेश भक्तवर श्रीविश्वनाथसिंहजी महाराजने कई बार विनयपूर्वक बहुत आग्रह किया कि आप हमारे यहाँ आवें, पर वे न गये। एक बार विनम्र प्रार्थनापत्रपर आपने यह उत्तर दिया था—

असि कोउ करत हँसी ॥

पर्वत सिला कंज बरु जाँमे बरु बिष खनै ससी ।

रामहि छाडि और जो जाचौ तो मुँह लाऔ मसी ॥*

इसी तरह चित्रकूटमें एक बार राजा साहब आये और वहाँसे पत्र भेजा कि यह तो मेरा राज्य नहीं है, श्रीरघुनाथजीकी विहारस्थली है; यहाँ तो सभी आते हैं, यहाँ ही आइये तो आपका कुछ सत्संग हो। इस पत्रमें यह चौपाई मानसकी लिखी—

चित्रकूट रघुनंदनु छाप । समाचार सुनि सुनि मुनि आप ॥

आपने उसके उत्तरमें यही लिखा कि—

मकर मुनिन्हक आग्रमनिह जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥

अर्थात् मैं तो कहीं जानेका नहीं, आप ही यहाँ आइये।

एक बार कुम्भके अवसरपर प्रयागजीमें दोनों-के-दोनों गये हुए थे। आगिरको रीवाँनरेश वही आपके दर्शनोंको गये। मत्संग छिड़ा। श्रीपण्डितजीने कहा कि जो इच्छा हो कहिये, उसीपर कुछ कहा जाय। राजासाहबने—

बंदउँ नाम राम रघुबरका । हेतु कृमानु भानु हिमकर का ॥

—यहीसे नामवन्दना-प्रकरणपर कुछ सुननेकी इच्छा प्रकट की। दूसरे दिन ३ से ६ बजे सायंकालतकका समय निर्धारित हुआ। कहा जाता है कि २२ दिनतक नित्य नवीन भाव इस एक चौपाईपर पण्डितजी कहते गये और जो एक दिन कहते उसको दूसरे दिन खण्डन करते कि यह भाव ठीक नहीं है।

* हालनाजा लिखते हैं कि सं० १९०० के करीब रीवाँनरेश विन्ध्याचल आये और इनको बुलाया। पण्डितजीने एक कविच सिल मेजा, जिसका आशय था कि 'हम श्रीरघुनाथजीकी भक्तिमें रमे हुए हैं; जो पत्नी पतिको छोड़कर इधर-उधर भटकती है उसके मुँहपर स्याही लगता है', और नहीं गये। महाराजपर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा और वे हाथीपर चढ़कर पण्डितजीके दर्शनको आये और उनको एक दुशाला और पाँच अशर्फियाँ भेंट की।

आखिर राजासाहब २३ वें दिन विनयपूर्वक बोले कि आप इसके अगाध समुद्र हैं, मैं तो गृहस्थ हूँ; अनेक जंजाल सिरपर हैं, कहाँ इतना ठहर सकता हूँ। यह कहकर स्तुति करते हुए लौट जानेकी आज्ञा माँगकर रीवाँ लौट पड़े।

पुष्पवाटिकाकी एक टिप्पणी आपके हाथकी लिखी हुई दासकी श्रुत भक्तवर मुं० हरिजनलालजीसे प्राप्त हुई थी, जो इस समय उन्हींके पास है। आपने गोस्वामीजीके द्वादश ग्रन्थोंका संशोधन किया था। एक गुटका समस्त ग्रन्थोंका किसी समय छपा था, उसका समय और प्रेसका नाम दासको मालूम नहीं है। मानस-गुटका सं० १९४५ का काशीजीका छपा हुआ है, अब नहीं मिलता। वसन्तपञ्चमीके दिन आपकी साकेतयात्रा हुई थी। ठीक संवत् इस समय मालूम नहीं है।* विशेष श्रीछकनलालजीकी जीवनीमें देखिये।

हालमें सुना है कि किसीने लिखा है कि पं० श्रीशिवलाल पाठकजीने आपसे भी मानस पढ़ा था। आपके पद्योंका भी एक संग्रह कुछ वर्ष हुए छपा था।

बाबा श्रीचोपरामदास उर्फ चौपईबाबा

आपके विषयमें केवल इतनी ही जानकारी दासको प्राप्त है कि आप एक बड़े सिद्ध पुरुष और सब्बे महात्मा थे। मानसी वंदन पाठकजीकी पोथियोंसे जो परम्परा हमें प्राप्त हुई है उससे आप श्रीद्विवेदीजीके विद्यार्थी और श्रीवंदन पाठकजीके गुरु निश्चय होते हैं। जन्म आदिके विषय सब अभीतक ज्ञात नहीं हुए। पाठकजीके चिट-पत्रोंमें यदि कहीं मिले तो कभी प्रकाशित किये जायेंगे। 'आपकी कथाओं अमृत बरसता था। यह प्रसिद्ध है कि उन्हे अपनी मृत्युका हाल मानूस हो गया था। कथा बोलते हुए उन्होंने भरतजीको गंगापार किया और फिर कहा कि भरतजीको पार करके अब चौपई भी पार होते हैं, और उनकी मृत्यु हो गयी। मिर्जापुरमें प्रति वर्ष तरियाघाटपर उनके नामसे एक मेला लगता है। श्रीवंदन पाठकजीके मतानुसार उनकी मृत्यु सं० १८९८ में हुई।†

श्रीमानसी वंदन पाठकजी

सुना है कि आपकी महादेवप्रसादद्वारा संकलित वैराग्य-

* श्रीअयोध्याजीके एक संतजी उनको आयुसमाप्तिका काल सं० १८८४ बताते हैं और श्रीहालनाजी सं० १९००-१९०५ के बीचमें बताते हैं। आगे कभी निश्चय किया जा सकेगा।

† अन्तर्गत हाल हालनाजीसे अभी प्राप्त हुआ है।

संदोपिनीकी टिप्पणी जो खज्जविलासप्रेससे प्रकाशित हुई है, उसमें आपकी जीवनी दी गयी है। वह इस समय अपने सामने प्राप्त नहीं है। आपका जन्म मिर्जापुरमें सं० १८७२ में हुआ। आपके पिताका नाम श्रीलक्ष्मण पाठकजी था। उनके वशमें भी काशीमें अब कोई नहीं है। काशीमें आपके एक भ्रातृपौत्र थे, जो रामनगरकी श्रीरामलीलामें आकाशवाणीका संवाद कहा करते थे, किन्तु वह भी कुछ वर्ष हुए परधामको चले गये। आपके कुछ चिट-पत्र घोसलाघाटपर महाराज श्रीराधोवल्लभाशरणजीके यहाँ अब भी हैं, और ये महात्मा भी उनका कुछ हाल जानते थे; पर ये भी लगभग चार सालके हुआ साकेतवासी हो गये। उनके पुत्र (पं० श्रीरामप्रसाद व्यासजी) ने कुछ परिचय चिट-पत्रोंसे निकालकर भेजा है।

श्रीपाठकजीके कुछ घनाक्षरी कवित्तोसे उनकी गुरु-परम्परा मान्दम होती है, जो इस प्रकार है—

प्रथम श्रीतुलसी कछा मानस श्रीगुरु सों लहि
तिन्ह दन्हो बूढ़े रामदासका जनाय कै।
ताते लहो रामदीन ज्योतिषा बखाने भले
जन्म मरि गाढ़ सब सुख सरसाय कै॥
तासों लही घनोराम संत भाव करि
तते पायो मानदास अति सुखदाय कै।
पंडित गुरुमराम तासों लहि चोपराम
ताकां शिष्य कहै द्विज बंदन बनाय कै॥ १॥

पही परंपरा श्रीसंकर ते आजु लगि
जानत सुबान जन लही भल भाव ते।
आगे जो कहैगे भरी भावसे नहैगे तेऊ
जैसे सब गायो है तिलक करि भाव ते॥
वर्तमान कासोपति ईश्वरी प्रसाद सिंह
तिलक बनाये सिर संतन चढ़ावतें।
ताकां द्विज बंदन कहि लह्यो लाहु उमो लाक,
अब जो कहैगे धन्य मानस पढ़ावतें॥ २॥

इससे आप चोपरामदासजी महाराजके ही शिष्य सिद्ध होते हैं। १८, १९ वर्षकी अवस्थामें आपने चावपूर्वक श्री-द्विवेदीजीके दर्शन कर उनका आरग्यकाण्ड लेकर उसे कैथी अक्षरोंमें नकलकर अपने पास रक्खा। श्रीबाबा हरिदासजी भक्तमालीजी या बाबा चोपरामदासजी आपके गुरु थे।* इस

* हालन्नाजीके मतानुसार तथा पाठकजीके कवित्तके अनुसार चौपईबाबा आपके गुरु थे।

प्रकार आप गोस्वामीजीकी ९ वीं या ८ वीं शिष्य-पीढ़ीमें थे। किस समय आप काशीजीमें आये, यह अभी ठीक पता नहीं चला है; पर यह निश्चय है कि आपका अधिक काल काशीजीमें ही (श्रीरामकुण्ड, महल्ला लक्ष्मणमें) वास करना पाया जाता है। आपकी गुहपरम्परा जो ऊपर 'तुलसी-मानसी-शिष्य-परम्परा' में दी गयी है, वह वही है जिसे आपने स्वयं श्रीराम-कुण्ड स्थानके अधिष्ठाता विरक्त महात्मा श्रीरामवल्लभाशरणजीसे लिखाकर उसपर अपने हस्ताक्षर कर अपने करकमलोंसे 'सं० १९६६ ताई' ये शब्द लिखे हैं। श्रीराम-वल्लभाशरणजीसे आपका जन्मस्थानका कुछ सम्बन्ध था। वे भी वहाँके करमा नामक ग्रामके थे और श्रीअयोध्याजीके श्रीरामचरणदासजी महाराजके चौथी पीढ़ीके शिष्य श्रीरामायणी-शरणजी महाराजके शिष्य थे और लेखक भी थे। इन कारणोंसे दोनोंमें परस्पर प्रेम और सत्संग होता रहता था।* लिखने-लिखानेका काम अधिकतर आप इन्हीं महात्मासे कराया करते थे, पर टिप्पणादि प्रायः स्वयं लिखा करते थे और वह भी साधारण चिटोंपर। उन्होंने जो ग्रन्थ लिखे हैं उनकी सूची उनकी हस्तलिखित रामायणमें, जो उन्होंने पं० श्रीरामगुलाम द्विवेदीजीकी पोथीसे स्वयं उतारी थी, तथा उनके एक चिट-पत्रपर (जो सं० १९३९ का लिखा हुआ है) लिखी हुई मिलती है। वह सूची इस प्रकार है—१ मानसचित्र, २ मानस-कथा-विभाग और ३ मानस-भाष्य, सूत्र-वृत्तिसहित, (इन तीनोंको आपने अपने तीन पुत्र कहा है); और ४ मानसशंकावली तथा ५ मानसप्रकरणवली (इन दोनोंको आपने अपनी कन्याएँ लिखा है); ६ पञ्चोपासना, ७ पञ्चाननसिंह, ८ शंभु, ९ पञ्चगव्य और १० पञ्चामृत; ११ मानसके तिलककर्त्ता पंच और १२ पंच-भाई—इनमेंसे कुछ चिट-पत्र तथा एक चित्र गोस्वामीजीके नामका उन्हींका दिया हुआ घोसलाघाटपर मौजूद है। हनुमानबाहुक भी महात्मा श्रीरामवल्लभाशरणजीके हाथका लिखा और आपका शुद्ध किया हुआ भी वहाँ है। आपके पास तीन प्रतियाँ रामचरितमानसकी थीं—एक हस्तलिखित (१८९५ पौष शु० ७ गविवारको काशीजीमें ही लिखी

* इसी स्थानपर एक महात्मा श्रीजानकीवल्लभाशरणजी (जा मणिकर्णिका बाबाके नामसे प्रसिद्ध हुए और जिनका मन्दिर पीछे घोसलाघाटपर स्थापित हुआ) भी रहते थे। तीनोंमें बहुत प्रेम था। श्रीरामवल्लभाशरणजी अपनी मानससम्बन्धी सारी सम्पत्ति महात्मा जानकीवल्लभाशरणजीको दे गये।

हुई)*, जिसे आपने शरीर छोड़नेके समय श्रीअवध, कनक-भवनमें भेजनेकी वसीयत कर दी थी;† दूसरी लीथोकी छपी हुई पत्राकार रामवल्लभाशरणजीको संशोधन करके दी और तीसरी प्रति छपी हुई अपने शिष्य छोटेलालजीको दी।

आप अपने समयके धुरन्धर, प्रतिभाशाली, वाग्‌विलास-में भी निपुण मानसके वक्ता हुए। वाग्‌विलासकी कई कथाएँ आपकी विख्यात हैं। उदाहरणार्थ एक लीजिये—एक बार राजसभामें आपने कहा कि मानसके भाव मुझको छोड़ दूसरा कौन जान सकता है, प्रमाण गोस्वामीजीका मेरे पास है; उन्होंने यह गुण मेरे ही अधीन कर रक्खा है, मुझीको यह अधिकार सौंपा है। सब दंग रह गये। नगरमें खबर हुई कि कल भरी सभामें इसका प्रमाण पाठकजी देंगे। भीड़ जमा हो गयी, तब आपने यह चौपाई पढ़ दी—

पसु नाचत सुक पाठ प्रवीना । गुन गति नट पाठक आधीना ॥

और कहा कि देखा प्रमाण—‘पाठक आधीना’। काशी-नरेशजी आपका बहुत सम्मान करते थे। एक बार स्वर्गीय प्रसिद्ध भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजीके यहाँ (चौखम्बा महल्लमें) आपने पुष्पवाटिका-प्रकरणकी कथा कही, उसमें भारतेन्दुजीने २०० अशर्फियाँ भेंट चढ़ायी थी। यह लिखनेका तात्पर्य केवल आपकी कथाका आदर-सम्मान दिखाना है।

दासने जो टिप्पण आपकी पोथीमें देखे और जो शंकावली छपी देखी उनसे दासका मत यह है कि आप संस्कृत ठीक न लिख सकते थे, बहुत अशुद्ध लिखते थे, जिससे उन श्लोको-को बिना उनका पूर्ण ज्ञान हुए, या बिना किसी संस्कृतके विद्वानसे संशोधन कराये कहना-सुनना या छपाना असम्भव

* काशीजीके एक परम भक्त बाबू दुर्गाप्रसादजी सं० १९५४ में कनकभवनमें जाकर इस पोथीसे अपनी पोथीको संशोधन कर ले गये। इसके टिप्पण भी उतार ले गये थे, जो हाशियेपर पेंसिलसे ही लिख लिये थे। इसे अन्त समय वे महाराज राधोवल्लभाशरणको दे गये थे।

† झुना है कि इसे उन्होंने परमहंसजी (सम्भवतः श्रीसीतारण-जी) के पास भेजा था कि वहाँ व्यासगद्दीपर जो कथा कहते हैं उनको दे दी जाय। परमहंसजीने वह पोथी पं० श्रीरामवल्लभा-शरणजीको दे दी, जो उनके यहाँ अब भी है और जिसे सात-आठ वर्ष हुए उन्होंने लखनऊमें छपवा दिया था; पर छपी पोथी हस्तलिखितके अनुकूल दासने नहीं पायी, पाठमें बहुत अन्तर था।

है। भावार्थ बहुत तो वाग्‌विलासमात्र हैं, बहुत-से शब्दोंकी खींचातानीसे निकाले हुए हैं और बहुत-से प्रसंगानुकूल उत्तम-उत्तम भाव भक्ति-रसभरे भी हैं। मानसजीके आप कष्टर उपासक थे। एक बार कोई कथाके समय आपके यहाँ कोई चीज़ लाया। आप बोले—ठहरो, ठहरो, हमें न छुआना; यदि मानसमें कहीं उसका नाम न होगा तो हम न लेंगे। उससे नाम पूछनेपर उसने ‘परई’ बताया। आपने तुरंत चौपाई पढ़ी जिसमें वह नाम था—‘होइ सुखी जो एहि सर परई’ और उसे ले लिया। इससे यह भी प्रकट हुआ कि मानसका अध्ययन भी आपका बहुत अच्छा था। आप हिन्दी भाषाके कवि भी थे। आपके कवित्त भी हस्तलिखित मानसके प्रतिमें बहुत-से हैं।

हालनाजी आपका साकेतवास १९४३ में कहते हैं, पर पुरुषरम्परापर उनके हस्ताक्षर सं० १९६६ में पाये जाते हैं; और मानसपत्रिकामें भी उनका नाम सं० १९६४ में आया है। इससे उनका साकेतवास उसके पश्चात् ही निश्चित होता है। आप अपने प्रिय शिष्य पं० छोटेलालजीको अपनी गद्दी सौंप गये थे और इन्होंने सुयोग्य शिष्यकी भाँति उनकी आज्ञाको पूर्णतया निवाहा। ५५ वर्षकी अवस्थातक आप बराबर कथा कहते रहे।

पं० छोटेलालजी

आपने अपनी संक्षिप्त जीवनी अपनी छपायी हुई रामायणमें स्वयं यों दी है—

गौडेन्द्रस्य कुले जातो वक्ता रामायणस्य तु ।
छोटेलालाभिधा यस्य क्षमध्वं मम साहसम् ॥ १ ॥
वन्दनादिं गुरुं नत्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ।
व्याख्यां करोम्यहं चित्रां भाषारामायणस्य तु ॥ २ ॥

बंदन पाठक बंदि करि बंदौ गोबिंद व्यास ।
पुनि गोविंदाचार्यको बंदौ हृदय हुलास ॥ १ ॥
गनपति गिरिपति लच्छिपति बंदौ कोसलपाल ।
रामायन टिप्पन रचित सुम दिन छोटेलाल ॥ २ ॥

आपका जन्म काशीजीमें गौड़कुलके पं० गोरीशंकर मिश्रके यहाँ हुआ, जो गो० नन्हेलालजीके यहाँ गोलघर महल्लमें पुजारी थे। इन्होंने दस वर्षकी अवस्थामें मध्यमा-परीक्षा पास कर ली। ये पाठकजीकी कथा बड़े चावसे सुनते थे। इन्होंने अपना जीवन मानस-तत्त्वप्राप्त्यर्थ पाठकजीके चरणोंमें समर्पण कर दिया। ये गुरु-आज्ञासे नीचीबागमें संगतके पास नन्हेबाबूकी धर्मशालामें

गुरुगद्दीपर कथा कहने लगे। एक प्रेमीने अपना एक मकान इनकी कथामें चढ़ा दिया, तबसे ये सपरिवार कालिकागलीमें उस मकानमें रहने लगे। एक बार छोड़ कभी भी ये काशीसे बाहर कथा कहने न गये। कथा आप सालमें दो तीन महीने कहते, शेष समय अध्ययन करनेमें लगाते थे। आपने एक मन्दिरकी स्थापना भी रेशमकटरे महल्लेमें की और दृष्ट कायम कर दिया। दोहावलीपर आपकी टीका छपी है, जिसमें पं० रामकुमारजीके भावोंका संग्रह पाया जाता है। सुन्दरकाण्डपर भी आपने टीका छपायी थी। सं० १९७२-७३ के लगभग आप काशीमें शरीर छोड़ परधामको गये।

श्रीपाठकजी बड़ी छावनीके बाबा रघुनाथदासजीके समयमें श्रीअयोध्याजी आये थे और यहाँ आपने कुछ दिन कथा भी कही थी। श्रीपाठकजी और छोटेलालजीके चित्र इस मन्दिरमें मौजूद है।

मुंशी छकनलालजी

आप गया (या कुछ लोगोंके मतसे मिर्ज़ापुर) निवासी अम्बष्ठ कायस्थकुलभूषण हुए। आप हिन्दी और संस्कृतके बड़े ही विद्वान् थे। आपके सम्बन्धमें श्रीकाशीजीके महान् प्रसिद्ध ज्योतिषीजी महामहोपाध्याय श्रीअयोध्यानाथजी कहा करते थे कि एक बार एक विद्यार्थीने उनसे रामायण पढ़नी चाही। जिस समय लाला छकनलालजीसे उसने यह प्रार्थना की उस समय वह 'सारस्वत' पढ़कर चन्द्रिका पढ़ रहा था; बस आपने उसे 'चन्द्रिका' ही पढ़ाते हुए उसीमें सारी रामचरितमानसके अर्थ और कथा पढ़ा दी। पाठक इतनेसे ही उनकी विद्वत्ताकी महिमा, उनकी कुशाग्र बुद्धिका परिचय पा सकते हैं।

धारणाशक्ति आपकी बड़ी ऊँची थी; जो एक बार सुन लें, जन्मभर न भूलें। आप पं० श्रीरामगुलाम द्विवेदीजी मिर्ज़ापुरीके परम प्रिय श्रोता थे। जबतक ये कथामें न जाते पण्डितजी कथा ही न प्रारम्भ करते, यद्यपि अन्य श्रोता इनके इस आदरपर अप्रसन्नता प्रकट करते थे और इसे सह न सकते थे। किसी कारणसे कुछ दिनों कथा बंद रही। उसके बाद जब कथा हुई, पण्डितजी महाराजने आपके परम अधिकारी श्रोता होनेका परिचय करानेके लिये—ऐसा इस दासकी समझमें आता है—सबसे पूछा कि कथा कहाँतक हुई थी, क्या हुई थी? कोई ठीक उत्तर न दे सके। अन्तमें जब लाला छकनलालजी आये और इनसे पूछा गया तो उन्होंने कथाका दिन-तिथि, कथाका प्रसंग और जो कुछ भाव पण्डितजीने

कहे थे सब-का-सब कह दिया। उस समय पण्डितजीने कहा कि देखा, हम क्यों इनके आये बिना कथा नहीं कहते, इतने श्रोता-ओमेसे एक भी तो इनके समान कथाका अधिकारी नहीं देख पड़ता। सब लजित हो गये।* उस समयसे मानसविशेषमें इनका नाम बहुत प्रसिद्ध हो गया। कहा जाता है कि आप जो कथा सुनते थे उसे घरपर आकर लिख भी लेते थे, परन्तु दासको इसका ठीक पता नहीं है।

मिर्ज़ापुरसे आनेके बाद आपने महाजनोके झकड़िया नामक कुलमें, जिसमें बाबू हरिश्चन्द्रजी भक्तशिरोमणि हुए हैं, नौकरी कर ली। आपके मानसके बड़े भारी पण्डित तथा पं० रामगुलाम द्विवेदीजीके परम कृपापात्र और प्रिय श्रोता होनेकी खबर थोड़े ही दिनोंमें काशीजीमें फैल गयी और काशीनरेशके कानमें पहुँची, और आदरसम्मानपूर्वक आप काशीनरेशके यहाँ बुलाये गये। इस तरह आपका प्रवेश काशीनरेशके दरबारमें हुआ। महाराज श्रीवाद्या हरिहर-प्रसादजी, काष्ठजिह्वास्वामी देवतीर्थजी महाराज, श्रीमानसी-वन्दन पाठकजी इत्यादि भी आपके समयमें थे। द्विवेदीजी तो आपको पुत्र-समान मानते थे। सुना जाता है कि काशीनरेशने आपकी वृत्ति बौध दी और (बहुत वयोवृद्ध होनेके कारण) आपकी हाज़िरी माफ़ कर दी थी।

विकटोरिया प्रेस काशीने आपके रामचरितमानसकी पोथीका एक गुटका छापा था।

काशीजीके परम प्रसिद्ध रामायणी पं० श्रीरामकुमारजीने आपसे ही रामचरितमानस भावार्थसहित पढ़ा, जिस समय आपकी अवस्था ९५ वर्षकी थी। पं० रामकुमारजी अपनी कथामें आदरपूर्वक आपका नाम लिया करते थे और कहा करते थे कि वे मानसके बड़े अगाध और अपार मर्मज्ञ थे, जब-तब यही कहते कि 'अब बुढ़ापेमें तुमको क्या पढ़ाऊँ, केवल खज़ाना दिखाये देता हूँ...'।

पं० श्रीरामकुमारजी रामायणी

जितना नाम मानसप्रेमी संसारके मध्यमें इनका हुआ, और है, इतना दासकी समझमें और किसीका नहीं हुआ, यद्यपि इनसे अधिक धुरन्धर व्यास अपने-अपने समयमें हो

* हालनाजी लिखते हैं कि इसका खास कारण यह था कि पं० रामगुलाम द्विवेदीजी भी जो कुछ कहते थे उन्हें स्वयं भी बाद नहीं रहता था, पर छकनलालजीको सब याद रहता था। उनकी स्मरणशक्ति बहुत तेज थी।

गये हैं। और सम्भवतः जितने परिश्रमसे इन्होंने मानसका अध्ययन किया ऐसा परिश्रम भी शायद ही किसीने किया हो। मानसपीयूष नामक तिलकके पढ़नेवालोंको तो विदित ही हो गया होगा कि १५० वर्षके भीतर जितने रामायणी तिलककार हो गये हैं उन सबके विशद भावोंको एकत्र करनेपर भी वे पण्डित रामकुमारजीके टिप्पणोंके दशांशको भी नहीं पहुँचते। मानसपीयूषमें तो सभी महानुभावोंके सुन्दर रसीले भावोंका संग्रह है; पर जो व्याख्यान जीवनघन हो रहा है, जो नव-युवकोंको व्यासपदवी दिलानेको समर्थ हुआ है वह एकमात्र पण्डितजीका ही टिप्पण है।

आपके जन्म, पिता, माता, भ्राता, पुत्रादि और पूर्व-जीवनका परिचय करानेवाला कोई मसाला इस समय दासके पास नहीं है; नहीं तो उसे लिखकर जीवनको सफल करता। इतना ही इस समय लिखा जाता है कि आप राजापुरसे दो-ढाई कोसपर रुपौली नामक एक ग्रामके रहनेवाले थे। बचपन-से ही आपको रामचरितमानससे बड़ा प्रेम था। लेख भी आपका बहुत शुद्ध और साफ़ होता था, सदा हिन्दीकी लेखनी-से मोटे अक्षरोंमें ही टिप्पण लिखा करते थे। हाँ, रास्ते चलतेमें पेंसिलसे ही काम ले लिया करते थे। आप चित्रकूटके धनुषाकार पर्यास्विनीतटपर स्थित पुरानी लंका नामक स्थानके चेले थे। यह दासको महंतजीसे कई वर्ष हुए मालूम हुआ था। बुंदेलखण्डमें रहते हुए ही आपने टीकाओंको पढ़-पढ़कर जैसे-तैसे कथा कहनेका अभ्यास किया था। उस समयके भी उनके कुछ खरों दासको मिले थे। उनको देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि उस समय कथाका दारमदार केवल टीकाओंपर ही था। आपके खरोंसे स्पष्ट है कि आप संस्कृत भी अवश्य अच्छी पढ़े थे। वाल्मीकीय, अभ्यात्म, पद्मपुराणादि, श्रीमद्भागवत, महाभारत, गीता आदि अनेक ग्रन्थोंके श्लोकोंका संग्रह समानार्थी चौपाइयोंपर आपने प्रत्येक काण्डपर अलग-अलग किया था, जो बिना स्वयं संस्कृतके विद्वान् हुए नहीं हो सकता। यही नहीं, वे श्लोक बहुत शुद्ध आपके हाथोंके लिखे हुए हैं, कोई भी श्लोक हमें जैचानेपर अशुद्ध नहीं मिला। और न उनके संग्रहमें एक भी गढ़ा हुआ श्लोक दिखायी पड़ा जैसे कि बाबू जंगबहादुरसिंहजीकृत रायबरेलीसे निकली हुई टीकामें (जो सारी-की-सारी जाली साबित हुई) ग्राहकोंको धोखा दिया गया।

‘मानसपीयूष’ में उनके बालकाण्डके हस्तलिखित दोहा ५७ से आगेके टिप्पण अबतक न छप सके, क्योंकि उनका

प्रकाशक कोई नहीं मिल सका और दासकी स्थिति ऐसी नहीं कि आगे उसे निकाल सके।

अब हम उनके काशीमें आनेके बादका पठन-पाठन-कालका हाल, जैसा उनके परिचित और सत्संगी मित्रोंसे मालूम हुआ था, देते हैं—

आप काशी शहरमें रहते थे। राजा साहबके यहाँ आपका प्रवेश हुआ, वहाँ रामायणियोंके सत्संगको चुपचाप देखने-सुननेका मौका मिला। श्रीलाल छक्कनलालजीकी तीव्र बुद्धि तथा उनके विलक्षण प्रमाणोंसे पुष्ट, पूर्वापर प्रसंगोंसे संगठित, तथा जिनमें वाग्विलास छू भी नहीं गया था, ऐसे यथार्थ भावोंको सुन-सुनकर आप उनपर लट्टू हो गये। इन्हींको अपना मानसगुरु बनाना निश्चितकर आप उनके पास जाने लगे। सब कामोंसे अवकाश पाकर एकान्तमें रात्रिके समय करीब दो कोस चलकर नदी पारकर उनके पास नित्य जाकर आप मानस पढ़ने लगे। लाला छक्कनलाल इस समय बहुत वृद्ध थे; ९५ वर्षकी आयु उस समय थी, यह सुना जाता है। अतः वे कुछ अप्रीमका भी सेवन करने लगे थे, लेटे हुए हुक्का पीते हुए इनको टिप्पण लिखाते जाते। आप भी उनकी पिता-समान मानकर सेवा करते थे। चिलम भर देते, हुक्का ताज़ा कर देते। लालाजी इनको हज़ार रोकते, पर ये एक न सुनते। वैसे ही उनका भी इनपर परम वात्सल्य था। जब-तब बराबर यही कहते कि पण्डितजी तुम क्या हमारे अन्तिम समयमें पढ़ने आये, पहले आते तो तुम्हें कुछ इसका रसास्वादन करा देते; अब तो खजाना दिखानाभर है। उसपर पण्डितजी कहते कि ‘बाल्याजी, जो हो सके सोई सही; आपके इन्हीं थोड़े-बहुत दिये हुए रत्नोंसे हम मालामाल हो जायेंगे। आगे परिश्रम करके इसी दरेंपर चलकर और भी रत्न खोज लेंगे’—इस प्रकार पण्डितजी अपने मित्रोंसे वतलाया करते थे। आपके पास भागवतदासजीका गुटका था। उसीसे आप पढ़ते थे और जो भाव लालाजी बताते थे आप हाशियेपर तीनों ओर लिख लेते थे—पुरुषोत्तम व्यासद्वारा प्राप्त यह पुस्तक एक संतद्वारा अयोध्याजी आयी और यहाँ रामायणीजीके यहाँ वह टिप्पण नकल कर लिये गये। आप रात्रिमें पलंगके पास बैठे हुए लिखा करते थे। लालाजीको झपकी आ जाती, वे सो जाते; पर आप बैठे रहते। उसीको लिखते, मनन करते रहते; पर उनको जगाते नहीं। उधर जब लालाजीकी आँख खुलती तो इनको बैठे हुए देख वे बड़े मधुर नम्र वचनसे कहते—अरे पण्डितजी! अभी आप बैठे ही हैं? अरे मुझे निद्रा आ गयी, बुढ़ापा है। अच्छा लिखो, कहोतक

लिख गये? फिर लिखाने लगते—इस तरह पढ़ते-सुनते-लिखते कभी-कभी रात्रिभर बीत जाती थी। सवेरे अपने यहाँ चले आते, दिनमें उसीको मनन करते। इस तरह सारी रामायण उन्होंने पढ़ी।

इसके अतिरिक्त इन्होंने समस्त प्राचीन टीकाएँ जो उपलब्ध हुई, उनमेंके केवल विशदभाव प्रायः बादामी कागजके खरोंपर आदिसे अन्त काण्डवार उतार लिये। करुणासिन्धुजी, पञ्चावीजी, जानकीदासजी और पोंड्वेजीकी टीकाओंके खरें खूब स्पष्ट लिखे हुए हमने स्वयं देखे और पढ़े हैं। इसी तरह आदिसे अन्ततक अनेकानेक संस्कृत ग्रन्थोंसे चुने हुए श्लोकों, जो किसी चौपाई, दोहे आदिके समानार्थी होते, का संग्रह काण्ड-काण्डपर अलग-अलग किया करते थे। पहले दासकी समझमें न आया था कि यह श्लोक कैसे है (क्योंकि संस्कृतका बोध बिल्कुल न था), इससे उन खरोंको दासने लौटा दिया था। यह संग्रह भी बड़ी बुद्धिमानोंके साथ किया गया हुआ प्रतीत होता है। आप केवल प्रमाणके लिये ही ऐसा नहीं करते थे, वरं गोस्वामीजीकी चौपाइयोंसे उनका मिलान करके गोस्वामीजीके शब्दोंमें उनसे अधिक जोर और चोखाई दिखाया करते थे। ‘मानसपीयूष’ में तीन-चार स्थानोंमें उनके ऐसे मिलान तो अवश्य ही आ चुके हैं।

आप वर्धमें केवल एक या दो माससे अधिक कथा नहीं कहते थे। दस-ग्यारह मासमें एक पूरा प्रकरण तैयार करते थे, उसको बादामी कागजके Foolscap Size के पन्नोंपर दोनों ओर लिख रखते थे। यही खरें दासको श्रीपुरुषोत्तम व्यासजीसे प्राप्त हुए। आपने शापित पोथी भी थोड़ी-थोड़ी करके सव पढ़ ली थी और उसके पढ़नेके समय श्रीहनुमान्जीका अनुष्ठान भी किया करते थे। फिर भी जब नेत्रोंमें कुछ कष्ट प्रतीत होता था तब पढ़ना छोड़ देते थे। घरपर सदा एकान्तमें रहते थे, किसीसे मिलते-जुलते न थे। यदि कोई आ गया तो तुरंत जनेऊ चढ़ा लेते कि पेट खराब है, शौचको जाता हूँ। बस, वह व्यक्ति ज्यों ही जाता त्यों ही फिर मननमें लग जाते। रास्तेमें ज्ञान या बाज़ारको जाते तो कुतोंके खलीते (जेब) में पेंसिल-कागज़ साथ रहता। रास्तेमें कोई-न-कोई प्रसंग मनन करते चलते और यदि कोई भाव सूझता तो तुरंत बैठकर लिख लेते, तब आगे चलते। शौचादिके समय भी यह क्रिया उनकी जारी ही रहती थी। बस, इतना ही बहुत है, जिससे पाठक उनके श्रीगुलसी-साहित्यके अध्ययनका अंदाज़ा कर सकते हैं।

आपका विचार यह था कि जो भाव अन्य टीकाकार लिख वा कह गये हैं उनको दुहरानेसे केवल ग्रन्थ बढ़ाना और टीकाओंका अवलोकन किये हुए पाठकों वा श्रोताओंका समय ही नष्ट करना है। आप कभी किसीका खण्डन नहीं करते थे और न कभी किसीकी शानमें कोई अपशब्द कहते थे। जो अपनेको कहना है उतना ही प्रमाणोंसे पुष्ट करके कहते थे। श्रीरूपकलाजी फरमाते थे कि कयामें वे संस्कृतके ग्रन्थोंके समानार्थी श्लोक (parallel quotations) सामने रखकर बड़ी खूबीसे दोनोंका मिलान करते थे। रोचक, वाग्विलासमात्र, प्रसंगप्रतिकूल अथवा ऐंछातानीके अर्थ वे नहीं कहते थे, और न शब्दोंका कभी बुरी तरह तोड़-मरोड़ करते थे। ये बातें ऐसी हैं जो बहुत कम व्यासोंमें देखने-सुननेमें आती हैं। उनकी कथा बड़ी सूक्ष्म (to the point) और प्रभावशाली तथा प्रशंसनीय होती थी।

आपकी कथाकी प्रसिद्धि जब बहुत फैली तब तो लोगोंकी भीड़ ऐसी होने लगी कि बैठनेके लिये स्थान रिजर्व कराना पड़ता था। काशीहीके नहीं बरं दूर-दूरके, उदाहरणतः श्रीअयोध्याजी, प्रतापगढ़, रायबरेली आदिके लोग कथा प्रारम्भ होनेके दिनका पता लगाये रखते थे और उसके पहले ही वहाँ पहुँच जाते थे, जिसमें कथा किञ्चित् छूटने न पावे, और अन्ततक काशीजीमें रहकर कथा बंद होनेपर लौटते थे। इन्हींमें एक श्रोता बाबा रामदासजी रामायणी अयोध्याजीके थे, जो काशीजी जाकर चौकाघाटपर ठहरा करते थे और नित्य कथा सुनकर उसको कथाशालामें ही बैठकर लगाकर अर्थात् उसका पूरा मनन वहींपर करके तब बड़ी रात्रिमें अपने आसनपर जाकर उसकी टिप्पणी बना लेते थे। इसी टिप्पणीको कण्ठकर कई रामायणी, ‘मानसपीयूष’ नामक तिलक छपनेके पूर्व, व्यासगद्दीपर कथा कहा करते थे और उसको प्राणोंके समान गुप्त और सुरक्षित रखते रहे हैं। जहाँ पण्डितजीके हस्तलिखित खरें दासको प्राप्त न हो सके वहाँ श्रीरामायणी रामसुन्दरदासजीकी उदारता, कृपा एवं जगत्-हित-परायण स्वभावसे वह टिप्पणी ‘मानसपीयूष’ में उद्धृत की गयी।

कयामें जो पूजा चढ़ती थी वह किसी बड़े प्रेमी महाजन-के यहाँ जमा होजाती थी। पूजाको वह घटवाल्का पैसा कहा करते थे। माता और पुत्रोंसे यही कहा करते थे कि यह पैसा संतोंका है, इसके व्यय करनेका अधिकार हमें नहीं है। मोटा पहन लो, मोटा खा लो; बस, शरीर-रक्षामात्रके लिये इसमेंसे

लेनेका अधिकार है, अधिक नहीं। यह कथन आपका कथन-मात्र ही न था, बरं मन और कर्म भी आपके वैसे ही थे। आप सदा गाढ़ेकी बंडी, चोती, टोपी ही पहनते और साधारण भोजन करते थे। कभी न कोई मकान बनाया, न जायदाद खरीद की। जब रुपये अधिक एकत्र हुए तब तुरंत भारी भंडारा कर देते। घोसलाघाटके राजमन्दिरका आपका भंडारा बहुत प्रसिद्ध है, जिसमें कुछ सरकारी कृपाएँ लोगोंको प्रत्यक्ष देखने-में आयीं।

जब-तब आप श्रीअयोध्याजीमें आया-जाया करते थे। एक बार श्रीरूपकलाजी, बाबा श्रीगोमतीदासजी, परमहंस सीता-शरणजी आदि कई प्रसिद्ध महात्माओंने आपसे यहाँ कथा कहनेका बहुत आग्रह किया। आखिर 'अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी' कहकर उस प्रार्थनाको स्वीकार किया। सुन्दरकाण्डकी कथा कहनेकी आयोजना हुई। कथास्थान श्रीकनकभवन निश्चित हुआ। उसी समय सुप्रसिद्ध श्रीपुरुषोत्तम भट्टजी श्रीलक्ष्मणकिलापर वाल्मीकीय रामायण अवधवासियोंको सुना रहे थे। इधर आपकी कथा प्रारम्भ हुई। एक ही दिनमें कथाका अद्भुत प्रभाव श्रोताओंपर पड़ा, श्रीकनकभवनका आँगन फैजाबाद और अयोध्याके श्रोताओंसे भर गया। भट्टजीकी कथामें केवल चार-पाँच श्रोता स्थानके ही रह गये, सब यहाँ चले आये। दो मास पूरे सुन्दरकाण्डमें लगे। समाप्तिके दिन आरती-पूजामें केवल १००) नौ सौ रुपये चढ़े। कार्याके प्रेमी महाजनके पूछनेपर आपने लिख भेजा कि केवल १००) पूजा चढ़ी है, आप ११००) वहाँसे और भेज दें। तुरंत रुपये आते ही आपने २०००) लगाकर संतोंका भंडारा कर दिया।

एक बात आपकी निःस्पृहताकी इसी सम्बन्धमें और बता देने योग्य है। कथासमाप्तिका दिन निश्चय हुआ कि अमुक दिन समाप्त होगी। टीकमगढ़नरेश समाप्तिके दिन आयेंगे, यह पत्र मैनेजरके पास आ गया। समाप्तिके दिन तार पहुँचा कि गाड़ी छूट गयी, दूसरी गाड़ीसे आयेंगे, कठ कथाकी समाप्ति हो। श्रीपण्डितजीसे लोगोंने बहुत प्रार्थना की कि कुछ कथा कलके लिये रख ली जाय, कठ ही समाप्ति की जाय; पर आपने एक न सुनी, यही कहा कि जब एक बार श्रीसीतारामजीके दरबारमें तिथिका निश्चय हो गया तब वह टल नहीं सकता। उसी दिन कथा समाप्त कर दी। क्यों न हो—

मोर दास कहइ नर आसा। करइ त कहहु कहा बिस्वासा ॥

उपासकको उपास्यदेवका अभिमान होना ही चाहिये।

'मानसपीयूष' के अरण्य-किष्किन्धाकाण्डमें आपकी फोटो जिन्होंने देखी होगी वे उसीसे उनके सीधे-सादे सरल स्वभाव तथा रहन-सहनका अंदाजा कर सकते हैं।

आपके दो-तीन भाई, पुत्र और भतीजे तथा पोते भी हुए। माताकी आप बहुत सेवा करते थे। भाई और पुत्र पूजामें रुपये बहुत चढ़ते देख-देखकर आपको खर्च करनेके लिये उन्हें देनेके लिये बहुत तंग किया करते थे, पर आप वही बात कहते जो ऊपर कह आये हैं। इसीसे वे सब इनसे ईर्ष्या-द्वेष रखते थे। इनके खुदके शायद तीन लड़के हुए, पर उनमेंसे एक भी लायक न निकला।

आपसे लोगोंने बहुत आग्रह किया कि टीका छपा दें और यहाँ श्रीरूपकलाजीने स्वयं उनसे यही बात कही, पर वे बोले कि टीका समाप्त ही नहीं होती। जब मैं दुहराता हूँ तब फिर कुछ-न-कुछ नवीन भाव सूझ पड़ने लगते हैं। यह कहनेपर कि जो है सो छप जाय, आपने यही कहा कि ऐसी ही आज्ञा है तो कभी छपा दी जायगी। दो लालसाएँ उनके हृदयमें अन्तकालके कुछ पूर्वसे उठी—एक तो यह कि हम माताकी अन्त्येष्टि किया कर सकें और दूसरी कि टीका लिखकर समाप्त हो तो यह छप जाय। पर ये दोनों लालसाएँ उनके साथ गयीं। हाँ! दूसरी लालसा श्रीरघुनाथजीने किसी क्रूर उनके बाद कई वर्ष पीछे पूरी कर दी। उनका हस्तलिखित बालकाण्ड, जो दीमकसे बच पाया, प्रकाशित होनेसे रह गया; क्योंकि 'मानसपीयूष' का सुन्दरकाण्ड छपनेके पश्चात् वह दासको प्राप्त हुआ और फिर भूमिका एवं परिशिष्ट निकल न सके।

आपके विद्यार्थियोंमें सबसे अधिक प्रिय पं० राजाराम नागर ब्राह्मण थे, जो रामनगरमें रामजीका स्वरूप बनते थे और रामनगर-लीलाके व्यास पुरुषोत्तमदत्तजी और उनके छोटे भाई धर्मदत्तजी थे, जो उनके बाद रामजीके स्वरूप भी बनते थे। इनकी कुशाग्र बुद्धि थी; जो भाव पण्डितजीको न सूझे वे इनको सूझते थे। आप इनकी बराबर रामजी कहते थे और यद्यपि इनको पढ़ाते थे तो भी अपनेसे ही पहले इनको दण्डवत् किया करते थे। परस्पर एक-दूसरेको दण्ड-प्रणाम होता था। आप समझते थे कि हमारे पीछे ये हमारा नाम चलायेंगे। पर वे थोड़ी ही अवस्थामें चलते बने। जिस समय ये परधाम सिधारे पण्डितजी कथास्थलपर कथा कह रहे थे। देहावसानका समाचार सुन उन्हें बड़ा शोक हुआ और कथा उसी वक्त बंद कर दी गयी। दूसरे विद्यार्थी

देवीपलट तिवारीजी हुए जो बहुत गरीब थे। इन्होंने आपके चरणों-पर पड़कर आपसे विनय की कि मुझे पढ़ा दीजिये। उन्होंने आज्ञा दी कि पहले १०८ पाठ कर आओ, तब पढ़ावेंगे। ऐसा ही हुआ। तिवारीजीके दर्शन दासको श्रीअवधमें श्रीरामनवमीपर कई बार हुए। वे जन्मभूमिपर नवमीको दिनभर श्रीसीताकूपके पास वृक्षकी छायामें श्रोताओं, जिज्ञासुओं, प्रेमियोंको एक आसनसे बैठे हुए संध्या समयतक बराबर अतीव आनन्दवर्षासे सराबोर करते रहते। ऐसा धाराप्रवाह तो दासने कभी पूर्व देखा ही न था। जवान ब्रह्मा थी, मशीन थी; निरन्तर कहते हुए थकती ही न थी, हरएककी शंकाका समाधान तुरंत करते थे। कोई चार वर्ष हुआ वे साकेतवासी हो गये और साल-दो-साल बाद ही उनका उन्हींके समान सुयोग्य पुत्र भी चलता बना। इस तरह उनके विद्यार्थियोंमें, दासकी जानकारीमें, कोई नहीं रह गया।

आपके देहावसानके पूर्वसे ही आपके कुछ खरें पं० राजाराम और पुरुषोत्तमदत्तजी व्यासके यहाँ थे, कुछ अन्त समय पुरुषोत्तमजीको वे दे गये और कुछ उनके पश्चात् उनकी मातासे इनको प्राप्त हुए थे। कुछ लोगोंने आपके एक लड़केको मिलाकर साम, दाम, भय, भेद और दण्ड आदि अनेक उपाय रच-रचकर पुरुषोत्तमजीके हाथोंसे आपके खरें और पुस्तकें लेनी चाहीं कि उन्हें कमानेका जरिया बनावें, जिससे तंग आकर उन्होने प्रतिज्ञा कर ली थी कि ये मेरे साथ चितापर जल जायेंगे; मैं अब इनको किसीको न दूँगा। श्रीसीतारामजीकी कड़ी प्रेरणासे दासको सन् १९२६ में (सम्भवतः) रामनगरलीलामें जाना पड़ा। वहाँ लीलाकी समाप्तिपर व्यासजीसे प्रथम ही दिन एक घंटेभर की बातचीतमें श्रीहरिजनजीकी सिकारिशमें श्रीभगवत्-

इच्छा और कृपासे उन्होंने दासको यही कहा कि 'अब मैं आपके लिये अपनी प्रतिज्ञा तोड़ता हूँ और जो कुछ मेरे पास सामग्री है वह मैं आपको दूँगा।' और इसका निर्वाह भी उन्होंने किया। 'मानसपीयूष' उनकी कृपाका सदा श्रुणी रहेगा।

मानसपीयूषमें श्रीलाला भगवानदीनजी और प्रोफेसर श्रीरामदासजी गौड़ने अपने जीवनकालमें, जबसे वह मानसपीयूषके ग्राहक हुए, बड़ी सहायता की। गौड़जीसे कठिन प्रसंगोंके हल करनेमें बहुत भारी सत्संग वादविवादसहित होता था और इस तरह अनेक स्थलोंकी कठिनाइयाँ जो किसी रामायणीसे हल न हो सकीं, उनके सत्संगसे सुगम हो गयीं। ये दोनों महानुभाव साहित्यसेवी थे, दूसरेके भावोंका भी आदर करते थे, वाद-विवाद-पर अपने विचारोंकी गलती भी स्वीकार कर लेते थे। श्रीगौड़जीने 'मानसपीयूष' की भूमिका स्वयं लिखकर समर्पण करनेका वचन दिया था, उसके लिये सामग्री भी दासने पूरी-पूरी उनको प्राप्त करा दी थी; पर वे इस कार्यको न कर पाये और सब सामग्री भी वहीं रह गयी। हरि-इच्छा !

इस तरह मानसके विश्व प्राचीन महात्माओंका किञ्चित् गुण-गान कर दिया है। दास तो कम-से-कम इन सभीका कृतज्ञ है क्योंकि आपलोग हमारे गुरुदेव श्रीमद्गोस्वामीजीके मानस-तत्त्वके प्रकाशक और प्रेमी हैं, अतः मेरे पूज्य हैं। आपलोगोंकी चरण-रज जो सर्वकल्याणकी दात्री है, वही दासके मस्तकपर रखने और तिलक तथा पान करनेको दासको प्रदान करे, जिसमें उसे श्रीसीतारामजीके चरणोंमें नित्य नवीन बढ़नेवाला परम अविचल अमल अनुराग प्राप्त हो जाय। जय श्रीसीताराम !

मानस-महिमा

माता पिता पुत्रसे प्रियासे सुख होता नहीं,
सच्चे सुखका निवास कौन बतलाती है।
संयम नियम तप धर्ममें लगाती हुई,
विश्वसे विरक्ति सविशेष उपजाती है ॥
कामका विजेता कर देती है सचेता और,
अति भव्य भागीरथी भक्तिकी बहाती है।
रामचन्द्रजीके ध्रुव ध्यानमें निमग्न हुए,
मानस मनुष्यको महेश्वर बनाती है ॥

धार्मिक तत्त्वके पर्वतोसे,
अभिभूषित रम्य मनोहर है।
रामकी भक्तिका ही इसमें,
भरपूर भरा जल सुन्दर है ॥
मौक्तिक हैं मिलत उपदेश,
अटभ्य महा सुख निर्भर है।
प्रेमी मराल गणोंके लिये,
यह मानस मानसरोवर है ॥

—भगवतीप्रसाद त्रिपाठी 'काव्यतीर्थ'

वीर सेवा मन्दिर

पुस्तकालय

काल नं० (०५) २३४ (५६)

कल्याण

लेखक

शीर्षक कल्याण

२४३८

वर्ष २३ भाग १ क्रम संख्या

वापसी का दिनांक